0152mN44 2937
G3.8.2
Poddar, Hanuman
Prasad Ed.
Kalyan

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

3577

0152mN44
G3.8.2

2952

SHRI JAGADGURU VISHWARADHYA JNANAMANDIR
(LIBRARY)
JANGAMAWADIMATH, VARANASI

❁ ❁ ❁ ❁ ❁

Please return this volume on or before the date last stamped
Overdue volume will be charged 1/- per day.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ॐ

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते

कल्याण

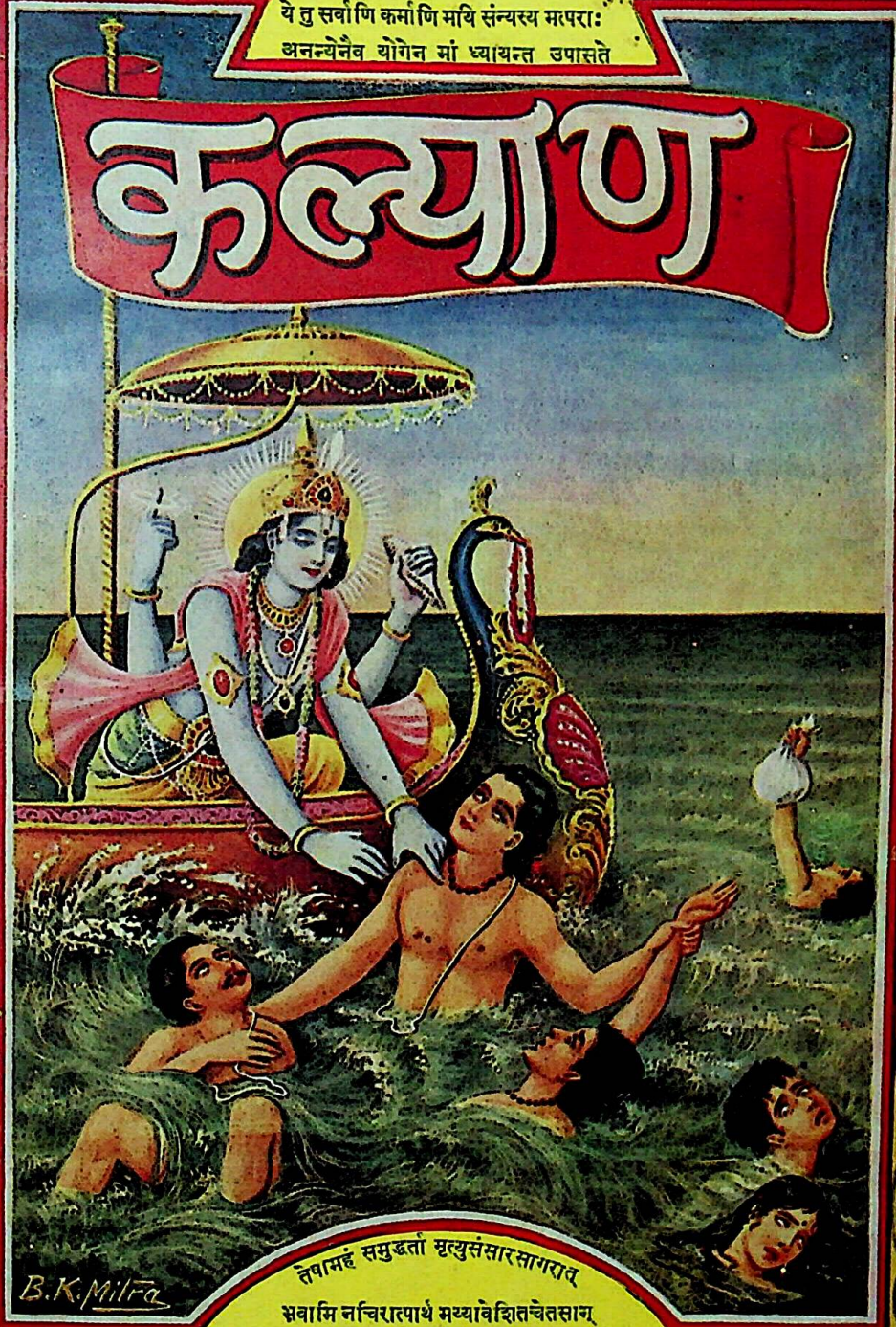

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्

वर्ष ८
संख्या ४

कार्तिक
१९९०

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

0152mN44
G3.8.2

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY.
Jangamwadi Math, VARANASI,
Acc No. 2937

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

कल्याण

[भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार-सम्बन्धी सचित्र मासिक पत्र]

वर्ष ८

सं० १९९० । ९१ की

निबन्ध-सूची,

कविता-सूची

तथा

चित्र-सूची

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार

प्रकाशक—घनश्यामदास जालान

कल्याण-कार्यालय

गोरखपुर ।

वार्षिक मूल्य ४॥)
विदेशोंके लिये ६॥=)

प्रति संख्या ।)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीविष्णुभगवान्

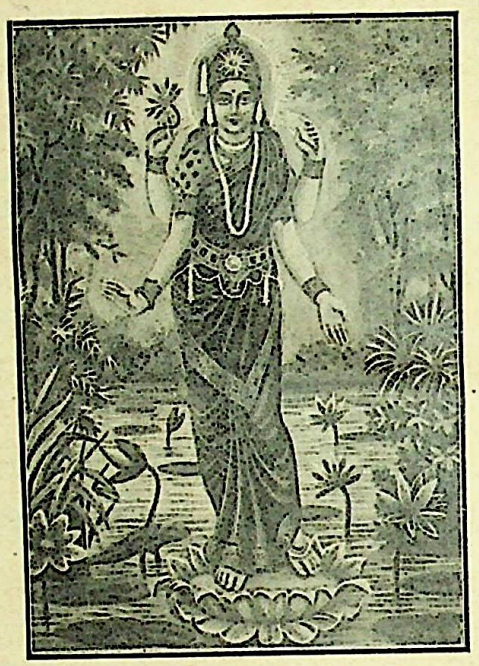

श्रीलक्ष्मीजी

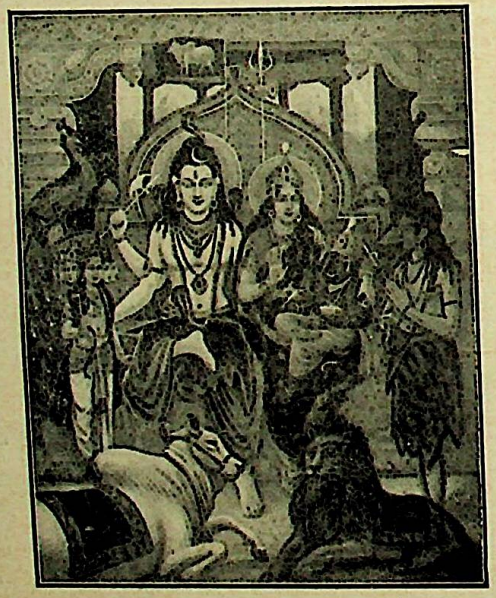

श्रीशिवपरिवार

श्रीजगज्जननी उमा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

कल्याणके आठवें वर्षकी लेख-सूची

क्रम-संख्या	विषय	लेखक	पृष्ठ-संख्या
१	अग्नि और त्रिदेव	... (श्रीमद्भागवतसे)	३३८
२	अद्भुत शिवकोटि	... पं० श्रीवीरभद्रजी शर्मा तैलंग, वेद-काव्यतीर्थ ...	४८१
३	अधीर क्यों होते हो ?	... गंगातीरनिवासी एक विरक्त महात्माके उपदेश, प्रे०— श्रीइन्द्र ब्रह्मचारी	७८८
४	अनन्तकी ओर	... ब्रह्मचारी पं० श्रीअक्षयवटजी त्रिपाठी, शास्त्री ...	१४४८
५	अनुताप	... श्रीमार्कण्डेयजी ब्रह्मचारी	९४०
६	अवतार-सूची	... पं० श्रीविष्णुदत्तजी शर्मा बी० ए०	१३४७
७	अयोध्याके शिवमन्दिर	... ...	६६३
८	अर्द्धनारीश्वर	... श्रीएरच जे० एस० तारापुरवाला, बी० ए०, पी-एच० डी०, बार-एट-ला	५२१
९	अवतारसिद्धि	... पं० श्रीविष्णुदत्तजी शर्मा बी० ए०	१२८४
१०	आदर्श सरकारी नौकर	... श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी एम० ए० डिप्टी कलेक्टर ...	१४२९
११	आत्मनिवेदन	... आचार्य श्रीआनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव एम० ए०, एल-एल० बी०, प्रो० वाइसचैन्सलर हिन्दू-विश्व-विद्यालय, काशी	७२६
१२	आनन्दवन	... स्वामी श्रीविद्यानन्दजी महाराज, गीतामन्दिर, गुजरात	३६
१३	आरुणि	... पं० श्रीदेवीप्रसादजी भट्ट शास्त्री	११७२
१४	आसामके दो शिव-मन्दिर	... पं० श्रीवंशीधरजी शर्मा काव्यतीर्थ	६५३
१५	आसिक होकर सोना क्या रे !	... पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए० ...	१२५०
१६	ईडर-राज्यके कुछ खास शिव-मन्दिर	... पं० श्रीजदुराम रविशंकरजी त्रिवेदी	६५४
१७	ईरानमें शिवमन्दिर	... श्रीमहेशप्रसादजी मौलवी, आलिम-फ़ाज़िल ...	६१९
१८	ईश्वरकी माया	... ...	७२२
१९	ईश्वर-तत्त्व	... श्रीजयदयालजी गोयन्दका	९०८
२०	ईश्वर-महिमा	... श्रीवृजबिहारीलालजी गौड़	९०३
२१	उजनकके भीमाशङ्कर	... श्रीशिवशंकरजी नागर, काशीपुर	६३९
२२	उदयपुरका एक प्राचीन शिवचित्र	... पं० श्रीगिरिधरलालजी शर्मा	६६४
२३	उपनिषद्-गाथा	... ...	११०४
२४	उपनिषदोंमें शिव-तत्त्व	... पं० श्रीजौहरीलालजी शर्मा सांख्याचार्य ...	२५२
२५	एक और अनेक रुद्र	... श्रीश्रीपाद दामोदर सातवलेकर	२७२
२६	ॐ नमः शिवाय	... ...	९०६
२७	कण्णप्प भील	... ...	४४५
२८	कलिङ्ग-देशके प्रसिद्ध शिव-मन्दिर	... श्री ३ लक्ष्मीनारायण हरिचन्दन जगदेव राजाबहादुर, एम० आर० ए० एस०, एम० बी० डी० एम०, पुरातत्त्वविशारद, विद्यावाचस्पति, राजा साहब टेक्काली	६३२

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

९७ परात्पर शिव ... श्रीगौरीशंकरजी गोयन्दका ७०
९८ परानुग्रहव्यग्र शिवका हलाहलपान ... विद्यालङ्कार पं० श्रीरामकुमारजी जोशी ... ३५७
९९ परोपकार ... कुमारी श्रीरत्नीदेवीजी ८२५
१०० पाँच प्रश्न ... हनुमानप्रसाद पोद्दार ७५८
१०१ पार्वतीके तपकी सफलता ... सैयद कासिम अली विशारद, साहित्यालङ्कार ... ५२५
१०२ पुनीत प्रतापा ... श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी ८९६
१०३ पुरातत्त्व और शिवार्चन ... डा० श्रीहीरानन्दजी शास्त्री एम० ए०, डी० लिट्, एम०ओ० एल०, गवर्नमेण्ट एपिग्राफिस्ट फार इण्डिया ६२०

१०४ पूज्य नागा बाबाजी महाराज (बाँघगुफा, प्रयाग) के उपदेश ११४८, १३०९
१०५ पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश ... ६६८, ७४८, ९८८, १०६८, १२२८, १३०८, १३८८
१०६ पूजा ... पं० श्रीविष्णुदत्तजी शुक्ल १४५२
१०७ प्रणव-महिमा ... ठाकुर श्रीयोगम्बरसिंहजी ९४२
१०८ प्रयाग-पञ्चक्रोशीकी परिक्रमा ... श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी १०४५, ११४१
१०९ प्रसिद्ध शिवभक्त योगिवर्य कैलासवासी श्री १०८ परमहंस विप्रराजेन्द्रस्वामीजी महाराज ३८०
११० प्रार्थना ... पं० श्रीमौजीलालजी शर्मा 'मौजी' ४४५
१११ प्रार्थनाका प्रवाह ... पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए० ... १३२७
११२ प्रेम और शरणागति ... श्रीजयदयालजी गोयन्दका १३८९
११३ प्रेम क्या वस्तु है ? ... स्वामीजी श्रीभोलानाथजी 'वेदान्तभूषण' अनु०— श्रीचन्द्रिकाप्रसादजी जिज्ञासु ७०३
११४ प्रेम-दर्शन ... (देवर्षि नारदरचित भक्तिसूत्र) ... १३९५
११५ प्रेम-दिवाने ... 'श्रीप्रेम-पथ-पथिक' १०१६
११६ प्रेम-भक्ति ... ब्रह्मचारी श्रीगोपाल चैतन्यदेवजी १४०९
११७ बम्बईकी कुछ विलक्षण शैवमूर्तियाँ ... श्रीरणछोड़लालजी ज्ञानी, एम० ए०, एम०आर० ए० एस० ५९६
११८ बानपुरके श्रीकुण्डेश्वर महादेव ... श्रीमथुराप्रसादजी ६५६
११९ बृहत्तर भारतमें शिव ... डा० श्रीसुनीतिकुमार चटर्जी, एम० ए०, डी० लिट् (लन्दन), प्रोफेसर, कलकत्ता-विश्वविद्यालय ... ५७९

१२० ब्रह्मका विश्वनृत्य ... पं० श्रीजनार्दनजी मिश्र एम० ए०, साहित्याचार्य ... २७८
१२१ ब्रह्मविद्या और गृहस्थाश्रम ... स्वामीजी श्रीनित्यानन्दजी भारती १०१८
१२२ ब्रह्मविद्या-रहस्य ... अनुवादक तथा ले०—श्रीनृसिंहदासजी वर्मा १२६०, १३३१, १४०३
१२३ ब्रह्म ही शिव है ... श्रीकाञ्ची-प्रतिवादिभयङ्करमठाधीश्वर जगद्गुरु श्री-भगवद्रामानुजसम्प्रदायाचार्य श्री ११०८ श्री-अनन्ताचार्य स्वामीजी महाराज २३

१२४ ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी एकता ... पं० श्रीनित्यानन्दजी जोशी, साहित्यशास्त्राचार्य ... २४५
१२५ ब्रह्मा-विष्णु-कृत शिव-स्तवन २९२
१२६ भंगभोगी भगवान्‌की भ्रान्ति ... पं० श्रीद्वारकाप्रसादजी शुक्ल 'शङ्कर' १४३७
१२७ भक्तके लक्षण ... श्रीज्ञानेश्वर-चरित्रसे ७१६
१२८ भक्तके लक्षण ... हनुमानप्रसाद पोद्दारके एक व्याख्यानके आधारपर 'संकीर्तन' से १३१९

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

१२९	भक्त-गाथा		
	(क) भक्त रघुनाथदास	एक भक्त-पद-रेणु	८१०
	(ख) भक्त जयदेव		८८४
	(ग) लाला गोविन्दसहायजी	श्रीराधाकृष्णलालजी	९७८
	(घ) भक्तश्रेष्ठ नामदेव		९९६
	(ङ) भक्त कण्डु मुनि		११२९
	(च) भक्त भद्रतनु और उनके गुरु दान्त		१२०८
	(छ) भक्त सदन कसाई	'माधव'	१२३४
	(ज) श्रीभगवानदासजी	म० श्रीबालकराम विनायकजी	१३८३
	(झ) रसिक भक्त चतुर्भुजदासजी	श्रीगुरांदित्ताजी खन्ना	१४६३
१३०	भक्त मानिक बाबागर		४०२
१३१	भक्तराज पं० श्रीदेवीसहायजी	श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी एम० ए०, डिप्टी कलेक्टर	३८४
१३२	भक्तिका महत्त्व	श्रीप्रेमी महाशय	६८१
१३३	भक्ति क्या है ?	परिव्राजक श्रीमद् ब्रह्मचारी गोपाल चैतन्यदेवजी	१०९०
१३४	भक्ति-तत्त्व	परिव्राजक ब्रह्मचारी श्रीगोपाल चैतन्यदेवजी	८३५
१३५	भगवत्प्राप्तिके उपाय	श्रीजयदयालजी गोयन्दका	६७४
१३६	भगवत्प्राप्तिवाले पुरुषोंके लक्षण		८४२
१३७	भगवत्प्रेमियोंके लिये आवश्यक बातें	स्वामी श्रीशान्तयोगानन्दजी	११०१
१३८	भगवान्‌का भजन करनेकी विधि	श्रीरामयशजी गुप्त	४५१
१३९	भगवान्‌के कार्य	पं० श्रीशिवबालकजी पाठक	९५३
१४०	भगवान् कृष्ण और भगवान् शिव	(ब्रह्मवैवर्तपुराणसे)	३५४
१४१	भगवान् भूतनाथ और भारत	पं० श्रीअयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध'	२५६
१४२	भगवान्‌की अद्भुत कृपा	एक सज्जन	१४४६
१४३	भगवान् विष्णुका स्वप्न		१२३
१४४	भगवान् शङ्कर	वेददर्शनाचार्य मण्डलेश्वर स्वामी श्री१०८ श्रीगंगेश्वरानन्दजी महाराज	१०४
१४५	भगवान् शङ्कर और शङ्करसम्बन्धी शास्त्र तामसिक नहीं हैं	पं० श्रीशंकरलालजी शर्मा त्रिवेदी	३४३
१४६	भगवान् शङ्करका उपदेश	(शिवपुराणसे)	३८७
१४७	भगवान् शिव	हनुमानप्रसाद पोद्दार	५३८
१४८	भगवान् शिव	श्रीरसूल अहमद 'अबोध'	५४१
१४९	भगवान् शिवका नित्यधाम महाकैलास (सं०)		४०७
१५०	भगवान् शिवके परमतत्त्वका निरूपण	पं० श्रीबदरीदासजी पुरोहित वेदान्तभूषण	४३५
१५१	भगवान् शिवके साथ गोस्वामी तुलसीदास-जीका सम्बन्ध	श्रीमाताप्रसादजी गुप्त एम० ए०	५३१
१५२	भगवान् श्रीएकलिङ्ग	ठाकुर श्रीचन्द्रनाथजी माथुर	६१६
१५३	भगवान् श्रीशिव और भगवान् श्रीराम	(पद्मपुराण पाताल-खण्डसे)	३४६
१५४	भस्मविधि और माहात्म्य	अनु०—श्रीइन्दुलालजी	४०३
१५५	भारशिव और वाकाटक राजवंशके इष्टदेव शिव	श्रीशारदाप्रसादजी, सतना	५९९

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

१५६ भाव-भक्ति	श्रीयुत ब्रह्मचारी गोपाल चैतन्यदेवजी	१३४०
१५७ भील-भीलनीकी शिव-भक्ति		४५३
१५८ भूकम्प और हमारा कर्तव्य	हनुमानप्रसाद पोद्दार	१०७५
१५९ मथुराके रक्षक शिव	ज्योतिर्विद् पं० श्रीराधेश्यामजी द्विवेदी	६५८
१६० मदारी	श्रीअमृतलाल जीवराज ठक्कर	१२२१
१६१ मनको उपदेश	अनु०—कृष्णसुत	१२९५, १३६४, १४२५
१६२ मनके रहस्य और उसका नियन्त्रण	स्वामीजी श्रीशिवानन्दजी	८६३, ९५५, १४३३
१६३ मनुष्य-स्वभाव	स्वामी श्रीरामानन्द संन्यासी शास्त्री, व्याकरणाचार्य, साहित्यालङ्कार, वेदान्तविभूति	१०६२
१६४ महायोगीश्वर भगवान् शङ्कर	स्वामीजी श्रीशिवानन्दजी	११६
१६५ महारानी मैनाका वात्सल्य	साहित्यभूषण पं० श्रीनाथूरामजी शुक्ल बी० ए०	४४०
१६६ महारुद्रोपासना	ज्योतिर्विद् पं० श्रीशिवलालजी शास्त्री मेहता	२१५
१६७ महाशिवरात्रि-व्रत	काव्यतीर्थ प्रोफेसर श्रीलौटूसिंहजी गौतम एम० ए०, एल० टी०, एम० आर० ए० एस०	४१७
१६८ महेश	श्री 'आर्जव'	१२
१६९ महोबा और उसके देवस्थान	श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी एम० ए०, डिप्टी कलेक्टर	९७४
१७० मानस-मङ्गलाचरणमें सीता-राम-वन्दना	श्रीरामदासजी गौड़ एम० ए०	११९६
१७१ मानस-शङ्का-समाधान	श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी	१३७९
१७२ मुक्ताबाई (कहानी)	श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी	७३२
१७३ मूर्ति-पूजा	डा० श्रीबनारसीप्रसादजी भोजपुरी	११७८
१७४ मृत्युञ्जय	श्रीयुत श्रीधर मजूमदार एम० ए०	२८९
१७५ मेरा स्वप्न	एक दर्शक	१०१५
१७६ मैसूरराज्यके शिव-मन्दिर	श्रीयुत डा० एम० एच० कृष्ण, एम० ए०, डी० लिट् (लन्दन), अध्यक्ष, पुरातत्त्वविभाग, मैसूर	६२६
१७७ मोक्षार्थिनीका विलाप	बहिन श्रीजयदेवीजी	१३७६
१७८ योगके प्रवर्तक शिव	स्वामीजी श्रीएकरसानन्दजी सरस्वती	२८१
१७९ योगवाशिष्ठ-सार	श्रीकन्हैयालालजी मास्टर	७१७, ११४३
१८० रज-कण	श्री 'माधव'	१४२२
१८१ राजपूतानेका गणगौरपूजन	पं० श्रीझाबरमल्लजी शर्मा	५१९
१८२ राजपूतानेमें शिव-मूर्तियाँ	महामहोपाध्याय रायबहादुर पं० श्रीगौरीशङ्कर हीराचन्दजी ओझा	६०६
१८३ राम-राज्यका आदर्श	श्रीरामदासजी गौड़ एम० ए०	१३६८, १४१५
१८४ रुद्रदेवतापर आधुनिक विद्वानोंके विचार	सं० पं० श्रीगणेशदत्तजी शर्मा गौड़ 'विद्या-वाचस्पति'	३९८
१८५ रुद्रमाल	प्रेषक—श्रीचन्दूलाल बहेचरलाल पटेल बी० ए०	६४४
१८६ रुद्राक्षकी उत्पत्ति, धारण-विधि और माहात्म्य	अनुवादक—आई० बी० मेहता	३०९
१८७ लक्ष्मीजीका शिवपूजन	(बृहद्धर्मपुराणसे)	३२८
१८८ लिङ्गपुराण और भगवान् शिव	श्रीवृन्दावनदासजी बी० ए०, एल-एल० बी०	१६१
१८९ लिङ्ग-रहस्य	श्रीरामदासजी गौड़ एम० ए०	१३७
१९० लिङ्ग-रहस्य	पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज एम० ए०, प्रिंसिपल गवर्नमेण्ट संस्कृत-कालेज, काशी	४७३

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

१९१	वाल्मीकि-रामायण और भगवच्छरणागति	साहित्याचार्य पं० श्रीमथुरानाथजी शास्त्री, भट्ट, कविरत्न ७१०, ७६८, ९५८, १००७
१९२	विदेशोंमें शिवलिङ्ग-पूजा	पण्डितवर्य श्रीकाशीनाथजी शास्त्री, अध्यक्ष 'पञ्चाचार्य प्रभा' मैसूर ५७३
१९३	विद्या और सम्प्रदायके आचार्य श्रीसदाशिव	गोस्वामी श्रीलक्ष्मणाचार्यजी २१२
१९४	विद्यापति और उदना	पं० श्रीमथुराप्रसादजी दीक्षित ४४९
१९५	विवेक-वाटिका	७४६, ८२४, ९०५, १०६१, ११३५, १२२६, १३८६
१९६	विष्णु-उपासक शिव	(वामनपुराणसे) ३७०
१९७	वीरशैव-विज्ञान	पं० श्री सि० गुरुशान्तजी शास्त्री, आस्थानविद्वान्, मैसूर ४२७
१९८	वृद्ध-वाणी	भिक्षु श्रीगौरीशङ्करजी ११९९
१९९	वेदान्त-दर्शन-रहस्य	स्वामीजी श्रीविज्ञानहंसजी ९४९
२००	वेदोंमें भगवान् शिव	पं० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज, शास्त्री, आचार्य, एम० ए० ४२६
२०१	वेदोंमें रुद्रस्वरूप	स्वामी श्रीशङ्करानन्दजी गिरि २४८
२०२	वेदोंमें शिवका स्वरूप	श्रीयुत वी० एच० वडेर एम० ए०, एल-एल० बी० ... ३९६
२०३	वैष्णव हर और शैव हरि	पं० श्रीरामसजीवनजी मिश्र, व्याकरणशास्त्री ... ४४३
२०४	वैष्णव-सिद्धान्त और शिव-तत्त्व	आचार्य श्रीबालकृष्णजी गोस्वामी ... १७४
२०५	व्याघ्रपाद	... ... ३२८
२०६	शङ्कर और शङ्करकी उपासना	पं० श्रीमधुसूदनजी कौल, शास्त्री, एम० ए०, एम० ओ० एल० ... ... २३३
२०७	शङ्करकी शङ्कर-स्तुति	प्रातःस्मरणीय श्रीमदाद्यशंकराचार्यजी महाराज ... ३
२०८	शङ्कर-प्रणवरूप	स्वामी श्रीज्योतिर्मयानन्दजी पुरी ३३४
२०९	शङ्कर-भक्ति	पं० श्रीकालूरामजी शास्त्री ४३१
२१०	शिव	डा० एच० डब्ल्यू० बी० मोरेनो एम० ए०, पी० एच० डी०, डी० लिट्, एम० एल० सी० ... १२
२११	शिव	स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी ९७
२१२	शिव	श्रीटेकनारायणजी तर्कवागीश २२४
२१३	शिव और अर्थशास्त्र	श्रीभगवानदासजी केला २५८
२१४	शिव और तन्त्रशास्त्र	पं० श्रीजगदीशजी शर्मा, व्याकरण-साहित्याचार्य, प्रोफेसर, धर्मसमाजसंस्कृत-कालेज, मुजफ्फरपुर ... ३८८
२१५	शिव और धनुर्वेद	श्रीमहेन्द्रकुमारजी वेदशिरोमणि २५५
२१६	शिव और शक्ति	पं० श्रीरामदयालजी मजूमदार एम० ए० ... २६४
२१७	शिव और शक्ति	श्रीयुत स्वामी रामदासजी २८८
२१८	शिव और सती	श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी २६९
२१९	शिवं शान्तं सुन्दरम्	श्रीनलिनीकान्तजी गुप्त, श्रीअरविन्द-आश्रम, पाण्डिचेरी ९६
२२०	शिव—कल्याणरूप	'शिव' ७६
२२१	शिवका यथार्थ स्वरूप क्या है ?	पं० श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल २८५
२२२	शिवका स्वरूप	श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल एम० ए०, एल-एल० बी० ४९१
२२३	शिव-कृपा	श्रीलक्ष्मीनारायणजी प्रोफेसर, रसायन-शास्त्र, डी० ए० बी० कालेज, देहरादून ५२३

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२२४ शिवके अठारह नाम	··· श्रीप्रेमी महाशय ··· ···	२४०
२२५ शिवके प्रति भक्तकी भावनाएँ	··· पं० श्रीजयदेवजी शर्मा विद्यालङ्कार ··· ···	२१३
२२६ शिवजीकी सर्वोत्तमता	··· पुराणरत्न पं० श्रीवृषभलिङ्गजी शास्त्री आस्थानविद्वान्, श्रीरम्भापुरी-वीरसिंहासन ··· ···	४७७
२२७ शिवजीके कुछ प्रसिद्ध स्थान	··· श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी एम० ए० डिप्टी कलेक्टर ···	५६७
२२८ शिवजीके पूर्वज	··· श्रीभारतसिंहजी ··· ··· ···	३७६
२२९ शिव-तत्त्व	··· श्रीमन्माध्वसम्प्रदायाचार्य दार्शनिक-सार्वभौम, साहित्य-दर्शनाद्याचार्य, तर्करत्न, न्यायरत्न गो-स्वामी श्रीदामोदरजी शास्त्री ··· ···	३२
२३० शिव-तत्त्व	··· परमपूज्यपाद श्रीउड़ियास्वामीजीके विचार, प्रेषक—श्रीमुनिलालजी ··· ···	३३
२३१ शिव-तत्त्व	··· श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य १०८ स्वामी श्रीजयेन्द्र-पुरीजी महाराज, मण्डलेश्वर, काशी ···	३४
२३२ शिव-तत्त्व	··· श्रीजयदयालजी गोयन्दका ··· ···	६१
२३३ शिव-तत्त्व	··· भारत-धर्म-महामण्डलके एक महात्मा ··· ···	१२८
२३४ शिव-तत्त्व	··· प्रो० पं० श्रीसकलनारायणजी शर्मा ··· ···	१५३
२३५ शिव-तत्त्व	··· श्रीभीमचन्द्र चट्टोपाध्याय बी० ए०, बी० एल०, बी० एस-सी०, एम० आर० इ० इ०, एम० आइ० इ०	३००
२३६ शिव-तत्त्व	··· श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया ··· ···	३११
२३७ शिव-तत्त्व	··· श्रीयुत नृसिंहदासजी वर्मा ··· ···	३२९
२३८ शिव-तत्त्व	··· श्री 'ज्योतिः' ··· ··· ···	३६६
२३९ शिव-तत्त्व	··· डा० श्रीदुर्गाशंकरजी नागर, सम्पादक 'कल्पवृक्ष' ···	५१६
२४० शिवतत्त्व और शक्तितत्त्व अर्थात् साम्ब सदाशिव	··· श्रीसुन्दरलाल नाथालाल जोशी ··· ···	२७७
२४१ शिव-तत्त्व-रहस्य	··· श्रीगणेशप्रसादजी एम० ए०, बी० एस-सी०, मण्डला फोर्ट	५११
२४२ शिव-तत्त्व-विचार	··· श्रीविनायकनारायण जोशी, साखरे महाराज ···	२९३
२४३ शिव-तत्त्व-सम्बन्धी कुछ चित्र और मथुराका शैव-स्तम्भ	··· श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल, एम० ए०, एल-एल० बी०	५९०
२४४ शिव-तत्त्व ही अनन्त रूप है	··· बहिन श्रीजयदेवीजी ··· ··· ···	१२७९
२४५ शिवत्व	··· पं० श्रीशिवरत्नजी शुक्ल 'सिरस' साहित्यरत्न ···	२६०
२४६ शिव-नामकी महिमा	··· श्रीजनकनन्दनसिंहजी ··· ··· ···	३५८
२४७ शिव नीलकण्ठ	··· रूसी ऋषि श्रीनिकोलस रॉयरिक ··· ···	२३८
२४८ शिव-परिवार	··· श्रीलालताप्रसादजी टण्डन एम० ए०, एल-एल० बी०, एडवोकेट ··· ···	१९१
२४९ शिव-परिवार	··· पं० श्रीबलदेवप्रसादजी मिश्र एम० ए०, एल-एल० बी०	१९६
२५० शिव-पार्वतीकी पूजाकी लोकप्रियता	··· रायबहादुर अवधवासी लाला श्रीसीतारामजी बी० ए० 'भूप'	२३७
२५१ शिवपुराणकी कुछ उपयोगी बातें	··· एक शिव-भक्त ··· ··· ···	३७४
२५२ शिवपुराणमें शिव-तत्त्व	··· चौधरी श्रीरघुनन्दनप्रसादसिंहजी ··· ···	२०१
२५३ शिव-पूजाका फल	··· ··· ··· ···	४६२
२५४ शिवभक्तिका साक्षात्कार	··· काव्यालङ्कारभूषण पं० श्रीबालकृष्णजी जोशी कन्नडकर	४४७

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२५५ शिव-भक्ति-रहस्य	··· श्रीयुत तपोवनस्वामीजी महाराज ··· ···	१३०
२५६ शिव-भक्तोंका कर्तव्य	··· शिवांकके टाइटलका तीसरा पेज	
२५७ शिवमय जगत्	··· अनु०—मेहता श्रीइन्दुलाल बापालाल ··· ···	२९५
२५८ शिव-महिमा	··· महामहोपाध्याय पं० श्रीगिरिधरजी शर्मा चतुर्वेदी ···	४१
२५९ शिवमहिम्नःस्तव	··· प्रोफेसर श्रीरामेश्वर गौरीशंकर ओझा, एम० ए०, अजमेर	४६७
२६० शिवमें श्रद्धा	··· एक विष्णुभक्त ··· ··· ···	१२९०
२६१ शिवमें श्रद्धासे लाभ	··· सौ० कमलाबाई किबे ··· ··· ···	४२१
२६२ शिव-योग	··· पं० श्रीगंगाधरजी शर्मा ··· ··· ···	३८
२६३ शिवरात्रि-रहस्य	··· श्रीसुरेशचन्द्र सांख्य-वेदान्त-तीर्थ ··· ···	४८२
२६४ शिवलिङ्ग और काशी	··· पण्डित श्रीभवानीशंकरजी ··· ···	११२
२६५ शिव-विष्णुका अलौकिक प्रेम	··· (पद्मपुराण पातालखण्डसे) ··· ···	३६४
२६६ शिव-शक्ति-वाद	··· प्रो० श्रीभीखनलालजी आत्रेय, एम० ए०, डी० लिट्	४८६
२६७ शिव-शरणागति (सं०)	··· प्रसिद्ध शिवभक्त पं० श्रीअप्पय्यजी दीक्षित ···	७
२६८ शिव-सती-विवाह	··· ··· ··· ···	५४०
२६९ शिव-सम्प्रदाय	··· म० श्रीबालकरामजी विनायक ··· ···	१४११
२७० शिव-सूत्र-विमर्श	··· पं० श्रीगौरीशंकरजी द्विवेदी, साहित्यरत्न ···	३३९
२७१ शिव-सूत्रोंसे व्याकरणकी उत्पत्ति	··· श्रीयुत डा० प्रभातचन्द्र चक्रवर्त्ती, काव्यतीर्थ, एम० ए०, पी० आर० एस०, पी-एच० डी० ···	१६९
२७२ शिव-सेवाका प्रत्यक्ष फल	··· पं० श्रीविद्याभास्करजी शुक्ल ··· ···	३८१
२७३ शिव-स्वरूप और महाराष्ट्र-साहित्य	··· पं० श्रीलक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर बी० ए० ···	४५८
२७४ शिव हाथमें	··· भिक्षु श्रीगौरीशंकरजी ··· ··· ···	९६
२७५ शिवागम	··· पं० श्रीसिद्धेश्वरजी शास्त्री ··· ···	४२३
२७६ शिवाङ्क	··· श्रीनलिनीमोहन सान्याल एम० ए०, भाषा-तत्त्वरत्न ···	८७२
२७७ शिवाद्वैत-सिद्धान्त	··· श्री १०८ जगद्गुरु पञ्चाक्षर शिवाचार्य महास्वामी काशीक्षेत्र	२४
२७८ शिवाष्टकम्	··· आचार्य पं० श्रीमहावीरप्रसादजी द्विवेदी ···	११
२७९ शिवोपासनाकी प्राचीनता	··· पं० श्रीवासुदेवजी उपाध्याय बी० एस० सी० ···	३९९
२८० शिवोपासनासे लाभ	··· श्रीयुत चिरञ्जीलालजी शर्मा ··· ···	३७८
२८१ शिवोऽहम्, शिवोऽहम्, शिवः केवलोऽहम्	··· श्रीअनन्तशंकरजी कोल्हटकर बी० ए० ··· ···	४२३
२८२ शुद्धाद्वैत-पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तमें शिव-तत्त्व	··· अखण्डभूमण्डलाचार्यवर्य श्रीमद्वल्लभाचार्य प्रकटित शुद्धाद्वैत-सम्प्रदायाचार्य गोस्वामी श्रीगोकुलनाथजी महाराज तनुज श्रीकृष्णजीवनजी 'विशारद' बड़ा मन्दिर, बम्बई ···	२९
२८३ शैव और वैष्णवोंका प्रेम	··· रायबहादुर राजा श्रीदुर्जनसिंहजी ··· ···	१७२
२८४ शैव-मतकी प्राचीनता	··· श्रीयुत वी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार एम० ए०, लेक्चरर, मद्रास-विश्वविद्यालय ··· ···	१६७
२८५ शैव-सम्प्रदाय	··· श्रीयुत चिन्ताहरण चक्रवर्त्ती एम० ए० ··· ···	१६६
२८६ शैवागम	··· श्रीश्रीशम्भुलिङ्गजी शिवाचार्य महाराज बृहन्मठ ···	१२५
२८७ श्यामकी बाँसुरी	··· श्रीविन्दु ब्रह्मचारीजी ··· ··· ···	९८०
२८८ श्रीउमा-महेश्वर-स्तुति	··· पं० श्रीलक्ष्मणनारायणजी गर्दे ··· ···	१९८
२८९ श्रीकण्ठीय शिवदर्शन	··· श्रीयुत एस० एस० सूर्यनारायणजी शास्त्री, रीडर, मद्रास-विश्वविद्यालय ··· ···	२२९

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२९० श्रीकृष्णका अस्तित्व	... पं० श्रीश्यामाचरणदत्तजी पन्त	८९३
२९१ श्रीकृष्णकी छात्रावस्था	... पं० श्रीविष्णुदत्तजी शर्मा बी० ए०	८६४
२९२ श्रीकृष्णकी शिव-भक्ति	... महामहोपाध्याय पं० श्रीहाथीभाईजी शास्त्री ...	१८५
२९३ श्रीगणपति-रहस्य	... पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय एम० ए०, साहित्याचार्य ...	७८४
२९४ श्रीगीता-जयन्ती	... ...	८४१
२९५ श्रीगोपेश्वर	... आचार्य श्रीअनन्तलालजी गोस्वामी	६६१
२९६ श्रीजगद्गुरु पञ्चाचार्य	... पं० श्रीवृषभलिङ्ग शिवाचार्यजी गोब्बूर ...	३१५
२९७ श्रीज्वालामुखी-यात्रा	... श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी एम० ए०, डिप्टी कलेक्टर ...	७९७
२९८ श्रीत्रिमूर्त्युपासनातत्त्व-रहस्य-मीमांसा	... श्रीगोवर्धनपीठाधीश्वर श्रीजगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य स्वामी श्री ११०८ श्रीभारती कृष्णतीर्थजी महाराज ...	१३
२९९ श्रीनर्मदाजीका महत्त्व	... पं० श्रीदयाशंकरजी दुबे एम० ए०, एल-एल० बी० सम्पादक—धर्मग्रन्थावली, दारागंज, प्रयाग ...	१२५७
३०० श्रीनारायणस्वामीजीका निवेदन	... ...	९७१
३०१ श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय	... पं० श्रीकिशोरीदासजी वाजपेयी	७३९
३०२ श्रीवैजनाथ महादेव (आगर-मालवा)	... वि० वा० पं० श्रीगणेशदत्तजी शर्मा गौड़ 'इन्द्र' ...	६४७
३०३ श्रीभगवन्नाम	... नाम-जप-विभाग, कल्याण-कार्यालय, गोरखपुर ...	९८५
३०४ श्रीभगवन्नाम-जप	... ...	१२३८
३०५ श्रीमहाकालेश्वर	... श्रीसूर्यनारायणजी व्यास, उज्जैन	६३४
३०६ श्रीमहादेव—कामरूप राजवंशके इष्टदेव	... अध्यापक पं० श्रीपद्मनाथजी भट्टाचार्य, विद्याविनोद, एम० ए०	६०१
३०७ श्रीरामचरितमानसका शुद्ध पाठ	... श्रीरामदासजी गौड़ एम० ए०	८७६
३०८ श्रीरामचरितमानसमें शिव-चरित	... साहित्यरञ्जन पं० श्रीविजयानन्दजी त्रिपाठी ...	१७६
३०९ श्रीवल्लभाचार्यके हृदयमें श्रीशिवका स्थान	... देवर्षि पं० श्रीरमानाथजी शास्त्री	२४२
३१० श्रीवैद्यनाथ	... पं० श्रीजगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी	६३३
३११ श्रीशङ्करका अद्भुत अवतार	... ह० भ० प० श्रीरामचन्द्र कृष्ण कामत	४६०
३१२ श्रीशिव	... पं० श्रीहनूमान्‌जी शर्मा	१५४
३१३ श्रीशिव और श्रीराम-नाम	... महामहोपाध्याय डा० श्रीगंगानाथजी झा, एम० ए०, डी० लिट्, एल-एल० डी०	२३२
३१४ श्रीशिव-कथाओंका आध्यात्मिक रहस्य	... स्वामी श्रीरामदासानन्दजी सरस्वती	३०४
३१५ श्रीशिवकी अष्टमूर्त्तियाँ	... श्रीपन्नालालसिंहजी	५६१
३१६ श्रीशिव-गीता	... श्रीमोतीलाल रविशंकर घोड़ा बी० ए०, एल-एल० बी०	२७६
३१७ श्रीशिवजीकी प्रत्यक्ष कृपा	... एक जानकार	४५३
३१८ श्रीशिवजीके अष्टोत्तरशत दिव्य देश	... वैष्णव श्रीरामटहलदासजी, बड़ा स्थान, दारागंज, प्रयाग	६५७
३१९ श्रीशिव-तत्त्व	... पण्डितवर श्रीपञ्चाननजी तर्करत्न	१०७
३२० श्रीशिवनिर्माल्यादिनिर्णय	... श्रीहाराणचन्द्रजी भट्टाचार्य प्रिंसिपल संस्कृत-कालेज, फतेहपुर	१७९
३२१ श्रीशिवाङ्क (शिव या शिवाके चिह्न)	... पं० श्रीबाबूरामजी शुक्ल, पद्यार्थवाचस्पति, कविसम्राट्	३४७
३२२ 'श्रीशुचीन्द्र' शिवक्षेत्र	... ह० भ० प० श्रीरामचन्द्र कृष्ण कामत	६३०
३२३ श्रीश्रीमृत्युञ्जय-शिव-तत्त्व	... पूज्यपाद ब्रह्मीभूत भार्गव श्रीशिवरामकिङ्कर योग-त्रयानन्द स्वामीजीके उपदेशसे	१६४

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

३२४ श्रीश्रीरामकृष्ण-उपदेशामृत	सं०—'प्रेम-पथ-पथिक'	८९२
३२५ षडक्षर वा पञ्चाक्षर मन्त्र	श्रीगौरीशंकरजी गनेड़ीवाला	३९०
३२६ सत्य हरिश्चन्द्र	कुमारी श्रीकौशिल्यादेवीजी	७९०
३२७ सत्यं शिवं सुन्दरम्	दण्डिस्वामी श्रीसहजानन्दजी सरस्वती	७८०
३२८ सत्यं शिवं सुन्दरम्	श्रीयुत पी० एन० शंकरनारायण अय्यर बी० ए०, बी० एल०	८५४
३२९ सदाशिव और उनका अमोघ कवच	लाला श्रीकन्नोमलजी एम० ए०	१३२
३३० सन्तोंकी प्रेमानुभूति	पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव', एम० ए०	११८४
३३१ सन्ध्योपासनाका महत्त्व	पं० श्रीकलाधरजी त्रिपाठी	११८८
३३२ समयका सदुपयोग	श्रीजयदयालजी गोयन्दका	१३१०
३३३ सर्वोच्च ध्येय	श्रीजयदयालजी गोयन्दका	८३०
३३४ सर्वोपयोगी प्रश्न	श्रीजयदयालजी गोयन्दका	९९३
३३५ सर्वं शिवमिदं जगत्	पं० श्रीगोविन्दनारायणजी शर्मा आसोपा, बी० ए०, एम० आर० ए० एस०	७०१
३३६ साधन-भक्ति	परिव्राजक श्रीमद्ब्रह्मचारी गोपाल चैतन्यदेवजी	१२७३
३३७ सिख गुरु गोविन्दसिंहजीका शिव-काव्य	भाई श्रीअरूढ़सिंहजी	४५६
३३८ सीता-त्यागकी निर्दोषता	श्रीरघुनन्दनप्रसादसिंहजी	९००
३३९ सेवक-स्वामि-सखा सिय-पीके	(१) श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी (२) श्रीमथुराप्रसादजी बी० ए०, रिटायर्ड रेवेन्यू-कमिश्नर, बीकानेर स्टेट	५२६
३४० संसारका सिनेमा	श्रीदेवरांजजी विद्यावाचस्पति	७४३
३४१ संस्कृत-साहित्यमें शिव	साहित्याचार्य पं० श्रीमथुरानाथजी शास्त्री, भट्ट, कविरत्न	२०६
३४२ संहारमें कल्याण	पं० श्रीनरदेवजी शास्त्री वेदतीर्थ	२६३
३४३ 'स्टॉक काक थॉम' के स्तम्भका शिलालेख	श्रीयुत डा० वेङ्कट सुब्बिया, एम० ए०, पी-एच० डी०, मैसूर	५८५
३४४ हरदत्त शिवाचार्य	श्रीयुत एस० एस० सूर्यनारायणजी शास्त्री, एम० ए०, रीडर, मद्रास-विश्वविद्यालय	४७२
३४५ हरिणोंका स्मरण	श्रीदत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर प्रे०—श्रीचन्दूलाल बहेचरलाल पटेल, बी० ए०	८२२
३४६ हरिभक्तपर हरकी कृपा	आचार्य श्रीमदनमोहनजी गोस्वामी वै० दर्शनतीर्थ, भागवतरत्न	५३५
३४७ हरिहरात्मक रूप	(वामनपुराणसे)	३९५
३४८ हिन्दुओंके त्यौहार और पन्द्रह तिथियाँ	पं० श्रीछज्जूरामजी शास्त्री, कविरत्न, विद्यासागर	१४४३
३४९ हिन्दीमें धर्म-साहित्य	पं० श्रीगोविन्दनारायणजी आसोपा, बी० ए०, एम० आर० ए० एस०	१२७६
३५० हिन्दी-साहित्यमें शिव	श्रीगिरिधारीलाल झँवर 'अविनाश'	४०४
३५१ होलीके अवसरपर	पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र एम० ए० 'माधव'	११२५

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पद्य-सूची

क्रम-संख्या	विषय	लेखक	पृष्ठ-संख्या
१	अद्भुत अज्ञान या अनुपम लवलीनता	नवरत्न पं० श्रीगिरिधरजी शर्मा	८६२
२	अनन्यता	श्रीतुलसीदासजी	१३०७
३	अनुरोध	महात्मा जय गौरीशंकर सीतारामजी	१३०६
४	अनुरोध	श्री 'चकोरी' जी	१३९४
५	अन्तिम लालसा	अवधवासी लाला श्रीसीतारामजी बी० ए०	१०८९
६	अब भी शिवकी शरण जाओ (सं०)		६४३
७	अभिलाषा	श्रीनृपतिसिंहजी भदौरिया 'चकोर'	१३२६
८	आरती	श्रीनारायणदासजी पोद्दार	४०
९	आरती	श्रीबालकृष्णजी	२०५
१०	आरती	शिवांकके टाइटलका चौथा पेज	
११	आशुतोष	श्रीअमृतलालजी माथुर	२८३
१२	आशुतोष शिव	प्रेमयोगी 'मान'	३४५
१३	इत आउ रे !	आदिल	६६७
१४	उद्वेग	महात्मा जय गौरीशंकर सीताराम	१०९५
१५	एक तेरा ध्यान	पं० श्रीबलदेवप्रसादजी मिश्र	१२८९
१६	कल्याण-भावना	श्रीताराचन्द्रजी पाँड्या	१०४२
१७	कल्याण-शिवाङ्को विश्वे विजयते	वेदकाव्यतीर्थसाहित्यविशारदोपाधिक पं० श्रीवीरभद्रजी शास्त्री, तैलङ्ग, काशी	८०
१८	काननमें	राय श्रीदेवीप्रसादजी 'पूर्ण'	८०९
१९	काल	भारतेन्दु	६७९
२०	कुछ भी स्थिर नहीं है (सं०)		१०
२१	कृतज्ञता	पं० श्रीपद्मकान्तजी मालवीय	८४०
२२	गर्व न करो	श्रीमलूकदासजी	९०७
२३	गोपालक कृष्ण	पं० श्रीप्रमोदजी त्रिपाठी	९४६
२४	गीत	श्रीमती महादेवीजी वर्मा एम० ए०	१३९४
२५	चाह	पं० श्रीहरिप्रसादजी शर्मा 'अविकसित'	१०२२
२६	चाह	अज्ञात	११३२
२७	चेतावनी	श्रीवाज़िन्द	७५७
२८	चेतावनी	कबीरजी	११४७
२९	जाग रे !	श्रीदादूदयालजी	९८७
३०	जीव और ब्रह्म	श्रीजगन्नाथजी मिश्र गौड़ 'कमल' विद्यालङ्कार	१२९८
३१	जीवात्मासे	पाण्डेय श्रीरामनारायणदत्तजी व्याकरण-शास्त्री 'राम'	११३६
३२	ज्ञानगुदड़ी		७०२, ८७५
३३	ज्ञानगुदड़ी	श्रीवासुदेवजी शास्त्री	११२८
३४	ताण्डव	श्रीरामचन्द्रजी मिश्र 'मोहन'	४६६
३५	ताण्डव नृत्य	श्रीरामकुमारजी वर्मा एम० ए०	५३४

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

३६	दमका क्या भरोसा	पं० श्रीविश्वनाथप्रसादजी मिश्र	८७५
३७	दृष्टान्त-तरङ्गिणी-तरङ्ग	बाबा श्रीदीनदयाल गिरि	६९१, ९७०
३८	दो आरतियाँ	महामहोपाध्याय पं० श्रीकेशवरावजी ताम्हण एम० ए०, भूतपूर्व प्रिंसिपल मॉरिस कालेज, नागपुर, सी० पी०	८१८
३९	धन्य-धन्य !	श्रीजगन्नारायणदेवजी शर्मा, 'विशारद', साहित्यशास्त्री	२८७
४०	नर्तन-कौतुक	पं० श्रीप्रणयेशजी शुक्ल	९४६
४१	निद्रा-निर्णय	पुरोहित श्रीप्रतापनारायणजी कविरत्न	९०४
४२	पथिककी प्रार्थना	पं० श्रीजगन्नाथजी मिश्र गौड़ 'कमल'	९३९
४३	पश्चात्ताप (सं०)	(शैवप्रमोदसे)	४५४
४४	प्रार्थना	श्रीलक्ष्मीनारायणजी शर्मा	१४३८
४५	प्रेम		६७७
४६	प्रेम	पं० श्रीगयाप्रसादजी शास्त्री 'श्रीहरि'	१२२०
४७	फल	श्रीशिवकुमारजी केडिया 'कुमार'	१३६
४८	बम् बम् बम्	पं० श्रीबुद्धिसागरजी मिश्र 'पञ्चानन'	४९०
४९	बालकृष्णाष्टक	श्रीशिवकुमारजी केडिया 'कुमार'	६९०
५०	बिराना देश	श्रीकबीरदासजी	७४७
५१	बंसीधर	पं० श्रीप्रमोदजी त्रिपाठी	११३४
५२	बाँसुरी	रसनायक	१२२७
५३	भगवान् शिव	श्रीआनन्दिप्रसादजी श्रीवास्तव	१२७
५४	भजनहीन जीवन	गो० तुलसीदासजी	१३८७
५५	भारत शिवका रूप है !	स्व० पं० माधवप्रसादजी मिश्र परलोकसे–प्रेषक–पं० श्रीझाबरमल्लजी शर्मा	३७३
५६	भोलानाथ	श्रीविश्वनाथप्रसादजी मिश्र	२९१
५७	मदन-दहन	पं० श्रीरामनारायणदत्तजी पाण्डेय 'राम' व्याकरण-शास्त्री	३२६
५८	मन-तुरङ्ग	श्रीशिवकुमारजी केडिया 'कुमार'	७६७
५९	मनमोहन		६८२
६०	मनमोहन	कविरत्न श्रीराधावल्लभजी दीक्षित	७०९
६१	मनमोहनसे	श्रीपद्मकान्तजी मालवीय	१०६०
६२	महेश-महिमा	श्रीजगदीश झा 'विमल'	१९५
६३	मायाके प्रति जीव	श्रीदेवीप्रसादजी गुप्त 'कुसुमाकर' बी० ए०, एल-एल० बी०	१४४७
६४	मेरा भ्रम	पं० श्रीआदित्यजी शर्मा एम० ए०, बी० काम०, ए० टी० सी०	१३५३
६५	मेरी विकलता	पं० श्रीचन्द्रशेखरजी पाण्डेय 'चन्द्रमणि'	८९७
६६	मोह नहीं होगा (सं०)		६२५
६७	मोह-महिमा	श्रीछबिनाथजी	१०६७
६८	मोहिनी बाँसुरी	पं० श्रीप्रमोदजी त्रिपाठी	११९९
६९	राजनीतिज्ञ शङ्कर	श्रीदेवीदासजी	३५६
७०	रामकी कथा	साहित्यरत्न पं० श्रीशिवरत्नजी शुक्ल 'सिरस'	११९५
७१	रामकी कृपा	साहित्यरत्न पं० श्रीशिवरत्नजी शुक्ल 'सिरस'	११९५
७२	राम-नाम-महिमा	साह मोहनराज	१३८५
७३	रुद्राष्टक	पं० श्रीरामभरोसजी पाण्डेय 'सूर्य'	५४४

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

७४ वेदना-निवेदन ... पं० श्रीमहावीरप्रसादजी जोशी काव्यतीर्थ ... १३६३
७५ व्यर्थ जीवन ... सूरदासजी ८२७
७६ व्रजराजको रूप ... श्रीमतिरामजी १३३०
७७ शङ्कर ... श्रीसरयूप्रसादजी पाण्डेय 'द्विजेन्द्र' १५२
७८ शंकरकी कृपा ... श्रीभगवतीप्रसाद त्रिपाठी विशारद, एम० ए०, एल-एल० बी० ४२५
७९ शङ्कर-नख-सिख-वर्णन (सं०) ... स्व० श्रीअर्जुनदासजी केडिया ५३६
८० शरणागत ... श्रीदेवीप्रसादजी गुप्त 'कुसुमाकर' बी० ए०, एल-एल० बी० ३२७
८१ शिव-अर्द्धाङ्गिनीकी लीला ... पं० श्रीनारायणदासजी चतुर्वेदी, विन्ध्याचल ... ५७२
८२ शिवकी व्यापकता ... स्व० पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी 'परलोक' से प्रे०—श्रीझावरमलजी शर्मा ४०८
... ... ५३६
८३ शिव-कृपा (सं०) ... पं० श्रीश्यामनारायणजी पाण्डेय 'श्याम' साहित्यरत्न ... ४३९
८४ शिव-ताण्डव ... काव्याचार्य श्री 'शारदरसेन्द्र' जी ५२९
८५ शिव-नौरस ... पं० श्रीबालचन्द्रजी शास्त्री विद्यावाचस्पति ... ५२४
८६ शिव-प्रार्थना ... पं० श्रीगंगाविष्णुजी पाण्डेय विद्याभूषण 'विष्णु' ... २५४
८७ शिव-भक्तिका फल ... श्रीअवन्तविहारीजी माथुर 'अवन्त' ४२०
८८ शिव-महिमा ... (श्वेताश्वतरोपनिषद्से) २
८९ शिव-महिमा और स्तुति (सं०) ... श्रीअमृतलालजी माथुर ८७१
९० शिव या राम ... पं० श्रीप्रेमनारायणजी त्रिपाठी 'प्रेम' ५३७
९१ शिव-लीला ... महाकवि केशवदास १७१
९२ शिव-समाज (सं०) ... (यजुर्वेदसे) १
९३ शिव-स्तुति (सं०) ... श्रीवासुदेवजी शास्त्री ४७१
९४ शिवस्तुति ... पं० श्रीकन्हैयालालजी मिश्र 'प्रभाकर', विद्यालङ्कार, एम० आर० ए० एस० ... ... ५२५
९५ श्मशान ... श्रीचाचा हितवृन्दावनदासजी प्रे०—श्रीहितरूप-लालजी गोस्वामी ५३४
९६ श्रीकृष्णजन्मसमयागत श्रीशिव-ध्यान ... श्रीविनायकरावजी भट्ट ९३१
... ... १२३९
९७ श्रीकृष्ण-दर्शन ... श्रीअमृतलालजी माथुर ... ७३८, १०२३, ११३७, १४४०
९८ श्रीप्रेमशतक ... प्रे०—श्रीहितरूपलालजी गोस्वामी श्रीवृन्दावन ... ६९७
९९ श्रीयमकरामायण ... श्री 'छैल' १४३९
१०० श्रीराधा-जन्मोत्सवपर श्रीशिवागमन-वर्णन ... श्रीअर्जुनदासजी केडिया ९५
१०१ श्रीराधाकृष्णाय नमः ... श्रीविनायकरावजी भट्ट ३४९
१०२ श्रीशिव-स्तुति (सं०) ... श्रीनन्दलालजी माथुर १७८
१०३ श्रीशिवाष्टक ... श्रीशिवकुमारजी केडिया 'कुमार' ३७५
१०४ श्रीहरिहरसाम्यवर्णन ... ताजीमी सरदार पुरोहित श्रीप्रतापनारायणजी 'कविरत्न' ५०४
१०५ सौत-सन्ताप ... श्रीप्रभातजी ४३४
१०६ संहार-सत्यता ... स्व० श्रीदामोदरसहायसिंहजी ४५२
१०७ स्तव ... पं० श्रीशिवरत्नजी शुक्ल 'सिरस' साहित्यरत्न ... ३८९
१०८ स्तुति ... श्रीकाज़ी अशरफ़ महमूद ७६२
१०९ हर हर हर
११० हरि आये

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चित्र-सूची

पृष्ठ-संख्या

बहुरङ्गे

१–उमा-महेश्वर (श्रीसत्येन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय) ५४५
२–सप्तर्षि-पत्नीका भगवत्प्रेम (श्री बी० के० मित्र) ११४७
३–काशीमुक्ति (श्रीशिवप्रसाद मुखोपाध्याय) ४०९
४–कंसका कोप [सुनहरा] (श्रीघासीराम, नाथद्वारा) ... १३०७
५–गन्धर्वराजका शिवमहिम्नगान (श्रीगजानन खरे) ... ४६७
६–जगज्जननी उमा ... ३०५
७–तपस्विनी पार्वती (श्री द० देवलालीकर) ३९२
८–दक्ष-यज्ञ-विध्वंस (श्री द० देवलालीकर) २१७
९–देवताओंद्वारा गर्भ-स्तुति (श्री बी० के० मित्र) ९०७
१०–ध्यानमग्न शिव (श्रीरामप्रसादजी) ... १२२
११–पञ्चमुख परमेश्वर (शिल्पसिद्धान्ती श्री-सिद्धलिङ्गस्वामीजी) ... ६१
१२–पञ्चमुख महादेव (श्री बी० के० मित्र) ... १२२७
१३–पाशुपतास्त्र-दान (श्री बी० के० मित्र) ... २५५
१४–प्रदोष-नृत्य (श्री द० देवलालीकर) ... १६३
१५–भक्त व्याघ्रपाद (श्रीज्योतिरिन्द्रराय) ... ३२८
१६–भगवान् विष्णुको चक्रदान (श्री द० देवलालीकर) ... ७२
१७–भगवान् श्रीरामचन्द्र (श्री बी० के० मित्र) ९८७
१८–मथुरासे गोकुल (श्री बी० के० मित्र) ... ६६७
१९–मदन-दहन (श्री द० देवलालीकर) ... ३२६
२०–महाकाल (श्री प्रो० एन० डे रोरिक) ... २३८
२१–महालिङ्गोद्भव (श्री द० देवलालीकर) ... १३७
२२–महेश्वर और माया (श्री द० देवलालीकर) शिवाङ्कके ऊपरका मुख-पृष्ठ
२३–राजा बहुलाश्व-कृत श्रीकृष्ण-पूजन (श्री बी० के० मित्र) ... ७४७
२४–लोककल्याणार्थ हलाहलपान (श्रीशारदा उकील) ... ३५७
२५–शङ्कर (श्रीगणेशदत्तजी शर्मा गौड़ विद्यानिधि) ४३२
२६, २७, २८–शिवकी अठारह लीला (जयपुर-कलम) ४८८, ५१२, ५३६
२९–शिव-ताण्डव (श्री बी० के० मित्र) ... ८२७
३०–शिव-परिवार (श्री बी० के० मित्र) ... १९६
३१–शिव-विवाह (श्री द० देवलालीकर) ... ३२
३२–श्रीकृष्ण-उद्धव (श्रीज्योतिरिन्द्र राय) ... १०६७
३३–श्रीकृष्णरूपसे श्रीशिवरूपकी स्तुति और वरदानलाभ (श्री जे० सी० बसु) ... १८७
३४–श्रीनारायणरूप और श्रीशिवरूपसे श्री-कृष्णरूपका स्तवन (श्रीजगन्नाथ) ... ३५५
३५–श्रीविष्णुरूप और श्रीब्रह्मारूपके द्वारा श्रीशिवरूपकी स्तुति (श्रीजगन्नाथ) ... २९२
३६–श्रीशिवरूपद्वारा श्रीविष्णुरूपकी स्तुति (श्रीजगन्नाथ) ... ३७०
३७–श्रीश्रीसीताराम [सुनहरा] ... १३८७
३८–श्रीहरिहरकी जलक्रीड़ा (श्री बी० के० मित्र) ३६५
३९–सतीका शव लिये शिव (श्री द० देवलालीकर) ३४९
४०–सती-शरीरसे योगाग्निका प्राकट्य (श्री-ज्योतिरिन्द्र राय) ... २७१
४१–सदाशिव (श्रीरामप्रसादजी) ... १

दुरङ्गे

४२–उमाका उग्र तप (श्रीकनू देसाई) ... १७६
४३–ताण्डव-नृत्य (श्रीकनू देसाई) ... २७८
४४–भगवान् मृत्युञ्जय (श्री द० देवलालीकर) १६४
४५–भगवान् श्रीरामका रामेश्वर-पूजन (श्री बी० के० मित्र) ... ५५८
४६–शिव-भक्त उपमन्यु (श्री बी० के० मित्र) ४५५
४७–शिवशक्तिकी उपासना (श्री द० देवलालीकर) १
४८–श्रीशिवकृत श्रीराम-स्तुति (श्री बी० के० मित्र) ... ५२८

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इकरङ्गे-सादे चित्र

४९–अत्रिआश्रम शुचीन्द्र ... ६३१
५०–अनामके मी-सोन गाँवका शिवलिङ्ग ... ५७४
५१–अनाम-देशके मी-सोन गाँवका शिवालय ५७४
५२–अन्धकासुरवध-मूर्ति ... ५९६
५३–अमरेश्वर-मन्दिरमें खुदा हुआ शिवमहिम्नःस्तोत्र ४६८
५४–अमरकण्टक ... ६१०
५५–अष्टभुजा-वीरभद्रमूर्ति, अवद्यारकोयल ... ६०३
५६–आदित्येश्वर ... ६११
५७–इलोराके कैलाश-मन्दिरमें रावणद्वारा उठाये हुए कैलाश-पर्वतका दृश्य ... ५६१
५८–इलोरा-कैलासके मध्य-मन्दिरका सभाभवन ५६१
५९–इलोरामें चट्टान काटकर बनाया हुआ कैलाश-मन्दिर ... ५६०
६०–ईरानके सासानी राजाओंके सिक्केमें शिव-मूर्ति ५८५
६१–ईरानमें शिव-मन्दिर ... ६१९
६२–(घ) (७) ईस्वी द्वितीय शताब्दीकी महिषासुरमर्दिनी दुर्गा ... ५९०
६३–(१३) ईस्वी द्वितीय शताब्दीकी सप्त मातृकाएँ ५९४
६४–उज्जनकके भीमाशङ्कर-मन्दिरका पूर्वद्वार (बाहरी दृश्य) ... ६३९
६५–उदयपुरका प्राचीन शिवचित्र ... ६६४
६६–उमा ब्राह्मणीपर शिवकी कृपा ... ४६४
६७–(१०) उमा-महेश्वर-मूर्ति ... ५९१
६८–(ख) (५) एकमुखी शिवलिङ्ग ... ५९०
६९–एलीफेण्टा-त्रिमूर्ति सदाशिव (धारापुरी) ६२२
७०–ओंकारेश्वर ... ६४६
७१–ओंकारेश्वर महादेव ... ६४६
७२–कणिष्ककी मुद्रामें चतुर्भुज शिव-मूर्त्ति ... ५७९
७३–कणिष्ककी मुद्रामें पाशत्रिशूलधारी वृषभ-सहित शिवकी मूर्ति ... ५७९
७४–कणिष्ककी मुद्रामें सम्राट्की प्रतिकृति ... ५७९
७५–कण्डारिया-मन्दिर, खजुराहो ... ५७१
७६–कम्बोजकी शिव-मूर्ति ... ५८२
७७–काञ्चीमें भगवान् श्रीशङ्कराचार्यजीकी मूर्ति ६०४
७८–काञ्ची वरदराजका शिरःकम्पन-निवारण ३५२
७९–कानपुरके श्रीकुण्डेश्वर महादेव ... ६५६
८०–काशी-केदारखण्डका मान-चित्र ... ६१४
८१–काशीके श्रीअन्नपूर्णाजीके मंन्दिरमें गङ्गावतरण ६०२
८२–काशीके श्रीअन्नपूर्णाजीके मन्दिरमें श्री-शिव-पार्वतीकी मूर्ति ... ६०२
८३–कुबेरेश्वर ... ६११
८४–कुम्भेश्वर ... ६१०
८५–कृष्णा नदीके तटपर श्रीशैलम् पर्वतके ऊपर श्रीमल्लिकार्जुनका शिव-मन्दिर ... ५४९
८६–कैलास ... ६३५
८७–कैलास (डेरफू-गुफासे) ... ६३५
८८–कैलास-मणिभवन ... ९६
८९–क्षीरपुरके मन्दिर ... ६५२
९०–क्षीरपुरके मन्दिर ... ६५२
९१–खजुराहोका विशाल नन्दी ... ५९८
९२–गजासुर-संहार-मूर्ति ... ५९६
९३–(ङ) (८) गुप्तकालीन नृत्यरत गणपति-मूर्ति ... ५९०
९४–(२) गुप्तकालीन भव्य शिव-लिङ्ग ... ५९०
९५–(ग) (६) गुप्तकालीन सुन्दर एक-मुखी-लिङ्ग ... ५९०
९६–गुप्तकालकी शिव-मूर्ति लोकेश्वर (शिव) ५७९
९७–गुप्तेश्वरका भीतरी दृश्य, जबलपुर ... ६५०
९८–गुप्तेश्वर महादेव, कानपुर ... ६६२
९९–गोपेश्वर महादेव, वृन्दावन ... ६६१
१००–गोरक्षनाथ-गर्व-हरण ... ३५२
१०१–चक्रवर्तीश्वर शिव-लिङ्ग ... ६३७
१०२–(११) चतुर्भुजी चन्द्रशेखरमूर्ति ... ५९१
१०३–चम्पाकी शिव-मूर्ति ... ५८१
१०४–चित्राङ्गद और सीमन्तिनी ... ४६३
१०५–चूरूकी एक शिव-प्रतिमा ... ३७८
१०६–जङ्गमवाड़ीका प्राङ्गण ... ६२४
१०७–जङ्गमवाड़ी कैलासमण्डपमें ज्ञान-सिंहासन ६२४
१०८– ,, पूर्वाचार्योंकी समाधिस्थली ... ६२४
१०९– ,, विश्वाराध्यकी तपोभूमि ... ६२४
११०–जागेश्वर ... ६४१
१११–जावाका लाराजोंग्राङ्ग शिवालय ... ५७५
११२–ज्ञानवापी ... ५५५
११३–तिनसुकिया-शिवमन्दिर ... ६५४
११४–तीर्थपुरी-गुफा ... ६३४
११५–दक्षिण-भारत गुडिमल्लम्-मन्दिरकी शिवमूर्ति ५७९

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

११६–दशाश्वमेध-तीर्थ ... ६११
११७–दाशार्ह राजाके पाप-नाश ... ४६२
११८–दुग्धेश्वर, रुद्रपुर, गोरखपुर ... ६६२
११९–देव-सेनापति कुमार कार्तिकेय ... ४८
१२०–देवेश्वरजीकी विमलेश्वर-पूजा ... ३८२
१२१–दौलताबादकिला, देवगिरि ... ५६०
१२२–धातुमय शिवमूर्ति (प्राचीन यवद्वीप) ... ५८३
१२३–धारापुरीकी ताण्डव-मूर्ति ... ५६८
१२४–धारापुरी गुफाका द्वार ... ५६८
१२५–नचनाका शिव-मन्दिर ... ५९९
१२६–नचनाके वाकाटक महाभैरव (चतुर्मुख-लिङ्ग) ५९९
१२७–नचनाके वाकाटक महाभैरव (शान्त-मुख, महाभैरवमुख) ... ५९९
१२८–नचनाके वाकाटक महाभैरव (स्मित-मुख, गम्भीरमुख) ... ५९९
१२९–नचना-पार्वती-मन्दिरका द्वार, गङ्गा-यमुना-अंकित चौखटसहित ... ५९८
१३०–नचना-पार्वती-मन्दिरकी पर्वतरूप दीवालका अंश ... ५९८
१३१–नन्दलाल बिगहा (गया) का विशाल श्रीहर-मन्दिर ... ६३८
१३२–नीलकण्ठ महादेव, ईडर ... ६५५
१३३–पक्षितीर्थमें दिव्य पक्षी पर्वतके ऊपर प्रसाद ग्रहण कर रहे हैं ... ५६७
१३४–पञ्चमुखी परमेश्वर ... ६०७
१३५–(९) पञ्चमुखी शिवलिङ्ग ... ५९१
१३६–परम शिवभक्ता महारानी अहल्याबाई होल्कर ५२०
१३७–परेलकी अद्वितीय शैव-मूर्ति ... ५९६
१३८–पार्वती-मन्दिर, जबलपुर ... ६५०
१३९–पिप्पलेश्वर, मथुरा ... ६५९
१४०–पोठामराइ कुम्भकोणम् ... ६२९
१४१–प्राचीन सोमनाथका भग्न मन्दिर ... ५४८
१४२–बागेश्वर ... ६४१
१४३–बाप्पा रावलकी शिवोपासना ... ६१६
१४४–बालकेश्वर, बम्बई ... ६०६
१४५–बिन्दुसर ... ९७
१४६–बृहदीश्वर-मन्दिर, तञ्जोर ... ५६७
१४७–बैजनाथ महादेव, आगर ... ६४८
१४८–बैजनाथ महादेव, (पीछेके कमल-कुण्ड-सहित) आगर ... ६४८
१४९–ब्रह्मराक्षसकी मुक्ति ... ४६४
१५०–भक्त कण्णप्प ... ४४५
१५१–भक्त माणिक्क वाशगर द्वितीय अंकका टाइटल
१५२–भक्तराज पं० श्रीदेवीसहायजी ... ३८४
१५३–भक्त श्रीकर गोप ... ५५१
१५४–भद्रायुको जीवन-प्राप्ति ... ४६२
१५५–भग्नसिद्धेश्वर-मन्दिर ओंकार ... ६३८
१५६–भस्मासुर-भस्म ... ४६५
१५७–भारतके प्रधान शिवपीठका नकशा ... ५४६
१५८–भार-शिव-स्तम्भ ... ६००
१५९–भार-शिव-हरगौरी ... ६००
१६०–भीटामें प्राप्त पञ्चमुखी शिव-प्रतिमा ... ६२२
१६१–भीमा नदीके निकासपर श्रीभीमाशङ्करका मन्दिर ... ५५३
१६२–भीमाशङ्कर दक्षिणद्वारसे उज्जनक (नैनीताल) ६३९
१६३–भुमराका भारशिव-मन्दिर ... ६००
१६४–भुमराके भारकुलदेव—एकमुखी ... ६००
१६५–भृगुपतनवाली पहाड़ी ... ५५२
१६६–मङ्गेश ... ६३६
१६७–(१६) मथुराका पाशुपत शैव-स्तम्भ ... ५९५
१६८–(१५) मथुराका यज्ञीय यूप ... ५९४
१६९–मथुराकी लिङ्गमय शिवमूर्ति ... ५७९
१७०–मदुरा-मन्दिरके द्वारस्तम्भ ... ५६६
१७१–मध्य-एशिया (चीनी-तुर्किस्तान) के 'दन्दान्-यूलिक' के खँडहरमें प्राप्त महेश्वरका चित्र ... ५८१
१७२–(१४) मध्यकालीन सप्त मातृकाएँ, वीरभद्रगणपतिसमेत ... ५९४
१७३–महामखम्-मेला, कुम्भकोणम् ... ६२९
१७४–महेन्द्रगिरि गोकर्णेश्वर ... ६३२
१७५–मानसरोवर ... ६३४
१७६–मानसरोवरेश्वर, गोरखपुर ... ६६२
१७७–मी-सोन में षण्मुख मयूरवाहन-विग्रह ५७५
१७८–मुक्तिनाथ ... ६५३
१७९–मुखलिङ्गम् मधुकेश्वर ... ६३३
१८०–मुन्धेणा महादेव, ईडर ... ६५५
१८१–मोहन-जो-दड़ोमें प्राप्त विशाल शिव-लिंग (२) ... ५७८
१८२–मोहन-जो-दड़ोमें प्राप्त शिवलिंग (२) ... ५७८

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

१८३–मोहन-जो-दड़ोमें प्राप्त शिवलिंग (६) ... ५७८
१८४–यक्ष-मिथुन-ध्वंस ... ३५२
१८५–यवद्वीपके पूर्व बलिद्वीपके शिव ... ५८५
१८६–यवद्वीप प्राम्बानान्के प्राचीन शिवक्षेत्रके प्रधान मन्दिरके गर्भगृहकी शिवमूर्ति ... ५८३
१८७–योगी महेश्वर ... ५८१
१८८–रुद्रमाल ... ६४५
१८९–रुद्रमालका तोरणबन्द ... ६४५
१९०–वाकाटक हरगौरी (कैलासपर) ... ५९८
१९१–वाण-गंगा, बम्बई ... ६०६
१९२–विद्याशङ्कर-मन्दिर ... ६२८
१९३–विभीषणके प्रार्थनानुसार तीन कोटि लिंग-स्थापन ... ३५१
१९४–विमलेश्वर महादेवका मन्दिर ... ३८२
१९५–विश्वनाथ-मन्दिर, खजुराहो ... ५७१
१९६–वीरेश्वर महादेव, ईडर ... ६५५
१९७–शिव (प्राम्बानान्-यवद्वीप) ... ५८४
१९८–शिव और भीता उमा ... ५८०
१९९–शिव-कृष्णमूर्ति ... ६६५
२००–शिवकोटि मन्दिर, प्रयाग ... ६६२
२०१–शिव गुरु (अगस्त्यरूपी शिव), जावा ... ५८३
२०२–शिवताण्डव-स्तोत्र ... ६०१
२०३–शिव नटराज ... ५८०
२०४–शिव-पार्वती (वर्मा थातोन्में प्राप्त) ... ५८४
२०५–शिव-पार्वतीकी सुन्दर मूर्ति ... ६०३
२०६–शिवभक्त परमहंस श्रीविप्रराजेन्द्र स्वामी-जी, इला ... ३८०
२०७–शिवभक्त स्वामी श्रीगम्भीरनाथजी महाराज ५२१
२०८–शिव या शैव राजा, कम्बोज ... ५८२
२०९–शिवरात्रि ... ४८४
२१०–शिवरामकिङ्कर स्वामी श्रीयोगत्रयानन्द-जी महाराज ... ५२१
२११–शिव-विवाह, खजुराहो ... ५७०
२१२–शिव-विष्णु और उमा-रमाका प्रेम-सम्मिलन ६६५
२१३–शिव—श्यामदेशकी धातुमूर्ति ... ५८५
२१४–शिवस्यार्धप्रदक्षिणा ... ९७
२१५–शिवालय, रतनगढ़ ... ६०७
२१६–शुचीन्द्र ... ६३१
२१७–शूलपाणेश्वर ... ६१०
२१८–श्रियाल राजापर कृपा ... ४६५
२१९–श्रीअगस्त्यके प्रति श्रीरेणुकाचार्यका शिव-तत्त्वोपदेश ... ३५०
२२०–श्रीअमरनाथ-गुफा ... ५६९
२२१–श्रीअमरनाथजीकी बर्फसे बनी हुई मूर्ति ... ५६९
२२२–श्रीअरुणाचल ... ५६२
२२३–श्रीउज्जयिनी-महापीठ ... ३१७
२२४–श्रीऊखीमठ ... ३१६
२२५–श्रीएकलिङ्गजीका भस्मधारण ... ६१७
२२६–श्रीएकलिङ्गजीका शृंगार ... ६१७
२२७–श्रीएकलिङ्ग-मन्दिर, कैलासपुरी ... ६१६
२२८–श्रीओंकारेश्वर, शिवपुरी ... ५५२
२२९–श्रीकालहस्तीश्वरका बाहरी दृश्य ... ५६५
२३०–श्रीकाशी-अस्सी-घाट ... ६१५
२३१–श्रीकाशी-दशाश्वमेध-घाट ... ६१४
२३२–श्रीकाशी-मणिकर्णिका-घाट ... ६१४
२३३–श्रीकाशी-विश्वनाथ ... ५५५
२३४–श्रीकाशी-शिवाला-घाट ... ६१५
२३५–श्रीकेदारनाथ ... ५५३
२३६–श्रीकोलपाक, श्रीसोमेश्वर-लिङ्गसे श्री-रेणुकाचार्यका आविर्भाव ... ३५०
२३७–श्रीगणेश-परिवार ... ४८
२३८–श्रीगोकर्णेश्वरनाथ, मथुरा ... ६५९
२३९–श्रीगौरीशङ्कर-मन्दिर, जबलपुर ... ६५०
२४०–श्रीचन्द्रनाथ ... ५६२
२४१–श्रीचन्द्रनाथ—बडवानल ... ५६२
२४२–श्रीचिदम्बरम्की यात्रा ... ६०४
२४३–श्रीचिदम्बरम्-मन्दिरके गोपुर एवं हेम-पुष्करणी तीर्थ ... ५६५
२४४–श्रीजगत्गुरु पञ्चाचार्योंका आविर्भाव ... ३१६
२४५–श्रीजम्बुकेश्वरके मन्दिरका बाहरी दृश्य ... ५६४
२४६–श्रीतारकेश्वर शिव ... ५७०
२४७–श्रीत्र्यम्बकेश्वर ... ५५५
२४८–श्रीत्र्यम्बकेश्वरका मन्दिर ... ५५५
२४९–श्रीदक्षिणामूर्ति ... ३७७
२५०–श्रीदक्षिणेश्वर-मन्दिर ... ६०६
२५१–श्रीदक्षेश्वरका प्राचीन मन्दिर—कनखल ६५५
२५२–श्रीदर्शनेश्वर, अयोध्या ... ६६३
२५३–श्रीधर्मेश्वर-शृंगारमूर्ति, मेरठ ... ६३९

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२५४–श्रीधृष्णेश्वर-मन्दिर ... ५५७
२५५–श्रीनर्मदेश्वर ... ६१०
२५६–श्रीनागनाथ-मन्दिर ... ५५६
२५७–श्रीनागेश्वर, अयोध्या ... ६६३
२५८–श्रीपञ्चवक्त्रेश्वर-मन्दिर, हरिद्वार ... ६०५
२५९–श्रीपशुपतिनाथ–नेपाल (बाहरी दृश्य) ... ५६३
२६०– ,, ,, (भीतरी दृश्य) ... ५६३
२६१–श्रीभूतेश्वरनाथ, मथुरा ... ६६०
२६२–श्रीभोगनन्दीश्वरका मन्दिर ... ६२९
२६३–श्रीमल्लिकार्जुन शिव-लिङ्ग ... ५४९
२६४–श्रीमहाकालेश्वरका एक दृश्य ... ५५०
२६५– ,, ,, दूसरा दृश्य ... ५५०
२६६–श्रीमहाकैलासका चित्र ... ४०७
२६७–श्रीमहाबलेश्वर-शिव-मन्दिर ... ५६८
२६८–श्रीमीनाक्षी और श्रीसुन्दरेश्वर-मन्दिर, मदुरा ... ५६६
२६९–श्रीमुक्तेश्वरनाथ, गोरखपुर ... ६६२
२७०–श्रीरङ्गेश्वरनाथ महादेव, मथुरा ... ६६०
२७१–श्रीराजराजेश्वरकी मूर्ति, अयोध्या ... ६६३
२७२–श्रीरामेश्वर-मन्दिरका पूर्वीय गोपुर ... ५५७
२७३–श्रीरामेश्वर-मन्दिरका प्रसिद्ध चाँदीका रथ ५५७
२७४–श्रीरुद्रमुनि शिवाचार्यका भूगर्भसे निकलना ३५३
२७५–श्रीलिङ्गराज—भुवनेश्वर ... ५७०
२७६–श्रीविश्वनाथजीका मन्दिर, काशी ... ५५४
२७७–श्रीविश्वनाथ शयन-आरती ... ५५५
२७८–श्रीवैद्यनाथधाम ... ५५५
२७९–श्रीवैद्यनाथ-मन्दिर ... ५५५
२८०–श्रीवैद्यनाथ-मन्दिर, कांगड़ा ... ५६९
२८१–श्रीशङ्कराचार्यको चन्द्रमौलीश्वर-लिङ्गदान ३५१
२८२–श्रीशिवकाञ्चीके मन्दिरका बाहरी दृश्य ... ५६४
२८३–श्रीशिवकोटि वीरभद्रय्यास्वामी ... ४८०
२८४–श्रीशिव-गङ्गा ... ६२६
२८५–श्रीशृंगार-मूर्ति, शोलापुर ... ५२१
२८६–श्रीसर्वेश्वर महादेव श्रवणनाथ, कुरुक्षेत्र ... ६३९
२८७–श्रीसिद्धेश्वर, शोलापुर ... ५२१
२८८–श्रीसोमनाथका नया मन्दिर (दूरसे) ... ५६२
२८९–श्रीसोमनाथ-लिङ्गमें प्रवेश ... ३५३
२९०–श्रीहायलेश्वर-मन्दिर, हालेविद ... ६२६
२९१–श्रीहायलेश्वर शिव-गौरी-मूर्ति ... ६२७
२९२–सम्मिदेश्वर-मन्दिर, चित्तौड़ ... ६०७
२९३–सुधर्माकी यमपाशसे मुक्ति ... ४६३
२९४–सूर्यकुण्ड ... ५६१
२९५–(१२) सेनानी-स्कन्द कार्तिकेय, गुप्तकाल ५९१
२९६–सोमेश्वर, प्रयाग ... ६६२
२९७–स्थाणु महादेवका मन्दिर थानेसर ... ६३८
२९८–हर-हरिरूप शिव शिवाङ्कका आवरण-पृष्ठ
२९९–(क) (४) हरि-हर ... ५९०
३००–हरि-हर, कम्बोज ... ५८२
३०१–(३) हरि-हर-मूर्तिका सिर ... ५९०
३०२–हायेश्वर ... ६११

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

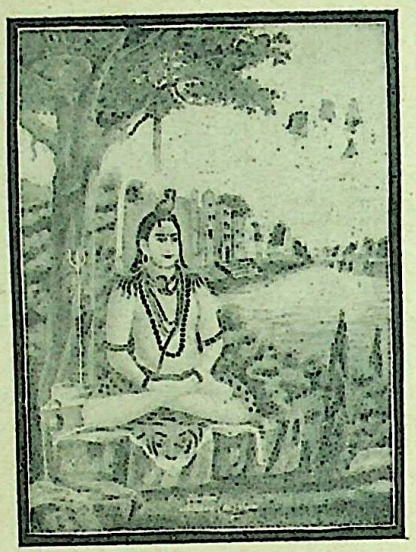

श्रीविश्वनाथजी

कल्याणका अंग्रेज़ी संस्करण

'कल्याण' के प्रेमी पाठक-पाठिकाओंको विदित ही है कि उसका अंग्रेज़ी संस्करण भी 'कल्याण-कल्पतरु' के नामसे गत जनवरी माससे छपने लगा है। उसके अबतक छः अङ्क निकल चुके हैं और सातवाँ अङ्क भी शीघ्र ही निकलने-को है। अबतक 'कल्याण-कल्पतरु' के जितनें भी अङ्क निकले हैं उन सबकी और खासकर उसके विशेषाङ्ककी जो "God Number" के नामसे वर्षके प्रारम्भमें निकला था देशी-विदेशी सभी विद्वानोंने मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है और उसकी उन्नति हृदयसे चाही है। यह 'कल्याण-कल्पतरु' के लिये बड़े सौभाग्यकी बात है और उसकी भावी उन्नतिका सूचक एक महान् शुभ लक्षण है। आशा है, जिस प्रकार इसका विशिष्ट व्यक्तियोंने आदर किया है उसी प्रकार इसे अंग्रेज़ी भाषाभाषी जनसमुदाय भी अधिकाधिक संख्यामें अपनाकर हमारे उत्साहको बढ़ावेगा। कहना न होगा कि हमें 'कल्याण-कल्पतरु' के प्रचारमें हिन्दी 'कल्याण' के प्रेमी पाठक-पाठिकाओंसे विशेष सहायता मिली है। अबतक उनके प्रेमपूर्ण एवं निःस्वार्थ उद्योगसे तथा भगवान्‌की कृपासे 'कल्याण-कल्पतरु' के आजतक आठ सौसे ऊपर ग्राहक हो गये हैं, जो सर्वसाधारणकी वर्तमान आर्थिक परिस्थिति, अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे भाइयोंकी धार्मिक एवं आध्यात्मिक साहित्यकी ओर रुचि तथा समयके प्रभावको देखते हुए किसी प्रकार असन्तोषजनक नहीं कही जा सकती। फिर भी 'कल्याण-कल्पतरु' की जितनी कापियाँ (४०००) छापी जा रही हैं उनको देखते हुए यह संख्या बहुत कम है और जबतक यह संख्या पूरी न होगी 'कल्याण-कल्पतरु' को घाटा ही रहेगा, क्योंकि उसका वार्षिक चन्दा ४॥) यही सोचकर रक्खा गया था कि वर्षके अन्ततक उसके चार हजार ग्राहक हो जायँगे। वर्षका आधेसे अधिक भाग व्यतीत हो चुका है और जबतक हमारे प्रेमी ग्राहक-अनुग्राहक इस सम्बन्धमें विशेष प्रयत्न नहीं करेंगे तबतक वर्षके शेषतक यह संख्या पूरी होनी कठिन है। अतएव हमारा निवेदन है कि कल्याण-प्रेमी महानुभाव अंग्रेज़ी कल्याण-कल्पतरुके जितने बन सकें, ग्राहक बनानेकी कृपा करें।

मैनेजर,

'कल्याण' गोरखपुर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

कल्याण कार्तिक १९९० की

विषय-सूची

१–बिराना देश [कविता] (श्रीकबीरदासजी) ··· ७४७

२–पूज्यपाद श्रीडड़ियाबाबाजीके उपदेश ··· ७४८

३–ध्यानसहित नाम-जपकी महिमा (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ··· ··· ७४९

४–कल्याण ('शिव') ··· ··· ७५५

५–चेतावनी [कविता] (श्रीबाजिन्द) ··· ७५७

६–पाँच प्रश्न (हनुमानप्रसाद पोद्दार) ··· ७५८

७–हरि आये [कविता] (श्रीकाज़ी अशरफ़ महमूद) ७६२

८–परमहंस-विवेकमाला (स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी) ७६३

९–मन-तुरंग [कविता] (श्रीशिवकुमारजी केडिया 'कुमार') ··· ··· ··· ७६७

१०–वाल्मीकि-रामायण और भगवच्छरणागति (साहित्याचार्य पं० श्रीमथुरानाथजी शास्त्री, भट्ट, कविरत्न) ··· ··· ७६८

११–सत्यं शिवं सुन्दरम् (दण्डिस्वामी श्रीसहजानन्दजी सरस्वती) ··· ··· ७८०

१२–श्रीगणपति-रहस्य (पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय एम० ए०, साहित्याचार्य) ··· ··· ७८४

१३–अधीर क्यों होते हो ? (गंगातीरनिवासी एक विरक्त महात्माके उपदेश, (प्रे०–श्रीइन्द्र ब्रह्मचारी) ७८८

१४–सत्य हरिश्चन्द्र (कुमारी श्रीकौशिल्यादेवीजी) ७९०

१५–श्रीज्वालामुखी-यात्रा (श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी एम० ए०) ··· ··· ७९७

१६–तुलसीकृत रामायणमें करुणा-रस (श्रीराजबहादुरजी लमगोड़ा एम० ए०, एल-एल० बी०) ··· ८०२

१७–काननमें [कविता] (राय श्रीदेवीप्रसादजी 'पूर्ण') ८०९

१८–भक्त-गाथा (एक भक्तपदरेणु) ··· ८१०

१९–दो आरतियाँ (महामहोपाध्याय पं० श्रीकेशवरावजी ताम्हण एम० ए०, भूतपूर्व प्रिंसिपल मॉरिस कालेज, नागपुर सी० पी०) ··· ८१८

२०–गीता और धम्मपद (पं० श्रीगौरीशङ्करजी द्विवेदी, साहित्यरत्न) ··· ··· ८१९

२१–हरिणोंका स्मरण (श्रीदत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर, प्रेषक—श्रीचन्दूलाल बहेचरलाल पटेल बी० ए०) ८२२

२२–विवेक-वाटिका ··· ··· ८२४

२३–परोपकार (कुमारी श्रीरत्नीदेवीजी) ··· ८२५

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

English Edition
of
THE 'KALYAN'

Editor—C. L. Goswami M. A., Sastri.

(Under the supervision and guidance of Sjt. Hanuman Prasad Poddar.)

SUBSCRIPTION—INLAND Rs. 4/8, FOREIGN 10 SH.

Ever since the issue of the Gitanka four years back suggestions have been received from a number of friends in India and abroad regarding issuing an English edition of the 'Kalyan' side by side with the Hindi edition, for the benefit of those who cannot read Hindi. It has therefore been decided to start an English edition of the 'Kalyan' shortly.

It will contain 750 pages annually and will be printed in thick 40 lb. antique paper. Every number will contain two coloured illustrations and will embody, besides the translation of a few selected articles from the Hindi edition, original contributions from distinguished writers of this country as well as abroad. Like the Hindi edition the first number of each year will be a Special Number which will contain a number of one-coloured and tri-coloured illustrations.

The inaugural number will be a God Number which is proposed to be issued very shortly. We hope the English edition will receive the same encouragement and patronage as the Hindi edition. If it is able to secure 5000 subscribers the enterprise will not involve any monetary loss. We trust subscribers will be forthcoming in large numbers and will also help in securing other subscribers. In course of time we may have to increase the number of pages of the English edition if it continues to enjoy the unstinted patronage of its subscribers and sympathisers. Intending subscribers are requested to send their subscriptions.

Manager,
THE ENGLISH 'KALYAN',
GORAKHPUR.

भूल-सुधार—कल्याण आश्विनकी संख्या पृष्ठ ७२२ में प्रकाशित 'ईश्वरकी माया' शीर्षक लेखके लेखक श्रीऋषिराजजी ननौरिया हैं और पृष्ठ ७०२ पर छपी हुई 'ज्ञान-गुदड़ी' नामक कविताके लेखक पं० वासुदेवजी शास्त्री हैं; दोनों ही नाम भूलसे छपने रह गये थे। लेखक महोदय क्षमा करें।

सूचना—कल्याणके शिवांकके लिये पूज्य मण्डलेश्वर स्वामी श्रीस्वरूपानन्दजी, श्रद्धेय श्रीभगवानदासजी एम० ए०, श्रीसद्गुरुशरणजी अवस्थी एम० ए० और श्रीजैनेन्द्रकुमारजीने कृपापूर्वक लेख भेजे थे। यह बात अब उन महानुभावोंके पत्रोंसे हमें मालूम हुई है। पता नहीं डाकविभागकी किस भूलसे हम इन लेखोंसे वञ्चित रह गये। लेखक महोदय हमें निरुपाय समझकर कृपया क्षमा करें। सम्भव है कि ऐसे और लेख भी हमें नहीं मिले हों। लेखक महोदय डाक-विभागको लिखें तो अच्छा हो! इस अनुभवसे लाभ उठाकर सभी लेखकगण रजिस्ट्रीसे लेख भेजा करें तो बड़ी दया हो।

Edited by Hanuman prasad Poddar.

Printed and published by Ghanshyamdas at the Gita Press, Gorakhpur. U. P. (India)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

राजा बहुलाश्व-कृत श्रीकृष्ण-पूजन

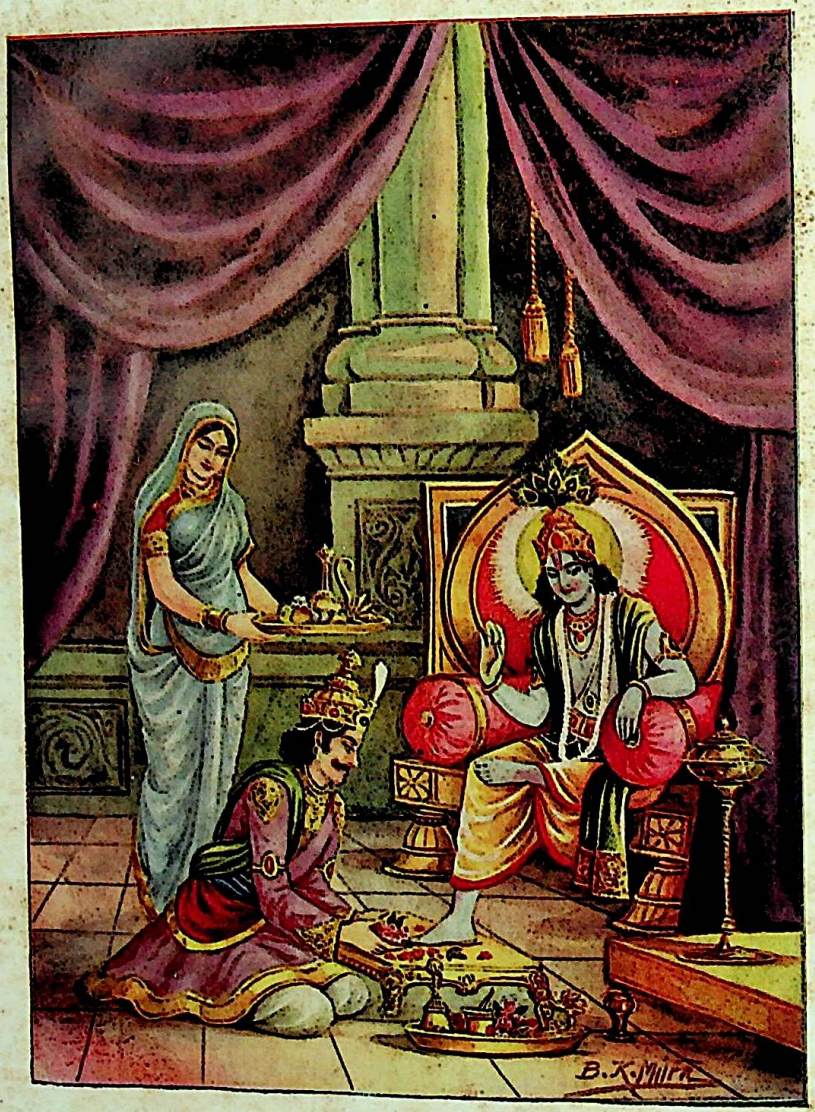

नत्वा तदङ्घ्रीन् प्रक्षाल्य तदपो लोकपावनीः ॥
सकुटुम्बो वहन्मूर्ध्ना पूजयाञ्चक्र ईश्वरान् । गन्धमाल्याम्बराकल्पधूपदीपार्घगोवृषैः ॥
(श्रीमद्भा० १०।८६।२८-२९)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

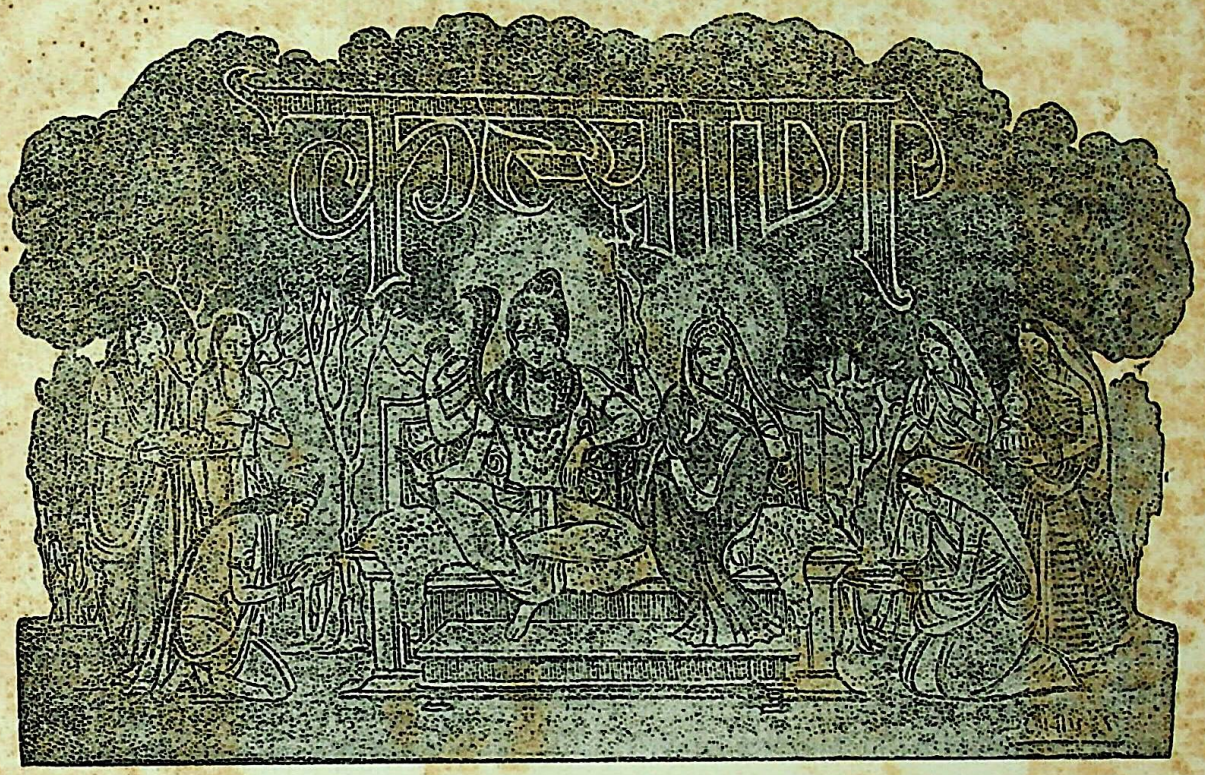

आराध्य यं सुमनसा पुरुषाः स्त्रियो वा कल्याणकल्पतरुमुक्तिफलान्युपेयुः ।
मूलं भजध्वमनिशं परमं तमीशं ब्रह्मस्वरूपमुमया सह विद्ययैव ॥

वर्ष ८ | गोरखपुर, कार्तिक १९९० नवम्बर १९३३ | संख्या ४ पूर्ण संख्या ८८

बिराना देश

रहना नहिं देश बिराना है ।
यह संसार कागदकी पुड़िया, बूँद पड़े घुल जाना है ।
यह संसार काँटकी बाड़ी, उलझ पुलझ मरि जाना है ॥
यह संसार झाड़ औ झाँखर, आग लगे बरि जाना है ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरु नाम ठिकाना है ॥

—कबीरजी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश

(१)

श्रीकृष्णचरणाम्भोजं सत्यमेव विजानताम्।
जगत्सत्यमसत्यं वा नेतरेति मतिर्मम॥

जिन भक्तोंने श्रीकृष्ण-चरणारविन्दोंको ही सत्य समझ लिया है, उनकी बुद्धिमें ये भाव उत्पन्न ही नहीं होते कि जगत् सत्य है अथवा असत्य। वे जगत्की सत्यता, असत्यताके कारण श्रीकृष्ण-पाद-पद्मोंमें प्रीति नहीं करते।

(२)

प्रेम-प्राप्ति ही जीवनका अन्तिम लक्ष्य है। श्रद्धा, भक्ति प्रेम-प्राप्तिके सर्वोत्तम उपाय हैं। अश्रद्धालु एवं अभक्त कभी प्रेमी नहीं हो सकता। श्रद्धा-भक्तिका उदय पवित्र अन्तःकरणमें ही होता है। श्रद्धाद्वारा ज्ञानकी प्राप्ति होती है, ज्ञानद्वारा भक्तिकी प्राप्ति होती है। निष्ठा (शब्द) भक्तिका पर्यायवाची है। निष्ठाके उदय होते ही प्रेम प्रकट होने लगता है।

(३)

भक्तको भगवान्के अतिरिक्त किसी भी सम्बन्धमें कभी बातचीत नहीं करनी चाहिये। मनुष्य-जीवनमें जो असन्तोष बना रहता है, यह उन्नतिका लक्षण है। भगवान्की जबतक प्राप्ति नहीं हो जाती, तबतक असन्तोष बना रहना स्वाभाविक है।

× × ×

एक वैभवसम्पन्न ज़मींदार मुसल्मान था, कालकी प्रेरणासे गरीब हो गया। गरीबीमें वह फकीर हो गया। वह रातको नियमपूर्वक बस्तीमें रोटीकी भीख माँगने जाता था। एक दिन अँधेरेमें गिर पड़ा। दूसरे दिनसे उसने एक नौकर रख लिया। नौकरकी ड्यूटी थी, फकीरके सामने प्रकाश दिखाना। फकीर होनेपर भी अमीरोंके संस्कार नहीं गये थे।

यह आत्मा अनादि कालसे महैश्वर्यका भोक्ता रहा है। यही कारण है, जबतक महैश्वर्य (भगवत्तत्त्व) की प्राप्ति नहीं कर लेता तबतक असन्तोषी बना रहेगा। असन्तोषकी निवृत्ति जगत्की किसी भी वस्तुसे होनी सम्भव नहीं।

(४)

जिसके मनमें किसी प्रकारकी वासना या कामना नहीं है, वही अनिकेती है। घर बनाकर रहनेके मानी हैं भोगकी सामग्रियोंका सञ्चय करके उन्हें भोगना। गीतामें जो 'अनिकेत' शब्द आया है, वह ममता और कामनारहित होनेके ही सम्बन्धमें है। भगवान्के कहनेका मतलब यह है कि 'किसी प्रकार ममता और कामनाको मनमें स्थान मत दो।' अनिकेती होनेमें जो आनन्द है, उसका वर्णन नहीं हो सकता। भगवान्की बिना कृपाके कोई अनिकेती नहीं हो सकता। नित्यप्रतिकी प्रार्थनामें भगवान्से यही याचना करनी चाहिये कि 'प्रभो! अनिकेती बना।'

(५)

स्त्रीवर्गसे घृणा करनेकी जरूरत नहीं, किन्तु उनसे बचकर रहनेमें ही कल्याण है। परिपक्व साधनामें भी स्त्री-स्मरण होना सम्भव है, उसके स्मरणमात्रसे ही दोष हो जाना सम्भव है। विशेषकर यति-जीवनमें तो किसी भी स्त्रीसे भूलकर भी सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये।

× × ×

मनकी यथार्थ अवस्थाका परिचय तो स्वप्नमें ही होता है। यदि स्वप्नमें किसी वस्तु तथा किसी सम्बन्धित मनुष्यके दर्शन होते हैं तो समझ लेना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चाहिये कि वह वस्तु तथा वह व्यक्ति मनमें भरा हुआ है।

बहुत पुरानी बात है, जब कि मैं कर्णवासकी एकान्त झाड़ीमें अभ्यास करता था, एक दिन स्वप्नमें देखता हूँ,—भिक्षाका समय हो गया। मैंने भिक्षाकी झोली उठायी, बस्तीमें गया, वहाँ एक चमचमाती हुई चाँदीकी हवेली दिखलायी दी। मैंने ज्यों ही 'नारायण हरि' की आवाज देनेका विचार किया त्यों ही हजारों स्त्रियाँ सुन्दर थालियोंमें नाना प्रकारके भोजन लिये मेरे सामने आ गयीं। सभी कहती हैं—'बाबा! यहीं भोजन कर लो।' मैंने कहा—'मैं तो एक टुकड़ा लूँगा।' स्त्रियोंने आग्रहपूर्वक वहीं भोजन करनेके लिये कहा। साथ ही यह भी कहा कि 'हमारा नियम है कि हम सब यहीं भोजन करायँगी।' मैंने कहा—'मेरे यहाँ भी ऐसा ही नियम है कि भिक्षामें एक टुकड़ासे अधिक नहीं लेते और एकान्तमें ले जाकर मंगलमय श्रीहरिके भोग लगाकर तब पाते हैं।'

इतनेहीमें जाग गया। मनकी इस लीलापर बड़ी हँसी आयी।

ध्यानसहित नाम-जपकी महिमा

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

आज उस परम दयालु परमात्माकी कृपासे ध्यानसहित नामके जपपर कुछ लिखनेका सुअवसर प्राप्त हुआ है। वास्तवमें तो इस विषयपर वे ही पुरुष लिख सकते हैं जो भगवान्‌के भजन और ध्यानके तत्त्वको जाननेवाले हैं और निरन्तर भगवान्‌के प्रेममें मुग्ध रहते हैं एवं भगवान्‌की स्मृतिसे जिनके शरीरमें रोमाञ्च और नेत्रोंमें अश्रुपात होते रहते हैं। जलके वियोगमें मछलीकी भाँति भगवान्‌की विस्मृतिसे विकल हो उठते हैं और भगवान्‌का भजन-ध्यान जिनको प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय है, ऐसे महापुरुषोंका ही इस विषयमें लिखनेका अधिकार है। उन्हींके लेखोंसे संसारको लाभ पहुँच सकता है।

मुझ-सरीखे पुरुषका इस विषयमें लिखना अनधिकार चेष्टा करना है; किन्तु प्रेमी सज्जनोंकी प्रेरणासे, अपनी साधारण बुद्धिके अनुसार पाठकोंकी सेवामें कुछ लिखनेका प्रयास कर रहा हूँ। त्रुटियोंके लिये विज्ञजन क्षमा करेंगे।

जो लोग भगवान्‌के भजन-ध्यानरूप साधनके रहस्यको नहीं जानते, वे लोग थोड़े ही दिनोंमें साधनसे ऊब जाते हैं और कुछ तो साधनको छोड़ भी देते हैं। जैसे कोई विद्या पढ़ता हुआ बालक खेल-तमाशोंमें आसक्त या इम्तहानमें फेल होनेके कारण अथवा और किसी कारणसे उकताकर विद्याके अभ्यासको छोड़नेपर विद्यारूपी धनसे वञ्चित रह जाता है, वैसे ही वे भगवत्-प्राप्तिरूप अमूल्य रत्नसे वञ्चित रह जाते हैं।

कोई-कोई मन्द साधन करते भी रहते हैं और पूछनेपर वे ऐसा कहा करते हैं कि जब हम भजन-ध्यान करनेके लिये बैठते हैं तब संसारके संकल्प, निद्रा और आलस्य आदि आ घेरते हैं अतएव विशेष आनन्द नहीं आता। इसलिये उससे रुचि हटकर हमारा साधन ढीला पड़ गया। वे लोग भजन-ध्यानके द्वारा आरम्भमें ही पूर्ण आनन्दका अनुभव करना चाहते हैं। यह भारी भूल है। अभी तो भजन-ध्यानका जैसा साधन होना चाहिये वैसा साधन ही नहीं हुआ, फिर आनन्द कैसा?

हाथसे माला फेरते हैं, मुँहसे राम-राम कहते हैं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और मनसे संसारके विषयोंका चिन्तन करते हैं, यह तो संसारका भजन है, रामका नहीं ।

करमें तो माला फिरे, जीभ फिरे मुख माँय ।
मनुवाँ तो चहुँदिसि फिरे, यह तो सुमिरन नाँय ॥

किसी-किसीके हाथसे माला गिर जाती है और निद्राके वशीभूत होकर वे आसनपर ही ऊँघते रहते हैं । वे भगवान्‌के उपासक नहीं हैं, निद्रादेवीके उपासक हैं । ऐसे लोग असली आनन्दसे बहुत दूर हैं । उनका मन ही उनको धोखा दे रहा है । वास्तवमें भजन-ध्यानके प्रभाव और रहस्यको उन लोगोंने नहीं समझा ।

भजन-ध्यानके प्रभाव और रहस्यको समझ लेनेपर निद्रा, आलस्य और संसारकी स्फुरणाकी तो बात ही क्या है, खान-पानकी भी चिन्ता नहीं रह सकती । रात-दिन भजन-ध्यानकी ही धुन सवार हो जाती है । जैसे रुपयोंके प्रभावसे मोहित हुए व्यापारी, वैद्य, डाक्टर, वकील-बैरिस्टर आदि सभी लोग विषय-सम्पत्तिको प्रधान समझनेवाले समयको धन कमानेमें ही व्यय करते हैं; इससे अतिरिक्त उनको दूसरी बात अच्छी ही नहीं लगती, वैसे ही उनको भी भगवद्भजनके सिवा और कोई चीज अच्छी नहीं लगती । उनको तो मधुरसे भी मधुर और पवित्रसे भी पवित्र ध्यानसहित हरिका नाम ही मंगलमय प्रतीत होता है ।

इस घोर कलिकालमें सुखसाध्य और सर्वोत्तम साधन ध्यानसहित भगवान्‌का भजन ही है । ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त सारा संसार क्षणभंगुर और नाशवान् है । केवल एक विज्ञानानन्दघन परमात्मा ही सत् वस्तु है । इसलिये जो सदा-सर्वदा हमलोगोंको भगवान्‌का भजन, ध्यान करना ही सिखलाता है, वही माता, पिता, गुरु एवं हमारा सच्चा बन्धु है । संसारमें इससे बढ़कर हमारे लिये और कोई भी आवश्यक कार्य नहीं है । श्वासका कुछ विश्वास नहीं है । इसलिये जबतक स्वास्थ्य अच्छा है, वृद्ध-अवस्था और मृत्यु दूर है तभीतक जो कुछ करना हो, अति शीघ्रताके साथ कर लेना चाहिये ।

अहो ! भयङ्कर कष्ट है, भारी आपत्ति है, जो कि विषयरूपी काँचके लिये भजन-ध्यानरूपी अमूल्य रत्नको लोग बिसार रहे हैं ।

प्रिय पाठकगण ! उठो, जागो, सावधान होओ और अमृतमय हरिके नाम और गुणोंको कानोंके द्वारा सुनो तथा वाणीके द्वारा कीर्तन करो और मनसे उनके स्वरूपका ध्यान करो । सम्पूर्ण संसारके भोगोंको तृणके समान समझकर शरीरसे भगवान्‌की सेवा करो और अपने इस अमूल्य समयका अमोलक कार्यमें ही उपयोग करो !

कर्मोंका अनुष्ठान करते समय भी चित्तसे भगवान्‌को मत भूलो । भोग, प्रमाद और आलस्यमें दुःख और दोषोंको देखकर इनसे दूर हटो । विषयासक्त, नास्तिक और प्रमादी पुरुषोंके नजदीक भी मत जाओ और दीन-दुःखी मनुष्योंकी सेवा करो ।

मान, प्रतिष्ठा, कीर्तिको कलङ्कके समान समझो । शम, दम, तितिक्षा आदि अमृतमय साधनोंका सेवन करो । काम, क्रोध, लोभ, मोहादि कूड़े-कचूड़ेको निकालकर हृदयरूपी घरको पवित्र करो ।

शीत-उष्ण, सुख-दुःखादि क्षणिक और नाशवान् हैं, इसलिये इनसे व्यथित मत होओ अर्थात् सदा समचित्त रहो या पूर्वकृत कर्मोंके अनुसार ईश्वरका किया हुआ विधान समझकर इनको सहर्ष स्वीकार करो ।

शील, विद्या, गुण, त्याग और तेज आदिमें जो वृद्ध हैं ऐसे सदाचारी सज्जन महात्माओंके चरणोंका सेवन करो । ऐसे पुरुषोंका सङ्ग तीर्थसेवनसे भी बढ़कर है । इसलिये कुतर्कको छोड़कर उनके दिये हुए अमृतमय उपदेशका भगवत्-वाक्योंके समान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

Jangamawadi Math, Varanasi
2937

आदर करो। अथवा निर्जन पवित्र एकान्त स्थानमें बैठकर ध्यानसहित भगवान्‌के नामका जप तथा भगवत्-तत्त्वका विचार करो।

ऊपर बतलाये हुए साधनोंके अनुसार चलनेवाला पुरुष भगवान्‌की दयासे, भगवान्‌के प्रभावको जानकर शीघ्रातिशीघ्र परमपदको प्राप्त हो जाता है।

प्रश्न—किसप्रकारका नाम-जप करना उत्तम एवं लाभप्रद है। वाचिक, उपांशु या मानसिक?

उत्तर—वाचिक जपसे उपांशु दसगुणा अधिक है और उपांशुसे मानसिक दसगुणा अधिक फलदायक है—

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः।
उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः॥
(मनु० २।८५)

इससे मानसिक जप ही सबसे उत्तम है। मानसिक जप श्रद्धापूर्वक नित्य-निरन्तर किया जाय तो वह और भी विशेष लाभप्रद हो जाता है। वही जप निष्काम प्रेमभावसे किया जाय तो फिर उसकी महिमाका कोई वर्णन ही नहीं कर सकता।

प्रश्न—(क) क्या केवल नामके जपसे ही इष्टदेवके स्वरूपका दर्शन हो सकता है, या—

(ख) जपके साथ-साथ इष्टदेवके स्वरूपका चिन्तन करना भी आवश्यक है?

उत्तर—(क) श्रद्धापूर्वक प्रेमसे किये हुए केवल जपसे भी इष्टदेवका साक्षात् दर्शन हो सकता है।

महर्षि पतञ्जलिने कहा है—

'स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः।' (योग० २।४४)

इष्टदेवके नामके जपसे इष्टदेवका साक्षात् दर्शन होता है।

यदि इष्टदेवका निरन्तर चिन्तन करते हुए उपर्युक्त प्रकारसे जप किया जाय तो उसकी प्राप्ति और भी शीघ्र हो जाती है। इसलिये—

(ख) जपके साथ-साथ ईश्वरके स्वरूपका चिन्तन अवश्य करना चाहिये। महर्षि पतञ्जलिने कहा है—

'तज्जपस्तदर्थभावनम्।' (योग० १।२८)

उस परमेश्वरके नामका जप और उसके स्वरूपका चिन्तन करना—इसीका नाम ईश्वरप्रणिधान एवं ईश्वरकी शरण समझना चाहिये।

इससे सब विघ्नोंका नाश एवं परमात्माके स्वरूपकी प्राप्ति भी हो जाती है।

प्रश्न—जपके सात्त्विक, राजस और तामस—तीन भेद किस कारणसे होते हैं?

उत्तर—जपके सात्त्विक, राजस और तामस भेद होनेमें भाव ही प्रधान कारण है। श्रद्धा, प्रेम तथा निष्कामभावसे भगवत्-प्रीत्यर्थ किया हुआ जप सात्त्विक समझा जाता है।

इस लोक और परलोकके भोगोंकी प्राप्तिके लिये एवं मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाके लिये शास्त्रानुकूल किया हुआ जप राजसिक समझा जाता है।

दूसरोंके अनिष्टके लिये अज्ञानपूर्वक किया हुआ जप तामसी समझा जाता है।

प्रश्न—कौन-से नामका जप विशेष लाभप्रद है। 'राम-राम' या 'ॐ-ॐ' या 'शिव-शिव' या 'नारायण-नारायण' इत्यादि-इत्यादि?

उत्तर—ईश्वरके सभी नाम समान हैं, इसलिये जिसका जिस नाममें प्रेम हो, उसके लिये वही नाम विशेष लाभप्रद है।

प्रश्न—जपके साथ ध्यान भगवान्‌के निराकार स्वरूपका करना चाहिये या साकार स्वरूपका?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उत्तर—इसमें भी साधककी रुचि ही प्रधान है। जिसकी निराकार स्वरूपमें रुचि हो, उसके लिये निराकारका ध्यान और जिसकी साकारमें रुचि हो, उसके लिये साकारका ध्यान लाभदायक है। निराकार और साकारको व्यापक अग्नि और प्रज्वलित अग्निकी भाँति अभिन्न रूप समझकर उसके रहस्य और प्रभावको जानते हुए जो निराकारके सहित साकारका ध्यान करता है वह सर्वोत्तम है।

प्रश्न—कितनी संख्यामें जप करनेसे इष्टदेवके साक्षात् दर्शन हो सकते हैं? और शास्त्रोंमें कौन-से नाम-जपकी विशेष महिमा लिखी है?

उत्तर—संख्याके विषयमें सब जगह एक नियम नहीं मिलता; किन्तु भगवान्‌के नाम-जपकी महिमा अधिकांशमें सभी शास्त्रोंमें पायी जाती है। कलि-सन्तरणोपनिषद्‌में लिखा है कि—

'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥'

इस षोडश नामवाले मन्त्रका साढ़े तीन करोड़ जप करनेसे सब पापोंका नाश होकर परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। रामायणमें श्रीराम-नामकी, श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्ण आदि नामोंकी एवं महाभारतमें गोविन्द, हरि, नारायण, वासुदेव आदि बहुत-से नामोंकी तथा श्रुति-स्मृतियोंमें ॐ, तत्, सत् आदि नामोंके जपकी विशेष महिमा लिखी है। ऐसे ही प्रायः सभी नामोंकी शास्त्रोंमें जगह-जगह भूरि-भूरि महिमा गायी गयी है।

कलिकल्मषमत्युग्रं नरकार्तिप्रदं नृणाम्।
प्रयाति विलयं सद्यः सकृत्कृष्णस्य संस्मृतेः॥
(विष्णुपु० ६।८।२१)

'मनुष्योंको नरककी पीड़ा देनेवाले कलिके अत्यन्त उग्र पाप श्रीकृष्णका एक बार भी भलीप्रकार स्मरण करनेसे तुरन्त लीन हो जाते हैं।'

सकृत्स्मृतोऽपि गोविन्दो नृणां जन्मशतैः कृतम्।
पापराशिं दहत्याशु तूलराशिमिवानलः॥

'श्रीगोविन्दका एक बार भी स्मरण किये जानेसे मनुष्योंके सैकड़ों जन्मोंमें किये हुए पापोंके समूह उसी प्रकार शीघ्र ही भस्म हो जाते हैं। जैसे अग्निसे रूईके ढेर।'

हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः।
अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः॥
(बृ० नार० १।११।१००)

'श्रीहरिका स्मरण यदि दुष्टचित्त पुरुषोंद्वारा भी किया जाय तो भी वह उनके समस्त पापोंको हर लेते हैं। जैसे अनिच्छासे स्पर्श करनेपर भी अग्नि जला ही डालता है।'

न तावत्पापमस्तीह यावन्नामाहतं हरेः।
अतिरेकभयादाहुः प्रायश्चित्तान्तरं वृथा॥

'हरिके नामोंके जप करनेसे जितने पाप नष्ट हो जाते हैं उतने पाप ही संसारमें नहीं हैं, इसलिये अधिक पापोंके भयसे अन्य प्रायश्चित्तोंका करना व्यर्थ ही बतलाया है।'

आचारहीनोऽपि मुनिप्रवीर
भक्त्या विहीनोऽपि विनिन्दितोऽपि।
किं तस्य नारायणशब्दमात्रतो
विमुक्तपापो विशतेऽच्युतां गतिम्॥

'हे मुनिप्रवीर! यदि पुरुष आचारहीन, भक्तिहीन तथा निन्दनीय भी है, तो भी उसको क्या भय है? क्योंकि 'नारायण' शब्दके उच्चारणमात्रसे वह पापरहित होकर परम अविनाशी गतिको प्राप्त हो जाता है।'

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि वासुदेवस्य कीर्तनात्।
तत्सर्वं विलयं याति तोयस्थं लवणं यथा॥

'जानकर अथवा बिना जाने भी वासुदेवका कीर्तन करनेसे समस्त पाप, जलमें पड़े हुए लवणके समान लीन हो जाते हैं।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥
(गीता ८।१३)

'जो पुरुष ॐ इस एक अक्षररूप ब्रह्मका उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थरूप मेरा चिन्तन करता हुआ शरीर त्यागकर जाता है वह परम गतिको प्राप्त होता है।'

अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः।
पुमान्विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्वृकैरिव॥
(विष्णुपु० ६।८।१९)

'जिसके नामका विवश होकर भी कीर्तन करनेसे पुरुष, सिंहसे डरे हुए गीदड़ोंके (छूटनेके) समान सम्पूर्ण पापोंसे तुरन्त मुक्त हो जाता है।'

यहाँतक भी लिखा है कि एक हरिके नामके जपसे ही सम्पूर्ण पापोंका नाश हो जाता है—

सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति॥

'जिसने एक बार भी 'हरि' इन दो अक्षरोंका उच्चारण किया है उसने मानों मोक्षकी ओर जानेके लिये कमर कस ली है।' इसप्रकार नामके जपकी महिमा शास्त्रोंमें स्थल-स्थलपर भरी पड़ी है! लेखका कलेवर बढ़ जानेके संकोचसे शास्त्रोंके वाक्योंका विस्तृत उल्लेख नहीं किया गया।

हरिके नामकी महिमाको अर्थवाद नहीं समझना चाहिये। जो कुछ महिमा शास्त्रोंमें लिखी है वह ध्रुव सत्य है। परन्तु श्रद्धा और प्रेमकी कमीके कारण नामका प्रभाव समझमें नहीं आता। इसीलिये फल भी पूरा नहीं मिलता।

ईश्वरकी प्राप्तिके विषयमें संख्याका नियम सब जगह ठीक-ठीक लागू नहीं पड़ता। प्रेम और श्रद्धा जिसमें जितनी अधिक होती है, उसको उतनी ही जल्दी भगवत्-प्राप्ति होती है।

यदि कहो कि फिर संख्याकी क्या आवश्यकता है? यह ठीक है, पर इसमें शास्त्रका विधान है एवं जप भी अधिक बन जाता है इसलिये भी संख्या सब प्रकारसे लाभप्रद है।

किन्तु भगवत्‌की प्राप्तिके लिये संख्याका ठेका नहीं करना चाहिये। ठेका करनेवाला सच्चा भक्त नहीं है। जो भगवान्‌की प्राप्तिसे भी बढ़कर भगवान्‌के प्रेमको एवं भजनको समझता है, वही भगवान्‌के नामके प्रभावको जाननेवाला सच्चा भक्त है। क्योंकि प्रेम और श्रद्धापूर्वक निष्कामभावसे किया हुआ भगवान्‌का भजन, भगवान्‌से भी बढ़कर है। तब फिर भगवान्‌से मिलनेके लिये भगवान्‌के जपकी संख्याका ठेका करना भारी भूल नहीं तो और क्या है?

राग, द्वेष, ममता और अभिमानको छोड़कर निन्दा, स्तुति, मान-अपमानको समान समझता हुआ जो पुरुष परवा छोड़कर भगवान्‌के भजन-ध्यानमें मस्त हुआ विचरता है, वही पुरुष मुक्त है।

प्रश्न—भगवत्-प्राप्तिको कोई-कोई तो बहुत ही कष्टसाध्य बतलाते हैं?

उत्तर—भगवत्-प्राप्ति कष्टसाध्य भी है और सुखसाध्य भी। जो कष्टसाध्य मानते हैं उनके लिये कष्टसाध्य है और जो सुखसाध्य मानते हैं उनके लिये सुखसाध्य भगवान्‌में जिनका श्रद्धा और प्रेम कम है उनके लिये भगवत्-प्राप्ति कष्टसाध्य है और जिनका भगवान्‌में प्रेम और विश्वास है उनके लिये भगवान्‌की प्राप्ति सुलभ है।

भगवत्-प्राप्तिमें श्रद्धा और प्रेम ही प्रधान है। वास्तवमें भक्तोंके लिये तो भगवान्‌की प्राप्ति सुलभ एवं सुखसाध्य ही है, क्योंकि भगवान्‌ने स्वयं गीतामें कहा है—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥
(८।१४)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'हे अर्जुन ! जो पुरुष मेरेमें अनन्य चित्तसे स्थित हुआ सदा ही निरन्तर मेरेको स्मरण करता है, उस निरन्तर मेरेमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ अर्थात् सहजमें ही प्राप्त हो जाता हूँ।' और भी कहा है—

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्॥
(गीता ९। २)

'यह रहस्यसहित भगवत्-तत्त्वका ज्ञान सब विद्याओंका राजा तथा सब गोपनीयोंका भी राजा एवं अति पवित्र, उत्तम, प्रत्यक्ष फलवाला और धर्मयुक्त है। साधन करनेमें बड़ा सुगम और अविनाशी है।'

भगवान्‌के इन वचनोंसे और युक्तियोंसे भी भगवान्‌की प्राप्ति कष्टसाध्य प्रतीत नहीं होती।

भगवान्‌ने अपनी प्राप्तिका सुलभ उपाय अपना निरन्तर चिन्तन करना ही बतलाया है।

भला बतलाओ तो सही, भगवान्‌के निरन्तर चिन्तन करनेमें भी क्या कोई कष्ट है? यदि इसमें भी कष्ट है तो फिर सुख किसमें है? भगवान्‌का चिन्तन करनेसे तो सर्व पापोंका एवं सम्पूर्ण अवगुणोंका नाश होकर उत्तरोत्तर परमानन्द एवं परम शान्तिकी वृद्धि होती जाती है। आरम्भसे लेकर अन्ततक साधन और सिद्धिमें आनन्द-ही-आनन्द है। इसलिये उस आनन्दस्वरूप साध्यदेवने इससे बढ़कर दूसरा कोई सुलभ उपाय नहीं बतलाया। फिर कष्टसाध्य कैसे? बल्कि सुलभ और सुखसाध्य ही कहना युक्ति-युक्त है। हाँ, जिनका देहमें अभिमान है ऐसे अभेद उपासना करनेवालोंके लिये कष्टसाध्य बतलाया है—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥

'किन्तु उन सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्ममें आसक्त हुए चित्तवाले पुरुषोंके (साधनमें) क्लेश अर्थात् परिश्रम विशेष है, क्योंकि देहाभिमानियोंसे अव्यक्तविषयक गति दुःखपूर्वक प्राप्त की जाती है।'

प्रश्न—भगवान्‌के भजन, ध्यानको आरम्भसे लेकर अन्ततक आनन्ददायक समझकर, साधक निरन्तर भजन, ध्यान करना चाहता है और अपनी शक्तिके अनुसार कोशिश भी करता है किन्तु वह होता नहीं, इसमें क्या कारण है?

उत्तर—श्रद्धा और प्रेमकी कमी होनेके कारण यथोचित चेष्टा नहीं की जाती। इसीलिये भजन-ध्यान निरन्तर नहीं बनता।

प्रश्न—भगवान्‌में अतिशय प्रेम और श्रद्धा होनेके लिये साधकको क्या करना चाहिये?

उत्तर—भगवान्‌के गुण और प्रभावका तत्त्व जाननेसे श्रद्धा होती है और श्रद्धासे प्रेम होता है। भगवान्‌के प्रेम, प्रभाव, गुण और रहस्यकी अमृतरूपी कथाओंका उनके प्रेमी भक्तोंद्वारा एवं शास्त्रोंद्वारा श्रवण, पठन और मनन करके उनके अनुसार चलनेसे भगवान्‌के गुण, प्रभावका रहस्य समझमें आ जाता है। इससे उनमें पूर्ण श्रद्धा और अनन्य प्रेम हो सकता है।

किसीमें भी क्यों न हो, जितना-जितना उसका प्रभाव समझमें आता है उतनी-उतनी श्रद्धा बढ़ती चली जाती है। जितनी श्रद्धा होती है, उतना ही प्रेम हो जाता है। श्रद्धा, प्रेमके अनुसार ही भजन-ध्यानका साधन तेज होता चला जाता है। अतएव भगवान्‌में पूर्ण श्रद्धा और अनन्य प्रेम होनेके लिये उन महापुरुषोंका सङ्ग करना चाहिये, जिनका भगवान्‌में अनन्य प्रेम और अतिशय श्रद्धा है। जो नित्य-निरन्तर निष्काम प्रेमभावसे भगवान्‌को भजते हैं। ऐसे महापुरुषोंके सङ्गसे ही भगवान्‌में पूर्ण श्रद्धा और अनन्य प्रेम होता है। ऐसे पुरुषोंका सङ्ग नहीं मिले तो श्रद्धालु उत्तम जिज्ञासु पुरुषोंका और सत्-शास्त्रोंका श्रद्धापूर्वक विचार करना चाहिये।

प्रिय पाठको! इस लेखका सारांश यह है कि संसारमें निष्कामभावसे किये हुए भजन-ध्यानके समान भगवत्प्राप्तिका और कोई भी सहज और सुगम उपाय नहीं है। वह होता है सत्पुरुषोंके सङ्ग और सत्-शास्त्रोंके विचार करनेसे। अतएव निष्काम प्रेमभावसे निरन्तर भजन, ध्यान होनेके लिये सत्पुरुषोंके सङ्ग एवं सत्शास्त्रोंका विचार तत्पर होकर करना चाहिये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कल्याण

भगवान्‌का नाम जपकर या भगवन्नामका संकीर्तन करके मनमें यह दृढ़ निश्चय करो कि मेरे पाप नष्ट हो गये हैं। अब मेरे मनमें पापके विचार नहीं उठ सकते। जैसे सूर्यके सामने अन्धकारके आनेकी सम्भावना नहीं है, इसी प्रकार भगवन्नामरूपी सूर्यके सामने पापरूपी अन्धकार नहीं आ सकता। इस कमजोरीको मनमें मत आने दो कि भगवान्‌के नामका जप करते-करते धीरे-धीरे पाप दूर हो जायँगे। यह भी कभी मत खयाल करो कि पाप करके नाम-जपसे उसे धो डालेंगे, यह तो बड़ा अपराध होगा। किसी बहाने भी पापको आश्रय मत दो। निश्चय करो कि पाप जल गये—सदाके लिये भस्म हो गये। बार-बार भगवन्नाम-स्मरण और कीर्तनरूपी प्रकाशको सदा बनाये रक्खो। पहलेका अँधेरा मिट गया और निरन्तर प्रकाश रहनेसे नया आ नहीं सकता।

× × ×

भगवान्‌के शरण होकर निर्भय बन जाओ। जो सर्वशक्तिमान् सर्वाधार विश्वपति देवाधिदेव भगवान्‌के शरण हो गया, उसको भय कहाँ? मनमें दृढ़ निश्चय करो कि मैं भगवान्‌के शरण हो गया, मैं उनका जन हो गया। अब मैं भगवान्‌की छत्रछायाके नीचे हूँ। उनकी शक्तिसे सर्वथा सुरक्षित हूँ। पाप-ताप मेरे समीप नहीं आ सकते। विषाद, शोक, व्याकुलता, उद्वेग, निराशा, क्षोभ, सन्देह, अश्रद्धा, ईर्षा, कायरता, द्वेष आदि दोष मुझमें रहे ही नहीं। मैं दैवीशक्तिको पाकर अपार शक्तिशाली बन गया हूँ। ईश्वरीय बल पाकर सब भयोंसे मुक्त हो गया हूँ।

× × ×

मनमें दृढ़ निश्चय करो कि भगवान् मेरे हृदयमें सदा विराजमान हैं, भगवान्‌का निवास-स्थान होनेके कारण उसमें जरा-सी भी अपवित्रता नहीं रही। काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, अभिमान, राग, द्वेष, मत्सर, वैर आदि दोष अब मेरे समीप नहीं आ सकते। जहाँ परम पवित्र भगवान् हैं वहाँ अपवित्र चीजोंका क्या काम?

× × ×

निश्चय करो, भगवान्‌के हृदयमें आनेसे मेरे दिव्य नेत्र खुल गये। अब मुझे सर्वत्र सब समय सब कुछ भगवान् ही दिखायी देते हैं। मेरा हृदय प्रेममय भगवान्‌को पाकर प्रेमसे भर गया। जगत्‌में कोई पराया नहीं, कोई घृणाके योग्य नहीं, कोई वैरी नहीं। सब मेरे अपने हैं, सब बन्धु हैं, सभी प्रियतम हैं! अब सबके साथ निःस्वार्थ प्रेम करना ही मेरा स्वभाव है। प्रेम ही मेरा जीवन है। प्रेम ही मेरा धर्म है।

× × ×

भगवान्‌के शरण होकर और भगवान्‌का परम पवित्र नाम लेकर—अपने अन्दर पवित्रता, निर्भयता, शक्ति, तेज, प्रकाश, प्रेम, निर्भरता, निष्कामता, सन्तोष और परम आनन्दका अनुभव करो। कभी खिन्न न होओ। कभी निराशा, उदासी, चाह, निर्बलता, द्वेष आदिको पास भी न फटकने दो।

× × ×

सदा दृढ़ भावना करो, दृढ़ निश्चय करो कि भगवान् निरन्तर मेरे साथ हैं, मेरे हृदयमें हैं, मैं सदा-सर्वदा भगवान्‌की अजेय अपरिमित शक्तिके द्वारा सुरक्षित हूँ। मुझे किसीका भय नहीं है। पाप-ताप मेरे समीप आ ही नहीं सकते। मैं पवित्र हूँ, निष्पाप हूँ, शक्तिशाली हूँ, तन-मनसे नीरोग हूँ, आनन्दमय हूँ।

× × ×

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निश्चय करो, मैं जब भगवान्‌के शरण हूँ, तब मुझे किस बातकी कमी है। अब कुछ भी चाह नहीं रही। मैं तृप्त हूँ, मैं सन्तुष्ट हूँ, मैं अकाम हूँ, मैं आप्तकाम हूँ, मैं पूर्णकाम हूँ; क्योंकि भगवान्‌ने मुझे अपना मान लिया है। अब भोग-मोक्ष किसी वस्तुकी वासना मेरे मनमें नहीं रही।

× × ×

निश्चय करो, भगवान्‌ने जब मुझे अपना लिया तब मुझे किस बातकी चिन्ता रही! वह मेरे लिये जो कुछ विधान करते हैं मेरे कल्याणके लिये ही करते हैं, क्योंकि वह मेरे ही अपने हैं। उनके समान मेरा हित करनेवाला परम सुहृद्, परम पिता, परम स्नेहमयी जननी, परम प्रियतम स्वामी, परम गुरु, परम आत्मा और कौन होगा?

× × ×

निश्चय करो, एक भगवान् वासुदेव ही विश्वरूप हो रहे हैं, विश्वका प्रत्येक पदार्थ उनका स्वरूप है। मैं उनसे अलग नहीं हूँ। मैं शरीर नहीं हूँ, उन्हींका अभिन्न अंश हूँ। मुझे आग जला नहीं सकती, हवा सुखा नहीं सकती, पानी भिगो नहीं सकता, शस्त्र काट नहीं सकते और मृत्यु मार नहीं सकती। मैं नित्य हूँ, सर्वगत हूँ, घन हूँ, अचल हूँ, अमर हूँ, सनातन हूँ।

ऐसा निश्चय होते ही तुम सबको वासुदेवमय देखकर पाप-तापसे सर्वथा छूटकर निर्भय हो जाओगे, अतुल शक्तिशाली बन जाओगे, तुम्हारा जीवन सफल और कृतकृत्य हो जायगा।

× × ×

याद रक्खो, वास्तवमें ही तुम शरीर नहीं हो, तुम डरनेवाली या मरनेवाली चीज नहीं हो, तुम नित्य हो, तुम चेतन हो, तुम आनन्दमय हो, तुम भगवान्‌के अभिन्न अंश हो, भूलसे दुःख पा रहे हो; बस, इस भूलको मिटा दो और नित्य परम सुखमय स्वरूपका अनुभव करो!

× × ×

(२)

जबतक भोगोंमें आसक्ति और पापकार्यमें प्रवृत्ति बनी हुई है तबतक मनमें भगवान्‌के प्रति असली अनुराग नहीं पैदा हुआ। भगवदनुराग तो दूर रहा, भगवान्‌पर विश्वास होनेपर ही भोगोंमें राग और पापमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती।

× × ×

भगवान्‌के हृदयमें आते ही हृदय निर्मल हो जाता है। जैसे सूर्यके सामने अन्धकार नहीं ठहरता, इसी प्रकार भगवान्‌के प्रकाशके सामने विषय और पापका अँधेरा नहीं ठहर सकता। भगवन्नाम और भगवत्-प्रेमके भरोसे विषय-सेवन और पाप करनेवाले मनुष्यके हृदयमें तो भगवान्‌का निवास नहीं हुआ।

× × ×

ऐश्वर्य, सौन्दर्य, माधुर्य, ज्ञान, वैराग्य, यश, शक्ति, श्री सभी भगवान्‌में अपार हैं, और वे भगवान् हमारे परम प्रिय सुहृद् हैं, अकारण प्रेमी हैं, आत्मा हैं, ऐसा विश्वास हो जानेपर, मनुष्यके मनसे विषय-भोगकी इच्छा सर्वथा नष्ट हो जाती है। जब भोगकी इच्छा ही नहीं, तब पाप कैसे हो?

× × ×

जो भगवान्‌का आश्रय ले लेता है, उसके लोक-परलोकके सभी कार्योंकी सिद्धि सहज ही हो जाती है; क्योंकि श्रीभगवान्‌में सर्वसिद्धियाँ सब समय मौजूद हैं। इहलौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकारकी उन्नति और सिद्धिके लिये मनुष्यको सर्वतोभावसे केवल विज्ञानानन्दघन सम्पूर्ण ऐश्वर्यमय परम सुहृद् भगवान्‌का ही आश्रय ग्रहण करना चाहिये।

× × ×

विश्वासपूर्वक भगवान्‌का आश्रय ग्रहण कर लेनेपर सन्तोष, शान्ति, परम आनन्द, तृप्ति, ज्ञान, वैराग्य,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सदाचार आदि गुण अपने-आप ही आ जाते हैं। भगवान्‌का आश्रयी मनुष्य ही विश्वबन्धु और समस्त विश्वका सच्चा सेवक बन सकता है।

× × ×

जिसके मनमें प्रभुपर विश्वास नहीं है, वह कदापि सुख-शान्तिको प्राप्त नहीं हो सकता। सदाचार, ज्ञान, वैराग्य आदि गुण उससे दूर रहते हैं। वह अपने स्वार्थ-साधनके लिये भाँति-भाँतिके अनुचित उपायोंका अवलम्बन कर स्वयं दुखी होता है और विश्वके प्राणियोंको दुखी करता है।

× × ×

पाप, ताप, अशान्ति, उद्वेग, डाह, द्वेष, विषाद, असूया, चञ्चलता, वैर, हिंसा आदि दोष भगवान्‌में अविश्वासी मनुष्यके हृदयमें घर कर लेते हैं, जिनसे वह जन्म-जन्मान्तरोंमें भी सदा दुःखपूर्ण जीवन बिताता है।

× × ×

भगवान् ही हमारे जीवन हैं, हमारे आत्मा हैं, इस बातपर विश्वास करो। भगवान्‌के प्रति ही अनुराग करो और एकमात्र भगवान्‌का ही आश्रय ग्रहण करो।

भगवान्‌के प्रति अनुराग और भोगोंमें अनासक्ति साथ-साथ ही होते हैं।

× × ×

भगवान्‌के प्रति अहैतुक अनन्य निष्काम प्रेमसे ही मानव-जीवनकी पूर्णता होती है, परन्तु प्रेम यथार्थ होना चाहिये। भक्ति ही पूर्णता प्राप्तकर प्रेमके रूपमें परिणत हो जाती है, परन्तु वही भक्ति प्रेमरूप बनती है जो ज्ञान-वैराग्यसे युक्त होती है। जिस भक्तिमें भगवान्‌के स्वरूप, उनके महत्त्व और प्रभावका ज्ञान नहीं रहता, वह भक्ति अधूरी होती है और जिस भक्तिमें भोगोंसे वैराग्य नहीं होता, उसमें भगवान्‌के साथ पूर्ण अनुराग होनेकी गुंजाइश नहीं रहती! वैराग्य और ज्ञान दोनों ही भक्तिके संरक्षक, वर्द्धक और सहायक हैं! इन दोनोंके अभावमें भक्ति-का प्रवाह शुद्ध अनन्य प्रेमकी ओर न जाकर दम्भ और मोहकी ओर बहने लगता है, जिससे भक्ति दूषित हो जाती है और आगे जाकर वह दम्भके रूपमें परिणत हो जाती है। अतएव ज्ञान, वैराग्यको सहायकरूपमें साथ लेकर ही भक्तिके पवित्र मार्गपर चलकर प्रेमरूपी परम लक्ष्यकी प्राप्ति करनी चाहिये।

'शिव'

चेतावनी

मंदिर माल विलास खजाना मेड़ियाँ,
राजभोग सुखसाज औ चंचल चेड़ियाँ।
रहता पास खवास हमेस हुजूरमें,
ऐसे लाख करोड़ गये मिल धूरमें॥
मदमाते मगरूरक मूँछ मरोड़ते
नवल त्रियाका मोह छनक नहिं छोड़ते।
तीखे करते तरक, गरक मदपानमें,
गये पलकमें ढलक तलब मैदानमें॥
गाफिल मूढ गँवार अचेतन चेत रे!
समझै संत सुजान, सिखावन देत रे!
बिषयामाँहि बिहाल लग्या दिन-रैन रे!
सिर बैरी जमराज, न सूझै नैन रे!

—बाज़िन्द

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पाँच प्रश्न

एक सज्जनके ये पाँच प्रश्न हैं—

१–प्रकृतिका क्या स्वरूप है और परमात्माके साथ उसका क्या सम्बन्ध है ?

२–संसार क्या है और कबसे है ?

३–जीव क्या है और जीवका यह बन्धन कबसे है ?

४–दो पुरुष और एक पुरुषोत्तम—इससे क्या त्रैतवाद सिद्ध होता है ?

५–क्या ज्ञानी, भक्त और योगी मुक्तपुरुष सृष्टि, पालन और संहार आदि कार्योंमें परमेश्वरके समान ही शक्तिसम्पन्न होते हैं ?

प्रश्न बड़े गहन हैं। इन प्रश्नोंका उत्तर वही पुरुष कुछ दे सकता है, जिसने अनुभवसे इन विषयोंकी यथार्थता-का ज्ञान प्राप्त किया हो। केवल अध्ययनके आधारपर कुछ भी कहनेमें भूल न होना बहुत ही कठिन है। फिर, मैं तो अध्ययनका भी दावा नहीं कर सकता। मैंने प्रश्नकर्त्ता महोदयसे दूसरे महानुभावोंसे पूछनेके लिये प्रार्थना की थी, परन्तु उन्होंने आग्रहपूर्वक मुझसे ही उत्तर माँगे हैं। इसलिये बाध्य होकर लिख रहा हूँ। सम्भव है, इस विषयमें दिलचस्पी रखनेवाले कल्याणके पाठकोंका भी कुछ मनोरञ्जन हो, इससे पाँचों प्रश्नोंका उत्तर एक ही साथ संक्षेपमें नीचे छापा जाता है। प्रश्नकर्त्ता महोदयने मेरी परीक्षाके लिये ही यदि प्रश्न किये हों तब तो मैं पहले ही अपनेको अनुत्तीर्ण मान लेता हूँ। हाँ, उन्होंने जिज्ञासुकी दृष्टिसे पूछा है तो सम्भव है उन्हें अपनी श्रद्धाके बलसे इस धूलके ढेरमें भी कुछ रत्न मिल जायँ।

परमात्माकी स्वकीय नित्यशक्तिका नाम प्रकृति या माया है। जिसप्रकार परमात्मा अनादि हैं, उसी प्रकार उनकी यह शक्ति—प्रकृति भी अनादि है। स्वयं भगवान् कहते हैं—

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।

जबतक शक्तिमान् पुरुष हैं तबतक उनकी शक्तिका कभी विनाश नहीं हो सकता। इसलिये परमात्मा जबतक हैं तबतक उनकी शक्ति भी है और परमात्मा अनादि, अनन्त, नित्य, अविनाशी हैं, उनका कभी जन्म और विनाश नहीं होता, इसलिये उनकी शक्तिका भी विनाश सम्भव नहीं। परन्तु जब वह क्रियाहीन रहती है, शक्तिमान्में लीन रहती है, तबतकके लिये वह अदृश्य या शान्त हो जाती है। इसलिये उसे अनादि और सान्त भी कहते हैं। परमात्मा इस प्रकृतिकी भाँति कभी अदृश्य नहीं होते। प्रकृतिका सारा खेल—कालतक प्रकृतिमें लय हो जाता है और सबकी जननी यह प्रकृति भी जिसमें लय हो जाती है, इन सबके लय होनेके बाद भी अविचल रूपसे नित्य अचल वर्त्तमान रहनेवाले परम तत्त्वका नाम ही परमात्मा है। प्रकृतिके उनमें प्रविष्ट हो जानेपर केवल वे परमात्मा ही रह जाते हैं इसीलिये वे नित्य, अविनाशी, अपरिणामी, परम सनातन अव्यक्त पुरुष कहलाते हैं। संसारकी कारणरूपा मूल अव्यक्त प्रकृति शक्तिरूपसे इन्हींमें समाहित रहती है, इन्हींके सङ्कल्पानुसार विकसित होकर व्यक्त होती है, पुनः सिमटकर इन्हींमें लीन हो जाती है। इसीसे ये सनातन अव्यक्त हैं।

प्रकृतिके भी दो स्वरूप हैं—एक अविकसित यानी अव्यक्त, दूसरा विकसित। जब प्रकृति अक्रिय है तब वह अव्यक्त है, उस समय प्रकृतिसे प्रसूत कार्य-करणका (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी—पाँच सूक्ष्म भूत और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—पाँच विषय ये दस कार्य हैं एवं बुद्धि, अहंकार, मन; श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, रसना और नासिका–पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ; हाथ, पैर, मुख, गुदा और उपस्थ–पाँच कर्मेन्द्रियाँ—ये तेरह करण हैं) विस्तार यह समस्त संसार मूल-प्रकृतिसहित परम सनातन अव्यक्त परमात्मामें समा जाता है। शक्ति शक्तिमान्के अन्दर निस्तब्ध होकर स्थित रहती है। उस समय जगत्के समस्त जीव अपने-अपने कर्मसंस्कारोंसहित मूल-प्रकृतिरूप महाकारणमें लीन रहते हैं। माता उन सबको आँचलमें छिपाकर ही पिताके अन्तःपुरमें प्रविष्ट हो जाती है। इसी अवस्थाको महाप्रलय कहते हैं।

परमात्माकी सत्ता-स्फूर्त्ति और संकल्पसे प्रकृतिदेवी जब घूँघट खोलकर अन्तःपुरसे बाहर निकलती है—क्रिया-शीला होती है, तब उसे विकसित कहते हैं। इसके व्यक्त होते ही संसार पुनः बन जाता है, सम्पूर्ण जीव अपने-अपने कर्मानुसार व्यक्तित्वको प्राप्त हो जाते हैं। यह विकसित

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रकृति भी अव्यक्त ही रहती है। सर्गके अन्तमें जीव अपने कर्म-समुदायसहित कारण-शरीरको साथ लिये इसी अव्यक्त प्रकृति या ब्रह्माके सूक्ष्म शरीरमें लीन रहते हैं और सर्गके आदिमें पुनः उसीमेंसे प्रकट हो जाते हैं। भगवान् कहते हैं—

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
राज्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके॥
(गीता ८। १८)

सम्पूर्ण व्यक्त जीव ब्रह्माके दिनके प्रवेशकालमें—सर्गके आदिमें अव्यक्तसे उत्पन्न होते हैं और ब्रह्माकी रात्रिके आगमनकालमें पुनः उस अव्यक्तमें ही लीन हो जाते हैं। फिर कहते हैं—

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति॥
(गीता ८। २०)

परन्तु उस अव्यक्तसे भी श्रेष्ठ दूसरा सनातन अव्यक्त तत्त्व है। वह सब भूतोंके नष्ट होनेपर भी नहीं नष्ट होता। बस, वही उपर्युक्त सच्चिदानन्द पूर्णब्रह्म परमात्मा हैं।

मूल अव्यक्त प्रकृतिका नाम ही अव्याकृत माया है, वही परमात्माकी नित्य, अनादिशक्ति है; न किसीके द्वारा इस शक्तिका निर्माण हुआ है और न यह किसीका विकार है। इसलिये यह मूल और अव्याकृत है। परमात्मा जब इस प्रकृतिरूप योनिमें संकल्पद्वारा चेतनरूप बीज स्थापन करते हैं, तभी गर्भाशयमें वीर्यस्थापनसे होनेवाले विकारकी भाँति प्रकृतिमें विकृति उत्पन्न हो जाती है। वह विकार क्रमशः सात होते हैं—महत्तत्त्व (समष्टिबुद्धि), अहंकार और सूक्ष्म पञ्चतन्मात्राएँ। मूल-प्रकृतिके विकार होनेसे इन्हें विकृति कहते हैं, परन्तु इनसे अन्य सोलह विकारोंकी उत्पत्ति होनेके कारण इन सातोंके समुदायको प्रकृति भी कहते हैं। अहंकारसे मन और दस (ज्ञान-कर्मरूप) इन्द्रियाँ और पञ्चतन्मात्रासे पञ्चमहाभूतोंकी उत्पत्ति होती है। इसलिये इन दोनोंके समुदायका नाम 'प्रकृति-विकृति' है। मूल-प्रकृतिके सात विकार, सप्तधा विकाररूपा प्रकृतिसे उत्पन्न सोलह विकार और स्वयं मूल-प्रकृति—ये-कुल मिलाकर चौबीस तत्त्व माने गये हैं। इन्हीं चौबीस तत्त्वोंका यह स्थूल संसार है। जीवका स्थूल देह भी इन्हीं चौबीस तत्त्वोंसे निर्मित होता है। ये चौबीस तत्त्व प्रकृति और उसके कार्य हैं।

परन्तु यह प्रकृतिका कार्य केवल प्रकृतिसे ही नहीं सम्पन्न होता, परमात्माकी चेतन सत्तासे ही प्रकृति क्रियाशीला होती है। शक्तिमान्‌से अलग शक्तिकी कोई सत्ता ही नहीं रह जाती। शक्तिमान् परमेश्वरकी अध्यक्षतामें ही शक्ति कार्य करती है। इसीसे भगवान्‌ने कहा है—

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते॥
(गीता ९। १०)

'हे अर्जुन! मुझ परमेश्वरकी अध्यक्षतामें ही मेरी यह प्रकृति (माया) चराचरसहित जगत्‌को रचती है और इसी हेतुसे यह संसार चक्रवत् घूमता है।'

इससे यह निष्पन्न होता है कि परमात्माकी सत्ता-प्राप्त प्रकृतिका ही परिणाम यह सारा चराचर जगत् है। परमात्माकी चेतनासे ही प्रकृतिका परिणाम यह जगत् चेतन है। इस दृष्टिसे यह भी कहा जा सकता है कि शक्ति शक्तिमान्‌से अलग न होनेके कारण शक्ति-का परिणाम शक्तिमान् परमात्माका ही परिणाम है, परन्तु यह याद रखना चाहिये कि परमात्मा स्वयं वस्तुतः अपरिणामी हैं। यह बात ऊपर आ चुकी है। परमात्मा स्वभावसे ही सत्ता देकर शक्तिको क्रियाशीला बनाते हैं परन्तु उसके कार्यसे वे स्वयं परिणामी नहीं हो सकते। शुद्ध सच्चिदानन्द-घन नित्य अविनाशी एकरस परमात्मामें कभी कोई परिवर्तन नहीं होता। परिवर्तन शक्तिमें ही होता है। क्योंकि शक्तिका विकसित रूप नित्य क्रीडामय होनेके कारण सदा एक-सा नहीं रहता। शक्तिकी इस अनेकरूपताके कारण ही संसार परिवर्तनशील है।

साथ ही यह भी स्मरण रहे कि शक्ति शक्तिमान्‌से पृथक् न होनेके कारण संसाररूपसे व्यक्त होनेवाला उस शक्तिका यह खेल वस्तुतः परमात्माका अपना ऐश्वर्य ही है। भगवान्‌के ऐश्वर्यके सिवा जगत्‌में किसी भी भिन्न वस्तुकी सत्ता नहीं है। यह सब प्रभुकी लीलाका ही विस्तार है। एक प्रभु ही अपनी शक्तिसे आप ही क्रीडा कर रहे हैं। इससे जगत्‌को मायिक बतलानेवाला मायावाद भी सत्य ही है।

परमात्माके दो स्वरूप हैं—निर्गुण और सगुण। असल-में एकके ही दो नाम हैं। जब शक्ति बाहर रहती है तब परमात्मा सगुण हैं और जब वह अन्तःपुरमें प्रविष्ट रहती है

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तब परमात्मा निर्गुण हैं। इसीलिये परमात्मामें परस्पर-विरोधी गुणोंका सामञ्जस्य माना गया है। वे सदा सगुण होते हुए ही नित्य-निर्गुण हैं और नित्य-निर्गुण होते हुए ही सदा सगुण हैं। गुणमयी प्रकृतिमें परमात्माकी इच्छा बिना कोई क्रिया नहीं हो सकती। प्रकृतिका अस्तित्वतक परमात्माकी इच्छासे व्यक्त होता है। नहीं तो वह सदा उनमें विलीन ही रहती है और जिस समय वह जाग्रत् होती है उस समय भी उनके सर्वथा अधीन ही रहती है। इसलिये परमात्मा शक्तियुक्त—सविशेष होते हुए भी निर्गुण-निर्विशेष हैं, क्योंकि गुणोंका उनपर कोई प्रभाव नहीं है।

इसी प्रकार परमात्मापर गुणोंका कोई प्रभाव न रहनेपर भी इन्हींके प्रभावसे शक्ति जाग्रत होकर विविध खेल रचती है और संसारका नियमित सञ्चालन करती है। इससे ये निर्गुण-निर्विशेष होते हुए भी सदा सगुण-सविशेष हैं। इस-प्रकार युगपत् उभय भावयुक्त सर्वगुणसम्पन्न गुणातीत विज्ञानानन्दघन लीलामय नटनागरका नाम ही परमात्मा है। असलमें परमात्माका रहस्य परमात्मा ही जानते हैं। वे मायावाद, परिणामवाद, सगुण, निर्गुण आदि किसी भी वाद या भावकी सीमामें आबद्ध नहीं हैं। वे सब कुछ हैं सबमें हैं और सबसे परे हैं। वे ही वे हैं। वस्तुतः परमात्मा सर्वथा अनिर्वचनीय तत्त्व हैं। वाणीके द्वारा उनका जो कुछ वर्णन होता है सो तो केवल लक्ष्य करानेके लिये होता है और वाणीमें आनेवाला स्वरूप असली स्वरूपसे बहुत ही स्थूल है, परन्तु किसी भी बहाने उनकी चर्चा होनेके लोभसे ही ये पंक्तियाँ लिखी जाती हैं। अस्तु !

परमात्माकी शक्तिको विद्या और अविद्या भी कहते हैं। जब उससे परमात्मा अपना कार्य करते हैं तब उसका नाम विद्या है। विद्या परमात्माकी सेविका है, जीव और परमात्माका सम्बन्ध जोड़ देनेवाली निर्मल सूत्रिका है। इस विद्याके द्वारा ही बिछुड़ोंका नित्यमिलन और जीवरूप पत्नीके साथ परमात्मारूप पतिका गँठजोड़ा होता है। जिससे आगे चलकर दोनों घुलमिलकर सम्पूर्णरूपसे एक हो जाते हैं। जीवको मोहित करके उसे परमात्मासे अलग रखनेवालीका नाम अविद्या है। इस अविद्याके मोहसे छूटनेके लिये इसीके दूसरे निर्मल स्वरूप विद्याकी शरण लेनी पड़ती है।

अब यह प्रश्न रहा कि जीव क्या वस्तु है ? जीव असलमें परब्रह्म परमात्मासे कोई भिन्न वस्तु नहीं है। उन्हीं-का आत्मरूप सनातन शुद्ध अंश है। समुद्रके तरंगोंकी भाँति उनसे सर्वथा अभिन्न है, परन्तु अनादिकालसे प्रकृति और उसके कार्योंके साथ संयोग होनेके कारण जीव-दशाको प्राप्त हो रहा है। यह सम्बन्ध प्रकृतिकी अनादिताकी भाँति ही अनादि है। अनादि न होता, कभी इसका आरम्भ होता तो जीवोंके कोई भी कर्म न रहनेपर उन्हें भिन्न-भिन्न योनियों और स्थितियोंमें परमेश्वर क्यों रचते ? भेदपूर्ण संसारमें अकारण ही जीवोंको रचकर पटकनेसे परमात्मामें विषमता और निर्दयताका दोष आता, जो कदापि सम्भव नहीं है। प्रकृतिके जीवका सम्बन्ध अनादि है। जीव जबतक मुक्त नहीं होता तबतक वह कभी चौबीस तत्त्वोंके स्थूल शरीरमें; कभी पञ्च प्राण, दस इन्द्रियाँ और मन-बुद्धि—इन सतरह तत्त्वोंके सूक्ष्म देहमें और कभी मूल-प्रकृतिके अंशरूप कारणदेहके साथ संयुक्त रहता है। प्रकृतिमें स्थित होनेके कारण ही इसकी जीव संज्ञा है और इस प्रकृतिके संगसे ही यह अच्छी-बुरी योनियोंमें जाता-आता और दुःख-सुख भोगता है। (गीता १३। २१)

यह सत्य है कि शुद्ध आत्मामें आने-जाने और जन्म-मृत्युकी कल्पना केवल आरोपित है, परन्तु जबतक जीव संज्ञा है तबतक वह वस्तुतः शुद्ध आत्मारूपमें नित्य, अविनाशी, अविकारी होते हुए ही भले-बुरे कर्मोंका कर्ता, उनके फलरूप सुख दुःखोंका भोक्ता और जनन-मरणशील है। परमात्मा, उनकी शक्ति प्रकृति, जीव और प्रकृतिके परिणाम जगत्का परस्पर सम्बन्ध अनादि है। परन्तु इतनी बात याद रखनेकी है कि नित्य एकरस सच्चिदानन्दघन अव्यय परमात्मा अनादि होनेके साथ ही अनन्त भी हैं और जीव भी उनका चेतन सनातन अंश होनेसे अनन्त है। परन्तु प्रकृति—शक्ति विकसित और अविकसित दो रूपोंमें रहनेवाली होनेके कारण अविकसित अवस्थामें सान्त (अन्तवाली) कही जाती है। प्रकृतिका परिणाम जगत् भी प्रवाहरूपसे अनादि और नित्य होनेपर भी विविध रंगमय है और प्रकृतिके पाशसे छूटे हुए मुक्त पुरुषके लिये तो नष्ट हो जाता है। और भिन्न स्वतन्त्र चेतन सत्ता न होनेसे परमात्माके लिये तो सर्वथा असत् ही है।

गीतामें दो पुरुषोंका वर्णन है—एक क्षर, दूसरा अक्षर। क्षर—प्रकृतिका कार्यरूप जगत् और अक्षर—नित्य चेतन आनन्दरूप परमात्माका सनातन अंश होनेपर भी अविद्यारूपी प्रकृतिमें स्थित होनेके कारण असंख्य और विभिन्न रूपोंसे भासनेवाला जीव। इन दोनों पुरुषके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परे उत्तम पुरुष परमात्मा पुरुषोत्तम नामसे वर्णित हैं। इस पुरुषत्रयके वर्णनसे कुछ लोग इसे त्रैतवाद भी कहते हैं। परन्तु असलमें जीवका परमात्माके साथ अंशांशी सम्बन्ध होनेके कारण वह उनसे अभिन्न है और क्षर जगत् परमात्माकी स्वकीया शक्ति मायाका विलास है, इसलिये वह भी उनसे अभिन्न ही है। अतएव यह नामका त्रैत वास्तवमें अद्वैत ही है।

इसी प्रकार जीव-ब्रह्मकी मूलतः एकता माननेपर भी शक्तिको उनसे अलग समझ लेनेके कारण ब्रह्म-जीवकी व्यवहारमें भिन्नता माननेवालोंका द्वैतवाद भी इस दृष्टिसे उचित होनेपर भी वस्तुतः अद्वैत है। अवश्य ही, जहाँ खेल है, वहाँ द्वैत है और यह द्वैत सदा अभिनन्दनीय है, परन्तु खेल है अपने आपमें ही, इसलिये अद्वैत ही है। सबमें समाये हुए ये एक पुरुषोत्तम भगवान् ही नित्य विज्ञानानन्दघन नित्यमुक्त अविनाशी गुणातीत ब्रह्म हैं। वे ही सबके आदि महाकारण और शक्तिमान् मायाधीश हैं और वे ही प्रकृतिके लीलाविस्तारके समय भर्ता, भोक्ता और महेश्वर हैं। हम सबको सर्वतोभावसे उन्हींकी शरण जाना चाहिये !

मेरी समझसे ज्ञानी भक्त या योगी कोई भी मुक्त पुरुष परमेश्वरकी तुलनामें नहीं आ सकता। जीवन्मुक्त महात्मा परमार्थ-दृष्टिसे तत्त्वज्ञानमें ब्रह्मके समान हो सकते हैं, जगत्-प्रपञ्चको लाँघकर आनन्दमय बन सकते हैं, मायाके बन्धनसे सर्वथा मुक्त हो सकते हैं परन्तु मायाधीश कभी नहीं हो सकते। जगत्का सृजन, पालन और संहार करनेकी शक्ति केवल एक नित्यसिद्ध परमेश्वरमें ही है। इसीसे यहाँतक कहा जा सकता है कि जीव ब्रह्म हो सकता है, परन्तु परमेश्वर या भगवान् नहीं हो सकता।

ब्रह्मसूत्रके—

जगद्व्यापारवर्जम् (४।४।१७)

—सूत्रके भाष्यमें पूज्यपाद स्वामी श्रीशङ्कराचार्य कहते हैं—

जगदुत्पत्त्यादिव्यापारं वर्जयित्वा अन्यदणिमाद्यात्मकं ऐश्वर्यं मुक्तानां भवितुमर्हति, जगद्व्यापारस्तु नित्यसिद्धस्यैव ईश्वरस्य।

जगत्की उत्पत्ति, स्थिति, विनाशके सिवा अन्य अणिमादि सिद्धियाँ महापुरुषोंमें होती हैं, परन्तु जगद्व्यापारकी सिद्धि तो एकमात्र नित्यसिद्ध ईश्वरमें ही है।

अणिमादि सिद्धियाँ भी सभी सिद्ध, ज्ञानी और भक्तोंको प्राप्त नहीं होतीं। योगमार्गसे सिद्धिप्राप्त पुरुषोंको अणिमादि ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं, परन्तु ये ऐश्वर्य सभी सीमित हैं। मायाके राज्यमें ही हैं। परमेश्वर मायाके स्वामी हैं। उनका मायापर आधिपत्य है, माया उनकी शक्ति है। वे अणिमादि योगके अष्ट ऐश्वर्योंसे परे उनसे अधिक शक्तिसम्पन्न चमत्कारी ऐश्वर्योंकी सृष्टि कर सकते हैं। वस्तुतः अणिमादि ऐश्वर्य भी ईश्वरकी ऐश्वर्यराशिका एक तुच्छ कण मात्र है। योगी ईश्वरके सृजन किये हुए परमाणुओंको सूक्ष्मसे स्थूल और स्थूलसे सूक्ष्म कर सकते हैं, उनका इच्छानुसार व्यवहार कर सकते हैं। परन्तु नवीन सूक्ष्म तत्त्वोंकी उत्पत्ति नहीं कर सकते। वे सत्यसङ्कल्प हो सकते हैं। वे अग्नि, जल, अस्त्र, विष आदिका इच्छानुसार प्रयोग कर सकते हैं, परन्तु ये सभी चीजें मायाके खेलके अन्तर्गत ही होती हैं। यों तो संसारमें प्रत्येक जीव ही अपने-अपने क्षेत्रमें सृष्टि, पालन, विनाश करता है। किसी चीजको बनाना, उसकी रक्षा करना और उसे नष्ट कर देना एक प्रकारसे सृष्टि, स्थिति, संहार ही है, साधारण जीवोंमें यह सामर्थ्य बहुत थोड़ी होती है, योगियोंमें साधन-बलसे इस सामर्थ्यका बहुत अधिक विकास होता है। यहाँतक कह सकते हैं कि इस विषयमें परमेश्वरके नीचे दूसरी श्रेणीमें पहुँचे हुए योगियोंको माना जा सकता है परन्तु परमेश्वरकी तुलनामें तो उनकी शक्ति अत्यन्त ही क्षुद्र रहती है।

ज्ञानी तो इन विषयोंकी परवा ही नहीं करता, क्योंकि उसकी दृष्टिमें ब्रह्मके सिवा और कुछ रहता ही नहीं। फिर इसप्रकारकी शक्ति प्राप्त करनेकी चेष्टा ही कौन करे ? भक्त अपनेको भगवान्के चरणोंमें समर्पणकर केवल उन्हींका हो रहता है। भगवान्की मङ्गलमयी इच्छा ही उसके लिये कल्याणरूप है। अतः वह भी इस शक्तिको पानेका इच्छुक नहीं होता। जिनकी इच्छा ही नहीं, उन्हें वह वस्तु प्राप्त क्यों होने लगी ? कदाचित् मान लिया जाय कि सिद्धिप्राप्त योगी, तत्त्वज्ञानी या प्रेमी भक्तको यह शक्ति प्राप्त होती है, तो वह प्राप्त हुई भी अप्राप्तके समान ही है। उससे कोई कार्य नहीं हो सकता। जगत्में आजतक किसी भी युगमें ऐसा कोई भी उदाहरण नहीं मिलता कि जिसमें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

किसी महापुरुषने अपनी शक्तिसे ईश्वरके सृष्टिक्रमकी भाँति कुछ कार्य किया हो या कार्यतः किसीने ईश्वरत्वका परिचय दिया हो। किसीमें शक्ति हो भी तो वह भी ईश्वरकी शक्तिके अधीन ही रहती है। ईश्वरके विधानके प्रतिकूल कोई कुछ भी नहीं कर सकता। केनोपनिषद्की कथाके अनुसार वायु, अग्नि भी एक सूखे तिनकेको उड़ा या जला नहीं सकते। व्यावहारिक मायानिर्मित जगत्की प्रत्येक क्रिया सदा मायापति ईश्वरके नियन्त्रणमें रहती है। अनादि-कालसे जगत्का सारा व्यापार एक ही शक्तिके नियन्त्रणमें एक ही नियमके अनुसार सुशृंखलरूपसे चला आ रहा है। सृष्टि, स्थिति, संहारका कोई भी विधान कभी नियमसे नहीं टलता। विश्वनाथ परमेश्वरकी इच्छामें हस्तक्षेप करनेकी किसीमें शक्ति नहीं है। ईश्वरेच्छाके अधीन रहकर ही महापुरुष अपनी योगलब्ध सिद्धियोंका उपयोग या सम्भोग करते हैं। वे दिव्यदृष्टिसे ईश्वरको पहचानकर उसीके अनुसार कार्य करते हैं। इसीसे उन्हें कभी विफलताजनित क्लेशका अनुभव नहीं होता।

महापुरुषगण योग, ज्ञान, प्रेम और आनन्दमें ईश्वरके समान होकर भी ईश्वरके आज्ञाकारी ही रहते हैं। ईश्वरेच्छा-के विपरीत उनकी शक्तिका प्रयोग सर्वथा असम्भव होता है। कारण, वे इस बातको जानते हैं कि उनके अन्दर ईश्वर ही कार्य कर रहे हैं। योगसिद्धिसे प्राप्त ज्ञान, प्रेम, शक्ति, ऐश्वर्य, आनन्द आदि सभी चीजें परमेश्वरकी ही हैं। उनकी इच्छा ईश्वरकी इच्छा होती है, उनके जीवनकी सम्पूर्ण क्रियाएँ ईश्वरकी क्रियाएँ होती हैं, वे ईश्वरके गुण, शक्ति आदिको पाकर ईश्वरकी ही एक प्रतिमूर्ति बने हुए जगत्में लोक-कल्याणार्थ विचरण करते हैं। उनका ऐश्वर्य परमात्म-प्रेमरूप माधुर्यमें परिणत हो जाता है। इसलिये थोड़ी देरके लिये उनमें यदि वस्तुतः ईश्वरके समान शक्तिका होना मान भी लिया जाय तब भी वह न होनेके बराबर ही होती है। क्योंकि उनकी शक्ति ईश्वरकी शक्तिके द्वारा ही प्रेरित, परिपूरित, परिचालित होती है, वह अलग कोई कार्य कर ही नहीं सकती।

हनुमानप्रसाद पोद्दार

हरि आये

ठुमुक-ठुमुक पग, झुमुक-कुंज-मग
चपल चरण हरि आये,
हो हो, चपल चरण हरि आये।
मेरे प्राण-भुलावन आये,
मेरे नयन-लुभावन आये!

निमिक-झिमिक-झिम,
निमिक-झिमिक-झिम,
नर्तन पद-व्रज आये,
हो हो, नर्तन पद-व्रज आये।
मेरे प्राण-भुलावन आये,
मेरे नयन-लुभावन आये!

अरुण करुण-सम
छिन्न-भिन्न तम
करन बाल-रवि आये,
हो हो, करन बाल-रवि आये।
मेरे प्राण-भुलावन आये,
मेरे नयन-लुभावन आये!

अमल कमल कर
मुरलि मधुर धर
वंशी बजावन आये,
हो हो, वंशी बजावन आये।
मेरे प्राण-भुलावन आये,
मेरे नयन-लुभावन आये!

पुंज पुंज हर,
कुंज गुंजभर,
भृंग-रंग हरि आये,
हो हो, भृंग-रंग हरि आये।
मेरे प्राण-भुलावन आये,
मेरे नयन-लुभावन आये!

झुन झुन दुल-दुल,
मंजुल बुल-बुल
फुल्ल मुकुल हरि आये,
हो हो, फुल्ल मुकुल हरि आये।
मेरे प्राण-भुलावन आये,
मेरे नयन-लुभावन आये!!

—काज़ी अशरफ़ महमूद

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परमहंस-विवेकमाला

(लेखक—स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी)

(गताङ्कसे आगे)

[मणि १०]

बालाकि—हे भगवन्! मैं आपका शिष्य हूँ, मुझको ब्रह्मविद्याका उपदेश कीजिये।

हे डोरूशङ्कर! इस बालाकिके वचनका यही अभिप्राय है कि इस लोकमें जो कोई ब्रह्मविद्याका ज्ञाता हो, वह पुरुष ही गुरु-पदवीके योग्य है। यह ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो, वैश्य हो, शूद्र हो, स्त्री हो, नपुंसक हो, चाहे राक्षस हो, ब्रह्मविद्या-वाला पुरुष ही सर्वथा गुरु-पदवीके योग्य है। जो ब्रह्मविद्यावाला नहीं है, वह चाहे ब्राह्मण हो, चाहे अन्य विद्यामें बृहस्पतिके समान हो तो भी वह पुरुष शिष्य-पदवीके योग्य है, गुरु-पदवीके योग्य नहीं; केवल ब्रह्मवेत्ता ही गुरु-पदवीके योग्य है। जब बालाकिने अपना इसप्रकारका अभिप्राय जताया तो बालाकिको अभिमानसे रहित देखकर राजा अपने आसनपरसे उठा, दोनों हाथ जोड़कर और बालाकिको प्रणाम करके इसप्रकार कहने लगा—

अजातशत्रु—हे बालाकि! इस लोकमें ब्रह्माने ब्राह्मणत्व-जातिवाले सब ब्राह्मणोंको ही गुरुरूपसे उत्पन्न किया है। क्षत्रियादि अन्य वर्णोंको स्वभावसे ब्रह्माने शिष्यरूपसे उत्पन्न किया है, इसलिये हे बालाकि! तू ब्राह्मण होकर मुझ क्षत्रियके शिष्य होनेकी क्यों इच्छा करता है? ऐसा विपरीत कर्म करना तुझे उचित नहीं है। हे बालाकि! तीन कारणोंसे विपरीत कर्म-में प्रवृत्ति होती है—एक क्रोधसे, दूसरे भयसे और तीसरे अज्ञानसे। यदि क्रोधके कारण इस विपरीत कर्ममें तेरी प्रवृत्ति हुई हो तो मुझपर क्षमा कर और क्रोधकी निवृत्ति कर! अर्थात् हे बालाकि! राजधर्मको अङ्गीकार करके अल्पबुद्धि मैंने जो-जो कटु वचन तुझसे कहे हैं, मेरे उस अपराधको तू क्षमा कर! क्षमा करना ब्राह्मणोंका स्वभाव है। हे बालाकि! मैंने तुझसे जो कटु वचन कहे हैं, वे अपराध बिना नहीं कहे; मैंने अनेकोंके मुखसे सुना था कि बालाकिने धन और विद्याके मदसे अनेक साधु-ब्राह्मणोंका निरादर किया है। हे बालाकि! जैसा मैंने पूर्वमें सुना था वैसा ही मैंने तुझे देखा, इसलिये तेरे मदकी निवृत्तिके लिये मैंने तुझसे कटु वचन कहे हैं। मैंने तुझसे जो कटु वचन कहे हैं वे अपने प्रमादसे नहीं कहे; किन्तु धर्मशास्त्रके अनुसार कहे हैं, क्योंकि धर्मशास्त्रमें कहा है कि दुराचारी ब्राह्मणके दुराचारका भली प्रकार निर्णय करके राजा-को उस ब्राह्मणका वाणीसे भली प्रकार निरादर करना चाहिये, इसप्रकार मैंने धर्मशास्त्रमें सुना है; इसके अनुसार ही मैंने तुझसे कटु वचन कहे हैं। हे बालाकि! तुझ-सरीखे ब्राह्मणोंने ही मुझे राजधर्मका उपदेश किया है। इस राजधर्मके आचरणमें यदि कोई भी मेरा प्रमाद देखा हो तो तू मुझ बालकपर क्षमा कर! तेरा क्षोभ देखकर मुझे बहुत शोक होता है। मुझे, मेरे राज्यको और राज्यसम्बन्धी धर्मको धिक्कार है! इस राज्यसम्बन्धी धर्मको अङ्गीकार करके मैंने तुझ ब्राह्मणका निरादर किया है। मेरे भयसे यदि तू विपरीत कर्ममें प्रवृत्त होता हो तो तू ऐसा मत कर, क्योंकि नीच जातिवाले अपराधी प्राणीको भी मैं नहीं मारता, तो तुझ-सरीखे उत्तम ब्राह्मणको मैं किसप्रकार मार सकता हूँ? नहीं मार सकता। यदि कोई चोरीरूप प्रथम अपराध करता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है तो मैं चोरको धनादि पदार्थ देकर चोरीसे निवृत्त करता हूँ। धन लेनेके पीछे भी यदि वह फिर चोरी करता है तो मैं उस अपराधी पुरुषको अपने स्थलमें-से निकाल देता हूँ। पश्चात् वह पुरुष यदि फिर चोरीरूप अपराध करता है तो तीसरे अपराधपर श्वानके पगके समान आकारवाली लोहमुद्राको अग्निमें तपाकर उस चोरके मस्तकमें निशान करवा देता हूँ। यदि वही पुरुष चौथी बार चोरीका अपराध करता है तो उस पुरुषका एक हाथ कटवा देता हूँ। यदि पाँचवी बार फिर वही अपराध करता है तो चोरका दूसरा हाथ कटवा डालता हूँ। यदि वह पुरुष छठी बार चोरी आदि अपराध करता है तो उसका एक पैर कटवा देता हूँ। यदि सातवीं बार फिर चोरी करता है तो उसका दूसरा पैर कटवा डालता हूँ। इसप्रकार सात बार अपराध करनेवाले पुरुषको भी मैं प्राणसे रहित नहीं करता। यदि वह आठवीं बार अपराध करता है तब मैं उसको फाँसी देता हूँ। हे बालाकि! युद्धमें भी शत्रुको धर्म-युद्धसे ही मारता हूँ, अधर्मसे किसी शत्रुको नहीं मारता। क्योंकि जो शूरवीर मेरे सामने युद्ध करनेको आता है, यदि वह सोलह वर्षसे लेकर पचास वर्षतकका हो, सावधान हो और प्रथम मुझपर शस्त्र चलावे, उस शूरवीरको ही मैं पीछे मारता हूँ; वृद्धावस्थावालेको, बाल्यावस्थावालेको और असावधान पुरुषको मैं युद्धमें कभी नहीं मारता। शत्रु और अपराधी पुरुषोंको भी जब मैं नहीं मारता तो फिर सर्वपूज्य ब्राह्मणोंको तो कैसे मार सकता हूँ? ब्राह्मणको मैं कभी नहीं मारता, इसप्रकारके मेरे स्वभावको जानकर तू भयसे रहित हो जा! यानी ब्राह्मण होकर क्षत्रियका शिष्य होना, यह विपरीत कर्म दोनों लोकोंमें निन्दनीय है, इस निन्दनीय कर्ममें मेरे भयसे मत प्रवृत्त हो! यदि तू अपने अज्ञानकी निवृत्तिके लिये इस विपरीत कर्ममें प्रवृत्त होता हो तो अपने पूर्व-गुरुके पास जा। उनके उपदेशसे तेरे अज्ञानकी निवृत्ति हो जायगी! मैं तुझे नमस्कार करता हूँ; जहाँसे तू आया है, वहीं लौट जा!

देवी—हे प्रियदर्शन! जब राजा अजातशत्रुने इसप्रकार बालाकिसे कहा तो वह बालाकि ब्राह्मण सभामेंसे गया नहीं; किन्तु अपनी लज्जा और चिन्ता दरसानेको नीचा सिर करके पैरके अग्रभागसे पृथिवी-को खुरचने लगा और ऊँची श्वासें लेने लगा। बालाकिकी इस चेष्टाको देखकर अजातशत्रु उसके हृदयका अभिप्राय जान गया कि ब्राह्मण होकर क्षत्रियका शिष्य होना, इस विपरीत कर्मकी इच्छासे उसको लज्जा आती है, इसलिये सिर नीचा कर लिया है। और राजाको छोड़कर मैं किसी दूसरेके पास जा-कर ब्रह्मविद्या पा नहीं सकता, इस बातकी उसको चिन्ता है; इसलिये भूमि कुरेद रहा है, क्योंकि लज्जा बिना नीचा सिर करना और भूमि खोदना नहीं होता, किन्तु लज्जासे ही होता है। इसी प्रकार ऊपर-को श्वास लेना भी चिन्ता बिना नहीं होता, किन्तु चिन्तासे ही होता है। भाव यह है कि जो वस्तु जिस वस्तुके बिना न हो और जिस वस्तुके होनेसे जो वस्तु होती हो, उस वस्तुसे उस वस्तुका अनुमान होता है। जैसे कि अग्नि बिना धूम नहीं होता, किन्तु अग्नि विद्यमान होनेपर ही धूम होता है, इसलिये धूमरूप हेतुसे पर्वतादिकोंमें अग्निका अनुमान होता है। इसी प्रकार लज्जा बिना नीचा मुख और पगसे भूमिका खोदना नहीं होता, किन्तु लज्जासे ही होता है। इसलिये नीचा सिर और भूमिके खोदनेरूप हेतुसे 'बालाकिको लज्जा हुई' ऐसा राजाने अनुमान किया। इसी प्रकार चिन्ता बिना ऊँचा श्वास लेना नहीं होता, किन्तु चिन्तासे ही होता है, इसलिये ऊर्ध्वश्वासरूप हेतुसे बालाकिको चिन्ता है—इसप्रकार राजाको अनुमान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हुआ। एक पुरुषके अन्तःकरणके धर्मरूप लज्जा और चिन्ताका प्रत्यक्ष ज्ञान दूसरेको नहीं होता, किन्तु अनुमिति-ज्ञान होता है। इसप्रकार बालाकिके अभिप्राय-को जानकर अजातशत्रु राजा कहने लगा—

अजातशत्रु—हे बालाकि! उत्तम धर्मवाला धर्मात्मा ब्राह्मण क्षत्रियके पास ब्रह्मविद्या ग्रहण करनेके लिये जाय, इसप्रकारके विपरीत कर्मको मैं अत्यन्त अनुचित मानता हूँ। क्योंकि स्वयं यज्ञ करना, यजमानको यज्ञ कराना, स्वयं विद्या अध्ययन करना, शिष्योंको विद्या अध्ययन कराना, स्वयं दान करना और यजमानसे दान लेना—ये छः कर्म ब्राह्मणके शास्त्रमें कहे हैं। और यज्ञ करना, दान करना और विद्या अध्ययन करना—ये तीन धर्म क्षत्रियके शास्त्रमें कहे हैं; किन्तु यज्ञ कराना, विद्या पढ़ाना और दान लेना—ये तीन कर्म किसी शास्त्रमें क्षत्रियके लिये नहीं कहे हैं। इसलिये हे बालाकि! आचार्य होकर ब्राह्मणको उपदेश करनेमें यद्यपि शास्त्र-की रीतिसे मुझे अधिकार नहीं है, तो भी मेरा ऐसा नियम है कि जो धर्मात्मा ब्राह्मण धनसे लेकर प्राण-पर्यन्त किसी भी पदार्थकी याचना करता है तो उस ब्राह्मणको मैं प्राणपर्यन्त पदार्थका भी दान करता हूँ। इसलिये हे बालाकि! यद्यपि तू ब्राह्मण मेरा गुरु है, तो भी तूने ब्रह्मविद्याकी मुझसे याचना की है। यदि मैं तुझे प्राणसे भी अति प्रिय ब्रह्मविद्या न दूं तो मेरे नियमका भङ्ग हो जाय। इसलिये मैं अपने नियमकी रक्षाके लिये तुझ याचकस्वरूप गुरुको ब्रह्मविद्याका दान करता हूँ। हे बालाकि! तेरा और मेरा गुरु-शिष्यभाव-सम्बन्ध नहीं है, किन्तु दाता-याचकभाव-सम्बन्ध है। भाव यह है कि मैं अपनेको गुरु समझकर और तुझको शिष्य मानकर ब्रह्मविद्याका उपदेश नहीं करता, किन्तु तुझको याचक और अपनेको दाता समझ-कर मैं ब्रह्मविद्याका दान करता हूँ।

इतना कहकर राजाने बालाकिको प्रणाम किया, अपने सिंहासनपर उसको विराजमान किया और आप भूमिपर खड़ा होकर ब्रह्मविद्याका इसप्रकार उपदेश करने लगा—

अजातशत्रु—हे बालाकि! प्राणादि जड पदार्थोंसे भिन्न और देश-काल-वस्तु-परिच्छेदसे रहित जो स्वयं-प्रकाश आनन्दस्वरूप आत्मा है, उसको ही तू ब्रह्म-रूप जान, उसके सिवा प्राणादि किसी पदार्थको ब्रह्मरूप मत समझ।

राजाके ये वचन सुनकर बालाकिको जब विश्वास हुआ तो राजाने अन्वय-व्यतिरेकसे जड प्राणकी अनात्मता समझानेके लिये उसको अपने आसनपरसे उठाया, उसका हाथ अपने हाथमें पकड़ा। गुह्यार्थका सभामें उपदेश नहीं हो सकता, इसलिये सभाको त्यागकर बालाकिसहित अन्तःपुरमें गया। अन्तःपुरके द्वारपर कोई एक पुरुष सो रहा था। उस मनुष्यकी सब इन्द्रियाँ चेष्टासे रहित थीं, केवल प्राणमात्र चल रहा था। उस सोते हुए मनुष्यके पास अजातशत्रु और बालाकि दोनों खड़े हो गये। बालाकि प्राणको आत्मा मानता था, प्राणकी आत्मता निवृत्त करनेके लिये बालाकिने जितने प्राणके नाम कहे थे, उन सब नामोंसे चिल्ला-चिल्लाकर राजा उस पुरुषको जगाने लगा।

प्राणोंके नाम

हे आदित्यरूप! हे चन्द्रमारूप! हे बृहत्! हे पाण्डुरनीरग! (शुक्लवर्णवाले जलका आश्रय करने-वाला) हे नीरसंवृत! (जैसे एक ही वस्तुसे मनुष्य नीचे तथा ऊपर ढका होता है इसी प्रकार नीचे तथा ऊपर जलसे ढका हुआ) हे प्रियदर्शन! हे सोमनाम! हे ब्राह्मणोंके राजा! हे दीप्तिसहजभाक्! (असंख्य देवोंसे युक्त) इसप्रकार प्राणके समष्टिरूपको प्रति-पादन करनेवाले सूर्य आदि देव-वाचक जितने नाम हैं, उन सब नामोंको चिल्ला-चिल्लाकर उच्चारण करके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सजाने प्राणको बुलाया तो भी प्राण न जागा, क्योंकि प्राण अचेतन है। इसी कारणसे सुख तथा दुःखरूप फलका भोक्ता भी प्राण नहीं है। जैसे कि जड घटको 'हे घट! हे कम्बुग्रीवादिमान्! हे जलको धारण करनेवाले!' इत्यादि नामोंसे बुलाया जाय तो भी घट अपने और अपने बुलानेवालेको नहीं जानता, इसलिये घट अचेतन है। इसी प्रकार आदित्यादि नामोंसे बुलाये जानेपर भी जब सोता हुआ पुरुष अपनेको और राजाको जान न सका, तब बालाकिने 'घटके समान प्राण भी अनात्मा है'—ऐसा निश्चय किया। शुद्ध आत्मा मन, वाणीका विषय नहीं है, इसलिये शुद्ध आत्माका घटके समान इदंतारूपसे साक्षात् वर्णन करनेमें और जाननेमें कोई समर्थ नहीं है। इसलिये 'स्थूलारुन्धती' न्यायसे शुद्ध आत्माका उपदेश करनेके लिये प्रथम भोक्तारूप विशिष्ट आत्माको जतानेका उपाय राजाने किया। भाव यह है कि अत्यन्त सूक्ष्म अरुन्धती नक्षत्रका जाननेवाला जो पुरुष है, वह पुरुष जब किसी दूसरेको अरुन्धतीका दर्शन कराता है तो प्रथम वास्तविक अरुन्धतीको नहीं दिखाता। क्योंकि वह अत्यन्त सूक्ष्म है, इसलिये प्रथम ही उसपर दृष्टि पहुँच नहीं सकती। इसलिये दर्शन करानेवाला प्रथम सप्तऋषिके सात तारोंको अरुन्धती बताता है। जब देखनेवाला सात तारोंको देखने लगता है तब दर्शन करानेवाला कहता है कि इन सात तारोंमें चार तारे अरुन्धती नहीं हैं; किन्तु तीन तारे अरुन्धती हैं। फिर कहता है ये तीन भी अरुन्धती नहीं हैं; किन्तु इन तीनोंके बीचका तारा अरुन्धती है। फिर कहता है यह तारा भी अरुन्धती नहीं है; किन्तु वशिष्ठका तारा है। वशिष्ठको जनाकर फिर उनके पासकी अरुन्धतीको दर्शन करानेवाला दिखला देता है और देखनेवाला देख भी लेता है। इसी प्रकार प्राण अनात्मा है, ऐसा उपदेश करके शुद्ध आत्माका बोध करानेके लिये प्रथम भोक्तारूप विशिष्ट आत्माका बोध करानेका राजाने यह उपाय किया कि प्रथम सोते हुए पुरुषको अपने हाथसे दबाया और फिर लकड़ीसे धीरे-धीरे चोट लगायी। हाथ और लकड़ीके लगनेसे पीड़ा हुई और पीड़ाके कारण सुख-दुःखका अनुभव करनेवाला भोक्ता पुरुष जाग गया। जैसे भस्मसे ढका हुआ अग्नि भस्म निकल जानेसे जलने लगता है, इसी प्रकार वह पुरुष क्रोधसे प्रज्वलित होकर जाग गया।

क्या शुद्ध आत्मा भोक्ता है?

इसप्रकार उस मनुष्यको दिखलाकर राजा बालाकिको समझाने लगा—

अजातशत्रु—हे बालाकि! नेत्रादि इन्द्रियोंवाला भोक्ता आत्मा प्राणसे भिन्न है और शुद्ध आत्मा भोक्तासे भी भिन्न, बुद्धि आदिका साक्षीरूप है। भोजनरूप क्रिया 'भोक्ता' शब्दकी प्रवृत्तिको लेकर सम्भव नहीं है, क्योंकि भोजनरूप क्रिया सर्व भोक्ताओंमें नियमसे नहीं रहती। भाव यह है कि जो-जो क्रिया होती है, दुःखरूप ही होती है। यदि भोजनरूप क्रियावालेमें 'भोक्ता' शब्दकी प्रवृत्ति हो तो दुःखवान् पुरुषमें ही 'भोक्ता' शब्दकी प्रवृत्ति होगी और सुखवान् पुरुषमें 'भोक्ता' शब्दकी प्रवृत्ति नहीं होगी। जो पुरुष सुखी होता है उसको लोग 'भोक्ता' कहते हैं। यदि भोजनरूप क्रियाको 'भोक्ता' शब्दकी प्रवृत्तिका कारण माना जाय तो भोक्तापनेसे रहित मुख, दाँत तथा जिह्वा आदिमें भी भोजनरूप क्रिया रहती है। इसलिये उनको भी भोक्ता कहना पड़ेगा, किन्तु मुखादिको कोई भोक्ता नहीं कहता। यदि भोजनरूप क्रियाके फलकी प्राप्तिरूप कारणको ग्रहण करके 'भोक्ता' शब्दकी प्रवृत्ति होती हो तो तृप्ति दो प्रकारकी है, एक तो पुष्टिरूप तृप्ति और दूसरी तुष्टिरूप तृप्ति। उनमें यदि पुष्टिरूप तृप्तिवालेका नाम भोक्ता हो तो भीत आदि जड पदार्थ भी भोक्ता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

होने चाहियें, क्योंकि मृत्तिकादिके लेपनसे भीत आदिकी भी पुष्टि होती है और लोकमें भीत आदिको कोई भोक्ता नहीं कहता, इसलिये पुष्टिरूप तृप्ति भी 'भोक्ता' शब्दकी प्रवृत्तिका कारण नहीं है; किन्तु सुख-दुःखरूप तृप्ति ही 'भोक्ता' शब्दकी प्रवृत्तिका कारण है। सुख और दुःख—इन दोनोंमें भी सुख ही 'भोग' शब्दका मुख्य अर्थ है। दुःख 'भोग' शब्दका अर्थ नहीं है, किन्तु गौण अर्थ है। क्योंकि लोकमें वनिता आदि विषयजन्य सुखवाला पुरुष ही भोगवान् कहलाता है, दुखी पुरुषको कोई भोगवान् नहीं कहता। इसलिये 'भोग' शब्दका मुख्य अर्थ दुःख नहीं है।

बालाकि—हे राजन्! यद्यपि सुखरूपतासे 'भोग' शब्दकी अर्थता दुःखमें नहीं है तो भी सुखको उत्पन्न करनेवाला होनेसे दुःखमें 'भोग' शब्दकी अर्थता क्यों नहीं है?

अजातशत्रु—हे बालाकि! इस लोकमें दुःख किसी पुरुषकी प्रीतिको उत्पन्न नहीं करता, इसलिये दुःखसे सुखरूप तृप्ति नहीं हो सकती। अर्थात् जिस पदार्थमें प्रीति होती है, वही पदार्थ सुखरूप तृप्तिको उत्पन्न करता है। दुःखमें किसी भी प्राणीकी प्रीति नहीं होती, इसलिये सुखरूप तृप्तिको दुःख उत्पन्न नहीं कर सकता। और अनुकूल वनितादि विषयोंके बारम्बार भोगसे पुरुषको जो सुख उत्पन्न होता है, उसको लोकमें तृप्ति कहते हैं। यह तृप्ति अनुकूल पदार्थसे उत्पन्न होती है, प्रतिकूल दुःखादिसे कदापि उत्पन्न नहीं होती। इसलिये 'भोग' शब्दका मुख्य अर्थ दुःख नहीं है; किन्तु 'भोग' शब्दका गौण अर्थ दुःख है। जैसे देवदत्त मनुष्य सिंह है। इस स्थलमें 'सिंह' शब्दका मुख्य अर्थ मृगराज पशुविशेष है और 'सिंह' शब्दका गौण अर्थ देवदत्त नामका मनुष्य है। सिंहमें रहनेवाले क्रूरता आदि गुण देवदत्त नामके मनुष्यमें भी हैं, इसलिये वह सिंह कहलाता है; इसी प्रकार 'भोग' शब्दका मुख्य अर्थ सुख है और गौण अर्थ दुःख है। क्योंकि जैसे सुखकी प्राप्ति पुरुषके चित्तमें 'मैं सुखी हूँ'—इसप्रकारकी अभिमानरूप अतिशयता उत्पन्न करती है; इसी प्रकार दुःखकी प्राप्ति भी पुरुषके चित्तमें 'मैं दुखी हूँ'—इसप्रकारकी अभिमानरूप अतिशयता उत्पन्न करती है। अतिशयताकी उत्पत्तिका कारणपना सुखमें तथा दुःखमें समान है, इसलिये 'भोग' शब्दका गौण अर्थ दुःख है और मुख्य अर्थ सुख है।

देवी—हे सौम्यदर्शन! इसप्रकार सुख-दुःखरूप भोगका आश्रयरूप जो विशिष्ट आत्मा है, उस भोक्तारूप आत्माका राजाने बालाकिको उपदेश किया; किन्तु इस भोक्तारूप आत्माके ज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती, शुद्ध आत्माके ज्ञानसे ही मोक्षकी प्राप्ति सम्भव है। इसलिये शुद्ध आत्माका बोध करानेके लिये राजा इसप्रकार कहने लगा— (क्रमशः)

मन-तुरंग

कंटक गनै न पंक ऊँच-नीच अंतकहू, भ्रमत कहूँ-को-कहूँ संतत मदांध बन।
कहत 'कुमार' त्यौं कुमारगकी ओर दुष्ट, दौरि-दौरि दोषी बनै घोर और तावै तन॥
डारत सुपंथ जुगतीतें जदि कोऊ मिलै, पुन्य-पुंज-पूरबतें प्रबल सुपंथी जन।
नातरु पथिक! परिनाममैं पतन हाय! वाजी वेलगाम सम पाजी है हमारो मन॥

—शिवकुमार केडिया 'कुमार'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वाल्मीकि-रामायण और भगवच्छरणागति

(लेखक—साहित्याचार्य पं० श्रीमथुरानाथजी शास्त्री, भट्ट, कविरत्न)

[गताङ्कसे आगे]

ठीक है, आपने जो आज्ञा की कि "चाहे मेरी कैसी भी हानि होती हो, अथवा आगन्तुक कैसा भी दोषी हो, परन्तु शरणार्थी होकर जो मेरे पास आता है उसका मैं त्याग नहीं कर सकता।" यह आपकी उक्ति शरणागत-वत्सलता और अभयदानदीक्षाव्रतके अनुकूल ही है; परन्तु आप जब मर्यादास्थापनके लिये पधारे हैं तब लोकमर्यादाका अनुरोध भी तो कुछ रखना ही पड़ेगा। यह यदि दोषी हो तो इसे आश्रय देना क्या उचित गिना जायगा ? अतएव दोषी होनेपर तो इसका परित्याग होना उचित ही है।' इस शङ्काके उत्तरमें भक्त-वत्सल श्रीरामचन्द्र आज्ञा करते हैं कि—

'दोषो यद्यपि तस्य स्यात्'—मैं तो अच्छी तरह दृष्टि डालकर देखता हूँ तो भी मुझे कोई दोष दिखायी नहीं पड़ता; परन्तु अस्थानमें भी भयकी शङ्का करनेवाले आप-लोगोंके विचारसे यदि उसमें दोष है तो 'स्यात्'—हुआ करे। मैं ऐसे दोषको उपेक्षणीय समझता हूँ। अथवा 'स्यात्'—यह अङ्गीकारार्थक अव्यय है। आपलोगोंके अनुरोधसे मैं स्वीकार भी कर लेता हूँ कि उसमें दोष है; परन्तु जब मैं शरण देने बैठा हूँ तब मुझे अपने आश्रितका दोष सहन करना ही पड़ेगा। वात्सल्यका स्वभाव ही यह है कि उसमें दोष भी सहनीय ही क्या, प्रिय लगने लगते हैं। छोटे बच्चेको जैसे ही आप गोदीमें लेते हैं वह कभी नाकको नोचता है, तो कभी आँखमें उँगली चलाता है। देखा जाय तो ये किसी कारणसे भी सहनीय नहीं हो सकते। दूसरा आदमी नोंचना तो कैसा, मुँहतक हाथ भी ले जाय तो महाभारत खड़ा हो जाय। परन्तु प्रिय बालक बाबाकी दाढ़ी खींचता है और बाबा प्रेम-गद्‌गद होकर उसे छातीसे लगाते हैं, कपोल-चुम्बन करते हैं। कारण यही है कि वात्सल्य-भाजनके दोष भी हमें प्रिय लगते हैं। बालकके हाथमें हम कोई चीज़ सौंपते हैं और वह हँसता हुआ हमारे ऊपर फेंक देता है; परन्तु हमें बुरा लगना कैसा, हम बड़े प्रसन्न होते हैं। फिर वही चीज़ उसके हाथमें सौंपते हैं और वह फिर फेंक देता है।

तुतलाती हुई भोली बोलीसे वह जिस समय किसीको 'हत्त' (तिरस्कार) करता है अथवा अकथ्य गाली भी देता है उस समय शिक्षाके विचारसे हम उसे मना जरूर करते हैं और करना भी चाहिये ताकि आगे उसके संस्कार बिगड़ न जायँ; परन्तु हृदयपर हाथ रखकर देखिये, क्या उस गालीसे आपका हृदय जलता है ? नहा-धोकर स्वच्छ शरीरसे जिस समय हम अपने कमरेमें बैठे होते हैं उस समय मजाल है कि थोड़ी-सी भी गर्द हमारे इर्द-गिर्द भी आ जाय। कमरेकी चीजें साफ़ करनेमें नौकरसे यदि जरा भी गर्द उड़ती है तो फटकारना पड़ता है कि 'इतने दिन हुए, ज़रा भी आदमियत नहीं आयी !' किन्तु घुटनोंके बल चलता हुआ हमारा छोटा बच्चा धूलिभरे शरीरसे जैसे ही हमारी गोदीमें आ बैठता है, उस समय ऊपरसे चाहे हम कुछ भी कहते हों, परन्तु हृदयसे पूछिये क्या उस समय आदमियतकी दुहाई याद आती है ? गरम होना कैसा, हमारा हृदय भीतर-ही-भीतर शीतल हो जाता है। कालिदास कहते हैं—'धन्यास्तदङ्गरजसा मलिनीभवन्ति' —अपने पुत्रकी अङ्गधूलिसे जो मलिन होते हैं वे धन्य हैं। सत्य बात तो यह है कि स्नेहभरी आँखोंसे दोष दिखायी ही नहीं पड़ते, उनका त्याग कैसे किया जाय ? अपने बालकमें कुरूपतादि दोष हों तो भी वह अच्छा लगता है। इसी अभिप्रायसे कालिदासने कहा है—'सर्वः कान्तमात्मीयं पश्यति'—अपनी चीज़ सबको अच्छी दिखायी देती है। स्नेह जब हृदयके सम्पूर्ण अवकाशको रोक लेता है तब बेचारे दोषोंको उसमें समानेका मौक़ा ही कहाँ मिलता है ? 'रागभृते किल हृदये प्रतीहि दोषा न मान्त्येव'—प्रेमसे भरे हृदयमें दोष समाते ही नहीं हैं। इसी अभिप्रायसे श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं—'दोषो यद्यपि तस्य'—आपलोगोंके अभिप्रायानुसार यदि उसमें कुछ दोष भी हो तो 'स्यात्'—रहे।

अथवा—'दोषो यद्यपि स्यात्, तस्य (शरणागतस्य) न दोषः'—सम्भव है, उसमें दोष हो; परन्तु शरण आनेपर उसका कोई दोष न रहा। चाहे कैसा भी दोषी क्यों न हो, जिस समय 'मैं शरण हूँ'—यह कहता हुआ मेरे समीप

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आता है, उस समय मेरी दृष्टिमें वह सर्व दोषोंसे रहित है। बात यह है कि परमदयालु भगवान् श्रीरामचन्द्रने प्राणिमात्रको अभयदान देनेका व्रत ले रक्खा है। आप अभयदानका सत्र खोले हुए प्रतीक्षा किया करते हैं कि कोई शरणार्थी होकर आवे और मैं उसे अभय दूँ। यदि कोई शरणार्थी आयेगा ही नहीं, तो आपको अभय देनेका अवकाश ही कहाँ मिलेगा ? और यदि अभय देनेका कभी अवसर ही न पड़ा तो फिर प्राणिमात्रको अभयदान देनेका व्रत कहाँ पूर्ण हुआ ? याचकके बिना दान ही कैसा ? यह तो बड़ा अच्छा योग है कि शरणार्थी आपके पास आया है। फिर क्या ऐसे सुअवसरको छोड़ा जा सकता है ? गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

तू दयालु दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी।

अतएव जिस समय शरणार्थीका उच्चारण किया हुआ 'शरण' शब्दमात्र ही आपके कानोंमें पड़ता है, आप गद्गद् होकर उसको अपने आश्रयमें लेनेके लिये उत्कण्ठित हो जाते हैं। यह दोषी है कि नहीं, इसे वहाँ देखता ही कौन है ? वहाँ तो यह शरणार्थी है कि नहीं, केवल इसीपर दृष्टि रहती है। जब यह शरणागत हो चुका तो फिर इसके दोष कुरेदनेसे क्या प्रयोजन ?

मान लो कि यह दोषी है, परन्तु इसने शरणागति तो स्वीकार कर ली ! यदि इसमें दोष ही न होता और उसके कारण इसे कोई कष्ट ही प्रतीत नहीं होता तो यह अपना घर-बार छोड़कर यहाँ आता ही क्यों ? दोषहीके कारण तो बचावके लिये शरणार्थी हुआ है। प्रबल चक्रवर्ती राजा अधीनता स्वीकार न करनेवाले उद्दण्ड सामन्तपर आक्रमण करता है। इस उद्दण्डताके दोषके कारण घोर युद्ध मच जाता है। दोनों तरफ रणचण्डी जाग उठती है। हजारों आदमी सदाके लिये समराङ्गणमें सो जाते हैं; परन्तु प्रबल शक्तिसे दबाया हुआ वह जैसे ही हारने लगता है, प्राणान्तिक सङ्कटसे जैसे ही घबरा उठता है, उसी प्रबल चक्रवर्तीके वह शरण हो जाता है। शरण होते ही वह भी उसे अभय दे देता है। फिर उसपर कोई मार नहीं होती। वह सब सङ्कटोंसे बरी हो जाता है। उस समय यह नहीं सोचा जाता कि इसने पहले अपराध किया था, यह तो दोषी है, इसे शस्त्रोंकी मारसे क्यों बचाया जाय ? यह अपराध कर चुका था, तभी तो शरणार्थी होकर अधीनता स्वीकार करता है। इसी तरह दोषोंसे प्रपीड़ित आदमी घबराकर ही तो भगवान्के शरण होता है ? शरणार्थी होनेपर भी यदि भगवान् दोषोंका बहीखाता खोल बैठें तो उस बेचारेकी क्या गति हो ? हम दोषी हैं तभी तो कनौड़े होकर शरणार्थी हुए हैं, भगवान्से दयाकी प्रार्थना करते हैं।

यदि हम स्वस्ववर्णोचित, विधिबोधित धर्मानुष्ठान करते हुए होते, धर्मैकतानताके कारण 'पाप किसे कहते हैं'—यहतक भी हम नहीं जानते होते, आध्यात्मिक तत्त्वोंके मननसे हमारी प्रवृत्ति अन्तर्मुख हो गयी होती, हमारी चित्तवृत्ति शम-दमादि साधनपूर्वक सदा प्रत्यगात्मचिन्तनमें ही लगी रहती होती, संसारमें रहकर भी 'पुरुषस्तु पुष्करपलाशवन्निर्लेपः' के अनुसार हम तत्त्वज्ञानी महाराज जनककासा असङ्ग जीवन-यापन करते होते तो हमको अपनी आत्माके लिये इतना भय न होता और न हम इतने लाचार और निराधार होकर केवल दयाके ही भिखारी बनते। हम भी यही प्रार्थना किया करते कि 'भगवान् न्यायकारी हैं, हमारे कर्तव्य देखकर उचित फैसला देंगे। इसमें भयका काम ही क्या है ?' जिसे ग्रन्थ कण्ठस्थ उपस्थित हैं और जिसने परीक्षाके परचे सेंट-परसेंट किये हैं वह भला परीक्षककी रिआयतकी प्रतीक्षा क्यों करने लगा ?

धार्मिक पुरुषोंके लिये दो प्रकारके आदर्श जीवन हो सकते हैं—एक ऋषि-जीवन, दूसरा शुद्ध भक्त-जीवन [किसी सम्प्रदाय-सिद्धान्तको ही लेकर यह नहीं कहता, प्रक्रान्त विषयको साफ-साफ समझानेके लिये स्थूलतया दिग्दर्शन करा रहा हूँ]।

ऋषि-जीवन वह है जो खाँडेकी धारपर सामान्य और विशेष धर्मोंका पालन करता आता है। ऋषिगण शास्त्रके अनुसार छोटेसे लेकर बड़ेतक प्रत्येक अपने कार्यको यथावस्थित करते हैं। उनको शम-दमादिका वह बल है, आत्मसंयमपर उनका इतना अधिकार है कि क्या मजाल उनकी जीवनचर्यामें तृणमात्र भी अन्तर पड़ जाय। साइन्सकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तुओंके तोलनेके काँटेमें कदाचित् अन्तर पड़ सकता है; परन्तु ऋषियोंके संयत जीवनमें रञ्चकमात्र व्यत्यास नहीं हो सकता। वे इस भूमिमें ही क्या, दिव्यलोकोंमें भी सारे सुखसाधन प्राप्त होनेपर भी अपने संयमको नहीं भूलते। मन और इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए सदा ब्रह्मभावनामें निरत रहते हैं। ऐसोंके लिये ही कालिदास कहते हैं—'ध्यानं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रत्नशिलागृहेषु विबुधस्त्रीसन्निधौ संयमः'—रत्नशिलाओंके भवनोंमें समाधि लगाते हैं, देवाङ्गनाओंके पड़ोसमें रहकर संयम रखते हैं। उन्हें अपने आत्मविजयपर पूरा भरोसा है। वही कर्म और ज्ञानके द्वारा ईश्वराराधन करते हुए अपवर्ग पानेके अधिकारी भी होते हैं। किन्तु ध्यान रहे, इस 'असिधाराव्रत' में जरा-सी भी भूल हुई कि बस, सब किया-कराया मिट्टी हो जाता है। स्थान-स्थानपर ऋषियोंके तपोभ्रंश होनेके वृत्तान्त आप पढ़ते ही हैं।

दूसरा है भक्त-जीवन। भक्त सब कुछ साधन करते हुए भी अपने साधनोंपर भरोसा नहीं करते। वे तो कहते हैं कि भगवान् ही हमारे तो साध्य और साधन हैं। न हमें साधनोंका बल है, न हम साधनबलसे भगवान्तक पहुँचना ही चाहते हैं। हमारी क्या शक्ति है कि कुछ कर लें। हमें तो उनकी कृपाका ही भरोसा है। उनके आसरे ही हम तो निर्भय हैं। वे दयालु हैं, अपनी दयालुताके विरुदपर हम-सरीखे अहदियोंका भी अवश्य उद्धार कर देंगे। हमसे पुण्य बनना कैसा, कोई पाप ही बच जाय तो बहुत है। वे तो कहते हैं—

त्वत्तो नास्ति दयानिधिर्यदुपते मत्तो न मत्तः परः।

'हे भगवन्! आपसे बढ़कर कोई दयासागर नहीं और मुझसे बढ़कर कोई प्रमादी (भूल करनेवाला) नहीं।'

यह बात नहीं कि ये लोग धर्मानुष्ठानमें कमी करते हों। नहीं नहीं, ये लोग कर्मानुष्ठानकी डौंडी पीटनेवालोंसे बहुत सतर्क जीवन-यापन करते हैं, परन्तु बात यह है कि ये लोग शास्त्रविहित कर्म करते हुए भी उसका अभिमान नहीं रखते। क्योंकि ये भगवान्की कृपाको ही एकमात्र अवलम्बन मानते हैं, कर्मको साधन ही मानना नहीं चाहते। अतएव ये तो आराध्यसे यही प्रार्थना करते हैं—

विहितं जहतं विवेकहाना-
दहितं कर्म च नित्यमाचरन्तम्।
अपयातगुणं हरिप्रिये ! मां
कृपया केवलयैव पालयेथाः॥

'मुझको विवेक नहीं, अतएव मैं शास्त्रविहित कार्योंको छोड़ देता हूँ तथा शास्त्रविरुद्ध कार्य सदा करता हूँ। इसलिये मैं तो उद्धारके योग्य गुणोंसे रहित हूँ। हे हरिप्रिये! मेरा केवल कृपा करके ही उद्धार करिये।' पूर्वोक्त दोनों प्रकारके अधिकारियोंको सरलतया समझनेके लिये दो दृष्टान्त दिये हैं, बन्दर और बिल्लीके बच्चोंके।

बन्दरका बच्चा अपनी माताके पेटसे इस तरह चिपटा रहता है कि उसकी माता एक पेड़से दूसरे पेड़पर उछलती है, कूदती है; परन्तु बच्चेका गिरना कैसा, उसे ज़रा आजान नहीं आता। किन्तु यहाँ ध्यान रहे, इस कार्यमें सारा उद्योग पंजोंसे पकड़नेवाले उस बच्चेका है। वह अपने हाथ-पाँवोंसे अपनी सर्वस्व-शक्तिसे माताके पेटमें ऐसा सट जाता है कि माता गिरे तो ही वह गिरे। माता उसमें कुछ उद्योग नहीं करती। हाँ, वह ज़रूर है कि उसकी भी आन्तरिक इच्छा है कि यह चिपटा रहे। वह नहीं चाहती कि यह गिर जाय। यदि यही गिराना चाहे, तो बात ही दूसरी है; परन्तु वह उस बच्चेके ले जानेमें ज़रा भी उद्योग नहीं करती।

दूसरा बिल्लीका बच्चा है। वह अपनी तरफ़से कुछ नहीं करता। बल्कि जिस समय माँ दूध पिला चुकती है, निश्चेष्ट होकर पड़ जाता है, आँखेंतक मींच लेता है। उस समय माता ही अपने मुखसे दबाकर उस बच्चेको स्थानान्तरमें ले जाती है, बच्चा अहदी हुआ मुखमें लटका रहता है। इसी तरह दोनों अधिकारियोंको समझ लीजिये। एक अपनी शक्तियोंको लगाकर अपने बलसे भगवान्का अनुगमन करना चाहते हैं, दूसरे अपने उद्योगका उसमें सम्बन्ध ही नहीं जोड़ते। इस कर्ममय संसारमें रहते हुए भी वे भगवान्पर और उनकी कृपापर ही टकटकी लगाये रहते हैं, कर्मोंपर उन्हें आस्था ही नहीं। अतएव चाहे उनसे कर्म होते भी हों, परन्तु वे उनके फलसे लिप्त नहीं होते। जैसा कि गीतामें कहा है—

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित् करोति सः॥

जब उनका फल नहीं तो कर्म करना न करना बराबर है। इसलिये वे 'किये भी' 'नहीं किये' के समान हैं। भगवान् कहते हैं कि जब मेरे भक्त मेरे ही आश्रयपर इतने दृढ़ हैं कि कर्मपर दृष्टितक नहीं देते, तब क्या मैं ही इतना संकीर्ण-हृदय हो जाऊँगा कि वे तो सब कुछ मुझमें ही समर्पण करके मेरा आश्रय लेंगे, मेरे शरण आयेंगे और मैं उनके दोषोंका पचड़ा लेकर बैठूँगा? नहीं, नहीं—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

'जो जिसप्रकार मेरा आश्रय लेते हैं मैं भी उसी तरह उनसे व्यवहार करता हूँ।' जब भक्त इतने एकान्ती हैं कि भगवान् और उनकी कृपाके सिवा किसीकी तरफ आशा-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भरी दृष्टि ही नहीं डालते, तब भगवान् तो दयाके समुद्र कहे जाते हैं, क्या वह शरणार्थीके प्रति उदार नहीं होंगे ? नहीं-नहीं, अवश्य होंगे। इसी आशयसे तो यहाँ कहते हैं कि 'दोषो यद्यपि स्यात्, तस्य (शरणागतस्य) न दोषः'—'दोष यद्यपि हों, परन्तु शरणार्थीके कोई दोष नहीं रहता।'

जिस समय प्रतिकूल प्रपञ्चके थपेड़े मनुष्यको लगते हैं, सांसारिक विपत्तियोंकी अनवरत टक्करके कारण जिस समय मनुष्यकी मति चक्करमें आ पड़ती है, दुःखबहुल इस संसारके तापसे पीड़ित पुरुष जिस समय अत्यन्त दुखी हो जाता है, उस समय निर्विण्ण होकर शान्तिकी लालसासे चारों तरफ घबराया हुआ घूमने लगता है। जिस दैव जीवके भाग अच्छे होते हैं, जिसे सत्सङ्ग मिल जाता है, वह उस अवस्थामें भगवान्के अभिमुख होने लगता है। जैसे ही इसका मुख संसारकी तरफसे बदलता है और भगवान्के अभिमुख होता है वैसे ही इसे शान्ति मिलने लगती है, क्योंकि यह दुःख तो संसारमें लिप्त होनेके कारण, अहंता-ममताके पाशमें जकड़े रहनेके कारण था। जब संसारकी तरफसे इसका रुख ही हट गया फिर वह दुःख इसे क्यों होता था ? जैसे-जैसे यह संसार-भावनासे दूर और भगवान्के अभिमुख होता जाता है वैसे-वैसे ही इसको अधिकाधिक शान्ति मिलती जाती है। यह भी शान्तिकी डोरीसे बँधा हुआ धीरे-धीरे भगवान्के और भी अभिमुख होता जाता है। घोर ग्रीष्मसे घबराया हुआ बटोही सुखद, शीतल, निकुञ्जकी छायाके जैसे-जैसे समीप होता जाता है वैसे-वैसे ही उसे शान्ति मिलती जाती है और वह उसके अधिकाधिक समीप होता जाता है। जब भगवान्के अभिमुख होनेसे मनुष्यको शान्ति मिलती है तो मनुष्यका चित्त प्रतिकूल प्रपञ्चोंसे विरक्त होकर भगवान्की तरफ अच्छी तरह खिंच जाता है। उनके गुणोंको जानने लगता है। उनमें अनुरक्ति (भक्ति) हो जाती है। जब भगवान्में भक्ति हो गयी तो अब इस भाग्यवान्के लिये बाकी ही क्या रहा ? भगवान्की तरफ अभिमुख होनेपर संसारसे विरक्ति और भगवान्में भक्ति होना स्वाभाविक ही है—

भक्तिः परेशानुभवो विरक्ति-
रन्यत्र चैष त्रिक एककालः।
प्रपद्यमानस्य यथाश्नतः स्यु-
स्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम्॥

'भगवान्की जो 'प्रपत्ति' (शरणागति) स्वीकार करता है उसकी भक्ति, भगवद्विषयक ज्ञान और भगवदितर पदार्थोंसे वैराग्य—ये तीनों बातें एक कालमें ही हो जाती हैं। जैसे भोजन करते हुए पुरुषको प्रत्येक ग्रासमें सन्तोष, शरीर-पोषण और क्षुधाकी शान्ति साथ-ही-साथ होती जाती है।'

आप ही देखिये, जब संसारसे विरक्ति हो गयी और भगवान्में भक्ति हो गयी, तब कोई भी दोष शरणार्थीको भला स्पर्श कर सकता है ? पहलेके कोई दोष हों, तो भी वह इस समय इससे कोसों दूर हो जाते हैं। शरणार्थीके हृदयमें जैसे ही भगवान्की स्मृति होती है और यह उनके चरणोंकी शरण लेनेको जैसे ही अभिमुख होता है वैसे ही यह भगवान्का अनुग्रहपात्र हो जाता है—भगवान्का प्रिय हो जाता है। क्योंकि भगवान् तो सब प्राणियोंको अभयदान देनेके लिये दरवाजा खोले प्रतीक्षा करते रहते हैं, शरणार्थीको देखते ही भक्तवत्सल भगवान् प्रेम-गद्गद हो उठते हैं। अब आप ही कहिये, जो भगवान्का प्रेमपात्र है, जिसपर भगवान्का अनुग्रह है, क्या उसको अब भी पाप, दोष घेरे ही रहेंगे ? जिसको भगवान्की स्मृति अहर्निश बनी हुई है, जिसके हृदय-मन्दिरमें भगवान् स्थिररूपसे आ विराजे हैं, क्या अब भी वह पापी ही बना है ? जिन भगवान्की दृष्टिमात्र पड़नेसे पापी-से-पापी भी पवित्र हुए सुने जाते हैं, वही भगवान् समूचे आ विराजें और वह पापी-का-पापी ही बना रहे ? भगवान्का इतना सम्बन्ध होनेपर भी क्या वह पवित्र नहीं हुआ ?

स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य
त्यक्तान्यभावस्य हरिः परेशः।
विकर्म यच्चोत्पतितं कथञ्चिद्
धुनोति सर्वं हृदि सन्निविष्टः॥

'और तरफसे भावनाको हटाकर भगवान्के चरणोंका आश्रय लेनेवाले, अतएव भगवान्के प्रिय उस पुरुषका यदि कोई दोष भी हो तो हृदयमें रहनेवाले सर्वेश्वर भगवान् उसे नष्ट कर देते हैं।'

आहा ! 'प्रियस्य'—जो भगवान्का आश्रय लेता है वह भगवान्का प्रिय है। भगवान्का जो प्रिय हो चुका, उसके लिये भगवान् कुछ उठा रक्खेंगे ? भगवान् उससे दूर हट जायँ तो कदाचित् यह सम्भव भी हो; परन्तु 'हृदि सन्निविष्टः'—भगवान् तो उसके हृदयमें विराजे हैं। कदाचित् यह समझा जाय कि भगवान् उसके हृदयमें भी आ विराजे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तथा उसपर भगवान्‌की प्रीति भी हो चुकी; परन्तु पूर्वकृत अपराधोंको दूर करनेकी शक्ति शायद भगवान्‌में न हो। नहीं-नहीं, 'हरिः परेशः।' भगवान् सब पापोंको हरण करनेमें समर्थ हैं, 'परेशः'—परात्पर हैं। उनसे बढ़कर सामर्थ्य किसीको नहीं। वे सबके मालिक हैं, उनके ऊपर कोई स्वामी नहीं। 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं सामर्थ्य' यदि किसीको हो सकता है तो वह आपहीको है। ऐसी दशामें भी क्या पाप दूर नहीं होंगे? भगवान्‌के प्रिय बन गये, फिर भी पापी-के-पापी ही रहे? नहीं, 'सर्वं विकर्म धुनोति' भगवान् उसके सब पापको जड़-मूलसे नष्ट कर देते हैं।

संसारमें भूला हुआ प्राणी संसारको पीठ देकर जिस समय भगवान्‌के अभिमुख होता है, उस समय बेचारे पातक विमुख होकर स्वयं उससे भागते हैं। बड़े-बड़े महानुभाव उसके भाग्यको सराहते हैं। जिसकी भगवान्‌में मति हो गयी वह तो तीर्थोंका भी तीर्थ है। उसके बराबर भला कौन पुण्यवान् है! भगवान्‌की शरण लेनेको जिस समय वह मार्गमें आगे बढ़ता है, पैंड-पैंडपर वह मार्ग कोटि-कोटि प्रयागके समान होता जाता है। शरणार्थीके एक-एक पैंडमें विहारीके कथनानुसार 'पग-पग होत प्रयाग'।

भगवान्‌को जो एक बार भी प्रणाम कर लेता है उसीका माहात्म्य अतुलनीय हो जाता है—

एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो
दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म
कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय॥

'भगवान्‌को एक बार भी प्रणाम कर लेना दस अश्वमेधोंके यज्ञान्त स्नानके बराबर है। दस अश्वमेध करनेवालेका जन्म फिर भी हो सकता है; परन्तु जो भगवान्‌को प्रणाम कर लेता है उसका पुनर्जन्म नहीं होता।'

जब प्रणाम कर लेनेका ही इतना माहात्म्य है, तब जो भगवान्‌का शरणार्थी हुआ है, जिसके भगवान् 'हृदि सन्निविष्टः'—हृदयमें विराजे हैं, क्या वह दोषी कहा जा सकता है! नहीं-नहीं, वह तो 'पावनानां च पावनम्' है। केवल भक्तिमार्गके अनुसार ही ये उपपत्तियाँ दी हों, सो नहीं। वेद भगवान् भी कहते हैं—'यथैषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवा ऽस्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते'—जिस तरह अग्निमें पड़नेसे तृण और तूल (रूई) दग्ध हो जाते हैं, इसी तरह शरणार्थी होनेपर इसके सब पाप दग्ध हो जाते हैं।

इसी तात्पर्यसे महर्षि कहते हैं—'दोषो यद्यपि स्यात्, तस्य न दोषः'—दोष यदि हो, तो भी शरणागतका कोई दोष नहीं।

अथवा—'यद्यपि दोषः स्यात् परं तस्य (शरणागतिरूपनिरतिशयगुणशालिनः) दोषो न त्याज्यकोटिं स्पृशति'—मान भी लिया जाय कि उसमें दोष है; परन्तु शरणागतिरूपी वह अतुलनीय गुण भी तो है, जिससे बढ़कर और कोई गुण हो ही नहीं सकता। अतएव उस अद्भुत गुणके कारण दोष होनेपर भी वह त्याज्य नहीं हो सकता।

कडवापन सबको बुरा लगता है। कडवी चीज मुँहमें आते ही 'थू-थू' का प्रयोग होता है। देखा जाय तो कडवापनका सम्बन्ध जीभसे है। जीभपर रखकर ही हम चख सकते हैं कि यह वस्तु कडवी है या नहीं। अतएव इस कडवेपनका जिह्वाके स्वादसे ही सम्बन्ध होना चाहिये, किन्तु हेयताके कारण इस कडवेपनका लोगोंपर इतना आतङ्क छा गया है कि बुरी लगनेवाली सभी चीज़ कडवी कहलाने लगी अर्थात् बुरा और कडवा दोनों पर्याय हो गये हैं। नीतिनिष्णात समझाते हैं कि 'कडवी बात किसीको नहीं कहनी चाहिये।' बात कानसे सुननेकी चीज है और कडवापन जिह्वासे जाना जाता है। 'अभिधा' को धकियाकर 'लक्षणा' ने स्थान ग्रहण कर लिया। बुरी लगनेवाली अप्रिय बात भी कडवी कहलाने लगी। लक्षणाके द्वारा इस तरह चक्करसे बोलनेका भी कोई प्रयोजन जरूर है। वह यही कि ऐसी बात अत्यन्त हेय है। यों कटुताका बुरापन अधिकाधिक प्रसिद्ध होता हुआ शब्दके इलाकेमें भी पहुँच गया। कडवापन कानोंतकको बुरा लगने लगा। साहित्यवाले तो इस 'कर्णकटुता' को पूरा दोष मानते हैं। बुरे अर्थको सूचित करनेवाली बात (व्यक्त शब्द) फिर भी कडवी हो सकती है; किन्तु अव्यक्त नादतक अप्रिय लगनेके कारण कडवा बन गया। बाणभट्ट कहते हैं—

कटु क्वणन्तो मलदायकाः खला-
स्तुदन्त्यलं बन्धनशृङ्खला इव।

बाँधनेकी साँकलकी तरह कडवा शब्द करते हुए, कलङ्क-कालिमाको देनेवाले दुर्जन अत्यन्त पीड़ा करते हैं। कहिये जनसमाजको कडवापन कितना बुरा लगता है! परन्तु अब देखिये, कडवापनका घोर दोष भी अच्छा बन जाता है। समझदारीकी पूर्ण बारीकी निकालनेवाले साहित्यमार्मिक कहते हैं—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

काश्मीरजस्य कटुतापि नितान्तरम्या

'केसरका कडवापन भी अत्यन्त प्रिय लगता है। क्यों? जो कडवापनका दोष अत्यन्त हेय था वह प्रिय ही नहीं, अत्यन्त प्रिय क्योंकर बन गया? साथमें गुणके कारण। केसरमें वह मनोहर सुगन्ध है जिसके कारण वह कडवापन भी प्रिय ही नहीं, अत्यन्त प्रिय लगता है।

जलाशयकी प्रशंसा इसीमें है कि वह लोगोंको, थके-माँदे बटोहियोंको, पीनेमें, नहाने आदिमें जलकी सहायता पहुँचाकर कष्टसे बचावे। इस पुण्यके लिये ही वापी, कूप, तड़ाग आदि जलाशय बनवानेमें लोग लाखों खर्च करते हैं। यदि जलाशय खूब लम्बा, चौड़ा, गहरा बन भी गया, परन्तु उसके जलको लोग जीभपर भी न रख सके। और तो क्या, कपड़े धोनेके कामतक न आया! तो कहिये उस जलाशयका क्या उपयोग हुआ? जलाशयकी इस उपयोगिता-की कसौटीपर अब जरा समुद्रको जाँचिये। क्या वह जलाशयका काम करता है? धर्मबुद्धिसे आचमनकी बात जाने दीजिये; परन्तु दो-चार चुल्लू पानी भी किसी प्यासे-की प्यास बुझानेके काम न आया होगा। कोई कहता है—

नोद्वेगं यदि यासि यद्यवहितः कर्णं ददासि क्षणं
त्वां पृच्छामि यदम्बुधे! किमपि तन्निश्चित्य देह्युत्तरम्।
नैराश्यातिशयातिमात्रमनिशं निःश्वस्य यद्दृश्यसे
हृष्यद्भिः पथिकैः कियत्तदधिकं स्यादौर्वदाहाद्दतः॥

'हे समुद्र! यदि तुम बुरा न मानो और क्षणमात्र कान देकर अवधानसे सुनो तो तुमसे कुछ पूछना चाहता हूँ। आशा करता हूँ, तुम खूब निश्चित सोच-समझकर उत्तर दोगे। बड़ी दूरसे आये प्यासे पथिक अत्यन्त निराशासे दुःखके निःश्वास लेते हुए तुम्हें बार-बार देखते हैं और उस समय उनके हृदयमें जो दाह-दुःख होता है वह तुम्हारे इस भीतरी बडवाग्निदाहसे कितना अधिक होता होगा, यह हमें तुलना करके बता दो। दोनों दुःख तुम्हारे सामने रहते हैं, बडवाग्निका दाह भी तुम जानते हो और वह निराशाजनित पथिकोंका अन्तर्दाह दुःख भी तुम रोजाना देखते हो। अतएव तुम्ही बारीक तुलना करके हमें निश्चित उत्तर दे दो।'

यों जलाशयके लिहाजसे तो समुद्र बेचारे दीन पथिकोंसे नित्य आँसुओंकी जलाञ्जलि पाता है; परन्तु इस घोर दोषके रहनेपर भी वह प्रशंसापात्र है। उसमें सर्वाभिनन्दनीय गुण यही है कि उसमेंसे ही अमूल्य रत्न निकलते हैं। इसीलिये दोषकी क्या कथा! 'रत्नाकर'—रत्नोंकी खान कहकर उसका गुणगान किया जाता है। दुटप्पेमें प्रयोजनकी बात कहकर रघुवंशियोंका इतिहास लिखनेवाले महाकवि कालिदास भी उसकी प्रशंसामें १४ श्लोक खर्च कर डालते हैं। कारण यही है कि गुणके कारण दोष भी उपादेय हो जाता है। चन्द्रमा क्षयी, कलङ्की, पाण्डुरोगी, सब दोषोंका पात्र है। विरहियोंकी वकालत करते हुए कवि उसे कोसते भी हैं—'ईदृशैश्चरितैर्जाने सत्यं दोषाकरो भवान्'—ऐसे-ऐसे चरित्रोंसे मालूम होता है कि तुम अवश्य दोषोंकी खान हो। [दोषाकर=रात्रि करनेवाला तथा दोषोंकी खान] किन्तु अमृतवर्षा करनेवाले प्रकाशगुणके कारण वह 'राजा' है। समुद्र और चन्द्र इन दोनोंमें दोषोंके रहते हुए भी वह अतुलनीय गुण है जिससे मुग्ध होकर कविलोग प्रशंसा करते हुए नहीं अघाते। इनके नाममात्रपर ही 'वाह वाह' कर उठते हैं—

गुणग्रामाभिसंवादि नामापि हि महात्मनाम्।
यथा सुवर्णश्रीखण्डरत्नाकरसुधाकराः॥

'महात्माओंके नाम भी गुणानुसारी हुआ करते हैं। जैसे सुवर्ण, श्रीखण्ड, रत्नाकर, सुधाकर।

गुण होनेके कारण समुद्र, चन्द्र आदि बड़ोंके दोष तो शायद लिहाजसे भी सह्य हो गये हों; परन्तु दोषपूर्ण मामूली चीज भी थोड़े-से भी गुणके कारण उपादेय हो जाती है। पेड़ोंकी गणनामें केवल कण्टकाकीर्ण बबूल आदि वृक्षोंको गिनते हुए कवि अक्सर नाक-भौं सिकोड़ा करते हैं। अन्योक्तिके बहाने उन्हें फबतियाँ सुनाया करते हैं और कहते हैं कि इनका पेड़ोंमें पाठ 'आकृतिगण' * है।

शरीर खुरदरा, काठ कठोर, फूलमें सुगन्ध नहीं, फल भोज्य नहीं, हाँ हाथ लगाते ही काँटे गड़कर लोहूलुहान होनेका फल जरूर भोगा जा सकता है, छायातकमें काँटोंके मारे चैन नहीं, ऐसी दशामें आम्रादिके सामने ये कैसे वृक्ष? परन्तु उनका काठ दृढ़तामें बेजोड़ है, उनकी काँटेभरी डालियाँ अच्छे-अच्छे दीखनेवाले पेड़ोंकी रक्षाके

* संस्कृतव्याकरणके गणपाठमें कई शब्दोंका समूह (रूप) पुस्तकोंमें गिना दिया जाता है; परन्तु कितने ही शब्द गिनाये न जानेपर भी वैसी आकृति देखकर उस समूहमें सम्मिलित मान लिये जाते हैं। जैसे 'शकन्ध्वादिः' आकृतिगणः।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

काममें आती हैं, इस गुणसे वे भी उपादेय हो जाते हैं। किसीने कहा है—

अन्तः कर्कशता बहिश्च घटना मर्माविधैः कण्टकै-
इछायामण्डलसंस्पृशां तनुभृतामुद्वेजिनी संस्थितिः।
तन्नामास्तु विधेरिदं विलसितं बर्बूरशाखिन् सखे!
शाखा ते फलशालिनामपि वृतिः सम्पत्स्यते भूरुहाम्॥

'तुम्हारे भीतर कठोरता है, बाहर मर्मवेधी काँटोंसे भरे हो, तुम्हारी छायामें भी प्राणी कण्टकोंके कारण बड़े दुःखसे बैठते हैं। यह सब रहो। इसमें तुम्हारा दोष नहीं, विधि-विलास है। किन्तु हे मित्र बबूल! तुम्हारी शाखा बाड़ बनकर फलशाली वृक्षोंकी भी रक्षा करेगी।'

ठीक ही है। दोष होनेपर भी यदि उसमें गुण हो तो उसके दोष नहीं देखे जाते। सामान्य-सा गुण होनेपर भी जब उसके दोष सह्य हो जाते हैं, तब यदि कोई अद्भुत और अलौकिक गुण हुआ तो फिर उसके आगे दोषको कोई हेरने बैठेगा? शरणागत विभीषणमें उसके स्वीकार करनेके लिये 'शरणागति' रूपी एक ही ऐसा अलौकिक अद्भुत गुण है कि यदि इसमें अनन्त भी दोष हों तो वे भी उपादेय ही क्या, अभिनन्दनीय हो जायँ। इसी आशयसे यहाँ कहा है कि 'दोषो यद्यपि स्यात्, परं तस्य दोषोऽपि न त्याज्यः'—दोष यदि हों तो भी शरणागतिरूप गुणशाली उस विभीषणका दोष त्याज्य नहीं।

'इसमें दोष है, दोषके कारण यह त्याज्य है'—इस कथनपर भी मार्मिक दृष्टिसे आलोचनाकी जरूरत है। दोष और गुण दोनों ही आपेक्षिक हैं। एक आदमी जिस बातको गुण समझता है, दूसरा पुरुष उसी बातको दोष मानता है। एकके विचारसे शूरता रखना गुण है। वह कहता है कि शान्ति-ही-शान्तिके ढकोसलेमें हमें अपनी आत्माको दुर्बल नहीं बना देना चाहिये। किसीने यदि हमारा अपमान किया हो तो हम क्षमा करनेके बहाने उस बातको सह लेते हैं और धीरे-धीरे अपनी आत्माको भीरु बना लेते हैं। किन्तु यह किसी तरह भी हमारे लिये हितकर नहीं—

सर्वत्र लाघ्यते शूरो भीरुः सर्वत्र हन्यते।
पच्यन्ते केवला मेषाः पूज्यन्ते युद्धदुर्मदाः॥

'शूरका सब जगह आदर है; किन्तु डरपोक सब जगह मारा जाता है। खाली मेंढ़ा हाँडीमें पकाया जाता है, किन्तु लड़नेवाले मेंढ़ेको आदरसे लिये फिरते हैं।' शारीरिक बलके द्वारा तत्काल चमत्कार दिखानेवालेसे सब कोई डर जाते हैं। और तो क्या, वेदवाक्यतक उसकी हाँ-में-हाँ मिलाते हैं—

गुरुं हत्वा दिवं यान्ति तृणं छित्त्वा पतन्त्यधः।
बलिनां दुर्बलानां च श्रुतयोऽपि द्विधा स्थिताः॥

'गुरुको मारनेवाले स्वर्ग पाते हैं (अर्जुनादिने अपने बड़ोंको युद्धमें मारा था और उनकी सद्गति हुई थी) किन्तु दुर्बलोंको तृणमात्र छेदनमें प्रायश्चित्त लग जाता है। मालूम होता है बलवान् और दुर्बलोंके लिये श्रुतियाँ भी अलग-अलग हैं।'

दूसरा कहता है कि इस पशुबलकी कोई हस्ती नहीं। दूसरेने हमारा अपमान, बल्कि नुकसान भी किया हो तो उसे क्षमा कर देना, यही बड़ा भारी बल है। क्षमा ही नहीं, उसके बदले उसका उपकार करना यही शराफत है—

अपकारदशायामप्युपकुर्वन्ति साधवः।
छिन्दन्तमपि वृक्षः स्वच्छायया किं न रक्षति॥

'अपकार करनेपर भी सज्जन दूसरेका उपकार ही करते हैं। कुल्हाड़ेसे काटनेवालेकी भी वृक्ष अपनी छायासे क्या रक्षा नहीं करता?'

मैं समझता हूँ, विस्तार करनेकी जरूरत नहीं पड़ेगी। समझमें आ गया होगा कि दोष और गुणमें दृष्टिकोणका अन्तर है। किसीने कहा भी है—

न रम्यं नाऽरम्यं प्रकृतिगुणतो वस्तु किमपि
प्रियत्वं यत्र स्यादितरदपि तद्ग्राहकवशात्।
रथाङ्गाह्वानानां भवति विधुरङ्गारशकटी
पटीराम्भःकुम्भः स भवति चकोरीनयनयोः॥

'कोई भी चीज प्रकृतिके गुणसे न तो एकदम अच्छी ही है और न बुरी ही। जिस चीजमें अच्छापन होगा, दूसरे ग्राहककी दृष्टिमें वही बुरी भी हो सकती है। चक्रवाकोंके लिये चन्द्रमा दाह करनेवाली आगकी अँगीठी है; किन्तु वही चकोरोंके लिये शीतलता पहुँचानेमें चन्दनद्रवसे भरा हुआ एक घड़ा है।'

जब गुण-दोषोंकी यह परिस्थिति है तब निश्चितरूपसे कैसे कहा जा सकता है कि इसमें दोष है, अतएव इसका त्याग कर देना चाहिये। दूसरे, गुण होनेसे कोई वस्तु उपादेय हो जाय, यह भी सब जगह नहीं देखा जाता। जिसका जिसमें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रेम होता है, वह हजार दोष होनेपर भी उसे अच्छा लगता है—

ह्रियते गुणेन न जनो ह्रियते यो येन भावितस्तेन ।
मुक्ताफलानि मुक्त्वा गुञ्जा गृह्णन्ति किल पुलिन्द गणाः ॥

'गुणके कारणसे ही कोई प्रिय नहीं हो सकता । किन्तु जिसका जिसपर अनुराग होता है वह उसे अच्छा लगता है । गजमौक्तिकोंको छोड़कर व्याधलोग स्वाभाविक प्रेमके कारण गुञ्जा (घुँघची) की माला पसन्द करते हैं ।

यह सब भी जाने दीजिये । थोड़ी देरके लिये मान भी लिया जाय कि कोई चीज सबकी दृष्टिमें न सही, बहुतोंकी दृष्टिमें बुरी लग सकती है, अतएव उस चीजमें दोष है । किन्तु बहुत-से दोष भी तो गुणके सहारेसे उपादेय हो जाते हैं, यह पीछे भी कहा जा चुका है । जिस छत्रपति राजाके दरबारमें महामूल्य हीरा, पन्ना आदि रत्नोंकी नज़र करते हुए भी सामन्तगण हिचकिचाते हैं, भला उसके हाथमें सूखा पत्ता दिया जा सकता है ? गुलाब-मोतिया आदि सुगन्धित पुष्पोंके गजरे भी जहाँ थोड़ी-थोड़ी देरमें बदले जाते हैं वहाँ बेचारे सूखे पत्तेकी पहुँच कहाँ ? परन्तु पानके बीड़ेके सहारे ढाकका वह पत्ता भी उसी प्रभावशाली राजाके हाथतक जा पहुँचता है । खाली सूतका तार हमारे गलेमें भी यदि उलझा हो तो हमें बड़ा असह्य लगता है, तत्काल उसे तोड़ फेंकते हैं । फिर भला रत्नसिंहासनपर बैठे चक्रवर्ती राजाके गलेमें वह सूतका डोरा पहुँच सकता है ? परन्तु 'सुमनः स्तोमसंसर्गात्सूत्रं शिरसि धार्यते'—फूलोंके सम्बन्धसे तुच्छ डोरा भी सिरतकमें धारण किया जाता है ।

यही क्यों ? मिट्टी तो सबसे हेय है न ? भला उसे कोई अपने सुन्दर सुगन्धित पदार्थमें मिलाना चाहेगा ? किन्तु खस (उशीर) के साथ भूमिकी मिट्टी भी राजमहलके गवाक्षोंतक जा पहुँचती है । यह भी क्यों, खालिस मिट्टी, जो हमारे पैरोंसे खूँदनेमें आती है उसीपर बड़े भारी महाराजाधिराजतकको नाक रगड़ते देखा है । नकसीर जिस समय चलती है उस समय मिट्टीको गीला करके सूँघा जाता है । जल पड़नेपर उसमें एक तरहकी सुगन्ध आती है, जो नकसीरमें लाभदायक होती है । जब दोषसे भरी तुच्छ-से-तुच्छ वस्तु भी थोड़े-से ही गुणके कारण इस तरह उपादेय हो जाती है तब भला अद्भुत, अनुपम, अलौकिक गुणके रहते हुए भी किसी चीजको केवल इस सन्देहमात्रसे छोड़ा जा सकता है कि शायद इसमें दोष होगा । इसी आशयसे श्रीरामचन्द्र आज्ञा करते हैं—'यद्यपि दोषः स्यात् परं तस्य (शरणागतिरूपगुणशालिनः) दोषो न त्याज्यकोटिमाटीकते'—यद्यपि दोष हो तो भी शरणागतिरूपी अद्भुत गुणशाली उस विभीषणका दोष त्याज्य-कोटिमें नहीं आ सकता ।

अथवा—'दोषो यद्यपि स्यात् परं 'तस्य' !' 'दोष यद्यपि हो तो भी 'तस्य' वह उसका है ।' उसका होनेसे वह दोष भी मेरे लिये त्याज्य नहीं, प्रत्युत प्रिय है । जिस शरणार्थीकी पलकके पाँवड़े बिछाकर प्रतीक्षा किया करता हूँ, जो मुझे प्राणसे भी अधिक प्रिय है, क्योंकि मैं अपने प्राणोंको तो कष्ट दे लेता हूँ परन्तु शरणार्थीके कष्टको क्षणमात्र भी नहीं देख सकता, उसी मेरे परमप्रिय शरणार्थीकी जो कोई भी चीज है वह सभी मुझे अच्छी लगती है । दोष है तो क्या हुआ, है तो मेरे प्रिय भक्तका ही न ? अपने प्रीतिपात्रका किया हुआ दोष भी तो अच्छा लगता है—

अन्यमुखे दुर्वादो यः प्रियवदने स एव परिहासः ।
इतरेन्धनजन्मा यो धूमः सोऽगुरुभवो धूपः ॥

'जो वचन दूसरेके मुखसे कटु लगते हैं वही वचन अपने प्रियके मुखसे निकलनेपर परिहाससूचक होकर प्रीतिजनक हो जाते हैं । और काष्ठोंके ईंधनसे निकला हुआ धुआँ कहलाता है, जिससे सब घबराते हैं; किन्तु 'अगरु' से निकला हुआ धुआँ 'धूप' है, जो सबको प्रिय लगता है ।'

जिसपर अपने हृदयकी स्वाभाविक प्रीति हो जाती है फिर उसमें एक ही नहीं, चाहे अनेक ही दोष क्यों न हों—वह अच्छा ही लगता है । उसके दोष भी प्रिय लगने लगते हैं—

कुर्वन्नपि व्यलीकानि यः प्रियः प्रिय एव सः ।
अनेकदोषदुष्टोऽपि कायः कस्य न वल्लभः ॥

'जो प्रिय है वह चाहे कितने भी दोष करे, प्रिय ही रहता है । अपने शरीरमें अनेक रोग-दोष लगे रहते हैं; परन्तु कहिये वह किसको प्रिय नहीं लगता ?'

भगवान् श्रीरामचन्द्रको अपने शरणागत भक्तोंपर इतना प्रेम है कि अपना जीवन भी आप उनके अधीन मानते हैं । आप कहते हैं—'अप्यहं जीवितं जह्याम् ।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'जह्याम्'—इस सम्भावनार्थक 'लिङ्' से आप ध्वनित करते हैं कि 'यह सम्भव हो सकता है कि मैं अपना जीवन छोड़ दूँ'; परन्तु शरणागत भक्तका त्याग कर दूँ, यह सम्भव नहीं। जिन भक्तोंपर भगवान्‌का इतना वात्सल्य है, इतना स्नेह है, वे एक दोष क्या, अनन्त दोष होनेपर भी क्या कभी त्याज्य हो सकते हैं? जिसपर हमारा ऐसा प्रेम है कि बिना उसके जीना भी कठिन है, भला उसके दोष देखे जाते हैं? हमने तो देखा है कि वह अनेक दोष करता है और हम सब सहते हैं। उसपर भी विशेष यह है कि वह यदि अभिमानसे रूठ भी जाता है तो हमीं उसे मनाने बैठते हैं और हजार खुशामद करते हैं—

यं जीव्यते विना नोज्झनीयते स हि कृतापराधोऽपि।
प्राप्तेऽपि भवनदाहे वद कस्य न वल्लभो वह्निः॥

'जिसके बिना जीवन दुर्लभ होता है वह अपराध करनेपर भी रूठा हुआ मनाया जाता है। अपने घरका सर्वस्व जला देनेपर भी अग्नि किसको प्रिय नहीं?' उसने हमारी सब प्राणप्रिय चीजें जला दी हैं तो क्या हम यह कह सकते हैं कि अब अग्निका कभी नाम भी नहीं लेंगे। नहीं-नहीं, उसी दिन पेट भरनेके लिये जिस समय चूल्हा जलाने बैठते हैं, अग्नि नखरे करती है, बुझती है और हम सौ खुशामद करके उसे जलाते हैं। बात यह है कि 'दुधारू गायकी दो लात भी सहनी पड़ती है।' फिर भला जिससे हार्दिक प्रीति हो गयी और प्रीति भी कैसी कि जिसके बिना जीनातक मुश्किल हो जाता है, क्या उसीको दोषके कारण छोड़ा जा सकता है? नहीं-नहीं, मैं तो कहूँगा कि उसके दोष उससे भी बढ़कर प्यारे लगते हैं। बिहारी कहते हैं—'त्यौं त्यौं अति मीठी लगति, ज्यौं ज्यौं ढीठ्यौ देइ'—वह ज्यों-ज्यों ढिठाई करती है वैसे-वैसे और भी अधिक प्रिय लगती है। इसी आशयसे भगवान् श्रीरामचन्द्र आज्ञा करते हैं कि—'दोषो यद्यपि स्यात्, परं तस्य!' 'दोष यद्यपि हो तो भी वह 'तस्य' उसका है, मुझे वह भी प्रिय लगता है।'

अथवा—'स्यात्' यहाँ प्रार्थना-अर्थमें 'लिङ्' है। 'यद्यपि तस्य दोषः अस्ति, परं स्यात्! स दोषः अस्माभिः प्रार्थितः।' वह दोष रहे, यह हम चाहते हैं। 'तुष्यतु दुर्जनन्यायेन' हम मान लेते हैं और निश्चय भी कर लेते हैं कि उसमें दोष है; परन्तु हम चलाकर ही चाहते हैं कि वह दोष उसमें हो। दीनोद्धारक श्रीरामचन्द्र आज्ञा करते हैं कि वह दोष मेरे-लिये कार्यसिद्धिकारक है। शरणागत यदि गुणवान् हुआ और उस गुणवान्‌की रक्षा की तो, यह तो ठीक ही है। इसमें कौन-सी बड़ी बात हुई। मैं ही क्या, गुणवान्‌का सब आदर करते हैं। गुण ग्रहण करके यदि उसे शरण दी तो, यह तो बदला हो गया—गुणके मोलमें शरण देना हुआ। बाट, तराजू बगलमें लिये जो देवता बैठे हैं और अच्छे कामोंको तराजूमें तोलकर उनके बदलेमें जो सुख दिया करते हैं, रक्षा किया करते हैं, उनमें और भगवान्‌में फिर क्या अन्तर रहा? पुण्यका सिक्का परखकर एवजमें रक्षा करनेवाले तो गण्डों देवता भरे पड़े हैं। सिक्का परखकर रक्षा करनेवाले तो देवता ही क्या मनुष्य भी बहुत होंगे। 'शुक्लाम्बरधरम्' (रुपये) की शक्ति तो सब विघ्नोंकी शान्तिके लिये प्रसिद्ध है! उसे देखकर तो पुलिस पुरुषोत्तम भी डण्डा लेकर अगाड़ी हो जाते हैं। सुकृतिके बदलेमें किसीको आश्रय देना, उसका भला करना, तो एक तरहका व्यापार है। उसमें क्या अहसान हुआ और क्या नामवरी हुई? महत्त्व इसीमें है कि जिस पुरुषमें कोई भी गुण नहीं; बल्कि दोष भरे हों, ऐसा वह दीन शरणमें आये और उसकी रक्षा की जाय। तुलसीदासजी कहते हैं—

भूमिपाल ब्योमपाल नाकपाल लोकपाल,
कारन कृपालु, मैं सबैके जीकी थाह ली।
कादरको आदर काहूके नाहिं देखियत,
सबनि सुहात है सेवा सुजान टाहली॥
'तुलसी' सुभाय कहै, नाहीं कछु पच्छपात,
कौनें ईस किये कीस भालू खास[2] माहली।
रामहीके द्वारेपै बुलाइ सनमानियत,
मोसे दीन दूबरे कुपूत कूर काहली॥

दोषोंके कारण सब जगहसे जो निराश हुआ है, सब देवताओंने जिसे जवाब दे दिया है, उस निराश्रयकी रक्षा करना ही तो रक्षा करना है। पुण्यका पाथेय बगलमें बँधा रहनेपर तो सब जगह सुख अपने आप ही मिल जायगा। भारी गठरी होनेपर तो बैठना सब जगह मिलता ही है। यों देखिये कि अमीरपरवर (बड़े आदमियोंके रक्षक) की तो कोई-सा ही तारीफ करता होगा, परन्तु ग़रीबपरवरकी प्रशंसा प्रत्येक पुरुष करेगा। अजी जिस धनवान्‌के साथ

१ सेवामें चतुर, टाहली (टहल करनेवाला)
२ खास महलके रक्षक।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दस आदमी सँभाल करनेवाले चल सकते हैं उसकी आपने मदद की तो इसमें कौन बड़ी बात हुई ? लोग यही जानेंगे कि आप उसकी खुशामद करते हैं। आप यह चाहते कि आगे चलकर इससे आपको अधिकाधिक फायदा हो। किन्तु रास्ता चलनेवाले निराश्रय दीनकी जिस समय आप रक्षा करते हैं, लोग आपकी उदारताका हृदयसे सम्मान करते हैं। इसीलिये दीनदयालु होना तारीफ़की बात है, धनाढ्यदयालु तो स्वार्थके लिये हर एक हो जायगा। भगवान्‌की शरण्यता भी इसीलिये सबसे बढ़कर है कि आपके यहाँ दीनातिदीन, हीनातिहीन भी आश्रय पाता है। भक्त भगवान्‌को उलहना देता है—

मोसो गरीब निवाजत नाहिं तो काहे गरीबनिवाज कहावत।

बीमारीमें उलझे हुए रोगीके लक्षणोंको देखकर जिस समय वैद्य किनारा कर गये हों, अच्छे-अच्छे डाक्टरोंने जवाब दे दिया हो, सिविलसर्जनतकने भी जिसे 'असाध्य' बता दिया हो, उसी रोगीको जिस समय वैद्यराज अच्छा कर देते हैं उस समय तमाम शहर ही क्या, प्रान्तभरमें हल्ला मच जाता है। वैद्यराजकी जगह-जगह तारीफ होने लगती है। समझदार भी उन्हें धन्य-धन्य कह उठते हैं। यों तो जुकाममें सोंठ, मिर्च, पीपलकी व्योषादिवटी देनेवाले वैद्यमार्तण्ड इस ज़मानेमें कहाँ नहीं मिलेंगे ? इसी तरह शरण देनेवाले 'शरण्य' की भी प्रशंसा इसीमें है कि चाहे जैसा हीन, दोषी, देवताओंसे तिरस्कृत चला आये, वह उसे छातीसे लगा ले, उसे संकटसे बचा ले। अच्छे-अच्छे पुण्यवानोंको, बड़े-बड़े तपस्वियोंको, आजन्म ब्रह्मचारियोंको ही यदि अवलम्बन मिला हो तो वह 'शरण्य' के लिये गौरवकी बात नहीं। हीन-से-हीन, दीनातिदीन, अपाहिज, विकल, देवताओंसे ठुकराये हुए भी जहाँ रक्षा पाते हों वही 'शरण्य' का दरवाज़ा वन्दनीय है। भगवान्‌के विरुद और स्तुतिसूचक विशेषण अनन्त हैं; परन्तु भगवान्‌से भक्त कहते हैं कि आपमें सबसे महत्त्वकी बात यही है आप 'अधम-उधारण' हो, 'दीनदयालु' हो। परमहंस, मुनि, योगी आपसे मुक्ति पाते हैं, पाते होंगे। जो इस काष्ठातक पहुँचा हो वही इसकी खबर रक्खे। हम तो हीन और अधम हैं। हमें तो आपकी अधम-उद्धारकतासे मतलब है—

जडानन्धान् षङ्गून् प्रकृतिवधिरानुक्तिविकलान्
ग्रहग्रस्तानस्राखिलदुरितनिस्तारसरणीन्।
निलिम्पैर्निर्मुक्तानपि च निरयान्तर्निपततो
नरानम्ब त्रातुं त्वमिह परमं भेषजमसि॥

'मूर्ख, अन्धे, लँगड़े, जन्मसे ही बधिर, गूँगे, ग्रहोंकी जिनपर फटकार पड़ी हो, ऐसे पतित कि जिनके पाप दूर होनेके रास्ते ही बन्द हो चुके हों, देवताओंने जिन्हें छोड़ दिया हो, नरकमें जिनका पड़ना निश्चित हो, ऐसे भी मनुष्योंकी रक्षा करनेके लिये हे गङ्गे ! आप ही एक अद्भुत ओषधि हो।'

करुणावतार भगवान् श्रीरामचन्द्रकी दीनोद्धारकता अद्वितीय है। उसकी तुलनाका विचार करना भी असम्भव है। जिनसे अधम कोई हो नहीं सकता, सब प्रकारसे जो हीन थे, उन्हें भी आपने शरण दी है और वह गति दी है जो बड़े-बड़े महात्माओंतकको न मिली। गोस्वामीजी कहते हैं—

गनिका गज गीध अजामिलके गनि पातकपुञ्ज सिराहिं न जू।
लियें बारक नाम सुधाम दियो जिहिं धाम महामुनि जाहिं न जू॥

जिस दयालुके यहाँ प्राणिमात्रके लिये अभयदानका दरवाज़ा खुला है, कोई क्यों न आओ, आप उसे शरणमें लेते हैं। किसी तरहकी भी क़ैद नहीं, रोक-टोक नहीं। 'सकृदेव प्रपन्नाय'—जो एक बार भी अपनी तरफ आ जाता है, उसे 'अभयं सर्वभूतेभ्यो ददामि'—यावन्मात्र प्राणियोंसे अभय दे देते हैं। भला इससे बढ़कर कोई अधमोद्धारकता होगी ? बात यह है कि शरणागत होनेपर भगवान् उस शरणार्थीके गुण-अवगुणपर दृष्टि ही नहीं देते। वह तो अपने 'व्रत' का विचार करते हैं। प्राणिमात्रको अभय देनेकी जो आपने प्रतिज्ञा की है, उसपर दृष्टि देते हैं। दीनोद्धारकताकी जो दीक्षा ली है उसीकी तरफ जाते हैं। जो दीन हो चुका, भला उसके अब दोष कुरेदे जायँगे ? गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

बेद न पुरान गान जान्यो न बिग्यान ग्यान,
ध्यान धारना समाधि साधन-प्रबीनता।
नाहिंन बिराग जोग जाग भाग तुलसीके,
दया दीन दूबरों हों पापहीकी पीनता॥
लोभ मोह काम कोह दोषकोष मोसो कौन,
कलिहू जो सीख लई मेरियै मलीनता।
एक ही भरोसो राम रावरो कहावत हों,
रावरे दयालु दीनबन्धु मेरी दीनता॥

करुणावरुणालय भगवान् श्रीरामचन्द्रकी जब यह दीन-दयालुता, अधमोद्धारकता, अशरणशरण्यता त्रिभुवनमें प्रसिद्ध हो चुकी है तो भला अब उसमें अकीर्तिका कलङ्क लगाया

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जा सकेगा ? निराश्रय, दीन बेचारे शरणागतके दोष-गुणों-की पूछ-ताछ करके त्रिलोकविख्यात उसी कीर्तिकौमुदीमें कलङ्ककालिमा जोड़ी जा सकेगी ? नहीं-नहीं, आपकी दीनोद्धारकता सदा यों ही अक्षुण्ण बनी रहेगी। त्रिलोकी-को शरण देनेवाले आपकी कीर्ति इसीमें है कि आप 'शरण' शब्दको सुनते ही चाहे जैसा दोषी हो, उसे भी अङ्गीकार कर लेते हैं। निर्दोषको शरण देनेमें सर्वसाधारण-की दृष्टिमें गुण जरूर है परन्तु बड़ा मन्द; किन्तु दोषीको भी अङ्गीकार करनेमें बड़ा भारी यश है तथा शरणागत-रक्षणरूपी जो व्रत आपने ले रक्खा है उसको उत्तेजना मिलती है। इसीलिये भगवान् श्रीरामचन्द्र आज्ञा करते हैं कि—'यद्यपि तस्य दोषोऽस्ति, परं स स्यात्' मान भी लिया जाय कि उसमें दोष है परन्तु वह रहे, यह मैं चाहता हूँ। वह दोष मेरेलिये चलाके चाहा हुआ है।

ठीक है, दोषीको भी अङ्गीकार करना आपकी दीन-दयालुताके तो अनुकूल ही है; परन्तु दयावश होकर दुष्टको शिष्टका-सा आदर देना कहीं शिष्टसम्प्रदायमें अनुचित न गिना जाय ? दूसरे, आपके ही मन्त्रीलोग इसको शरण देना उचित नहीं समझ रहे हैं, ऐसी हालतमें सम्भव है कि न्यायके परखनेवाले लोगोंमें आपकी निन्दा हो, अतएव आगे कहते हैं—'सतामेतदगर्हितम्'। 'एतत्'—यह आश्रितके दोषोंको अङ्गीकार करना 'सताम् अगर्हितम्'—सज्जनोंसे अनिन्दित है। 'स्नेहः पापशङ्की'—स्नेह बुरी शङ्का किया ही करता है—इसके अनुसार मेरे पक्षपातीलोग मुझमें स्वाभाविक स्नेह होनेके कारण 'यह सदोष है, अतएव आगे जाकर हमारा कोई अत्याहित न कर बैठे'—इस डरसे इसे अङ्गीकार करना अनुचित समझते हों, अस्थानमें भी भयकी शङ्का करनेवाले, निर्मल दिव्य फर्शपर भी अत्यधिक होशियारीके कारण फूँक-फूँककर पैर रखनेवाले सङ्कुचित नीत्यभिमानी भी चाहे इसे बुरा मानते हों; परन्तु परमार्थ-दर्शी, उदार, महामना सज्जन इसपर कभी निन्दाकी टिप्पणी नहीं कर सकते। क्योंकि यहाँ शरणधर्म यही कहता है। तिर्यग्योनि पक्षी कपोततक भी अपनी स्त्रीको हरनेवाले स्वाभाविक वैरी बहेलिया (व्याध) को भी शरणार्थी होनेके कारण त्याग नहीं करता। केवल उसको आश्रय ही दिया हो सो नहीं, अपने शरीरके मांससे उसकी रक्षातक की। जब धर्म यह है, तब धर्मकी रक्षाका बाना लिये हुए हमलोग शरण आयेको दोषकी शङ्कामात्रसे छिटका देंगे ? नहीं, अतएव यहाँ कहते हैं—'सताम् एतत् अगर्हितम्।' मेरे पक्षपाती चाहे कुछ ही कहा करें, परन्तु 'सताम्' परमार्थ-दर्शी लोगोंकी दृष्टिमें यह 'अगर्हितम्' निन्दित नहीं है।

अच्छी बात है। थोड़ी देरके लिये यह भी स्वीकार कर लिया जाता है कि यह दोषी है, तो भी शरणागत होनेके कारण इसको अङ्गीकार कर लेना चाहिये; परन्तु इससे कौन-सी प्रयोजनसिद्धि होगी ? 'प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते'—बिना किसी प्रयोजनके मूर्ख भी किसी काममें प्रवृत्त नहीं होता। प्रत्येक काममें फलका अनुसन्धान करके ही हम आगे बढ़ा करते हैं। हमारे कार्योंमेंसे कई कार्य तो ऐसे हैं जिनसे त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) की सिद्धि होती है। कितने ही कार्योंका फल होता है पापक्षय। तीर्थादिका सेवन करना, व्रत पालन करना, प्रायश्चित्तादि करना—ऐसे-ऐसे कार्योंका फल यह है कि हमारे पापोंकी निवृत्ति हो जाय। कई कार्य ऐसे भी होते हैं जिन्हें किसी फलविशेषके अनुसन्धानसे नहीं किया जाता; परन्तु उनको न करनेसे प्रत्यवाय जरूर लगता है। 'सन्ध्या' करनेसे फल-विशेषकी प्राप्ति नहीं होती; परन्तु द्विजाति यदि 'सन्ध्या-वन्दन' न करे तो पाप अवश्य लगेगा। क्योंकि वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यके लिये आवश्यक कर्तव्य है। इस तरह इस फल-विभागको दृष्टिमें रखते हुए यहाँ विचार कीजिये कि वैरिपक्षसे आये हुए दोषी इस शरणार्थीके स्वीकार करनेसे हमको कौन-सा फल होगा ? इसपर उदारहृदय, त्रिलोकैक-सखी, आदर्श पुरुष भगवान् श्रीरामचन्द्र आज्ञा करते हैं—'सतामेतदगर्हितम्'—सज्जनोंकी गोष्ठीमें हमारी निन्दा न हो, यही इसका फल है।'

अपना घोर अपकार करनेवाले, स्त्रीका हरण करके मर्मान्तक कष्ट पहुँचानेवाले, सहजशत्रु व्याधके भी मुखसे जिस समय 'शरण' यह शब्द सुन लेता है उस समय तिर्यग्-योनि कपोततक भी उसकी रक्षा करता है। और तो क्या, अपने शरीरके मांससे उसको तृप्ततक करता है; परन्तु 'मर्यादानां च लोकस्य कर्ता कारयिता च सः'—वह रामचन्द्र लोककी मर्यादा स्थापन करने और करानेवाले हैं—यों प्रख्यातकीर्ति रघुकुलोत्पन्न रामचन्द्रने हाय-हाय ! बड़ी आशा-से आये हुए शरणार्थीको दोषकी शङ्कासे विमुख लौटा दिया, यों विचारशीलोंकी गोष्ठीमें मेरी स्पष्ट निन्दा होगी। मेरे कुछ कार्योंको देखकर लोग मेरी प्रशंसा करेंगे, आदर्श पुरुष कहकर गौरव देंगे; परन्तु ऐसे-ऐसे कार्योंपर विवेकीलोग जरूर नाक-भौं सिकोड़ेंगे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जिन रघुवंशी राजाओंके दरवाजेसे याचक कभी वापस नहीं लौटा—

किं त्वर्थिनामर्थितदानदीक्षा-
कृतव्रतश्लाघ्यमिदं कुलं नः।

'हमारे कुलकी यही श्लाघा है कि इस कुलने याचकोंके मनोरथ पूर्ण कर देनेका दीक्षाव्रत लिया है' यह जिनको अभिमान है, जिन रघुवंशियोंके समीप कैसी ही कठिन, दुष्पूर कामना लेकर चाहे याचक क्यों न आया हो, परन्तु उस कामनाके लिये तो उसे कभी दूसरा दरवाजा नहीं देखना पड़ा। मेरे समीप आकर भी याचक 'वदान्यान्तरं गतः'—दूसरे दानीके पास गया—यह 'परीवादनवावतारः'—मेरे लिये अभूतपूर्व घोर अपवाद है, यह जिनका बाना था, उन्हीं रघुवंशियोंके कुलमें उत्पन्न हुए रामके दरवाजेसे याचक ही क्या, 'राघवं शरणं गतः'—मैं राघवके शरण आया हूँ—यों आर्तनाद करनेवाला शरणार्थीतक पराङ्मुख लौट गया, यह मेरी निन्दा न हो, यही इस कार्यका फल है। अतएव श्रीरामचन्द्र कहते हैं—'सतामेतदगर्हितम्'—'एतत्' यह कार्य (शरणागतका स्वीकरण) 'सताम् अगर्हितम्'—सज्जनोंसे गर्हणीय न होगा। अतएव मैं इस निन्दासे बच जाऊँगा।

अथवा दोषीका संग्रह करना शिष्टोंसे निन्दित है तथा शास्त्रोंमें भी दोषीका सम्बन्ध निषिद्ध बताया है, अतएव शास्त्रविरुद्ध होनेके कारण इसका अङ्गीकार करना ठीक नहीं, इस शङ्काके उत्तरमें आप आज्ञा करते हैं—'सतामेतद-गर्हितम्'—सामान्यविशेषशास्त्रविदां सताम् एतत् अगर्हितम्—साधारण विद्वान् चाहे इसे बुरा कह उठे, परन्तु सामान्य और विशेष शास्त्रोंकी व्यवस्था जाननेवाले सज्जनोंकी दृष्टिमें यह अगर्हित है।

अर्थात् 'दुष्टका परित्याग करना' यह सामान्य शास्त्र है; किन्तु 'शरणागत चाहे दुष्ट भी हो, परन्तु उसे पीछा न लौटावे'—यह विशेष शास्त्र है। क्योंकि वेदमें कहा है—'तस्मा-दपि वध्यं प्रपन्नं न प्रतिप्रयच्छन्ति'—प्राणदण्डके भी योग्य दोषी हो और वह 'प्रपन्न' शरणागत हो जाय तो उसे पराङ्मुख नहीं लौटाते हैं। अतएव इस विशेष वचनके कारण दोषीका भी संग्रह गर्हणीय नहीं हो सकता। क्योंकि सामान्यकी अपेक्षा विशेष शास्त्र बलवान् हुआ करता है। जैसे—'सत्यं ब्रूयान्न चानृतम्'—सत्य बोले, झूठ कभी न बोले—इत्यादि वचनोंसे सत्य बोलना सामान्यतया शास्त्र-विहित है और झूठ बोलना निषिद्ध। परन्तु—

स्त्रीषु नर्मविवाहे च वृत्त्यर्थे प्राणसङ्कटे।
गोब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम्॥

'स्त्रियोंके अनुनयमें, परिहासमें, विवाहमें, किसीकी जीविकाके लिये, किसीके प्राण बचानेके लिये, गो और ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये, हिंसासे बचनेके लिये झूठ बोलना निन्दित नहीं।' यह विशेष वचन हुआ। अतएव झूठ बोलना निषिद्ध अवश्य है, परन्तु इस विशेष वचनके कारण ऊपर बताये हुए स्थानोंपर यह बुरा नहीं गिना जाता। इसलिये भगवान् श्रीरामचन्द्र भक्त विभीषणके स्वीकारमें शास्त्रविरोधका भी परिहार करते हुए कहते हैं कि—'सता-मेतदगर्हितम्'—विशेषज्ञ विद्वानोंके लिये यह गर्हणीय नहीं, किन्तु प्रशंसनीय है।

भगवान् 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ' हैं; परन्तु भगवान्-की भी शक्ति कहीं जवाब दे देती है, आप भी कहीं अशक्त हो जाते हैं। वह यही स्थल है कि जहाँ आपने 'शरण' यह शब्द सुना कि फिर उसके बोलनेवाले शरणार्थीको त्याग करनेकी शक्ति आपमें नहीं रहती। इस तरह भगवान्के सिवा कोई सर्वज्ञ नहीं। यदि त्रिलोकीमें सर्वज्ञ कोई हो सकता है तो वह भगवान् हैं। परन्तु भगवान्का भी ज्ञान कहीं कुण्ठित होता हुआ देखा जाता है। जिस समय शरणार्थी आपके सामने आ जाता है फिर दोष किसे कहते हैं और गुण क्या होता है, यह ज्ञान आपके पास नहीं रहता। अतएव सर्वशक्ति भगवान्की अशक्ति और सर्वज्ञ भगवान्-का भी अज्ञान इस पद्यमें महर्षि वाल्मीकिने स्पष्ट ही तो दिखाया है, जो जगदेकशरण्य भगवान् श्रीरामचन्द्रके लिये और भी माहात्म्यजनक है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सत्यं शिवं सुन्दरम्

(लेखक—दण्डिस्वामी श्रीसहजानन्दजी सरस्वती)

अथर्ववेदके माण्डूक्योपनिषद्में हम स्पष्टरूपसे पढ़ते हैं कि—

प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ॥ ७ ॥

'विश्व, तैजस, प्राज्ञके सिवा जो चौथा है वह दुनियाके झमेलेसे दूर, शान्त, अद्वैत शिव है; वही आत्मा है, उसे ही जानना चाहिये।' यही बात उसी प्रकरणके उपसंहारमें 'प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैतः' शब्दोंके द्वारा दुहरायी भी गयी है। इससे पता चलता है कि जिसका शास्त्रकार तुरीय, ब्रह्म आदि शब्दोंसे निर्देश करते हैं वही आत्मा है और वही शिव भी है।

सामवेदीय केनोपनिषद्के तृतीय खण्डमें ब्रह्मकी कृपासे देवताओंकी विजय होनेके कारण असुरों तथा औरोंकी दृष्टिमें बहुत बड़े होनेकी उनकी दशाका वर्णन कर लिखा गया है कि वे अज्ञानवश यह न समझ सके कि हमारी यह विजय और यह महिमा एकमात्र ब्रह्मकी कृपाका फल है और हम अकिञ्चित्कर हैं। इसके विपरीत उन्होंने यह मान लिया कि हमींने अपने बाहुबलसे यह सब कुछ प्राप्त किया है। उनकी यह भारी भूल समझा देनेके ही विचारसे उनकी गोष्ठीके समक्ष एक विलक्षण दैवी व्यक्ति (यक्ष) के रूपमें ब्रह्मका आविर्भाव हुआ है, जिसे समझनेकी कोशिश बारी-बारीसे सभी नामी-गरामी देवताओंने की है और उसके सामने अपनी-अपनी महत्ताका परिचय भी देना चाहा है। लेकिन अन्तमें एक-एक करके सभी अनुत्तीर्ण हुए हैं। आखिरकार इन्द्रकी बारी आयी है। उसके जाते ही यक्ष लापता हो गया है, पर उसी स्थानपर एक अत्यन्त रमणीय स्त्री उमा नामकी, जिसका जन्म या सम्बन्ध हिमवान् (हिमालय) से था, इन्द्रकी दृष्टिमें आती है—

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमां हैमवतीम् ॥ १२ ॥

उसी हैमवती उमासे इन्द्रने जब उस यक्षका परिचय पूछा है तो उसने उत्तर दिया है कि यह वही ब्रह्म है जिसकी एकमात्र कृपासे आपलोगोंको विजय मिली है और आप-लोग बड़े कहलाये हैं, ऐसा ही मानिये, नहीं तो आपकी हस्ती क्या ?

सा ब्रह्मेति होवाच, ब्रह्मणो वा एतद्विजये महीयध्वमिति। (केन० ४। १)

ऐसा सुन इन्द्रने अपनी भूल समझ यह मान लिया है कि यह सब कुछ ब्रह्मकी ही कृपा है—'ततो हैव विदाञ्चकार ब्रह्मेति।' इससे विदित होता है कि हैमवती (हिमालय-सम्बन्धिनी) उमाका परब्रह्मके साथ कोई पक्का सम्बन्ध और पूरी जानकारी थी या है और वही ब्रह्मकी जानकारी औरोंको करा सकती थी या करा सकती है। साथ ही इन्द्रको ही सबसे पहले सच्चा ब्रह्मज्ञान हुआ। सामवेदके ही छान्दोग्योपनिषद्के आठवें अध्यायके सातसे लेकर बारहवेंतकके खण्डोंमें आख्यायिकाके रूपमें सिद्ध किया गया है कि औरोंके साथ कोशिश करनेपर भी केवल इन्द्रको ही ब्रह्म या आत्माका यथार्थ ज्ञान हुआ है। केनोपनिषद्की आख्यायिकासे यह भी पता लगता है कि उमाका हिमालय (हिमवान्) से सम्बन्ध है, वह पार्वती भी कही जा सकती है।

यजुर्वेदके बृहदारण्यकोपनिषद्के द्वितीयाध्यायके पाँचवें ब्राह्मणके अन्तमें लिखा है—'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते'—इन्द्र ही मायाके सम्बन्धसे अनेक रूपधारी मालूम होता है। यजुर्वेदके ही श्वेताश्वतरोपनिषद्के चौथे अध्यायमें लिखा है—

अस्मान्मायी सृजते विश्वमेत-
तस्मिंश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः ॥
मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
(९-१०)

इसका सारांश यह है कि परमात्मा या महेश्वर (ब्रह्म) ही मायाके सम्बन्धसे समूची सृष्टि करता और उसी मायाके अधीन होकर अन्य (जीव) रूपमें बद्ध हुआ प्रतीत होता है। दोनों वाक्योंको मिलानेसे प्रतीत होता है कि इन्द्र नाम उसी परमात्माका है और वही इन्द्र जीवके रूपमें अज्ञानमें फँसा हुआ सब तरहकी भ्रान्त कल्पनाएँ किया करता है। यह जीव उसी इन्द्रका रूप है। अन्तर इतना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ही है कि यह मायाके मातहत है—भूला हुआ है और इसे पथदर्शककी आवश्यकता है ताकि अपने असली स्वरूपको जान जाय।

ऋग्वेदीय ऐतरेय उपनिषद्के प्रथमाध्यायके अन्तमें—

स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततममपश्यदिदमदर्शमिति। तस्मादिदन्द्रो नामेदन्द्रो ह वै नाम, तमिदन्द्रं सन्तमिन्द्र इत्याचक्षते परोक्षेण। (३।१३-१४)

—वाक्योंमें स्पष्ट ही कह दिया है कि जीवात्मा उसी ब्रह्मको सर्वत्र व्याप्त आत्माके रूपमें प्रत्यक्षरूपसे जानता है, अतएव उसे 'इदन्द्र' कहते-कहते अन्तमें 'इन्द्र' कहने लगे।

केनोपनिषद्की ऊपरवाली बातसे लेकर यहाँतकके विवेचनसे सामान्यतया यह बात प्रतीत होती है कि मूल इन्द्र या जीवात्माको वास्तविक इन्द्र, परब्रह्म या शिवके स्वरूप और उनकी महत्ताका ज्ञान करानेवाली हैमवती (पार्वती) उमा ही है—वही उस शिवके रहस्य और माहात्म्यको जानती है। उसके सिवा कोई दूसरा साधन उस शिव या ब्रह्मके ज्ञानका नहीं है। अन्यथा इन्द्र और ब्रह्मके मध्यमें उमाके आविर्भावकी कोई आवश्यकता ही नहीं थी। केनोपनिषद्के उसी प्रकरणमें ब्रह्म (यक्ष) के तिरोहित होने और उमाके प्रकट होनेकी बात लिखी है। लेकिन यह कहीं नहीं लिखा है कि उपदेशके बाद उमा भी जैसे आविर्भूत हुई थी वैसे ही तिरोहित हो गयी या कहीं चली गयी। इसका आशय यही है कि या तो वह ब्रह्म (शिव वा यक्ष) के स्वरूपसे अलग नहीं है। अतएव पृथक् वर्णनकी आवश्यकता नहीं। दोनोंका आविर्भाव और तिरोभाव एक ही है। अथवा यह कि वह स्वप्न-नगरकी तरह मिथ्या तथा मायामय है, जिसका अस्तित्व कभी है ही नहीं, फिर तिरोधान कैसा? या यह कि उसके बारेमें ऊपरकी दोनों ही बातें हो सकती हैं—यानी वह शिवस्वरूपा भी है और मिथ्या भी।

पुराणोंमें पार्वती या उमाको शिवकी अर्द्धाङ्गिनी बताते हुए अभिन्न कहा है और शिवके साथ सभी प्रकारसे उमाकी अनन्यता सिद्ध की गयी है। और वेदान्तवादियोंने कहा है कि परब्रह्मकी प्राप्ति, उसकी जानकारी ब्रह्मविद्यासे ही होती है। जैसा कि अथर्ववेदीय मुण्डकोपनिषद्के प्रथम खण्डमें लिखा है—

द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च॥ ४॥ ..... अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते॥ ५॥

'विद्याओंके परा और अपरा—ये दो भेद हैं, जैसा कि ब्रह्मवेत्तालोग कहा करते हैं। इनमें अपरा वही, जिसके द्वारा अविनाशी (अक्षर) ब्रह्मका ज्ञान होता है।' अपराविद्याको ही ब्रह्मविद्या भी कहते हैं। खण्डनखण्डखाद्यके प्रथम श्लोकमें ही श्रीहर्ष कहते हैं—

अविकल्पविषय एकः, स्थाणुः पुरुषः श्रुतोऽस्ति यः श्रुतिषु।
ईश्वरमुमया न परं वन्देऽनुमयापि तमधिगतम्॥

इसका अभिप्राय यही है कि जिस निर्विकार ब्रह्मका वर्णन वेदोंमें मिलता है वही 'ईश्वर' और 'स्थाणु' शब्दोंसे भी कहा जाता है और उसकी जानकारी उमा एवं अनुमा (अनुमान) दोनोंसे ही होती है। कोषोंमें स्थाणु और ईश्वर-नाम शिव या महादेवके मिलते हैं और पार्वतीको ही 'हैमवती' तथा 'उमा' भी कहा है। इससे प्रकट है कि परब्रह्मका ही नाम 'शिव' और ब्रह्म (अपरा) विद्याको ही 'उमा' या 'पार्वती' कहते हैं। 'शिव' नाम है कल्याण करनेवालेका या जो स्वयं कल्याणस्वरूप हो। परब्रह्म तो स्वयं कल्याण (मोक्ष) रूप ही माना जाता है और उसकी ही प्राप्ति कल्याणकारिणी है।

ब्रह्मविद्यामें दो भाग वेदान्तियोंने माने हैं। एक अन्तःकरणकी वृत्ति जो मिथ्या, त्रिकालबाधित है। दूसरा चेतन ब्रह्म या आत्माका प्रतिबिम्ब जो ब्रह्मस्वरूप ही है। इसीलिये उमा या ब्रह्मविद्याको शिवसे अभिन्न या अर्द्धाङ्ग कहा है। ब्रह्मविद्याके बिना ब्रह्म या आत्मा अधूरा ही प्रतीत होता है—दुखिया और क्षीण मालूम होता है। ब्रह्मविद्यामें जो चेतनांश है वह तो ब्रह्मसे अभिन्न ही है। रह गयी अन्तःकरणकी वृत्ति। वह तो मिथ्या है, त्रिकालबाधित है। यही कारण है कि केनोपनिषद्में हैमवती उमाका तिरोभाव पृथक् नहीं कहा है। क्योंकि उमाका जो चेतनभाग है वह तो ब्रह्मरूप ही है और जडभाग (अन्तःकरणकी वृत्ति) तो नित्य निवृत्त है, तिरोहित है। उमाको 'हैमवती' इसीलिये कहा है कि हिमालयके समान शान्त, एकान्त और शीतल मस्तिष्कमें ही ब्रह्मविद्याका आविर्भाव तथा प्रकाश होता है! जहाँ चञ्चलता, विषयवासनाओंका नृत्य, सांसारिक तापोंका ताण्डवनृत्य होता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रहे, उस दिमागमें, अन्तःकरणमें ब्रह्मविद्याका समुदय कहाँ ? वहाँ तो वृत्तियोंका निरोध (योग) चाहिये। ब्रह्मज्ञानी, योगीका मन तो सांसारिक वासनाओंसे हिल-डोल नहीं सकता, हिमवान्‌की तरह शीतल, शान्त और अविचल रहता है। अतएव वहींसे प्रकट होनेवाली उमा-स्वरूप ब्रह्मविद्या शिव (परब्रह्म) के वास्तविक स्वरूप और उसकी महिमाको हृदयङ्गम करा सकती है।

पुराणोंमें शिवको श्मशानवासी, नरमुण्डधारी और व्यालजालविभूषित भीषण रूपवाला कहा है। पुष्पदन्तने भी महिम्नःस्तोत्रमें 'श्मशानेष्वाक्रीडा' आदि श्लोकमें यही प्रदर्शित किया है, जिसका भाव यही है कि शिव सहसा गम्य नहीं हैं, अगम्य हैं। कठोपनिषद्‌में भी कहा है कि—

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया
दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति॥
(१।३।१४)

जिसका तात्पर्य तुलसीदास यों कहते हैं—

ग्यानक पंथ कृपानकि धारा।
यहि सर आवत अति कठिनाई।

संन्यासियोंके सम्प्रदायमें कहा जाता है कि बिना मुर्दा बने ब्रह्मज्ञान कहाँ ? इसका अभिप्राय यही है कि जीते जी राग-द्वेष, मानापमान आदिसे इस तरह रहित हो जाना चाहिये जिस तरह मुर्दा होता है। तभी ब्रह्मज्ञानके योग्य कोई हो सकता है। जनकके बारेमें कहा जा सकता है कि न तो उन्हें पुष्पशय्याका सुख और न सर्प आदिके काटने-का दुःख प्रतीत होता था। बिना ऐसा बने कोई भी शिवस्वरूप नहीं हो सकता, प्रपञ्चोपशम—सब सांसारिक झंझटोंसे फारिग नहीं हो सकता। क्योंकि शिव तो श्मशानवासी और नरमुण्डधारी है, माण्डूक्यके शब्दोंमें प्रपञ्चोपशम है।

छान्दोग्योपनिषद्‌के छठें अध्यायमें श्वेतकेतु और उनके पिता उद्दालकके संवादमें आत्मा और ब्रह्मकी एकता दिखाते हुए उसे सत् और सत्य शब्दोंसे बोधित किया है और जो लोग ब्रह्मको असत् माननेवाले शून्यवादी हैं उनके मतका खण्डन किया है—

सदेव सोम्येदमग्र आसीत्··· कथमसतः सज्जायेत।

और समूचे संवादमें एक-एक शङ्का उठाकर नौ बार उपसंहार करते हुए कहा है—

तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो।
(६।९।४)

इसका अभिप्राय यही है कि हे श्वेतकेतु ! वही ब्रह्म सत्य है और वही आत्मा है और तुम भी वही ब्रह्म हो, न कि उससे पृथक्। इसप्रकार सत्य और ब्रह्मको एक सिद्ध करते हुए उसे आत्मस्वरूप बताया है। यह तो सभी मानते हैं कि जो वस्तु जिसकी अपेक्षा अधिक अच्छी, रमणीय या सुन्दर होती है उसमें उसकी अपेक्षा प्रेम अधिक होता है, और यह भी निर्विवाद है कि शरीर, स्त्री, पुत्र, धन-सम्पत्ति, राजपाट सभीकी अपेक्षा आत्मामें प्रेम अधिक होता है। इसीलिये बृहदारण्यकके द्वितीयाध्यायमें मैत्रेयीसे याज्ञवल्क्यने आत्माकी तुलना सभी पुत्र-कलत्रादि सांसारिक पदार्थोंसे करके उसे सर्वप्रिय ठहराया है और अन्तमें कह दिया है कि सभी चीजोंमें जो प्रेम किया जाता है वह उन चीजोंके लिहाजसे नहीं, किन्तु केवल इसीलिये कि वे चीजें आत्माके लिये हैं—आत्मार्थ हैं—

न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति। (४।५)

इससे पता लगता है कि जिस शिवको आत्मा और ब्रह्मका स्वरूप बताया है वह सबसे रमणीय, सबसे सुन्दर है, उसके मुकाबलेमें कोई नहीं है।

तैत्तिरीयकी ब्रह्मानन्दवल्लीमें संसारके सभी आनन्दोंको दिखलाकर बार-बार यही कहा है कि 'ब्रह्मका जो आनन्द है वह सभीसे बढ़ा-चढ़ा, सर्वोपरि है। यहाँतक कि ब्रह्मलोक-तकका आनन्द भी उसके सामने तुच्छ है, फीका है, और उसीके बाद भृगुवल्लीमें स्पष्ट ही कह दिया है कि 'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्'—ब्रह्मको आनन्दस्वरूप ही जाना। बृहदारण्यकके चतुर्थाध्यायमें भी सभी आनन्दोंकी तुलना करके अन्तमें कहा है कि ब्रह्मानन्दके छींटेसे ही समस्त संसारके जीव आनन्दित प्रतीत होते हैं, उन्हें मालूम होता है कि सांसारिक विषयोंमें ही आनन्द है, लेकिन वस्तुतः है वह ब्रह्मानन्दका ही लेश—

एषोऽस्य परम आनन्द एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति। (४।३२)

'मात्रामुपजीवन्ति' का अर्थ है कि यह जो ब्रह्मका स्वरूप परमानन्द है उसे ही उधार लेकर और पदार्थोंमें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आनन्द प्रतीत होता है। अन्तमें उसी ब्रह्मानन्दको कह दिया है कि वह आत्मस्वरूप और अविनाशी है, उसका उच्छेद कभी हो नहीं सकता—

अविनाशी वा अरेऽयमात्माऽनुच्छित्तिधर्मा।

इससे सिद्ध है कि आत्मा अजर, अमर, अविनाशी, परमानन्दस्वरूप है और वही शिव है, प्रपञ्चोपशम परब्रह्म है। आनन्दका खजाना वही है, और कहीं आनन्द है नहीं। सभी पदार्थ किसी-न-किसी रूपमें उसी आनन्दको उधार लेकर अपनेमें लोगोंको रमाते हैं, न कि पदार्थोंमें आनन्दका लेश है। यह भी निर्विवाद है कि सभी पदार्थोंमें जो प्रेम होता है वह इसीलिये कि वे सुन्दर हैं, वे आनन्द देनेवाले हैं। जो वस्तु जितनी ही अधिक आनन्द देनेवाली है, वह उतनी ही ज्यादा सुन्दर प्रतीत होती है और उसमें उतना ही अधिक प्रेम होता है। सुन्दरता बाहरी पदार्थ नहीं है, बाहरी पदार्थमें रहती भी नहीं। वह तो मनका धर्म है, मनकी भावना है। इसीलिये कहा जाता है कि कभी प्रश्न करनेपर बीरबलने बाहरी कद्रूपता और दरिद्रताके रहते हुए भी अपने ही लड़केको अकबर बादशाहके लड़केसे सुन्दर बताया था। क्योंकि उनके आनन्दका कारण वही अपना लड़का था। वीतराग पुरुषको तो सांसारिक पदार्थ बाहरी सुन्दरताके रहते हुए भी रमणीय नहीं प्रतीत होते। कारण, उनमें उसे आनन्द-लेश भी नहीं प्रतीत होता। अतएव सुन्दरताकी तौल आनन्दकी मात्रासे ही होती है। फलतः जहाँ जितना ही अधिक आनन्द है वह उतना ही ज्यादा सुन्दर है और आत्मा तो परमानन्दरूप ही है। अतएव वह सबसे अधिक सुन्दर है; उसकी सुन्दरता सर्वोपरि है, अद्वितीय है। आत्माको ही शिव, परमशिव, ब्रह्म, परमब्रह्म और सत्य सिद्ध कर चुके हैं। इसलिये चाहे यों कहें कि शिव सत्य और सुन्दर है या यों कहें कि सत्य सुन्दर एवं शिव है, बात एक ही है।

यह तो सभी जानते हैं कि सत्यका स्वरूप बड़ा ही विकट है। श्मशानवासी, नरमुण्डधारी, भूतिभूषित, सर्पाच्छादित घोरतम शिवका स्वरूप भी उतना भयङ्कर नहीं प्रतीत होता, जितना सत्यका स्वरूप भीषण मालूम होता है! महर्षियोंने 'सत्यं ब्रूयात्' का पद-पदपर आदेश दिया है और संसारमें कोई भी ऐसे धर्म-सम्प्रदाय नहीं हुए हैं जिन्होंने सत्यके सेवनका, सत्य-भाषणका, सत्य व्यवहारका उपदेश नहीं दिया हो। चाहे और बातोंमें भले ही मतभेद हो, लेकिन इस बातमें सभी धर्मवाले एकमत हैं कि 'सत्य बोलो, सच्चा व्यवहार करो।' अतएव यदि सत्यधर्मको 'नगद धर्म' कहें तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं। पतञ्जलिने तो योगसूत्रोंमें 'सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्' के द्वारा यह स्पष्ट ही कह दिया है कि बिना किसी यज्ञ-यागादि, जप-तप और योगसमाधिके ही केवल नियमपूर्वक सत्यका ही अभ्यास करनेसे मनुष्यकी वाक्यसिद्धि हो सकती है और वह जो कुछ भी कहेगा, पूरा हुए बिना रह नहीं सकता। लेकिन क्या लाखों-करोड़ोंमें कोई भी ऐसा दीखता है? धर्मके नामपर चाहे और जो कुछ भी क्यों न हो जाय, पर सत्यके व्यवहारसे सभी धर्मवाले आज भी लाखों कोस दूर हैं!

यहि सर आवत अति कठिनाई। राम कृपा बिनु आइ न जाई॥

—यह तुलसीदासकी चौपाई जितनी इस सत्यके सम्बन्धमें अक्षरशः चरितार्थ होती है, उतनी शायद ही और किसी बातमें। योगी, यती, संन्यासी, फकीर, औलिया, सन्त-महात्मा—जिसे ही देखिये, इससे इतनी दूर जा पड़ा है कि कहा नहीं जा सकता। बस, इतनेसे ही इस सत्यकी भीषणता, अगम्यताका पता चल जाता है। फलतः जिस सत्यको शिवस्वरूप कहा है वह भी क्यों न भीषण वेषधारी, अतएव सहसा अगम्य प्रतीत हो? शिवके भीषण रूपोंका जो वर्णन पुराणोंमें मिलता है वह इसीलिये अक्षरशः सत्य है। लेकिन इतनेसे ही यह नहीं कहा जा सकता कि वह शिव या सत्य परिणाममें भी भयङ्कर है, भीषण है, भयावह है। इस बातको तो नास्तिकतक स्वीकार करते हैं कि बिना सत्यके समाज या राष्ट्रका कल्याण नहीं हो सकता और जो कल्याणकारी है वही तो शिव है, सुन्दर है। जिन्होंने हैमवती उमाकी तरह सत्य शिवके साथ तन्मयता, अनन्यताका सम्बन्ध स्थापित किया है वही जानते हैं कि वह कितना रमणीय है, कितना सुन्दर है, उसकी सुन्दरता अलौकिक है। लेकिन जो ऐसा नहीं कर सकते वह भी इस सिद्धान्तके कायल हैं कि सत्य तो अवश्यमेव शिव है, सुन्दर है, कल्याणकारी है।

इसीलिये प्राचीन लोगोंने जो कहा है कि—'सत्यं शिवं सुन्दरम्' वह अक्षरशः सत्य है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीगणपति-रहस्य

(लेखक—पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय एम० ए० साहित्याचार्य)

सदात्मरूपं सकलादिभूतममायिनं सोऽहमचिन्त्यबोधम् । अनादिमध्यान्तविहीनमेकं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥
अनन्तचिद्रूपमयं गणेशं ह्यभेदभेदादिविहीनमाद्यम् । हृदि प्रकाशस्थ धरं स्वधीस्थं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥

यौंके प्रत्येक मङ्गलकार्यके आरम्भमें गणपतिकी पूजा होती है। यह पूजा थोड़ी मात्रामें हो या बड़ी मात्रामें, परन्तु होती है अवश्य—जरूर की जाती है। कलशस्थापनसे लेकर आवाहनपूर्वक विसर्जनान्त पूजा विविध विधानोंसे समन्वित यथाशास्त्र विशेष प्रकारसे की जाती है; परन्तु सामग्रियोंके अभावमें केवल 'श्रीगणेशाय नमः', 'श्रीगणपतये नमः' कहकर ही हम कभी-कभी मङ्गलमूर्ति सिन्धुरवदनका स्मरण कर लिया करते हैं। यह पूजा भारतवर्षके प्रत्येक प्रान्तके धर्माभिमानी हिन्दू सद्गृहस्थोंके घरमें मनायी जाती है, चाहे वह किसी दूसरी ही भगवद्-विभूतिका उपासक क्यों न हो। इतना लोकप्रचार होनेपर भी—सार्वत्रिक परिचय होनेपर भी हम गणपतिके यथार्थ स्वरूपसे अनेक अंशोंमें अपरिचित-से ही हैं। इसी कारण उन्हें शिवपुत्र जानते हुए शिव-गौरीके विवाहारम्भमें उनके पूजनकी कथा सुनकर हममेंसे बहुत-से लोग इन दोनों बातोंमें पारस्परिक विरोध मान बैठते हैं अथवा इस कथाको पौराणिक कल्पना कहनेमें आनाकानी नहीं करते। अतः गणपतिके वास्तविक स्वरूपका जानना हमारा परम कर्तव्य है। हमारे गणेशोपासना-सम्बन्धी संस्कृत-ग्रन्थोंमें इस रहस्यका उद्घाटन बड़ी मार्मिकताके साथ किया गया है। 'कल्याण'के प्रेमी पाठकोंके सामने इस तत्त्वका थोड़ा-सा विवेचन प्रस्तुत करनेका उद्योग किया जा रहा है।

गणपति-तत्त्व-निरूपण करनेके पहले गणेशके वैदिकत्वके विषयमें सामान्य चर्चामात्र कर देना मैं आवश्यक समझता हूँ। यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि ऐतिहासिक दृष्टिसे विकास-सिद्धान्तके अनुसार प्रायः सभी पौराणिक देवताओंका मूलरूप वेदमें मिलता है। धीरे-धीरे ये विकासको प्राप्त होकर कुछ नवीन रूपमें दृष्टिगोचर होते हैं। गणेशजी भी वैदिक देवता हैं, परन्तु इनका नाम वेदोंमें गणेश न होकर 'ब्रह्मणस्पति' है। जो वेदमें 'ब्रह्मणस्पति' के नामसे अनेक सूक्तोंमें अभिहित किये गये हैं उन्हीं देवताका नाम पुराणोंमें 'गणेश' मिलता है। ऋग्वेदके द्वितीय मण्डलका यह सुप्रसिद्ध मन्त्र गणपतिकी ही स्तुतिमें है—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे
कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् ।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत
आनः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥

इसमें आप 'ब्रह्मणस्पति' कहे गये हैं। 'ब्रह्मन्' शब्दका अर्थ वाक्—वाणी है। अतः 'ब्रह्मणस्पति'का अर्थ वाक्पति—वाचस्पति अर्थात् वाणीका स्वामी हुआ। बृहदारण्यक उपनिषद्में 'ब्रह्मणस्पति'का यही अर्थ प्रदर्शित किया गया है—

एष उ एव ब्रह्मणस्पतिर्वाग् वै ब्रह्म, तस्या एष पतिस्तस्माद्उ ब्रह्मणस्पतिः। वाग्वै बृहती तस्या एष पतिस्तस्माद्उ बृहस्पतिः।

'ज्येष्ठराज' शब्द, जिसका पीछे गणपतिके लिये प्रयोग मिलता है, यहींका है। इसका अर्थ है सबसे ज्येष्ठ—सबसे पहले उत्पन्न होनेवाले, देवताओंके राजा—शासन-कर्ता। इन्द्र तो केवल देवोंके अधिपतिमात्र हैं; परन्तु इन्द्रके भी प्रेरक होनेसे आपका नाम 'ज्येष्ठराज' है। इस मन्त्रमें गृत्समद ऋषि देवगणोंके अधिपति, क्रान्तदर्शी—अतीत-अनागतके भी द्रष्टा, कवियोंके कवि, अनुपमेय कीर्ति-सम्पन्न, 'ज्येष्ठराज' ब्रह्मणस्पतिका आवाहन करते हैं और उनसे प्रार्थना करते हैं कि हमारे आवाहन-मन्त्रको सुनकर आप अपनी रक्षा-शक्तिके साथ हमारे गृहमें आकर निवास कीजिये। यह पूरा-का-पूरा सूक्त ब्रह्मणस्पति—गणपतिकी प्रशंसामें है। अन्य सूक्तोंमें भी आपकी स्तुति मिलती है, अतः गणेशजीके ब्रह्मणस्पतिके रूपमें वैदिक देवता होनेमें तनिक भी सन्देह नहीं। और भी एक बात है। गणेशके जिस विशिष्ट रूपका वर्णन पुराणोंमें उपलब्ध होता है उसका आभास वैदिक ऋचाओंमें मिलता है। निम्नलिखित मन्त्रोंमें गणपतिको 'महाहस्ती,' 'एकदन्त,' 'वक्रतुण्ड' तथा 'दन्ती कहा गया है—

आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्रामं संगृभाय।
महाहस्ती दक्षिणेन ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥

गणपतिके वैदिक स्वरूपके जिज्ञासुजन नीलकण्ठ-विरचित 'गणपतितत्त्वरत्नम्' के अध्ययन करनेका कष्ट उठावें। इसप्रकार गणपतिके वैदिक रूपका थोड़ा-सा आभास देकर हम अपने मुख्य विषयकी ओर आते हैं।

'गणपति' शब्दका अर्थ है—गणोंका पति। इसी अर्थमें गणोंके ईश होनेसे इन्हें 'गणेश' भी कहते हैं। यहाँ 'गण' शब्दका अर्थ जानना आवश्यक है। 'गण् समूहे'—समूहवाचक 'गण्' धातुसे 'गण' शब्द बना है। अतः इसका सामान्यार्थ समूह—समुदाय होता है; परन्तु यहाँपर इसका अर्थ देवताओं-का गण, महत्तत्त्व—अहङ्कारादि तत्त्वोंका समुदाय तथा सगुण-निर्गुण ब्रह्म है। अतः 'गणपति' शब्दसे यह सूचित होता है कि आप समस्त देवतावृन्दके रक्षक हैं, महत्तत्त्व आदि जितने सृष्टि-तत्त्व हैं उनके भी आप स्वामी हैं, अर्थात् इस जगत्की उत्पत्ति इन्हींसे हुई है। सगुण-निर्गुणके पति होनेसे गणपति ही इस जगत्में सबसे श्रेष्ठ तथा माननीय देवाधिदेव हैं। 'गण' की दूसरी व्याख्यासे आपका जगत्कर्तृत्व और भी अधिकरूपसे स्पष्ट प्रतीत होता है। मनोवाणीमय सकल दृश्यादृश्य विश्वका वाचक 'ग' अक्षर है तथा 'ण' अक्षर मनोवाणीविहीन रूपका बोधक है। इसप्रकार 'गण' शब्दके द्वारा जितना मनोवाणी-समन्वित तथा तद्विरहित जगत् है—सबका ज्ञान होता है। उसके पति या ईश होनेके कारण हमारे आराध्य गणेश सर्वतोमहान् देव हैं। 'गण' शब्दकी यह व्याख्या मौद्गल-पुराणमें इसप्रकार कथित है—

मनोवाणीमयं सर्वं दृश्यादृश्यस्वरूपकम्।
गकारात्मकमेवं तत् तत्र ब्रह्म गकारकः॥
मनोवाणीविहीनञ्च संयोगायोगसंस्थितम्।
णकारात्मकरूपं तत् णकारस्तत्र संस्थितः॥

गणपतिके रूपपर अब ज़रा दृष्टि डालिये। उनका मुख हाथीका-सा बतलाया जाता है। इसीसे आपको गजानन, गजास्य, सिन्धुरानन आदि नामोंसे अभिहित किया जाता है। इस विचित्र रूपके लिये पुराणोंमें समुचित कथानक भी वर्णित है, परन्तु इस रूपके द्वारा जिस अव्यक्त भावनाको व्यक्तरूप दिया गया है वह नितान्त मनोरम है। गणपतिके अन्तर्निहित गूढ़ आध्यात्मिक तत्त्वको जिस ढंगसे इस रूपके द्वारा सर्वजनसंवेद्य बनानेकी कल्पना की गयी है, वह वास्तवमें अत्यन्त सुन्दर है। गणपतिके बाह्य रूपको समझना क्या है, उनके अभ्यन्तर गुहास्थित सत्य रूपकी पहचान करना है। उनका रहस्य जाननेके लिये यह बड़ी भारी मूल्यवान् कुञ्जी है।

गणेशजीके सारे अङ्ग एक प्रकारके नहीं हैं। मुख तो है गजका; परन्तु कण्ठके नीचेका भाग है मनुष्यका। इनके देहमें नर तथा गजका अनुपम सम्मिलन है। 'गज' किसे कहते हैं? 'गज' कहते हैं साक्षात् ब्रह्मको। समाधिके द्वारा योगिजन जिसके पास जाते हैं—जिसे प्राप्त करते हैं वह हुआ 'ग' (समाधिना योगिनो यत्र गच्छन्तीति गः), तथा जिससे यह जगत् उत्पन्न होता है वह हुआ 'ज' (यस्माद् बिम्बप्रतिबिम्बतया प्रणवात्मकं जगत् जायते इति जः)। विश्वकारण होनेसे वह ब्रह्म (गज) कहलाता है। गणेशका ऊपरी भाग गजका-सा है अर्थात् निरुपाधि ब्रह्मरूप है। ऊपर-का भाग श्रेष्ठ अंश होता है—मस्तक देहका राजा है। अतः गणपतिका यह अंश भी श्रेष्ठ है। क्योंकि यह निरुपाधि—उपाधि-रहित मायानवच्छिन्न ब्रह्मका द्योतक है। नरसे अभिप्राय मनुष्य—जीव अथवा सोपाधिब्रह्मका है। अधोभाग ऊर्ध्वभागकी अपेक्षा निकृष्ट होता है। अतः सोपाधि अर्थात् मायावच्छिन्न चैतन्य—जीव—का रूप होनेसे अधोभाग निकृष्ट है। अथवा 'तत्त्वमसि' महावाक्यके हिसाबसे हम कहेंगे कि गणेशजीका मस्तक 'तत्' पदार्थका सङ्केत करता है तथा अधोभाग 'त्वम्' पदार्थका निर्देश करता है। 'तत्' पद मायानवच्छिन्न शुद्ध चैतन्य—निरुपाधि ब्रह्मका वाचक है, अतः उसके द्योतनके लिये गजाननका उत्तमाङ्ग नितान्त उचित है। 'त्वम्' पद उपाधि-विशिष्ट ब्रह्म अर्थात् जीवका द्योतक है, अतः गजानन-का नराकार अधोभाग उसकी अभिव्यक्ति करनेमें समुचित ही है। इन दोनों पदार्थोंका 'असि' पद-प्रतिपाद्य समन्वय ('तत्त्वमसि' इस महावाक्यमें) गणपतिमें प्रत्यक्षरूपसे दिखायी पड़ता है। जिस 'तत्त्वमसि' महावाक्यके अर्थका परिशीलन सतत समाधिनिष्ठ ज्ञानीजन अनेक उपायोंसे किया करते हैं, जिसकी प्राप्ति अनेक जन्मसाध्य सुफलका जाग्रत् परिणाम है, उसीकी प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति हमारे-जैसे साधारण, उदरम्भरि पामर जनके लिये है श्रीगजाननजी महाराजकी मङ्गलमूर्ति। श्रीगणेशाथर्वशीर्षकी आदिम श्रुति—त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि—के 'प्रत्यक्ष' पदका सकल विद्वज्जन-मनोरम अभिप्राय यही है जो ऊपर अभिव्यक्त किया गया

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है। इस सिद्धान्तकी पुष्टि गणेशपुराणके अन्तर्गत सुप्रसिद्ध 'गणपतिसहस्रनाम' के द्वारा होती है। वहाँ गणेशजीके सहस्रनामोंमें एक नाम है—तत्त्वंपदनिरूपितः। यथा—

तत्त्वानां परमं तत्त्वं तत्त्वंपदनिरूपितः।
तारकान्तरसंस्थानस्तारकस्तारकान्तकः ॥

इस अभिधानके द्वारा गणपति-स्वरूपका जो जीव-ब्रह्मैक्यप्रतिपादनपरक श्रुतिसम्मत तात्पर्य निरूपण किया गया है, उसकी सुचारुरूपसे प्रतिपत्ति होती है।

गणपतिकी मनोज्ञ मूर्तिको आध्यात्मिकतापर जितना विचार किया जाता है उतनी ही उनके साक्षात् परब्रह्म होनेकी वास्तविकता प्रकट होने लगती है। गणेशजी 'एकदन्त' कहे जाते हैं। उनका दाहिना ही दाँत विद्यमान है। पुराणोंमें उनके बाएँ दाँतके भङ्ग होनेकी कथा मिलती है। अतः उन्हें 'भग्नवामरद' कहा गया है। इस नामके यथार्थ ज्ञानसे उनके सत्य रूपका हमें पता चलता है। 'एक' शब्द यहाँ मायाका बोधक है तथा 'दन्त' शब्द सत्ताधारक मायाचालक ब्रह्मका द्योतक है; अतः इस नामसे प्रकट है कि गणपति सृष्टिके लिये मायाकी प्रेरणा करनेवाले, जगदाधार—समस्त सत्ताके आधार—भूतपरब्रह्मके ही अभिव्यक्त रूप हैं। मौद्गलपुराणसे इसकी पुष्टि होती है—

एकशब्दात्मिका माया तस्याः सर्वं समुद्भवम्।
भ्रान्तिदं मोहदं पूर्णं नानाखेलात्मकं किल ॥
दन्तः सत्ताधरस्तत्र मायाचालक उच्यते।
बिम्बेन मोहयुक्तश्च स्वयं स्वानन्दगो भवेत् ॥
माया भ्रान्तिमती प्रोक्ता सत्ताचालक उच्यते।
तयोर्योगे गणेशोऽयमेकदन्तः प्रकीर्तितः ॥

गणेशका एक दूसरा नाम 'वक्रतुण्ड' है। इससे भी ऊपरके सिद्धान्तकी पुष्टि होती है। यह मनोवाणीमय जगत् सर्वजनसाधारण है। सबके लिये यह समानभावसे अनुभवगम्य है, परन्तु आत्मा इस जगत्से—सतत गमनशील वस्तुसे—सर्वथा भिन्न है—पृथक् है—टेढ़ा है। अतएव यहाँ 'वक्र' शब्दसे मनोवाणीहीन, अविनश्वर—अपरिवर्तनशील, चैतन्यात्मक आत्माका बोध होता है। वही आत्मा गणेशजीका मुख है—मस्तक है। 'तत्त्वमसि' के साक्षात् स्वरूपधारी गजाननके कण्ठके नीचेका भाग जगत् है और ऊपरका अंश आत्मा है। अतः उन्हें 'वक्रतुण्ड' कहना नितान्त उपयुक्त है—

कण्ठाधो मायया युक्तो मस्तकं ब्रह्मवाचकम्।
वक्राख्यं तत्र विप्रेश तेनायं वक्रतुण्डकः ॥

भगवान् गणेशकी चार भुजाएँ हैं। इन भुजाओंके द्वारा आप भिन्न-भिन्न लोकोंके जीवोंकी रक्षा अभयदान देकर किया करते हैं। एक भुजा स्वर्गके देवताओंकी रक्षा करती है तो दूसरी इस पृथिवीतलके मानवोंकी, तीसरी असुरोंकी तथा चौथी नागोंकी। इन भुजाओंमें आपने भक्तोंके कल्याणके लिये चार चीजें धारण कर रक्खी हैं—पाश, अङ्कुश, रद और वर। पाश मोहनाशक है। उसे आपने भक्तोंका मोह हटानेके लिये ले रक्खा है। अङ्कुशका काम नियन्त्रण करना है, अतः वह उस व्यापारके लिये उपयुक्त है। दन्त दुष्टनाशक है, अतः वह सब शत्रुओंका विनाश करनेवाला है। वर भक्तोंके मनोरथोंके देनेवाले ब्रह्मका रूप है, अतः गणेशजीने सकल मानवोंके कल्याण-साधन तथा विघ्नविनाशनके लिये अपने चारों हाथोंमें इन विभिन्न वस्तुओंको धारण कर रक्खा है। आदिमें जगत्के स्रष्टा तथा अन्तकालमें सब विश्वको अपने उदरमें वास कराने—प्रतिष्ठित कराने—वाले जगन्नियन्ता गणेशका 'लम्बोदर' होना उपयुक्त ही है।

गणेशजी 'शूर्पकर्ण' हैं—उनके कान सूपकी तरह हैं। इस नामसे भी हमें आपके उच्च परमात्मस्वरूपका परिचय होता है। जबतक धान भूसेके साथ मिला रहता है तबतक वह बेकाम होता है, मैला बना रहता है। सूपसे उसे फटकनेपर उसके असली रूपका पता चलता है, धान भूसेसे अलग होकर चमकने लगता है—शुद्ध रूपको पा लेता है। उसी प्रकार ब्रह्म जीवरूपमें मायाके साथ मिलकर मलावरणसे इतना आच्छन्न हो गया है कि उसका असली प्रकाशमय रूप बिल्कुल विस्मृत हो गया है। ऐसी अवस्थामें सद्गुरुके मुखसे निकला हुआ 'गणेश' नाम मनुष्योंके कर्णकुहरके द्वारा हृद्गत होकर सूपकी तरह पाप-पुण्यको अलग कर देता है—शूर्पकर्णकी उपासना मायाको बिल्कुल हटाकर चैतन्यात्मक ब्रह्मकी प्राप्ति कराती है। अतः आपके 'शूर्पकर्ण' नामकी सार्थकता स्पष्टरूपसे प्रतिपादित होती है—

शूर्पकर्णं समाश्रित्य त्यक्त्वा मलविकारकम्।
ब्रह्मैव नरजातिस्थो भवेत्तेन तथा स्मृतः ॥

गणेशजी मूषकवाहन—मूषकध्वज हैं। मूषक किस तत्त्वको द्योतित करता है, इस विषयमें मतभेद है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मूषकका काम वस्तुको कुतर डालना है। जो वस्तु सामने रक्खी जाय उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गका वह विश्लेषण कर देता है। इस कार्यसे वह मीमांसा करनेके उपयुक्त वस्तुस्वरूप—विश्लेषणकारिणी बुद्धि (analytic intellect) का प्रतिनिधि प्रतीत होता है। गणेशजी बुद्धिके देवता हैं। अतः जिस तार्किक बुद्धिके द्वारा वस्तुतत्त्वका परिचय प्राप्त किया जाता है तथा उसके सार एवं असार अंशका पृथक्करण किया जाता है, जिसके द्वारा वस्तुके अन्तस्तलतक प्रवेश किया जाता है, उसका—गजाननका वाहन बनना अत्यन्त औचित्यपूर्ण है। दूसरी दिशासे विचार करनेपर 'मूषक' ईश्वर-तत्त्वका द्योतक भासमान होता है। ईश्वर अन्तर्यामी हैं, सब प्राणियोंके हृदयमें निवास करते हैं। सब प्राणियोंके द्वारा प्रस्तुत किये गये भोगोंका वे भोग करते हैं। परन्तु अहङ्कारके कारण मोहयुक्त प्राणी इसे नहीं जानता, वह तो अपनेहीको भोक्ता समझता है। परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। प्राणियोंका प्रेरक—अन्तर्यामी, हृत्पद्ममें निवास करनेवाला ईश्वर ही वास्तवमें सब भोगोंका भोक्ता है। इस अवस्थामें मूषककी कार्यपद्धति उसपर खूब घटती है। मूषक भी घरके भीतर पैठकर चीजें चुराया करता है, परन्तु घरके मालिकको इसकी तनिक भी खबर नहीं होती। इसलिये मूषकके रूपमें ईश्वरकी ओर सङ्केत है। पुराणोंमें गणेशकी सेवा करनेके लिये ईश्वरका मूषकरूप बन जानेकी कथा भी मिलती है। उस परब्रह्मके लिये ईश्वरको सेवार्थ वाहनरूप स्वीकार करनेकी कथा आध्यात्मिक दृष्टिसे भी उपयुक्त है—

ईश्वरः सर्वभोक्ता च चोरवत्तत्र संस्थितः।
तदेवं मूषकः प्रोक्तो मनुजानां प्रचालकः।
मायया गूढरूपः स भोगान् भुङ्क्ते हि चोरवत्॥

अतः गणपतिजी चिन्मय हैं, आनन्दमय हैं, ब्रह्ममय हैं, सच्चिदानन्दरूप हैं। उन्हींसे इस जगत्की उत्पत्ति होती है, उन्हींके कारण इसकी स्थिति है और अन्तमें उन्हींमें इस विश्वका लय हो जाता है। ऐसे परमात्माका सकल कार्यके आरम्भमें स्मरण तथा पूजन करना अनुरूप ही है। एक बात और भी। गणेशकी मूर्ति साक्षात् 'ॐ' सी प्रतीत होती है। मूर्तिपर दृष्टिपात करनेसे ही इसकी प्रतीति नहीं होती, प्रत्युत शास्त्रोंमें भी गणेशजी ओंकारात्मक माने गये हैं। लिखा है कि शिव-पार्वती दोनों चित्रलिखित प्रणव (ओम्) पर ध्यानसे अपनी दृष्टि लगाकर देख रहे थे। अकस्मात् ओंकारकी भित्तिको तोड़कर साक्षात् गजानन प्रकट हो गये। इसे देख शिव-पार्वती अत्यन्त प्रसन्न हुए। इस पौराणिक कथाकी सूचना—

प्र त इन्द्र पूर्व्याणि प्रनू
वीर्या वोचं प्रथमा कृतानि।
सतीनमन्युरश्रथायो अद्रिं
सुवेदनामकृणोर्ब्रह्मणे गामे॥

मन्त्रमें बतलायी जाती है—(इस मन्त्रके अर्थके लिये देखिये 'गणपतितत्त्वरत्नम्' का १३ वाँ पृष्ठ) अतः ओंकाररूप होनेके हेतु गणेशजीका सब देवताओंसे प्रथम पूजा तथा सत्कार पाना ठीक ही है, क्योंकि प्रणव सब श्रुतियोंके आदिमें आविर्भूत माना जाता है—'प्रणवश्छन्दसामिव।' गणेश शिवके ज्येष्ठ पुत्र बतलाये गये हैं। इनके शिवपुत्र होनेके विषयमें एक पौराणिक कथा भी है। कहते हैं कि गणेशने सब देवताओंकी सृष्टि की। शिव, ब्रह्मा आदि भी पैदा हुए। इन्होंने तपस्या करना शुरू किया। योगिराज शङ्करने अपनी समाधि लगायी। उसमें ब्रह्मानुभूति होनेपर आपने अपने हृदयमें गणेशजीका साक्षात् दर्शन किया। बड़ी स्तुति तथा प्रार्थना की कि आप हमारे पुत्र होइये, जिससे आपके पिता होनेके कारण मैं इस मायामोहमय संसारसे पार हो जाऊँ—

ध्याने मनसि मे जातः पुत्रत्वं पालय प्रभो।
मम पुत्र इति ख्यातो लोकेऽस्मिन् भगवन् भव॥

निष्कपट प्रार्थना सुनकर गणेशने शिवपुत्र होना स्वीकार किया। उसी दिनसे आप इस नामसे प्रसिद्ध हुए। (इस कथाका गणेशाथर्वशीर्षके भाष्य पृ० २५ में विनायक-संहिताके प्रमाणके साथ उल्लेख किया गया है)। अतः भक्तानुकम्पाके वशीभूत होकर उस परमात्माने शिवके घर अवतार धारण किया। ऐसी दशामें शिव-पार्वतीके विवाहोत्सवके आरम्भमें मङ्गलकामनाके लिये सच्चिदानन्द-स्वरूप गजाननका पूजन किसी प्रकार भी कल्पित या विरुद्ध नहीं माना जा सकता। अतः इस मायाजालके कटनेके लिये, इस विस्तीर्ण भवसागरके पार जानेके लिये, इस हृत्पटपर घनीभूत जमनेवाले तामस पटलके फटनेके लिये उसी मायापति परमब्रह्म श्रीमङ्गलमूर्ति विघ्नराज

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एकदन्त गजाननके शरणमें जाते हुए हम भी स्वान्तः-प्रबोधाय लिखे गये इस अल्पकाय लेखको समाप्त करते हैं। एक बार बोलिये श्रीगजाननजी महाराजकी जय !!! ॥

स्वदीयवीर्येण समर्थभूता
माया तया संरचितं च विश्वम्।
नादात्मकं ह्यात्मतया प्रतीतं
तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥
स्वदीयसत्ताधरमेकदन्तं
गणेशमेकं त्रयबोधितारम्।
सेवन्त आपुस्तमजं त्रिसंस्था-
स्तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥

अधीर क्यों होते हो ?

(गंगातीरनिवासी एक विरक्त महात्माके उपदेश)

अस्तं गतोऽयमरविन्ददिनैकबन्धु
र्भास्वान्न लङ्घयति कोऽपि विधि प्रणीतम्।
रे कोक ! धैर्यमवलम्ब्य विमुञ्च शोकं
धीरास्तरन्ति विपदं न तु दीनचित्ताः ॥

जिस बातको हम नहीं चाहते हैं और दैवगतिसे वह हो जाती है, उसके होनेपर भी जो दुखित नहीं होते, किन्तु उसे दैवेच्छा समझकर सह लेते हैं, वे ही धैर्यवान् पुरुष कहलाते हैं। दुःख और सुखमें चित्तकी वृत्तिको समान रखना धैर्य कहलाता है। जिसने शरीर धारण किया है उसे सुख-दुःख दोनोंका ही अनुभव करना होगा। शरीरधारियोंको केवल सुख-ही-सुख या केवल दुःख-ही-दुःख कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता। जब यही बात है, शरीर धारण करनेपर सुख-दुःख दोनोंका ही भोग करना है, तो फिर दुःखमें अधिक उद्विग्न क्यों हों और सुखमें फूलकर कुप्पा क्यों हो जायँ ? दुःख-सुख तो शरीरके साथ लगे ही रहते हैं। हम धैर्य धारण करके उनकी प्रगतिको ही क्यों न देखते रहें। जिन्होंने इस रहस्यको समझ कर धैर्यका आश्रय ग्रहण किया है, संसारमें वे ही सुखी समझे जाते हैं। ऐसे ही पुरुषोंके गलेमें कीर्ति-देवी जयमाला डालती है। ऐसे ही पुरुषोंकी संसार पूजा करता है और ऐसे ही महापुरुष प्रातःस्मरणीय समझे जाते हैं।

धैर्यकी परीक्षा सुखकी अपेक्षा दुःखमें ही अधिक होती है। दुःखोंकी भयङ्करताको देखकर विचलित होना प्राणियोंका स्वाभाविक धर्म है। किन्तु जो ऐसे समयमें भी विचलित नहीं होता वही पुरुषसिंह धैर्यशाली कहलाता है। आखिर हम अधीर होते क्यों हैं ? इसका कारण हमारे दिलकी कमज़ोरीके सिवा और कुछ भी नहीं है। इस बातको सब कोई जानते हैं कि आजतक संसारमें ब्रह्मासे लेकर कृमि-कीट पर्यन्त सम्पूर्णरूपसे सुखी कोई भी नहीं हुआ। सभीको कुछ-न-कुछ दुःख अवश्य हुए हैं। फिर भी मनुष्य दुःखोंके आगमनसे व्याकुल होता है, तो यह उसकी कमज़ोरी ही कही जा सकती है। महापुरुषोंके सिरपर सींग नहीं होते, वे भी हमारी तरह दो हाथ और दो पैरवाले साढ़े तीन हाथके मनुष्यके आकारके जीव होते हैं। किन्तु उनमें यही विशेषता होती है कि दुःखोंके आनेपर वे हमारी तरह अधीर नहीं हो जाते। उन्हें प्रारब्ध-कर्मोंका भोग समझकर वे प्रसन्नता-पूर्वक सहन करते हैं। बस, इसी एक गुणसे वे जगद्वन्द्य और सबके आदरणीय समझे जाते हैं। पाण्डव दुःखोंसे कातर होकर अपने भाइयोंके दास बन गये होते, मोरध्वज पुत्रशोकसे दुखी होकर मर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गये होते, हरिश्चन्द्र राज्य-लोभसे अपने वचनोंसे फिर गये होते, श्रीरामचन्द्र वनके दुःखोंकी भयंकरतासे घबड़ाकर अयोध्यापुरीमें रह गये होते, शिवि राजाने यदि शरीरके कटनेके दुःखसे कातर होकर कबूतरको बाजके लिये दे दिया होता तो इनका नाम अबतक कौन जानता ? ये भी असंख्य नरपतियोंकी भाँति कालके गालमें चले गये, किन्तु इनका नाम अभीतक ज्यों-का-त्यों ही जीवित है। इसका एकमात्र कारण उनका धैर्य ही है।

अपने प्रियजनके वियोगसे हम अधीर हो जाते हैं। क्योंकि वह हमें छोड़कर चल दिया। इस विषयमें अधीर होनेसे क्या काम चलेगा ? क्या वह हमारी अधीरताको देखकर लौट आवेगा ? यदि नहीं, तो हमारा अधीर होना व्यर्थ है। फिर हमारे अधीर होनेका कोई समुचित कारण भी तो नहीं। क्योंकि जिसने जन्म धारण किया है, उसे एक दिन मरना तो अवश्य है ही। जो जन्मा है वह मरेगा भी। सम्पूर्ण सृष्टिके पितामह ब्रह्मा हैं, चराचर सृष्टि उन्हींसे उत्पन्न हुई है। अपनी आयु समाप्त होनेपर वे भी नहीं रहते। क्योंकि वे भी भगवान् विष्णुके नाभि-कमलसे उत्पन्न हुए हैं। अतः महाप्रलयमें वे भी विष्णुके शरीरमें अन्तर्हित हो जाते हैं। जब यह अटल सिद्धान्त है कि जायमान वस्तुका नाश होगा ही, तो फिर तुम उस अपने प्रियजनके शरीरका शोक क्यों करते हो ? उसे तो मरना ही था, आज नहीं तो कल और कल नहीं तो परसों। सदा कोई जीवित रहा भी है जो वह रहता ? जहाँसे आया था, चला गया। छोड़ो उसका सोच और गुण गाओ गोविन्दके ! व्यर्थके सोचमें रक्खा ही क्या है, एक दिन तुम्हें भी जाना है। जो दिन शेष हैं, उन्हें धैर्यके साथ गुणागारके गुणोंके चिन्तनमें बिताओ।

शरीरमें व्याधि होते ही हम विकल हो जाते हैं। विकल होनेसे आजतक कोई रोग-विमुक्त हुआ है ? यह शरीर व्याधियोंका घर है। जाति, आयु, भोगों-को साथ लेकर ही तो यह शरीर उत्पन्न हुआ है। पूर्व-जन्मके जो भोग हैं, वे तो भोगने ही पड़ेंगे। चाहे जो करो, भोग बिना अपनी अवधि पूर्ण किये पीछा नहीं छोड़नेके। दान, पुण्य, जप, तप और ओषधि-उपचार करो अवश्य, किन्तु उनसे आराम न होनेपर अधीर मत हो जाओ। क्योंकि भोगकी समाप्तिमें ही दान, पुण्य और ओषधि कारण बन जाते हैं। बिना कारणके कार्य नहीं होता। तुम्हें क्या पता कि तुम्हारी व्याधिके नाशमें क्या कारण बनेगा ? इसलिये आप्त पुरुषोंने शास्त्रमें जो उपाय बताये हैं उन्हें ही करो। साथ ही धैर्य भी धारण किये रहो। धैर्यसे तुम व्याधियोंके चक्करसे सुखपूर्वक छूट सकोगे।

जीवनकी आवश्यक वस्तुएँ जब नहीं प्राप्त होती हैं तो हम अधीर हो जाते हैं। हा ! घरमें कलको खानेके लिये मुट्ठीभर अन्न नहीं है। स्त्रीकी साड़ी बिल्कुल चिथड़ा बन गयी है। बच्चा भयङ्कर बीमारीमें पड़ा हुआ है, इसकी दवा-दारूका कुछ भी प्रबन्ध नहीं। क्या करूँ ! कहाँ जाऊँ !! इन्हीं विचारोंमें विकल हुए हम रात-रातभर रोया करते हैं और हमारी आँखें सूज जाती हैं। ऐसा करनेसे न तो अन्न ही आ जाता है और न स्त्रीकी साड़ी ही नयी हो जाती है। बच्चेकी भी दशा नहीं बदलती। सोचना चाहिये, हमारे ही ऊपर ऐसी विपत्तियाँ हैं सो नहीं। विपत्तियोंका शिकार किसे नहीं बनना पड़ा ? त्रैलोकेश इन्द्र ब्रह्महत्याके भयसे वर्षों घोर अन्धकारमें पड़े रहे। चक्रवर्ती महाराज हरिश्चन्द्र डोमके घर जाकर नौकरी करते रहे। उनकी स्त्री अपने मृत बच्चेको जलानेके लिये कफनतक नहीं प्राप्त कर सकी। जगत्के आदि-कारण मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीको चौदह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वर्षोंतक घोर जङ्गलोंमें रहना पड़ा। वे अपने पिता चक्रवर्ती महाराज दशरथको पावभर आटेके पिण्ड भी न दे सके। जङ्गलके इङ्गुदी फलोंके पिण्डोंसे ही उन्होंने चक्रवर्ती राजाकी तृप्ति की। शरीरधारी कोई भी ऐसा नहीं है जिसने विपत्तियोंके कड़वे फलोंका स्वाद न चखा हो! सभी उन अवश्य प्राप्त होनेवाले फलोंके स्वादसे परिचित हैं। फिर हम अधीर क्यों हों? हमारे अधीर होनेसे हमारे आश्रित भी दुखी होंगे, इसलिये हम धैर्य धारण करके क्यों नहीं उन्हें समझावें? जो होना होगा सो होगा। बस, विवेकी और अविवेकियोंमें यही अन्तर है। जरा, मृत्यु और व्याधियाँ दोनोंको ही होती हैं किन्तु विवेकी उन्हें अवश्यम्भावी समझकर धैर्यके साथ सहन करता है और अज्ञानी विकल होकर विपत्तियोंको और बढ़ा लेता है—

ज्ञानी काटे ज्ञानते, अज्ञानी काटे रोय।
मौत, बुढ़ापा, आपदा, सब काहूको होय॥

जो धैर्यका आश्रय नहीं लेते, वे दीन हो जाते हैं, परमुखापेक्षी बन जाते हैं, इससे वे और भी दुखी होते हैं। संसारमें परमुखापेक्षी बनना, दूसरेके सामने जाकर गिड़गिड़ाना, दूसरेसे किसी प्रकारकी आशा करना, इससे बढ़कर दूसरा कष्ट और कोई नहीं है।

जितना धन, जितने भोग, जितनी सम्पत्ति तुम्हारे भाग्यमें लिखी होगी, वह तुम्हें अवश्य प्राप्त होगी। यदि तुम उससे अधिक इच्छा करके सोनेके पर्वत सुमेरुके शिखरपर ही जाकर क्यों न बैठ जाओ, वहाँ भी उससे अधिक न प्राप्त होगी। और यदि मारवाड़की ऊसर भूमिमें उससे कमकी इच्छासे चले जाओ तो वहाँ भी उतनी ही प्राप्त होगी। जब यही बात है, जब इसमें रत्तीभर भी हेर-फेर नहीं होनेका, तो फिर मेरे यार! अधीर क्यों होते हो?

(प्रे०—इन्द्र ब्रह्मचारी)

सत्य हरिश्चन्द्र

(लेखिका—कुमारी श्रीकौशिल्यादेवी)

सूर्यकुलभूषण सत्यवादी महाराजा हरिश्चन्द्र सत्ययुगमें हुए थे, परन्तु उनकी कीर्ति अबतक त्रिभुवनमें छायी है और चिरकालतक छायी रहेगी। हरिश्चन्द्र बड़े ही वीर, धीर, दानी तथा महा प्रतापी थे। तपश्चर्याके प्रभावसे उनको रोहिताश्व नामक एक पुत्ररत्न प्राप्त था। उनकी रानी शैव्याको सब संसार-सुख प्राप्त थे। हरिश्चन्द्र प्रजाका पुत्रवत् पालन करते थे। दान-धर्ममें उनकी विशेष रुचि थी। बड़े भारी राजा होनेपर भी विषय-प्रेम उन्हें मानों छूतक न गया था। संसारके विशाल सुख-सरोवरमें वे जलमें कमलकी भाँति निवास करते थे।

सत्यनिष्ठ, दानवीर राजा हरिश्चन्द्रका यश त्रिलोकीमें फैला हुआ था। एक समय देवराज इन्द्रने भी उनके त्रिभुवनविख्यात सत्य और दानकी महती चर्चा सुनी। इन्द्रके मनमें ईर्ष्या जाग उठी। वे अपनी सहज प्रकृतिके वशीभूत हरिश्चन्द्रकी महिमाको सह न सके। डाहकी आग दबाये नहीं दबती। बस, देवेन्द्र हरिश्चन्द्रको नीचा दिखानेपर उतारू हो गये। सचमुच, इन्द्रने हरिश्चन्द्रको सत्यसे भ्रष्ट करनेके लिये कोई बात उठा न रक्खी! पर धन्य है हरिश्चन्द्र और धन्य उनकी सत्यनिष्ठा! वे कठिन दुःखोंमें भी धर्मसे विचलित न हुए। वरं, उन्होंने अपनी सत्यनिष्ठाको चरम सीमातक पहुँचाया। हरिश्चन्द्रका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सत्याभिमान भारतेन्दुजीके इस पदसे क्या ही अच्छा झलक रहा है—

चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत-व्यौहार।
पै दृढ़ श्रीहरिचन्दको, टरै न सत्य विचार॥

देवर्षि नारद भ्रमण करते-करते एक दिन इन्द्रके दरबारमें जा निकले। इन्द्रने उनका यथायोग्य स्वागत-सत्कार किया। बातों-ही-बातोंमें हरिश्चन्द्रकी चर्चा चल पड़ी। नारदजीने हरिश्चन्द्रका यश-कीर्तन किया। नारदजीके शब्दोंने मानों इन्द्रकी ईर्ष्याग्निको प्रज्वलित करनेके लिये घृतका काम किया। नारदजी इन्द्रके मनका कुत्सित भाव ताड़ गये। इसलिये वे और भी विशेष-रूपसे हरिश्चन्द्रकी बड़ाई करने लगे। नारदजी जाना ही चाहते थे कि इतनेमें विश्वामित्रजी भी वहाँ आ पहुँचे। शिष्टाचारके अनन्तर नारदजी चल दिये। इधर विश्वामित्र और इन्द्र वार्तालाप करने लगे।

विश्वामित्रने इन्द्रसे देवर्षि नारदके कोपका कारण पूछा। पूछना भी उचित था, क्योंकि नारदकी मुखाकृतिसे उनका मनोभाव प्रकट हो रहा था। इसपर इन्द्रने हरिश्चन्द्र-सम्बन्धी वार्ता कहकर विश्वामित्रजीको उभाड़ा और कहा कि हरिश्चन्द्रकी परीक्षा जरूर होनी चाहिये। विश्वामित्रजी सरल होनेके साथ ही स्वभावतः कुछ क्रोधी थे। उन्होंने देवेन्द्रके कार्यमें न केवल सम्मति प्रकट की, वरं परीक्षाका भार अपने ऊपर ले लिया। इन्द्रका मुख हर्षसे खिल उठा!

दूसरे ही दिन विश्वामित्र विप्र-वेषमें हरिश्चन्द्रके राजद्वारपर जा डटे। द्वारपालके सूचित करनेपर हरिश्चन्द्रने विश्वामित्रजीको तुरन्त राजभवनमें बुलाया। उन्होंने विश्वामित्रजीकी पञ्चोपचारसे पूजा-अर्चना की। शिष्टाचारके अनन्तर हरिश्चन्द्रने उनके आनेका कारण पूछा। विश्वामित्रने हरिश्चन्द्रकी दानशूरताकी प्रशंसा कर उनसे समस्त राज्यका दान माँगा। हरिश्चन्द्रने सहर्ष सम्पूर्ण राज्य उसी समय ब्राह्मणको दे डाला। सम्पूर्ण राज्य दान करते समय उनके मनमें कुछ भी विषाद नहीं हुआ। प्रत्युत उस समय उनका हृदय आनन्द, उत्साह और उमंगसे भरपूर था। उनकी यह अवस्था देखकर विश्वामित्र अपनी विफलतापर मन-ही-मन कुढ़े। झट् उन्हें एक और नयी युक्ति सूझ पड़ी। उन्होंने हरिश्चन्द्रसे दक्षिणा माँगी और इसी प्रसंगमें यह भी सुना दिया कि बड़े दानकी दक्षिणा भी बड़ी होनी चाहिये।

राजा हरिश्चन्द्रने सहज ही अपने कोषाध्यक्षको सहस्र स्वर्णमुद्रा लानेके लिये आज्ञा दी। इस आदेशको सुनते ही विप्रवेषधारी विश्वामित्र लाल-पीले हो गये। उनके भीतरकी दबी हुई ज्वाला एकदम धधक उठी। वे क्रोधावेशमें बोले—'रे पाखण्डी! तूने दान और सत्यका यह ढोंग क्यों रच रक्खा है? अब मैंने तेरी सत्यता और दानशीलताके तत्त्वको भलीभाँति समझा। रे पापी! क्या तूने मुझे अभी राज्य नहीं दिया है? क्या कोष और कोषाध्यक्षका स्वामी भी अभी तू ही है?'

इसपर हरिश्चन्द्र अति दीनतासे कहने लगे—'महाराज! मेरे अपराधको क्षमा करें। आप सत्य कहते हैं। मेरी बड़ी भारी भूल हो गयी।' ब्राह्मणने कहा—'कुछ भी हो, अभी ला, दक्षिणाका ऋण चुका।' हरिश्चन्द्रके विशेष अनुरोध और प्रार्थना करनेपर द्विजने उन्हें एक मासकी अवधि दी और कहा—'यदि तू एक मासके भीतर अपना ऋण न चुका देगा, तो मैं तुम्हें सत्यभ्रष्ट कर दूँगा, जिससे तू सौ कल्पोंतक नरककी यातना भोगेगा।' इसप्रकार बक-झक करते ब्राह्मण तो राजभवनसे बाहर निकल गये, पर सत्याभिमानी, दृढ़प्रतिज्ञ हरिश्चन्द्र चिन्ताके गहरे समुद्रमें डुबकी लगाने लगे। उन्हें राज-पाटके दान करनेमें इतना हर्ष न हुआ था, जितना कि ऋण चुकानेका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विचार सताने लगा।

बात-की-बातमें राज्यदानका समाचार अन्तःपुरमें तथा सम्पूर्ण नगरमें वनाग्निकी भाँति फैल गया। शैव्या भी हरिश्चन्द्रकी सच्ची अर्द्धांगिनी थी। वह उनके सुख-दुःखकी सङ्गिनी थी। उसे भी पतिके प्रण निर्वाहनेकी चिन्ता पड़ी। हरिश्चन्द्र सब कुछ छोड़कर एकवस्त्र हो नंगे पाँव ही निकल पड़े। वह आर्य-रमणी राज्य-त्यागसे विह्वल नहीं हुई, वरं उसने आनन्दपूर्वक स्वामीका साथ दिया। बालक रोहिताश्व तो अभी कुछ ही वर्षोंका बच्चा था। उसे क्या खबर कि यहाँ क्या-से-क्या हो गया है। बालक माता-पिताकी छाया तो था ही, बस, वह भी उनके साथ हो लिया। सारी नगरीमें हाहाकार मच गया। हरिश्चन्द्र-के वियोगके दुःखका वज्राघात सहनेको कोई भी पाषाण-हृदय नगरमें ढूँढ़े न मिलता था। अहो! कैसा कारुणिक और हृदयविदारक दृश्य था! जो कुछ ही मिनटों पूर्व सबके स्वामी महाराज थे, वही राजा हरिश्चन्द्र अब सपरिवार एक दीन भिखारीकी भाँति नगरसे बाहर निकल रहे हैं! प्रजा उस समय शोकोन्मत्त हो रही थी। क्या स्त्री, क्या पुरुष, सभीकी आँखोंसे अविरल अश्रुधारा बह रही थी।

हरिश्चन्द्र सम्पूर्ण पृथिवीका दान तो कर ही चुके थे, अब वह ऋण कहाँसे चुकावें? उन्हें याद आया, भगवान् विश्वनाथकी पुरी काशी इस पृथिवीसे पृथक् है। वह शिवजीके त्रिशूलपर स्थित है। अतः उन्होंने काशी जाकर धन संग्रह करना उचित समझा; कुछ समयमें काशी जा पहुँचे। काशीकी छवि तो निराली ही थी। गगनचुम्बी मन्दिर तथा आकाशस्पर्शी अट्टा-लिकाएँ थीं। काशीकी गोदमें शुभ्रवसना भागीरथी लिपटी हुई थी। जहाँ-तहाँ स्वर्णमणिसे जटित प्रासाद दृष्टिगोचर होते थे। निर्मल जलमें स्वर्णका प्रतिबिम्ब मनको मुग्ध कर रहा था। पर काशीकी यह अनुपम शोभा हरिश्चन्द्रके मलिन मुखको उज्ज्वल नहीं कर सकी। हरिश्चन्द्र चिन्तित अवस्थामें नगरीके हाट-चौहाटमें फिर रहे थे। परन्तु कोई उपाय काम नहीं आया। अन्तमें उन्होंने अपनेको बेचना निश्चय किया, और रह-रहकर पुकार लगाने लगे, 'सेठ, साहुकारो! हमें कोई मोल ले लो।' इसप्रकार पुकार करते न जाने उन्होंने नगरीमें कितने चक्कर काटे। अन्तमें निराशाके कारण उनके मुखसे यह शब्द निकल पड़े—

'हाय! काशीमें मेरा, कोई खरीदार नहीं।'

इधर राजाकी यह अवस्था, उधर रानी भी घूम-घूमकर अपने बिकनेकी रट लगाये हुए थी। रोहिताश्व जो अभी निरा बच्चा ही था, जो अभी दुनियाके सुख-दुःखोंके विषयमें बिल्कुल अनजान था, वह गुम्बजमें प्रतिध्वनिकी भाँति अपनी माताका अनुकरण कर रहा था। वह अपनी तोतली बोलीमें कहता जाता था, 'अले! कोई अमको भी मोल ले लो।' नगरीमें जहाँ-तहाँ भीड़ एकत्रित हो गयी। लोग उनकी मुखाकृतियों-को देख मनमें सोचते थे कि इस कुलीन कुटुम्बको किस आपदाने घेर लिया। इतनेमें ही विश्वामित्रने आकर पुनः बुरी तरह तकाजा किया। राजा बड़े उदास हो गये। तब—

राजानं व्याकुलं दीनं चिन्तयानमधोमुखम्।
प्रत्युवाच तदा पत्नी बाष्पगद्गदया गिरा॥
त्यज चिन्तां महाराज स्वसत्यमनुपालय।
श्मशानवद्वर्जनीयो नरः सत्यबहिष्कृतः॥
नातः परतरं धर्मं वदन्ति पुरुषस्य तु।
यादृशं पुरुषव्याघ्र स्वसत्यपरिपालनम्॥
अग्निहोत्रमधीतं वा दानाद्याश्चाखिलाः क्रियाः।
भजन्ते तस्य वैफल्यं यस्य वाक्यमकारणम्॥
सत्यमत्यन्तमुदितं धर्मशास्त्रेषु धीमताम्।
तारणायानृतं तद्वत् पातनायाकृतात्मनाम्॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

राजन् जातमपत्यं मे सतां पुत्रफलाः स्त्रियः।
स मां प्रदाय वित्तेन देहि विप्राय दक्षिणाम्॥
(मार्कण्डेयपुराण ८। १६-२१, २४)

—राजाको दीन, व्याकुल और नीचे मुख किये चिन्ता करते देखकर शैव्याने गद्गद-कण्ठसे कहा—

महाराज! आप चिन्ता छोड़कर अपने सत्यका पालन करें। सत्यसे रहित मनुष्य श्मशानकी भाँति वर्जनीय है। हे पुरुषसिंह! अपने सत्यपालनसे बढ़कर कोई धर्म नहीं है। जिसकी बात चली जाती है उसके अग्निहोत्र, वेदाध्ययन और दानादि कर्म सब निष्फल हो जाते हैं। सत्य मनुष्यको तार देता है और झूठ डुबो देता है। हे राजन्! स्त्री तो पुत्रके लिये है, मेरे पुत्र हो गया है। आप अब मुझे बेचकर इस ब्राह्मणको दक्षिणा दे दें।' धन्य आर्यरमणी! हरिश्चन्द्र रानीकी यह बात सुनकर मूर्च्छित होकर गिर पड़े। फिर सचेत होकर धीरज धारणकर बिकनेकी पुकार लगाने लगे। इतनेमें ही एक उपाध्याय बटुकसमेत वहाँ आये। उपाध्याय हरिश्चन्द्रको पाँच सौ स्वर्णमुद्रा देनेको तैयार हो गये, पर धर्मारूढ़ सत्यसन्ध हरिश्चन्द्रने उनसे दान लेनेसे इनकार कर दिया। दान ग्रहण करना क्षात्र-धर्मसे विपरीत है। राजा बिकनेको तैयार हुए। इसपर रानी शैव्याने हाथ जोड़कर पुनः कहा—'हे नाथ! मेरे रहते हुए पहले आप नहीं बिक सकते। पहले आप अपने इस आधे अङ्गको बेचें।' हरिश्चन्द्रको पत्थरका हृदय करके आधी रकमके बदले, शैव्याको बेचने लिये सहमत होना पड़ा।

उपाध्यायने पाँच सौ स्वर्णमुद्रासे रानी शैव्याको दासीके रूपमें मोल ले लिया। उपाध्यायजीकी स्त्रीको घरके काम-काजसे छुट्टी न मिलनेके कारण वे भजन-पूजन नहीं कर सकती थीं। अब उपाध्यायजीने गृहका कार्य सँभालनेके लिये शैव्याको नियुक्त कर दिया। पतिव्रता शैव्याने दासीपनमें भी अपने पातिव्रत्य-धर्मकी भलीभाँति रक्षा की। उसने उपाध्यायसे निःसंकोच कह दिया था—'मैं परपुरुषसम्भाषण और उच्छिष्ट भोजनके आहारके अतिरिक्त, अन्य सब सेवा करूँगी।' उपाध्यायने शैव्याकी इन बातोंको सहर्ष स्वीकार कर लिया था। अस्तु।

उपाध्याय बटुकको शैव्याको गृह पहुँचानेका आदेश देकर चले गये। जब शैव्या जानेको थी, तब भोला-भाला बालक माँका आँचल पकड़े था। उस समयके करुणाक्रन्दन-दृश्यसे पाषाणहृदय भी पसीजता था, पर उस बटुकको तनिक भी दया न आयी। उसने शैव्याको जल्दी वहाँसे हटनेके लिये कहा। बालक कभी माँके मुखकी ओर ताकता और कभी पिताकी ओर विस्मित हो निहारता! बटुकने झट्से बालकको शैव्यासे अलग कर दिया। वह अबोध बालक इस झपेटसे पृथिवीपर गिर रोने लगा। हरिश्चन्द्रने रोहिताश्वको भी दास बनाकर उसकी माँके साथ भेजना अच्छा समझा। शैव्या पतिको अतृप्त नेत्रोंसे निहारती हुई सजल-नयन हो बटुकके साथ रोहिताश्वको लिये चल पड़ी।

हरिश्चन्द्रने शैव्याको बेचकर पाँच सौ स्वर्णमुद्रा तो प्राप्त कर ली थी, परन्तु पाँच सौका ऋण अभी उनके सिरपर था। बस, आज शामतक एक मासकी अवधि पूर्ण होनेको थी। सत्यभ्रष्ट होनेका भय उनके सिरपर सवार था। वह इसी चिन्तामें थे कि ब्राह्मणदेवता भी आ पहुँचे। आते ही कोपावेशमें बोले, 'ला मेरी दक्षिणा!' हरिश्चन्द्र पाँच सौ स्वर्णमुद्रा उन्हें देने लगे। आधी दक्षिणा देखकर ब्राह्मण क्रोधातुर हो उठे। उन्होंने कहा—'अरे दुष्ट! हमें कोई कार्य नहीं, जो सहस्र मुद्राके लिये तेरे पीछे मारे-मारे फिरें? क्या तू हमें पाँच सौ मुद्रा देकर ही पीछा छुड़ाना चाहता है? आज शामतक तेरी अवधिका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अन्त है; तदनन्तर मैं तुझे शाप दूँगा।' हरिश्चन्द्रने विनीतभावसे उत्तर दिया—'नाथ! मैं भगवान्‌की कृपासे सायंकालतक आपकी दक्षिणा दे डालूँगा।' ब्राह्मण चला गया, इधर हरिश्चन्द्रने दीनबन्धुका स्मरण किया!

हाट-चौहाटोंमें हरिश्चन्द्रने पाँच सौ स्वर्णमुद्राके बदले फिर दासत्व ग्रहण करनेके लिये आवाज लगाना आरम्भ किया। इतनेमें एक चाण्डाल कहींसे आ निकला। उसने हरिश्चन्द्रसे कहा कि तुम क्या-क्या सेवा कर सकते हो? इसपर हरिश्चन्द्रने कहा कि 'मैं अशन (अन्न), वसन (वस्त्र) और चाण्डालगृहमें निवासके अतिरिक्त सब कार्य करूँगा।' चाण्डालने पाँच सौ स्वर्णमुद्रा दे दी और ब्राह्मणसे उसका पिण्ड छुड़ा दिया। चाण्डालने कहा कि 'मैं डोमोंका राजा हूँ। तुमको श्मशानमें रहना होगा, वहाँपर जो कोई मुर्दा जलनेको आवे, उसका आधा कफन लिये बिना मुर्देका दाह-संस्कार मत होने देना।' हरिश्चन्द्रने इस भयानक कृत्यको सहर्ष स्वीकार किया। सचमुच हरिश्चन्द्रने अपनी सत्यनिष्ठाको चरम सीमातक पहुँचाया।

बेचि देह दारा सुअन, होइ दासहू मन्द।
रखिहै निज बच सत्य करि, अभिमानी हरिचन्द॥

सब कुछ किया, पर अपनी टेक न छोड़ी! धन्य!!

विश्वामित्र और इन्द्र इन घोर परीक्षाओंसे हरिश्चन्द्रको सत्यभ्रष्ट न कर सके। इसपर वे मन-ही-मन ईर्ष्याके मारे और भी कुढ़ने लगे। उन्होंने एक और कड़ी परीक्षाकी ठानी। पर हरिश्चन्द्र तो स्वर्ण थे, ज्यों-ज्यों परीक्षा-रूपी अग्निमें तपाये जाते थे, उनका यश स्वर्णके सदृश अधिकाधिक उज्ज्वल तथा दीप्तिमान् होता जाता था। इन कठिन परीक्षाओंके ही कारण तो उनका सुयश त्रिलोकीमें फैला!

राजा हरिश्चन्द्रके श्मशाननिवासकी ओर भी पाठक तनिक दृष्टिपात करें। विलासपूर्ण सुसज्जित महलोंका रहनेवाला राजा आज श्मशानभूमिमें कम्बल ओढ़े, हाथमें मोटा लट्ठ लिये खड़ा है। रात्रिका काला अँधियारा श्मशानको और भी डरावना बना रहा है। नदीका भी प्रवाह वेगसे चल रहा है। चारों ओर अन्धकारकी घटाके साथ-ही-साथ बादलोंकी गड़गड़ाहट, बार-बार बिजलीकी चमक भयानकताको द्विगुणित करती जाती है। सियारों और कुत्तोंकी विकट ध्वनिके साथ ही मेंढकोंकी टर्र-टर्र उस निर्जन, सूने स्थानमें बड़ी ही कर्णभेदी प्रतीत होती है। मानव-समाजके लिये यह वेला और यह भयावह स्थान शोक, विषाद और भयका घर था, परन्तु पिशाचसमाजके लिये तो यही श्मशानभूमि अर्द्धरात्रिमें क्रीड़ा तथा नृत्यका रङ्गमञ्च बनी हुई थी।

भूतों, प्रेतों, कापालिकों और वैतालोंके समाज जुटने लगे। उनका शृङ्गार निराले ही ढङ्गका था। भूतिनी, डाकिनी, पिशाचिनी अपनी माँगमें लहूका सिन्दूर लगा रही थीं, मुण्डमाला अपने गलेमें डाल रही और नृत्य कर रही थीं। पिशाचगण उन्मत्त हो-होकर मनुष्योंकी खोपड़ीरूपी प्यालोंमें रुधिररूपी शराबको भरकर बड़े चावसे पी रहे थे। कहीं श्मशानपर गिद्धों, सियारों और पिशाचोंका सहभोज हो रहा था। वे मुर्दोंकी आँखें निकालते, उनकी अँतड़ियोंको निकालते और उनकी जाँघोंमेंसे नोच-नोच मांसको खाते थे। कितना बीभत्स दृश्य था! मनुष्यदेहकी कैसी कारुणिक स्थिति थी!! देहधारी मनुष्योंकी सुन्दरताकी उपासनाका तथा देहाभिमानका कैसा निराशा और उपहासपूर्ण नग्न चित्र था!!!

यह बीभत्स दृश्य देखना भी हरिश्चन्द्रके भाग्यमें बदा था। यह जो कुछ हुआ सो तो हुआ, परन्तु अब भी परीक्षकोंने उनका पिण्ड न छोड़ा। वे उनको धर्मच्युत करनेको नये-नये उपाय करने लगे। कापालिक-वेषमें सत्य उनकी परीक्षा लेने आया।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कापालिकने हरिश्चन्द्रसे कहा कि मुझे सिद्धियोंके लिये साधना करनी है, पर विघ्न-बाधा पड़ जाती है। हरिश्चन्द्रने उत्तर दिया कि मैं अपने स्वामीके कर्तव्यसे विमुख हो अन्यत्र नहीं जा सकता। इसपर कापालिक बोला कि इसी स्थानपर रहकर आप चौकसी करके मेरे साधनकी रक्षा करें। तब हरिश्चन्द्रने चौकसी करनेकी प्रतिज्ञा की। कापालिकका कार्य सफल हुआ। अष्टसिद्धि, नवनिधि उसके वशीभूत हो गयीं। कापालिकने हरिश्चन्द्रको पुरस्कारस्वरूप दिव्य अञ्जन आदि, जिससे गड़े हुए धनकी निधि दिखायी दे सकती है, तथा अन्यान्य चीजें देनी चाहीं। पर धन्य हैं हरिश्चन्द्र! उन्होंने स्वयं कुछ भी लेना स्वीकार न कर सब अलौकिक शक्तियोंको अपने स्वामी चाण्डालके लिये माँगा। वैतालने भी आकर हरिश्चन्द्रको रसेन्द्रका प्रलोभन दिया। रसेन्द्र पारस-मणिकी भाँति स्वर्ण बनानेका रस था; इससे हरिश्चन्द्र स्वर्णकी राशि बनाकर चाण्डालके दासत्वसे मुक्त हो सकते थे। परन्तु हरिश्चन्द्र तो धर्ममूर्ति थे, सच्चे स्वामिभक्त थे, वे कैसे इस लालचमें फँसते? इस रसेन्द्र-को भी उन्होंने अपने स्वामी चाण्डालकी ही सम्पत्ति समझा। यही नहीं, तीनों विद्याएँ भी मँडराती हुई हरिश्चन्द्रके सम्मुख आ उपस्थित हुईं और हरिश्चन्द्रसे अपनेको पास रखनेके लिये प्रार्थना करने लगीं। विश्वामित्रके घोर तपसे भी ये विद्याएँ सन्तुष्ट नहीं हुई थीं, परन्तु हरिश्चन्द्र उन्हें ग्रहण करनेको तैयार नहीं हुए। हरिश्चन्द्रकी सहज दयालुता, निस्पृहता, सत्य-सन्धता और दानशीलताको धन्य है!

धर्मनिष्ठ हरिश्चन्द्र सत्यसे नहीं डिगे। वे अपने सत्यपर अटल अचल स्थिर थे।

बरु सूरज पच्छिम उगै, बिन्ध्य तरै जलमाहिं।
सत्यवीर जनपै कबहुँ, निज बच टारत नाहिं॥

अब देवेन्द्रने हरिश्चन्द्रको धर्मच्युत करनेके लिये मानवी तन्तुओंको भेदन करनेवाली अत्यन्त कठोर परीक्षा करनेकी ठानी। इन्द्रने तक्षकको रोहिताश्वके डसनेके लिये भेजा। बालक रोहिताश्व माताके साथ ही उपाध्यायके यहाँ सेवा करता था। वह देवार्चन-के लिये पुष्प चुनने नित्यप्रति बगीचे जाता था। वह बगीचे गया, अकस्मात् सर्पने उसे वहाँ डस लिया, बालकके प्राण-पखेरू तत्क्षण उड़ गये। रोहिताश्वके आनेका समय टल गया। घोर रात्रिने अपना विस्तार कर दिया। माता शैव्याको बालककी चिन्ता हुई। चिन्तातुरा माता घटनास्थलपर गयी। पर उफ्! बालकके मृत शरीरको देखकर उसका कलेजा मुँहको आ गया। परन्तु वह वीराङ्गना धैर्य धारणकर समयके आगे सिर झुकाये, बच्चेको आँचलमें लपेटकर श्मशानकी ओर चली।

श्मशानभूमिपर दुःखिनीने बालकके शवको लाकर रक्खा। कलेजेके टुकड़े बच्चेकी मुखाकृति देख, शैव्या-का शोकसागर उमड़ पड़ा। धैर्यकी भी तो सीमा है! बस, रानी विह्वल हो पुत्रवियोगमें नाना प्रकार करुण-क्रन्दन करने लगी। सचमुच, उसका एक-एक शब्द हृदय-भेदी और मानवी-हृदयमें उथल-पुथल मचाने-वाला था। उसकी हृत्तन्त्रियाँ टूट चुकी थीं, उनसे वज्रके हृदयको भी पिघलानेवाली मर्मभेदी ध्वनि फूट-फूटकर निकल रही थीं, जो कान मूँदनेपर भी सुनी ही जाती थीं। रे बालक! तू इस अभागिनी माताका एकमात्र अवलम्बन था; हाय! बेटा!! मैंने पति-वियोग-का दुःख सहा, अब तूने भी इस दुःखिनीका सङ्ग छोड़ दिया! हा पुत्र! तेरे मुखको देखकर, तुझे अपनी गोदमें लेकर, तेरे उज्ज्वल मस्तकका चुम्बनकर, मैं अपनी व्यथा भुलाये हुए थी। हाय! दारुण दैव-से यह भी न सहा गया!!! उफ्! विधाताकी निष्ठुरता! आज राजपुत्रके लिये कफन भी तो नहीं! हा वत्स! मरती समय तेरे पिता भी तेरे मुखको न देख सके!!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निस्तब्ध अर्द्धरात्रिके समय श्मशानके सजग पहरेदार हरिश्चन्द्रको क्रन्दन-ध्वनि सुनायी पड़ी। उन्होंने समझा कि किसी अबलापर पुत्रशोकका वज्र गिर पड़ा। पर, हाय! मैं भी कितना अभागा हूँ कि इस दुःखिनीसे इस समय भी आधा कफन माँगनेके लिये आग्रह करूँगा। ज्यों-ज्यों आर्त्तनादकी भनक उनके कानोंमें पड़ती, उनका हृदय विदीर्ण होता, कलेजा मुँहको आता। ज्यों-त्यों हरिश्चन्द्र दुःखिनीके पासतक पहुँचे। सहसा हरिश्चन्द्रको भास हुआ कि रानी शैव्या ही तो पुत्रशोकोन्मत्ता हुई विलाप कर रही है। हरिश्चन्द्रको भी यह दुःख असह्य हो गया। उन्हें किसी प्रकार भी दुःखिनी रानीके पास जानेका साहस नहीं होता था! वे भलीभाँति समझ रहे थे कि इन सारी परिस्थितियोंका निर्माता तो मैं आप ही हूँ। इतना होनेपर भी उनका काम आज दुःखमें साथी होने या सान्त्वना देनेके स्थानमें पतिवियोगिनी, पुत्रशोकविह्वला पतिव्रतासे कफन माँगना है। हरिश्चन्द्र इस दारुण परिस्थितिमें पड़कर क्षणभरको घबरा गये। उन्होंने आत्महत्याको श्रेयस्कर समझा। झट् वृक्षकी शाखासे वस्त्रका फन्दा लगानेको तैयार हो गये!

भगवान् सदैव सत्यसन्ध पुरुषकी सत्यनिष्ठाकी पूर्तिमें सहायक होते हैं। सहसा हरिश्चन्द्रके हृदयागारमें ज्योतिकी रेखा उदय हो गयी, जिससे वे इस भयावह स्थितिसे रक्षा पा गये। 'मैं पराया दास हूँ, इस शरीरको जान-बूझकर नष्ट करनेका मेरा क्या अधिकार है' इसप्रकार सोचकर आत्महत्याकी भावनाकी निन्दा करते हुए, धर्म-पथपर आरूढ़ हरिश्चन्द्र विपत्तियोंका स्वागत करनेके लिये पुनः कर्तव्यपर डट गये। यों प्रेम और कर्तव्यका तुमुल युद्ध हुआ, पर अन्तमें कर्तव्यका ही पलड़ा भारी रहा। हरिश्चन्द्रने शैव्यासे आधा कफन माँगा। वह बेचारी कहाँसे देती! स्वामीको पहचानकर कहने लगी, 'हे नाथ! मेरे पास तो कोई कफन नहीं है, रोहिताश्वको तो मैं अपने आँचलमें बड़ी कठिनतासे लपेटकर लायी हूँ।' ऐसे कह वह अपने विलापसे दिशाओंको भी रुलाने लगी। हरिश्चन्द्रने कहा—'तुम आर्यरमणी हो, धीरता धारण करो। देखो! कर्तव्य-पथसे विचलित न होना। मैं इस समय जिस कठिन कर्तव्यपर डटा हूँ, उसकी पूर्तिमें मेरी सहायता करो। मैं अपने स्वामी चाण्डालका कार्य करनेमें आनाकानी नहीं करूँगा। तुम शीघ्र कफन देकर इसकी अन्तिम क्रिया कर डालो। देर न करो, मालिकके कामपर तुम्हें वक्तपर हाजिर होना है। फिर, यदि दिन चढ़ते कोई हम दोनोंको एकत्र देख लेगा तो यह निन्दनीय होगा।'

शैव्या आखिर पतिप्राणा धर्मशीला आदर्श रमणी थी, महाराज हरिश्चन्द्रकी अर्द्धाङ्गिनी थी। पतिके वचनोंसे उसने अपनी परिस्थितिको भलीभाँति समझा और कर्तव्यके कठोर बन्धनसे छूटना अधर्म समझकर उसने वज्र-हृदय हो अपना आधा आँचल फाड़कर देनेका निश्चय कर लिया। वह अपना आँचल फाड़नेको ही थी कि किसी अलक्ष्य शक्तिने अकस्मात् उसके हाथ पकड़ लिये। चारों ओर दिव्य प्रकाश छा गया। आकाशसे सुमनवृष्टि होने लगी। स्वयं भगवान् प्रकट हो गये। श्मशान वैकुण्ठके रूपमें परिणत हो गया। कपट-नाटककी समाप्ति हो गयी। शोक सदाके लिये दूर होकर आनन्द-ही-आनन्द हो गया। इन्द्र, विश्वामित्र, धर्मराज, सत्य तथा अन्य देवतागण घटनास्थलपर आ गये। इन्द्रने हरिश्चन्द्रसे घोर यातनाओंके लिये क्षमा माँगी और कहा—'महाराज! यह सब मेरी दुष्टता थी। पर इससे भी आपका कल्याण हुआ। स्वर्ग तो क्या, आपने सत्यके प्रभावसे ब्रह्मपद पाया। आपकी रक्षाके लिये शिवजीने भैरवनाथको आज्ञा दी थी। आप उपाध्याय बने थे, नारदजी बटुक बने थे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

साक्षात् धर्मने आपके निमित्त चाण्डालका स्वांग लिया था और स्वयं सत्यने आपके कारण चाण्डालके अनुचर और वैतालका रूप धारण किया था। न आप बिके, न दास हुए। यह सब चरित्र श्रीनारायणकी प्रेरणासे केवल आपके सुयश बढ़ानेके लिये किया गया।

विश्वामित्रने हरिश्चन्द्रका राज्य वापस लौटा दिया। भगवान्‌ने रोहिताश्वको जीवन-दान दिया और हरिश्चन्द्रको वर माँगनेके लिये कहा। हरिश्चन्द्र विनीतभावसे बोले—'हे त्रिभुवनपति! आपके दर्शनसे बढ़कर और क्या है? मैंने सब कुछ पा लिया। अब कोई कामना शेष नहीं रही।' परन्तु भगवान्‌को वर दिये बिना सन्तोष नहीं था, वे विशेष अनुरोध करने लगे। तब हरिश्चन्द्रने प्रार्थना की कि 'हे भगवन्! मेरी सारी प्रजा वैकुण्ठ जावे और पृथिवीपर सत्यकी प्रतिष्ठा हो।' अहा! धन्य है हरिश्चन्द्रकी निस्पृहता और प्रजा-अनुरक्तिको!!

निस्सन्देह सत्यकी ही विजय होती है—

'सत्यमेव जयते'

श्रीज्वालामुखी-यात्रा

(लेखक—श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी, एम० ए०)

देवीभागवतमें लिखा है—

अपश्यत्तां सतीं वह्नौ दह्यमानां तु चित्कलाम्।
स्कन्धेऽप्यारोपयामास हा सतीति वदन् मुहुः॥
बभ्राम भ्रान्तचित्तः सन्नानादेशेषु शङ्करः।
तदा ब्रह्मादयो देवाश्चिन्तामापुरनुत्तमाम्॥
विष्णुस्तु त्वरया तत्र धनुरुद्यम्य मार्गणैः।
चिच्छेदावयवान् सत्यास्तत्तत्स्थानेषु तेऽपतन्॥
तत्तत्स्थानेषु तत्रासीन्नानामूर्तिधरो हरः।
उवाच च ततो देवान् स्थानेष्वेतेषु ये शिवाम्॥
भजन्ति परया भक्त्या तेषां किञ्चिन्न दुर्लभम्।
नित्यं सन्निहिता यत्र निजाङ्गेषु पराम्बिका॥

शङ्करकी अर्धाङ्गिनी सतीके पिता दक्षप्रजापतिके यहाँ यज्ञ आरम्भ होनेवाला था। पर कुतर्कवश दक्षने शङ्करजीके यहाँ निमन्त्रणतक न भेजा। इतना होनेपर भी पितृवत्सला सती शङ्करजीके अनुरोधका विचार न करके बिना बुलाये ही अपने पिताके यज्ञमें गयीं। वहाँ उन्होंने जो अपना उपेक्षायुक्त स्वागत तथा अपने पतिका तिरस्कार देखा तो उनको अत्यन्त क्षोभ हुआ। खिन्न होकर सतीने अपने शरीरको योगाग्निद्वारा भस्म कर डाला। ध्यानावस्थित शङ्करजी इस घटनासे अत्यन्त विह्वल हो गये। उन्होंने जलते हुए सतीके शवको कन्धेपर रखकर 'हा सती, हा सती' कहते पागलके समान इधर-उधर भटकना प्रारम्भ किया। शङ्करकी इस मोह-लीलासे देवताओंको बड़ी चिन्ता हुई। अतः विष्णुभगवान्‌ने बाणोंके द्वारा सतीके शवको टुकड़े-टुकड़े कर दिया। इसप्रकार छिन्न-भिन्न किये गये सतीके शवके अङ्ग-प्रत्यङ्ग भारतवर्षके भिन्न-भिन्न स्थलोंमें गिरे, क्योंकि शङ्करकी भ्राम्यमाण अवस्थामें ही यह शवच्छेदन किया गया था। यही स्थल प्रधान शक्ति-पीठ हुए और इनमें भगवान् शङ्कर निरन्तर वास करने लगे। इन पीठोंमें की हुई उपासना अत्यन्त शीघ्र फलदायिनी कही गयी है। इन पीठोंकी संख्या ५१ बतलायी जाती है।

यह तो हुई भारतीय प्रधान शक्ति-पीठोंकी स्थूल तथा लौकिक कथा। अब देखना चाहिये कि इस पौराणिक गाथाका सूक्ष्म रहस्य क्या है? इन पीठोंकी नामावली तथा सतीके अङ्गविशेषसे सम्बन्ध बताते हुए योगिनीहृदय-तन्त्रमें लिखा है—

एते पीठाः समुद्दिष्टा मातृकारूपमास्थिताः।

और दाक्षायणीतन्त्रके अनुसार—

पीठानि चैकपञ्चाशत् कामरूपादिकानि च।
अकारादिक्षकारान्तवर्णरूपाणि जज्ञिरे॥

इसप्रकार इन दोनों तन्त्रोंके अनुसार इन ५१ शक्ति-पीठोंसे ५१ आभ्यन्तर मातृकाओं अथवा उनसे जन्य बाह्य ५१ (अ से अः तक १६ स्वर और क से क्ष तक ३४ व्यञ्जन, कहीं-कहीं ळ को मिलाकर ३५ व्यञ्जन माने गये हैं। इस ळ का उच्चारण ड़ और ल के सम्मिश्रणसे होता है।) वर्णों या अक्षरोंका निर्देश समझना चाहिये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तान्त्रिक तथा औपनिषदिक मतानुसार यह मनुष्य-शरीररूपी पिण्डाण्ड प्रत्येक विषयमें विस्तृत विश्वव्यापी ब्रह्माण्डका प्रतिरूप है। अर्थात् जितनी शक्तियाँ 'महतो महीयान्' रूपसे इस समस्त ब्रह्माण्डको चलाती हैं वही सब-की-सब 'अणोरणीयान्' रूपसे इस मनुष्य-शरीर नामक क्षुद्र ब्रह्माण्डमें पायी जाती हैं। यही कारण है कि स्थान-स्थानपर इस मानवयोनिकी इतनी प्रशंसा पायी जाती है।

तन्त्रोक्त साधनाओंमें यन्त्रोंकी महत्ता विशिष्टरूपसे पायी जाती है। इन यन्त्रोंमें श्रीचक्र अथवा श्रीयन्त्र यन्त्र-राज-सा गिना जाता है। इस यन्त्रमें समस्त ब्रह्माण्डकी परिचारक शक्तियोंका बड़े ही हृदयङ्गमरूपसे समावेश किया गया है। और उपर्युक्त कथनानुसार यह यन्त्र मानव-देहकी शक्तियोंका भी उसी प्रकार द्योतक है (इस विषयमें जिज्ञासु पाठकोंको भावनोपनिषद्, देव्युपनिषद्, त्रिपुरोपनिषद्, त्रिपुरतापिन्युपनिषद्, तन्त्रराज तथा काम-कलाविलास देखना चाहिये)।

ललितासहस्रनाम नामक ग्रन्थमें श्रीचक्रकी मुख्य अधिष्ठात्री देवताका एक नाम 'मातृकावर्णरूपिणी' १६७वें श्लोकमें दिया हुआ है। इस नामकी टीकाके प्रसङ्गमें प्रसिद्ध तान्त्रिक टीकाकार भास्करराय लिखते हैं—

मातृकावर्णान् रूपयति जनयति वा। अनुत्तराख्य-शिवस्येच्छाशक्त्या योगादिक्रमेण वर्णोत्पत्तिप्रकारः सौभाग्यसुधोदये द्रष्टव्यः। मातृकावर्णानामेव श्रीचक्रात्मकत्वं मातृकाविवेके पष्ठे पटले विस्तरेण प्रतिपादितम्। अत एव सनन्दनसंहितायां मातृकाचक्रयोरैक्यविभावनं कैलासप्रस्तार इति व्यवहृतं तादृशरूपवतीति वा।

इस टीकाके अनुसार मातृका और वर्णरूपमें ही श्री-चक्ररूप इस मानवदेहमें स्थित हैं। ऊपर कहा जा चुका है कि ये मातृकाएँ और वर्ण ही ५१ शक्तिपीठ हैं। अतः इन शक्तिपीठोंके रूपमें यन्त्रराज श्रीचक्रहीकी उपासना की जाती है। सुप्रसिद्ध षट्चक्र इस श्रीचक्रमें सम्मिलित हैं।

अब मातृका तथा वर्णोंके विषयमें दो शब्द अनुपयुक्त न होंगे। तान्त्रिक-कल्पनाके अनुसार यह समस्त ब्रह्माण्ड अथवा उसकी प्रतिमूर्ति मानव-देह शब्दब्रह्मकी ही कृति है। मानव-देहमें यह कारणरूप शब्द (ॐ) परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरीरूपमें स्थित है। प्रथम दो स्थितियाँ विशेषरूपसे अव्यक्त हैं। मध्यमास्थितिमें यह शब्दब्रह्म मातृकारूपमें मूलाधार इत्यादि षट्चक्रोंके दलोंपर व्यक्त होता है। और अन्तिम, चतुर्थ या वैखरी अवस्थामें वह अव्यक्त मातृकाजन्य शब्द व्यक्तवर्णके रूपमें कानोंसे स्थूल-रूपमें सुनायी देता है। अतः निरन्तरव्याप्त जगत्कारणरूप इस शब्दब्रह्मके व्यक्तरूप वर्णोंको अक्षर (अमर) कहना सर्वथा उपयुक्त ही है।

तन्त्रोक्त प्रयोगोंमें न्यास इत्यादिका जो गहन विषय है सो बहुधा तमाशा ही समझा जाता है, परन्तु इनका वैज्ञानिक रहस्य अत्यन्त सरल तथा श्रद्धोत्पादक है (इस विषयमें भी विस्तारसे फिर कभी लिखूँगा, इस समय दिग्दर्शनमात्र पर्याप्त होगा)। दिग्बन्धके अनन्तर साधकका प्रधान कृत्य काय-शुद्धि है। सबसे पहले मानसिक प्रक्रियाओंद्वारा कुण्डलिनी शक्तिको जाग्रत करके पृथिवी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश (पञ्चतत्त्वों) को क्रमशः उसमें लीन करना चाहिये। तदुपरान्त बायीं कोखमें पापपुरुषका ध्यानकर प्राणायामके द्वारा उसे सुखाकर भस्म कर देना चाहिये (इसे भूतशुद्धि कहते हैं)। इस-प्रकार शरीरका एक तरहसे अन्त हो जाता है (क्या यही सतीका योगाग्निमें भस्म होना है?)। इस मरणके उपरान्त सहस्रारचक्रसे आती हुई अमृतकी धारासे शरीर पुन-र्जीवित किया जाता है और उस शुद्ध शरीरमें इष्टदेवताका आवाहन होता है। इसे 'जीवन्यास' कहते हैं। देवताके आवाहन हो जानेपर अन्तर्मातृकान्यास और बहिर्मातृका-न्यास किये जाते हैं। अन्तर्मातृकान्यासमें शरीरस्थ षट्-चक्रोंके दलोंपर मातृकाओंकी स्थापना की जाती है (इस विषयमें षट्चक्रनिरूपण देखिये)। और बहिर्मातृका-न्यासमें शरीरके शिर इत्यादि ५१ बाह्य अवयवोंपर वर्णों-की स्थापना की जाती है (सम्भव है इन ५१ शक्तिपीठों-का गूढ़ रहस्य इस बहिर्मातृकान्याससे सम्बन्ध रखता हो)। इनके उपरान्त ऋष्यिन्यास, पीठन्यास, षडङ्गन्यास, कर-न्यास और व्यापकन्यास किये जाते हैं, जिनसे इस मानव-देहमें तरह-तरहसे देवावेशकी कल्पना की जाती है। इस-प्रकार काय-शुद्धि हो जानेपर प्रधान कृत्यमें हाथ लगाया जाता है।

उपर्युक्त विचारोंसे सतीके भस्म होने तथा शक्तिपीठों-की सृष्टिके विषयमें पुराणोंके वर्णनसे भिन्न सूक्ष्म कल्पना की गयी है।

इस उपोद्घातके अनन्तर अपने विषय श्रीज्वालामुखी-यात्रापर आता हूँ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पौराणिक कथाके अनुसार सतीकी जीभ जिस स्थलपर गिरी थी वही ज्वालामुखी तीर्थ या पीठ है। यह पीठ एक परम रमणीय तथा नयनाभिराम पर्वतीय प्रदेशमें स्थित है। इस पर्वतीय प्रदेशको 'काँगड़ेकी घाटी' कहते हैं।

काँगड़ेका पर्वतीय प्रान्त पञ्जाबके सूबेकी हिमालय-तराईमें शिमले और जम्मूके बीचमें बसा है। इस प्रदेशको महाभारतके समय त्रिगर्त और कुलूत कहते थे। कुलू उसी 'कुलूत' शब्दका अपभ्रंश है। आजकल यह स्थान बड़ी उन्नति कर रहा है और बीस-पचीस वर्षमें इसकी जन-संख्या और इसमें गमनागमन बहुत बढ़ जायँगे—ऐसी सम्भावना है। यहाँके निवासी निन्नानवे प्रतिशत हिन्दू हैं, पर इनमें अधिकांश धनहीन तथा दीन हैं। ये लोग सीधे स्वभावके और अतिथिसेवक हैं। इस प्रदेशके हिमाच्छादित भागमें गद्दीनामक एक जाति रहती है जो शीतकालमें अधित्यकाओंसे उतरकर नीचे चली आती है। कहा जाता है कि ये लोग उन उच्च वंशवाले सारस्वत ब्राह्मण तथा खत्रियोंके वंशज हैं जो मुसल्मानोंके दुर्दान्त शासनकालमें शहरोंसे भागकर अपने धर्मकी रक्षाके लिये जङ्गलोंमें जा छिपे थे।

काँगड़ा प्रान्तसे पञ्जाबकी कई मुख्य नदियाँ निकलती हैं। इनमेंसे एक नदी व्यास है। बटोत नामक स्थानपर पञ्जाब गवर्नमेण्टके इञ्जीनियरोंने इस नदीको अपने प्राकृतिक पथसे हटाकर दो-तीन मील लम्बी पक्की सुरङ्गद्वारा दूसरी ओर ले जाकर ऊँचेसे गिराया है और इस प्रपातसे बिजली पैदा करनेका आयोजन किया है। इससे समस्त पञ्जाबमें बिजली दी जा सकेगी। इसे मण्डी प्रॉजेक्ट (Mandi Project) कहते हैं। अबतक इसमें लगभग १४ करोड़ रुपये व्यय हो चुके हैं। इसी (Mandi Project) के वास्ते सामान लानेके लिये रेलकी एक लाइन पठान-कोटसे योगीन्द्रनगरतक करीब एक सौ आठ मील लम्बी खोली गयी है (पठानकोट अमृतसरसे रेलद्वारा क़रीब साठ मील है)। इस नयी लाइनपर पठानकोटसे बावन मीलपर ज्वालामुखीरोड स्टेशन है, ज्वालाजीका स्थान इस स्टेशनसे पन्द्रह मील दूर है। यह पन्द्रह मीलका मार्ग पर्वतोंमें होकर ऊँचा-नीचा जाता है। यात्रामें शिमलेकी मोटररोड याद आ जाती है। लारियाँ बराबर चलती हैं और प्रायः १) किराया प्रतिव्यक्ति लगता है।

ज्वालाजीका मन्दिर जिस पर्वतकी उपत्यकामें स्थित है उसे कालीधर पर्वत कहते हैं। यह लगभग पन्द्रह-सोलह मील लम्बा और दो-तीन हज़ार फुट ऊँचा होगा। पुराने जालन्धरवाले मार्गसे इस पर्वतका दृश्य बड़ा ही हृदयाकर्षक है। दूरसे यह पर्वत एक भारी दुर्गकी दीवार-सा दीखता है। इसी पर्वतकी तलहटीमें एक सुरम्य तथा स्वास्थ्यप्रद स्थानपर ज्वालाजीका मन्दिर बना हुआ है! मन्दिरमें कोई मूर्ति नहीं है। सात स्थलोंपर छोटी-छोटी दरारोंमेंसे ज्वाला या अग्निशिखा निरन्तर और अनादिकालसे निकल रही है। इसी आश्चर्यजनक ज्योतिके दर्शनोंके लिये प्रतिवर्ष लाखों भक्तजन दूर-दूरसे आते हैं।

मन्दिर पर्वतकी तलहटीसे तीस-चालीस सीढ़ी चढ़कर पर्वतकी ढालपर बना हुआ है। मन्दिर बड़ा-सा है और उसमें जो मुख्य पीठस्थान है उसके ऊपरका भाग श्रीकाशी-विश्वनाथके मन्दिरकी तरह सुवर्णमण्डित है। पासहीमें एक ऊँचा-सा तीस-चालीस फुटका सुवर्णमण्डित त्रिशूल है। कहा जाता है कि इस मन्दिरको हज़ार-बारह सौ वर्ष पूर्व काँगड़ेके राजा संसारचन्द्रने बनवाया था। सोनेका पत्र पञ्जाबकेसरी महाराज रणजीतसिंहकी भेट है। मन्दिरके आँगनमें और गर्भगृहके सामने एक ऊँचे चबूतरेपर दो स्वर्णमण्डित सिंह रक्खे हुए हैं। मन्दिरका प्रबन्ध पण्डोंकी एक कमेटीद्वारा होता है।

मन्दिरमें प्रवेश करते ही एक ओर झरनोंके शीतल जलसे भरा हुआ एक तालाब-सा है। इसमें हाथ-पैर धोकर गर्भगृहमें जाना होता है। गर्भगृहके चाँदीके मँढ़े हुए द्वार बड़े ही सुन्दर हैं। इस गर्भगृहके जगमोहनमें तथा भीतर संगमर्मर जड़ा हुआ है। गर्भगृह या मुख्य मन्दिर कोई तीस फुट लम्बा और इतना ही चौड़ा होगा, बीचमें चार स्तम्भ हैं और इन स्तम्भोंके मध्य भागमें चार फुट गहरा एक कुण्ड है, जिसमें उतरनेके लिये सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। कुण्ड-की लम्बाई चार फुट होगी और चौड़ाई दो फुट। इसी कुण्डकी सामनेकी दीवारमें पत्थरके दराजमेंसे एक प्रचण्ड अग्निशिखा निकलती है। यह ज्वाला करीब एक हाथ ऊँची और हाथहीके बराबर मोटी है। नीचे तो ज्वाला कर्पूरकी तरह श्वेत-वर्ण होती है पर ऊपर नीली हो जाती है। इसके दर्शनसे हृदय पुलकित और आनन्दमय हो उठता है। भगवती ज्वालाजीको दूध, पेड़ा अथवा हलुआ भेट किया जाता है। पेड़ा और हलुआ ज्योतिसे लगाया जाता है और उसका कुछ अंश झुलस-सा जाता है। दूधका लोटा भी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ज्योतिसे लगाया जाता है। आश्चर्यकी बात है कि लोटेमें ज्योति आ जाती है और लोटेको अलग हटानेपर भी कुछ देर उसीमें चारों ओर घूमती रहती है। कुछ दूध अवश्य कम हो जाता है यह दृश्य मैंने अपनी आँखों देखा है। ज्योतिके समीप कुछ हल्की-सी गर्मी होती है और ज्योतिके स्पर्शसे हाथ नहीं जलता।

इसी मन्दिरमें चारों खम्भोंके बाहरकी परिक्रमामें तीन और ज्योतियोंके दर्शन होते हैं। मन्दिरके बाहर पन्द्रह-बीस सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपरकी ओर उसी आँगनमें और दो ज्योतियोंके दर्शन होते हैं। एक छोटा-सा कुण्ड है जिसमें दूधके रङ्गका जल है। इस कुण्डके दो कोनोंपर छोटी-छोटी अग्निशिखाएँ निकलती हैं। इनके पास ही एक दूसरा कुण्ड है। इस दूसरे कुण्डमें कोई ज्वाला नहीं निकलती। पर जलती हुई ज्वालामुखी धूप अथवा बत्ती इस कुण्डके पास ले जानेसे हू-हू करती हुई तीन हाथ ऊँची लपट निकलती है, जो कुछ देरमें ठण्डी हो जाती है।

कहा जाता है कि मुगल सम्राट् अकबर किसी समय इस स्थानपर आया था। उसने इस पीठकी परीक्षार्थ ज्योतिके ऊपर पहले तो लोहेके कई तवे लगवाये। पर उनसे ज्वाला न दबी। बगलमें फिर उसी तरह निकलने लगी। तब अकबरने एक स्रोतसे नहरद्वारा लाकर ज्वालापर जल डाला। इससे भी कुछ न हुआ। ज्वाला उसी प्रकार निकलती रही। इस चमत्कारके अनन्तर अकबरके नेत्रोंकी ज्योति जाती रही। तब उसने नंगे पैर भगवतीकी यात्रा की और एक छत्र चढ़ाया। यह छत्र चाँदीका मालूम होता है और अब भी मन्दिरमें रक्खा है। मन्दिरके पास उस नहरके भी कुछ चिह्न मिलते हैं। इसी घटनाके आधारपर भगवतीकी निम्नलिखित स्तुति यात्रियोंद्वारा मार्गमें गायी जाती है—

सुन मेरी देवी परवतबासिनि,
कोइ तेरा पार न पाया ॥टेक॥
पान सुपारी धुजा नारियल,
ले तेरि भेंट चढ़ाया ॥ १ ॥
साड़ी चोली तेरे अँग राजैं,
केसर तिलक लगाया ॥ २ ॥
बरम्हा बेद पढ़ैं तेरे द्वारे,
संकर ध्यान लगाया ॥ ३ ॥
नंगे पैरी, देवा ! अकबर आया,
सोनेदा छत्तर चढ़ाया ॥ ४ ॥
ऊँचे-ऊँचे पर्वत बन्यो दिवाल
निचे-निचे सहर बसाया ॥ ५ ॥
धूप दीप नैवेद आरती,
मोहनभोग लगाया ॥ ६ ॥
ध्यानू भगत तेरा गुन गावै,
मनवांछित फल पाया ॥ ७ ॥

पाठकोंमेंसे अनेक सज्जनोंने श्रीकाशी-विश्वनाथजीकी शयनआरतीका मनोहर दृश्य देखा ही होगा। मेरे अनुभवमें वैसा सुन्दर तथा गम्भीर अवसर काशीके अतिरिक्त ज्वालाजीकी शयनार्चाहीमें दीख पड़ा। इसका कुछ विवरण देना आवश्यक है।

भगवती ज्वालाजीकी शयनआरती दस बजेके लगभग होती है और इसके बाद मन्दिरके पट बन्द कर दिये जाते हैं। गर्भगृहके एक कोनेमें चाँदीकी सेज बिछायी जाती है और उसपर पुष्प विकीर्ण किये जाते हैं। इसके बाद आरती होती है और शयनार्चा प्रारम्भ होती है। ज्यों ही भगवतीको शयन कराया जाता है त्यों ही बड़े गम्भीर तथा हृदयस्पर्शी भावसे पाँच-छः पण्डे भगवतीकी स्तुति प्रारम्भ कर देते हैं। पलंगपर पाँच-छः छोटे-बड़े तकिये विशेष विधिसे लगा दिये जाते हैं और उनपर पैजामा तथा कुर्ता (जो ज़रीके हैं) डाल दिये जाते हैं। अब ऐसा प्रतीत होता है कि पीनोन्नता साक्षात् अम्बिका शयन कर रही हैं। इसके बाद नखसे शिखतकके सम्पूर्ण सुवर्ण तथा रजत-आभूषण पहनाये जाते हैं। यह दृश्य इन नेत्रोंसे कभी नहीं विस्मृत हो सकता। तदुपरान्त एक-एक करके कई सुन्दर चादरें भगवतीको ओढ़ायी जाती हैं। अन्तमें पुष्पाञ्जलि और चरण दबानेके कृत्य होते हैं। इस सम्पूर्ण कालमें अर्चनाके साथ-साथ स्तुति चलती रहती है। यह स्तुति साक्षात् भगवती कुण्डलिनीदेवीकी है और स्वामी शङ्कराचार्यकृत आनन्दलहरी, देव्यापराधक्षमापनस्तोत्र तथा अन्य किसी एक स्तोत्रसे ली गयी है। प्रथम छः पद आनन्दलहरीके हैं और उनमें उसी पुस्तकके अङ्क (स्तोत्र-संख्या) दिये जाते हैं। सातवाँ पद देव्यापराधक्षमापनका है और उसमें भी उसी स्तोत्रका अङ्क लगा है। अन्तिम पद अन्यत्रका है। यह स्तुति अज्ञात कालसे होती आयी है और भावुक भक्तोंको परम आनन्ददायिनी है। इसके अर्थ अथवा यौगिक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रहस्यके विषयोंमें विस्तारभयसे यहाँ कुछ नहीं लिखा जाता। स्तुति यों है—

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।
शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयां
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम्॥८॥

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्त्वा कुलपथं
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसि॥९॥

सुधाधारासारैश्चरणयुगलान्तर्विगलितैः
प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नायमहसा।
अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयं
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि॥१०॥

चतुर्भिः श्रीकण्ठैः शिवयुवतिभिः पञ्चभिरपि
प्रभिन्नाभिः शम्भोर्नवभिरपि मूलप्रकृतिभिः।
त्रयश्चत्वारिंशद्वसुदलकलाब्जत्रिवलय-
त्रिरेखाभिः सार्द्धं तव भवनकोणाः परिणताः॥११॥

त्वदीयं सौन्दर्यं तुहिनगिरिकन्ये तुलयितुं
कवीन्द्राः कल्पन्ते कथमपि विरञ्चिप्रभृतयः।
यदालोकौत्सुक्यादमरललना यान्ति मनसा
तपोभिर्दुष्प्रापामपि गिरिशसायुज्यपदवीम्॥१२॥

भवानि त्वं दासे मयि वितर दृष्टिं सकरुणा-
मिति स्तोतुं वाञ्छन् कथयति भवानि त्वमिति यः।
तदैव त्वं तस्मै दिशसि निजसायुज्यपदवीं
मुकुन्दब्रह्मेन्द्रस्फुटमुकुटनीराजितपदाम्॥१२॥

विधेरज्ञानेन द्रविणविरहेणालसतया
विधेयाशक्यत्वात्तव चरणयोर्या च्युतिरभूत्।
तदेतत् क्षन्तव्यं जननि सकलोद्धारिणि शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति॥२॥

सेवन्तिकावकुलचम्पकपाटलाब्जैः
पुन्नागजातिकरवीररसालपुष्पैः।
बिल्वप्रवालगणिकानटमालिकाभि-
स्त्वां पूजयामि जगदीश्वरि विश्वमातः॥

इस तीर्थकी स्थिति विन्ध्याचलकी तरह रमणीय है। ठहरनेके लिये स्थानकी कमी नहीं। छोटा-सा बाज़ार भी है। यहाँकी ज्वालामुखी धूप विशेषरूपसे प्रसिद्ध है। यहाँपर बनी धूप शुद्ध होती है और आठ आने सेर मिलती है।

यहाँसे अट्ठाईस मीलपर काँगड़ेमें भगवती विद्येश्वरी-का मन्दिर है जिनको नगरकोट (या कोट काँगड़े) की देवी कहते हैं। वहाँका वर्णन आगेके लेखमें आयेगा।

काँगड़ा घाटीकी नयी रेल एक बड़े ही सुन्दर पर्वतीय प्रदेशमें होकर जाती है और इसपर अनेकानेक मनोहर दृश्य मिलते हैं। केवल रेलयात्राहीसे भावुक भक्तके हृदयमें अनेक आनन्दकी तरङ्गें उठेंगी, ज्वालाजीके दर्शनकी तो बात ही क्या है! रास्तेमें अमृतसर पड़ता है, वहाँका सुवर्णशिखरवाला स्वर्णमन्दिर (दर्बारसाहब) जगत्प्रसिद्ध है और अवश्य देखनेयोग्य है।

ज्वालाजीका पुराना मार्ग जालन्धर और होशियारपुर होकर जाता है और उपर्युक्त नवीन मार्गसे बढ़कर प्रकृति सौन्दर्ययुक्त है। होशियारपुरतक रेल गयी है। वहाँसे करीब पचास मील मोटरका रास्ता है। पर बरसातमें अन्तिम आठ मील मोटर नहीं जाती। मैं इसी मार्गसे गया था। बड़ा आनन्द आया। इस मार्गमें भगवती चिन्तपूर्णीके दर्शन होनेका सुयोग मिलता है और डेरागोपीपुर नामक स्थानपर (जो ज्वालाजीसे आठ मील इस ओर है) व्यास-नदीका बड़ा ही सुन्दर और अनुपम दृश्य मिलता है। चिन्तपूर्णीका स्थान भी बड़ा प्रसिद्ध है। यहाँ जानेके लिये होशियारपुरसे अट्ठाईस मीलपर भर्वाइन नामक स्थानसे डेढ़ मीलका रास्ता गया है।

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY.
Jangamwadi Math, VARANASI.
Acc. No. 3511

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तुलसीकृत रामायणमें करुणारस

(लेखक—श्रीराजबहादुरजी लमगोड़ा, एम० ए०, एल-एल० बी०)

(३)

भरत और हैमलेट ।

[वर्ष ७ सं० ८ पृ० १०८८ से आगे]

(ख) दुःखान्तक घटनाओंके पूर्व भरत और हैमलेटकी दशाएँ

साहित्य-समालोचकोंने दुःखान्त घटनाके पूर्व हैमलेटके चरित्रमें शान्ति और मुदिताका आविर्भाव माना है और मेरा विचार है कि उसका हृदय भी प्रेमपूर्ण था । यही कारण है कि जब वह बादमें दुःखपूर्ण निराशासे आक्रान्त होता है तो हम विरोधाभासको प्रत्यक्ष अनुभव करने लगते हैं । उसका व्यवहार अपनी प्रेमिका उफेलिया (Ophelia) के प्रति बहुत कठोर जान पड़ता है । असल बात यह है कि वह दुःखान्त घटनासे इतना प्रभावित हो जाता है कि उसे प्रेमके सभी अङ्ग झूठे मालूम होते हैं, परन्तु फिर भी कभी-कभी मुदिता और प्रेम अपनी झलक दिखाये बिना नहीं रहते, चाहे वह अस्थायी ही क्यों न हो । उदाहरणार्थ होरेशियो (Horatio) और अभिनेताओंके आगमनपर वह बहुत खुश दिखायी देता है । इसी प्रकार क़ब्रस्तानके दृश्यमें उसका प्रेम उफेलियाके प्रति उमड़ पड़ता है और दुःखपूर्ण निराशाके कारण उसकी दशा उन्मादीकी-सी हो जाती है । सारांश यह कि उसी निराशाके कारण उसका सारा जीवन और स्वभाव ही नष्ट हो जाता है ।

भरतकी शान्ति तो इतनी प्रसिद्ध है कि उसके वर्णनकी आवश्यकता नहीं । वह भी प्रसन्न चित्तवाले थे । भरत और हैमलेट दोनोंके चरित्रचित्रणमें दोनों महाकवियोंको अपनी-अपनी विशेष कठिनाइयाँ थीं । शेक्सपियरके सामने नाटकका सङ्कुचित साँचा था जिससे वह अपने चरितनायकके जीवनकी प्रारम्भिक घटनाओंका विस्तृत वर्णन नहीं कर सकता था और तुलसीदासजी भरतका विस्तृत वर्णन इसलिये नहीं कर सकते थे कि वह 'रामचरित-मानस' लिख रहे थे । पर दोनों कवियोंका कमाल इसमें है कि उन्होंने तनिक-तनिक सङ्केतोंद्वारा दोनों चरित्रोंको पूर्ण कर दिया है । यहाँ हमें तुलसीके इसी कमालपर विशेष प्रकाश डालना है । उन्होंने रामकी बाल्यावस्थाका वर्णन करते हुए इसपर ख़ास जोर दिया है कि चारों भाई अयोध्याकी 'वीथियों' में खेलते और नगरनिवासियोंको आनन्दित करते फिरते थे । फिर जहाँ शिकारका वर्णन है वहाँ भी इसी बातपर ज़ोर दिया है कि चारों भाई 'मृगया' करने जाया करते थे । तुलसीदासने भरतको कहीं भी ऐसा नहीं दिखाया कि वे पुस्तक-कीट बने घरके किसी कोनेमें पड़े रहते थे । जब धनुष-भङ्गके पश्चात् महाराज दशरथको जनकका निमन्त्रण मिलता है और महाराज भरतसे बरातकी तैयारीके लिये कहते हैं तो भरतके हर्ष एवं उत्साहकी सीमा नहीं रहती । तुलसीदासजी लिखते हैं—

भूप भरत तब लीन्ह बुलाई । हय गज स्यंदन साजहु जाई ॥
चलहु बेगि रघुबीर बराता । सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता ॥
भरत सकल साहनी बुलाये । आयसु दीन्ह मुदित उठि धाये ॥
रचि रचि जीन तुरग तिन साजे । बरन बरन बर बाजि बिराजे ॥
सुभग सकल सुचि चंचल करनी । अय जिमि जरत धरत पगु धरनी ॥
तिनपर छैल भये असवारा । भरत-सरिस सब राजकुमारा ॥
सब सुन्दर बहु भूषणधारी । कर सर चाप तूणि कटि भारी ॥

छरे छबीले छैल सब, सूर सुजान नवीन ।
जुग पदचर असवार प्रति, जे असिकलाप्रबीन ॥

दृश्यमें कितना पूरबी बाँकपन है । इसमें बनावटी जुल्फ़सकी कोई कृत्रिमता नहीं है परन्तु वास्तविक सजीवता है । छैल-छबीले शृङ्गारपूर्ण अवश्य हैं, परन्तु शूर और सुजान भी । उन्हींमेंसे एक भरत भी हैं और इसीलिये कविने 'भरत-सरिस सब राजकुमारा' पर विशेष ज़ोर दिया है ।

इसीसे तो जब हम ऐसे छबीले-फुरतीले राजकुँवरको, जिसमें नखसे शिखतक जीवनका उत्साह भरा हुआ है, अपने स्वसङ्कल्पित तपद्वारा इन्द्रियदमन करते हुए और नन्दिग्राम-में गुफा बनाकर रहते हुए देखते हैं तो हमारा हृदय द्रवित हो जाता है । महाकवि शेक्सपियरका काम इससे भी अधिक कठिन था, क्योंकि नाटकके सङ्कुचित साँचेमें इतने भी विस्तृत वर्णनका अवकाश न था । परन्तु कवि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तो सदा ही मुश्किलपसन्द (काठिन्यप्रिय) होता है। वह छोटे-छोटे सङ्केतोंद्वारा हमें बहुत कुछ बता देता है। उदाहरणार्थ, होरेशियोसे वार्तालापमें स्कूली जीवनके असंख्य सङ्केत मौजूद हैं और हैमलेटका बर्छियोंके खेलमें निपुण होनेका पता उस वक्तृतासे साफ चलता है जिसके द्वारा उसे लेयरटीज़ (Laertes) के साथ उस खेलके लिये उत्तेजित किया गया था। तुलसीकृत रामायणमें भी ऐसे सङ्केतोंके बहुत-से उदाहरण मिलते हैं जैसे—'खेलत खुनस कबहुँ नहिं देखी' में एक ओर दोनों राजकुँवरोंके खेलोंकी ओर सङ्केत है और दूसरी ओर रामके भ्रातृ-प्रेमका चित्र। 'हारेहु खेल जितावत मोहीं' में तो वह प्रेम मानों उमड़ा पड़ता है। कितनी उदारता है और कितना शील! हमारी इस लेखमालाके प्रकरणमें तो मानों ये दोनों चरण सँजीवनमूरिका काम करते हैं। यही भ्रातृ-प्रेम, जो खेलमें भी छोटे भाईकी हार नहीं देख सकता, भरतको दुःखान्त घटनाओंसे उत्पन्न हुई निराशा और दुःखसे उबार लेता है। आह! हैमलेटके साथ सहानुभूति रखनेवाला कोई ऐसा व्यक्ति न था!!

दोनों राजकुँवरोंमें कभी-कभी इन निराशापूर्ण घटनाओंके बीचमें भी हर्षका विकास दीखने लगता है, परन्तु हैमलेटकी दशामें तो यह विकास केवल उसी प्रकारका है जैसे बुझते हुए दीपककी अन्तिम चमक। हमें होरेशियोके प्रति वार्तालापमें और अभिनेताओंके प्रति व्यवहारमें हैमलेटकी हर्षपूर्ण प्रकृतिका पता जरूर लगता है परन्तु थोड़ी ही देर बाद वह प्रकृति निराशा और दुःखके गर्तमें विलीन हो जाती है। मर्यादापुरुषोत्तम रामकी सहानुभूतिके कारण भरतके आनन्दका विकास अधिक टिकाऊ होता है। जब रामजी भरतसे अपील करते हैं कि—

बाँटि बिपत सब ही मिलि भाई। तुमहिं अवधिभर अति कठिनाई॥
होहिं कुठाँय सुबन्धु सहाये। ओडिय हाथ असिनके घाये॥

तो सारी परिस्थिति ही पलट जाती है। अब अयोध्याके राज्यका प्रबन्ध रामकी ओरसे 'सुपुर्ददारी' के रूपमें भरतके संरक्षणमें होता है और इसप्रकार भरतके सेवा-धर्मकी पूर्ति होती है। अब इस राज्य-प्रबन्धमें न तो धर्मशास्त्रके प्रतिकूल होनेकी बात है और न वह कुलाचारके ही विपरीत है, क्योंकि राजा तो राम ही रहे। भरतपर उस अपीलका प्रभाव विद्युत्वेगसे पड़ता है और उनके मुखपर प्रसन्नताका रंग दौड़ जाता है। वह बोल उठते हैं—

नाथ भयो सुख साथ गयेको। लहेउँ लाभ जग जनम भयेको॥

वस्तुतः जीवनकी सफलता प्रेमकी पूर्तिमें ही है। भरतपर पड़नेवाले उस प्रभावका तुलसीदासजीने यों वर्णन किया है—

मुख प्रसन्न मन मिटा बिषादू।

अब भरतमें इतना परिवर्तन है कि वह रामजीसे वनके मनोहर दृश्योंके देखनेकी आज्ञा माँगते हैं; परन्तु यह स्मरण रहे कि अब यह जङ्गलकी सैर भौतिक मृगयाके लिये नहीं है, प्रत्युत आध्यात्मिक यात्राके रूपमें रामजीके चरण-चिह्नोंसे अङ्कित भूमिके दर्शनके लिये। भरतजी कहते हैं—

एक मनोरथ बड़ मनमाहीं। समय सँकोच जात कह नाहीं॥
कहहु तात प्रभु आयसु पाई। बोले बाणि सनेह सुहाई॥
चित्रकूट मुनि थल तीरथ बन। खग मृग सरिसर निरझर गिरिगन॥
प्रभु पद अंकित अवनि बिसेषी। आयसु होइ तो आवहुँ देखी॥

उस वन-भ्रमणका वर्णन तुलसीदासजी आगे यों करते हैं—

कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रनामा। कतहुँ बिलोकत बन अभिरामा॥
कतहुँ बैठ मुनि आयसु पाई। सुमिरत सीयसहित दोउ भाई॥

(ग) आदर्श कलाप्रियता

जिस समय मैं हडसन (Hudson) की हैमलेट-सम्बन्धी व्याख्याका अध्ययन कर रहा था तो मुझे बार-बार स्मरण हो रहा था कि उस महान् व्याख्याताने किस सुन्दरतासे हैमलेटके चरित्रकी देख-रेख की है और किस कौशलसे हैमलेटके गुण-दोषका सम्बन्ध उसकी आदर्श कलाप्रियताके आधारपर स्थापित किया है! इस आदर्श कलाप्रियतामें मस्तिष्कीय संस्कृति, आत्मिक सूक्ष्मता, हृदयकी सुन्दर भावुकता, सबका आविर्भाव होता है और इनसे भी अधिक उस आदर्शप्रियताका आविर्भाव, जिसके कारण ही पाश्चात्य साहित्यमें डेनमार्क (Denmark) के राजकुमारको इतना उत्तम स्थान मिला है। अब हम उन्हीं गुणोंमेंसे एक-एकको लेकर डेनमार्क और अयोध्याके राजकुमारोंकी तुलना करेंगे।

(१) मस्तिष्कीय संस्कृति

इस सम्बन्धमें आलोचकोंका यह मत है कि हैमलेटमें सूक्ष्म सिद्धान्तप्रियता थी और वह किसी व्यक्तिगत गुण-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

को सबपर लागू करके वर्णन करनेका अभ्यस्त था। इस विषयमें बहुधा निम्नलिखित उदाहरण दिये जाते हैं—

(अ) क्रोधमें भी वह यों बोलता है कि कोई ऊपर-से चाहे जितना हँसे, परन्तु वह दुष्ट हो सकता है।*

(इ) होरेशियोसे वार्ता करते हुए कहता है कि ऐ होरेशियो ! पृथिवी और आकाशमें ऐसी कितनी ही बातें हैं जिन्हें तुम्हारे मानवी दर्शन स्वप्नमें भी नहीं जान सकते।†

(उ) 'जीवन रहे या न रहे' वाली स्वगत वार्ता तो प्रसिद्ध ही है।‡

यह भी नोट किया गया है कि नाटककलाके सिद्धान्तोंसे हैमलेट इतना अवगत था कि उसने अभिनेताओंकी केवल आलोचना ही नहीं की, प्रत्युत नाट्यकलामें भी सुधार बतलाये हैं। यह भी कहा जाता है कि हैमलेट बड़ी सूझ-बूझवाला था और दूसरोंके विचारोंको बड़ी तेजीसे ताड़ जाता था। इसीसे उसके चचाने उसीके जिन दो मित्रोंको जासूसीके लिये नियत किया था उनकी चालको वह तुरन्त ताड़ गया और उनके धोखेमें न आया।

भरतमें भी यही सारे गुण विद्यमान थे। इस लेख-मालामें भरतके सूक्ष्म विचारों और किसी व्यक्तिगत गुणको सबपर लागू करके वर्णन करनेके इतने उदाहरण मौजूद हैं कि पृथक् उदाहरणोंकी आवश्यकता नहीं ! भरतकी बुद्धिकी कुशाग्रता इससे स्पष्ट है कि वह किसी परिस्थितिके हर पहलूको तुरन्त ताड़ जाते हैं और अपनी विचार-सूक्ष्मतासे महान्-से-महान् मस्तिष्कपर विजय पाते हैं। इस विषयमें एक उदाहरण काफ़ी होगा। भरत और वशिष्ठमें होनेवाली वार्ताका यहाँ विस्तृत वर्णन किया जायगा, क्योंकि उसमें न केवल भरतके उपर्युक्त गुणोंका विकास है, बल्कि उससे उनके चरित्रके अन्य अङ्गोंपर भी प्रकाश पड़ता है। राजगुरु वशिष्ठका पद अयोध्याके साम्राज्यमें ठीक वैसा ही है जैसा बृटिश-साम्राज्यमें आर्कबिशप ऑव् कैन्टरबरी (Archbishop of Canterbury) का है।

राजगुरु वशिष्ठ भरतसे अयोध्याके राज्यको स्वीकार करनेकी अपील करते हुए इस बातपर ज़ोर देते हैं कि तुम्हारे पिताने इस राज्यको तुम्हें उस 'वर' की पूर्तिमें दिया है जिसे उन्होंने तुम्हारी माताको दिया था। वशिष्ठकी इस वक्तृतामें वे सभी गुण दीखते हैं जो किसी समयके आध्यात्मिक नेतामें होने चाहियें। उसमें ज़ोर है, आध्यात्मिक उत्साह है और धर्मशास्त्रके तत्त्वोंकी विवेचना। यही नहीं, उसमें पर्याप्त वाद-विवाद और राजनीति भी मौजूद है। वक्तृता ऐसी है कि वह किसी भी आधुनिक राजसभामें दी जा सकती है। गुरुको अपने शिष्यकी मस्तिष्कीय संस्कृति और विचार-सूक्ष्मताका ज्ञान था और इसी कारण उन्होंने अपनी वक्तृताको इसप्रकार निर्मित किया कि भरतपर उसका विशेष प्रभाव पड़े और उन्हें बोध हो जाय। गुरु वशिष्ठ कहते हैं—

सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि-लाभ जीवन-मरन, जस-अपजस बिधि-हाथ॥

इस दोहेमें किस सुन्दरताके साथ यह कोशिश की गयी है कि भरतकी तीव्र बुद्धि जो परिस्थितिकी देख-रेख-में लगी होगी, आधिदैविक कारणोंकी ओर प्रेरित हो जाय। कारण, वशिष्ठजीको भय था कि कहीं भरत असल अपराधी (कैकेयी) की यथोचित ताड़ना न करें। इसीलिये उन्होंने इस बातका प्रबन्ध किया है कि कैकेयी-को केवल निमित्त बनाते हुए भरतकी प्रवृत्तियोंको 'भावी' और 'विधि'की ओर फेर दें। वनवासके दृश्यमें अधिक-तर करुणरसपर ज़ोर है, परन्तु महाकाव्यके अपूर्व रचयिता तुलसीदासने सरस्वती और देवताओंके वार्तालाप इत्यादिके सङ्केतोंसे स्पष्ट बता दिया है कि वास्तवमें मन्थरा और कैकेयी निमित्तमात्र ही हैं। परन्तु इस बातपर उतना ज़ोर नहीं दिया कि जिससे करुणरसका मज़ा ही जाता रहे। 'बिलखि' शब्द कितना सुन्दर है और वही रस इस आध्या-त्मिक विचारसे भी फूटा पड़ता है। इस शब्दसे यह भी

* That one may smile and smile, and be a villain.

† There are more things in Heaven and Earth, Horatio, than are dreamt of in your philosophy.

‡ To be or not to be, that is the qnestion, etc. etc.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्पष्ट हो जाता है कि गुरु वशिष्ठ केवल शुष्क दार्शनिक मुनि ही न थे, प्रत्युत एक सहृदय मनुष्य भी। उनकी वक्तृता डेनमार्कके मन्त्री पुलोनियसकी वक्तृताकी भाँति केवल पुस्तकीय सिद्धान्तोंसे ही परिपूर्ण नहीं है, प्रत्युत उसमें हृदयके उद्‌गार हैं। उपर्युक्त विचारोंका निम्न पदसे प्रकटीकरण हो जाता है—

अस बिचारि केहि दीजिय दोषू। ब्यर्थ काहिपर कीजिय रोषू॥

'ब्यर्थ' शब्द कितना उपयुक्त और सङ्केतात्मक है! सचमुच अब क्रोध व्यर्थ था। न क्रोधसे महाराज दशरथ ही स्वर्गसे लौट सकते थे और न राम ही वापस आ सकते थे।

अब भरतको सन्तोष देने और उनका दुःख निवारण करनेके हेतु वशिष्ठजी दशरथके सद्‌गुणोंकी प्रशंसा करनेके पश्चात् यों कहते हैं—

सब प्रकार भूपति बड़भागी। बादि बिषाद करिय तेहि लागी॥
यह सुनि समुझि सोच परिहरहू। सिर धरि राज रजायसु करहू॥
राउ राजपद तुमकहँ दीन्हा। पिता बचन फुर चाहिय कीन्हा॥
तजेहु राम जेहि बचनहिं लागी। तनु परिहरेउ राम बिरहागी॥

कितना ज़ोरदार भाषण है! वशिष्ठजी एक ओर राजाज्ञापर ज़ोर देते हैं, जिसका मानना राजाके सभी प्रजाका कर्तव्य है, फिर चाहे वह प्रजा पुत्ररूपमें ही हो। फिर उसपर पिताका आदेश, जिसका पालन करना धर्मशास्त्र भी कर्तव्य बताता है। और फिर कैसे पिताका आदेश! जिसने अपने वचनको प्रमाणित करनेके लिये राम-जैसे प्रिय पुत्रको त्याग दिया, यद्यपि रामवियोगमें उनका प्राणान्त भी हो गया। इतना ही नहीं, आगे वशिष्ठजी फिर कहते हैं—

नृपहिं बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना। करहु तात पितुबचन प्रमाना॥
परसुराम पितु-अग्या राखी। मारी मातु जगत सब साखी॥
तनय जजातिहिं जोबन दयऊ। पितु अग्या अघ अजस न भयऊ॥

वचनके प्रमाणपर कितना ज़ोर है! और 'पितु-वचन' माननेके लिये किस ज़ोरके ऐतिहासिक उदाहरण दिये गये हैं—

अवसि नरेस बचन फुर करहू। पालहु प्रजा सोक परिहरहू॥
सुरपुर नृप पाइहि परितोषू। तुमकहँ सुकृति सुजस नहिं दोषू॥
बेदबिहित संमत सबहीका। जेहि पितु देहि सु पाइहि टीका॥

भरतके निस्स्वार्थभावके लिये प्रजापालनकी अपील कितनी सामयिक है! वैकुण्ठवासी पिताके सन्तोषकी ओर सङ्केत होना एक आर्यपुत्रके लिये कितना उचित है! क्योंकि बहुधा धर्मशास्त्रमें पुत्रकी उत्पत्ति ही पिताके उद्धारका कारण कही गयी है। अब रहा कलङ्कका भय, सो उसका निवारण भी गुरुजी इसप्रकार करते हैं कि जब वेदकी आज्ञा और प्रजाकी सम्मति यही है कि जिसे पिता दे वही राज्य पाये, तब कोई अपयश कैसे हो सकता है? नवीन राजनीतिके पण्डित भी यह जानते हैं कि किसी-न-किसी प्रकारका पत्र, चाहे वह राज्य-त्यागके रूपमें हो, या राज्यकी सुपुर्दगीके रूपमें, अब भी वैसे अवसरोंपर लिखा जाता है, भले ही वह नाममात्रके लिये ही हो।

.....। मानहु मोर बचन हित जानी॥

क्या यह राजगुरुकी हितकर अपील राज्य-स्वीकृतिके हेतु और भी ज़ोरदार कारण नहीं है? ऐसी अपीलसे प्रभावित न होना कितना कठिन था—

सुनि सुख लहब राम-बैदेही। अनुचित कहब न पंडित केही॥
कौसल्यादि सकल महतारी। तेउ प्रजासुख होहिं सुखारी॥

जब प्रजाके पालनसे रामचन्द्रजी और सीताजीके सुखी होने तथा कौसल्या माताके भी सुखी होनेका निश्चय है तो फिर भरतजीके राजसिंहासनपर बैठनेमें अड़चन ही क्या रही? परन्तु रही-सही शङ्काको भी वशिष्ठजी यों दूर करते हैं—

सौंपेहु राज रामके आये। सेवा करेहु सनेह सुहाये॥

अब तो स्वार्थका लेश भी नहीं रहता और हमें वशिष्ठकी इस बातसे सहमत होना पड़ता है कि रामराज्य समझकर उसके प्रबन्ध करनेमें कोई दोष न था। हमारे लिये, जो रामके पूरे इतिहासको जानते हैं, यह बात बड़ी मजेदार है कि गुरुजीने जिसप्रकार समस्या हल की है उसमें और रामजीके चित्रकूटवाले हलमें बहुत ही थोड़ा फ़र्क है। वह यह कि गुरुका अनुरोध था कि चौदह वर्षके लिये राज्य स्वीकार करो और फिर लौटा दो, जब कि रामने भरतको अपनी ओरसे वही राज्य चौदह वर्षोंके लिये सुपुर्द कर दिया और भरतकी उस सूक्ष्म कठिनाईको दूर कर दिया, जिसके कारण वह अपनेको अनधिकारी समझ एक क्षणके लिये भी राज्य ग्रहण करनेको तैयार न थे।

उपर्युक्त वशिष्ठ-भाषण-सम्बन्धी दस कारणोंको पढ़कर और आगे राजमन्त्रियोंकी सम्मति तथा कौसल्याजीका उपदेश सुनकर हमें तो यही प्रतीत होने लगता है कि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भरतको अवश्य ही राज्य ग्रहण करना चाहिये। हमारे साधारण मस्तिष्कमें तो कोई ऐसी बात ही नहीं आती कि भरतजी क्यों न राज्य ग्रहण करें।

परन्तु हम देखेंगे कि भरतकी तीव्र बुद्धि इन दसों कारणोंकी तहतक पहुँच जाती है और सबोंको छिन्न-भिन्न कर डालती है। गुरु वशिष्ठकी अपील सुनकर भरतजी उस अवस्थाकी कमजोरियोंको साफ दिखला देते हैं जो हमें बहुत मज़बूत जान पड़ती थी। भरतजीकी संक्षिप्त एवं सूक्ष्म वक्तृताको समझनेके लिये दुःखान्त परिस्थितियोंके तत्त्वको समझना आवश्यक है। महाकवि शेक्सपियरके चरितोंके पढ़नेवाले सभी जानते हैं कि वह दुःखान्त नाटकोंमें ऐसी परिस्थितियोंको रखता है जिनमें किसी भाँति न्यायका विरोध तथा हनन होता है और वह इसीको दुःखान्त घटनाओंका तत्त्व भी मानता है। जब न्यायको अपने विकासका अवकाश नहीं मिलता तभी परिस्थितिमें उथल-पुथल पैदा हो जाती है। अन्तरात्मामें भी जहाँ हमने अन्यायको तनिक देरके लिये भी स्थान दिया तो वह उसमें विषका-सा काम करने लगता है। देखिये न, अयोध्या और डेन्मार्कके राष्ट्रोंमें अन्यायने कितनी हलचल पैदा कर दी। अयोध्यामें राष्ट्रपति दशरथकी मृत्यु हो ही चुकी है और सभी रानियाँ वैधव्य प्राप्त कर चुकी हैं। नगरमें भी दुःख एवं भयका वह साम्राज्य है और परिस्थिति इतनी अन्धकारमय एवं जटिल है जिसका वर्णन तुलसीदासजी यों करते हैं—

घोर जन्तु जिमि सब नरनारी। डरपहिं एकहिं एक निहारी॥

इस समस्याकी जड़तक भरत पहुँच जाते हैं और उन्हें महाराज वशिष्ठके जोरदार मीठे उपदेश कटु ही प्रतीत होते हैं और वह समझते हैं कि जिस राज्य-शासनकी तहमें रामके प्रति अन्याय है वह विषरूप ही है। वह ठीक जानते हैं कि भोजन चाहे जितना सरस हो परन्तु यदि उसमें घातक विष मिला है तो वह त्याज्य ही है। भरतजी इसी केन्द्रित सिद्धान्तपर अड़ जाते हैं और वह अपना समय बहुत-से असम्बद्ध कारणोंके निरीक्षणमें नहीं लगाते। इसीलिये उनकी वक्तृतामें उतना वाद-विवाद नहीं है परन्तु ज़ोर और संकेत बहुत काफी है। उनके शब्दोंमें, यदि वह राज्य ग्रहण करते हैं तो, उनकी दशा यह होगी—

ग्रहगृहीत पुनि बात बस, तेहि पुनि बीछी मार।
ताहि पियाइय बारुनी, कहहु कौन उपचार॥

क्या इस दोहेसे यह स्पष्ट नहीं है कि भरतजी परिस्थितिसे पूर्णतः परिचित हो गये? इसीसे तो वह मानों कहते हैं कि 'ग्रहोंकी गति मेरे विरुद्ध है और मुझे अहङ्कार-वायु-दोषसे भर देनेवाली अपीलें हो रही हैं। क्या वशिष्ठ, क्या कैकेयी, क्या मन्त्रिगण, सभी अपने-अपने दृष्टिकोणसे राज्य-ग्रहणके निमित्त मेरी खुशामद कर रहे हैं। मैं पितृवियोगरूपी दंशसे व्यथित हूँ। परन्तु ये सब बाह्य व्यथाएँ हैं। अब आपलोग राज्यमदरूपी मदिरा मुझे दे रहे हैं। फिर बताइये तो, मेरा कल्याण कैसे हो?'

दोहेमें जो कुछ भरतजीने कहा है उससे अधिक पतेकी बात हो नहीं सकती और न वह ज्यादा ज़ोरदार शब्दोंमें कही ही जा सकती है। परन्तु फिर भी वह कितनी संक्षिप्त है।

हैमलेटके आलोचकोंने यह नोट किया है कि उसकी असफलताका कारण यह था कि उसमें इतनी शक्ति न थी कि वह उस सामाजिक जीवनको जो उसके चचाकी हिंसा-वृत्तिके कारण न्यायकेन्द्रसे हट गया था, पुनः प्रतिहिंसाद्वारा उसी केन्द्रपर ला सके। इस धारणामें यह स्पष्ट ही है कि पाश्चात्य देशोंमें वस्तुतः आँखके बदले आँख और दाँतके बदले दाँतका सिद्धान्त ही माना जाता है—भले ही उनमें नाममात्रके लिये मसीही धर्मका प्रचार हो। मसीहकी पर्वतवाली वक्तृता (Sermon on the mount) के होते हुए भी उन्हें तप और त्यागपर विश्वास नहीं। मानों वे यह जानते ही नहीं कि दण्डसे प्रायश्चित्त अधिक उपयोगी है और प्रायश्चित्त स्वस्वीकृत दमनका ही नाम है। उन्हें यह पता नहीं कि दण्ड एक प्रकारका भोग है परन्तु वही आनन्दका भण्डार बनाया जा सकता है, यदि वह तपमें परिणत कर दिया जाय। त्याग और क्षमा एक दूसरेके रूपान्तर ही हैं। महाभारतके इतिहासमें महाराज युधिष्ठिरकी यह कहावत बार-बार आती है कि दो बुराइयोंसे एक भलाई नहीं बनती और इसीलिये वह कहते हैं कि दुर्योधनके कटु व्यवहारको मैं अपनी क्षमामें लीन कर लेता हूँ। यहाँ भी भरत अन्यायका नाश करते हैं परन्तु हिंसा और रक्तपातसे नहीं, प्रत्युत तपसे। इसीलिये वह चित्रकूट जाकर राजमुकुट रामजीको लौटा देना चाहते हैं क्योंकि न्यायतः राम ही उसके अधिकारी थे। फिर वह लौटकर तप और त्यागके जीवनको इसी हेतु अंगीकार करते हैं कि अन्यायका विष

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अयोध्याके राष्ट्रमें फैलने न पाये।* भरतजी कहते हैं—

तुम तो देहु सरल सिख सोई। जो आचरत मोर हित होई॥
जद्यपि यह समुझत हौं नीके। तदपि होत परितोष न जीके॥

उनका स्वभाव नैसर्गिकतः कितना निर्मल है!

.....

पितु सुरपुर सिय राम बन, करन कहहु मोहिं राज।
यहिते जानहु मोर हित, कै आपन बड़ काज॥

राजसभामें भरतके प्रति जितनी अपीलें हुईं उनके मर्मोंकी कितनी सुन्दर और संक्षिप्त व्याख्या है!

उपर्युक्त कारणोंमेंसे प्रथम कारण अर्थात् अपने हितके विषयमें भरतजी यों कहते हैं—

हित हमार सियपति सेउकाई। सो हर लीन्ह मातु कुटिलाई॥

भ्रातृप्रेम और सेवाका कितना सरल भाव है और इसी कारण माताकी कुटिलाईका घोरतम विरोध भरतने किया है। भरतकी घृणा और क्रोधका पात्र माताके सिवा कदाचित ही कोई हुआ हो। उन्होंने आवेशमें माताके प्रति 'मुँह परेउ न कीरा' तक कह डाला है। अब द्वितीय कारणको लीजिये। जिसे 'आपन बड़ काजा' से प्रकट किया गया है। इस 'आपन' में वशिष्ठ, मन्त्रिगण, माताएँ और प्रजा सभी शामिल हैं, परन्तु मुख्य हेतु प्रजापालन ही है। यह ऐसा कारण था जिसने एक बार वशिष्ठके मनको भी डिगा दिया और उन्होंने राज्य-स्वीकृतिके साधकरूपमें वेद, शास्त्र, इतिहास इत्यादिके प्रमाण खोज-खोजकर दे डाले। परन्तु भरतके शुद्ध मस्तिष्क और प्रेमपूर्ण हृदयके लिये राज्यका रूप यह था—

सोकसमाज राज केहिं लेखे। लषन राम सिय पद बिनु देखे॥
बात बसन बिनु भूषण भारू। बाद बिरत बिनु ब्रह्मबिचारू॥

उदाहरणोंका नैतिक प्राबल्य विचारणीय है! उसमें कितनी सुन्दरता एवं सूक्ष्मता है!!

सरुज सरीर बाद सब भोगा। बिनु हरि-भगति बाद जप जोगा।

सत्य ही अन्याय ऐसा ही रोग है और निष्प्रेम व्यवहार ऐसा ही शुष्क है।

.....

कैकेयी-सुत कुटिलमति, राम-बिमुख गतलाज।
तुम चाहत सुख मोहबस, मोहिंसे अधमके राज॥

द्वितीय कारणके प्रति कितना ज़ोरदार उत्तर है! प्रजाकी भलाई ऐसे व्यक्तिसे कैसे हो सकती है जिसने लाज त्यागकर अन्यायसे मिला हुआ राज्य स्वीकार किया हो और जिसका जन्म ही ऐसी मातासे हो जो स्वयं अन्यायकी मूल हो! फिर यह सब रामविमुख होकर! वास्तवमें राज्य पिता दशरथका अपनी इच्छासे दिया हुआ न था प्रत्युत अन्यायरूपी पिशाच वरदानरूपी यन्त्रद्वारा बुलाया जाकर राजाके सिरपर नाच रहा था। उसी पिशाचका दिया हुआ यह राज्य था। सचमुच जो ऐसे राज्यको ग्रहण करे वह अवश्य ही कुटिलमति है। गुरु वशिष्ठके साधक कारणोंका कितना मार्मिक उत्तर है परन्तु उसका एक शब्द भी शीलताके विरुद्ध नहीं। भरतके वास्तविक शब्दोंमें उतनी भी कठोरता नहीं है जितनी हमारी व्याख्यामें। भरतके शब्द सङ्केतात्मक हैं और उनसे करुणा-रस फूटा पड़ता है। महाकवि शेक्सपियरने भी कम-से-कम एक क्षणके लिये हैमलेटके चचाकी स्वगत-वार्तामें आत्मिकताकी झलक दिखला दी है। उस क्षणमें वह भी अनुभव करता है कि राज्य-त्यागके बिना प्रायश्चित्त नहीं हो सकता। भरत इसे खूब जानते हैं और इसीलिये वह राज्यको विषकी भाँति त्याज्य ही समझते हैं। वह जानते हैं कि मन्त्रिमण्डल संकोचसे सम्मति दे रहा है और वशिष्ठ एवं कौसल्या प्रेमजनित मोहके कारण और प्रजाहितके खयालसे। जनता-का झुकाव रामहीकी ओर है और जब न्याय भी यही चाहता है तो वस्तुतः ऐसे राज्यको अपनाना निर्लज्जता ही है। इसी

* भारतवर्षके इतिहासमें भरतके इस त्यागसे एक युगके लिये आन्तरिक गृहयुद्ध हट गया, अन्यथा अयोध्याके राष्ट्रमें भी महाभारतके युद्धका एक दृश्य होता। लक्ष्मण क्रोधसे भरे ही थे, जैसा उनके चित्रकूटकी वक्तृतासे प्रकट होता है जिसमें उन्होंने कहा है—'प्रगट करहुँ रिस पाछिलि आजू' इत्यादि। फिर यदि यह मान भी लिया जाय कि लक्ष्मण रामके कारण चुप रहते तो उनके पश्चात् उनकी सन्ततिमें द्वेषभाव प्रकट होता। 'हैमलेट' में एक क्षणके लिये उसके चचाको पश्चात्ताप हुआ है परन्तु राज्य-त्यागकी समस्याके कारण वह पश्चात्ताप शीघ्र ही विलुप्त हो जाता है। हैमलेटकी माताकी प्रकृति तो इतनी स्थूल थी कि उसे किसी बुराईका कभी अनुभव ही नहीं हुआ। —लेखक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लिये अन्तमें भरतजी वैसे व्यक्तिको अधम ही कहते हैं और अधमके राज्यमें सुख कहाँ ? भरतजी आगे फिर कहते हैं—

कहौं साँच सब सुनि पतियाहू। चाहिय धर्मसील नरनाहू॥

वस्तुतः राजामें असाधारण धर्म एवं शीलका होना आवश्यक है।

मोहिं राज हठि देहौ जबहीं। रसा रसातल जैहै तबहीं॥
मोहिं समान को पापनिवासी। जेहिलगि सीयराम बनवासी॥
राउ रामकहँ कानन दीन्हा। बिछुरत गमन अमरपुर कीन्हा॥
मैं सठ सब अनरथकर हेतू। बैठि बात सब सुनहुँ सचेतू॥

आह! भरतके लिये इस समय सचेत रहना भी भार हो रहा है क्योंकि उन्हें राज्य-स्वीकृति-सम्बन्धी 'रामविमुख' एवं अन्यायपूर्ण बातें सुननी पड़ रही हैं। उन्हें महाराज दशरथकी मृत्युमें जीवनकी सफलता इसलिये दिखायी देती है कि उसमें प्रेम-प्रणका निर्वाह है। अबतक किसीने भी भरतके किसी वचनसे सहानुभूति नहीं प्रकट की और सब मौन हैं। भरत इस मौनको 'हठ' समझते हैं और समझते हैं कि ये सब मुझे राज्य देनेपर तुले हुए हैं। फिर जब वह अपनेपर नजर डालते हैं तो उन्हें अपना 'राम-विमुख' सचेत जीवन ही 'पाप-निवास' दीखता है।* भरतके भाषणके अन्तिम भागमें राजसभाके सभासदोंकी हार्दिक भावनाओंका अत्यन्त मार्मिक दिग्दर्शन है। वह स्पष्ट कहते हैं कि 'संशय सील प्रेमबस अहहू।' 'संशय' से स्पष्ट है कि भरतके विचारमें कोई सत्य निर्णय नहीं कर पाया प्रत्युत सभीकी बातें संशयात्मक हैं। योगवाशिष्ठमें एक जगह कहा गया है कि सचाई बहुत सरल वस्तु है। इससे स्पष्ट ही है कि जहाँ तोड़-मरोड़कर साधक बाधक कारण लाये जायँ वहाँ संशय अवश्य है। अब रहा शील और प्रेमका प्रभाव। वह तो सभासदोंके व्यवहारसे जाहिर ही है। माता कौसल्याके प्रति भरतजी यों कहते हैं—

राम मातु सुठि सरल चित, मोपर प्रेम बिसेख।
कहहिं सुभाव सनेहबस, मोर दीनता देख॥

माताकी बुद्धि स्नेहसे पराजित हो चुकी है और फिर भरतकी दीनता देख जो सहानुभूति उत्पन्न हुई उसने रही-सही बुद्धिको भी विदा कर दिया। भरतकी तीव्र बुद्धि कितना ठीक निरीक्षण करती है। गुरु वशिष्ठ भी भरतकी आलोचनासे नहीं बचे और यद्यपि भरतने शीलको एक क्षणके लिये भी हाथसे नहीं दिया परन्तु करुण-कटाक्षके रूपमें साफ कह दिया कि वह भी भरतको सत्यके सीधे मार्गसे हटाना चाहते हैं। शब्द ये हैं—

गुरु बिबेकसागर जग जाना। जिनहिं बिस्व कर बदर समाना॥
मोकहँ तिलक साज सजि सोऊ। भा बिधिबिमुख बिमुख सब कोऊ॥

अन्ततः कहते हैं कि अगर मैं राज्यको ग्रहण करता हूँ तो—

परिहरि रामसीय जग माहीं। को नहिं कहै मोर मति नाहीं॥

आह! राम और सीतापर कितना भरोसा है और इस बातसे कितना भय, कि लोग राज्य-ग्रहणमें उनकी सम्मति समझेंगे! सच है, ये राजसभाके भाषण सभाके भीतर ही रह जायँगे और सर्वसाधारण यही समझेंगे कि यह सब पहलेकी सठी-गठी बात थी। भरतकी कीर्तिको कालिमा लगेगी और लोग यही कहेंगे कि—'लोलुप भूप भोगके भूखे।'

अन्तमें स्वयं भरतने ही इस जटिल समस्याको हल कर दिया और हल होनेपर समस्या ऐसी साधारण जान पड़ती है कि हमें कोलम्बसकी अण्डा खड़े करनेवाली समस्याकी याद आ जाती है। हम योगवाशिष्ठके उस कथनका उल्लेख कर ही चुके हैं जो सचाईकी सरलताके बारेमें है।

एकहि आँक इहै मनमाहीं। प्रातकाल चलिहौं प्रभुपाहीं॥

आशय यह है कि हम सबको रामके पास चलना चाहिये और उन्हींके आज्ञानुसार काम करना चाहिये। हल कितना सरल है और कितना पूर्ण! प्रभु-सेवामें सेवा-धर्मकी पूर्ति, दर्शनमें प्रेमकी पूर्ति और 'जियकी जरन' मिटनेका निश्चय एक ओर और दूसरी ओर रामके प्रति

---

* 'मोसम कौन कुटिल खल कामी?' (सूर)

म० गाँधीसे एक समय यह प्रश्न किया गया था कि क्या वास्तवमें सूरदासजी ऐसे ही थे या उन्होंने इस पदको वैसे ही व्यक्तियोंके लिये रचा है जो वस्तुतः 'कुटिल खल कामी' हों। महात्माजीने उत्तर दिया था कि जिसका आदर्श जितना ही ऊँचा होता है उसे अपनेमें उतनी ही कमजोरी और कमी नजर आती है और अपनी तनिक-सी त्रुटि भी बहुत बड़ी प्रतीत होती है, क्योंकि आदर्श असीम है अतः महान्-से-महान् परिमित मानवी जीवनमें थोड़ी बहुत त्रुटि अवश्य रहेगी।

भरत भी आदर्शवादी हैं और इसीलिये उनके अपने प्रति प्रयुक्त शब्दोंकी व्याख्या महात्माजीकी उपर्युक्त धारणाके अनुसार करनी और समझनी चाहिये। —लेखक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अन्यायका प्रतीकार, राज्यके विनाशसे बचनेकी सम्भावना और भरतकी कीर्तिकी निर्दोषता—ये सभी बातें उपर्युक्त हलसे पूरी हो जाती हैं। अब न अन्यायका विष भरतके आन्तरिक आत्माका नाश कर सकेगा और न अयोध्याके राष्ट्रका। हल इतना सरल है पर साथ ही इतना गहन कि गुरु वशिष्ठ भी उसतक न पहुँच सके। हलकी सरलता इससे स्पष्ट है कि सबने उसे तुरन्त ही स्वीकार कर लिया और किसीको कोई शङ्का न रही। तुलसीदासजी लिखते हैं—

'भरतबचन सबकहँ प्रिय लागे।'

अब यदि हम भरतके सुसंस्कृत मस्तिष्क और सूक्ष्म विचारके अधिक उदाहरण देंगे तो हमें यहाँ सारा-का-सारा अयोध्याकाण्ड ही उद्धृत करना पड़ेगा। अतः हम इसी एक उदाहरणपर इस अंशको समाप्त करते हैं।

काननमें

(१)

माताके समान पर-पतनी बिचारी नहीं,
रहे सदा पर-धन लैनहीके ध्याननमैं।
गुरु-जन पूजा नहिं कीन्ही सुचि भावनसौं,
गीधे रहे नानाबिधि बिषय-बिधाननमैं॥
आयुस गँवाई सबै स्वारथ सँवारनमैं,
खोज्यौ परमारथ न बेदन-पुराननमैं।
जिनसे बनी न कछु करत मकाननमैं,
तिनसे बनैगी करतूत कौन काननमैं?॥

(२)

त्यागे बसतीके लाभ हैहै कहा मेरे मीत!
पागे मन जोपै अजौं बिषय-बिधाननमैं।
हैकै बन-बासी लखौ सिंहन न हिंसा त्यागी,
साधुता बिराजी नहीं रीछनके आननमैं॥
काम-मद-बासना मतंगनकी दूनी रही,
ऊनी रही भीलनकी बासना पुराननमैं।
काननके काचे अजौं मोहि मरैं तानमैं,
कीरति कुरंगन कमाई कौन काननमैं॥

(३)

'पूरन' सप्रेम जो न लेत मुख राम-नाम,
टीका अभिराम है निकाम तासु आननमैं।
उरमैं नहीं जो हरि-मूरति बिराजी मंजु,
कौन महिमा है कंठ मालनके दाननमैं?॥
आसनको नेम बिन बासना नमाए मिथ्या,
बिन श्रुति-ज्ञान होति मुद्रा वृथा काननमैं।
चाहिए सुप्रीति धर्म-कर्मके बिधाननमैं,
रहिए मकाननमैं चाहै घोर काननमैं॥

—राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भक्त-गाथा

(लेखक—एक भक्तपदरेणु)

भक्त रघुनाथदास

त्यागका पाठ तो बहुत-से पढ़ते हैं, पर उनमेंसे त्यागी कितने निकलते हैं? सभी जानते हैं कि संसार असार है—सार एकमात्र भगवान् हैं; परन्तु फिर भी प्रायः देखा इसके विपरीत ही जाता है। लोग असार संसारको तो सार समझकर पकड़े हुए हैं और एकमात्र सार—भगवान्—को भुलाये हुए हैं। कोई बिरले ही भाग्यवान् महापुरुष होते हैं जिन्हें भगवान्‌की दयासे सद्‌बुद्धि प्राप्त हो जाती है और वे सब कुछ त्याग-फड़ककर अलग जा खड़े होते हैं। भक्त श्रीरघुनाथदास भी एक ऐसे ही बड़भागी पुरुष थे। इनका जन्म एक महा समृद्धिशाली घरानेमें हुआ था; पर ये सारे झूठे सुख-वैभवको धता बताकर सच्चे सुखके खोजी बन गये।

बंगालमें एक स्टेशनका नाम है तीसबीघा। इस तीसबीघाके पास पहले एक सप्तग्राम नामक महा समृद्धिशाली प्रसिद्ध नगर था। इस नगरमें हिरण्यदास और गोवर्द्धनदास—ये दो प्रसिद्ध धनी महाजन रहते थे। दोनों भाई-भाई ही थे। ये लोग गौड़के तत्कालीन अधिपति सैयद हुसेनशाहका ठेकेपर लगान वसूल किया करते थे और ऐसा करनेमें बारह लाख रुपया सरकारी लगान भर देनेके बाद आठ लाख रुपया इनके पास बच जाता था। आठ लाख वार्षिक आय कम नहीं होती, और उसमें भी उन दिनों! उन दिनोंके आठ लाख आजकलके अस्सी लाखके बराबर हैं। खैर, कहनेका मतलब यह कि ऐसे सम्पन्न घरमें रघुनाथदासका जन्म हुआ था। और इसके सिवा भी एक बात यह कि हिरण्यदास सन्तानहीन थे और गोवर्द्धनदासके भी रघुनाथदासको छोड़कर और कोई सन्तान न थी। इस तरह उन दोनों भाइयोंकी आशाके स्थल एकमात्र यही थे।

खायें तो थोड़ा, पीयें तो थोड़ा और उड़ायें तो थोड़ा—इस तरह बड़े लाड़-दुलारके साथ बालक रघुनाथदासका लालन-पालन हुआ। अच्छे-से-अच्छे विद्वान् पढ़ानेको रक्खे गये। बालक रघुनाथने बड़े चाव-से संस्कृत पढ़ना आरम्भ कर दिया और थोड़े ही समयमें उसमें पूर्ण अभिज्ञता प्राप्त कर ली। यही नहीं, भाषा-की शिक्षाके साथ-साथ रघुनाथको उस सञ्जीवनी बूटीका भी स्वाद मिल गया जिसके संयोगसे विद्या वास्तविक विद्या बनती है। वह सञ्जीवनी बूटी है भगवान्‌की भक्ति। बात यह हुई कि अपने जिन कुलपुरोहित श्रीबलराम आचार्यके यहाँ बालक रघुनाथ विद्याभ्यासके लिये जाता था उनके यहाँ उन दिनों श्रीचैतन्य महाप्रभुके परम शिष्य हरिदासजी रहा करते थे। जैसे चुम्बक लोहेको खींचता है वैसे ही साधुओं-में भी लोगोंको अपनी ओर खींचनेकी शक्ति रहती है। उनकी दर्शनीय सौम्य आकृति, निर्मल भगवन्निष्ठा आदिने रघुनाथके हृदयमें भी घर कर लिया। उनके सत्संगसे हरिभक्तिकी एक पतली-सी धारा उसके हृदयमें भी बह निकली।

उन्हीं दिनों खबर मिली कि श्रीचैतन्यदेव शान्तिपुर पधारे हुए हैं। श्रीचैतन्यदेवका नाम उस प्रान्तके घर-घरमें फैल चुका था और जबसे अपना सारा समय निश्चिन्त होकर भगवन्नाम-प्रचारमें लगानेके लिये अपनी करुणामयी वृद्धा माता और आज्ञाकारिणी अल्पवयस्का पत्नीतकको, जिनके एकमात्र यही अवलम्ब थे, भगवान्‌के भरोसे छोड़ यह संन्यासी हो गये, तबसे तो इनके भगवत्प्रेमकी सचाईका प्रत्यक्ष प्रमाण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पाकर लोग इनकी ओर विशेषरूपसे आकृष्ट हो गये थे। जहाँ कहीं गौराङ्गदेव जाते, दर्शनार्थियोंकी भीड़ जमा हो जाती। इसीलिये ज्यों ही यह समाचार मिला कि श्रीमहाप्रभु शान्तिपुरमें श्रीअद्वैताचार्यके यहाँ पधारे हुए हैं त्यों ही आसपासके भक्तोंका दिल खिल उठा। रघुनाथ तो खबर पाते ही दर्शनके लिये छटपटा उठा। उसने शान्तिपुर जानेके लिये पितासे आज्ञा माँगी। पिताके लिये यह एक अनावश्यक-सा प्रस्ताव था; पर जब उन्होंने देखा कि रघुनाथके चेहरेपर बेचैनी दौड़ रही है तो उन्होंने उसे रोकना ठीक नहीं समझा और उसे एक राजकुमारकी भाँति बढ़िया पालकीमें बैठाकर नौकर-चाकरोंके दलके साथ शान्तिपुर भेज दिया।

शान्तिपुरमें रघुनाथ सीधा श्रीअद्वैताचार्यके घर पहुँचा। जाकर भेटकी वस्तुओंके सहित गौरके चरणोंमें लोट-पोट हो गया। गौर इसे देखते ही ताड़ गये कि इसका भविष्य क्या है? फिर भी उन्होंने 'अनासक्त-भावसे घर-गृहस्थीमें रहते हुए भी भगवत्प्राप्ति की जा सकती है' आदि उपदेश देकर आशीर्वादसहित घरके लिये वापस किया! रघुनाथ घर वापस आ रहा था; पर उसे यह ऐसा कठिन मालूम पड़ रहा था जैसा नदीमें प्रवाहके विपरीत तैरना। उसे ऐसा मालूम पड़ता था मानों नौकर लोग जबर्दस्ती उसे घर लिये जा रहे हों। उसका चित्त इसके लिये राजी नहीं होता था। उसकी आकृतिपर ऐसी बेबसी छायी हुई थी, मानों वह मन-ही-मन यह कह रहा हो कि यदि मेरे पङ्ख होते तो मैं फुर्रसे उड़कर पुनः श्रीगौर-चरणोंमें जा पहुँचता।

खैर, किसी तरह हृदयकी उथल-पुथलके साथ वह घर आया और माता, पिता तथा ताऊके चरणोंमें प्रणाम किया; पर उन्होंने देखा कि उसके चेहरेका रङ्ग ही बदला हुआ है। उन्होंने देखा मानों उसके चेहरेपर लिखा हुआ है कि 'रघुनाथको अब तुम सबसे कोई सरोकार नहीं। वह तो अब किसी दूसरेका हो चुका।' परन्तु इसपर उन सबने कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया; हाँ, तब तो उन्हें ध्यान देना ही पड़ा जब उन्होंने देखा कि रघुनाथ दिन-दिन उदासीका पुतला बनता जा रहा है और पूछनेपर इसका कुछ कारण बतलाता नहीं। उन्हें यह निश्चय हो गया कि इसे कुछ दूसरी ही धुन लग गयी है और अब यह किसी तरह चुपचाप घरसे भाग निकलनेकी तरकीब सोच रहा है। घरवालोंको इसके लिये बड़ी चिन्ता हुई। उन्हें यह भी पछतावा हुआ कि इसे गौराङ्गके पास क्यों जाने दिया! खैर, जो हुआ सो हुआ, अब ऐसी गलती नहीं करनी चाहिये, ऐसा निश्चय करके उन्होंने अपने बेटेपर चौकी-पहरा बैठा दिया। संसार-में सबसे अधिक आकर्षक वस्तु मानी गयी है स्त्री। बड़े-बड़े प्रबल पराक्रमी शूरवीर, विद्वान्, राजा-महा-राजा और धनकुबेर इस स्त्रीके चरणोंपर अपना सर्वस्व निछावर करते देखे और सुने गये हैं। 'शायद विवाह हो जानेसे मेरे बेटेका चित्त स्थिर हो जाय'—इस खयालसे श्रीगोवर्द्धनदास मजूमदारने झटपट व्यवस्था करके एक अत्यन्त रूपवती बालिकाके साथ अपने पुत्रका विवाह कर दिया। परन्तु पीछे उनका खयाल गलत साबित हुआ। जो समस्त मानवीय बन्धनोंको तिनकेकी तरह तोड़नेकी सामर्थ्य लिये बैठा है, भला विवाहबन्धन उसे कैसे जकड़े रख सकता है? कामिनी और काञ्चन तो उन विषयीजनोंको ही फँसाये रख सकते हैं जो इन्हें संसारका सार-पदार्थ माने बैठे हैं; परन्तु जिन महापुरुषोंको संसारमें कुछ सार पदार्थ दिखलायी ही नहीं पड़ता, उनका चित्त इसमें या इसके मोहक पदार्थोंमें कैसे रम सकता है? इसी तरह विवाह भी रघुनाथके लिये एक दैनिक जीवनकी नगण्य घटनासे अधिक महत्त्व न पा सका।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वह बार-बार घरसे निकल भागनेका प्रयत्न करता और पहरेदार पकड़कर लौटा लाते और धीरे-धीरे यह मामला इतना अधिक बढ़ा कि स्वजनोंकी सलाहसे माता-पिताने रघुनाथको पागलकी तरह रस्सी-से बँधवा दिया। परन्तु पीछे विवेकने उन्हें समझाया कि बहुत कड़ा करके बाँधा हुआ बन्धन जब टूटता है तो बात-की-बातमें टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। इस-पर रघुनाथको पागलकी तरह बाँधनेका पागलपन उन्होंने त्याग दिया। हाँ, नज़रकी चौकसी उन्होंने पूर्ववत् जारी रक्खी।

उन दिनों उस देशमें गौराङ्गके बाद यदि किसी महापुरुषके नामकी धूम थी तो वह थी श्रीनित्यानन्द-के नामकी। संन्यासी होकर अनेक देश-देशान्तरोंमें परिभ्रमण करनेके बाद श्रीनित्यानन्द महाराज श्री-गौराङ्गके शरणापन्न हुए थे और उन्हींकी आज्ञासे वह गौड़-प्रदेशमें हरिनामका प्रचार कर रहे थे। उन्होंने पानीहाटी ग्रामको हरिनामप्रचारका प्रधान केन्द्र बना रक्खा था। रघुनाथदासकी भी इच्छा यह आनन्द लूटनेकी हुई। पिताने भी रोक नहीं लगायी। उन्होंने भी अब 'रस्सा ढील' नीतिसे काम लेना आरम्भ कर दिया, यानी जैसे बिचले हुए घोड़ेकी रस्सीके सिर्फ छोरको मजबूतीसे पकड़े रहकर 'जायगा कहाँ? रस्सीका छोर तो हाथमें है।' यह सोचकर रस्सीको बिल्कुल ढीला करके जी भरकर उछलने-कूदनेके लिये उसे स्वतन्त्र कर दिया जाता है वैसे ही गोवर्द्धनदासने रघुनाथदासपर निगाह रखनेवालोंको तो और अधिक सावधानीके साथ काम करनेका आदेश कर दिया था; पर ऊपरसे स्पष्ट दिखलायी देनेवाला बन्धन हटा लिया था। इसीलिये बड़ी खुशीके साथ रघुनाथदासको पानीहाटी जानेकी अनुमति मिल गयी! अवश्य ही दस्तूरके मुताबिक उनके साथ 'सेवक' नामधारी पुलिसकी पल्टन लगा दी गयी। रघुनाथदास पानीहाटी गये, नित्यानन्दके दर्शनसे अपने नेत्रोंको सुख पहुँचाया और हरि-नाम-संकीर्तन-की ध्वनिसे अपने कर्णविवरोंको पावन किया। यही नहीं, श्रीनित्यानन्दकी दयासे समवेत असंख्य वैष्णवजनोंको दही-चिउड़ेका महाप्रसाद चढ़ानेका भी सुअवसर प्राप्त हो गया। दूसरे दिन बहुत-सा दान-पुण्य करके श्रीनित्यानन्दजीसे आज्ञा लेकर घरको आ गये।

घर आ गये, पर शरीरसे, मनसे नहीं। इस कीर्तन-समारोहमें सम्मिलित होकर तो अब वह बिल्कुल ही बेक़ाबू हो गये। इधर उन्होंने यह भी सुन रक्खा था कि गौड़-देशके सैकड़ों भक्त चातुर्मास्य भर श्रीचैतन्यचरणोंमें निवास करनेको नीलाचल जा रहे हैं, इसलिये स्वर्णसंयोगको वह किसी तरह हाथसे जाने देना नहीं चाहते थे। घरवालोंने देखने-में लाख बन्धन ढीला कर दिया था; पर पहरेके अन्दर भी नीलाचल जाने और वहाँ चार मास निरन्तर वास करनेकी अनुमति मिलनेकी आशा बिल्कुल नहीं थी। और मिल भी जाय तो इस तरह कबतक चल सकता था? प्रेमी और प्रेमास्पदके बीचमें तीसरेका निर्वाह कहाँ? इसलिये निहङ्ग लाड़िले बननेकी जरूरत थी और इसीकी उन्हें फिक्र थी। यह फिक्र तो उन्हें बहुत दिनोंसे थी, पर कोई कार्य तो तभी बनता है जब उसका संयोग होता है; और तीव्र महत्त्वाकांक्षा होनेपर भगवान् संयोग भी जुटा ही देते हैं। रघुनाथ अबतक निकल भागनेके लिये न जाने कितने प्रयत्न कर चुके थे; पर वह एक बार भी कृतकार्य न हो सके। अब उनके सफलमनोरथ होनेका समय आ गया था, इसलिये एक दिन भगवत्प्रेरित महामायाने एक साथ सारे-के-सारे ड्योढ़ीदारोंको निद्रामें डाल दिया और सबेरा होते-न-होते रघुनाथ महलकी चहार-दीवारीसे निकलकर नौ-दो-ग्यारह हो गये।

इधर ज्यों ही मालूम हुआ कि रघुनाथ नहीं हैं तो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सारे महलमें सनसनी फैल गयी। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण—सभी दिशाओंको आदमी दौड़ पड़े; पर वहाँ मिलनेको अब रघुनाथकी छाँह भी नहीं थी। आदमी कोस-कोस, दो-दो कोस जाकर कोई भी पता न पाकर वापस लौट आये। अनुमान किया गया कि कहीं पुरी न गया हो? गोवर्द्धनदासने भी कहा कि हो-न-हो वह पुरी ही गया होगा। रथयात्राका समय भी है। इसलिये पुरीके रास्तेपर ही आदमी दौड़ाना ठीक होगा। अच्छा, शिवानन्द सेन, जिनकी संरक्षतामें सैकड़ोंकी संख्यामें यात्री लोग जाया करते हैं, बिल्कुल अपने ही आदमी हैं; उन्हें पत्र लिखे देता हूँ। रघुनाथ यदि उन लोगोंके साथमें होगा तो, या तो वह उसे हाल-का-हाल समझा-बुझाकर घर लौटा देंगे, नहीं तो पुरी जाकर अपने साथ वापस ले आयेंगे। क्या हर्ज है? अपने आदमी भी साथ ही बने रहेंगे।

इसप्रकार निश्चय करके उन्होंने एक चिट्ठीके साथ पाँच घुड़सवारोंको पुरीके रास्तेपर दौड़ा दिया; पर वहाँ रघुनाथदास कहाँ थे? भगवान्‌ने उन्हें यह बुद्धि दी कि आम सड़क होकर जाना ठीक नहीं। अनेक यात्रियोंसे भेंट होगी। पूछेंगे, कौन हो, कहाँसे आये? इन्हें क्या उत्तर दूँगा। बतलानेसे भेद खुलता है। और उन यात्रियोंमें क्या मालूम कोई जान-पहचानका ही निकल आये और मेरे लिये खुफिया पुलिसका कर्मचारी बन बैठे! सीधे, ऊटपटांग जंगलके रास्तेसे जाना अच्छा है। इसलिये वह पगडण्डीके रास्तेसे गये और रात होने-न-होने तक तीस मीलपर जा विराजे। इधर यात्रियोंका सङ्ग लेनेके बाद गोवर्द्धनदास-के आदमियोंको जब शिवानन्दसे मालूम हुआ कि रघुनाथ उनके साथ नहीं आये तो हताश होकर वापस लौट आये। सारी ढूँढ़-खोज व्यर्थ हुई, इसकी सूचना अश्वारोहियोंसे पाते ही सारे महलमें कुहराम मच गया। बारेसे लेकर बूढ़ेतक सभीको इस बात-का बड़ा सन्ताप था कि रघुनाथके शरीरपर न तो आवश्यक वस्त्र हैं और न जेबमें पैसा। कहाँ जायगा और क्या खा-पीकर जिन्दा रहेगा। हित-मित्र—सभी आँसू बहाकर समवेदना प्रकट करते और समझाते कि सबका रक्षक एकमात्र ईश्वर है, इसलिये चिन्ता नहीं करनी चाहिये; पर उन्हें ढाँढ़स न होता।

खैर, अब शोकपर्वके इस अध्यायको यहीं समाप्त करके हम अपने अज्ञात पथके पथिक रघुनाथदासका पता लगाने निकलते हैं। हम ऊपर कह आये हैं कि पहले ही दिन रघुनाथदासने तीस मीलका रास्ता तै कर डाला। पाठकवृन्द! जरा विचार करके देखिये, एक राजकुमार, जो कभी एक पग भी बिना सवारीके न चलता था, वह आज बड़े-बड़े विकट बटोहियोंके भी कान काट गया। धन्य है! लगन इसे कहते हैं। जब किसी चीजकी लगन होती है तब सारी बिखरी हुई शक्ति एक जगह केन्द्रीभूत होकर प्रकट हो पड़ती है। और लगन भी जब सारे संसारको तुच्छ मानकर एकमात्र भगवत्प्राप्तिकी हो तब उसे शक्तिका कैसे टोटा पड़ सकता है? टोटा तो तभीतक है जबतक मनुष्य उन शक्तिके निधानसे विमुख है। खैर, उत्कट वैरागी रघुनाथको प्रथम दिनकी यात्रा समाप्त करनेके बाद एक ग्वालेके घरमें बसेरा मिला और उसके दिये हुए थोड़े-से दूधपर बसर करके दूसरे दिन बिल्कुल तड़के इन्होंने फिर कूँच कर दिया और इस तरह लम्बी चलाई करके करीब एक महीनेका रास्ता इन्होंने कुल बारह दिनमें तै कर डाला और इन बारह दिनोंमें इन्होंने कुल तीन बार रसोई बनाकर अपने उदरकुण्डमें आहुति दी थी।

इसप्रकार प्रभुसेवित नीलाचलपुरीके दर्शन होते ही इन्होंने उसे नमस्कार किया और श्रीचरणोंकी ओर अग्रसर हुए। पुरीके प्रत्येक मकानके ईंट-ईंटमें इन्हें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गौरांगके दर्शन होते थे। प्रत्येक मनुष्यको देखते ही ऐसा मालूम पड़ता मानों महाप्रभु ही वेश-परिवर्तन किये हुए हैं। वृक्षोंसे चिड़ियोंकी चहचहाहट सुनकर इनके कानोंको ऐसा प्रतीत होता मानों ये सब गौराङ्गकी ही गुणगरिमाका गान कर रहे हैं। इनके हृदयमें न जाने क्या-क्या तरंगें उठ रही थीं। इसी प्रकार भावुकताके प्रवाहमें अलौकिक आनन्द लाभ करते हुए यह निश्चित स्थानके निकट जा पहुँचे। दूरसे ही इन्होंने देखा कि भक्तजनोंसे घिरे हुए चैतन्यदेव प्रमुख आसनपर विराजमान हैं और सबको कुछ उपदेश दान कर रहे हैं। सबकी दृष्टि उनके मुखमण्डलपर गड़ी हुई है। वह सुन्दर, सुडौल, स्वर्णवर्णगात्र, विशाल विस्फारित नेत्र, गोल-गोल कपोल, स्वाभाविक लालीसे युक्त अधराधर, दमकता हुआ चौड़ा ललाट और लहराते हुए लम्बे-लम्बे घुँघराले केश! अद्भुत शोभा थी! निविड़ कृष्ण केशराशिके मध्य देदीप्यमान मुखमण्डल देखनेसे ऐसा मालूम पड़ता था मानों सघन मेघमालासे युक्त आकाशमें चन्द्रमा झाँक रहा हो। प्रसंगवश बीच-बीचमें जब कभी वह किञ्चित् मुस्कुरा देते तो ऐसा प्रतीत होता मानों सुधाका स्रोत बह निकला हो। इसप्रकार इस अलौकिक शोभासे युक्त मूर्तिका दर्शन करते ही रघुनाथका रोम-रोम खिल उठा। हर्षातिरेकसे उन्हें तन-बदनकी भी सुधि न रही। प्रभुके दर्शन वह एक बार और कर चुके थे; पर उस बारके दर्शनमें और इस बारके दर्शनमें अन्तर था। तब वह अन्दरसे उनके होकर भी बाहरसे किसी औरके होकर गौरांगके पास आये थे; पर आज सोलहों आने उन्हींके होकर उनकी सेवामें आये हैं। अस्तु।

रघुनाथदास श्रीचरणोंके निकट पहुँच गये। सबसे पहले मुकुन्द दत्तकी निगाह उनपर पड़ी। देखते ही उन्होंने कहा—'अच्छा, रघुनाथदास आ गये।' तुरन्त ही गौरका भी ध्यान गया। वह प्रसन्नतासे खिल उठे। 'अच्छा, वत्स, रघुनाथ आ गये' कहकर उनका स्वागत किया और उसके प्रणाम करनेके बाद झटसे, अत्यन्त प्रेमपूर्वक उन्हें उठाकर गले लगाया। पास बैठाकर उनके सिरपर हाथ फेरना शुरू किया। रघुनाथको ऐसा मालूम पड़ा मानों उनकी रास्तेकी सारी थकावट हवा हो गयी। महाप्रभुकी करुणाशीलता देखकर उनकी आँखोंसे श्रद्धा और प्रेमके आँसू बरस पड़े। उन्हें भी गौरने निज करकमलोंसे ही पोंछा। इसके बाद रघुनाथके द्वारा अन्य भक्तमण्डलीका भी अभिवादन हो चुकनेपर गौराङ्गने सबको रघुनाथका परिचय कराया। बतलाया कि कैसे घरका लड़का है और किस रूपमें यहाँ उपस्थित है। उन्होंने कहा कि सोनेकी बेड़ी लोहेकी बेड़ीसे भी भयङ्कर होती है। संसारमें जो लक्ष्मीके पुत्र और भूपति कहलाते हैं और जो भाग्यवान् माने जाते हैं वास्तवमें देखा जाय तो उनसे बढ़कर अभागे बिरले ही होंगे। रात-दिन विषय-भोगोंमें फँसे रहनेके कारण वे भगवान्‌से सर्वथा विमुख-से रहते हैं। यह तो उस करुणाके आकरकी ही महिमा है कि वह रघुनाथ-जैसे किसी-किसी व्यक्तिके अन्दर तीव्र वैराग्य जागृत कर उसे उस मायाके बन्धनसे मुक्त कर लेते हैं।

इसके अनन्तर चैतन्यदेवने स्वरूपदामोदरको अपने पास बुलाकर कहा कि 'देखो, मैं इस रघुनाथको तुम्हें सौंपता हूँ। खान-पानसे लेकर साधन-भजनतक सारी व्यवस्थाका भार तुम्हारे ऊपर है, भला!' 'बहुत अच्छा!' कहकर स्वरूपने प्रभुकी आज्ञा शिरोधार्य की और रघुनाथको अपनी कुटीमें ले गये। उनके समुद्र-स्नान करके वापस आनेपर उन्हें जगन्नाथजीका कई प्रकारका प्रसाद और महाप्रसाद लाकर दिया। रघुनाथने उसे बड़े प्रेमसे पाया। परन्तु जब उन्होंने देखा कि यह तो रोजका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सिलसिला है तब उनके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि रोज-रोज यह बढ़िया-बढ़िया माल खानेसे वैराग्य कैसे सधेगा ? आखिर चार-पाँच दिनके बाद ही उन्होंने यह व्यवस्था बदल दी। 'मैं एक राजकुमारकी हैसियतका आदमी हूँ' इसप्रकारका रहा-सहा भाव भी भुलाकर वह साधारण भिक्षुककी भाँति जगन्नाथजीके सिंहद्वारपर खड़े होकर भिक्षावृत्ति करने लगे और बड़े आनन्दके साथ दिन व्यतीत करने लगे। परन्तु माया बड़ी ठगिनी है। जो इसे चाहता है उसकी आँखोंसे ओझल हुई रहती है और जो इसे त्यागता है उसके पीछे हाथ धोकर पड़ती है। हमारे सर्वस्वत्यागी रघुनाथदासके मार्गमें वह यहाँ भी आ खड़ी हुई। जब लोगोंको मालूम हुआ कि यह बहुत बड़े घरके लड़के होकर भी इस अवस्थामें आ गये हैं तो उन्हें अधिकाधिक परिमाणमें विविध प्रकारके पदार्थ देना आरम्भ कर दिया। आखिर, घबड़ाकर रघुनाथदासको यह क्रम भी त्याग देना पड़ा। अब वह चुपचाप एक अन्नक्षेत्रमें जाते और वहाँसे रूखी-सूखी भीख ले आते। रघुनाथकी गतिविधि क्या से क्या हो रही है, श्रीगौराङ्गदेवको पूरा पता लगता रहता। उनके दिन-दिन बढ़ते हुए वैराग्यको देखकर उन्हें बड़ा सुख मिलता। श्रीगौरके पास दो वस्तुएँ थीं, जिन्हें वे अपनी अति प्रिय वस्तुएँ मानते थे—एक गोवर्द्धनशिला और दूसरी गुञ्जामाला। ये दोनों प्रिय पदार्थ श्रीशङ्करानन्द सरस्वतीने वृन्दावनसे लाकर दिये थे जिन्हें उन्होंने श्रीराधा-कृष्णकी स्मृति जागृत रखनेके चिह्नस्वरूप बड़े आदरके साथ अपने पास रख छोड़ा था। श्रीरघुनाथके प्रति उनका इतना अधिक अनुराग बढ़ा कि उन्होंने वे अपनी परमप्रिय वस्तुएँ भी उन्हें सौंप दीं। रघुनाथको ऐसा प्रतीत हुआ मानों वह एक अलौकिक निधि पा गये हों। वह बड़ी श्रद्धा-भक्तिके साथ नियमपूर्वक दोनों वस्तुओंकी पूजा करने लगे। रघुनाथकी उत्कट जिज्ञासा देखकर श्रीमहाप्रभुने एक दिन उन्हें साधनसम्बन्धी कुछ उपदेश दिया। कहा कि वैसे तो मैं तुम्हें स्वरूपजीको सौंप चुका हूँ—असलमें तुम्हारे गुरु वही हैं; पर उनकी और तुम्हारी जब दोनोंकी यह इच्छा है कि मैं ही कुछ कहूँ तो मैं तुम्हें सब शास्त्रोंका सार यह बतलाता हूँ कि 'श्रीकृष्णके नामका स्मरण और कीर्तन ही संसारमें कल्याण-प्राप्तिके सर्वश्रेष्ठ साधन हैं। पर इस साधनकी भी पात्रता प्राप्त करनेके साधन ये हैं कि निरन्तर साधु-संग करे, सांसारिक चर्चासे बचे, परनिन्दासे कोसों दूर रहे, स्वयं अमानी होकर दूसरोंका मान करे, किसीका दिल न दुखावे और दूसरेके दुखानेपर दुखी न हो; आत्मप्रतिष्ठाको विष्ठावत् समझे, सरल और सच्चरित्र होकर जीवन व्यतीत करे आदि।'

आओ, पाठक! अब ज़रा रघुनाथके बिलखते हुए परिवारकी भी सुध लें। पूरे चार महीने बाद जब गौड़-देशके भक्तलोग अपने-अपने स्थानोंको वापस पहुँचे तब श्रीशिवानन्दके पास आदमी भेजने-पर श्रीगोवर्द्धनदास मजूमदारको यह पता लगा कि उनका गृहत्यागी लड़ैता लाल पुरीमें है और पेटकी ज्वाला शान्त करनेके अर्थ मुट्ठीभर अन्नके लिये दीन-हीन कंगालोंकी भाँति पहर-के-पहर सिंहद्वारपर खड़ा रहता है। माता-पिताका हृदय टूक-टूक हो गया। हाय! जो आज अपनी उदारताके कारण असंख्य जनोंके अन्नदाता बने हुए हैं उन्हींके बेटेकी यह दशा! पर छाती पीटकर बैठ रहनेके सिवा उपाय क्या है ? जिसके अन्दर ऐसा तीव्र वैराग्य है वह तो अब घर वापस आनेसे रहा। हाँ, एक उपाय जरूर है, पुत्र यदि मंजूर कर ले तो पुरीमें ही ऐसी व्यवस्था की जा सकती है कि वह राजकुमारकी तरह अपना जीवन व्यतीत कर सके। पर वह इस प्रस्तावको स्वीकार कर लेगा, ऐसी आशा करना भी भूल है। जो परमार्थ-पथका पथिक बना है, उसके लिये खाने-पीनेका महत्त्व ही कितना है!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इसप्रकार पूरा दिमाग़ लगाकर भी गोवर्द्धनदास कोई रास्ता न निकाल सके। पर मोह बड़ा विचित्र होता है। मनुष्यका विवेक कहता है कि यह नहीं होनेका; पर शायद हो जाय, ऐसी शंका करके मोह अपनी बात माननेको मजबूर कर देता है। गोवर्द्धनदासको अपने पुत्रकी मनोवृत्तिका पूर्ण ज्ञान था, फिर भी पुत्रस्नेहसे वह बिना कुछ किये नहीं रह सके। उन्होंने डरते-डरते चार सौ रुपये और कुछ अन्य आवश्यक सामग्री पुरीके लिये भेज ही दी।

गोवर्द्धनदासके आदमी सब सामान लेकर रघुनाथके पास पहुँचे; पर वह इसे लेकर क्या करे—यह उनके किस कामका! त्यागी हुई चीजका पुनः ग्रहण कैसा? पर वापस भी नहीं करते बनता है। ऐसा करनेसे मरेको मारना होता है। अपने लिये नहीं, पर दुखी प्राणियोंके सन्तोषके लिये ही उन चीजोंको ले लिया जाय तो क्या हर्ज है? पर प्रश्न तो यह है कि उन सब चीजोंका आखिर हो क्या? जो जगन्नाथजीके सिंहद्वारपर भिक्षाको भी केवल इस कारण छोड़ देता है कि उसमें लोगोंने कुछ अच्छे-अच्छे पदार्थ देना शुरू कर दिया था, वह इस परिग्रहको किसलिये करे? पर अपने वैराग्यमें भी कसर न आये और दुखी माता-पिताको भी सन्तोष हो जाय—ऐसा बीचका मार्ग निकल आये तो हो अत्युत्तम। बहुत सोच-विचारके बाद रघुनाथने यह स्थिर किया कि इस द्रव्यको रख लिया जाय और गौरांगदेवकी सेवामें इसे खर्च किया जाय। उन्होंने रुपये तथा सामान लेकर नौकरोंको वापस कर दिया और महीनेमें दो बार श्रीगौरचरणोंका निमन्त्रण करनेकी व्यवस्था की। महाप्रभु उनके सन्तोषार्थ उनकी कुटीमें प्रसादके अर्थ पधारते; पर इसमें खर्च ही कितना था? उन दिनों सब सामान कौड़ी मोल बिकता था, इसलिये श्रीगौरके निमन्त्रणमें महीनेमें मुश्किलसे आठ आने खर्च होते होंगे और यह सिलसिला भी आगे चलकर टूट गया। रघुनाथके मनमें आया कि न जाने कैसे-कैसे इकट्ठा किया हुआ पैसा श्रीप्रभुचरणोंकी सेवाके योग्य नहीं है। उनके मुखमें तो पवित्र-से-पवित्र कमाईका अन्न जाना चाहिये। बस, ऐसा विचार मनमें आते ही उन्होंने वह व्यवस्था तोड़ दी। गौरको जब इसका रहस्य मालूम हुआ तो उन्हें भी इससे बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने तो केवल रघुनाथके सन्तोषके लिये उनका प्रस्ताव स्वीकार किया था।

सारे अनर्थकी जड़ मन बतलाया जाता है, निश्चय ही वह है भी ऐसा ही। ऐसा क्यों है? है इसलिये कि वह स्वतन्त्र बन बैठा है—किसीका उसपर नियन्त्रण नहीं रहा है और स्वच्छन्दता प्राप्त होनेपर कोई कौनसा अनर्थ नहीं कर सकता। मनका दोष नहीं है—सारा दोष है मनके मालिकका। मालिक यदि इसको अपने वशमें कर ले तो फिर यह उसके इशारेपर नाचने लगे। मनका काम है किसी-न-किसी धुनमें लगे रहना। जो मन आज विषय-भोगोंमें फँसा हुआ है उसे वशमें करके परमार्थमें लगाना होगा, और जब वह लग जायगा तो ऐसा लगेगा कि विषयोंकी ओर ताकनातक नहीं चाहेगा। कठिनाई तभीतक है जबतक मनरूपी नाव भँवरजालमें पड़ी हुई है, जहाँ उससे निकालकर उसे भगवदभिमुखी प्रवाहकी ओर किया फिर तो वह ऐसी सरपट दौड़ेगी जिसका नाम! रघुनाथदास इच्छा और अनिच्छासे जबतक राजकुमार थे तबतक थे, अब वह वैरागी बन गये हैं, इसलिये उनका वैराग्य भी दिन-दिन बड़े वेगसे बढ़ता जाता है। पहले वह अन्नक्षेत्रमें जाकर भिक्षा ले आते थे; पर अब उन्होंने यह भी बन्द कर दिया। कारण, भण्डारीको जैसे ही इनके वंश आदिका परिचय मिला, उसने भिक्षामें विशेषता कर दी। इसलिये इन्हें इस व्यवस्थाको भी त्यागकर नयी व्यवस्था करनी पड़ी। इसमें पूर्ण स्वाधीनता थी। जगन्नाथजीमें दूकानोंपर भगवान्‌का प्रसाद भात, दाल आदि बिकता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है। यह प्रसाद बिकनेसे बचते-बचते कई-कई दिन-का हो जानेसे सड़ भी जाता है। सड़ जानेसे जब यह बिक्रीके कामका भी नहीं रहता, तब सड़कपर फेंक दिया जाता है, जिसे गौएँ आकर खा जाती हैं। रघुनाथदासको इस जीविकामें निर्द्वन्द्वता मालूम हुई। वह उसी फेंके हुए प्रसादमेंसे थोड़ा-सा बटोरकर ले आते और उसमें बहुत-सा जल डालकर उसे धोते और उसमेंसे कुछ साफ़-से खानेलायक चावल निकाल लेते और नमक मिलाकर उसीसे अपने पेटकी ज्वाला शान्त करते। एक दिन स्वरूप गोस्वामीने इन्हें इस भातको खाते हुए देख लिया। वह हँसकर बोले—'क्यों रघुनाथ! अकेले-ही-अकेले। किसीको पूछते भी नहीं। एक दिन मुझे भी इस प्रसादका स्वाद लेनेका मौका देते?'

स्वरूप गोस्वामी तो इतना ही कहकर रह गये; पर जब गौराङ्गदेवको इनकी इस प्रसादीका पता लगा तो वह एक दिन सायंकालको दबे पाँव रघुनाथ-के यहाँ पहुँचे। ज्यों ही उन्होंने देखा कि रघुनाथ प्रसाद पा रहे हैं तो जरा और भी दुबक गये; और इसी तरह खड़े रहे, खड़े रहे; फिर एकाएक बन्दर-की तरह झपटकर छापा मारा। झटसे एक मुट्ठी भरके 'वाह बच्चू! मेरा निमन्त्रण बन्द करके अब अकेले-ही-अकेले यह सब माल उड़ाया करते हो?' कहते हुए मुखमें पहुँचाया। ध्यान जाते ही 'वाह प्रभो! यह क्या? इस पापसे मेरा निस्तार कैसे होगा?' कहकर झटसे रघुनाथने दोनों हाथोंसे पतली उठा ली जिससे महाप्रभु पुनः ऐसा न कर सकें। लज्जा और संकोचसे उनका चेहरा मुर्झा गया और नेत्रोंमें जल-बिन्दु झलक आये। महाप्रभु मुँहमें दिये हुए कौरको मुराते-मुराते रघुनाथकी ओर करुणाभरी दृष्टिसे निहारते पुनः हाथ मारनेको लपके और रघुनाथ 'हे प्रभो! अब तो क्षमा कीजिये' कहते हुए पतली लेकर भागे। तबतक यह सब हल्ला-गुल्ला सुनकर स्वरूप गोस्वामी भी आ पहुँचे और यह देखकर कि श्रीगौर जबरदस्ती रघुनाथका उच्छिष्ट खानेका प्रयत्न कर रहे हैं, उनसे हाथ जोड़कर प्रार्थना की—'प्रभो! दया करके यह सब मत कीजिये, इसमें दूसरेका जन्म-कर्म बिगड़ता है।'

चैतन्यदेवने मुखमें दिये हुए ग्रास चबाते-चबाते ही कहा—'स्वरूप! तुमसे सच कहता हूँ, ऐसा सुस्वादु अन्न मैंने आजतक नहीं पाया।'

इसी प्रकार श्रीगौरांगदेवकी कृपावृष्टिसे प्रोत्साहित होते रहकर रघुनाथने वहीं पुरीमें रहकर सोलह वर्ष व्यतीत कर दिये। श्रीचैतन्य जब अहर्निश प्रेमोन्मादमें रहने लगे तब उनके देह-रक्षाके लिये यह सदा उनके साथ ही रहने लगे। वह उनकी बड़ी श्रद्धाके साथ सेवा करते और उनके मुखसे निकले हुए वचनामृतका पान करते। आगे चलकर श्रीगौर-का तिरोभाव हो गया जिससे रघुनाथके शोकका पार न रहा और प्रभुके बाद जब श्रीस्वरूप भी विदा हो गये तब तो उनका पुरीवास ही छूट गया। वह वृन्दावन चले गये; इसके बाद वह वृन्दावनमें श्रीराधाकुण्डके किनारे डेरा डालकर कठोर साधनमें लग गये। वह केवल छाछ पीकर जीवन-यापन करते। रातको सिर्फ घण्टे-डेढ़-घण्टे सोते, शेष सारा समय भजनमें व्यतीत करते। प्रतिदिन एक लाख नाम-जपका उनका नियम था। श्रीचैतन्यचरितामृतकारका कहना है कि रघुनाथके गुण अनन्त थे, जिनका हिसाब कोई नहीं लगा सकता। उनके नियम क्या थे, पत्थरकी लीक थे। चार ही घड़ीमें उनका खाना, पीना, सोना आदि सब कुछ हो जाता था—शेष सारा समय साधनामें व्यतीत होता था। वैराग्यकी तो वह मूर्ति थे। जीभसे स्वाद लेना तो वह जानते ही नहीं थे। वस्त्र भी फटे-पुराने केवल लज्जा और शीतसे रक्षा करनेके लिये रखते थे। प्रभुकी आज्ञाको ही भगवदाज्ञा समझकर चलते थे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इनका संस्कृत-भाषाका ज्ञान भी बहुत अच्छा था। वृन्दावनमें रहते समय इन्होंने संस्कृतमें कई ग्रन्थ भी बनाये थे। चैतन्यचरितामृतके लेखक श्रीकृष्णदास कविराजके ये दीक्षागुरु थे। अपने ग्रन्थके लिये बहुत कुछ मसाला उन्हें इन्हीं महापुरुषसे प्राप्त हुआ था। पचासी वर्षतक पूर्ण वैराग्यमय जीवन बिताकर भगवद्भजन करते हुए अन्तमें आप भगवच्चरणोंमें जा विराजे।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

दो आरतियाँ*

(रचयिता—महामहोपाध्याय पं० श्रीकेशवरावजी ताम्हण एम० ए०, भूतपूर्व प्रिंसिपल मॉरिस कालेज, नागपुर, सी० पी०)

श्रीरामनीराजनगीतम्

कृत्वा शिरसि निदेशं पितुरंसे चापम्।
कृतमखरक्षो हृतवान्कौशिकहृत्तापम्॥
गत्वा तेनैव समं मिथिलाधीशसदः।
शिवधनुषा सह भग्नः शूरम्मन्यमदः॥१॥
जय जय रघुकुलभूषण भगवन्दाशरथे।
रमतां त्वयि चित्तमिदं शङ्करगीतकथे॥
स्पृष्टा पदरजसा ते शैली मुनियोषा।
साध्वीष्वाद्यं लेभे पदमपगतदोषा॥
उपहृतबदरा शबरी जात्यातिजघन्या।
दृष्ट्वा ते पदपङ्कजमभवद्भुवि धन्या॥२॥
कपिकुलजोऽप्येको भुवि हनुमान्सफलजनुः।
सुधिया येन नियुक्ता तव कार्ये स्वतनुः॥
तीर्णा मृत्युं कृत्वा त्वां सुहृदं प्रेष्ठम्।
स्थाने प्राहुर्मुनयो यं सुधियां श्रेष्ठम्॥३॥
पारं लवणाम्भोधेः कपिसेनां नेतुम्।
रचयामासिथ जलधेः पृष्ठेऽद्भुतसेतुम्॥
दृष्टे यस्मिञ्जन्तोः शमलं याति लयम्।
पतिते देहे पश्यति नासौ यमनिलयम्॥४॥
पातकपर्वतवज्रं राघव तव नाम।
श्रेयः सम्पत्तीनां पदकमलं धाम॥
ध्यायन्त्यभ्रश्यामं त्वां शम्भुप्रमुखाः।
केशवसाम्यं यान्ति न तव भजने विमुखाः॥५॥

श्रीमद्भगवद्गीतानीराजनपद्यम्

यस्या मोहात्पार्थो निजधर्मं पापम्।
युद्धाद्विरतः शोचन्भुवि निदधे चापम्॥
त्वत्तो लब्ध्वा मोहध्वंसकरीं दृष्टिम्।
भीष्मद्रोणादिषु युधि चक्रे शरवृष्टिम्॥
जय जय जगदभिवन्द्ये जय भगवद्गीते।
वितरसि हस्तालम्बं भवमज्जनभीते॥१॥
काण्डेषु त्रिषु भगवान् यान्यवदद्वेदः।
सूक्ष्मधियामपि येषां दुरवगमो भेदः॥
तेषां कर्मोपास्तिज्ञानानां हृदयम्।
स्पष्टं प्रकटीकुरुषे मातस्त्वं सदयम्॥जय जय०॥
जनयसि हृदि मन्दानां निजधर्मासक्तिम्।
द्रढयसि मध्यानां श्रीहरिचरणे भक्तिम्॥
निर्मलमनसः केचन विन्दन्त्यपि मुक्तिम्।
ध्यायन्त्यनिशं ये तव गम्भीरामुक्तिम्॥जय जय०॥
त्यक्त्वा कर्मफलेष्वभिसन्धिमहङ्कारम्।
कृष्णार्पणबुद्ध्या कुरु विधिविहिताचारम्॥
इत्युपदेशं हृदये तव कुर्वञ्जन्तुः।
तीर्त्वा भवसिन्धुं पदमाप्नोत्यघहन्तुः॥जय जय०॥
प्राहुस्त्वां सर्वासामुपनिषदां सारम्।
कुर्वन्ति त्वां कृतिनः कण्ठालङ्कारम्॥
केशवमुखजन्मैका त्वं पुंसां शरणम्।
तटिनी सान्या यस्याः प्रभवस्तच्चरणम्॥जय जय०॥

* नागपुरके हिन्दी और मराठीके प्रसिद्ध लेखक श्रीआनन्दरावजी जोशीने वहाँके वयोवृद्ध तथा तपोवृद्ध विद्वान् म० म० पण्डित श्रीकेशवरावजी ताम्हणकी दो संस्कृत आरतियाँ हमारे पास प्रकाशनार्थ भेजी हैं। एतदर्थ हम उनके कृतज्ञ हैं। आशा है, गीता और रामभक्तोंको ये आरतियाँ पठनीय एवं संग्राह्य प्रतीत होंगी। —सम्पादक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गीता और धम्मपद

(लेखक—पं० श्रीगौरीशङ्करजी द्विवेदी, साहित्यरत्न)

१—द्विविध मार्ग

काठकी श्रुति कहती है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥

'इस आत्माको न वक्ता प्राप्त कर सकता है, न मेधावी और न बहुश्रुत। जिसको यह चुनता है उसीको प्राप्त होता है, उसको यह आत्मा अपना शरीर बना लेता है।'

इस श्रुतिमें अध्यात्मपथकी ओर अग्रसर होनेकी इच्छा रखनेवाले पुरुषके लिये एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात बतलायी गयी है। वक्ता, मेधावी, बहुश्रुत होनेसे ही परमश्रेष्ठ आत्मतत्त्वकी प्राप्ति नहीं होती। संसारसे सम्बन्ध रखनेवाले नानाविध विज्ञानशास्त्रमें पारङ्गत होना, विभिन्न कलाओंमें प्रवीणता प्राप्त करना और नित्य नवीन आविष्कारोंके द्वारा मानवसमाजको आश्चर्यचकित करना मनुष्यके इहलौकिक श्रम, क्रिया-चातुर्य और बुद्धिकी गवेषणात्मक शक्तिकी महत्ताको दिखलाते हैं, परन्तु मानव-जीवनकी तृषा इनसे कभी तृप्त नहीं होती। जो लोग इन क्षणिक सुखोंके साधनोंकी ओर निरन्तर यत्नशील होते हैं और इनकी प्राप्तिमें ही मानव-जीवनकी इतिकर्तव्यता समझते हैं तथा अन्तमें इसके द्वारा अपना उद्देश्य सिद्ध होता हुआ न देखकर व्याकुल हो उठते हैं, उन्हींको सम्बोधनकर औपनिषद ऋषि उपर्युक्त उपदेश देते हैं।

जिसप्रकार भौतिक जगत्में क्रिया-प्रतिक्रियाका अटूट सम्बन्ध है, उसी प्रकार आध्यात्मिक जगत्में भी एकके बिना दूसरेका अस्तित्व नहीं देखा जाता। आत्मा वरण करे, इसके लिये पहले स्वयं वरण होने-योग्य बनना आवश्यक है और जबतक आत्माके अनुकूल, सजातीय न हो तबतक वरण होना सम्भव नहीं, क्योंकि अनुकूल, सजातीयको ही वरण किया जाता है। बस, आत्माके अनुकूल बननेकी अभिलाषासे प्रेरित होकर आत्मतत्त्वके निर्धारणकी आवश्यकता होती है और इस विषयका प्रश्न हमें कठमें ही प्राप्त होता है। नचिकेता यमराजसे पूछता है—

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये-
ऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाऽहं
वराणामेष वरस्तृतीयः॥*

जान पड़ता है उस समय यह प्रश्न अधिक विवाद-ग्रस्त हो गया था, तभी तो नचिकेता-सा अस्पृह युवक यमके अनेक प्रलोभन और आग्रहपर भी इस वरके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं चाहता।†

---

* यह जो शरीरका त्याग करता है, इसके विषयमें सन्देह किया जाता है, कोई कहता है वह है, कोई कहता है नहीं है। इसके जाननेके लिये मैं आपका शिष्य होता हूँ, यह वरोंमें मेरा तीसरा वर है।

† जब नचिकेता आत्मतत्त्वके विषयमें प्रश्न पूछता है तब यमराज जो उत्तर देते हैं वह विचारणीय है—

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा
न हि सुविज्ञेयमणुरेष धर्मः।
अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व
मा मोपरोत्सीरति मा सृजैनम्॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यमका आग्रह चाहे जिस उद्देश्यसे हो, परन्तु नचिकेताका अन्तिम वर होनेके कारण इसकी महत्तामें किसीको संशय नहीं रह जाता। उपनिषत्कालमें भी तत्त्वके सदसद्रूपके विषयमें दो प्रकारके मत प्रचलित थे—'असद्ब्रह्मेति चेद्वेद सद्ब्रह्मेति चेद्वेद' तैत्तिरीयकी ब्रह्मानन्दवल्लीका अनुवाक प्रसिद्ध ही है। ब्रह्म या चरमतत्त्व (आत्मा) के विषयमें वैदिक युगसे ही दो प्रकारकी परस्पर भिन्न विचार-सरणिका पता लगता है। एक आत्मतत्त्वको सद्रूप मानकर अग्रसर होती है तो दूसरी असद्रूप—इनमें पहली आत्मवाद और दूसरी अनात्मवादके नामसे प्रसिद्ध है, परन्तु दोनों सिद्धान्तोंके अनुसार संसार निःसार है, लौकिक सुख तुच्छ और क्षणिक हैं, इनसे कोई तृप्त नहीं हो सकता, बल्कि इनमें जितनी ही अधिक सुखकी चेष्टा की जायगी, उतना ही अधिक दुःख बढ़ता जायगा। लौकिक उपायोंके द्वारा जितनी शान्तिकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न किये जायँगे, अशान्तिके सामान उतने ही अधिक तैयार होते जायँगे। दोनोंके अनुसार जागतिक प्रपञ्च बन्धन हैं, दुःखप्रद हैं और इनसे छुटकारा मिल सकता है। जगत्के दुःखोंसे अत्यन्त छुटकारा पाना अर्थात् प्रपञ्चके बन्धनसे छूटना ही मानव-जीवनका परम उद्देश्य है। सदाचार-की उपयोगितापर दोनों सिद्धान्तोंमें विशेषरूपसे ध्यान दिया गया है तथा सदाचारकी भूमिमें ही लक्ष्यस्थानकी प्राप्तिके लिये विभिन्न मार्गों (यानों) का निर्देश किया गया है।

ऊपर जिस अनात्मवादका संकेत किया गया है, उसके विषयमें बहुतोंको जडवादका भ्रम हो सकता है, परन्तु जडवाद और इस अनात्मवादमें पूर्व और पश्चिमका अन्तर है। घोर जडवादी सदाचारकी महत्तापर ध्यान नहीं देते, वह तो लौकिक जीवनके सिवा और कुछ मानते ही नहीं, उनके लिये कला, विज्ञान और नित नये आविष्कारोंके द्वारा जैसे हो सके, अधिकाधिक वैषयिक सुखोंका प्राप्त करना ही जीवनका चरम उद्देश्य है। जडवादी केवल अर्थ और कामको ही परमपुरुषार्थ मानते हैं, परन्तु अनात्मवादी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंमें मोक्षको ही सर्वश्रेष्ठ समझते हैं। जडवादी एकमात्र जगत्को सत्य मानते हैं और मृत्युको ही मोक्ष समझते हैं अर्थात् मृत्युके बादके जीवनमें—पुनर्जीवनके सिद्धान्तमें विश्वास नहीं करते। भारतवर्षमें प्राचीन कालमें ये जडवादी नास्तिक और लोकायतिक नामसे पुकारे जाते थे और समाजमें उनकी कोई प्रतिष्ठा नहीं थी। चार्वाक इस सिद्धान्तके आचार्य हो गये हैं, उनका यह श्लोक प्रसिद्ध ही है—

यावज्जीवेत् सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥

'देवताओंने भी इस विषयमें पहले सन्देह किया था, यह धर्म शीघ्र ही सम्यक् प्रकारसे नहीं जाना जा सकता; नचिकेता इस वरको छोड़कर दूसरा वर माँग।' इसके बाद यमराज नचिकेताको नाना प्रकारसे प्रलोभन देते हैं और कहते हैं—'तुम हाथी, घोड़े, पशु, अखण्ड साम्राज्य, सुवर्ण, अप्सराएँ, सुदीर्घजीवन और जो कुछ भोगकी सामग्री चाहो, मैं तुम्हें दे सकता हूँ।' नचिकेताका उत्तर भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है—

श्वो भावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्
सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव
तवैव वाहास्तव नृत्यगीते॥

भाव यह है कि लौकिक सुखोंके सामान चाहे जितने अधिक परिमाणमें हों, यह जीवन चाहे जितना बड़ा हो, परन्तु एक दिन इनका अवसान हो जायगा, फिर ये किस कामके?

नचिकेताके इस विरागसे और देवताओंके भी संशय-ग्रस्त होनेके कारण आत्मतत्त्वके सदसद्भावका प्रश्न अति प्राचीनकालसे महत्त्वपूर्ण जान पड़ता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पाणिनि मुनिके समयतक जडवादी ही नास्तिक शब्दसे सम्बोधित होते थे, इनके 'अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः' इस सूत्रसे यह बात सुस्पष्ट हो जाती है। अतएव कहना होगा कि अनात्मवाद नास्तिकवाद नहीं है, बल्कि आस्तिकवाद है।

इसप्रकार आस्तिकताके दो प्रधान मूलस्रोत आत्मवाद और अनात्मवाद अति प्राचीन वैदिक युगसे प्रवाहित होते आ रहे हैं, ऐतिहासिक युगमें भगवान् श्रीकृष्ण हमें आत्मवादके परम उपदेष्टाके रूपमें प्राप्त होते हैं और भगवान् बुद्ध अनात्मवादके। भारतीय ऋषियोंने तो भगवान् बुद्धको स्वयं श्रीकृष्णका अवतार ही माना है और भारतीय साहित्यमें इस बातको अनेक स्थलोंपर दुहराया गया है। गीत-गोविन्दके रचयिता श्रीजयदेव कवि दशावतार-स्तुतिमें लिखते हैं—

निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातं
सदयहृदयदर्शितपशुघातम्।
केशवधृतबुद्धशरीर जय जगदीश हरे।

स्वयं भगवान् बुद्धका जीवन इतना दिव्य, इतना चमत्कृत और इतना तेजपूर्ण है कि अरण्यवासी तपोनिष्ठ जो ऋषि उनके सामने आते हैं, उनका मस्तक भगवान् बुद्धके चरणोंमें झुके बिना नहीं रहता। भगवान्की प्राकृत वाणीकी धारा जब प्रवाहित होती है तब उसके सुधा-स्वादुसे एक बार अखण्ड भूमण्डल परितृप्त हो जाता है। तथागतके आविर्भावसे एक बार यह मृत्युलोक देवलोकमें परिणत हो जाता है और इस विश्वरूपी अरण्यसे हिंसा, द्वेष, काम, क्रोध आदि हिंस्र पशु लुप्त हो जाते हैं; भारतमें एक बार स्वर्णयुग आ जाता है और इसके आलोककी किरणें दशों दिशाओंमें व्याप्त हो विश्वको ज्ञानालोकसे पूर्ण कर देती हैं। भगवान्के जीवनके इस अपूर्व प्रभावका किञ्चित् आभास अश्वघोषके इस स्तवनमें मिलता है—

श्रियः पराध्यां विदधद्विधातृजित्
तमो निरस्यन्नभिभूतभानुभृत्।
नुदन्निदाघं जितचारुचन्द्रमाः
स वन्द्यतेऽर्हन्निह यस्य नोपमा॥*

वस्तुतः भगवान् तथागतका गुणानुवाद करके पार पाना अत्यन्त कठिन है। श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान् हैं, वह तो आत्मवादके परम उपदेष्टा ही नहीं, स्वयं आत्मस्वरूप हैं, मानव-जीवनके परमाराध्य हैं, उनके गुणोंका वर्णन करते-करते श्रुति, स्मृति, पुराणेतिहास प्रभृति नाना शास्त्र थक जाते हैं, पर तृप्त नहीं होते, श्रीकृष्ण भारतके प्राण हैं, वह अनादिकालसे अद्यावधि भारतके आबाल-वृद्ध नर-नारियोंके जीवन हैं, उनकी वंशीकी ध्वनि आज भी हमारी हृत्तन्त्रीमें झंकृत हो रही है। भगवान् वासुदेवके उपदेश, बतलाये हुए परमपदकी प्राप्तिके मार्ग तथा इहलौकिक कर्तव्यकी विधियाँ पुराणों और इतिहासोंमें भरी पड़ी हैं तथापि उन्हें यदि हम एक स्थानमें साररूपसे देखना चाहें तो भगवद्गीताके शरणापन्न होनेसे उनका साक्षात्कार हो सकता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। गीताके माहात्म्यका उपोद्घात करते हुए ऋषि कहते हैं—

भगवन् परमेशान भक्तिरव्यभिचारिणी।
प्रारब्धं भुज्यमानस्य कथं भवति हे प्रभो!

भाव यह है कि जगत्में जीव नानाविध दुःखोंको प्रारब्धवश भोगता हुआ दुःखित हो रहा है और उसके छूटनेका एकमात्र उपाय भगवान्की प्राप्ति है, जो भगवान्में अव्यभिचारिणी-भक्तिके द्वारा

* जिसने प्रभूतश्रीका विधानकर ब्रह्माको अभिभूत किया, (मनके) अन्धकारको दूरकर सूर्यनारायणको पराजित किया, (अन्तःकरणके) निदाघको शमन करनेमें चारुचन्द्रको जीत लिया। जिसकी उपमा कहीं नहीं मिलती, उस अर्हन् भगवान् तथागतकी हम वन्दना करते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ही हो सकती है, वह भक्ति कैसे प्राप्त होती है ? इसके उत्तरमें श्रीमद्भगवद्गीताके अभ्यासकी बात कही गयी है ।*

सारांश यह है कि आत्मवादके गूढ़ रहस्यको समझनेके लिये भगवद्गीताका अभ्यास अत्यन्त आवश्यक है; इसी प्रकार अनात्मवादके रहस्यका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये भगवान् तथागतके उपदेशोंका जानना भी तत्त्व-जिज्ञासुके लिये अनिवार्य है । भगवान्‌के उपदेश त्रिपिटकमें सविस्तर वर्णित हैं, परन्तु जिस-प्रकार गीताशास्त्र भगवान् श्रीकृष्णके उपदेशोंका मूल स्वरूप है; उसी प्रकार धम्मपद त्रिपिटकोंके सारके रूपमें भगवान् तथागतके सिद्धान्तोंकी कुंजी है । आत्मवादके साथ-साथ अनात्मवादके रहस्यको समझने-के लिये गीता और धम्मपदके तुलनात्मक अध्ययनकी आवश्यकता है । अवसर मिला तो इस विषयपर आगे लिखनेका विचार है ।

हरिणोंका स्मरण

(लेखक—श्रीदत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर)

एक विशाल वन था । बीस-बीस, तीस-तीस मीलतक मनुष्यकी झोंपड़ी तो क्या, मुसाफिरका कामचलाऊ चूल्हा भी नहीं मिलता था । वहाँ सुरम्य तालाबके पास कुछ हरिण रहते थे । तालाबके किनारे एक बेलका पेड़ था । इस पेड़के नीचे पाषाण-रूपमें महादेव विराजमान थे । हरिण रोज तालाबमें स्नान करते, महादेवका दर्शन करते और चरनेके लिये चले जाते थे । दोपहरको आकर बेलकी छायामें विश्राम करते और शामके वक्त तालाबका पानी पी महादेवका दर्शनकर सो जाते । किसी शास्त्रको पढ़े बिना ही हरिणोंको धर्मका ज्ञान हो गया था, इससे वे बहुत ही सन्तोषपूर्वक अपना निर्दोष जीवन बिताते थे ।

माघका† महीना था, कृष्णपक्षकी चतुर्दशी थी । एक भयानक व्याध उस वनमें पैठा । साँझ हो रही थी, व्याधको बहुत भूख लगी हुई थी । व्याधकी भूख कोई साधारण नहीं होती । दूसरी कोई चीज न मिले तो कच्चा मांस ही चबा जाय । परन्तु इस व्याधको भूखका दुःख न था । 'घरमें बाल-बच्चे भूखे थे, उन्हें क्या दूँगा ? क्या मुँह लेकर घर जाऊँ ? शिकार न मिलनेपर खाली हाथ घर जानेकी अपेक्षा तो यहीं पड़े रहना ठीक है, शायद कुछ हाथ लग ही जाय'—ऐसा विचार करता हुआ वह व्याध तालाबके पासके उस बेलके पेड़पर जा बैठा ।

अपने बाल-बच्चोंके भरण-पोषणके लिये स्वयं कष्ट सहना और जोखिम उठाना बस यही अपना धर्म है, वह ऐसा मानता था । इससे अतिरिक्त धर्मका उसे भान न था ।

रात हुई । कृष्णपक्षकी काली अँधेरी रात थी । कुछ भी सूझता न था । व्याध तालाबकी ओर देखनेके

* प्रारब्धं भुञ्जमानो हि गीताभ्यासरतः सदा । स मुक्तः स सुखी लोके कर्मणा नोपलिप्यते ॥
प्रारब्धको भोगता हुआ भी जो सदा गीताभ्यासमें रत रहता है वह लोकमें मुक्त है, सुखी है और कर्मबन्धन-में नहीं पड़ता ।

† गुजरात आदि प्रान्तोंके और हमारे कृष्णपक्षमें बोलनेमें एक मासका फर्क रहता है । उनका माघ-कृष्णपक्ष हमारा फाल्गुन-कृष्णपक्ष होता है ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लिये बीचमें पड़े हुए बेलके पत्तोंको तोड़-तोड़कर नीचे फेंकने लगा। इतनेहीमें दो-चार हरिण पास ही पानी पीनेके लिये आये। पेड़के ऊपर बैठे हुए व्याधको देखकर वे घबरा गये और निराशाभरी आवाजमें कहा—'हे व्याध! तू धनुषपर बाण मत चढ़ा। हम मरनेको तो तैयार हैं परन्तु हमें अपने बाल-बच्चे, सगे-सम्बन्धियोंसे मिल आनेके लिये समय दे। सूर्योदयके पहले ही हम लौटकर हाजिर हो जायँगे।

व्याध खिलखिलाकर हँस पड़ा और बोला—तुम मुझको बेवकूफ समझते हो? मैं हाथ आये हुए शिकारको चला जाने दूँ? मेरे बाल-बच्चे भूखों मर रहे हैं?

हरिणोंने कहा—हम भी तुम्हारे ही समान अपने बाल-बच्चोंका खयाल कर तुमसे छुट्टी माँगते हैं। हम अपने वचनका पालन करते हैं या नहीं, इसकी भी तो परीक्षा कर देखो।

व्याधके मनमें श्रद्धा और कौतुक जाग उठा। ठीक सूर्योदयके पहले आनेकी पूरी ताकीद कर उसने हरिणोंको जाने दिया और स्वयं बेलकी पत्तियोंको तोड़ते हुए पेड़के ऊपर ही रात बिता डाली।

ठीक सूर्योदयका समय हुआ था कि हरिणोंका एक बड़ा झुण्ड वहाँ आ पहुँचा। पहले हरिण घर गये, अपने बाल-बच्चोंसे मिले, अपने-अपने सींगसे एक दूसरेको खुजलाकर, अपने छोटे बच्चोंको प्यारसे चाट, वनकी बात सबको कह सुनायी और उनसे विदा माँगी। फिर सबोंने उनसे कहा—'चलो हम भी साथ चलते हैं, स्वेच्छासे मृत्युको अपनानेसे मोक्ष मिलता है। तुम्हारे अपूर्व आत्मयज्ञको देखकर हम पवित्र हो जायँगे।' बाल-बच्चे भी साथ हो लिये। मानों यह सब उस व्याधकी परीक्षा करनेके लिये ही निकले हों!

सूर्योदयके पहले यह झुण्ड आ पहुँचा। रातवाले हरिण आगे आकर बोले—'ले भाई, हम मरनेके लिये तैयार हैं।' दूसरे हरिण भी बोल उठे—'हमें भी मार। तेरे बाल-बच्चोंकी भूख शान्त हो। हम सब मरनेके लिये तैयार हैं।'

व्याधकी हिंसा-वृत्ति रातको ही नष्ट हो गयी। दिनभरका उपवास और रातभरका जागरण होनेसे उसकी वृत्ति विशुद्ध हो गयी थी। तिसपर इन प्रतिज्ञापालक हरिणोंके धर्माचरणको देखकर तो वह दंग रह गया। उसके हृदयमें नवीन प्रकाश जाग उठा। प्रेमशौर्यकी उसे दीक्षा मिली। वह पेड़से नीचे उतरा और हरिणोंके शरणमें गया। दो पैरका मनुष्य चार पैरवाले पशुके पैरों पड़ा। आकाशमेंसे श्वेत पुष्पोंकी वृष्टि हुई! कैलाससे एक बड़ा विमान उतरा, उसमें वह व्याध और हरिण बैठे तथा कल्याणकारी शिवरात्रिके माहात्म्यका गुणगान करते शिवलोकको चले गये। आज भी वह आकाशमें दिव्यरूपसे प्रकाशित होते हैं।

इसप्रकार महाशिवरात्रिका दिन उन धर्मनिष्ठ सत्यवृत्तिवाले हरिणोंके स्मरणका दिन है।

एकादशी, अष्टमी, चतुर्थी, शिवरात्रि—यह सब हिन्दू-महीनोंमें आनेवाले त्योहार हैं। एकादशीको वैष्णवोंने सर्वलोकप्रिय कर दिया है। गणपतिके उपासक विनायकी और सङ्कष्टी चतुर्थी-व्रत करते हैं, देवीके उपासक अष्टमीके व्रतका आचरण करते हैं। शिवरात्रि हर महीनेकी कृष्ण चतुर्दशीको पड़ती है। शैवलोग शिवरात्रि करते हैं। जैसे एकादशियोंमें आषाढ़ी और कार्तिकी महा एकादशी होती हैं वैसे ही माघ महीनेकी शिवरात्रि महाशिवरात्रि है।

हर एक महीनेके हर एक त्योहारका माहात्म्य और उसकी एक कथा होती है। उसमें महाशिवरात्रि-की कथा ऊपर लिखे अनुसार है।

प्रेषक—श्रीचन्दूलाल बहेचरलाल पटेल, बी० ए०

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विवेक-वाटिका

मेरी यह त्रिगुणमयी दैवी माया बड़ी ही दुस्तर है। जो पुरुष मुझको ही निरन्तर भजते हैं, वे इस मायासे तर जाते हैं। —भगवान् श्रीकृष्ण

❀ ❀ ❀

जो दिशाओंमें स्थित है, जो दिशाओंसे बाहर है, जिसको दिशाएँ नहीं जानतीं, जिसका शरीर दिशाएँ हैं, जो दिशाओंके भीतर रहकर दिशाओंका नियन्त्रण करता है, वही तेरा अमर आत्मा अन्तर्यामी है। —उपनिषद्

❀ ❀ ❀

जो त्रिलोकीके सम्पूर्ण वैभवके लिये भी आधे क्षणके लिये देवदुर्लभ भगवान्‌के चरणकमलोंके ध्यानको नहीं छोड़ता, वही मुख्य भक्त है। —श्रीमद्भागवत

❀ ❀ ❀

जो मनुष्य स्त्री, पुत्र, धनादिमें आसक्त है, उसकी बुद्धि मोहजालमें फँसकर धर्मपथसे डिग जाती है। अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको उचित है कि वह हर तरहसे सर्वप्रथम काम, क्रोधके प्रबल वेगको रोके। ये काम, क्रोध कल्याणमार्गके सबसे बड़े डाकू हैं। —देवर्षि नारद

❀ ❀ ❀

जो सब भूतप्राणियोंमें परमात्माको और परमात्मामें सब प्राणियोंको देखता है वह समदर्शी और आत्मयज्ञ करनेवाला पुरुष स्वाराज्य (मोक्ष) को प्राप्त होता है। —मनु महाराज

❀ ❀ ❀

भगवान्‌का आश्रय ही संसारासक्त लोगोंके लिये संसारचक्रका नाश करनेवाला है। इसीको विद्वान्‌लोग ब्रह्मनिर्वाण-सुख कहते हैं, अतएव तुमलोग अपने-अपने हृदयोंमें हृदीश्वर भगवान्‌का भजन करो। —भक्तराज प्रह्लाद

❀ ❀ ❀

जो सर्वप्राणियोंके हितकारी हैं, किसीमें दोषारोपण नहीं करते, किसीसे डाह नहीं करते, इन्द्रियों और मनको वशमें रखते हैं, निःस्पृह हैं और शान्त हैं, वे ही उत्तम भक्त हैं। —बृहन्नारदीय पुराण

❀ ❀ ❀

जिसको श्रीभगवान्‌की याद आते ही रोमाञ्च हो जाय, आनन्दके आँसू बहने लगें, शरीरका रंग बदल जाय और 'हे श्रीकृष्ण! हे गोविन्द!! हे हरे !!!' मधुर स्वरसे इसप्रकार नामगान करता हुआ जो रात-दिन भगवान्‌में चित्त लगाये रक्खे, वही श्रेष्ठ भक्त है। —गर्गसंहिता

❀ ❀ ❀

वास्तवमें यह सब तमाशा स्वप्नके सदृश है, इसमें कुछ भी सार नहीं है। तुम इस बातको बिना किसी शील-संकोचके ग्रहण कर लो कि संसारकी स्थिति निरन्तर परिवर्तनशील ही रहती है। —बुद्धदेव

❀ ❀ ❀

'मैं' की भाषा ही भक्त नहीं जानता, 'मेरा' कुछ भी नहीं कहता और सुख-दुःख क्या होता है, यह भी वह नहीं जानता। —श्रीज्ञानेश्वर

❀ ❀ ❀

सच्चा विरक्त उसीको कहना चाहिये जो मानके स्थानसे दूर रहता है। अपना नया सम्प्रदाय नहीं चलाता। जीविकाके लिये दीन होकर किसीकी खुशामद नहीं करता। स्त्रियोंके संगसे सदा दूर रहता है। —एकनाथ

❀ ❀ ❀

लोग भला कहें या बुरा, उनकी बातोंकी ओर ध्यान नहीं देना चाहिये। संसारके यश और निन्दाकी कोई परवा न करके ईश्वरके मार्गपर चलना चाहिये।

—रामकृष्ण परमहंस

❀ ❀ ❀

बाहरी मददपर कभी भरोसा मत करो। केवल अपने-पर, अपने अन्तरात्मापर भरोसा करो, इसीकी आवश्यकता है। —स्वामी रामतीर्थ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परोपकार

(लेखिका—कुमारी श्रीरत्नीदेवीजी)

संसारमें यदि मनुष्य अपने जीवनको आदर्श एवं सफल करना चाहता है तो उसके लिये परोपकार एक बहुत अच्छा साधन है। जिसके अवलम्बन करनेसे मानव-समाज अधिक लाभ उठा सकता है। आज एक ऐसे ही परोपकारी व्यक्तिकी संक्षिप्त जीवनी लिखी जाती है।

हिन्दी तथा संस्कृत-पाठकोंको विदित होगा कि देववर्गोंमें एक गन्धर्ववर्ग भी है। यह गान और वाद्य-विद्यामें अधिक दक्ष होता है। उसी वर्गके रत्न उदार हृदय महानुभाव जीमूतकेतु थे। आपके एक योग्य पुत्र था, जिसका नाम जीमूतवाहन था।

जीमूतवाहनके पिता जीमूतकेतु जब राजकीय भोग-रागोंसे तृप्त हो गये और उनकी अवस्था भी पकने-को हुई तब उन्होंने अपने प्रिय पुत्र जीमूतवाहनसे कहा—'वत्स! मेरा विचार अब कुछ दिन वनके दृश्य देखनेका है। अतः जाकर किसी रहनेयोग्य स्थान-को देखो।' पिताकी आज्ञानुसार वनको जाते हुए उसे उसका मित्र विदूषक रोकने लगा और बोला—'मित्र! इन जराजीर्ण मृतकतुल्य माता-पिताओंके साथ वनमें जाकर और राज्य-सुखोंको छोड़कर क्या करोगे?'

जीमूतवाहनने कहा—'मित्र! क्या राज्य-सुख माता-पिताओंकी सेवासे बढ़कर है?' और वह चल दिया। पीछे-पीछे उसका मित्र विदूषक भी उसके साथ हो लिया। वनमें पहुँचकर दोनों निवासयोग्य स्थान ढूँढ़ रहे थे कि अकस्मात् एक मधुर संगीतकी ध्वनि सुनायी दी। दोनों मित्रोंने ध्वनिका अनुसरण किया। जाकर देखा कि एक कुमारिका वीणा बजाती हुई देवीके सम्मुख गा रही है। इस कुमारिकाका नाम मलयवती था। मलयवतीकी सखीने उन दोनोंका यथोचित सत्कार किया। मलयवतीके पिताका नाम विश्वावसु और भाईका नाम मित्रावसु था। ये भी गन्धर्वकुलके ही थे। विश्वावसुने जीमूतवाहनको सर्वगुण-सम्पन्न जानकर उसके साथ अपनी पुत्री मलयवतीका विवाह कर दिया।

कुछ दिन बाद, जीमूतवाहन अपने साले मित्रावसु-के साथ समुद्र-तट देखनेके लिये गया। वहाँ उसे एक पहाड़-सा प्रतीत हुआ, उसे देखकर उसने अपने सालेसे पूछा—'मित्रावसो! यह किस वस्तुका पहाड़ है?' मित्रावसु बोला—'राजकुमार! ये गरुड़के खाये हुए सर्पोंकी हड्डियाँ हैं, पर्वत नहीं है।'

थोड़ी देरके बाद पिताजीका भेजा हुआ दूत उनके पास आया और मित्रावसुकी ओर देखकर बोला—'आपको विश्वावसुने बुलाया है।' यह सुनकर मित्रावसु उसके साथ-साथ चल दिया।

इधर जीमूतवाहनके हृदयमें यह विचार जागृत हो उठा कि ये सर्पोंकी हड्डियाँ कहाँसे आती हैं। इतनेमें एक वृद्धाके करुणस्वरने उसे अपनी ओर खींचा।

उसने भी आवाजके सहारे जाकर देखा तो एक वृद्धा बड़े करुणस्वरसे रो रही है। जीमूतवाहनने पूछा—'स्थविरे! किस कारण रो रही हो।' वह बोली—'कुमार! यहाँ गरुड़ नित्यप्रति आता है और एक नाग-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

को खाता है, मुझ अभागिनीके पुत्र इस शंखचूड़की आज बारी है।' वीर जीमूतवाहनने वृद्धाको सान्त्वना देते हुए कहा—'माता! रोओ मत, धैर्य धारण करो, तुम्हारे पुत्रकी जगह गरुड़का भक्ष्य मैं बन जाऊँगा।'

यह सुनकर शंखचूड़ बोला—'महानुभाव! संसारमें आप-सदृश मनुष्योंका होना दुर्लभ है, मुझ-सरीखे क्षुद्रजन्तु तो संसारमें यों ही जन्मते-मरते हैं।' जीमूतवाहन बोला—'भाई! संसारमें परोपकारकी तुलना कोई वस्तु नहीं कर सकती। परोपकारकी उपमा देना सूर्यको दीपक दिखाना है।'

इतनेमें एक मनुष्य लाल वस्त्रोंको लेकर आया और शंखचूड़के प्रति बोला—'शंखचूड़! ये अपने बध्यचिह्न लो, अब गरुड़के आनेका समय हो रहा है।' जीमूतवाहनने उन वस्त्रोंको ले लिया और स्वयं उन्हें पहनकर बध्यशिलापर जा बैठा। इतनेमें भयङ्कर स्वरूपवाला गरुड़ आया और उसे उठाकर शिलापर बैठकर खाने लगा।

उसके इस समयतक न पहुँचनेके कारण उसके माता-पिता शोकार्त होकर रोने लगे और उसकी स्त्री मलयवती भी बड़े कठोर हृदयको भी छेदनेवाले करुण-स्वरसे रोने लगी। रोते-रोते वे समुद्रतटपर आ गये, वहाँ इधर-उधर शंखचूड़ भी टहल रहा था। उसके कानोंमें उनके रोनेकी आवाज आयी। उसने पास जाकर देखा कि ये शायद उसी महापुरुषका कुटुम्ब है।

यह सोचकर उनसे बोला—'माता! तुम्हारे पुत्रका अपघातक मैं ही हूँ, तुम धैर्य धारण करो, मैं पता लगाता हूँ, शायद वह जीवित हो।' यह कहकर वह गरुड़की खोजमें चल दिया और पहाड़पर जीमूत-वाहनको खाते हुए गरुड़को देखा। उसने जाकर गरुड़से कहा—'गरुड़! छोड़ दो, यह तुम्हारा भक्ष्य नहीं है। इसने तो परोपकारमें जीवन दिया है।'

यह सुनकर गरुड़ने उसे छोड़ दिया और शंख-चूड़ने उसे कुछ शेष जीवित जानकर उसके माता-पिताके पास जाकर कहा—'तुम्हारा पुत्र कुछ समयके लिये जीवित है।' यह सुनकर उसके माता-पिता शंख-चूड़के साथ हो लिये। वहाँ जाकर क्षत-विक्षत पुत्रको देखा और उसके घावोंपर हाथ फेरने लगे। माता-पिताको देखकर उसके शरीरमें जान-सी आ गयी और वह बोला—'माता! यह मेरा अन्तिम प्रणाम है।' यह कहकर उसने अपने प्राण छोड़ दिये!

तब उसके माता-पिता फिर आर्तनाद करते हुए रोने लगे। मलयवती भी 'हा प्राणनाथ! हा प्राणनाथ!!' कहकर पुकारने लगी और बोली—'हे गौरि! आपने सेवा करती हुई मुझसे कहा था कि तू सौभाग्यवती रहेगी; किन्तु आपका भी वाक्य असत्य निकला।' सतीकी पुकार सतीने सुनी। तत्काल दिव्यदर्शनवाली गौरी प्रकट हुई और बोली—'बेटी! मैं कभी असत्यवादिनी नहीं हो सकती।' गौरीने मृत जीमूतवाहनकी ओर देखकर कहा—'वत्स जीमूतवाहन! उठो और शोकार्त माता-पिता तथा मलयवतीको सन्तुष्ट करो।' यह कहते ही जीमूतवाहन उठ बैठा। गौरीदेवी तथा माता-पिताके चरणोंमें प्रणाम किया। जब जीमूतवाहन गतासु हो गया था, तब गरुड़ उसे जिलानेको पातालमें अमृत लाने चला गया था। जब वह अमृत लेकर आया तो जीमूतवाहनको जीता हुआ पाया। गरुड़ने आकर प्रणाम किया और कहा—'मेरे लिये क्या आज्ञा है?' तब जीमूतवाहनने कहा—'इस अमृतको सर्पोंकी हड्डियोंके ऊपर छिड़क दो।' गरुड़ने वैसा ही किया। अमृत गिरते ही सब सर्प जीवित हो गये और जीमूतवाहनको आशीर्वाद देते हुए समुद्रमें चले गये। जीमूतवाहनने गरुड़से यह प्रतिज्ञा करा ली कि अबसे मैं सर्पोंको न खाऊँगा। यह कहकर गरुड़ उड़ गया, जीमूतवाहन भी सकुटुम्ब अपने घर चला गया।

देखो, जीमूतवाहनने परोपकारका सहारा लेकर शंखचूड़के ही प्राण नहीं बचाये; किन्तु अपने और सब सर्पोंके प्राण बचाये। अन्तमें उस सर्प-शत्रुसे यह प्रतिज्ञा करा ली कि अब सर्प न खाऊँगा। परोपकारमें क्या नहीं होता?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

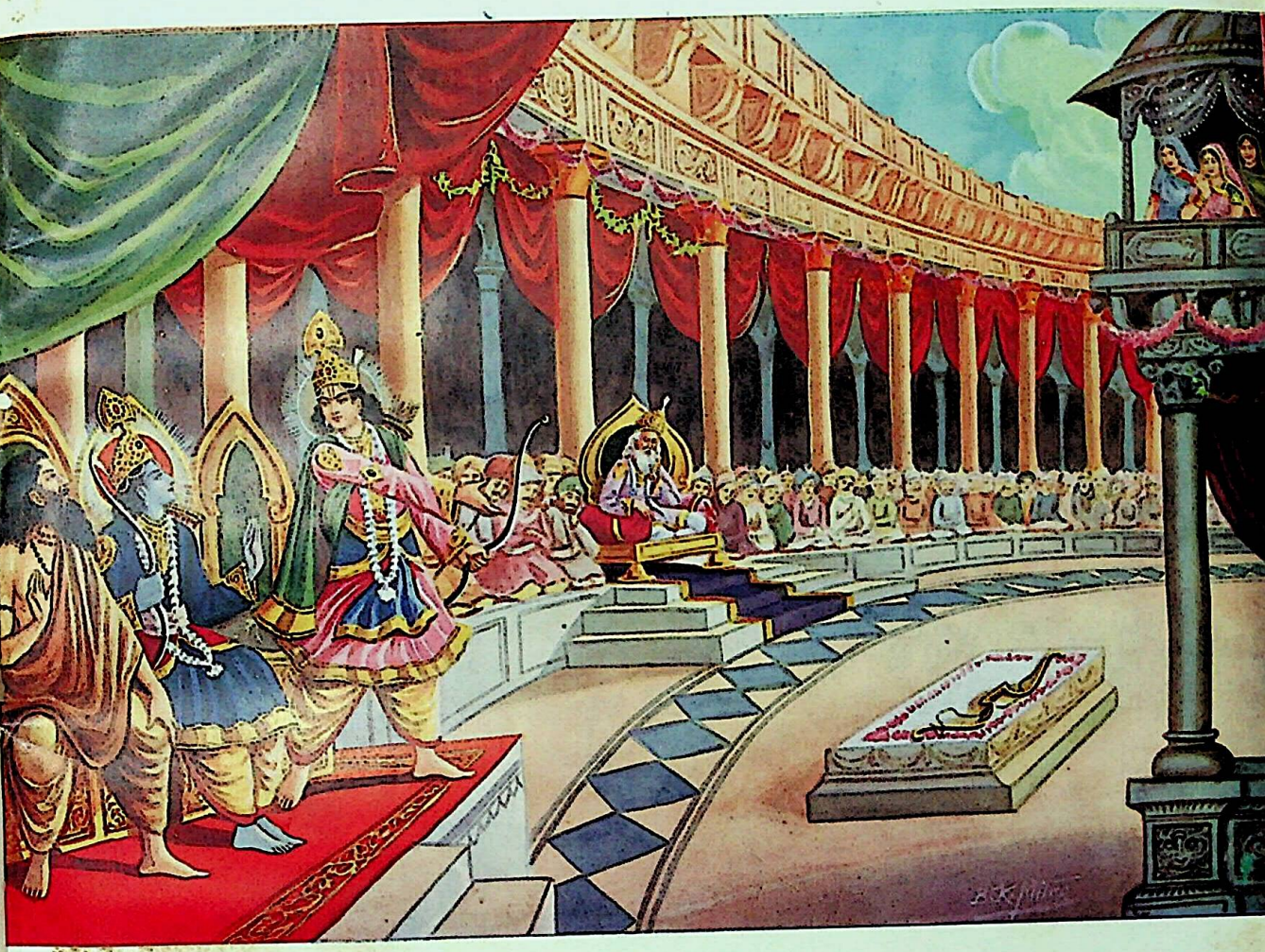

सुनहु भानु-कुल-पंकज-भानू। कहौं सुभाव न कछु अभिमानू॥
जौं तुम्हार अनुसासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्माण्ड उठावौं॥
काँचे घट जिमि डारौं फोरी। सकौं मेरु मूलक इव तोरी॥
तव प्रतापमहिमा भगवाना। का बापुरो पिनाक पुराना॥
नाथ जानि अस आयसु होऊ। कौतुक करौं बिलोकिय सोऊ॥
कमलनाल जिमि चाप चढ़ावौं। जोजन सत प्रमान लै धावौं॥

दो०—तोरौं छत्रकदंड जिमि तव प्रतापबल नाथ।
जौ न करौं प्रभु-पद-सपथ कर न धरौं धनु भाथ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
जयति शिवा-शिव जानकि-राम । जय रघुनन्दन राधेश्याम ॥
रघुपति राघव राजा राम । पतितपावन सीताराम ॥
जय जय दुर्गा जय मा तारा । जय गणेश जय शुभ आगारा ॥

[संस्करण २४३००]

वार्षिक मूल्य
भारतमें ४≦)
विदेशमें ६॥=)
(१० शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत् चित् आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय अखिलात्मन् जगमय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति
भारतमें ।)
विदेशमें ।≦)
(८ पैंस)

Edited by Hanuman prasad Poddar.

Printed and published by Ghanshyamdas at the Gita Press, Gorakhpur. U. P. (India)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीहरिः

सूचना—श्रीशिवांक केवल ४०० के करीब बचा है, ग्राहक बननेवाले जल्दी करें।

कल्याण मार्गशीर्ष १९९० की

विषय-सूची

१–व्यर्थ जीवन [कविता] (सूरदासजी) ... ८२७
२–कल्याण ('शिव') ... ८२८
३–सर्वोच्च ध्येय (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ... ८३०
४–भक्ति-तत्त्व (परिव्राजक ब्रह्मचारी श्रीगोपाल चैतन्यदेवजी) ८३५
५–कृतज्ञता [कविता] (पं० श्रीपद्मकान्तजी मालवीय) ८४०
६–श्रीगीता-जयन्ती ८४१
७–भगवत्प्राप्तिवाले पुरुषोंके लक्षण ... ८४२
८–परमहंस-विवेकमाला (स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी) ८४३
९–तुलसीकृत रामायणमें करुणारस (श्रीराजबहादुरजी लमगोड़ा एम० ए०, एल-एल० बी०) ८५०
१०–सत्यं शिवं सुन्दरम् (श्रीयुत पी० एन० शङ्कर नारायण अय्यर बी० ए०, बी० एल०) ... ८५४
११–परमार्थ-पत्रावली (श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पत्र) ८५९
१२–अद्भुत अज्ञान या अनुपम लवलीनता [कविता] (नवरत्न पं० श्रीगिरिधरजी शर्मा) ८६२
१३–मनके रहस्य और उसका नियन्त्रण (स्वामीजी श्रीशिवानन्दजी) ८६३
१४–श्रीकृष्णकी छात्रावस्था (पं० श्रीविष्णुदत्तजी शर्मा बी० ए०) ८६६
१५–शिव या राम [कविता] (श्रीअमृतलालजी माथुर) ८७१
१६–शिवाङ्क (श्रीनलिनीमोहन सान्याल एम० ए०, भाषातत्त्वरत्न) ८७२
१७–ज्ञान-गुदड़ी [कविता] ८७५
१८–दमका क्या भरोसा [कविता] (पं० श्रीविश्वनाथप्रसादजी मिश्र) ... ८७५
१९–श्रीरामचरितमानसका शुद्ध पाठ (श्रीरामदासजी गौड़ एम० ए०) ८७६
२०–भक्त-गाथा ८८४
२१–श्रीश्रीरामकृष्ण-उपदेशामृत (सं०–'प्रेम-पथ-पथिक') ८९२
२२–श्रीकृष्णका अस्तित्व (पं० श्रीश्यामाचरणदत्तजी पन्त) ८९३
२३–पुनीत प्रतापा (श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी) ८९६
२४–मेरी विकलता [कविता] (पं० श्रीचन्द्रशेखरजी पाण्डेय 'चन्द्रमणि') ... ८९७
२५–कुछ आध्यात्मिक अनुभव (स्वामी श्रीशान्तयोगानन्दजी) ८९८
२६–सीता-त्यागकी निर्दोषता (श्रीरघुनन्दनप्रसादसिंहजी) ९००
२७–ईश्वर-महिमा (श्रीवृजबिहारीलालजी गौड़) ९०३
२८–निद्रा-निर्णय [कविता] (पुरोहित श्रीप्रतापनारायणजी कविरत्न) ९०४
२९–विवेक-वाटिका ९०५
३०–तुम्हारी लीला (पं० श्रीप्रेमनारायणजी त्रिपाठी 'प्रेम') ९०६
३१–ॐ नमः शिवाय ९०६

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

छप गयी

गीता-डायरी सन् १९३४ की

छप गयी

मूल्य साधारण जिल्द ।), कपड़ेकी जिल्द ।-)

पिछले कई वर्षोंमें डायरीके दो-दो, तीन-तीन संस्करण निकालने पड़े और इसपर भी अन्तमें कई सज्जनोंको निराश होना पड़ा, यही इसकी उपयोगिताका सबसे बड़ा प्रमाण है। इसमें हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला तिथियोंके साथ-साथ संक्षेपसे त्योहार भी छापे जाते हैं। गीता १८ अध्याय सम्पूर्ण तो रहती ही है। आरम्भके ३२ पेजोंमें अति उपयोगी विषय रहते हैं, जिनमें इस बार कुछ परिवर्तन किया गया है। अन्तमें याददाश्तके सादे पन्ने हैं। सबके लिये एक उपयोगी सुन्दर डायरी है। अनेक विद्वानों और पत्र-पत्रिकाओंने इसकी जीसे प्रशंसा की है। केवल १५००० छापी गयी है, जिन्हें आवश्यकता हो, आर्डर देनेकी शीघ्रता करें।

कल्याणके ग्राहकोंको सुविधा

६ सजिल्द डायरियोंके दाम १।।।=), पैकिंग)॥, डाकखर्च ।।≠) कुल रु० २॥-)॥ होते हैं, जिनके बदले २=) लिये जायँगे। ७ अजिल्द डायरियोंके दाम १।।।), पै० -), डाकखर्च ।।≠) कुल रु० २॥) होते हैं, जिनके बदले २-) लिये जायँगे। यह रियायत मनीआर्डरसे पेशगी रुपये भेजनेवालोंके साथ ही होगी। रियायती मूल्यमें वी० पी० नहीं भेजी जायगी।

एक अजिल्द डायरीके लिये रजिस्ट्री और डाकखर्चसहित ॥-) और एक सजिल्दके लिये ॥=) तथा दो अजिल्दके लिये ।।।=) और दो सजिल्दके लिये १-) भेजना चाहिये। बिना रजिस्ट्री पैकेट खो जानेका डर है। १) से कमकी वी० पी० प्रायः नहीं भेजी जाती।

विशेष सूचना—मँगवानेसे पहले अपने बुकसेलरोंसे पूछिये। थोक मँगानेवाले बुकसेलर हमारी पुस्तकें प्रायः पुस्तकपर छपे हुए दामोंसे बेचा करते हैं। इसमें आपको और भी सुभीता होगा। भारी डाकखर्चकी बचत होगी, जो ऊपरी सुविधासे भी अधिक लाभ होगा, क्योंकि हमारी पुस्तकोंका मूल्य कम और वजन अधिक होता है। इससे उनपर डाकखर्च अधिक पड़ता है।

बुकसेलरोंको सूचना

अजिल्द-सजिल्द कम-से-कम २५० डायरियाँ एक साथ लेनेवालोंका नाम, पता डायरीपर बिना किसी खर्चके छाप दिया जायगा। इससे उनको बेचनेमें मदद मिलेगी। कमीशन तो मिलेगा ही। बुकसेलर लोग कृपाकर शीघ्रता करें।

हमारा नया बड़ा सूचीपत्र छप गया है, जिन सज्जनोंको जरूरत हो वे लिखकर मँगवा लें।

नयी पुस्तकें

शीघ्र छपेंगी

नयी पुस्तकें

(१) श्रीविष्णुपुराण-सटीक, सचित्र मू० २॥), २।।।) (२) भक्त-सप्तरत्न—सात भक्तोंकी सचित्र कथाएँ मू० ।-) (३) भक्त-कुसुम—छः भक्तोंकी सचित्र और पढ़नेयोग्य जीवनियाँ मू० ।=) (४) भक्त-चन्द्रिका—छः भक्तोंकी जीवनियाँ मूल्य ।-) (५) प्रेमी भक्त मूल्य लगभग ।-)

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिव-ताण्डव

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥
सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥

वर्ष ८ | गोरखपुर, मार्गशीर्ष १९९० दिसम्बर १९३३ | संख्या ५ पूर्ण संख्या ८९

व्यर्थ जीवन

इते दिन हरि-सुमिरन बिनु खोये ।
परनिन्दा रसनाके रससों अपने करम बिगोये ॥
तेल लगाय कियौ तन मरदन बस्तर मलमल धोये ।
तिलक लगाय चले बन स्वामी विषयनके सँग जोये ॥
काल बलीते सब जग काँप्यौ ब्रह्मादिक मुनि रोये ।
सूर अधमकी कौन गती है उदर भरे भर सोये ॥

—सूरदासजी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कल्याण

अपनेको उत्तम समझकर न तो कभी अभिमान करो और दूसरेको बुरा समझकर न कभी उससे घृणा करो। जीवनमें न मालूम कितनी बार उत्थान-पतनकी घड़ियाँ आती हैं। जिसका जीवन अन्तिम श्वासतक उत्तम निभ जाय वही उत्तम है और जो जीवनमें कभी न सुधरे वही बुरा है।

× × ×

अपने जीवनकी ओर सदा चौकन्नी नज़रसे देखते रहो, एक-एक कदम बड़ी सावधानीसे सँभलकर रक्खो; गिरनेके लिये जगत्‌में चारों ओर इतने गहरे गड्ढे हैं कि जिनकी गिनती ही नहीं हो सकती। जरा-सी असावधानी तुम्हें न मालूम कितनी गहरी खाईंमें गिरा देगी। मनकी प्रत्येक क्रिया और इन्द्रियकी हर एक चेष्टाको प्रभुकी ओर लगी रहनेवाली अव्यभिचारिणी बुद्धिके अधीन रक्खो। सावधान, एक क्रिया भी ऐसी न होने पावे जो प्रभुसे विमुख ले जानेवाली और दुष्कर्मके गड्ढेमें गिरानेवाली हो।

× × ×

बुरी वासना और पापबुद्धिपर कभी दया न करो, जरा-सी बुरी वासना और पापबुद्धिको भी कभी हृदयमें आश्रय मत दो। आश्रय पाकर इनके बढ़ते देर नहीं लगती। बढ़ जानेपर फिर ये बे-काबू हो जाती हैं और सारी इन्द्रियोंपर अपना प्रभुत्व फैलाकर मनमानी करती-कराती हैं।

× × ×

अपनेको भगवान्‌के बलसे बलवान् समझकर कुवासना, कुचिन्ता और कुबुद्धिको नजदीक भी न आने दो; जोर करें तो लड़कर इनपर विजय प्राप्त करो। स्मरण रक्खो—तुम बड़े बलवान् हो। आत्माके समान शक्तिशाली कोई नहीं है। शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि सभी आत्माके गुलाम हैं। तुम आत्मा हो, परमात्माके सनातन अंश हो। मन, बुद्धि और उनमें निवास करनेवाले कामकी ताकत तुम्हारी ताकतके सामने तुच्छ है; बल्कि तुम्हारी ही शक्तिसे उनमें शक्ति आती है। अपनेको परमात्माके सामने दीन समझो; परन्तु विषयबुद्धिके नाश करनेके लिये कभी दुर्बल मत समझो। वास्तवमें ही तुम दुर्बल नहीं हो। तुम्हारे दुर्बलताके निश्चयने ही तुम्हें दुर्बल बना रक्खा है। अपने स्वरूपको सँभालो और निर्भय हो जाओ।

× × ×

अपनी निन्दा सुनकर न घबराओ, न उत्तेजित होओ, न शोक करो और न धैर्य ही छोड़ो। अहंकारको अलग करके अपनेको देखोगे तो निन्दाका तुमपर कोई असर नहीं दीखेगा। आत्माकी कोई निन्दा कर नहीं सकता; नाम-रूपकी निन्दा-स्तुतिमें कुछ हानि-लाभ नहीं है। जगत्‌में न सबकी सब समय सब निन्दा करते हैं और न स्तुति ही करते हैं। जगत्‌की निन्दा-स्तुतिकी कुछ भी परवा न करके सदा निष्कामभावसे प्रेमपूर्वक निरन्तर ईश्वरकी आज्ञा पालन करनेमें लगे रहो।

× × ×

तुम परमेश्वरकी आज्ञा समझकर किसी सत्कार्यको करते हो और वर्तमान जगत्‌के अधिकांश विद्वान् कहानेवाले लोग भी यदि तुम्हारे उस सत्कार्यके विरुद्ध मत रखते हैं तो कोई चिन्ता नहीं। अपना सत्कार्य कभी मत छोड़ो, परमेश्वरपर भरोसा रखकर अपने कर्तव्यपर डटे रहो। सच्ची बात आखिर सच्ची ही रहेगी। एक दिन दुनिया सत्यको मान लेगी, और यदि न माने तब भी तुम्हारी कोई हानि नहीं है।

× × ×

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दुनियाकी प्रशंसा पानेके लिये, नेतृत्वके लिये, मान या धनके लिये अपना धर्म कभी मत छोड़ो ! दुनियाकी प्रशंसासे कुछ भी नहीं बनता। धर्मत्यागका फल बहुत बुरा होगा। आज धर्मत्याग करनेवालोंकी प्रशंसा सुनकर भविष्यके फलसे बेखबर मत होओ।

× × ×

त्याग करो, परन्तु त्यागका अभिमान न करो। त्यागकी स्मृतिको भी भूल जाओ। दान करो; परन्तु अहसान न करो, बदला न चाहो, उसे भूल जाओ। सेवा करो, परन्तु सेवक मत कहलाओ। जो सेवा करता है और सेवक नहीं कहलाता, वही असली सेवा करता है।

× × ×

सफलतापर कभी गर्व न करो, यह न समझो कि हमारी बुद्धि और शक्तिसे सफलता मिली है। ईश्वरका धन्यवाद करो और उसीकी शक्तिका प्रभाव समझो एवं दीन होकर ईश्वरसे प्रार्थना करो—'प्रभो ! तुम्हारी इच्छासे होनेवाली सफलताका अभिमान मेरे हृदयमें कभी न उत्पन्न हो, मैं तुम्हारी शक्तिके प्रभावको कभी न भूलूँ।'

× × ×

विफलतापर कभी शोक न करो, यह न समझो कि प्रभुने बहुत बुरा किया। अपनी भूलोंको ढूँढ़ो, कहीं अभिमान या गर्ववश प्रभुकी शक्तिका अपमान या तिरस्कार तो नहीं हो गया, यदि हुआ हो तो (जरूर हुआ ही होगा) प्रभुको विफलताके लिये धन्यवाद देकर उनसे दीन प्रार्थना करो—'प्रभो ! तुमने बहुत अच्छा किया जो मुझे विफलता दी। यदि मैं सफल हो जाता तो मेरा अभिमान और भी बढ़ता एवं मैं तुम्हारी शक्तिका और भी अधिक तिरस्कार करता। अब कृपा करके ऐसी बुद्धि दो जिसमें मैं फिर कभी ऐसी भूल न करूँ।'

× × ×

प्राणिमात्रके प्रति प्रेम करो, दीन जीवोंपर दया करो, सबके साथ मित्रता और शान्तिपूर्ण बर्ताव करो। सबका आदर करो। अपमान किसीका भी कभी न करो, मनुष्यके लिये अपमानसे बढ़कर अप्रिय वस्तु और कोई नहीं है। स्वयं अमानी बनकर दूसरोंका सम्मान करो।

× × ×

बदला लेनेकी भावना कभी मनमें मत आने दो। अपना बुरा करनेपर, गाली देनेपर, निन्दा करनेपर, मारनेपर भी किसीका कभी न बुरा करो, न बुरा चाहो, न बुरा होते देखकर प्रसन्न होओ। उसको हृदयसे क्षमा कर दो। सबमें अपने आत्माको समझकर, जैसे अपने अपराधपर आप दण्ड नहीं देना चाहता,—क्षमा चाहता है—इसी प्रकार सबपर क्षमा करो। बदला लेनेकी भावना बहुत बुरी है। बदला लेनेकी भावना मनमें रखनेवाला मनुष्य इस जीवनमें कभी शान्ति, सुख और प्रेम नहीं पाता, तथा मरनेपर पिशाच होता है। वह स्वयं डूबता है और वैर-भावके बुरे परमाणु वायुमण्डलमें फैलाकर दूसरोंका भी अनिष्ट करता है।

× × ×

मनमें सदा पवित्र भाव रक्खो; सबका हित चाहो, सबको उत्तम परामर्श दो, कभी न वाणीसे बुरी सम्मति दो, न अपनी करनीसे बुरी बात सिखाओ, और न मनमें बुरी बात रखकर उसे वायुमण्डलमें जाने दो। जो दूसरोंमें बुरे भाव फैलानेमें सहायक होता है वह बहुत बड़ा पाप करता है। उसका कभी हित नहीं हो सकता।

× × ×

स्मरण रक्खो—जिस कार्यसे परिणाममें अपना और दूसरोंका हित हो वही धर्म है और जिससे परिणाममें अपना और दूसरोंका अहित हो वही पाप है !

× × ×

'शिव'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सर्वोच्च ध्येय

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

एक सज्जनके दो प्रश्न हैं—

प्र०१—अबतककी उम्रमें आपको श्रवण, भाषण, सहवास, शिक्षण, अध्ययन, मनन, निदिध्यासन, कृति, भ्रमण, निरीक्षण, सत्संग और सद्गुरु तथा अनुभव इत्यादिके द्वारा ऐसा कौन-सा सिद्धान्त (उच्च ध्येय) जँचा है जिसमें शील, सदाचार, मानव-कर्तव्य, आनन्द, सुख, मोक्ष, योगादिका तथा आत्मिक, कौटुम्बिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, जागतिक उन्नति अथवा समाजसुधार आदि सभी सिद्ध होते हों और जिसको (उच्च ध्येयको) सुलभ साधनोंद्वारा पृथिवीभरके सभी मनुष्य सदा प्राप्त कर सकें ?

प्र०२—प्रत्येक मनुष्यको प्रतिदिन चौबीस घण्टेमें कितना-कितना समय आत्मिक, कौटुम्बिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, जागतिक, समाजसुधार, आजीविका आदि कार्योंमें लगाना चाहिये, जिससे स्वार्थ और परमार्थ दोनों सधें । कायिक, वाचिक, मानसिक, बौद्धिक सुधार (आत्मसुधार) आदि प्रत्येक कार्यमें मनुष्यको कितना समय और अर्थ व्यय करना चाहिये जिससे इनका पूरा विकास हो और समय, अर्थ तथा श्रम सार्थक सिद्ध हो ?

उ०१—जिस उच्च ध्येयके विषयमें आपका प्रश्न है उसका यथार्थ वर्णन तो वही पुरुष कर सकता है जिसने उस सर्वोत्तम उच्च ध्येयको प्राप्त कर लिया हो । मैं तो साधारण मनुष्य हूँ, मुझे इतना ज्ञान नहीं है जिससे आपको मेरे उत्तरसे सन्तोष हो सके । क्योंकि विशेष करके न तो मैंने सत् शास्त्रोंका श्रवण-मनन, पठन-पाठन ही किया है, न सद्गुरु एवं महात्मा पुरुषोंका सेवन, सत्संग, सहवास और अनुकरण ही कर सका हूँ और न उनकी आज्ञाओंका इतना पालन ही कर पाया हूँ । मनन और निदिध्यासन भी विशेष नहीं हैं । किन्तु मुझे जो रुचिकर है, जिसे मैं अच्छा समझता हूँ वही अपनी साधारण बुद्धिके अनुसार आपकी प्रसन्नताके लिये आपकी सेवामें संक्षेपमें निवेदन कर रहा हूँ—

केवल एक विज्ञानानन्दघन परमात्माके सब प्रकारसे अनन्य शरण होना ही सर्वोत्तम सिद्धान्त एवं उच्च ध्येय है और यही परम धर्म तथा परम कर्तव्य है । अतएव इसको परम कर्तव्य समझकर इसका पालन करनेसे मनुष्य अनायास सदाचार और सद्गुण-सम्पन्न होकर पूर्ण शान्ति एवं मोक्षतकके आनन्दको सुलभतासे प्राप्त कर सकता है । इसीसे कौटुम्बिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, जागतिक उन्नति और सुधारका होना सम्भव है एवं मनुष्यमात्रका ही इसमें अधिकार है । भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने गीतामें कहा है—

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥
(९ । ३२)

'हे अर्जुन ! स्त्री, वैश्य, शूद्रादि और पापयोनि-वाले भी जो कोई होवें वे भी मेरी शरण होनेसे परम गतिको ही प्राप्त होते हैं ।'

इसीलिये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने अन्तिम उपदेश भी यही दिया है—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥
(गीता १८ । ६६)

'सम्पूर्ण धर्मोंको अर्थात् सम्पूर्ण कर्मोंके आश्रयको त्यागकर केवल मुझ एक सच्चिदानन्दघन वासुदेव

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परमात्माकी ही अनन्य शरणको प्राप्त हो । मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू चिन्ता न कर ।'

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने भी यही घोषणा की है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥

'जो एक बार भी मेरी शरण आकर 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसा कहकर मुझसे अभय माँगता है उसे मैं समस्त प्राणियोंसे निर्भय कर देता हूँ—यह मेरा व्रत है ।'

श्रुति भी कहती है—

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् ।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥
एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥

'यह अक्षर ही ब्रह्म है, यह अक्षर ही परम है, इस अक्षरको ही जानकर जो पुरुष जैसी इच्छा करता है उसको वही प्राप्त होता है । इस अक्षरका आश्रय (शरण) श्रेष्ठ है । यह आश्रय सर्वोत्कृष्ट है, इस आश्रयका रहस्य जानकर (वह) ब्रह्मलोकमें पूजित होता है ।'

इसलिये लज्जा, भय, मान, बड़ाई, आसक्तिको त्यागकर अहंता, ममतासे रहित होकर केवल एक परमात्माको ही परम आश्रय, परम गति और सर्वस्व समझकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उस व्यक्त-अव्यक्तस्वरूप सर्वव्यापी विज्ञानानन्द परमेश्वरके मन, बुद्धि, इन्द्रिय, शरीरादिद्वारा सब प्रकारसे शरण होनेके लिये तत्पर होना चाहिये ।

अनन्यशरणका स्वरूप

(क) उस परमेश्वरके नामका जप और प्रभाव एवं रहस्यसहित स्वरूपका ध्यान (चिन्तन) निष्काम प्रेमभावसे श्रद्धापूर्वक सदा-सर्वदा करते रहना । हरि, ॐ, तत्सत्, नारायण, वासुदेव, शिव इत्यादि उसके अनेक नाम हैं । इन नामोंमेंसे, जिसकी जिसमें विशेष श्रद्धा और रुचि हो, उसके लिये उसी नामका जप विशेष लाभप्रद है । उस परमेश्वरके दो रूप हैं—निर्गुण और सगुण । इनमें निर्गुण (गुणातीत) का चिन्तन तो बन नहीं सकता । जो चिन्तन किया जाता है वह सगुणका ही किया जाता है । सगुणके भी दो भेद हैं—अव्यक्त और व्यक्त । या यों समझिये, एक निराकार और दूसरा साकार । महासर्गके आदिमें जिससे सम्पूर्ण संसार उत्पन्न होता है तथा महाप्रलयके अन्तमें सम्पूर्ण संसार जिसमें विलीन होता है एवं जो सर्वत्र समभावसे व्याप्त है और सम्पूर्ण संसारका नाश होनेपर भी जिसका नाश नहीं होता, ऐसे अव्यक्त, सर्वव्यापी, अनन्त, विज्ञानानन्दघन परमात्माको निराकार ब्रह्म कहते हैं । वही विज्ञानानन्दघन परमात्मा जब संसारके उद्धारके लिये मनुष्य या देवतादिके रूपमें प्रकट होकर ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, सदाचारादि धर्मका प्रचार करता है, तब उस प्रेम, दया और आनन्दमयी मूर्तिको साकार ब्रह्म कहते हैं । इनमें जिसकी जिसमें विशेष श्रद्धा-प्रेम हो उसके लिये उसी स्वरूपका ध्यान करना विशेष लाभप्रद है ।

(ख) उस परमेश्वरकी आज्ञा एवं इच्छाके अनुसार यथासाध्य चलनेके लिये सदा-सर्वदा कोशिश करते रहना, अर्थात् ईश्वरको जो (अनुकूल) प्रिय हो, तत्परतासे वही करना । सत् शास्त्रों और महात्मा पुरुषों-की आज्ञाको ही ईश्वरकी आज्ञा समझना, उनके द्वारा समझे हुए विषयपर मनन करनेसे अपनी आत्मामें निरपेक्ष-भावसे जो निर्णय हो उसको ईश्वरकी इच्छा समझना एवं उसीको परम कर्तव्य समझकर उसके अनुसार सदा-सर्वदा चलनेकी चेष्टा करना । शास्त्रमें बतलाये हुए लक्षण और आचरण जिसमें पाये जाते

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हों ऐसे महापुरुषोंमेंसे जिसकी बुद्धिमें जो सबसे श्रेष्ठ पुरुष पहले हो गये हों या वर्तमान हैं, वे ही उसके लिये महात्मा पुरुष समझे जाते हैं। श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराणादि आर्ष ग्रन्थ ही सत् शास्त्र हैं। इनके अतिरिक्त महापुरुषोंद्वारा रचे हुए जिन शास्त्रोंमें जिसकी श्रद्धा-भक्ति हो उसके लिये वे भी सत् शास्त्र समझे जाते हैं। वर्तमान कालके लिये श्रीमद्भगवद्गीता श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराणादि सम्पूर्ण शास्त्रोंका सार एवं पक्षपातरहित, सार्वभौम, धार्मिक सद्ग्रन्थ है। इसीसे कहा गया है—

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता॥

'गीता सुगीता करनेयोग्य है अर्थात् श्रीगीताजीको भलीप्रकार पढ़कर अर्थ और भावसहित अन्तःकरणमें धारण कर लेना मुख्य कर्तव्य है, जो स्वयं श्रीपद्मनाभ विष्णुभगवान्‌के मुखारविन्दसे निकली हुई है। फिर अन्य शास्त्रोंके विस्तारसे क्या प्रयोजन है?' इसलिये विशेष शास्त्रोंका अभ्यास न हो सके तो श्रीमद्भगवद्गीताका अध्ययन तो अवश्यमेव करना चाहिये।

(ग) सुख-दुःखकी एवं सुख-दुःखदायक पदार्थोंकी प्राप्ति और विनाशमें, तथा हानि और लाभमें परम दयालु, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी परमेश्वरका ही किया हुआ विधान समझकर सदा-सर्वदा प्रसन्नचित्त रहना, अर्थात् परेच्छा या अनिच्छासे जो कुछ भी प्रारब्धानुसार प्राप्त हो उसमें उस प्रेमास्पद, दयासिन्धु परमेश्वरकी दयाका पद-पदपर अनुभव करते हुए सदा-सर्वदा आनन्दमें मुग्ध रहना।

(घ) संसारकी किसी भी वस्तुको न तो अपनी सम्पत्ति समझना चाहिये एवं न अपने भोगकी सामग्री ही। क्योंकि वास्तवमें सब कुछ नारायणसे उत्पन्न होनेके कारण नारायणका ही है। इसलिये उनमेंसे ममताको हटाकर सब वस्तुएँ नारायणके ही अर्पण कर देनी चाहिये। अर्थात् नारायणकी आज्ञानुसार नारायणके काममें ही उन्हें लगा देना चाहिये।

(ङ) बुद्धिसे परमात्माके रहस्य और प्रभावसहित तत्त्वको समझना, श्रद्धा-प्रेमपूर्ण चित्तसे उस परमात्माके स्वरूपका चिन्तन, श्वासद्वारा भगवन्नाम-जप, कानोंसे भगवान्‌के गुण, प्रभाव और स्वरूपकी महिमाका श्रवण, नेत्रोंसे भगवान्‌की मूर्तिका एवं उनके भक्तोंका दर्शन तथा सत् शास्त्रोंका अवलोकन, वाणीसे उनके गुणोंका कीर्तन एवं शरीरसे भगवान् और उनके भक्तोंकी सेवा, पूजा, नमस्कारादि तथा उनकी इच्छामें अपनी इच्छाको मिलाकर उनकी आज्ञानुसार केवल उन परमेश्वरके लिये ही फल और आलस्यको छोड़कर सम्पूर्ण कर्मोंको करना। यही उनकी सब प्रकारसे शरण होना है।

उपर्युक्त प्रकारसे मनुष्य जैसे-जैसे भगवान्‌की शरण जाता है वैसे-वैसे ही उसमें धीरता, वीरता, गम्भीरता, निर्भयता, क्षमा, दया, सन्तोष, समता आदि सद्गुणोंकी तथा शम, दम, तप, दान, त्याग, सेवा, सत्य, ब्रह्मचर्यादि उत्तम आचरणोंकी एवं अतिशय शान्ति और परमानन्दकी क्रमशः वृद्धि होती चली जाती है। इसप्रकारसे उन्नत होता हुआ वह फिर उस परम दयालु परमात्माकी दयासे उन्नतिकी शेष सीमाके परमोच्च शिखरपर पहुँच जाता है, अर्थात् परम धाम, परम पद, परम गति अथवा परमात्माको प्राप्त हो जाता है। फिर उसके लिये कुछ भी कर्तव्य शेष नहीं रह जाता।

उ० २—समय बहुत ही अमूल्य है। लाखों रुपये खर्च करनेपर भी जीवनका एक क्षण नहीं मिल सकता। ऐसे मनुष्य-जीवनका एक क्षण भी प्रमाद, आलस्य, पाप, भोग और अकर्मण्यतामें कदापि नहीं खोना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चाहिये। जो मनुष्य अपने इस अमूल्य समयको बिना सोचे-विचारे व्यर्थ प्रमादमें बितावेगा, उसे आगे चलकर अवश्य ही पश्चात्ताप करना पड़ेगा। गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

सो परत्र दुख पावही, सिर धुनि धुनि पछिताहि।
कालहिं, कर्महिं, ईश्वरहिं, मिथ्या दोष लगाहि॥

कविराय गिरधरजीने भी कहा है—

बिना बिचारे जो करै, सो पाछै पछिताय।
काम बिगारै आपनो, जगमें होत हँसाय॥
जगमें होत हँसाय, चित्तमें चैन न पावै।
खान, पान, सनमान, राग-रँग मन नहिं भावै॥
कह गिरधर कबिराय करमगति टरत न टारे।
खटकत है जियमाहिं कियौ जो बिना बिचारे॥

अतएव मनुष्यको उचित है कि ऊपर बतलाये हुए अनन्य शरणरूप परम धर्ममय कर्तव्यके पालनमें ही अपने सम्पूर्ण अमूल्य समयका व्यय करे। प्रत्येक कर्म करनेके पूर्व ही सावधानीके साथ यह सोच लेना चाहिये कि मैं जो कुछ कर रहा हूँ वह मेरेलिये सर्वथा लाभप्रद है या नहीं। यदि उसमें कहीं जरा भी त्रुटि मालूम पड़े तो उसका तुरन्त सुधार कर लेना चाहिये।

इसप्रकार सावधानीसे समयका व्यय करनेसे उसका स्वार्थ भी परमार्थके रूपमें परिणत होकर उसके सम्पूर्ण कार्योंकी सफलता हो जाती है अर्थात् वह कृतकार्य हो जाता है।

वर्णाश्रम और स्वभावकी विभिन्नताके कारण समयके विभागमें भेद होना सम्भव है। अतएव सब मनुष्योंके लिये समयका विभाग एक-सा नियत नहीं किया जा सकता। उपर्युक्त सिद्धान्तको लक्ष्यमें रखकर अपनी-अपनी बुद्धिसे ही अपने-अपने सुभीतेके अनुसार सबको यथायोग्य समयका विभाग कर लेना चाहिये। आपकी प्रसन्नताके लिये समय-विभागके विषयमें कुछ निवेदन भी किया जाता है।

भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥
(६। १७)

'दुःखोंका नाश करनेवाला योग तो यथायोग्य आहार-विहार करनेवालोंका, कर्मोंमें यथायोग्य चेष्टा करनेवालोंका और यथायोग्य शयन करनेवाले तथा जागनेवालोंका ही सिद्ध होता है।'

गीताके उपर्युक्त श्लोकका विवेचन करनेसे यही बात प्रकट होती है। साधारणतः प्रत्येक मनुष्यको दिन-रातके २४ घण्टोंके चार विभाग कर लेने चाहिये। उनमेंसे ६ घण्टे तो लोक-सेवा एवं स्वास्थ्य-रक्षाके लिये यथायोग्य आहार, विहार आदिमें, ६ घण्टे न्यायपूर्वक द्रव्योपार्जनरूपी कर्ममें, ६ घण्टे शयन करनेमें और ६ घण्टे केवल आत्मोद्धार करनेके लिये योगसाधनमें लगाने चाहिये। अर्थात् ६ घण्टे तो शौच, स्नान, भोजनादि स्वास्थ्य-रक्षाके लिये एवं कौटुम्बिक, सामाजिक तथा अपनी शक्ति हो तो राष्ट्रीय और जागतिक सेवा एवं सुधारके लिये लगाने चाहिये। कौटुम्बिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और जागतिक आदिके विशेष कार्य उपस्थित होनेपर दूसरे विभागमेंसे भी समय निकाला जा सकता है। ६ घण्टे फल और आसक्तिको छोड़कर कर्तव्यबुद्धिसे वर्णाश्रमके अनुसार यथासाध्य ईश्वर-प्रीत्यर्थ शरीर-निर्वाहके लिये न्यायपूर्वक द्रव्य कमानेमें बिताने चाहिये, ६ घण्टे समयपर स्वास्थ्य-रक्षाके लिये शयनमें व्यतीत करने चाहिये और शेष ६ घण्टे केवल आत्मोद्धारके लिये ही पवित्र और एकान्त स्थानमें अकेले बैठकर संसारके भोगोंसे मन, बुद्धि और इन्द्रियोंकी वृत्तियोंको हटाकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक वैराग्ययुक्त अनन्य मनसे परमेश्वरके नामका जप और स्वरूपका ध्यान एवं सत्सङ्ग और सत् शास्त्रोंका विचार करना चाहिये। सामान्यतः उपर्युक्त समयविभागका कार्यक्रम नीचे लिखे अनुसार भी नियत किया जा सकता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कार्यक्रम

प्रातःकाल सूर्योदयसे करीब डेढ़ या दो घण्टे पहले बिछौनेसे उठ जाना चाहिये। प्रातः चार बजे उठकर यथासाध्य ईश्वरस्मरण करके शौच-स्नानादि-से पाँच बजेतक निवृत्त हो जाना चाहिये। पाँचसे आठ बजेतकका समय एकान्त और पवित्र स्थानमें बैठकर आत्मोद्धारके लिये ही यथारुचि शास्त्रविधिके अनुसार उपर्युक्त प्रकारसे केवल भजन, ध्यान आदि ईश्वरोपासनामें ही बिताना चाहिये। ८ से १० बजेतकका समय कौटुम्बिक, सामाजिक आदि सेवा और सुधारके कार्य तथा भोजनादि स्वास्थ्योपयोगी कार्योंमें लगाना चाहिये। १० से ४ बजेतकका समय जीविकोपार्जनके लिये वर्णाश्रमके अनुसार न्यायानुकूल द्रव्योपार्जनमें लगाना चाहिये। ४ से ६ बजेतकका समय कौटुम्बिक, सामाजिक और अपनी रुचि और शक्ति हो तो राष्ट्रीय और जागतिक सेवा और उन्नतिके कार्यमें व्यतीत करना चाहिये। ६ से ९ बजेतक आत्मोद्धारके लिये यथारुचि शास्त्रविधिके अनुसार भजन, ध्यान, सत्सङ्ग, कथा-कीर्तन एवं शास्त्रके विचार और पठन-पाठन आदि ईश्वरोपासनामें ही बिताना चाहिये। ९ से १० बजेतक भोजन एवं स्वास्थ्यरक्षाके निमित्त समय बिताना चाहिये और रात्रिके १० से प्रातः ४ बजेतक शयन करना चाहिये।

उपर्युक्त समयविभागमें अपनी रुचि और सुविधाके अनुसार परिवर्त्तन भी किया जा सकता है; क्योंकि जाति, देश, काल, स्वभाव आदिकी विभिन्नताके कारण सबके लिये समयका विभाग एक-सा अनुकूल नहीं हो सकता।

अपने शरीर और कुटुम्बका निर्वाह जितने कम धनसे हो सके उतने ही कममें करना चाहिये। इसके लिये यथासाध्य बराबर चेष्टा रखनी चाहिये। इसके बाद बचे हुए द्रव्यका अंश अपने वर्णधर्मके अनुसार स्वार्थ त्यागकर शास्त्रानुकूल यथासाध्य देव, पितृ, मनुष्य और प्राणिमात्रके हितमें व्यय करना चाहिये। यह बात विशेष खयाल रखनेकी है।

परमेश्वरके नामका जप और स्वरूपका ध्यान हर समय ही करनेके लिये चेष्टा करनी चाहिये अर्थात् परमेश्वरके नामका जप और स्वरूपका ध्यान नित्य-निरन्तर करते हुए ही परमेश्वर-प्रीत्यर्थ शारीरिक, कौटुम्बिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, जागतिक एवं जीविकादि-के भी सम्पूर्ण कर्म फलासक्तिको त्यागकर ही करने चाहिये।

भगवान्‌ने गीतामें भी कहा है—

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥
(८। ७)

'इसलिये हे अर्जुन! तू सब समयमें मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। (इसप्रकार) मेरेमें अर्पण किये हुए मन और बुद्धिसे युक्त हुआ निःसन्देह मेरेको ही प्राप्त होगा।'

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव॥
(गीता १८। ५७)

'सब कर्मोंको मनसे मेरेमें अर्पण करके मेरे परायण हुआ समत्वबुद्धिरूप निष्काम कर्मयोगका अवलम्बन करके निरन्तर मेरेमें चित्तवाला हो।'

इसप्रकार करनेसे मनुष्योंके कायिक, वाचिक, मानसिक, बौद्धिक, सम्पूर्ण कर्मोंका सुधार होकर उनका समय, श्रम और पैसे सार्थक हो जाते हैं एवं परमात्माकी दयासे अनायास ही परम शान्ति एवं परमानन्दकी अर्थात् परम पदकी प्राप्ति हो जाती है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भक्ति-तत्त्व

(लेखक—परिव्राजक ब्रह्मचारी श्रीगोपाल चैतन्यदेवजी)

परमात्माका विभिन्न रूपोंमें विकास ही जीवात्मा है। अतएव प्रत्येक जीव भगवान्‌की अपनी ही अभिव्यक्ति है—इसलिये भगवद्भक्ति जीवका स्वाभाविक धर्म है। मायाके आवरण-से ढक जानेके कारण आत्मा अपने स्वरूप और स्वाभाविक धर्मको भूलकर विभ्रान्त होकर घूमता है। परन्तु करुणासिन्धु, अहैतुक प्रेमके अक्षय भण्डार भगवान्‌ने इसप्रकारके बद्ध जीवोंके स्वभावमें एक ऐसा विशेष अभाव भर दिया है कि जिसकी प्रेरणासे वे अपनी भूली हुई सम्पदाके अन्वेषणमें समय-समयपर लग जाते हैं और इसी अन्वेषणमें रत हो धीरे-धीरे भगवान्‌के भक्त बन जाते हैं। बद्ध जीवोंके स्वभावमें जो सार्वभौम अभाव है, उसका विचार करनेसे ही भगवद्भक्तिके स्वरूपको समझनेमें विशेष सुविधा हो सकती है।

जिसके द्वारा शब्द, स्पर्श आदि विषय-प्रपञ्चका ज्ञान होता है उसे इन्द्रिय कहते हैं। इन्द्रियाँ दो प्रकारकी होती हैं—बाह्य और आभ्यन्तर। पुनः बाह्येन्द्रियाँ दो भागोंमें विभाजित होती हैं—एक ज्ञानेन्द्रिय और दूसरी कर्मेन्द्रिय। प्रत्येक इन्द्रियके एक-एक अधिष्ठातृ देवता हैं, उन्हींकी कृपासे इन्द्रियाँ समर्थ होकर अपने-अपने विषयके अनुरूप कर्म करने-में अग्रसर होती हैं। इन सारी इन्द्रियोंमें तथा इनके अपने-अपने अधिष्ठातृ देवताओंमें एक विषयसे दूसरे विषयमें मिलानेवाली एक स्वाभाविक शक्ति है। यह परानुरक्ति-शक्ति किसीकी उत्पन्न की हुई नहीं है। सृष्टिके आरम्भमें ही विधाताने इस शक्तिकी सहायतासे इस विश्व—संसारको उत्पन्न किया था। केवल इन्द्रियाँ ही नहीं, परमाणुसे लेकर परम महत्तत्त्व-तक सभी इस शक्तिकी प्रेरणासे विवश होकर एक दूसरेके साथ मिलनेकी आकांक्षा किया करते हैं। विशालकाय पर्वतमालाएँ वायवीय अणु-परमाणु आदिमें मिलनेके लिये क्षुद्र रेणु बनकर धीरे-धीरे अति क्षुद्र बालुकाके रूपमें परिणत हो रही हैं और सूक्ष्म बालुकाके क्षुद्र अणु-परमाणु एक दूसरेसे धीरे-धीरे मिल-मिलकर विशालकाय पर्वतमालाका रूप धारण करते हैं। मृत्तिका वृक्षके रूपमें तथा वृक्ष मृत्तिकाके रूपमें रूपान्तरित होकर पारस्परिक सम्मिलन-का परिचय देते हैं। चराचर जगत्‌के समस्त पदार्थ इसप्रकार निरन्तर रूपान्तरमें परिणत हो रहे हैं, यह उपर्युक्त परानुरक्ति-शक्तिके परिणामके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

जगत्पिता जगदीश्वरने सृष्टिके समय सृष्ट पदार्थोंमें एक ऐसे अभावको कायम कर दिया, जो सार्वभौम तथा अतिशय सुस्पष्टरूपसे प्रतिभात होता है। इसी अभावकी पूर्तिके लिये स्थावर-जङ्गम—जो कुछ पदार्थ संसारमें हैं, सब एक दूसरेको प्रेमपूर्वक आलिङ्गन कर रहे हैं। जब उनकी एक वस्तुसे आशा पूरी नहीं होती तब वे उस आलिङ्गित वस्तु-को त्यागकर दूसरीसे मिलनेकी आकांक्षा करते हैं। समस्त प्राकृतिक वस्तुएँ इस अद्वितीय अभावके साथ ही सृष्ट हुई हैं। सुतरां जगत्‌के सभी पदार्थोंमें अभाव है और इस कारण किसीका भी अभाव जगत्-के किसी पदार्थके द्वारा दूर होना कदापि सम्भव नहीं है। अपने अभावको पूर्ण करनेके लिये दूसरेके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पास पहुँचनेसे जिस परिमाणमें अपना अभाव पूर्ण होता है उससे भी अधिक परिमाणमें दूसरेके अभाव-को पूर्ण करनेमें अपनेको अन्तःसार-शून्य करना पड़ता है। प्रेम या स्नेहजनित सुखकी पूर्तिके लिये पत्नी या पुत्रसे मिलनेमें जिस परिमाणमें आनन्द-लाभ होता है, उससे सहस्रों गुने अधिक यत्नसे पुत्र-कलत्रादिके पालन-पोषणमें अपनेको सारहीन बनाकर उद्यम करना पड़ता है। अतएव अभावमय प्राकृतिक पदार्थोंके द्वारा किसीके भी स्वाभाविक अभावका दूर होना सम्भव नहीं। अवश्य ही जिन्होंने अभावके साथ इस जगत्‌की सृष्टि की है, उन्हींके पास इसके प्रतिकारकी ओषधि भी है। अभावकी पूर्तिके लिये जो इन्द्रियोंकी स्वाभाविक वृत्ति है उसीको आसक्ति या भक्तिके नामसे पुकारते हैं। अभाव-विशिष्ट प्राकृतिक पदार्थोंकी ओर जो इन्द्रियों-की गति होती है उसे आसक्ति और सर्व प्रकारेण अभाव-शून्य पूर्णतम अखण्डानन्द-स्वरूप भगवान्‌की ओर जो गति होती है उसे भक्ति कहते हैं।

इन्द्रियाँ इस मायामय नश्वर जगत्‌की ओर दौड़-कर कभी चिरस्थायी तृप्ति लाभ नहीं कर सकतीं। वे सन्तोष पानेके लिये सामयिक सुखजनक किसी वस्तुमें आसक्त तो होती हैं; परन्तु जब उससे तृप्ति नहीं होती तो उनसे निवृत्त होकर किसी दूसरी सुख-जनक वस्तुकी प्राप्तिकी आकांक्षा करती हैं। जीव पूर्ण सुखका भिखारी है, क्योंकि वह वस्तुतः पूर्णानन्द-स्वरूप ही है। अभावमय इस जगत्‌की किसी भी वस्तुमें इसे उस पूर्ण सुखकी प्राप्ति नहीं होती। इसलिये अतृप्त हृदयसे वह पूर्ण सुखकी प्राप्तिके लिये, प्यासा मृग जैसे मायामरीचिकाके पीछे दौड़ता है, संसाररूपी मरुस्थलमें भटक रहा है। इस परिवर्तन-शील जगत्‌में नाना प्रकारकी विडम्बनाओंको भोगते हुए जब साधुसङ्ग तथा शास्त्रादिकी कृपासे उसकी समझमें आ जाता है कि अभाव-विशिष्ट मायामय जगत्-प्रपञ्चसे इन्द्रियोंकी क्षुधानिवृत्ति कभी नहीं हो सकती तब वह सब विषयोंसे निवृत्त हो अनन्त माधुर्यके उत्स-स्वरूप परम पुरुष भगवान्‌की ओर आकर्षित होकर स्थिरता प्राप्त करता है। सच्चिदानन्द-विग्रह श्रीभगवान्‌में इन्द्रियोंको तृप्त करनेवाली किसी वस्तुका अभाव नहीं है। जगत्‌में जहाँ कहीं जो कुछ भी चित्ताकर्षक भाव विद्यमान हैं वे सारे ही उन सर्व कारणोंके कारण भगवान्‌के अनन्त रूप-रस आदिके आभासमात्र हैं। अतः भगवत्कृपासे एक बार उस ओर इन्द्रियोंकी ऐकान्तिक गति होनेसे, उस अनन्त सुखका एक बार स्वाद पा जानेपर फिर वहाँ-से वापस लौटनेकी सम्भावना नहीं रहती। तब पतितपावनी, त्रिभुवनतारिणी भागीरथीके जलके स्रोतकी भाँति समस्त विघ्न-बाधाओंको पार करती हुई समस्त वृत्तियाँ सैकड़ों मार्गोंसे जा-जाकर भगवान्‌के माधुर्यसागरमें लीन होती हैं। सच्चिदानन्द, रसमय भगवान्‌के प्रति इन्द्रियोंकी ऐसी ऐकान्तिक आकांक्षाको ही भक्ति कहते हैं।

प्रत्येक जीवका जीवन-स्रोत प्रतिक्षण अनन्त सच्चिदानन्द-सागरकी ओर बह रहा है। कोई भी जीव एक क्षणके लिये भी अपनेको तृप्त समझकर स्थिर नहीं हो सकता। जीवन-प्रवाह जबतक उस प्रेमसागरमें विलीन नहीं हो जाता तबतक कोई भी जीव निश्चिन्त नहीं हो सकता। कोई-कोई व्यक्ति धन-ऐश्वर्यके गर्वमें या एकाध बाह्य अनुष्ठानके द्वारा उपार्जित धर्मके अहङ्काररूप स्रोतके आवर्त्तमें गिरकर दो दिनके लिये अपनेको तृप्त समझकर अभिमान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करते हैं; परन्तु इससे कितने दिन उनका काम चलेगा ? थोड़े ही दिनोंमें उन्हें अपनी भूल समझमें आ जायगी। स्वभाव स्वयं उन्हें अपने अभावको दिखलाकर अपना ताण्डव-नृत्य आरम्भ करेगा और तब वे आकुल होकर पुनः तृप्तिके लिये दौड़ने लगेंगे।

जीव पापमें कितने दिन पड़ा रह सकता है ? अतृप्ति उसे धीरे-धीरे भीषण-से-भीषण पापमें प्रवृत्त करायेगी और अन्तमें स्वभाव ही उसे अभावका ज्ञान कराकर एक दिन अनुतापकी नरकाग्निमें डाल देगा। वह दावाग्नि-दग्ध हरिणकी भाँति व्याकुल होकर पूर्णानन्दसागरकी ओर दौड़ेगा। धनवानोंमें बाह्य वस्तुओंका अभाव बहुत ही थोड़ा होता है, इस कारण वे उच्च जीव होकर भी पशुके समान अंधे रहते हैं। इसी कारण वे मल-मूत्र, हड्डी-मांसके पिंजड़ेमें—नाच-गानमें—जागतिक विषयोंके विहारमें मग्न होकर बहुत दिनोंतक भूलमें पड़े रहते हैं, जीवन-स्रोतके भँवरको लाँघकर वे आगे नहीं बढ़ सकते। परन्तु रोग, शोक या अन्य किसी भी कारणसे एक बार मोहरूपी चश्मेके दूर होते ही इन सबका त्याग कर अधिकाधिक वेगसे वे उस नित्यानन्दमय सागरकी ओर दौड़ पड़ते हैं।

अहा ! प्रेममय भगवान्‌की क्या ही कारुणिक व्यवस्था है ! सन्तानद्वारा स्नेहमयी मातापर सैकड़ों अत्याचार—उत्पीड़न होनेपर भी माँ जैसे सन्तानको सदा ही मंगल-मार्गमें चलनेके लिये प्रोत्साहित करती है, वैसे ही परम मंगलमय भगवान् मोह-मुग्ध जीवको अपने (भगवान्‌के) अहैतुक प्रेमको भूलकर असार वस्तुमें रत देखकर भी सदा मंगलकी ओर आकर्षित कर रहे हैं। बहुधा बद्ध जीव भगवान्‌की इस सदा मंगलमयी व्यवस्थाके रहस्यको न समझ सकनेके कारण उन्हें निष्ठुर, निर्दय आदि कुशब्दोंसे सम्बोधित करते हैं। भगवान्‌का जो स्वरूप जीवको अनन्त उन्नतिके पथमें—पूर्ण मंगल तथा पूर्ण आनन्दके मार्गमें—आकर्षित करता है, वही कृष्ण है। और जिसके द्वारा हम उस पूर्णानन्दमयकी ओर आकृष्ट होते हैं, वही भक्ति है।

सांसारिक जीवोंकी जैसे अपने स्त्री-पुत्रादिमें स्वभावतः प्रीति उत्पन्न होती है, उसी प्रकार जन्म-जन्मान्तरके संस्कारवश साधुसंग लाभ होते ही किसी-किसी भाग्यवान् जीवके हृदयमें स्वभावतः ही भक्तिका सञ्चार होता है। उस समय जैसे दरिद्र अपनी चिन्तामणिकी चोरी हो जानेपर उसकी चिन्तामें व्याकुल होता है, इसी प्रकार भक्त भगवान्‌की चिन्तामें दिन-रात डूबे रहते हैं। सर्वगुणसम्पन्न इकलौते पुत्रकी मृत्यु हो जानेपर अनाथा वृद्धा जननीको जैसा दारुण सन्ताप होता है, भक्तके हृदयमें भी भक्तिके उत्पन्न होते ही प्रभुवियोगमें ठीक उसी तरहकी दुःसह व्यथा होती है। सारांश यह कि परमस्नेहमयी माता पुत्रकी चिन्तामें, पतिव्रता सती पतिकी चिन्तामें तथा कृपण धनकी चिन्तामें जैसे सदा व्याकुल रहता है इसी प्रकार सब प्रकारकी चिन्ताओंको छोड़कर केवल भगवान्‌की प्राप्तिरूप चिन्तामें व्याकुल हो रहनेका नाम भक्ति है। यथा—

भक्तिरस्य भजनमेतदिहामुत्रोपाधिनैराश्येनामुष्मिन्मनःकल्पनमेतदेव च नैष्कर्म्यमिति।
(गोपालतापनीयोपनिषद्)

ऐहिक और आमुष्मिक (इहलोक और परलोकके) भोगोंकी लालसाका परित्याग कर श्रीभगवान्‌के श्रीचरणकमलोंमें चित्तको समर्पण करके सदाके लिये उसी भावमें निमग्न रहनेको भक्ति कहते हैं। भक्ति प्रधानतः निर्गुणा है, परन्तु जब प्रकृतिके तीनों गुणोंकी सहायता लेकर वह प्रकट होती है तब उसे सगुणा कहते हैं। यथा—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनि भाव्यते ।
स्वभावगुणमार्गेण पुंसां भावो विभिद्यते ॥
(श्रीमद्भा० ३ । २९ । ७)

पुरुषके गुणमय स्वभावभेदके कारण उनकी साध्य भक्तिके भी भेद हो जाते हैं। अर्थात् सत्त्वादि गुणके क्रमके अनुसार जिसका जैसा स्वभाव होता है उसकी भक्ति भी वैसी ही हो जाती है। यह गुणमयी भक्ति प्रधानतया तीन प्रकारकी होती है—तामसी, राजसी और सात्त्विकी। इसी त्रिगुणमयी भक्तिको पुनः प्रत्येक तीन-तीन अंशोंमें विभक्त कर शास्त्रोंमें नौ प्रकारसे उल्लेख किया है।

अभिसन्धाय यो हिंसां दम्भं मात्सर्यमेव वा ।
संरम्भी भिन्नदृग्भावं मयि कुर्यात् स तामसः ॥
(श्रीमद्भा० ३ । २९ । ८)

तामस स्वभाववाले व्यक्ति हिंसा, दम्भ तथा मात्सर्यके वश होकर दूसरेके अहित-साधनके लिये भगवान्‌की भक्ति करते हैं। इन भिन्नदर्शी व्यक्तियोंकी भक्तिको ही तामसी भक्ति कहकर पुकारते हैं।

विषयानभिसन्धाय यश ऐश्वर्यमेव वा ।
अर्चादावर्चयेद् यो मां पृथग्भावः स राजसः ॥
(श्रीमद्भा० ३ । २९ । ९)

रजोगुणप्रधान स्वभाववाले व्यक्ति यश या ऐश्वर्यलाभकी इच्छासे मूर्ति आदिमें भगवान्‌की अर्चा करते हैं। ये लोग भी भक्तिके अतिरिक्त दूसरी वस्तुकी इच्छा करते हैं। इसप्रकारकी भक्तिको ही राजसी भक्ति कहते हैं।

कर्मनिर्हारमुद्दिश्य परस्मिन् वा तदर्पणम् ।
यजेद यष्टव्यमिति वा पृथग्भावः स सात्त्विकः ॥
(श्रीमद्भा० ३ । २९ । १०)

सत्त्वगुणप्रधान स्वभाववाले सज्जन अपने-अपने कर्मक्षयकी इच्छासे अपने सारे कर्मोंको भगवान्‌के श्रीचरणसरोजोंमें समर्पणकर अथवा अपने-अपने वर्णाश्रम-धर्मके अनुसार भगवदर्चाको कर्तव्य समझकर श्रवण-कीर्तनादि भक्तिका अनुष्ठान करते हैं। ऐसे लोग भी भक्तिके अतिरिक्त मोक्षकी कामना करते हैं, इसप्रकारकी भक्तिको ही सात्त्विक भक्तिके नामसे पुकारते हैं।

अपनी-अपनी इच्छाकी पूर्तिके लिये जो सकाम भक्ति की जाती है वही सगुणा भक्ति है। फिर अविद्यावृत्तिशून्य चित्तसे, अपहृत महामणिकी पुनः प्राप्तिकी भाँति उत्कट आकांक्षाके साथ भगवान्‌की प्राप्तिके लिये जो ऐकान्तिक कामना होती है, वही निर्गुणा भक्ति है।

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये ।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गंगाम्भसोऽम्बुधौ ॥
लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥
सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥
स एव भक्तियोगाख्य आत्यन्तिक उदाहृतः ।
(श्रीमद्भा० ३ । २९ । ११—१४)

पतितपावनी, त्रिभुवनतारिणी गंगाका जल-प्रवाह जैसे सारी विघ्न-बाधाओंका अतिक्रमण करता हुआ निरन्तर सैकड़ों धाराओंमें विभक्त होकर महासमुद्रमें निमग्न होनेके लिये स्वाभाविक ही दौड़ता है, उसी प्रकार जो चित्त-वृत्ति ज्ञान, कर्म आदि सारे विषयोंकी रुकावट और सारे क्रिया-कर्मके फलकी इच्छाको परित्यागकर स्वयमेव स्वाभाविक ही सर्वभूतान्तर्यामी भगवान्‌के श्रीश्रीकमलचरणकी ओर निरन्तर आकुल होकर दौड़ती रहती है, उसीको निर्गुणा भक्ति कहते हैं। इसप्रकारकी भक्तिमें किसी प्रकारका कैतव या

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वाञ्छा नहीं होती—यह अत्यन्त निर्मल तथा सब प्रकारकी भक्तिमें श्रेष्ठ है। जन्म-जन्मान्तरके भक्ति-संस्कार-विशिष्ट किसी-किसी भाग्यवान् सज्जनके हृदयमें भगवान्‌का गुणगान सुनते ही इसप्रकारकी भक्तिका उदय हो जाता है। ऐसे शुद्ध भक्तके हृदयमें किसी भी प्रकारकी कामना नहीं रहती। यहाँतक कि भगवान्‌का सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य तथा सायुज्य-मुक्ति देनेपर भी वह उनकी सेवाके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं चाहता। इसप्रकारकी भक्तिको ही आत्यन्तिक भक्ति कहा जाता है। इससे बढ़कर परम पुरुषार्थ दूसरा और कुछ भी नहीं है।

मन सारी बाह्येन्द्रियोंका अधिपति है। मन जब जिस ओर दौड़ता है, इन्द्रियाँ भी अपने-अपने विषयोंके ग्रहण करनेके लिये उधर ही दौड़ पड़ती हैं। अतएव अन्तःकरणकी सब प्रकारकी उपाधियोंका परित्याग कर भगवान्‌की ओर दौड़नेसे सब इन्द्रियाँ निष्क्रिय भाव ग्रहण कर लें, यह सम्भव नहीं; प्रत्युत वे भी मनके अधीन हो भगवान्‌की दौड़कर अपने-अपने भावके अनुसार सेवा करती हैं। अतएव सब प्रकारकी उपाधियोंको तिलाञ्जलि देकर सारी इन्द्रियोंसे सदाके लिये भगवान्‌की सेवामें लग जाना ही निर्गुण भक्ति है।

अबतक भक्तिके सम्बन्धमें जो कुछ आलोचना की गयी है, उसे साधारणतः दो श्रेणियोंमें विभक्त किया जा सकता है—एक गुणमयी या गौणा अथवा अपरा, दूसरी निर्गुणा या मुख्या अथवा परा। पहले जो गुणमयी सात्त्विकी भक्ति है, वह सत्त्वगुणसे विच्युत हो भक्तको निर्विशेष ब्रह्म-सुखका अनुभव कराती है तथा दूसरी निर्गुणा भक्ति परिपक्व दशामें प्रेमा भक्तिके नामसे अभिहित होकर भक्तको सच्चिदानन्दमय भगवान्‌के गुण-लीला-माधुर्य-रसका स्वाद कराती हुई कृतकृत्य करती है।

समस्त गुणमयी भक्तियोंमें प्रारम्भिक भक्तिसे क्रमानुसार उत्तरोत्तर भक्ति श्रेष्ठ होती जाती है। इनमेंसे सात्त्विकी भक्तिके श्रेष्ठ होनेपर भी शुद्ध भक्त उसके प्रति आदर प्रकट नहीं करते। क्योंकि इसमें भगवान् एवं भगवद्भक्तिके अतिरिक्त दूसरे फलकी इच्छा भी रहती है। सात्त्विकी भक्ति किसी-किसी साधकके हृदयमें ज्ञान उत्पन्न कर देती है।

'सत्त्वात् संजायते ज्ञानम्' अर्थात् सत्त्वसे ज्ञान उत्पन्न होता है। सुतरां भगवान्‌की इस उक्तिसे प्रमाणित होता है कि सात्त्विकी भक्तिसे ज्ञानका उदय होना अस्वाभाविक नहीं है। ज्ञानका उदय होनेपर स्वयमेव कर्म-वैराग्यका उदय हो जाता है, तब भक्त कर्मका परित्याग कर ज्ञानात्मिका भक्तिको प्राप्त करता है। इसके बाद जब भक्तिकी परिपक्वावस्थामें ज्ञानका अनादर होता है, तब वह स्वयमेव अन्तर्हित हो जाता है और भक्त निर्गुण शान्तरतिकी प्राप्ति कर शुद्ध भक्त बन जाता है। ज्ञानकी प्रधानताके कारण भक्त सायुज्यमुक्ति लाभ करते हैं। जो सात्त्विकी भक्तिके अधिकारी भक्त अपने समस्त कर्मोंके फलको भगवान्‌के समर्पण कर भक्ति करते हैं वे सुख-ऐश्वर्यमय सालोक्य-मुक्तिको प्राप्त करते हैं। परन्तु जो भक्त केवल कर्म-फल ही नहीं, बल्कि समस्त अनुष्ठित कर्ममात्रको भगवान्‌को समर्पणकर भक्ति करते हैं वे शान्तरति लाभ करते हैं। राजसी और तामसी भक्तिद्वारा अपने उद्देश्यानुसार काम्य फलकी प्राप्ति होनेपर भक्ति विद्यमान नहीं रहती। अतः काम्य फल ही उसका चरम फल समझना चाहिये। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि काम्यफलके प्राप्त हो जानेपर भी भक्तके हृदयमें भक्ति विद्यमान रहती है। ऐसे भक्त भगवान्‌की कृपासे अन्तमें निर्गुण शान्तरति लाभ करते हैं।

निर्गुणा भक्तिके भी दो प्रधान भेद हैं—एक प्रधानीभूता या ऐश्वर्यज्ञानमिश्रा, दूसरी केवला या

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रागात्मिका। कर्मादिमिश्रा सात्त्विकी भक्ति ही परिपक्व दशामें सत्त्वगुणका परित्याग करके प्रधानीभूता नामक निर्गुणा भक्तिमें परिणत हो जाती है। अतः इसकी अपरिपक्व-दशा गुणमयी और परिपक्व-दशा निर्गुणा है। परन्तु केवला भक्ति ऐसी नहीं है। वह तो सदा ही निर्गुणा रहती है; उसकी अपरिपक्व-दशा रागानुगा और परिपक्व-दशा रागात्मिका है। शान्त, दास्य आदि रसके भेदसे प्रधानीभूता भक्ति पाँच श्रेणियोंमें तथा केवला भक्ति चार श्रेणियोंमें विभक्त हो गयी है। महिम-ज्ञानसे प्रीति संकुचित होती है, इसीसे पहली भक्तिसे दूसरी भक्ति श्रेष्ठ तथा अधिक विशुद्ध है। प्रेम-सेवाके द्वारा पूर्णतम आनन्दका आस्वादन करानेके कारण दूसरी चतुर्विधा भक्तिमें शृङ्गार-रसात्मिका भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है। ऐसी भक्ति व्रजवासिनी श्रीराधिका आदि गोपियोंमें नित्य विराजमान रहती थी।

सभी प्रकारकी भक्तिके परिपक्व होनेके उपाय एक ही प्रकारके नहीं हैं। भिन्न-भिन्न प्रकारकी भक्ति विभिन्न उपायोंसे परिपक्वावस्थाको प्राप्त होती है। भक्तिके गुरुत्व अथवा लघुत्वके अनुसार उसकी परिपक्वावस्थामें भी तारतम्य होता है। इसके अतिरिक्त केवल सब प्रकारकी निर्गुणा भक्ति ही परिपक्व होकर रति और प्रेमके रूपमें परिणत होती है। साधन-भक्तिसे जब रतिका उदय होता है तब भक्ति 'रति-लक्षणा' हो जाती है; पीछे वही रति परिपक्वावस्थामें प्रेमके रूपमें प्रकट होकर 'प्रेम-लक्षणा' हो जाती है। इस 'प्रेम-लक्षणा' भक्तिको ही 'प्रेमा-भक्ति' कहते हैं।

इसीलिये गुणमयी भक्तिसे लेकर निर्गुणा भक्तिकी परिपक्वावस्था तक अधम, मध्यम तथा उत्तम-भेदसे भक्तिको साधनभक्ति, भावभक्ति तथा प्रेमाभक्ति—इन तीन श्रेणियोंमें विभक्त किया गया है।

कृतज्ञता

मुझको नाथ ! खूब अपनाया।
तुझमें मैंने सब कुछ पाया॥
यदपि जन्मसे अति कुलीन था।
यह जीवन स्पन्दनविहीन था।
उजड़ चुका था हृदय-सदन भी,
सब प्रकारसे हुआ दीन था॥
बिना ध्यानमें लाये यह सब,
मेरे गृह तू दौड़ा आया।
मुझको नाथ ! खूब अपनाया॥
किस प्रकार आभार जताऊँ?
मनोभाव तुझपर प्रकटाऊँ?
जिह्वा शक्ति-हीन है मेरी,
गाऊँ तो कैसे मैं गाऊँ?
अश्रुकणोंसे नयन भरे हैं,
प्रतिकणमें है तेरी छाया।
मुझको नाथ ! खूब अपनाया॥

पद्मकान्त मालवीय

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीगीता-जयन्ती

आगामी मार्गशीर्ष शुक्ला ११ को श्रीगीता-जयन्तीका उत्सव है। गीताकी प्रशंसामें कुछ भी कहना उसका एक प्रकारसे अपमान करना है। जो साक्षात् श्रीभगवान्‌के श्रीमुखकमलका उद्गार है, जिसके एक भी वचनका आश्रय लेकर चलनेवाला मनुष्य अनायास ही भवसागरसे तर जाता है, उस गीता माताकी जयन्ती मनाना मनुष्यमात्रका कर्तव्य है। जयन्ती-उत्सवमें और सब बातें सुविधाके अनुसार होनी ही चाहियें, परन्तु एक बात विशेषरूपसे होनी चाहिये, वह यह कि गीता-भक्तोंको गीताके उपदेशमय किसी भी श्लोकको आधार मानकर उसके अनुसार जीवन बनानेका निश्चय करना चाहिये। हमारी समझसे निम्नलिखित तीन श्लोक इसके लिये बहुत ही उपयोगी हैं। श्लोक ये हैं—

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥ (१०।९)
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥ (१०।१०)
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥ (१८।६५)

श्रीभगवान् कहते हैं—'मुझमें चित्त लगानेवाले, मुझमें प्राण अर्पण करनेवाले भक्त सदा-सर्वदा परस्पर मेरे प्रभावको समझाते हुए, मेरे ही गुण कथन करते हुए सन्तुष्ट होते हैं और मुझमें ही रमण करते हैं, उन निरन्तर मुझमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजन करनेवाले भक्तोंको मैं वह बुद्धियोग देता हूँ जिससे वे मुझको प्राप्त होते हैं। (इसलिये) तू मुझमें ही मन लगा, मेरा ही भक्त हो, मेरी ही पूजा करनेवाला बन और मुझको ही नमस्कार कर। यों करनेसे तू मुझको ही प्राप्त होगा, यह मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ, क्योंकि तू मेरा प्यारा है।' श्रीभगवान्‌के इन वचनोंपर ध्यान देकर हमें ऐसा ही करना चाहिये।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक भाई-बहिनसे सविनय प्रार्थना है कि सभी लोग जो गीता-शास्त्रको मानते हों, चाहे वे किसी भी देश, वर्ण, जाति या श्रेणीके हों उस दिन यथासाध्य निम्नलिखित कार्य करने-करानेका प्रयत्न अवश्य करें—

(१) गीता-ग्रन्थकी पूजा।
(२) गीतावक्ता भगवान् श्रीकृष्ण और रचयिता श्रीव्यासदेवका पूजन।
(३) यथासाध्य गीताका पारायण।
(४) पाठशालाओं और विद्यालयोंमें गीता-पाठ, गीतापर व्याख्यान और गीता-परीक्षामें उत्तीर्ण छात्रोंको पुरस्कार-वितरण।
(५) गीता-तत्त्वको समझने और गीताका प्रचार करनेके लिये स्थान-स्थानमें सभाएँ और गीता-प्रवचन तथा व्याख्यान
(६) गीताजीकी सवारीके जुलूस निकाले जायँ।
(७) लेखक और कवि लेखों और कविताओं-द्वारा गीता-धर्म-प्रचारमें सहायता करें।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भगवत्-प्राप्त भक्तोंके लक्षण

१३

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥

१३

द्वेष-रहित सब जीवोंका हो मित्र, क्षमा-युत, ममता त्याग।
बिना अहंकृत और दयामय, सुख-दुखमें जो सम बड़भाग॥

१४

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥

१४

जिसके मुझमें सदा बुद्धि-मन तुष्ट हुए रहते हैं सक्त।
दृढ निश्चयवाला, स्थिर मनका मुझको प्यारा ऐसा भक्त॥

१५

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥

१५

जिससे जनको क्लेश न होता और न जनसे जिसको क्लेश।
हर्ष, विषाद, क्रोध, भयसे जो मुक्त, वही प्रिय मुझे विशेष॥

१६

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥

१६

जो पवित्र, निरपेक्ष, दक्ष हो, उदासीन हो, विना विकार।
सर्वारम्भ तजे हों जिसने, मुझे भक्त प्रिय वह स्वीकार॥

१७

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः॥

१७

हर्ष-द्वेष न होते जिसके नहीं शोक या इच्छावान।
कर्म-शुभाशुभ फल त्यागे हों, वही मुझे जन प्रिय तू जान॥

१८

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥

१८

जिसे बराबर शत्रु-मित्र हैं, मान और अपमान समान।
शीत, उष्ण, सुख, दुख सम जिसको जो हो संग-विहीन सुजान

१९

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥

१९

निन्दा-स्तुतिमें सम, मौनी हो, मिले उसीमें हो सन्तुष्ट।
जो अनिकेत, बुद्धि स्थिर जिसकी, मुझे भक्त नर वह प्रिय पुष्ट

२०

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः॥

२०

अमृत धर्म-युत यह जो मैंने कहा, इसे जो हो मन्निष्ठ।
करते हैं आचरण, मुझे वे प्रिय होते हैं भक्त वरिष्ठ॥*

---

* श्रीमद्भगवद्गीताका पूरा पद्यानुवाद श्रीकृष्णविज्ञान नामसे गीताप्रेससे प्रकाशित हुआ है। ये पद्य उसीसे लिये गये हैं। १२ वें अध्यायके १३ से २० तक ८ श्लोक हैं। बड़ी सुन्दर कविता है। हिन्दी-पद्योंमें गीता याद करनेवालोंके लिये यह ग्रन्थ बहुत कामका है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परमहंस-विवेकमाला

(लेखक—स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी)

(गताङ्कसे आगे)

[मणि १०]

अजातशत्रु—हे बालाकि ! सुख-दुःखरूप भोगकी प्राप्तिके कालमें भोक्तारूप विशिष्ट आत्मामें 'मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हूँ' इसप्रकारके अनुभवसे जो भोक्तापन सिद्ध होता है, वह भोक्तापन शुद्ध असङ्ग आत्मामें वस्तुतः सम्भव नहीं है; किन्तु सर्वकारणभावसे रहित स्वप्रकाश आनन्दस्वरूप आत्मामें भोक्तापनकी प्रतीति अध्याससे होती है। इसी बातको दृष्टान्तसे समझाता हूँ। रज्जु तीनों कालमें सर्पभावसे रहित है, उस सर्पभावसे रहित रज्जुमें जैसे अध्याससे सर्पकी प्रतीति होती है इसी प्रकार सुख-दुःखरूप भोगसे रहित अद्वितीय शुद्ध आत्मामें अध्याससे भोक्तापनकी प्रतीति होती है और सजातीय-विजातीय-स्वगतभेद-शून्य शुद्ध आत्मामें अज्ञानरूप मायाके बिना भोक्तापनका अध्यास सम्भव नहीं है। इसीलिये वेदके तात्पर्यको जाननेवाले महात्मा पुरुषोंने अद्वितीय आत्मामें मायाकी कल्पना की है। भाव यह है कि जो पदार्थ जिस पदार्थ बिना सिद्ध नहीं हो सकता वह पदार्थ उस पदार्थकी कल्पना कराता है। जैसे दिनमें भोजन नहीं करनेवाले पुरुषमें रात्रिके भोजन बिना स्थूलता सम्भव नहीं है इसलिये पुरुषकी स्थूलता रात्रिके भोजनकी कल्पना कराती है। इसी प्रकार अकर्ता, अभोक्तारूप शुद्ध आत्मामें 'मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हूँ' इसप्रकारके भोक्तापनका जो अध्यास है, वह अध्यास माया बिना सम्भव नहीं है, इसलिये यह अध्यास शुद्ध आत्मामें मायाकी कल्पना कराता है। इसप्रकार अर्थापत्तिप्रमाणसे माया सिद्ध होती है। इस मायाका स्वभाव दो प्रकारका है—एक आवरणशक्तिरूप और दूसरा विक्षेपशक्तिरूप। इन दोनोंमेंसे जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—इन तीनों अवस्थाओंमें मायाका आवरण-शक्तिरूप स्वभाव होता है। जबतक मनुष्यको आनन्द-स्वरूप आत्माका साक्षात्कार नहीं होता, तबतक माया-की आवरणशक्ति निवृत्त नहीं होती। अद्वितीय आनन्द-स्वरूप आत्माके ज्ञानसे ही मायाकी आवरणशक्तिका नाश होता है। मायाका विक्षेपरूप स्वभाव दो प्रकार-का है, एक जाग्रत्रूप और दूसरा स्वप्नरूप। जिस अवस्थामें नेत्रादि इन्द्रियोंसे घट-पटादि बाह्य स्थूल पदार्थोंका ज्ञान होता है, उस अवस्थाको 'जाग्रत्' कहते हैं और जिस अवस्थामें पूर्वसंस्कारोंके कारण केवल मनसे ही ज्ञान उत्पन्न होता है, उस अवस्थाको 'स्वप्न' कहते हैं। ये जाग्रत् और स्वप्न दोनों अवस्थाएँ विक्षेपरूप हैं। इसलिये हे बालाकि ! जिसप्रकार जाग्रत्में सुख तथा दुःखकी प्राप्तिसे 'मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हूँ' इसप्रकार भोगकी अतिशयता पुरुषमें उत्पन्न होती है इसी प्रकार स्वप्नमें भी सुख-दुखकी प्राप्तिसे भी 'मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हूँ' इसप्रकारकी भोगरूप अतिशयता पुरुषमें उत्पन्न होती है। जो स्वप्नमें भोगरूप अतिशयताका कारण है, वही जाग्रत्में भोगरूप अतिशयताका कारण है। स्वप्नमें भोगरूप अतिशयताका कारण केवल मन ही है, मनके सिवा कोई दूसरा भोगका आधार स्वप्नमें नहीं है। नेत्रादि इन्द्रियोंका स्वप्नमें लय हो जाता है, इसलिये इन्द्रियोंमें भोगका आधारपन सम्भव नहीं है। यद्यपि प्राण और शुद्ध आत्मा स्वप्नमें भी हैं तो भी उनमें भोगका आधारपन सम्भव नहीं है। प्राण जड़ है, इसलिये वह भोगका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आधार नहीं हो सकता और शुद्ध आत्मा असङ्ग है, इसलिये वह भी भोगका आधार नहीं हो सकता। इसप्रकार स्वप्नमें इन्द्रियोंमें भोगका आधारपन सम्भव नहीं है इसलिये स्वप्नमें मन ही सुख-दुःखरूपसे होनेवाले भोगका आश्रय है। जब स्वप्नमें भोगका आधाररूप मन अङ्गीकार किया तो जाग्रत्में भी उसी मनको सुख-दुःखके भोगका आश्रयरूप मानना चाहिये। यदि स्वप्नके भोगका आधार मन माना जाय और जाग्रत्के भोगका आधार मनके सिवा कोई दूसरा माना जाय तो स्वप्नके बाद जाग्रत्में मनुष्यको इस-प्रकारका प्रत्यभिज्ञारूप ज्ञान न होना चाहिये कि मैं स्वप्नमें राजाके सुखका अनुभव करता था, वही मैं अब जाग्रत्में एकान्तके सुखका अनुभव करता हूँ; परन्तु ऐसा ज्ञान सबको होता है। यह प्रत्यभिज्ञारूप ज्ञान स्वप्न-भोक्ता और जाग्रत्-भोक्ताके अभेदको विषय करता है। यदि भेद हो तो प्रत्यभिज्ञारूप ज्ञान असङ्गत हो जाय। इसलिये स्वप्नका और जाग्रत्का एक ही मन भोक्ता मानना चाहिये।

बालाकि-हे राजन्! जैसे आकाशादि पञ्च सूक्ष्म भूतोंसे प्राणकी उत्पत्ति होती है इसलिये प्राण जड़ है, इसी प्रकार आकाशादि पञ्च सूक्ष्म भूतोंसे मनकी उत्पत्ति होती है इसलिये मन भी जड़ है। जैसे जड़ प्राणमें भोगके आधारपनका पूर्वमें आपने खण्डन किया, इसी प्रकार जड़ मनमें भी भोगका आधारपन सम्भव नहीं है।

अजातशत्रु-हे बालाकि! यद्यपि प्राणके समान मन भी अचेतनरूप ही है, तो भी प्राणकी अपेक्षा मनमें विशेषता है, क्योंकि आकाशादि पञ्च सूक्ष्मभूत-मिश्रित सत्त्वगुणसे मनकी उत्पत्ति होती है, इसलिये मन प्रकाशरूप है। और आकाशादि पञ्च सूक्ष्मभूत-मिश्रित रजोगुणसे प्राणकी उत्पत्ति होती है, इसलिये प्राण प्रकाशरूप नहीं है। दृष्टान्तरूपसे जैसे दीप तथा घट इन दोनोंमें जड़तारूप धर्म समान है तो भी दीपसे घटका प्रकाश होता है और घटसे दीपका प्रकाश नहीं होता।

बालाकि-हे राजन्! यदि जड़ मनको आप प्रकाशरूप मानेंगे तो दीपादिके समान मनमें बाह्यपन सिद्ध हो जायगा।

अजातशत्रु-हे बालाकि! मनका जो वृत्तिरूप प्रकाश है, वह स्वतन्त्रतासे किसी भी पदार्थका प्रकाश नहीं करता; किन्तु चेतनरूप आत्माके आभासकी सहायतासे पदार्थोंको प्रकाशित करता है! इस चेतन-रूप आत्माके आभासको ग्रहण करके मनका वृत्तिरूप प्रकाश अपनी जड़ताको त्याग देता है। अन्तःकरण-मन अनेक प्रकारके ज्ञानवाला होता है, ऐसा जो शास्त्रमें कहा है, वह भी चेतनकी सहायता लेकर अन्तःकरण अनेक प्रकारके ज्ञानवाला हो सकता है। भाव यह है कि यदि स्वभावसे ही अन्तःकरण चेतन-रूप हो, तो सर्वदा ही एक प्रकारका ज्ञान अन्तः-करणको होना चाहिये; परन्तु सर्वदा एक प्रकारका ज्ञान होता नहीं। यदि अन्तःकरणको चेतनकी अपेक्षा मानी जाय तो इसप्रकारके दोषकी प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि जिस समय इच्छादिसे विलक्षण चेतनके प्रतिबिम्बको ग्रहण करनेयोग्य अन्तःकरणकी वृत्ति होती है, उसी समय ज्ञान होता है, अन्य समय नहीं होता। इसप्रकार अनेक ज्ञानोंका अन्तःकरणमें होना सम्भव है।

इस अन्तःकरणमें अविद्याजन्य तादात्म्य-अध्यास-रूप सम्बन्धसे स्थित परमात्मा विज्ञानमय संज्ञाको प्राप्त होता है। यह आनन्दस्वरूप आत्मा अन्तःकरणमें स्थित होकर सर्वदेहादिको प्रकाशित करता है, इसलिये आनन्दस्वरूप आत्मा पुरुष कहलाता है। ऐसे आनन्द-स्वरूप आत्मामें जैसे अन्तःकरणका परिणामरूप दुःख

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वस्तुतः नहीं है इसी प्रकार अन्तःकरणका परिणाम-रूप सुख भी वस्तुतः आत्मामें नहीं है—ऐसा कहनेसे यह सिद्ध होता है कि उत्पन्न होनेवाला जो सुख है, वह आत्मामें नहीं है; क्योंकि वह सुख जड़, परिच्छिन्न तथा दृश्य है। जो वस्तु जड़, परिच्छिन्न और दृश्य होती है, वह वस्तुतः आत्मामें नहीं रहती, जैसे कि जड़, परिच्छिन्न तथा दृश्यरूप दुःख वस्तुतः आत्मामें नहीं रहता। और सुख-दुःखके समान सुख-दुःखकी प्राप्तिके साधन भी जड़, परिच्छिन्न तथा दृश्यरूप हैं, इसलिये सुख-दुःखके साधन भी वस्तुतः आत्मामें नहीं रहते। इसलिये कार्य-कारण-भावसे रहित स्वयंप्रकाश आत्मा ही विज्ञानमय भोक्ताका वास्तविक स्वरूप है।

हे डोरूशङ्कर ! बालाकिको इसप्रकारका बोध करानेके लिये राजा अपने मनमें इसप्रकार विचार करने लगा—

अजातशत्रु—(मनमें) यद्यपि बालाकिने मेरे उपदेशसे प्राणसे भिन्न विज्ञानमय भोक्ता आत्माको जाना है तो भी विज्ञानमय आत्मा मिथ्या है, इसलिये विज्ञानमय भोक्ता आत्माके ज्ञानसे बालाकिको मोक्षकी प्राप्ति नहीं होगी, क्योंकि शुद्ध आत्माके ज्ञानसे ही मोक्ष होता है। इसलिये अपनी प्रतिज्ञा सत्य करनेके लिये मुझे विज्ञानमय आत्माके वास्तविक स्वरूपका उपदेश करना चाहिये।

इसप्रकार मनमें विचार करके राजा भोक्तारूप विज्ञानमय आत्माके सम्बन्धमें नीचे लिखे हुए प्रश्न करने लगा—

अजातशत्रु—हे बालाकि ! इस सोते हुए पुरुषके उत्थानरूप व्यापारसे तूने प्राणसे भिन्न विज्ञानमयको भोक्तारूप जाना है, किन्तु यह विज्ञानमय भोक्ता किस देशमें शयन कर रहा था ? विज्ञानमय भोक्ताके शयनका कौन-सा आधार था ? और यह विज्ञानमय भोक्ता किस देशमेंसे उठकर जाग्रत्-अवस्थामें आया है ? मेरे कहने-का अभिप्राय लौकिक व्यवहारके अनुसार यह है कि शयन करनेवाला पुरुष कभी तो अपनेमें शयन करता है, जैसे कि खड़ा हुआ पुरुष अपने आश्रित ही सो जाता है और कभी अपनेसे भिन्न शय्या आदिपर शयन करता है। शय्या भी कभी घरमें होती है, कभी घरके बाहर होती है, इसलिये शयनकर्ता पुरुषके आधारका नियम नहीं है।

बालाकि—हे राजन् ! शयनकर्ता पुरुषके आधारका जो प्रथम प्रश्न है, वह यद्यपि बन सकता है तो भी शयनका आधार क्या है—यह दूसरा प्रश्न नहीं बनता, क्योंकि शयनकर्ता पुरुषका जो आधार होता है, वही शयनका आधार होता है।

अजातशत्रु—हे बालाकि ! शयनकर्ता पुरुषका जो आधार होता है, वही उसके शयनका आधार हो, ऐसा लोकमें नियम नहीं है। कभी तो शयनकर्ता पुरुषका और शयनका एक ही आधार होता है, जैसे कि एक ही खाट आदि शयनकर्ता पुरुषका और शयनका आधाररूप है। और कभी शयनकर्ता पुरुषका और उसके शयनका भिन्न-भिन्न आधार होता है जैसे कि शयनकर्ता पुरुषका आधार खाट है और उस खाटपर बिछा हुआ गद्दा उसके शयनका आधार है। इसप्रकार शयनकर्ता पुरुषके आधारको और शयनके आधारको लोकमें भिन्न-भिन्न मानते हैं। इसलिये प्रथम प्रश्न और दूसरा प्रश्न एकरूप नहीं है, किन्तु दोनों प्रश्न भिन्न हो सकते हैं।

बालाकि—हे राजन् ! चाहे दूसरा प्रश्न प्रथम प्रश्नसे भिन्न न हो, किन्तु तीसरा प्रश्न दूसरे प्रश्नसे भिन्न हो सकता है। क्योंकि शयनका जो आधार होता है, वही शयनकर्ता पुरुषके आगमनकी अवधि होती है। जब शयनके आधारका निश्चय हो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जायगा तो शयनकर्ता पुरुषके आगमनकी अवधिका निश्चय हो जायगा, इसलिये तीसरा प्रश्न व्यर्थ है।

अजातशत्रु—हे बालाकि! जो शयनका आधार हो, वही शयनकर्ता पुरुषके आगमनकी अवधि हो—ऐसा नियम नहीं है, क्योंकि लोकमें शयनके आधारसे भिन्न आगमनकी अवधि प्रायः देखनेमें आती है। जैसे कि खाटपर सोया हुआ पुरुष खाटपरसे उठकर बाहर आता है, इसप्रकार लोकमें कोई नहीं कहता; किन्तु खाटपरसे उठकर घरमें होकर घरसे बाहर आता है, इसप्रकार लोग कहते हैं। इसप्रकारके लोक-व्यवहारसे शयनके आधाररूप खाटसे आगमनकी अवधिरूप गृह भिन्न प्रतीत होता है। इसलिये दूसरे प्रश्नका समावेश तीसरे प्रश्नमें नहीं होता; किन्तु दूसरे प्रश्नसे भिन्न तीसरा प्रश्न हो सकता है।

देवी—इसप्रकार हे प्रियदर्शन! अजातशत्रु राजाने शयनकर्ता विज्ञानमय भोक्ताके स्वरूपका, स्वप्न तथा सुषुप्ति दो प्रकारके शयनका, दो प्रकारके शयनके आधारका और शयनकर्ता विज्ञानमय भोक्ताके आगमनकी अवधिका बोध करानेके लिये बालाकिसे तीन प्रश्न पूछे। गुह्य अर्थको न समझनेवाले राजाके तीन प्रश्नोंको सुनकर बालाकि उन प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिये बहुत देरतक अपने मनमें विचार करता रहा; परन्तु राजाके प्रश्नोंका उत्तर कुछ भी उसकी समझमें न आया। जब बालाकि उत्तर न दे सका तो राजा अजातशत्रु अपनी प्रतिज्ञा सत्य करनेके लिये और बालाकिके संशयकी निवृत्तिके लिये इसप्रकार समझाने लगा—

विज्ञानमय भोक्ताका स्वरूप

अजातशत्रु—हे बालाकि! स्वप्न-अवस्थामें विज्ञानमय भोक्ताके स्वरूपका स्पष्ट बोध करानेके लिये मैं प्रथम स्वप्न और सुषुप्तिरूप दो प्रकारके स्वप्नका तुझसे निरूपण करता हूँ। हे बालाकि! इस भोक्ता पुरुषका शयन दो प्रकारका होता है—एक स्वप्नरूप शयन होता है और दूसरा सुषुप्तिरूप शयन होता है। उनमेंसे प्रथम स्वप्नरूप शयनको कहता हूँ, उसको सुन—जाग्रत्-अवस्थामें आत्मा अन्तःकरणमें स्थित चिदाभासरूप विज्ञानको और नेत्रादि इन्द्रियोंको अपने-अपने विषय, रूपादिके ग्रहण करनेका सामर्थ्य देता है। इसलिये जाग्रत्-अवस्थामें आत्मा चक्षुमय तथा श्रोत्रमय इत्यादि नामवाला कहलाता है। इसलिये जाग्रत्-अवस्थामें विज्ञानमय भोक्ताका स्पष्ट ज्ञान नहीं होता। और स्वप्नरूप शयनके सम्मुख हुआ विज्ञानमय भोक्तारूप आत्मा नेत्रादिको दिये हुए सामर्थ्यका उपसंहार करके शयनको प्राप्त होता है। इस स्वप्न-अवस्थामें भोक्तारूप आत्मा चक्षुमय, श्रोत्रमय इत्यादि नामोंको त्यागकर केवल विज्ञानमय नामवाला होता है। अर्थात् स्वप्न-अवस्थामें शयनकर्ता विज्ञानमय भोक्ताका स्वरूप नेत्रादि इन्द्रियोंसे भिन्न प्रतीत होता है।

विज्ञानमयके स्वरूपका आधार

हे बालाकि! यह विज्ञानमय भोक्तारूप आत्मा स्वप्नमें हिता नामकी नाड़ीमें स्थित होकर शयनको प्राप्त होता है, हृदयमें स्थित होकर विज्ञानमय भोक्तारूप आत्मा शयनको प्राप्त होता है अथवा पुरीततमें रहकर यह भोक्तारूप आत्मा शयनको प्राप्त होता है, इसप्रकार भिन्न-भिन्न श्रुतियोंके वचनानुसार शयनकर्ता पुरुषका भिन्न-भिन्न आधार होता है। अब मैं हृदयके स्वरूपका, पुरीततके स्वरूपका तथा हिता नामकी नाड़ीके स्वरूपका तुझसे वर्णन करता हूँ। सर्व प्राणियोंका उदर तथा अन्तःकरण छिद्रोंसे युक्त होता है। इस उदर तथा उरःस्थानके मध्यमें नीचे मुखवाला चित्तके निवासका स्थानरूप जो मांसमय

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कमल है, उसको हृदय कहते हैं, इस हृदयके चारों तरफ लिपटनेवाले सर्पाकार चमूसमूहको 'आन्द्रा' कहते हैं, इसीका नाम पुरीतत है। अपने हृदय और पुरीततका किसी भी प्राणीको नेत्रोंसे ज्ञान नहीं होता; किन्तु चाहे जिस प्राणीके उदरको चीरनेपर उसके हृदय और पुरीततका दूसरे पुरुषको नेत्रोंद्वारा ज्ञान होता है।

नाड़ियोंका वर्णन

हे बालाकि! एक केशके हजार विभाग करनेपर एक विभागका जितना परिमाण होता है, उस परिमाण-वाली अनन्त नाड़ियाँ हृदय-देशमें स्थित हैं। जिस-प्रकार सूतकी बनी हुई जालीमेंसे अनन्त सूत बाहर निकले हुए होते हैं इसी प्रकार हृदय-देशमेंसे अनन्त नाड़ियाँ निकली हुई हैं। प्रश्न-उपनिषद्में नाड़ियोंकी जितनी संख्या कही है, उस संख्याको मैं कहता हूँ, सुन। जैसे वृक्षमेंसे प्रथम स्थूल डाल निकलती है, इस डालमेंसे दूसरी डालें निकलती हैं और उन डालोंमेंसे अत्यन्त सूक्ष्म छोटी डालें निकलती हैं, इसी प्रकार हृदयरूप वृक्षमेंसे स्थूल डालके समान एक सौ एक नाड़ियाँ निकलती हैं, इनमेंकी एक-एक नाड़ी-मेंसे स्थूल डालके समान सौ-सौ नाड़ियाँ निकलती हैं। इन सौ-सौ नाड़ियोंमेंसे एक-एक नाड़ीमेंसे अत्यन्त सूक्ष्म बहत्तर हजार नाड़ियाँ निकलती हैं। ये सब नाड़ियाँ मिलकर बहत्तर करोड़ बहत्तर लाख दस हजार दो सौ एक नाड़ियाँ हृदयरूपी वृक्षमेंसे निकलती हैं। ये सब नाड़ियाँ अन्नके परिणामरूप रससे पूर्ण होती हैं। इनमेंकी कई नाड़ियाँ नीले रससे पूर्ण होती हैं, कितनी ही शुक्ल रससे, कितनी ही कृष्ण रससे, कितनी ही पीत रससे और कितनी ही लोहित रससे पूर्ण हैं। इसप्रकार रसकी सूक्ष्मताका विचार करनेसे मेरा मन मोहको प्राप्त होता है। अर्थात् जो वस्तु जिसमें प्रवेश करती है, वह वस्तु उससे सूक्ष्म होती है। जैसे कि पुरुष अपने घरमें प्रवेश करता है, इसलिये घरकी अपेक्षा पुरुष सूक्ष्म होता है। इसी प्रकार प्रथम तो नाड़ियाँ ही अत्यन्त सूक्ष्म हैं। उन नाड़ियोंमें अन्नका परिणाम-रूप जो रस प्रवेश करता है, उस रसकी सूक्ष्मताके लिये मुझे कोई भी दृष्टान्त नहीं मिलता। इसप्रकार हृदय-देशमेंसे निकली हुई नाड़ियाँ पगसे लेकर मस्तक-पर्यन्त सर्व शरीरको व्याप्त करके स्थित हैं। जैसे वृक्षके पत्तोंको व्याप्त करके सूई—सूक्ष्मनसें स्थित हैं इसी प्रकार सूक्ष्म नाड़ियोंमें सर्व इन्द्रियोंका उप-संहार करके मन व्याप्त होकर स्थित रहता है।

यह मन धर्म-अधर्मरूप पाशसे बँधा हुआ है और अनेक प्रकारके संस्कारवाला है। यही मन स्वप्न-अवस्थामें द्रष्टा, दर्शन और दृश्य, इस त्रिपुटीरूपसे स्थित होता है और साक्षी चेतनसे प्रकाशमान है। जब यह मन नाड़ियोंमें प्रवेश करता है तो विज्ञान-मय भोक्ता आत्मा अपनी केवल मायासे और पूर्व-पूर्वके संस्कारोंकी सहायतासे अनन्त प्रकारके पदार्थोंको वहाँ देखता है। स्वप्नमें कभी-कभी भिक्षुक पुरुष महाराजा हो जाता है, और कभी महाराजा भी स्वप्नमें भिक्षुक हो जाता है। स्वप्नमें कई बार नीच जातिवाला चाण्डाल भी उत्तम ब्राह्मण हो जाता है और उत्तम ब्राह्मण स्वप्नमें चाण्डाल हो जाता है। स्वप्नमें कभी-कभी हिरण्यगर्भ भी स्थावर, ग्रामशूकर तथा कृमिरूप हो जाता है और कभी कृमि आदि हिरण्यगर्भ हो जाते हैं। इसप्रकार मायासे मोहको प्राप्त हुआ देहधारी जीव पुण्य तथा पाप-कर्मके अनुसार स्वप्नमें उच्च तथा नीच शरीरोंको प्राप्त होता है।

जाग्रत् तथा स्वप्नकी समानता

हे बालाकि! स्वप्नमें मायासे रथादि पदार्थ प्रतीत होते हैं, किन्तु वे रथादि पदार्थ वहाँ वस्तुतः नहीं होते। यदि स्वप्नके पदार्थ वास्तव हों तो जाग्रत्-में भी प्रतीत होने चाहियें, परन्तु जाग्रत्में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रतीत नहीं होते, इसलिये स्वप्नके पदार्थ मिथ्या हैं। इसी प्रकार जाग्रत्के पदार्थ भी मायासे प्रतीत होते हैं, वास्तविक नहीं हैं। यदि जाग्रत्के पदार्थ वास्तविक हों तो सुषुप्तिकालमें सबको और समाधि-कालमें तत्त्ववेत्ताको प्रतीत होने चाहियें; किन्तु सुषुप्ति एवं समाधि-कालमें जाग्रत्के पदार्थ क्रमशः सबको और तत्त्व-वेत्ताको प्रतीत नहीं होते, इसलिये स्वप्नके समान जाग्रत्के पदार्थ भी मिथ्या हैं। और जैसे स्वप्नमें जीवको अपने आत्माका अज्ञान होता है इसी प्रकार जाग्रत्में जीवको आत्माका अज्ञान है। इस कारणसे भी जाग्रत् और स्वप्न दोनों समान हैं। और जैसे स्वप्नमें पदार्थोंका विपरीत भान होता है इसी प्रकार जाग्रत्में भी पदार्थोंका विपरीत भान होता है, इससे भी जाग्रत् तथा स्वप्न दोनों समान हैं।

बालाकि—हे राजन्! जाग्रत् और स्वप्न दोनोंकी तुल्यता नहीं हो सकती, क्योंकि स्वप्नके पदार्थ अल्प समयतक रहते हैं और जाग्रत्के पदार्थ दीर्घ कालतक स्थायी हैं।

अजातशत्रु—हे बालाकि! जैसे जाग्रत्में धन, वस्त्र, तृणादि पदार्थ पार्थिवरूपसे प्रतीत होते हैं, इसी प्रकार स्वप्नमें भी धनादि पदार्थ पार्थिवरूपसे प्रतीत होते हैं। और जैसे जाग्रत्में धनादि जड़ पदार्थ अस्तिरूपसे प्रतीत होते हैं इसी प्रकार स्वप्न-में भी वे अस्तिरूपसे प्रतीत होते हैं, इसलिये जाग्रत् तथा स्वप्न दोनों समान हैं। और जाग्रत् पदार्थोंमें चिरकाल स्थायित्व और स्वप्न-पदार्थोंमें अल्पकाल स्थायित्व ये दोनों विशेष धर्म अज्ञानसे कल्पित हैं। कल्पित धर्म-से जाग्रत् और स्वप्नके पदार्थोंकी विलक्षणता सिद्ध नहीं होती और जैसे स्वप्न-अवस्थामें एक ही स्वप्न-द्रष्टा पुरुष अज्ञानरचित अनेक पदार्थोंको देखता है, इसी प्रकार जाग्रत्-अवस्थामें भी एक ही आनन्द-स्वरूप आत्मा अज्ञानरचित अनेक पदार्थोंको देखता है—इससे भी जाग्रत्-स्वप्न दोनों समान हैं।

हे बालाकि! इस स्वप्न-अवस्थामें शयनकर्ता विज्ञानमय भोक्ताका स्वरूप स्पष्ट करके मैंने तुझको दिखाया। यह विज्ञानमय भोक्ता प्राणसे भिन्न है, क्योंकि जैसे राजाकी पुरीकी रक्षा करनेवाला भृत्य राजासे भिन्न होता है इसी प्रकार यह प्राण भी भृत्यके समान स्थूल शरीररूप पुरीकी रक्षा करता है और विज्ञानमय भोक्ता आत्मा महाराजाके समान सर्व जड़ पदार्थोंको अपने कार्यमें प्रवृत्त करता है, इसलिये विज्ञानमय भोक्तासे प्राण भिन्न है। और जैसे महाराजा अपनी पुरीकी रक्षाके लिये किसी प्रधान मन्त्रीको अपनी पुरीमें स्थापन करता है और अपनी सेनाको लेकर किसी शिकार आदि निमित्तसे अपने देशमें विचरता है, इसी प्रकार यह विज्ञानमय भोक्ता भी स्थूल शरीररूप पुरीकी रक्षाके लिये प्रधान मन्त्री प्राणको स्थापन करके मनसहित सर्व इन्द्रियोंको ग्रहण करके अपनी इच्छापूर्वक इस कलेवरमें भ्रमण करता है और अज्ञानरचित अनेक प्रकारके पदार्थोंको देखता है।

सुषुप्तिरूप द्वितीय शयननिरूपण

हे बालाकि! इसप्रकार नाड़ी आदिमें विचरता हुआ मन जब अपने कारणरूप अज्ञानमें लयभावको प्राप्त होता है तब यह आत्मादेव परिपूर्णतारूप दूसरी सुषुप्तिरूप शयनको प्राप्त होता है। भाव यह है कि चेतनमें वस्तुतः परिच्छिन्नता नहीं है; किन्तु परिच्छिन्नतारूप उपाधिके सम्बन्धसे चेतनमें परिच्छिन्नता भासती है। यहाँ अन्तःकरण-विशिष्ट चेतनका नाम विज्ञानमय भोक्ता है। यह अन्तःकरण जाग्रत् और स्वप्नमें रहता है, इसलिये जाग्रत् और स्वप्नमें विज्ञान-मय भोक्ता आत्माकी परिच्छिन्नता निवृत्त नहीं होती।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और सुषुप्तिमें अन्तःकरणका लय अज्ञानमें हो जाता है, इसलिये विज्ञानमय भोक्ता आत्मा परिच्छिन्नभावको त्यागकर सत्य परमात्माके साथ अभेदरूप पूर्णताको प्राप्त होता है।

द्वितीय शयनका आधार

हे बालाकि! यह विज्ञानमय भोक्ता नाड़ीरूप द्वारसे हृदयकमलमें स्थित परमात्मारूप महान् आकाशको प्राप्त होता है अर्थात् परिच्छिन्नताका परित्याग करके मायाविशिष्ट परमात्माके साथ अभेदरूप परिपूर्णताको प्राप्त होता है। ऐसा कहनेसे विज्ञानमय भोक्ताके द्वितीय शयनका आधार मायाविशिष्ट परमात्माका सूचन होता है। इस मायाविशिष्ट परमात्मामें ही नेत्रादि सर्व इन्द्रियोंके साथ मनका लय होता है अर्थात् कारणमें ही कार्यका लय होता है, ऐसा नियम है। मायाविशिष्ट परमात्मा ही इन्द्रियादि सर्व प्रपञ्चका उपादानकारण है, इसलिये मायाविशिष्ट परमात्मामें इन्द्रियादिका लय सुषुप्तिमें सम्भव है। दृष्टान्तरूपसे समुद्रका ही जल घनीभावको प्राप्त होनेसे लवणभावको प्राप्त होता है, इसलिये समुद्रका जल लवणका कारण है। इस कारणरूप समुद्रके जलमें मिलकर लवणका पिण्ड जैसे लयभावको प्राप्त हो जाता है, इसी प्रकार सुषुप्ति-अवस्थामें इन्द्रियसहित मन परमात्मारूप कारणमें लयभावको प्राप्त हो जाता है। और जैसे पटमें लिखा हुआ चित्र पटके सङ्कुचित होनेसे लयभावको प्राप्त हो जाता है, इसी प्रकार मनका लय होनेसे मनके कल्पे हुए जब सर्व पदार्थ लय हो जाते हैं तब सर्व कार्य-प्रपञ्चसे रहित हुआ एक अद्वितीय परमात्मा ही परिशेष रहता है।

बालाकि–हे राजन्! सुषुप्ति-अवस्थामें यद्यपि कार्य-प्रपञ्चका लय हो जाता है तो भी सुषुप्तिमें कारणरूप अज्ञान विद्यमान रहता है, इसलिये सुषुप्तिमें परमात्माकी अद्वितीयरूपता सम्भव नहीं है।

अजातशत्रु–हे बालाकि! सुषुप्ति-अवस्थामें यद्यपि अज्ञान है तो भी उस अज्ञानका स्पष्टरूपसे भान नहीं होता, इसलिये वह न होनेके समान ही है। जैसे कोई पुरुष दीर्घकालके बाद अपने घर आवे और अत्यन्त प्यारे पुत्रादिसे मिले तो उस समय वह पुरुष आनन्दसे पूर्ण होनेसे बाहर और भीतरके पदार्थोंको किञ्चित् भी नहीं जानता और उस समय आपको और अपने पुत्रको देखता हुआ भी नहीं देखता है, इसी प्रकार यह विज्ञानमय भोक्ता भी सुषुप्तिमें परमात्माके साथ तादात्म्यभावको प्राप्त होकर अपनेमें रहती हुई मायाको नहीं जानता किन्तु अज्ञानकी वृत्तिसे केवल अपने आनन्दस्वरूपका ही अनुभव करता है। इसलिये श्रुतिमें उसको 'आनन्द-भुक्' कहा है और सुषुप्तिमें जब यह विज्ञानमय भोक्ता विद्यमान मायाको ही नहीं जानता तो पीछे लयभावको प्राप्त हुए मायाके कार्य स्वप्न और जाग्रत्के पदार्थोंको किसप्रकार जान सके? उस समय वह किसी भी पदार्थको नहीं जानता, किन्तु केवल आनन्दसे परिपूर्ण होता है। सुषुप्तिमें दुःखकी निवृत्ति और परम आनन्दकी प्राप्ति किसप्रकार होती है–यह समझानेके लिये मैं तुझसे कुमार, महाराजा और ब्राह्मणके तीन दृष्टान्त कहता हूँ। (क्रमशः)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तुलसीकृत रामायणमें करुणारस

(लेखक—श्रीराजबहादुरजी लमगोड़ा, एम० ए०, एल-एल० बी०)

(३)

भरत और हैमलेट

(गताङ्कसे आगे)

(२) स्वाभाविक आदर्शवादिता

जितना ही जिसका आत्मा आदर्शका अनुभव करता है उतनी ही उसे अपने अन्दरकी छोटी त्रुटि भी बड़ी दिखायी देती है। म० टॉलस्टॉय (Tolstoy) भी अपने लेखोंमें बहुधा इसी धारणाको प्रकट करते हैं, नहीं तो जिनके विचार स्थूल हैं उन्हें तो 'नीमके कीड़ेको नीम ही मीठा' के सिद्धान्तानुसार कोई असन्तोष रहता ही नहीं। सिद्ध यह हुआ कि आदर्शवादी वही है जो असीम सत्ता और भलाईको अपने समीप रखता है और उनतक पहुँचनेका भरसक प्रयत्न करता है और जितना आगे बढ़ता जाता है उतना ही आदर्शकी सूक्ष्मताका अधिकाधिक अनुभव करते हुए उद्योगकी मात्रामें वृद्धि करता जाता है। हमारी यह परिभाषा एक कर्मयोगी आदर्शवादीपर लागू होती है। आदर्शवादीका अर्थ यह नहीं कि केवल मस्तिष्कसे आदर्शका विचार करे या केवल हृदयसे उसका अनुभव करे परन्तु अकर्मण्यताके कारण उसकी प्राप्तिका उद्योग न करे। हैमलेट और भरतके आदर्शवादमें यही अन्तर है। इसमें सन्देह नहीं कि इस अकर्मण्यताके असंख्य कारण होते हैं। कहीं तो हृदयमें भावोंका इतना बाहुल्य होता है कि कर्मके लिये स्थान ही नहीं रहता, कहीं बाह्य परिस्थितियाँ इतनी जटिल होती हैं कि उन्हें हल करना कठिन होता है और कहीं उद्योग करनेकी स्वाभाविक शक्ति इतनी कम होती है कि कुछ करते-धरते नहीं बनता। बेचारे हैमलेटके सामने ये सभी मुश्किलें थीं। समस्या जटिल थी और कोई वास्तविक सहानुभूति करनेवाला या पथ-प्रदर्शक न था।

इतना ही अन्तर नहीं, प्रत्युत हमें तो हैमलेटको बहुत उच्च कोटिका आदर्शवादी कहनेमें भी बहुधा सङ्कोच होता है। पाश्चात्य देशमें उसकी प्रशंसा भले ही हो, परन्तु आर्यावर्तके पुण्यक्षेत्रमें इसकी सम्भावना नहीं। हैमलेटके चचाने अपने भाईकी हत्या की और दो-ही-एक महीनेके भीतर हैमलेटकी विधवा माताने उसी चचाके साथ विवाह कर लिया। इस घटनासे हैमलेटको घृणा हुई और इसीलिये पाश्चात्य जगत्‌में उसे आदर्शवादी कहकर सराहा जाता है। हमें तो इसमें कोई आदर्शवादिता प्रतीत ही नहीं होती। भारतवर्षका तो एक बालक भी ऐसी घटनाको घृणाकी दृष्टिसे देखेगा। पर हमें यह न भूल जाना चाहिये कि हम भारतवर्षके शुद्ध आध्यात्मिक वातावरणमें रहते हैं और हैमलेट उस भौतिक सभ्यताके बीचमें रहता था जहाँ आये दिन हत्याजनक षड्यन्त्र रचे जाते हैं और विधवा-विवाह तो कोई बुरी बात है ही नहीं। ऐसे लोगोंको हैमलेटकी घृणामें आदर्शवाद दिखायी पड़े तो आश्चर्य ही क्या ?

अब तनिक भरतके सूक्ष्म आदर्शवादपर दृष्टि डालिये। हैमलेटको शोक इस बातका था कि उसका पैत्रिक राज्य हाथसे निकल गया और भरतको यह शोक है कि उन्हें अनधिकारी होते राज्य मिल रहा है। अन्यायसे राज्यका अपहरण तो सभीको बुरा लगता ही है; परन्तु ऐसे विरले ही लोग होंगे जिन्हें अन्यायसे मिलता हुआ राज्य भी विष-सा प्रतीत हो, विशेषतः जब माताके वरदान माँगनेपर पिताने उसे दिया हो और राज्यगुरु तथा मन्त्रियोंकी सम्मति भी हो····· । हैमलेटके सामने जो परिस्थिति थी उसमें हिंसा, लोभ और व्यभिचार—तीनों थे और भरतके राज्य-ग्रहणके सम्बन्धमें दस पुष्टिकारक कारण* थे, जिनकी व्याख्या गुरु वशिष्ठकी

---

* विस्तार-भयसे हमने एक-एक कारणका उत्तर भरतकी वक्तृतासे नहीं दिया, क्योंकि वह वक्तृता सङ्केतात्मक है; परन्तु जिज्ञासुओंके लिये यह एक अत्यन्त रोचक विषय होगा यदि वे हमारी व्याख्यासे साहाय्य लेकर प्रत्येक कारणका उत्तर उस वक्तृतामें स्वयं ही खोज लेंगे। —लेखक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वार्ताके अन्तर्गत हो चुकी है। परन्तु भरतकी आदर्शवादिता इतनी उच्च कोटिकी है कि उन्हें अपनी अवस्था इसप्रकार प्रतीत होती है—

ग्रहगृहीत पुनि बातबस, तेहि पुनि बीछी मार।
ताहि पियाइय बारुनी, कहहु कवन उपचार॥

और राज्य-ग्रहणकी सम्भावनामें भी वह अपनेको—

कैकेई-सुत कुटिलमति, राम-बिमुख गत-लाज।

—ही कहकर धिक्कारते हैं।

उपर्युक्त आलोचनासे यह स्पष्ट है कि कम-से-कम इस प्रसङ्गमें भरत और हैमलेटकी कोई तुलना हो ही नहीं सकती। भरतका आदर्शवाद इतनी उच्च कोटिका है कि स्वयं तुलसीदासजीको कोई उपयुक्त उपमा नहीं मिली और उन्होंने भरतको उन्हींके समान कहकर प्रशंसित किया है। उनकी रायमें भरतको किसी अन्य व्यक्तिकी उपमा देना वैसा ही है जैसे 'मेरु' को 'सेर' की उपमा देना। विश्वसाहित्यका निष्पक्षरूपसे अध्ययन करनेवालोंपर यह विदित हो ही गया होगा कि आदर्शवादका ताज भरतके सिरपर रक्खा जाना चाहिये, न कि हैमलेटके। हाँ, यदि साहित्य-संसारमें भी द्वेष-का वह भाव रक्खा जाय जिसके कारण एशिया-निवासियोंकी बस्तियाँ पाश्चात्य-उपनिवेशोंमें पृथक्-पृथक् बनायी जाती हैं, तो बात ही और है। हमें इस प्रसङ्गमें शोकके साथ कहना पड़ता है कि सर जार्ज ग्रियर्सन-जैसे 'सिविलियन' आलोचकने भी इस द्वेषको कायम रक्खा और तुलसीदास-जीकी गणना केवल एशियाके आधे दर्जन लेखकोंमें की।

(३) संसारके अनेक विद्वानोंकी आलोचनाओंके आधारपर भरत और हैमलेटके आदर्शवादके गुण-दोषकी तुलना

हम पहले लिख चुके हैं कि भरतके आदर्शवादमें विवेक और कर्तव्यपरायणता मौजूद हैं। इसमें सन्देह नहीं कि हैमलेटकी तरह भरत भी करुण कुतर्कों और विचारोंमें कभी-कभी डूबते नज़र आते हैं; परन्तु वे विचार उनको पराजित नहीं कर पाते। यही विशेष अन्तर भरत और हैमलेटमें है। यदि हम 'हैमलेट' मेंसे बहुत-से उदाहरण लेकर लिखें तो प्रसङ्गके विस्तृत वर्णन बिना पाठकोंको कोई विशेष आनन्द न आयेगा। और यदि बिना प्रमाण ही भरतकी प्रशंसा करें तो हैमलेटके प्रति अन्याय होगा। अतः हम इस प्रसङ्गमें हैमलेटके सम्बन्धमें अनेक पाश्चात्य विद्वानोंकी रायें देकर साथ-साथ भरतकी तुलना करेंगे। इससे एक लाभ यह भी होगा कि अनेक दृष्टिकोणोंसे आप-ही-आप दोनोंकी तुलना हो जायगी।

(अ) डा० मिलरने, जो एक पादरी प्रिंसिपलकी हैसियतसे भारतमें बहुत दिनोंतक रहे हैं, शेक्सपियरके नाटकोंकी आलोचना लिखते हुए इस बातका प्रयत्न किया है कि उन नाटकोंसे आध्यात्मिक एवं नैतिक विषय खोज निकालें। हमें जहाँ उनकी आलोचना पढ़कर इस बातसे हर्ष होता है कि भारतवर्षके आध्यात्मिक वातावरण-का प्रभाव उनकी शेक्सपियर-सम्बन्धी आलोचनाओंपर पड़े बिना न रहा, वहाँ इस बातसे कभी-कभी दुःख होता है कि उन्होंने शेक्सपियरकी प्रशंसा करनेमें बहुत खींचातानी की है। उदाहरणार्थ हैमलेटकी ओरसे सफ़ाई देते हुए वे कहते हैं कि 'घबराहट और थकनको हम गहन विचारसे अलग नहीं कर सकते।'* परन्तु उन्हें भी आगे चलकर मानना ही पड़ा कि हैमलेटमें 'कर्तव्यपरायणता' का अभाव है।

यह सच है कि भरत भी गहन विचारोंकी उपर्युक्त त्रुटियोंमें कभी-कभी पड़ते दीखते हैं; परन्तु अन्तिम विजय भरतकी ही होती है। अतः उनके आलोचकोंको उपर्युक्त एकदेशीय सिद्धान्तकी आड़ लेनेकी जरूरत नहीं पड़ती। अब रही कर्तव्यपरायणता, वह तो भरतसे कभी छूटती ही नहीं। देखिये न, वह रामके पास प्रजा और परिवारके साथ जानेको तैयार हैं और अभी अपनी वक्तृतामें कह ही चुके हैं कि राम-दर्शन बिना उनके 'जियकी जरन' नहीं मिट सकती। परन्तु ऐसे समयमें भी वह राम-सेवक होनेके कारण अपना यह कर्तव्य समझते हैं कि रामराज्यकी रक्षा-का ठीक प्रबन्ध कर दें, यद्यपि उन्होंने स्पष्ट कहा है कि सम्भव है, लोग इसमें दोष लगायें और यह समझें कि वह प्रबन्ध भरत अपने ही स्वार्थके लिये कर रहे हैं। इस सम्भावनाके होते हुए भी कर्तव्यपरायणता उन्हें कर्तव्यसे विमुख नहीं कर सकती और वे कहते हैं—

संपति सब रघुपतिकी आही। .....॥
जो बिनु जतन चलौं तजि ताई। तौ परिनाम न मोर भलाई॥
कैर स्वामिहित सेवक सोई। दूषन कोटि देइ किन कोई॥

* Perplexity weariness are inseparable from earnest thought.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

[इसमें घबराहट और थकनका पता भी नहीं ।]

मिलर महोदयको अन्ततः यह प्रारम्भिक सिद्धान्त मानना ही पड़ा कि जिस जीवनमें सत्यप्राप्तिका उद्योग नहीं है, वह जीवन निष्फल है ।

(इ) ब्रडले महोदय हैमलेटकी प्रशंसा करते हुए उसकी 'बुद्धिकी प्रखरता, शीघ्रतापूर्वक मनोभाव-परिवर्तनकी योग्यता और साधनोंकी आश्चर्यजनक तीव्रता एवं बहुलता'* की सराहना करते हैं और उसके सम्बन्धमें कहते हैं कि 'वह दार्शनिक हुए बिना ही स्वभावतः एक सुविज्ञ विचारक था और कवि हुए बिना ही भाव-चित्रणकी शक्ति रखनेवाला था।' † पर अन्ततः उन्होंने उसकी 'निर्बलतापूर्ण अस्थिरता' ‡ को हृदयङ्गम किया है ।

हमें देखना है कि ये गुण भरतमें कहाँतक थे ! स्थानाभावसे एक-आध ही उदाहरण दिया जाता है । हमने भरतकी वक्तृताकी विस्तृत व्याख्या की है जिससे भरतकी बुद्धिकी प्रखरताका साफ पता चलता है । उनकी बुद्धि किस तेजीके साथ परिस्थितिकी तहतक पहुँच जाती है और गुरु वशिष्ठके जोरदार भाषणसे भी विचलित नहीं होती । अब रही शीघ्रतापूर्वक मनोभाव-परिवर्तनकी बात, सो उसके लिये यह कहना काफी है कि कहाँ तो भरत अपनी माता कैकेयीसे क्रोधके आवेशमें बातें कर रहे थे और कहाँ जब मन्थराको शत्रुघ्नजी मारने लगे तो भरतजी दयासे प्रभावित होकर बचानेमें लग गये । फिर जब तनिक ही देरके बाद वे रामकी माता कौशल्याके समीप जाते हैं तो वहाँ एक निर्दोष बालककी भाँति कसमें खा-खाकर अपनी सफाई देने लगते हैं । कसमें क्या हैं, धार्मिक सिद्धान्तोंके मणिमालकी अनमोल मणियाँ । फिर थोड़ी ही देर बाद अयोध्यासे प्रस्थान करनेका प्रबन्ध करते हुए वे एक उत्तम प्रबन्धकके रूपमें दिखायी देते हैं । साधनोंकी खोजके विषयमें तो हम देख ही चुके हैं कि जिस समस्याको गुरुजीतक हल न कर सके उसे भरतने हल कर दिया । विचारकता और भाव-चित्रणकी शक्तिके सम्बन्धमें तो कुछ कहनेकी जरूरत ही नहीं, क्योंकि ये तो भरतके प्रत्येक शब्द एवं क्रियामें विद्यमान हैं । भरतने दार्शनिक तत्त्वोंको ऐसी हृदय-विदारक भाषामें प्रकट किया है कि हम रोमाञ्चित हो जाते हैं । उनका समस्त जीवन शान्त एवं करुणारसका एक काव्य है । कहीं-कहीं करुणाके प्रवाहमें उनका मन पीपलके पत्तेकी तरह डोलता दिखायी पड़ता है पर वह उनके चरित्रमें अस्थिरता नहीं ला सकता ।

(उ) कॉलरिजने हैमलेटके बारेमें यह लिखा है कि उसमें मस्तिष्कका वह गुण न था जो किसी उद्देश्यकी पूर्ति कर सके ।*

भरतका चरित्र पढ़ते समय हमें यह अनुभव होता है कि वह कोई मूक पर-प्रेरित पशु नहीं, परन्तु जीवन-संग्राममें भरसक कर्म करनेवाला कर्मवीर है ।

(ए) प्रो० डाउडेनका कथन है कि हैमलेट भौतिकता और आध्यात्मिकताके बीचमें झूलने लगता है, † मानों उसमें दोनोंका सम्मिश्रण है, बल्कि भौतिकताकी मात्रा कुछ अधिक है । इसीलिये दुःखान्तक घटनाओंको अग्नि उसे जलाकर राख कर देती है । इसके विरुद्ध भरत अपने गुणोंसे 'कनक कसे मणि पारिख पाये' के सिद्धान्तको चरितार्थ करते हैं ।

(ओ) श्लीगेलने हैमलेटके विषयमें यह लिखा है कि 'उसे न अपने ऊपर और न किसी अन्य वस्तुपर ही दृढ़ विश्वास था ।‡

तुलसीदासजीने भी भरतकी दशाका अत्यन्त हृदय-विदारक एवं मार्मिक चित्र खींचा है । चित्रकूटकी यात्रामें भरतका मन पीपलके पत्तेकी भाँति कुतर्कोंकी वायुसे

* Quickness of perception, great agility in shifting the mental attitudes, striking rapidity and fertility of resource.

† A speculative genius without being a philosopher and an imaginative genius without being a poet.

‡ Nervous instability.

* Void of that quality of mind that accomplishes purpose.

† Wavering between materialism and spiritualism.

‡ No firm belief either in himself or in anything else.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

डोलता दिखायी देता है। वस्तुतः उस समय उन्हें अपनेपर विश्वास नहीं, परन्तु रामपर उनका विश्वास अटल है और तुलसीदासजीने उनकी तात्कालिक दशाका इसप्रकार वर्णन किया है—

मातुमतेमहँ जानि मोहिं, जो कछु करहिं सो थोर।
अघ अवगुन छमि आदरहिं, समुझि आपनी ओर॥

जो परिहरैं मलिनमन जानी। जो सनमानहिं सेवक मानी॥
मोरे सरन रामकी पनहीं। राम सुस्वामि दोष सब जनहीं॥
... ...
फेरति मनहुँ मातुकृत खोरी। चलत भगतिबल धीरज धोरी॥
जब समुझहिं रघुनाथसुभाऊ। तब पथ परत उतावल पाऊ॥
भरत दसा तेहि अवसर कैसी। जलप्रबाह जल अलि गति जैसी॥

अन्तिम विजय उनके भक्तिबल और रामके भक्त-वात्सल्यकी ही होती है। कविका कमाल यह है कि वह शेक्सपियरकी भाँति मनकी करुण चञ्चलताका चित्रण तो अवश्य कर देता है पर अन्तिम विजय आत्माके ही हाथ रखता है। भरतके आत्मविश्वासका एक चित्र अभी हम देख ही चुके हैं कि वे गुरु वशिष्ठ, मन्त्रिगण तथा कौशल्या माताके अनुरोधपर भी अपने धर्ममार्गसे विमुख नहीं होते। फिर रामपर तो उनका विश्वास इतना अधिक है कि वह उन्हें करुण परिस्थितियोंमें डूबनेसे सदा ही बचा लेता है।

(अं) जेकब फीज़का कथन है—

'अगर कोई अच्छा राजनीतिज्ञ भी जो किसी राष्ट्रका कर्णधार हो, अपने आपको सामयिक परिस्थितियोंके वेगसे विचलित होने दे और उत्तम उद्देश्यकी पूर्तिके निमित्त दृढ़ सङ्कल्पके साथ अपना पूरा बल न लगाये तो दुष्टोंको अपनी उद्देश्यपूर्तिका मौक़ा आसानीसे मिल जाता है।'* ये शब्द हैमलेटपर कितने लागू होते हैं और राष्ट्रके विनाशमें उसकी कितनी बड़ी जिम्मेदारीका पता देते हैं! अब अगर इन शब्दोंकी कसौटीपर भरतके चरित्रको कसा जाय तो भरतकी कीर्ति कितनी बढ़ जाती है! मन्थरा और कैकेयीको सफलता इसी कारण नहीं हुई कि भरत अपने सङ्कल्पपर अटल थे और उन्होंने सङ्कल्पके पूर्णार्थ भरसक प्रयत्न भी किया था। अयोध्याको वास्तविक 'अयोध्या' बनानेमें भरतका बहुत बड़ा हाथ था और इसीलिये महाराज दशरथ कहा करते थे—

'जानेहु भरत सदा कुल-दीपा।'

हैमलेटके चरित्रपर कमोबेश तीन शताब्दियोंसे वाद-विवाद हो रहा है, अतः विद्वानोंकी सम्मतियोंकी सामग्री बहुत है। परन्तु अब हम अधिक सम्मतियोंका देना उचित नहीं समझते और लेख-मालाके इस अंशको यहीं समाप्त करते हैं।

हमारा नम्र निवेदन यह है कि कृपया पाठकगण इस तुलनात्मक आलोचनाका प्रयोग भरतकी कीर्ति बढ़ानेमें अवश्य करें पर हैमलेटको भी घृणापात्र न समझें। हमें तो हैमलेटके प्रति करुणाका ही भाव रखना चाहिये। बेचारा नाज़ुक हैमलेट शीशेकी भाँति स्वच्छ, पर वैसा ही कमज़ोर है। हमें तो इस भौतिक संसारमें आदर्शवादके पराजित होनेपर तनिक भी आश्चर्य नहीं होता। फारसदेशमें 'मजनूँ' और 'मंसूर' के जीवन असफल रहे। रोमके इतिहासमें 'ब्रूटस' को सफलता नहीं मिली। मसीहको सूलीपर चढ़ना पड़ा। अचम्भेकी बात तो यह है कि भरतको अन्ततः सफलता ही प्राप्त हुई और इसीलिये हम उन्हें संसारका सर्वश्रेष्ठ आदर्शवादी मानते हैं। उस सफलताका कारण कुछ तो स्वयं भरतकी आत्मशक्ति थी और कुछ राम एवं कौशल्याकी सप्रेम सहानुभूति। हमें तो हैमलेटकी कब्रसे फ़ारसीके प्रसिद्ध कवि अलीहज़ीके शब्दोंमें यही आवाज आती हुई सुनायी पड़ती है कि—'मेरी मिट्टीपर गुलाबकी पंखड़ियाँ भी धीरे-धीरे बखेरो, क्योंकि मेरे दिलका शीशा बहुत नाज़ुक है।'*

* If the noble statesman who stands at the helm of the commonwealth, allows himself to be driven about by every wind of the occasion instead of furthering better aims with all his strength and energy and will, the wicked on their part will the more easily carry out their ends.

* आहिस्तः बर्गेगुल बफिशाँ बर मज़ारे मा।
बस नाज़ुकस्त शीशये दिल दर किनारे मा॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सत्यं शिवं सुन्दरम्

(लेखक—श्रीयुत पी० एन० शङ्कर नारायण अय्यर बी० ए०, बी० एल०)

गलन्ती शम्भो त्वच्चरितसरितः किल्बिषरजो
दलन्ती धीकुल्यासरणिषु पतन्ती विजयताम्।
दिशन्ती संसारभ्रमणपरितापोपशमनीं
वसन्ती मच्चेतोह्रदभुवि शिवानन्दलहरी॥
(श्रीशङ्कराचार्यकृत 'शिवानन्दलहरी')

अर्थात् हे शम्भो ! आपकी चरित-सरितामें जो शिवानन्द लहरी उठती है, वह पाप-धूलिको नष्ट करती हुई बुद्धिकुल्यामें गिरती, संसारपरिभ्रमणजन्य परितापको शमन करती और अन्तमें मेरे मानससरमें आकर शान्त हो जाती है; अतः उसकी विजय हो !

भगवान् शिवके चरित्र प्रकाश, पवित्रता, शान्ति एवं आनन्दके देनेवाले हैं।

(२) श्रीशिवके चरित्रोंको समझने और उनसे रस एवं आनन्दका आस्वादन करनेके लिये सरल एवं सतत जिज्ञासु हृदयकी आवश्यकता है।

स वेद धातुः पदवीं परस्य
दुरन्तवीर्यस्य रथाङ्गपाणेः।
योऽमायया सन्ततयानुवृत्त्या
भजेत तत्पादसरोजगन्धम्॥
(श्रीमद्भा० १ । ३ । ३८)

अर्थात् भगवान्‌के सभी चरित्रोंमें महान् रहस्य एवं उद्धार करनेकी शक्ति भरी हुई है। उन्हें यथार्थरूपसे वही समझ सकता है जो निष्कपटभावसे निरन्तर उनका भजन करता हुआ उनके पादपद्मकी सुगन्धका सेवन किया करता है।

जिसप्रकार भौतिक विज्ञानका रहस्य वही जिज्ञासु जान पाते हैं जो तत्तद्विज्ञानके नियमोंका अनुसरण करते हुए एक निश्चित कार्यक्रमके अनुसार तथा पूर्ण अध्यवसायके साथ खोजमें लग जाते हैं, उसी प्रकार भगवान् भी उसीके समक्ष अपना सत्य एवं सुन्दर स्वरूप प्रकट करते हैं जो निष्काम भावसे तथा सच्ची लगनके साथ धर्म एवं सदाचारके नियमोंका पालन करता हुआ उनकी खोजमें प्रवृत्त होता है। इसी कारण उनकी अनुभूति एवं साक्षात्कार भी भिन्न-भिन्न प्रकारके अधिकारियोंको उनके भावानुसार भिन्न-भिन्न प्रकारसे होता है।

समविषममतीनां मतमनुसरसि
यथा रज्जुखण्डः सर्पादिधियाम्।
(श्रीमद्भा० ६ । ९ । ३७)

'हे भगवन् ! जैसी जिसकी भली-बुरी दृष्टि होती है तुम उसे उसी रूपमें दर्शन देते हो। जिसप्रकार एक रज्जुका टुकड़ा किसी साहसी व्यक्तिको तो अपने वास्तविक रूपमें दिखलायी पड़ता है, पर एक भयभीत व्यक्तिको वही सर्पाकार प्रतीत होता है।' इसप्रकार उनकी लीलाएँ अनन्त और विविध हैं और उनमें उद्धार करनेकी शक्ति भी अनन्त है। यहाँ हम यह बतलानेकी चेष्टा करेंगे कि भिन्न-भिन्न प्रकारके लोग उन्हें किस-किस रूपमें देखते और किसप्रकार वे सबपर समानरूपसे अपने प्रकाश एवं प्रेमपीयूषकी वर्षा करते हैं। वे त्रैलोक्यगुरु हैं, अतएव हमारे लिये यह आवश्यक है कि हम उनके आदर्श चरित्रका मनन एवं अनुसरण करें।

(३) श्रीमद्भागवत (४ । २ । ७) के दक्षयज्ञोपाख्यानमें श्रीशुकदेवजीने भगवान् शिवके विभिन्न रूपों एवं विविध प्रसङ्गोंको बड़ी सुन्दरताके साथ चित्रित किया है। पहले-पहल हम उन्हें देवताओं तथा ऋषियोंके महान् सत्रमें पितामह ब्रह्माके पार्श्वमें बैठा हुआ पाते हैं। इतनेमें वहाँ दक्षप्रजापति, जिनका तेज-प्रताप इष्टापूर्तादि काम्यकर्म-कलापके द्वारा (जिनमें लोकोपयोगी भौतिक विज्ञानकी भी गणना हो सकती है) बहुत बढ़ गया था, आते हैं। सभी सदस्य उनके सम्मानार्थ उठकर खड़े हो जाते हैं। केवल ब्रह्मा और शिव जहाँ-के-तहाँ विराजे रहते हैं। लोकगुरु ब्रह्मा यदि नहीं उठे तो कोई बात नहीं, वे तो दक्षके पिता ही ठहरे। परन्तु शिवका उन्हें अभ्युत्थान न देना बहुत खटका। शिव तो उनकी दृष्टिमें कलका छोकरा था जिसे उन्होंने ब्रह्माके कहनेसे अपनी लड़की ब्याह दी थी। उसका यह दिमाग़ कि वह अपने ससुरको आते देखकर उनका शिष्टोचित अभिवादन भी न करे ! भला, वे इस औद्धत्यको कब सह सकते थे। शिवके इस उद्दण्ड व्यवहारसे दक्षके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मानको बड़ी ठेस पहुँची। वे मारे क्रोधके आगबबूला हो गये और लगे शिवकी अनर्गल निन्दा करने। सारी सभा इस आकस्मिक पट-परिवर्तनको देखकर दंग रह गयी और दक्षकी ओर टकटकी लगाकर देखने लगी। वे कहने लगे—'यह शख्स समस्त लोकपालोंके लिये कलङ्कस्वरूप है। यह घमण्डी अपनेको न जाने क्या-क्या समझता है? इसे अपने बड़ोंके सामने इसप्रकार अकड़कर बैठनेमें लज्जा नहीं आती। इसने अपने कुत्सित व्यवहारसे शिष्ट पुरुषोंकी प्रणालीको ही दूषित कर दिया। इसने सारी क्रियाओंका लोप कर दिया और मर्यादाको मिटा दिया। यह श्मशानोंमें घूमता फिरता है और भूत-प्रेत-पिशाच आदिका सङ्ग करता है। यह बेहया बहुधा नशेमें चूर, नङ्गा होकर नाचा करता है। लाज तो इसे छूतक नहीं गयी है। चिताभस्मका लेपन ही इसका स्नान है और नरमुण्डोंकी माला ही इसका आभूषण है·····।'

दक्षके इस अनर्गल प्रलापको सुनकर यही धारणा होगी कि मानों वर्तमान युगका कोई विधर्मी अपने पेटके लिये अथवा अपने सङ्कुचित विचारोंका प्रदर्शन करनेके लिये हिन्दू-धर्म एवं शिवकी निन्दा कर रहा हो। हमारी आँखोंपर जिस रंगका चश्मा चढ़ा होता है वैसा ही हमें दीखता है। जिनकी आँखोंपर अज्ञानका पर्दा पड़ा रहता है और जिनकी बुद्धि दुराग्रहवश विकृत हो गयी है उन्हें श्रीशिवमें दोष-ही-दोष दिखलायी पड़ते हैं। श्रीशिव प्रशान्त महासागरके समान अक्षुब्धभावसे इस गालियोंकी बौछारको चुपचाप सहते रहे। आत्मानन्दमें निमग्न भगवान्‌के लिये जैसी स्तुति वैसी निन्दा। उनकी इस आदर्श सहिष्णुतासे हमें यह शिक्षा मिलती है कि जहाँ हमारी निन्दा होती हो वहाँ हमें किस प्रकारका व्यवहार करना चाहिये।

(४) इसके बाद एक दूसरा प्रसङ्ग आता है जहाँ भगवान् शिव अपनी नव-विवाहिता पत्नी दाक्षायणीके साथ बैठे गृह-चर्चा कर रहे हैं। देवी सती अपने पिताके यज्ञमें सम्मिलित होनेके लिये शिवसे आग्रह कर रही हैं। बेचारीको क्या पता कि उनके पिताने जान-बूझकर महादेवका अपमान करने तथा उन्हें नीचा दिखानेके लिये ही इस विराट् यज्ञका आयोजन किया है; अपनी संसारासक्तिके समर्थनके लिये जिसप्रकार हम शास्त्रोंमेंसे कौशलपूर्ण प्रमाण ढूँढ़ निकालते हैं उसी प्रकार सती भी शिवजीको अपने नैहर लिवा चलनेके लिये अनेक युक्तियाँ पेश कर रही हैं। भगवान् शिव उनकी युक्तियोंका जो उत्तर देते हैं उससे उनके ज्ञान, प्रेम एवं सहिष्णुताका पूर्ण विकास झलकता है। अपने सम्बन्धियों अथवा दूसरे लोगोंके साथ, जो हमारी समझसे भूलमें हों, हमें किसप्रकारका व्यवहार करना चाहिये—उनके उत्तरसे हमें इस बातकी शिक्षा मिलती है। बड़ी चतुराईके साथ कोमल और मधुर शब्दोंमें वे सतीके सामने प्रश्नके प्रत्येक पहलूपर प्रकाश डालते हैं और कहते हैं कि तुम जाओ भले ही, पर निश्चय समझो, तुम्हारे पिताने मेरा अपमान करके, मुझसे बदला लेनेके अभिप्रायसे यह सारा समारोह करके बड़ी भूल की है। अतः उनके यहाँ उत्सवमें शामिल होकर तुम सुखी न हो सकोगी। इतना कहकर श्रीशिव, जो परिणाममें अपनी अर्द्धाङ्गिनीका भला ही चाहते थे, चुप हो गये—

एतावदुक्त्वा विरराम शङ्करः
पत्न्यङ्गनाशं ह्युभयत्र चिन्तयन्।
(श्रीमद्भा० ४।४।१)

इसप्रकार भगवान् शङ्कर उस सीमाका निर्देश करते हैं जिसके आगे गुरु अथवा आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शकको नहीं जाना चाहिये। आसक्तिकी प्रबलताके कारण हमलोग बहुधा उन लोगोंको, जिनसे हम प्रेम करते हैं, अथवा जिनकी हम सहायता करना चाहते हैं, किसी खास सिद्धान्तको स्वीकार करने अथवा किसी खास कामको करनेके लिये बाध्य करते हैं। इसप्रकार हम उनकी विचार एवं व्यवहारकी स्वतन्त्रताका अपहरण करते हैं जो प्रत्येक पुरुषको ईश्वरकी ओरसे प्राप्त है। किसी जीवकी स्वतन्त्रतामें ज़रा-सी भी बाधा पहुँचाना मानों उसे विद्रोही बनाना है। कारण, इच्छाके व्याघातको चुपचाप सह लेना तो दास-वृत्तिका परिचायक है ही, साथ ही दूसरोंके इसप्रकारके व्यवहारसे सन्तुष्ट होना भी दास-वृत्तिका ही द्योतक है।

(५) अब हमें देखना है कि शङ्करके इतना कहकर चुप हो जानेपर सती क्या करती हैं।

सुहृद्दिदृक्षुः परिशङ्किता भवा-
न्निष्कामती निर्विशती द्विधाऽऽस सा॥
(श्रीमद्भा० ४।४।१)

सतीकी बड़ी विचित्र दशा थी। एक ओर तो अपने मायकेवालोंको देखनेकी प्रबल आकांक्षा और दूसरी ओर शङ्करजीकी इच्छाके प्रतिकूल वहाँ जानेसे उनकी अप्रसन्नताका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भय—इसप्रकार दुविधामें पड़कर वे कभी तो दो-चार कदम बाहर चली जातीं और फिर तुरन्त ही वापस लौट आतीं। यह दस्तूर ही है; किन्तु राग और प्रेम भयकी अपेक्षा अधिक बलवान् होते हैं, इसलिये अन्तमें जीत उन्हींकी होती है। शिवजी यह सब पहले ही ताड़ गये थे। इसीलिये उन्होंने सतीको उन्हींकी इच्छापर छोड़ देना ठीक समझा। उन्हें विश्वास था कि सतीको अपनी भूलका शीघ्र ही पता लग जायगा और फिर वह पूर्ववत् अपने पतिके चरणोंकी शरण ले लेंगी। फिर कभी उनसे ऐसी भूल होनेकी आशङ्का न रह जायगी और उनके उस पुनर्मिलनमें अपार एवं अटूट आनन्द होगा। यही तो वे चाहते थे। वास्तवमें मनुष्य ठोकर खाकर ही सँभलता है। क्या ही अच्छा होता यदि हम भी अपने परिवारके लोगों, इष्ट-मित्रों तथा नौकर-चाकरों आदिके साथ अपने दैनिक व्यवहारमें इसी प्रकार विवेक और प्रेमसे काम लेते।

(६) परन्तु अब हमें यह देखना है कि शङ्करजीने अपनी नव-वधू सतीको इसप्रकार अपनी इच्छाके अनुकूल कार्य करनेकी जो स्वतन्त्रता दे दी उसका परिणाम क्या हुआ। जीवके अन्दर कामना और तत्त्व-जिज्ञासाके बीच जो द्वन्द्व-युद्ध चलता है उसका नमूना हमें सतीके उदाहरणमें प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है—

सुहृद्दिदृक्षाप्रतिघातदुर्मनाः
स्नेहाद्रुदत्यश्रुकलातिविह्वला।
भवं भवान्यप्रतिपूरुषं रुषा
प्रधक्ष्यतीवैक्षत जातवेपथुः॥
(श्रीमद्भा० ४। ४। २)

कामना और भयने विवेकको दबा दिया। उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा मानों उनके स्वामी उन्हें किसी प्रकार समझा-बुझाकर उनके नैहर जानेसे रोकना चाहते हैं। अपने प्रियतमकी इस निष्ठुरताको देखकर उन्हें रुलायी आ गयी। उनकी आँखें डबडबा आयीं और हृदय तलमला उठा। उन्होंने क्रोधभरी दृष्टिसे श्रीशङ्करकी ओर देखा, मानों वह उन्हें भस्म कर देंगी। मारे क्रोधके उनका शरीर काँपने लगा। श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

ततो विनिःश्वस्य सती विहाय तं
शोकेन रोषेण च दूयता हृदा।
पित्रोरगात् स्त्रैणविमूढधीर्गृहान्
प्रेम्णाऽऽत्मनो योऽर्धमदात् सतां प्रियः॥
(श्रीमद्भा० ४। ४। ३)

'सतीका हृदय शोक और रोषसे सन्तप्त हो गया था और स्त्री-स्वभावके कारण उनकी बुद्धि विकृत हो गयी थी। उन्होंने दीर्घ निःश्वास लिया और अपने प्राणवल्लभको, जिन्होंने उन्हें अपना आधा अङ्ग देकर संसारको प्रेमकी पराकाष्ठा-का नमूना दिखलाया था, छोड़कर अपने पिताके घर चली गयीं। नौकर-चाकर सब सन्न रह गये। वे कुछ देरतक किंकर्तव्यविमूढ़ हो खड़े रहे। वे कभी अपने स्वामीकी ओर और कभी स्वामिनीके मुखकी ओर ताकने लगे। उस समय शङ्करजीके चेहरेपर अगाध शान्ति और अतिशय प्रेम झलक रहा था और सतीके चेहरेपर अपार व्यग्रता थी। अन्तमें उन्होंने अपना कर्तव्य स्थिर कर लिया। उन्होंने अपनी व्यथित मालकिनका ही साथ देना उचित समझा। वे उनके पीछे हो लिये। शिवने अगाध प्रेमके साथ गम्भीरतापूर्वक सारी परिस्थितिपर विचार किया। वास्तवमें अपार प्रेममें ही दूरदर्शिताकी शक्ति होती है। पाठक, ज़रा विचार कीजिये, प्रेमका वह पूर्ण विकास कैसा होता होगा जिसपर गृहस्थीके झंझटोंका भी कुछ असर नहीं होता और वह अपने शान्तभावको सदा अक्षुण्ण बनाये रखता है।

(७) निदान सती अपने पिताके यहाँ पहुँचकर यज्ञमें शामिल हुईं। उन्हें न तो यज्ञकी धूमधाम ही अच्छी लगी और न उनकी माता तथा बहिनोंने उनका जो प्रेमपूर्वक आदर-सत्कार किया वही रुचिकर प्रतीत हुआ। दक्षने शिवकी जो उपेक्षा और अवज्ञा की उससे वे मर्माहत हो गयीं। उन्हें सब ओर शिवका तिरस्कार ही मूर्ति धारण किये दीख पड़ता था। वे गम्भीर मुद्राके साथ एकाएक उठकर खड़ी हो गयीं। उन्हें इसप्रकार खड़ी होते देख उपस्थित मण्डलीमें सन्नाटा छा गया और सब लोग विस्मयस्तिमित नेत्रोंसे उनकी ओर देखने लगे। इसके बाद उन्होंने अपने पितासे जो कठोर वचन कहे वे ध्यान देने-योग्य हैं। उनसे श्रीशिवकी वास्तविक महत्ता मूर्तिमती होकर सामने आ जाती है।

न यस्य लोकेऽस्त्यतिशायिनः प्रिय-
स्तथाऽप्रियो देहभृतां प्रियात्मनः।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्मिन् समस्तात्मनि मुक्तवैरके
ऋते भवन्तं कतमः प्रतीपयेत् ॥
दोषान् परेषां हि गुणेष्वसाधवो
गृह्णन्ति केचिन्न भवादृशा द्विज ।
गुणांश्च फल्गून् बहुलीकरिष्णवो
महत्तमास्तेष्वविदद्भवानघम् ॥
(श्रीमद्भा० ४ । ४ । ११-१२)

अर्थात् 'श्रीशिव परात्पर पुरुष हैं, वे सारे सम्बन्धोंसे ऊपर उठे हुए हैं। संसारमें न कोई उनका मित्र है, न शत्रु; फिर भी वे प्राणिमात्रके हृदयेश्वर हैं। वे राग और द्वेषसे सर्वथा मुक्त हैं, तुम्हारे सिवा दूसरा कौन है जो उनके साथ वैर करेगा ? सारे महान् पुरुष एक स्वरसे इस बातका समर्थन करते हैं कि शिवनामका उच्चारण ही मनुष्यको पवित्र कर देनेवाला है और तुम उस पवित्र नामसे घृणा करते हो ! ईश्वरप्राप्तिके लिये उत्सुक महर्षिगण एकमात्र उन्हींपर निर्भर होकर अपने हृदयमें उनका ध्यान करते हैं। वे प्रत्येक वर्गके लोगोंकी कामनाएँ पूर्ण करते हैं, जिससे कि वे स्वतन्त्र कर्मजन्य अनुभवोंके द्वारा ज्ञान लाभ कर सकें।.....' इसके बाद ऐसे शिवद्रोही पितासे उत्पन्न अपने शरीरको शिवजीकी चरणसेवाके अयोग्य समझकर सती वहींपर बैठ गयीं और अपने पतिके चरणोंका ध्यान करते हुए उन्होंने अपने शरीरको योगाग्निके द्वारा भस्म कर दिया। पीछे पार्वतीरूपसे पुनः अवतरित होकर अनन्तकालके लिये शिवसे जा मिलीं। यदि हम भी अपने असन्तुष्ट सम्बन्धियोंको इसी प्रकार स्वाधीनता प्रदान करें तो वे भी एक बार हमसे विच्छिन्न होकर पुनः सदाके लिये हमारे अमायिक प्रेमके पाशमें बँध जायँगे।

(८) सतीने अन्तमें भगवान् शिवके सम्बन्धमें वही बात कही जो ऋषि-मुनि कहते आये हैं। भगवान् शङ्करके जो कार्य क्रोधातुर दक्षको दूषण और अनाचारके रूपमें दिखलायी पड़े थे उन्हींका मैत्रेय ऋषि इसप्रकार निरूपण करते हैं—

हसन्ति यस्याचरितं हि दुर्भगाः
स्वात्मन्नतस्याविदुषः समीहितम् ।
यैर्वस्त्रमाल्याभरणानुलेपनैः
श्वभोजनं स्वात्मतयोपलालितम् ॥
(श्रीमद्भा० ३ । १४ । २७)

अर्थात् उनके आचरणोंपर अभागे मूर्ख ही हँसते हैं। वे तो सदा आत्मानन्दमें मग्न रहते हैं। उन्हें उपाधियुक्त बाह्य प्रपञ्चका ज्ञान नहीं है। उनके लिये रुण्डमुण्डसमाकीर्ण श्मशानभूमि तथा पवित्र देवालय, चिताभस्म और तुलसीदल समान हैं, क्योंकि उनके लिये सब कुछ आत्मानन्दसे ही परिपूर्ण है। भला, सांसारिक जीव उस अवस्थाको कैसे समझ सकते हैं जिन्होंने इस नश्वर शरीरको ही सब कुछ मान रक्खा है। वे लोग इसे नाना प्रकारके वस्त्रालङ्कारों, फूलोंके हारों तथा अङ्गरागादिसे सजाते हैं।

(९) सतीके देहत्यागका संवाद पाकर भगवान् शिवने क्या किया, अब ज़रा यह वृत्तान्त भी सुनिये। वे जानते थे कि जिसप्रकार अपनी इच्छासे ही सती हमसे विलग हुई हैं उसी प्रकार वे हमसे पुनः आ मिलेंगी। परन्तु दक्षका क्या होगा ? शङ्करजी तो उनसे भी प्रेम करते थे और वे चाहते थे कि किसी प्रकार वे भी रास्तेपर आ जायँ। परन्तु यह हो कैसे ! उनकी आँखोंपर अज्ञानका गहरा पर्दा पड़ा हुआ था। ऐसी दशामें कड़वी दवासे ही उनका इलाज हो सकता था। इसीलिये भगवान्ने अपना रौद्र रूप धारण किया।

भवो भवान्या निधनं प्रजापते-
रसत्कृताया अवगम्य नारदात् ।
स्वपार्षदसैन्यं च तदध्वरर्भुभि-
र्विद्रावितं क्रोधमपारमादधे ॥
(श्रीमद्भा० ४ । ५ । १)

आपने वीरभद्रको आज्ञा दी कि दक्षको उचित दण्ड देकर रास्तेपर लाओ और उनके दुरभिसन्धिपूर्ण यज्ञको बन्द कराओ। वीरभद्रको यह आज्ञा देकर वे वहाँसे चल दिये और हिमालयपर जाकर एक वटवृक्षकी छायामें बैठ गये और जगत्के अनादि गुरु—दक्षिणामूर्तिके रूपमें सनक-सनन्दन आदि ऋषि-महर्षियोंको ज्ञानका उपदेश देने लगे। क्या ही अच्छा हो यदि हम भी इसी प्रकार अपने पुत्र-कलत्रादिसे वियोग होनेपर संसारसे विरक्त होकर एकान्तसेवन एवं ज्ञान-चर्चा करें। तभी हम भगवान् शिवके सच्चे अनुयायी बन सकते हैं।

(१०) उधर वीरभद्रने दक्षकी यज्ञशालामें पहुँचकर यज्ञको तहस-नहस कर दिया। भला, अपने भ्रूभङ्गमात्रसे अखिल विश्वका संहार करनेमें समर्थ भगवान् रुद्रकी शक्तिका कौन सामना कर सकता था ? ब्रह्मादि देवगणोंको दक्षकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दुरवस्थापर तरस आ गया। उन्होंने भगवान् भोलेनाथके पास जाकर उनसे दक्षके अपराधोंके लिये क्षमा माँगी और क्रोध संवरण करनेकी प्रार्थना की। भगवान् तो भोलेनाथ ही ठहरे। उन्होंने निर्विकार भावसे कहा कि 'मैं दक्षपर अप्रसन्न नहीं हूँ। मेरा उद्देश्य तो केवल उन्हें कल्याणके मार्गपर लानेका था।' यज्ञ फिरसे आरम्भ हुआ और निर्विघ्नतापूर्वक समाप्त हुआ। दक्षके प्राणोंके साथ उनको खोयी हुई मति भी लौट आयी। उन्होंने इस बातके लिये शिवजीका अनुग्रह माना कि उन्होंने उनका मोह दूरकर उन्हें सर्वनाशसे बचा लिया। भगवान् विष्णु भी वहाँ उपस्थित हुए और दक्षको आशीर्वाद देते हुए बोले—

अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम्।...
...ब्रह्मरुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनुपश्यति॥
(श्रीमद्भा० ४। ७। ५०–५३)

'ब्रह्मा, शिव और मैं—तीनों समस्त प्रपञ्चके परम कारण हैं। हम तीन रूपोंमें विभक्त होकर सृष्टिके विकासमें सहायता करते हैं—ब्रह्मारूपसे विश्वका सृजन और विष्णु-रूपसे उसका पालन करते हैं तथा विश्वरूपी मन्दिरके जीर्ण, सुतरां खोखला हो जानेपर उसे नवजीवन एवं नूतन शक्ति प्रदान करनेके लिये रुद्ररूपसे उसका संहार करते हैं। विकासके लिये जितनी सृजन और पालनकी आवश्यकता है उतनी ही संहारकी भी आवश्यकता है। हमारे अन्दर भेद-दृष्टि करनेवाला सत्यकी उपलब्धि कदापि नहीं कर सकता।'

(११) हमें अन्यत्र भी भगवान् शिवके अनेक भक्ति-भाव उत्पन्न करनेवाले चरित्र-चित्र उपलब्ध होते हैं; पर स्थानाभावके कारण यहाँ हम उनका वर्णन नहीं करेंगे। अवश्य ही, एक प्रसङ्गका उल्लेख किये बिना हम नहीं रह सकते। देव और दानवोंने अमर बना देनेवाले अमृतके लिये समुद्र-मन्थन किया। जगदीश्वरने उन्हें पहले ही चेता दिया था कि पहले तुम्हें अपने परिश्रमका पुरस्कार विषके रूपमें मिलेगा; परन्तु निराश न होना। यदि अध्यवसाय न छोड़कर मन्थन-कार्यमें लगे ही रहोगे तो तुम्हें अवश्य अमृतलाभ होगा। वही हुआ। पहले ही मोचेंपर समुद्रमेंसे कालकूट विष निकला और अपनी प्रलयङ्करी ज्वालाओंसे सबको दग्ध करने लगा। एकाएक सब-के-सब भाग खड़े हुए। देवता और दानव दोनोंके पैर उखड़ गये। मरणभयने भगवान्‌के वचनोंको भी भुलवा दिया। पर वे जाते कहाँ? आखिर उन्होंने शिवजीकी ही शरण ली। गाढ़े समयमें वही उनकी रक्षा करते आये हैं। उनकी शोचनीय दशा देखकर भोलानाथका हृदय दयासे द्रवीभूत हो उठा। यद्यपि उन लोगोंने साहस एवं धैर्यको छोड़कर कायरताका अवलम्बन किया था और इसप्रकार भगवान्‌के आदेशका उल्लङ्घन भी किया था, तथापि शङ्करने अत्यन्त दयापरवश हो उन्हें एक और मौका देना चाहा।

उस समय उन्होंने जगदम्बा पार्वतीके रूपमें अवतरित सतीको (जो अपने लोकोत्तर प्रायश्चित्तसे पवित्र एवं कल्मषहीन हो गयी थीं) जो कुछ कहा वह प्रत्येक परोपकार-शील व्यक्तिके लिये आदर्शस्वरूप है—

आसां प्राणपरीप्सूनां विधेयमभयं हि मे।
एतावान् हि प्रभोरर्थो यद्दीनपरिपालनम्॥
(श्रीमद्भा० ८। ७। ३८)

अर्थात् ये बच्चे दयाके पात्र हैं। इन्हें अपने प्राण प्यारे हैं, अतः मरणभयसे त्रस्त हुए इन बेचारोंको मैं भयरहित करूँगा। जगत्पालकका यह कर्तव्य है कि वह दीन-दुखियों-की रक्षा करे।

बद्धवैरेषु भूतेषु मोहितेष्वात्ममायया।
पुंसः कृपयतो भद्रे सर्वात्मा प्रीयते हरिः॥
.....।
तस्मादिदं गरं भुञ्जे प्रजानां स्वस्तिरस्तु मे॥
(श्रीमद्भा० ८। ७। ३९-४०)

'आँखों और हृदयपर अज्ञानका पर्दा पड़ा रहनेसे ही लोग एक दूसरेसे वैर करने लगते हैं। उन बेचारे भूले हुए जीवोंपर दया करनेसे सर्वात्मा हरि प्रसन्न होते हैं। अतएव मैं इस गरलका पान किये लेता हूँ, भगवान् हरि समस्त प्राणियोंका और मेरा कल्याण करें।' जगन्माताने उनके इस प्रस्तावका सहर्ष अनुमोदन किया। क्यों न हो, वे थीं तो शिवजीकी ही अर्द्धाङ्गिनी न? और शिवजी भी सब लोगोंके देखते-देखते उस विषम विषको चढ़ा गये। परन्तु संहार-शक्तिके अधिष्ठान भगवान् महेशानका वह क्या बिगाड़ सकता था? उस विश्वघातक हलाहलके पानसे उनके गलेमें केवल एक नीला दाग होकर रह गया। भगवान् करें, हम सभी विश्वके कल्याणार्थ इसप्रकारका अनुपम त्याग दिखलाकर उसीको अपने गलेका हार बनायें।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परमार्थ-पत्रावली

(श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पत्र)

[मुझसे एक सज्जनने कई प्रश्न किये थे, जिनका उत्तर मेरे अनुरोधसे श्रीजयदयालजीने लिख दिया । प्रश्नकर्त्ता महाशयका नाम-पता पत्रमें नहीं था, इसीसे वह यहाँ छापा जाता है । इसके बाद क्रमशः अन्यान्य सज्जनोंके समय-समयपर लिखे हुए पत्रोंकी नकल भी छापनेका विचार है । —सम्पादक]

(१)

प्र०—क्या भगवान्‌के लिये दीर्घकालीन रोगोंको, मौतका कारण बनानेकी अपेक्षा मौतको सशरीर भेजकर मनुष्यकी आत्माको मँगवा लेना, अच्छी व्यवस्था नहीं थी ? क्योंकि गरीब मनुष्य द्रव्यादि साधनोंके अभावसे पूर्ण सन्तोषपूर्वक रोगीकी ओषधि वगैरहसे सेवा नहीं कर सकते एवं इन रोगोंको मृत्युका कारण समझकर वे सर्वदा अपने कर्तव्यच्युत होनेका पश्चात्ताप किया करते हैं । यदि मौत सशरीर आकर आत्माको ले जाय तो यह प्रश्न ही सामने नहीं रहेगा एवं किसीको अनुताप करनेकी ही आवश्यकता नहीं पड़ेगी । यदि बीमारीको पूर्वकर्मोंका फल कहें तो फिर मनुष्य बचपन या यौवनमें ही बीमार क्यों नहीं हो जाता ? जीवनके अन्तिम समयमें बीमार होना सन्देहमें डाल देता है कि कहीं मौत ही बहाना करके न आती हो ?

उ०—मनुष्य अल्पज्ञ है, भगवान्‌की कृतियोंके गूढ़ रहस्यका उसको पता नहीं है, अतः भगवान्‌की व्यवस्थामें सन्देह करना या त्रुटि निकालना मनुष्य-कर्तव्यके बाहरकी बात है । ईश्वर आपकी उपर्युक्त व्यवस्थाको ठीक नहीं समझते, यदि यह व्यवस्था ठीक होती तो वे इसीका उपयोग करते । ईश्वरकी प्रत्येक व्यवस्था ज्ञान और न्यायपूर्ण होती है, उसमें कोई कमी नहीं होती । कमीका अनुभव करना ही अपनी अल्पज्ञताका परिचय देना है । रोगोंकी उत्पत्ति मृत्युके लिये प्रधानतया नहीं होती । दीर्घकालतक रोगोंका उपभोग मनुष्यके कर्मोंका फल है । और मृत्यु भी केवल रोगसे ही नहीं होती, और भी बहुत-से कारणोंसे होती है । रोगसे भी कभी-कभी आनुसंगिक मौत हो जाती है और वह शायद सैकड़े-दससे ज्यादा नहीं होती । दीर्घकालीन रोग विशेषतासे तो हमारे पापोंका ही लक्ष्य कराते हैं और मौत भी हमारे भारी पापका ही फल है । ईश्वर सशरीर मृत्युको कितनी जगह भेजते । और यदि इतनी बड़ी संख्यामें मृत्युको सशरीर जाना पड़ता तो वह भी एक दूसरी सृष्टि हो जाती । इतनेपर भी मान लीजिये कि ईश्वर यदि यही प्रबन्ध करते तो क्या दूसरोंको इसमें भी शङ्का करनेकी गुंजाइश नहीं मिलती ? सम्भव है इसमें भी हजारों सन्देह मनुष्यके मनमें उठ खड़े होते । सन्देहका नाश ज्ञानके बिना कभी नहीं हो सकता । ईश्वरके कृत्यमें सन्देहका कारण भी अज्ञान ही है, उसका नाश पूर्ण ज्ञानसे ही सम्भव है । उपनिषद्‌में कहा है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥

अब रही गरीबोंके कर्तव्य-च्युत होनेकी बात, सो साधनके अभावसे रोगीकी भलीभाँति ओषधि वगैरहसे सेवा न कर सकनेके कारण गरीब मनुष्य कर्तव्य-च्युत नहीं होते । कर्तव्य-पालनमें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गरीब और अमीरका प्रश्न ही नहीं है। सामर्थ्य-के अनुसार सेवा करना ही कर्तव्य-पालन है। अतः साधनके अभावमें कर्तव्य-च्युत होनेके लिये पश्चात्ताप करना भूल है।

ओषधि और रुपये मनुष्यको मौतके मुँहसे नहीं बचा सकते। यदि ऐसा ही होता तो राजाओं और धनियोंकी मौत कभी नहीं होती। मौत धन, जन और ओषधिसे दूरकी वस्तु है। यह अपने पूर्व-कर्मोंसे ही होती है, अतएव मृत्युमें कर्तव्य-च्युत होनेकी धारणा करना सर्वथा भूल है।

यदि कहें कि फिर दवा आदिका व्यवहार क्यों किया जाता है तो इसका कारण यह है कि साधारणतः रोग दो प्रकारके होते हैं—कर्मजन्य और दोषजन्य। दोषजन्य रोग दवा आदिके सेवनसे नाश हो जाते हैं पर कर्मजन्य भोगसे ही नाश होते हैं। ओषधि वगैरहसे न मिटनेवाले रोगोंको कर्मजन्य मानना चाहिये।

शीतोष्णादिसे उत्पन्न आगन्तुक बीमारियाँ प्रायः दोषजन्य होती हैं। दवा वगैरह न लेनेसे यह भोगनी पड़ती हैं अतः इनके नाशके लिये ओषधि-का व्यवहार करना युक्तियुक्त ही है।

बचपन और यौवनमें बीमार न होनेका तो प्रश्न ही नहीं बनता, क्योंकि बहुत-से मनुष्य इस अवस्थामें भी ओषधियोंसे न मिटनेवाले कर्मजन्य बीमारियोंका भोग करते दिखलायी पड़ रहे हैं। कर्मजन्य रोग पूर्वकर्मोंके ही फल हैं और वे किसी भी अवस्थामें हो सकते हैं। अतः सेवा या ओषधि-उपचारकी कमी मृत्युका कारण नहीं हो सकती। सेवा और ओषधिका पूर्ण प्रबन्ध रहते हुए भी मनुष्योंकी मृत्यु होती है। वास्तवमें तो मृत्यु किसी रोगके बहानेसे ही आती है यह ठीक नहीं है क्योंकि बिना बीमारीके भी बहुत-से मनुष्योंकी मृत्यु होती देखी जाती है। मृत्युका कारण तो पूर्वके भारी पाप ही हैं। अज्ञानीजन बाहरी कारणोंको ही अपनी मृत्युके निमित्त मान लेते हैं।

प्र०—ईश्वरने अन्य शारीरिक अवयवोंके अनुसार आत्माको भी दृश्य वस्तु क्यों नहीं बनाया? इससे जिनको आत्माके अस्तित्वमें प्रमाणकी आवश्यकता थी, उन्हें प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जाता?

उ०—आत्मा अनादि, चेतन, नित्य, सनातन और ईश्वरका अंश है। इसको किसीने बनाया नहीं है। यह स्वतःसिद्ध सदासे बना हुआ ही है। यदि ईश्वरके द्वारा आत्मा बनाया जाता तो यह प्रश्न हो सकता था, अमूर्त आत्माके लिये यह प्रश्न ही युक्तियुक्त नहीं है।

आत्माके अस्तित्वमें तो प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। जीवित और मृत मनुष्यका अन्तर ही आत्माका स्पष्ट द्योतक है। दूसरे शारीरिक अवयवोंकी तरह आत्मा दृश्य वस्तु नहीं हो सकती, क्योंकि शारीरिक अवयव अनित्य, नाशवान्, जड एवं विकारी हैं, पर अव्यक्त आत्मा इनसे अत्यन्त विलक्षण, नित्य, चेतन और निर्विकार है। इसलिये वह इस अनित्य चर्म-चक्षुओंसे दिखलायी पड़नेयोग्य नहीं हो सकती।

प्र०—बिल्ली, चूहे, कौवे और कुत्तोंको क्या अधिकार है कि वे आकर चुपचाप हमारे दूध, घी और अन्य खाद्य-पदार्थोंको खा या पी जायँ? क्या यह चोरी नहीं है? वे इन चीजोंको अलमारी आदिमें रखनेका व्यर्थ परिश्रम मनुष्योंसे करवाते हैं। मच्छर और साँप जिनको हम कोई नुकसान नहीं पहुँचाते, हमें क्यों डँसते हैं? और हमारी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बीमारी और मृत्युके कारण क्यों बनते हैं ? प्रायः देखा जाता है कि साँप चारपाईपर चढ़ जाते हैं और बेचारे निर्दोष मनुष्यको काट खाते हैं। यदि साँपोंको भगवान् भेजते हैं, तो क्या यह भगवान्‌के हाथों अचानक घात नहीं है ? और क्या भगवान्‌के लिये यह लज्जाका कारण नहीं है ?

यह तो सभी जानते हैं कि मक्खियाँ बहुत-से संक्रामक रोगोंकी कारण हैं, उन्हें हमारी सुन्दर कटोरियों और आरामकी वस्तुओंपर बैठने एवं उन्हें संक्रामक करनेका क्या अधिकार है ? यदि भगवान्‌ने उनको रचा है तो उन्हें इनके भोजन-का प्रबन्ध भी करना चाहिये, यह तो दिन-दहाड़े डकैती है कि वे मनुष्योंका भोजन खा जायँ ?

उ०—बिल्ली, चूहे, कौवे, कुत्ते आदि जीवोंको भी दूध, घी, अन्न आदिके खाने-पीनेका अधिकार है। इनके लिये व्यवस्था करना मनुष्यका ही कर्तव्य है, पर मनुष्योंने अपने कर्तव्यका त्याग कर दिया है। इसीलिये बेचारे इन जीवोंको इस-प्रकारकी क्रिया करनी पड़ती है। मनुष्यकी भाँति ये जीव स्वयं खाद्य-पदार्थोंका उपार्जन नहीं कर सकते, न इनके पास वैसे साधन ही हैं, ये धर्मज्ञानहीन हैं, इसीलिये इनके यह कर्म चोरीमें शामिल नहीं किये जा सकते। इनके पालनरूप अपने इस कर्तव्य-च्युत होनेके कारण ही मनुष्योंको अलमारी आदिमें वस्तुओं-की रक्षा करनेके लिये परिश्रम उठानेकी आवश्यकता पड़ती है।

परम दयालु, न्यायकारी ईश्वरकी प्रेरणासे ही प्रायः मच्छर और साँप हमारे पूर्व-पापोंके कारण हमलोगोंको डसते हैं तथा बीमारियोंकी उत्पत्ति और मौत आदिके हेतु भी हमारे पूर्वके पाप ही हैं। इसमें किसीका दोष नहीं है। जैसे न्याय-कारी राजा अपराधीको उसके हितके लिये दोषा-नुसार ही अपने कर्मचारियोंद्वारा जेल या फाँसी देता है; किन्तु राग-द्वेषसे रहित होनेके कारण वह दोषी नहीं है। वैसे ही ईश्वर मनुष्योंको उनके हितके लिये पूर्वकृत पापोंके अनुसार साँपादिके द्वारा दण्ड भुगताते हैं, परन्तु दोषी नहीं हैं।

चोरी, डकैती, खून आदि करनेवाले अपराधीके किये हुए अपराधोंको तो हमलोग प्रत्यक्ष देखते हैं, इसलिये न्यायकारी राजा एवं राजकर्मचारियोंपर हमारे मनमें दोषकी आशङ्का नहीं होती। किन्तु साँप आदिसे डसे जानेवाले मनुष्यको निर्दोषी समझकर साँप आदि एवं ईश्वरपर जो दोष लगाया जाता है यह हमारा भ्रम है। क्योंकि हम उसके पूर्वकृत पाप-कर्मोंसे अनभिज्ञ हैं। अतएव निश्चय समझना चाहिये कि ईश्वरके द्वारा निर्दोषीको कभी दण्ड नहीं दिया जा सकता।

पर यहाँके न्यायालयोंकी भाँति, ईश्वरके न्याया-लयसे दण्डकी सूचना पहले नहीं दी जाती, क्योंकि ईश्वर अन्तर्यामी हैं इसलिये वहाँका न्याय निर्भ्रान्त होता है। राग-द्वेष-रहित निःस्वार्थ ईश्वरके किये हुए प्रत्येक विधानमें पद-पदपर परम दया भरी हुई है। इसलिये उसके कृत्यमें अचानक घात या लज्जाकी कोई आशङ्का ही नहीं हो सकती। मक्खियोंके प्रश्नका तो इसी उपर्युक्त उत्तर-से अपने आप ही समाधान हो जाता है। उनको भी कुत्ता, बिल्ली और मच्छरादि जीवोंके दृष्टान्त-में ही समझ लेना चाहिये।

प्र०—क्या भगवान् हमें अहिंसा सिखलाते हैं ? यदि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हाँ, तो उन्होंने सिंह, चीता, बाघ, मगरमच्छ आदि हिंसक जीवोंको क्यों बनाया ? और अब तो यह सभी जानते हैं कि प्रत्येक वनस्पतिमें प्राण है। अतएव यदि हम गेहूँ, जौ और चावल इत्यादि खाते हैं तो हम भी उसी प्रकार हत्या करते हैं जिसप्रकार वे मांसाहारी जीव करते हैं। क्या आप मुझसे सहमत हैं ?

उ०—ईश्वर सर्वदा अहिंसाका ही उपदेश देते हैं। जीवोंके पापोंका दण्ड देनेके लिये ईश्वरने हिंसक जीवोंकी रचना की है। अतः ये जीव दोषी नहीं होते। पशु होनेके कारण इन्हें ज्ञान भी नहीं है इसलिये भी इनको पाप नहीं लगता। परन्तु मनुष्योंके लिये यह नियम लागू नहीं हो सकता, उन्हें मांसाहार करनेसे पाप लगता है। क्योंकि मनुष्यको अपने कर्तव्यका ज्ञान है और मनुष्य-जाति मांसाहारके लिये नहीं बनायी गयी। यद्यपि गेहूँ, चावल आदि खाद्य-पदार्थोंमें भी हिंसा है पर मांसाहारीकी अपेक्षा बहुत ही कम है। क्योंकि पशु आदि जीवोंकी हत्यामें गेहूँ, चावल आदि पौधोंके नाशकी अपेक्षा बहुत ही ज्यादा तकलीफ होती है। इसीलिये हमारे शास्त्रकारोंने इस हिंसाकी निवृत्तिके लिये पञ्च-महायज्ञादि प्रायश्चित्त बतलाये हैं (गीता ३।१३)। इन प्रायश्चित्तोंको न करनेवालोंके लिये ही यह हिंसा लागू पड़ती है।

प्र०—क्या मनुष्यकी आयु एक निश्चित वस्तु है या यह स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमोंपर चलनेसे बढ़ायी जा सकती है ?

उ०—पूर्वकृत कर्मोंसे बने हुए प्रारब्धके अनुसार मनुष्यकी आयु निश्चित की हुई ही होती है। परन्तु नये बलवान् कर्मोंसे आयु घट-बढ़ भी सकती है। योगी योगके साधनोंद्वारा इच्छा-मृत्युतककी सामर्थ्य प्राप्त कर सकते हैं और अज्ञानीजन क्रोधके वश होकर अकालमें भी मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं। किन्तु स्वास्थ्य-सम्बन्धी ब्रह्मचर्यादि नियमोंका पालन करने-वाला अकालमृत्युको नहीं प्राप्त होता।

प्र०—क्या कोई ऐसा (अनुभवपूर्ण) प्रमाण है जिससे यह सिद्ध हो सके कि स्वर्ग और नरक भी हमारी पृथिवी या अन्य किसी ग्रहके अनुसार ही भौतिक लोक हैं ?

उ०—स्वर्ग और नरक इस पृथिवीकी भाँति ही भौतिक लोक हैं। इसके लिये शास्त्र प्रमाण हैं और वह श्रद्धापर ही निर्भर है। प्रत्यक्ष एवं अनुभव-पूर्ण बलवान् युक्ति नहीं है जिसके द्वारा यह सब प्रत्यक्षकी भाँति दिखलाये जायँ।

अतएव शास्त्र-प्रमाणको ही प्रमाण मानना चाहिये; क्योंकि शास्त्रके रचयिता ऋषि-मुनि प्रायः सभी त्रिकालज्ञ अनुभवी माने गये हैं।

अद्भुत अज्ञान या अनुपम लवलीनता

जो मन ही मनमोहन है, मनमोहन कैसा,
जो मनमोहन ही मन है, तो मन है कैसा।
मेरे तो मन मनमोहन मिल रहे इस तरा,
जान न पड़ता मन कैसा, मनमोहन कैसा॥

—नवरत्न गिरिधर शर्मा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मनके रहस्य और उसका नियन्त्रण

(लेखक—स्वामीजी श्रीशिवानन्दजी)

१–आत्मा और इन्द्रियोंमें एक सम्बन्ध जोड़नेवाली वस्तुका होना आवश्यक है। यदि हम अन्तःकरणको न मानें तो इससे या तो सदा प्रत्यक्ष होता रहेगा या अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष तब होता है जब आत्मा, इन्द्रिय और विषयका संयोग हो, क्योंकि प्रत्यक्षके यह तीनों ही साधन हैं। यदि इन तीनोंके संयोगसे परिणाम न उत्पन्न हो तो सदा ही प्रत्यक्षका अभाव रहेगा। परन्तु इनमेंसे कोई भी ठीक नहीं, इसलिये हमें अन्तःकरणकी सत्ताको स्वीकार करना पड़ेगा जिसके अवधान और अनवधानपर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्षका होना अवलम्बित है।

२–घण्टी बजानेवाला जब घण्टीके ऊपर दस बार बजाता है तो ध्वनिमें कम्पन होता है और वह कम्पन मनुष्यों और जानवरोंके कानमें पहुँचता है। पशु भी उसको दस बार सुनते हैं। परन्तु मनुष्य उसे सुनता है, गिनता है और अपनी बुद्धिसे जानता है कि 'अब दस बज गया।' उसको यह विशेष ज्ञान है। परन्तु पशुओंको सामान्य ज्ञान ही होता है। इसी विशेष ज्ञानसे मनुष्य और पशुकी पहचान होती है। आहार, निद्रा, भय और मैथुन दोनोंमें समान ही होते हैं। इसी विशेष ज्ञानके द्वारा मनुष्य शुभाशुभ, सत्यासत्य तथा कर्त्तव्याकर्त्तव्यको जानता है।

३–तुम्हें आधे सेकण्ड, एक पलके लिये भी ब्रह्म-चिन्तन नहीं छोड़ना चाहिये। तुम्हें निदिध्यासनपरायण (वह जो चिन्तन और भावनाके साथ ॐके ध्यानमें ही निष्ठावान् होता है) होना चाहिये। तभी ब्रह्मज्ञान सम्भव है।

४–यदि तुम ब्रह्मचर्य और सत्यका अभ्यास करो तो तुम्हें निर्भयता मिलेगी और तभी तुम ब्रह्मका अनुभव भी कर सकोगे। जोंकके समान दृढ़तापूर्वक एकको ही पकड़ो।

५–मनके विकारोंके द्वारा जबतक जीव विभिन्न बाह्य विषयोंसे सम्पर्क रखता है तबतक वह जाग्रत कहलाता है। इसप्रकार मन जीवकी सीमित अवधिकी रचना करता है। मन उन बाह्य विषयोंको ग्रहण करके स्वयमेव स्थूल शरीरसे, जो उन बाह्य विषयोंमेंसे ही एक है, तादात्म्य कर लेता है।

६–बाह्य विषयोंसे पड़े हुए संस्कारोंके द्वारा विकारको प्राप्त होनेपर वह स्वप्न देखता है।

७–इन दोनों सीमाओं (सूक्ष्म और स्थूल शरीर) के परे तथा इन सीमाओंके द्वारा प्राप्त होनेवाले विकारोंकी अनुपस्थितिमें जीव गहरी नींदकी अवस्थामें रहता है, मानो वह आत्मामें डूबा हुआ हो। इस अवस्थाको सुषुप्ति कहते हैं।

८–सुषुप्तिमें मनुष्य सत्के साथ संयुक्त हो जाता है, वह अपने आत्मतत्त्वको प्राप्त हो जाता है। इसीलिये लोग कहते हैं कि वह सोता (स्वपिति) है, क्योंकि वह अपनेको प्राप्त हुआ रहता है (स्वम्+अपित) (छान्दोग्य ६। ८। १)

९–मैनसिल जब शुद्ध किया जाता है और उचित मात्रामें लिया जाता है तो वह अपूर्व लाभ पहुँचाता है। उससे नाना प्रकारकी बीमारियाँ दूर होती हैं। वह रक्तको बढ़ाता है। जब यह शुद्ध नहीं रहता है तथा मात्रासे अधिक लिया जाता है तो इससे बहुत बुरे परिणाम होते हैं। इसी प्रकार जब मन शुद्ध और निर्विषय हो जाता है तो वह मोक्षकी ओर ले जाता है। परन्तु जब वह अशुद्ध और विषयासक्त रहता है तो बन्धनका कारण बनता है।

१०–सङ्कल्प बन्धन है। निःसङ्कल्प ही मोक्ष है। जब मन विषयोंका चिन्तन करता है और उनमें निवास करता है तो वह उन विषयोंका आकार धारण करता है। तब उसे विषयाकार वृत्तिके नामसे पुकारते हैं। मन और उसकी क्रियाओंके निरीक्षण करनेमें साधकको बहुत ही सावधान और जागरित रहना चाहिये। उसे विषयाकारवृत्तिको ब्रह्माकारवृत्तिमें बदल डालना चाहिये। परन्तु जब वह ब्रह्म या असीमका चिन्तन करता है तब ब्रह्माकारवृत्ति बनती है। जैसे ही मन ब्रह्माकारवृत्तिसे विषयाकारवृत्तिमें आ गिरे वैसे ही उसे पुनः ब्रह्माकारवृत्तिके धारण करनेमें लगाना चाहिये। अवश्य ही इसमें कठिन अभ्यास करना होता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

११–योगवाशिष्ठके वैराग्य-प्रकरणका स्वाध्याय करो। तुम्हें वैराग्यके वास्तविक स्वरूपका एक यथार्थ ज्ञान हो जायगा। वासनारहित यथार्थ मानसिक अवस्थाका स्पष्ट वर्णन श्रीरामके जीवनमें दिया गया है। उनके लिये स्वादिष्ट भोजन, सुस्वादु पान (पीनेयोग्य पदार्थ), स्नेहशील माता-पिता, भाई-बन्धु, मित्र, हीरा, मोती, पुष्प, चन्दन, आभूषण, हार, वाटिका आदिमें कुछ भी आकर्षण न था।

१२–मन निरवयव है। यह एक समय केवल एक ही विचार रख सकता है। यह नैयायिकोंका सिद्धान्त है। वेदान्ती भी कहते हैं कि जिसप्रकार कुलटा स्त्री अपने काममें लगे रहनेपर भी अपने प्रेमीमें ही मनको लगाये रखती है उसी प्रकार मन प्रेमीके समान विशेष वृत्ति रखते हुए भी साथ ही घरके कामोंके समान सामान्य वृत्तिमें लगा रह सकता है। इसलिये वह सावयव है।

१३–तुम विषयाकारवृत्ति जैसे घट, पट आदि, तथा ब्रह्माकारवृत्तिको एक ही समय नहीं रख सकते। इससे श्रुति-विरोध होता है और यह व्यावहारिकताके भी विरुद्ध है।

१४–जब मन सावधान होता है और दृग्-इन्द्रियसे सम्बन्धित होता है तो वह केवल देख सकता है सुन नहीं सकता। एक ही समय उससे सुनना और देखना नहीं हो सकता। जब यह श्रोत्र-इन्द्रियसे सम्बन्धित होता है उस समय उससे देखना नहीं बन सकता। यह प्रत्येक मनुष्यका दैनिक अनुभव है। अशिक्षित पुरुष कहते हैं कि वह एक ही समय देख और सुन सकते हैं। मन अत्यन्त वेगयुक्त होकर आगे-पीछे चलता रहता है और लोग समझते हैं कि मन एक ही समयमें दो काम कर सकता है। यह बड़ी भूल है।

१५–जब तुम्हारा मन किसी रुचिकर ग्रन्थके अध्ययनमें पूर्णतया लीन रहता है, तब तुम किसी मनुष्यकी चिल्लाहटको भी नहीं सुन सकते क्योंकि मन उससे (श्रवणके विषयसे) सम्बन्धित नहीं होता। जब तुम किसी विषयका गम्भीरतापूर्वक चिन्तन करते हो उस समय न तो तुम सुन ही सकते हो, न देख ही सकते हो और न अनुभव ही कर सकते हो। समस्त इन्द्रियाँ मनसे वियुक्त होती हैं केवल चित्तकी अनुसन्धान-क्रिया होती रहती है।

१६–मन दो प्रकारका होता है—शुद्ध मन और अशुद्ध मन। बुद्धि भी दो प्रकारकी होती है—व्यावहारिक बुद्धि और शुद्ध बुद्धि। अहङ्कार भी दो प्रकारका होता है—पहला शुद्ध अहङ्कार, जो ब्रह्म (सत् चित् आनन्द) से तादात्म्य करता है, और दूसरा अशुद्ध अहङ्कार जो शरीरके साथ तादात्म्य स्थापित करता है। सङ्कल्प भी दो प्रकारका होता है—शुद्ध सङ्कल्प (ईश्वर-चिन्तन), और अशुद्ध सङ्कल्प अर्थात् शरीर और बाह्य जगत्का चिन्तन।

१७–हिरण्यगर्भ (जिसे कार्य-ब्रह्म और सम्भूति कहते हैं) विश्वमन (cosmic mind) है। उसे विश्वप्राण भी कहते हैं। सबके मनोंकी समष्टि ही हिरण्यगर्भ है। सबके सूक्ष्म-शरीरकी समष्टि हिरण्यगर्भ है। वह वैद्युत विश्व-शक्तिग्रहका स्थापन करता है। विभिन्न जीव विभिन्न छोटे-छोटे पिण्डोंकी स्थापना करते हैं। उस शक्तिग्रहसे विद्युत् पृथक्रूपसे अवस्थित तामेके तारोंके द्वारा पिण्ड (Bulb) में प्रवाहित होता है। इसी प्रकार हिरण्यगर्भसे जीवोंमें शक्तिका प्रवाह होता है।

१८–ध्यान, पवित्रता और चित्तैकाग्र्यके द्वारा दिव्य दृष्टि, ज्ञानचक्षुको उन्नत करो।

१९–जीव-भावनाको, उसके विपरीत 'अहं ब्रह्मास्मि भावना' में रमण करते हुए, तुम्हें नष्ट करना होगा। जीव-भावनाकी सृष्टि व्यावहारिक बुद्धिसे होती है। शुद्ध बुद्धिको उन्नत करते हुए तुम्हें इस व्यावहारिक बुद्धिका नाश करना होगा।

२०–अशुद्ध मन ही, अशुद्ध सङ्कल्प, व्यावहारिक बुद्धि और अशुद्ध अहङ्कार—इन तीनोंकी सृष्टि करके दोषपूर्ण चक्रका निर्माण करता है। यह तीनों एक दूसरेके सहयोगमें काम करते हैं। मनका बीज अहङ्कार है। मन विचारोंका एक बण्डल है। सब विचारोंका मूल कारण है 'मैं' का विचार। मनसे प्रादुर्भूत होनेवाला पहला विचार यही है। बुद्धि अहङ्कारका आधार है। बुद्धि ही तुम्हें भौतिक शरीरके साथ तादात्म्य करनेके लिये प्रेरित करती है। बुद्धि ही भेद और नानाभावकी रचना करती है।

२१–तुम्हें केवल सङ्कल्प ही नहीं, बल्कि स्वयं मन और अहंवृत्तिको नष्ट करना होगा जो शरीरके साथ तादात्म्य स्थापित करते हैं तथा व्यावहारिक बुद्धिको भी नष्ट करना होगा जो जीवभाव और जगत्में नानात्वकी सृष्टि करती है। तभी तुम स्वरूप (अर्थात् सहज सच्चिदानन्दस्वरूप)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में स्थित होगे। इसीको यथार्थ मौनावस्था अथवा अद्वैत ब्रह्मनिष्ठा कहते हैं। मनको वशमें करनेका अर्थ है बुद्धि-को वशमें करना तथा तुच्छ 'अहम्' मिथ्या आत्माहङ्कारका नाश करना, जो पाश्चात्य देशवासियोंके लिये एक बहुत बड़ी वस्तु है।

२२–तुम्हें मनके प्रति उदारता नहीं दिखलानी चाहिये। यदि तुम आज इसे एक प्रकारके विलासको इख्तियार करने दोगे तो कल यह दो विलास-सामग्रीकी माँग करेगा और प्रतिदिन इसकी विलासिता बढ़ती जायगी। तब यह अति लालित शिशुके समान हो जायगा 'लालने बहवो दोषाः ताडने बहवो गुणाः'—यह कहावत मनपर भी लागू होती है। मनकी अवस्था शिशुसे भी खराब होती है। जब कभी इससे कोई भारी भूल हो जाय तो उपवासके द्वारा तुम्हें इसे दण्ड देना होगा। महात्मा लोग ऐसा ही करते हैं, इसीसे वह शुद्ध हो जाते हैं। वे अपने सङ्कल्पको शुद्ध, दृढ़ और अदम्य बना लेते हैं। इन्द्रियों-को उनके अनुकूल स्थानमें रक्खो। उन्हें एक इञ्च भी इधर-उधर न हटने दो। जब कभी कोई इन्द्रिय सर उठानेके लिये फुफुकार छोड़े तो विवेकका दण्ड सँभालो। इस साधनसे तुम्हारा चित्त एकाग्र हो जायगा।

२३–विराग दो प्रकारका होता है—करण-वैराग्य और विवेकपूर्वक वैराग्य। करण-वैराग्य ऐन्द्रिय दुःखोंके द्वारा उत्पन्न होता है और विवेकपूर्वक वैराग्य सदसत्-विवेकके द्वारा उत्पन्न होता है। जिनको पहला वैराग्य होता है उनका मन त्यक्त वस्तुओंके पुनर्ग्रहणके लिये मौका खोजता रहता है। जैसे ही मौका मिलता है मनुष्य-का पतन हो जाता है और वह अपनी पहली अवस्थाको प्राप्त हो जाता है। प्रतिक्रियाके द्वारा दूनी शक्तिसे तथा ईर्ष्यासे प्रेरित हो विषय उसका सत्यानाश कर डालते हैं। परन्तु जो मनुष्य विवेकके द्वारा विषयोंको असत्, मायात्मक पदार्थ समझकर उनका त्याग करता है, उसकी आध्यात्मिक उन्नति होती है। उसका पतन नहीं होता।

२४–वासना-त्यागके द्वारा उत्पन्न होनेवाली मानसिक शान्तिको शम कहते हैं। जिस मनुष्यमें शम होता है उसका अन्तःकरण हिमसे भी अधिक शीतल होता है। शमयुक्त मनुष्यके अन्तःकरणकी शीतलतासे चन्द्रमाकी शीतलताकी समानता नहीं की जा सकती। साधारणतः सांसारिक पुरुषका अन्तःकरण एक धधकती भट्ठी है। शम-सम्पन्न पुरुष इष्टकी प्राप्तिसे न तो हर्षित होता है और न अनिष्टकी प्राप्तिसे दुःखित होता है। उसका मन सदा समाहित होता है। उसका कोई शत्रु नहीं होता। शम-सम्पन्न मनुष्यके आध्यात्मिक आनन्दके साथ तुलना करने-पर सम्राट्का सुख अकिञ्चित्कर जान पड़ता है। मोक्षके चार द्वाररक्षकोंमें एक शम भी है। यदि तुम्हें शमकी प्राप्ति हो गयी तो इसके तीन दूसरे साथी सन्तोष, विचार और सत्संग भी प्राप्त हो जायँगे।

२५–मुक्तिकी प्राप्तिमें सत्संग बहुत ही सहायक होता है। इसके सिवा दूसरा कोई मार्ग है ही नहीं। यह मनका बारम्बार निरीक्षण करता है तथा इसके प्रवाह और राजसिक स्वभावको परिवर्तित करता है। यह पुराने विषयजन्य संस्कारोंको हटाता है तथा मनको सात्त्विक संस्कारोंसे भरता है। यह आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तीनों तापोंको नष्ट कर अन्तःकरणको शीतल करता है। यह मोह-को नष्ट करता है। यदि सत्संग प्राप्त है तो तुम्हें किसी तीर्थयात्राकी आवश्यकता नहीं। सत्संग तीर्थोंका तीर्थ है। जहाँ कहीं सत्संग है, वहाँ पवित्र त्रिवेणी पहलेसे ही वर्तमान है।

२६–जब ज्ञानी पुरुष बाहर देखते हैं, तो वे केवल देखते ही हैं, पर जिसप्रकार सांसारिक पुरुषोंकी वृत्ति विषयाकार होती है वैसे उनकी वृत्ति विषयाकार नहीं होती।

२७–जपसे पापोंका नाश होता है, इन्द्रियाँ दुर्बल हो जाती हैं, चित्त शुद्ध हो जाता और एकाग्रताकी प्राप्ति होती है।

२८–ध्यान और एकाग्रतामें तुम्हें मनको नाना प्रकारसे संयमित करना होगा। केवल तभी स्थूल मन सूक्ष्म हो सकेगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीकृष्णकी छात्रावस्था *

(लेखक—पं० श्रीविष्णुदत्तजी शर्मा बी० ए०)

कंस-कण्टकके उखाड़े जानेके पश्चात् जब द्विजाति-संस्कार हो चुका, तब श्रीकृष्णकी गुरुकुलमें रहनेकी इच्छा हुई। उस समय उज्जैन-नगरीमें काश्य अर्थात् 'काश' गोत्रवाले अथवा 'काशी' में उत्पन्न हुए सान्दीपनि नामक सब विद्या और कलाओंसे सम्पन्न पण्डित रहते थे। उनके पास समिध हाथमें ले शास्त्रोक्त विधिसे जाकर इन्द्रियोंको वशमें रख और गुरुसे कैसा शुद्ध व्यवहार रखना चाहिये मानों यह सीख औरोंको देते हुए भगवान् श्रीकृष्ण भक्तिसे गुरुकी वैसी सेवा करने लगे जैसी देवताकी की जाती है। गुरु भी तीक्ष्णबुद्धि देखकर भगवान्‌का आदर करते और निष्कपट, स्नेहयुक्त सेवाओंसे उनपर प्रसन्न होते थे। यथार्थमें यह भी भगवान्‌की लोकसंग्रहके लिये मानवलीला मात्र थी, जैसा कि भागवतमें कहा है—

प्रभवौ सर्वविद्यानां सर्वज्ञौ जगदीश्वरौ।
नान्यसिद्धामलज्ञानं गूहमानौ नरेहितैः॥
(१०।४५।३०)

सब विद्याएँ उनसे निकली थीं। वे सर्वज्ञ और जगत्‌के स्वामी थे। निर्मल ज्ञान उनको स्वतः सिद्ध था। परन्तु वे उसको छिपा रहे थे, क्योंकि उनको मनुष्योंकी भाँति लीला करनी थी।

गुरुकुलवास, गुरु और गुरुशुश्रूषाकी महिमा तथा गुरुकुलमें कैसे-कैसे काम करने पड़ते थे और कैसे-कैसे कष्ट उठाने पड़ते थे, इन विषयोंको पुराणाचार्यने सुदामाकी कथा (भागवत १०।८०) का सुन्दर प्रसङ्ग लाकर प्रकट कर दिया है। भगवान् अपने उस समयके सहपाठी सुदामासे कहते हैं—

'ब्रह्मन्, क्या आपको कभी आपका-हमारा गुरुकुलवाला ब्रह्मचर्याश्रमका वृत्तान्त भी स्मरण आता है? गुरुकुल भी कैसा स्थान है कि जहाँ द्विजातिको धर्मादिका वह ज्ञान होता है जिससे अविद्यामय संसारसे छुटकारा हो जाता है। द्विजाति और उसके सत्कर्मोंका उत्पत्ति-स्थान, सच पूछिये तो यह गुरुकुलवास अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम ही है, गर्भ नहीं; क्योंकि उसमेंसे तो शूद्र भी उत्पन्न होता है। इसीलिये भिन्न-भिन्न आश्रमवालोंको भिन्न-भिन्न ज्ञान देनेवाला गुरु वैसा ही पूज्य है, जैसा मैं हूँ। सचमुच वर्ण और आश्रमवालोंमें वे ही लोग पुरुषार्थकुशल हैं जो गुरुरूप मेरे उपदेशसे सुखपूर्वक संसारसागरको तर जाते हैं। सब भूतोंका आत्मा होकर भी मैं पञ्च-महायज्ञादि गृहस्थधर्म, ब्रह्मचारिधर्म, अनशनादि वानप्रस्थधर्म और इन्द्रियनिग्रहादि यतिधर्मसे उतना प्रसन्न नहीं होता हूँ, जितना गुरुकी सेवासे। हे ब्रह्मन्! क्या वह दिन भी आपको स्मरण आता है, जब गुरुपत्नीने हमको ईंधन लानेके लिये वनमें भेजा था? शीतऋतु लग गयी थी। हम बड़े वनमें गये हुए थे। इतनेमें आँधी चलने लगी। मूसलधार पानी बरसने लगा। निठुर बादल गरजने लगे। थोड़ी देरमें साँझ हो गयी। चारों ओर अँधेरा छा गया। जल-ही-जल हो जानेसे यह नहीं जान पड़ता था कि कहाँ नीचा और कहाँ ऊँचा है। उस जलमय वनमें इसप्रकार वायु और पानीसे अत्यन्त कष्ट पाते हुए, मार्ग नहीं

* कुछ देर भगवच्चर्चा करने, 'श्रीकृष्णाङ्क' में यह विषय छूट गया था, इस कमीको पूरा करने और जिनको ६४ कलाएँ स्पष्ट तौरपर जाननेका चाव हो, उनके विनोदके लिये ही यह चापल्य है। —लेखक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पाकर आपसमें हाथ पकड़े हुए, व्याकुल होकर हम भटकते रहे। हमको न आये जानकर दिन उगते ही आचार्य सान्दीपनि खोजनेको निकले और जब हमें कष्टमें देखा तो दया करके कहने लगे कि 'हे पुत्रो! हमारे लिये तुमको बहुत कष्ट उठाना पड़ा। प्राणियोंको यह आत्मा सबसे प्यारा है, पर हमारी सेवाके आगे तुमने इसको कुछ नहीं गिना। शुद्ध भक्तिसे अपने सब कुछ अर्थ और देह गुरुके लिये अर्पण कर देना—सच्छिष्योंको गुरुका यही उपकार करना चाहिये। हे द्विजश्रेष्ठो! मैं तुमसे प्रसन्न हुआ। तुम्हारे मनोरथ सफल हों और तुम्हारे पढ़े हुए वेद इस लोक और परलोकमें सदा उपस्थित और सारवान् रहकर, तुम्हारे अभीष्ट फलको देनेमें समर्थ रहें।' ऐसे अनेक वृत्तान्त गुरुकुलमें रहते समय हुआ करते थे। क्या वे आपको स्मरण हैं? गुरुकी कृपासे ही मनुष्य पूर्णकाम होकर मुक्तिके लिये समर्थ होता है।

गुरु सान्दीपनिने श्रीकृष्णको (१) चारों वेद, (२) शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्दःशास्त्र, ज्योतिष और निरुक्त—ये छः वेदाङ्ग, (३) उपनिषद्, (४) सरहस्य, अर्थात् मन्त्रदेवताके ज्ञानसहित धनुर्वेद, (५) मन्वादिके कहे हुए धर्मशास्त्र, (६) मीमांसादि न्यायमार्ग (दर्शन), (७) तर्कविद्या और (८) सन्धि, विग्रह, ध्यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय—ऐसे छः प्रकारकी, राजनीति—ये सिखाये। भगवान्ने भी प्रबल बुद्धिके कारण गुरुके एक बेर कहनेमात्रसे ही इनको सीख लिया। विष्णुपुराणके मतसे चौसठ दिन-रातमें ही भगवान्ने सब चौसठ कलाएँ (Mechanical and Fine Arts अथवा Arts and Accomplishments) सीख लीं। वे कलाएँ नीचे लिखी जाती हैं—

चौसठ कलाएँ

१—**गीतकला**—गानशिक्षा, गवैयापन, ताल, राग और स्वरोंका जानना और स्वरादिका मिलाना। यह छः प्रकारकी है।

२—**वाद्यकला**—बीन आदि बाजोंको 'तत', मृदङ्ग आदिको 'आनद्ध' बाँसुरी आदिको 'सुषिर' और झाँझ, मजीरे आदिको 'घन' कहते हैं। इन सबको बजानेकी कला भी छः प्रकारकी है।

३—**नृत्यकला**—अङ्गको नचाना। यह कला भी छः प्रकारकी है।

४—**नाट्यकला**—नटोंके करतब और नाटक खेलना।

५—**आलेख्यकला**—चित्र और पुस्तकोंका (Calligraphy) लिखना।

६—**विशेषकच्छेद्यकला**—स्तनादि अङ्गोंमें केसर आदि पदार्थोंसे भाँति-भाँतिके चित्र बनाना तथा तिलक करनेके प्रकार। गोदना (Tattoo) भी इसीके अन्तर्गत हो सकता है।

७—**पूजाप्रकारादिकला**—अथवा 'तण्डुलकुसुमवलिविकाराः।' फूल चावल आदिसे मण्डल आदि बनाना।

८—**पुष्पास्तरणकला**—पुष्पादिसे शय्यादि बनाना।

९—**रागकला**—दाँतों, कपड़ों या अङ्गोंको रँगनेकी सामग्री और विधिका ज्ञान। जैसे दाँतोंके लिये मञ्जन, मिस्सी आदि। अङ्गोंके लिये चन्दन, केसर, महावर, मेहदी आदि।

१०—**मणिभूरचनकला**—मणियोंकी छत(फर्श)बिछाना। जैसे पाण्डवोंकी सभामें मयने बिछायी थी। कहीं ऋतुके अनुकूल मणियोंसे उसको बिछाना लिखा है।

११—**शयनरचनकला**—पलँग, माच आदि बनाना।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

१२-**जलस्तम्भयानवाद्याघातकला**-मन्त्रादिसे पानीको थाँभना, पानीमें चलना, जलतरङ्ग आदि जलवाद्य बजाना, पानीके छींटे, डोलची, पिचकारी आदि मारना, या गुलाबपाशसे काम लेना।

१३-**चित्रयोगकला**-अनेक अद्भुत वस्तु दिखाना। जवानसे बूढ़ा कर देना आदि अवस्था-परिवर्तन।

१४-**माल्यग्रथनकला**-पुष्पोंके हार, गजरे, अंगूठी आदि बनाना।

१५-**शेखरापीड़योजनकला**-पुष्पादिके सेहरे, कलँगी आदि बनाना।

१६-**नेपथ्यकला**-गहने, कपड़े आदिसे शृङ्गार करना।

१७-**कर्णपत्रभङ्गकला**-कान आदि अङ्गोंमें कस्तूरी, केसर, चन्दन आदि पदार्थोंसे चित्रकारी करना।

१८-**सुगन्धियोजनकला**-बुक्का, इत्र, फुलैल आदि सुगन्धित पदार्थ बनाना।

१९-**भूषादियोजनकला**-सुनार और जड़ियेका काम।

२०-**ऐन्द्रजालकला**-मिट्टी आदिको सुवर्ण आदि कर दिखलाना। बाजीगरी। जादूगरी।

२१-**कौचुमारकला**-कुचुमार ऋषिकी निकाली हुई भाँति-भाँतिके वेष बनाने और चतुर लोगोंको भी धोखा देनेकी कला। बहुरूपियाका काम अथवा मुँह और शरीरमें मलने आदिके लिये ऐसे उबटन आदि बनाना जिससे कुरूप भी सुन्दर हो जायँ।

२२-**हस्तलाघवकला**-तीर चलाने आदिमें या किसी चीजको छिपाने या उड़ा देनेमें हाथकी सफाई। लाग।

२३-**सौदरकला**-नाना प्रकारके भोजन-पदार्थ बनाना।

२४-**पानकादिकला**-अथवा 'पानकरसरागाऽऽसवयोजनम्।' नाना प्रकारके शर्बत आदि पेय और लेह्य बनाना।

२५-**सूचिकला**-सीना-पिरोना, रफू करना, कसीदे, बेलबूटे आदि निकालना। सूईका काम।

२६-**सूत्रक्रीड़ाकला**-डोरोंसे पुतली आदि नचाना। कहीं धागों या डोरोंके भाँति-भाँतिके करतब माने हैं।

२७-**वाद्ययन्त्रनिर्माणकला**-भाँति-भाँतिके बाजे आदि बनाना।

२८-**प्रहेलिकाकला**-पहेली आदि कूट-वाक्योंका अर्थ निकालना।

२९-**प्रतिमालाकला**-नाना प्रकारकी मूर्तियाँ बनाना। कोई कहते हैं कि यह कला छायासे चित्र बनानेकी है। कोई इसको अन्त्याक्षरी कविता या बैतबाजी कहते हैं। जैसे—

प्रतिश्लोकं क्रमाद्यत्र सन्धायाक्षरमन्तिमम्।
पठेतां श्लोकमन्योऽन्यं प्रतिमालेति सोच्यते॥

३०-**दुर्वचकला**-अथवा 'दुर्वाचकयोगाः'। दुष्टोंको धोखा देना, जैसा कि पुलिस या सी० आई० डी० के लोगोंका काम होता है। किसी-किसीके मतसे बाँचनेमें कठिन लेखोंको बाँच लेनेके उपाय (Deciphering)। जिनका उच्चारण कठिन हो ऐसे वाक्योंको बोल लेना—यह भी इसका अर्थ हो सकता है।

३१-**पुस्तकवाचनकला**-जल्दी-जल्दी पुस्तक बाँचना। किसीके मतसे लिखते हुए मनुष्यके हाथकी चेष्टाको देखकर ही अक्षर बाँच लेना। किसीके मतसे शृङ्गारादि रसोंके अनुकूल गीत और स्वरसे काव्योंको पढ़ना।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

३२–नाटकाख्यायिकादिकला—नाटक, आख्यायिका आदिकी रचना करना।

३३–काव्यसमस्यापूरणकला–समस्यापूर्ति करना।

३४–पट्टिकावेत्रवाणादिकला–नेवार, बाध, बेत आदिसे चारपाई आदि बुनना।

३५–तर्कुकर्मकला–जुलाहेका काम।

३६–तक्षणकला–काष्ठादिके खम्भे आदि बनाना। बढ़ईका काम। कोई सङ्गतराशके कामको भी इसके अन्तर्गत मानते हैं।

३७–वास्तुविद्याकला–घर, महल आदि बनाना।

३८–सुवर्णरूप्यरत्नादिपरीक्षाकला–सोना, चाँदी और रत्नादिकी परख। सुनार और जौहरीका काम।

३९–धातुवादकला–ताँबा आदिक धातुओंको सोना बना देना। कीमियागरी (Alchemy)। कच्ची धातुओंको साफ करना और मिली हुईको अलग-अलग कर देना—यह भी इसके अन्तर्गत हो सकता है।

४०–मणिरागज्ञानकला–रत्नोंको रँगना।

४१–आकरकला–पृथिवीको देखकर सुवर्ण, रत्न आदिकी खानोंका होना जान लेना।

४२–वृक्षायुर्वेदकला–वृक्षोंके लगाने, उनके पोषण और रक्षण करने और उनके रोगोंकी चिकित्सा करनेके उपाय आदि।

४३–मेषकुक्कुटलावादियुद्धकला–मेंढा, मुर्गा, तीतर, बटेर आदिको लड़ानेकी रीति।

४४–शुकसारिकापाठकला–तोता और मैनाको पढ़ानेकी रीति।

४५–उत्सादनकला–मन्त्रोंसे शत्रुका उच्चाटन करना। अथवा उबटन करना। कहीं इसके आगे 'संवाहनकला' है। उसका अर्थ हाथ, पैर, सिर आदि चाँपना है।

४६–केशमार्जनकला–बालोंको शुद्ध करना। इसमें उनका धोना, तेल लगाना, कंघी करना, गूँथना आदि शृंगार भी अन्तर्गत हैं। कहीं इसके स्थानमें 'केशमर्दनकला' है। वहाँ अर्थ सिरमें तेल मलना है, क्योंकि सिरको मलनेमें बाल भी मलनेमें आते हैं।

४७–अक्षरमुष्टिकाकथनकला–लुप्त अक्षर और मुट्ठीके भीतरकी वस्तु बतला देना।

४८–म्लेच्छितादिकला–विदेशी भाषा और शास्त्रोंको जानना। कहीं गूढ़ सलाहके लिये जो अक्षरोंको बदलकर भाषा लिखी जाती है वह है। (Cipher codes ?)

४९–देशभाषाकला-देशकी भिन्न-भिन्न भाषाओं और बोलियों (Vernaculars and dialects) को जानना।

५०–पुष्पशकटीकला–आकाशवाणीसे भला-बुरा भविष्यत्-फल जानना। कहीं बादलकी गरज, बिजलीकी चमक आदि दैवी लक्षणोंको ही 'आकाशवाणी' माना है। कहीं इस कलासे मिला हुआ और कहीं अलग 'निमित्तज्ञानम्' यह पद है।

५१–यन्त्रमातृकाकला–घण्टा, टोकरी आदि पूजा-यन्त्रोंको बनाना। यान (सवारी) के लिये अथवा जलमें लड़ाई करनेके लिये जीवसे युक्त अथवा अयुक्त यन्त्र बनाना—कहीं यह अर्थ लिया है। यह शास्त्र विश्वकर्माका निकाला हुआ बतलाया जाता है।

५२–मातृकासंवाच्यकला–नाना प्रकारकी भाषा बनाना। कहीं इसकी जगह 'धारणमातृका'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कला है, जिसका अर्थ पढ़े हुएको सदा स्मरण रखना है। आगे 'सम्पाठ्य' कला है, जिसका अर्थ मिलकर पढ़ना, अर्थात् ग्रन्थको, पढ़े हुएके साथ, बिना पढ़ा पढ़े—यह है।

५३-मानसकाव्यकला-दूसरेके चित्तके अभिप्रायपर कविता करना।

५४-अभिधानकोषकला-अनेक कोशोंका ज्ञान।

५५-छन्दोज्ञानकला-नाना प्रकारके छन्दोंके विषयोंमें निपुणता।

५६-क्रियाविकल्पकला-नाना प्रकारके उपायोंसे एक और एक उपायसे अनेक वस्तु बनाना। यह कला बहुत चतुराई चाहती है। किसीने इसका अर्थ 'क्रियाके प्रभावको पलट देना' लिखा है।

५७-छलितयोगकला-कूटनीति आदि। छल। ऐयारी।

५८-वस्त्रगुप्तिकला-रूई आदिके ऐसे कपड़े बनाना कि रेशम आदिका धोखा हो।

५९-द्यूतकला-स्पष्ट है।

६०-आकर्षक्रीड़ा-'आकर्ष' कोई ऐसी वस्तु है जिससे दूरकी वस्तुएँ हिलने अथवा नाचने लग जायँ, जैसे चुम्बक या डोर। इस कलाका यहाँ ऐसा ही अर्थ जान पड़ता है। 'आकर्ष' का प्रसिद्ध अर्थ पासा है। इस अर्थमें इस कलाका अर्थ पासा फेंकना होगा।

६१-बालक्रीड़ाकला-बालकोचित खेल।

६२-वैनायिकीकला-भूत, प्रेत आदिके मन्त्र सिद्ध करना। कहीं विनयाचार या हाथी आदिकी शिक्षा है।

६३-वैजयिकीकला-वादविवादादिमें जीतनेकी रीति। कहीं 'अपराजिता' आदि दैवी और शस्त्रविद्या आदि मानुषी, विजयकी रीति है।

६४-वैतालिकीकला-सिद्धिके लिये वेताल आदिकी उपासना। कहीं इसकी जगह 'व्यायामिकी' कला है, जिसका अर्थ मृगया आदि व्यायामके प्रकार हैं।

इसप्रकार श्रीकृष्णने उस समय इस लोक और परलोकके लिये उपयोगिनी जितनी विद्या और कलाएँ प्रचलित थीं, सब सीख लीं। तब उन्होंने गुरुसे दक्षिणा चाहनेके लिये प्रार्थना की। गुरु उनकी मनुष्योंमें दुर्लभ दिव्य बुद्धि देख ही चुके थे, जिसके बलसे उन्होंने बिना ही परिश्रम केवल चौसठ दिनोंमें सब विद्याएँ सीख ली थीं। इसलिये उनको महापुरुष समझकर कोई ऐसी गुरुदक्षिणा लेनी चाही, जिससे उनका कोई असाधारण मनोरथ पूर्ण हो सकता। इस प्रयोजनसे उन्होंने अपनी स्त्रीसे सलाह की। कुछ वर्ष पहले उनका पुत्र प्रभासक्षेत्रके समुद्रके पानीमें खेल रहा था। वहाँ उसको शङ्खासुर खा गया था। पत्नीकी सलाहसे उसीको गुरुने गुरुदक्षिणाके रूपमें माँग लिया।

'तथास्तु' कहकर भगवान् रथपर चढ़कर प्रभास-क्षेत्र पहुँचे। और वहाँ समुद्रके किनारे जाकर कुछ देर ठहरे। समुद्रने उनको परमेश्वर जानकर यथा-योग्य पूजा की। भगवान्‌ने उससे कहा, 'तुमने अपनी बड़ी-बड़ी हिलोरोंसे हमारे गुरुपुत्रको हर लिया था, उसको जल्दी वापस लौटा दो।' समुद्रने उत्तर दिया, 'मैंने बालकको नहीं हरा, मेरे पानीके भीतर शङ्खरूप एक बड़ा दैत्य पञ्चजन रहता है। निस्सन्देह उसीने आपके गुरुपुत्रको हरण किया है।' भगवान्‌ने तुरन्त जलके भीतर धँसकर उस दैत्यको मार डाला, पर उसके पेटमें बच्चा नहीं मिला। तब उसके शरीरमेंसे पाञ्चजन्य शङ्खको निकालकर भगवान् लौट आये और शङ्खको छेद करके उसे बजानेलायक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बना लिया। वस्तुतः भगवान् पहले ही जानते थे कि गुरुपुत्र समुद्रमें नहीं है, तथापि उनको शङ्ख लेना था, इसलिये नरलीला दिखानेको, गुरुपुत्रको ढूँढ़नेके मिससे, उन्होंने यह कार्य किया।

तदनन्तर श्रीकृष्ण यमराजकी नगरी संयमनीको गये। वहाँ भगवान्ने वह शङ्ख बजाया। कहते हैं कि उस ध्वनिको सुनकर यमलोकका नरक 'असि-पत्रवन' (जहाँ कि कोड़ोंकी मारसे इधर-उधर भागते हुए पापी लोग दोनों ओर तलवारकी-सी पैनी धारवाले पत्तोंके वृक्षोंसे भिड़कर छिन्नभिन्न होते हैं) शीर्णपत्र (जिसके पत्ते बिखर गये) हो गया, 'रौरव' (भयङ्कर) अरौरव हो गया, 'भैरव' (भयङ्कर) अभैरव हो गया, और 'कुम्भीपाक' (जहाँ पापी लोग जलते हुए तेलमें पकाये जाते हैं) अपाचक (तेल ठण्डा हो जानेसे) हो गया, और नारकी जीव पाप नष्ट हो जानेसे वैकुण्ठ पहुँच गये। यमराजने बड़ी भक्तिके साथ भगवान्की पूजा की और नम्र होकर निवेदन किया, 'हे लीलामनुष्य ! मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?' भगवान्ने कहा, 'तुम तो नहीं, पर तुम्हारे दूत कर्म-वश हमारे गुरुपुत्रको यहाँ ले आये हैं, उसको मेरी आज्ञासे लाओ'। 'तथास्तु' कहकर यम उस बालकको ले आया।

भगवान्ने गुरुपुत्रका, जैसा मरा था वैसा ही शरीर बनाकर, समुद्रसे लाये हुए रत्नादिके साथ, उसको गुरुके भेंटकर निवेदन किया, 'और जो कुछ आप चाहें आज्ञा करें।' गुरुने उत्तर दिया, 'वत्स ! तुमने गुरुदक्षिणा भलीप्रकार सम्पादन कर दी। तुम्हारे-जैसे शिष्यसे गुरुकी कौन-सी कामना बाकी रह सकती है ? हे वीर ! अब तुम अपने घर जाओ; तुम्हारी कीर्ति श्रोताओंको पवित्र करे और तुम्हारे पढ़े हुए वेद नित्य उपस्थित और सारवान् रहकर, इस लोक और परलोकमें तुम्हारे अभीष्ट फलको देनेमें समर्थ हों।'

गुरुकी इसप्रकार अनुज्ञा पाकर श्रीकृष्ण भगवान् वायुके-से वेग और बादलकी-सी गरजवाले रथपर सवार हो अपने नगरको लौट आये। बहुत दिनोंतक न दिखायी देनेसे, उनको देखकर प्रजा ऐसी आनन्दित हुई जैसा कि खोया हुआ धन वापस मिल जानेसे आनन्द होता है।

(श्रीमद्भागवत स्क० १० के ४५ और ८० अध्यायसे)

शिव या राम ?

अवध सु ईस अजनन्द अभिनन्दन हैं,
संग महामाया, देव-सरिता ललाम हैं।
वारिज-विलोचन मदन-मद-मोचन हैं,
भव-भीति-हर नीलकंठ छवि-ग्राम हैं॥
सीत-कर-धारी जटाधारी औ पिनाकधारी,
वरद, विनायक विराजै गिरिधाम हैं।
सिद्ध-मुनि सेवैं, अहिराज सों विराजमान,
शम्भु सुखधाम हैं कि राम अभिराम हैं* ॥

—अमृतलाल माथुर

* इस पद्यमें कैलासस्थित श्रीशङ्कर तथा चित्रकूटस्थ श्रीरामका श्लिष्ट वर्णन है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिवाङ्क*

(लेखक—श्रीनलिनीमोहन सान्याल एम० ए०, भाषातत्त्वरत्न)

ह बृहत् ग्रन्थ मेरे पास पहुँचा। ६६६ पृष्ठ-व्यापी दुरूह ग्रन्थको मेरे समान अल्प-विद्य व्यक्ति भलीभाँति समझकर कितने दिनोंमें बाँच जा सकता है? नावेल तो है नहीं कि पृष्ठोंपर पृष्ठोंका अतिक्रम हो सकता हो। कुछ लेख ऐसे हैं जिनका एक-एक पृष्ठ जीर्ण करनेमें एक-एक, दो-दो, तीन-तीन दिन लग जाते हैं। गृहीको तो सांसारिक काम लगा ही रहता है; किसी काममें फँस जानेसे यदि पढ़ना दो-एक दिन बन्द हो गया तो युक्तियोंका क्रम ठीक-ठीक स्मरण रखना कठिन हो जाता है, दुबारा पढ़नेकी आवश्यकता होती है। प्रायः सभी लेख बड़े ही विद्वत्तापूर्ण हैं। उनकी समालोचना करना मेरेलिये धृष्टता होगी, क्योंकि उनकी त्रुटियाँ, यदि हों भी, मुझसे पकड़ी नहीं जा सकतीं। अतएव ग्रन्थके प्रथमांशके कुछ लेख पढ़कर मेरी धारणाशक्तिके अनुसार मुझे जो क्षीण आलोक प्राप्त हुआ है, मैं उसीका एक क्षीणतर प्रतिबिम्ब उपस्थित करता हूँ। सम्भव है कि मेरी स्थूल बुद्धि लेखोंका ठीक-ठीक आशय ग्रहण नहीं कर सकी हो। एक-आध स्थानपर, जहाँ मेरा प्रवेश नहीं हुआ, मैंने शिष्यवत् एक-आध प्रश्न किया है। कहीं अपनी ओरसे दो बातें कहकर मैंने अल्प-मतित्वका परिचय दिया है। इस ग्रन्थरत्नको अभी अन्ततक पढ़ जाना इस वृद्धके लिये असम्भव है। मैं इसे धीरे-धीरे पढ़ूँगा।

कई लेखोंमें शैव और वैष्णवोंके विरोधका उल्लेख किया गया है। सभी लेखकोंने इसका उत्तम समाधान भी किया है। अज्ञान ही विरोधका मूल है। परमात्मा अखण्ड, अपरिच्छिन्न, सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी, नित्य, सच्चिदानन्द-स्वरूप हैं। उपासकोंने उनकी जितनी मूर्तियोंकी कल्पना की है, वे सब उनके सगुण भावकी हैं। वे स्वयं एक होते हुए भी भक्तोंकी चित्तवृत्तिके अनुसार अनेक रूपोंमें प्रतिभात होते हैं। भेद केवल नाम-रूपका है। नाम-रूपको छोड़ देनेसे जो तत्त्व मिलता है, वही यथार्थ तत्त्व है—वह परमात्माके अतिरिक्त अन्य कोई तत्त्व नहीं।

इस संसारमें दो ही तत्त्व हैं—चेतन तथा अचेतन। चेतनको 'सत्' कहते हैं और अचेतनको 'असत्'। 'सत्' सदा एकरूप रहता है और 'असत्' का परिवर्तन होता है—अथवा यों कहिये कि 'सत्' अपरिणामी है और 'असत्' परिणामी। आत्मा परिणामी नहीं है, अतएव सत् है। सृष्टिके पहले सत्-मात्र था, असत् नहीं था। इसीको परमात्मा, ब्रह्म या शिव कहते हैं। यहाँ शिव त्रिमूर्तिके अन्तर्गत देवता-विशेष शिव नहीं हैं, जो संहारकर्तामात्र हैं। त्रिमूर्तिके अन्य दो देवता—ब्रह्मा तथा विष्णु—सृष्टि-कर्ता तथा पालन-कर्ता हैं। ये तीनों ब्रह्मके अंशमात्र हैं—मूल है ब्रह्म, जो जगत्-कारण है। अनेक स्थलोंमें ब्रह्म-वाचक शिवको पौराणिक देवता शिवके साथ एक करनेके कारण लोगोंके मनमें एक भ्रमात्मक धारणा हो गयी है। क्या यह ठीक है?

परिदृश्यमान जगत्की उत्पत्ति कैसे हुई? सृष्टिके पहले एकमात्र परमात्मा विद्यमान थे। कार्यकी उत्पत्तिके पूर्व जो बिना व्यतिक्रमके रहता है, वही उस कार्यका कारण है। इसलिये वेदान्तमें ब्रह्म ही जगत्का कारण बताया गया है। किन्तु ब्रह्म तो निर्गुण और निष्क्रिय है। तब उनमें जगज्जन्मादि-कारणत्व कैसे रह सकता है? यहीं विभिन्न मतोंका आरम्भ होता है।

जीव और ब्रह्ममें कोई यथार्थ भेद नहीं है। जो भेद प्रतीयमान होता है, वह मायाके कारण। माया न सत् है, न असत्—वह एक अनिर्वचनीय पदार्थ है। परमात्माकी इच्छासे उसकी उत्पत्ति होती है। परमात्मा स्वप्रकाश हैं, किन्तु अपनी इच्छासे अपने आपको आवरणयुक्त करते हैं। इस आवरणको माया या अविद्या या अज्ञान कहते हैं। किन्तु जिस समय वे आवरणयुक्त होते हैं, उस समय वे आवरणमुक्त भी रह सकते हैं; यही है उनकी विशेषता। आवरण (माया) से युक्त आत्मा है जीव, और माया-मुक्त आत्मा है ब्रह्म। यह है शङ्कराचार्यका ब्रह्माद्वयवाद।

किन्तु निष्क्रिय ब्रह्मसे जगत्की उत्पत्ति नहीं हो सकती। अतएव निर्विशेष अवस्थासे ब्रह्मको सविशेष अवस्थाका

* श्रीमान् सान्याल महोदयका यह लेख दार्शनिक विषयसे भरा समझकर ही छापा जाता है, शिवाङ्ककी प्रशंसामें नहीं। —सम्पादक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ग्रहण करना पड़ता है। वह अपनी इच्छासे एक ही समय सविशेष तथा निर्विशेष दोनों हो सकता है। सविशेष अवस्थामें वह जगन्नियन्ता ईश्वर है।

ईश्वरके साथ जगत्का क्या सम्बन्ध है? उपादान-कारणके साथ कार्यके छः प्रकारके सम्बन्ध माने जाते हैं—(१) वस्त्रमें तन्तु हैं; (२) तन्तुओंके आधारपर वस्त्र है; (३) तन्तु ही पट-रूपताको प्राप्त हो गये हैं; (४) पट एक अतिरिक्त वस्तु (अवयवी) है जो तन्तुओंसे उत्पन्न हुआ है, तन्तुओंकी सत्ता स्वतन्त्र है; (५) तन्तु पटसे पूर्व भी थे, आगे भी रहेंगे और जहाँ पट उत्पन्न नहीं हुआ वहाँ भी हैं; तन्तुओंका पटसे स्वतन्त्र रहना सम्भव है, किन्तु पट तन्तुओंसे स्वतन्त्र अपनी सत्ता नहीं रख सकता; (६) हम कह नहीं सकते कि तन्तु और पट भिन्न-भिन्न हैं वा एक। वैज्ञानिक रूपसे ईश्वरनिरूपणमें इन छहों प्रकारके सम्बन्ध पाये जाते हैं—(१) जगत्में ईश्वर हैं, (२) ईश्वरमें जगत् है, (३) जगत् ईश्वर ही है, (४) जगत् और ईश्वर भिन्न-भिन्न हैं, ईश्वर जगत्से परे है, (५) ईश्वर जगत्से भिन्न हैं, किन्तु जगत् ईश्वरसे भिन्न नहीं, (६) जगत् अनिर्वचनीय है, ईश्वरसे भिन्न या अभिन्न कुछ भी नहीं कहा जा सकता। ईश्वरने अपनी इच्छासे स्वयं ही जगत्रूप धारण किया है—वे जगत्के उपादान-कारण भी हैं और निमित्त-कारण भी हैं। ईश्वर चेतन होनेके कारण जगत्को अपनी इच्छासे रचकर शासकरूपसे उसके प्रत्येक अवयवमें प्रविष्ट हो रहे हैं। ईश्वरसे परे एक स्वतन्त्र निर्विशेष तत्त्व है, जो मन तथा बुद्धिकी पहुँचके बाहर है। निर्विकार होनेके कारण वे प्रत्यक्षरूपमें जगत्के कारण नहीं हो सकते। निर्विशेष परमात्माकी उपासना नहीं हो सकती। जगत्के कारण अक्षर पुरुष ईश्वर ही उपासनाके योग्य हैं। यह है ईश्वरवाद। ब्रह्मवादमें आत्माका कर्तृत्व नहीं है, किन्तु ईश्वरवादमें कर्तृत्व है। ईश्वर परमात्माका स्वेच्छापरिगृहीत रूप हैं।

ईश्वर जब शिवके नामसे अभिहित होते हैं, तब ईश्वरवाद ही शैव-धर्म कहलाता है। शिवमें जगत् उत्पन्न करनेकी शक्ति है इसलिये वे शक्तिविशिष्ट हैं यह मानना होगा।

अब द्वैतवाद और अद्वैतवादका प्रश्न उठता है। जीव और ब्रह्म भिन्न हैं, किंवा एक ही हैं? शङ्करके ब्रह्मसूत्र-भाष्यमें दोनोंका अभेद बताया गया है। यह है ब्रह्माद्वयवाद। 'ईश्वर जगत्को बनाकर उसीमें अनुप्रविष्ट होते हैं' यह एक श्रुतिवाक्य है। वे (ईश्वर) पदार्थों (जगत्) के उपादान-कारण भी हैं और प्राणस्वरूप भी हैं। जगत्में जड़-चेतन दोनों नामोंसे कहे जानेवाले सभीका उनमें अन्तर्भाव है। जीव भी इसी श्रेणीके अन्तर्गत है। कहा गया है कि ईश्वरके परे एक निर्विशेष तत्त्व है, जो सबका आत्मा होनेके कारण परमात्मा कहा जाता है। वह निर्विकार होनेके कारण जगत्का कारण नहीं कहा जा सकता। अपनी इच्छासे शक्तिविशिष्ट होता है, उसका यह शक्ति-विशिष्ट स्वरूप ही ईश्वर है। अतएव ईश्वरका एक अंश शक्ति है। शक्ति और शक्तिमान् अभिन्न हैं। शिव और शक्ति दोनों ओतप्रोतरूपमें मिले हुए हैं। दोनों एक दूसरेके आधारपर हैं। शिव शक्तिमय और शक्ति शिवमय है। शिव ज्ञान-स्वरूप और शक्ति क्रिया-स्वरूप कही जाती है। यही है शिवाद्वयवाद या शक्त्यद्वयवाद।

चेतन तथा अचेतन-विभागविशिष्ट ब्रह्मके अभेद या एकत्वनिरूपक सिद्धान्तका नाम है विशिष्टाद्वैतवाद। बद्ध-दशामें ब्रह्मके साथ जीवके भेद और मुक्त-दशामें उनके अभेदका जो मत है, उसका नाम है भेदाभेदवाद। निर्गुण निष्क्रिय ब्रह्म एक प्रकारसे शून्यताके समान ही है। शून्य-तत्त्व सत्-असत् प्रभृति कोटिचतुष्टयसे विनिर्मुक्त है। इसलिये शून्यवाद एक प्रकारका अद्वैतवाद ही ठहरता है। वैयाकरणोंके मतमें अखण्ड चिन्मय शब्द-तत्त्व ही जगत्का मूल-कारण है। इसलिये उनके इस मतको शब्दाद्वयवाद कहते हैं।

बौद्धोंने विश्वके स्रष्टा या नियन्ताकी आवश्यकताका अनुभव न कर विश्वमें जो 'ऋत' (अर्थात् भौतिक तथा नैतिक नियम और शृङ्खला) दृष्ट होता है, उसीपर अधिक आस्था दिखायी है। इस संसारमें किसी वस्तुकी नित्यता नहीं है—सर्वत्र निरन्तर परिवर्तन सङ्घटित हो रहा है। किन्तु ये परिवर्तन अनियन्त्रित या यदृच्छरूपसे निष्पन्न नहीं होते—प्रत्येक परिवर्तन अपरिहार्य क्रमयुक्त तथा कार्य-कारण-सम्बन्धसे आबद्ध है।

आगमके मतमें 'अद्वैत' शब्दका अर्थ है दोका नित्य सामरस्य। शङ्करके मतमें ब्रह्म सत्य है और माया अनिर्वचनीय। किन्तु मायाको स्वीकारकर उसको ब्रह्ममयी, नित्या और सत्यस्वरूपा माननेसे ब्रह्म और मायाकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एकरसता हो जाती है। मायाको साक्षात् ब्रह्म-शक्ति और उसको विकासरूपमें अनुभव करनेसे जीवनकी सार्थकता सम्भव हो सकती है। शक्ति सत्य है, सुतरां जीव तथा जगत् भी सत्य है; इसलिये सभी ब्रह्ममय है। यह वैचित्र्य एकका ही विलास है—भेद है अभेदका ही आत्म-प्रकाश। आगमशास्त्रका यह सिद्धान्त है कि पुरुषसे प्रकृति, किंवा प्रकृतिसे पुरुष एकान्ततः पृथक् नहीं हैं। यह जगत् है आत्मा तथा शक्तिका विलास। उनकी योगावस्था कभी भग्न नहीं होती, क्योंकि दोनों एकहीके दो प्रकार हैं।

आनन्द है परमात्माका एक स्वरूप। कृष्ण-भक्त वैष्णव लोग कहते हैं कि जिसका स्वरूप ही आनन्द है, उसके द्वारा आनन्दका अनुभव कैसे सम्भव है? आनन्दके लिये उनको किसी पृथक् सत्ताकी आवश्यकता होती है। अतएव आनन्दस्वरूप परमात्माने इच्छा की—'एकोऽहं बहु स्याम्' —मैं अकेला हूँ, अनेक हो जाऊँ। यही कारण है उनके सगुण-भाव धारण करनेका। आनन्दानुभवके लिये ही परमात्मा और जीवात्माका भेद-भाव रक्खा गया है। 'परमात्मा' पुरुष हैं और जीवात्मा प्रकृति। प्रकृति ब्रह्मसे उत्पन्न होकर ब्रह्ममें ही विद्यमान रहती है। जो वस्तु भीतर थी उसका बहिर्विकासमात्र हुआ, क्योंकि अभावसे भावकी उत्पत्ति नहीं होती। कृष्ण-लीलामें श्रीकृष्ण हैं पुरुष और गोपियाँ प्रकृति। गोपियाँ हैं प्रकृतिका व्यष्टि-भाव और राधा समष्टि-भाव। सृष्टिकी आदिसे ही प्रकृति और पुरुषकी लीला चल रही है। आनन्दस्वरूप श्रीकृष्णकी इच्छासे जिस शक्तिका विकास होता है उसका नाम है ह्लादिनी या राधा। पुरुषसे ही उद्भव है प्रकृतिका, अतएव राधा-कृष्ण अभिन्न हैं। शिव-शक्ति भी अभिन्न हैं। अतएव कृष्ण-लीला है शिव-शक्तिके विलासका नामान्तर।

एक निर्विकार, नित्य, विज्ञानानन्दघन परब्रह्म परमात्मा ही हैं। उन्हींके किसी अंशमें प्रकृति है। उस प्रकृतिको लोग माया, शक्ति आदि नामसे पुकारते हैं। यह माया बड़ी विचित्र है। उसे कोई अनादि-अनन्त कहते हैं, तो कोई अनादि-सान्त मानते हैं। कोई उस ब्रह्मकी शक्तिको ब्रह्मसे अभिन्न मानते हैं तो कोई भिन्न बतलाते हैं; कोई सत् कहते हैं, तो कोई असत् प्रतिपादित करते हैं। वस्तुतः मायाके सम्बन्धमें जो कुछ भी कहा जाता है, माया उससे विलक्षण है, क्योंकि उसे न असत् ही कहा जा सकता है, न सत् ही। असत् तो इसलिये नहीं कह सकते कि उसीका विकृत रूप यह संसार (चाहे वह किसी भी रूपमें क्यों न हो) प्रत्यक्ष प्रतीत होता है और सत् इसलिये नहीं कह सकते कि उसके परिवर्तनशील होनेके कारण उसकी नित्य स्थिति नहीं देखी जाती। वेदोंमें परमात्माके दो स्वरूप माने गये हैं—प्रकृतिरहित ब्रह्मको निर्गुण ब्रह्म कहा है और प्रकृति-सहित ब्रह्मके अंशको सगुण। सगुण ब्रह्मके भी दो भेद माने गये हैं—एक निराकार, दूसरा साकार। उस निराकार सगुण ब्रह्मको ही शैवगण महेश्वर, परमेश्वर, महादेव, शिव इत्यादि नामोंसे पुकारते हैं। वैष्णवगण उसे महाविष्णु, वासुदेव, कृष्ण, राम इत्यादि नामोंसे अभिहित करते हैं। नाम-रूपका भेद है, तत्त्वतः कोई भेद नहीं।

कहा गया है कि निराकार सगुण ब्रह्मको शैवगण महेश्वर या शिव कहते हैं। शिव है शक्ति-विशिष्ट, और शिव और शक्ति हैं अभिन्न। शक्तिके साथ शिव सदा मिलित रहते हैं। शक्ति ही अन्तर्मुख होनेपर शिव है और शिव ही बहिर्मुख होनेपर शक्ति हैं। शिव-तत्त्वमें शक्ति-भाव गौण और शिव-भाव प्रधान है—शक्ति-तत्त्वमें शिव-भाव गौण और शक्ति-भाव प्रधान है। परन्तु जहाँ शिव और शक्ति एकरस हैं वहाँ न शिवका प्राधान्य है, न शक्तिका। वह साम्यावस्था है। यही नित्यावस्था है। यही तत्त्वातीत है। शैवोंके ये परम शिव हैं, शाक्तोंकी पराशक्ति और वैष्णवोंके श्रीभगवान्।

जीव तथा जगत्को ब्रह्मसे भिन्न समझना ही द्वैतवाद है और उनको अभिन्न समझना ही अद्वैतवाद है। उपासनाके तीन मार्ग हैं—कर्म-मार्ग, ज्ञान-मार्ग तथा भक्ति-मार्ग। भक्ति द्वैतमूलक है और ज्ञान अद्वैतमूलक। व्यावहारिक कर्म-मार्गमें द्वैत-भाव है, किन्तु योगमूलक कर्म-मार्गमें ज्ञानका कुछ स्थान हो तो हो, किन्तु भक्तिका स्थान नहीं। ज्ञान-मार्गावलम्बी तथा भक्ति-मार्गावलम्बी दोनोंका उद्देश्य है चरमावस्थामें परमात्माके साथ एकत्व। भक्ति-मार्गकी स्थूल साधना द्वैतमूलक है अर्थात् उसमें सेव्य-सेवक-भाव विद्यमान है। किन्तु आगे एक अद्वैत-भक्तिमूलक अर्थात् ज्ञान-भक्ति-मिश्रित चेतनाका आविर्भाव होना सम्भव है। उस अवस्थामें जीव और ब्रह्मका भेद नहीं रहता। जीवात्मा तथा परमात्माका एकीभाव हो जाता है। शैवगण चिदंशको शिव-भाव और आनन्दांशको शक्ति-भाव कहते हैं। चरमावस्थामें शिव-भाव तथा शक्ति-भाव परस्पर मिले रहते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

काश्मीरीय शैव-दर्शनमें तथा गौडीय वैष्णव-दर्शनमें कहा गया है कि मोक्ष (अर्थात् जीवात्माके परमात्म-बोध) के पश्चात् भी जीवात्माका दास्यात्मक भक्ति-भाव रह सकता है। यद्यपि ज्ञानके द्वारा 'तुम और मैं' का वास्तविक भेद मिट जाता है तथापि पराभक्तिके प्रभावसे उस अद्वैत-समुद्र-में भी (कल्पित भाव) द्वैतकी लहरें उठती हैं। काश्मीरीय शैवाचार्यगण इस अवस्थाकी भक्तिको अद्वैत-भक्ति कहते हैं। किन्तु गौडीय वैष्णव-दर्शनमें यह द्वैत ही कहा गया है। दोनों ही स्वीकार करते हैं कि ज्ञानके अनन्तर भी भक्ति रह सकती है। अन्तमें ज्ञान और भक्तिमें भिन्नता नहीं रहती, दोनों एकाकार हो जाते हैं। यही पूर्णाहन्ता है।

क्या योग-मार्गके द्वारा भी पूर्णाहन्ता प्राप्त नहीं हो सकती ? विशेष प्रणालीबद्ध साधनासे समाधिकी अवस्था प्राप्त हो सकती है। ध्यान है प्रत्यय या अनुभूतिकी एकाग्रता या एकनिष्ठता। ध्यान जब प्रगाढ़ हो जाता है तब वह स्वरूपशून्य होकर, अर्थात् अपने प्रत्यय-स्वरूपत्वको विस्मृत कर, उस प्रत्ययकी विषयीभूत ध्येय वस्तुमें लीन हो ध्येय वस्तुका आकार धारण करता है। मनके अमनीभावात्मक उस ध्यानको समाधि कहते हैं। धनुर्धारी जैसे पहले स्थूल लक्ष्यको विद्ध करनेमें समर्थ होता है और पीछे सूक्ष्म वस्तुको, योगी भी उसी तरह पहले स्थूल पाञ्चभौतिक ध्येय वस्तुका साक्षात्कार साधन करते-करते पीछे सूक्ष्मका साक्षात्कार साधन करता है। अतएव समाधि सम्प्रज्ञात या सालम्ब और असम्प्रज्ञात या निरालम्ब होती है। सम्प्रज्ञात-समाधिके चार स्तर हैं। सबसे पीछेके स्तरमें 'मैं हूँ' इस प्रत्ययका अवलम्बन किया जाता है। जब इस प्रत्ययका भी निरोध हो जाता है, तब असम्प्रज्ञात या निरालम्ब समाधिकी अवस्था आ पहुँचती है। इस अवस्था-में चित्तवृत्तिका सम्पूर्ण निरोध होता है—विषयरहित होने-के कारण ऐसा बोध होता है कि चित्त है ही नहीं। सर्व-निरोधजनित इस असम्प्रज्ञात समाधिसे पुरुष स्वरूपनिष्ठ तथा शुद्ध हो जाता है। पतञ्जलिके मतमें ईश्वरवादी तथा निरीश्वरवादी दोनों समाधि प्राप्त करनेके अधिकारी हैं। मुण्डकउपनिषद्की 'अक्षर ब्रह्ममें तन्मयत्व-प्राप्ति' और बुद्धदेवकी 'समाधि'-लाभ एक ही हैं—जीवात्माका 'केवल भाव' में अथवा स्वरूपमें अवस्थान। ध्येय विषयके साथ जीवकी तन्मयता-प्राप्ति ही बौद्धमतमें समाधि है। जीव समाधिके सोपानपर अरोहण करनेके पश्चात् केवल भाव प्राप्त करता है। तब उसका न तो भाव-ज्ञान रहता है, न अभाव-ज्ञान। तब चित्त सम्पूर्ण दुःखमुक्त होकर शान्ति-सलिलमें निमग्न रहता है। पतञ्जलिके मतमें यही है असम्प्र-ज्ञात-समाधि। क्या यह 'केवल भाव' 'पूर्णाहन्ता' नहीं है ?

ज्ञान-गुदड़ी

मानुष-शरीर पुण्य-पुंजसे मिले है कभी,
इसे पाय विषयोंके बीच भरमाए हो।
दारा सुत नाती धरा धाम आदि नाशवान,
वस्तुओंमें व्यर्थ सदा चित्त भटकाए हो॥
व्रजके विहारी घनतुल्य तापहारीके न
पादपंकजोंमें मन-भृंगको लगाए हो।
भूले! पान्थ! भोले! ज़रा यह तो बताओ तुम,
कौन, कहाँ जाओगे, कहाँसे चल आए हो॥

दमका क्या भरोसा

जगके जवाल जेते जाहिर तमासे तेते,
पापी परतापी सबै पाले परै जमके।
तात मात लरिका लुगाई भाई पोता पोती,
आपने नहीं हैं सबै गोती गनौ गमके॥
प्रभु-पद-पद्मके परागकों सदा ही भजौ,
मोहि-मोहि मरौ मति फंदे फँसि ममके।
दमके रहौ ना, रहौ दमकै दुनीके बीच,
एक दम रहौ ना भरोसे एक दमके॥

—विश्वनाथप्रसाद मिश्र

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीरामचरितमानसका शुद्ध पाठ

(लेखक—श्रीरामदासजी गौड़ एम० ए०)

(१) शुद्ध पाठकी प्राप्तिके साधन

रामचरितमानसके शुद्ध पाठका प्रश्न आजका नहीं है। ऐसा समझनेके लिये कारण हैं कि स्वयं मानसकारको पाठकी शुद्धताका पूरा ध्यान था। मानसकारके पीछेके मानस-अनुरागियोंमेंसे जो अधिक सतर्क थे उन्होंने शुद्ध प्रतियोंके लिये विशेष परिश्रम किया। टीकाकारोंका तो बिना शुद्ध पाठके काम ही न चल सकता था। परन्तु पाठकी शुद्धताका विचार सभी भिन्न-भिन्न दृष्टियोंसे करते आये हैं। टीकाकारोंमें विविध विचार काम करते आये हैं। पं० शिवलालजी पाठक, सन्तसिंहजी पंजाबी, स्वामी रामचरणदासजी आदि सरीखे टीकाकार शुद्ध अवधी एवं प्राकृत प्रयोगोंकी रक्षा भी चाहते थे; मानसकारके दिये हुए शब्दों और धातुओंके रूपोंको अक्षुण्ण रखनेपर भी ध्यान था। साथ ही क्षेपकोंसे भी उसे मुक्त चाहते थे। शुकदेवलालजीका बहुत कुछ और पं० रामेश्वरजी भट्ट तथा पं० ज्वालाप्रसादजी सरीखे टीकाकारोंका सर्वथा तद्भवोंको छाँट-छाँट भरसक तत्समरूप दे देनेका प्रयत्न रहा है और इसीमें वह शुद्धता समझते थे। शुकदेवलालजीने तो क्षेपकोंपर ऐसा जबर्दस्त बिज़न बोल दिया कि मानसकारकी अच्छी-से-अच्छी रचनाको क्षेपक ठहराकर निकाल बाहर कर दिया, ठीक शाहरगोंपर नश्तर मार दिया, सुन्दर-सुन्दर भावों और पद्य-रत्नोंका बेदर्दीसे खून कर डाला। कलके ही टीकाकार बाबू श्यामलालजीने तो शुकदेवलालजीको भी मात कर दिया। उन्होंने बालकाण्डके मानसरूपक, मनु, भानुप्रताप, फुलवारी, परशुराम-संवाद आदि उत्तम-से-उत्तम अङ्गोंको काटकर अलग कर दिया और छिन्न-भिन्न पाठको इकट्ठा कर उसे उसका पुनर्जन्म ठहराया है। पं० ज्वालाप्रसादजीने तथा पं० रामेश्वरजी भट्टने ठीक उलटा काम किया। उसके पाठोंपर मनमाना कलम-कुठार चलाकर विकृताङ्ग करके क्षेपकरूपी घूरेपरके चीथड़ोंकी कन्था पहनाकर पाठकोंके सम्मुख रखा। निदान, शुद्धता किसे कहते हैं, इसके समझनेमें ही भेद होनेसे उसकी विविध कसौटी मानी गयी, तरह-तरहके पैमाने ठहराये गये। जिन लोगोंने यह समझा कि तत्सम रूपमें ही शुद्धता है उन्होंने 'गननायक' को 'गणनायक' 'पदुम'को 'पद्म', 'संभु' को 'शंभु', 'संकर' को 'शंकर', 'सिव' को 'शिव', 'दस' को 'दश', 'दसरथ' को 'दशरथ', 'लक्खन' को 'लक्षण', 'भगति' को 'भक्ति'कर डाला। उन्होंने समझा कि लेखप्रमादसे यह संस्कृत शब्द बिगाड़कर लिखे गये थे! और क्षेपक इसलिये जोड़े गये कि मानसकारके वर्णनमें जहाँ-तहाँ कमी है, उस कमी अर्थात् अशुद्धताकी पूर्ति या शुद्धता क्षेपकोंद्वारा की जानी चाहिये। शुकदेवलालकी नीयत अच्छी थी। वे चाहते थे कि मानसकारकी ही रचना रक्खी जाय। परन्तु उन्होंने इसके लिये यह उद्योग नहीं किया कि प्राचीन शुद्ध पाठोंका संग्रह किया जाय और यह देखा जाय कि ग्रन्थकार स्वयं शुद्धता किसे समझता था। किसी पुराने पाठका मुकाबला नहीं किया। उन्होंने शुद्ध कल्पनाके आधारपर मानसकारकी इच्छाकी कल्पना कर ली। चौपाइयोंको चौपदीके शिकंजेमें कसा, चार-चार चौपाइयोंके ही समूहनको अथसे इतितक ठीक मानकर अच्छी-से-अच्छी चौपाइयाँ, दोहे, स्तुतियाँ, जो मानसकारकी ही रची हुई थीं, उड़ा दीं। 'सतपंच' का मनमाना अर्थ करके सारे मानसका अङ्गच्छेद कर डाला। श्रीश्यामलालजी गुप्तने भी ठीक इसी मार्गका अनुसरण किया है और अत्यन्त अरसिकताका परिचय दिया है। काव्यके उत्तम-से-उत्तम प्रकरण निकालकर गुप्तजीने तो काव्यमर्मज्ञताकी हद कर दी।

भट्टजी और मिश्रजीने तो रामचरितमानसके पाठके साथ वही व्यवहार किया जो चतुर अध्यापक अपने एक छोटे-से प्रिय शिष्यकी लिखी रचनाके साथ करता है। यदि शुकदेवलालके संशोधनसे रचना ही नष्ट हो गयी तो इन पण्डितोंके संशोधनसे भ्रष्ट हो गयी, गरज कि दोनोंने वही काम किया जिससे कि 'मज़मूनका मज़मून रुखसत हो गया। मानसकारका पाठ दोनों रीतियोंसे नष्ट-भ्रष्ट हो गया।

टीकाकारोंके तीन दलोंकी चर्चा हमने की है। इनमें पहले दलके टीकाकारोंका आज भी सर्वथा अभाव नहीं है। पण्डित महावीरप्रसाद मालवीय और रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदासकी टीकाएँ पाठकी दृष्टिसे अच्छी हैं। दोनोंमें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्राचीन शुद्ध पाठकी रक्षाका प्रयत्न किया गया है। परन्तु इन शुद्ध पाठके पारखियोंका आधार भरसक खोजसे मिलनेवाले वे पाठ रहे हैं जिनकी रक्षा पूज्यभावसे पाठमात्र करनेवालोंने कर रक्खी है। पाठकी रक्षा करनेका श्रेय इन्हीं पाठ करनेवालोंको है। गोस्वामीजीकी अपने हाथकी लिखी तो मानसकी एक भी पोथी आजतक देखनेमें नहीं आयी। रायबहादुर लाला सीतारामजीका अनुमान था कि राजापुरकी अयोध्याकाण्डवाली पोथी मानसकारके हाथकी लिखी है; परन्तु इस विषयपर विस्तृत विचार करनेपर पता चलता है कि यह अनुमान असिद्ध है। * मानसकारके हाथकी लिखी दो चीज़ें मौजूद हैं, एक तो पञ्चनामा जो काशिराजके यहाँ मौजूद है और दूसरी वाल्मीकीय रामायण उत्तरकाण्डकी पोथी जो काशीके सरस्वती-भवनमें मौजूद है। राजापुरवाली पोथीकी लिपि सर्वथा भिन्न है। फिर भी उस प्रतिके अत्यन्त प्राचीन और अधिकांश शुद्ध होनेमें सन्देह नहीं हो सकता। इसीलिये हम उसे शिक्षा और व्याकरण दोनोंकी दृष्टिसे प्रमाण मानेंगे। यह हम मानते हैं कि यत्र-तत्र लेख-प्रमाद है और दो जगह चौपाइयाँ लेखककी भूलसे छूट भी गयी हैं, कहीं-कहीं शब्दोंके लिखनेमें भी भूल पड़ गयी है; परन्तु इतनेसे उसके शिक्षा और व्याकरण-सम्बन्धी साक्षीका मूल्य किसी प्रकार कम नहीं होता।

राजापुरवाली पोथीपर कहीं संवत् नहीं दिया है। इसीलिये हम यह नहीं कह सकते कि पोथी कबकी लिखी है। उसकी लिपिसे अवश्य ही उसकी प्राचीनता सिद्ध होती है। परन्तु अयोध्याजीके श्रावणकुञ्जमें बालकाण्डकी जो प्रति सुरक्षित है उसमें संवत् १६६१ का स्पष्ट उल्लेख है। इसके सबसे पुरानी प्राप्य पोथी होनेमें कोई सन्देह नहीं हो सकता। लेखप्रमाद इस पोथीमें भी अनेक हैं। फिर भी लिपिविधिकी समानता और शिक्षा और व्याकरणकी एकरूपता और राजापुरवाली पोथीसे बिल्कुल मेल खाना बड़े महत्त्वकी बातें हैं। ये दोनों पोथियाँ बालकाण्ड और अयोध्याकाण्डकी सबसे पुरानी प्रामाणिक पुस्तकें हैं जो शिक्षा और व्याकरण-सम्बन्धी समस्याओंके सुलझानेमें बहुमूल्य साक्षी हैं और यही दोनों काण्ड सारे रामचरितमानसके शुद्ध पाठके निर्णयमें बहुत कुछ सहायक हो सकते हैं। श्रीशुकदेवलालने कोरी कल्पनाके आधारपर काम न किया होता और इन पोथियोंके पाठको देखा होता तो वे अनर्गल बातें जो अपनी टीकामें उन्होंने दी हैं, देखनेमें न आतीं।

शुद्ध पाठके लिये इन दोनोंके नामोल्लेखके बाद ही हम उन मानसी विद्वानोंकी पोथियोंका उल्लेख करेंगे जिन्होंने शुद्ध पाठकी जी-जानसे रक्षा की है। इनमें पहले तो गोस्वामीजीकी शिष्यपरम्परा ही आती है जिसने पाठकी रक्षा करना ही अपना कर्तव्य न समझा वरं भरसक उसे सर्वसाधारणसे छिपा भी रक्खा। कोई पैंतीस बरससे ऊपर हुए कि वेङ्कटेश्वरद्वारा गोरखपुरके सीतारामसरनके नामसे सम्पादित होकर कोदवरामजीकी गुटका छपी थी। तबसे उसके अनेक संस्करण हो चुके हैं और उनके अन्तमें लवकुशकाण्डतक बराबर छपा करता है। इस पोथीके संस्करण संस्करणमें पाठभेद दिखायी पड़ता है, जिससे सिद्ध होता है कि पहले ही संस्करणमें मूलसे ठीक-ठीक मिलाकर नहीं छापा गया और यन्त्रालयमें पाठके शुद्ध-शुद्ध छपानेका कोई विशेष यत्न नहीं हुआ। अन्तमें लवकुशकाण्ड लगाकर मानों असावधानीपर मुहर कर दी गयी। फिर भी यदि उस गुटकाके पाठको ध्यानसे देखें तो पता चलेगा कि परम्परागत एकके बाद दूसरी प्रति लिपि किये जानेके कारण उसमें भी लेखप्रमादका होना संभाव्य है। पहली प्रतिलिपिमें यदि सैकड़ा पीछे एक भूल हो सकती है तो पाँचवीं छठी प्रतितक आते-आते सैकड़ा पीछे पाँच छः भूलोंका होना तो कोई बात ही नहीं। फिर शिष्यवर्गोंमें भी भिन्न-भिन्न रुचिके पण्डित हुए हैं। पण्डित शिवलाल पाठकका पाठमें फेरफार करनेवालोंको जहाँ तहाँ कोसना यह सिद्ध करता है कि शिष्यसम्प्रदायका भी उन्हें विश्वास न था और न होना ठीक भी है। प्रतिलिपि करते-करते भी अपनी-अपनी भाषा-सम्बन्धी धारणाएँ पाठपर प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकतीं। तात्पर्य यह कि जान-बूझकर पाठमें फेरफार न करनेवाला भी इतनी बड़ी पोथीके लिखनेमें अपनी साधारण असावधानीसे भूलें कर सकता है। इसीलिये परम्पराप्राप्त प्रतिलिपिको भी हम सर्वथा और सर्वोपरि प्रमाण नहीं मान सकते। फिर भी शुद्ध पाठकी पोथियोंमें उनका स्थान महत्त्वका है। मानसकारके हाथकी लिखी पोथीके अभावमें परम्पराप्राप्त प्रतिलिपिका अधिकार बहुत बड़ा है और यदि प्रामाणिक

* इस विषयपर 'रामचरितमानसकी भूमिका' में मैंने मानसकारका लिपिचित्र देकर पूरी आलोचना की है। यहाँ उस आलोचनाको दोहराना अभीष्ट नहीं है। —लेखक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पोथी मिले तो उसे पहला स्थान मिलना चाहिये। कोदवरामजीकी छपी गुटका अथवा मानसमयंकके पाठमें छापेकी भूलें हो सकती हैं।

छपी पोथियोंमें सबसे उत्तम और विश्वासयोग्य पाठ उस पोथीमें है जो सं० १९५८ में श्रीगोवर्धनरामजी और रामलालसाहुजीने हितचिन्तकप्रेसमें छपवाया था, जो अब अप्राप्य है। उसके आरम्भमें लिखा है—

'॥ श्रीजानकीबल्लभो विजयते ॥

श्रीरामकृपाते गोस्वामि तुलसीदासकृत मानसरामायण-को श्री पं०रामगुलाम मिरजापुरवासीने १७१४ के संवत्की लिखी पुस्तकसे लिखी, उसपरसे लाला छक्कनलाल मिरजापुर-वासीने लिखी और श्रीकाशीजीमें छोटी पियरीपर भागवत-दास छत्रीके पास १७२१ के संवत्की लिखी पुस्तक और दो पोथी १७६२ के संवत्की लिखी मिली। इन सब पुस्तकोंसे शोधकर यह पुस्तक छापी गई जिस्को कहीं पाठमें भ्रम होय सो बिना जाने बिगाड़ै नहीं ॥'

अतः चार पुरानी पोथियोंसे मिलाकर इसका पाठ संशुद्ध हुआ है। इस पोथीमें इतनी त्रुटि है कि पाद-टिप्पणियोंमें कहीं एक भी पाठान्तर नहीं है, यद्यपि यह कभी विश्वासयोग्य नहीं है कि चारों पोथियोंका पाठ अक्षर-अक्षर एक-सा मिल गया होगा। छापेकी भूलें भी अवश्य हैं, क्योंकि यह कहीं-कहीं स्पष्ट प्रतीत होता है, और जहाँ कहीं पाठमें गड़बड़ है वहाँ तो छापेकी भूलको भी संभाव्य कारण मानना होगा। शुद्धिपत्र होता तो यह समझा जाता कि संशोधनमें सावधानी बर्तनेपर भी अमुकामुक भूलें रह गयी हैं और छापेकी भूलोंका इतनी बड़ी पोथीमें न होना हमारी कल्पनाके बाहरकी बात है।

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभाका और पं०महावीर-प्रसादजी मालवीयका पाठ भी बहुत जाँचके बाद रक्खा गया है; परन्तु शुद्धताकी दृष्टिसे ऊपरकी भागवतदासादि-वाली पोथी इनसे अच्छी और अधिक प्रामाणिक है। छापेकी भूलें इन पोथियोंमें कम नहीं हैं।

पं० इन्द्रदेवनारायणसिंहजीकी टीकासमेत खड्गविलास-प्रेसने जो मानसमयंक छापा है, उसमें यत्र-तत्र जो पाठ मिलता है वह परम्परावाला पाठ है। परन्तु उसमें रामचरित-मानसके विशेष-विशेष स्थलोंका ही पाठ दिया गया है। इस पोथीकी छपाईमें बड़ी सावधानी बर्ती गयी है। इसमें मानसके जितने अंश उद्धृत हैं वे भागवतदासादिके शुद्ध पाठसे अत्यन्त मिलते-जुलते हैं। कहीं-कहीं तालव्य शकार और णकारका प्रयोग भी है। परन्तु यह इतना कम है कि इसे हम छापेकी भूल कह सकते हैं। इन भूलोंका मार्जन हम कर दें तो मानसमयंकका पाठ निर्दोष समझा जा सकता है।

इसप्रकार शुद्ध पाठके लिये अपूर्ण ग्रन्थोंमें श्रावणकुञ्ज-वाली पोथी बालकाण्डकी, जो अयोध्याजीमें मौजूद है और वहीं प्राप्य है, राजापुरवाली पोथी अयोध्याकाण्डकी, जिसकी एक प्रति रायबहादुर लाला सीतारामने छपवायी थी और छपी पोथी प्राप्य है, और मानसमयङ्कका, जो खड्गविलासप्रेस बाँकीपुरसे प्राप्य है, उद्धृतांश, ये तीन प्रमाण हैं। पूर्ण ग्रन्थोंमें भागवतदासादिकी प्रतियोंसे मिलाकर छापी हुई काशीवाली और पं० महावीरप्रसाद मालवीय प्रयागवाली प्रतियाँ प्रमाण हैं। रामचरितमानसके शुद्ध पाठको प्राप्त करनेके लिये यही साधन समीचीन हैं।

(२) शुद्धताकी जाँच कैसे की जाय ? रचनाकी सीमा

इन साधनोंको प्राप्त कर लेनेपर भी शुद्ध पाठकी कसौटी क्या है ? इन पोथियोंमें भी तो परस्पर पाठ-भेद है और प्रत्येकका दावा है कि हमीं शुद्ध हैं। जहाँ मतभेद हो वहाँ निर्णय कैसे किया जाय ? एक तो यह निश्चय करना है कि इनमें क्षेपक तो नहीं हैं। दूसरे यह निश्चय करना है कि जिन शब्दोंमें वा पदोंमें पाठभेद है उनमेंसे कौन शुद्ध मानसकारके हैं। तीसरे यह निश्चय करना है कि जिन शब्दोंकी वर्त्तनीमें ही भेद है, उनमेंसे किस-किस तरहका रूप मानसकारका होगा। इन तीन बातोंका निर्णय करके जो पाठ निश्चय किया जायगा वही शुद्ध पाठ माना जाना चाहिये। हम निश्चय की जानेवाली तीनों बातोंपर इस स्थलपर अलग-अलग विचार करेंगे।

यह निश्चय करनेके लिये कि पाठ क्षेपकहीन है या नहीं, यह भी मालूम करनेकी जरूरत है कि ग्रन्थकारने कुल कितनी चौपाइयाँ, दोहे आदिकी रचना की है। हमारे दुर्भाग्यकी बात है कि मानसकारने सभी पद्योंकी संख्या नहीं दी है। केवल अन्तमें 'सतपंच चौपाई मनोहर' कहकर इक्यावन सौ चौपाइयोंकी ही संख्या दी है। परन्तु इसका अर्थ ही झगड़ेमें पड़ा हुआ है। टीकाकारोंका इसके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थमें मतैक्य नहीं है। पाँच-सातसे लेकर इक्यावन सौतक-की अनेक संख्याओंपर लोगोंने विचार करके विविध मत प्रकट किये हैं। जो लोग इसे इक्यावन सौ नहीं मानते उनका कहना यह है कि चौपाइयोंकी गिनती चार-चार चरणकी एक माननेसे संख्या पाँच हजारके आसपास भी नहीं पहुँचती और चौपाईके अन्तर्गत सभी छन्द लिये जायँ तो गिनती छः हजारसे भी अधिक होती है। पण्डित महावीरप्रसादजी मालवीय-जैसे सावधान और काव्यमर्मज्ञ टीकाकारने भी इसी कारणसे स्वा० रामचरणदासजीके इस मतसे ऐक्य नहीं प्रकट किया है। हाँ, पण्डित शिवलाल पाठकने मानसमयंकमें इस प्रसंगमें स्पष्ट लिखा है—

'एकावन सत सिद्ध है चौपाई तहँ चारु।
छन्द सोरठा दोहरा दस ऋत दस हजारु ॥५०१॥'

पण्डित इन्द्रदेवनारायणने इसका अर्थ इसप्रकार किया है—

'इस रामचरितमानसमें एकावन सौ चौपाईका होना सिद्ध है और छन्द, सोरठा, दोहरा सब मिलकर दस कम दस हजार अर्थात् ९९९० श्लोक हैं ॥५०१॥'

'सब मिलकर' में अवश्य ही चौपाइयाँ भी शामिल हैं और ९९९० श्लोकसे तात्पर्य यह है कि बत्तीस-बत्तीस अक्षरोंका एक-एक समूह गिनकर ९९९० समूह हैं, अर्थात् ९९९०×३२=३, १९, ६८० अक्षर हैं। अक्षरोंकी संख्या गिननेपर जिस पोथीमें ठीक इतने आँवें उसे बिल्कुल शुद्ध क्षेपकहीन समझना चाहिये। परम्परावाली पोथियोंके विषय-में शायद ऐसा दावा हो सके। परन्तु इस दावेमें भारी प्रमाद यह है कि मानसकी वर्तनी—स्वयं ग्रन्थकारकी ही—ऐसी है कि अक्षरोंकी ठीक गिनती नहीं मिल सकती। 'गएउ' और 'गयो', 'करइ' और 'करै' दोनों ही रूप बरते गये हैं। अतः अक्षरोंकी गिनती कभी ठीक-ठीक नहीं मिल सकती। फिर भी हमारे अटकलमें अक्षरोंकी संख्या दस हजारके आसपास पड़नी चाहिये और अवश्य है। चौपाइयोंकी ठीक संख्या बतायी गयी है और शुद्ध पाठमें तो यह संख्या मिलनी ही चाहिये।

अब गिननेकी विधिपर विचार कीजिये। चौपाईका अर्थ ही है चार चरणोंवाली। पिङ्गलके अनुसार तो सभी लौकिक पद्य चार-चार चरणके होते हैं। चौपाईमें ही यह विशेषता नहीं है। अब देखना यह है कि मानसकारने क्या माना है और रूढ़ि क्या है? अन्त्यानुप्रासकी दृष्टिसे देखिये तो दो-दो चरणोंके ही तुक मिलते हैं, चारके नहीं। आदिसे अन्ततक यही देखनेमें आता है। अयोध्याकाण्डमें आदिसे अन्ततक आठ-आठ ऐसी द्विपदियाँ एक-एक समूहमें रक्खी गयी हैं। इसका व्यतिक्रम कहीं नहीं हुआ है। परन्तु और काण्डोंमें ऐसे किसी नियमका पालन नहीं है। लङ्काकाण्डमें स्तुतिके दो डिल्लोंके बीचमें एक द्विपदी, अरण्यकाण्डमें गीधद्वारा स्तुतिके पहले दो द्विपदियाँ, इसी तरह पाँच, सात, ग्यारह, तेरह, उन्नीस, उनतीस और सैंतीस-तक (उत्तर १२१) द्विपदियाँ एक-एक समूहमें आयी हैं। इन समूहोंमें चार-चार चरणोंकी गिनती करनेसे एक-एक द्विपदी प्रत्येक समूहमें छूट जायगी। अतः जहाँ समूहके भीतर द्विपदियोंकी सम संख्या है वहाँ तो चार-चार चरणों-की एक-एक चौपाई गिनी जानी चाहिये; परन्तु जहाँ विषम-संख्या है वहाँ दो-दो चरणोंकी, अर्थात् प्रत्येक द्विपदी, एक-एक चौपाई गिनी जानी चाहिये। इस मतका रूढ़िसे भी पोषण होता है। जायसीके पदमावतमें एक-एक समूहमें नियमसे सात-सात द्विपदियाँ हैं। पदमावतकारने द्विपदी-को ही चौपाई माना है। यह पोथी मानसके कुछ पहले लिखी गयी थी। मानसमें यह रूढ़ि और पिङ्गलका नियम दोनों ही बर्ते गये हैं। अतः हमने चौपाइयोंकी इस नियमके अनुसार गणना की तो भागवतदासादिवाली पोथी-की गणना इसप्रकार आयी—

बालकाण्डमें	१५६८	चौपाइयाँ
अवधकाण्डमें	१३०४	चौपाइयाँ
वनकाण्डमें	३२९	चौपाइयाँ
किष्किन्धाकाण्डमें	१९५	चौपाइयाँ
सुन्दरकाण्डमें	३३७	चौपाइयाँ
लङ्काकाण्डमें	६८४	चौपाइयाँ
उत्तरकाण्डमें	६८३	चौपाइयाँ
पूर्ण संख्या	५१००	चौपाइयाँ

जिन क्षेपकरहित प्रतियोंमें चौपाइयोंकी यह संख्या आती हो उन्हें अवश्य अधिक शुद्ध समझना चाहिये। स्वामी रामचरणदासजीने जो 'श्लोक' संख्या ५१०० दी है वह उनकी भूल है। मानसकारने स्पष्ट शब्दोंमें चौपाइयोंकी संख्या दी है। पण्डित शिवलाल पाठकने अपने दोहेमें इसी स्पष्टताको दोहराया है और यह गणना क्षेपकहीनताकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परखके लिये महत्त्व रखती है, क्योंकि मानस तो 'चौपाई रामायण' है अर्थात् उसका मुख्य पद्य चौपाई है, शेष दोहे आदि तो शोभामात्रके लिये आये हैं। कहा भी है—

पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मंजुमनि सीप सुहाई॥
छन्द सोरठा सुन्दर दोहा। सोइ बहुरंग कमलकुल सोहा॥

इस ग्रन्थमें 'सघन चारु चौपाई' हैं। तात्पर्य यह कि और छन्दादि सघन नहीं हैं, विरल हैं, जैसे रंग-विरंगे कमल बीच-बीचमें दीख पड़ते हैं। 'चारु चौपाई' और 'चौपाई मनोहर' एक ही बात है। चौपाइयाँ सघन हैं, ५१०० हैं और सभी चारु हैं, मनोहर हैं। पाँच सात, सत्तावन, एक सौ पाँच या पाँच सौ चुनी हुई ही मनोहर नहीं हैं। मानसकारने ग्रन्थके अन्तमें इन्हीं चौपाइयोंकी पूरी संख्या दे दी है। यही पर्याप्त भी है। अन्य पद्योंमें कोई क्षेपण भी करे तो सहज ही पकड़ा जा सकता है। ग्रन्थकारको मानसकी अक्षुण्णताकी रक्षाका अवश्य ध्यान था, यह इस घटनासे सिद्ध है।

अब चौपाइयोंकी गिनती इसी विधिसे और पोथियोंमें करते हैं तो जिनको शुद्धताका दावा है उनमें भी यदि अन्तर पड़ता है तो दो-चारकी संख्याका। इससे अधिकका नहीं।

परन्तु क्षेपकोंवाली श्रीशुकदेवलालकी और बाबू श्यामलालकी कल्पनापर विचार करना होगा। श्रीशुकदेवलालजीने तो एक आठ द्विपदियोंके समूहनकी कल्पनाको ऐसा जबरदस्त पकड़ा कि जहाँ कहीं संख्यामें व्यतिरेक हुआ वहाँ काट दिया। किसी पुराने पाठका प्रमाण अपने सामने नहीं रक्खा। अपनी कल्पनाको ही प्रमाण माना। हमारे निकट यह विधि समीचीन नहीं है। हम अन्तःसाक्षीकी विधिके कायल हैं, परन्तु यह अन्तःसाक्षीकी कोई विधि हो तब तो हम मानें। मानसकारने क्या कहीं यह प्रतिज्ञा की है कि हम आठ-ही-आठ द्विपदियोंपर दोहे रक्खेंगे? छन्दःशास्त्रका क्या यह कोई नियम है? ऐसी कोई बात श्रीशुकदेवलालजी दिखानेमें समर्थ नहीं हुए हैं। किसी प्रमाणके अभावमें श्रीशुकदेवलालकी परिकल्पनाको कोई बुद्धिमान् मान नहीं सकता।

रायगढ़ (सी० पी०) के नटवरप्रेसके मैनेजर बाबू श्यामलालने सन् १९२७ में नवलकिशोरप्रेसमें 'बालकाण्डका नया जन्म' नामक स्वरचित ग्रन्थ छपवाकर सं० १९८४ वि० की रामनवमीको प्रकाशित किया। बालकाण्डके नये जन्मके लिये यह मुहूर्त शुभ था; परन्तु न जाने कौन ऐसे अरिष्ट योग पड़ गये कि नवजात बालक अत्यन्त कृश उत्पन्न हुआ। आप मानसरसिक हैं, इसमें सन्देह नहीं। आपने अनेक प्रसिद्ध टीकाकारोंकी भद्दी भूलें दिखलायी हैं और इस क्रियामें कई और भूलें स्वयं कर गये हैं। जिनका उल्लेख करनेसे इस लेखके कलेवरके बहुत बढ़ जानेका भय है। प्रासङ्गिक विषय, जो यहाँ लिखना अनिवार्य है, यह है कि आपने अनेक युक्तियोंसे यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि मानसके बालकाण्डमें मुख्यतः मनुसतरूपा, प्रतापभानु, रावणदिग्विजय, रामविराट्रूपदर्शन, जनकवाटिका आदि उपाख्यान और परशुराम-राघव-संवाद क्षेपक हैं। इन्हें हटा देनेके लिये बीच-बीचमें उनके प्रसङ्गकी चर्चा करनेवाले अंश भी क्षेपक ठहराकर निकाल दिये गये*। इस तरह बहुत कुछ निकालकर बालकाण्डका कलेवर कृश कर दिया गया है। बड़ी-बड़ी पोथियोंको इसप्रकार कृश करके छपाना कोई नयी बात नहीं है। महाभारत और वाल्मीकीय रामायणके इस तरहके कृश संस्करण पं० चिन्तामणि विनायक वैद्यजीने निकाले हैं और श्रद्धेय रायबहादुर श्यामसुन्दरदासने मानसका ही एक कृश संस्करण निकाला है। इन सज्जनोंने पाठका हेर-फेर किये बिना ही पद्योंके प्रसङ्गोंको ऐसा चूलमें चूल मिला दिया है कि पाठकको साधारणतया यह नहीं पता लगता कि

* बाबू श्यामलालने एक बात और की है जिसे हम साहित्यिक ईमानदारीसे बहुत दूरकी बात समझते हैं। जहाँ कहीं प्रसङ्गको मिलानेके लिये जरूरत पड़ी है आपने शब्द भी बदल दिये हैं और यह नहीं दिखलाया है कि किस प्रमाणसे ऐसा किया गया। जैसे, [देखो 'बालकाण्डका नया जन्म पृ० १०१'] प्रतापभानुके प्रकरणकी रावणोत्पत्तिके साथ हरगणशापको जबरदस्ती मिलानेके लिये आपने—

'तदपि मुनीसुर सापवस भये सकल अघरूप'

—कर दिया है। मूलमें महीसुर था, आपने 'मुनीसुर' कर दिया। मैं चुनौती देता हूँ कि मुझे आप शुद्ध-अशुद्ध किसी छपी पोथीमें या प्रामाणिक पुरानी लिखी पोथीमें 'मुनीसुर' दिखा दें। मेरा तो यह दावा है कि सारे रामचरितमानसमें 'मुनीसुर' शब्द कहीं आया ही नहीं है। इस शब्दका तो अवश्य ही आपके ही छपाये बालकाण्डमें 'नया जन्म' हुआ है।

—रामदास गौड़

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बीच-बीचसे बहुत बड़े-बड़े अंश निकाल दिये गये हैं। इतना कौशल दिखाकर भी इन लेखकोंका यह दावा नहीं है कि जो अंश निकाल दिये गये हैं वे क्षेपक थे। श्रीश्यामलालजीने भी काम यही किया है, पर साथ ही उनका यह भी दावा है कि जो अंश हमने छोड़ दिये हैं वह मानसकारकी रचना थी ही नहीं ! आपने इन्हें निकालनेके लिये शङ्काएँ उपस्थित की हैं और उनका समाधान केवल इसी तरह किया है कि ये क्षेपक हैं, प्रसङ्गसे असङ्गत हैं, अतः त्याज्य हैं। आपने अनेक टीकाकारोंके हवाले भी दिये हैं, उनकी शङ्काओं और समीक्षाओंपर विचार भी किया है, परन्तु किसी प्राचीन पाठवाली पोथीका हवाला देकर यह नहीं स्थिर किया है कि अमुकामुक प्रमाण भी निश्चित अंशोंको प्रक्षिप्त एवं परिहार्य सिद्ध करता है। आपने इण्डियनप्रेसका संस्करण पढ़ा है। उसमें आपने यह अवश्य पढ़ा होगा कि अयोध्याजीमें संवत् १६६१ की लिखी हुई बालकाण्डकी एक पोथी मौजूद है। इसीका उल्लेख इस लेखमें मैंने श्रावणकुञ्जवाली पोथीके नामसे किया है। आपने भी श्रीशुकदेवलालजीकी तरह किसी पोथीके शुद्ध पाठका प्रमाण नहीं दिया है। सब कुछ अपनी कल्पना और युक्तिके बलपर स्थिर कर लिया है। श्रावण-कुञ्जवाली पोथी मानसकी रचनाके ठीक तीस बरस बादकी लिखी है, जब कि मानसकार इस पाञ्चभौतिक शरीरमें मौजूद थे और काव्यरचनाकी उनकी शक्ति शिथिल नहीं हुई थी। घटाने-बढ़ानेका उन्हें पूरा अधिकार था। उसी श्रावणकुञ्जवाली पोथीसे इण्डियनप्रेसवाली पोथीका पाठ मिलाया हुआ है। अभी हालमें मैंने स्वयं भागवतदासादिवाली छपी प्रतिको उसीसे मिलाया है। जिन अंशोंको श्रीश्यामलाल-जी प्रक्षिप्त ठहराते हैं वे सभी अंश इन पोथियोंमें मौजूद हैं। अतः कोई प्रबल-से-प्रबल युक्ति भी उन्हें क्षेपक ठहराने-में समर्थ नहीं हो सकती। श्रावणकुञ्ज और भागवतदासादिकी प्रतिको मिलाकर पाँच प्राचीन-से-प्राचीन प्रतियाँ हुईं जो भिन्न-भिन्न देश और कालकी लिखी हैं और भिन्न-भिन्न लेखकोंकी हैं और विभिन्न प्रतियोंसे नकल की गयी हैं और उन पाठ करनेवालोंकी चीज़ें हैं जो मन्त्रवत् मानते हैं और मक्षिकास्थाने मक्षिका रख देनेवाले कट्टर अनुकरणपन्थी हैं। फिर, यह भी बात नहीं समझमें आती कि मानसकारके जीते-जी क्षेपक घुसेड़कर कौन प्रचार करनेवाला पैदा हो गया जो परम्परागत शिष्योंकी कौन कहे, स्वयं किशोरीदत्तजीको वही क्षेपकयुक्त बालकाण्ड पढ़ा डालेगा। इस तरहका प्रक्षेपण ऐसी कष्टकल्पना है जो केवल श्रीश्यामलालजीके ही दिमाग-को जँच सकती है।

श्रीश्यामलालजीने जिन शङ्काओंपर इन अंशोंको प्रक्षिप्त माना है उनका उत्तर बहुत सन्तोषजनक दिया जा सकता है। परन्तु यहाँ हम लाघवके लिये गोस्वामीजीके काव्यदोष और कमजोरी ही मान लें तो प्रक्षिप्त माननेका कौन-सा कारण रह जाता है ? बात यह है कि किसी पाठको प्रक्षिप्त माननेके लिये मुख्य प्रमाण तो पुरानी पोथियाँ ही हो सकती हैं; युक्ति, तर्क और अन्तःसाक्षी तो उनके समर्थनमें गौण ही प्रमाण गिने जायँगे।

जिस क्रमसे श्रीश्यामलालजीने तथोक्त प्रक्षिप्तांशोंका परिहार और शुद्ध पाठका परिष्कार बालकाण्डके लिये किया है उसी क्रमसे वे शेष छहों काण्डोंका भी कर सकते हैं। इस तरह परिष्कृत रामचरितमानसमें तो फिर ५१०० चौपाइयोंकी संख्या नहीं रह जायगी। सम्भव है कि फिर भी कोई ऐसी संख्या निकल आवे जो 'सतपंच' के अनेक अर्थोंमेंसे किसीके अनुकूल हो सके। परन्तु सम्प्रति तो बालकाण्डके नये जन्ममें इतनी कृशता है कि वह ५१०० के समूहको छिन्न-भिन्न कर देगा।

(३) पाठशुद्धताकी अन्तःसाक्षी

मानसके पाठकी शुद्धिके अब दो प्रश्न और रहे। एक तो यह कि जिन शब्दों या पदोंमें पाठभेद है उनमेंसे कौन शुद्ध मानसकारके हो सकते हैं। दूसरे यह कि जिन शब्दोंकी वर्त्तनीमें ही भेद है उनमेंसे किस-किसका कौन रूप मानसकारके अनुकूल होगा। दोनों बातें इतनी मिलती-जुलती हैं कि उनपर एक ही प्रकरणमें विचार करनेमें सुभीता है। इसलिये हम पहले प्रथम प्रश्नको उदाहरणरूपमें लेते हैं।

उत्तरकाण्डमें ११० वें चौपाईसमूहकी तीसरी द्विपदी इसप्रकार है—

'चरम / धरम देह द्विजकर मैं पाई। सुरदुरलभ पुरान स्रुति गाई॥'

इसमें 'चरम' और 'धरम' दोनों तरहका पाठ मिलता है। भागवतदासादिमें 'चरम' पाठ है। पण्डित शिवलाल पाठकने 'धरम' पाठ दिया है। 'चरम' का अर्थ किया जाता है अन्तिम, क्योंकि पहला जन्म शूद्रका हुआ था

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जिससे कथाका आरम्भ हुआ और द्विज-शरीरमें ही शापसे कौआ होकर चिरजीवी हुए। पण्डित शिवलाल पाठक 'धरम देह' का अर्थ करते हैं 'पूर्वपुण्यसे मिली देह' तथा 'जो लीलानुकरण-जैसे पुण्यकार्यमें लगी।'

यथा—

धर्म शम्भु सेवा भई, शाप अन्त द्विजदानि।
लीला सत सिरांसकी, मानस लेख सुमानि॥

पाठ और अर्थ दोनोंके सम्बन्धमें कई बातें विचारणीय हैं। लिखनेमें रेखाकी जरा-सी मोड़से 'च' का 'ध' बन जाता है और मोड़के कट या मिट जानेसे 'ध' का 'च' बन जाता है। नकल करनेवाला इस सम्बन्धमें निश्चय नहीं कर सकता। बहुत जरा-से अन्तरमें भूलकी परम्परा खड़ी हो जाती है। फिर 'धरम' पक्षसे यह कहा जा सकता है कि धरम इसलिये ठीक है कि अभीतक शापयोनियाँ रहीं। द्विज-देह ही पहले-पहल धर्मदेह मिली है। इसीलिये यहाँ 'धरम' शब्द प्रयोजनीय है। 'चरम' पक्षसे यह कहा जा सकता है कि द्विज-देह तो धर्म-देह है ही। फिर 'धर्म' शब्द लाना व्यर्थ है, सुतरां जहाँ सुरदुर्लभ आदि विशेषण हैं वहाँ तो 'धर्म' की सार्थकता और भी नहीं रहती क्योंकि ये विशेषण अत्यधिक समर्थ और प्रबल हैं। 'चरम' शब्द यहाँ आवश्यक भी है, क्योंकि यह 'प्रथम जनमके चरित अब कहहुँ' (दोहा ९६) इस उपक्रमके उपसंहार 'चरम देह द्विजकर मैं पाई' अन्तिम देहकी कथाकी सूचना देता है। 'प्रथम' उपक्रम है, 'चरम' उपसंहार है। प्रथमसे पहले जन्मकी कथाका आरम्भ होता है और 'चरम' से अन्तिम जन्मकी कथाका आरम्भ होता है। मैंने दोनों तरहके टीकाकारोंके मत दिये हैं। मेरी समझमें 'चरम' का पक्ष प्रबल है। इसलिये मैं 'चरम' को मुख्य मानता हूँ और 'धरम' को पाठान्तर। किसी अच्छी सम्पादित पोथीमें पाठ दोनों तरहके दिये होने चाहियें। जबतक स्वयं मानसकारके हाथकी लिखी पोथीमें इसका ठीक निर्णय न मिले तबतक मेरी रायमें इसी प्रकार पाठ देना चाहिये।

ऐसे सन्दिग्ध पाठवाले स्थल मानसमें अनेक हैं। उनका उल्लेख यहाँ अभीष्ट नहीं है। उदाहरणसे यह बात यथार्थरीत्या समझी जा सकती है कि पाठान्तरोंपर विचार करनेमें कितनी सावधानीकी आवश्यकता है।

वर्त्तनीके भेदवाला प्रश्न भी कम महत्त्वका नहीं है। आधुनिक पण्डितमन्य सम्पादकों और टीकाकारोंने जो तद्भवोंको बदलकर तत्समरूप दे दिये हैं वह तो प्राकृत व्याकरणकी उनकी नितान्त अनभिज्ञताका परिचायक है। इसमें तो किसी तरहका झगड़ा ही नहीं है कि रामचरित-मानस अवधी प्राकृतमें लिखा गया है। यद्यपि अवधीका गोस्वामीजीके समयका कोई व्याकरण मौजूद नहीं है, तथापि वर्त्तमान अवधी भाषा तो जीवित भाषा है; उसका व्याकरण जानना-समझना कुछ मुश्किल भी नहीं है। उसके सिवा प्राकृतके कुछ नियम तो आसानीसे लग सकते हैं। उदाहरणके लिये यह विषय तो विवादग्रस्त हो ही नहीं सकता कि अवधप्रान्त यजुर्वेदप्रधान है। उसकी माध्यन्दिनी शाखा ही यहाँकी शाखा है। माध्यन्दिनी शाखाके लिये 'ष' (मूर्धन्य षकार) को 'ख' और 'य' कारको 'ज' पढ़ना व्याकरणका नियम है। इस नियमका प्राकृत-पर ऐसा प्रभाव पड़ा हुआ है कि इस प्रान्तमें 'ष' के स्थानमें 'ख' और 'य' के स्थानमें 'ज' बोला जाता है। बरखा, हरख, पुखराज, रिखि, पुरुख, पुरखा, पौरुख, दोख, जजमान जोग, जग्य, जात्रा, जात्री, जस, जवन इत्यादि शब्द प्रसिद्ध हैं। मानसकारने जिस भाषामें लिखा है उसे बारम्बार ग्रामीण भाषा कहा है। अतः मानसकी भाषामें आद्योपान्त 'ष' ही 'ख' का स्थान लेता है और 'जोग' 'जग्य' 'जोनि' 'जस' आदि शब्द 'य' के स्थानमें 'ज' का प्रयोग बताते हैं। कहीं-कहीं भूलसे कोई 'योनि' लिख गया हो तो बात दूसरी है। तालव्य शकार शौरसेनी प्राकृतमें नहीं आता। मागधीमें दन्त्य सकार नहीं आता। अवधप्रान्तपर दोनों-का प्रभाव पड़ा हुआ दीखता है। परन्तु शौरसेनीका प्रभाव अधिक है। 'श्री' सर्वत्र सभी लिखी पोथियोंमें तालव्य शकारसे ही देखी जाती है। इसके सिवा 'श्र' के लिये भी 'स्र' आता है। स्रवन, स्रुति, स्रुत, बराबर श्रवण, श्रुति और श्रुतके लिये लिखे गये हैं। सिव, संभु, संकर, महेस, सुरेस, रमेस, महीस, दस, दसरथ, कौसल्या, समन, दिसि, ससि, सस, सीस, सिसु इत्यादि शब्दोंके लिये तो दन्त्य सकार नियम है। भागवतदासादिके संस्करणमें और छपे मानसमयंकमें और श्रावणकुञ्ज तथा राजापुरवाली लिखित प्रतियोंमें भी यही नियम है। करइ, धरइ, आवइ, जाइ आदि रूप प्रायः सर्वत्र हैं; परन्तु तुकान्तमें प्रायः करै, धरै, भी आया है। तुकान्त ही यह भी पता देता है कि जब 'वचन वेगि न आवई' 'जो पावई' 'भावई' आदि तुकमें हैं तो आवइ, पावइ, भावइ आदि ही शुद्ध रूप हैं और करै, धरै आदि कहीं-कहीं केवल लाघवके लिये लिखे गये हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बीचमें करै, धरै आदि रूप मिलें तो अवश्य ही लेख-प्रमाद समझा जाना चाहिये, क्योंकि ऐसा बहुत कम हुआ है। 'ज्ञ' की जगहपर 'ग्य' का लिखा जाना भी साधारण-सा नियम है। ग्यान, ग्याति, जग्य, विग्यान आदि लिखना ही ठीक है। श्रावणकुञ्ज और राजापुरकी पोथियों-का इसमें मतैक्य है।

निदान मानसकी लिपिशैलीमें जहाँतक भाषाका सम्बन्ध है ङ, ख, ङ, ञ, ण, श, क्ष, ज्ञ—इन आठ अक्षरोंका बहिष्कार है। इनकी जगह रि, ष, अनुस्वार, चन्द्रविन्दु, न, स, च्छ या क्ख तथा ग्य—इनका प्रयोग है। यह नियम है और इस नियमकी स्थापना श्रावणकुञ्ज, राजापुर और मानसमयंकसे होती है। परन्तु इस नियमका अपवाद कहीं-कहीं व्यवहारमें इन्हीं पोथियोंमें आता है, पृ०१३७ मयंकमें 'अज्ञान' भी है और 'जग्य' भी है। पृ० १३६ में दो बार 'जग्य' है। यह स्पष्ट है कि 'अज्ञान', का 'ज्ञा' या तो पोथीमें लेखककी भूल है या छपाईमें संशोधककी भूल है। लेखकसे भूल होना तो कोई बात ही नहीं, स्वयं ग्रन्थ-कारसे इन भूलोंका हो जाना सम्भव है। मानसकार-सा प्रकाण्ड पण्डित भी लिखते-लिखते ऐसी भूलें छोड़ जा सकता है। परन्तु बहुधा ऐसी भूलोंका पता लग भी जाता है। जब सौ जगहोंमें तालव्यकी जगह दन्त्य सकार ही आया है तब दो-चार जगहोंमें तालव्यका प्रयोग और उन्हीं शब्दोंके लिये जो अन्य सभी जगह दन्त्य 'स' से लिखे गये हैं अवश्य ही भूल है। सैकड़ों जगह 'ण' की जगह 'न' आया है और दो-चार जगह उन्हीं शब्दोंको 'ण' से लिखा गया तो वह भूल नहीं तो क्या है? यदि कहा जाय कि विकल्पसे दोनों तरहके प्रयोग होंगे, तो वह विकल्प ही क्या जो सैकड़ा पीछे पचीस बार भी न आवे। जिन पोथियोंकी मैं चर्चा करता हूँ उनमें परम्पराके पाठवाला मानसमयंक सुलभ है, अतः हम उसीमेंसे उदाहरण देंगे। हरनी, बरनी, सिव बिस्वास, देस, कलेस, स्रम, स्रुति, जानी, दसरथ आदि नियमतः सभी जगह पाठ है, परन्तु पृ० ४९ पर योनी ८० पर पुराण, ८३ पर शिव, ८५ पर बिशेष, ९३ पर विश्वनाथ, ११४ पर संशय, १२० पर कारण, १३० पर दशरथ, कौशिल्या, ६८८ पर श्रुति, खगेश भी पाठ है। इन्हें अपवाद भी नहीं बल्कि शुद्ध भूल कहना होगा। 'दशरथ' शब्दके लिये हमने विशेषरूपसे खोज की। सौ बार दसरथ लिखा गया होगा तो शायद एक-दो बार 'दशरथ' भी लिखा गया होगा। यह बात श्रावणकुञ्ज और मयंकके लिये ठीक आती है। भागवतदासादिके संस्करणमें तो ऐसा अपवाद कहीं देखा नहीं गया है। हमने 'दशरथ' की खोज विशेष-रूपसे इसलिये की कि मानसकारने पंचनामेमें 'दशरथ' लिखा है। इसे मैं मानसकारके कलमसे ही वह भूल कहूँगा जो विद्वानोंके द्वारा होनी स्वाभाविक है। यह भूल उसकी विद्वत्ता और बहुज्ञताके ही प्रभावसे हो गयी है। ऐसी भूलें अनुप्राससे भी लख ली जाती हैं। जहाँ 'दन्त्य 'स' का अनुप्रास-बाहुल्य है वहाँ बीचमें तालव्य 'श' का आना असङ्गत है। नकारके अनुप्रासोंके बीच 'ण' कार नहीं खप सकता। इस तरह शब्दकी स्थिति भी उसकी वर्त्तनीका निश्चय करनेमें सहायता देती है।

(४) उपसंहार

मानसका शुद्ध संस्करण निकालनेवालेपर भारी जिम्मेदारी है। यों तो केवल पैसा कमा लेनेके लिये शायद ही कोई प्रेस होगा जिसने मानसपर मनमाना अत्याचार न किया हो। परन्तु भगवान् शङ्करका यह अमर काव्य इन अत्याचारोंसे मरनेवाला नहीं है। फिर भी उसकी रक्षा करनी शुद्ध संस्करण निकालनेवालेका कर्त्तव्य है। एक ओरसे जहाँ उसे बाहरी कूड़े-कचरेसे शुद्ध रखना है, दूसरी ओरसे वहीं उसको अंगच्छेद और अङ्गभङ्गसे बचाना है। एक ओरसे जहाँ उसकी विकृताङ्ग और कुरूप बननेसे रक्षा करनी है, दूसरी ओरसे वहीं उसे उसके स्वाभाविक सौन्दर्यसे सजाना है। इसका सबसे उत्तम उपाय यही है कि मानसकारसे भरसक एकात्मभाव हो जाय, उसके लिखे अनुरूप छपवाया जाय, उसके अक्षर-अक्षरकी वास्तविकताका पता लगाकर प्रकाशित किया जाय, और ऐसे शुद्ध पाठको सर्वसुलभ कर दिया जाय। गीताप्रेससे बढ़कर इसके लिये विशुद्ध छापनेवाला और कल्याणसे बढ़कर इसके लिये कल्याणकारी प्रकाशक नहीं मिल सकता, यदि, वे दोनों संस्थाएँ गीताकी ही तरह श्रीरामचरितमानसकी ओर भी पूरा ध्यान देकर श्रद्धापूर्वक सर्वसाधारणके लिये इसे सुलभ कर दें।* एवमस्तु।

* गीताप्रेस रामचरितमानसका संस्करण प्रकाशित करनेका विचार कर रहा है। परन्तु पाठके सम्बन्धमें अभी कोई अन्तिम निर्णय नहीं हुआ है। इस लेखको पढ़कर श्रीमानसके मर्मज्ञ रामायणी तथा प्रेमी विद्वान् महानुभाव कृपापूर्वक पाठ तथा वर्त्तनीके सम्बन्धमें अपनी-अपनी सम्मति हमें लिख भेजेंगे तो बड़ी कृपा होगी। हम इस लेखको आधार बनाकर खण्डन-मण्डनात्मक लेख कल्याणमें प्रकाशित करना नहीं चाहते, केवल शुद्ध पाठके निर्णयमें सहायता चाहते हैं। आशा है, मानसप्रेमी महानुभाव इस कार्यमें हमारी सहायता करेंगे। —सम्पादक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भक्त-गाथा

भक्त जयदेव

सिद्ध भक्त-कवि जयदेवका जन्म लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व बंगालके वीरभूमि-जिलेके अन्तर्गत केन्दुबिल्व नामक ग्राममें हुआ था। इनके पिताका नाम भोजदेव और माताका नाम वामादेवी था। ये भोजदेव कान्यकुब्जसे बंगालमें आये हुए पञ्च-ब्राह्मणोंमें भरद्वाजगोत्रज श्रीहर्षके वंशज थे। माता-पिता बाल्यकालमें ही इन्हें अकेला छोड़कर चल बसे थे। ये भगवान्‌का भजन करते हुए किसी प्रकार अपना निर्वाह करते थे। पूर्व-संस्कार बहुत अच्छे होनेके कारण इन्होंने कष्टमें रहकर भी बहुत अच्छा विद्याभ्यास कर लिया था और सरल प्रेमके प्रभावसे भगवान् श्रीकृष्णकी परम कृपाके अधिकारी हो गये थे।

इनके पिताको निरञ्जन नामक उसी गाँवके एक ब्राह्मणके कुछ रुपये देने थे। निरञ्जनने जयदेवको संसारसे उदासीन जानकर उनकी भगवद्भक्तिसे अनुचित लाभ उठानेके विचारसे किसी प्रकार उनके घर-द्वार हथियानेका निश्चय किया। उसने एक दस्तावेज बनाया और आकर जयदेवसे कहा—'देख जयदेव! मैं तेरे राधा-कृष्ण और गोपी-कृष्णको नहीं जानता। या तो अभी मेरे रुपये व्याजसमेत दे दे, नहीं तो इस दस्तावेजपर सही करके घर-द्वारपर मुझे कब्जा कर लेने दे!'

जयदेव तो सर्वथा निःस्पृह थे। उन्हें घर-द्वारमें रत्तीभर भी ममता नहीं थी, उन्होंने कलम उठाकर उसी क्षण दस्तावेजपर हस्ताक्षर कर दिये। निरञ्जन कब्जा करनेकी तैयारीसे आया ही था। उसने तुरन्त घरपर कब्जा कर लिया। इतनेमें ही निरञ्जनकी छोटी कन्या दौड़ती हुई अपने घरसे आकर निरञ्जनसे कहने लगी—'बाबा, जल्दी चलो, घरमें आग लग गयी, सब जल गया।' भक्त जयदेव वहीं थे। उनके मनमें द्वेष-हिंसाका कहीं लेश भी नहीं था, निरञ्जनके घरमें आग लगनेकी खबर सुनकर वे उसी क्षण दौड़े और जलती हुई लाल-लाल लपटोंके अन्दर उसके घरमें घुस गये। जयदेवका घरमें घुसना ही था कि अग्नि वैसे ही शान्त हो गयी जैसे जागते ही सपना! भक्तके लिये क्या नहीं हो सकता?

गरल सुधा रिपु करै मिताई। गोपद सिन्धु अनल सितलाई॥

जयदेवकी इस अलौकिक शक्तिको देखते ही निरञ्जनके नेत्रोंमें जल भर आया। अपनी अपवित्र करनीपर पछताता हुआ निरञ्जन जयदेवके चरणोंमें गिर पड़ा और दस्तावेजको फाड़कर कहने लगा—'देव! मेरा अपराध क्षमा करो, मैंने लोभवश थोड़े-से पैसोंके लिये जान-बूझकर बेईमानीसे तुम्हारा घर-द्वार छीन लिया है। आज तुम न होते, तो मेरा तमाम घर खाक हो गया होता। धन्य हो तुम! आज मैंने भगवत्-भक्तका प्रभाव जाना।'

उसी दिनसे निरञ्जनका हृदय शुद्ध हो गया और वह जयदेवके संगसे लाभ उठाकर भगवान्‌के भजन-कीर्तनमें समय बिताने लगा।

भगवान्‌की अपने ऊपर इतनी कृपा देखकर जयदेवका हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने घर-द्वार छोड़कर पुरुषोत्तमक्षेत्र—पुरी जानेका विचार किया और अपने गाँवके पराशर नामक ब्राह्मणको साथ ले-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कर वे पुरीकी ओर चल पड़े। भगवान्‌का भजन-कीर्तन करते, मग्न हुए जयदेवजी चलने लगे। पासमें कुछ पाथेय तो था ही नहीं। था तो मुखमें हरिका पवित्र नाम और हृदयमें हरिकी बाँकी झाँकी। एक दिन मार्गमें जयदेवजीको बहुत दूरतक कहीं जल नहीं मिला। बहुत जोरकी गरमी पड़ रही थी, वे प्यासके मारे व्याकुल होकर जमीनपर गिर पड़े। तब भक्तवाञ्छाकल्पतरु हरिने स्वयं गोपाल-बालकके वेषमें पधारकर जयदेवको कपड़ेसे हवा की और जल तथा मधुर दूध पिलाया। तदनन्तर मार्ग बतलाकर उन्हें शीघ्र ही पुरी पहुँचा दिया। अवश्य ही भगवान्‌को छद्मवेशमें उस समय जयदेवजी और उनके साथी पराशरने पहचाना नहीं। भगवान् पुरीमें उन्हें पहुँचाकर जब अन्तर्धान हो गये और खोजनेपर भी जब कहीं उनका पता न चला, तब जयदेवजीने उन्हें भगवान् समझा। वे बहुत पछताये, परन्तु अब क्या हो सकता था?

जयदेवजी प्रेममें डूबे हुए सदा श्रीकृष्णका नाम गान करते रहते थे। एक दिन भावावेशमें अकस्मात् उन्होंने देखा मानों चारों ओर सुनील पर्वतश्रेणी है, नीचे कल-कल-निनादिनी कालिन्दी बह रही है। यमुना-तीरपर कदम्बके नीचे खड़े हुए भगवान् श्रीकृष्ण मुरली हाथमें लिये मुसकरा रहे हैं। यह दृश्य देखते ही जयदेवजीके मुखसे अकस्मात् यह गान निकल पड़ा—

मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमै-
र्नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय।
इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुञ्जद्रुमं
राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहःकेलयः॥

पराशर इस मधुर गानको सुनकर मुग्ध हो गया। बस, यहींसे ललित, मधुर 'गीत-गोविन्द' आरम्भ हुआ!

कहा जाता है, यहीं जयदेवजीको भगवान्‌के दशावतारोंके प्रत्यक्ष दर्शन हुए और उन्होंने 'जय जगदीश हरे' की टेर लगाकर दसों अवतारोंकी क्रमशः स्तुति गायी। कुछ समय बाद जब उन्हें बाह्य ज्ञान हुआ तब देखा कि यह तो वृन्दावन नहीं है। सामने अनन्त समुद्र है। जयदेवने अनन्त जगत्‌में सर्वत्र फैले हुए विश्वरूप भगवान्‌को पहचानकर उनकी स्तुति की। फिर पराशरको साथ लेकर वे चले भगवान् श्रीजगन्नाथजीके दर्शन करने! भगवान्‌के दर्शन प्राप्त-कर जयदेवजी बहुत प्रसन्न हुए। उनका हृदय आनन्दसे भर गया! वे पुरुषोत्तमक्षेत्र पुरीमें एक विरक्त संन्यासीकी भाँति रहने लगे। इनका कोई नियत स्थान नहीं था। प्रायः वृक्षके नीचे ही वे रहा करते और भिक्षाद्वारा क्षुधानिवृत्ति करते। दिन-रात प्रभुका ध्यान, चिन्तन और गुणगान करना ही इनके जीवनका एकमात्र कार्य था।

सुदेव नामक एक भक्त ब्राह्मण पुरीमें रहते थे। उनके कोई सन्तान नहीं थी। स्त्रीकी इच्छासे सुदेवने भगवान् श्रीजगन्नाथजीसे पुत्रप्राप्तिकी कामना की और कहा कि 'हमारे जो पहली सन्तान होगी, उसे हम आपकी सेवामें अर्पण कर देंगे।' भगवान्‌की कृपासे समयपर उनके एक कन्या पैदा हुई। कन्याका नाम पद्मावती था। जब वह दस-बारह वर्षकी हुई, तब श्रद्धालु माता-पिताने उसे श्रीजगन्नाथजीके अर्पण कर दिया। रातको भगवान् श्रीजगन्नाथजीने स्वप्नमें उन्हें आदेश दिया कि 'पद्मावतीको मैंने ग्रहण कर लिया है। अब मेरी आज्ञासे तुम इसका विवाह पुरीमें आकर रहे हुए मेरे परम भक्त जयदेवके साथ कर दो।'

भगवान्‌का आदेश पाकर ब्राह्मण-दम्पती कन्याको साथ लेकर पेड़-तले बैठे, कीर्तन करते हुए जयदेवजीके पास आये और उनको भगवान्‌की आज्ञा सुनायी। जय-देवने बड़े ही आश्चर्य और विषादसे युक्त होकर कहा—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'महाराज ! मैं गृहत्यागी भिखारी हूँ । मैं विवाह नहीं करना चाहता ।' ब्राह्मण-दम्पतीने कहा—'हमलोग भगवान्‌की आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं कर सकते । हम तो इसे आपको दे चुके । जब श्रीजगन्नाथजीने स्वयं इसे आपको देनेकी आज्ञा दी है, तब ऐसा कौन है जो उनकी आज्ञाका उल्लंघन कर सके ? यह कन्या आपके पास रही, हमलोग जाते हैं ।' जयदेवने उन्हें रोकना चाहा; परन्तु वे नहीं रुके । आखिर जयदेवजीको भगवान्‌का आदेश मानकर पद्मावतीके साथ विवाह करना पड़ा । कुछ दिन बाद गृहस्थ बने हुए जयदेव पतिव्रता पद्मावतीको साथ लेकर अपने गाँव केन्दुबिल्वको लौट आये और भगवान् श्रीराधामाधवकी युगल श्रीमूर्ति प्रतिष्ठित करके दोनों उनकी सेवामें प्रवृत्त हो गये ।

कुछ समय केन्दुबिल्वमें रहनेके बाद जयदेवजी यात्राको निकले । एक राजाने उनका बड़ा सम्मान करके उन्हें अपने यहाँ रक्खा और वहाँसे चलते समय इच्छा न रहनेपर भी बहुत-सा धन उन्हें दे दिया । जयदेवजीने कहा—'राजन् ! भगवत्प्रेमकी प्राप्ति चाहनेवाले व्यक्तिके लिये धन-रत्न विषके समान है । धन मनुष्यको मदान्ध कर देता है और धनहीके कारण लोभ तथा परस्पर राग-द्वेष पैदा हो जाते हैं । इस अनर्थके कारणरूप अर्थको मैं नहीं चाहता ।' परन्तु राजाने किसी प्रकार भी नहीं माना, तब मन मारकर उन्होंने राजाकी प्रसन्नताके लिये निःस्पृह और निर्मम भावसे कुछ धन साथ ले लिया और वहाँसे वे अपने गाँवको चल पड़े ।

सड़े मांसपर सियार-गीध झपटा ही करते हैं । धन देखकर लोभी मनुष्य उसके पीछे हो लेता है । कुछ डाकू जयदेवजीके साथ हो लिये । सरल-हृदय जयदेवजी भजनमें मस्त चले जा रहे थे । डाकू उनसे धन माँगते तो वे खुशी-खुशी उन्हें दे देते, परन्तु डाकू तो अपनी-सी जानते थे । अपना वश चलते कौन किसीको धन देता है, यही सोचकर डाकुओंने जयदेवको अपने वश करनेके लिये युक्ति सोची । लोभ मनुष्यके विवेकको नष्टकर उसे असुर या राक्षस बना देता है । डाकू मनुष्य थे; परन्तु लोभने उन्हें राक्षस बना दिया । उन्होंने पीछेसे आक्रमण कर जयदेवजीको नीचे गिरा दिया और देखते-देखते ही उनके चारों हाथ-पैर काटकर उन्हें एक कुएँमें डाल दिया । अनित्य धनकी गठरीके साथ ही उन्होंने महान् दुःख-के कारणरूप भयानक पापकी भारी पोट भी बाँध ली । अपनी सफलतापर गर्व करते हुए डाकू वहाँसे चल दिये ।

भगवत्कृपासे कुएँमें जल बिल्कुल नहीं था, इससे जयदेवजी डूबे नहीं । भगवान्‌की दयासे उन्हें कहीं चोट भी नहीं आयी—

जाको राखै साइयाँ, मार सकै नहिं कोय ।

वे कुएँके अन्दर एक सुन्दर शिलाको पाकर उसी-पर सुखसे बैठ गये और प्रभुके विधानपर परम प्रसन्न होते हुए उनका नाम-गुण-कीर्तन करने लगे । जयदेवजीने सोचा कि हो-न-हो यह धन ग्रहण करनेका ही परिणाम है ।

थोड़ी देर बाद उधरसे गौड़ेश्वर राजा लक्ष्मण-सेनकी सवारी जा रही थी । कुएँमेंसे आदमीकी आवाज आती सुनकर राजाने देखनेकी आज्ञा दी । एक सेवकने जाकर देखा तो मालूम हुआ कोई मनुष्य कुएँमें बैठा श्रीकृष्ण-नाम-कीर्तन कर रहा है । राजाकी आज्ञासे उसी क्षण जयदेव बाहर निकाले गये और इलाज करानेके लिये उन्हें साथ लेकर राजा अपनी राजधानी गौड़को लौट आये ! श्री-जयदेवजीकी विद्वत्ता और उनके श्रीकृष्णप्रेमका परिचय प्राप्तकर राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उनके लोकोत्तर गुणोंको देख वह उनका भक्त बन गया। राजाने हाथ-पैर काटनेवालोंका नाम-पता और हुलिया पूछा। जयदेवजी नाम-पता तो जानते ही नहीं थे; परन्तु हुलिया भी उन्होंने इसलिये नहीं बतायी कि कहीं राजकर्मचारी उनका पता लगाकर उन्हें तंग न करें। सच्चे भक्त वैरीका भी अमङ्गल नहीं चाहते। सारे जगत्के जीवोंके साथ उनका मैत्री-भाव होता है, उनकी दृष्टिमें कोई बुरा करनेवाला रहता ही नहीं। वे अपने अनिष्टमें भी भगवान्की कृपा समझकर उसका स्वागत करते हैं और निमित्त बननेवालेका धन्यवाद करते और उसका भला मनाते हैं। क्षमा तो उनके स्वभावमें भरी रहती है।

चिकित्सासे जयदेवजीके घाव सूख गये। राजाने उन्हें अपनी पञ्चरत्न-सभाका प्रधान बना दिया और सर्वाध्यक्षताका सारा भार उन्हें सौंप दिया। इसके कुछ दिनों बाद इनकी पत्नी पद्मावती भी श्रीराधा-माधवकी युगल मूर्तिको लेकर पतिके पास चली आयीं। राजा हर तरहसे धनादि देकर जयदेवजीका सम्मान करना चाहते; परन्तु धन-मानके विरागी भक्त जयदेव मामूली खर्चके सिवा कुछ भी नहीं लेते थे। एक दिन राजमहलमें कोई महोत्सव था। उसमें भोजन करनेके लिये हजारों दरिद्र भिक्षुक, अतिथि, ब्राह्मण, साधु आदि आये थे। उन्हींमें साधुवेशधारी वे चारों डाकू भी थे जिन्होंने जयदेवजीको धनके लोभसे उनके हाथ-पैर काटकर कुएँमें फेंक दिया था।

डाकुओंको क्या पता था कि हमने जिसे मरा समझ लिया था वही यहाँ सर्वाध्यक्ष है। डाकुओंने दूरसे ही जयदेवजीको देखा और लूले-लँगड़े देखकर उन्हें तुरन्त पहचान लिया। वे डरकर भागनेका मौका देखने लगे। इतनेहीमें श्रीजयदेवजीकी दृष्टि उनपर पड़ी। देखते ही वे वैसे ही आनन्दमें भर गये जैसे बहुत दिनोंके बिछुड़े बन्धुओंको देखकर आनन्द होता है। जयदेवजीने मनमें सोचा, 'इन्हें धनकी आवश्यकता होगी। राजा मुझसे सदा धन लेनेको कहा करते हैं, आज इन्हें कुछ धन दिलवा दिया जायगा तो बड़ा सन्तोष होगा।' जयदेवजीने राजासे कहा—'मेरे कुछ पुराने मित्र आये हैं, आप चाहें तो इन्हें कुछ धन दे सकते हैं।' कहनेभरकी देर थी। राजाने तुरन्त उन्हें अपने पास बुलाया। राजाकी बुलाहट सुनकर उनके प्राण सूख गये, ऐसी दशा हुई कि काटो तो खून न निकले। उन्होंने अपनी तरहसे ही सोचा कि जरूर ब्राह्मणने राजासे हमारी शिकायत की है, और अब हमारे प्राण बचने कठिन हैं। मनुष्य अपनी ही-सी सोचता है। वह अपने हृदयकी भावनाके अनुसार ही जगत्को देखता है। साधुको सब साधु दीखते हैं और चोरको चोर! शिशु युवती स्त्रीके स्तनोंपर खेलता हुआ भी कामके वश नहीं होता और जवान आदमी अपने मनकी बुरी वासना और कल्पनावश एकान्तमें निर्दोष बातचीत करनेवाले जवान भाई-बहिनोंमें भी पापकी कल्पना कर लेता है।

डाकू डरे हुए लड़खड़ाते-लड़खड़ाते राजाके पासतक पहुँचे। राजाने उन्हें जयदेवजीके मित्र समझकर उनकी बड़ी आवभगत की तथा मनमाना धनरत्न माँगनेको कहा!

डाकू अचरजके समुद्रमें डूब गये। उनकी समझमें ही कुछ नहीं आया। क्या मारनेवालेको भी कोई मित्र कह सकता है? क्या दुनियामें ऐसा भी कहीं सम्भव है कि अपने खूनी अपराधी मनुष्योंको भी कोई हँसता हुआ धन दिलावे। उन्होंने अपनी कुटिल मतिके अनुसार इसको जयदेवजीकी कोई

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कुटिल नीति ही समझा और बहुत-सा धन-धान्य माँगकर, लेकर जल्दी-से-जल्दी वहाँसे चलनेकी तैयारीमें लगे। इसलिये आदरपूर्वक खिलाने-पिलानेके बाद वस्त्रालङ्कारोंसे पुनः सम्मानित करके राजाने और जयदेवजीने प्रेमपूर्वक उनको विदा किया। धनका बोझ ज्यादा हो गया था तथा रास्तेमें सँभालकी भी आवश्यकता थी, इसलिये जयदेवजीने एक अफसरके साथ चार सेवकोंको उनके साथ कर दिया। राहमें अफसरने उनके इतना धन-सम्मान पानेका रहस्य जाननेके लिये उनसे पूछा कि, 'भाइयो! आपका निःस्पृह भक्तवर जयदेवजीके साथ क्या सम्बन्ध है, जिससे उन्होंने आपलोगोंको इतनी अपार सम्पत्ति दिलवाकर आपके उपकारका बदला चुकाया है?'

पापबुद्धि डाकुओंने ईश्वरके न्याय और भयको भुलाकर कपटसे कहा—'साहब! तुम्हारा यह अध्यक्ष और हमलोग एक राज्यमें कर्मचारी थे। हमलोग अफसर थे और यह हमारी मातहतीमें काम करता था; इसने एक बार ऐसा कुकर्म किया कि राजाने गुस्सेमें आकर इसका सिर उड़ा देनेकी आज्ञा दे दी। उस समय हमलोगोंने दया करके इसे बचा लिया और इसके हाथ-पैर कटवाकर छोड़ दिया। हम कहीं यह भेद खोल न दें, इसी डरसे इसने हमारा इतना सम्मान किया-कराया है। हमने भी उसका बुरा हो जानेके डरसे कुछ भी नहीं कहा।'

डाकुओंका इतना कहना था कि धड़ामसे धरती फटी और चारों जीते ही उसमें समा गये!!

बार-बार भलाई करनेसे दुष्टोंका हृदय भी पलट जाया करता है। परन्तु कोई-कोई ऐसे अति दुष्ट होते हैं जो—

फूले फले न बेंत जदपि सुधा बरसहिं जलद।

—की भाँति अपना स्वभाव कभी नहीं छोड़ते, अतः उनके लिये दण्डकी ही आवश्यकता होती है। यद्यपि भक्त उन्हें दण्ड नहीं दिलाना चाहता, क्योंकि वह तो किसीको अपना बुरा करनेवाला मानता ही नहीं। जब उसके मनमें कुछ बुरा ही नहीं जँचता, जब वह प्रत्येक विधानमें प्रभुका मङ्गलमय हाथ समझकर मङ्गल ही समझता है, तब किसी बुरे करनेवालेकी तो उसके मनमें कल्पना ही कैसे हो? इसीसे वह बुरा करनेवालेका भी भला करता है—

उमा संतकी यहै बड़ाई। मंद करत सो करत भलाई॥

ऐसी अवस्थामें भगवान्‌को ही दण्डकी व्यवस्था करके दुष्टोंका उद्धार करना पड़ता है। यहाँ भी यही हुआ! पृथिवी माताने फटकर उनको अपनी गोदमें स्थान दे दिया!

अफसर साहब नौकरोंके सिरपर सारा धन लदवाकर वापस राजधानीमें लौट आये और राजाको उन्होंने सारा हाल सुना दिया। राजाने जयदेवजीको बुलाकर चकित मनसे सब बातें सुनायीं, इतनेमें ही राजा यह देखकर आश्चर्य और हर्षमें डूब गया कि जयदेवजीकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही है और उनके कटे हुए हाथ-पैर उसी क्षण पुनः पूर्ववत् स्वाभाविक हो गये हैं।

राजाने विस्मित होकर बड़े ही कौतूहलसे आग्रह-पूर्वक सारा हाल पूछा। जयदेवजीको अब सच्ची घटना सुनानी पड़ी। दयालु-हृदय जयदेवजीने कहा—'राजन्! मैं बहुत ही अभागा हूँ, जिसके कारण उन बेचारोंके प्राण गये। मैंने धनको बुरा समझकर छोड़ दिया था, पुनः राजाके आग्रहसे उसे ग्रहण किया। इसीसे वनमें उन बेचारोंकी बुद्धि लोभ-वश दूषित हो गयी और उन्होंने धन छीननेके लिये मुझे लूला-लँगड़ा करके कुएँमें डाल दिया। इसप्रकार उन्होंने धनका और धन-ग्रहणका प्रत्यक्ष दोष सिद्ध-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कर मेरे साथ मित्रताका ही बर्ताव किया। मैं उनके उपकारसे दब गया, इसीसे उन्हें आपके पाससे धन दिलवाया। अधिक धन दिलवानेमें मेरा एक हेतु यह भी था—यदि उनकी धनकी कामना पूर्ण हो जायगी तो वे डाकूपनके निर्दय कामको छोड़ देंगे। अवश्य ही मेरे हाथ-पैर किसी पूर्वकृत कर्मके फलसे ही कटे थे, वे तो केवल लोभवश निमित्त बने थे। आज अपने ही कारणसे उनकी इसप्रकार अप्राकृतिक मृत्युका समाचार सुनकर मुझे रोना आ रहा है। यदि उनका दोष हो तो भगवान् उन्हें क्षमा करें। पता नहीं, मेरा कौन-सा अपराध था जिससे उन्हें ऐसा कठिन दण्ड भोगना पड़ा। असलमें यह धनका संग ही बुरा है। कितना आश्चर्य है कि मेरे दोष न देखकर भगवान्‌ने दया करके मेरे हाथ-पैर पुनः पूर्ववत् बना दिये हैं। राजन्! ऐसे मेरे प्यारे श्रीकृष्णको जो नहीं भजता, उसके समान अभागा और कौन होगा?'

भक्तप्रवर श्रीजयदेवजीकी वाणी सुनकर राजा चकित हो उनके चरणोंमें लोट गया! भक्त-हृदयकी महानताका प्रत्यक्ष परिचय प्राप्तकर वह उससे अत्यन्त प्रभावित होकर भक्त बन गया।

प्रभावित तो डाकू भी हुए थे; परन्तु केवल प्रभावसे ही काम नहीं चलता। भूमि ठीक हुए बिना बीज अच्छा होनेपर भी प्रायः नहीं उगता। कहीं उगता है तो फल नहीं देता। अस्तु।

जयदेवजीकी पत्नी पद्मावती भी छायाकी भाँति सब प्रकारसे स्वामीका अनुवर्तन करनेवाली थी। भगवान्‌के प्रति उसका प्रेम भी असीम था। परन्तु वह इस प्रेमका कारण स्वामीको मानकर तन-मनसे उनकी सेवा किया करती। पातिव्रत-धर्मका महत्त्व वह भलीभाँति जानती थी। जयदेवजी राजपूज्य थे। इससे रानी, राजमाता आदि राजमहलकी महिलाएँ भी उनके घर पद्मावतीजीके पास आकर सत्सङ्गका लाभ उठाया करती थीं। रानी बहुत ही सुशीला, साध्वी, धर्मपरायणा और पतिव्रता थी। परन्तु उसके मनमें कुछ अभिमान था, इससे किसी-किसी समय वह कुछ दुःसाहस कर बैठती थी। एक दिन पद्मावतीके साथ भी वह ऐसा ही दुःसाहसपूर्ण कार्य कर बैठी।

सत्सङ्ग हो रहा था। बातों-ही-बातोंमें पद्मावतीने सती-धर्मकी महिमा बतलाते हुए कहा कि 'जो स्त्री स्वामीके मर जानेपर उसके शवके साथ जलकर सती होती है वह तो नीची श्रेणीकी ही सती है। उच्च श्रेणी-की सती तो पतिके मरणका समाचार सुनते ही प्राण त्याग देती है। पतिकी मृत्युका संवाद सुननेपर क्षणभर भी उसके प्राण शरीरमें नहीं रह सकते।' रानीको यह बात नहीं जँची। उसने समझा, पद्मावती अपने सतीत्वका गौरव बढ़ानेके लिये ऐसा कह रही है। मनमें ईर्ष्या जाग उठी, रानी परीक्षा करनेका निश्चय कर बिना ही कुछ कहे महलको लौट गयी। एक समय राजाके साथ जयदेवजी कहीं बाहर गये हुए थे। रानी सुअवसर समझकर दम्भसे विषादयुक्त चेहरा बनाकर पद्मावतीके पास गयी और कपट-रुदन करते-करते कहा कि 'पण्डितजीको वनमें सिंहने खा लिया।' उसका इतना कहना ही था कि पद्मावती 'श्रीकृष्ण-कृष्ण' कहकर धड़ामसे पृथिवीपर गिर पड़ी! रानीने चौंककर देखा, तो पद्मावती अचेतन मालूम हुई—परीक्षा करनेपर पता लगा कि पद्मावतीके प्राणपखेरू शरीरसे उड़ गये हैं। रानीके होश उड़ गये। उसे अपने दुःसाहसपूर्ण कुकृत्यपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वह सोचने लगी 'अब मैं महाराजको कैसे मुँह दिखाऊँगी?' जब पतिदेव अपने पूज्य गुरु जयदेवजीकी धर्मशीला पत्नीकी मृत्युका कारण मुझको समझेंगे तो उन्हें कितना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कष्ट होगा ! जयदेवजीको ही कितना सन्ताप होगा ! हा दुर्दैव ! इतनेहीमें जयदेवजी आ पहुँचे । राजाके पास भी मृत्यु-संवाद जा पहुँचा था, वह भी वहीं आ गया। राजाके दुःखका पार नहीं रहा । रानी तो जीते ही मरेके समान हो गयी । सोचने लगी, 'पृथिवी फट जाय तो मैं उसमें समा जाऊँ !' जयदेवजीने रानीकी सखियोंसे सारा हाल जानकर कहा—'रानी माँसे कह दो, घबरायें नहीं । मेरे मृत्युके संवादसे पद्मावतीके प्राण निकल गये तो अब मेरे जीवित यहाँ आ जानेपर उन प्राणोंको भी वापस आना पड़ेगा ।' जयदेवजीने मन-ही-मन भगवान्‌से प्रार्थना की, इस इच्छासे नहीं कि पद्मावतीके शरीरमें उनकी कोई आसक्ति थी, जिससे वे उसे जिलाना चाहते थे; बल्कि इसलिये कि इस कारण पद्मावतीके मरनेसे रानीका सङ्कोच कभी मिटेगा ही नहीं । वह जीवनभर पश्चात्तापकी अग्निमें जलती रहेगी । भगवान्‌ने भक्तकी प्रार्थना सुनी । कीर्तन आरम्भ हो गया । जयदेवजी मस्त होकर गाने लगे । धीरे-धीरे पद्मावतीके शरीरमें प्राणोंका सञ्चार हो आया । देखते-ही-देखते वह उठ बैठी और हरि-ध्वनि करने लगी । रानी आनन्दके अतिरेकसे रो पड़ी ! उसने कलङ्क-भञ्जन श्रीकृष्णको धन्यवाद दिया और भविष्यमें कभी ऐसा दुःसाहस न करनेकी प्रतिज्ञा कर ली । सब ओर आनन्द छा गया । जयदेवजीकी भक्ति और पद्मावतीके पातिव्रतका यश चारों ओर फैल गया ।

कुछ समय गौड़में रहनेके बाद पद्मावती और श्रीराधामाधवजीके विग्रहोंको लेकर राजाकी अनुमतिसे जयदेवजी अपने गाँवको लौट आये । यहाँ उनका जीवन श्रीकृष्णके प्रेममें एकदम डूब गया । उसी प्रेमरसमें डूबकर इन्होंने मधुर 'गीत-गोविन्द' की रचना की ।

एक दिन श्रीजयदेवजी 'गीत-गोविन्द' की एक कविता लिख रहे थे । परन्तु वह पूरी ही नहीं हो पाती थी । पद्मावतीने कहा—'देव ! स्नानका समय हो गया है, अब लिखना बन्द करके आप स्नान कर आवें तो ठीक हो ।' जयदेवजीने कहा—'पद्मा ! जाता हूँ । क्या करूँ, मैंने एक गीत लिखा है; परन्तु उसका शेष चरण ठीक नहीं बैठता । तुम भी सुनो—

स्थलकमलगञ्जनं मम हृदयरञ्जनं
जनितरतिरङ्गपरभागम् ।
भण मसृणवाणि करवाणि चरणद्वयं
सरसलसदलक्तकरागम् ॥
स्मरगरलखण्डनं मम शिरसि मण्डनम्—

इसके बाद क्या लिखूँ, कुछ निश्चय नहीं कर पाता ।' पद्मावतीने कहा—'इसमें घबरानेकी कौन-सी बात है ! गङ्गा-स्नानसे लौटकर शेष चरण लिख लीजियेगा ।'

'अच्छा, यही सही । ग्रन्थको और कलम-दावातको उठाकर रख दो, मैं स्नान करके आता हूँ ।'

जयदेवजी इतना कहकर स्नान करने चले गये । कुछ ही मिनटों बाद जयदेवका वेश धारणकर स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण पधारे और बोले—'पद्मा ! जरा 'गीत-गोविन्द' देना ।'

पद्मावतीने विस्मित होकर पूछा, 'आप स्नान करने गये थे न ? बीचसे ही कैसे लौट आये ?'

महामायावी श्रीकृष्णने कहा—'रास्तेमें ही अन्तिम चरण याद आ गया, इसीसे लौट आया ।' पद्मावतीने ग्रन्थ और कलम-दावात ला दिये । जयदेव-वेशधारी भगवान्‌ने—

'देहि मे पदपल्लवमुदारम्'

—लिखकर कविताकी पूर्त्ति कर दी । तदनन्तर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पद्मावतीसे जल मँगाकर स्नान किया और पूजादिसे निवृत्त होकर भगवान्‌के निवेदन किया हुआ पद्मावती-के हाथसे बना भोजन पाकर पलंगपर लेट गये।

पद्मावती पत्तलमें बचा हुआ प्रसाद पाने लगी। इतनेहीमें स्नान करके जयदेवजी लौट आये। पतिको इसप्रकार आते देखकर पद्मावती सहम गयी और जयदेव भी पत्नीको भोजन करते देखकर विस्मित हो गये। जयदेवजीने कहा—'यह क्या पद्मा! आज तुम श्रीमाधवके भोग लगाकर मुझको भोजन कराये बिना ही कैसे जीम रही हो? तुम्हारा ऐसा आचरण तो मैंने कभी नहीं देखा?'

पद्मावतीने कहा—'आप यह क्या कह रहे हैं? आप कविताका शेष चरण लिखनेके लिये रास्तेसे ही तो लौट आये थे, कविताकी पूर्त्ति करनेके बाद आप अभी-अभी तो स्नान-पूजन-भोजन करके लेटे थे। इतनी ही देरमें मैं आपको नहाये हुए-से कैसे देख रही हूँ!' जयदेवजीने जाकर देखा, पलंगपर कोई नहीं लेट रहा है। वे समझ गये कि आज अवश्य ही यह भक्त-वत्सलकी कृपा हुई है। फिर कहा—'अच्छा पद्मा! लाओ तो देखें, कविताकी पूर्त्ति कैसे हुई है?'

पद्मावती ग्रन्थ ले आयी। जयदेवजीने देखा, यही तो मेरे मनमें था, पर मैं सङ्कोचवश लिख नहीं रहा था। फिर वे दोनों हाथ उठाकर रोते-रोते पुकारकर कहने लगे—'हे कृष्ण! नन्दनन्दन, हे राधावल्लभ, हे व्रजाङ्गनाधव, हे गोकुलरत्न, करुणा-सिन्धु, हे गोपाल! हे प्राणप्रिय! आज किस अपराधसे इस किङ्करको त्यागकर आपने केवल पद्मा-का मनोरथ पूर्ण किया?' इतना कहकर जयदेवजी पद्मावतीकी पत्तलसे श्रीहरिका प्रसाद उठाकर खाने लगे। पद्मावतीने कितनी ही बार रोककर कहा—'नाथ! आप मेरा उच्छिष्ट क्यों खा रहे हैं?' परन्तु प्रभु-प्रसादके लोभी भक्त जयदेवने उसकी एक भी नहीं सुनी।

इस घटनाके बाद उन्होंने 'गीत-गोविन्द' को शीघ्र ही समाप्त कर दिया, तदनन्तर वे उसीको गाते मस्त हुए घूमा करते। वे गाते-गाते जहाँ कहीं जाते, वहीं भक्तका कोमलकान्त गीत सुननेके लिये श्रीनन्दनन्दन छिपे हुए इनके पीछे-पीछे रहते! धन्य प्रभु!

जयदेवजीके गङ्गा-स्नानका नियम था; परन्तु गाँवसे अठारह कोस दूर होनेके कारण वृद्धावस्थामें उन्हें बड़ा कष्ट होने लगा। इससे, कहते हैं, श्रीगङ्गाजी उसी गाँवमें आकर उनके घरके सामने बहने लगीं और मकर-वाहिनीरूपमें उन्हें गङ्गाजीने प्रत्यक्ष दर्शन दिये! उसी समय जयदेवने यह गीत गाया—

देवि! सुरेश्वरि भगवति गङ्गे
त्रिभुवनतारिणि तरलतरङ्गे।
शङ्करमौलिविहारिणि विमले
मम मतिरास्तां तव पदकमले॥
भागीरथि सुखदायिनि मात-
स्तव जलमहिमा निगमे ख्यातः।
नाहं जाने तव महिमानं
पाहि कृपामयि मामज्ञानम्॥

इत्यादि

अन्तकालमें श्रीजयदेवजी अपनी पतिपरायणा पद्मावती और भक्त पराशर, निरञ्जन आदिको साथ लेकर वृन्दावन चले गये और वहाँ भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर लीला देख-देखकर आनन्द लूटते रहे। कहते हैं कि वृन्दावनमें ही दम्पती देह त्यागकर नित्य-निकेतन गोलोक पधार गये।

किसी-किसीका कहना है कि जयदेवजीने अपने ग्राममें शरीर छोड़ा था और उनके घरके पास ही उनका समाधि-मन्दिर बनाया गया।

उनके स्मरणार्थ प्रतिवर्ष माघकी संक्रान्तिपर केन्दुबिल्व गाँवमें अब भी मेला लगता है, जिसमें प्रायः लाखसे अधिक नर-नारी एकत्र होते हैं।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीश्रीरामकृष्ण-उपदेशामृत

(संग्रहकर्त्ता–'प्रेम-पथ-पथिक')

लोहेकी तलवार स्पर्शमणिके स्पर्शसे सुवर्णकी हो जाती है; परन्तु उसकी बनावटमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। हाँ, उससे हिंसा करनेका काम नहीं चल सकता। ठीक उसी प्रकार ईश्वरको स्पर्श कर लेनेपर मनुष्यका आकार उसी प्रकारका रह जाता है; किन्तु उसके द्वारा कोई अन्याय-कार्य नहीं हो सकता।

× × ×

माँके पाँच बच्चे हैं। उनमें किसीको चुसनी, किसीको खिलौना और किसीको मिठाई देकर माँ बहला देती है और स्वयं निश्चिन्त होकर काम करती है। उनमें जो लड़का खिलौना फेंककर 'माँ, माँ' पुकार-कर रोने लगता है, माँ उसको गोदमें लेकर चुप कराती है। हे मनुष्य! तुम भी अन्य पदार्थोंको लेकर भूल गये हो। इन सबोंको फेंककर जब तुम ईश्वरके लिये रोने लगोगे, तभी वे आकर तुम्हें गोदमें उठा लेंगे।

× × ×

सेंवारसे ढके हुए पोखरके किनारेपर खड़े होकर तुम कहते हो कि पोखरमें जल नहीं है। यदि तुम जल देखना चाहते हो तो सेंवारको हटा दो। मायासे ढकी हुई आँखोंको लेकर तुम कहते हो कि ईश्वर दिखायी क्यों नहीं पड़ता? यदि ईश्वरको देखना चाहते हो तो मायाको हटा दो।

× × ×

मलय-समीरके स्पर्शसे, सारवाले वृक्ष चन्दन हो जाते हैं; पर असार पपीते, बाँस और केलेके वृक्ष ज्यों-के-त्यों रहते हैं। इसी प्रकार भगवान्‌की कृपा होनेसे जिनमें सार है वे ही एक क्षणमें बदलकर पवित्र होकर ईश्वर-भावमें पूर्ण हो जाते हैं; किन्तु असार, विषयासक्त मनुष्यका कुछ भी नहीं होता।

× × ×

बाघके भीतर ईश्वर है, यह बात सत्य है; परन्तु बाघके निकट जाना उचित नहीं। इसी प्रकार दुष्ट पुरुषोंमें भी ईश्वर है पर उनका संग करना उचित नहीं।

× × ×

बादल जिसप्रकार सूर्यको ढक लेता है उसी प्रकार माया भी ईश्वरको ढके हुए है। जिसप्रकार बादलके हटनेपर सूर्य दिखायी पड़ता है, उसी प्रकार मायाके दूर हो जानेपर ईश्वर दिखायी पड़ता है।

× × ×

जिसप्रकार दियातले अँधेरा रहता है और दूरपर प्रकाश रहता है, उसी प्रकार महापुरुषोंके साथ रहने-वाले लोग उन्हें नहीं पहचानते और दूर-दूरके लोग उनके गुणोंपर मुग्ध हो जाते हैं।

× × ×

हंसकी चोंचमें एक प्रकारका रस है जिसके द्वारा वह जलमिश्रित दूधमेंसे जल और दूध अलग-अलग कर देता है। दूसरे पक्षियोंसे ऐसा नहीं हो सकता। उसी प्रकार ईश्वर मायामिश्रित है, दूसरे उसे अलग करके नहीं देख सकते। जो परमहंस हैं वही मायाको हटाकर ईश्वरको देख सकते हैं।

× × ×

पतंग एक बार प्रकाश देख लेनेपर फिर अन्धकार-में नहीं जाता। चींटी गुड़में प्राण दे देती है, पर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भागती नहीं। उसी प्रकार भक्त भी ईश्वरके लिये प्राण दे देता है तब भी और कुछ चाहता नहीं।

× × ×

साँपकी और योगी-संन्यासीकी जाति एक ही है। साँप अपने लिये कभी बिल नहीं बनाता, चूहेके बिलमें रहता है। एक बिल टूट जानेपर दूसरेमें चला जाता है। योगी-संन्यासी भी इसी प्रकार अपने लिये घर नहीं बनाते। दूसरेके घरोंमें—आज यहाँ, कल वहाँ, इसी प्रकार समय व्यतीत कर देते हैं।

× × ×

हाथीको खुला छोड़ देनेसे वह चारों ओर वृक्ष और लताओंको उखाड़ते-नोचते चलता है; किन्तु उसके मस्तकपर अङ्कुश मारनेसे वह शान्त हो जाता है। इसी प्रकार मनको छोड़ देनेसे वह नाना प्रकारकी भावना करता है; किन्तु विवेकरूपी अङ्कुशके मारनेसे स्थिर हो जाता है।

× × ×

एक डुबकी लगानेपर यदि रत्न नहीं मिले तो समुद्रको रत्नहीन मत जानो। डुबकी लगाते-लगाते रत्न अवश्य ही मिलेगा। थोड़ी-सी साधना करनेपर 'ईश्वर नहीं मिला' ऐसा कहकर हताश मत हो। धैर्यपूर्वक साधना करते चलो, यथासमय तुमपर ईश्वर-कृपा होगी ही। *

× × ×

श्रीकृष्णका अस्तित्व

(लेखक—पं० श्रीश्यामाचरणदत्तजी पन्त)

गणित और तर्कका तुलादण्ड हाथमें लेकर जो भगवान् श्रीकृष्णके अलौकिक चरित्रकी माप-तौल करने बैठते हैं, वे कदाचित् सरसों-चावलके दानोंसे हिमालयको रत्ती-रत्ती तौलना चाहते हैं एवं अपनी अक्षमताके भारसे हिमालयको हलका पाते हैं। वे जड पदार्थोंके दृष्टिकोणसे चित्स्वरूप भगवान्‌की लीला समझना चाहते हैं, पर नियमोंके बन्धनमें उस मुक्त लीलाको न पाकर उसे अस्वाभाविक और असम्भव कहते हैं। वे इसप्रकार हास्यप्रद तर्क करते हैं,—'क्या वह सर्वशक्तिमान् ऐसा भी कोई पत्थर बना सकता है जिसे वह स्वयं न उठा सके?' इसका यही उत्तर दिया जा सकता है कि जिस बुद्धिको सर्वशक्तिमान्‌ने बनाया है, उसे इसप्रकार भगवान्‌के ऊपर रखनेसे उसकी लीला समझमें नहीं आ सकती। सर्वशक्तिमान्‌के लिये असम्भव क्या है? यदि कुछ है तो वह सर्वशक्तिमान् अपने ही अर्थसे च्युत हो जाता है। वाष्पके लघुतम अणुमें वेगवान् गतिसे भार वहन करनेकी शक्ति है। एक छोटा-सा इञ्जिन लम्बी रेलगाड़ी खींच सकता है, पर समस्त शक्तियोंका स्वामी श्रीकृष्ण अपनी उँगलीपर एक पर्वत नहीं उठा सकता। श्रीकृष्णका पर्वत उठा लेना उस अणुके बलका निरीक्षण करनेवाली बुद्धिके लिये गिरिसे अधिक गुरुतर हो जाता है और वह पुकार उठती है—'अस्वाभाविक!'

आदर्शवादी कहते हैं—'भागवतका श्रीकृष्ण और महाभारतका श्रीकृष्ण—ये दो अलग-अलग व्यक्ति हैं। महाभारतका श्रीकृष्ण युद्धविद्या, राजनीति और दर्शनशास्त्रका अच्छा विद्वान् है; पर भागवतका कृष्ण

* श्रीरामकृष्ण परमहंसकी जीवनी और उपदेशोंकी पुस्तक ।≡) में गीताप्रेससे मिल सकती है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नष्ट चरित्र और भ्रष्ट विचारोंका एक निर्लज्ज नवयुवक है !' सुनकर श्रीकृष्ण हँसते होंगे ! क्यों नहीं, पौषका सूर्य और ज्येष्ठका सूर्य, ये भी दो अलग-अलग सूर्य हैं। पौषका सूर्य तो कोमल और कान्त है, पर ज्येष्ठका सूर्य बड़ा ही प्रचण्ड और दुर्दान्त है !

इससे आगे बढ़कर कुछ इतिहासवेत्ता विद्वान् कहते हैं—'महाभारत और भागवत इतिहास नहीं हैं, महाकाव्य हैं। श्रीकृष्ण कोई ऐतिहासिक पुरुष नहीं, वह कवियोंकी केवल एक कल्पना है।' यह ठीक है—आजकल जिसे इतिहास कहते हैं, भागवत और महाभारत वैसे इतिहास नहीं हैं। वेद और पुराणोंको इतिहास कहनेसे उनका महत्त्व बढ़ता भी नहीं। यद्यपि ये ग्रन्थ इतिहास नहीं, तथापि यह किसी प्रकार अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि इन ग्रन्थोंमें कुछ भी इतिहास नहीं है; परन्तु इस लेखका उद्देश्य श्रीकृष्णको केवल ऐतिहासिक पुरुष सिद्ध करनेसे हल नहीं होता। यहाँ यह बतलाना है कि श्रीकृष्ण नर-रूपमें परमेश्वरके पूर्ण अवतार हुए हैं।

थोड़ी देरके लिये इन विद्वानोंकी बात मान लीजिये कि श्रीकृष्ण केवल कल्पना है। कल्पनामें भी सत्य प्रतिष्ठित होता है। ऐसी प्रभावशाली कल्पना ! सहस्रों वर्षोंसे करोड़ों हिन्दुओंके हृदयोंमें वज्रासन बनाये बैठी है। अनेकों राज्य पलट गये, विचारों और संस्कारोंकी अनेक क्रान्तियाँ हुईं; पर यह कल्पना आज भी सत्यके सिर सवार है। पश्चिमी विचारोंसे प्रभावित अनेक लोगोंने इसे हटानेके लिये बहुत ज़ोर किया; पर यह कल्पना शिवजीके पुराने धनुषकी भाँति टस-से-मस नहीं हुई। साहित्य, संगीत और कलामें—सब जगह—इसकी अमिट छाप लगी है।

इतिहास जिसे मानना नहीं चाहता, साहित्य, संगीत और कला उसकी सचाईकी साक्षी देते हैं। अब रहा धर्म—वह तो प्रत्येक साँसमें उसीको सच्चा पुकारता है। आजकलके इतिहासकी दृष्टिमें जो श्रीकृष्ण शतरंजके प्यादेकी भाँति एक लकड़ीका टुकड़ा भी नहीं, सिर्फ एक झूठा खयाल है, उसके लिये धर्म कहता है, वही सब कुछ है। वही सारी सचाईकी जड़ है। वही केवल सत्य है।

धर्म जिसकी ऐसी दुहाई देता है, उसे देखनेके लिये अब एक बार फिर इतिहासके पास आइये। इतिहासमें श्रीकृष्णके ऐतिहासिक पुरुष होनेका यदि कोई प्रमाण नहीं है तो न होनेकी भी कोई साक्षी नहीं है। इतिहास मौन है। अब जो विद्वान् श्रीकृष्णका होना नहीं मानते, इतिहास उनका भी साथ नहीं देता; वह केवल मनमानी करते हैं। फिर, जिस इतिहासमें श्रीकृष्णका नाम ही नहीं है, उस इतिहाससे श्रीकृष्णको जानना कानूनकी किताबसे नाड़ीकी चाल पहचानना है। श्रीकृष्णको जाननेके लिये महाभारत और भागवत ही देखना होगा, वह इतिहास हो या न हो।

अब इतिहास हटाकर ज़रा विश्वासके पटल खोल देखिये। वन-वन योगिजन जिस मन-मोहनकी मोर-मुकुट-धारी मञ्जुल मूर्तिका ध्यान करते हैं; घर-घर प्रत्येक प्रातःकाल जिसके नाम-गुण-कीर्तनसे उज्ज्वल होता है और प्रत्येक सन्ध्या जिसकी आरतीसे आलोकमयी होती है उस नटवर-वपुधारी श्रीकृष्णसे अधिक मङ्गलमय सत्य और क्या है ? प्रतिदिन नर-नारी जिसके चरित्रका पाठकर पवित्र होते हैं, वह केवल कल्पना कैसे है ? कोटिकण्ठसे हिन्दू-महिलाएँ पूछती हैं—जिसके जन्म-समयका लग्न-मुहूर्त्ततक हमको अभीकी तरह याद है वह क्या केवल एक कल्पना है ? यदि वह कल्पना है तो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

देवकीके आठवें गर्भसे किसका जन्म हुआ ? श्रीकृष्ण-को न माननेवाले पण्डितोंके पास इस सीधे सवालका क्या प्रामाणिक उत्तर है ?

परमेश्वरको निराकार मानकर जो उसके साकार स्वरूपको नहीं मानते, वे परमेश्वरको आधा मानते हैं। तब वे निराकार भगवान्‌से साकार सृष्टिका होना कैसे मानते हैं ? एवं अपनी ही निराकार आत्माका देह-रूपसे अस्तित्व कैसे मान सकते हैं ? ऐसे लोग कहना चाहते हैं—निराकार ईश्वर साकार सृष्टि तो रच सकता है, पर स्वयं साकार नहीं हो सकता; परमेश्वरका निराकार अंश तो साकार हो सकता है पर वह पूर्ण श्रीकृष्ण नहीं हो सकता ! श्रीकृष्णको कल्पना कहनेवाले यदि अपने जन्म और जीवनको कल्पना नहीं मानते तो उनके पास क्या सबूत है कि वे श्रीकृष्णको कल्पना कहें ?

कुछ लोग जो इतिहासके पृष्ठसे श्रीकृष्णका अस्तित्व नहीं मिटाते, पर उनके चरित्रमें जहाँ भगवत्-स्वरूप है, उसे रूपक, अलङ्कार और कविता कहकर उड़ा देना चाहते हैं। लौकिक व्यवहारपर ही सारा भार देकर वह श्रीकृष्णको श्रीकृष्णरहित बताते हैं। उनकी दृष्टिमें बाल-गोपालका मिट्टी खा लेना बिल्कुल ठीक है, पर यशोदाके ताड़नपर उसका मुँह खोलना उनके रोंगटे खड़े कर देता है ! वे पुकार उठते हैं,—'रूपक है'। जहाँतक श्रीकृष्ण गाय चराते हैं, वास्तविक है; पर गेंदके पीछे श्रीकृष्ण-का कालीदहमें कूद पड़ना उनके छक्के छुड़ा देता है ! वह आँखें बन्दकर कहते हैं, —'अलङ्कार है'। श्रीकृष्णका मुरली बजाना उन्हें प्रिय है और लुक-छिपकर गोपियोंसे हास-परिहास करना अस्वाभाविक नहीं बताते, पर शरद्-चन्द्रिकामें यमुना-पुलिनपर कन्हैयाका रास ! 'असम्भव ! वह कूट कविता है।' अन्यथा उनके लौकिक दृष्टिकोणमें उसकी समता नहीं मिलती, उनके विचारमें रासमण्डलकी वह कविता कविकी सुन्दर रचना है, जिसका अर्थ समझनेके लिये प्रत्येक शब्दकी एक गम्भीर आध्यात्मिक व्याख्या करनी पड़ती है। यह कैसी आध्यात्मिक व्याख्या है ? भागवतके सरल अर्थमें जो अध्यात्म है, उसे न मानकर उसके बदले अपनी एक क्लिष्ट-कल्पना-से सरल पाठकोंको भ्रममें डालना आध्यात्मिक व्याख्या है या अर्थका अनर्थ ?

इससे भी अधिक विचित्र व्याख्या करनेवाले कुछ ज्ञानी पण्डित हैं, जो गीताको मानते हैं पर उसके गवैया गोविन्दको कहते हैं वह कल्पना है ! वह युद्ध मानकर युद्धक्षेत्र नहीं मानते ! वह ज्ञाताको ज्ञान समझते हैं और कर्त्ताको कर्म लेते हैं। कहीं योगेश्वर श्रीकृष्णसे तात्पर्य है अनुभव-सिद्ध शुद्ध ज्ञान और अर्जुनसे मतलब है तदनुसारिणी क्रिया, तो कहीं श्रीकृष्णका अर्थ है बुद्धि और अर्जुनके माने हैं मस्तिष्क !

सबसे पहले श्रीकृष्ण-चरित्रके सामञ्जस्यका सूत्र कतरकर जो लोग सामञ्जस्य खोजते हैं, वह ज्येष्ठकी दोपहरीमें खुले आकाशके नीचे नंगे सिर खड़े होकर सूर्यके अस्तित्वका प्रमाण माँगते हैं ! अपने हाथोंसे अपनी आँखें निकाल लेनेके बाद आँखोंकी खोज किसप्रकार होगी ? श्रीकृष्णको श्रीकृष्ण न माननेपर श्रीकृष्ण कहाँ मिलेंगे ? मनुष्य-चरित्रकी गजसे नापने-पर तो श्रीकृष्ण-चरित्र अस्वाभाविक और असम्भव ही जान पड़ेगा। सिंहको सिंह न मानकर उसके चरित्रकी तुलना बकरीसे करना और सिंहके चरित्रमें बकरीके स्वभावसे मिलनेवाली घटनाएँ न पाकर सिंहका अस्तित्व न मानना अथवा उसे एक काल्पनिक बकरी समझना विद्वानोंका कार्य नहीं है।

भगवान् श्रीकृष्णके वास्तविक स्वरूपका थोड़ेमें दिग्दर्शन करानेके लिये लोकमान्य तिलकके विख्यात

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'गीता-रहस्य' से निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत कर यह लेख समाप्त किया जाता है—

'परमेश्वरके मूर्तिमान् अवतार भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं साक्षात्, अर्जुनके सामने खड़े होकर उपदेश कर रहे थे, इसलिये गीतामें जगह-जगहपर उन्होंने अपने विषयमें प्रथम पुरुषका निर्देश इसप्रकार किया है—जैसे; 'प्रकृति मेरा स्वरूप है' (९।८), 'जीव मेरा अंश है' (१५।७), 'सब भूतोंका अन्तर्यामी आत्मा मैं हूँ' (१०।२०), 'संसारमें जितनी श्रीमान् या विभूतिमान् मूर्तियाँ हैं, वे सब मेरे अंशसे उत्पन्न हुई हैं' (१०।४१), 'मुझमें मन लगाकर मेरा भक्त हो' (९।३४), 'तो तू मुझमें मिल जायगा,—तू मेरा प्रिय भक्त है इसलिये मैं तुझे यह प्रतिज्ञापूर्वक बतलाता हूँ' (१८।६५) और जब अपने विश्वरूप-दर्शनसे अर्जुनको यह प्रत्यक्ष अनुभव करा दिया कि सारी चराचर सृष्टि मेरे व्यक्तरूपमें ही साक्षात् भरी हुई है, तब भगवान्‌ने उसको यही उपदेश किया है कि अव्यक्त रूपसे व्यक्त रूपकी उपासना करना अधिक सहज है; इसलिये तू मुझमें ही अपना भक्तिभाव रख (१२।८), 'मैं ही ब्रह्मका, अव्यय मोक्षका, शाश्वत धर्मका और अनन्त सुखका मूल स्थान हूँ' (१४।२७)। इससे विदित होगा कि गीतामें आदिसे अन्ततक अधिकांशमें परमात्माके व्यक्त स्वरूपका ही वर्णन किया गया है।'

पुनीत प्रतापा

(लेखक—श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी)

कलिकर एक पुनीत प्रतापा। मानस-पुण्य होहिं नहिं पापा॥

कलियुगका एक पुनीत (पवित्र) प्रताप यह है कि इसमें मानसिक पुण्य तो फलदायी होते हैं; परन्तु मानसिक पापोंका फल नहीं होता। 'पुनीत प्रताप' इसीलिये कहा गया है कि जिसप्रकार सत्ययुग, त्रेता और द्वापरमें मानसिक पापोंके भी फल जीवोंको भोगने पड़ते थे उस प्रकार कलियुगमें नहीं होता। यही कलिकी एक विशेषता है। मानसिक पुण्य तो जैसे अन्य युगोंमें फल देते थे वैसे ही कलिमें भी फल देते हैं। अतएव मानसिक पुण्यके विचारसे नहीं, बल्कि मानसिक पापके फल न देनेके विचारसे ही कलियुगके पुनीत प्रतापका यहाँ उल्लेख किया गया है। इसीसे 'मानस-पुण्य होहिं नहिं पापा' अर्थात् मानस-पुण्य तो होते ही रहेंगे और मानसिक पाप नहीं लगेगा—ऐसा लिखा गया है। इसी पुनीत प्रतापके कारण कलिमें जीवोंके लिये कुशल है नहीं तो उनका पापसे उद्धार होना अत्यन्त कठिन हो जाता। क्योंकि कहा है—

कलि केवल मल-मूल मलीना। पाप-पयोनिधि जन-मन मीना॥

तात्पर्य यह है कि मलिन कलियुग केवल मलका मूल है। जनोंके मन पापरूपी समुद्रमें मछलीकी भाँति मग्न रहते हैं। भला मछली कब जलसे उपराम चाहती है? इसी प्रकार कलिमें जीवोंके मन कभी पापसे अलग होना नहीं चाहते। इसलिये यदि मानसिक पापकी माफी न होती तो भला उनका उद्धार कैसे हो सकता?

इसपर यह शङ्का हो सकती है कि यदि मानसिक पाप नहीं लगते तब तो लोग इससे भय नहीं करेंगे और सदा मनमें पाप-चिन्तन ही किया करेंगे। साथ ही कोई पापसे मनके निरोध करनेका साधन नहीं करेगा। इसका समाधान यह है कि पापसे भय नहीं करनेके लिये यह वचन नहीं है; बल्कि पापकी ओर मनकी सहज प्रवृत्ति देखकर जीवोंको धैर्य बँधानेके लिये है। अभिप्राय यह है कि मन पापकी ओर जाता है तो उससे घबड़ाना नहीं चाहिये; बल्कि सावधानीसे बारंबार उसे पुण्यकी ओर लगाकर पुण्यके सुखद फलका भागी होना चाहिये। यहाँ मानस-पुण्यके स्वरूपको भी जान लेना ज़रूरी है; क्योंकि लोग बहुधा शङ्का करते हैं कि क्या हमने दस हजार गो-दान करनेको मनमें कह दिया तो उसका पुण्य हमें हो जायगा? ऐसा कहने-वाले लोग भूलते हैं। असल बात तो यह है कि ऐसा कहते समय भी मनमें यह विचार रहते ही हैं कि हमारे पास न

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गौवें हैं और न उनके खरीदनेके लिये धन ही है और न हमारे इसप्रकार कह देनेसे किसीको गौवें दानमें मिलती ही हैं—इत्यादि। फिर यह मानसिक पुण्य कैसे हुआ? मिथ्या होनेके कारण इसे मानसिक पाप चाहें तो कह भी सकते हैं। मानस-पुण्य उसे कहते हैं, जिसकी मनमें सच्ची धारणा हो। जैसे किसीने ब्राह्मण-भोजन करानेके लिये आटा, चीनी, घी आदि सामान इकट्ठा किया। वह दूसरे दिन ब्राह्मण-भोजन कराना चाहता था; परन्तु संयोगवश वह उसी रातको मर गया। ऐसी अवस्थामें मानस-पुण्यके रूपमें उसे ब्राह्मण-भोजन करानेका फल मिलेगा। इसके सिवा सत्य, क्षमा, दया, दान, परोपकार आदि सद्गुणोंका बारंबार चिन्तन करना मानसिक पुण्य है और मनमें अपने इष्टदेवका ध्यान तथा स्मरण और जपका निरन्तर अभ्यास करना तो दिव्य मानसिक पुण्य है।

कलिमें मानसिक पाप नहीं लगते, इसका यह अभिप्राय नहीं है कि सदा मानसिक पापोंमें रत रहा जाय। मानसिक पाप नहीं लगते, इस विचारसे जो पापोंमें मनको लगायेगा उसके समान मूर्ख कौन होगा। क्योंकि मानसिक पाप न लगें, न लगें; पाप-चिन्तनमें मनको लगाये रखनेसे लाभ ही क्या होता है? उससे तो जीवन व्यर्थ नष्ट होता है, मानसिक व्यग्रता होती है और फिर जिस विषयका अधिक चिन्तन होता है, वैसी ही क्रिया भी होने लगती है। मानसिक पापको शारीरिक होते देर नहीं लगती, इसलिये उसके बदलेमें मनको शुभ कर्म-चिन्तनमें लगाकर पुण्य सञ्चयकर शान्तिका उपभोग करना ही बुद्धिमत्ता है। कागभुशुण्डिजीने ठीक ही कहा है—

कह खगेश अस कवन अभागी। खरी सेव सुरधेनुहि त्यागी॥

अर्थात् हे गरुड़जी! बतलाइये ऐसा कौन अभागा है जो कामधेनुको छोड़कर गधीको पालता है। सारांश यह है कि मानस-पुण्यका उपार्जन करना छोड़ करके मानस-पापमें रमण करना कामधेनुको छोड़कर गधीके पालनेके समान है।

कोई-कोई अर्थ करनेवाले 'होहिं नहिं' पदको दोनों ओर लगाकर ऐसा अर्थ करते हैं कि 'न मानस-पुण्य होते हैं और न मानस-पाप।' परन्तु यह ठीक नहीं, क्योंकि ऐसा अर्थ करनेसे 'पुनीत प्रतापा' में जो प्रशंसा-सूचक अभिप्राय है वह व्यर्थ हो जाता है। ग्रन्थके प्रसङ्ग और अनुबन्धका विचार करनेपर हमारा उपर्युक्त अर्थ ही ठीक जान पड़ता है। यथा—

गुनउ बहुत कलियुगहु कर बिनु प्रयास निस्तार।
कलियुग-सम जुग आन नहिं, जो नर कर बिस्वास।
गाइ राम-गुनगन बिमल, भव तर बिनहिं प्रयास॥
कलिजुग केवल हरि-गुन-गाहा। गावत नर पावहिं भव-थाहा॥
नाम प्रताप प्रकट कलिमाँहीं।
सतयुग त्रेता द्वापरहिं, पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलियुगहिं, नामसे पावहिं लोग॥

इसी प्रसङ्गके बीचमें—

कलिकर एक पुनीत प्रतापा। मानस-पुण्य होहिं नहिं पापा॥

—यह चौपाई भी आयी हुई है। मानस-प्रेमी उत्तर-काण्डमें कागभुशुण्डिद्वारा कलिधर्मवर्णन दोहा १०२ से १०३ तक पढ़ें।

मेरी विकलता

विश्वपति करुणानिधि करतार!
करो मुझको भवसागर-पार।
सलिल है तृष्णाका यह महा,
उसीमें व्याकुल मैं बह रहा।
उछलता, किन्तु फँस रहा, हाय!
हो गया हूँ अब तो निरुपाय।
चलेगी मेरी चाल न एक,
सामने घातक जन्तु अनेक।
मोह, मद, कामादिक हैं ग्राह,
सभी थलमें है सलिल अथाह।
जहाँतक जाती नजर निकट।
नाव भी नहीं, नहीं है तट।
व्यथित हो तुमको रहा पुकार,
जगत-तारण! अब करो उबार।
शीघ्र ही आवो मेरे नाथ!
पकड़ लो झटपट मेरा हाथ।

—चन्द्रशेखर पाण्डेय 'चन्द्रमणि'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कुछ आध्यात्मिक अनुभव

(लेखक—स्वामी श्रीशान्तयोगानन्दजी)

१—जिस समय मन विषयकी ओर झुके, उससे प्रश्न करो—'क्या विषय न भोगनेसे मेरा नाश हो जायगा या कोई मेरा भारी नुक़सान हो जायगा ?' ऐसा प्रश्न करनेसे यह बुद्धि अवश्यमेव जागृत होगी कि, 'नहीं, विषयके न सेवन करनेपर भी मैं ज्यों-का-त्यों बना रहूँगा और मेरी कुछ भी हानि न होगी, उलटे इससे मुझे लाभ होगा। शरीर स्वस्थ रहनेसे दैनिक कर्त्तव्योंको मैं भलीभाँति निबाह सकूँगा और आरोग्यताका भी आनन्द मुझे मिलेगा।' ऐसी भावनाओंमें लगा हुआ मन सम्भवतः बहुत हदतक विषयवासनापर विजय प्राप्त कर सकता है।

२—यदि किसी मनुष्यसे कोई दुष्कर्म हो जाय और वह किसी प्रकार लोगोंमें प्रकट हो जाय, तो उसे झूठ-सच करके छिपानेकी चेष्टा कभी नहीं करनी चाहिये। क्योंकि दुष्कर्मके छिपानेमें जो प्रयत्न किया जाता है यदि वह सफल हो गया तो इससे पाप-कर्ममें और भी साहस मिलता है। और पाप-कर्ममें बाधा नहीं आनेसे मनुष्य महापापी बन जाता है। फिर तो वह छिपाया हुआ दुष्कर्म रुईके भीतर छिपाये हुए अग्निके समान मनुष्यका सर्वनाश कर उसे परम अधोगतिको पहुँचा देता है।

३—दुष्कर्मकी ओर जब मन जाने लगे तो मनुष्य-को उस अवस्थाका चिन्तन करना चाहिये जिस अवस्थामें निन्दित कर्म प्रकट हो जाता है। फिर तो वह महान् लज्जामें डूब जायगा और बहुत सम्भव है कि वह उस दुष्कर्मसे बच जाय। इसप्रकारका निरन्तर अभ्यास करनेसे मनुष्य अनेकों दुष्कर्मोंके फलस्वरूप असंख्य नरकोंसे इसी जन्ममें बच सकता है।

४—आत्मचिन्तन करनेवाले पुरुषको जब धनका लोभ सतावे तब उसे अपने पड़ोसके उस पुरुषकी अवस्थापर विचार करना चाहिये जो धनका लोभी है। सावधानीसे विचारनेपर जान पड़ेगा कि वह धनलोलुप सदा बेचैन रहता है और धनप्राप्तिके लिये बहुत-सी बुरी-बुरी स्कीमें सोचता है। ऐसे दुर्दशाग्रस्त पुरुषके जीवनकी भलीभाँति आलोचना करनेसे मनुष्य निस्सन्देह अपनी रक्षा कर सकता है।

५—आत्मोन्नतिके लिये घर-द्वार छोड़कर वनमें जानेकी आवश्यकता नहीं। यद्यपि वनमें मुमुक्षु सांसारिक चेष्टाओंसे रक्षित रहता है, यह सच है, तथापि सांसारिक पुरुषोंके बीचमें रहनेसे भी उसे कम सुविधा नहीं होती। उनकी अवस्था, चेष्टा तथा उसके परिणाम आदिकी निरन्तर आलोचना करनेसे मुमुक्षुको संसारमें रहते हुए भी इससे दृढ़ वैराग्यकी उपलब्धि होती है और वह मोक्ष-मार्गपर अग्रसर होता है।

६—अच्छे पुरुष यदि बुरोंके दुष्कर्मोंके प्रति घृणा करें तो यह ठीक भी है; परन्तु बुरे भी अच्छे पुरुषों-के सत्कर्मोंके प्रति डाह करते हैं और उनका अपमान करनेसे नहीं बाज आते। इसलिये भले पुरुषको बुरे पुरुषके साथका मानसिक सम्बन्ध भी तोड़ डालना चाहिये और धन्य मानना चाहिये कि बुरा पुरुष भलेसे डाह करता है, क्योंकि इस डाहके कारण उससे असङ्ग प्राप्त होता है, जो अमूल्य और आत्मोन्नतिमें सहायक होता है। कहा भी है कि बुरे पुरुषके सङ्गसे नरक भी अच्छा होता है।

बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ बिधाता॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

७—जीवोंके शुभ कर्म भविष्यमें शुभ कर्म-परायण करनेवाली वृत्तियोंको उत्पन्न करते हैं और अशुभ कर्म दूषित वृत्तियोंके जन्मदाता होते हैं। इसलिये आत्मकल्याणकी अभिलाषा करनेवाले पुरुषको सदा शुभ वृत्तिमें रहनेका उद्योग करना चाहिये, नहीं तो आनेवाले परमार्थ-युद्धमें बड़ी भारी बाधाएँ उत्पन्न होंगी।

८—कुछ लोग इस बातपर ही सन्तुष्ट रहते हैं कि उनके वर्तमान जीवन-व्यवहार निष्कलङ्क हैं, वे किसीसे छल नहीं करते और सदा सत्यमें निवास करते हैं, इसलिये भगवद्भजन आदिमें समय लगाने-की कोई आवश्यकता नहीं। इसप्रकारके सन्तोषमें एक बड़ी भूल होती है। भगवद्भजन नहीं करनेसे भविष्य-में जो जीवका परम कल्याण होनेवाला है उससे मनुष्य वञ्चित हो जाता है। मनुष्यको जानना चाहिये कि इस जन्ममें जो उसकी सत्प्रवृत्ति हो रही है वह पूर्वजन्मोंके सत्कर्मोंका प्रभाव है, उस प्रभावके नष्ट होनेपर पुनः आसुरी वृत्तियोंका उत्पन्न होना स्वाभाविक हो जाता है। अतः प्रत्येक मनुष्यके लिये, चाहे वह दिव्य वृत्तियोंसे पूर्ण क्यों न हो, निरन्तर भगवद्भजन करना बहुत ही ज़रूरी है।

९—बहुत-से ऐसे मनुष्य भी होते हैं जिनके जीवनका पूर्वभाग विषय-भोग आदिमें व्यतीत होता है और पीछे उन्हें अपने कियेपर पछतावा होता है तथा वे अपने शेष जीवनको भगवद्भजनमें लगानेके लिये लालायित रहते हैं, परन्तु लज्जावश ऐसा नहीं करते। वे सोचते हैं कि यदि मैं भगवद्भजनमें लगा तो लोग 'सौ सौ चूहे खाकर बिल्ली चली हज्जको'—इत्यादि बातें सुना-सुनाकर मेरी खिल्ली उड़ावेंगे। इसप्रकारके मनुष्य बड़ी मूर्खता करते हैं। परमार्थके कर्मोंमें लज्जा करना महा दूषित है, इसप्रकारकी लज्जामें पड़कर मनुष्य मानव-जीवनको व्यर्थ खो देता है और अपने पूर्व किये हुए दुष्कर्मोंके फलस्वरूप अधोगतिको प्राप्त होता है।

१०—संसारमें ऐसे पुरुष भी मिलते हैं जिनका समस्त जीवन विषयोंके सेवनमें ही व्यतीत हो जाता है। उन्हें वृद्धावस्थामें भगवत्पथपर लाना बहुत ही दुष्कर है। परन्तु उनके हृदयोंमें भी (भगवान्‌के सर्व-व्यापी होनेके कारण) भगवान्‌के प्रति श्रद्धा स्तुति जरूर मौजूद रहती है। ऐसे पुरुष पूर्व-कुसंस्कारोंके महावेगमें पड़नेके कारण ही इसप्रकारका गर्हित जीवन व्यतीत करते हैं, अतएव वे दयाके पात्र हैं। इनसे कहना चाहिये कि यदि वे वृद्धावस्थामें भी भगवत्पथपर आरूढ़ हो जायँ तो उनकी आसुरी योनिकी आयु, जो उनके दुष्कर्मोंके परिणाममें प्राप्त हुई है, कम हो जायगी और दुष्कर्मोंके फलको भोगनेके बाद शीघ्र ही दैवयोनिकी प्राप्ति होगी। और यदि वह भगवत्पथपर आरूढ़ नहीं होंगे तो उन्हें दैवयोनि प्राप्त करनेका अवकाश नहीं रहेगा और वे प्रलयतक कूकर-शूकर आदि आसुरी योनियोंमें ही भ्रमण करते रहेंगे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सीता-त्यागकी निर्दोषता

(लेखक—श्रीरघुनन्दनप्रसादसिंहजी)

भ्रम

अनेक सज्जनोंको भी यह भ्रम है कि श्रीभगवान् रामचन्द्रके द्वारा सीता-त्याग अनुचित हुआ। वे मर्यादापुरुषोत्तम थे और इस अवतारका मुख्य उद्देश्य मनुष्य-समाजके निमित्त आदर्श चरित्रका प्रदर्शन करवाना था जिससे समाजके लोग तदनुरूप आचरण-का आदर्श रख उसीका अनुसरण करें। इसप्रकार इनका सारा-का-सारा चरित्र ईश्वरका-सा न होकर मनुष्यका-सा था, क्योंकि उन्हें यह दिखलाना था कि प्रत्येक मनुष्य उपयुक्त चेष्टा करनेसे वैसा आचरण कर सकता है। ऐसी स्थितिमें सीता-त्याग अयुक्त कैसे हो सकता है?

शाप-स्वीकार

पुराणोंमें कथा है कि नारदजीने श्रीविष्णुभगवान्‌को विकृत मुख-प्रदानके कारण क्रोध-वश शाप दिया। उसके बाद क्रोधके शान्त होनेपर उन्होंने यह कहकर कि विशेष तेजस्वी व्यक्तिके द्वारा शापके स्वीकृत न होनेपर शापदाता-का अनिष्ट होता है, श्रीभगवान्‌से अपनेद्वारा दिये हुए शापको स्वीकार करनेके लिये प्रार्थना की। श्रीभगवान्‌ने शापको, जिसमें मुख्य स्त्री-वियोग था, सहर्ष स्वीकार किया। इस शापका तात्पर्य यह हो सकता है कि वह वनके समय तथा अन्तिम त्यागके समय—दोनों समयके वियोगके निमित्त लागू था।

कर्म-फल अनिवार्य

कर्मका नियम ऐसा प्रबल है कि स्वयं श्रीभगवान् भी जब अवतार लेकर शरीर धारण करते हैं तो कर्मके नियमोंका स्वयं पालन करते हैं। कहते हैं कि प्रभास-क्षेत्रसे महाप्रयाण होनेके समय श्रीकृष्णभगवान्‌को जिस व्याधने मृग समझ-कर बाण मारा था वह बालिका पुत्र अङ्गद था और उसीने उस रूपसे अपने पिता बालिके वधका बदला लिया। यहाँ यह बात विचारणीय है कि व्याधके द्वारा आहत होनेपर भी दयामय श्रीभगवान्‌ने उसके प्रति क्रोध न कर उलटा उसको वर दिया। यह अटल नियम है कि जो कुछ सुख अथवा दुःख किसी देहधारीको होता है वह अवश्यमेव उसके पूर्व-कर्मोंका फल है। किसीको कोई ऐसा दुःख अथवा सुख कदापि प्राप्त नहीं हो सकता जो उसके पूर्व-कर्मका फल न हो। स्मरण रहे कि दुःखरूप फल देनेका मुख्य उद्देश्य दुःख पानेवालेको ज्ञानद्वारा दुष्टकर्मसे निवृत्त-कर उसका परम कल्याण करना है, न कि द्वेषसे उसकी हानि करना। अतएव जिसको दुःख समझा जाता है, वह हितकर ही है।

श्रीसीता-शाप

पद्मपुराण-पातालखण्ड, अ० ५७—(रामाश्वमेध-प्रकरण) में ऐसी कथा है—एक बार श्रीजानकीजी किसी बागमें घूम रही थीं तब उन्होंने शुक और शुकीके एक जोड़ेको आपसमें यह बातचीत करते सुना कि महाराज श्रीराम-चन्द्रका श्रीसीतासे विवाह होगा और वे सुदीर्घ कालतक पृथिवीपर राज्य करेंगे। श्रीजानकीजीके कहनेपर उनकी सखियाँ उन पक्षियोंको पकड़कर श्रीजानकीजीके समीप ले आयीं। श्रीजानकीजीने उन पक्षियोंसे पूछा कि जिनके विषयमें तुम वार्तालाप करते थे वे श्रीराम और सीता कौन हैं और तुमने यह समाचार कहाँ सुना? पक्षियोंने उत्तर दिया कि हम दोनों श्रीवाल्मीकिके आश्रममें रहते थे। उन्होंने भविष्यमें होनेवाले चरित्रको छन्दोबद्धकर अपने शिष्योंको पढ़ाया है, जिनसे हमलोगोंने यह सारा वृत्तान्त सुना है। इसके बाद उन पक्षियोंने रामजन्मसे लेकर धनुष-भङ्ग और विवाहतकका सारा वृत्तान्त कह सुनाया। इसपर श्रीजानकी-जीने कहा कि मैं ही सीता हूँ और तुमलोगोंको मैं तभी मुक्त करूँगी जब श्रीराम आकर मेरा पाणिग्रहण करेंगे और तब-तक तुमलोगोंको मैं अपने यहाँ रखकर मधुर भोजन कराऊँगी।

इस बातको सुनकर पक्षी बड़े भयभीत और शोकाकुल हुए और जानकीजीसे कहने लगे कि 'हे सीता! हमलोग वनके रहनेवाले और स्वच्छन्द विचरनेवाले हैं, हमलोग घरमें सुखसे नहीं रह सकेंगे।' नर-पक्षीने कहा कि 'मेरी भार्या गर्भवती है इसलिये अभी हमलोगोंको छोड़ दीजिये, उसके बच्चा हो जानेपर हमलोग आपके पास आ जायँगे।' इसपर श्रीसीताजीने नर-पक्षीको छोड़ दिया, किन्तु अनेक विनती करनेपर भी शुकीको नहीं छोड़ा। इसपर शुकीने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीसीताजीको शाप दिया कि जिस प्रकार तुमने मेरा पतिसे वियोग कराया है उसी प्रकार तुम्हें भी गर्भिणी रहनेकी अवस्थामें तुम्हारे स्वामी त्याग देंगे। यह कहकर अत्यन्त करुण विलाप करते हुए शुकीने प्राणत्याग कर दिया। इसपर शुकने भी दुःखित एवं क्रोध-मूर्च्छित हो गंगामें गिरकर यह कहते हुए प्राण-त्याग कर दिया कि मैं आगामी जन्ममें श्रीरामके नगरमें जन्म लेकर ऐसे वाक्यका व्यवहार करूँगा जिससे शुकीका शाप सत्य हो और सीताका रामसे वियोग हो। उसी शुकने अयोध्यामें रजक होकर जन्म लिया, जिसकी निन्दाके कारण श्रीसीताजीका परित्याग हुआ।

ईश्वरेच्छासे कर्म-फल

कर्म स्वयं जड़ है; किन्तु इसका फल ईश्वरकी इच्छा-शक्तिद्वारा लोगोंको मिलता है। रामचरितमानसका वचन है—

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी। ईस देइ फलु हृदय बिचारी॥

कई कर्मोंके फल ऐसे होते हैं कि उनकी प्राप्तिमें जो सहायकका कार्य करते हैं वे केवल निमित्तमात्र होते हैं, अर्थात् कर्मद्वारा प्रेरित होकर वे फल-प्रदानमें निमित्तमात्र होते हैं, अतएव वे उसके लिये उत्तरदायी नहीं होते। महाभारत-अनुशासनपर्व, अध्याय १ में कथा है कि एक साध्वी स्त्रीके बालककी सर्पके डसनेसे मृत्यु होनेपर सर्प, मृत्यु और काल एक-एक करके उस साध्वीके तपोबलके कारण वहाँ आये और अन्तमें कालने यही निर्णय किया कि उस बालककी मृत्युमें न तो सर्प कारण है, न मृत्यु और न स्वयं काल ही कारण है, किन्तु उस बालकका पूर्वकृत कर्म ही कारण है, जिसके द्वारा उसकी मृत्यु ठीक काल आनेपर सर्प-दंशद्वारा हुई। इसमें वे सब केवल निमित्तमात्र हैं, अतएव निर्दोष हैं। इसप्रकार श्रीसीताजीके त्यागका हेतु न भगवान् श्रीरामचन्द्र थे और न धोबी ही था, किन्तु पूर्वमें उनके द्वारा शुकीके बन्धनके कारण जो उनको पति-वियोगका शाप हुआ वही कारण था, जिसका फल अवश्यम्भावी था। श्रीसीताजीने भी वनमें त्यागे जानेपर श्रीलक्ष्मणके प्रति अपने कर्मको ही अपने त्यागका कारण बताया—

भवांस्तत्याज तत्सर्वं मम दैवं तु कारणम्।

अर्थात् इस त्यागमें दैव यानी मेरा प्रारब्ध-कर्म ही कारण है।

लोक-मर्यादा

श्रीभगवान्‌ने यह भी देखा कि रजककी निन्दा यद्यपि मिथ्या है, तथापि—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।

—के अनुसार सम्भव है कि ऐसी निन्दाके भ्रममें पड़कर वर्तमान अथवा भविष्यमें लोग विपरीत समझने लगें और स्त्रीके सतीत्वकी रक्षाकी परमावश्यकतापर स्त्री-पुरुष उसके कारण पूरा ध्यान न देकर उसके दोषको दोष न मान, धर्मसे च्युत हो जायँ, जिससे समाजका बड़ा अनिष्ट हो सकता है। इस भावी अनिष्टकी सम्भावनाको रोकनेके लिये श्रीभगवान्‌ने स्वयं कष्ट सहना और श्रीसीताजीको कष्ट सहन कराना ही उचित समझा। श्रीसीताजीके वियोगसे उनको श्रीसीताजीसे भी अधिक कष्ट हुआ। वृद्धावस्थामें स्त्री-वियोग दुस्सह है। इसप्रकार समाजके हितके लिये दोनोंने परम त्याग किया। श्रीसीताजीने श्रीलक्ष्मणजीसे वनमें त्यागके समय स्पष्ट यही कहा कि मेरा त्याग समाजके हितके लिये श्रीभगवान्‌ने किया है—इस बातको मैं समझती हूँ और इसके निमित्त मुझे कोई अमर्ष नहीं है। बल्कि इस कार्यमें भगवान्‌के साथ योग देना मैं अपना कर्त्तव्य समझती हूँ—

यच्च ते वचनीयं स्यादपवादः समुत्थितः।
मया हि परिहर्त्तव्यं त्वं हि मे परमा गतिः॥
(वा० रा० उ० अ० ४८। १०)

बड़ोंकी तो इसीमें श्रेष्ठता है कि वे समाजके हितके निमित्त अपने ऊपर कष्ट ले लेते हैं। श्रीरामचन्द्रजीने अपने भाइयोंको स्पष्ट कहा कि केवल समाजका हित ही श्रीसीता-त्यागका कारण है, अतएव वह परमावश्यक है—

स्वयशःकारणोऽहं स्वं देहं त्यक्ष्यामि शोभनम्।
त्वामपि भ्रातरं त्यक्ष्ये लोकवादाद्विगर्हितम्॥

इस संसारकी उत्पत्ति-स्थिति भी परमेश्वर और उनकी शक्तिके परम त्यागका परिणाम है। यदि वे अपने अपरिच्छिन्न स्वरूपको परिच्छिन्न न करें तो न संसारकी उत्पत्ति हो सकती है और न स्थिति ही रह सकती है। अतएव मनुष्य अथवा ईश्वरावतार दोनों दृष्टिसे सीता-त्याग निर्दोष है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शक्तिकी लीला

यद्यपि रामावतारमें श्रीसीताजी तथा श्रीभगवान् लोक-शिक्षार्थ मनुष्यों-जैसा व्यवहार करते थे किन्तु यथार्थमें वे ईश्वरीय शक्ति और ईश्वर थे। ऐसी अवस्थामें उनको सांसारिक लोगोंके समान दुःखाभिभूत समझना ठीक नहीं है और यही समझकर हमलोग श्रीभगवान्‌पर त्यागका दोष लगाते हैं। अध्यात्मरामायणमें श्रीसीताजी श्रीहनुमान्‌जीसे कहती हैं कि रामावतारके सारे कृत्य मैंने किये, श्रीराम तो सच्चिदानन्द पूर्णातिपूर्ण परम कारण हैं। वे तो साक्षीकी भाँति उनके द्रष्टा और आधारमात्र थे—

एवमादीनि कर्माणि मयैवाचरितान्यपि।
आरोपयन्ति रामेऽस्मिन्निर्विकारेऽखिलात्मनि॥

इसप्रकार श्रीराम और श्रीसीता स्व-स्वरूपकी दृष्टिसे सदा अभिन्न हैं और इन दोनोंका न कदापि वियोग हो सकता है और न वे शोक-मग्न ही हो सकते थे, यद्यपि स्थूल-शरीरकी दृष्टिसे मायाकृत वियोग उनके अन्दर भी दृष्टिगोचर होता है अथवा वे शोक-सन्तप्त भी देखनेमें आते हैं।

दुःख-मित्र

एक और विचारणीय विषय इस सम्बन्धमें यह है कि हमलोग किसी घटनाका विचार उसको स्वतन्त्र समझकर और उसके तात्कालिक परिणामकी दृष्टिसे करते हैं और उसके पूर्वापरके सम्बन्ध तथा दूरके परिणामपर दृष्टि नहीं डालते। इसीसे गलती होती है। ब्रह्मचारीके निमित्त शास्त्रने कठोर नियम निर्धारित किया है। वैद्य रोगीको उपवास कराते और कटु औषध देते हैं, डाक्टर क्षत आदिके रोगीके अङ्गोंकी चीर-फाड़ करते हैं। शिक्षक विद्यार्थीको उसके दोषके सुधारके लिये दण्ड भी देते हैं, तपस्वी उपवासादिद्वारा शरीरका शोषण करते हैं। इन सबमें तत्कालमें तो बाह्य-दृष्टिसे, प्रकाशरूपमें कष्ट अवश्य है; किन्तु अन्तिम परिणाम इन सभी उदाहरणोंमें कष्ट-पानेवालेका हित है, अतएव ये सारे-के-सारे दुःखद कर्म यथार्थमें सुखद और हितकर हैं। बाह्य दृष्टिसे श्रीभगवान् रामचन्द्रका वन-गमन दुःखद समझा जाता है; किन्तु श्रीभगवान्‌ने उसे परम सुखद समझा, जैसा कि उनके कैकेयीके प्रति निम्नलिखित वचनसे प्रकट है—

मुनिगन-मिलनु बिसेषि बन, सबहि भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु-आयसु बहुरि, संमत जननी तोर॥
मरतु प्रान-प्रिय पावहिं राजू। बिधि सबबिधि मोहि सनमुख आजू॥
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिय मोहि मूढ़-समाजा॥

स्मरण रहे कि ये वाक्य बनावटी न थे, क्योंकि श्रीराम असत्य कभी नहीं बोलते थे—'रामो द्विर्नाभिभाषते'। यथार्थमें जो सुख श्रीभगवान् रामचन्द्रको मुनिसेवित चित्रकूट, पञ्चवटी आदि पुण्य-स्थानोंमें रहने और विचरण करनेसे मिला जहाँ प्रकृतिका यथार्थ सौन्दर्य देखनेमें आता है, वैसा सुख अयोध्याकी राजगद्दीपर कदापि सम्भव नहीं था। यदि श्रीभगवान् वनगमन नहीं करते तो उनका वनवासका परम पावन चरित्र, जिसके स्मरणमात्रसे मनुष्य-का हृदय पवित्र हो जाता है, संसारको कैसे लब्ध होता और राक्षसोंसे मुनियों और सज्जनोंका त्राण कैसे होता? इसी प्रकार श्रीसीताजीको श्रीवाल्मीकिके आश्रममें रहनेसे जो असीम, यथार्थ एवं आन्तरिक शान्ति मिली होगी और वहाँ निरन्तर यज्ञ, जाप, भजन, पाठ आदि दिव्य कृत्योंके सम्पादनके बीच मुनि, मुनि-पत्नी और शिष्योंसे वेष्टित रहनेसे उन्हें जो परमानन्द प्राप्त हुआ होगा उसका अनुमान केवल सांसारिक दृष्टिसे कैसे हो सकता है? यह निर्विवाद और सर्वसम्मत है कि स्त्री अपनी गर्भावस्था-में जैसी परिस्थिति और संसर्गमें रहती है और उनके कारण जैसी भावना उसके हृदयमें उत्पन्न होती है उसका विशेष प्रभाव गर्भस्थ शिशुपर पड़ता है। इसलिये वह तदनुरूप गुण और कर्मका बीज लेकर उत्पन्न होता है, जो ठीक समयपर उसमें अवश्य प्रस्फुटित होता है। इसप्रकार श्रीसीताजीके गर्भावस्थामें श्रीवाल्मीकिके आश्रममें रहते हुए वहाँ सदा-सर्वदा योग, यज्ञ, स्वाध्याय, तपश्चर्या, ज्ञानोपदेश, शिक्षा, भजन, कीर्तन आदिके होते रहनेसे उनका जो प्रभाव श्रीसीताजीकी तदनुरूप भावनाके द्वारा उनके गर्भस्थ शिशुओंपर पड़ा वह अयोध्यामें कदापि सम्भव नहीं था। इसके अतिरिक्त उनके बालकोंको जन्म लेते ही उस पवित्र आश्रमके वायुमण्डलमें रहनेका जो सौभाग्य और वहाँके पवित्र संसर्गका जो लाभ हुआ वह भी अयोध्यामें नहीं मिल सकता था। श्रीसीताजीके कुमारोंको शिशु-कालसे ही श्रीवाल्मीकिजीके द्वारा परमोत्तम और परमावश्यक शिक्षाके प्राप्त करनेका जो सुअवसर मिला और जैसी उच्च कोटिकी शस्त्रास्त्र-शिक्षा उनको वहाँ मिली वह भी अन्य प्रकारसे सम्भव नहीं थी। शस्त्र-विद्यामें तो वे इतने पारङ्गत हो गये कि रामाश्वमेधके घोड़ेके रोकनेके लिये जो युद्ध हुआ उसमें उन दोनोंने हनुमान्, शत्रुघ्न आदि समस्त प्रधान वीरोंको अकेले ही परास्त कर दिया। यही नहीं, पहले अकेले लवने युद्ध किया, पीछे कुशने।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बाह्य वियोगसे परम मिलन

रामावतारकी लीलामें अध्यात्म-रहस्य भी है। आध्यात्मिक दृष्टिसे श्रीसीताजी ईश्वरके प्रिय अंश शुद्ध जीवात्मा हैं। जीवात्माके तीन भाव हैं—कारण-शरीराभिमानी, सूक्ष्म-शरीराभिमानी और स्थूल-शरीराभिमानी। इनमें स्थूल-शरीराभिमानीका वास नेत्रमें है, सूक्ष्म-शरीराभिमानी-का कण्ठमें और कारण-शरीराभिमानीका हृदय-देशमें। परमात्माके साथ जीवात्माका मिलन तभी होता है जब वह प्रथम दशेन्द्रियरूप रावणके आधिपत्यसे मुक्त होकर स्थूलका सूक्ष्ममें लय कर लेता है, सूक्ष्मका कारणमें और कारणका महाकारण (तुरीय) में लय कर लेता है। जबतक श्रीभगवान् (परमात्मा) श्रीसीताजी (जीवात्मा) के नेत्र-गोचर थे तबतक जीवात्माका वास स्थूल-शरीरमें था, जहाँ दोनोंका यथार्थ आध्यात्मिक मिलन सम्भव नहीं है। वनमें त्यागे जानेपर जब श्रीभगवान् श्रीसीताजीके नेत्रोंसे ओझल हो गये तब वे उनका सदा हृदयमें ध्यान करने लगीं, अर्थात् स्थूल और सूक्ष्मका कारणमें लय हुआ। कारण-शरीरस्थ शुद्ध जीवात्मा जब अपने शुद्ध स्वरूपमें हृदयमें स्थित होता है, तब उसका उसके अंशी अथवा प्रियातिप्रिय परमात्मारूप पतिके साथ यथार्थ मिलन होता है। जैसी वियोगमें प्रेमकी वृद्धि होती है वैसी संयोगमें नहीं होती—संयोगमें ह्रासकी सम्भावना रहती है। इसी नियमके अनुसार श्रीकृष्णभगवान्‌से श्रीगोपियोंका वियोग हुआ और तभी उन लोगोंको श्रीभगवान्‌की यथार्थ प्राप्ति हुई। इसी परम रहस्यको प्रकट करनेके लिये भी यह सीता-त्याग हुआ, जिसका परिणाम यह हुआ कि यज्ञमें श्रीभगवान्‌के साक्षात् आध्यात्मिक स्वरूपमें श्रीसीताजी परम समाधिस्थ होकर लीन हो गयीं।

इसप्रकार यदि सीता-त्यागके नाना रहस्योंका विचार किया जायगा तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि श्रीसीता-त्याग उचित हुआ और इसका परिणाम उत्तम हुआ।

ईश्वर-महिमा

(लेखक—श्रीब्रजबिहारीलालजी गौड़)

भक्त ध्रुव और प्रह्लादकी कथा चाहे कितनी ही पुरानी क्यों न हो जाय, पर एक आस्तिकके हृदयपरसे उसका प्रभाव कभी जा नहीं सकता। वह उस घटनाको अवैज्ञानिक नहीं मानता, उसकी दृष्टिमें वह बात उतनी ही सत्य है जितना कि विज्ञान अथवा गणितका एक ठोस नियम। आँवेमेंसे बिल्लीके बच्चेको जीवित निकलते देखकर भक्त प्रह्लादके हृदयमें अनुरागका स्रोत फूट पड़ा और वह परमेश्वरके अनन्य भक्त बन गये। आज यह कथा अवैज्ञानिक कहकर टाल दी जाती है। मानो लोगोंने प्रकृतिके सारे रहस्योंका ठेका ले लिया है और वह आधुनिक विज्ञानके अवगत रहस्योंको छोड़ किसी दूसरे रहस्यका प्रतिपादन नहीं कर सकती।

आज भी वैसी ही घटनाएँ नित्य हुआ करती हैं। पर हम अपनी कूपमण्डूकताके कारण उनपर ध्यान नहीं देते, या 'चान्स' कहकर चुप हो जाते हैं। लगभग एक महीना हुआ होगा, एक ऐसी ही घटना घटी। बी० एन० डब्लूकी छोटी लाइनपर बनारसके पास एक 'राजवारी' नामका स्टेशन है, स्टेशनके पास ही ठाकुर उमाशंकरने एक ईंटेका पजावा लगवाया। जब पजावा पुत गया और आग झोंकनेका समय आया तो लोगोंने देखा कि एक नेवला चार-पाँच हाथ भीतर पजावेकी दीवारमें घुसा हुआ है। ठाकुर आस्तिक विचारके थे। उन्होंने उस नेवलेको निकालनेकी बड़ी कोशिश की। थोड़ी देरके बाद नेवला दिखायी नहीं पड़ा। नौकरोंने कह दिया—वह तो बाहर भाग गया। पजावेमें आग लगायी गयी। ईंटें पकीं। पजावा ठण्डा हो जानेके बाद जब ईंटें निकाली जाने लगीं तो ठाकुरने क्या देखा कि पजावेके भीतर लगभग सौ ईंटोंका थाक नीचेसे ऊपरतक पका ही नहीं, ईंटें कालीतक न हो पायी थीं। उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। ईंटोंके बिखेरनेपर वह नेवला अपने बच्चोंसहित उसमें जिन्दा पाया गया। ईश्वरकी यह महिमा देखकर लोग आश्चर्यचकित हो गये। एक भीड़ लग गयी। कई प्रतिष्ठित लोगोंने देखा। यह आँखों देखी प्रत्यक्ष घटना है। इसपर कैसे अविश्वास किया जा सकता है? ईश्वरके सामने क्या यह कोई बड़ी बात है? जिन लोगोंको विश्वास न हो वे वहाँ जाकर इसकी पूरी तहक़ीक़ात कर सकते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निद्रा-निर्णय

(लेखक—पुरोहित श्रीप्रतापनारायणजी 'कविरत्न')

नींद ! तेरे वश्य हैं वे आलसी,
काम जिनको कुछ नहीं संसारमें।
दिव्य दिनकी रात वे कर डालते
वृद्धि करनेके लिये भू-भारमें ॥ १ ॥

कौन-सा है देश तेरा विश्वमें,
कौन-से परिवारका आधार है ?
कौन-सा घर-बार है, आगार है,
कौन-से आकारका शृंगार है ? ॥ २ ॥

हे नवोढा ! खिल नहीं सकती कभी
एक तुझसे वृद्धजन-मनकी कली।
रमण करती तू तरुणके साथमें,
बालकोंकी है बहुत तू लाड़ली ॥ ३ ॥

लोककी कर्मण्यताका नाश ही
एक तेरा बन रहा व्यापार है।
जो हराता देहको, जयकार वह
कौन-सा तेरा बड़ा हथियार है ॥ ४ ॥

हाव-भावोंके लिये तू हाव है
पार्सका भी पा सका क्या पारको ?
गूँथती तू लोल पारावार बन
स्वप्नरूपी मोतियोंके हारको ॥ ५ ॥

तू श्रमीपर वृष्टि करती सौख्यकी,
शीघ्र हरती है परिश्रम, खेदको।
तू भुला देती सभी सुख-दुःखको
खोलती है तू नहीं निज भेदको ॥ ६ ॥

चोरको भी मातकर पलमात्रमें
तू बिछाती है अनूठे जालको।
हो रही गजगामिनी भी लज्जिता
देख करके चारु तेरी चालको ॥ ७ ॥

मृत्युकी छोटी बहिन तू हो रही,
पर तुझे भी वह कभी खा जायगी।
क्या करेगी तब यहाँपर तू बता,
नींद ! तुझको नींद जब आ जायगी ॥ ८ ॥

खूब अपनी आँख दोनों बंद कर
जो लगाता आँख[3] है तुझसे सदा।
आँख खुलनेपर खुली जब आँख[3] तो,
क्या करे वह, लुट गयी जब सम्पदा ॥ ९ ॥

रात-दिन जो दास तेरा हो रहा
और सुखकी नींद भी जो सो रहा।
खो रहा वह हर्षको, अपने लिये
कष्टके काँटे कटीले बो रहा ॥ १० ॥

जागना ही चाहिये संसारमें,
खूब सोना लक्ष्य खोनामात्र है।
सो रहा था नींदमें, जागा नहीं,
मिल गया इससे मुझे यह गात्र है ॥ ११ ॥

काम जो मेरा उसीकी पूर्तिको
तू मुझे पल भी भुला सकती नहीं।
नींद आती देहको ही नित्य है
नींद ! तू मुझको सुला सकती नहीं ॥ १२ ॥

१—जो तेरे समीप है अर्थात् सोनेवाला। २—प्रेम करता है। ३—जब ज्ञान आया।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विवेक-वाटिका

जो सब भूतोंमें आत्माको देखता है और आत्माको सब भूतोंमें, वह किसीसे घृणा नहीं करता। जब मनुष्य यह जानता है कि समस्त भूत आत्मा ही हैं, और सबमें एकत्व देखता है फिर मोह और शोक कहाँ है ?

—उपनिषद्

❀ ❀ ❀

बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि विषय-कामनामें फँसा हुआ मन जब-जब परमात्माको छोड़कर अन्यत्र जाय तब-तब वहाँसे लौटाकर हृदयस्थित भगवान्‌में लगावे। इस प्रकार निरन्तर अभ्यास करनेसे साधकका चित्त थोड़े ही कालमें ईंधनरहित अग्निकी भाँति शान्त हो जाता है।

—श्रीमद्भागवत

❀ ❀ ❀

कामना भोगसे कभी शान्त नहीं होती, घी डालने-पर अग्निके समान वह अधिकाधिक बढ़ती ही रहती है।

—मनुस्मृति

❀ ❀ ❀

संसारमें न तो कोई किसीका मित्र है, न शत्रु है। जो मनुष्य किसीको अपना शत्रु मानकर उसपर क्रोध करते हैं वे वास्तवमें अपनी ही हानि करते हैं, संसार विष्णुमय है। शरीरका एक अंग दूसरे अंगका शत्रु कैसे हो सकता है ?

—भक्तवर प्रह्लाद

❀ ❀ ❀

भगवान्‌की कथामें श्रद्धा करे, भगवान्‌की प्रतिमाकी पूजा करे, भगवान्‌का स्मरण करे, भगवान्‌के ही चरण-कमलोंमें सिर झुकावे, भगवान्‌को ही संसारमें सबसे बड़ा साथी माने, भगवान्‌का ही सेवक बने और भगवान्‌के ही चरणकमलोंमें सम्पूर्णरूपसे आत्मसमर्पण कर दे। जो पुरुष इसप्रकार भगवान्‌की भक्ति करते हैं वे इस असार संसार-के बन्धनसे मुक्त होकर परमपद पाते हैं। —देवर्षि नारद

❀ ❀ ❀

भोजन करनेवाले मनुष्यके गलेमें काँटेके समान चुभने-वाले इस अहङ्काररूप शत्रुको विज्ञानरूपी महान् तलवारसे काटकर आत्मसाम्राज्य-सुखका भोग करो।

—श्रीशङ्कराचार्य

❀ ❀ ❀

सुख चाहनेवाले प्राणियोंको अपने सुखकी चाहसे जो मारता है वह मरकर कभी सुख नहीं पाता। —बुद्धदेव

❀ ❀ ❀

तुम परमेश्वर और भोग दोनोंकी सेवा नहीं कर सकते। विषय न बटोरो। कलके लिये चिन्ता न करो। कल अपनी चिन्ता आप करेगा। —ईसामसीह

❀ ❀ ❀

सदा स्मरण करनेयोग्य तो एक ही वस्तु है। सदा-सर्वदा सर्वत्र श्रीकृष्णके सुन्दर नामोंके स्मरणमात्रसे ही प्राणिमात्रका कल्याण हो सकता है।— श्रीचैतन्य महाप्रभु

❀ ❀ ❀

रे मनुष्य ! तू दीन होकर घर-घर क्यों भटकता है ! तेरा पेट तो सेरभर आटेसे ही भर जाता है। सुना है, भगवान् तो उस समुद्रको भी भोजन पहुँचाते हैं जिसका शरीर चार सौ कोस लम्बा-चौड़ा है। संसारमें कोई भूखा नहीं रहता। चींटी और हाथी सभीका पेट भगवान् भरते हैं। अरे मूर्ख, तू विश्वास क्यों नहीं करता ? —सुन्दरदासजी

❀ ❀ ❀

काम, क्रोध, मद और लोभ जबतक मनमें बसे हैं तबतक पण्डित और मूर्ख दोनों ही एक समान हैं।

—गो० तुलसीदासजी

❀ ❀ ❀

प्रेम-प्रेम तो सभी चिल्लाते हैं; परन्तु प्रेमको पहचानता कोई नहीं। जिसमें आठों पहर डूबा रहे वही प्रेम है।

—कबीरजी

❀ ❀ ❀

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तुम्हारी लीला

(लेखक—पं० श्रीप्रेमनारायणजी त्रिपाठी 'प्रेम')

तुम अनादि हो। सत्य हो। सच्चिदानन्द हो। अविनाशी हो। निरन्तर घट-घटमें वास करनेवाले हो। तुम्हारी लीला अजब है!

बिना पैरोंके तुम चला करते, चलते भी ऐसे हो कि विश्वमें कोई ऐसा स्थल नहीं जहाँ तुम्हारी पहुँच न हो।

बिना कानोंके तुम सुनते, सुनते भी इतनी बारीकीसे हो कि कोई बात—स्वप्नकी भी बात—तो तुम्हारे सुने बिना नहीं रह पाती!

फिर बिना करोंके तुम ऐसे विलक्षण कार्य सम्पादन किया करते हो कि देखते ही बनता है। साथ ही कोई ऐसा कार्य तो दीखता ही नहीं जिसे तुम न कर पाते हो!

मजा तो यह है कि तुम बिना मुखके ही सदा रसपान करते, समय-समयपर अपने जनोंको अन्तरिक्षसे अपना दिव्य सन्देश पहुँचाकर उनका कल्याण कर देते हो!

और बिना जीभके तुम अलौकिक वक्तृता देते हो। कभी-कभी तुम्हारी शान्तिमयी वाणी सन्तोंको उनके कठिनतर समयमें अमृतका काम कर जाती है। तुम्हारे लिये कुछ भी अज्ञेय नहीं!

तुम्हारा यह कमाल कम नहीं कि बिना शरीरके तुम सबका स्पर्श करते अर्थात् तुम्हारे स्पर्श बिना विश्वमें कोई चीज बाकी ही नहीं!

और बिना आँखोंके सभी कार्योंको देखा करते हो। निविड़ अन्धकारमें, जब कोई व्यक्ति सांसारिक दृष्टि बचाकर कोई कार्य कर डालता, तब भी वह तुम्हारी दृष्टिसे बच नहीं पाता। जब प्राणिमात्र शान्ति लाभ करते हों, तब भी तुम्हें शान्ति नहीं। तुम सदा सबको देखा ही करते हो!

साथ ही विश्वकी समस्त गन्धयुक्त वस्तुएँ भी तुमसे छिपकर नहीं बच पातीं। बिना नासिकाके ही तुम सब पदार्थोंकी गन्ध लेते हो। कहीं चुराकर सात तिजोरियोंमें रक्खा हुआ पदार्थ भी तो नहीं बच पाता!

तब फिर तुम्हीं कहो देव! तुम्हारी यह सभी अनोखी क्रियाएँ समझकर कौन इन्हें अलौकिक न कह उठेगा। तुम्हारी इस महिमाका वर्णन करनेका सामर्थ्य भला किसमें हो सकता है? आगम-निगमकी हिम्मत न पड़ी। भला, तुम्हारी यह विचित्र लीला जप, तप, संयम, नियम आदि क्रियाओंद्वारा किसप्रकार ध्यानमें आ सकती है। यह कोई साधारण बात थोड़े ही है!

जिस क्षण तुम्हारी इस अद्भुत रचनापर दृष्टि जा पड़ती तथा पृथिवी, जल, आकाश, पवन और अग्नि इन पाँच तत्त्वोंके चमत्कारिक संयोगसे ऐसा अद्भुत परिणाम सूझ पड़ता है तब तो सचमुच केवल अनुमानमात्रसे ही चित्त थकित हो उठता है। फिर कल्पनाको गुञ्जाइश ही नहीं रह पाती। थकान बढ़ने लगती है इस अपार लीलाके किसी भी अंशका ध्यानमात्र करनेपर।

फिर तुम सरल भी तो नहीं, अगम हो। अगोचर हो! तब तुम्हीं कहो, तुम्हारी इन लीलामयी कलाओंके गुणानुवादोंको कौन विचार सकता है?

अतएव हे गोविन्द! तुम्हारी गति केवल तुम्हीं समझ सकते हो। निश्चय ही तुम धन्य हो। तुम्हारी लीला धन्य है, देव! धन्य है! धन्य है!! तुम्हारी जय हो!!!*

ॐ नमः शिवाय

हमें सूचना मिली है कि काशीके मण्डलेश्वर परिव्राजकाचार्य स्वामीजी श्रीजयेन्द्रपुरीजी महाराजकी प्रेरणासे एक 'ॐ नमः शिवाय' कोषकी स्थापना हुई है। इसमें तैंतीस करोड़ 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र लिखवाकर संग्रह करनेका निश्चय हुआ है। अनेकों स्थानोंपर भक्तगण मन्त्र लिख-लिखकर भेज रहे हैं। यह महामन्त्र अत्यन्त कल्याणकारक है, अतएव कल्याणके पाठकोंको भी इस महान् कार्यमें सहयोग देना चाहिये।

पत्र-व्यवहार श्रीब्रह्मचारी चैतन्यानन्दजी, गोविन्द-मठ, टेढ़ी नीम, काशीके पतेसे करना चाहिये।

---

* सूर तथा तुलसीकी पदावलीके आधारपर।—लेखक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
जयति शिवा-शिव जानकि-राम । जय रघुनन्दन राधेश्याम ॥
रघुपति राघव राजा राम । पतितपावन सीताराम ॥
जय जय दुर्गा जय मा तारा । जय गणेश जय शुभ आगारा ॥

[संस्करण २४३००]

वार्षिक मूल्य
भारतमें ४≡)
विदेशमें ६॥≡)
(१० शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत् चित् आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय अखिलात्मन् जगमय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति
भारतमें ।)
विदेशमें ।≡)
(८ पैंस)

Edited by Hanuman prasad Poddar.
Printed and published by Ghanshyamdas at the Gita Press, Gorakhpur. U. P. (India)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

कल्याण पौष १९९० की

विषय-सूची

१—गर्व न करो [कविता] (श्रीमलूकदासजी) ... ९०७
२—ईश्वर-तत्त्व (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ... ९०८
३—गोपी-प्रेम (हनुमानप्रसाद पोद्दार) ... ९१०
४—परमहंस-विवेकमाला (स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी) ९२३
५—श्रीकृष्ण-दर्शन [कविता](श्रीविनायकरावजी भट्ट) ९३१
६—चरित्र-बल (पं० श्रीब्रह्मदत्तजी शर्मा 'शिशु') ९३२
७—पथिककी प्रार्थना [कविता] (पं० श्रीजगन्नाथजी मिश्र गौड़ 'कमल') ९३९
८—अनुताप (श्रीमार्कण्डेयजी ब्रह्मचारी) ... ९४०
९—प्रणव-महिमा (ठाकुर श्रीयोगम्बरसिंहजी) ... ९४२
१०—नर्तन-कौतुक [कविता] (पं०श्रीप्रणयेशजी शुक्ल) ९४६
११—गोपालक कृष्ण[कविता](पं०श्रीप्रमोदजी त्रिपाठी)९४६
१२—परमार्थ-पत्रावली (श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पत्र) ९४७
१३—वेदान्त-दर्शन-रहस्य (स्वामीजी श्रीविज्ञानहंसजी) ९४९
१४—भगवान्‌के कार्य (पं० श्रीशिवबालकजी पाठक) ९५३
१५—मनके रहस्य और उसका नियन्त्रण (स्वामीजी श्रीशिवानन्दजी) ९५५
१६—वाल्मीकि-रामायण और भगवच्छरणागति (साहित्याचार्य पं० श्रीमथुरानाथजी शास्त्री, भट्ट, कविरत्न) ९५८
१७—दृष्टान्त-तरंगिणी-तरंग [कविता] (बाबा श्रीदीनदयालजी गिरि) ९७०
१८—श्रीनारायणस्वामीजीका निवेदन ... ९७१
१९—महोबा और उसके देवस्थान (श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी एम० ए०, डिप्टी कलेक्टर) ... ९७४
२०—भक्त-गाथा (श्रीराधाकृष्णलालजी) ... ९७८
२१—श्यामकी बाँसुरी (श्रीबिन्दु ब्रह्मचारीजी) ... ९८०
२२—श्रीभगवन्नाम (नाम-जप-विभाग, कल्याण-कार्यालय, गोरखपुर) ९८५

कल्याणका

शक्ति-अंक

कल्याणका आगामी विशेषांक श्रीशक्ति-अंक होगा। इसमें सभी प्रकारसे शक्ति-तत्त्वपर प्रकाश डाला जायगा। ब्रह्मविद्या, प्रकृति, श्रीउमा-तत्त्व, श्रीराधातत्त्व, श्रीसीतातत्त्व, गायत्रीतत्त्व आदि अनेक विषयोंपर विचार करनेकी चेष्टा की जायगी। अतएव यह अंक ब्रह्मवादी, शैव, वैष्णव, शाक्त, बौद्ध आदि सभीके लिये बहुत उपयोगी वस्तु होगी। लेखोंकी सूची पीछे प्रकाशित होगी। शक्तिसम्बन्धी रंगीन या सादे सुन्दर चित्र जिन महानुभावोंके पास हों, वे भेजनेकी कृपा करें। साथ ही ५१ शक्ति-पीठोंके तथा प्रधान-प्रधान शक्तितीर्थों और शक्तिमन्दिरोंके चित्र भी वहाँके अधिकारी महोदय भेजनेकी व्यवस्था करें तो उनकी बड़ी कृपा होगी।

—सम्पादक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

❀ 'श्रीशिवांक' का पुनर्मुद्रण ❀

गभग चार ही मासमें 'श्रीशिवांक' का प्रथम संस्करण प्रायः समाप्त हो गया। यह हमारे ग्राहक महोदयोंकी गुणग्राहकता, सद्ग्रन्थोंकी तरफ रुचि एवं परमार्थविषयक प्रेम और श्रद्धाका बड़ा सुन्दर परिचय है। साथ ही 'कल्याण'के सभी कृपालु लेखकोंकी भक्तिपूर्ण लेखनी और भगवान्‌के गुणोंके अतुल प्रभावकी भी महिमा भूलने योग्य नहीं है। भगवान्‌के गुण-कीर्तनसे तुच्छ भी महान् हो जाते हैं। अस्तु—

'श्रीशिवांक'का दूसरा संस्करण खर्चका विचार प्रायः छोड़कर केवल प्रचारार्थ २५०० पुनः छापा जा रहा है। इसके तैयार होनेतक जिन सज्जनोंकी माँगें रोकी जायँगी उसके लिये वे हमें कृपापूर्वक क्षमा करें।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि इतने बड़े ग्रन्थका तीसरी बार छपना कठिन है। यदि आप अभी ग्राहक न बने और संस्करण समाप्त हो गया तो फिर मिलना कठिन है। श्रीशिवांकका प्रचार जितना हुआ है उतना अभीतक और किसी भी विशेषांकका नहीं हुआ। इससे इसकी उपयोगिता स्वयं सिद्ध है।

श्रीशिवांकपर अनेक बड़ी ही अच्छी-अच्छी सम्मतियाँ देश-विदेशसे आयी हैं। प्रायः सभीने इसकी मुक्त-कण्ठसे बड़ी प्रशंसा की है। यह एक संग्रहणीय वस्तु है। केवल ४≡) में लगभग १५०० पृष्ठकी अनेक चित्रोंसे सुसज्जित धार्मिक सामग्री आपके पास संगृहीत हो जायगी। अतः अवसर चूकना नहीं चाहिये।

धर्मार्थ बाँटने, इनाम देने, उपहार देने और पुस्तकालयमें रखनेके लिये यह बहुत ही उत्तम सामग्री है।

जिन सज्जनोंने मान-सम्मान, नाम-प्रकाशन या आर्थिक लाभकी कुछ भी आशा न रखकर निःस्वार्थभावसे 'कल्याण'के ग्राहक बनाये हैं और बना रहे हैं एवं बनावेंगे उनके हमलोग बड़े ही कृतज्ञ हैं। भगवान्‌के कार्यमें सहायता करनेवाले सज्जन श्रीभगवान्‌के बड़े ही कृपापात्र होते हैं। हमारा निवेदन है कि वे कृपापूर्वक 'कल्याण' के प्रचारार्थ ग्राहक बढ़ानेमें कुछ परिश्रम और करें, जिससे 'श्रीशिवांक'का दूसरा संस्करण बहुत जल्दी प्रेमी पाठकोंके हाथोंमें चला जाय।

कल्याणमें विज्ञापन आदिकी कोई आमदनी नहीं है। केवल ग्राहकोंके भरोसे ही अपने आदर्शपर चलते रहनेका प्रयत्न कर रहा है। अतः प्रेमियोंको ग्राहक बनाने एवं पुरानी फाइलें बिकवानेकी विशेष चेष्टा करनेकी पुनः प्रार्थना है।

कल्याणकी पुरानी फाइलें और विशेषांक

(ये सब धीरे-धीरे बिकते जाते हैं, लेनेवाले सज्जन जल्दी करें)

१-तृतीय वर्षकी फाइल 'भक्तांक' सहित मूल्य ४≡) सजिल्द ४॥≡)
२-सातवें वर्षकी फाइल 'ईश्वरांक'सहित मूल्य ४≡) सजिल्द (दो जिल्दें) ५।-)
३-भगवन्नामांक पृष्ठ ११० रंग-विरंगे ४१ चित्र ॥≡) ,, १≡)
४-रामायणांक पृष्ठ ५१२ तिरंगे-एकरंगे १६७ चित्र मूल्य २॥≡) सजिल्द ३≡)
५-ईश्वरांक सपरिशिष्टांक पृष्ठ ६१८ मूल्य ३) ,, ३॥)
६-शिवांक ,, पृष्ठ ६६६ मूल्य ३) ,, ३॥)

व्यवस्थापक—कल्याण-कार्यालय, गोरखपुर।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

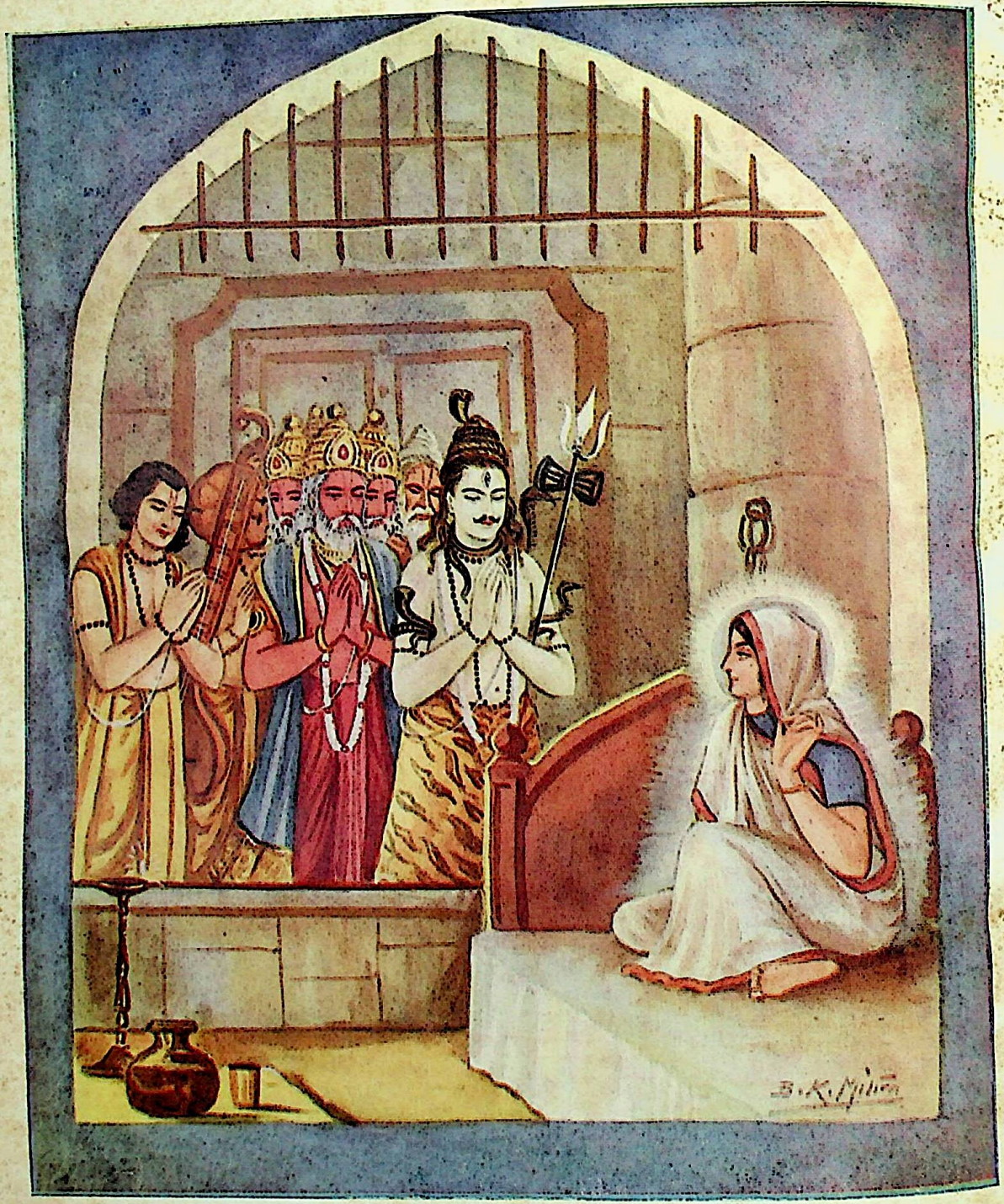

देवताओंद्वारा गर्भ-स्तुति

श्रीदेवकीजी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु । मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

वर्ष ८ | गोरखपुर, पौष १९९० जनवरी १९३४ | संख्या ६ पूर्ण संख्या ९०

गर्व न करो

गरब न कीजै बावरे, हरि गरब-प्रहारी ।
गरबहिं ते रावन गया, पाया दुख भारी ॥
जरन खुदी रघुनाथके मन नाहिं सुहाती ।
जाके जिय अभिमान है ताकी तोरत छाती ॥
एक दया अरु दीनता ले रहिये भाई ।
चरन गहौ जाय साधके रीझैं रघुराई ॥
यही बड़ा उपदेस है परद्रोह न करिये ।
कह मलूक हरि सुमिरिके भौसागर तरिये ॥

—मलूकदासजी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ईश्वर-तत्त्व

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

प्र०—सर्वज्ञ, सर्वेश, सर्वव्यापी और सर्वान्तर्यामी आदि शब्दोंसे जिस ईश्वरका सङ्केत किया जाता है वह ईश्वर किसका ज्ञाता, ईश, व्यापक और अन्तर्यामी आदि है? जिसका ज्ञाता ईश आदि है, उसका नामरूप क्या है? वह उससे भिन्न है या नहीं? यदि नहीं, तो व्याप्य और व्यापक-सम्बन्ध कैसे होगा?

उ०—विज्ञानानन्द ब्रह्म अनादि और अनन्त है, उसके किसी एक अंशमें त्रिगुणमयी मायासहित जड-चेतनमय यह समस्त संसार है। ब्रह्मके जिस अंशमें यह संसार है, उस अंशको सगुण ब्रह्म और जिस अंशमें संसार नहीं है उसको निर्गुण ब्रह्म कहते हैं। उस सगुण ब्रह्मका ही सर्वज्ञ, सर्वेश, सर्वव्यापी और सर्वान्तर्यामी आदि शब्दोंसे सङ्केत किया जाता है। वही इस मायासहित जड-चेतन सम्पूर्ण संसारका ज्ञाता, ईश, व्यापक और अन्तर्यामी है; उसीके सकाशसे मन मनन करता है, बुद्धि निश्चय करती है और सम्पूर्ण संसार प्रकाशित होता है। वह अनन्त है, अपार है, अनादि है, अचल है, ध्रुव है, नित्य है, सत्य और आनन्दमय है।

माया जड और विकारी है, मायाको ही प्रकृति कहते हैं। यह प्रकृति परमेश्वरकी शक्ति है और उसीके अधीन है। इसके दो भेद हैं—विद्या और अविद्या। जिसके द्वारा सत्-असत् समस्त वस्तुएँ यथार्थरूपसे जाननेमें आती हैं उस ज्ञानशक्तिका नाम विद्या है; और जिसके द्वारा आवृत हुए सारे जीव मोहित हो रहे हैं उसका नाम अविद्या है। इस अविद्याका नाश उपर्युक्त विद्यासे ही होता है। चौबीस तत्त्वोंमें विभक्त हुआ जड संसार प्रकृतिका ही विस्तार या कार्य (विकार) है। मूल-प्रकृतिसे महत्तत्त्व, महत्तत्त्वसे अहंकार और अहंकारसे पञ्चतन्मात्राओंकी उत्पत्ति होती है; फिर अहंकारसे मन और पञ्चतन्मात्राओंसे पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच स्थूल महाभूतोंकी उत्पत्ति होती है।* इसप्रकार मूल-प्रकृतिसहित चौबीस तत्त्व माने गये हैं।

मायाके द्वारा आवृत हुए सगुण ब्रह्मके अंशको जीव कहते हैं। ये जीव नाना और असंख्य हैं। परमेश्वरका अंश होनेपर भी मायाके साथ सम्बन्ध रहनेके कारण इसकी जीव-संज्ञा मानी गयी है। और मायाका यह सम्बन्ध अनादि एवं सान्त है। उस मायाके अविद्या अंश यानी अज्ञानसे जीव मोहित है। विद्याके द्वारा अविद्याका नाश होनेसे जीव परमात्माको प्राप्त हो जाता है और जैसे ईंधनको जलाकर अग्नि स्वयं शान्त हो जाती है वैसे ही अविद्या या अज्ञानका नाश करके विद्या या ज्ञान भी शान्त हो जाता है। तब मायासे रहित जीव केवल-अवस्थाको अर्थात् सच्चिदानन्दघन परमात्मामें तद्रूपताको प्राप्त हो जाता है।

जीव-समुदायके भी दो भेद हैं—स्थावर और जंगम। देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि चलनेवाले जीवोंको जंगम एवं वृक्ष, लता, पर्वत आदि स्थिर रहनेवाले जीवोंको स्थावर कहा गया है।

इस जड-चेतनमय संसारसे परमेश्वर भिन्न भी है और अभिन्न भी। जैसे पुरुषसे स्वप्नकी सृष्टि है और आकाशसे वायुकी। वायुकी उत्पत्ति

* श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, रसना और नासिका—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। हाथ, पैर, मुख, गुदा और उपस्थ—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। शब्द-स्पर्श-रूप-रस और गन्ध-तन्मात्रा—ये पञ्चतन्मात्राएँ हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आकाशसे होती है और उसका आधार भी आकाश है। आकाशसे उत्पन्न होनेके कारण वायु उससे अभिन्न है; और आकाशमें आकाशसे अलग होकर रहती हुई प्रतीत होनेसे उससे भिन्न भी है। इसी प्रकार जिस पुरुषको स्वप्न आता है, उसीसे उसकी उत्पत्ति होती है और वही उस स्वप्नके संसारका आधार है। पुरुषसे ही उत्पन्न होनेसे स्वप्न उससे अभिन्न है और स्वप्नकालमें पृथक् प्रतीत होनेके कारण भिन्न भी है। इसी तरह सगुण ब्रह्म परमेश्वर अभिन्न-निमित्तोपादान-कारण होते हुए ही भिन्न और अभिन्न है तथा वही ईश, ज्ञाता, व्यापक और अन्तर्यामी है। जीव-को स्वप्न-सृष्टिकी प्रतीति मोहसे होती है और ईश्वर-को सृष्टिकी प्रतीति अपनी योगशक्ति या लीलासे होती है। ईश्वर स्वतन्त्र है और जीव परतन्त्र है।

प्र०—आवरण या बन्धन उसको दूर करना चाहिये जो बद्ध हो। परन्तु वह बद्ध स्वाभाविक है या आगन्तुक। यदि स्वाभाविक है तो उसकी मुक्ति कैसी और बद्ध नहीं तो बन्धन कैसा? आवरण किसको कहते हैं और वह आवरण किसको है?

उ०—आवरण या बन्धन है भी और नहीं भी है। जिसको संसार भिन्नरूपसे प्रतीत होता है उसको बन्धन है और जिसको नहीं होता उसको नहीं है। यह बन्धन न स्वाभाविक है और न आगन्तुक, परन्तु अनादि-सान्त है। आवरण या बन्धन अज्ञान या अविद्याको कहते हैं। यह आवरण मायामोहित जीवको है। इसलिये इस बन्धनसे छूटनेका प्रयत्न अवश्य करना चाहिये। बन्धनसे छूटनेका उपाय है तत्त्वज्ञान, जो सांख्ययोग, भक्तियोग, निष्काम-कर्मयोग आदि साधनोंसे प्राप्त होता है।

प्र०—पूजा कौन करता है और किसकी करता है? ब्रह्म देश, काल, निमित्तके परे है या नहीं? यदि नहीं तो वह बद्ध है, और यदि हाँ तो वह असाध्य है। फिर पूजा कैसी और उससे क्या लाभ?

उ०—पूजा जीव करता है और परमेश्वरकी करता है। ब्रह्म देश, काल, निमित्तसे परे भी है और अन्दर भी है। क्योंकि देश, काल, निमित्त आदि सब उस ब्रह्मके किसी अंशमें हैं और उसीके अधीन हैं, अतएव वह उनसे बद्ध नहीं है। उसकी पूजा आदि अवश्य करनी चाहिये। पूजाके दो प्रकार हैं—

(क) सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर सम्पूर्ण चराचर जीवोंका आत्मा है। इसलिये सम्पूर्ण चराचर जीवोंको परमेश्वरका स्वरूप समझ, फलासक्तिको त्यागकर, निष्कामप्रेमभावसे, अपने-अपने वर्णाश्रमके अनुसार, कर्मोंद्वारा उनका सेवा-सत्कार करना उस सर्वव्यापी निराकार ब्रह्मकी पूजा है। भगवान्‌ने कहा है—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥
(गीता १८। ४६)

'जिस परमात्मासे सर्व भूतोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह सर्व जगत् व्याप्त है उस परमेश्वरको अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा पूज-कर मनुष्य परम सिद्धिको प्राप्त होता है।'

(ख) अपने-अपने भाव और रुचिके अनुसार उसी सर्वव्यापी, विज्ञानानन्दघन परमात्माकी, शिव, विष्णु आदि किसी भी एककी मानसिक या पार्थिव-प्रतिमाको निमित्त बनाकर, उस परमेश्वरके प्रभावको समझते हुए, श्रद्धा और प्रेमभावसे, शास्त्र-विधिके अनुसार, पत्र-पुष्पादिसे उसकी अर्चना करना साकार परमेश्वरकी पूजा है। (गीता ९। २६)

इसप्रकार पूजा करनेसे मनुष्य इस दुःख-रूप संसार-बन्धनसे सदाके लिये छूटकर परमात्माको प्राप्त हो जाता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गोपी-प्रेम

क प्रेमी महानुभावने 'गोपी-प्रेम' पर कुछ लिखनेके लिये आग्रहपूर्वक अनुरोध किया है। 'गोपी-प्रेम' पर कुछ भी लिखना वस्तुतः मुझ-सरीखे मनुष्यके लिये अनधिकार-चर्चा है। गोपी-प्रेमका तत्त्व वही प्रेमी भक्त कुछ जान सकता है जिसको भगवान्‌की ह्लादिनी शक्ति श्रीमती राधिकाजी और आनन्द तथा प्रेमके दिव्य समुद्र भगवान् सच्चिदानन्दघन परमात्मा श्रीकृष्ण ही कृपापूर्वक जना दें। जाननेवाला भी उसे कह वा लिख नहीं सकता, क्योंकि 'गोपी-प्रेम' का प्रकाश करनेवाली भगवान्‌की वृन्दावनलीला सर्वथा अनिर्वचनीय है। वह कल्पनातीत, अलौकिक और अप्राकृत है। समस्त व्रजवासी भगवान्‌के मायामुक्त परिकर हैं और भगवान्‌की निज आनन्दशक्ति, योगमाया श्रीराधिकाजीकी अध्यक्षतामें भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर लीलामें योग देनेके लिये व्रजमें प्रकट हुए हैं। व्रजमें प्रकट इन महात्माओंकी चरण-रजकी चाह करते हुए सृष्टि-कर्त्ता ब्रह्मा स्वयं कहते हैं—

तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो
भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम्।
येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां
भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम्॥
अहोभाग्यमहोभाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्॥
तद्भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां
यद्गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम्।
यज्जीवितं तु निखिलं भगवान्मुकुन्द-
स्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव॥

(श्रीमद्भा० १०। १४। ३०, ३२, ३४)

'हे प्रभो! मुझे ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो कि मैं इस जन्ममें अथवा किसी तिर्यक् योनिमें ही जन्म लेकर आपके दासोंमेंसे एक होऊँ, जिससे आपके चरणकमलोंकी सेवा कर सकूँ। अहो! नन्दादि व्रजवासी धन्य हैं, इनके धन्य भाग्य हैं, जिनके सुहृद् परमानन्दरूप सनातन पूर्णब्रह्म स्वयं आप हैं। इस धरातलपर व्रजमें और उसमें भी गोकुलमें किसी कीड़े-मकोड़ेकी योनि पाना ही परम सौभाग्य है, जिससे कभी किसी व्रजवासीकी चरणरजसे मस्तकको अभिषिक्त होनेका सौभाग्य मिले।'

जिन व्रजवासियोंकी चरण-धूलिको ब्रह्मा चाहते हैं, उनका कितना बड़ा महत्त्व है! ये व्रजवासीगण मुक्तिके अधिकारको ठुकराकर उससे बहुत आगे बढ़ गये हैं। इस बातको स्वयं ब्रह्माजीने कहा है कि भगवन्! मुक्ति तो कुचोंमें विष लगाकर मारनेको आनेवाली पूतनाको ही आपने दे दी। इन प्रेमियोंको क्या यही देंगे—इनका तो आपको ऋणी बनकर ही रहना होगा, और भगवान्‌ने स्वयं अपने श्रीमुखसे यह स्वीकार किया है। आप गोपियोंसे कहते हैं—

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या माऽभजन् दुर्जरगेहशृङ्खलाः
संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना॥

(श्रीमद्भा० १०। ३२। २२)

'हे प्रियाओ! तुमने घरकी बड़ी कठिन बेड़ियोंको तोड़कर मेरी सेवा की है। तुम्हारे इस साधुकार्यका मैं देवताओंके समान आयुमें भी बदला नहीं चुका सकता। तुम ही अपनी उदारतासे मुझे उऋण करना।'

महात्मा नन्ददासजीकी रचनामें भगवान् कहते हैं—

तब बोले ब्रजराज-कुँवर हौं रिनी तुम्हारो।
अपने मनतें दूरि करौ किन दोष हमारो॥
कोटि कलप लगि तुम प्रति प्रतिउपकार करौं जौ।
हे मनहरनी तरुनी, उरिनी नाहिं तबौं तौं॥
सकल बिस्व अपबस करि मो माया सोहति है।
प्रेममयी तुम्हरी माया सो मोहि मोहति है॥
तुम जु करी सो कोउ न करै सुनि नवलकिसोरी।
लोकबेदकी सुदृढ़ संखला तृन सम तोरी॥

सारे संसारके देव, मनुष्य, गन्धर्व, असुर आदि जीवोंको कर्मोंकी बेड़ीसे निरन्तर बाँधे रखनेवाले सच्चिदानन्द, जगन्नियन्ता प्रभु गोपी यशोदाके द्वारा ऊखलसे बँध जाते हैं। सारे जगत्‌को मायाके खेलमें सदा रमानेवाले मायापति हरि गोप-बालकोंसे खेलमें हारकर, स्वयं घोड़े बनकर उन्हें अपनी पीठपर चढ़ाते हैं! उन व्रजवासी नर-नारियोंको धन्य है! एक दिनकी बात है—यशोदाजी घरके आवश्यक काममें लग रही थीं, बाल-कृष्ण मचल गये और बोले, मैं गोद चढ़ूँगा। माताने कुछ ध्यान नहीं दिया। इसपर खीझकर आप रोने और आँगनमें लोटने लगे। इतनेहीमें देवर्षि नारद भगवान्‌की बाल-लीलाओंको देखनेकी लालसासे वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने देखा, सचराचर विश्वके स्वामी परम आनन्दमय भगवान् माताकी गोद चढ़नेके लिये

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जमीनपर पड़े रो रहे हैं। इस दृश्यको देखकर देवर्षि गद्गद हो गये और यशोदाको पुकारकर कहने लगे—

किं ब्रूमस्त्वां यशोदे कति कति सुकृतक्षेत्रबृन्दानि पूर्वं
गत्वा कीदृग्विधानैः कति कति सुकृतान्यर्जितानि त्वयैव।
नो शक्रो न स्वयम्भुर्न च मदनरिपुर्यस्य लेभे प्रसादं
तत्पूर्णब्रह्म भूमौ विलुठति विलपन् क्रोडमारोढुकामः॥

'यशोदे! तेरा सौभाग्य महान् है। क्या कहें, न जाने तूने पिछले जन्मोंमें तीर्थोंमें जा-जाकर कितने महान् पुण्य किये हैं! अरी! जिस विश्वपति, विश्वस्रष्टा, विश्वरूप, विश्वाधार भगवान्‌की कृपाको इन्द्र, ब्रह्मा और शिव भी नहीं प्राप्त कर सकते वही पूर्णब्रह्म आज तेरी गोद चढ़नेके लिये जमीनपर पड़ा लोट रहा है!'

जो विश्वनायक भगवान् मायाके दृढ़ सूत्रमें बाँध-बाँधकर अखिल विश्वको निरन्तर नाच नचाते हैं वही विज्ञानानन्दघन भगवान् गोपियोंकी प्रेम-मायासे मोहित होकर सदा उनके आँगनमें नाचते हैं! उनके भाग्यकी सराहना और उनके प्रेमका महत्त्व कौन बतला सकता है? रसखान कहते हैं—

सेस महेस गनेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरंतर ध्यावैं।
जाहि अनादि अनन्त अखंड अछेद अभेद सुबेद बतावैं॥
नारदसे सुक ब्यास रटैं, पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीरकी छोहरियाँ छछियाभरि छाछपै नाच नचावैं॥

गोपियोंके भाग्यकी सराहना करते हुए परम विरागी, सदा ब्रह्मस्वरूप मुनि शुकदेवजी कहते हैं—

नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत्प्राप विमुक्तिदात्॥
(श्रीमद्भा० १०। ९। २०)

'ब्रह्मा, शिव और सदा हृदयमें रहनेवाली लक्ष्मीजीने भी मुक्तिदाता भगवान्‌का वह दुर्लभ प्रसाद नहीं पाया जो प्रेमिकाश्रेष्ठ गोपियोंको मिला।'

इसी प्रकार ज्ञानिश्रेष्ठ उद्धवजी कहते हैं—

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः।
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ-
लब्धाशिषां य उदगाद्व्रजसुन्दरीणाम्॥
(श्रीमद्भा० १०। ४७। ६०)

'रासोत्सवके समय भगवान्‌के भुजदण्डोंको गलेमें धारणकर पूर्णकामा व्रज-सुन्दरियोंको श्रीहरिका जो दुर्लभ प्रसाद प्राप्त हुआ था, वह निरन्तर भगवान्‌के वक्षःस्थलमें निवास करनेवाली लक्ष्मीजीको और कमलकी-सी कान्ति और सुगन्धसे युक्त सुरसुन्दरियोंको भी नहीं मिला, फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है?'

गोपियोंकी चरण-रज पानेके लिये व्रजमें लतागुल्मौषधि बननेके इच्छुक और गोपियोंका शिष्यत्व ग्रहण करके गोपीभावको प्राप्त हुए भक्त उद्धवसे स्वयं भगवान्‌ने कहा है—

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शङ्करः।
न च सङ्कर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्॥
(श्रीमद्भा० ११। १४। १५)

'हे उद्धव! मुझे ब्रह्मा, संकर्षण, लक्ष्मी और अपना आत्मा—ये भी उतने प्रियतम नहीं हैं जितने तुझ-जैसे भक्त प्रियतम हैं।'

इससे गोपियोंके महत्त्वकी किञ्चित् कल्पना हुई होगी। भगवान्‌की ऐसी प्रियतमा गोपियोंके प्रेमका वर्णन मुझ-जैसा मनुष्य कैसे कर सकता है? परम वैराग्यकी प्राप्ति होनेपर कहीं प्रेमका अधिकार मिलता है और उस दिव्य प्रेम-राज्यमें प्रवेश कर चुकनेवाले महात्माओंके प्रसादसे ही दुर्गम प्रेमपथपर अग्रसर होकर भक्त उस प्रेमामृतका कुछ आस्वाद प्राप्त कर सकता है। यह साधनसापेक्ष है। केवल अध्ययन या ग्रन्थ-पाठसे वहाँतक पहुँच नहीं हो सकती। तथापि भगवत्कृपासे इधर-उधरसे जो कुछ बातें मालूम हुई हैं उन्हींका कुछ थोड़ा-सा भाव संक्षेपमें लिखनेकी चेष्टा यहाँ की जाती है। भाग्यवान् पूज्यपाद प्रेमीजन कृपापूर्वक अपराध और धृष्टता क्षमा करेंगे।

प्रेमका स्वरूप

गोपी-प्रेमका रहस्य जाननेसे पहले प्रेमतत्त्वपर कुछ विचार करना आवश्यक है। प्रेम वस्तुतः वाणीकी वस्तु नहीं है; जिसका वर्णन वाणीसे हो सकता है वह तो प्रेमका अत्यन्त स्थूल बाहरी स्वरूप है। प्रेम हृदयमें रहता है और प्रेमीको प्रेममय बना डालता है।

भगवान् श्रीरामने श्रीजानकीजीके पास यह प्रेम-सन्देश भेजा था—

तत्त्व प्रेमकर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा॥
सो मन रहत सदा तोहि पाहीं। जानेहु प्रीतिरीति यहि माहीं॥

'तुम्हारे और मेरे प्रेमका तत्त्व केवल एक मेरा मन जानता है और वह मन सदा तेरे पास रहता है।' प्रेममें स्वार्थके लिये जरा-सी भी जगह नहीं है। जहाँ कुछ भी पानेकी वासना है वहाँ प्रेमके पवित्र आसनको काम कलंकित कर रहा है। प्रेममें देना-ही-देना है, लेने वा पानेकी कल्पना भी नहीं है। प्रेम सदा बढ़ता ही रहता है। प्रेमी कभी यह मान ही नहीं सकता कि मुझमें पूरा प्रेम है। वह सदा अपनेमें त्रुटि ही देखा करता है और अनन्य-भावसे प्रेमास्पदके प्रति सदा हृदयको आकृष्ट रखता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जो प्रेम गुण देखकर अथवा किसी आशासे होता है वह गुणोंका ह्रास देखते ही अथवा आशाभङ्गकी आशङ्का होते ही घट जाता है या नष्ट हो जाता है। वह वास्तवमें प्रेम नहीं है। वहाँ काम ही प्रेमके नामपर राज्य कर रहा है।

छिनहि चढ़ै, छिन ऊतरै, सो तो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोय॥

अन्यत्र कहा गया है—

सर्वथा ध्वंसरहितं सत्यपि ध्वंसकारणे।
यद्भावबन्धनं यूनोः स प्रेमा परिकीर्तितः॥

'ध्वंसका कारण वर्तमान होनेपर भी जो सर्वथा ध्वंसरहित है, इसप्रकारके परस्परके भावको प्रेम कहते हैं।' अर्थात् प्रेमास्पदका धन नष्ट हो गया, रूप जाता रहा, उसके सद्गुण दुर्गुणोंमें परिणत हो गये, उसने आदर-सत्कार या प्रेम करना छोड़ दिया, वह पद-पदपर तिरस्कार करता है, हमारा अपमान करके हमारे ही सामने दूसरेको आदर देता है, उसमें हजारों दोषोंका उदय हो गया है, ऐसी अवस्थामें प्रेम नष्ट होना ही चाहिये। संसारमें ऐसी अवस्था हो हो जाती है; परन्तु इस स्थितिमें भी जो प्रेम कभी घटता नहीं, बल्कि दिनों-दिन बढ़ता ही रहता है, उसीका नाम यथार्थ प्रेम है।

रसखान कहते हैं—

बिनु जोबन गुन रूप धन, बिनु स्वारथ हित जानि।
सुद्ध कामनातें रहित, प्रेम सकल रसखानि॥
अति सूच्छम, कोमल अतिहि, अति पतरो, अति दूर।
प्रेम कठिन सबतें सदा, नित इकरस भरपूर॥
रसमय स्वाभाविक, बिना स्वारथ, अचल महान।
सदा एकरस बढ़त नित, सुद्ध प्रेम रसखान॥

प्रेमकी बाढ़ कभी रुकती ही नहीं—इस चन्द्रकलाकी कभी पूर्णिमा नहीं होती।

प्रेम सदा बढ़िबौ करै, ज्यों ससिकला सुबेष।
पै पूनों यामें नहीं, तातें कबहुँ न सेष॥

और ऐसा प्रेम वस्तुतः केवल भगवान्‌में उनके प्रेमी भक्तका ही हो सकता है। देवर्षि नारदजी ऐसे प्रेमका लक्षण बतलाते हुए कहते हैं—

अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्। मूकास्वादनवत्। प्रकाश्यते क्वापि पात्रे। गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षणवर्धमानमविच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम्। तत्प्राप्य तदेवावलोकयति, तदेव शृणोति, तदेव चिन्तयति॥ (नारदसूत्र ५१—५५)

अर्थात् 'प्रेमके स्वरूपका उसी प्रकार वर्णन नहीं किया जा सकता, जैसे गूँगा स्वादका वर्णन नहीं कर सकता। ऐसा प्रेम किसी विरले भाग्यवान् अधिकारी (परम विषय-विरागी भगवदनुरागी) भक्तमें ही प्रकट होता है। यह प्रेम गुणोंसे रहित है, इसमें कामनाकी गन्ध नहीं है, यह हर क्षण बढ़ता ही रहता है। इसका प्रवाह सदा अटूट रहता है, यह अति सूक्ष्म है, केवल अनुभवसे जाना जा सकता है। इस प्रेमको पा करके भक्त केवल प्रेमको ही देखता है, प्रेमको ही सुनता है और प्रेमका ही चिन्तन करता है।' वहाँ प्रेम और प्रेमास्पदमें कोई अन्तर नहीं रह जाता। क्योंकि—

प्रेम हरीको रूप है, त्यों हरि प्रेमसरूप।
एक होइ द्वैमें लसै, ज्यों सूरज अरु धूप॥

इसी प्रेमभावको प्राप्त गोपियोंकी दशाका वर्णन करते हुए भक्त कविगण क्या कहते हैं—कुछ नमूने देखिये—

(१) जित देखौं तित स्याममई है।
स्याम कुंज बन जमुना स्यामा, स्याम गगन घनघटा छई है॥
सब रंगनमें स्याम भरो है, लोग कहत यह बात नई है।
मैं बौरी, की लोगनहीकी स्याम पुतरिया बदल गई है॥
चन्द्रसार रबिसार स्याम है, मृगमद स्याम काम बिजई है।
नीलकंठको कंठ स्याम है, मनों स्यामता बेल बई है॥
स्रुतिको अच्छर स्याम देखियत, दीपसिखापर स्यामतई है।
नरदेवनकी कौन कथा है, अलख ब्रह्म-छबि स्याममई है॥

(२) कानन दूसरो नाम सुनै नहिं, एकहिं रंग रँगो यह डोरो।
धोखेहु दूसरो नाम कढ़ै, रसना मुख बाँधि हलाहल बोरो॥
ठाकुर चित्तकी वृत्ति यहै हम कैसेहु टेक तजैं नहिं मोरो।
बावरी वे अँखियाँ जरि जायँ जो साँवरो छाँडि निहारति गोरो॥

(३) पहले ही जाय मिले गुनमें स्रवन, फेरि
रूपसुधा मधि कीनो नैनहूँ पयान है।
हँसनि, नटनि, चितवनि, मुसुकानि,
सुघराई, रसिकाई मिली मति पय-पान है॥
मोहि-मोहि मोहनमयी री मन मेरो भयो,
'हरीचंद' भेद न परत पहचान है।
कान्ह भये प्रानमय, प्रान भये कान्हमय,
हियमें न जानि परै कान्ह है कि प्रान है॥

(४) बाटनमें घाटनमें बीथिनमें बागनमें,
वृच्छनमें बेलिनमें बाटिकामें बनमें।
दरनमें दिवारनमें देहरी दरीचनमें
हीरनमें हारनमें भूषनमें तनमें॥
काननमें कुंजनमें गोपिनमें गायनमें,
गोकुलमें गोधनमें दामिनिमें घनमें।
जहाँ जहाँ देखौं तहाँ स्याम ही दिखाई देत,
सालिगराम छाइ रह्यौ नैननमें मनमें॥

(५) कहि न जाय मुखसौं कछू स्याम-प्रेमकी बात।
नभ जल थल चर अचर सब स्यामहि स्याम लखात॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्म नहीं, माया नहीं, नहीं जीव, नहिं काल।
अपनीहूँ सुधि ना रही, रह्यौ एक नँदलाल॥
को, कासों, केहि बिधि, कहा कहै हृदयकी बात।
हरि हेरत हिय हरि गयो, हरि सरबत्र लखात॥

(६) नारायण जाके हृदय सुन्दर स्याम समाय।
फूल पात फल डारमें ताको वही लखाय॥
दर दिवार दरपन भये, जित देखौं तित तोहि।
काँकर पाथर ठीकरी भये आरसी मोहि॥

इसप्रकार कृष्णमय जगत् देखनेवाली गोपियोंकी एक गाथा इसप्रकार है—दिन-रात श्रीकृष्ण-चर्चामें लगी हुई गोपियोंसे एक दिन एक गोपीने पूछा—'बहिन! क्या कहूँ, नन्दबाबा गोरे, यशोदाजी गोरीं, दाऊजी गोरे, घरभरमें सभी गोरे, हमारे श्यामसुन्दर ही साँवरे कैसे हो गये?' इसपर एक कृष्णदर्शनमयी गोपीने कहा—बहिन! क्या तू इतना भी नहीं जानती—अरी!

कजरारी अँखियानमें बस्यो रहत दिन-रात।
पीतम प्यारो हे सखी, तातें साँवर गात॥

कितने रहस्यकी बात है, गोपीकी कजरारी आँखोंमें केवल कृष्ण ही बसता है, जगत्में उसकी आँखें और किसीको देखती ही नहीं! कुछ लोग कहा करते हैं कि गोपियाँ भगवान्को सर्वव्यापक नहीं मानती थीं। यह उनकी भूल है। गोपियाँ एक भगवान्को ही देखती थीं, दूसरी कोई वस्तु ही नहीं, तब कौन किसमें व्यापक हो!

इसप्रकार श्रीकृष्णके दिव्य प्रेममें डूबी हुई गोपियोंके चरण-पङ्कज-परागको बार-बार नमस्कार करके अब आगे बढ़ना है।

गोपी-प्रेम

गोपी-प्रेममें रागका अभाव नहीं है, परन्तु वह राग सब जगहसे सिमटकर, भुक्ति और मुक्तिके दुर्गम प्रलोभन-पर्वतोंको लाँघकर केवल श्रीकृष्णमें अर्पण हो गया है। गोपियोंके मन-प्राण सब कुछ श्रीकृष्णके हैं। इहलोक और परलोकमें गोपियाँ श्रीकृष्णके सिवा अन्य किसीको भी नहीं जानतीं। उनका जीवन केवल श्रीकृष्णसुखके लिये है; उनका जागना-सोना, खाना-पीना, चलना-फिरना, शृङ्गार-सजा करना, कबरी बाँधना, गीत गाना, बातचीत करना, सब श्रीकृष्णको सुख पहुँचानेके लिये है; श्रीकृष्णको सुखी देखकर ही सम्पूर्ण कामनाओंसे सर्वथा शून्य उन गोपियोंको अपार सुख होता है। भगवान्ने स्वयं कहा है—

निजाङ्गमपि या गोप्यो ममेति समुपासते।
ताभ्यः परं न मे पार्थ! निगूढप्रेमभाजनम्॥

'हे अर्जुन! गोपियाँ अपने शरीरकी रक्षा मेरी सेवाके लिये ही करती हैं। गोपियोंको छोड़कर मेरा निगूढ प्रेमपात्र और कोई नहीं है।'

यहाँ यह प्रश्न होता है कि सुखसमुद्र, विज्ञानानन्दघन भगवान्को सुख पहुँचाना कैसा, क्या गोपियोंके द्वारा ही भगवान्को सुख मिलता है? भगवान् क्या स्वयं सुख-संदोह नहीं हैं? हैं क्यों नहीं, शक्तिमान् भगवान्की ही ह्लादिनी शक्ति तो श्रीराधिकाजी हैं; वे इस शक्तिको अपनी वंशी-ध्वनिद्वारा सदा अपनी ओर खींचते रहते हैं, भगवान्की शक्ति स्वाभाविक ही अपनी सारी अनुगामिनी अंगशक्तियोंसहित सदा-सर्वदा भगवान्की ओर खिंचती रहती है और भगवान् उस आह्लादको पाकर पुनः उसे उन्हीं शक्तियोंको—प्रेमी भक्तोंको बाँट देते हैं। भक्त भगवान्की बाँसुरीकी ध्वनि—भगवान्का आवाहन सुनकर, घर-द्वारकी सुधि भुलाकर, प्रमत्त होकर, अपना सर्वस्व न्योछावरकर, भगवान्को सुखी करनेके लिये दौड़ता है। भगवान् उसकी दी हुई सुखकी भेंटको स्वीकार करते हैं और फिर उसीको लौटा देते हैं। दर्पणमें अपनी शोभा भरकर दर्पणको शोभायुक्त बनानेवाला पुरुष उस शोभाको स्वयं ही वापस पा जाता है और वह सुख लौटकर उसीको मिल जाता है। इसी प्रकार परम सुखसागर भगवान् गोपियोंके सुखकी भेंटको स्वीकारकर, उनकी इस कामनाको, कि श्रीकृष्ण हमें देखकर, हमारी सेवा स्वीकारकर, हमारे साथ खेलकर सुखी हों, पूरी कर देते हैं। भगवान् सुखी होते हैं और वह सुख अपरिमितरूपमें बढ़ा करके उन्हींको दे देते हैं। गोपियोंके प्रेमकी यही विशेषता है कि गोपियोंको निज सुखकी कामना रत्तीभर भी नहीं है। उन्हें अपने सुखके लिये कल्पना ही नहीं होती। वे तो अपने द्वारा श्रीकृष्णको सुखी हुआ देखकर ही दिन-रात सुख-समुद्रमें डूबी रहती हैं। गोपियोंका प्रेम काम-कालिमाशून्य है, वह निर्मल भास्कर है, सर्वथा दिव्य है, अलौकिक है! श्रीचैतन्यचरितामृतमें 'काम' और 'प्रेम' का भेद बतलाते हुए कहा है—

कामेर तात्पर्य निज संभोग केवल,
कृष्ण-सुख तात्पर्य प्रेम तो प्रबल।
लोक-धर्म, वेद-धर्म, देह-धर्म, कर्म,
लज्जा, धैर्य, देह-सुख आत्म-सुख मर्म॥
सर्व त्याग करये, करे कृष्णेर भजन,
कृष्ण-सुख-हेतु करे प्रेमेर सेवन।
अतएव काम-प्रेमे बहुत अन्तर,
काम अन्धतम, प्रेम निर्मल भास्कर॥

काम और प्रेममें बड़ा ही अन्तर है, हम विषयविमोहित जीव कामको ही प्रेम मानकर पाप-पङ्कमें फँस

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जाते हैं। काम जहर मिला हुआ मधु है, प्रेम दिव्य स्वर्गीय सुधा है। काम थोड़ी ही देरमें दुःखके रूपमें बदल जाता है, प्रेमकी प्रत्येक कसकमें ही सुखसुधाका स्वाद मिलता है। काममें इन्द्रिय-तृप्ति—इन्द्रियचरितार्थता है, प्रेममें तन्मयता, प्रियतम-सुखकी नित्य प्रबल आकांक्षा है। काममें इन्द्रिय-तृप्ति सुखरूप दीखनेपर भी परिणाममें दुःखरूप है; प्रेम सदा अतृप्त होनेपर भी नित्य परम सुखरूप है। काम खण्ड है, प्रेम अखण्ड है। काम क्षयशील है, प्रेम नित्य वर्धनशील है। काममें विषयतृष्णा है, प्रेममें विषयविस्मरण है। कामका लक्ष्य विषय है, आत्मतृप्ति है; प्रेमका विषय पूर्ण त्याग है और चरम आत्मविस्मृति है।

यथार्थ प्रेमसे ही कामका नाश हो जाता है। यद्यपि प्रेमी अपने प्रेमास्पदको सुख पहुँचानेकी इच्छाको कामना ही मानता है और समस्त इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि एकमात्र प्रेममुखी होनेसे उसे कामना ही कहते हैं; परन्तु वह शुद्ध प्रेम यथार्थमें काम नहीं है। गौतमीय तन्त्रमें कहा है—

प्रेमैव गोपरामाणां काम इत्यगमत् प्रथाम्।
इत्युद्धवादयोऽप्येतं वाञ्छन्ति भगवत्प्रियाः॥

'गोपियोंके प्रेमका नाम काम होनेपर भी वह असलमें काम नहीं, किन्तु शुद्ध प्रेम है। महान् भगवद्भक्त उद्धव-सरीखे महात्मा इसी 'काम' नामक प्रेमकी अभिलाषा करते हैं।' क्योंकि गोपियोंमें निजेन्द्रियसुखकी इच्छा है ही नहीं। वे तो श्रीभगवान्‌को भगवान् समझकर ही अपने सकल अङ्गोंको अर्पणकर उन्हें सुखी करना चाहती हैं। श्रीचैतन्य-चरितामृतमें इन विषयासक्तिशून्य श्रीकृष्णगतप्राणा गोपियोंके सम्बन्धमें कहा है—

निजेन्द्रिय-सुख-हेतु कामेर तात्पर्य,
कृष्णसुख तात्पर्य गोपीभाववर्य।
निजेन्द्रिय-सुख-वाञ्छा नहे गोपिकार,
कृष्ण-सुख-हेतु करे संगम विहार॥
आत्म-सुख-दुःख गोपी ना करे विचार,
कृष्ण-सुख-हेतु करे सब व्यवहार।
कृष्ण बिना आर सब करि परित्याग,
कृष्ण-सुख-हेतु करे शुद्ध अनुराग॥

अपना तन, मन, धन, रूप, यौवन, लोक-परलोक—सबको श्रीकृष्णकी सुखसामग्री समझकर श्रीकृष्ण-सुखके लिये शुद्ध अनुराग करना ही पवित्र गोपीभाव है। इस गोपीभावमें मधुर रसकी प्रधानता है। रस पाँच हैं—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य। लौकिक और ईश्वरीय—दिव्य-भेदसे ये पाँचों रस दो प्रकारके हैं, अर्थात् लौकिक प्रेम भी उपर्युक्त पाँच प्रकारका है और दिव्य प्रेम भी पाँच प्रकारका है। परन्तु इन पाँचोंमें मधुर रस—कान्ताप्रेम सबसे ऊँचा है। क्योंकि इसमें शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य—ये चारों ही रस विद्यमान हैं। यह अधिक गुणसम्पन्न होनेसे अधिक स्वादिष्ठ है, इसीलिये इसका नाम 'मधुर' है। इसी-प्रकार दिव्य प्रेममें भी कान्ताप्रेम—मधुर रस ही सर्वप्रधान है। शान्त और दास्य-रसमें भगवान् ऐश्वर्यशाली हैं, मैं दीन हूँ; भगवान् स्वामी हैं, मैं सेवक हूँ—ऐसा भाव रहता है। इसमें कुछ अलगाव-सा है, भय है और संकोच है; परन्तु सख्य, वात्सल्य और माधुर्यमें क्रमशः भगवान् अधिकाधिक निज जन हैं, अपने प्यारे हैं, प्रियतम हैं; इनमें भगवान् ऐश्वर्यको भुलाकर, विभूतिको छिपाकर सखा, पुत्र या कान्तरूपसे भक्तके सामने सदा प्रकट रहते हैं, इन रसोंमें प्रार्थना-कामना है ही नहीं। अपने निज-जनसे प्रार्थना कैसी? उसका सब कुछ अपना ही तो है! इनमें भी कान्तभाव सर्वप्रधान है। कान्तभावमें पिछले दोनों रसोंका—सख्य और वात्सल्यका पूर्ण समावेश है। यहाँ भगवान्‌की सेवा खूब होती है, इतनी होती है कि सेवा करनेवाला भक्त कभी थकता ही नहीं; क्योंकि यह मालिककी सेवा नहीं है, प्रियतमकी सेवा है। प्रियतमके सुखी होनेमें ही अपार सुख है, जितना सुख पहुँचे, उतना ही थोड़ा; क्योंकि प्रियतम-को जितना अधिक सुख पहुँचता है, उतना ही अपार सुख-का अनुभव प्रियतमाको होता है।

यह कान्ताभाव दो प्रकारका है—स्वकीया और परकीया। लौकिक कान्ताभावमें परकीया-भाव त्याज्य है, घृणित है, क्योंकि उसमें अङ्ग-सङ्गरूप कामवासना रहती है और प्रेमास्पद 'जार-मनुष्य' होता है। परन्तु दिव्य कान्ताभावमें—परमेश्वरके प्रति होनेवाले कान्ताभावमें परकीया-भाव ग्राह्य है, वह स्वकीयासे श्रेष्ठ है। क्योंकि इसमें कहीं अङ्ग-सङ्ग या इन्द्रियतृप्तिकी आकांक्षा नहीं है। प्रेमास्पद पुरुष जार नहीं है, स्वयं 'विश्वात्मा भगवान्' हैं, पति-पुत्रोंके और अपने सबके आत्मा, परमात्मा हैं। इसीलिये गोपी-प्रेममें परकीया-भाव माना जाता है। यद्यपि स्वकीया पतिव्रता स्त्री अपना नाम, गोत्र, जीवन, धन, धर्म सभी पतिके अर्पणकर प्रत्येक चेष्टा पतिके लिये ही करती है, तथापि परकीया-भावमें तीन बातें विशेष होती हैं। प्रियतमका निरन्तर चिन्तन, उससे मिलनेकी अतृप्त उत्कण्ठा और प्रियतममें दोषदृष्टिका सर्वथा अभाव। स्वकीयामें सदा एक ही घरमें एक साथ निवास होनेके कारण ये तीनों ही बातें नहीं होतीं। गोपियाँ भगवान्‌को नित्य देखती थीं; परन्तु परकीया-भावकी प्रधानतासे क्षणभरका वियोग भी उनके लिये असह्य हो जाता था, आँखोंपर पलक बनानेके लिये वे विधाताको

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कोसती थीं; क्योंकि पलक न होते तो आँखें सदा खुली ही रहतीं। गोपियाँ कहती हैं—

अटति यद्भवानह्नि काननं
त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखञ्च ते
जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद्दृशाम्॥
(श्रीमद्भा० १०। ३१। १५)

'जब आप दिनके समय वनमें विचरते हैं तब आपको न देख सकनेके कारण हमारे लिये एक-एक पल युगके समान बीतता है। फिर सन्ध्याके समय जब वनसे लौटते समय हम घुँघुराली अलकावलियोंसे युक्त आपके श्रीमुखको देखती हैं, तब हमें आँखोंमें पलक बनानेवाले ब्रह्मा मूर्ख प्रतीत होने लगते हैं। अर्थात् एक पलक भी आपको देखे बिना हमें कल नहीं पड़ती।'

भगवान्‌का नित्य चिन्तन करना, पलभरके अदर्शनमें भी महान् विरह-वेदनाका अनुभव करना, और सर्वतो-भावसे दोषदर्शनरहित होकर आत्मसमर्पण कर चुकना गोपियोंका स्वभाव था। इसीसे वे उस प्रियतम-सेवाके सामने किसी बातको कुछ भी नहीं समझती थीं। लोक-वेद सबकी मर्यादाको छोड़कर वे कृष्णानुरागिणी बन गयी थीं। भोग और मोक्ष दोनों ही उनके लिये सर्वथा तुच्छ और त्याज्य थे। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः।
ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान् बिभर्म्यहम्॥
(श्रीमद्भा० १०। ४६। ४)

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत्॥
(श्रीमद्भा० ११। १४। १४)

'हे उद्धव! गोपियोंने अपने मन और प्राण मुझमें अर्पण कर दिये हैं। मेरे लिये अपने सारे शारीरिक सम्बन्धोंको और लोकसुखके साधनोंको त्यागकर वे मुझमें ही अनुरक्त हो रही हैं। मैं ही उनके सुख और जीवनका आधार हूँ। इसप्रकार अपने आत्माको मुझमें अर्पित करनेवाला भक्त मुझको छोड़कर ब्रह्माके पद, इन्द्रके पद, चक्रवर्तीके पद, पाताल आदिके राज्य और योगके आठों ऐश्वर्य आदिकी तो बात ही क्या है, अपुनरावर्ती मोक्ष भी नहीं चाहता।' ऐसे भक्तोंके लिये भगवान् क्या कहते हैं, सुनिये—

अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः॥
(श्रीमद्भा० ११। १४। १६)

'उनकी चरणरजसे अपनेको पवित्र करनेके लिये मैं सदा उनके पीछे-पीछे घूमा करता हूँ।' इसी कारण गीत-गोविन्दकारने 'देहि मे पदपल्लवमुदारम्' कहकर भगवान्‌के द्वारा श्रीराधाजीके पदकमलकी चाह करायी है। और इसी आधारपर रसिक रसखानजीने कहा है—

ब्रह्म मैं ढूँढ्यो पुरानन गानन, बेद-रिचा सुनि चौगुने चायन।
देख्यो सुन्यो कबहूँ न कितै वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन॥
टेरत हेरत हारि पर्‌यो, रसखानि बतायो न लोग-लुगायन।
देख्यो, दुर्‌यो वह कुंज-कुटीरमें बैठ्यो पलोटत राधिका-पायन॥

यद्यपि भक्त कभी यह चाहता नहीं कि भगवान् प्रियतम मेरे पैर दाबे, परन्तु वहाँ तो सर्वथा ऐक्य होता है। कोई छोटा-बड़ा रहता ही नहीं। महाभारतमें सखा-भक्त अर्जुनके साथ भगवान् श्रीकृष्णके व्यवहारका वर्णन सञ्जयने कौरवोंकी राजसभामें किया है। अर्जुनसे ही जब वैसा व्यवहार था तब गोपियोंके समान भक्तोंकी तो बात ही निराली है। गोपियोंका परकीया-भाव दिव्य है। लौकिक विषय-विमोहित मनवाले मनुष्य इसका यथार्थ भाव नहीं समझकर अपने वृत्तिदोषसे दोषारोपण कर बैठते हैं। असलमें व्रजगोपिकाओंका प्रेम अत्यन्त उच्चतम अवस्थापर स्थित है। मधुर रस उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ प्रेम, स्नेह, मान, राग, अनुराग और भावपर्यन्त पहुँच जाता है। भावकी पराकाष्ठा ही महाभाव है। यह महाभाव केवल प्रातःस्मरणीया व्रजदेवियोंमें ही था। श्रीभगवान्‌ने प्रेमिक भक्तोंकी प्रेमकामना पूर्ण करनेके लिये व्रजमण्डलमें इस सच्चिदानन्दमयी दिव्य लीलाको प्रकट किया था। गोपी-प्रेमकी यह पवित्र लीला भगवान्‌ने रमणाभिलाषासे अथवा गोपियोंकी कामवासनातृप्तिके लिये नहीं की थी; न तो भगवान्‌में रमणाभिलाषा थी और न गोपियोंमें कामवासना ही। यह तो की गयी थी जगत्‌के जीवोंके कामनाशके लिये! रासलीला-प्रकरणको समाप्त करते हुए मुनिवर श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद्यः।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥
(श्रीमद्भा० १०। ३३। ४०)

'जो धीर पुरुष व्रजबालाओंके साथ भगवान् विष्णुके इस रासविहारकी कथाको श्रद्धापूर्वक सुने या पढ़ेगा वह शीघ्र ही भगवान्‌की पराभक्तिको प्राप्तकर हृदयके रोगरूप काम-विकारसे छूट जायगा।'

जिस लीलाके भलीभाँति समझकर श्रद्धापूर्वक सुनने-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पढ़नेसे ही हृद्रोग—कामविकार नष्ट होकर पराभक्ति प्राप्त होती है, उस लीलाके करनेवाले नायक श्रीभगवान् और उनकी प्रेयसी नायिका गोपिकाओंमें कामविकार देखना या कलुषित मानवी व्यभिचारकी कल्पना करना कामविमोहित विषयासक्त मनुष्योंके बुद्धिदोषका ही परिणाम है। व्रजलीला परम पवित्र है, इस बातको प्रेमीजन भलीभाँति जानते हैं और इसीसे नारद-सदृश देवर्षि और शिव-सदृश महान् देव उसमें सम्मिलित होनेकी वाञ्छासे गोपीभावमें दीक्षित होते हैं। मृत्युकी बाट देखनेवाले राजा परीक्षितको महाज्ञानी शुकदेवजी इसीलिये व्रजलीला सुनाते हैं, जिससे सहज ही पराभक्तिको प्राप्तकर परीक्षित भगवान्‌के असली तत्त्व-को जान लें और भगवान्‌को प्राप्त हो जायँ। भगवान् श्रीकृष्णने ज्ञाननिष्ठाके नामसे पराभक्तिप्राप्तिका क्रम (और उसका फल) बतलाते हुए कहा है—

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन् विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च॥
विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः॥
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥
ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥
भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥
(गीता १८। ५१–५५)

अर्थात् जब मनुष्य विशुद्ध बुद्धिसे युक्त, एकान्तसेवी, मिताहारी, मन-वाणी-शरीरको जीता हुआ, सदा वैराग्यको धारण करनेवाला, निरन्तर ध्यानपरायण, दृढ़ धारणासे अन्तःकरणको वशमें करके शब्द, स्पर्शादि विषयोंको त्यागकर, राग-द्वेषको नष्ट करके, अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध और परिग्रहको छोड़कर ममतारहित, शान्त हो जाता है, तभी वह ब्रह्मप्राप्तिके योग्य होता है; फिर ब्रह्मभूत होकर सदा प्रसन्न-चित्त रहनेवाला वह न किसी वस्तुके लिये शोक करता है और न किसी वस्तुकी आकांक्षा ही करता है और सब प्राणियोंमें समभावसे भगवान्‌को देखता है, तब उसे मेरी पराभक्ति प्राप्त होती है। उस पराभक्तिके द्वारा मेरे तत्त्वको भलीभाँति जानता है कि मैं किस प्रभाववाला हूँ। इसी पराभक्तिसे मुझको तत्त्वसे जानकर भक्त तदनन्तर ही मुझमें मिल जाता है।

ध्यानपूर्वक देखा जाय तो गोपियोंमें उपर्युक्त सभी बातें पूर्णरूपसे थीं, विशुद्ध बुद्धिका इससे बढ़कर क्या सबूत हो सकता है कि वह सदा भगवान् श्रीकृष्णमें ही लगी रहे। श्रीकृष्णमिलनके लिये एकान्तसेवन शरीरसे ही नहीं, मनसे भी एकान्त रहना, खान-पान भूल जाना, मन-वाणी-शरीरको विषयोंसे खींचकर एकमात्र प्रियतम श्रीकृष्णमें लगाये रखना, घर-परिवार आदि किसी भी भोगपदार्थमें राग न रखना, निरन्तर प्रियतम श्रीकृष्णके ध्यानमें प्रमत्त रहना, मनमें श्रीकृष्णकी दृढ़ धारणासे अन्तःकरणको श्रीकृष्णमय बनाये रखना, श्रीकृष्णविषयक पदार्थोंके सिवा अन्य सभी शब्द-स्पर्शादि विषयोंको त्याग देना, जगत्‌की दृष्टिसे किसी भी पदार्थमें राग-द्वेष न रखना, अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध और परिग्रह सबका श्रीकृष्णमें उत्सर्ग कर देना; घर-द्वार ही नहीं, स्वर्ग और मोक्षमें भी ममत्व न रखना; चित्तको सदा श्रीकृष्णके स्वरूपमें समाहित रखकर जगत्‌के विषयोंसे शान्त रखना और श्रीकृष्णको ब्रह्मरूपसे पहचानकर उनसे मिलनेके लिये व्याकुल होना गोपियोंके चरित्रमें पद-पदपर प्राप्त होता है। इसके सिवा उनका नित्यानन्दमयी होकर सांसारिक पदार्थोंकी प्राप्ति-अप्राप्तिमें हर्ष-शोकसे रहित होना और सर्वत्र श्रीकृष्णको सब प्राणियोंमें देखना भी प्रसिद्ध ही है। साधकोंको दीर्घकालके महान् साधनसे प्राप्त होनेवाली ये बातें गोपियोंमें स्वाभाविक थीं, इसीसे भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें अपना रहस्य खोलकर बतला दिया और अपने स्वरूपका साक्षात् दर्शन कराकर उनके साथ दिव्य क्रीड़ा करके उन्हें श्रीकृष्णरूप बना लिया। ज्ञानियोंसे विशेषता यह रही कि इसमें सारी बातें केवल विचारके आधारपर न रहकर प्रत्यक्ष इन्द्रियगम्य हो गयीं। साक्षात् परब्रह्म महान् सुन्दर द्विभुज मुरली-मनोहररूपधारी बनकर स्वयं भक्तोंके साथ नाचे। अपनी रूपमाधुरीसे भक्तोंके चित्तको चुराकर अपनी मुरली-ध्वनिसे प्रेमी भक्तोंको खींचकर अपने पास बुला लिया और उन्हें सब प्रकार कृतार्थ किया। एक महात्माने दिव्यदृष्टिसे देखकर सखी-भावमें प्रवेश हो कहा था—

शृणु सखि कौतुकमेकं नन्दनिकेताङ्गणे मया दृष्टः।
गोधूलिधूसराङ्गो नृत्यद्वेदान्तसिद्धान्तः॥

'हे सखि! एक कौतुककी बात सुन। मैंने आज बाबा नन्दके आँगनमें वेदान्तके चरम सिद्धान्त ब्रह्मको गोधूलि-धूसरिताङ्ग हुए नाचते देखा।'

ग्यानी बोध सुरूप है होहिं ब्रह्ममें लीन।
निरखत पै लीला मधुर प्रेमी प्रेम प्रबीन॥
ग्यानी ढिग गंभीर हरि सच्चित् ब्रह्मानंद।
प्रेमी सँग खेलत सदा चंचल प्रेमानंद॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ग्यानी ब्रह्मानंद सों रहत सदा भरपूर।
पै प्रेमी निरखत सुखद दुर्लभ हरिको नूर॥
प्रेमी भाग्य सराहि मुनि ग्यानी बिमल बिबेक।
चहैं सुदुरलभ प्रेमपद तजि निजपदकी टेक॥

रूपमाधुरी

भगवान्‌की उस रूपमाधुरीका वर्णन कौन कर सकता है? वे एक बार जिसकी ओर प्रेमकी नज़रसे देख लेते, उसीपर प्रेमसुधा बरसाकर उसे अमर कर देते, उसकी सारी विषयासक्तिको नष्टकर अपना प्रेमी बना लेते। पण्डितराज जगन्नाथ कहते हैं—

रे चेतः कथयामि ते हितमिदं वृन्दावने चारयन्
वृन्दं कोऽपि गवां नवाम्बुदनिभो बन्धुर्न कार्यस्त्वया।
सौन्दर्यामृतमुद्गिरद्भिरभितः सम्मोह्य मन्दस्मितै-
रेष त्वां तव वल्लभांश्च विषयानाशु क्षयं नेष्यति॥

'रे चित्त! तेरे हितके लिये तुझे सावधान किये देता हूँ। कहीं तू उस वृन्दावनमें गाय चरानेवाले, नवीन नीलमेघके समान कान्तिवाले छैलको अपना बन्धु न बना लेना; वह सौन्दर्यरूप अमृत बरसानेवाली अपनी मन्द मुसकानसे तुझे मोहित करके तेरे प्रिय समस्त विषयोंको तुरन्त नष्ट कर देगा!' अद्वैतसिद्धिकार मधुसूदनस्वामीजीको भी उसकी रूपछटाके फन्देमें पड़कर स्वाराज्यसिंहासनसे च्युत होना पड़ा। वे कहते हैं—

अद्वैतवीथीपथिकैरुपास्याः
स्वाराज्यसिंहासनलब्धदीक्षाः।
शठेन केनापि वयं हठेन
दासीकृता गोपवधूविटेन॥

'अद्वैतमार्गके अनुयायियोंद्वारा पूज्य तथा स्वाराज्यरूपी सिंहासनपर प्रतिष्ठित होनेका अधिकार प्राप्त किये हुए हमें गोपियोंके पीछे-पीछे फिरनेवाले किसी धूर्तने हठपूर्वक (जबरदस्ती, इच्छा न रहनेपर भी) अपने चरणोंका गुलाम बना लिया।' भक्त लीलाशुकजी उस बालकृष्णकी छविके जादूसे डरकर सबको सावधान करते हुए कहते हैं—

मा यात पान्थाः पथि भीमरथ्या
दिगम्बरः कोऽपि तमालनीलः।
विन्यस्तहस्तोऽपि नितम्बबिम्बे
धूतः समाकर्षति चित्तवित्तम्॥

'अरे पथिको! उस रास्ते न जाना। वह गली बड़ी भयावनी है। वहाँ अपने नितम्बबिम्बपर हाथ रक्खे जो तमालके तुल्य नीले रंगका एक नंग-धड़ंग बालक खड़ा है वह केवल देखनेमात्रका ही अवधूत है, असलमें तो वह अपने पास होकर निकलनेवाले किसी भी मुसाफिरका मनरूपी धन लूटे बिना नहीं रहता।'

व्रजरसरसीले साह कुन्दनलालजी श्रीललितकिशोरीजी बने हुए कहते हैं—

नैन-चकोर मुख-चन्दहूपै वारि डारौं,
वारि डारौं चित्तहिं मनमोहन चितचोरपै।
प्रानहूकों वारि डारौं हँसन दसन लाल,
हेरन कुटिलता औ लोचनकी कोरपै॥
वारि डारौं मनहिं सुअंग अंग स्यामा स्याम,
महल मिलाप रसरासकी झकोरपै।
अतिहि सुघर बर सोहत त्रिभंगी लाल,
सरबस वारौं वा ग्रीवाकी मरोरपै॥

सर्वस्व वार देनेपर भी वह फिर अपनी तिरछी चितवनकी बरछीसे प्रेमी भक्तको घायल करता है। और बार-बार उसकी ओर झाँक-झाँककर, हँस-हँसकर घावपर नमक बुरकाता रहता है—

देखो री! यह नंदका छोरा बरछी मारे जाता है।
बरछी-सी तिरछी चितवनकी पैनी छुरी चलाता है॥
हमको घायल देख बेदरदी मंद-मंद मुसकाता है।
ललितकिसोरी जखम जिगरपर नौनपुरी बुरकाता है॥

श्यामकी तिरछी नजरसे घायल प्रेमीका यह जख्मेजिगर कभी सूख ही नहीं सकता, वह सदा हरा रहता है और उसकी पल-पलकी कसक ब्रह्मानन्दसे भी बढ़कर आनन्द दिया करती है। गोपियोंके हृदयमें यह घाव बहुत गहरा था। बड़े भाग्यसे यह दिनों-दिन बढ़नेवाला घाव होता है। और स्वयं साँवरेके वैद्य बनकर आनेपर भी यह अच्छा नहीं होता। श्यामसुन्दरके दर्शनसे ही यह बढ़ जाता है। और अदर्शन कभी सुहाता नहीं। एकमात्र वही वैद्य हैं; परन्तु वैद्य घाव बढ़ाते हैं, घटाते नहीं। इस घावके बढ़नेमें ही सुख है, इसीसे घावसे कराहना और बार-बार घाव बढ़ानेका कार्य करना, यही बस प्रेमियोंके जीवनका नित्य परम सुखदायी दुःख हो जाता है।

मुरली और रास

यही हाल उसकी मुरलीका है। जब वह बजती है तब औरोंकी तो बात ही क्या है, निर्बीज समाधिमें स्थित योगियोंकी समाधि भी टूट जाती है।

वह वंशीध्वनि निकलते ही जड़को चेतन और चेतनको जड़ बना देती है। इसीसे एक बार एक गोपीने व्यङ्गसे मुरलीकी महिमा गाते हुए कहा था—

मुरहर! रन्धनसमये मा कुरु मुरलीरवं मधुरम्।
नीरसमेधो रसतां कृशानुरप्येति कृशतरताम्॥

'हे मुरारे! अरे, मेरे रसोई बनाते समय तो तुम कृपाकर अपनी मुरलीकी मधुर तान न छेड़ा करो, क्योंकि उस

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ध्वनिके आते ही मेरी सूखी लकड़ियाँ हरी हो चूने लगती हैं और आग बुझ जाती है, जिससे रसोई भी नहीं हो पाती।' दूरसे मुरलीकी टेर सुनकर एक सखी दूसरीसे कहती है—

सुनती हौ कहा भजि जाहु घरै बिंध जाओगी नैनके बाननमें।
यह बंसी 'निवाज' भरी बिषसों बगरावति है बिष प्राननमें॥
अब ही सुधि भूलिहौ भोरी भटू भँवरो जब मीठी-सी ताननमें।
कुलकानि जो आपनि राखि चहौ दे रहौ अँगुरी दोउ काननमें॥

इस वंशीकी और रासकी कुछ आलोचना किये बिना गोपी-प्रेमकी चर्चा अधूरी रह जाती है। इसलिये कुछ इन विषयोंपर भी विचार करना है।

श्रीकृष्णमिलनके लिये कात्यायनीकी पूजा करनेवाली गोपियोंको वर देनेके दिन भगवान्‌ने उनके वस्त्र हरणकर उनके निर्मल और अनन्य प्रेमकी परीक्षा की। उनका सारा भेदज्ञान हरण करके उन्हें निर्मल प्रेमपथकी अधिकारिणी समझकर मिलनका वरदान दिया। वस्त्रहरणलीलामें पाप देखना पापबुद्धिका परिणाम है। जीवात्माका परमात्माके सामने कोई पर्दा नहीं रह सकता। पर्दा मायामें ही है। सबके अन्तरात्मा भगवान्‌से कौन जीवात्मा अपने अङ्गोंको छिपानेका भाव रख सकता है? वह जबतक छिपाता है तबतक परमात्माको परमात्मा न समझकर अपने पृथक्त्वका अभिमान बनाये रखता है। चीरहरणसे गोपियोंका यह मोह भङ्ग हुआ। उन्होंने श्रीकृष्णको परमात्मा समझा और जीव-भावसे वे अभिमानके पर्देको तोड़कर प्रभुके सामने हो गयीं।

इसके कुछ दिनों बाद शरद्‌पूर्णिमा आयी। भगवान्‌के मिलनका दिन आया। शारदीया रजनी, प्रफुल्ल मल्लिका, पूर्ण सुधांशुकी सुधामयी मधुर किरणों आदि उद्दीपन भावोंसे गोपियोंके हृदयमें एक अलक्ष्य आकांक्षा जाग उठी, मानों उनका हृदय किसी वस्तुको चाहने लगा! यह थी श्रीकृष्णमिलनकी कामना।

बस, इसी समय श्रीकृष्णकी मोहन मुरली बज उठी। शारद सुधाकरकी ज्योत्स्नामें, नील यमुनाके निर्मल सैकतमें, मन्दानिलसे आन्दोलित माधवी कुञ्जमें आत्माराम, पूर्णकाम, योगेश्वरेश्वर, नित्य नवनटवर मोहनकी मधुर मुरलीसे विश्व-विमोहन प्रेमके आवाहनका अनङ्गवर्धक, आनन्ददायक सङ्गीत प्रारम्भ हो गया। श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनं
व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः।
आजग्मुरन्योन्यमलक्षितोद्यमाः
स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः॥
(श्रीमद्भा० १०। २९। ४)

'उस अनङ्गवर्धन (श्रीकृष्ण-मिलन-कामनाको बढ़ाने-वाले) गानके कानोंमें पड़ते ही समस्त व्रज-वनिताओंका मन श्रीकृष्णमय हो गया। वे उसी समय तुरन्त सब कुछ छोड़कर अपने प्रियतम श्रीकृष्णके पास चली गयीं। उतावलीके कारण किसीने किसीको साथ लेनेका भी कोई प्रयत्न नहीं किया। (सब अलग-अलग ही, जो जिस अवस्थामें थी, उसी अवस्थामें सब कुछ भूलकर दौड़ पड़ीं।) उस समय वे इतने वेगसे चलीं कि सारे रास्ते उनके कानोंके कमनीय कुण्डल हिलते रहे।'

अनङ्गके बढ़ जानेपर वे अपने-अपने पतियोंके पास न जाकर श्रीकृष्णके पास क्यों गयीं? इसमें कारण है। उनका अनङ्ग लौकिक काम नहीं था। श्रीकृष्णमिलनकी योगिजन-दुर्लभ प्रबल कामना थी, जो किसी अङ्गवाली न होनेपर भी बड़ी प्रबल थी और जिसने उनको बरबस श्रीकृष्णकी ओर दौड़नेको बाध्य कर दिया था। वंशी-ध्वनि अखण्डानन्द प्रदान करनेके लिये भगवान्‌का निमन्त्रण था, उसे वे कैसे टाल सकती थीं। वंशी कैसे बजी, उसकी ध्वनि कहाँतक गयी?

रुन्धन्नम्बुभृतश्चमत्कृतिपरं कुर्वन् मुहुस्तुम्बुरुं
ध्यानादन्तरयन् सनन्दनमुखान् विस्मापयन् वेधसम्।
औत्सुक्यावलिभिर्बलिं चटुलयन् भोगीन्द्रमाघूर्णयन्
भिन्दन्नण्डकटाहभित्तिमभितो बभ्राम वंशीध्वनिः॥

'वंशीका वह पवित्र सङ्गीत अपनी सुधामयी स्वरलहरीसे समस्त वृन्दावनको आप्लावित करता हुआ, आकाशमें पहुँचकर जलदसमूहको स्तम्भित करता हुआ, स्वर्गमें देव-गायक तुम्बुरुको पुनः-पुनः चकित करता हुआ, ब्रह्मलोकमें सनन्दनादि महामुनियोंकी निर्गुण ब्रह्मकी निर्बीज समाधिको भङ्ग करता हुआ, स्वयं प्रजापति ब्रह्माको विस्मित करता हुआ, यों ऊर्ध्वलोकमें अपनी विजयपताका फहराकर नीचे पातालकी ओर चला और वहाँ राजा बलिको चौंकाकर नागराज अनन्त शेषनागके सहस्र फणोंको कँपाकर, अखिल ब्रह्माण्डकटाहको भेदकर श्रीकृष्णका वह वंशीसङ्गीत सब ओर फैल गया।'

परन्तु इतनेपर भी इस आवाहन-सङ्गीतको सुना भक्तोंने ही, और वे उसी समय दौड़ चले। अब भी श्यामकी यह वंशी वैसे ही बजती है और प्रेमी भक्त अब भी उसे सुनते हैं। अस्तु। भक्त-प्रवर श्रीनन्ददासजी कहते हैं—

सुनत चलीं व्रज-बधू गीत-धुनिको मारग गहि।
भवन भीत द्रुम कुंज पुंज कितहूँ अटकी नहिं॥
नाद अमृतको पंथ रँगीलो सुच्छम भारी।
तेहि मग व्रजतिय चलैं, आन कोउ नहिं अधिकारी॥

वे मुरलीकी ध्वनिको लक्ष्य करके उन्मत्तकी भाँति चलीं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और भगवान् श्रीकृष्णके चरण-प्रान्तोंमें जा पहुँचीं। यहाँ फिर प्रेम-परीक्षा होती है। खास करके दो बातें देखनी हैं। (१) गोपियोंका किसी सांसारिक विषयमें मन आसक्त है या नहीं और (२) वे श्रीकृष्णको साक्षात् भगवान् समझती हैं या नहीं। इसीलिये पहले-पहल भगवान्ने उनसे कहा—

स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः।
व्रजस्यानामयं कच्चिद्ब्रूतागमनकारणम्॥

(श्रीमद्भा० १०। २९। १८)

'हे महाभागाओ! तुम्हारा स्वागत है। कहो, मैं तुम्हारा क्या प्रिय कार्य करूँ? व्रजमें सब कुशल तो है, इस समय अपने यहाँ आनेका कारण तो बताओ?'

गोपियाँ भगवान्की ऐसी वाणी सुनकर मुस्करा दीं, कुछ बोलीं नहीं। भगवान् फिर बोले—

रजन्येषा घोररूपा घोरसत्त्वनिषेविता।
प्रतियात व्रजं नेह स्थेयं स्त्रीभिः सुमध्यमाः॥

'हे सुन्दरियो! देखो, रात्रि बड़ी घोर है। इस समय बहुत-से भयानक जीव इधर-उधर फिर रहे हैं। इसलिये तुमलोग तुरन्त व्रजको लौट जाओ। यहाँ स्त्रियोंका अधिक देर ठहरना ठीक नहीं है।'

गोपियोंने कुछ उत्तर नहीं दिया। भगवान् फिर बोले—

मातरः पितरः पुत्रा भ्रातरः पतयश्च वः।
विचिन्वन्ति ह्यपश्यन्तो मा कृध्वं बन्धुसाध्वसम्॥

'तुम्हें घरमें न देखकर तुम्हारे माता-पिता, पुत्र, भाई और पति आदि तुम्हें ढूँढ़ते होंगे। तुम यहाँ ठहरकर अपने घरवालोंको व्यर्थ घबराहटमें न डालो।'

यहाँ भगवान्ने सांसारिक अति निकटके सम्बन्धियोंकी बात याद दिलाकर यह जानना चाहा कि देखें गोपियोंके मनमें उनके प्रति मोह या उनसे भय है या नहीं। ये मायिक जगत्में हैं या ईश्वराभिमुखी हैं? परन्तु गोपियाँ इस परीक्षामें पास हो गयीं। ऋषिपत्नियाँ यहीं, इसी प्रसङ्गपर घर लौट गयी थीं। गोपियाँ कुछ नहीं बोलीं। उनके चित्तमें संसारकी आत्मीयताका कुछ भी मोह नहीं जाग्रत हुआ। वे भगवान् परमात्मा श्रीकृष्णके प्रेममें डूब रही थीं।

चाँदनी रातकी सुन्दर शोभा देखकर गोपियोंके मनोंमें श्रीकृष्णप्रेम जागा था, यह जाग्रति लौकिक थी या दिव्य? इसीको जाँचनेके लिये भगवान्ने फिर कहा—

दृष्टं वनं कुसुमितं राकेशकररञ्जितम्।
यमुनानिललीलैजत्तरुपल्लवशोभितम्॥
तद्यात मा चिरं गोष्ठं शुश्रूषध्वं पतीन् सतीः।
क्रन्दन्ति वत्सा बालाश्च तान् पाययत दुह्यत॥

'तुम रजनीशकी रश्मियोंसे रञ्जित और यमुनाजलके स्पर्शसे शीतल मन्द-मन्द पवनकी गतिसे हिलते हुए नवपल्लवोंसे सुशोभित एवं कुमुद-कुसुम-मण्डित, मनोहर इस वृन्दावनकी शोभा देख चुकीं। अब हे सतियो! देर न करो, तुरन्त ही व्रज लौट जाओ और अपने-अपने पतियों-की सेवा करो। देखो, बालक और तुम्हारी गायोंके बछड़े रो रहे होंगे, जाकर उन्हें दूध पिलाओ और गायें दुहो!'

सती स्त्रीके लिये पति-सेवासे बढ़कर और कौन-सा महत्त्वका कार्य हो सकता है? भगवान्ने 'सती' सम्बोधन करके पतियोंकी याद दिलायी। माताको पुत्र और ग्वालिनोंको गौ-बछड़े बड़े प्रिय होते हैं, उनका भी करुण शब्दोंमें स्मरण कराया। इनका मन पति-पुत्रोंमें है या सबसे विरक्त होकर केवल मुझ भगवान्में है—यह जाननेके लिये भगवान्ने इतनी बातें कहीं। गोपियाँ अब भी कुछ नहीं बोलीं। अबकी बार भगवान्ने अपने बाह्य सौन्दर्यकी महिमा दिखलाकर—यह जाननेके लिये कि ये केवल सौन्दर्य-पर ही मोहित हैं या मुझे ईश्वर समझकर आयी हैं, भगवान् बोले—

अथवा मदभिस्नेहाद्भवत्यो यन्त्रिताशयाः।
आगता ह्युपपन्नं वः प्रीयन्ते मयि जन्तवः॥

'अथवा यदि तुम मेरे स्नेहके कारण आसक्तचित्त होकर मुझे देखने आयी हो तो कोई दोषकी बात नहीं, क्योंकि मुझको देखकर सभी प्राणी प्रसन्न होते हैं। परन्तु—

भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मो ह्यमायया।
तद्बन्धूनाञ्च कल्याण्यः प्रजानाञ्चानुपोषणम्॥
दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा।
पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी॥
अस्वर्ग्यमयशस्यञ्च फल्गु कृच्छ्रं भयावहम्।
जुगुप्सितं च सर्वत्र औपपत्यं कुलस्त्रियाः॥

'हे कल्याणियो! पति और उसके बन्धुओंकी निष्कपट-भावसे सेवा करना तथा सन्तानका पालन-पोषण करना ही स्त्रियोंका परम धर्म है। जिन स्त्रियोंको शुभ गति पानेकी इच्छा हो वे अपने अपातकी पतिका किसी प्रकार भी त्याग न करें, चाहे वह बुरे स्वभाववाला, अभागी, वृद्ध, मूर्ख, रोगी या निर्धन ही क्यों न हो। कुल-स्त्रियोंके लिये उपपतिकी (जारकी) सेवा करना सर्वथा निन्दनीय है, इससे स्वर्गकी प्राप्ति नहीं होती, संसारमें अपकीर्ति होती है। यह अत्यन्त ही निन्दनीय और भयदायक कार्य है।'

भगवान्ने सब बातें खोलकर कह दीं। यदि मुझको मनुष्य मानकर कामाभिलाषासे आयी हो तो नरकगामिनी होओगी, संसारमें अयश होगा। क्योंकि यही वेदधर्म है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस उपदेशसे भी गोपियाँ नहीं हिलीं, तब भगवान्‌ने उन्हें जाँचनेके लिये फिर कहा—

श्रवणाद्दर्शनाद्ध्यानान्मयि भावोऽनुकीर्तनात्।
न तथा सन्निकर्षेण प्रतियात ततो गृहान्॥

(अच्छा, मुझमें कुछ महत्त्व समझकर आयी हो तो भी) 'मेरे गुण-श्रवण, दर्शन, ध्यान और कीर्तनसे मुझमें जैसा प्रेम होता है वैसा पास रहनेसे नहीं होता, इसलिये तुम अपने घरोंको लौट जाओ।' ऋषिपत्नियाँ इसी प्रकारकी बात सुनकर लौट गयी थीं। परन्तु गोपियाँ नहीं लौटीं। ऋषिपत्नियोंने भगवान् श्रीकृष्णको भगवान् तो जान लिया था, परन्तु उनकी घरोंमें ममता थी। गोपियाँ संसारसे सर्वथा वैराग्यवती और भगवान्‌की महिमासे पूर्ण परिचित थीं। गोपियाँ इस बातको जानती थीं कि भगवान् समस्त जगत्‌के आत्मा हैं। हमारे, हमारे पतियोंके, हमारे पुत्रोंके—सबके एकमात्र आत्मा हैं। जगदात्मा भगवान्‌में औपपत्यकी (जारपनेकी) कभी कल्पना ही नहीं हो सकती; बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, तपस्वी, योगी संसारके सारे बन्धनोंको तोड़कर सबसे उपराम होकर जिन सच्चिदानन्दघन प्रभुकी प्राप्ति चाहते हैं, वही साक्षात् परमात्मा सुन्दर प्रियतमके रूपमें हमारे सामने खड़े हैं, उन्हींके चरणोंमें हम उपस्थित हैं। अब इन्हें छोड़कर जाना मूर्खता नहीं तो क्या है? अतः प्रेममयी गोपियाँ आँखोंमें आँसू भरकर प्रणयकोपके कारण गद्‌गद हुई वाणीसे बोलीं—

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं
सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम्।
भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान्
देवो यथादिपुरुषो भजते मुमुक्षून्॥
यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग
स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम्।
अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे
प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बन्धुरात्मा॥
(श्रीमद्भा० १०। २९। ३१-३२)

न खलु गोपिकानन्दनो भवा-
नखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये
सख उदेयिवान् सात्वतां कुले॥
(१०। ३१। ४)

'हे सर्वव्यापक! आपको ऐसे कठोर शब्द नहीं कहने चाहियें। हम अन्य समस्त विषयोंको छोड़कर एकमात्र आपके चरण-कमलोंमें ही अनुरक्त हैं। अतः जिसप्रकार आदिपुरुष श्रीनारायण मुमुक्षुओंको अपनाते हैं, आप भी हमलोगोंको इसी प्रकार ग्रहण कीजिये, कभी त्यागिये नहीं। हे कृष्ण! आप स्वयं धर्मको जाननेवाले हैं, (सबसे बढ़कर धर्म तो आपके चरणोंका आश्रय है फिर आप धर्म-विद् होकर कैसे हमें लौट जानेको कहते हैं?) आपने जो कहा कि पति, पुत्र और बन्धु-बान्धवोंकी सेवा करना ही स्त्रियोंका धर्म है, सो यह उपदेश आप ईश्वरमें ही रहे। क्योंकि इस उपदेशके आश्रय आप ही हैं। आप ही धर्मकी अन्तिम गति हैं। पति, पुत्र आदि समस्त देहधारियों-के आप ही प्रिय बन्धु और आत्मा हैं। निश्चय ही आप केवल यशोदाके पुत्र नहीं हैं। बल्कि आप समस्त देहधारियोंके अन्तःकरणके साक्षी हैं। हे सखे! ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे आपने सम्पूर्ण जगत्‌की रक्षाके लिये यदुकुलमें अवतार लिया है।'

हमें छलिये नहीं। आप साक्षात् परमेश्वर हैं, आपके बिना पति, पुत्रादि किसीकी भी सम्भावना नहीं है। सबके आश्रय, सबकी गति, समस्त धर्मोंके अधिष्ठान, ईश्वरोंके ईश्वर आपको छोड़कर हम कहाँ जायँ और क्यों जायँ?

गोपियाँ इस बातको जानती थीं कि भगवान् श्रीकृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम विज्ञानानन्दघन विश्वात्मा परमेश्वर हैं। परमेश्वर ही सबके आत्मा और चरम गति हैं, अब उन परमात्माको पाकर गोपियाँ वहाँसे क्यों हटने लगीं? उन्होंने कहा—'शास्त्रज्ञ पुरुष अपने नित्य प्रिय आत्मारूप आपहीमें प्रेम करते हैं। इस लोकमें संसार-दुःख देनेवाले पति-पुत्रादिसे उन्हें क्या प्रयोजन है? अतः हे परमेश्वर! आप हमपर प्रसन्न होइये। हमारी चिरकालकी आशालताको काटिये नहीं। अब हम किसी प्रकार घर नहीं जा सकतीं। हमारा जो चित्त सुखपूर्वक घरमें आसक्त था, उसको आपने चुरा लिया, हमारे हाथ घरके कामोंमें लगे थे वे भी चेष्टाहीन हो गये और हमारे पैर भी आपके चरणकमलोंसे एक पग भी नहीं हटना चाहते। हम किसप्रकार घर जायँ और वहाँ जाकर अब करें भी क्या!' (श्रीमद्भा० १०।२९।३३-३४)

भगवान्‌ने भक्तकी परीक्षा की, परीक्षामें भक्त उत्तीर्ण हो गया, तब उसे मनवाञ्छित फल दिया। योगेश्वरेश्वर भगवान्‌ने आत्माराम होकर गोपियोंके साथ रमण किया। 'रमण' शब्द क्रीडावाचक भी है। इससे वैसे भी कोई दोषकी बात नहीं होती। इसके बाद भगवान् एक बार अन्तर्धान हो गये। पीछेसे गोपियाँ भगवान्‌के अदर्शनसे व्याकुल होकर भगवान्‌को ढूँढ़ती और विविध विलाप करती रहीं। वे बोलीं, 'भगवान् श्रीगोविन्दकी चरणरज अत्यन्त पवित्र है। ब्रह्मा, शिव, रमा आदि भी इसको मस्तकपर धारण करते हैं, हमलोग भी इसे मस्तकपर धारण करें।' यों करते-करते वे श्रीकृष्णमें तन्मय होकर श्रीकृष्णकी-सी लीलाएँ करने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लगीं। तदनन्तर पुनः भगवान्‌ने प्रकट होकर प्रत्येकके साथ एक-एक अलग-अलग बनकर रास किया!

रासका पहला श्लोक है—

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥

'भगवान्‌ने योगमायाको आश्रित करके रमणकी इच्छा की', इसके बाद 'आत्मारामोऽप्यरीरमत्' (आत्माराम होकर रमण किया), 'साक्षान्मन्मथमन्मथः' (कामदेवको भी मोहनेवाले), 'आत्मन्यवरुद्धसौरतः' (अस्खलितवीर्य) 'आत्मकाम, सत्यकाम, पूर्णकाम, योगेश्वरेश्वर' आदि शब्द आते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि भगवान्‌की यह लीला परम दिव्य थी! इसमें लौकिक काम-गन्धको जरा-सा भी स्थान नहीं है। 'भगवान्' शब्दसे ही सिद्ध होता है कि भगवान्‌में औपपत्य नहीं हो सकता, क्योंकि वे सबके अन्तरात्मा हैं। जिसमें अणिमादि आठों ऐश्वर्य विद्यमान हों, जो धर्म, यश, श्री, वैराग्य और ज्ञानका अपार और अटूट भण्डार हो उसीको भगवान् कहते हैं—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसश्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥
(विष्णुपु० ६। ५। ७४)

इसप्रकार षडैश्वर्यपूर्ण भगवान्‌में कामवासना या औपपत्य घट ही नहीं सकता। भगवान्‌ने यह सारी लीला योगमायाके द्वारा की। जिसकी जैसी इच्छा थी, भक्तवाञ्छाकल्पतरु भगवान्‌की योगमायासे उसे वैसा ही होता प्रतीत हुआ। योगमाया—(भगवान्‌की अपनी दिव्य नित्य शक्ति) के प्रभावसे ही निःसंग भगवान् सृष्टि, स्थिति और प्रलयकी लीला किया करते हैं। ऐन्द्रजालिक जिसप्रकार अपनी इच्छानुसार दर्शकोंको मोहित करके मनमानी घटनाएँ उन्हें दिखाता है, इसी प्रकार भगवान्‌ने योगमायासे लीलाएँ कीं। राधिकाजी योगमायाका स्वरूप थीं। योगमायाके दूसरे एक स्वरूपको पहले भेजकर कंसको सन्देश दिलाया था और उसी योगमायाके द्वारा व्रजमें भगवान्‌ने दिव्य लीलाविलास किया। ब्रह्माके द्वारा गोप-बालकोंके और गो-वत्सोंके हरण किये जानेपर पाँच वर्षके शिशु श्रीकृष्ण अपनी योगमायाके प्रभावसे स्वयं गोप-बालक, बछड़े और उनके सारे सामान कपड़े, सींग, लाठी आदि बन गये। छः वर्षके बालक श्रीकृष्णने योगमायाके प्रभावसे कालियदमन और दावाग्निपान किया। इसी अवस्थामें भगवान्‌ने पतिरूपसे चाहनेवाली व्रजबालाओंका मायाभ्रम दूर करके सम्पूर्ण आत्मसमर्पणकी योग्यता प्रदान करनेके लिये उनके वस्त्र-हरणकी लीला की। इसी योगमायाके प्रभावसे सात वर्षके बालक श्रीकृष्णको व्रजयुवतियोंने नवयौवन-सम्पन्न देखा। इसी अपनी योगमायाके प्रभावसे रासमण्डलमें भगवान् क्रीडा (रमण) करते हुए प्रतीत हुए। इसी योगमायाके बलसे प्रत्येक गोपीने गोपीनाथको अपने साथ देखा। बालक जैसे दर्पणमें अपने प्रतिबिम्बके साथ स्वच्छन्द खेलता है, इसी प्रकार योगमायाके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णने अपनी छायास्वरूपा गोपियोंसे विलास किया—

रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभि-
र्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः॥
(श्रीमद्भा० १०। ३३। १७)

और योगमायाके प्रभावसे ही व्रजवासियोंने रासमें गयी हुई अपनी-अपनी पत्नियोंको अपने पास ही सोयी हुई देखा—

मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान्
स्वान् स्वान् दारान् व्रजौकसः॥
(श्रीमद्भा० १०। ३३। ३८)

योगमायाके प्रभावसे ही कंसके दरबारमें प्रवेश करते समय एकादशवर्षीय बालक श्रीकृष्णको मल्लोंने वज्रके समान, नागरिकोंने विलक्षण नरश्रेष्ठरूपमें, स्त्रियोंने मूर्तिमान् कामदेवके तुल्य, गोपोंने निज जनके सदृश, दुष्ट राजाओंने शासकके समान, वसुदेव और देवकीने पुत्ररूपमें, कंसने साक्षात् मृत्युरूपमें, विद्वानोंने विराट् पुरुषके रूपमें, योगियोंने परम तत्त्वके रूपमें और यादवोंने परम देवताके रूपमें देखा।

यह पूर्णकाम, सत्यकाम, योगेश्वरेश्वर, षडैश्वर्यपूर्ण, अघटनघटनापटीयसी योगमायाके सञ्चालक, ह्लादिनी शक्तिके शक्तिमान्, भक्तवाञ्छाकल्पतरु साक्षात् भगवान् और उन्हींके प्रतिबिम्बरूप भक्तोंकी दिव्य प्रेमलीला थी। इस लीलामें दोष देखना महापाप है।

अधिकार और कर्तव्य

परन्तु एक बात ध्यानमें रखनेकी है कि ऐसी लीलाका नायक सिवा भगवान्‌के और कोई भी नहीं हो सकता। गोपीभावसे भगवान्‌की उपासना करनेका अधिकार सभी वैराग्य और प्रेमसम्पन्न जीवोंको है। गोपी-भाव न तो केवल स्त्रियोंके ही लिये है, न स्त्रीके-जैसी पोशाक पहनकर स्त्री सजनेकी ही जरूरत है। जरूरत है गोपियोंको आदर्श मानकर उनके-जैसा प्रेमभाव हृदयमें उत्पन्न करनेकी। जिसमें ऐसा अपार्थिव निष्काम अनन्य-प्रेम होगा, वही गोपी-भावसे उपासना कर सकेगा। परन्तु उपास्य केवल परमात्मा ही होंगे। यदि कोई मनुष्य श्रीकृष्ण बनकर गोपी-भावसे उपासना करानेका दावा करे तो उससे सदा दूर रहना चाहिये। खास करके स्त्रियोंके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

द्वारा गोपीभावसे अपनी उपासनाकी बात कहनेवाले मनुष्यको तो दुराचारी ही मानना चाहिये। साधक पुरुषके लिये तो, स्त्रीकी बात तो दूर रही, स्त्रियोंके संग करनेवालेका संग भी त्याज्य है।

स्त्रीणां स्त्रीसङ्गिनां सङ्गं त्यक्त्वा दूरत आत्मवान्।
(श्रीमद्भा०)

यह प्रेम अत्यन्त ही दुर्लभ है। इसमें देवताओंका भी अधिकार नहीं है। जो भगवान्‌के व्रजरसके रसिक हैं, व्रजभावके भावुक हैं, व्रजप्रेमके प्रेमी हैं, वे भक्त ही इस अत्यन्त उच्च प्रेमरसका पान किया करते हैं। गोपी-पदाश्रय करके गोपी-भावका अवलम्बन करनेसे ही यह दुर्लभ, कामगन्धहीन, विषयाभिलाषाशून्य, दिव्य प्रेम और प्रेमस्वरूप, प्रेमाधार श्यामसुन्दरकी प्राप्ति हो सकती है। श्रीचैतन्यचरितामृतमें कहा है—

सेइ गोपीभावामृते जाँर लोभ हय,
वेदधर्म सर्व त्यजि सेइ कृष्णेरे भजय॥
रागानुरागमार्गे भजे जेइ जन,
सेइ जन पाय व्रजे व्रजेन्द्रनन्दन॥

परन्तु प्रेमी वेद-धर्म छोड़ना नहीं चाहता, प्रेमके प्रकट होनेपर वह आप ही छूट जाता है। जो जान-बूझकर छोड़ता है उसका तो पतन ही होता है—

एक नेम यह प्रेमको नेम सबै छुटि जाहिं।
पै जो छाँडे जानिकै तहाँ प्रेम कछु नाहिं॥

यह पन्थ विषयकामियोंका नहीं है, यह मार्ग बाह्य वेषधारियोंका नहीं है। यह तो उन सच्चे त्यागियोंका पावन पथ है जो सबका मोह और सारी कामनाएँ त्यागकर एकमात्र भगवान्‌को ही भजना चाहते हैं। जिनके हृदयमें भोग-लालसा है उनका इस मार्गपर पैर रखना धधकती हुई अग्निमें कूदना या कालसर्पके मुँहमें हाथ देना है—

प्रेम-अमिय पीयौ चहै, करै विषयसों नेह।
विष ब्यापै जारे हियौ, करै जरजरित देह॥

इसीलिये शुकदेवजी सबको सावधान करते हुए कहते हैं—शिवजी हलाहल पी गये, हरेक आदमी नहीं पी सकता; इसी प्रकार भगवान्‌ने यह लीला की, मनुष्य नहीं कर सकता। अतः असमर्थ मनुष्योंको भगवान्‌की इस लीलाका अनुकरण कभी मनसे भी नहीं करना चाहिये। यदि कोई मूर्खतावश करेगा तो वह नष्ट हो जायगा। भगवान् तो गोपियोंके, उनके पतियोंके और सम्पूर्ण देहधारियोंके आत्मा हैं, साक्षीरूपसे सबके हृदयमें विराजमान हैं, उन्होंने लीलासे ही शरीर धारणकर अवतार लिया था और जीवोंपर कृपा करनेके लिये ही उस दिव्य देहसे ऐसी अलौकिक लीलाएँ की थीं जिन्हें सुनकर ही लोग भगवत्परायण हो जायँ'(श्रीमद्भा० १०। ३३। ३१, ३६, ३७)

अतएव भगवान्‌की अलौकिक लीलाओंका अनुकरण न कर, पवित्र गोपी-भावको आदर्श मानकर, अपना सब कुछ भगवान्‌के अर्पण करके बुद्धि, मन और इन्द्रियोंके द्वारा सब प्रकारसे भगवान्‌की सेवा करनी चाहिये और उनका नित्य निरन्तर प्रेमपूर्वक चिन्तन करना चाहिये; भक्त बनना चाहिये, भगवान् नहीं!

गोपी-प्रेमका यह वर्णन सर्वथा रसहीन हुआ है। गोपी-प्रेम दिव्य रस-पूर्ण है। परन्तु उस रसको साधारण मनुष्य कहाँसे प्राप्त करे। और वाणी या लेखनी कैसे उसका वर्णन करे? हमलोगोंको उचित है कि परम प्रेममयी गोपिकाओंके चरण वन्दनकर उनसे प्रेमकी भिक्षा माँगें और उनके प्यारे श्यामसुन्दरके नाम-गुणोंका गान कर जन्म-जीवनको सफल करें। श्रीललितकिशोरीजी कहते हैं—

रुचिकर सँवारे नाहिं अंग-अंग स्यामा-स्याम
ऐरी धिक्कार और नाना कर्म कीबेपै।
पायनको धोइ निज करन ना पान कियो,
आली अंगार परैं सीतल जल पीबेपै॥
बिचरे ना बृन्दाबन कुंज-लतान तरे,
गाज गिरै अन्य फुलवारी-सुख लीबेपै।
ललितकिसोरी बीते बरष अनेक दृग,
देखे ना प्रानप्यारे, छार ऐसे जीबेपै॥

श्यामसुन्दर आज भी हैं, उनकी लीला भी नित्य है। परन्तु हमें वे श्यामसुन्दर कैसे दीखें और हमें उनके चरण धोनेका सौभाग्य कैसे प्राप्त हो? नित्य-निरन्तर निष्कामप्रेम-भावसे उनका नाम जपना, उनके गुणोंका कीर्तन करना, उनके प्रेमी भक्तोंका संग करना, उनके अनुकूल कार्य करना, उनकी आज्ञानुसार चलना, उनके प्रत्येक विधानमें सन्तुष्ट रहना, जगत्‌का मोह छोड़कर उनकी रूपमाधुरीपर न्योछावर होनेकी साधना करना, उनकी लीलाओंका मनन करना और प्राण खोलकर, हृदयके अन्तस्तलसे उनको पानेके लिये रोना—यही सब उपाय हैं। यदि चाहते हैं तो विषयासक्ति छोड़कर इन उपायोंका अवलम्बन कीजिये। करते-करते आप ही भावोंका विकास होगा और श्रीकृष्ण हमें सर्वस्वरूपमें मिल जायँगे! बोलो गोपी और गोपीनाथके पदपद्मपरागकी जय!

हनुमानप्रसाद पोद्दार

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परमहंस-विवेकमाला

(लेखक—स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी)

(गताङ्कसे आगे)

[मणि १०]

कुमारका दृष्टान्त

अन्नादिके भक्षणमें असमर्थ बालकको माता गलेतक दूध पिलाकर मक्खी, मच्छर तथा जूँ आदिसे रहित कोमल बिछौनेपर शयन कराती है । उस बिछौनेपर पड़ा हुआ बालक परमानन्दको प्राप्त होता है । वहाँ वह आनन्दसे परिपूर्ण हुआ बालक सुखसे हँसता है, अपने पास खड़े अथवा बैठे हुए माता-पिताको देखता है तो भी जानता नहीं है, केवल आनन्दसे परिपूर्ण होता है । इसी प्रकार सुषुप्ति-अवस्थामें यह विज्ञानमय भोक्ता परमानन्दकी प्राप्तिसे सर्व दुःखोंसे रहित होता है और आनन्दसे परिपूर्ण होनेके कारण उस समय मायाको नहीं देखता ।

महाराजाका दृष्टान्त

जैसे अनेक प्रकारके धन और ऐश्वर्यसे पूर्ण तथा शत्रुसे रहित, सारी पृथिवीके राज्यसे सम्पन्न, स्थूल शरीरवाला, बलवान्, युवा अवस्थावाला, सर्व रोगसे रहित, रूपसे युक्त, हाथ, पैर आदि अङ्गोंके लावण्यसे युक्त, जगत्में कीर्तिवाला, धर्मपरायण, वेद-वेदाङ्ग-वेत्ता, अनेक मनोहर स्त्रियोंसे सेवित कोई महाराजा, अनेक प्रकारके मधुर गान और वाद्यसे कोकिलाके शब्द-समान स्वरवाली अनेक स्त्रियाँ जिसकी सेवा कर रही हों, ब्राह्मण, चारण और बन्दीजन जय-शब्द और आशीर्वाद-शब्द पुकारते हों, वह महाराजा पिताके समान गुणवाला, माता-पिताका भक्त हो, अनेक पुत्रोंवाला हो, ऐसा सर्वगुणसम्पन्न महाराजा सर्व भोगोंकी प्राप्तिसे जैसे परमानन्दको प्राप्त होता है इसी प्रकार यह विज्ञानमय भोक्ता सुषुप्तिमें परम आनन्दको प्राप्त होता है । जैसे वह महाराजा किसी भी दुःखको नहीं जानता, इसी प्रकार यह विज्ञानमय भोक्ता सुषुप्तिमें किसी भी दुःखको नहीं जानता । भाव यह है कि जब इच्छाके विषयरूप स्त्री, धन आदि पदार्थोंकी प्राप्ति नहीं होती तब उस इच्छाके कारण अनेक प्रकारके दुःखोंकी उत्पत्ति होती है । इस दुःखकी निवृत्तिके दो उपाय हैं—एक तो उन स्त्री, धन आदि पदार्थोंकी प्राप्ति, और दूसरा इच्छाकी ही निवृत्ति हो जाना । इन दोनोंमेंसे महाराजारूप दृष्टान्तमें सब पदार्थोंकी प्राप्तिसे दुःखका अभाव हो जाता है और सुषुप्तिमें विज्ञानमय भोक्तामें इच्छादि सर्वविक्षेपकी निवृत्ति हो जाती है, इसलिये सर्व दुःखोंका अभाव हो जाता है ।

महाब्राह्मणका दृष्टान्त

इसमें प्रथम महाब्राह्मणके स्वरूपको सुनिये—नेत्रादि बाह्य इन्द्रियोंको, मन आदि आन्तर इन्द्रियोंको जिसने वशमें किया है, सब इच्छाओंका जिसने त्याग किया है, जो यथालाभमें संतोषवाला है, जो शरीरसे, मनसे और वाणीसे दुष्टोंके किये हुए अपकारको नहीं जानता, जो उन दुष्ट पुरुषोंसे द्वेष नहीं करता वरं उनपर उपकार करता है, वही पुरुष महाब्राह्मण है । 'दुःख और अपमान आदि अपने प्रतिकूल हैं, अतएव जो पुरुष शरीर, मन तथा वाणीसे दूसरोंको दुःख

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पहुँचाता और उनका अपमान आदि करता है, इस लोक तथा परलोकमें उसीको वे दुःख तथा अपमान आदि मिलते हैं। इसी प्रकार सुख अपने अनुकूल है, अतएव जो मनुष्य दूसरोंको सुख पहुँचाता है, उसको इस लोक और परलोकमें सुख मिलता है। इसलिये मनुष्यको सब प्राणियोंके सुखकी ही इच्छा करनी चाहिये।' इसप्रकार विचार करके जो मनुष्य किसी भी प्राणीको दुःख नहीं पहुँचाता वरं सबको सुखी करना चाहता है, वह महाब्राह्मण है। जो पुरुष सर्व वेदोंके अर्थको जानता है, कभी दूसरेकी निन्दा नहीं करता, जिसकी दृष्टि सदा अपने दोषोंको देखनेमें ही रहती है, जो दुष्ट प्राणियोंके संगसे रहित है, वह महाब्राह्मण है। जो पुरुष आत्माके सिवा अन्य सब पदार्थोंको अनित्य जानता है, केवल आत्माको ही नित्य जानता है, अर्थात् जो नित्यानित्यके विवेकसे युक्त है, जो पूर्व-पक्ष स्थापन करनेमें और सिद्धान्तमें अति कुशल है, वह पुरुष महाब्राह्मण है। जो पुरुष इस लोकके और परलोकके अनेक प्रकारके अन्न-पानादि पदार्थोंको, मनोहर स्त्रियोंको, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन पाँच प्रकारके विषयोंको, वमन किये हुए अन्नके समान त्याग देता है और विषयोंकी कभी इच्छा नहीं करता, वह पुरुष महाब्राह्मण है। 'जो प्राणी स्थूल, सूक्ष्म शरीरका अभिमान करनेवाले हैं, उनको पाप-पुण्यके कारण सुख-दुःखकी प्राप्ति अवश्य होती है' ऐसी दोषदृष्टि होनेसे जो मनुष्य स्थूल, सूक्ष्म शरीरसे मुक्त होनेकी इच्छा करता है और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ अथवा वानप्रस्थ आश्रमका त्याग करके तथा विधिपूर्वक शिखा-सूत्रका त्याग कर दण्डादि ग्रहणपूर्वक संन्यास आश्रमकी शरण लेकर आत्मज्ञानकी प्राप्तिके लिये श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुके पास जाता है और गुरुमुखसे उच्चारण किये हुए वाक्यसे अद्वितीय ब्रह्ममें तात्पर्यके निश्चयरूप श्रवणसे, श्रवण किये हुए अर्थमें अनेक प्रकारकी युक्तियोंसे विरोधके परिहाररूप मननसे और मनन किये हुए अर्थमें चित्तकी एकाग्रतारूप निदिध्यासनसे जो पुरुष 'मैं ब्रह्मरूप हूँ' इसप्रकारके साक्षात्कारको प्राप्त होता है और जो इन्द्रियोंके निग्रहसे लेकर तत्त्वसाक्षात्कार-पर्यन्त कहे हुए शुभ गुणोंसे युक्त है, वह महाब्राह्मण है। राग-द्वेषादिसे रहित होकर जैसे यह महाब्राह्मण परम आनन्दको प्राप्त होता है इसी प्रकार सुषुप्ति-अवस्थामें यह विज्ञानमय भोक्ता परम आनन्दको प्राप्त होता है। जैसे इस महाब्राह्मणमें अनर्थ करनेवाले राग-द्वेषादि नहीं रहते इसी प्रकार सुषुप्ति-अवस्थामें विज्ञानमय भोक्तामें अनर्थ करनेवाले राग-द्वेषादि नहीं रहते। भाव यह है कि राग-द्वेषादि अन्तःकरणमें होते हैं। यह अन्तःकरण सुषुप्तिमें लय-भावको प्राप्त हो जाता है, इसलिये सुषुप्तिमें राग-द्वेषादि नहीं होते। जिस पदार्थमें सुखकी साधनताका ज्ञान होता है, उस पदार्थमें राग होता है, सुखसाधनताके ज्ञान बिना राग नहीं होता; इसलिये सुखसाधनताका ज्ञान रागका कारण है। जिस पदार्थमें दुःखसाधनताका ज्ञान होता है उस पदार्थमें द्वेष होता है, दुःख-साधनताके ज्ञान बिना द्वेष नहीं होता इसलिये दुःख-साधनताका ज्ञान द्वेषका कारण है। यह सुखकी साधनताका ज्ञान और दुःखकी साधनताका ज्ञान तत्त्व-वेत्ता ब्राह्मणको नहीं होता, क्योंकि जिसने अद्वितीय आत्माके सिवा सर्व प्रपञ्चको शशशृंगके समान असत्य जान लिया है, उसको असत्य वस्तुमें सुखकी साधनता तथा दुःखकी साधनता सम्भव नहीं है, इसलिये उपर्युक्त महाब्राह्मणको राग-द्वेष नहीं हो सकते। इसी प्रकार सुषुप्ति-अवस्थामें भी अन्तःकरणके लय हो जानेसे किसी पदार्थमें सुख-दुःखकी साधनताका ज्ञान सुषुप्ति-में पुरुषको नहीं होता, इसलिये वहाँ राग-द्वेषका अभाव सम्भव है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हे बालाकि ! परमात्मारूप आकाश ही शयन-कर्ता विज्ञानमय भोक्ताका तथा सुषुप्तिरूप शयनका आधार है, इस परमात्माके सिवा उनका कोई दूसरा आधार नहीं है। हे बालाकि ! परमात्माके साथ विज्ञान-मय आत्माका जो अभेद है और अन्तःकरणादिका जो लय है, वही शयनका स्वरूप है। जैसे घटाकाश महाकाशसे भिन्न नहीं है, महाकाशस्वरूप ही है, इसी प्रकार विज्ञानमय भोक्ता परमात्मासे भिन्न नहीं है, परमात्मास्वरूप ही है। परमात्मा ही सब प्राणियोंमें व्यापक होकर सबको प्रकाशित करता है, इसी कारण श्रुतिमें परमात्माको आकाशरूप कहा है। हे बालाकि ! जैसे घट-मठादि अनेक उपाधियोंमें रहता हुआ भी महाकाश सर्वत्र घटाकाश-मठाकाशरूप प्रतीत होता है, अतएव जैसे महाकाश एकरूप है इसी प्रकार तेरा, मेरा और अन्य सब प्राणियोंका आत्मा सुषुप्तिमें 'मैं मेरे स्वरूपको नहीं जानता, और अन्यको भी नहीं जानता,' इसप्रकारके अज्ञानके आश्रय होकर प्रतीत होता है। और 'मैं सुखपूर्वक शयन करता था' इसप्रकार सुषुप्तिका साक्षीरूप आत्मा प्रतीत होता है, इसलिये सर्व प्राणियोंमें एक ही आत्मा अनुगत है।

हे बालाकि ! यद्यपि जाग्रत् और स्वप्न-अवस्थामें भी वस्तुतः आत्माकी एकरूपता है तो भी जाग्रत् और स्वप्न-अवस्थामें अन्तःकरणविशिष्ट आत्मा विज्ञानमय भावको प्राप्त होता है, इसलिये विज्ञानमय भाव ही जाग्रत् और स्वप्न-अवस्थामें आत्माके भेदका कारण है। सुषुप्ति-अवस्थामें अन्तःकरणका अपने कार्यसहित अज्ञानमें लय हो जाता है, इसलिये सुषुप्ति-अवस्थामें आत्माका भेद नहीं होता। जैसे घट-मठादि उपाधियोंके कारण आकाशका भेद प्रतीत होता है और घट-मठादि उपाधियोंका नाश होनेसे आकाशमें भेद प्रतीत नहीं होता, इसी प्रकार अन्तःकरण और वाक् आदि इन्द्रियोंके कारण जाग्रत् और स्वप्नके आत्मामें भेद प्रतीत होता है। सुषुप्ति-अवस्थामें मनसहित वागादि इन्द्रियोंका परमात्मामें लय हो जाता है, इसलिये सुषुप्ति-अवस्थामें एक अद्वितीय परमात्मा रहता है।

बालाकि–हे राजन् ! सुषुप्तिमें यद्यपि अन्तः-करणादि कार्य नहीं है तो भी कारणरूप अज्ञान सुषुप्तिमें रहता है, इसलिये अज्ञानरूप उपाधिके कारण आत्माका भेद सुषुप्तिमें भी सम्भव है।

अजातशत्रु–हे बालाकि ! अज्ञानके दो स्वरूप हैं, एक आवरण-स्वरूप और दूसरा विक्षेप-स्वरूप। इन दोनोंमेंसे आवरण-स्वरूप अज्ञानमें भेद सम्भव है अथवा विक्षेप-स्वरूप अज्ञानमें भेद सम्भव है–इसपर विचार करना चाहिये। इन दोनों पक्षोंमेंसे 'आवरणमें भेदकी कारणता है' यह प्रथम पक्ष नहीं बनता, क्योंकि सुषुप्तिमें यद्यपि आत्माको आवरण करनेवाला अज्ञान विद्यमान है तो भी वह अज्ञान आत्मा-के भेदको उत्पन्न नहीं करता, इसलिये आवरण-स्वरूप अज्ञानमें आत्माके भेदकी कारणता नहीं बनती और सुषुप्तिमें विक्षेपरूप अज्ञान आत्माके भेदका कारण है, यह दूसरा पक्ष भी नहीं बनता, क्योंकि विक्षेप दो प्रकारका होता है, एक जाग्रत्रूप विक्षेप और दूसरा स्वप्नरूप विक्षेप। ये दोनों प्रकारके कार्यरूप विक्षेप सुषुप्तिमें लय-भावको प्राप्त हो जाते हैं, इसलिये विक्षेपरूप अज्ञान भी सुषुप्तिमें आत्माके भेदको उत्पन्न नहीं कर सकता। जैसे वर्षाकालकी अँधेरी रात्रिमें सम्पूर्ण मेघादि अन्धकारमें लय-भावको प्राप्त हो जाते हैं, इसी प्रकार सुषुप्ति-अवस्थाको प्राप्त हुए आत्माके अज्ञानमें सर्व कार्यप्रपञ्च लय-भावको प्राप्त हो जाता है। जैसे सूर्यभगवान्के उदय होनेसे अन्धकारसे ढके हुए मेघादि फिर अन्धकारमेंसे प्रकट हो आते हैं, इसी प्रकार मायाविशिष्ट परमात्मा-मेंसे कर्मोंके कारण फिर जाग्रत्-अवस्था उत्पन्न हो आती है। भाव यह है कि जब जाग्रत्-प्रपञ्चके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भोग देनेवाले पुण्य-पापरूप कर्मोंका उद्भव होता है तब मायाविशिष्ट परमात्मामेंसे जाग्रत्-प्रपञ्चकी उत्पत्ति होती है। इसलिये हे बालाकि! जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति—इन तीन अवस्थाओंकी प्राप्तिमें नियम नहीं है, किन्तु अपने स्वरूपके अज्ञानसे यह आत्मादेव कर्मोंके कारण कभी स्वप्न-अवस्था होनेके पीछे जाग्रत्-अवस्थाको प्राप्त होता है, कभी सुषुप्ति-अवस्थाके पीछे जाग्रत्-अवस्थाको प्राप्त होता है और कभी जाग्रत्-अवस्थाके पश्चात् स्वप्नको प्राप्त होता है और कभी स्वप्न-अवस्थाके बाद सुषुप्तिको प्राप्त होता है। इसप्रकार कर्मके अधीन हुआ जीवात्मा सर्व शरीरोंमें जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्तिरूप तीन अवस्थाओंको प्राप्त होता रहता है। जैसे बालकके द्वारा उड़ाया हुआ पतंग डोरीके सहारे आकाशमें उड़ता है, इसी प्रकार पूर्वमें किये हुए शुभ, अशुभ कर्मोंके वश यह जीवात्मा कभी जाग्रत्, कभी स्वप्न और कभी सुषुप्तिको प्राप्त होता है। इसप्रकार निरन्तर भ्रमण किया करता है। जैसे वायुमें उड़ते हुए तूलकी कभी स्थिति नहीं होती, इसी प्रकार कर्मरूप वायुके कारण इस शरीरमें जाग्रदादि अवस्थाओंका प्रवाह चलता रहता है। जैसे मेघमण्डलको आकाशमें सर्वत्र वायु घुमाता है, इसी प्रकार कर्मरूपी वायु भी देहादि प्रपञ्चको भ्रमण कराता है। जैसे जलका प्रवाह सूखे काष्ठको कभी ऊँचे स्थानमें और कभी नीचे स्थानमें ले जाता है, इसी प्रकार पुण्य-पापरूप कर्मोंके वश यह जीवात्मा कभी देव-शरीरको, कभी मनुष्य-शरीरको, कभी कृमिके शरीरको और कभी वृक्षादि स्थावर-शरीरको प्राप्त होता रहता है। अर्थात् जब पुण्यकर्मकी अधिकता होती है तब देवभावको प्राप्त होता है, जब पुण्य-पापकी समानता होती है तब मनुष्य-शरीरको प्राप्त होता है और जब पापकर्मकी अधिकता होती है तब कृमि आदि शरीरोंको प्राप्त होता है। इसप्रकार कर्मके अधीन होकर जीव अनेक प्रकारके शरीरोंको प्राप्त होता रहता है। देवतासे लेकर कृमिपर्यन्त सब शरीरोंमें जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—इन तीनों अवस्थाओंको जीव प्राप्त होता है, जाग्रदादि तीनों अवस्थाओंसे रहित कोई भी प्राणी नहीं है।

बालाकि—हे राजन्! मनुष्यादिमें तीन अवस्था सम्भव हैं; परन्तु देवताओंमें तीनों अवस्था सम्भव नहीं हैं, क्योंकि शास्त्रमें देवताओंको अस्वप्न कहा है। इसलिये देवताओंमें स्वप्न-अवस्था नहीं है।

अजातशत्रु—हे बालाकि! देवताओंको जो अस्वप्न कहा है, वह इस अभिप्रायसे नहीं कहा कि देवताओंमें स्वप्न-अवस्था नहीं होती। देवताओंमें सत्त्वगुणकी प्रधानता है, इसलिये मनुष्यके समान देवताओंको क्षण-क्षणमें स्वप्न नहीं होता। देवताओंमें अल्प स्वप्न होता है, इसी अभिप्रायसे शास्त्रमें देवताओंको अस्वप्न कहा है। यदि देवताओंमें सर्वथा स्वप्नका अभाव माना जाय तो सब देवोंमें मुख्य विष्णुभगवान् शेषनागकी शय्यापर शयन करते हैं, ऐसा जो शास्त्रमें कहा है वह असंगत हो जायगा। इसलिये हे बालाकि! सुषुप्ति-अवस्थामें परमात्माके साथ अभेद-भावको प्राप्त होकर विज्ञानमय भोक्ता कर्मोंके अधीन जाग्रदादि अवस्थाओंको प्राप्त होता है।

बालाकि—हे राजन्! अन्य उपनिषदोंमें सुषुप्ति-अवस्थामे मायाविशिष्ट परमात्मामें अन्तःकरणादिका लय कहा है; किन्तु बृहदारण्यक उपनिषद्में प्राणमें ही सर्व वागादि इन्द्रियोंसहित अन्तःकरणका लय कहा है, इसलिये श्रुतियोंमें परस्पर विरोध है। इसका क्या कारण है?

अजातशत्रु—हे बालाकि! सुषुप्तिमेंसे उठा हुआ पुरुष जाग्रत्में स्मरण करता है कि 'मैं कुछ भी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जानता न था', इसलिये पुरुषके स्मरणरूप अभिप्रायसे मायाविशिष्ट परमात्मामें ही सर्व वागादिका लय सिद्ध होता है और सुषुप्तिमें प्राणके लयको लोग अङ्गीकार नहीं करते, प्राणके सिवा अन्य सर्व वागादिके लयको ही सुषुप्ति-अवस्थामें लोग अङ्गीकार करते हैं। इसलिये लोगोंके अभिप्रायको अङ्गीकार करके श्रुतिने प्राणमें वागादि इन्द्रियोंका लय कहा है। अतएव प्राण-शब्दकी लक्षणावृत्तिसे मायाविशिष्ट परमात्माका ही ग्रहण करना चाहिये। इसप्रकार दोनों श्रुतियोंमें विरोध नहीं होता। हे बालाकि! सुषुप्ति-अवस्थामें परमात्मास्वरूप प्राणमें ही स्थूल-सूक्ष्मरूप सर्व प्रपञ्च लय-भावको प्राप्त होता है, क्योंकि यदि सुषुप्तिमें मनसहित वागादि इन्द्रियाँ लय-भावको न प्राप्त होती हों तो जाग्रत्के समान सुषुप्तिमें मनसहित वागादि इन्द्रियोंकी प्रतीति होनी चाहिये; किन्तु सुषुप्तिमें मन-सहित वागादि प्रतीत नहीं होते, इसलिये वागादिका लय ही सुषुप्तिमें होता है, ऐसा जाननेमें आता है। हे बालाकि! जैसे आधार—आधेयभाव सम्बन्धसे पृथिवीपर घट प्राप्त होता है, उनमें पृथिवी आधार है और घट आधेय है। इसप्रकार सुषुप्ति-अवस्थामें विज्ञानमय भोक्ता आधार-आधेय-सम्बन्धसे परमात्माको प्राप्त नहीं होता, किन्तु आधार-आधेयभावसे रहित केवल अभेद-सम्बन्धसे परमात्माको प्राप्त होता है। जैसे गृहाकाशमें प्राप्त हुआ घटाकाश घटके नाश होनेपर गृहके साथ एकतारूप सम्बन्धको प्राप्त होता है और हे बालाकि! जैसे गृहाकाशका गमन तथा आगमन नहीं होता; किन्तु घटाकाशका ही घरमें आगमन और घरसे गमन होता है, इसी प्रकार हृदयमें स्थित परमात्मा-का गमन-आगमन नहीं होता। घटाकाशके समान विज्ञानमय भोक्ताका ही नित्य सुषुप्तिमें गमन और जाग्रत्में आगमन होता है। हे बालाकि! विचारकर देखा जाय तो विज्ञानमय भोक्ताके स्वरूपमें गमन, आगमन सम्भव नहीं है किन्तु अन्तःकरणरूप उपाधि-के गमन, आगमनसे विज्ञानमयमें गमन, आगमन प्रतीत होता है। घटरूप उपाधिके गमन, आगमनसे घटाकाश-में गमन, आगमन प्रतीत होता है; वस्तुतः घटाकाशमें गमन, आगमन नहीं है। हे बालाकि! यद्यपि यह परमात्मादेव आकाशके समान देहके भीतर-बाहर सर्वत्र व्यापक है तो भी हृदय-देशमें ही परमात्माका अन्तर्यामीपन सिद्ध होता है, अन्य स्थलपर सिद्ध नहीं होता; इसलिये हृदयदेशमें ही परमात्माकी स्थिति कही है। ऐसे अन्तर्यामी परमात्मासे साक्षात् प्रकाशको प्राप्त हुआ मन है।

सब इन्द्रियोंसे मनकी विशेषता

हे बालाकि! सुख तथा दुःखके उपभोगके लिये प्राणियोंका शरीर उत्पन्न हुआ है, क्योंकि शरीर बिना सुख-दुःखका भोग नहीं होता। शब्दादि विषयके प्रकाशको उपभोग कहते हैं। शब्दादि विषयका प्रकाश श्रोत्रादि इन्द्रियोंके बिना नहीं होता। श्रोत्रादि इन्द्रियोंसे ही शब्दादि विषयोंका प्रकाश होता है। इन श्रोत्रादि सब इन्द्रियोंका नियामक मन है, क्योंकि अपने-अपने शब्दादि विषयके साथ श्रोत्रादि इन्द्रियोंका सम्बन्ध होनेपर भी जबतक श्रोत्रादि इन्द्रियोंसे मनका सम्बन्ध नहीं होता तबतक वे इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयोंको नहीं जानतीं। मनके साथ सम्बन्ध होनेपर ही श्रोत्रादि इन्द्रियाँ शब्दादि विषयोंको जानती हैं अर्थात् श्रोत्रादि इन्द्रियाँ मनके अधीन हैं। जैसे लोकमें काठके बने हुए दस घोड़ोंको एक मोटी लकड़ीमें बाँध दिया जाता है और उस मोटी लकड़ीके बीचमें छेद कर दिया जाता है तथा उसमें नीचेके मुखवाली नली जोड़ दी जाती है और दस घोड़ोंके पैरोंमें बँधे हुए दस सूतके तार नलीके मध्य-भागमें पिरो दिये जाते हैं और उस सूतको पिता अपने बालकके हाथमें दे देता है और पिताकी गोदीमें बैठा हुआ बालक उस

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सूतके तारको खींचकर घोड़ोंसे अनेक प्रकारकी चेष्टा करवाता है इसी प्रकार यह शरीररूप मोटी लकड़ी है, उसमें वागादि इन्द्रियाँ दस घोड़े हैं। प्राणवायु-रूप सूतसे ये वागादि इन्द्रियाँ बँधी हुई हैं। नाड़ी-रूप छिद्रद्वारा यह प्राणवायुरूप छिद्र हृदयरूपी नलीमें पिरोया हुआ है। परमेश्वररूप पिता है और मनरूप बालक है। इस मनरूप बालकको परमेश्वररूप पिता अपनी हृदयकमलरूप गोदीमें बैठाकर प्राणवायु-रूप सूतको ग्रहण कराता है। इस प्राणरूप सूतको ग्रहण करके यह मनरूपी बालक वाक् आदि इन्द्रिय-रूप अश्वोंको तथा प्राणरूप सूतको अपने-अपने व्यापारमें प्रवृत्त कराता है। इसलिये सर्व वागादि इन्द्रियोंकी अपेक्षा मनकी उत्कृष्टता है।

बुद्धिकी उत्कृष्टता

हे वालाकि! जैसे सूर्यभगवान्‌का प्रकाश यद्यपि सब पदार्थोंमें समान है तो भी उपाधिके कारण सूर्यके प्रकाशमें भेद दीखता है। जैसे ताम्रादि धातुओंसे बने हुए पात्रमें सूर्यके तेजकी अल्प अभिव्यक्ति होती है, पात्रकी अपेक्षा स्वच्छ दर्पणमें विशेष अभिव्यक्ति होती है, दर्पणकी अपेक्षा तलवारमें अधिक अभिव्यक्ति होती है, तलवारकी अपेक्षा मणिमें अधिकतर अभिव्यक्ति होती है, और मणिकी अपेक्षा भी सूर्य-कान्त-मणिमें सूर्यके तेजकी सबसे अधिक अभि-व्यक्ति होती है, क्योंकि पात्रादि उपाधियोंमें स्थित सूर्यका तेज दाहादि कार्य नहीं करता; परन्तु सूर्य-कान्त-मणिमें स्थित सूर्यका तेज प्रकाश दाहादि कार्यको भी उत्पन्न करता है, इसलिये पात्रादि सर्व उपाधियोंकी अपेक्षा सूर्यकान्त-मणिमें सूर्यके तेजकी सबसे अधिक अभिव्यक्ति होती है। इसी प्रकार पात्र-के समान इस स्थूल-शरीरमें, दर्पणके समान प्राणमें, तलवारके समान कर्मेन्द्रियोंमें, मणिके समान ज्ञानेन्द्रियों-में और सूर्यकान्त-मणिके समान बुद्धिमें आत्माके तेजकी अभिव्यक्ति होती है। यह आनन्दस्वरूप आत्मा स्वभावसे यद्यपि एकरूपसे स्थित है तो भी बुद्धिरूप अन्तःकरण अति स्वच्छ है, इसलिये अन्तःकरणमें स्थित आनन्दस्वरूप आत्मा विज्ञानमय भोक्ता कहलाता है; परन्तु अन्य शरीरमें स्थित आत्मा भोक्ता नहीं कहलाता। और जैसे सूर्यभगवान् सूर्यकान्त-मणिमें स्थित होकर दाहादि कार्य करते हैं इसी प्रकार यह आनन्दस्वरूप आत्मा भी अन्तःकरणमें स्थित होकर कर्तृत्व-भोक्तृत्व-रूप संसारको तथा लोकान्तरमें गमनागमनरूप व्यापार-को प्राप्त होता है। यद्यपि अल्प अन्तःकरणमें व्यापक आत्माकी स्थिति सम्भव नहीं है तो भी जैसे अल्प दर्पण महान् पर्वतके प्रतिबिम्बको ग्रहण करता है इसी प्रकार अल्प अन्तःकरण भी अति स्वच्छ होनेसे आत्माके प्रतिबिम्बको ग्रहण करता है। यही अन्तः-करणमें आत्माकी स्थिति है। यह अन्तःकरण सर्वदा हृदयकमलरूपी गृहमें निवास करता है और कभी-कभी यह अन्तःकरण जाग्रत्-अवस्थामें नेत्रादि स्थानों-में निवास करता है। जिस समय सुषुप्ति होती है, उस समय नेत्रादि स्थानोंको छोड़कर अन्तःकरण हृदयकमलरूपी अपने घरमें आता है। अन्तःकरणके अग्निसे विज्ञानमय भोक्ता भी हृदयदेशमें आ जाता है। अर्थात् चैतन्यमें स्वभावसे गमनागमनरूप क्रिया नहीं है; परन्तु उपाधिके गमनागमनसे चैतन्य आत्मामें गमनागमन प्रतीत होता है। यह अन्तःकरण जाग्रत्-अवस्थामें नेत्रमें रहता है, इसलिये विज्ञानमय भोक्ता भी नेत्रमें रहता है। और सुषुप्तिकालमें नेत्र-स्थानको छोड़कर अन्तःकरण हृदयकमलरूपी अपने घरमें आ जाता है, इसलिये विज्ञानमय आत्मा भी हृदयकमलमें आ जाता है। जैसे पशु तथा मनुष्य अपने घरको छोड़कर अन्य देशमें जाते हैं और वहाँ हानि अथवा लाभको प्राप्त होते हैं और हानिको भी लाभ मानकर वे अपने घरमें आ जाते हैं इसी प्रकार बुद्धिरूपी अन्तः-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करण भी अपने हृदयरूप गृहको त्यागकर नेत्रादि देश-में जाता है और वहाँ हानि अथवा लाभको प्राप्त होता है। पश्चात् अन्तःकरण हानिको भी लाभके समान मानकर नेत्रादि देशमेंसे फिर अपने हृदय-कमलरूपी घरमें आ जाता है। जैसे दूसरे ग्रामसे अपने घर आये हुए मनुष्यको लाभके विचारसे सुखकी प्राप्ति होती है और हानिके विचारसे दुःखकी प्राप्ति होती है, इसी प्रकार नेत्रादि देशको छोड़कर हृदय-कमलरूपी अपने घरमें आयी हुई बुद्धि लाभके विचार-से सुखका अनुभव करती है और हानिको विचारकर दुःखका अनुभव करती है।

एक हृदयकमलरूपी घरके सिवा नखसे लेकर शिखापर्यन्त सर्व शरीर, नेत्रादि इन्द्रियोंसहित सर्व गोलक, पुरीतत तथा मस्तक—ये सब स्थान बुद्धिके लिये परदेश हैं, हृदयकमल ही बुद्धिका अपना देश है। जब जाग्रत् तथा स्वप्नके भोग देनेवाले कर्मोंका क्षय हो जाता है तब हृदयकमलके मध्यमें स्थित दहराकाश-रूप परमात्मामें प्राप्त हुई बुद्धि अपने कारण—अज्ञानमें मूर्छाको प्राप्त होती है। जैसे अत्यन्त मूर्छाको प्राप्त मनुष्य लोकमें मरा हुआ कहलाता है इसी प्रकार सुषुप्ति-में अपने कारण—अज्ञानमें मूर्छाको प्राप्त हुई बुद्धिमें लय-व्यवहार होता है। जैसे आकाशमें प्राप्त हुए तूलका लय आकाशमें हुआ, ऐसा कहा जाता है इसी प्रकार हृदयकमलके अन्दर परमात्मारूप आकाशमें प्राप्त हुई बुद्धिका लय होता है, ऐसा श्रुति कहती है। जैसे पट-का सङ्कोच होनेसे पटके चित्र लय-भावको प्राप्त होते हैं इसी प्रकार चित्त-धातुसे हृदयकमलका सङ्कोच हो जानेसे बुद्धिमें भी लयव्यवहार होता है। इसलिये हे बालाकि! यह विज्ञानमय आत्मा, भोक्ता पुरुष सुषुप्ति-अवस्थामें अन्तःकरणरूप उपाधिके लय होनेसे परमात्मा-के साथ अभेदरूप शयनका अनुभव करता है और जाग्रत्-अवस्थाके भोग देनेवाले कर्मोंके उदय होनेसे जाग्रत्-अवस्थाको प्राप्त होता है। जैसे मकड़ी अन्य साधनकी अपेक्षाके बिना अनन्त तन्तुओंको उत्पन्न करती है, इसी प्रकार शयनमेंसे उठा हुआ परमात्मा-देव प्राणादि अनेक सृष्टियोंको उत्पन्न करता है। जैसे प्रज्वलित महान् अग्नि अपने समान रूपवाली अनेक चिनगारियाँ उत्पन्न करता है, इसी प्रकार शयनसे उठा हुआ परमात्मादेव प्राणको, अन्तःकरणको, ज्ञानेन्द्रियोंको, कर्मेन्द्रियों और उनके व्यापारको उत्पन्न करता है। इन वाक् आदि इन्द्रियोंमेंसे अग्नि आदि देवता उत्पन्न होते हैं और अग्नि आदि देवताओंसे शब्द आदि विषय और सम्पूर्ण लोक उत्पन्न होते हैं। इसप्रकार जाग्रत्-अवस्थामें वागादि इन्द्रियोंकी, अग्नि आदि देवताओंकी और शब्दादि विषयोंकी उत्पत्ति नित्य होती रहती है और सुषुप्ति-अवस्थामें उन सबका नित्य लय होता रहता है।

बालाकि—हे राजन्! आपने जाग्रत्में जो वागादिका नित्य लय कहा, यह मुझे ठीक नहीं जँचता।

अजातशत्रु—हे बालाकि! वेदभगवान्के कहे हुए अर्थमें बुद्धिमान् पुरुषको कदापि अविश्वास नहीं करना चाहिये। जिस अर्थका शास्त्र उपदेश करे वही अर्थ बुद्धिमान् पुरुषको अङ्गीकार करना चाहिये। क्योंकि स्वर्गादि अतीन्द्रिय पदार्थोंमें, जो इन्द्रियजन्य ज्ञानके विषय नहीं हैं, शास्त्रके प्रमाणसे ही ज्ञान उत्पन्न होता है, शास्त्र-प्रमाणके सिवा प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे स्वर्गादिका ज्ञान नहीं होता। भाव यह है कि परस्परविरोधी जिन पदार्थोंमें दो प्रमाणोंकी प्रवृत्ति होती है, उन पदार्थोंमें संशय होता है। इसप्रकारका संशय यहाँ सम्भव नहीं है, क्योंकि वेदके बोध करवाये हुए पदार्थोंमें किसी प्रत्यक्षादि प्रमाणकी प्रवृत्ति नहीं होती, इसलिये वेदके अर्थमें संशय करना बुद्धिमान् पुरुषके लिये योग्य नहीं है। शास्त्रके प्रमाणसे जाने हुए स्वर्गादि लोक, इन्द्रादि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

देवता तथा धर्म-अधर्मरूप अदृष्ट—इन सबमें प्रत्यक्ष-प्रमाणके बाधका सभीने अनुभव किया है। क्योंकि यदि शास्त्रप्रतिपादित स्वर्गादिमें प्रत्यक्ष-प्रमाणकी प्रवृत्ति होती हो तो सभी जीवोंको नेत्रादिरूप प्रत्यक्ष-प्रमाणसे स्वर्गादिका प्रत्यक्ष ज्ञान होना चाहिये; परन्तु प्रत्यक्ष-प्रमाणसे जीवको स्वर्गादिका अनुभव नहीं होता, इसलिये स्वर्ग-नरकादिके विषयमें मूढ़ पुरुषोंका परस्पर विवाद नहीं होना चाहिये। प्रत्यक्ष-प्रमाणके विषयरूप घटादि पदार्थोंमें कोई पुरुष विवाद नहीं करता और स्वर्ग-नरकादिके विषयमें मूढ़ पुरुषोंको अनेक प्रकारके विवाद करते हुए देखनेमें आता है। कोई मूढ़ तो ऐसा कहते हैं कि स्वर्ग-नरकादि हैं ही नहीं, कोई कहते हैं कि स्वर्ग-नरक यहीं हैं, यहाँके सिवा और कहीं स्वर्ग-नरक नहीं हैं; धनादि पदार्थवाला पुरुष यहाँ स्वर्ग भोगता है और निर्धन दरिद्री पुरुष और पशु आदि नरकका दुःख भोगते हैं। इस-प्रकार मूढ़ पुरुष स्वर्ग-नरकके विषयमें विवाद करते हैं। किन्तु ऐसा होना नहीं चाहिये, क्योंकि प्रत्यक्ष-प्रमाण-से स्वर्ग-नरकका अनुभव किसी जीवको नहीं होता। यद्यपि शास्त्रप्रतिपादित स्वर्गादिका प्रत्यक्ष ज्ञान योगीको होता है तो भी योगी पुरुषका प्रत्यक्ष-प्रमाण शास्त्रके प्रमाणसे विरुद्ध नहीं होता, क्योंकि शास्त्रके अनुकूल आचरणसे योगीको प्रत्यक्षता उत्पन्न होती है। इसलिये योगीका प्रत्यक्ष-प्रमाण पूर्वसिद्ध शास्त्र-प्रमाणसे विरोध नहीं करता। अतएव शास्त्रप्रतिपादित अर्थमें प्रत्यक्ष-प्रमाणकी प्रवृत्ति नहीं होती। जैसे शास्त्रप्रति-पादित अर्थमें प्रत्यक्ष-प्रमाणकी प्रवृत्ति नहीं होती इसी प्रकार अनुमान-प्रमाणकी भी प्रवृत्ति नहीं होती, क्योंकि प्रत्यक्ष-प्रमाणकी अपेक्षासे ही पीछे अनुमान-प्रमाणकी प्रवृत्ति होती है। अर्थात् जिस पुरुषको पूर्वमें रसोईघर आदिमें बारंबार धूम तथा अग्निके सहचार-दर्शनसे ऐसा व्याप्तिज्ञान प्रत्यक्ष-प्रमाणसे उत्पन्न हुआ है कि धूम अग्निका व्याप्य है, वही पुरुष पर्वतमें धूम देखकर पूर्वकी व्याप्तिका स्मरण करके पर्वतमें अग्निका अनुमान करता है। इसप्रकारसे प्रत्यक्ष-प्रमाण स्वर्गादि पदार्थोंमें प्रवृत्त नहीं होता, इसलिये अनुमान-प्रमाण भी स्वर्गादि-का बोध नहीं करा सकता। यदि प्रत्यक्ष-प्रमाणकी अपेक्षाके बिना ही अनुमान-प्रमाण अपने अर्थका बोध करावे तो उसका नाम ही अनुमान-प्रमाण न हो, क्योंकि 'अनुमान' शब्दमें दो पद हैं, एक 'अनु' और दूसरा 'मान'। उनमें अनुका अर्थ पीछे है और मान-पदका अर्थ प्रमाण है। इन दोनों पदोंके मिलनेसे 'पीछे होने-वाला प्रमाण' ऐसा 'अनुमान' शब्दका अर्थ सिद्ध होता है, इसप्रकार विचार करनेसे प्रत्यक्ष-प्रमाणके पीछे अनुमान-प्रमाणकी सिद्धि होती है और प्रत्यक्ष-प्रमाण-जन्य ज्ञान अल्प विषयमें प्रवृत्त होता है, इस कारण-से भी शास्त्रप्रतिपादित स्वर्गादिमें प्रत्यक्ष-प्रमाणकी प्रवृत्ति नहीं होती, क्योंकि प्रत्येक इन्द्रियसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उसको प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं। यह प्रत्यक्ष ज्ञान एक प्रकारका नहीं, किन्तु नेत्रादि इन्द्रियों-के भेदसे भिन्न-भिन्न होता है। उनमें चक्षु-इन्द्रियसे उत्पन्न हुए प्रत्यक्ष ज्ञानको चाक्षुष प्रत्यक्ष कहते हैं, रसनइन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष ज्ञानको रासन प्रत्यक्ष कहते हैं, त्वक्इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष ज्ञानको त्वाच प्रत्यक्ष कहते हैं, घ्राणइन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष ज्ञानको घ्राणज प्रत्यक्ष कहते हैं और श्रोत्र इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष ज्ञानको श्रावण प्रत्यक्ष कहते हैं। इसप्रकार इन्द्रियोंके भेदसे प्रत्यक्ष ज्ञान भी भिन्न-भिन्न होता है। इसलिये सब पदार्थोंमें एक प्रत्यक्ष ज्ञानकी प्रवृत्ति नहीं होती, किन्तु भिन्न-भिन्न रूपादि विषयोंमें भिन्न-भिन्न प्रत्यक्ष ज्ञानकी प्रवृत्ति होती है। भाव यह है कि चाक्षुष ज्ञानके विषय रूपादि पदार्थोंको रासन ज्ञान विषय नहीं करता और रासन ज्ञानके विषयरूप रसादि पदार्थोंको चाक्षुष ज्ञान विषय नहीं करता। इसी प्रकार अन्य प्रत्यक्ष

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ज्ञानोंमें जान लेना चाहिये। अल्प अर्थको विषय करनेवाला प्रत्यक्ष ज्ञान शास्त्रप्रतिपादित अर्थको विषय नहीं कर सकता। जिस समय देवदत्त नामके पुरुषके नेत्रका सम्बन्ध घटादि पदार्थोंके साथ होता है, उस समय उसको घटादिका प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। देवदत्त पुरुषके सिवा अन्धे आदि यज्ञदत्त नामके पुरुषको इन्द्रियके सम्बन्ध विना घटादिका प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता, इसलिये प्रत्यक्ष ज्ञानके योग्य घटादि विषयोंमें भी स्वतन्त्र प्रत्यक्ष ज्ञानकी प्रवृत्ति नहीं होती; किन्तु विषयके साथ इन्द्रियके सम्बन्धकी अपेक्षासे ही प्रत्यक्ष ज्ञानकी प्रवृत्ति होती है। इससे ऐसा सिद्ध होता है कि जब प्रत्यक्ष ज्ञानके योग्य घटादि पदार्थोंमें भी प्रत्यक्ष ज्ञानकी स्वतन्त्र प्रवृत्ति नहीं होती तो फिर वेदप्रतिपादित स्वर्गादि अतीन्द्रिय पदार्थोंमें प्रत्यक्ष ज्ञानकी प्रवृत्ति किसप्रकार होगी? वेदप्रमाणकी अपेक्षारहित केवल प्रत्यक्ष-प्रमाण दोषरहित नहीं होता, वह दोषवाला ही होता है, क्योंकि नेत्रादि इन्द्रियोंका नाम प्रत्यक्ष-प्रमाण है। इन नेत्रादि इन्द्रियोंमें अन्धत्व, बधिरत्व आदि दोषोंका ज्ञान सभीको है, इसलिये दोषयुक्त प्रत्यक्ष-प्रमाण वेदके अपूर्व अर्थका बाध नहीं कर सकता और वेदबोधित स्वर्गादि अर्थोंमें उक्त रीतिसे प्रत्यक्ष-प्रमाणकी प्रवृत्ति न होनेसे, उसमें अनुमान-प्रमाणकी भी प्रवृत्ति नहीं होती, क्योंकि प्रत्यक्ष-प्रमाणकी अपेक्षासे ही अनुमान-प्रमाणकी प्रवृत्ति होती है।

(क्रमशः)

श्रीकृष्ण-दर्शन

श्याम वपु, मंजु मुख, माधुरी अनूप देखि,
लज्जि हिय केकी कञ्ज वन पगु धारे हैं।
त्रिभुवनविमोहन सुरूप लावण्यनिधि,
सुषुमा विलोकि जासु कोटि काम वारे हैं॥
रुचिर कपोल चारु नासिका सरोज नैन,
अति सुकुमार रम्य केश घुँघुरारे हैं।
नन्द दृग-तारे सब जग उजियारे यह,
मृदु मुसकानवारे जसुदा-दुलारे हैं॥

—विनायकराव भट्ट

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चरित्र-बल

(लेखक—पं० श्रीप्रह्लादत्तजी शर्मा 'शिशु')

बाह्यरूपेण आज सारा विश्व—मानव सुख और शान्तिके लिये जितना प्रयत्नशील है सम्भव है उतना कदाचित् ही हुआ हो। वह आनन्द और शान्तिकी प्राप्तिके लिये आज अतल समुद्रकी भीषण रव करती हुई उत्ताल तरङ्गोंपर जलयानों-से दौड़ लगा रहा है। रेलोंसे समस्त पृथिवी-तलको छान रहा है। पक्षियोंकी तरह वायु-यानोंसे आकाशमें उड़ रहा है। स्वर्ण और रत्नोंसे अपने बृहत् कोषको भर रहा है। विज्ञानके द्वारा विद्युच्छक्तिका पता लगाकर रातको दिन बना रहा है और उससे बहुत-सी भौतिक-तात्त्विक बातें मालूम कर रहा है। रेडियो-द्वारा हजारों कोसोंपर बैठे हुए बातें कर रहा है। सुख और शान्तिके लाभार्थ भयङ्कर प्रबल तोपोंसे अग्नि-वर्षाकर नर-संहारमें प्रवृत्त है। अपने भोजनके लिये उत्तमोत्तम रुचि-अनुकूल मादक पेय, खाद्य, चोष्य, लेह्य आदि आहारसे अपने भोजन-पात्रोंको अलङ्कृत कर रहा है। और अपने शरीरको अधिक सुन्दर, चमकीले, कोमल तथा आकर्षक वस्त्रोंसे सुशोभित कर रहा है। बड़े-बड़े उद्यानोंका सौरभ शीशियोंमें भरकर अपनी पाकेटोंमें रखता है। परन्तु उसके इसप्रकार सभ्यातिसभ्य, सुसंस्कृत और दक्ष प्रतीत होनेपर भी यदि उससे पूछा जाय कि—ऐ पृथिवी, आकाश और सिन्धुमें चक्र लगानेवाले त्रिपथगामिन्! क्या तुझे तेरा अभिलषित सुख और शान्ति प्राप्त हुई तो वह यही उत्तर देगा कि 'नहीं' और कहेगा कि मैं आज भी उसी प्रकार सुख-शान्तिके लिये तड़प रहा हूँ जैसा कि उस समय था जब कि मैं पृथिवीपर रेंगनेवाले कीटके समान अज्ञ था। तब प्रश्न होता है कि क्या विश्व—मानवकी यह चाह आकाशकुसुमवत् है? क्या यह उसकी अनधिकार चेष्टा है? नहीं। आत्मा सत्य है, शाश्वत है। सत्यकी चाह सत्य ही होती है। उसकी चाह कभी असत्य नहीं हो सकती। तब क्या कारण है कि आज इतना घोर परिश्रम कर लेनेपर भी वह अपनी चिर-वाञ्छित शान्ति और सुखको प्राप्त नहीं कर सका?

इसका उत्तर आत्माकी उस दिव्य वाणीसे, जो उसके द्वारा उज्ज्वल अतीत कालमें उच्चरित हुई थी, एक ही वाक्यमें मिल जाता है यदि हम उसको हृदयके कान खोलकर सुनें। वह क्या है?

चरित्र-बलका अभाव

भारतका हृदयकमल इस चरित्र-बलके पावन सलिलमें ही प्रस्फुटित हुआ था। भारतका मनभ्रमर उसीके मधुर सौरभका पान करता हुआ गूँजता रहता था। उसने उच्चातिउच्च ऐहिक वैभव और ऐश्वर्य प्राप्त किया। चक्रवर्ती होकर विश्वपर शासन किया किन्तु चरित्रमें कभी धब्बा न लगने दिया। उसका राज्य-भवन चरित्र-बलकी नींवपर ही निर्मित था। भगवान् श्रीराममें क्या था? राजा हरिश्चन्द्र और युधिष्ठिरमें क्या था? और क्या था भीष्म और बुद्ध आदिमें, जिससे आज उनका नाम हमारे हृदयोंमें, हमारे रक्तमें शक्ति और स्फूर्तिका सञ्चार कर देता है? वह और कुछ नहीं था, था चरित्र-बल! केवल चरित्र-बल!! पूर्वकाल और मध्यकालको छोड़िये। अभी कलहीकी बात है कि वीर राजपुत्र सिन्धुके समान अट्टहास करती हुई शत्रु-सेनापर मुट्ठीभर संख्यामें निर्भय सिंहकी तरह कूद पड़ते थे। उनकी वीर रमणियाँ प्रज्वलित प्रचण्ड ज्वालाकी लपटोंमें आनके साथ अपने प्राण विसर्जन करती थीं। यह क्या था? उसी चरित्र-बलका एक अंश। जबतक उनमें चरित्र-बल रहा, तबतक विदेशी लोभी लुटेरे यहाँपर न जम सके। अन्तिम हिन्दू-सम्राट् पृथिवीराजके पतनका कारण उसके चरित्र-हीनताके अतिरिक्त और कुछ न था। उधर इतिहासमें महाराणा प्रताप चरित्र-बलकी ही उज्ज्वल प्रतिमा होकर हमारे सामने आते हैं। महाराष्ट्र-केसरी शिवाजीकी विजयका कारण उनके जीवनका अध्ययन कर लेनेपर चरित्र-बल ही आधार सिद्ध होता है।

विजय और ऐहिक राज्य-ऐश्वर्य बिना चरित्र-बलके भी प्राप्त हो सकता है। परन्तु भारतने ऐसी विजयके, ऐसे राज्य-ऐश्वर्यके सामने अपना मस्तक कभी नहीं झुकाया, जिससे वह आत्मरूपसे विरुद्ध हो बैठे। उसके हृदयपर यदि कोई शासन कर सकती थी तो वह चरित्र-बल-पूर्ण सत्ता ही। परन्तु क्या आज हममें वह चरित्र-बल है? बड़े-बड़े

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कालेजों और यूनिवर्सिटियोंकी अन्त्येष्टि-क्रिया कर लेनेपर भी क्या हममें चरित्र-बल नहीं आ सका ? प्लेटफार्मोंपर बड़ी जोशीली लम्बी स्पीचोंपर करतलध्वनि करा लेनेपर भी क्या हम उससे रहित हैं ? कानून (Law) के स्वामी बनकर उसको इच्छानुसार घुमा-फिरा लेनेपर भी क्या हम चरित्रवान् नहीं हो सके ?

इन सब बातोंका उत्तर हमें अपनी अन्तरगुहासे एक यही मिलेगा—नहीं ! नहीं !! नहीं !!!

यह सुनकर विचारवान् पुरुष रो पड़ेगा और कहेगा आह ! इतना होनेपर भी हम चरित्र-बल-हीन हैं ! तब वह चरित्र-बल क्या है ?

हमारी जीवन-यात्राका जो स्थूल और सूक्ष्म व्यापार किसी प्रकार भी मानवप्रकृतिके पूर्ण विकासमें बाधक न होकर उसको उसके चरम लक्ष्यतक पहुँचानेमें पूर्ण सहायक हो, वही चरित्र-बल है। यह हुई चरित्र-बलकी मूल व्याख्या। परन्तु शब्दोंमें एक अलौकिक शक्ति होती है। शब्दोंके द्वारा ही सृष्टिका कार्य चलता है और मनुष्यत्व, पशुत्व, ईश्वर और प्रकृति तथा सृष्टिके यावत् पदार्थोंका ज्ञान इन्हींसे प्राप्त होता है। इतर संस्कृत-शब्द तो विशेष चमत्कारपूर्ण होते हैं। उनके यथार्थ ज्ञानद्वारा हमें तद्-रूपका यथार्थ दर्शन हो सकता है। महर्षि पतञ्जलिकी यह उक्ति कि, सम्यक् प्रकारसे जाना हुआ शब्द मनुष्यको मुक्त कर देता है, उनकी यौगिक अनुभूति है। क्योंकि शब्द कामधुक् हैं। अतएव पाठक ! आइये, इस कामधेनुको दुहकर मधुर अमृतसम पय पान करें।

'चरित्र'-शब्द 'चर'-धातुसे बना है, जिसका अर्थ है गति और भक्षण। संस्कृत-नियमानुसार गतिके तीन अर्थ हैं—ज्ञान, गमन और प्राप्ति। और भक्षणका अर्थ है—आहार भोजन। इन अर्थोंके साथ तत्-शील अर्थमें प्रत्यय हुआ है। तत्-शील शब्दके भीतर 'मर्यादा' सन्निहित है। अतएव चरित्र-शब्दका स्पष्ट अर्थ हुआ मर्यादायुक्त ज्ञान, गमन, प्राप्ति तथा आहारसे जो प्राप्त होता है वह चरित्र-बल है। ये बातें जिसमें जितनी मर्यादायुक्त होंगी वह व्यक्ति उतना ही चरित्रवान् होगा। अब हम प्रत्येक शब्दकी कुछ विस्तृत व्याख्या करते हुए पहले 'भक्षण' पर ही प्रकाश डालते हैं। क्योंकि जीवनका आरम्भ यहींसे होता है।

प्रकृति (Nature) त्रिगुणमयी है। संसारकी प्रत्येक वस्तुमें इसीके सत्त्व-रज-तम गुण विद्यमान रहते हैं। ये ही गुण न्यूनाधिकरूपेण हमारे भक्ष्यमें भी होते हैं। हमारी मनःप्रकृतिके निर्माणका मूलाधार हमारा आहार है। क्योंकि मन-यन्त्रकी रचना भौतिक तत्त्वोंसे ही हुई है। तब वह प्रकृतिके उन गुणोंसे त्रिकालमें भी नहीं बच सकता जिनसे कि उसका निरन्तर संघर्ष हो। इतर मानव-जीवनकी जय, अजयका मूलाधार भी उसका मन ही है। छायासे डरकर भागनेवाला भी मन ही है और सिंहकी विकराल दाढ़ोंमें हाथ डालकर उसका संहार करनेवाला भी मन ही है। इतना ही नहीं केवल दृष्टिमात्रसे पालतू कुत्तेकी तरह सिंहकी गर्दन झुका देनेवाला भी मन ही है। सिंहका निर्भयतासे संहार करनेमें मनोबलके साथ रजोगुणका आधिक्य होता है और दृष्टिमात्रसे ही उसको पालतू पशु बना देनेमें मनोबलके साथ सत्त्वगुण प्रधान होता है। इसलिये हम अपने मनको (मनोबल-प्राप्तिके अन्य साधनोंसे अतिरिक्त) जैसा बनाना चाहें, आहारसे बना सकते हैं। सात्त्विक आहार हमारे मनको जो दर्पणकी तरह है स्वच्छ और परिष्कृत करता है। जिससे कि वह (मन) उन दिव्य गुणोंको, जो कि हमारी सूर्यवत् अन्तरात्मासे किरण-रूपमें प्रसरित होते रहते हैं, प्राप्त कर सकता है। हमारा शक्तिकेन्द्र ज्योतिर्मय आत्मा ही हमारे मनः-चन्द्रको प्रकाशित करता है। परन्तु वह (हमारा मन) उतना ही प्रकाश प्राप्त कर सकता है जितना कि हम तत्-प्राप्त्यर्थ उसको तद्-अनुकूल परिष्कृत कर सके हों।

सात्त्विक मनमें आयी हुई शक्ति भी संसारमें सात्त्विक-रूपमें ही प्रकट होगी तथा उससे सात्त्विक ही कार्य होंगे। और राजसिक मनमें आयी हुई शक्ति भी राजसिक ही होगी और तद्वत् ही कार्य होंगे। इसी प्रकार तामसिक मनके विषयमें समझिये। जिसप्रकार हम विद्युत्-शक्तिद्वारा पालन भी कर सकते हैं और संहार भी, यह बात बाह्य यन्त्र-गतिपर निर्भर है। इसी प्रकार हम आत्मशक्तिद्वारा जीवन और मृत्यु दोनों प्राप्त कर सकते हैं यह भी हमारे मनोयन्त्रपर निर्भर है। इसलिये यदि हम चरित्र-बलको प्राप्त करना चाहते हों तो, हमें ऐसा आहार, जो अधिक रजोगुणी या तामसिक हो, त्याज्य होगा।

यह तो हुआ आहारका मूलरूपमें गुण और दोषका विवेचन। परन्तु हमारा आहार अन्य कारणोंसे भी दूषित

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

होता है और उस दूषित या विकृत आहारका प्रभाव हमारे मन और शरीरपर होना अवश्यम्भावी है और दूषित मन चरित्र-बलकी प्राप्तिमें असमर्थ है। अतएव उन कारणोंको जानकर उनसे बचना हमारे लिये आवश्यक होगा। वे कारण निम्नलिखित हैं जिनसे आहार दूषित होता है।

तामसिक प्रकृतियुक्त पदार्थोंसे बना हुआ, तामसिक मनवाले मनुष्यसे बनाया हुआ भोजन। विवश तथा अरुचिपूर्ण मनुष्यके द्वारा बना हुआ। शरीरके करनेयोग्य संस्कारसे रहित व्यक्तिसे बना हुआ। दूषित दृष्टिके स्पर्शसे। दूषित परमाणुवाले व्यक्तिके स्पर्शसे। असंस्कृत पात्र और जलसे। रजस्वला स्त्रीकी छाया और स्पर्शसे। इसी प्रकार ऐसे साधनोंसे प्राप्त किया हुआ जो अनैतिक हो। (अर्थात् असत्य, हिंसा, कपट, छल आदि उपायोंसे उपार्जित धनद्वारा प्राप्त अन्न।) जो स्वतः ही अनैतिक साधनसे प्राप्त किया गया है उसका फल तो कर्ताके ऊपर आरम्भहीसे प्रत्यक्ष है। परन्तु जो दूसरेसे भी अनैतिक साधनसे प्राप्त किया हुआ भोजन किसी अन्यको मिले वह भी चरित्रमें विकार ही उत्पन्न करेगा।

परन्तु आज चरित्रनायक भारत-जनता अधिकांशमें भक्ष्यकी इस सूक्ष्मताको समझनेमें असमर्थ होती जा रही है। इसी कारण प्रत्यक्षमें सभ्य और विकसित मस्तिष्क मनुष्य भी अमर्यादित और विशृङ्खल भावोंका प्रसार कर रहे हैं जो उनकी मनःप्रकृतिके अनुकूल ही है। वे चाहें जैसा विकृत और दूषित आहार कर लें, उनको उसके दोष और विकारका प्रभाव मालूम ही नहीं होता। कारण स्पष्ट है। निर्मल प्रकृति और स्वच्छ मन ही विकृतिका अनुभव कर सकता है। परन्तु हमारी प्रकृति और हमारा मन हमारे दूषित और अनैतिक साधनसे प्राप्त आहारसे इतने मलिन हो गये हैं कि वे दोषानुभव करनेमें सर्वथा असमर्थ हैं। कारण, उज्ज्वल वस्त्रपर ही मैला धब्बा दिखायी देता है, परन्तु उस मैले वस्त्रपर जो स्वतः दोषाच्छन्न है, क्यों धब्बा दिखायी देगा? इस विषयमें हम जिज्ञासु पाठकोंके लिये एक प्रत्यक्ष सत्य उदाहरण देते हैं।

सौभाग्यसे इसी वर्ष यात्रा करते हुए हरद्वारमें अकिञ्चनको एक ऐसे महान् पुरुषके दर्शन प्राप्त हुए जिनकी अन्तःशक्ति और ज्ञानकोषका अनुमान करना मेरे-जैसे तुच्छकी सामर्थ्यसे बाहर है। एक दिनकी बात है कि वे भोजनके अन्तमें इसप्रकार चेष्टा करने लगे जैसा कि मुँहमें मिर्च लगनेसे किया जाता है। किन्तु शाकादिमें मिर्च नाममात्रको भी न डाली गयी थी। पासमें बैठे एक जिज्ञासुने पूछा—'पूज्यपाद! क्या बात है? क्या किसी शाकमें मिर्च है?' पास ही वे महाशय भी बैठे थे जिनके यहाँसे भोजन बनकर आया था। वे बोले—'मिर्चका तो मैंने निषेध कर दिया था, सम्भव है भूलसे गिर गयी हो।' पूज्यपादने कहा—'नहीं, मिर्च नहीं मालूम होती, और कुछ बात होगी।' पुनः बहुत-सी बात होनेपर पूज्यपाद बोले—'विकृत भोजनसे भी ऐसा हो जाता है। मुँहमें छाले पड़ जाते हैं।' सायंकालमें पूज्यपादसे मिलनेपर मालूम हुआ कि मुँहमें छाले पड़ गये हैं। मेरे मित्रने अपने घर इसकी जाँच की। मिर्च बिल्कुल नहीं डाली गयी थी। पर मालूम हुआ कि उनकी बहिन, जो आयी हुई थीं, रजस्वला थीं और उन्होंने अपने हाथोंसे केवल शाक कतरा था। हमलोग यह जानकर अत्यन्त चमत्कृत हुए, परन्तु क्या ऐसे प्रभाव हमलोगोंपर भी हो सकते हैं? नहीं, क्योंकि आज हमारे मन सूक्ष्मद्रष्टा पावन ऋषियोंसे आविष्कृत—भोजनाचार पालन न करनेके कारण अत्यन्त मलिन हो गये हैं। निर्मल प्रकृति ही मलिनतासे बचनेकी चेष्टा किया करती है। परन्तु चरित्र-बल, जिसकी नींव ही सात्त्विक भूमिपर है, हम तब ही प्राप्त कर सकते हैं जब कि हमारा मन परिष्कृत हो। अतएव हमारा आहार उस आचारसे संस्कृत होना चाहिये जो कि हमारी सात्त्विक प्रकृतिका विरोधी न हो।

चरित्र-बलका दूसरा द्वार है मर्यादायुक्त ज्ञान

जो कुछ जाना जाता है वही ज्ञान है। विकासक्रमके अनुसार यह तमाम प्राणधारियोंमें विद्यमान है। परन्तु हमें यहाँ मानव-ज्ञानके विषयमें ही विचार करना है। ज्ञानका दिव्य कलेवर अभौतिक है। वह स्वतः प्रकृतिकी रचना नहीं है, वरं वह प्रकृतिके द्वारा जाना जाता है। मानव-देहमें प्रकृतिने पाँच कोषोंका निर्माण किया है। ये पाँच कोष उसके कौशलके सूक्ष्म यन्त्र हैं। इन यन्त्रोंके द्वारा ही मानव-जीवनका सृष्टि और उससे परतत्त्वसे संघर्षण होता है। उन पाँच कोषोंमें हमारा विषयाभिलषित कोष विज्ञानमय है। शिशुके विज्ञानमय कोषके पीछे भी वह सम्पूर्ण ज्ञान रहता है जो कि उसको जानना है परन्तु उसका (शिशुका) ज्ञानमय कोष अविकसित होनेके कारण अपनी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विकास-अवस्थाके अनुसार ही वह जान पाता है। स्वप्रकृतिके विकासानुसार जैसे-जैसे शिशु बढ़ता है वैसे-वैसे ही उसका वह कोष भी विकसित होता रहता है। इसलिये बाल्य, यौवन, प्रौढ और वृद्धावस्थाके ज्ञानमें अन्तर होता है। अन्तरका कारण कोषका विकास और संकोच है, न कि ज्ञान। वह (ज्ञान) एक है, विभिन्न नहीं। विज्ञानमय कोषका वाहक यन्त्र मन है, जिसके सूत्र हमारी समस्त इन्द्रियोंमें सन्निहित हैं। अतः कहा जाता है कि इन्द्रियोंके द्वारा हमें ज्ञान होता है। परन्तु यथार्थ बात एक गम्भीर रहस्यमें है। क्योंकि हम वह सब जानते हैं जो कि हमें आगे जानना है। केवल इस जीवन-मरण-चक्रके कारण ही हमें वही किताब बार-बार पढ़नी पड़ती है जिसको हम न जाने कितनी बार पढ़ चुके हैं। किताबमें पाठ आता है 'सत्य बोलो' हम उसे पढ़ते हैं। परन्तु केवल आँखोंसे अक्षर देखना और जीभसे उच्चारण करना ही हमारा पढ़ना रहा है। किन्तु जबतक हम 'सत्य बोलो' इसको अपने जीवनमें परिपूर्ण न कर देंगे तबतक तो हमें प्रकृतिकी पुस्तक बराबर पढ़नी ही पड़ेगी चाहे हम संसारके तमाम शास्त्र पढ़ डालें। उस प्रकृतिकी पुस्तकके पढ़नेका साधन-द्वार क्या है ? वही चरित्र-बल ! और वह (चरित्र-बल) कैसे प्राप्त हो सकता है ? मर्यादायुक्त ज्ञानसे।

हमें अतीव सुन्दरी पर-स्त्रीको देखकर कामोत्तेजना होती है। हमारे मनमें दूसरेकी सम्पत्तिको देखकर लोभ जागता है। यह भी एक ज्ञान है परन्तु यह सब आचरणीय नहीं है। क्योंकि यह मर्यादारहित ज्ञान है। किन्तु आज बहुत-से समाजवाहक व्यक्ति कह रहे हैं—'प्रकृतिकी रुचिको हेय या पापपूर्ण कहना अज्ञता है।' और उनकी समझमें स्त्री और पुरुषकी कामवासनाकी पूर्तिका नाम ही प्रेम है और कामवासना है स्वाभाविक। परन्तु उनकी यह समझ चरित्र-हीनताकी पराकाष्ठा है। वे यह भूल रहे हैं कि मानव-जीवन प्रकृतिका गुलाम नहीं वरं स्वामी बननेके लिये उद्भूत हुआ है और वह प्रकृतिपर प्रभुत्व तभी पा सकेगा जब कि उसका ज्ञान मर्यादायुक्त होगा।

मर्यादायुक्त ज्ञान क्या है ?

मानवी प्रकृतिका निरीक्षण करनेपर हमें मालूम होता है कि उसमें दो शक्तियाँ काम कर रही हैं, जो परस्पर बिल्कुल विरोधिनी हैं। पहली शक्ति उसको नियन्त्रणमें रखना चाहती है और दूसरी उच्छृङ्खल बनाना। भारतीय सत्य-द्रष्टाओंने पहली शक्तिको सुर-शक्तिके नामसे सम्बोधित किया है और दूसरीको आसुरी शक्तिके नामसे। वे कहते हैं कि—'अनादिकालसे यह सुर और असुर-शक्तिका व्यष्टि और समष्टिरूपसे परस्पर संघर्ष चला आता है। परन्तु मानवको असुर-शक्तिपर विजय पाकर सुर-शक्तिमें ही प्रतिष्ठित होना है। काम, क्रोध, लोभ, मोह और अभिमान आदि ही व्यष्टिरूपेण आसुरी शक्तिके अस्त्र हैं। इन्हींसे वह सुर-शक्तिको आच्छादित करती है। इस विषयमें कहा जा सकता है कि उस जगन्नियन्ताने इनकी रचना ही क्यों की। इसका उत्तर दिया जा सकता है। परन्तु उसको ठीक-ठीक समझनेके लिये उस अवस्थामें पहुँचनेकी आवश्यकता होगी जिसमें कि वह (उत्तर) प्राप्त होता है। सुनिये—

वास्तवमें स्वतः आसुरी शक्ति कुछ नहीं है। क्योंकि वह असत्य है। रहस्य यह है कि सृष्टिका कार्य करनेके लिये मनुष्यमें प्रवृत्तिका होना आवश्यक है। इसलिये भगवान् श्रीकृष्णके इन वचनोंके अनुसार—

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।

मनुष्यमें सन्तान-उत्पत्तिके लिये कामका होना आवश्यक है। परन्तु यही काम धर्म-विरुद्ध अर्थात् मर्यादारहित होने-पर योगीश्वर श्रीकृष्णका रूप न रहकर असुर-प्रकृतिका रूप धारण करता है। इसी प्रकार आततायियोंके लिये क्रोधका, सत्य-ज्ञान-प्राप्तिके लिये लोभका, अपनेपन (आत्मत्व) के लिये मोहका तथा वस्तुत्व 'अहम्' जाननेके लिये अभिमानका होना आवश्यक है। परन्तु यही क्रोध-लोभादि मर्यादारहित होते ही असुर-शक्तिके अस्त्र बन जाते हैं, जिनसे मानव-जीवनका वह प्रवाह जो सुर-राज्यकी ओर जाता है, नहीं जा पाता और मनुष्य आसुरी शक्तिका ग्रास बन जाता है। जब समष्टिरूपसे मनुष्य आसुरी शक्तिके भक्त बन जाते हैं तब उस देशमें असुर-राज्य ही समझना चाहिये, जिसके उच्छेदनार्थ ही महान् दैवी शक्तिको प्रादुर्भूत होना पड़ता है। यह क्रान्ति अटल है। इसीसे मर्यादायुक्त ज्ञानका आलोक भूमण्डलपर फैलता है जो मानव-जीवनके लिये ही नहीं वरं समस्त विश्वमें शान्ति-सुधा प्रस्रवण करनेके लिये परम आवश्यक है। तब हमें वह मर्यादायुक्त ज्ञान उन्हीं दिव्य आत्माओं-के आचरणोंसे, 'जो अपनी प्रकृतिपर विजय पाकर हमारे लिये अपना आदर्श और शास्त्ररूपमें विधि-वाक्य छोड़ गये

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हैं,' प्राप्त होगा। जीवनकी प्रत्येक स्थितिमें हमें मर्यादायुक्त ज्ञानकी प्राप्तिके लिये एक रामायण-ग्रन्थ ही सब प्रकारसे पर्याप्त है। उसके द्वारा हम श्रद्धासहित मर्यादायुक्त ज्ञान लाभकर चरित्र-बलको प्राप्तकर अपने जीवनमें विजयी हो सकते हैं।

चरित्र-बलका तीसरा सोपान गमन अर्थात् व्यापार है

व्यापारसे मन और शरीर दोनोंका सम्बन्ध है। परन्तु चरित्र-बलका शारीरिक व्यापारसे इतना सम्बन्ध नहीं है जितना मानसिक व्यापारसे है। क्योंकि हमारे शारीरिक (बाह्य) व्यापार ऐसे हो सकते हैं जो देखनेमें पूर्ण चरित्रवान्-के-से हों। परन्तु बाह्याचरणसे ही हम यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि यह चरित्र-बल है। सम्भव है, वह शिष्टाचार-मात्र हो, जो कि दिखावेके लिये भी किया जा सकता है। पाश्चात्य देशोंमें यह पूर्णरूपेण पाया जाता है। सच्चा बन-कर दिखलाना दूसरी बात है और यथार्थमें सच्चा बनना दूसरी। 'Honesty is the best policy' का अभि-प्राय और आचरण आज नीतिके लिये है और पाश्चात्य नीतिका अर्थ है जिससे स्वार्थका साधन हो सके। आज भारत भी इसी नीतिका शिकार होकर स्वयं इस नीतिको अपना रहा है और अपने उज्ज्वल सुर-राज्यको असुर-सम्पत्तिके अधीन कर रहा है। परन्तु नीति (Policy) और चरित्र-बलमें आकाश और पातालका अन्तर है। पॉलिसी है सत्यकी नकल करना अर्थात् नाट्य-मञ्चपर एक पैसेको अपना सर्वस्व समझनेवाले मनुष्यके द्वारा त्यागी जड़भरतका अभिनय कर दिखाना।

पुष्प-वाटिकामें भगवान् श्रीराम जनकतनया श्रीसीता-को अवलोकनकर कहते हैं—'प्रिय लक्ष्मण! क्या बात है कि मेरा मन जो आजतक संसारका सौन्दर्य देखकर एक क्षणके लिये भी कभी विचलित नहीं हुआ था, वह आज इस राजकुमारीको देखकर चञ्चल हो उठा है?' पवित्र सूर्य-कुलके राजकुमारके हृदयमें क्या कभी 'विकार' उत्पन्न हो सकता है? पाठक! इस 'सूर्य-कुल' शब्दके भीतर राजकुमार राम क्या अनुभव कर रहे हैं—उसे क्या आप बता सकेंगे? क्यों नहीं, वही पूर्व पुरुषोंद्वारा पालित रक्तानुगत-प्राप्त चरित्र-बल! तब चरित्र-बल-पूर्ण रामका हृदय बाह्य कारणसे क्यों चञ्चल होने लगा? मर्यादित व्यापारवान् व्यक्तिको महान् ऐश्वर्य तथा बलवान्-से-बलवान् आकर्षण भी विपरीत मार्गपर नहीं ले जा सकता। क्योंकि उसका अन्तःदुर्ग (मन) सुदृढ़ है। तब भगवान् श्रीरामके लिये अन्तः-सत्य आकर्षण ही (मर्यादित व्यापार ही) आकर्षक हो सकता है। और वह यह कि चरित्र-बल-पूर्ण रामके लिये चरित्रबलपूर्णा भगवती श्रीसीता ही आकर्षक हो सकती हैं। यह है अन्तःरूपेण चरित्र-बलका चरित्र-बलको आकर्षण करना, जिससे द्विगुणित शक्तिके साथ संसारका कल्याण होता है। यह है वह मानव-आदर्श जिसके कारण भारतने विश्वके मानवोंके हृदय-आसनपर अपना दिव्य राज्य स्थापित किया है। उसकी बाह्य परतन्त्रता या स्वतन्त्रतापर उस राज्यका अवलम्ब नहीं। इसमें सौन्दर्य-प्रलोभन नहीं, काम-तृष्णा नहीं और न है आर्थिक पिपासा। परन्तु इसका अनुभव हमें भगवान् श्रीराम और भगवती सीताके चरणोंमें बैठकर उनके दिव्य चरित्रके अनुशीलनसे ही हो सकता है। किन्तु आज पाश्चात्य देशोंकी बाज़ारू संस्कृतिकी बाहरी चमक-दमकसे चौंधियाये हुए और उसी बाज़ारू संस्कृतिके कालेजों और यूनिवर्सिटियोंमें शिक्षा पाये हुए अनेक नवयुवक उस अपने पूज्य भारतको शिक्षा दे रहे हैं कि मनुष्यको अपनी वैषयिक इच्छाको स्वतन्त्रतापूर्वक प्राप्त करना उसका प्राकृतिक धर्म है। वे भारतकी उन कन्याओंको (जो भारतीय दृष्टिमें मातृ-मूर्तिकी विशुद्ध प्रतिमा, आदिशक्ति दुर्गाके रूपसे पूज्य हैं) 'विवाहसे पूर्व ही सलाह देते हैं—माता बननेकी।' आह! क्या यह सुनकर विदीर्ण नहीं हो जाता भारतीय हृदय! क्या हूक-हूककर रो नहीं पड़ती भारतकी आत्मा। आह! क्या वह इसी दूषित-मस्तिष्क विषय-लोलुप सन्तानपर अपना उज्ज्वल स्व-राज्य स्थापित कर सकेगा? इसपर भी वे दुहाई देते हैं चरित्र-बलकी। पतन! घोर पतन!!

कहना पड़ेगा कि चरित्र-बलहीन पुरुषसमाज चाहता है स्त्रीसमाजका अपनेसे युक्त विहार। क्योंकि उसको काम-तृष्णामें, नहीं-नहीं, कामोत्तेजनामें, नवजीवन और नव-स्फूर्तिका अनुभव होता है। उसके शिष्टाचारके झूठे आँचलमें कामतृष्णा छिपी हुई है और वह पाश्चात्य वृत्तियोंका गुलाम होकर इसप्रकार भारतीयताका विनाश कर रहा है।

आजकल इसी प्रकारके उपदेशों, व्याख्यानों और लेखोंका प्रचार बढ़ रहा है जो चरित्र-बलके विनाशक हैं। इसके प्रचारकगण सामयिक वायुमण्डलमें अपने-आपको बड़ा क्रान्तिकारी प्रसिद्धकर नवीन युग, नवीन सभ्यता स्थापित

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करना चाहते हैं। उनकी इस क्रान्ति, नवीन युग और नवीन सभ्यताका अर्थ है भारत-हृदयस्थ उस पुण्य अतीत आलोकका (जिसके कारण वह (भारत) विश्वमें शान्तिप्रशस्त तथा विश्व-मुकुट-मणि माना गया) सम्बन्ध-विच्छेद करना। उधर सभ्य कहलानेवाले पाश्चात्य देशोंके अनेक गम्भीर द्रष्टा कह रहे हैं कि विश्वको शान्तिसुधा पान करनेके लिये भारतीय संस्कृतिको अपनाना पड़ेगा। फिर भी ये दिक्-भ्रमी भारतीय अपनी संस्कृतिका परित्याग कर उसी पाश्चात्य संस्कृतिमें बह रहे हैं जिसको कि वे (पाश्चात्य लोग भी) अन्तःसारहीन और अशान्त पा रहे हैं। कमाल यह है कि ये उस बाज़ारू ललनाको भारतीय गृह-देवी बतलाकर भोली भारतीय जनताको पथ-भ्रष्ट कर रहे हैं। स्वतन्त्रताके नामपर इसप्रकार उच्छृंखलताका प्रचार हो रहा है जिसके कारण भारतीय जनता मर्यादित व्यापारका परित्याग कर अपने भारतीय चरित्र-बलसे शून्य होती जा रही है। परन्तु क्या चरित्र-बलके बिना यथार्थ स्वतन्त्रता प्राप्त हो सकती है ? और यदि ऐसी स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाय भी तो उससे मानवी जीवनके विकासका क्या सम्बन्ध ? यह तो पशु-राज्यकी स्वतन्त्रता है और उसीकी स्थापना ! आजकी हमारी इस चाहका मूल कारण क्या है ? सुनिये—

वैदिक विकास-सिद्धान्तानुसार 'जीवन' निम्नराज्यमें होकर आया है। इसके पूर्व वह प्रकृतिके अधीन था। उसको मानवदेहमें आकर ही प्रकृतिपर शासन करनेका अधिकार प्राप्त होता है। तब उसी विकास-सिद्धान्तके अनुसार मानवका आदर्श निम्नराज्य (पशु-पक्षी आदि) नहीं रहता वरं देवत्व ही उसका आदर्श होता है। परन्तु मनुष्य उस स्वतन्त्रताका, जो विकासानुसार उसे प्राप्त हुई है, सदुपयोग न कर, दुरुपयोग भी कर सकता है। अर्थात् वह देवत्वकी ओर न जाकर पशुत्वकी ओर भी जा सकता है। और तब वह अवश्य पशु-पक्षियोंसे अपना आदर्श चुनेगा। और ऐसे मनुष्य ही कह सकते हैं कि कामोत्तेजनापर स्वतन्त्रता-पूर्वक अपनी काम-वासनाको पूर्ण करना प्राकृतिक धर्म है। क्योंकि उन्हें विकासक्रमसे आगे न बढ़कर पुनः निम्नराज्य-में ही प्रवेश करना है। परन्तु निम्नराज्यमें भी पशु-पक्षी इत्यादि प्रकृतिके अधीन ही व्यापार करते हैं। पर यह उच्च राज्यमें प्राप्त स्वतन्त्र जीवनवाला मानव स्वतन्त्रताके दुरु-पयोगके कारण पशुराज्यमें नहीं, वरं असुरराज्यमें पतित होता है। लेकिन बाहरी प्रलोभनोंके सामने इस बातको कौन सोचता है ? बस, यह है आजकी भीतरी चाहका रहस्य ! तथापि हमें मानव-चरित्रके ध्येयपर पहुँचनेके लिये मनुष्यत्व प्राप्तकर देवत्वकी ओर बढ़ना होगा और वह तभी हो सकेगा जब हमारे व्यापार मर्यादायुक्त हों। मर्यादायुक्त व्यापारसे हमारा मन मर्यादित होता है और धीरे-धीरे वह उस दिव्य-भूमिके योग्य बन जाता है जहाँ उसको पहुँचना है। मनके मर्यादायुक्त व्यापारमें उत्तीर्ण होनेका लक्षण यह है कि वह (मन) स्वप्नावस्थामें भी उन कार्योंको नहीं करे जो मर्यादाशून्य तथा आसुरिक हैं। यदि हम स्वप्नमें भी असुर-राज्यमें प्रवेश करते हैं और उसके शिकार हो जाते हैं तो हमें समझना चाहिये कि हमारा अन्तर्जगत् अभी सुदृढ़ नहीं हुआ। चरित्र-बलके साधक मानवको अपने मन-की गति-विधियोंपर गम्भीर दृष्टि रखनी चाहिये। क्योंकि मन साधनावस्थामें जितना उन्नत होगा उतने ही विस्तृत-रूपमें उसके लिये प्रलोभन होगा, जिससे कि आत्माको धोखा दिया जा सके। महर्षि विश्वामित्रकी साधना भङ्ग करनेके लिये इस लोकका सौन्दर्य असमर्थ हो चुका था। तभी तो स्वर्गसे मेनकाने आकर उनकी साधना भङ्ग की। यही हो सकता था। क्योंकि सुरराज्यमें प्रविष्ट मानवके प्रलोभनार्थ सुर-सम्पत्ति ही हो सकती है, मानव-सम्पत्तिसे तो वह उत्क्रमण कर चुका। इसी प्रकार हमारा मर्यादायुक्त मन जितना उस सुरराज्यकी ओर बढ़ेगा हमें वह सुरसृष्टि अपना आलिङ्गन करना चाहेगी और चाहेगी वहींपर रोकना। परन्तु हमको तो उस राज्यसे भी और आगे जाना है। मरकर नहीं, वरं इसी मर्त्यलोकमें रहते हुए हमें तो उस परात्पर शान्ति-निकेतनमें प्रतिष्ठित होना है। परन्तु यह तभी हो सकता है जब कि वहाँतक पहुँचानेवाला हमारा चरित्र-बलरूपी दिव्य यान सुदृढ़ हो।

अब रह गया चरित्र-बलका अन्तिम सोपान 'प्राप्ति'

शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक।

१—शारीरिक—आरोग्यता, भोजन-पान, वस्त्रादि।

२—मानसिक—मनोबल बढ़ानेवाले विचार तथा उसका (मनका) केन्द्रीकरण।

३—आध्यात्मिक—प्रकृतिसे परतत्त्वका चिन्तन। समस्त भौतिक (व्यष्टि और समष्टि) रूपमें उस मूल तत्त्वका दर्शन, इह और परलोकका समन्वय। परमात्माकी प्राप्ति।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रथम शारीरिक प्राप्तिपर संक्षिप्त प्रकाश डाला जाता है। आयुर्वेदका मूल मन्त्र है—'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।' अतएव मानव-धर्मकी प्राप्तिके लिये सर्वप्रथम शरीरका आरोग्य होना परम आवश्यक है, क्योंकि शरीरकी पूर्ण आरोग्यता बिना हमारी प्रकृति पूर्ण विकसित होकर शरीराधार आनन्दनिर्झरका जगत्स्थलीपर निर्झरण नहीं कर सकती। और न कोई अस्वस्थ साधक चरित्र-बल प्राप्त कर लेनेपर भी उतना आनन्दामृत पान कर सकता है जितना कि नीरोग साधक। अतएव स्वास्थ्यरक्षण मनुष्यका परम कर्तव्य है। क्योंकि शरीर एक रथ है, इन्द्रियाँ उसके घोड़े हैं और मन उनकी लगाम है, बुद्धि सारथी है और आत्मा रथी है। इससे स्पष्ट है कि आत्माकी यह यात्रा इस शरीर-रूपी रथसे ही पूर्ण होगी, इसलिये उसका यह रथ सुदृढ़, साधे हुए अश्व, मजबूत लगाम और पूर्ण दक्ष सारथी होना चाहिये, तभी यह महती यात्रा पूर्ण हो सकेगी।

शरीरकी आरोग्यता मूलरूपसे दो बातोंपर निर्भर है—एक पाचकाग्नि और दूसरा वीर्य। शारीरिक बलका आधार आयुर्वेदमतानुसार 'अग्निमूलं बलं पुंसाम्' ही है और जीवनका आधार 'रेतोमूलञ्च जीवनम्' है। अतएव अग्नि और वीर्यकी रक्षा करना ही आरोग्य-साधनका मूल-मन्त्र है।

ठीक वही आहार करना जिसको अपनी अग्नि सरलतासे पचा सके, पाचक शक्तिकी रक्षा करना है। क्योंकि प्रकृतिकी विभिन्नताके कारण यह निश्चय नहीं किया जा सकता कि अमुक आहार ही सर्वोपयोगी है। यह अपनी प्रकृति और पाचक शक्तिसे जानना चाहिये। अपने उस आश्रमके अनुसार जिसमें मानवकी जीवन-यात्रा हो रही हो, विभिन्न ब्रह्मचर्यव्रतके द्वारा वीर्यरक्षण करना चाहिये। क्योंकि मानवका विशुद्ध वीर्य ही उसका जीवन है। शिव-संहितामें साधकको बतलाया गया है—'मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्' इसको सुनकर कलियुगके नेता कहते हैं कि हमने तो बड़े-बड़े विषयी हृष्ट-पुष्टांग देखे हैं और इसके लिये वे अपने गुरु पाश्चात्योंकी सम्मतियाँ भी उद्धृत करते हैं कि 'वीर्य-रक्षण निर्बल पुरुषोंका क्रन्दन है। संसारमें विषयी मनुष्य ही अधिक आयुवाले पाये जाते हैं, इत्यादि।' परन्तु वे कलिसदस्य 'जीवन' का अर्थ ही नहीं जानते। उनकी बुद्धिमें जीनेका नाम ही जीवन है। परन्तु जीते तो सभी हैं—दुष्ट, आततायी, पापी, चाण्डाल, क्रूर और पशु-पक्षी आदि भी। परन्तु मानव-जीवनमें रही हुई ज्योतिसे इनका क्या सम्बन्ध? वह 'जीवन', जिसकी प्राप्तिके लिये मनुष्यने जीवन धारण किया है, 'वीर्यपात' से प्राप्त नहीं हो सकता वरं विनष्ट ही होता है। परन्तु यह विनाश विषयलोलुप पुरुषोंको दिखायी नहीं दे सकता। पाठक! ऐसे लोग 'वीर्यपात' शब्दका अर्थ भी नहीं जान पाते। बाह्यरूपेण विक्रमी, तेजस्वी और प्रतापी मनुष्य ही वीर्यवान् कहलाता है। और अन्तःरूपेण धैर्यवान्, क्षमाशील, शीलवान् और गम्भीर तथा सत्यद्रष्टा मनुष्य वीर्यवान् होता है। तब क्या वीर्यपातसे इन समस्त गुणोंका पात नहीं होगा जो कि वीर्यके ही आश्रित हैं? अतएव उस जीवनज्योतिको शरीरमें जगमगानेके लिये वीर्यरक्षण परम आवश्यक है।

वस्त्र—चाहे अधिक मूल्यवान् हों चाहे अल्पातिअल्प मूल्यके, परन्तु वेशधारीको अपने मनकी जाँच करनी चाहिये कि उनसे शरीराभिमान तो उत्पन्न नहीं होता।

आहार—जबानके जायकेके लिये नहीं, वरं शारीरिक आवश्यकताकी पूर्तिके ध्यानसे लेना चाहिये। और अपने शुद्ध अहिंसायुक्त आहारमेंसे भगवद्-अर्पण करनेके पश्चात् 'दरिद्रान् भर कौन्तेय!' के अनुसार अधिकारियोंका भाग यथाशक्ति अलग कर देना उचित है।

मानसिक प्राप्ति—मनकी विभिन्न गतियोंका अवरोध कर उसको एक केन्द्रपर लगा देनेसे विचार-काण्डका आरम्भ होता है। परन्तु जिस बिन्दु (point) पर वह लगाया जाय मूल सत्यका ही रूप समझकर। इसके लिये सबसे सुलभ मार्ग यह है कि संसारके किसी-न-किसी पूर्ण चरित्रवान् महापुरुषको आदर्श चुन लिया जाय।

आध्यात्मिक प्राप्ति—यह एक ऐसी अवस्था है जो निजी अनुभवसे ही समझमें आ सकती है। शास्त्र इसके लिये संकेतमात्र हैं। क्रमपूर्वक चरित्र-बलकी प्राप्ति करता हुआ मनुष्य ही इस राज्यका अधिकारी होता है। मनोबलके साधकको जब साधनामें यह अनुभव होने लगता है कि मैं प्रकृतिसे पर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(भिन्न) हूँ । तभीसे आध्यात्मिक दिव्य राज्यमें प्रवेश कर उस परात्पर तत्त्वज्ञानके लिये वह आगे बढ़ता है। तत्त्वद्रष्टाओंने उसे अनन्त और अखण्ड बताया है । उस अनन्त-अखण्डसे अपना अभेदत्वज्ञान ही आध्यात्मिक-प्राप्ति है, प्रकृतिकी मुक्ति है, विश्वका कल्याण है। ऐसी अवस्थाको प्राप्त हुए मनुष्यरूप देव ही सन्तप्त संसारके मानवोंको शान्तिसुधा पान कराते हैं। ऐसी ही दिव्यात्माओंसे स्वराज्य (धर्म-राज्य) की स्थापना होती है और समाजमें ज्योतिर्मय प्राणोंका सञ्चालन होता है तथा ऐसे ही विश्व-प्राण मानवके पुण्य-पादारविन्दमें विश्वका मन-भ्रमर गुञ्जार कर उठता है—

'त्वमसि मम जीवनं त्वमसि मम भूषणम्'

और यही चरित्र-बलकी पूर्ण प्राप्तिका पर्यवसान है, पूर्णत्व है।

पथिककी प्रार्थना

(१)

तमके आनेसे पहले उज्ज्वल प्रकाश तुम फैलाना।
भूल न जाऊँ मैं कंटक-पथपर इंगितसे बतलाना॥
चलते-चलते थक जाऊँ तो प्रेम-कुटीमें बिठलाना।
निज निर्वाण-विपंचीमें कुछ गाना मनको बहलाना॥

(२)

मैं हूँ पथिक विश्व-पथका तुम पथिकोंके आश्रय-दाता।
पथपर पैर बढ़ाया है तुमसे रख यही एक नाता॥
किधर तिमिर है किधर ज्योति? इसका मुझको कुछ ज्ञान नहीं।
जिन्हें ज्ञात है पथ उनसे प्यारे! मेरी पहचान नहीं॥

(३)

देख कुंज-वन इच्छा होती फूलोंसे भर लूँ डाली।
नव बसन्तसे माँग मधुर मकरन्द करूँ प्लावित प्याली॥
है फूलोंका काम नित्य पथिकोंके मनको उलझाना।
उनकी छविमें कहीं न मैं भी भूलूँ कहाँ मुझे जाना॥

(४)

कहीं तुम्हारे क्रीड़ा-वनमें हो मेरा बसन्त सुन्दर।
वहीं मिले मुझको बहता सौरभका मन्द-मन्द निर्झर॥
चून वहींसे फूल मुझे तुम अपने हाथोंसे देना।
मैं गूँथूँगा हार उसे तुम हँसकर देव! पहन लेना॥

—जगन्नाथ मिश्र गौड़ 'कमल'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अनुताप

(लेखक—श्रीमार्कण्डेयजी ब्रह्मचारी)

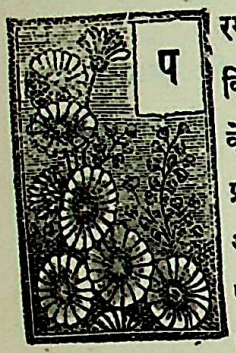

परमार्थके साधनोंमें अनुतापका एक विशेष स्थान है। बिना अनुतापके परमार्थकी या परमात्माकी प्राप्तिकी तीव्र इच्छा नहीं होती। अनुताप हृदयकी निर्मलताका एक चिह्न है अथवा अकृत्रिम प्रायश्चित्त—पवित्रताका साधन है और इसीसे वह कृत्रिम प्रायश्चित्तोंसे श्रेष्ठ है। अनुतापका अर्थ है किये हुए बुरे कर्मोंके लिये उनकी बुराईके ज्ञानसे दुखी होना। इसको पश्चात्ताप भी कहते हैं। परमात्माका या महात्मा पुरुषोंका अनुग्रह प्राप्त होनेमें अनुताप एक असामान्य कारण है। आज एक भक्तके अनुतापका चित्र खींचनेका विचार है।

हे प्रभो! क्या मैं अब भी आपके अनुग्रह-लेशका पात्र नहीं हूँ? अब तो मेरे दोष हृदयको विदीर्ण करके मुझे अपना भयङ्कर रूप प्रत्यक्ष दिखला रहे हैं। यह तो मैं नहीं कह सकता कि मुझे अपने सभी दोषोंके दर्शन हो रहे हैं, वे तो अनन्त हैं; लेकिन आपकी दयाका पात्र बननेके लिये इतना स्व-दोष-दर्शन भी अवश्य ही कम न होगा।

हे जगत्पिता! प्रपञ्चकी मोहक वस्तुओंमें ऐसी दो-ही-चार चीजें होंगी, जिनके लिये मुझे इच्छा न हुई हो। जबसे होश सँभाला तबसे धन-सम्पादनके हर एक व्यवसायकी और उसके खर्चके लिये सभी कुरीतियोंकी मैं इच्छा करता रहा। आज मुझे दुःखके साथ अपनी उस मूर्खतापर हँसी आती है, जिसकी अधीनतासे मैं तीक्ष्ण-किरण भानुको खिलौना बनाना चाहता था, जहरीले नागको गलेका हार बनाना चाहता था। ओह! उन विकारोंका तथा उनसे होनेवाले उस समयके दुःखोंका स्मरण आज मुझे इतना रुला रहा है जितना मैं उस समय कभी न रोया था, जिन विकारोंसे जगत्का बड़ा भारी हिस्सा दुःखाग्निके गहरे गड्ढेमें गिरा रहा है। हे भगवन्! यदि आप उस समय कुछ विवेकद्वारा तथा अभिभावकोंके प्रतिबन्धद्वारा मेरी रक्षा न करते, शरीरको मनके साथ ही चलने देते, तो इसमें सन्देह नहीं कि आजकी अवस्थासे कहीं अधिक नीची अवस्थामें दुःखोंकी आह भरता हुआ मैं पड़ा रहता!

हे परमात्मन्! मुझे उन अपनी क्रोधभरी अवस्थाओंका स्मरण होते ही मेरे रोंगटे खड़े होते हैं, जिनमें मैं पूरा अन्धा बन जाता था। आँखोंका अन्धा तो केवल देख ही नहीं सकता। मैं तो क्रोधके आवेशमें न देख सकता था, न सुन सकता था और न अपने मुखसे निकलनेवाले शब्दोंके मतलब और उनके परिणामोंको ही सोच सकता था। क्रोधके अधीन होकर मैंने उन लोगोंका अपमान करनेमें भी कुछ कमी नहीं की, जिनके उपकारोंका बदला चुकानेमें मैं असमर्थ हूँ।

हे गुणनिधे! लोभ तो मुझमें इतना भरा है कि फटे-चिथड़े-जैसी निकम्मी चीजोंको भी मैं फेंक नहीं सकता। कितना अच्छा होता कि यदि मैं आपकी भक्ति-सदृश सद्गुणोंका लोभ करता। किन्तु हाय! मैंने तो दुर्गुण और दुराचारोंको ही रत्नोंके समान समझकर लोभवश अपने हृदयधाममें उन्हींका संग्रह किया है। यह तो आपकी कृपा है कि लोभके पंजेमें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

फँसकर भी किसीकी हिंसा करनेकी मेरी प्रवृत्ति नहीं हुई।

हे दयामय! यह मोहका ही तो प्रभाव है कि आरम्भसे ही आप मुझे अपनी तरफ खींच रहे हैं; लेकिन मैं क्षुद्र जन्तुके समान इस विषय-नरकके कीचड़से नहीं निकलता। मैं देखता हूँ कि कुत्तोंका भी थोड़े समयमें हड्डीका यथार्थ ज्ञान होनेपर मांसका भ्रम दूर हो जाता है। लेकिन मैं तो शास्त्र और गुरुके वचनोंसे, युक्तियोंसे तथा स्वानुभवसे मोहक चीजोंकी दुःखदायकता जानकर भी उनका त्याग नहीं कर सकता।

हे दीनबन्धो! वास्तवमें मेरे पास ऐसा बल, विद्या, धन और रूप आदि कुछ भी नहीं है जिनके कारण मद उत्पन्न हो। फिर भी मुझमें मदकी कमी नहीं है। तभी तो मुझमें नम्रभाव नहीं होता। इसीसे तो महात्माओंकी संगति नहीं होती। विद्यादि सद्गुणोंसे हीन रहनेका भी यही तो कारण है। अनेक प्रकारके दुःखोंसे दबे रहनेपर भी सावधान न होनेमें मद ही तो कारण है। मालूम नहीं, हर बातमें दरिद्र होनेपर भी मुझमें इतना मद क्यों है, और वह नष्ट क्यों नहीं होता।

असतः श्रीमदान्धस्य दारिद्र्यं परमाञ्जनम्।

'धनादिके मदसे अन्धे हुए दुर्जनोंकी आँखें खोलनेके लिये दरिद्रता ही श्रेष्ठ अञ्जन है।' यह सिद्धान्त तो झूठ नहीं हो सकता। क्या ही अच्छा हो कि यदि मेरे मदको समूल नष्ट करनेके लिये आप तनिक जोर लगा दें।

हे अनाथनाथ! मात्सर्यका—दूसरोंकी भलाईसे जलनेका—कितना बुरा परिणाम होता है, यह मैं तब नहीं जान सका जब इसके जाननेकी अत्यन्त आवश्यकता थी। दूसरोंके धन, विद्या, कीर्ति आदिसे जलनेमें उनकी तो कुछ भी हानि नहीं होती, अपने ही शरीर और बुद्धिका नाश होता है। मात्सर्यरूपी दैत्यकी विकराल दाढ़ोंमें दबकर असंख्य मनुष्योंने केवल अपना ही नाश नहीं किया, किन्तु समाजको भी बहुत नुकसान पहुँचाया है। सैकड़ों कुटुम्ब और राज्य मत्सरताकी अग्निमें भस्म हो गये। मत्सरभावके इस प्रभावको यदि मैं पहले जानता तो उसके चङ्गुलमें मैं इतना न फँसता। और न मेरी इतनी हीन दशा ही होती।

हे कृपानिधे! मेरी इसप्रकारकी अनन्त भूलें मैं आपको कहाँतक सुनाऊँ? मेरे अपराधके परिणामस्वरूप आज मैं विविध तापोंसे तप्त हो रहा हूँ। मेरी इस ज्वालाको आप कृपा-दृष्टिकी वृष्टिसे शान्त कीजिये। अपराधी होनेपर भी क्या मैं क्षमाका पात्र नहीं हूँ? अज्ञानके नशेमें ही तो अपराध होते हैं। अपराधीका अपराध तभीतक है, जबतक कि वह अपने अपराधको न पहचाने। मैं तो अपने अपराधोंको जान रहा हूँ और यह भी देख रहा हूँ कि मेरे किये हुए अपराधोंकी तुलनामें ये दुःख तो कुछ भी नहीं हैं, जिन्हें मैं भोग रहा हूँ।

सबसे बड़ा तो मेरा यही अपराध है कि जिन अच्छे कर्मोंको करनेके लिये और बुरे कर्मोंको छोड़नेके लिये मैंने हजारों बार प्रतिज्ञाएँ की हैं, उनका कई गुना अधिक मैंने उल्लंघन किया है। आपकी कृपासे मुझे लड़कपनसे ही आपकी भक्तिकी कुछ लगन लगी है, न जाने कब उसको सन्तोषजनक स्वरूप प्राप्त होगा। दूसरोंके दुःखोंसे हृदय तो व्याकुल होता है, पर परोपकारका कार्य तो कुछ भी नहीं बनता। दूसरोंकी सहायता लेनेमें लज्जा और संकोचसे वेदना तो होती है, पर मैं स्वावलम्बी नहीं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बनता। आशा-भंगके वज्राघात तो शतशः हुए हैं, पर निराशाका कवच मुझसे नहीं पहना जाता। जानता हूँ कि श्रद्धा ही साधकोंकी रक्षा करनेवाली और साधन-पथपर आगे बढ़ानेवाली एक अवर्णनीय शक्ति है, लेकिन तर्क-कुतर्ककी आँधी उसे बार-बार उड़ा ले जाती है।

हे विश्वगुरो! अब केवल आपका ही भरोसा है। आप सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और परमदयालु हैं। यह मैं जानता हूँ कि अपना दुःख आपको सुनाना अनुचित है। आपको कुछ—अनुग्रहके लिये भी—कहना, आपका अपमान करना है। फिर भी मन नहीं मानता। जब कृत और क्रियमाण अपराधोंपर तथा उनके परिणामोंपर दृष्टि जाती है तब हृदय एकदम काँप उठता है और आपकी ओर दौड़ता है। आप-जैसे अशरण-शरणको छोड़कर मुझ-जैसोंको और ठौर ही कहाँ है?

प्रणव-महिमा

(लेखक—ठाकुर श्रीयोगम्बरसिंहजी)

एकाक्षर ब्रह्म है। इसके महत्त्वका रहस्य समझनेयोग्य है। इसका प्रत्येक अंश सारपूर्ण है। ॐ संसारमें ईश्वरका सबसे श्रेष्ठ नाम है। यह एकाक्षर होकर भी—अ, उ, म्—इन तीन अक्षरोंसे बना हुआ है। यह एकाक्षर इस अर्थमें कहा जाता है कि तीनों अक्षरोंके संयोगसे इसकी ध्वनि एक ही अक्षरके समान होती है।

बहुधा अशुद्ध उच्चारणके कारण 'ॐ' का स्वरूप रोमन-लिपिमें Om अक्षरोंसे दिखलाया जाता है, परन्तु इसका शुद्ध स्वरूप केवल Aum अक्षरोंसे ही दिखलाया जा सकता है।

यहाँ एकाक्षर ब्रह्म 'ॐ' के प्रत्येक अक्षरपर भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणोंसे किञ्चित् विचार करना अनुचित न होगा।

'ॐ' के तीनों अक्षर अ, उ, म् (Aum) तीन शक्तियोंके द्योतक हैं।

अ—उत्पत्ति-शक्तिका द्योतक—प्रजापति=ब्रह्मा A—Regeneration.

उ—धारक (पालन-रक्षण) अर्थात् स्थिति-शक्तिका द्योतक—विष्णु u—Preservation.

म्—प्रलय अर्थात् संहारक—नाशकारी शक्तिका द्योतक महेश (रुद्र) m—Destruction.

तीनों शक्तियोंका पुञ्ज ही (त्रिमूर्ति) परमेश्वर है। (Trinity, unity in Trinity) 'ॐ' वेदका बीज मन्त्र है। इसके विषयमें मनु कहते हैं कि ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेदसे 'अ' 'उ' 'म्' ये तीन अक्षर लेकर प्रणव (ॐ) बना है। श्रुति-स्मृतिके अनुसार यह (प्रणव) परमात्माका अनुपम नाम है।

वेदमें संक्षेपसे ब्रह्मपद वर्णन करते समय 'ॐ' रूपसे ही उस पदका वर्णन किया गया है, यथा कठोपनिषद्में—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि॥
ॐ इत्येतत्।

सकल वेद तथा सम्पूर्ण तपस्यामें लक्ष्यरूपसे जिस पदका वर्णन है, और जिस पदकी इच्छा करके मुमुक्षुगण ब्रह्मचर्यका अवलम्बन करते हैं उस पदका संक्षिप्त नाम 'ॐ' है। तन्त्रोंमें वर्णन है—

अकारो विष्णुरुद्दिष्ट उकारस्तु महेश्वरः।
मकारेणोच्यते ब्रह्मा प्रणवेन त्रयो मताः॥

अर्थात् अकार विष्णुका वाचक, उकार महेश्वरका वाचक और मकार ब्रह्माका वाचक है। पूज्यपाद महर्षि पतञ्जलिने योगदर्शनमें आज्ञा की है—

तज्जपस्तदर्थभावनम्।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थात् श्रीभगवान्‌में और प्रणवमें तादात्म्य-सम्बन्ध रहनेके कारण प्रणवका जप और उसके अर्थका विचार करते-करते साधक मुक्तिपदको प्राप्त कर सकता है। महर्षियोंने वेदाङ्गरूपी शिक्षा-शास्त्रद्वारा यह भलीभाँति सिद्ध कर दिया है कि प्रणवमें तीनों गुणोंकी तीनों शक्तियाँ भरी हुई हैं; इसी कारण प्रणव ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत—तीनों स्वरोंकी सहायता बिना उच्चारण नहीं किया जा सकता। पुनः गान्धर्व उपवेद-सम्बन्धी शिक्षाओंमें भलीभाँति वर्णित है कि षड्ज आदि सातों स्वर एकमात्र ओंकारके ही अन्तर्विभाग हैं। जिस-प्रकार बहिःसृष्टिमें सात दिन, सात रंग, सात धातु आदि सप्त विभाग पाये जाते हैं, और जिसप्रकार अन्तरराज्यमें सप्तज्ञानभूमिका आदि सप्त विभागोंका प्रमाण मिलता है; उसी शैलीके अनुसार एकमात्र अद्वितीय शब्दब्रह्मरूपी ओंकार षड्ज आदि सप्त स्वरविभागमें विभक्त होकर नाना शब्दराज्यकी सृष्टि किया करता है। इसी कारण शब्द-ब्रह्मरूपी ओंकार सब मन्त्रोंका चालक है। तन्त्रोंमें लेख है —'मन्त्राणां प्रणवः सेतुः'—सब मन्त्रोंका एकमात्र प्रणव (ॐ) ही सेतु है; जिसप्रकार बिना सेतु (पुल) के पथ अविरोधी नहीं हो सकता उसी प्रकार बिना ओंकारकी सहायताके न तो मन्त्रसमूह पूर्ण बलको प्राप्त होते हैं और न वे लक्ष्यके अनुसार यथावत् काम करनेमें उपयोगी ही हो सकते हैं। फलतः एकमात्र प्रणव (ॐ) ही शब्दमय साक्षात् शब्दब्रह्म है। मुखसे उच्चारण होनेयोग्य प्रणव यद्यपि अलौकिक प्रणवनादका प्रतिशब्द है तथापि वह केवल लौकिक सम्बन्धसे ही आविष्कृत नहीं हुआ है। तन्त्रोंमें यह निश्चय कर दिया गया है कि मुखसे उच्चारण होनेयोग्य ओंकार-ध्वनि भी अपूर्व रीतिसे आधारपद्मसे उठकर सहस्रदलस्थित पुरुषमें लय हुआ करती है। प्रणवकी महिमाके विषयमें पश्चिमी वैज्ञानिकोंने भी थोड़ा बहुत अनुमान किया है, यथा—

The pronunciation of the sacred word 'ॐ' is one which has engaged the attention of all Europeans devoted to Eastern studies. The vibrations set up by the same word are so powerful that if persisted in, they would bring the largest building to the ground. This seems difficult to believe until one has tried the practice; but once having tried it one can easily understand how the above statement may be true and correct perfectly. I have tested the power of the vibrations and can quite believe that the effect would be as stated. Pronounced as spelt, it will have a certain effect upon the student; but pronounced in its correct method, it arouses and transforms every atom in his physical body, setting up new vibrations and conditions and awakening the sleeping power of the body.

(The 'Practical Yoga,' L. N. Fowler & Co. London)

'आजकल आर्यशास्त्रकी चर्चा करनेवाले पश्चिमी विद्वानोंकी दृष्टि प्रणव (ॐ) उच्चारणकी ओर विशेष-रूपसे पड़ी है। इस शब्दके उच्चारणसे जो स्पन्दन उत्पन्न होता है वह इतना तीव्र तथा बलवान् है कि लगातार ऐसा स्पन्दन होते रहनेपर बड़े-बड़े मकानतक गिरा दिये जा सकते हैं। यद्यपि बिना परीक्षा किये इस बातपर विश्वास करना कठिन है, तथापि एक बार परीक्षा करनेसे ही इसकी सत्यताके विषयमें निश्चय हो जाता है। मैंने इस स्पन्दन-शक्तिकी परीक्षा की है और मुझे इस विषयमें स्थिर विश्वास है। सामान्यरूपसे उच्चारण करनेपर भी छात्रपर इसका कुछ प्रभाव होता है, किन्तु यथार्थ रीतिसे यदि प्रणव (ॐ) का उच्चारण किया जाय तो शरीरके प्रत्येक परमाणु-में परिवर्तन हो जाता है। उसमें नवीन स्पन्दनसे नवीन स्थिति उत्पन्न हो जाती है और देहस्थित अनेक निद्रित शक्तियाँ जाग उठती हैं।'

योगशास्त्रमें लेख है —

कार्यं यत्र विभाव्यते किमपि तत् स्पन्देन सव्यापकं
स्पन्दश्चापि तथा जगत्सु विदितः शब्दान्वयी सर्वदा।
सृष्टिश्चैव तथेयमाकृतिविशेषत्वादभूत् स्पन्दिनी
शब्दश्चोदभवत्तदा प्रणव इत्योङ्काररूपः शिवः॥

अर्थात् जहाँ कुछ कार्य है वहाँ अवश्य कम्पन होना सम्भव है; जहाँ कम्पन है वहाँ अवश्य शब्द होना भी सम्भव है; फलतः सृष्टिरूपी कार्यमें साम्यावस्था—प्रकृतिके सबसे प्रथम हिल्लोलकी ध्वनिका नाम शिवरूपी ओंकार है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थात् प्रलयके बाद जब ईश्वरमें 'एकोऽहं बहु स्यां प्रजायेय' —मैं एकसे बहुत हो जाऊँ, सृष्टि करूँ—यह सङ्कल्प होता है, तभी ब्रह्माण्ड-प्रकृतिमें कम्पन होता है और समस्त ब्रह्माण्ड-प्रकृतिको कँपाकर जो प्रथम शब्द निकलता है वही प्रणव नाद है। यह ध्वनि कैसी है, इस विषयमें योगशास्त्रमें लिखा है—

तैलधारमिवाच्छिन्नं दीर्घघण्टानिनादवत्।

अर्थात् यह प्रणव तैलधाराके समान अविच्छिन्न और दीर्घघण्टाके शब्दकी नाईं श्रुति-मधुर है एवं उसका कोई भी अङ्ग मुखसे उच्चारण नहीं किया जाता। वास्तवमें ईश्वरवाचक आदि शब्द ओंकार योगियोंको तभी सुनायी दे सकता है कि जब वे योगयुक्त होकर साम्यावस्था प्रकृतिमें मन स्थिर कर सकें। यह ओंकारध्वनि वाच्य-वाचक-सम्बन्धसे अनादि और अनन्त है एवं प्रणव, जो अक्षरोंसे लिखनेमें अथवा मुखद्वारा उच्चारण करनेमें आता है, उसका प्रतिशब्द है, जिसको पूज्यपाद त्रिकालदर्शी महर्षियोंने अपनी योगयुक्त समाधिबुद्धिद्वारा वेदके आविर्भाव होनेके आदिमें संसारमें प्रकट किया है।

य ॐकारः स प्रणवः, यः प्रणवः स सर्वव्यापी, यः सर्वव्यापी सोऽनन्तः, योऽनन्तस्तत्तारम्, यत्तारं तत्सूक्ष्मम्, यत्सूक्ष्मं तच्छुक्लम्, यच्छुक्लं तद्वैद्युतम्, यद्वैद्युतं तत्परं ब्रह्म, स एको रुद्रः, स ईशानः, स भगवान् महेश्वरः, स महादेवः।

(अथर्वशिरोप० २।४)

'जो ॐकार है वह प्रणव है, जो प्रणव है वह सर्वव्यापी है, जो सर्वव्यापी है, वह अनन्तशक्तिस्वरूप उमा है। जो उमा है वही तारक-मन्त्र ब्रह्मविद्या है, जो तारक है वही सूक्ष्म ज्ञानशक्ति है, जो सूक्ष्म है वही शुद्ध है, जो शुद्ध है वही विद्युत् अभिमानी उमा है, जो उमा है वही परमब्रह्म है, वही एक अद्वितीय रुद्र है, वही ईशान है, वही भगवान् महेश्वर है, वही महादेव है।' अमेरिकाके डा० हरवार्ड (Dr. Hereward, Ph. D.) अपनी 'योग-फिलासफी' में लिखते हैं—

To correctly pronounce Aum, the sacred word, the student should utter it in such a manner that he dwells upon the final 'm' making hum or vibrate it in the throat like the hum of a bee, prolonging the sound as long as he is able to do so on the one inhalation.

× × ×

In pronouncing this word the 'A' (अ) should start in the throat and the 'u' should be at the top of the palate and the 'm' at the lips and if you notice, that is the natural way of producing it; so that you start at the back and bring it up to the lips. If you slightly close the lips it will produce that sound, so we ought to begin by pronouncing it.

× × ×

'जब ॐका उच्चारण आरम्भ किया जाय तो 'अ' की ध्वनि कण्ठसे निकलनी चाहिये और यह ध्वनि 'उ' की ध्वनिसे मिलाकर तालूके शिखरपर पहुँचा देनी चाहिये और अन्तमें 'म्' की ध्वनि इनमें सम्मिलित कर होठोंको मिलाकर उच्चारण करना चाहिये। होठ बन्द करके ॐ की गूँजको एक श्वासमें कण्ठसे इसप्रकार उठाना चाहिये जैसे शहदकी मक्खियोंकी भिनभिनाहट होती है; किन्तु यह गूँज उतने ही समयतक एक बारमें करनी उचित है जितना कि एक साँसमें सम्भव हो।'

डाक्टर हरवर्ड साहब 'ॐ' के चमत्कारके विषयमें लिखते हैं—

It takes a little time to get used to this (to pronounce this); but once the slightest difficulty experienced is overcome, the effect will be found instantaneous and little short of magical; but in view of the extraordinary power of this Mantra one should avoid carrying the practice to excess. It is principally the student himself in whom the effect is keenest.

The vibration arouses every atom in the body, setting the entire system a jingle until the polarization of the body is entirely altered and reconstructed and of-course purification from an occult standpoint is acheived.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'ॐ' के उच्चारण करनेमें, आरम्भमें तनिक-सी कठिनता अवश्य प्रतीत होती है; परन्तु किञ्चित् अभ्यासके द्वारा यह असुविधा सहजहीमें दूर हो जाती है। जैसे ही शुद्ध उच्चारणके साथ 'ॐ' मन्त्रका जप किया जाता है, वैसे ही उसका जादूका-सा असर दृष्टिगोचर होने लगता है। इस मन्त्रके जप करनेसे विलक्षण शक्ति आती है; परन्तु हर एकको बिना गुरुकी दीक्षाके, इसका अत्यधिक अभ्यास भी नहीं करना चाहिये। इसकी गूँज शरीरकी प्रणालीमें अद्वितीय तेज पैदा कर देती है, जिससे शरीरकी प्रकृति-तक भी बदलकर नये ढाँचेमें ढलने लग जाती है। सहसा 'ॐ' के प्रभावसे अदृश्यरूपसे शुद्धता प्राप्त होती जाती है।

स्वयं श्रीकृष्णभगवान् अपने मुखारविन्दसे कहते हैं—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥
(गीता ८। १३)

'जो मनुष्य देहको त्यागनेके समय 'ॐ' इस एकाक्षर ब्रह्मका उच्चारण करते हुए मेरा स्मरण करते हैं वे अवश्य ही मोक्षरूप परमपदको प्राप्त होते हैं।' सम्भवतः कई सज्जन यह सोचते होंगे कि मोक्षका मार्ग इतना सुलभ है कि केवल अन्तकालमें ॐकारका उच्चारण कर परमगतिको प्राप्त कर लेंगे। चलो भाई! खावें, पीवें, मौज उड़ावें, आनन्द-बहार लूटें और 'Eat, drink and be merry' के सिद्धान्तपर डट जायँ और इसका तनिक भी विचार न करें कि इससे (by following this principle) समय-समयपर कैसे-कैसे अत्याचार और अनर्थ हो बैठते हैं—यानी सदाचारकी ओरसे हाथ धोकर बैठ जायँ; और यह कल्पना करते रहें कि अन्तकालमें 'ॐ' का उच्चारण कर जन्मभरके पापोंसे मुक्त हो जायँगे, और मुक्ति मिल जायगी; किन्तु इसप्रकारकी आशा मृग-तृष्णाके समान ही नहीं है, अपितु आकाशकुसुमके समान असम्भव भी है।

'It is not only a mirage but like building castles in the air as well.'

यह उपाय देखने और सुननेमें जितना सहज है उतना करनेमें कठिन है।

मृत्युका समय जीवनमें सबसे कठिन और विकट बतलाया जाता है। कहते हैं कि प्राण निकलते समय जीवको हजारों बिच्छुओंके डंक मारनेके समान पीड़ा होती है और साथ ही पापी जीवोंके जन्मभरके पाप भी भयानक रूप धारणकर उसके सामने उपस्थित होते हैं। कई एक मनुष्य तो मरते समय रोते और टट्टी-पेशाब करते भी देखे गये हैं। इसका कारण अन्त समयकी मर्मान्तिक वेदनाके सिवा और क्या हो सकता है?

ऐसे विकट समयमें 'ॐ' शब्दब्रह्मका उच्चारण तथा मनमें भगवान्का स्मरण होना सहसा कैसे सम्भव हो सकता है?

जो मनुष्य जन्मभर संसारके सम्बन्धियोंसे गाढ़ अनुराग करता रहा हो तथा अनेक सांसारिक वस्तुओंमें (धन-धान्य, स्त्री-पुत्र-पौत्रादिमें) आसक्त रहा हो वह कैसे उनको अन्तकालमें भूल सकता है?

मृत्युकालकी मर्मान्तिक वेदनाकी अवस्थामें स्वभावतः मनुष्यकी लालसा उन्हीं वस्तुओंपर जायगी जिनमें वह आजन्म लिप्त रहा है। और सहजमें उसे उन्हींकी याद आवेगी, अथवा उन्हींका मनमें स्मरण और ध्यान भी करेगा।

प्राणोंके निकलते समय 'ॐ' का उच्चारण तथा भगवान्-का स्मरण तभी सम्भव है जब कि मनुष्यने जीवनभर इसका अटूट अभ्यास किया हो और इतना अनुराग इस एकाक्षर ब्रह्मसे हो गया हो कि दूसरी वस्तुएँ उसे इसके सामने तुच्छ दिखायी पड़ती हों। जीवनभर 'ॐ' का उच्चारण और स्मरण करनेसे अन्तसमयतक ब्रह्ममें अनुराग हो जाना असम्भव नहीं है।

अन्तकालमें जीव जैसा-जैसा चिन्तन करता है वैसी ही गतिको वह प्राप्त होता है। सांसारिक बातोंमें जिसकी जितनी ज्यादा लालसा और ममता होगी, उतना ही ज्यादा चिन्तन और मोह उसको मरण-समय उन बातोंमें होगा और उसकी गति भी उसीपर निर्भर होगी। श्रीभगवान् कहते हैं—

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥
(गीता ८। ६)

'मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भी भावको स्मरण करता हुआ शरीरको त्यागता है, उस-उसको ही प्राप्त होता है; परन्तु सदा जिस भावका चिन्तन करता है, अन्तकालमें भी प्रायः उसीका स्मरण होता है।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अतएव मुमुक्षुमात्रका यह श्रेष्ठ कर्तव्य है कि श्रीभगवान्‌के इस मोक्षसाधनके एकाक्षरी मन्त्र 'ॐ' का मनन और रटन करते रहें और परमात्मामें अटल प्रेम और दृढ़ विश्वास रखते हुए उन्नति और मोक्षके मार्गपर अग्रसर होते जायँ। श्रीभगवान् फिर कहते हैं—

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्॥
(गीता ८। १२)

'जो पुरुष सब इन्द्रियोंके द्वारोंको रोककर, यानी इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर तथा मनको हृदेशमें स्थिर करके और अपने प्राणको मस्तकमें स्थापन करके, योगधारणामें स्थित हुआ, 'ॐ' का जप और परमात्माका स्मरण करते हुए शरीरको त्यागता है वह परमगतिको प्राप्त होता है यानी साक्षात् ईश्वरस्वरूपको प्राप्त होता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।'

श्रीकृष्णभगवान्‌ने स्वयं श्रीमुखसे कहा है—'प्रणवः सर्ववेदेषु'—मैं सब वेदोंमें 'प्रणव' (ॐ) हूँ। बिना प्रणवके सब मन्त्र और सम्पूर्ण वेद प्राणहीन हैं। वेदके जाननेवाले सच्चिदानन्दघनरूप परमपदको ओंकार नामसे कहते हैं। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

नर्तन-कौतुक

(१)

वे रबि-इन्दु बिलोकनितैं मन-सिन्धुमें बुन्द-सुधा बरसावत।
हास-बिलासनमें रस-रास, प्रकासनमें बिज़ुरीन गिरावत!
भौंह मरोरनिमें चहुँ ओरनिसों, 'प्रणयेश' वे ज्वाल जरावत।
वे पँखुरीन गयन्द चढ़ावत वे अँगुरीनपै विश्व नचावत॥

(२)

साँसनि-साँसनि होत खरी, लहरानि लता-सी अरी लहरावत।
बानि-सुधा बरसावत ही, रस-धार बहावत वेनु बजावत॥
आवत, झूमत चाल मरालनि, मोहन मोहनि-मन्त्र जगावत।
वा ब्रज-मण्डलमें ब्रज-बालन पन्नग-बाल-सी लाल नचावत॥

—प्रणयेश शुक्ल

गोपालक कृष्ण

सोहत लकुटि कर, उर बनमाल संग, राग-रंगवारो नन्दरायके सदनमें।
छबि छहराय, कुंज-कुंजमैं रह्यो री धाय, बाँसुरी बजाय मंजु राजै गोपगनमें॥
कहत 'प्रमोद' वाकी उपमा बखानै कौन? सुषमा न देखी ऐसी कोटिन मदनमें।
पाद-पद्म चूमत हैं जाके सुर-वृन्द, सोई गैया लिये घूमत कन्हैया वृन्दावनमें॥

—प्रमोद त्रिपाठी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परमार्थ-पत्रावली

(श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पत्र)

[क्रमशः]

[२]

पत्र मिला, आप क्षयप्रधान रोगोंसे ग्रसित हैं; इसके लिये पथ्य और ओषधिकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। शरीरके असमर्थ होनेके कारण आपको दूसरोंसे सेवा करवानी पड़ती है, इसके लिये मनमें दुःख एवं ग्लानि नहीं रखनी चाहिये। ऐसी अवस्थामें इसका कोई उपाय न रहनेके कारण मनमें चिन्ता रखनेसे क्या फायदा है? अब आपको ईश्वर-स्मरण नहीं भुलाना चाहिये। पूर्वकी ईश्वर-विस्मृतिका पश्चात्ताप न कर अब विशेष चेष्टासे भगवत्-स्मरणमें रात-दिन लग जाना चाहिये। यही उसका असली पश्चात्ताप है। आपने लिखा, रोगने मेरी आँखें खोल दीं सो अच्छी बात है; पर जबतक साधनमें ढीलापन है तबतक आँखें नहीं खुली ही समझनी चाहियें। खैर, अब तो जोरसे साधनमें लगना चाहिये। क्योंकि एक तो आप कष्टसाध्य शारीरिक रोगमें फँसे हैं और दूसरे मानसिक रोग तो लगे ही हुए हैं, इस हालतमें शरीरका कोई भरोसा नहीं है। अतः जबतक प्राण हैं, आत्महितके लिये कटिबद्ध होकर लग जाना चाहिये।

रोगसे ग्रसित होनेकी वजहसे आप दोनों वक्त सन्ध्या नहीं कर सकते, एक वक्त ही करते हैं, सो भी ठीक है। इस रोगमें स्नानादि निषिद्ध हैं, इसलिये मानसिक सन्ध्या भी आप कर सकते हैं। विशेष अशक्त-अवस्थामें सोते हुए मन्त्र-जपसे भी काम चल सकता है। रोगके कारण आप बैठनेमें अशक्त हैं और इन्द्रियों एवं शरीरसे आप कोई चेष्टा नहीं कर सकते और भगवान्‌की सेवा एवं दर्शनकी आपकी इच्छा है, इसके लिये उपाय पूछा सो ठीक है। इस हालतमें ईश्वरको हर समय निष्कामभावसे याद रखना ही उनकी असली सेवा है। मनसे याद रखना ही मुख्य है। अतएव उसे सब समय निरन्तर याद रखनेकी चेष्टा करनी चाहिये। इसमें विशेष सहायताके लिये आपके सोनेके कमरेमें अपने सामने भगवान्‌की तसवीर टँगवा लेनी चाहिये और भगवान्‌के गुण-प्रेम-प्रभावकी बातें सुननी चाहियें। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सब स्थानमें व्यापक हैं, अतएव जहाँ मन और इन्द्रियाँ जायँ, वहीं उनको प्रत्यक्ष ही देखना चाहिये। यह तो निरन्तर अभ्यासकी बात हुई। अब नियमित अभ्यासके सम्बन्धमें आपके प्रश्नोंके उत्तर ये हैं—

१—यदि सम्भव हो तो एकान्तमें मौन हो तीन घण्टे ध्यान करना चाहिये। और प्रातः १०८ एवं सायं १०८ राम-नामकी माला जपनी चाहिये, इसमें आपको २॥ घण्टे लग सकते हैं। इतने समयतक ध्यान न कर सकें तो राम-नामकी माला जपनेके समय ही उनका ध्यान रखना चाहिये। ऐसा अभ्यास दोनों वक्त तीन घण्टे करनेसे, ध्यानसहित २१६ मालाका जाप हो सकता है।

२—राम-नाम जप-मन्त्र होना चाहिये।

३—मृत्यु और भगवान्‌को हर समय याद रखनेसे क्रोधका नाश हो सकता है। उपवासादि भी इसके उपाय हैं, पर आपकी इस हालतमें ये नहीं बतलाये जा सकते। वैद्यकी व्यवस्था ठीक न होनेसे क्रोध बिल्कुल न होना चाहिये, उसकी व्यवस्थाको भगवान्‌की आज्ञासे ही होती हुई समझ लेना चाहिये; फिर क्रोधका कोई हेतु नहीं रह जायगा। वास्तवमें तो शरीर नाशवान् है, पर कुछ समयके लिये स्थायी भी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मान लिया जाय तो प्रारब्ध ही इसमें बलवान् है। वैद्य और औषध तो निमित्त हैं, इनपर दोष आरोपण करना भूल है। इस बातको समझ लेनेपर चिन्ता, भय, क्रोधके लिये कोई गुंजाइश ही नहीं रह जाती।

४—प्रेम होनेसे ही भगवान्‌में मन रमता है। प्रेम होनेके लिये भगवान्‌की आज्ञाका पालन, उनके दिये सुख-दुःखोंमें प्रसन्न रहना, उनके गुण और प्रेम-प्रभावकी कथाओंका स्मरण-मनन, यथासमय पठन-पाठनादि करना। उनके नामका जप और स्वरूपका ध्यान करना चाहिये।

आप ईश्वर-दर्शनकी इच्छा रखते हैं, यह उत्तम बात है; इसके लिये आप प्रभुसे करुणापूर्ण गद्गद वचनोंमें प्रार्थना करें। वे सर्वसमर्थ हैं, उनकी दयासे दर्शन होना कोई बड़ी बात नहीं। मुझमें आशीर्वाद या आशा देनेकी योग्यता नहीं है। विशेष कुशल।

दो बातनको भूल मत, जो चाहत कल्यान।
नारायन एक भजनको, दूजे श्रीभगवान॥

[३]

पहले आपका दो वर्ष पूर्व एक पत्र आया था, कदाचित् हमने उसका जवाब भी दिया था। वह आपको मिला या नहीं, मालूम नहीं। आप प्रसन्न होंगे। आपका साधन कैसे चल रहा है? कल्याण आप बराबर पढ़ते होंगे।

आप श्रीसियारामजीका जप करते होंगे। जपकी विधि आपके गुरुजीने जो आपको बतलायी है उसीके अनुसार करना चाहिये। मैं गुरु होनेके योग्य नहीं हूँ। मैं एक साधारण मनुष्य हूँ। आपके प्रेमके कारण मैं आपको मित्रकी हैसियतसे राय देता हूँ कि सबसे उत्तम विधि 'प्रेम' है। इसलिये स्वार्थको त्यागकर, श्रद्धापूर्वक, प्रेममें मुग्ध होकर सियारामका जाप करना चाहिये। यही सबसे उत्तम विधि है। यदि प्रेम न हो तो प्रेमके लिये निष्कामभावसे सियारामका जप नित्य-निरन्तर करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। इससे अन्तःकरण शुद्ध होकर भगवान्‌का प्रभाव जाना जा सकता है। प्रभाव जाननेसे भगवान्‌में श्रद्धा और श्रद्धासे प्रेम होना स्वाभाविक ही है।

आपके मिलनेकी इच्छा थी पर मिलना हुआ नहीं, इसमें अन्न-जल ही प्रधान हेतु है।

इस कार्यमें सद्गुरुकी अवश्य ही आवश्यकता है, पर वे मिलते हैं भगवान्‌की दयासे। यों तो भगवान्‌की दया सबपर है ही, परन्तु उनकी वह दया भगवान्‌के शरण होनेसे ही फलती है। अतः सद्गुरुकी प्राप्तिके लिये भगवान्‌से एकान्तमें प्रेमभरी हुई गद्गद वाणीद्वारा सविनय प्रार्थना करनी चाहिये।

सद्गुरुकी प्राप्तिके अभावमें शास्त्र भी गुरु ही है। अतएव सत् शास्त्रोंका विचार नित्यप्रति करना चाहिये, क्योंकि इस समय इसके अभ्यासमें सब प्रकारकी सुगमता है।

आपने जबसे सियारामका जप करना आरम्भ किया तबसे आपका सियाराममें प्रेम बढ़ा होगा, अध्यात्म-विषयक उन्नति हुई होगी।

भगवान्‌के जिस नाम-रूपमें रुचि होती है, उसके लिये उस समय उसीके नामका जप और उसीके स्वरूपका ध्यान करना सबसे उत्तम है। आपको सियारामका नाम प्रिय है, इसलिये आपके लिये सियारामका जप ही सब प्रकारसे कल्याणप्रद है। आपका जप ठीक होता होगा।

जप करनेके समय प्रेम, प्रसन्नता और शान्ति आदि मिलती हो एवं दुर्गुणोंका नाश तथा सद्गुणोंकी वृद्धि होती हो तो समझना चाहिये, मेरा अभ्यास अच्छा है। ऐसा नहीं होता हो तो समझना चाहिये,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्रुटि है। त्रुटि हो तो फिर उसकी खोज आपको करनी चाहिये।

आपने पहले लिखा था कि एक जगह प्रतिदिन १२००० प्रणव-मन्त्रका जो नित्य अभ्यास करता है उसको एक सालमें परब्रह्म परमात्माका दर्शन हो सकता है, सो ठीक है। यह बात सबके लिये एक-सी नहीं है। जिसका अन्तःकरण शुद्ध है, भगवान्‌में श्रद्धा-प्रेम है, उसको इससे कममें भी भगवान्‌के दर्शन हो सकते हैं। मलिन अन्तःकरणवाले, अश्रद्धालु पुरुषको इतना जप करनेपर भी नहीं होता।

आपने दूसरी जगह लिखा—सवा कोटि ईश्वरका नाम जपनेसे ईश्वर-साक्षात्कार बतलाया है, सो ठीक है। इसको भी उपर्युक्त रीतिसे ही समझना चाहिये।

असली बात तो यह है कि श्रद्धा, प्रेमसे किया हुआ भजन ही विशेष लाभदायक होता है। ऐसे जपका महात्माओंने बड़ा भारी प्रभाव बतलाया है। किसी महात्मा कविका कहना है—

जबहिं नाम हिरदै धरयो, भयो पापको नास।
मानों चिनगी अगिनिकी, परी पुराने घास॥

वेदान्त-दर्शन-रहस्य

(लेखक—स्वामीजी श्रीविज्ञानहंसजी)

वेदान्त-दर्शनके प्रवर्तक महर्षि श्रीवेदव्यासजी हैं। यह दर्शन सब दर्शनोंका शीर्षस्थानीय है। वेदके अन्तिम ज्ञानकाण्डका प्रतिपादक होनेसे इस दर्शनको उत्तरमीमांसा कहा जाता है और ब्रह्म ही इसका मुख्य विषय होनेसे इसे ब्रह्मसूत्र भी कहते हैं।

वेदान्त-दर्शनके कुल चार अध्याय हैं और प्रत्येक अध्यायमें चार-चार पाद हैं। प्रथम अध्यायका नाम समन्वय है। इस अध्यायमें अनेक प्रकारकी श्रुतियोंका समन्वय किया गया है। जैसे—प्रथम अध्यायके पहले पादमें स्पष्टज्ञापक श्रुतिसमूहका, दूसरे पादमें अस्पष्ट ब्रह्मभावात्मक श्रुतिसमूहका, तीसरे पाद और चौथे पादमें संशयात्मक श्रुतियोंका समन्वय किया गया है।

दूसरे अध्यायका साधारण नाम अविरोध है। इसके प्रथम पादमें स्वमत-प्रतिष्ठाके लिये स्मृतितर्कादिविरोधोंका परिहार किया गया है, द्वितीय पादमें विरुद्ध मतोंके प्रति दोषारोपण किया गया है, तृतीय पादमें ब्रह्मसे तत्त्वोंकी उत्पत्ति कही गयी है और चतुर्थ पादमें भूतविषयक श्रुतियोंका विरोध-परिहार किया गया है। फलतः इस अध्यायमें विरोधी दर्शनोंका खण्डन करके युक्ति और प्रमाणके साथ महर्षि वेदव्यासने वेदान्तमतका अविरोध कथन किया है।

तृतीय अध्यायका साधारण नाम साधन है। इसमें जीव और ब्रह्मके लक्षणोंका निर्देश करके मुक्तिके बहिरङ्ग और अन्तरङ्ग साधनोंका उपदेश किया गया है।

चतुर्थ अध्यायका साधारण नाम फल है। इसमें जीवन्मुक्ति, जीवकी उत्क्रान्ति, एवं सगुण और निर्गुण उपासनाके फलके तारतम्यपर विचार किया गया है। वेदान्त-दर्शनका मुख्य उपदेश जीवको दुःखमय संसारसे मुक्त करके आनन्दमय ब्रह्मपदमें स्थापित करना है।

जीवो ब्रह्मैव नापरः।

जीव और ब्रह्म एक ही है, अलग-अलग प्रतीत होनेका कारण अविद्या है। अविद्याकी भूलभुलैयामें पड़कर जीव अपनेको ब्रह्मसे अलग समझता है। तत्त्वज्ञान होनेसे जब अविद्या दूर होती है, तब वह अपनेको ब्रह्मसे अभिन्न समझकर मुक्त होता है।

जीव और ब्रह्ममें जो भिन्नता भास रही है, वह तात्त्विक नहीं है, उपाधिके सम्बन्धसे ही ऐसी प्रतीति हो रही है। इसीलिये इस औपाधिक भेद-भावका कथन करनेवाली भी बहुत-सी श्रुतियाँ मिलती हैं। जैसे—

कोपोपाधिविवक्षायां याति ब्रह्मैव जीवताम्।
एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः।
एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एक ही आत्मा प्राणी-प्राणीमें विराजमान है, जलमें एक ही चन्द्र अनेककी तरह देखा जाता है।

इसी तरह फिर तात्त्विक अभेदको बतलानेवाली बहुत-सी श्रुतियाँ हैं। यथा—

तत्त्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि, प्रज्ञानं ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म। इत्यादि।

सुख-दुःख, मोह-लोभ, काम-क्रोधादि शरीर और मनके धर्म हैं, जीवात्माके नहीं। केवल शरीर और मनके साथ संयोग होनेसे जीवात्मा अपनेको सुखी-दुःखी समझने लगता है। इसका कारण शास्त्रकारोंने बतलाया है—

माहेश्वरीति या माया तस्यां निर्माणशक्तिवत्।
विद्यते मोहशक्तिश्च तं जीवं मोहयत्यसौ॥
मोहादनीशतां प्राप्य मग्नो वपुषि शोचति।

महेश्वरकी जो माया है उसकी मोहनशक्तिसे जीव मोहित हो जाता है और उस मोहशक्तिके अधीन होकर अपने ब्रह्मभावको भूलकर 'मैं कर्ता', 'मैं भोक्ता', 'मैं सुखी', 'मैं दुःखी' इत्यादि समझने लगता है। यह भ्रम वैसा ही है जैसे रज्जुमें सर्पका, स्थाणुमें पुरुषका और सीपमें चाँदीका होता है। जब यह भ्रम दूर होता है, तभी वह जीवभावसे मुक्त होकर ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। यह भ्रम वेदान्तके सम्यक् श्रवण, मनन एवं निदिध्यासनसे दूर होता है; परन्तु वेदान्तश्रवणका अधिकार किसका है, इसका विचार श्रीशङ्कराचार्यने 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' इस सूत्रके भाष्यमें 'अथ' शब्दके द्वारा दिखलाया है। यथा—

विधिवदधीतवेदवेदाङ्गत्वेनापाततोऽधिगताखिलवेदार्थः अस्मिञ्जन्मनि जन्मान्तरे वा काम्यनिषिद्धवर्जनपुरस्सरं नित्यनैमित्तिकप्रायश्चित्तोपासनानुष्ठानेन निर्गतनिखिलकल्मषतया नितान्तनिर्मलस्वान्तःकरणसाधनचतुष्टयसम्पन्नः प्रमाताधिकारी।

'जिसने वेद-वेदाङ्गको विधिपूर्वक पढ़ा है और उसका अर्थ ठीक-ठीक जाना है, इस जन्ममें या जन्मान्तरमें जो काम्य-निषिद्ध कर्मोंके त्यागपूर्वक नित्य-नैमित्तिक, प्रायश्चित्त और उपासनाके अनुष्ठानपूर्वक निष्पाप और निर्मल-चित्त हो गया है और जो साधनचतुष्टयसे सम्पन्न है, वही वेदान्तशास्त्रके श्रवणका अधिकारी हो सकता है।'

साधनचतुष्टय यह है—

१—नित्यानित्य वस्तुका विवेक।

२—इस लोक और परलोकके समस्त भोगोंमें वैराग्य।

३—शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान और श्रद्धा-रूप षट्सम्पत्ति।

४—मुमुक्षुत्व।

एक ब्रह्म ही सत्य है, उससे अतिरिक्त सब संसार अनित्य है, इस तरहके विचारका नाम नित्यानित्यविवेक है। माला, चन्दन, स्त्री आदि समस्त इहलोकके तथा स्वर्गादि परलोकके भोगोंमें तृष्णारहित बुद्धिका नाम 'इहामुत्रार्थभोगविराग' है। ब्रह्मके सिवा और सब विषयोंसे मनकी निवृत्तिका नाम शम है। बाह्य इन्द्रियोंकी विषयसे निवृत्तिका नाम दम है। वैषयिक वस्तुओंसे चित्तको अलग करनेको उपरति कहते हैं। सरदी, गरमी आदि द्वन्द्वोंको सह लेनेका नाम तितिक्षा है। ब्रह्ममें चित्तकी एकाग्रताको समाधान कहते हैं और वेदान्त तथा गुरुके वाक्यमें विश्वासको श्रद्धा कहते हैं। यही शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान और श्रद्धा—ये छः सम्पत्तियाँ हैं और 'कब मेरा मोक्ष होगा' इसप्रकारकी अति तीव्र इच्छाको मुमुक्षुत्व कहते हैं। इन चार साधनोंके बिना ज्ञान-राज्यके द्वारमें भी प्रवेश नहीं हो सकता। इसीसे समझना चाहिये कि यह दर्शन कितने ऊँचे दर्जेका है।

उपर्युक्त रीतिसे साधन करता हुआ जीव मोक्ष-पदको प्राप्त होता है। वेदान्तशास्त्रमें ब्रह्मको दो लक्षणोंसे कथन किया है—तटस्थ-लक्षण और स्वरूप-लक्षण।

तटस्थ-लक्षणका वर्णन है—

जन्माद्यस्य यतः।

जिस परमात्मासे समस्त संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और लय होता है वही ब्रह्म है।

स्वरूप-लक्षणके कथन करनेवाले सूत्र हैं—

अदृश्यत्वादिगुणको धर्मोक्तेः। प्रतिषेधाच्च।

तटस्थ-लक्षण और स्वरूप-लक्षणको सगुण और निर्गुण ब्रह्म भी कहा गया है। ब्रह्ममें ये दो भाव हैं—

उभयव्यपदेशात्त्वहिकुण्डलवत्।

जिस तरह सर्पको कुण्डल बाँधकर रहनेसे सर्प भी कह सकते हैं और कुण्डल भी, उसी तरह ब्रह्मके भी दो भाव

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समझने चाहियें । स्वरूप-भाव मायासे अतीत निर्गुण, निष्क्रिय, और तटस्थ-भाव मायोपाधिक चैतन्य ईश्वर। इन दोनों भावोंके प्रमाणमें अनेकों श्रुतियाँ मिलती हैं।

वेदान्तके सिद्धान्तमें ब्रह्म ही सत्य है, जगत् मिथ्या है। जो कुछ जगत् प्रतीत होता है, सो सब ब्रह्महीमें मायाका विलास है। वेदान्त-दर्शनके अनुसार जगत् ब्रह्मका विवर्त है। विवर्तका लक्षण इसप्रकार कहा गया है—

सतत्त्वतोऽन्यथा प्रथा विकार इत्युदीरितः।
अतत्त्वतोऽन्यथा प्रथा विवर्त इत्युदाहृतः॥

वस्तुका स्वरूप न बदलकर अन्यथा प्रतीत होना विवर्त है। ब्रह्म जगत्‌रूपसे परिणत नहीं होता, किन्तु मायाके कारणसे उनमें जगत्‌का भ्रम होता है। जिसप्रकार मरु-भूमिमें जल न होनेपर भी अज्ञानी मनुष्यको उसमें जलकी भ्रान्ति हो जाती है, ठीक उसी तरह अद्वितीय ब्रह्ममें द्वैत-भावमय जगत्‌की प्रतीति होती है। तत्त्वसे जगत् भ्रममात्र है; सिर्फ अविद्याके द्वारा मोहित, अविद्योपहित चैतन्य जीव जगत्‌को सत्य मानकर संसार-बन्धनमें बँध जाता है। यह बन्धन अनादि है, क्योंकि वेदान्त-दर्शनमें मायाको अनादि माना है। इस मायामें आवरण तथा विक्षेप दो शक्ति हैं। आवरण-शक्तिके प्रभावसे जीव अपनेको ब्रह्मसे अलग समझता है और विक्षेप-शक्तिके प्रभावसे यह अघटित-घटनात्मक जगत्‌का भ्रम होता है। इसीलिये मायाको 'अघटितघटनापटीयसी' कहा गया है। जगत् है ही नहीं, है ब्रह्म ही; परन्तु उसमें जगत् है, ऐसी घटना उत्पन्न होती है, यही मायाकी विलक्षणता है। इन्द्रजाल करनेवाला ऐन्द्रजालिक सूत्रकी सहायतासे शून्य पथमें खेलता है, सबके सामने जीते हुए मनुष्यको खण्ड-खण्ड करके काट डालता है, अग्निमें शरीरको जला देता है, ऐसे कितने ही खेल करता है; परन्तु जैसे वे सब मिथ्या हैं, वैसे ही जीव जगत्‌को मिथ्या न जानकर बँध जाता है। जिसप्रकार सूर्यनारायण बादलोंके टुकड़ोंसे ढक जानेसे नज़र नहीं आते, उसी प्रकार सत्-चित्-आनन्दरूप ब्रह्मके अज्ञानरूप मेघसे ढक जानेपर जीव उनके स्वरूपको नहीं देख सकता। और जिसप्रकार लाखों योजन व्याप्त सूर्यको एक छोटा-सा बादलका टुकड़ा वस्तुतः ढक नहीं सकता, अज्ञानसे ही मनुष्य उसे ढका हुआ समझ लेता है, इसी प्रकार मिथ्या जगत्‌को सच्चा समझकर जीव भ्रममें पड़ जाता है। जीवका यह भ्रम (बन्धन) तात्त्विक नहीं है, कल्पनामात्र है। क्योंकि जीव स्वभावसे ही नित्यमुक्त है। इसीलिये गौड़पादाचार्यने कहा है—

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता॥

'वास्तवमें न तो आत्माकी उत्पत्ति है, न नाश है, न बन्धन है और न मोक्षकी इच्छा ही है।' वेदान्त-शास्त्रके मतसे मुक्ति साध्यवस्तु नहीं है, वह तो स्वतःसिद्ध वस्तु है। जीव स्वतः मुक्त ही है। इसीलिये दृष्टान्त दिया गया है—

कण्ठचामीकरवत्।

किसी बच्चेके गलेमें माला थी, किसी दिन उसे यह भ्रम हो गया कि माला गलेमें नहीं है। वह तमाम हैरान होकर ढूँढ़ने लगा, माला कहीं नहीं मिली। इतनेमें किसीने बतला दिया कि माला तो तेरे गलेहीमें है, वह खोयी कहाँ है जो ढूँढ़ता है। तब बच्चेका भ्रम दूर हुआ। इसी प्रकारसे जीवकी मुक्ति है। केवल अनादि अविद्याके वशवर्ती होकर वह अपनेको बँधा मान लेता है; सद्‌गुरुकी कृपासे जब तत्त्वका ज्ञान हो जाता है, उसी समय वह अपने नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभावका अनुभव करता है। यही मुक्ति है। जगत् भ्रमके अतिरिक्त और कुछ नहीं है, ब्रह्म मायाशक्तिके द्वारा जगत्-भ्रम उत्पन्न कर रहे हैं। वे ऐन्द्रजालिक हैं। इन्द्रजाल फैलाकर मिथ्या संसारको सत्यकी तरह दिखला रहे हैं।

य एको जालवान् ईशत ईशनाभिः।
सर्वाँल्लोकान् ईशत ईशनाभिः।

एक सर्वशक्तिमान्, मायावी ईश्वर समस्त लोकोंका मायाशक्तिसे पोषण कर रहे हैं, स्वप्नरूप संसारको आँखोंके सामने प्रकाशित करते हैं। वास्तवमें यह संसार कुछ भी नहीं है, सब शून्य है; इसी प्रकार विचारते-विचारते बुद्ध शून्यवाद-पर पहुँचे थे। कई एक विदेशी विद्वान् भी बौद्धोंके शून्यवादपर पहुँचे हैं; परन्तु वेदान्तका सिद्धान्त—अद्वैतवाद—इस-प्रकारका शून्यवाद नहीं है, वेदान्त-मतमें जगत्-भ्रमका आधार शून्य नहीं है, किन्तु सच्चिदानन्दघन ब्रह्म है। श्रीशङ्कराचार्यजीने शून्यवादका खण्डन करते हुए कहा है—

न तावदुभयप्रतिषेध उपपद्यते, शून्यवादप्रसङ्गात्। किञ्चित् हि परमार्थमालम्ब्य अपरमार्थः प्रतिषिध्यते, यथा रज्ज्वादिषु सर्पादयः।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'जगत् और जगत्का आधार दोनोंका प्रतिषेध करना ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा करनेसे शून्यवाद-प्रसङ्ग हो जायगा। कोई परमार्थ अवश्य है, जिसके आश्रयसे अपरमार्थ बाधित होता है।' नेति-नेतिके द्वारा कार्य-वर्गका ही प्रतिषेध करना ठीक है, क्योंकि कार्य असत् और कल्पित है। जिसप्रकार रज्जुमें सर्पका प्रतिषेध होता है, उसी प्रकार ब्रह्ममें कल्पित वस्तुओंका प्रतिषेध करके ब्रह्मस्वरूप कथन किया गया है। क्योंकि ब्रह्ममें ही सब कल्पनाओंका विस्तार है। कल्पित असत् प्रपञ्च बाधित है और ब्रह्म अबाधित है। अद्वैतवादीगण जगत्की व्यावहारिक सत्ता स्वीकार करते हैं, अर्थात् व्यावहारिकरूपसे जगत् सत्य है, परमार्थसे सत्य नहीं है, क्योंकि—

एकरूपेण ह्यवस्थितो योऽर्थः स परमार्थः।

जो वस्तु सर्व काल सर्व स्थानोंमें एक ही रूपसे रहती है वही सत्य और परमार्थ-वस्तु है। ब्रह्म सर्वदा अबाध्य, एक, अद्वितीय वस्तु है; अतएव ब्रह्म ही परमार्थ है। अद्वैत-मतसे सत्य और मिथ्याका लक्षण इसप्रकार दिखलाया गया है कि जो वस्तु भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालमें एवं जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीयमें निर्बाधित और एक रूपमें रहती है, वही सत्य है और जो वस्तु बदलती रहती है, कभी रहे, कभी न रहे वही मिथ्या है। इन लक्षणोंके अनुसार एक ब्रह्म ही सत्य है, शेष सभी कार्य केवल असत् है। ब्रह्मसे अलग और कुछ भी नहीं है, जो कुछ है सो सब ब्रह्म ही है। ब्रह्ममें जो जगत्का भ्रम हो रहा है, वह सब ब्रह्ममें नाम-रूपका भेदमात्र है। जिसप्रकार कुण्डल, वलय आदि बाहरी नज़रसे अलग-अलग होते हुए भी वास्तवमें एक सोना ही है, उसी प्रकार बाह्य दृष्टिसे नाम-वैचित्र्यमय संसार वस्तुतः ब्रह्म ही है। वस्तुगत तात्त्विक भेद कुछ भी नहीं है।

वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्।

मिट्टीके विकारसे जो घट-पटादि विकार उत्पन्न होते हैं, उनमें केवल नामका ही भेद होता है। वास्तवमें सब मिट्टी ही है और मिट्टी ही सत्य है।

अनेनैव जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरोत्।

परमात्माने जीवरूपमें प्रवेश करके नाम-रूपका भेद किया है। नाम-रूपके द्वारा परमात्मासे द्वैत-संसारकी उत्पत्ति होती है। इसप्रकार उपनिषदोंके वाक्योंद्वारा सिद्ध होता है कि ब्रह्मको छोड़कर जीवभाव या और किसीकी पारमार्थिक सत्ता नहीं है। सबकी सत्ता व्यावहारिक है। जो जीव है वही ब्रह्म है, केवल नाम-रूपमयी मायाके विलाससे भिन्नता प्रतीत हो रही है। मायामय जीवभावको ब्रह्मभाव प्राप्त करनेके लिये वेदान्तशास्त्रमें तीन प्रकारकी उपासना बतायी गयी है। यथा—अङ्गावबद्ध, प्रतीक और अहंग्रह। अङ्गावबद्ध-उपासनामें यज्ञके अङ्गोंमें ब्रह्मभावना की जाती है, प्रतीक-उपासनामें ब्रह्मसे भिन्न वस्तुओंमें ब्रह्मकी उपासना की जाती है। यथा—

मनो ब्रह्मेत्युपासीत आदित्यो ब्रह्मेत्युपासीत।

मनमें ब्रह्मभावना कर उपासना करना, आदित्यमें ब्रह्मभावना कर उपासना करना इत्यादि। अहंग्रह-उपासना अद्वैतवादियोंकी यथार्थ उपासना है, जैसे—अहं ब्रह्मास्मि, सोऽहम्, इत्यादि जीव-ब्रह्मकी अभिन्न भावनाके द्वारा उपासना होती है। जीवात्मा ही ब्रह्म है। इसप्रकारका मनन और भावना ही अद्वैतवादकी उपासना है।

यं यथा यथोपासते तदेव भवति।

जो जिसकी उपासना करता है वह उसीका रूप हो जाता है, अतः ब्रह्मभावनाके परिपाक होनेपर साधक ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है। उस समय उसके लिये समस्त संसार ब्रह्ममय बन जाता है। इसप्रकार स्वरूपमें स्थित होते हुए राजयोगी संसारकी ओर दृष्टि डालनेसे विचित्रतामय संसारको ब्रह्ममय देखते हैं और स्वरूपकी ओर देखनेसे माया और सृष्टिसे अतीत परमपदकी प्राप्ति करते हैं। इस अवस्थाके योगियोंके शरीर जबतक संसारमें रहते हैं तबतक वे जीवन्मुक्त कहलाते हैं। जीवन्मुक्त पुरुषोंके संस्कारके विषयमें ब्रह्मसूत्रोंमें कहा गया है—

तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोरश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात्।

इतरस्याप्येवमसंश्लेषः पाते तु।

अनारब्धकार्ये एव तु पूर्वे तदवधेः।

ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो जानेपर जीवन्मुक्त पुरुषके सञ्चित कर्मका विनाश और क्रियमाण कर्मका असंस्पर्श होता है। जिसप्रकार कमलके पत्तेको जल स्पर्श नहीं करता, उसी प्रकार तत्त्वज्ञानीको भी कर्म स्पर्श नहीं करते। वह पुण्य-पाप दोनोंसे अलग होता है। केवल प्रारब्ध-कर्म शेष रह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जाते हैं, जिनको तत्त्वज्ञानी जीवन्मुक्त लोकदृष्टिमें भोग करके क्षय कर देते हैं। ब्रह्मसूत्रमें कहा है—

तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ सम्पत्स्ये।

अर्थात् जबतक प्रारब्ध-कर्म क्षय नहीं होते तबतक जीवन्मुक्तका शरीर रहता है, इसके बाद जीवन्मुक्त शरीरको त्याग कर ब्रह्ममें मिल जाते हैं। वास्तवमें तो जीवन्मुक्त होते ही उनके सारे कर्म संसारसहित नष्ट हो जाते हैं, परन्तु लोकदृष्टिमें प्रारब्ध रहता है, ऐसा माना जाता है—

विदुष ऐकान्तिकी कैवल्यसिद्धिः, ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति।

तत्त्वज्ञानीको ऐकान्तिकी कैवल्यसिद्धि होती है, वह ब्रह्मको जानकर ब्रह्म हो जाता है। जिसप्रकार नदियाँ समुद्रसे मिलकर अपने पृथक् नाम-रूपका परित्याग कर देती हैं, उसी प्रकार ब्रह्मज्ञानी महापुरुष नामरूपमय जीवभावका परित्याग कर ब्रह्मानन्दसागरमें अपने आत्माको विलीन कर देते हैं। यही वेदान्त-शास्त्रोक्त मुक्ति है।

न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति अत्रैव समलीयत।

ब्रह्मज्ञानीका प्राण उत्क्रमण नहीं करता, वह यहाँ ही विलीन हो जाता है। वेदान्त-दर्शनका यही रहस्य है।

भगवान्‌के कार्य

(लेखक—पं० श्रीशिवबालकजी पाठक)

किसी नगरमें एक राजा था। वह साधु-सेवी और भगवद्भक्तिपरायण था। एक दिन राजाके दरबारमें एक साधु पहुँचे। राजा साहबने उनसे चार प्रश्न किये। (१) भगवान् क्या खाते हैं? (२) भगवान् कहाँ रहते हैं? (३) भगवान् क्या काम करते हैं और (४) भगवान् कब हँसते हैं?

साधुने अपने पाण्डित्यके बलपर अनेकानेक शास्त्रोंके प्रमाणोंसे राजाका बोध कराना चाहा, पर राजाकी तुष्टि न हुई। राजाकी प्रतिज्ञा थी कि जो पुरुष मुझे बोध करा देगा, उसे मैं अपना सारा राज्य अर्पण कर दूँगा।

जब राजाको साधुकी बातोंसे सन्तोष नहीं हुआ, तब वे खिन्नचित्त हो वहाँसे चल दिये। आगे चलकर जंगलमें मार्गश्रम और सूर्यतापके कारण एक वृक्षके तले विश्राम करनेको बैठ गये। पासहीमें एक खेत था, उसमें एक किसान हल चला रहा था। मध्याह्न होते ही किसानकी स्त्री अपने स्वामीके लिये भोजन लेकर वहाँ पहुँची। भोजनमें तीन-चार टिक्कड़ और चार-पाँच पके आम और नमककी डली थी। किसानने अपनी स्त्रीसे उन आमोंको ले जाकर महात्माजीको दे आनेके लिये आदेश किया। स्त्री जब उन आमोंको लेकर साधुके पास पहुँची तब तो उन्होंने कहा—'मैं तुम्हारे हाथसे इन फलोंको नहीं लेता; अपने पतिको भेजो, तब देखा जायगा।' स्त्री लौट गयी और उसने अपने स्वामीको साधुके पास भेजा। साधु कहने लगे—'भाई! ये आम आपने कैसे भेजे?' किसानने उत्तर दिया—'महाराज! यह पवित्र वस्तु है, इसका आप भोग लगावें; रोटी आपके कामकी नहीं, उन्हें मैं पा लूँगा।'

साधुने कहा—'भाई! मेरा चित्त इस समय बहुत व्यथित है। मैं एक राजाके दरबारसे लौट रहा हूँ। राजाने मुझसे चार प्रश्न किये थे, और सन्तोष करा देनेपर सारा राज्य दे देनेकी प्रतिज्ञा की थी। मैंने विविध प्रकारसे राजाकी शङ्काओंका समाधान करनेकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चेष्टा की, पर मेरी एक भी युक्ति उसे न जँची। इसी उधेड़-बुनमें मैं व्यग्र हूँ।

किसानने कहा—'प्रभो! आप भोजन पा लें, मैं आपके साथ राजा साहबके पास चलूँगा और उनका समाधान कर दूँगा।' साधु किसानका उत्तर सुन विस्मयमें पड़ गये, बहुतेरा चाहा कि किसान मुझे प्रश्नोंके उत्तर बतला दे; परन्तु उनका आग्रह काम न आया। निदान, साधु इसी बातपर सहमत हो गये कि किसानको यदि भाग्यवशात् राज्य मिल गया, तो दरबारमें प्रवेश करानेकी फ़ीसहीमें विपुल सम्पत्ति हाथ लगेगी।

दूसरे दिन साधु और किसान राजदरबारमें पहुँचे। साधुने राजासे कहा कि यह किसान आपके प्रश्नोंके उत्तर देने आया है। राजा पहले तो किसानकी रूप-रेखा देख अचम्भेमें पड़ गये; परन्तु फिर पीछे कुछ सोच-समझकर कहने लगे कि बतलाओ 'भगवान् क्या खाते हैं?' किसानने तत्काल उत्तर दिया—'भगवान् अहङ्कारका भक्षण करते हैं।' राजाने दूसरा प्रश्न किया 'भगवान् कहाँ रहते हैं?', किसानने कहा—'राजन्! वे जल, थल, आकाश, वायु—सब जगह रहते हैं, ब्रह्माण्डमें ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ उनका वास न हो।'

राजा ज्यों ही तीसरा प्रश्न पूछनेको थे कि किसानने उत्तर दिया—'महाराज! अब आप गुरुरूप होकर कुछ आगे नहीं पूछ सकते; यदि शिष्य बनकर जानना चाहते हों, तो सिंहासनसे उतरकर नीचे बैठिये और मुझे उसपर बैठनेकी आज्ञा दीजिये।' राजा किसानके दो उत्तर सुनकर मुग्ध हो गया था, तुरन्त किसानको सिंहासनपर बैठनेका अनुरोध करता हुआ स्वयं उतरकर नीचे आ बैठा! किसानके सिंहासनारूढ़ होते ही राजाने तीसरा प्रश्न किया, 'भगवान् क्या काम करते हैं?' किसान जोरसे हँसकर कहने लगा—'वे यही उलट-फेर किया करते हैं; देखिये, इस समय मैं कहाँ हूँ और आप कहाँ विराजे हैं। उनका काम ही है—

धनद रंक, रंकहिं धनद, नीचहिं करत महान।
छनहिं महानहिं नीच जो, समरथ कृपा-निधान॥
नृपहिं दास दासहिं नृपति, पवि तृन, तृनहिं पखान।
जलधि अल्प सर, लघु सरहिं, उदधि करें छन मान॥

राजा यह सुनकर चुप हो गये, पुनः पूछने लगे—'भगवान् कब हँसते हैं?' किसान बोला—'महाराज! जब जीव गर्भवासमें रहता है, तब अहर्निश प्रभुसे प्रार्थना करता है कि नाथ! मुझे उबारो, मैं सतत आपका नाम स्मरण करूँगा।' सहज दयालु प्रभु उसे गर्भसे बाहर निकाल देते हैं। यहाँ आते ही जीव माया-प्रपञ्चमें जकड़ जाता है और अपनी अवधि पूरीकर जब पुनः मालिकके सम्मुख कर्मकी बेड़ियोंसे जकड़ा हुआ पहुँचता है, तब प्रभु हँसते हैं कि कैसा झूठा है। इसने क्या प्रतिज्ञा की थी और संसारमें जाकर यह क्या करता रहा।

राजा किसानसे यथार्थ उत्तर पाकर प्रसन्नतासे कहने लगे—'भाई! यह सारा राज्य ले और मुझे ईश-चरणाम्बुज सेवन करनेको जाने दे।' किसान कहने लगा—'महाराज! आप अब भी धोखेमें हैं, यह राज्य किसका, आप किसके? मुझे राज्य नहीं चाहिये, मैं इसे लेकर क्या करूँगा।' मेरा तो ध्येय है—

रूखी-सूखी खायकर, ठंडा पानी पीव।
देख पराई चोपरी, मत ललचावे जीव॥

महात्माजीको भी इस संवादके सुननेसे यथार्थ बोध हो गया और वे हरि-नाम रटते हुए किसी अरण्यकी ओर चल दिये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मनके रहस्य और उसका नियन्त्रण

(लेखक—स्वामीजी श्रीशिवानन्दजी)

(गतांकसे आगे)

२९–जिसे मन सोच नहीं सकता, बल्कि जो मनको सोचनेमें लगाता है, केवल उसे ही ब्रह्म समझो। मनमें सोचनेकी शक्ति है, क्योंकि ब्रह्म अर्थात् आत्माकी अन्तर्ज्योतिके द्वारा वह प्रकाशित होता है। और इसी कारणसे मन क्रियाशील होनेमें समर्थ होता है। जिन्होंने आत्माका अनुभव किया है वे कहते हैं कि मन ब्रह्मसे ओतप्रोत है। मन तो निरा भिक्षुक है। यह आत्मासे प्रकाश और चेतनाको प्राप्त करता है, जो स्वयं ज्योति है।

३०–स्वामी श्रीशङ्कराचार्यजी कहते हैं कि मनकी क्रियाके द्वारा उत्पन्न हुई द्वैतबुद्धि केवल जाग्रत् और स्वप्नावस्थामें ही उपस्थित रहती है। सुषुप्तिमें इसका अभाव रहता है। सुषुप्तिमें हम परमानन्दके स्वरूपका आस्वादन करते हैं, क्योंकि उस समय मनुष्य सांसारिक झमेलोंसे अलग हो जाता है। मनहीसे भेद-भावना, द्वैत और नानात्वकी उत्पत्ति होती है। यदि सत्त्व और आध्यात्मिक साधनाकी उन्नति करके मनको नष्ट कर दिया जाय तो सर्वत्र ही एकत्व (सर्वात्मभाव) का अनुभव होगा। एतदर्थ साधकके लिये सतत और अविरत चेष्टाकी आवश्यकता है।

३१–प्राणके कम्पनसे मनमें गति आती है। मनकी गतिसे संसारकी सृष्टि होती है, नाम और रूप प्रकट हो आते हैं।

३२–संवेदन एक आकस्मिक सञ्चालनशक्ति है। संवेदनके दो मुख्य भेद हैं—इन्द्रिय-संवेदन और प्राण-संवेदन। कल्पना संवेदनको जाग्रत् करती है। युक्ति, सङ्कल्प और ईश्वरप्रणिधानके द्वारा संवेदनोंको नियन्त्रित करना चाहिये।

३३–कलके लिये वस्तुओंको संग्रह करनेकी इच्छा न होनेको 'असंग्रह-बुद्धि' कहते हैं। सच्चे संन्यासियोंकी ऐसी ही मानसिक अवस्था होती है। संन्यासीको कलकी चिन्ता ही नहीं होती। परन्तु गृहस्थोंको इसके विपरीत 'संग्रह-बुद्धि' रहती है। हमें तो संग्रह-बुद्धि न रखनेवाले पक्षियोंके समान स्वतन्त्र होना चाहिये। उनका तो यह आदर्श होता है कि 'दिनके लिये पर्याप्त हो जानेपर जो अधिक संग्रह होता है वह दोषावह है।' अनिश्चित भविष्यके लिये हम क्यों चिन्ता करने जायँ ?

३४–पाश्चात्य देशोंमें कल्पनाशक्तिकी बड़ी प्रशंसा की गयी है और कहा गया है कि मनुष्यके मनमें यह अत्यन्त प्रबल शक्ति है। सङ्कल्प और कल्पनामें कल्पनाशक्तिकी ही प्रधानता है। (सङ्कल्प आत्म-शक्ति है) यह ब्रह्मका क्रियात्मक स्वरूप है। सङ्कल्प ब्रह्मका कर्म है।

३५–मनके विभिन्न तत्त्वोंमें घनिष्ठ सम्पर्क, सहकारिता और सहयोग होता है। इसलिये यह बतलाना कठिन है कि कौन बड़ी है और कौन छोटी, कौन मुख्य है और कौन गौण; क्योंकि उनका अस्तित्व एक दूसरेपर निर्भर करता है।

३६–केवल कल्पनासे क्या हो सकता है, यदि सङ्कल्प-शक्ति अभिलाषा, इच्छा और आदर्शकी क्रियात्मिका-शक्तिको उत्तेजित न करे।

३७–भारतमें वेदान्तीलोग सङ्कल्पको कल्पनाशक्तिकी अपेक्षा महान् गुण मानते हैं।

३८–मनको स्वयमेव चेतनारूपसे जो प्रत्यय होता है उसे मनोबोध कहते हैं। मनोबोध एक चेतनारूपी मेल-क्लर्कके समान है जो संवादोंको लेता, उनको बाँटता, पारस्परिक सम्बन्ध जोड़ता, सजाता, खानोंमें रखता और उन्हें बाँध-बाँधकर बाहर भेजा करता है।

३९–समभाव और समदृष्टिमें थोड़ा अन्तर होता है। समभाव एक मानसिक अवस्था है, जिसमें मन सुख-दुःख, हानि-लाभ, शीत-उष्ण, जय-पराजयको एक-सा समझता है। समदृष्टि एक ज्ञानावस्था है। ज्ञानी राजा और रङ्कमें केवल एक आत्माको देखता है।

४०–प्रेम और करुणा मनको कोमल बनाते हैं। करुणामें अनेक विशेषताएँ होती हैं। इससे दूसरोंके दुःख दूर करनेकी शक्ति प्राप्त होती है। करुणाशील पुरुष पर-पीड़ासे व्यथित हो उठता है, किसीको दुःख नहीं पहुँचाता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और विपद्ग्रस्त पुरुषोंकी सहायता करता है। हिंसाके दमनसे करुणाका उपशम होता है। करुणाके व्यर्थ होनेसे शोक उत्पन्न होता है।

४१–क्रोधके नियन्त्रण करनेकी यह एक शैली है। तत्त्वोंका विश्लेषण करो, किसी मनुष्यके ऊपर जब तुम क्रोध करते हो तो तुम्हारा वह क्रोध किसके प्रति होता है? क्या यह सिरके बालोंके प्रति होता है, नख या सिखके ऊपर होता है? क्या तुम जल, अग्नि आदि पाञ्चभौतिक तत्त्वोंके ऊपर क्रोध करते हो? अथवा भावना, संवेदन, क्रिया और चेतनाके समुदायपर या इन्द्रियोंके ऊपर क्रोध करते हो? यदि इसप्रकार तुम तत्त्वोंका अन्वेषण करो तो क्रोधके लिये कहीं स्थान ही न रह जायगा। मनके तीन अंश हैं–देश, काल और पात्र। प्रत्येक वस्तुमें तीन प्रकारके परिच्छेद होते हैं। उदाहरणके लिये अंगूर किसी ऋतुविशेष-में, किसी स्थानविशेषमें ही प्राप्त होते हैं। इसप्रकार अंगूरमें देश-काल-परिच्छेद पाया जाता है, इसमें वस्तु-परिच्छेद भी होता है। तुम्हें आममें अंगूरकी प्राप्ति नहीं हो सकती, परन्तु ब्रह्म इन तीनों प्रकारोंके परिच्छेदोंसे रहित है; क्योंकि वह नित्य, अनन्त और समस्त पदार्थोंका अधिष्ठान और मूल-तत्त्व है।

४२–अंग्रेज हिन्दुस्तानीसे भिन्न ही होते हैं, यह स्वजातीय भेद कहलाता है। वृक्ष पत्थरसे भिन्न ही होता है, यह विजातीय भेद है। पेड़के फल-फूल और पत्तियोंमें भेद होता है। मनुष्य-शरीरमें सिर, बाँह और पैरमें भेद होता है, इसे स्वगतभेद कहते हैं। ब्रह्ममें ये तीनों प्रकारके भेद नहीं होते। ब्रह्म दो नहीं हो सकते, क्योंकि अनन्तता एक ही है। इसप्रकार ब्रह्ममें स्वजातीय भेद नहीं है। जगत् ब्रह्मसे प्रकाशित है। यह माया है, अतः इससे ब्रह्ममें विजातीय भेद भी नहीं होता। जगत् स्वयं ब्रह्म है। सत्-चित्-आनन्द तीन विभिन्न तत्त्व नहीं है, वे एक ही हैं। वाटर, पानी, जलके समान यह केवल शब्द-भेद है। सत् चित् है; चित् सत् है; चित् आनन्द है। इसप्रकार ब्रह्ममें स्वगतभेद भी नहीं है। भेद मानसिक सृष्टि है, जो देश, वर्ण, आकृति आदिसे उत्पन्न होती है।

४३–जो वस्तु देश, काल, वस्तु तीनों परिच्छेदोंसे मुक्त और उपर्युक्त तीनों प्रकारके भेदोंसे मुक्त होती है उसे अखण्ड कहते हैं। तुम उस वस्तुमें अखण्डत्वरूप लक्षणका आरोप कर सकते हो; परन्तु यह गुण केवल ब्रह्महीमें आरोपित किया जा सकता है।

४४–(क) 'स्वज्ञानपरज्ञानशून्यत्वं जडत्वम्' जिसे न अपना ज्ञान हो और न दूसरेका ज्ञान हो उसे जड कहते हैं।

(ख) चैतन्य, चित् या चेतना स्वयंप्रकाश और सर्वप्रकाशक है। यह भीतर तो मन, बुद्धि और इन्द्रियोंको तथा बाहर सूर्य, चन्द्र, तारे, विद्युत् और अग्नि आदिको प्रकाशित करती है। केवल ब्रह्म ही चैतन्य वस्तु है। मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ और अन्य समस्त वस्तुएँ जड हैं।

४५–अहङ्कार एक सूत्रके समान है। वह समस्त इन्द्रियोंको अपने साथ ग्रथित करता है। जब सूत टूट जाता है तो सारे मोती बिखर जाते हैं। इसी प्रकार जब अहं ब्रह्मास्मि-भाव, साक्षी-भाव अथवा आत्मसमर्पण—निमित्त-भावके द्वारा अहंकारका सूत्र टूटता है तो इन्द्रियाँ छिन्न-भिन्न अथवा नष्ट हो जाती हैं। इन्द्रियोंके साथका सम्बन्ध टूट जाता है।

४६–कुछ लोगोंमें चक्षुरिन्द्रियकी अपेक्षा श्रवणेन्द्रिय अधिक उन्नत होती है। जर्जोंकी श्रवणशक्ति प्रबल होती है और सेनापतिकी दृष्टि तीव्र होती है। उनके कार्य उन्हें इन्द्रियविशेषके विकासके लिये प्रेरित करते हैं। अन्धे मनुष्यमें श्रवणशक्ति तीव्र होती है। यदि एक इन्द्रियमें न्यूनता होती है तो प्रकृति उसके बदलेमें दूसरी इन्द्रियको अधिक विकसित कर देती है। मेरे एक मित्र एक ऐसे अन्धे पुरुषको जानते हैं जो केवल स्पर्शके द्वारा वस्तुओंके रंगको बतला देता है।

रातमें प्रत्येक मनुष्यकी श्रवणशक्ति तीव्र हो जाती है, परन्तु उस समय दृक्-शक्ति दुर्बल बन जाती है। पशुओंमें सूँघनेकी शक्ति प्रबल होती है। वे घ्राणेन्द्रियके द्वारा ही अपना भोजन तलाश करते हैं। यौगिक साधनोंके द्वारा तुम किसी भी इन्द्रियमें अद्भुत विकास कर सकते हो।

४७–संशय मनमें बहुत ही सन्ताप उत्पन्न करता है। इसका एक अपना मानसिक जगत् होता है। यह बारंबार मनुष्यको सन्तप्त करता रहता है। संशयका अन्त कहीं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नहीं है। एक संशयके दूर होते ही दूसरा संशय आ खड़ा होता है। यह मनकी विडम्बना है। ज्ञानकी असिधारासे संशयका उच्छेद करो। उसका ज्ञान प्राप्त करो, जिसे संशय होता है। संशय करनेवालेके विषयमें तो किसीको भी संशय नहीं होता।

४८–तुम्हारा जिस मनुष्यसे द्वेष हो उसकी सेवा करो। तुम्हारे पास जो कुछ हो उससे उसकी सहायता करो। उसे कुछ खानेको दो, उसके पैर दबाओ, खूब श्रद्धापूर्वक दण्डवत् करो। तुम्हारा द्वेष दूर हो जायगा। वह मनुष्य भी तुमसे प्रेम करने लगेगा। भेंट और प्रिय शब्द जङ्गली मनुष्यको भी सभ्य बना दे सकते हैं। दान और नम्र वचनसे मनुष्यका सिर ऊँचा होता है, इसके बिना मनुष्यको नतशिर होना पड़ता है।

४९–जब द्वेष प्रकट हो तब प्रेमके ग्यारह लाभोंका चिन्तन करो, वह धीरेसे चला जायगा। ग्यारह लाभ ये हैं—सुखसे सोना, सुखसे जगना, शुभ स्वप्न देखना, लोकप्रिय होना, सर्व प्राणियोंका प्रिय होना, देवताओंके द्वारा रक्षा; अग्नि, विष और असिधारा उसके समीप नहीं आ सकती; वह अपने मनकी स्थिरता शीघ्र ही कर सकता है; उसकी मुखाकृति गम्भीर होती है। वह मोहरहित होकर देह-त्याग करता है, और उसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है, बारंबार आवागमनके चक्करमें नहीं आना पड़ता।

५०–एक मनुष्यका व्यवहार शान्तिपूर्ण होता है, उसकी शान्तिशीलता प्रत्येक मनुष्य देखता है, क्योंकि वह अपने छोटे-बड़े कामोंको बहुत ही सुन्दर रीतिसे सम्पादित करता है। दूसरा मनुष्य अपने व्यवहारमें, भाषणमें शान्त रहता है, उसे भी सभी देखते हैं। क्योंकि वह स्वभावतः अभ्यर्थनीय, मित्र, मधुभाषी, सौम्य, प्रफुल्लवदन और नम्र होता है। तुम्हें तीनों अवस्थाओंमें शान्त होना चाहिये। शान्त मनुष्यमें प्रेमका विकास सहज होता है।

५१–जब तुम्हारे मनमें किसी शत्रुका चिन्तन और उसके किये हुए अपराधोंका स्मरण होता है तो उसमें द्वेषका आविर्भाव हो आता है, इस द्वेषको तुम्हें निरन्तर प्रेमभावनाके द्वारा हटाते रहना चाहिये। बारंबार कल्पना करो कि वह तुम्हारा घनिष्ठ मित्र है और यत्नपूर्वक एक प्रबल प्रेमधारा उसकी ओर प्रवाहित कर दो। गीतगोविन्द-के रचयिता जयदेवको स्मरण करो, जो अपने उन डाकू शत्रुओंको, जिन्होंने उनके हाथ-पैर काट डाले थे, मित्र माना था।

५२–जो मनुष्य क्रोधी है, क्रोधाभिभूत है, क्रोधका दास हो गया है वह स्नान करके, चन्दनादि लेपनकर, वस्त्रोंसे सुसज्जित होनेपर भी कुरूप दीख पड़ेगा। क्योंकि वह क्रोधाभिभूत होता है। यदि तुम क्रोधित होते हो तो तुम्हें जीवनयुद्धमें विजय नहीं मिल सकती।

यदि तुम क्रोधके ऊपर विजय प्राप्त करनेके लिये चेष्टा और प्रयत्न करोगे तो द्वेष अपने आप दूर हो जायगा। यदि ऐसा तुम नहीं कर सकते तो तुम्हें किसी ऐसी शुद्ध और शान्त अवस्थाका स्मरण करना चाहिये जो स्मृतिपथमें आते ही सन्तोष प्रदान करे तथा द्वेषका निवारण करे।

५३–जब द्वेष उत्पन्न हो, तो अनुराग, स्नेहके अन्यान्य कारणों और कोमल भावनाओंका स्मरण करो।

५४–द्वेषके मूल कारणको हटानेकी इच्छा करनेवाले साधकको चाहिये कि वह पहले एक प्रियपात्रके प्रति स्नेहका विकास करे, उसके बाद एक निरपेक्ष मनुष्यके प्रति और तत्पश्चात् शत्रुके प्रति प्रेमको बढ़ावे। और ऐसा करनेमें प्रत्येक अवस्थामें उसे अपने हृदयको कोमल और उपयोगी बनाना चाहिये, जिससे शीघ्र ही ध्यानकी प्राप्ति होती है।

५५–किसीको शत्रु न बनाओ। जिससे तुम्हारी कोई भी हानि हुई हो उसके प्रति मनमें द्वेषभाव न बढ़ाओ।

५६–दुःसङ्कल्प द्वेषका ही एक क्षुद्र स्वरूप है, इसको बार-बार दुहरानेसे यह द्वेषका रूप धारण करता है। द्वेष दुहरानेसे मत्सरके रूपमें आ जाता है।

५७–जो अपने शत्रुका चिन्तन करता है, उसके मनमें क्रोधका आवेश होता है। जो विषय-चिन्तन करता है, उसके अन्दर वासना उत्पन्न होती है। इसलिये विषयोंके प्रति प्रेम नहीं बढ़ाना चाहिये।

५८–जो साधक प्रेम, दया, सहानुभूति और समाहित-चित्तताका विकास करना चाहता है, उसे पहले समस्त मायाजालको काटकर ध्यानके अभ्यासमें लगना होगा, मिताहार करके, तन्द्राको दूर हटा, एक सुव्यवस्थित आसनपर एकान्तमें बैठकर द्वेषकी बुराइयों और सन्तोषके लाभोंका चिन्तन करना होगा। निश्चय ही इस साधनासे द्वेष धीरे-धीरे चला जायगा और सन्तोषका विकास होगा। क्रोधी और क्रोधाभिविष्ट पुरुष जीव-हिंसा करते हैं। 'सन्तोषः परमं सुखम्।' सन्तोषसे बढ़कर कुछ नहीं है। जो सन्तोष करनेमें समर्थ हैं वे दिव्य पुरुष हैं। (क्रमशः)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वाल्मीकि-रामायण और भगवच्छरणागति

(लेखक—साहित्याचार्य पं० श्रीमथुरानाथजी शास्त्री, भट्ट, कविरत्न)

(पूर्वप्रकाशितसे आगे)

भगवान् श्रीरामचन्द्रने अपना अभिमत तथा धर्मानुसार सामयिक कर्तव्य सुग्रीवादि अपने मन्त्रियोंके सामने अच्छी तरह कह दिया। 'मेरा यह कार्य नीति और धर्मके अनुसार चाहे न भी हो तो भी मेरा स्वभाव ही हो गया है कि मुझसे शरणागतका परित्याग किया ही नहीं जाता, मैं क्या करूँ?' यों अपने वक्तव्यका सब कुछ सार जब भगवान् श्रीरामचन्द्र कह चुके तब आन्तरिक प्रेमके कारण भगवान्‌के हितके लिये अत्यन्त व्यग्र सेनानायक सुग्रीव भगवान्‌के उस वक्तव्यका अनुवाद-पूर्वक अच्छी तरह आलोचन करने लगे। इसके अनन्तर 'शुभतरं वाक्यमुवाच'—वह वचन बोले जिसकी नीति-मार्गके अनुसार अवश्य प्रशंसा करनी चाहिये। यहाँ 'शुभतरम्' कहकर कम्परेटिव डिग्रीके द्वारा पहलेकी अपेक्षा प्रशंसनीयतामें कुछ आधिक्य दिखलाया है अर्थात् सुग्रीवका पहला वचन भी शुभ ही था, किन्तु अबका वचन 'शुभतरम्' 'उससे और भी प्रशंसनीय' है। सुग्रीवका मत है कि 'विभीषणको नहीं लेना चाहिये;' इसके लिये संग्रह करनेके पक्षका पहले भी उन्होंने विरोध ही किया था, किन्तु इस समय उससे भी प्रबल विरोध आरम्भ करते हैं। वे कहते हैं—'यह कपटी हो या न हो, हमारे सब भेद जानकर हमलोगोंको हानि पहुँचानेका विचार रखता हो या न रखता हो, किन्तु 'एष रजनीचरः'—यह राक्षस है। जन्मसे ही इसके स्वभावमें क्रूरता भरी हुई है। इससे भलाईकी आशा करना भूलके सिवा कुछ नहीं। वंशगत क्रूरताके विषयमें कदाचित् यह समाधान किया जा सकता है कि 'क्रूर वंशके सभी पुरुष क्रूर हों, यह दृढ़ नियम नहीं। दैत्यकुलहीमें तो प्रह्लाद हुए थे।' इसलिये दूसरी युक्ति देते हैं—

'इस तरहके कठिन प्राण-संकटको प्राप्त हुए भ्राताको भी जो छोड़ सकता है वह फिर किसका सँगाती होगा?'

सुग्रीवने पहले वक्तव्यमें यही कहा था कि—'यह समय नाजुक है, परस्पर युद्ध सम्मुख दिखलायी दे रहा है। इस समय शत्रुपक्षके आदमीका भरोसा करना ठीक नहीं। उसपर भी यह शत्रुका खास भाई ही है। अतः यही निश्चित किया जा सकता है कि हमारा भेद लेनेके लिये ही यह हम-लोगोंमें मिलना चाहता है। दूसरे, राक्षसजाति स्वभावसे ही कपटी और अनेक रूप बनानेवाली होती है। नीतिके अनुसार उसपर विश्वास किया ही कैसे जा सकता है?' इत्यादि। किन्तु ऐसी-ऐसी युक्तियोंको भगवान् श्रीराम-चन्द्रने—'मित्रभावेन सम्प्राप्तम्'—इस अपने वक्तव्यमें अच्छी तरह काट दिया था। अतएव सुग्रीव अबके प्रबल युक्ति दे रहे हैं कि यह 'कृतघ्न' है। जिस सगे भाईने जन्मसे लेकर अबतक इसका पालन-पोषण किया उसी सगे भाईको यह प्राण-संकटमें छोड़कर चला आ रहा है, भला ऐसे कृतघ्नका आप भरोसा करेंगे? और सब दोषोंपर चाहे आँखोंपर ठीकरी रक्खी भी जा सकती है; परन्तु 'कृतघ्नता' का दोष तो सामान्य नहीं। धर्मनीति कहती है—'कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः'। आप आज्ञा कर चुके हैं कि 'मेरा स्वभाव है कि जो मेरी शरण आ जाता है चाहे उसमें दोष भी हों, मैं उसे नहीं छोड़ सकता', ठीक है। परन्तु इसपर दया करके आपने इसे शरण दी और इसपर उपकार भी किये; किन्तु यह तो सब उपकारोंको मिटा देगा। क्योंकि 'कृतघ्न' है। यह तो शरण देनेको भी भूल जायगा, उपकारों-पर भी पानी फेर देगा। ऐसी दशामें इसको शरण देना 'हस्तिस्नान' के समान है। प्राणिमात्रको अभय देनेका जो आपका व्रत है उसे भी तो यह भुला देगा, निष्फल कर देगा। अतएव कृतघ्नताके कारण तो इसका त्याग ही उचित है। यों सुग्रीव प्रबल युक्ति दे रहे हैं, इसी आशयसे श्रीवाल्मीकिजीने भी सुग्रीवके इस कथनकी बारीकीसे प्रशंसा की है कि—'शुभतरं वाक्यमुवाच।'

'शुभतरं वाक्यमुवाच'—अति प्रशंसनीय वाक्य बोले, इस वाक्यकी समाप्तिके अनन्तर भी एक विशेषण देते हैं—'हरिपुङ्गवः।' 'अथ सुग्रीवः तद्वाक्यम् आभाष्य विमृश्य च शुभतरं वाक्यमुवाच'—श्रीरामचन्द्रके वाक्यका अनुवाद

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और आलोचन करनेके अनन्तर सुग्रीव अति प्रशंसनीय वाक्य बोले—यों यह वाक्य समाप्त हो ही चुका था, फिर वाक्य पूरा हो जानेपर भी केवल एक विशेषण देनेके लिये उसे फिर क्यों बढ़ाया गया ? साहित्यवाले यहाँ 'समाप्त-पुनरात्त' का दोष (वाक्य समाप्त हो जानेपर भी विशेषण देनेके लिये उसे फिर लेना) लगा रहे हैं। नहीं-नहीं, सुनिये—'हरिपुङ्गवः'-यह निरा विशेषण ही नहीं, इस वाक्यका जीव ही यह पद है।

उपकारके भारसे सबको अपने आश्रित रखनेवाले, सर्व सेनाके प्रधान परिचालक भगवान् श्रीरामचन्द्र जब विभीषणके स्वीकारमें अपनी अनुमति दे चुके थे और अपने दाक्षिण्यके कारण यहाँतक आज्ञा कर चुके थे कि 'चाहे कैसा भी अत्याहित हो, मैं इसे नहीं छोड़ सकूँगा। क्योंकि शरणागतका आना सुनते ही उससे मिलनेके लिये मैं विकल हो जाता हूँ, फिर विलम्ब करनेकी शक्ति मुझमें नहीं रहती, यह मेरा स्वभाव ही है।' तब भला सर्वप्रधान नायककी इतनी आग्रहपूर्ण आज्ञाके पालनमें हीला-हवाला हो सकता है ? भगवान्के वाक्यका अनुवाद और आलोचन ही प्रथम तो अनुचित-सा है, फिर उसके विरोधमें साफ यह कह डालना कि 'यह कृतघ्न है, इसका संग्रह करना ठीक नहीं' यह साधारण बात नहीं, बड़े माद्देदारका काम है। सर्वप्रधान नायककी आज्ञा हो जानेके अनन्तर भी उसका पालन न करके उसको समालोचना-चक्रपर चढ़ाना, उसका साफ-साफ विरोध करना, किसी तरह संगत नहीं होता। इसीको उपपन्न करनेके लिये महर्षि वाल्मीकि कहते हैं—'हरिपुङ्गवः'—वानरोंमें सर्वश्रेष्ठ। लोकानुग्रहकारी भगवान् श्रीरामचन्द्र वानरोंके अत्यन्त कृतज्ञ हैं। महर्षि उनकी कीर्ति और गौरवको सूचित करते हुए कहते हैं कि 'राघवार्थे पराक्रान्ताः'—जो रामके लिये अपने प्राणोंपर खेलकर लड़े हैं—धर्म-मर्यादा-रक्षक श्रीराघव भी अपनेको उनका आजन्म ऋणी समझते हैं। जब वानर-सैन्यमात्रका भगवान्के साथ यह सम्बन्ध है, तब यह तो उनके भी नायक हैं, सर्वश्रेष्ठ हैं। इनका तो कहना ही क्या। हितका अनुसन्धान करके ये जो कुछ कह दें, भगवान् उसका बहुत कुछ मूल्य मानते हैं। इसीलिये ये उसकी आलोचना करनेके अधिकारी भी माने जा सकते हैं। अतएव वाक्य-समाप्ति हो जानेपर भी महर्षि कहते हैं—'हरिपुङ्गवः।'

जब सुग्रीव अपना कथन समाप्त कर चुके तब 'काकुत्स्थः' भगवान् श्रीरामचन्द्र 'इति होवाच'—यह बोले। यहाँ महर्षिके अक्षर हैं—

वानराधिपतेर्वाक्यं श्रुत्वा सर्वानुदीक्ष्य तु।
ईषदुत्स्मयमानस्तु लक्ष्मणं पुण्यलक्षणम्॥

—'इति होवाच।' 'वानराधिपतिके वाक्यको सुनकर, सब वानरोंकी तरफ देखकर और लक्ष्मणकी तरफ मन्द-मन्द मुसकुराते हुए आप लक्ष्मणसे यह बोले'—सब टीकाकारोंने यही अर्थ किया है। मन्द हास्य करनेका तात्पर्य यह है कि आप लक्ष्मणको सूचित करते हैं कि सुग्रीवने मेरे कथनका तात्पर्य नहीं समझा। यहाँ सबसे पहले शंका यह उठती है कि 'बात सुग्रीवने कही थी, किन्तु उसका उत्तर लक्ष्मणको देते हैं। क्यों ? क्या श्रीरामचन्द्र सुग्रीवकी टीका-टिप्पणियोंसे नाराज हो गये थे जो उससे बाततक करना पसन्द नहीं करते, अतएव उसकी बातका उत्तर उससे मुख फेरकर लक्ष्मणको देते हैं अथवा सुग्रीवके धैर्यपर ही श्रीरामचन्द्र-को भरोसा न था कि कदाचित् यह मेरे जवाबसे नाराज न हो जाय। अतएव ऐसे दुनकमिजाज़से बात न करके उसे जो कुछ कहना है आप लक्ष्मणसे ही कह देते हैं।' नहीं, नहीं, इसका तात्पर्य गूढ़ है। सुनिये—

इस शरणागति-प्रकरणमें—'शरणागतिरहस्य' का उपदेश करनेके लिये सुग्रीव और लक्ष्मण—इन दोनोंको ही भगवान् अधिकारी मानते हैं। गीतामें शरणागति-तत्त्वोपदेशके अधिकारी जिस तरह अर्जुन हुए हैं, इसी तरह यहाँ इस शरणागतिरहस्यको समझानेके लिये भगवान्-ने श्रीलक्ष्मण और सुग्रीवको ही द्वार बनाया है। दोनोंने ही सबपरसे भरोसा हटाकर भगवान् श्रीरामचन्द्रपर ही अपना अटल विश्वास और एकान्त अनुराग स्थापन किया है। भगवान्ने भी उनके एकान्त अनुरागके अनुसार उन्हें अपनी पूर्ण प्रीति और अपना विश्वास, और तो क्या, अपना सब कुछ दे रक्खा है। जब वे इस तरहके एकान्त भक्त हैं तभी तो शरणागतिरहस्य समझनेके अधिकारी माने गये हैं और इस प्रकरणके प्रधान पात्र समझे गये हैं। बाजीगर तमाशा करते समय जिस तरह उस कौतुकसमाजका एक प्रमुख चुन लेता है जिसे 'जमूरा' कहते हैं और उससे बातचीत करते रहनेपर भी सब दर्शकोंको समझा देना उसका तात्पर्य रहता है, उसी तरह गीतामें 'अर्जुन' और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस प्रकरणमें सुग्रीव और लक्ष्मण हैं। इसीलिये तो इस सर्गके १६वें श्लोकमें महर्षि कहते हैं—

एवमुक्तस्तु रामेण सुग्रीवः सहलक्ष्मणः।
उत्थायेदं महाप्राज्ञः प्रणतो वाक्यमब्रवीत्॥

'इस तरह कहनेपर सुग्रीव श्रीलक्ष्मणके साथ उठ खड़े हुए और प्रणाम करके वाक्य बोले।'

जब शरणागति-प्रकरणके दोनों ही अधिकारी हैं तब दोनोंहीका अभिमुखीकरण, दोनोंहीका मनस्तोष भगवान्‌को अभीष्ट है। अबतकके प्रकरणमें सुग्रीवसे ही बातचीत होती आ रही है। सुग्रीवने ही विभीषणका आगमन सूचित किया और साथ ही युक्ति देकर उसके स्वीकारका विरोध भी किया था। उस विरोधका भगवान्‌ने 'मित्रभावेन सम्प्राप्तम्' से यथावत् उत्तर भी दे दिया। यों सुग्रीवसे तो शरणागतिविषयमें प्रत्यक्ष बातचीत हो रही है। किन्तु श्रीमान् सौमित्रेय यह सब चरित्र देख रहे हैं, सुन रहे हैं। श्रीरामचन्द्रकी इस शरणागतवत्सलतासे भगवान्‌के विषयमें जो उनका प्रेम और श्रद्धाभाव है वह और भी उद्वेल्लित हुआ जा रहा है। श्रीरामचन्द्र भी लक्ष्मणके इस समयके हृदयभावको नहीं जान रहे हों, सो नहीं। वे भी अच्छी तरह समझ रहे हैं कि लक्ष्मण ऊपरसे तटस्थ-से होते हुए भी हृदयके द्वारा इस कार्यमें पूर्ण संलग्न हैं और बहुत सम्भव है कि लक्ष्मण सुग्रीवकी सम्मतिसे सम्मति भी रखते हों। अतएव 'मैं तुम्हारे हृदयभावको जान गया हूँ। तुम भी यदि सुग्रीवके साथ सहमत होते हो तो तुम्हारा भी यह भ्रम है'—इस बातको दाक्षिण्यसे सूचित करनेके लिये मुसकुराते हुए भगवान् श्रीरामचन्द्र सुग्रीवकी बातका उत्तर श्रीलक्ष्मणकी तरफ अभिमुख होकर देते हैं। अतएव महर्षिने यहाँ कहा है कि—'वानराधिपतेर्वाक्यं श्रुत्वा, सर्वानुदीक्ष्य, ईषदुत्स्मयमानः लक्ष्मणम् इति होवाच'—सुग्रीवकी बात सुनकर आपने सबकी तरफ देखा और कुछ हँसते हुए आप लक्ष्मणके प्रति यह बोले।

सबकी तरफ देखनेका यह तात्पर्य है कि आप सबको यह सूचित कर रहे हैं कि 'देखो, मैंने कितने विशदरूपमें अपने हृदयका तात्पर्य सुग्रीवको समझाया था; परन्तु वह अभीतक नहीं समझ पाये हैं, यह तुम भी देख लेना।' अथवा—'लक्ष्मणं प्रति ईषदुत्स्मयमानः, सर्वानुदीक्ष्य इति होवाच' 'लक्ष्मणके प्रति मन्द हास्यसे उनका भ्रम सूचित करते हुए सबकी तरफ देखकर अर्थात् सब वानरोंको ही लक्ष्य करके ये बोले।'

किंवा—'सर्वानुदीक्ष्य'—सबकी तरफ देखकर आप सबको सुग्रीवका गौरव दिखाते हैं कि 'देखो, जिस पक्षको (विभीषणके स्वीकारको) मैं अपनी तरफ़से निश्चित कर चुकता हूँ उसपर सुग्रीव फिर भी दलील कर सकते हैं, दूसरा पक्ष फिर भी उठा सकते हैं; यह इन्हींका सामर्थ्य है' यों सब वानर वीरोंको सुग्रीवका सामर्थ्य अथवा उनपर अपने अनुग्रहातिशयका अनुभव कराते हैं। अतएव महर्षिने यहाँ कहा है कि 'सर्वानुदीक्ष्य'—सबोंकी तरफ देखकर (श्रीरामचन्द्र बोले)।

सुग्रीवको अपने मतखण्डनसे उदासी न हो, इसलिये उसकी प्रशंसा करते हुए आप कहते हैं कि जो कुछ सुग्रीवने कहा है वह नीति और अनुभवकी बात है। शास्त्र पढ़े बिना और अनुभवी पुरुषोंकी सेवा किये बिना इसका ज्ञान नहीं हो सकता। किन्तु विभीषणका विषय अत्यन्त विचारगम्य है। साधारण लोकोंमें, विशेषतः राजाओंमें, इस तरहके दृष्टान्त प्रत्यक्ष देखे भी जाते हैं। अतएव जो कुछ मुझे अपनी बुद्धिसे सूझ पड़ा है, वही कहता हूँ—

'राजनीतिके अनुसार शत्रु दो प्रकारके होते हैं—एक अपने वंश या ज्ञातिके, दूसरे अपने पड़ोसी (अर्थात् अपने समीपवर्ती देशोंके राजा) जिनसे कि अर्थविषयक प्रसंग पड़ जानेपर वैर बँध गया हो। ये दोनों ही अपने वैरीपर दुःख आया हुआ देखकर 'यही अवसर उचित है'—इस अभिसन्धिसे प्रायः प्रहार किया करते हैं। इसने यहाँ कहलाया है कि 'दुष्कार्योंमें प्रवृत्त भाईको मैंने बहुत समझाया;परन्तु उसके बदलेमें उसने मेरा अपमान किया और मारनेको तैयार हो गया।' इससे यह प्रतीत होता है कि वंशजात शत्रुके प्रहारके भयसे यह यहाँ आया है। भाईके साथ यदि इसका विरोध न रहता तब तो यह भी शङ्का की जा सकती थी कि यह भाईके लिये यहाँकी खबर लेने और हमसे दग़ा करनेको आया है; परन्तु जब उसने ही इसे चलाकर निकाल दिया है तब इसपर कृतघ्नतादि कोई दोष साबित नहीं होते। साधारण लोगोंमें भाई-बन्धुओंका व्यवहार चाहे अच्छा समझा जाय; परन्तु राजाओंमें निर्दोष भी भाई-बन्धुओंसे भयकी शंका ही रहती है। क्योंकि राज्यके लोभसे परस्पर विश्वासभङ्ग प्रायः होता देखा गया है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यहाँ तो विभीषण भाईको नाराज़ करके आ रहा है। अतएव इसको रावणके प्रहारकी पूर्ण आशंका है।'

दूसरे, मेरी समझसे इसपर कृतघ्नताका दोष भी नहीं ठहरता। शास्त्रमें कहा है—

यो हिंसार्थमभिक्रामन्तं हन्ति, मन्युरेव मन्युं स्पृशति न तस्मिन्दोषः। (आपस्तम्बः)

'जो हिंसाके लिये आक्रमण करनेवालेपर वार करता है उसका दोष नहीं गिना जाता। क्योंकि हिंसाका अपराध हिंसासे टकरा जाता है।'

भ्राताको छोड़कर चले आनेका जो दोष विभीषणपर सुग्रीवने स्थिर किया था उसका श्रीरामचन्द्रने इस तरह समाधान कर दिया। विभीषणके स्वीकारमें सुग्रीवने दूसरी आपत्ति यह की थी कि 'राजनीतिके अनुसार सहायकोटिमें वैरीका संग्रह करना अनुचित है।' इसका भी आप उत्तर देते हैं कि 'हमलोग न तो विभीषणके ज्ञातिकोटि (भाई-बन्धुओंमें) हैं और न पड़ोसी (समीपवर्ती) ही हैं। अतएव हमको इसके राज्यकी लालसा ही नहीं। यों वैरका कारण (स्वार्थ-विद्रोह) ही जब नहीं, तब यह हमारे ऊपर प्रहार करने क्यों आवेगा? प्रत्युत जिस रावणने इसका अपमान किया है उससे बदला लेने, उसका राज्य छीननेके लिये यह हमारी शरण आ सकता है। तब हमलोगोंसे ही अपने स्वार्थकी सिद्धि होनेके कारण यह हमसे ही दग़ा क्यों करेगा? अतएव मेरी रायमें तो राजनीतिके अनुसार भी विभीषणके स्वीकारमें कोई दोष नहीं।'

महर्षि शरणागति-तत्त्वकी एक बारीकी यहाँ और दिखला गये हैं, उसपर भी जरा दृष्टि डालना होगा। शरणमें आनेके लिये जिस समय विभीषणने अपनी प्रार्थना रामदरबारमें पहुँचवायी उस समय भगवान्‌ने अपने सारे परिकरसे, सब सेना-सञ्चालकोंसे, अपनी-अपनी सम्मति पूछी। सब ही 'प्रावाहिक' थे। दूसरी सम्मति देते ही क्या? सबने अलग-अलग कारण देकर विभीषणके आनेमें रुकावट ही डाली। परन्तु श्रीहनुमान् भक्त थे। भक्तका हृदय भक्तकी वेदना नहीं देख सकता। उसकी तरफ उसका स्वाभाविक झुकाव होता है। दूसरे, भक्त ही भक्तके हृदयको अच्छी तरह परख भी लेता है। अतएव आपने साफ शब्दोंमें प्रार्थना की कि 'मेरी रायसे तो विभीषणको स्वीकार कर लेना चाहिये।' जब श्रीमारुतिने भक्तिको हृदयमें लिये अपनी सम्मति दी तब आपने भी उसका उत्तर भक्ति-मार्गको लिये ही 'मित्रभावेन सम्प्राप्तम्' इत्यादि रूपसे दिया। सुग्रीव भगवान्‌के भक्त अवश्य हैं, परन्तु राजा हैं। उन्हें पद-पदपर राजनीतिके सङ्कट दिखलायी देते हैं। वे राजनीतिके कारण ही विभीषणके स्वीकारमें विरोध उपस्थित करते हैं कि—'जो अपने भ्राताका ही सँगाती न हुआ वह हमारा ही साथ कैसे निभायेगा? अतएव ऐसे कृतघ्नका संग्रह मुझे तो कथमपि ठीक नहीं मालूम होता।' यों सुग्रीव जब राजनीतिके अनुसार विरोध कर रहे हैं तब भगवान्‌ने भी राजनीतिके अनुसार ही उत्तर दिया है।

भगवान् श्रीरामचन्द्र राजनीतिके अनुसार सुग्रीवके विरोधका उत्तर दे तो गये कि—'भाई-बन्धु और पड़ोसी राजा—यही प्रायः शत्रु होते हैं'; किन्तु इस कथनसे एक बड़ा भारी अनर्थ उपस्थित हो गया। सौम्यमूर्ति भ्राता भरतपर भी यह दोष लागू हो पड़ता है। 'महाराज दशरथके मुखसे जब भरतके लिये अयोध्याका राज्य कैकेयीने माँग लिया तो भरतका उसपर अवश्य अधिकार हो गया। ऐसी दशामें राज्य-लोभसे भरत भी आपके साथ विरोध कर सकते हैं। शायद प्रकटरूपमें न कर गुप्तरूपसे आपके साथ दग़ा करना चाहते होंगे।' इसका समाधान चाहे यह कर दिया जाय कि 'नहीं, भरत तो अपने हृदयसे राज्य नहीं चाहते। भले ही कैकेयी माँगती रही, फिर उसमें जब स्वार्थ-बुद्धि नहीं तब भरत क्यों वैर करेगा?' ठीक है; किन्तु यह शङ्का तो हो सकती है कि 'जब आप यह आज्ञा कर रहे हैं कि राज्यादिके कारण भाई-बन्धु परस्परमें वैरी हो जाते हैं, तब शायद आप भरतके साथ हृदयमें ईर्ष्या रखते होंगे। क्योंकि आपको अयोध्याका राज्य मिल ही चुका था; किन्तु भरतके कारण ही उसमें विघ्न पड़ गया। अतएव भरतपर आपको जलन जरूर होती होगी। आप महा गम्भीराशय और राजनीतिके सागर हैं। अतएव उस ईर्ष्याको कदापि प्रकट नहीं होने देते; किन्तु हृदयमें ईर्ष्याका निवास अवश्य होगा, क्योंकि आप राजनीतिमें अपने मुखसे ही यह आज्ञा कर रहे हैं।'

दूसरे, भगवान्‌के इस उत्तरसे स्वयं सुग्रीवपर भी दोषका कुछ छींटा पहुँचता है। आप आज्ञा कर चुके हैं 'प्रायः राजा लोग 'व्यसनेषु प्रहर्तारः'—सङ्कट पड़नेपर वार किया करते हैं। तो कहीं सुग्रीव तो ऐसा नहीं कर बैठेंगे। क्योंकि अपने भाई बालीके वधका कहीं स्मरण हो आये,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और सुग्रीव यह देख लें कि रामचन्द्र मुझसे अवश्य प्रबल हैं, जिन्होंने एक बाणसे ही बाली-सदृश लोकातिशायी वीर-को परलोक भेज दिया। अतएव इनसे मेरा मुकाबिला यों तो नहीं बैठता, परन्तु जिस समय रावणके साथ घमासान युद्ध छिड़ रहा हो उस समय रामपर सङ्कट आया हुआ देखकर कहीं यह सुग्रीव ही 'व्यसनेषु प्रहर्ता' हो जाय तो ! ऐसे बारीक सन्देहहीसे तो कहीं श्रीराम यह राजनीति नहीं समझा रहे हैं'-यों मेरे स्नेहियोंको ही मेरे कथनसे कहीं हृदयदुःख न पहुँचे, इसलिये श्रीरामचन्द्र इसके अनन्तर आज्ञा करते हैं कि—

न सर्वे भ्रातरस्तात ! भवन्ति भरतोपमाः।
मद्विधा वा पितुः पुत्राः सुहृदो वा भवद्विधाः॥
(सर्ग १८।१५)

इसका शब्दार्थ है—'हे तात ! सब भाई भरतके समान नहीं होते और पिताके पुत्र भी सब मेरे समान नहीं होते, और न सब मित्र तुम्हारे समान ही होते हैं।'

और दुनियाके भाइयोंपर जो शङ्का की जा सकती है वह भरतकी छायातकको नहीं छू सकती। जगत्के यावन्मात्र भाइयोंसे भरतकी तुलना नहीं की जा सकती। जो भरत अपने ज्येष्ठ भ्राताको पिताके समान ही नहीं, सदा ईश्वरके समान देखते हैं, भला, उनके विषयमें ज्येष्ठ भ्राताके साथ दगाकी शङ्का की जा सकती है ! जिस समय भरत गुरु, माता और चतुरङ्गिणी सेना आदिको साथ लेकर श्रीरामचन्द्र-को वनसे लौटानेके लिये चले उस समयकी उनकी हृदय-दशा रामचरित्रको चित्रित करनेवाले सभी कवियोंने अपूर्व लिखी है। चित्रकूटको दूरसे देखते ही उनके अश्रुप्रवाह चलने लगा। वे रथसे उतर पड़े। पाँव-प्यादे चलने लगे। आहा! इसी भाग्यवान् पर्वतपर श्रीरामचन्द्रके चरणारविन्द विराजते हैं ! उन्हें उस पर्वतपर अपूर्व भक्ति और अनुराग हो गया। निषादराज गुहके साथ आप बातचीत करते आ रहे हैं। गुह कह रहे हैं कि—'श्रीरामचन्द्र इन्हीं वृक्षोंकी छायामें, इन्हीं शिलाओंपर विश्राम करते होंगे।' बस—

सखावचन सुनि बिटपि निहारी। उमगे भरत बिलोचन बारी॥

भरत और शत्रुघ्न आनन्द और प्रेमके मारे इतने विह्वल हो गये कि उनसे रहा नहीं गया। उन वृक्ष और शिलाओंको प्रणाम करने लगे। गोस्वामीजी कहते हैं—

करत प्रनाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति सारद सकुचाई॥

भरतके उस स्नेह और करुण-दशाको देखकर मृग और पक्षीतक गद्गद हो गये। उस भाव और अलौकिक भक्ति-को देखकर देवता और सिद्धगण भी चकित हो गये। वे लोग भरतके लिये धन्य-धन्य कह उठते हैं। वे भरतकी भक्तिको सराहते हुए कहते हैं—

होत न भूतल भाउ भरतको। अचर सचर चर अचर करत को॥

'इस पृथिवीपर यदि भरतका भाव (प्रेम या जन्म) न होता तो जडोंको चेतन और चेतनोंको जड कौन करता ?' भरतकी करुण-दशाको देखकर पत्थर भी पिघल गये थे। यह पिघलना चेतनोंका धर्म है, इसे जड पत्थरोंमें कौन लाता ? मृग, पक्षी आदि भरतके भावको देखकर खाना-पीना छोड़कर जडवत् खड़े रह जाते हैं। यह चेतनोंमें जडधर्म सिवा भरतके और कौन ला सकता था ? उन्हीं भ्रातृभक्त भरतपर श्रीरामके साथ वैर करनेकी कहीं शंका भी की जा सकती है ?

श्रीराम-वियोगसे महाराज दशरथ जिस समय स्वर्ग सिधार गये और भरत दौड़े-दौड़े चलकर जिस समय उस लुटी हुई अयोध्यामें पहुँचे उस समय उन्हें पिताका स्वर्गवास विदित हुआ। भरतका हृदय एकदम धक्कसे बैठ गया। वे अपनी मातासे कहने लगे—'मैंने अपने बुलानेसे यह अनुमान किया था कि महाराज श्रीरामको राजगद्दी देकर आप यज्ञादि करेंगे। इसी कारणसे मैं बड़ी खुशीसे रास्तेको तय कर रहा था—

अभिषेक्ष्यति रामं तु राजा यज्ञं नु यक्ष्यते।
इत्यहं कृतसङ्कल्पो हृष्टो यात्रामयासिषम्॥

किन्तु यहाँ सभी विपरीत हो गया। आहा ! श्रीराम-चन्द्र धन्य हैं जिन्होंने पिताके अन्तिम समयमें अपने हाथसे सेवा तो की। कहो, श्रीरामचन्द्र इस समय कहाँ हैं ?' भरतके मुखसे श्रीरामचन्द्रके विषयमें पहले-पहले यही अक्षर निकलते हैं—

यो मे भ्राता पिता बन्धुर्यस्य दासोऽस्मि सम्मतः।
तस्य मां शीघ्रमाख्याहि रामस्याक्लिष्टकर्मणः॥

'जो श्रीराम मेरे भ्राता हैं, ज्येष्ठ होनेके कारण पिता हैं, सदा हिततत्पर होनेके कारण बन्धु हैं।' भरत कहते

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हैं—'नहीं नहीं, इस भावनामें अभिमान है। भ्राता, पिता आदिका नाता रखनेपर अपनेमें कुछ गौरव-बुद्धि हो जाती है।' इसलिये कहते हैं—'यस्य दासोऽस्मि'—जिनका मैं सेवक हूँ। ठीक है। तुम तो उनमें स्वामि-बुद्धि रखते हो; परन्तु वह यदि तुमको नहीं चाहते हों तो? इसलिये कहते हैं—'सम्मतः'—नहीं नहीं, मैं उनका 'सम्मत' सेवक हूँ। उन श्रीरामको मेरे आनेकी खबर करा दो। धर्मज्ञ वह रामचन्द्र सर्वदा सबके पूज्य हैं। 'तस्य पादौ ग्रहीष्यामि स हीदानीं गतिर्मम'—उनके चरणोंका आश्रय लूँगा। वही अब मेरे अवलम्बन हैं।

हिचकिचाती हुई कैकेयीने सब वृत्तान्त जैसे-तैसे कह डाला और अन्तमें कहा कि—

त्वया त्विदानीं धर्मज्ञ राजत्वमवलम्ब्यताम्।
त्वत्कृते हि मया सर्वमिदमेवंविधं कृतम्॥

'अब तुम राजा होओ। तुम धर्मको जाननेवाले हो। जब यहाँ राज्यका रक्षक कोई नहीं तो प्रजापालन अपना धर्म समझकर तुम्हीं राज्यका शासन ग्रहण करो। तुम्हारे लिये ही मैंने यह सब कुछ किया है।'

यह सुनते ही भरत भूमिपर गिर पड़े। अपनी आत्मापर उनको बड़ी ग्लानि हुई। हाय! मेरेलिये ही यह सारा अनर्थ हुआ! अरविन्द-लोचन भगवान् श्रीरामचन्द्रको मेरे ही लिये जङ्गल-जङ्गल घूमना पड़ रहा है। मातापर उन्हें अत्यन्त क्रोध हुआ। हाय हाय! जगत्मात्रपर वात्सल्यकी दृष्टि रखनेवाले श्रीरामचन्द्र आज मेरे ही कारण वनवासी हुए हैं! उनके धैर्यका बाँध टूट गया। उन्होंने अपनी मातासे कहा—

कुलस्य त्वमभावाय कालरात्रिरिवागता।
अङ्गारमुपगुह्य स्म पिता मे नावबुद्धवान्॥

'तू इस कुलके लिये कालरात्रि होकर आयी है। हाय! पिताने तुझ-सरीखे अँगारेको आलिङ्गन करके भी नहीं पहचाना।' 'मृत्युमापादितो राजा त्वया मे पापदर्शिनि।' —हे पापिनी! तूने ही महाराजको मृत्यु-मुखमें पहुँचाया है। भरत कहने लगे—'मैं सत्य कहता हूँ, यदि श्रीरामचन्द्रकी तुझमें माताके समान पूज्यबुद्धि न होती तो तुझ पापिनीको छोड़ते मुझे कोई संकोच नहीं होता'—

न मे विकाङ्क्षा जायेत त्यक्तुं त्वां पापनिश्चयाम्।
यदि रामस्य नावेक्षा त्वयि स्यान्मातृवत् सदा॥

भगवान् रामका ज्यों-ज्यों उन्हें ध्यान आता था त्यों-त्यों भरतका दुःख और क्रोध दूना-दूना बढ़ता जाता था। कैकेयीको माता समझनेमें भी उनको दुःख होता था। कैकेयीका नाम लेकर वह बोले—'हे दुष्टचरित्रा कैकेयी! जिस राज्यके लोभसे तू यह घोर पाप किया है उस राज्यसे तू भ्रष्ट हो जा! तू धर्मसे हीन है। अपने इस पुत्रको मरा समझकर तू अब रो'—

राज्याद् भ्रंशस्व कैकेयि नृशंसे दुष्टचारिणि।
परित्यक्तासि धर्मेण मां सृतं रुदती भव॥

अस्तु, महाराज दशरथकी और्ध्वदैहिक क्रिया हो चुकनेके बाद कुलगुरु वसिष्ठने भरतसे कहा कि-'महाराज अन्त समयमें तुम्हें ही राजा होनेके लिये कह गये हैं। इसलिये अब इस साकेतराष्ट्रमण्डलकी पतवार तुम्हीं ग्रहण करो। बिना राजाके राज्य नहीं चल सकता।' आदर्श भ्राता भरतके कानमें ये वचन तप्ताङ्गार-सदृश मालूम हुए। उनसे न रहा गया। वे बोले—'बड़े दुःखकी बात है कि आप-सरीखे पूज्य और कुशल भी ऐसी बात मुखसे निकालते हैं। हमारे कुलमें सर्वदा ज्येष्ठको ही राज्य मिलता आया है। श्रीराम हम सबमें ज्येष्ठ भ्राता हैं। वही राजा होंगे। पिताका वचन मिथ्या न हो, इसलिये मैं ही चौदह वर्ष वनमें रहूँगा'—

रामः पूर्वो हि नो भ्राता भविष्यति महीपतिः।
अहं त्वरण्ये वत्स्यामि वर्षाणि नव पञ्च च॥

उसी समय भरतने दरबार करके निश्चय कर लिया कि हम सबलोग जायँ और श्रीरामचन्द्रको लिवा लायें, उन्हींका यहाँ राज्याभिषेक किया जाय। बस, सेनाके लिये रास्ता साफ करनेको उसी समय सैकड़ों कारीगर और यन्त्रकारोंको आज्ञा देकर भरत महलमें चले गये। वह रात उनकी बड़ी बेचैनीसे कटी। राजाओंका नियम है कि एक राजाके न रहनेपर दूसरा कोई-न-कोई राजा बना दिया जाता है। राजसिंहासन कभी सूना नहीं रहता। इस हिसाबसे सब साकेतमण्डल इस समय भरतको राजा मान रहा था। जैसे ही प्रातःकाल हुआ कि सूत, मागध, वन्दीगण नियमानुसार महाराजके जगानेके लिये मङ्गलवाद्य बजाने लगे। वीणाओंके झङ्कारके साथ मङ्गलस्तुति होने लगी। 'सुवर्णकोणाभिहतः प्राणदद्यामदुन्दुभिः।' 'सोनेकी चोभोंसे बजाया गया प्रातःकालका नक्कारा चारों तरफ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गूँजने लगा।' 'दध्मुः शङ्खांश्च शतशः'–नियमके अनुसार सैकड़ों सेवक शङ्ख-ध्वनि करने लगे। महर्षि वाल्मीकि कहते हैं—

स तूर्यघोषः सुमहान् दिवमापूरयन्निव।
भरतं शोकसन्तप्तं भूयः शोकैरन्धयत्॥

'आकाशको पूरित करती हुई उस बाजोंकी ध्वनिने शोकसन्तप्त भरतको और भी राँध डाला।' जैसे ही उनकी आँख खुली वह घबराकर उठ खड़े हुए। 'नाहं राजेति चोक्त्वा तं शत्रुघ्नमिदमब्रवीत्'–मैं राजा नहीं हूँ, कहकर उन बाजोंको बन्द करा दिया और शत्रुघ्नसे बोले—हाय! हाय! आज पिता महाराज दशरथकी 'परिभ्रमति राजश्री-र्नौरिवाकर्णिका जले'–यह राजलक्ष्मी बिना केवटकी नाव जिस तरह जलमें मँड़राती है उसी तरह चारों तरफ घूम रही है। 'यो हि नः सुमहान्नाथः सोऽपि प्रव्राजितो वने'–जो हम सबके स्वामी थे उन्हें भी वनमें भेज दिया गया है। हाय! हाय! जो देवचरित्र भरत धोखेसे भी अपनेको राजा माने जानेपर इस तरह दुखी हो पड़ते हैं, उनके लिये भला कभी यह सन्देह किया जा सकता है कि वे राज्यके लिये श्रीरामचन्द्रके साथ दग़ा करेंगे? अतएव महर्षि वाल्मीकि श्रीरामचन्द्रके मुखसे कहवाते हैं कि 'न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमाः'–हे तात! सब भाई भरतके समान नहीं होते!

माता और सब सेना आदिको साथ लेकर भरत जंगल-की तरफ चले। रास्तेमें गुह इस चतुरङ्गिणी महासेनाको देखते हैं। रघुवंशी राजाओंका चिह्न, ध्वजामें कोविदारका निशान देखकर और श्रीरामसे मिलती हुई आकृतिको देखकर उन्होंने पहचान लिया कि ये भरत हैं। उन्हें सन्देह हुआ, ये कैकेयीके पुत्र हैं। श्रीरामचन्द्रके अनिष्ट करनेके लिये ही तो कहीं इतनी सेना लेकर इस घोर वनमें नहीं आये हैं! अतएव पहले भरतके प्रति उनको कुछ अनिष्ट-भाव हुआ परन्तु जैसे ही वे उनके पास गये, जैसे ही वह देवमूर्ति देखी, निषादराज गुहका अन्तरात्मा रो उठा। रामके विरहमें उनकी उस करुण-दशाको देखकर गुह अपने आपको भी भूल गये। गोसाईंजी कहते हैं—

भरतदसा तेहि अवसर कैसी। जलप्रवाह जल-अलि-गति जैसी।
देखि भरतकर सोच-सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू॥

१ पानीपर जल्दी-जल्दी चक्कर लगानेवाला, काला एक छोटा कीड़ा।

भरत गुहके साथ श्रीरामचन्द्रकी चर्चा चलाकर ही अपने मनको ढाढ़स देना चाहते हैं। आप पूछते हैं, 'कहो गुह! कोशलाधीश्वर भगवान् श्रीरामचन्द्रने उस दिन रात्रिको कहाँ विश्राम किया था?' गुह कुशोंकी एक साँथरी (बिछौना) दिखा देते हैं। उसे देखकर भरत फिर रो पड़ते हैं। हाय! हाय! जिन कोशलनरेन्द्र श्रीरामचन्द्रके दास-दासीतक महार्ह शय्याओंपर सोया करते हैं वही साकेत-धराधीश्वर श्रीराम अनाथकी तरह इन कुश-कण्टकोंपर सोते हैं और केवल यही नहीं, सुकुमारी जनकनन्दिनी भी उन्हीं तृणोंपर रात काटती हैं। हाय, मैं बड़ा अभागा और कठोर हूँ—

हा हतोऽस्मि नृशंसोऽस्मि यत्सभार्यः कृते मम।
ईदृशीं राघवः शय्यामधिशेते ह्यनाथवत्॥

आँसू बहाते हुए भरत उस शय्याको प्रणाम करते हैं, और प्रतिज्ञा करते हैं—

अद्यप्रभृति भूमौ तु शयिष्येऽहं तृणेषु वा।
फलमूलाशनो नित्यं जटाचीराणि धारयन्॥

'आजसे मैं भी जमीनपर सोऊँगा, बहुत हुआ तो केवल तृण बिछा लूँगा। राजसी वस्त्रोंको हटाकर जटा और चीर धारण करूँगा। वनवासियोंकी तरह कन्द-मूल-फल खाऊँगा।'

भरतकी इस भ्रातृभक्ति और त्यागको देखकर निषाद-राज उनके पैरोंपर लोट जाते हैं और कहते हैं—

धन्यस्त्वं न त्वया तुल्यं पश्यामि जगतीतले।
अयत्नादागतं राज्यं यस्त्वं त्यक्तुमिहेच्छसि॥

'आप धन्य हो! जगत्में मैं आपकी तुलना नहीं पाता। बिना यत्नके पाये हुए राज्यको जो आप यों छोड़ रहे हैं।' जब आपने माँगा नहीं, आपको जब स्वयं अयोध्याका राज्य मिल रहा था तो कौन आपकी निन्दा कर सकता था? स्वयं कुलगुरु वसिष्ठ कहते हैं—

पित्रा भ्रात्रा च ते दत्तं राज्यं निहतकण्टकम्।
तद् भुङ्क्ष्व मुदितामात्यः शीघ्रमेवाभिषेचय॥

'तुमको यह राज्य पिता और भ्राताने आगे होकर दिया है। इस निष्कण्टक राज्यको आनन्दपूर्वक भोगो। सब अमात्य भी इसमें प्रसन्न हैं। तुम शीघ्र अपने राज्याभिषेककी आज्ञा दो।' जिन महर्षि वशिष्ठकी आज्ञा अकेला इक्ष्वाकु-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कुल ही क्या, उस समय भूमण्डलभर मानता था, वही जब यह कह रहे हैं, अब भरतको बुरा कहनेवाला कौन था? किन्तु भरत कहते हैं—

कथं दशरथाज्जातो भवेद्राज्यापहारकः।
राज्यं चाहं च रामस्य धर्मं वक्तुमिहार्हसि॥

'महाराज दशरथसे उत्पन्न हुआ मैं क्या राज्यापहारक बनूँगा? यह राज्य मिलना नहीं, यह तो राज्य छीनना है। इक्ष्वाकुकुलकी रीति तो सदासे यही चली आ रही है कि ज्येष्ठ पुत्र राज्यका अधिकारी हो। अब यदि श्रीरामचन्द्रकी सत्तामें मैं राज्य लेता हूँ तो क्या यह दूसरेका अधिकार छीनकर स्वयं हथिया लेना नहीं कहा जायगा? इसीलिये राज्याधिकारी न कहकर आप कहते हैं 'राज्यापहारकः।' 'दशरथात्' यों पिताका नाम लेकर कहनेमें भी व्यङ्ग्य है। जो दशरथ श्रीरामके विरहमें कुछ ही क्षण भले ही जिये हों परन्तु जिन्होंने रामका वियोग होते ही शरीर छोड़ दिया, श्रीरामके विरहकी वेदना नहीं सही, उन्हीं पुत्रवत्सल महाराज दशरथका पुत्र होकर उनके छोड़े हुए राज्यको ग्रहण कर सकता हूँ? क्या उनके छोड़े हुए राज्यको ग्रहण करनेकी मुझमें योग्यता है? यह राज्य और मैं दोनों ही रामके हैं। आप बड़े हैं, आपको धर्मकी बात कहनी चाहिये।'

भगवान् वशिष्ठ भरतको परख रहे थे। भरतका यह वचन सुनकर वे गद्गद हो उठे।

तद्वाक्यं धर्मसंयुक्तं श्रुत्वा सर्वे सभासदः।
हर्षान्मुमुचुरश्रूणि रामे निहितचेतसः॥

'धर्मसंयुक्त यह भरतका वाक्य सुनकर सभी सभासदोंकी आँखोंमें आँसू आ गये, क्योंकि सभीका चित्त श्रीराममें लग रहा था।' जिन भरतकी भगवान् श्रीरामचन्द्रमें इस तरहकी अलौकिक भक्ति है भला, उन्हींके लिये यह सन्देह किया जा सकता है कि वह श्रीरामचन्द्रके साथ दग़ा करेंगे? स्वयं श्रीरामचन्द्र गद्गद होकर महर्षि वशिष्ठजीसे कहते हैं कि भरतके समान भाई भूमण्डलभरमें नहीं हो सकता। गोस्वामीजीके अक्षर हैं—

नाथ-सपथ पितुचरन-दोहाई। भयउ न भुवन भरत-सम भाई॥

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्र जिस बातपर कुलगुरु वशिष्ठजीकी शपथ खाते हैं, पिताके चरणोंकी दुहाई देते हैं, भला, उस बातमें कोई सन्देह कर सकता है? आप कहते हैं—

'इस भुवनमें भरतके समान भाई आजतक नहीं हुआ।' इसी आशयसे यहाँ भी महर्षि कहवाते हैं कि—

न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमाः।

भरत चित्रकूटके नीचे पहुँचते हैं। उधर इस महासेनाका कोलाहल और पैरोंसे उड़ी हुई धूलि पर्वततक पहुँचती है। श्रीराम लक्ष्मणसे पूछते हैं कि 'देखो लक्ष्मण! यह काहेका हल्ला है?' लक्ष्मण पेड़पर चढ़कर दूरतकका दृश्य देखकर कहते हैं—'एक बड़ी भारी सेना इधर चली आ रही है।' फिर कहते हैं—'ध्वजाके चिह्नको देखकर प्रतीत होता है कि यह रघुवंशियोंकी सेना है। अवश्य भरत आ रहे हैं। मालूम होता है, कैकेयीके सिखाये भरतको राज्यका लोभ और भी बढ़ गया है। वे हमलोगोंको इस लोकसे हटाकर अपने राज्यको बिल्कुल निष्कण्टक करना चाहते हैं। किन्तु यह उनकी लालसा कभी पूरी नहीं होगी।' श्रीलक्ष्मण क्रुद्ध होकर भरतके विषयमें बड़ी बुरी-बुरी बातें कह डालते हैं। वे कहते हैं कि 'मैं अकेला आज भरतका अवश्य वध करूँगा।' श्रीलक्ष्मणने चाहे श्रीरामचन्द्रके प्रेमके कारण ही ऐसा असत् सन्देह किया हो और ये बातें कही हों; परन्तु श्रीरामचन्द्रको ये बातें बहुत बुरी लगीं। ये बातें सुनकर भ्रातृ-वत्सल, जगच्छरण्य श्रीरामचन्द्रको आँसू आ गये। आपने कहा—

धर्ममर्थं च कामं च पृथिवीं चापि लक्ष्मण।
इच्छामि भवतामर्थं एतत्प्रतिशृणोमि ते॥

'धर्म, अर्थ, संसारकी कामनाएँ और इस पृथिवीको भी मैं केवल तुमलोगोंके लिये ही चाहता हूँ, यह मैं तुमसे प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ। अर्थात् मेरा सब कुछ भाइयोंके लिये ही है। भला, मैं भाइयोंकी हिंसा करके राज्य चाहूँगा?' आप गद्गद होकर बड़े जोशमें कहते हैं—

यद्विना भरतं त्वां च शत्रुघ्नं वापि मानद।
भवेन्मम सुखं किञ्चिन्नस्य तत्कुरुतां शिखी॥

'भरत, तुम और शत्रुघ्न, इनके बिना यदि मुझे कोई दुनियाँमें सुख मिलता हो तो उसे अग्नि भस्म कर दे।' आहा! जिन श्रीलक्ष्मणने सर्वस्व त्याग करके श्रीरामचन्द्रकी चरण-परिचर्या ही आजतक अपना सब कुछ समझा है

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उनसे भी बढ़कर आपका प्रेम भरतमें है। अतएव आप लक्ष्मणको भी छोड़कर सबसे पहले उन्हींका नाम लेते हैं—'यद्विना भरतं त्वां च।' आप स्पष्ट अक्षरोंमें कहते हैं कि मुझे दृढ़ भरोसा है—

अस्मासु मनसाप्येष नाहितं किञ्चिदाचरेत्।

'भरत मनके द्वारा भी हमलोगोंका कभी अनिष्ट-चिन्तन नहीं कर सकते।' लक्ष्मणपर नाराज होकर आप आज्ञा करते हैं—

नहि ते निष्ठुरं वाच्यो भरतो नाप्रियं वचः।
अहं निष्ठुरमुक्तः स्यां भरतस्याप्रिये कृते॥

'हे लक्ष्मण! अबतक तो जो कुछ तुमने कह दिया है, सह्य है; किन्तु अब कभी मेरे सामने भरतके लिये अप्रिय वचन मत कहना। जो कुछ भरतको अप्रिय वचन कहोगे वह सब मेरे प्रति कहोगे।' आहा! भगवान्‌की आश्रित-वत्सलता तो देखिये। अपने आश्रितके विषयमें जो कुछ अपचार किया जाता है उसे आप अपने विषयमें ही अपचार समझते हैं। श्रीलक्ष्मणपर आप कभी नाराज नहीं हुए। और तो क्या, प्राणप्रिया श्रीजनकनन्दिनीको अकेली छोड़कर जिस समय श्रीलक्ष्मण मारीचानुगामी श्रीरामके पास चले आये और इधर रावण उन्हें हर ले गया, मैं समझता हूँ, वह अपराध तो अमार्जनीय था, उस समय तो जितना इन्हें धमकाते, थोड़ा था। रामके स्थानपर दूसरा होता तो शायद दूसरा महाभारत ही हो पड़ता। परन्तु अर्णवकी तरह अक्षोभ्य श्रीरामचन्द्र उस समय भी इतने अप्रसन्न नहीं हुए। उस समय आप स्वयं अत्यन्त दुखी हुए परन्तु लक्ष्मणको मर्मान्तिक दुःख हो, ऐसा वचन उस समय भी आपने नहीं कहा। उस समयके वाक्यके लिये महर्षि कहते हैं—

उवाच मधुरोदर्कमिदं परुषमार्तवत्।
अहो लक्ष्मण गर्ह्यं ते कृतम्, यत्त्वं विहाय तां सीतामिहागतः सौम्य!

'आर्तकी तरह होकर श्रीरामचन्द्र लक्ष्मणको यही कठोर वचन बोले कि 'हे लक्ष्मण! हे सौम्य!! तुमने बुरा किया कि सीताको छोड़कर यहाँ चले आये।' इस वचनके विषयमें महर्षि कहते हैं 'मधुरोदर्कम्'—जो पीछे मीठा लगे अर्थात् ऊपरसे कठोर होनेपर भी विचार करनेपर जो मधुर हो। जिस सीताके वियोगमें आप (लोकदृष्टिसे) प्राणान्तक कष्ट पाते हैं उस प्राणप्रियाके हरण होनेपर तो आप लक्ष्मणको इतना-सा ही उपालम्भ देते हैं; किन्तु भरतके लिये अप्रिय वचन बोलनेपर देखनेमें अपने धैर्यकी सीमातकसे आगे बढ़ जाते हैं। अक्षोभ्य अर्णव भी वेलासे बाहर तरङ्गें फेंकने लगता है। वहाँ आप 'मधुरोदर्कम्' बोलते हैं, जो ऊपरसे कठोर किन्तु भीतर मधुर होता है। यहाँ उससे बिल्कुल विपरीत हो गया है। ऊपरसे सौम्य-सा वचन है, किन्तु भीतर मर्मोंको भेदन कर देता है, जो क्षमासागर श्रीरामके स्वभावसे बिल्कुल ही प्रतिकूल है। जो श्रीलक्ष्मण सर्वस्व छोड़कर श्रीरामका अनुगमन करते हैं उन्हींके प्रति आप एक ऐसा वचन कह देते हैं जिसे 'व्यङ्ग्य' कहना पड़ेगा। आप कहते हैं—

यदि राज्यस्य हेतोस्त्वमिमां वाचं प्रभाषसे।
वक्ष्यामि भरतं दृष्ट्वा राज्यमस्मै प्रदीयताम्॥

'हे लक्ष्मण! तुम राज्यकी कामनासे ही यदि ऐसी कठोर बात भरतके लिये कहते हो तो मैं भरतके मिलनेपर उससे कह दूँगा कि 'राज्यमस्मै प्रदीयताम्'—अयोध्याका राज्य लक्ष्मणको दे दो।' हाय! हाय! जो लक्ष्मण श्रीरामचन्द्रकी सेवाके आगे त्रैलोक्यका राज्य भी तुच्छ समझते हैं उन्हींके लिये राज्यलोलुपताका यह मर्मवचन कितना घातक होगा, ज़रा सोचिये तो सही। फिर उसपर भी तुर्रा यह है कि जो लक्ष्मण सब कुछ छोड़कर श्रीरामचन्द्र-को ही अपना सर्वस्व दे देते हैं उनपर तो यह शङ्का कि 'राज्य-लोलुपता है।' और भरतपर यह भरोसा कि 'जैसे ही मैं कहूँगा कि लक्ष्मणको राज्य दे दो वैसे ही वह तुरन्त दे देंगे।' आप कहते हैं—

उच्यमानो हि भरतो मया लक्ष्मण तद्वचः।
राज्यमस्मै प्रयच्छेति बाढमित्येव मंस्यते॥

'राज्य इसे दे दो', मेरे द्वारा यों कहा गया भरत 'बाढमित्येव मंस्यते'—'जो आज्ञा' कहकर उसी समय मान लेगा। कहिये, भरतपर प्रेमकी कोई सीमा है? लक्ष्मणके प्रति यह कठोर वचन कहनेका अवसर तभी आया जब भरतके प्रति इन्होंने ऐसा असत् सन्देह किया। हाय! हाय! जिस भ्राता भरतपर आपकी अतुल प्रीति है, अटल विश्वास है, उसके प्रति इस तरहके कूट वचन! बस, आपका चित्त एकदम क्षुभित हो उठा। आपके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मुखसे ये वचन निकल पड़े। अब विचारिये, श्रीरामचन्द्रके हृदयपर भरतका कितना अधिकार है? जिन भरतको अप्रिय वचन कह देनेमात्रसे श्रीरामचन्द्र आजन्मसेवक, प्राणप्रिय श्रीलक्ष्मणके प्रति भी इतने रूक्ष हो जाते हैं उन्हीं भरतके विषयमें श्रीरामचन्द्रके साथ दग़ा करनेकी शङ्का भला की जा सकती है? अतएव महर्षि यहाँ कहलवाते हैं—

न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमाः।

बड़ी-बड़ी उत्कण्ठाओंको हृदयमें लिये अत्यन्त घबराहटके साथ दौड़ते हुए-से भरत जैसे ही श्रीरामचन्द्रका दर्शन दूरसे ही करते हैं, उन राजराजेन्द्रका वनवासी-वेष देखकर रो उठते हैं। 'सर्व सुखोंके योग्य श्रीरामचन्द्रको हाय! मेरे ही लिये यह दुःख मिल रहा है। मेरे इस दारुण जीवनको, लोक-निन्दनीय इन प्राणोंको धिक्कार है'—

मन्निमित्तमिदं दुःखं प्राप्तो रामः सुखोचितः।
धिग्जीवितं नृशंसस्य मम लोकविगर्हितम्॥

यों विलाप करते हुए भरत श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम करनेके लिये बड़े सम्भ्रमसे आगे बढ़ते हैं, परन्तु—

पादावप्राप्य रामस्य पपात भरतो रुदन्।
उक्त्वार्येति सकृद्दीनं पुनर्नोवाच किञ्चन॥

'श्रीरामचन्द्रके चरणोंके पास पहुँचनेके पहले ही विह्वलताके कारण भूमिपर गिर जाते हैं। रोते हुए भरत बड़े दीन स्वरसे 'आर्य!' केवल इतनामात्र एक बार मुँह-से कह सके। फिर कुछ बोला न गया। मूर्च्छित हो गये।'

भरतकी भ्रातृ-भक्ति, भरतका देव-चरित्र, त्रिलोकीमें अतुलनीय है, यह दावेके साथ कहा जा सकता है; किन्तु यहाँ अतिप्रसङ्ग हुआ जा रहा है। कई पाठक कदाचित् ऊबते होंगे; परन्तु लाचारी है। पाठकगण! विस्तारके लिये लेखनीकी विवशता समझकर क्षमा कर देंगे। भरतका त्याग, भरतकी उदारता, भरतकी निष्ठाको देखकर यह लोक ही नहीं, त्रिलोकी चकित हो गयी थी। श्रीरामचन्द्र उनसे यकायक वनमें चले आनेका कारण पूछते हैं। कहते हैं—'भैया! तुमने अयोध्यामें रहकर राजधर्मका तो अच्छी तरह पालन किया है? कहीं उसमें तो त्रुटि नहीं हुई?' लोकातिशायी धर्मव्रत श्रीमान् भरत उत्तर देते हैं—

किं मे धर्माद्विहीनस्य राजधर्मः करिष्यति।
शाश्वतोऽयं सदा धर्मः स्थितोऽस्मासु नरर्षभ।
ज्येष्ठे पुत्रे स्थिते राजा न कनीयान् भवेन्नृप॥

'हे नरश्रेष्ठ! मैं धर्मसे विहीन हूँ, मेरा राजधर्म क्या करेगा? हमलोगोंमें सदासे यह धर्म चला आया है कि ज्येष्ठ पुत्रके रहते छोटा राजा नहीं हो।' मैं अभागा हूँ, इस कलङ्कसे कलङ्कित हो चुका हूँ। यदि आप मुझपर कुछ भी कृपा रखते हैं, मेरा कलङ्कसे उद्धार करना चाहते हैं तो अयोध्या पधारिये। 'अभिषेचय चात्मानं कुलस्यास्य भवाय नः'—अपना अभिषेक कराइये। अपने लिये नहीं, हमारे सम्पूर्ण वंशकी मर्यादा रखनेके लिये। महर्षि वशिष्ठ आदि सम्पूर्ण ही पूज्यगण अयोध्या पधारनेका आग्रह करते हैं, किन्तु मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र स्वीकार नहीं करते। आप उत्तर देते हैं—'मैं पिताके सम्मुख वनवासकी प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। पिताकी भी मुझे वनवासकी आज्ञा हो चुकी है। अब आप ही देख लीजिये, मैं पिताकी आज्ञा-का पालन करूँ या भरतका कहना?'

कथं ह्यहं प्रतिज्ञाय वनवासमिमं गुरोः।
भरतस्य करिष्यामि वचो हित्वा गुरोर्वचः॥

इधर भगवान् पिताकी आज्ञापर अटल हैं, उधर श्रीमान् भरत ज्येष्ठकी सत्तामें राज्य स्वीकार करना बुरा ही नहीं, पातक समझते हैं। बड़ा भ्राता अविवाहित रहे और यदि छोटा दारपरिग्रह (विवाह) कर ले तो शास्त्रमें वह प्रायश्चित्ती है, अपाङ्क्तेय है। 'परिवेत्ता' कहा जाता है। आहा! कालिदास कहते हैं—

स हि प्रथमजे तस्मिन्नकृतश्रीपरिग्रहे।
परिवेत्तारमात्मानं मेने स्वीकरणाद्भुवः॥

'ज्येष्ठ भ्राता रामचन्द्रके राज्यश्रीका परिग्रह न करनेपर वह (भरत) स्वयं भूमिको स्वीकार करते हुए अपनेको 'परिवेत्ता' मान रहे थे।'

किन्तु श्रीरामचन्द्रकी प्रतिज्ञा टूट जाय, यह भरत कैसे स्वीकार करते; भले स्वयं उनपर जगत्का कलङ्क आ जाय! आखिर श्रीरामचन्द्रकी चरण-पादुकाओंको लेकर भरत मस्तकपर चढ़ाते हैं और प्रतिज्ञा करते हैं कि 'चौदह वर्षतक यह आपकी पादुकाएँ राज्य करेंगी। मैं जटाचीरधारी, वनवासी होकर अयोध्यासे बाहर रहूँगा और इन पादुकाओंका सेवक बनकर अयोध्याकी देख-रेख करूँगा।' उन पादुकाओंको केवल उसी समय मस्तकपर नहीं चढ़ाया, ठेठ अयोध्यामें पहुँचकर उनको जबतक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

राजगद्दीपर न बिठा दिया तबतक मस्तकपर धारण किये रहे। महर्षि कहते हैं—

ततः शिरसि कृत्वा तु पादुके भरतस्तदा।
आरुरोह रथं हृष्टः शत्रुघ्नसहितस्तदा॥

'भरत अपने मस्तकपर उन पादुकाओंको धारण करके शत्रुघ्नके साथ बड़े प्रसन्नचित्त होकर रथपर बैठे।' कहिये, कोई दीखता है ऐसा राजवंशमें? बड़े भ्राताके चरण-वन्दनके लिये ही झुकता हुआ राजपुत्रोंका मस्तक आजकल सङ्कुचित होता है। उनकी चरणपादुकाओंको मुकुटकी तरह मस्तकपर धारण करनेवाला कोई भ्रातृभक्त आपको राजाओंमें दिखलायी देता है? यही कारण है कि भरतके चरित्रको सुननेमात्रसे हृदय पवित्र हो जाता है। अहा! जिस समय वनवासकी अवधिको समाप्तकर कोसलनरेन्द्र श्रीरामचन्द्र श्रीजनकनन्दिनीको साथ लेकर अयोध्याकी तरफ पधारे उस समय एक-एक दिन और घड़ियोंको गिननेवाले भरत सब परिकरको साथ लेकर श्रीरामचन्द्रकी अगवानीको गये थे। जटाजूटमण्डित वे भरत श्रीजानकीके चरणोंमें जिस समय प्रणाम करने लगे उस समयकी बात महाकवि कालिदासने अद्भुत और अनुपम कही है। वे कहते हैं—

लङ्केश्वरप्रणतिभङ्गदृढव्रतं त-
द्वन्द्यं युगं चरणयोर्जनकात्मजायाः।
ज्येष्ठानुवृत्तिजटिलं च शिरोऽस्य साधो-
रन्योन्यपावनमभूदुभयं समेत्य॥

'श्रीजानकीके चरण कैसे हैं जिन्होंने रावणके शत-शत प्रणामोंका तिरस्कार कर दिया, कभी उसके प्रलोभनकी तरफ आँख उठाकर भी नहीं देखा। अतएव पतिव्रता-शिरोमणि उन जानकीके चरण त्रिलोकवन्दनीय हैं। इधर साधु-शिरोमणि इन भरतका मस्तक कैसा है, जिसने ज्येष्ठ भ्राताके आज्ञापालनमें अपनेको जटाधारी बना रक्खा है, अतएव ये भी त्रिभुवनवन्दनीय हैं। ये दोनों (जानकीजीके चरण और भरतका मस्तक) प्रणामके समय मिलकर 'अन्योन्यपावनम् अभूत्।' परस्पर-एकको एक पवित्र करनेवाला हो गया। अर्थात् ये दोनों ही एक-से-एक बढ़कर पवित्र थे। त्रिलोकपति रावणके प्रणामोंको ठुकरानेसे अखण्डितपातिव्रत्य श्रीजानकीके चरण पवित्र थे तो पिताके दिये राज्याभिषेकको अस्वीकार करके श्रीरामके लिये जटाओंको धारण करनेवाला, त्यागके कारण जगत्में सदा ऊँचा रहनेवाला यह मस्तक भी कम पूजनीय न था। अतएव दोनों मिलकर आपसमें शोधन करनेवाले हो गये।'

यही कारण है कि पादुकाओंको मस्तकपर धारण किये हुए भरत जिस समय भरद्वाजके आश्रममें पहुँचे तो उनकी भ्रातृभक्ति और त्यागको देखकर गद्गद हुए भरद्वाजके मुखसे निकला कि—

अनृणः स महाबाहुः पिता दशरथस्तव।
यस्य त्वमीदृशः पुत्रो धर्मात्मा धर्मवत्सलः॥

'आज भाग्यवान् वह तुम्हारा पिता दशरथ पितृऋणसे अनृण हो गया, जिसको तुम-सरीखा धर्मात्मा, धर्मवत्सल पुत्र मिला है।' मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रके कारण दशरथको अनृण नहीं कहा गया, कहा गया है त्यागी, भ्रातृभक्त श्रीमान् भरतके कारण। कहा भी है और बहुत बढ़कर कहा है। वे कहते हैं 'धर्मवत्सलः।' धर्म तो सबपर वात्सल्य रखता ही है; परन्तु स्वयं धर्म ही उन भरतमें महत्त्व-बुद्धि रखता है। अतएव भरतकी कक्ष्या इतनी उन्नत है कि वह धर्मपर वत्सलबुद्धि रख सकते हैं। कहिये, ऐसा उदारचरित्र कोई दुनियामें होगा? एक साधारणसे विद्वान्का दिया हुआ कागज़ी सर्टीफ़िकेट ही जब आजकल लोगोंका सम्मान करा देता है, तब भला सकल भूमण्डलमें धर्मके सम्माननीय व्यवस्थापक भरद्वाज-सरीखे महर्षि गद्गद होकर जिसे यों हृदयका सर्टीफ़िकेट देते हैं फिर वह लोकमें अद्वितीय नहीं गिना जायगा? अतएव श्रीरामचन्द्र कहते हैं—

न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमाः।

श्रीमान् भरत राजधानी अयोध्याको छोड़कर नन्दिग्राममें पहुँचते हैं। वहाँ पहुँचते ही आप अपने प्रकृतिमण्डलको आज्ञा देते हैं—

छत्रं धारयत क्षिप्रमार्यपादाविमौ मतौ।
आभ्यां राज्ये स्थितो धर्मः पादुकाभ्यां गुरोर्मम॥

'ये पादुकाएँ नहीं हैं, श्रीरामचन्द्रके साक्षात् चरणारविन्द हैं। इनपर शीघ्र छत्र धारण कीजिये, जो राजविभूतिका चिह्न है। मेरे गुरुस्थानीय श्रीरामचन्द्रके इन्हीं चरणोंके कारण लोकमें धर्मकी स्थिति है।' अलौकिकचरित्र श्रीमान् भरत इस राजलक्ष्मीको तो श्रीरामकी धरोहर (अमानत)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समझते हैं और अपना सर्वस्व तो इन पादुकाओंको ही बतलाते हैं। आप कहते हैं—

एतद्राज्यं मम भ्रात्रा दत्तं संन्यासमुत्तमम्।
योगक्षेमवहे चेमे पादुके हेमभूषिते॥

'यह राज्य तो श्रीरामचन्द्रने अपनी अमानतके रूपमें मुझे सँभलाया है। और मेरे योग-क्षेमको चलानेवाली तो सुवर्णसे मण्डित ये दोनों पादुकाएँ हैं।' कहिये! ऐसे वाक्य दुनियाके किसी दूसरे भी भ्रातासे सुने गये हैं अथवा सुने जानेकी सम्भावना की जा सकती है? इधर श्रीरामचन्द्रके भी हृदयको देखिये। चौदह वर्षका वनवास बिताकर, अनेक असहनीय सङ्कटोंको पारकर, आप अपनी जन्मभूमि अयोध्याकी तरफ पधार रहे हैं। जिस समय मनुष्य सङ्कटोंसे बचकर, बड़ी लम्बी अवधिको ठेलकर, अपने अभिमत सुखके अभिमुख होने लगता है उस समय उसके हृदयमें उत्कण्ठाओंकी आँधी-सी उठ आती है। वियोगकालमें जिनको देखनेके लिये उसका हृदय तड़पा करता है उन्हींकी भावनाएँ उसके हृदयमें नानारूपसे घूमा करती हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्र पुष्पक-विमानमें विराजे हुए, विभीषण, सुग्रीवादि अपने सहायक सुहृदोंको साथ लिये हुए, जिस समय अयोध्यापुरीपर दृष्टि डालते हैं, सबसे पहले आपको भरतकी याद आती है। कालिदासके अक्षर हैं—

शङ्के हनूमत्कथितप्रवृत्तिः प्रत्युद्गतो मां भरतः ससैन्यः।

'मैं अनुमान करता हूँ कि हनुमान्‌से जहाँ मेरे आगमन-का वृत्तान्त सुना कि भरत सब सेनाको साथ लेकर मेरे सम्मुख आया-का-आया है।' श्रीरामचन्द्र जानकीसे कहते हैं कि भरत इस समय साकेतराज्यकी रक्षा नहीं कर रहा है, 'असिधाराव्रत' पालन कर रहा है। खाँड़ेकी धारपर खेल रहा है। राजपुत्र होकर, युवा होकर, नाना तरहके यौवन-सुलभ मनोरथोंको हृदयमें धारण करता हुआ भी जो वह अयोध्याकी राजलक्ष्मीको रञ्चकमात्र स्पर्श नहीं कर रहा है, यह असामान्य संयम क्या खाँड़ेकी धारसे कम है? यह नहीं कि इस राजलक्ष्मीपर मेरा अधिकार हो। नहीं नहीं, 'पित्रा विसृष्टाम्।' पिता महाराज दशरथने उसे दे दी थी। भरतका उसपर धर्मानुकूल अधिकार हो चुका है। ऐसी दशामें भी 'मदपेक्षया' केवल मुझमें भक्तिके कारण जो उस राजलक्ष्मीकी तरफ आँख उठाकर देखतातक नहीं है, यह क्या 'असिधाराव्रत' थोड़ा है? असिधाराव्रतका लक्षण है—

युवा युवत्या सार्द्धं यन्मुग्धभर्तृवदाचरेत्।
अन्तर्निवृत्तसङ्गः स्यादासिधारव्रतं हि तत्॥

'जवान स्वामी पूर्ण युवती स्त्रीके साथ स्वतन्त्रतामें रहता हुआ भी जो 'मुग्धभर्ता' अर्थात् सांसारिक चर्या कुछ नहीं समझता हो उसकी तरह आचरण करे, बल्कि हृदयमें भी सङ्गकी भावनातक न लाये, उसे 'असिधाराव्रत' कहते हैं।' एक-दो दिन नहीं, आज चौदह-चौदह वर्ष हो गये। भरत मेरी प्रतीक्षामें राजलक्ष्मीको पासमें लिये कठिन 'असिधाराव्रत' पालन कर रहा है। कालिदासके अक्षर हैं—

पित्रा विसृष्टां मदपेक्षया यः
श्रियं युवाप्यङ्कगतामभोक्ता।
इयन्ति वर्षाणि तया सहोग्र-
मभ्यस्यतीव व्रतमासिधारम्॥

इस खाँड़ेकी धारपर परीक्षा देकर पास होनेका ही यह फल है कि आज त्रिलोकीमें भरतका यश गाया जा रहा है। धन्य-धन्य कहकर सब लोगोंके मुखसे निकल रहा है कि—

भरतेन समो धीरो भरतेन समोऽनुजः।
भरतेन समस्त्यागी न भूतो न भविष्यति॥

जिस समय लक्ष्मणने भरतपर राजमदका सन्देह करके कहा था कि शायद बुरी भावनासे ही भरत सेना लिये इधर आ रहा है, उस समय श्रीरामचन्द्र प्रतिज्ञापूर्वक कहते हैं—

मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृपमद भरतहि भाई॥
लखन तुम्हार सपथ, पितु, आना। सुचि सुबन्धु नहि भरत-समाना॥

भरतके इन्हीं असामान्य गुणोंका स्मरण करते हुए श्रीरामचन्द्र यहाँ कहते हैं कि—

न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमाः।

यद्यपि लक्ष्मणकी भी भक्ति श्रीरामचन्द्रमें सामान्य न थी। जिन्होंने जन्मपर्यन्त श्रीरामचन्द्रका ही आश्रय लिया, उनके सुखमें सुख, दुःखमें दुःख माना; और तो क्या, अपने प्राणोंकी भी परवा न कर श्रीरामचन्द्रकी सेवासे जिन्होंने कभी मुँह न मोड़ा, क्या उनकी भ्रातृभक्ति साधारण समझी जा सकती है? श्रीरामचन्द्र ही नहीं, श्रीजानकीतकपर जिनकी यह भावना थी कि 'प्रत्यक्षं दैवतं मम'—मेरी साक्षात् उपास्य देवता हैं। चरणप्रणामके समय जिनकी दृष्टि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीजानकीके चरणोंसे ऊपरतक भी कभी नहीं गयी थी, जिसके कारण उन्हें कहना पड़ा था कि—

नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ॥

'नित्य चरणोंमें प्रणाम करनेके कारण मैं केवल श्रीजानकीके नूपुरोंको पहचानता हूँ', क्या उन श्रीलक्ष्मणकी भ्रातृभक्ति और त्याग दुनियामें किसीसे भी नीचा कहा जा सकेगा ? परन्तु लक्ष्मणकी जीवनचर्यामें ऐसा मौका नहीं आया कि उनको राज्य मिलता हो और उन्होंने नहीं लिया हो। किन्तु भरतको महाराज दशरथ अपने मुखसे यौवराज्यकी आज्ञा दे चुके थे। कैकेयी असामान्य परिश्रम करके अपने पुत्रके लिये राज्य-श्री दिला चुकी थी। स्मरण रखिये, यह राजलक्ष्मी भरतको सस्ते मोल नहीं मिली थी। अपने प्राणोंपर खेलकर कैकेयीने युद्धमें दशरथकी प्राणरक्षा की थी। महाराजने प्रसन्न होकर उसे इसका एवजाना माँगनेको कहा था। वही प्राणान्तिकपरिश्रमप्राप्त कैकेयीका पारितोषिक महाराज दशरथके पास अमानत-स्वरूपमें जमा था। उसके एवजमें कैकेयीके पुत्रको—कैकेयीके ही पुत्र क्यों ? क्या भरत दशरथके कुछ भी न थे ? फिर अपने पुत्रको ही यदि उन्होंने राज्य दे दिया तो कौन बड़ा एहसान हुआ ? वह भी राज्य बड़ी बदनामी सहकर, सम्पूर्ण अयोध्यावासियोंकी निन्दाभाजन बनकर—अयोध्यावासी ही क्यों ? आजतक भूमण्डलभरके लिये कुटिलताकी दृष्टान्त बनकर—बड़ी कठिन साधनाके बाद प्राप्त किया था। यदि उसे भरत स्वीकार कर लेते तो क्या उनका अधिकार न था ? परन्तु अधिकारप्राप्त, सम्मुख आये हुए, हस्तोपनत राज्यको भी उन्होंने श्रीरामके कारण छोड़ दिया था। इसीलिये लक्ष्मणसे भी बढ़कर उन्हें दिखलाते हुए श्रीरामचन्द्र यहाँ कहते हैं—

न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमाः।

(क्रमशः)

दृष्टान्त-तरंगिणी-तरंग

(१)

भापत धीर सरीरको, नहीं छनक इतबार।
ज्यौं तरु सरिता-तीरको, गिरत न लागै बार॥

(२)

सनबंधिनको संग है, जगमैं छनक बिचारि।
मिलै कूपपर आनि ज्यौं, घर-घरकी पनिहारि॥

(३)

अवसि तोहि तजि जायँगे, सनबंधी सब संग।
जैसे रैन बिताइ तरु, तजि, उड़ि जाइ बिहंग॥

(४)

चिद् हरि तें लीला करैं, जग जड़को संदोह।
ज्यौं चुंबक-परतापतें, करत क्रिया जड़ लोह॥

(५)

चिदानंदकी सकतितें, मन-इंद्रिनको भोग।
होत जथा रविके उदै, क्रिया करैं सब लोग॥

(६)

आतम तैसो होत है, जैसो-जैसो संग।
जैसे बरन-बिकारतें, फटिक बनै बहु रंग॥

—बाबा दीनदयाल गिरि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीनारायणस्वामीजीका निवेदन

'कल्याण' पत्र गोरखपुरके कार्यकर्ता प्रेमी भक्तजन बहुत दिनोंसे 'कल्याण' में लेख देनेको इस गरीब दाससे कह रहे हैं।

परन्तु इस दासने थोड़े समयसे स्लेट या कागज-पर लिखना भी छोड़ दिया है। जरूरतके समय भक्तजनोंको अंगुलीसे जमीनपर लिखकर समझा देता है। इस कारणसे बड़ा लेख लिखनेको मजबूर है। दूसरा कारण यह है कि वर्तमान समयमें बुरे कर्म अधिक होनेसे लोगोंके मन मलिन होते जाते हैं। भक्ति-विषयक हानि होती है और मलिन मनपर उपदेशका प्रभाव कम पड़ता है।

सत्य बोलो

केवल इसके साथ छपे दो बड़े अक्षरोंके कागजको दोनों हाथोंसे पकड़कर आपके सामने पेश करता हूँ और अत्यन्त अधीनताके साथ बारम्बार साष्टाङ्ग दण्डवत्-प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि जहाँतक बन पड़े हर समय विचार करते हुए प्रेमसहित इस 'सत्य' शब्दपर अवश्य विचार कीजिये।

छोटे-छोटे बालकोंको भी झूठ बोलनेसे रोकिये।

इस कागजको शीशेमें जड़वाकर सोने-बैठने इत्यादि-के कमरोंमें लगा दें। बारम्बार दृष्टि पड़नेसे इसकी याद आती रहेगी।

सत्य वह साधन है जिसको हर मजहबने परम धर्म माना है। यह वह शब्द है जो जन्म-जन्मान्तरके पापोंको निवारण करता है। आगामी पापोंको रोकता है। इससे सारे गुण आ जाते हैं। लोक-परलोक दोनों-का सुख मिलता है और कल्याणकी प्राप्ति होती है।

एक परमार्थका भूखा साधु आपके दरवाजेपर खड़ा हुआ दोनों हाथ फैलाकर आपसे सत्य बोलने-की भिक्षा माँगता है। और सिरको नीचा करके प्रेमसहित नेत्रोंमेंसे जल निकालकर प्रार्थना करता है, कि प्यारे नारायण! आप कलियुगकी लीला तो कर ही रहे हैं, परन्तु शक्तिके अनुसार जितना बन पड़े थोड़ा-बहुत दान मनसा, वाचा, कर्मणासे सत्य-भाषण-का इस गरीब दासको जरूर दीजिये। निराश न करना, नहीं तो इस दासके मनको बहुत दुःख होगा और आपकी गृहस्थ-आश्रमकी नीतिके विरुद्ध होगा। लाइये, लाइये। बोलो नारायण, नारायण, नारायण, नारायण, नारायण।

'सत्य बोलो' के साथ जो व्रत बतलाये गये हैं उनको गृहस्थ आजकल प्रायः शास्त्रोंमें लिखी हुई विधिपूर्वक नहीं करते। बहुत-से भक्तजन तो जानते भी नहीं हैं इस कारण कुछ विस्तारसे प्रत्येक उपवास-को विधिपूर्वक लिखा जाता है।

एकादशी

एकादशी-माहात्म्यमें लिखा है कि दशमीके दिन एक समय भोजन करना चाहिये, एकादशीके दिन निर्जला अर्थात् जल पिये बिना उपवास करना चाहिये। मौन रखना और कीर्तन करना इत्यादि बतलाया गया है। सालभरकी चौबीस एकादशियों-की विधि और फल जुदा-जुदा लिखे हैं। पद्म-पुराणमें लिखा है कि व्रतके दिन केवल उतना ही जल पीना चाहिये जितना हाथकी हथेलीके गड्ढेमें आवे। इसका मतलब यही है कि जल भी न पिया जाय।

जिस गृहस्थसे इतना न हो सके उसे फलाहार करना चाहिये। इस दासने अपने विचारसे नीचे लिखे चार प्रकारके आहार ठीक समझे हैं—

१—केवल जल एक बार पीना। जलका भी आहार माना गया है, परन्तु बार-बार जल पीनेसे उपवास खण्डित हो जाता है—ऐसा लेख है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२—आधा सेर दूध दोपहरके बाद सूर्यास्त होनेके पहले पीना चाहिये। रात्रिमें कुछ नहीं खाना चाहिये।

३—जलवाले फल जैसे मीठे नीबू, सन्तरा, अनार या अंगूर आदि खाना चाहिये। केला, सेव आदि नहीं खाना चाहिये। इनके खानेसे पेटमें बोझा होता है। थोड़ा आहार ही ठीक है।

४—दहीमें कुछ उबले हुए आलू मिलाकर खानेसे आहार ठीक हो जाता है। परन्तु ऊपर लिखी हुई सभी चीजें नहीं खानी चाहिये। इन चारोंमेंसे केवल एक ही आहार करना चाहिये।

कुट्टू या सिंघाड़ेकी पूरियाँ अथवा अन्य बहुत प्रकारके भोजन बनाकर खानेसे अन्नके समान पूरा आहार हो जाता है। ऐसा आहार करनेसे कुछ लाभ नहीं है। व्रत करनेका यह मतलब है कि शरीरको कुछ कष्ट देकर इन्द्रियोंका दमन किया जाय। उपवास शरीरको नीरोग रखनेमें सहायता करता है।

अमावस्या

यह दिन बहुत पवित्र माना गया है। अमावस्याको अन्न खाना निषेध बतलाया गया है, इसलिये इस दिन भी ऊपर लिखे अनुसार आहार करना ठीक होगा। उपवास रखनेसे बहुत पुण्य होता है।

पूर्णिमा

पूर्णिमाके दिन रातको चन्द्रमाको अर्घ्य देकर पक्का (पूरी आदि) भोजन करना चाहिये। श्रीसत्यनारायणकी कथा सुविधानुसार दिन या रात्रिमें श्रद्धापूर्वक प्रेमसहित करानी और सुननी चाहिये। स्वयं भी पढ़ सकते हैं। परन्तु पण्डितसे करानेसे विधिपूर्वक कथा होगी और उत्तम होगी। केवल एक रुपया हर मासका खच है। आठ आने पूजा-प्रसाद आदिकी सामग्रीमें, आठ आने कथा बाँचनेवाले पण्डितकी भेट, जिसको गरीब-अमीर सब कर सकते हैं। श्रीसत्यनारायणकी कथामें लिखा है कि विष्णु-भगवान्‌ने इस कलियुगके समय गृहस्थोंको यह साधन मनोवाञ्छित फल देनेवाला बतलाया है। श्रीसत्यनारायणजी सत्य बुलवानेमें सहायता करते हैं, मेरा ऐसा अनुभव भी किया हुआ है। सत्यनारायण-कथाकी पोथीमें पाँच कथाएँ हैं, जिनके फलोंपर विचार करनेकी जरूरत है।

प्रार्थना

प्रत्येक स्त्री-पुरुष, बड़े-छोटे सबको महीनेमें यह चारों व्रत करने चाहिये। सबसे अधिक फल निर्जल उपवासका मिलता है। गरमीके मौसम वैशाख-ज्येष्ठमें जलकी इच्छा ज्यादा होती है। उसके लिये एक साधन है कि जब-जब प्यास ज्यादा लगे, तब-तब सिरपर जल डालकर स्नान कर ले। रात-दिनमें दो-चार बार स्नान करके सिरको ठण्ढा रखनेसे प्यास कम लगती है। करनेवालेके लिये कुछ मुश्किल भी नहीं है। करके बतलाओगे तभी सुख पाओगे। बोलो नारायण, नारायण, नारायण, नारायण, नारायण।

सबका शुभचिन्तक

श्रीनारायणदास परमहंस

वृन्दावन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

सत्य बोलो

जरूरतसे ज्यादा न बोलनेका अभ्यास करो

जिसको वचन दो विचार कर दो और उसे जरूर पूरा करो

एकादशी, अमावस्या

और

पूर्णिमाका

व्रत करो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

महोबा और उसके देवस्थान

(लेखक—श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी एम० ए०, डिप्टी कलेक्टर)

युक्त प्रान्तके अधिकांश निवासी सुप्रसिद्ध वीररसकाव्य आल्हाखण्ड तथा आल्हा और ऊदलकी कथाओंसे परिचित ही होंगे। यह आजकलकी अपूर्ण तथा निःसत्त्व ऐतिहासिक पाठ्य-पुस्तकोंका फल है जो हम शिक्षित कहलानेवाले लोग इस आत्मगौरवके युगमें अपने आल्हा, ऊदल-जैसे सुभट वीरोंके अस्तित्वमें भी शङ्का करने लगे हैं। वास्तवमें ये दोनों योद्धा ऐतिहासिक व्यक्ति थे और आल्हाखण्डकी मुख्य-मुख्य घटनाएँ सत्य हैं। आज जिस महोबे तथा उसके प्राचीन देवस्थानोंका वर्णन पाठकोंकी भेंट किया जाता है वही इन सूरमाओं तथा उनके साथी अन्य योद्धाओंका मुख्य लीलाक्षेत्र रहा है।

ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दीमें उत्तरी भारतमें तीन बड़े-बड़े राज्य थे। इन्द्रप्रस्थ अथवा देहलीके सिंहासनको महाराज पृथ्वीराज चौहान सुशोभित कर रहे थे। कन्नौजमें राजा जयचन्दका राज्य था और महोबेमें चन्देल-राज्याधिपति महाराज परमाल या परमार्धिदेव शासन कर रहे थे। तीनों ही राष्ट्र अपनी-अपनी चरमोन्नतिपर थे। यह केवल भारतका दुर्भाग्य ही था कि मुसलमानोंके प्रारम्भिक आक्रमणरूपी महासङ्कटके समय ये तीनों हिन्दू-सम्राट् आपसहीमें कट मरे। परिणाम यह हुआ कि मुसलमानोंके विजयका मार्ग निरापद हो गया। पृथ्वीराज और जयचन्दके वैमनस्यकी कथा तो प्रसिद्ध ही है। इसके कुछ ही पूर्व पृथ्वीराज और परमालमें घनघोर युद्ध हो चुका था और चन्देलराज्य-वंशका प्रायः अन्त ही हो गया था।

भारतके मध्ययुगीन इतिहासमें क्षत्रिय राजाओंमें कन्याके विवाह-सम्बन्धी कई अत्यन्त कठोर तथा अप्राकृतिक रीति-रिवाज बन गये थे। कन्या देना बड़ा भारी अपमान-सूचक कार्य समझा जाने लगा था। इसी कारण अनेकानेक राजकुमारियाँ तो जनमते ही गला घोंटकर मार डाली जाती थीं। सौभाग्यवश यदि इसप्रकारकी भयङ्कर शिशुहत्या न हो पायी तो कन्याके विवाहयोग्य होनेपर कोई भी पिता प्रसन्नतासे उसे किसी राजकुमारके साथ न ब्याहता था। ऐसी स्थितिमें यदि कोई राजा लड़ाईमें कन्याके पिता-को पराजित कर लेता तो उस विजित राजाकी अधीनताको दृढ़ करनेके लिये उसकी कन्याका विवाह अपने पुत्रसे कर देता था। कभी-कभी तो कन्याकी विदा उसी समय हो जाती थी, पर अधिकतर गौना बादमें होता था। उस अवसरपर फिर युद्ध होता था और यदि वरपक्ष फिर भी विजयी होता तो कन्याकी बिदा होती, अन्यथा नहीं। इसी प्रथाके अनुसार पृथ्वीराजकी कन्या बेलाका विवाह परमालके लड़के ब्रह्मजीतके साथ हुआ था। लड़ाईमें ब्रह्मजीत भी मारा गया और बेला सती हुई। इसप्रकार बेला भवानीने पिताकुल तथा श्वसुरकुल दोनोंका संहार करा दिया। इस करुणायुक्त मध्ययुगीन महाभारतकी दुःखान्त कथा जगनायककृत आल्हाखण्ड और चन्दकवि-कृत पृथ्वीराजरासोके महोबाखण्डमें दी हुई है।

चन्दकविके कथनानुसार महोबाका शुद्ध नाम महोत्सव-नगर है। कहते हैं कि ईसाकी तीसरी शताब्दीमें चन्देल राजा चन्द्रब्रह्मने यहाँपर एक बड़ा यज्ञ किया और इस नगरको बसाकर इसे अपनी राजधानी बनाया। तबसे राजा परमालके समयतक लगभग १००० वर्ष यह चन्देल राजाओंकी राजधानी रहा।

प्रयागसे जबलपुर होती हुई जो रेलकी लाइन बम्बईको गयी है उसपर प्रयागसे ६६ मीलपर मानिकपुर नामक जङ्क्शन है। वहाँसे रेलकी एक शाखा झाँसीको गयी है। इसी शाखापर चित्रकूट है, जिसके विषयमें कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं। चित्रकूटके आगे बाँदाका स्टेशन है जहाँसे सुप्रसिद्ध कालिंजर-दुर्गको मार्ग गया है। इसके आगे महोबा है, जिसका विवरण आज दिया जाता है। महोबेके आगे हरपालपुरसे खजुराहो नामक इतिहासप्रसिद्ध स्थानको रास्ता जाता है और प्रातःस्मरणीया महारानी लक्ष्मीबाईकी झाँसीके विषयमें तो कहना ही क्या है! इस लाइनपरके प्राकृतिक दृश्य भी अतुलनीय हैं।

महोबेके इतिहासकी मुख्य बातें तो ऊपर कही गयी हैं। कुछ अन्य बातोंका उल्लेख यथाप्रसङ्ग आगे होगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अब मैं उसके प्राचीन देवस्थानोंके विषयमें कुछ परिचय देना चाहता हूँ।

महोबेमें चन्देल राजाओंके समयके छः बड़े-बड़े जलाशय या सागर हैं। इनके नाम कीर्तिसागर, मदनसागर, कल्याणसागर, विजयनगरसागर, दशरताल तथा रहेलिया-ताल हैं। इनमेंसे अन्तिम दो ताल जो प्राचीन महोबाकी बस्तीमें ही थे, पर अब महोबेके संकुचित विस्तारके कारण दूर पड़ गये हैं।

रेलवे-स्टेशनसे कुछ दूर जानेपर विशाल कीर्तिसागर मिलता है। इसी सागरपर प्रसिद्ध भुजरियोंकी लड़ाई हुई थी।

इसीके समीप मदनसागर है जिसके चारों ओर यहाँके प्राचीन देवस्थान बने हुए हैं। यात्रीलोग चार-पाँच घण्टेमें भलीभाँति इन सबोंको देख सकते हैं।

इस मदनसागरके बीचमें दो टापू हैं, जिनपर दो सुन्दर मन्दिर बनवाये गये थे। इनमेंसे एक मन्दिर तो बिल्कुल ध्वस्त हो गया है, पर दूसरा अभीतक विद्यमान है। इसे खखरामठ कहते हैं। यह शिवमन्दिर है और इसकी सुदृढ़ तथा प्राचीन स्थापत्यकला अत्यन्त प्रशंसनीय है। इसको बने कम-से-कम १००० वर्ष हुए होंगे।

कहा जाता है कि चन्देल-राज्यवंशके पास चन्द्रप्रदत्त पारस-पत्थर था। इसी कारण राजा लोग अपनी प्रजासे करके रूपमें केवल लोहेकी मोटी-मोटी छड़ें लेते थे। इन छड़ोंका पारस-पत्थरसे स्पर्श होते ही ये सुवर्णकी हो जाती थीं। कहते हैं कि चन्देलोंके असंख्य तथा अमोघ खजाने इन्हीं सोनेकी छड़ोंके रूपमें मिलते हैं। इसी पारस-पत्थरको महोबेके महाभारतका अन्त होनेपर परमालकी रानी मल्हनादेवीने इसी मदनसागरमें फेंक दिया था। कहते हैं—

मल्हना पारस लै महुबेकी। सो सागरमें दई सिराय॥
करी आरजू तब सागरसे। महुबे बीर दिहो जनमाय॥
तेहिके हाथ पूजनी लेइहो। ताते तुम्हे दई समुझाय॥

मदनसागरके आग्नेय-कोणपर कठेश्वर महादेव तथा बड़ी चण्डिकाके स्थान हैं। कठेश्वर शब्द नीलकण्ठेश्वरका अपभ्रंश है। महादेवजीका स्थान चट्टानोंकी बड़ी-सी दरारमें बनी हुई एक गुफामें है। मूर्ति बड़ी प्राचीन है। इसी मन्दिरसे लगी हुई एक दूसरी दृढ़ गुफा है, जिसे सन् १८५२ ई० में जगद्गुरु शङ्कराचार्यने कुछ काल निवासके हेतु बनवाया था। सचमुच एकान्त तपश्चर्याके निमित्त ऐसे स्थान कम मिलेंगे।

बड़ी चण्डिकाकी मूर्ति बारह फीट ऊँची है और बड़ी विशाल है। कहा जाता है कि इस मूर्तिकी प्रतिष्ठा महोबाके बसानेवाले प्रथम चन्देल राजा चन्द्रब्रह्मने तीसरी सदी ईसवीके अन्तमें करायी थी। भगवतीकी प्रतिमा एक बड़ी चट्टानमें गढ़ी गयी है और अष्टादश भुजावाली है। इस स्थानपर दूर-दूरसे भक्तजन उपासना तथा पुरश्चरणके लिये आते हैं। यहाँके विषयमें एक किंवदन्ती यह है कि लगभग पैंतीस वर्ष हुए एक ब्राह्मणने अपना सिर काटकर भगवतीको अर्पण कर दिया था जिसपर पुलिसको समाचार मिला और जाँच आयी। भगवतीकी कृपासे ब्राह्मणदेवता पुनर्जीवित हो गये और अधिकारी लोग उलटे पाँव लौट गये।

चण्डिकाजीकी भुजाओंके सम्बन्धमें दो शब्द अप्रासंगिक न होंगे। महाथर्वणसंहितामें लिखा है—

अष्टादशभुजा दुर्गा उग्रचण्डेति या स्मृता।
सैवेयं षोडशभुजा भद्रकालीति गीयते॥
दशभिर्बाहुभिर्युक्ता सैव कात्यायनी स्मृता।
भिन्नध्याना कल्पभेदान्महिषासुरमर्दिनी॥

अर्थात् जगदम्बा दुर्गाजीने कई बार महिषासुरका वध किया है (क्योंकि देव-दानव-संग्राम प्रत्येक कल्पमें होता ही रहता है और वही महिषासुररूपी आसुरी प्रवृत्ति पुनः-पुनः प्रादुर्भूत होती है)। रम्भकल्पमें भगवतीने अष्टादशभुजा होकर इस असुरको मारा था, नीललोहित-कल्पमें षोडश भुजा होकर पुनः उसका संहार किया और अन्तिम बार श्वेतवाराह (अर्थात् वर्तमान) कल्पके प्रारम्भमें दश भुजा धारणकर वही काम किया। इन्हीं तीनों रूपोंके नाम क्रमशः उग्रचण्डा, भद्रकाली तथा कात्यायनी हैं। इसप्रकार ये बड़ी चण्डिका भगवती उग्रचण्डा हैं।

मदनसागरके पश्चिमी किनारेपर गोखार नामक पहाड़ है। इस पर्वतके विषयमें अनेकानेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। इन सबका निचोड़ यह है कि इस पर्वतपर अनेक महात्माओंने तपस्या की है तथा अभीष्टसिद्धि प्राप्त की है। इसमें सन्देह नहीं कि यह पर्वत तपस्याके लिये बहुत ही

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उत्तम स्थल है। जिस समय यह लेखक इस पर्वतपर गया था तब वहाँ एक गुफाके बाहर बैठे हुए पीतवस्त्रधारी एक मुसल्मान फ़कीर मिले थे। पूछनेसे मालूम हुआ कि आप चिल्ला नामक चालीस दिवसका व्रत धारण करके इस पर्वतपर छब्बीस दिनसे वास कर रहे हैं। आपका चौबीस घण्टेका आहार एक मुठ्ठी चना तथा दो गिलास जल थे। आप रात-दिन यहीं वास कर एकान्तमें जप करते थे। आपको कई आश्चर्यजनक दृश्य अबतक दीख चुके थे। एक दिन एक शेर इनके पाससे होकर निकल गया था। कुछ दिन बाद एक अजगर कुछ देरतक इनके पास बैठा था। और प्रायः कई बार दोनेमें मिठाई रक्खी हुई दिखायी दी थी। आपसे मालूम हुआ कि मुसलमान साधक भी इस पर्वतको उसी दृष्टिसे देखते हैं जैसे हिन्दू लोग।

इस पर्वतपर दो विचित्र गुफाएँ हैं जिन्हें अँधियारी खोह तथा उजियारी खोह कहते हैं। एक बड़ी भारी चट्टान बीचमें चटक गयी है और उसके भीतर एक लम्बी-सी सुरंग हो गयी है जो कम-से-कम पचास-साठ गज लम्बी है। इसमें सौ-पचास आदमी बड़ी सरलतासे खड़े हो सकते हैं। भीतर घोर अन्धकार है, इसीसे इसे अँधियारी खोह कहते हैं।

इस गुफासे कुछ ही दूरपर एक पूरी पहाड़ीको काट-काटकर बर्रेके छातेकी तरह कई खण्डकी भूल-भुलैया-सी बना डाली है। इन छोटी-छोटी कोठरियोंमें सैकड़ों आदमी बैठकर जप-तप कर सकते हैं और चिह्नोंसे प्रतीत होता है कि यह उजियारी खोह इसी काममें बराबर आती रही है। इस खोहमें सर्वत्र प्रकाश व्याप्त है।

इस गोखार-पर्वतके उत्तरी किनारेसे बस्तीकी ओर आते हुए लड्कर रावण तथा पठवाके महावीर नामक दो मुख्य स्थान पड़ते हैं।

लड्कर रावण नामक स्थानमें एक बारह फीट ऊँची भीमकाय भयङ्कर शिवमूर्ति है। हाथमें दण्ड होनेके कारण सम्भव है यह भैरवमूर्ति हो। प्रतिवर्ष भाद्रपद कृष्ण २ को गोखार-पर्वत तथा इस स्थानपर बड़ा मेला लगता है।

आगे चलकर महावीरजीकी मूर्ति मिलती है। गोखारके पठारके ऊपर स्थित होनेसे इन्हें पठवाके महावीर कहते हैं। यह स्थान एक सिद्ध पीठ गिना जाता है और अनेकानेक व्यक्ति इन महावीरजीकी कृपासे आपत्तिमुक्त हुए हैं।

बस्ती प्रारम्भ होते ही भैरवनाथजीकी एक और मूर्ति मिलती है। लोग इन्हें सिंहभवानी कहते हैं। मूर्ति प्राचीन है; पर मन्दिर हालहीका बना हुआ है।

गोखार-पर्वतके नीचे मदनसागरके तटपर एक और देवीपीठ है जिन्हें छोटी चण्डिका कहते हैं। इस मन्दिरकी बनावट सिंहासनकी तरह है। भगवतीकी मूर्ति यहाँ भी अष्टादश भुजाधारी है। इस स्थानसे सागर तथा पर्वत दोनों ओरका दृश्य बड़ा ही हृदयग्राही तथा शान्तिदायी है। धन्य हैं हमारे पूर्वज जिन्होंने ऐसे-ऐसे सुन्दर स्थलोंपर देव-मन्दिरोंकी स्थापना की है। ऐसे स्थानोंपर अनायास ही चित्त एकाग्र होता है। उपासनाकी तो बात ही क्या है!

मदनसागरके उत्तरी किनारेपर मनियाँदेवका स्थान तथा आल्हाकी कीली नामक विशाल पाषाणनिर्मित दीपस्तम्भ है और इन्हींके पास पीर मुबारकशाहकी दरगाह है।

मनियाँदेवका महोबेके पतनसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। अनभिज्ञ पाश्चात्य पुरातत्त्ववेत्ताओंने इनको मनियाँ-देवी कह-कर अनेक मनगढ़न्त बातें कह डाली हैं। वस्तुतः ये ब्रह्मराक्षस कहे जा सकते हैं। इनकी कथा यों है। महाराज परमालके सामन्तोंमें खजुराहोके समीपवाले मनियाँगढ़के राजा भी थे। उनके पास एक बेजोड़ मणि थी। महाराज परमालने इसे देखनेको मँगवाया। राजाने अपने विश्वासपात्र पण्डित मनीरामके हाथ मणि परमालके अवलोकनार्थ भेजी। परमालकी नीयत मणि देखते ही बदल गयी। उन्होंने मणि रख ली। माँगनेपर भी नहीं लौटायी। मनीराम बड़े संकटमें पड़े। खाली हाथ लौटकर अपने राजाको क्या मुँह दिखावें और अगर परमालसे कुछ और कहें तो कहीं राजासे ये रुष्ट न हो जायँ। सो यही सोच-समझकर इन्होंने सरे दरबार आत्महत्या कर ली और ब्रह्म-राक्षस बनकर परमालको सताने लगे। दुःखी होकर परमाल-ने इनको शान्त करनेके लिये अपने किलेमें, जो इसी स्थान-पर था, इन मनियाँदेवका मन्दिर बनवा दिया। पर आपत्तियाँ घिरी ही रहीं और अन्तको इन्होंने परमालका राज्य ध्वंस ही कर डाला। इनकी मूर्ति चट्टानमें गढ़ी है और उसपर सिंदूर लगा है। सन् १८९८ ई० में इस प्रतिमा-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

से कई घण्टोंतक प्रचण्ड अग्नि-शिखा निकलती रही और इससे आस-पासके कई पत्थर चटक गये जो अबतक विद्यमान हैं।

आल्हाकी कील मनियाँदेवके मन्दिरके सामने सागर-के तटपर बनी। यह १४-१५ फुट ऊँची एक ही पत्थरकी बनी है। इसकी गहराईका पता नहीं। लोग आल्हाकी इष्टदेवी शारदाका स्मरण करके इस दीपस्तम्भको बड़ी श्रद्धासे पूजते हैं। आल्हा बड़े ही शान्त, गम्भीर तथा वीर थे। उनके योगगुरु बाबा गोरखनाथ कहे जाते हैं और उनकी इष्टदेवी शारदा थीं, जिनका मन्दिर अबतक सतनेके पास मैहरमें बना है और जिनसे आल्हाको एक अमोघ खड्ग तथा अमरत्व पद मिला था। आल्हा अमर हैं। महोबेके ध्वंसके पश्चात् वे तपस्या करने हिमालयको चले गये। कहा जाता है कि लाल कपड़े पहने हुए प्रतिदिन आल्हा मैहरकी शारदाके दर्शनको आते हैं। प्रतिदिन प्रातः-काल भगवती शारदाके गलेकी माला ताजे पुष्पोंकी मिलती है। भारतीय पुरातत्त्वविभागके बेगलर नामक अंग्रेजने अपनी सरकारी रिपोर्टमें लिखा है कि जब वह सन् १८७१ ई० में मैहरमें था तो एक दिन बड़े तड़के वह अकेले पहाड़ीके ऊपर शारदाके मन्दिरमें पहुँचा। उस समयतक उसके कथनानुसार कोई भी उन कठिन सीढ़ियोंपर चढ़कर ऊपर न आया था। बेगलरने भगवतीकी मालाके पुष्प मुरझाये हुए देखे। पर जैसे ही वह मन्दिर-की अन्य चीज़ोंको देख पुनः वहाँ आया तो उसे माला ताज़े फूलोंकी मिली। यह असम्भव है कि कोई आता और आहट न मिलती। और यदि बेगलरको कुछ भी सन्देह होता तो वह अवश्य उसे लिख देता। लोगोंके कथनानुसार अश्वत्थामाकी तरह आल्हा भी कई बार देखे गये हैं।

पीर मुबारकशाह एक अच्छे मुसल्मान फ़कीर हो गये हैं। उन्होंने महोबेके एक शिव-मन्दिरमें, जो मेवातियों-द्वारा भ्रष्ट किया जा चुका था, अपना आसन जमाया और यहीं प्राण-त्याग किया।

महोबेसे पश्चिम दिशाकी ओर जो पक्की सड़क बाँदाको जाती है उसपर बस्तीसे निकलते ही दाहिनी ओर एक पहाड़ी पड़ती है। इसपर बनखण्डीश्वरका स्थान है। मन्दिर बहुत ही प्राचीन लगता है और इसपर चढ़नेके लिये दुर्गकी-सी जो ३०-४० बड़ी-बड़ी सीढ़ियाँ बनी हैं वह दर्शनीय हैं और प्राचीनताद्योतक हैं। इस लेखकको यहाँपर एक स्वामी शंकरानन्दजी मिले जो कई वर्षोंसे वहाँ निवास कर रहे थे। सम्भव है, वे अब भी हों। उनके द्वारा मालूम हुआ कि इस स्थानपर १२०० वर्षके एक वृद्ध महात्मा अदृष्टरूप-में निवासी करते हैं। स्वामीजीको उनके दर्शन भी हुए थे। एक अवसरकी बात है कि स्वामीजी ध्यानावस्थित थे कि यही वृद्ध महात्माजीने पुकारकर कहा—'देखो, दुर्जन आता है।' तुरन्त ही एक बन्दूकका-सा शब्द हुआ और बाहर आकर स्वामीजीने देखा कि कई व्यक्ति (जो कदाचित् चोर थे) नीचे दौड़कर भागे जा रहे हैं। इस शब्दका भेद अभीतक नहीं मालूम हुआ। और क्या कहें, दैवी सहाय ही थी। इसी सड़कपर महोबेसे ४-५ मीलपर दशरापुर नामक स्थान है। यहीं आल्हा तथा उनके सहोदर भ्राता, ऊदलके पिता दक्षराजका भवन था। इन दक्षराजको एक रात सोते हुए करिङ्गा नामक विपक्षी राजाने पकड़ लिया। उसने इन्हें कोल्हूमें पिरवा डाला और इनके शीशको काटकर बरगदसे टँगवा दिया। पीछे आल्हा और ऊदलने करिङ्गाको मारकर इसका घोर बदला लिया। इस समय यहाँ एक पुराना सागर या जलाशय है। इसकी सीढ़ियाँ मिश्रके पिरामिडकी तरह बड़े-बड़े पत्थरोंसे बनी हैं। इन सीढ़ियोंके दराजोंमें इस लेखकने कई अजगर देखे जो कदाचित् बहुत-से हैं और बहुत कालसे यहीं रहते हैं। इनकी मोटाई मनुष्यकी जंघासे कम न होगी और लम्बाई १५-२० फुट। लोग इनकी केचुली ले जाते हैं और उन्हें ताबीज़ोंमें मढवाकर बच्चोंको पहनाते हैं।

दशरापुरसे ४-५ मील आगे मकरबई नामक ग्राममें इसी सड़कपर एक अत्यन्त प्राचीन चन्देल-मन्दिर है। यह कम-से-कम १०००-१५०० वर्ष पुराना होगा। इसकी बनावट अनूठी ही है। इसमें केवल पत्थर-ही-पत्थर हैं। किसी प्रकार चूना, बरी अथवा लोहेके टाँकोंकी जोड़ाई नहीं।

महोबेमें चन्देलोंके निवासकी मनाही है। जो बसा सो नष्ट हो गया। कहते हैं, प्राचीन चन्देल योद्धाओंके भूत अब भी दीख पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त महोबेमें घोड़ेपर डंका बजानेसे घोड़े अथवा डंका बजानेवालेकी मृत्यु होती है। सरकारी रिपोर्टोंके अनुसार इस अनुशासनका अबतक पालन होता है और जब-जब इसका उल्लंघन हुआ तब-तब किसीकी मृत्यु अवश्य हुई।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भक्त-गाथा

(लेखक—श्रीराधाकृष्णलालजी)

लाला गोविन्दसहायजी

लेखकको इन भक्त महोदयके पूर्ण इतिहाससे परिचय नहीं है, परन्तु जो कुछ भी उनके विषयमें विदित है वह मानव-हृदयको मुग्ध और पवित्र करनेमें समर्थ है, यह समझकर कुछ लिखा जाता है। चालीस-पचास वर्ष पहले अलीगढ़-जिलेकी तहसील खैरमें मुन्सिफी अदालत थी। लाला गोविन्दसहायजी (कायस्थ, भटनागर) उसके एक अति प्रतिष्ठित वकील थे। वे अन्धे थे, इसलिये शिक्षितमण्डलीमें लाला गोविन्दसहाय 'नाबीना' के नामसे प्रसिद्ध थे। उनके पास काम इतना अधिक था कि वे चार मुहर्रिर रखते थे। इन मुहर्रिरोंमेंसे दो महाशय उनकी मृत्युके पश्चात् एक अलीगढ़ दीवानी अदालतके और दूसरे कासगंज (जिला एटा) मुन्सिफीके प्रसिद्ध वकील हुए। लालाजी बड़े भजनानन्दी थे। सुना है कि उन्होंने बहुत-से भजन भी बनाये थे। उनका रचित 'विवेकप्रकाश' यहाँ 'लॉयल लाइब्रेरी' में है। लालाजी बड़े साधुसेवी भी थे, इसलिये प्रायः साधुमण्डली उनकी अतिथि हुआ करती थी। दो-तीन साधु तो प्रायः प्रतिदिन ही उनके साथ भोजन करते थे।

उनके जीवनकी विशेषता यह थी कि वे विषयासक्तिसे अत्यन्त विमुख थे। उनको महर्षि अष्टावक्रकी 'विषयान् विषवत् त्यज'—शिक्षाका दैनिक जीवनमें यथार्थतः प्रयोगमें लानेवाले अथवा गीताके—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥
शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि॥
(९। २७-२८)

इन मन्त्रोंमें निर्देशित 'संन्यासयोगयुक्तात्मा' के साक्षात् उदाहरणस्वरूप कहा जाय तो शायद अत्युक्ति न होगी।

उनका नियम था कि प्रतिदिन मुवक्किलोंसे जो कुछ मिलता उसमेंसे केवल १) रुपया अपने चौकेके खर्चके वास्ते निकालकर बाकी कुल रुपया चार मुहर्रिरोंमें बराबर बाँट दिया करते थे। यदि उसी समय साधु-सन्त भी आ गये तो मुहर्रिरोंको यथोपयोगी उस आमदनीमेंसे निकालकर उनके भोजनादिका प्रबन्ध कर देते थे।

कभी-कभी ऐसा भी अवसर प्राप्त होता कि साधु-मण्डली आ गयी और उनके पास एक कौड़ी भी नहीं है। उस समय भगवान्‌का स्मरण करते ही अकस्मात् साधु-मण्डलीके सेवा-सत्कारका सत्वर ही सब प्रबन्ध हो जाता। न क्यों होता? भगवान्‌की तो यह चिर-प्रतिज्ञा ही है कि—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥
(गीता ९। २२)

परन्तु मुश्किल तो यह है कि उनकी इस कृपाके योग्य होना साधारण बात नहीं है। ऐसे नामी वकील और अन्धे, जिससे कि पराश्रय या परसहायताकी अपेक्षा उनको पद-पदमें हो; इसपर भी उनके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यहाँ केवल एक ही रुपयेमें दिनभरके आहारादिका आयोजन ! और दूसरी ओर उन्हींके सम्पूर्ण वैभवको उनके चारों मुहर्रिर सुख-स्वच्छन्दतासे भोग करें ! यह त्यागकी पराकाष्ठा नहीं तो क्या है ? गृहस्थ-जीवनमें ऐसा त्याग तो अति ही विरल होगा ।

मैंने किसी समय एक 'ब्राह्म' रचित मुहम्मद-साहबके जीवन-चरितमें पढ़ा था कि वे 'रमज़ान' के व्रतोपवासके दिनोंमें इतना दान-पुण्य करते थे कि 'ईद' के दिन उनका घर बिल्कुल खाली हो जाया करता था । परन्तु लालाजीका घर तो प्रतिदिन प्रतिक्षण ही खाली बना रहता था ! हाँ, एक विशेष बात यह थी कि उनके घरके सर्वथा देख-रेख करनेवाले और प्रबन्धकर्त्ता थे वही सर्वलोकैकनाथ विश्वम्भर चिन्तामणि भगवान् ।

अब उनके विषयमें दो घटनाएँ लिखता हूँ जिनसे उनके प्रगाढ़ भक्ति-भावका सविशेष पता चलता है ।

(१)

एक समय श्रावणके महीनेमें लालाजीने श्रीवृन्दावनधाम जानेकी तैयारी की । लोगोंने बहुत उत्सुक होकर उनसे पूछा—'लालाजी, आप वहाँ क्यों जाते हैं ?' उत्तर दिया—'ठाकुरजीके दरबारमें हाज़िर होनेको ।' उन्होंने कहा—'लालाजी, आपको भगवान्‌के दर्शनोंका लाभ तो होगा नहीं ।' लालाजीने कहा—'भाई ! मैं उन्हें नहीं देख सकूँगा, तो क्या हुआ, वे तो मुझे देख लेंगे ।' आहा ! क्या मधुर भाव ! सगुण-उपासनाकी जय हो ! जय हो !!

(२)

एक समय लालाजी अलीगढ़से रेलगाड़ीमें बैठकर लखनऊकी तरफ जा रहे थे । रास्तेमें उनको पेशाबकी हाजत हुई । उन दिनों गाड़ियोंमें पेशाबखाना नहीं होता था । लोग गाड़ीका दरवाजा खोलकर पेशाब करनेको बैठ जाया करते थे । लालाजीने भी ऐसा ही किया । परिणाम यह हुआ कि लालाजी चलती गाड़ीमेंसे बाहर जा पड़े । गिरते समय वही अजामिलके सद्गति-दाता 'नारायण' नामका उच्च स्वरसे उच्चारण किया । उसी समय उनका नौकर भी 'हाय लालाजी !' कहकर गाड़ीसे बाहर कूद पड़ा और तत्काल ही रेलसे कटकर मर गया । परमात्माकी असीम कृपासे लालाजी मृत्युमुखसे बिल्कुल बच गये । उनको जब नौकरका वृत्तान्त मालूम हुआ तो उसके लिये शोकप्रकाश करते हुए उन्होंने कहा कि—'उसने बड़ी मूर्खता की कि मुझ-जैसे अति तुच्छ जीवको उसने ऐसे समय स्मरण किया ! वह भी मेरी ही तरह 'नारायण' नाम लेता तो उनकी कृपासे बच जाता ।

लोकदृष्टिसे देखा जाय तो गाड़ीसे गिरते समय एकदम हतबुद्धि हो जाना चाहिये था । उस समय भगवान्‌के नामका स्मरण होना कोई साधारण बात नहीं है । गोस्वामी तुलसीदासजीने ठीक ही कहा है—

जनम-जनम मुनि जतन कराहीं । अन्त राम कहि आवत नाहीं ॥

प्रिय पाठक ! बस, इसीसे समझ लीजिये कि लालाजी अनेकों जन्मके नाम जपनेके अभ्यासी रहे होंगे तभी तो उनको सिद्धि प्राप्त हुई थी अर्थात् अपना अन्तिम काल समझकर उन्होंने 'नारायण' नामका स्मरण किया । वास्तवमें ऐसे ही भक्तजन आदर्श हो सकते हैं ।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय !

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्यामकी बाँसुरी

(लेखक—श्रीबिन्दु ब्रह्मचारीजी)

राम-नाम परनाद-रस भरि वंशी पिचकारि । तकि-ताकि मारत श्रुतिन लौं जय सो कृष्ण-मुरारि ॥

(१)

कुल-ग्रामके बाहर एक छोटा-सा सुन्दर टीला था । भगवान् श्रीकृष्णकी कमनीय कान्तिसे मिलती हुई दूर्वावली उसपर उगी थी । वृक्षोंसे झड़-झड़कर लाल-पीले-नीले वन-कुसुम उसपर बिछे थे । उन्हीं फूलोंके मृदुल आसनपर सहज सुखसे बैठे हुए प्यारे श्रीकृष्ण अपनी त्रैलोक्य-मोहिनी वंशी टेर रहे थे । जाड़ेका दिन था, वहीं धूपमें ग्वालबाल भी एकत्र थे । गौएँ भी उनकी, उनके साथ चरने आयी थीं । उस वंशीकी ध्वनिमें, उस आनन्दकी धारामें सब मग्न हो रहे थे । श्रोत्रों और नेत्रोंकी अपूर्व मैत्री सङ्घटित हो रही थी, मन उस वंशरीकी मोहिनी ध्वनि और उस अनुपम रूप-माधुरीके लोकोत्तराह्लादमें सर्वतोभावसे तन्मय हो रहा था । गौएँ चरना-विचरना छोड़कर मूर्ति-सी बनी एकटक उन मधुर-मनोहर-मूर्ति नटवर वंशीधरकी ओर देख रही थीं, प्रत्युत यह कहना चाहिये कि उनके निर्निमेष नेत्र उधर खुले हुए थे, क्योंकि उनकी चेतना तो उस आनन्दमें तल्लीन थी । कुलाँच मारनेवाले उनके चञ्चल बछड़े भी स्थिर हो रहे थे, गोकुल-ग्रामकी सम्पूर्ण जड़-चेतनमयी सृष्टि उस आनन्दतरङ्गिणीकी बाढ़में डूब रही थी—

कोउ कछु कहै न कोउ कछु पूछा ।
प्रेम भरा हिय निजगति छूछा ॥

उसी समय आकाशमार्गसे सिद्धकुमारी श्यामा जा रही थी । गगनमण्डलमें थिरकती हुई, मधुर प्रकम्प उत्पन्न करती हुई बाँसुरीकी टेर उसके कानोंमें पड़ी । हृदय खिंच उठा, गति रुक गयी, वह आगे नहीं बढ़ सकी, वहीं ठहर गयी । श्यामसुन्दर वंशीधरको उसने वहींसे देखा । देखते ही उस छवि-राशिपर उसका मन न्योछावर हो गया । समस्त संसारमें अनादि-कालसे सौन्दर्य-सरिता बहानेवाले सौन्दर्य-सागर प्रेमार्णव भगवान् श्रीकृष्णकी रूपमाधुरी किसे मोहित नहीं करती ? बड़ी देरतक वह आकाशपथमें स्थित हो उनकी ओर प्यार-भरी, चावभरी दृष्टिसे देखती रही । ज्यों-ज्यों वह उन्हें देखती थी त्यों-ही-त्यों अपनानेका भाव, जिसे विशुद्ध प्रणय और प्यार कहते हैं, सहस्र-सहस्र कलाओंमें विकसित होता था । गोधूलिके समय श्रीकृष्णचन्द्र वंशी टेरते हुए जब ग्वाल-बालोंके सहित गायोंको लेकर जाने लगे तब वह दिव्याङ्गना किसी तरह वहाँसे अपने लोकको गयी ।

जब वह सिद्धलोकमें अपने घर पहुँची तब उसके पिता मुरिरने उससे देरका कारण पूछा । उस निर्दोष मुग्धाङ्गनाने अपने विलम्बसे लौटनेका सच्चा कारण साफ़-साफ़ कह दिया ।

भगवान् श्रीकृष्णके तत्त्वसे अनभिज्ञ मायामोहित मुरिर पवित्र भगवत्प्रेमके आकर्षणको नहीं समझे, उन्होंने रुष्ट हो उसे शाप दे दिया—'जा, मर्त्यलोकमें विचरनेकी तेरी शक्ति नष्ट हो जाय ।' क्योंकि वे नहीं चाहते थे कि उनकी देवयोनिजा कन्या भूतलमें किसी मनुष्यसे प्रेम करे । अभिनव-अनुरागसे भरा उभरा हृदय एकदम दमित और व्यथित हो उठा । मुग्धाङ्गनाओंका हृदय यों ही शुद्ध और सरल होता है और यदि वे उच्च लक्षण और कुलकी हों और उसमें भी देवकन्या हों तो क्या कहना ! उनके अन्तःकरण सामान्य स्त्री-अन्तःकरणोंसे उच्च होते हैं, और उनके कतिपय स्वाभाविक दोषोंसे मुक्त होते हैं । उनमें कोमलता, सरलता, पवित्रता, दया और प्रीति होती है । श्यामाका ऐसा ही हृदय था । क्योंकि देवता नरताकी वह उन्नत अवस्था है जिसमें मनुष्य तपसे शुद्ध हो आसुरी सम्पत्तिका नाश करके प्राप्त होता है ।

प्रेमियोंका सहज सङ्गी विरह उस साध्वीके कोमल हृदयको घुलाने लगा । वह परिम्लानमुखी हो एकान्त वन-कुञ्जोंमें अपने दिलके फफोले फोड़ा करती थी । उसके केलिहंस और मृग प्यार पानेकी इच्छासे आ-आकर उसकी गोदमें बैठते हैं और उसके अञ्चल चबाते हैं, पर उसमें अब वह क्रीडाका भाव नहीं, वह उत्साह और उमाह नहीं । अब तो हृदयमें दाह, श्वासोंमें आह और नेत्रोंमें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अश्रु-प्रवाह आ गया है। स्वभावतः चञ्चल मन, जो किसी तरह स्थिर नहीं होता, वह, विरहमें, दुःखमें, कैसा एकाग्र हो जाता है। दुःख मनुष्यके लिये एक प्राकृतिक साधन है।

एक बार श्यामाकी एकान्त-सखी जीहाने आकर उससे पूछा—'सखि, तुम्हारी यह दशा देखी नहीं जाती! कैसे इस तरह कबतक निर्वाह होगा?'

श्यामा—सखि, क्या बताऊँ कैसे निर्वाह होगा? जो कुछ बीतेगा वह सहना होगा और सहूँगी, और कैसे निर्वाह होगा?

जीहा—सखि, मैं तुम्हारे दुःख-सुखकी सङ्गिनी हूँ। प्राणदानसे भी यदि तुम सुखी हो सकोगी तो भी मैं तैयार हूँ। तुम कहो, मैं तुम्हारा क्या हित करूँ?

श्यामा—अच्छा, बहिन! यदि तुम मेरे लिये कुछ करना चाहती हो तो मेरा पत्र भूतलमें ले जाकर उन्हें दे आओ और मेरा समाचार सुना आओ। यही मेरी प्रार्थना है। मैं तुम्हारा बड़ा उपकार मानूँगी।

जीहा—हाँ, हाँ यह कौन-सी बड़ी बात है? मैं तुम्हारा प्रेमपत्र ले जाकर उन्हें दूँगी और विरह निवेदन करूँगी। यह तो मेरा सहज कर्त्तव्य ही है।

श्यामाने प्रेमपत्र लिखा। उसे पढ़कर जीहाने कहा—'सखि, मेरे कहनेसे उसमें इतना और जोड़ दो'—

बंसी बंसी डारिकै सुषमा-सरिके बीच।
मधुर-मुग्ध मन-मीनको लीन्हो सुखसौं खींच॥
जारत अब विरहाग्निमैं कठिन निठुरता धारि।
भयो मनोहर प्राणहर हरि व्रज-विपिन-विहारि॥

श्यामा—सखि, उस 'सुषमा-सरि' से विलग होकर मर ही जाना उचित है? और उनकी ओरसे कौन निष्ठुरता हुई है कि तुम उन्हें उपालम्भ दोगी।

जीहा—तुम निरी मुग्धा हो। विदग्धा नायिकाएँ प्रियतमको निष्ठुरताका उपालम्भ दिया करती हैं। पर हाँ, यहाँ अवसर नहीं है। अच्छा जाने दो तुम्हारी ही बात ठीक, लाओ, अपना प्रेम-पत्र दो, मैं जाती हूँ।

(२)

आकाशपथसे जीहाने नवइन्दीवरश्याम श्रीकृष्णचन्द्रको देखा। उनकी अपूर्व छवि सर्वस्व हरण करनेवाली, मन-प्राण आदिका सहज ही आकर्षण करनेवाली अलौकिक सुन्दरताका अवलोकन कर वह स्तब्ध हो गयी। वे मौजसे मुरली बजा रहे थे, उसमें कोई अचिन्त्य राग गा रहे थे, उससे नन्दिनी, मोहिनी और आकर्षिणी शक्तियाँ जगा रहे थे, जडको चेतन और चेतनको जड बना रहे थे। जीहा अवसर देखकर पृथिवी-तलपर उतर आयी। पर एक बात हो गयी। जिस दिव्य मन्त्रके प्रभावसे, स्थूल सृष्टिके स्पर्श-दोषसे दिव्य जीव बचे रहते हैं, उसका जप करना भगवान् श्रीकृष्णकी छविमें लीन होकर वह भूल गयी। इससे फिर उड़कर दिव्यलोकमें जानेकी उसकी शक्ति जाती रही। वह बड़ी कठिनतामें पड़ी। अस्तु! वह प्रेमपत्र ले जाकर उसने दिव्य नायक भगवान् श्रीकृष्णको दिया। उसमें लिखा था—

मन तव छबि-बन्धन परयो तन पितु-शापहि घोर।
मिलन-पंथ प्राणेश! तव, भयो सुकठिन कठोर॥
हौं परतन्त्र स्वतन्त्र तुम सब विधि समरथ नाथ!।
उर-अन्तरमैं बसत हौ जानत सुख-दुख-गाथ॥
तौ कस नहिं सुधि लेत मम मानि कौन अपराध।
निज बिरुदावलि हेरिये हे करुणाब्धि! अगाध॥
यद्यपि नहिं तव जोग हौं लघु तिय सब विधि हीन।
पै तुम दीन-दयालु हौ, हौं अति ही प्रिय, दीन॥
अबला-बल है दीनता अरु अलम्ब पिय पाँय।
सोइ भरोस जिय धारिकै पाती देति पठाय॥
केहि विध कहौं कि मिलहु मोहिं प्राणनाथ! इत आय।
जानि एक चेरी निरी लेहु बेगि अपनाय॥

रसिकशिरोमणि व्रजचन्द्रने प्रेम-पत्रको बड़े प्यारसे पढ़ा। जीहाने विस्तारसहित श्यामाकी विरहदशाका वर्णन किया और पिताके शापका समाचार कहा। प्रीति-रीति-प्रवीण भगवान्ने प्रियतमाकी दूतिकाका स्वागत किया और अपनी वनमालाके सुमेरु-कमलसे एक दल तोड़कर उस प्रेम-पत्रका उत्तर लिखा—

प्रिये! रह्यो जो धर्म तव सो तुम मन दै कीन।
अब उत्तर कर्त्तव्यको हौं अति विज्ञ-प्रवीन॥
हौंहु तिहारो सर्वविध सदा स्वजन-स्वाधीन।
जनि चिन्ता कछु हिय धरो होहु विरहमैं छीन॥
स्वयं आय रुचि राखिहौं मेटि सकल दुख-दाह।
जानत हौं हियकी सबै करिहौं प्रीति-निबाह॥

श्रीमुखसे सान्त्वना-वचन कहते हुए भगवान्ने वह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उत्तर-पत्र उस प्रिय दूतिकाको दिया। जीहाने कहा—'भगवन्! मधुर श्रीरूपके दर्शनानन्दमें लीन होनेसे मैं दिव्य मन्त्रका जप करना भूल गयी। अतएव भूतलके स्पर्शसे अब मुझमें आकाशसञ्चरण-शक्ति नहीं रह गयी। इससे मैं बड़े सङ्कटमें पड़ी हूँ कि अब कैसे अपने लोकको जाऊँ।' भगवान् बोले—'शुभे! कोई चिन्ता नहीं। भगवान् शङ्कर-का ध्यान करो। उनकी कृपासे फिर तुम्हें वह शक्ति अभी प्राप्त हो जायगी।'

परमेश्वरका करुणापूर्वक ध्यान करते ही फिर उसमें वह दिव्य शक्ति आ गयी और वह भगवान् श्रीकृष्णको प्रेमपूर्वक अवलोकन और प्रणामकर चली गयी। आकाश-मार्गमें वह जा रही थी और उसके नयन-पथमें भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर मूर्ति विचरण कर रही थी।

(३)

जीहाने जाकर श्यामासे कहा—'लो, तुम्हारा काम कर आयी। सखि, तुम बड़ी भाग्यशालिनी हो जो ऐसे उत्कृष्ट नायकसे तुम्हारा प्रेम हुआ। वास्तवमें प्रेमका वही पात्र है, सर्वतोभावसे प्रियतम होनेके योग्य वही है। अच्छा तो, इस पत्रको हृदयसे लगाओ और हृदयका ताप बुझाओ। देखो, इसमें क्या लिखा है।'

श्यामाने श्यामसुन्दरका पत्र बड़े प्यारसे लिया। सिर और आँखोंपर चढ़ाया और हृदयसे लगाया।

सुधि बिसराती नेहराती महामोदमाती,
दृगन लगाती औ जुड़ाती ताती छातीको।
नेक न अघाती बार-बार हिय लाती करि
जतन जुगाती जिमि सूम निज थातीको॥
दीर्घ पथ आयो जानि श्रम बहु पायो दृग-
वारि अन्हवायो कलिप जीवन-सँघातीको।
चेतत वियोग-योग युग युगपत पाती,
बाँचि-बाँचि पातीकी 'सुबिन्दु' पाँती-पाँतीको॥
पुलकावलि बाढति गातनमैं तनमैं मृदु कण्टक रोम खिलै।
मनमैं अनुराग-पराग भरे तिमि नयनन नीर मरन्द ढलै॥
सुख-स्वेदन वारिद-बिन्दु छए जड़तावस बैनहु ना निकलै।
इमि फूलि रही वह केतकि-सी जनु श्यामहि पावस आय मिलै॥

प्राणप्यारेका प्रेमपत्र श्यामा बारम्बार पढ़ती है, पर सन्तोष नहीं होता। यदि वह सहस्र-सहस्र श्लोकोंका होता तो भी कदाचित् उसका परितोष न होता! प्रिय ऐसा पदार्थ ही है और प्रीति ऐसी वस्तु ही है! उस श्यामघनसे प्रेम-नीर पाकर वह श्यामा-लता उमगकर फूल गयी। जीहाने कहा—'अच्छा, मेरा पुरस्कार लाओ।' सजलनेत्र हो श्यामा बोली—'सखी, तुमसे मैं उऋण नहीं हूँ।' यह कह वह जीहाके गलेसे लग गयी। जीहाने भी उसे भरपूर चिपका लिया।

(४)

जब रजनीश अपने सुधा-स्निग्ध करोंसे रजनीका परिष्वङ्गकर पूर्ण कलाओंसे विकसित हो रहा था और दक्षिणानिल मलयाचलपर चन्दन-शाखाओंके सङ्ग विहार कर रहा था, तब श्यामा अपनी फूलोंसे सजी हुई शय्याके किनारे, पाटीरपर सिर रक्खे उसी मोहन वंशीवालेकी चिन्ता कर रही थी—

तकति तिय निज पीतमकी राह।
रचि-रचि पुहुपन सेज डसाई उमगि-उमगि उत्साह।
नेक न धीरज होत हृदय-बिच बाढ्यो प्रेम-प्रवाह॥
रग-रगमैं व्यापत छन-छनमैं पीय-मिलनकी चाह।
कब धौं 'बिन्दु' प्राणधन मिलिहैं कब मिटिहै उरदाह॥

प्रिय-चिन्ता करते-करते वृत्ति जब एकान्त-भावमें लीन हुई, तब उसे कुछ झपकी आ गयी। स्वप्नावस्थामें प्राप्त होकर वह भगवान्‌को मन-ही-मन उपालम्भ दे रही थी कि—

कहि प्रिय, नेह निबाहनो पै कस नहिं सुधि लीन।
होय रहे कित लीन हो हे रस-रीति-प्रवीन॥

उसी समय भक्तजनकल्पनाकल्पद्रुम भगवान् श्याम-सुन्दर मदनमोहन वहाँ प्रकट हो गये और स्वप्नके जो भाव, उसके मुखचन्द्रपर व्यञ्जित हो रहे थे, उन्हें वे सानन्द निरखते और मुस्कराते थे। फिर, चुपचाप पर्यङ्कपर बैठ गये और प्रेमपूर्वक उसे उठाकर बिठा लिया। उसकी निद्रा भङ्ग हुई और स्वप्नको जाग्रत्‌में परिणत हुआ देखकर, अपनेको परम अनन्य प्रियतम श्रीकृष्णचरणप्रान्तमें पाकर वह पुलकित हो उठी। वही स्वप्नमें और वही जाग्रत्‌में, वही भीतर और वही बाहर। वही ईश्वर और वही प्रियतम, वही धर्म और वही प्रेम।

इस तरह प्रतिदिन नियत समय-विशेषपर भक्तभावन भगवान् श्यामासे मिलते रहे। पर उन्हें कोई नहीं देखता था!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अब, श्यामाको बराबर प्रसन्न और आनन्दित देखकर उसके पिता मुरिरको बड़ा विस्मय हुआ। क्योंकि पहले उनके शापके कारण प्रिय-विरहसे उसकी मुखश्री परिम्लान और खिन्न रहा करती थी। मुरिरकी समझमें नहीं आया कि इस बीचमें क्या हो गया कि श्यामाकी दशा कुछ-की-कुछ हो गयी। उन्होंने श्यामाकी माता उत्तमासे कहा कि, 'तुम इसका पता लगाओ कि श्यामाकी दशामें, एकाएक, यह क्यों परिवर्तन हो गया है। तुम बराबर उसके साथ रहा करो।'

तबसे उत्तमा आठ पहर श्यामाका रहस्य जाननेके लिये प्रयत्न करने लगी। पर, यहाँ तो वह विद्या थी कि पवन और आकाश भी उस चतुरचूड़ामणि चोरको नहीं देख सकते थे। वह हैरान रहती थी कि क्या मामला है!

(५)

रवति कहुँ वंशरी री वीर।
द्रवत हिय पुनि स्रवत नयनन पुलकि उठत शरीर।
सोइ वंशीवट यमुन तट सोइ कुंज-कुटीर॥
नयनपथगत होत छिन-छिन करत विवश अधीर।
सखी, चलि मेटैं हृदय-निधि 'बिन्दु' मेटैं पीर॥

एक दिन श्यामाने जीहासे कहा—'सखि, तुम्हारे पुण्य-प्रभावसे प्रियतमके मिलनका सुख-सौभाग्य तो प्राप्त होता है, परन्तु उस वंशरी-निनादके लिये जी तरसता ही रहता है। वह आनन्द कैसे प्राप्त होगा? और, थोड़ी देरके लिये वे मिलते हैं, इससे तृप्ति भी नहीं होती।'

जीहाने कहा—'अच्छा, सखि, एक काम करो। मेरे कण्ठमें अपनी भुजलताओंको मेलकर पीठपर चपक जाओ; बस, मैं तुम्हें गोकुलमें ले चलती हूँ।'

श्यामा बहुत प्रसन्न हुई। दोनों प्रेमवती देवाङ्गनाएँ उड़ चलीं और बात-की-बातमें वहाँ पहुँच गयीं, जहाँ भगवान्‌की वंशरीसे उद्गत होकर नादानन्दकी धाराएँ दिग्दिगन्तमें बह रही थीं और सम्पूर्ण सृष्टिको आप्लावित कर रही थीं। लताद्रुम नादके प्रभावसे दिव्य-छविसे व्याप्त हो अनृतुमें भी फूल और फल रहे थे, द्रवीभूत हो मकरन्द ढाल रहे थे—

जहँ असि दशा जड़न्हकी बरनी। को कहि सके सचेतन करनी॥

नीचे गायें चारों ओरसे घेर रही थीं और ऊपर पक्षी मड़रा रहे थे। वस्तुतः जड़ता और चेतनता अन्तःकरण और प्राणकी अवस्थाएँ हैं, नहीं तो एक चेतन सत्ता ही समानरूपसे सर्वत्र व्याप्त है।

फिर, वही हुआ। जीहा फिर मन्त्र जपना भूल गयी। मोहनमन्त्रमें सभी मन्त्र लीन हो ही जाते हैं। वे दोनों टूटी हुई तारकाओंकी तरह एक गौपर गिर पड़ीं। गोपगण कोलाहल मचाने लगे और अपनी-अपनी लकुटियाँ लेकर दौड़ पड़े। भगवान् समझ गये। तुरत गोपोंको निषेध किया और उन दोनों नवयुवतियोंको सम्मानपूर्वक बुलाया और पूछा कि वे क्यों इस तरह आयीं? जीहाने वंशरी सुननेकी उसकी उत्सुकताका वर्णन किया। भगवान् बोले—'हाँ, यह स्वाभाविक है, परन्तु इस तरह आना ठीक नहीं।'

जिसका जैसा अन्तःकरण होता है उसके प्रेमका स्वरूप भी वैसा ही होता है। जिस जातिका जो वृक्ष होता है वैसे ही उसके फल-फूल होते हैं। सत्त्वगुण और रसकी दिव्य सामग्रीसे बना हुआ श्यामाका अन्तःकरण बड़ा ही मधुर और मुग्ध था। यह वह मुग्धता थी जिसमें चेतनता होती है, परन्तु अहंता नहीं; उसकी वह सुकुमारता थी जिसमें असहिष्णुता नहीं होती, उसमें वह मधुर रस था जिसका परिपाक चैतन्यकिरणोंके योगसे हुआ था। लज्जा, विनय, पवित्रता और सत्यता आदि सत्सम्पत्तिकी कलाएँ उसकी प्रेममयी आत्मीयतासे प्रकाशित हो रही थीं, उसका प्रेम एकाङ्गी और अनन्य था, जिसमें प्रेमिकाकी आत्मीयताका सम्पूर्णरूपसे उत्सर्ग होता है।

श्यामा एक गोवत्सकी ओर देखती हुई लज्जासे दबी, चुपचाप खड़ी थी। उसके अन्तःकरणकी सुन्दरता और उसके प्रेमकी विशदता देखकर सहृदयशिरोमणि भगवान्‌का हृदय अनुकूल भावोंसे भर गया।

अनुरक्ति और शक्ति देकर भगवान्‌ने उन्हें विदा किया। आँखोंमें श्याम-छवि बसाये और कानोंमें वंशीकी मधुर ध्वनि गुँजाये वे अपने लोकको गयीं।

(६)

एक दिन उत्तमाने अपने पतिसे कहा—'कुछ पता नहीं चलता कि क्या रहस्य है! किसीकी आहट तो मिलती है, पर कोई दिखायी नहीं देता। और यह भी नहीं कह सकती कि मुझे जो आहट मिलती-सी प्रतीत होती है वह मेरा भ्रममात्र है अथवा सत्य है।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मुरिरको बड़ा आश्चर्य हुआ कि देव-जातिके होकर हम मनुष्यकी मायासे प्रतारित हो रहे हैं। माना कि वह एक शक्तिशाली मनुष्य है, पर हम भी तो दिव्यशक्ति-सम्पन्न देवता हैं। मनुष्यकी अपेक्षा हमारा ज्ञान अवश्य व्यापक होना चाहिये। अस्तु। उन्होंने अपनी वृत्ति स्थिरकर साम्ब शिवका ध्यान किया। 'ज्ञानं शङ्करादिच्छेत्'—अतः जिस बातका ज्ञान वे चाहते थे वह, उस ध्यानके स्वाभाविक प्रभावसे, उन्हें प्राप्त हो गया। भगवान् श्रीकृष्ण और श्यामाकी सारी लीलाएँ उन्हें अवगत हो गयीं। उसी समय देवर्षि आकाश-पथमें जाते हुए दिखायी पड़े। मुरिरने उन्हें आदर और आग्रहपूर्वक बुलाया और श्रेष्ठ आसनपर पधराया। स्वागतोपचारके अनन्तर उनसे श्रीकृष्णचन्द्रके इस आचरणकी बड़ी व्यग्रतासे निन्दा की। देवर्षि बोले—'तुम कैसे मूर्ख हो कि भगवान्‌को मनुष्य कहते हो। नहीं जानते कि स्वयं ब्रह्म सच्चिदानन्दका गोकुलमें अवतार हुआ है। प्रजापतिके गो-गोपनवाली घटना क्या तुम नहीं जानते कि जब मोहवश गौओंको उन्होंने मायापूर्वक अदृश्य कर दिया, तब भगवान्‌ने क्षण-मात्रमें, वहाँ उन सब गौओंकी नवीन सृष्टि कर ली। तुम किस अन्धकारमें पड़े हो?'

देवर्षि फटकारकर चले गये, पर मुरिरको बोध नहीं हुआ। उनकी बुद्धिमें यह बात नहीं धँसती थी कि श्रीकृष्ण परमात्मा हैं। हाँ, उन्हें एक सविशेष शक्तिशाली श्रेष्ठ मनुष्य माननेके लिये वे अवश्य तैयार थे।

श्यामाको यह सब समाचार मालूम हो गया था। जब उस दिन रात्रिमें भगवान् पधारे तब अवसर पाकर श्यामाने उनसे पूछा कि—'प्राणनाथ! मेरे पिताका विश्वास तुममें क्यों नहीं होता?' भगवान्‌ने मुसकरा दिया और कहा कि—'फिर कभी पूछना।'

श्यामाको उत्सुकता थी। उसने फिर एक दिन पूछा। तब भगवान् बोले—'वे पूर्व-जन्ममें वैशेषिक-मतके माननेवाले एक तार्किक ब्राह्मण थे। उसी संस्कारसे उनका मुझमें विश्वास नहीं होता। क्योंकि वह सरल मानसका नैसर्गिक गुण है।'

श्यामा बोली—'भगवन्, वह बुद्धि कैसी, जो तुममें सर्वतोभावसे प्रवृत्त न करे। और वह विद्या कैसी जो तुम्हें परम प्रियतम न प्रतिपादित करे और एकमात्र बन्धु न बनाये।'

भगवान्‌ने कहा—मुझे, मेरी कृपासे, केवल भावुक भक्त ही जानते हैं और वे ही दयापूर्वक जीवोंको मेरे सम्मुख करते हैं। तर्कसे कोई मुझे नहीं पा सकता। मैं तो केवल प्रेमसे वशीभूत होता हूँ। तर्क बुद्धिका विषय है और मैं उससे अत्यन्त परे आत्माका भी आत्मा हूँ।

उपसंहार

भगवान् श्रीकृष्णने एक कौतुक किया। एक दिन शाताकीडमें सब एकत्रित थे। मुरिर 'श्रीकृष्ण परब्रह्म कैसे हैं' नारदजीके वचनका स्मरणकर इस जटिल समस्यापर विचार कर रहे थे। श्यामा प्रियतमकी भावनामें पग रही थी। कभी उनकी छविमें और कभी वंशरी-निनादमें वह तन्मय हो रही थी। जीहा उसके पास बैठी फूलोंके आभूषण बना रही थी और उत्तमा बैठी मुरिरकी मुख-मुद्रा देख रही थी। उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ एकाएक प्रकट हो गये। जिस समय, अपने बिम्बारुण अधरपर धर कर, उन्होंने अपनी त्रैलोक्य-मोहिनी मुरली बजायी, उस समय चराचर विह्वल हो उठे। उस महाप्राणमें सबके प्राण आकर्षित हो उठे। उस लोककी सभी दिव्याङ्गनाएँ और दिव्य-पुरुष उस आकीडमें खिंच आये। अन्य दिव्यलोकोंके भी देवी-देव आकाशपथमें एकत्रित हो गये। पक्षियोंकी पङ्क्तियाँ भगवान् श्यामसुन्दरके ऊपर मण्डलाकार स्थित हैं और नितान्त स्थिर हैं। कोई उनमेंसे न कलरव करता और न पङ्ख हिलाता है। नीचे मृगवृन्द, जड मूर्त्तियोंकी तरह चारों ओरसे घेरे हैं। लतातरुओंमें अनवरतरूपसे फूल-फल लगते हैं और झड़ते हैं, अनवच्छिन्न मकरन्दकी धाराएँ बह रही हैं। कामधेनुओंके स्तनोंसे दुग्ध एकतार स्खलित हो रहा है। पवन निरुद्ध प्राणकी तरह गति भूलकर सन्नाटेमें आ गया है। तन्मयता, तल्लीनता, एकाग्रता, तदाकारता और तदात्मतारूप अपनी सहचरियोंके सङ्ग शान्तिदेवी भगवान्‌की वंशी-ध्वनिपर चारों ओर सम्पूर्ण कलाओंसे आनन्दकी भूमिकामें नृत्य कर रही हैं, अस्तु। कोई आपेमें नहीं रह गया। वह छवि ही ऐसी थी और वह ध्वनि ही ऐसी थी कि जो नेत्र और श्रोत्र-पथ-गामिनी होते ही सीधे मन और प्राणको भेदकर, आत्मामें घुस जाती थी।

उस वंशरी-लयके प्रलयमें तर्कशास्त्रका कहीं पता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नहीं रह गया। अन्तःकरणके चारों भेद उस महानादके प्रबल प्रवाहमें न जाने क्या हुए। मुरि मुरि हैं, इसका भी उन्हें न ज्ञान है और न भान। सबके शरीर भर दिखायी देते हैं और सब सजीव प्रतीत होते हैं। और कहीं कुछ नहीं—एकमेवाद्वितीय श्रीकृष्ण और रामेति-रमित महानाद।

इसप्रकार सबको स्तब्ध और मुग्ध करके अपनी प्यारी श्यामाको लेकर श्यामसुन्दर अन्तर्धान हो गये। सबको मालूम हो गया कि श्रीकृष्णकी कैसी सुषमा है और वंशी-ध्वनिकी कैसी मधुरिमा! कोई यों ही सब कुछ तजकर विरागी नहीं होता, वह वस्तु ही ऐसी मधुर है और उसकी चाह ही ऐसी निराली है कि जो सब कुछ छुड़ा देती है और सब कुछ सहन कराती है। सच्चा विरक्त जीवन दिव्य अनुरागसे परिपूर्ण होता है। वह ऊपरसे नारिकेलके सदृश जटिल, पर भीतर उस महामधुर रससे भरा होता है—

यत्स्वादाद्विरसा भवन्ति सकलास्त्रैलोक्यराज्यादयः।

श्रीभगवन्नाम

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान्गुणः। कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्॥
कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः। द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥

(श्रीमद्भागवत)

श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितसे कहते हैं—'हे राजन्! इस दोषोंसे भरे हुए कलियुगमें एक महान् गुण यह है कि केवल श्रीकृष्णके नाम-कीर्तनसे ही मनुष्य बन्धनसे मुक्त होकर परमात्माको प्राप्त हो जाता है। सत्ययुगमें ध्यानसे, त्रेतामें यज्ञोंसे और द्वापरमें परिचर्यासे जो पद प्राप्त होता था वही कलियुगमें केवल श्रीहरि-नाम-कीर्तनसे प्राप्त होता है।'

कलियुगमें श्रीभगवान्का नाम ही पाप-तापसे जलते हुए मनुष्योंके लिये एकमात्र सहारा है। भगवान्का नाम परम पावन है, परम मंगलमय है। श्रद्धापूर्वक श्रीभगवन्नामका आश्रय लेकर जप-कीर्तन करनेसे जगत्की दृष्टिसे असम्भव भी सम्भव हो सकता है।

इस समय नामके रूपमें साक्षात् श्रीभगवान् ही अवतरित होकर जीवोंका कल्याण कर रहे हैं। श्रीभगवान्के नामका माहात्म्य वाणीसे नहीं कहा जा सकता। नामके सम्बन्धमें जितने माहात्म्य-सूचक शब्द हैं। वे तो नामसे लाभ उठाये हुए महात्माओंके कृतज्ञ हृदयोंसे निकले हुए उद्गार हैं। नामका यथार्थ माहात्म्य कौन गा सकता है। 'राम न सकहिं नामगुन गाई।' इसीलिये प्रतिवर्ष ढाई महीनेके लिये कल्याणके प्रिय पाठक-पाठिकाओंसे श्रीभगवान्का नाम जपने-जपवानेकी प्रार्थना की जाती है।

गतवर्ष कल्याणके पाठकोंसे पौष सुदी १ से फाल्गुन सुदी १५ तक ढाई महीनेमें उपर्युक्त १६ नामोंके दस करोड़ मन्त्र-जप करने-करानेकी प्रार्थना की गयी थी और बड़े ही हर्षकी बात है कि प्रेमी पाठक-पाठिकाओंकी चेष्टा और उत्साहसे दस करोड़की जगह अड़तीस करोड़से अधिक मन्त्रोंका जप हो गया।

इस वर्ष भी फिर उसी प्रकार दस करोड़ मन्त्र-जपके लिये हाथ जोड़कर प्रार्थना की जाती है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आशा है भगवत्-रसिक पाठक-पाठिकाएँ विशेष उत्साहके साथ नाम-जप करने-करवानेका महान् पुण्य-कार्य करेंगे। नियमादि वही हैं।

यह आवश्यक नहीं है कि अमुक समय आसनपर बैठकर ही जप किया जाय। प्रातःकाल उठनेके समयसे लेकर रातको सोनेतक चलते-फिरते, उठते-बैठते और काम करते हुए सब समय इस मन्त्रका जप किया जा सकता है। संख्याकी गिनतीके लिये माला हाथमें या जेबमें रक्खी जा सकती है। अथवा प्रत्येक मन्त्रके साथ संख्या याद रखकर भी गणना की जा सकती है। बीमारी या अन्य किसी अनिवार्य कारणवश यदि जपका क्रम टूट जाय तो किसी दूसरे सज्जनसे कहकर जप करवा लेना चाहिये। यदि ऐसा प्रबन्ध न हो सके तो नीचे लिखे पतेपर उसकी सूचना भेज देनेसे उसके बदलेमें जपका प्रबन्ध करवाया जा सकता है। जो करे सो स्वयं आप ही करे। किसी अनिवार्य कारणवश यदि जप बीचमें छूट जाय, दूसरा प्रबन्ध न हो और यहाँ सूचना भी न भेजी जा सके तो कोई आपत्ति नहीं। निष्काम-भावसे जप जितना भी किया जाय उतना ही उत्तम है।

हमारा तो यह विश्वास है कि यदि 'कल्याण'के प्रेमी पाठक और पाठिकाएँ अपने-अपने यहाँ इस बातकी पूरी-पूरी चेष्टा करें तो आगामी अङ्क प्रकाशित होनेतक ही हमारे पास बहुत अधिक संख्याकी सूचना आ सकती है। अतएव सबको कृपापूर्वक इस पुण्यकार्यमें मन लगाकर भाग लेना चाहिये।

१-किसी भी तिथिसे आरम्भ करें, परन्तु पूर्ति फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमाको हो जानी चाहिये।

२-सभी वर्णों, सभी जातियों और सभी आश्रमों-के नर-नारी, बालक, वृद्ध, युवा इस मन्त्रका जप कर सकते हैं।

३-प्रतिदिन कम-से-कम एक मनुष्यको १०८ (एक सौ आठ) मन्त्र (एक माला) का जप अवश्य करना चाहिये।

४-सूचना भेजनेवाले सज्जन केवल संख्याकी ही सूचना भेजें। जप करनेवालोंके नाम भेजनेकी आवश्यकता नहीं। केवल सूचना भेजनेवाले सज्जन अपना नाम और पता लिख भेजें।

५-संख्या मन्त्रकी भेजनी चाहिये, नामकी नहीं। उदाहरणार्थ—यदि सोलह नामोंके इस मन्त्रकी एक माला प्रतिदिन जपे तो उसके प्रतिदिन-के मन्त्रजपकी संख्या १०८ होती है। जिसमेंसे भूलचूकके लिये आठ मन्त्र बाद देनेपर १०० (एक सौ) मन्त्र रह जाते हैं। जिस दिनसे जो भाई आरम्भ करे उस दिनसे फाल्गुन सुदी १५ तकके मन्त्रोंका हिसाब इसी क्रमसे जोड़कर सूचना भेजनी चाहिये।

६-संस्कृत, हिन्दी, मारवाड़ी, मराठी, गुजराती, बङ्गला, अंग्रेजी और उर्दूमें सूचना भेजी जा सकती है।

७-सूचना भेजनेका पता—

नाम-जप-विभाग

कल्याण-कार्यालय, गोरखपुर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीहरिः

कल्याण माघ १९९० की

विषय-सूची

	पृष्ठ-संख्या
१–जाग रे [कविता] (श्रीदादूदयालजी)	९८७
२–पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश ...	९८८
३–सर्वोपयोगी प्रश्न(श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	९९३
४–भक्त-गाथा	९९६
५–गीताका एक श्लोक(श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	१००१
६–परमहंस-विवेकमाला (स्वामीजी श्रीभोले-बाबाजी)	१००३
७–वाल्मीकि-रामायण और भगवच्छरणागति (साहित्याचार्य पं० श्रीमथुरानाथजी शास्त्री, भट्ट, कविरत्न)	१००७
८–मेरा स्वप्न (एक दर्शक) ...	१०१५
९–प्रेम-दिवाने ('श्रीप्रेम-पथ-पथिक') ...	१०१६
१०–ब्रह्मविद्या और गृहस्थाश्रम (स्वामीजी श्रीनित्यानन्दजी भारती) ...	१०१८
११–चाह [कविता] (पं० श्रीहरिप्रसादजी शर्मा 'अविकसित')	१०२२
१२–श्रीयमकरामायण [कविता] (श्रीअमृतलालजी माथुर)	१०२३
१३–परमार्थ-पत्रावली (श्रीजयदयालजी गोयन्दका-के पत्र)	१०२५
१४–तपस्विनी तेरसा (श्रीभगवानदासजी हालना)	१०२८
१५–कल्याणका मार्ग (स्वामी ॐकारानन्दजी परमहंस)	१०३४
१६–नराकार ईश्वर, अद्वैतवाद और भक्तिवाद (ठाकुर श्रीगजराजसिंहजी एम० ए०, एल-एल० बी०) ...	१०३७
१७–कल्याण-भावना [कविता] (श्रीताराचन्दजी पाँड्या)	१०४२
१८–प्रयाग-पञ्चक्रोशीकी परिक्रमा (श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी)	१०४५
१९–गीतोक्त कर्मयोग और आधुनिक कर्मवाद (हनुमानप्रसाद पोद्दार) ...	१०५२
२०–मनमोहनसे [कविता](श्रीपद्मकान्तजी मालवीय)	१०६०
२१–विवेक-वाटिका	१०६१
२२–मनुष्य-स्वभाव (स्वामी श्रीरामानन्द संन्यासी शास्त्री, व्याकरणाचार्य, साहित्यालङ्कार, वेदान्त-विभूति)	१०६२
२३–कल्याण ("शिव")	१०६४

शक्ति-अंकके लिये

चित्र आदि भेजिये

कल्याणके आगामी शक्ति-अंकके लिये दश महाविद्या, नव दुर्गा, महाकाली, महासरस्वती और महालक्ष्मी, श्रीपार्वती, श्रीसीता, श्रीराधा आदिके दर्शनीय भक्तिभाव उत्पन्न करनेवाले चित्र, ५१ सिद्ध-पीठोंके चित्र, श्रीयन्त्र आदि यन्त्रोंके चित्र और प्रसिद्ध देवी-तीर्थों और मन्दिरोंके चित्र भेजनेकी कृपा कीजिये।

—सम्पादक 'कल्याण'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सूचना **श्रीशिवाङ्क** सूचना

नवीन संस्करण आगामी मासमें छपकर तैयार हो जायगा। जिन सज्जनोंने रुपये भेजे हैं या भेज रहे हैं एवं वी० पी० मँगवायी हैं या मँगवा रहे हैं उनसे थोड़ा धीरज रखनेकी प्रार्थना है। श्रीशिवांक तैयार होते ही सुरक्षितरूपसे सेवामें भेजा जा सकेगा। विलम्बके कारण जो असुविधा हुई है उसके लिये क्षमा करनेकी पुनः प्रार्थना करते हैं। व्यवस्थापक—कल्याण

गीता-डायरी सन् १९३४ की

प्रायः समाप्त हो गयी है। कोई सज्जन आर्डर न भेजें। अपने पासके बुकसेलरोंके पास हो तो वहींसे खरीदनेकी कृपा करें। काम अधिक होनेके कारण दूसरा संस्करण छापनेमें असमर्थ हैं।

गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीभगवन्नाम-जप

गत पौषके अंकमें प्रकाशित सूचनाके अनुसार फाल्गुन शुक्ल १५ तकके लिये १६ नामके (हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे) मन्त्र-जाप करने-करानेकी चेष्टा कीजिये और संख्याकी सूचना भेजिये।

नाम-जप-विभाग,
कल्याण-कार्यालय, गोरखपुर

श्रीगीता-परीक्षा

संवत् १९९० की गीता-परीक्षाका फल फाल्गुन कृष्ण ११ शनिवार ता० १० फरवरी सन् १९३४ को प्रकाशित होगा।

संवत् १९९१ की गीता-परीक्षा कार्तिक शुक्ल ७ मंगलवार ता० १३ नवम्बर सन् १९३४ से प्रारम्भ होगी। केन्द्र-व्यवस्थापक महोदयोंसे हमारी यही विनति है कि नियत अभ्यास-क्रमके अनुसार अभीसे अध्ययन कराके विद्यार्थियोंको परीक्षामें सम्मिलित करें। नियमावली-अभ्यास-क्रम तथा आवेदनपत्र मँगानेपर कार्यालयसे मिल सकेंगे। विशेष जानकारीके लिये लिखें—

संयोजक,
श्रीगीता-परीक्षा-समिति,
गीताप्रेस, गोरखपुर (यू० पी०)

गीताप्रेस, गोरखपुरमें मिलनेवाली अच्युतग्रन्थमाला काशीकी पुस्तकें—

१ भगवन्नामकौमुदी—संस्कृत टीकासहित ॥=)
२ भक्तिरसायनम्—संस्कृत टीकासहित ॥)
३ शुल्वसूत्रम्—संस्कृत टीकासहित ।)
४ कात्यायनश्रौतसूत्रम्—संस्कृत टीकासहित ६)
५ प्रत्यक्तत्त्वचिन्तामणिः—(प्रथम भाग) संस्कृत टीकासहित २)
६ " —(दूसरा भाग) संस्कृत टीकासहित २)
७ भक्तिरसामृतसिन्धुः—संस्कृत टीकासहित ३)
८ तिथ्यर्कः—संस्कृत १॥)
९ परमार्थसारः—संस्कृत टीकासहित ।=)
१० प्रेमपत्तनम्—संस्कृत १)
११ खण्डनखण्डखाद्यम्—भाषानुवादसहित २॥)
१२ काशी-केदार-माहात्म्यम्—भाषानुवादसहित २॥)
१३ सिद्धान्तबिन्दुः—भाषानुवादसहित १।=)
१४ प्रकरणपञ्चकम्—भाषानुवादसहित ॥)

इन पुस्तकोंमें कमीशन नहीं दिया जाता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भगवान् श्रीरामचन्द्र

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु । मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

वर्ष ८ | गोरखपुर, माघ १९९० फरवरी १९३४ | संख्या ७ पूर्ण संख्या ९१

जाग रे !

जाग रे सब रैण बिहाणी । जाइ जनम अँजुलीको पाणी ॥
घड़ी घड़ी घड़ियाल बजावै । जो दिन जाइ सो बहुरि न आवै ॥
सूरज-चंद कहैं समुझाइ । दिन-दिन आव घटती जाइ ॥
सरवर-पाणी तरवर छाया । निस-दिन काल गरासै काया ॥
हंस बटाऊ प्रान पयाना । दादू आतम राम न जाना ॥

—दादूजी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश

प्रश्न—श्रीकृष्ण भगवान्‌में प्रेम होनेकी जोरदार बातें सुनानेकी कृपा कीजिये।

उत्तर—हमारे पास तो वैसी बात नहीं, किन्तु भागवतमें श्रीकृष्ण-प्रेमके सम्बन्धमें बहुत जोरदार बातें कही गयी हैं। उनको देखना चाहिये। एवं 'श्रुतिस्मृति ममैवाज्ञा' और रामायणमें कहा है—

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानइ जोई॥

× × ×

भगवत्-प्राप्तिके अनेक मार्ग हैं, किन्तु एक ही पुरुषद्वारा एक ही समयमें सबका साधन नहीं किया जा सकता। इसलिये भक्तको तो भक्ति बढ़ानेवाले कार्य ही करने चाहिये।

× × ×

भगवान्‌की आज्ञा भजन करनेकी है। इसमें विरोध करनेवालेकी बात नहीं सुननी चाहिये।

× × ×

शास्त्रमें कहा है—'यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्' यदि कोई भजन तथा ब्रह्मचर्य पालन करनेमें विरोध करे तो उसकी बात नहीं माननी चाहिये।

× × ×

प्रारम्भमें यदि कोई दम्भसे भी भजन करता हो तो भी उसका विरोध नहीं करना चाहिये। क्योंकि साधु-सङ्ग निरन्तर होनेसे धीरे-धीरे उसका दम्भ छूट जायगा और वास्तविक भजन होने लगेगा। इसलिये भजन न करनेकी अपेक्षा दम्भसे भी भजन करनेवाला उत्तम है। भजनकी नकल करना भी उत्तम है, क्योंकि उससे वह सच्चे भजनमें भी लग सकता है।

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

× × ×

जो भगवन्नाम लेगा वह शुभ काम अवश्य करेगा। यदि उसके पहलेके कुछ पाप हों तो वे सब भगवत्-कृपासे छूट जायँगे।

प्र०—क्या उसे फिर मनुष्य-जन्म मिलेगा?

उ०—वह मनुष्योचित कर्म करेगा तो उसे मनुष्य-जन्म मिलेगा।

एक राधावल्लभजीका उपासक था। एक समय उसे सन्निपात हो गया, उसमें भी वह राधा-कृष्णके पद गाता रहा।

दूसरा एक ठेकेदार था, एक समय उसे भी सन्निपात हो गया, उसमें वह कहता रहा कि, 'अरे! कंकड़ कूटो, मजदूरोंको बुलाओ।' उसे भगवन्नाम लेनेको कहा गया परन्तु वह न ले सका। इसीलिये कहा गया है—'सदा तद्भावभावितः।'

प्रकृति जड नहीं है, उसका कार्य जड है। क्योंकि प्रकृति जड-चेतनका विभाग करती है। पुरुष तो कुछ करता नहीं; इसलिये प्रकृतिको जड नहीं कह सकते। 'कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते।' प्रकृति कुछ भी हो, हमको तो उससे प्रयोजन नहीं है। हमें तो पुरुषको ही जानना है, उसीसे हमारा प्रयोजन सिद्ध होता है।

मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥
(गीता ७। ७)

'पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः'

ये सब गहन विषय हैं, भगवत्-कृपा होती है तभी समझमें आते हैं, इसीलिये (१) ईश्वर-कृपा, (२) गुरु-कृपा, (३) शास्त्र-कृपा, (४) अपनी कृपा—इन चार कृपाओंके होनेसे ही पूरा लाभ होता है(अनेककालभजनात्

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भगवत्कृपा तदोदयेत्)। अतएव निरन्तर भगवद्भजन करना ही सबका सार है।

× × ×

ममत्वसे ही दुःख होता है, ईश्वर-सृष्टिके पदार्थोंसे दुःख नहीं हो सकता। ईश्वर-सृष्टिके पदार्थोंमें ममत्व करनेको ही जीव-सृष्टि कहते हैं। जैसे अनेक मकान हैं, उनके नष्ट हो जानेसे दुःख नहीं होता, किन्तु मकानको खरीद लेनेके बाद उसमें ममत्व हो जानेपर यदि उसकी एक ईंट भी कोई निकालता है तो बड़ा कष्ट होता है। इसलिये किसी पदार्थमें ममत्व न करके सब पदार्थोंको ईश्वरके समझकर सेवककी भाँति उनकी रक्षा तथा सम्हाल करते रहनेसे उनके संयोग-वियोगमें दुःख नहीं होता, क्योंकि सब पदार्थोंका बनानेवाला ईश्वर ही है। यदि कोई कहे यह मकान तो मैंने बनाया है तो मिट्टी, पत्थर आदि कहाँसे आये; ये तो मनुष्यकृत हैं नहीं, और यदि इन भौतिक पदार्थोंके बनानेवालेको ईश्वर मानें तो गवर्नमेण्टको सबसे बड़ा ईश्वर मानना चाहिये,क्योंकि उसने तो रेल, मोटर, तार, जहाज आदि अनेक पदार्थ बनाये हैं, पर लोहा न होता तो वह कहाँसे बनाती ? इसलिये यह मानना पड़ेगा कि सृष्टिका रचयिता और मालिक ईश्वर ही है।

× × ×

यदि आनन्द लेना है तो ईश्वरसे प्रेम करो, पदार्थोंके बनने-बिगड़नेसे कोई लाभ-हानि नहीं है।

× × ×

गोपियोंसे भगवान् श्रीकृष्ण एक क्षणभरके लिये भी अलग नहीं होते थे। जब वर्तमान कालके भक्तोंसे भी भगवान् दूर नहीं होते तो गोपियोंसे दूर कैसे जा सकते थे ? शास्त्रमें ऐसा कहा है—

वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति।

× × ×

भगवान् श्रीकृष्ण लीलापुरुषोत्तम हैं। उनकी बड़ी ही अलौकिक और दिव्य नित्यलीलाएँ हुआ करती हैं। उन्हें कोई विरले भाग्यवान् प्रेमीजन ही देख पाते हैं। वे भगवान् हमारे पास भी बैठे हुए हैं, परन्तु हमारे पापोंसे हमें दीखते नहीं। भगवान् कहते हैं मैं तो भक्तोंका ऋणी हूँ, सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य और सायुज्य आदि मुक्तियाँ तो उन्हें मैं ब्याजमें दे देता हूँ। मूल तो उनका जमा ही रहता है किन्तु वे प्रेमी भक्त इन चारों मुक्तियोंको मेरे द्वारा दी जानेपर भी स्वीकार नहीं करते—

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥

× × ×

अज्ञानका परदा हटते ही इस जगत्के ही स्थानमें सर्वत्र भगवान् दीखने लगेंगे।

हरिरेव जगज्जगदेव हरि-
र्जगतो हरितो न हि भिन्नतनुः।
इति यस्य मतिः परमार्थगतिः
स नरः भवसागरमुद्धरति ॥

× × ×

स्त्रियोंका भीख माँगकर खाना शास्त्रसे अत्यन्त विरुद्ध है। वे न एकान्तमें जायँ और न घर छोड़कर विचरण करें। 'भ्रमण करनेवाली स्त्री नाशको प्राप्त होती है।' वेदान्त बहुत-सी स्त्रियाँ सुनती हैं परन्तु धारण कोई भी नहीं करती। भजन उसके द्वारा होता है जिसको क्रोधका संसर्ग भी न हो।

× × ×

भगवत्-प्राप्तिके चार उपाय हैं(१) भगवद्दर्शनकी तीव्र उत्कण्ठा, (२) निरन्तर नामजप, (३) विषयोंमें अरुचि, (४) सहनशीलता।

× × ×

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्र०—भगवद्दर्शन सन्तकृपासे हो सकते हैं या नहीं ?

उ०—यद्यपि भगवद्दर्शन कृपासाध्य हैं तथापि ऐसे महात्मा पुरुष देखनेमें नहीं आते। हाँ, शास्त्रोंमें इसके अनेक प्रमाण भरे पड़े हैं, इसलिये भगवद्दर्शन तथा भगवत्प्राप्तिके लिये चार उपाय ये भी हैं—(१) श्रद्धा, (२) सत्संग, (३) भजनक्रिया, (४) पाप तथा दुर्गुणोंका त्याग। भगवान्‌में आसक्ति होनेसे विषयोंमें वैराग्य होगा। भगवान्‌में आसक्ति हुए बिना विषयोंसे वैराग्य नहीं हो सकता, चाहे कोई परमहंस या दिगम्बर ही क्यों न हो जाय। भगवत्प्राप्तिके लिये भगवान्‌में आसक्ति करनी चाहिये। उनमें आसक्ति होनेका मुख्य उपाय है उनका चिन्तन। वह चिन्तन भी चार प्रकारसे होता है—(१) उनके नामका जप, स्मरण, कीर्तन, (२) उनके स्वरूपका ध्यान, (३) उनके गुणोंको श्रवण करना, कथन करना और सत्संग करना, (४) उनकी पूजा और सेवा करना। इन साधनोंका निरन्तर तीव्र अभ्यास होनेसे भगवान्‌में आसक्ति हो सकती है।

× × ×

प्र०—सत्संग करते रहनेपर भी वैराग्य क्यों नहीं होता ?

उ०—वैराग्य होनेका कारण है भगवान्‌में आसक्ति होना, और वह होती है भजनसे। सत्संग भी एक प्रकारसे भजन ही है, इसके दृढ़ अभ्याससे भगवान्‌में आसक्ति होनेपर वैराग्य होगा। साकारके दर्शन होना कठिन है, निर्गुण-निराकार तो प्राप्त है ही।

निरगुन रूप सुलभ अति सगुन न जाने कोय।

× × ×

जिनकी विचारमें रुचि नहीं है और जो भगवद्गुणानुवादमें ही मस्त हैं वे ही उत्तम हैं। पाप-कर्मोंको ध्वंस करनेके लिये जप करनेकी आवश्यकता है; इसीसे ज्ञान-वैराग्ययुक्त भक्तिकी प्राप्ति होगी। इसको भी अनिर्विण्ण चित्तसे करना चाहिये। देह-नाशपर्यन्त इसे तत्परतासे करते रहना चाहिये। पुनः-पुनः चिन्तन करनेको ही अभ्यास कहते हैं और यही पुरुषार्थ है। ईश्वर-चिन्तनमें आनन्द आवे या न आवे उसे तो प्रतिज्ञा करके करते रहना चाहिये; मन भागता रहे तो कोई चिन्ता नहीं किन्तु नियमपूर्वक चिन्तन करनेकी प्रतिज्ञा करनी चाहिये। भगवान् उसीपर दया करते हैं जो उनका चिन्तन करता है। जिसप्रकारसे भगवान्‌में मन लगे उसीको करना चाहिये। जपमें मन कम लगे तो कीर्तन करें या स्तोत्रपाठ या स्तुतिके पद गान करें।

× × ×

अभ्यास करनेसे हम निद्राको जडमूलसे उखाड़ सकते हैं। किन्तु यह कार्य चार दिनके अभ्याससे न होगा। इसलिये जल्दबाज न होना चाहिये। यह निश्चय कर लेना चाहिये कि मैं आजन्म भगवन्नाम लेता रहूँगा। नित्यके नाम-जपका हिसाब लिखा करें। इसप्रकार प्रतिज्ञा करनेसे भजन होगा। भजनको हठपूर्वक भी करना चाहिये। अति आहार और अति परिश्रम भजन करनेवालेके लिये निषेध है। जप करते हुए मन भटके तो भटकने दो। जपमें इतनी शक्ति है कि वह अधिक होनेसे अपने-आप मनको एकाग्र करनेमें मदद करेगा। हम तो एकाग्रता-की अपेक्षा प्रतिज्ञापूर्वक नियमितरूपसे जप करनेमें विशेष लाभ समझते हैं। जैसे तीन घण्टे भजनका, अठारह अध्याय गीतापाठका इत्यादि। काम नित्य-प्रति करनेकी प्रतिज्ञा कर ली तो इससे बड़ा लाभ है। यदि लाभ न दीखे तो कोई हर्ज नहीं। इस जन्ममें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नहीं तो अगले जन्ममें लाभ दीखेगा। कभी-न-कभी तो आनन्द आवेगा ही। कम-से-कम इतना तो आनन्द आवेगा कि मैंने आज इतना भजन किया।

× × ×

श्रीरघुनाथजीके चरित्रमें शंका मत करो। इस सम्बन्धमें कुछ भी न कहो। वे जो कुछ करते हैं, ठीक ही करते हैं। वेठीक कर ही नहीं सकते। श्रीरघुनाथजीको जब हम ईश्वर समझ चुके हैं तो उनके कार्योंमें तर्क करनेकी क्या जरूरत है? महान् पुरुष जो करते हैं उसे आदर्शरूपमें नहीं मानना चाहिये, उनके उपदेशको आदर्श मानना चाहिये। नामके अभ्याससे नाम मधुर लगने लगेगा। नियमसे नाम लेनेपर नाम मधुर लगेगा। जैसे ध्यान करनेवालेको दिव्य गन्ध, दिव्य दर्शनादि अनेक चमत्कार मिलते हैं वैसे ही नाम जपनेसे मिलेंगे। भगवान्‌के दर्शनकी चाह होनेसे वे तत्काल दर्शन दे सकते हैं। केवल नाम-जपमें ही विश्वास होनेसे नाम-जपसे ही भगवान् दर्शन दे सकते हैं। जो अधिक काम करता है वह अधिक भजन भी करेगा। जो काम नहीं करता उससे भजन नहीं हो सकता। हाँ, भजनको धीरे-धीरे बढ़ाते जाओ तो काम अपने-आप कम होता जायगा। यदि भजनमें अत्यन्त प्रेम है तो घर छोड़कर एकान्तमें भजन कर सकते हो। भजनमें कोई विघ्न कर ही नहीं सकता, इसलिये पहले अभ्यास करना चाहिये। कुछ समय भजन-कीर्तनादि करना चाहिये, थोड़ी देर सत्संग करना चाहिये, थोड़ी देर गुणानुवाद-कथनादि करना चाहिये जिससे मन लग जायगा। यदि पैसे पासमें हों या कमाते हो तो उससे साधुसेवा करो।

× × ×

'काशीमरणान्मुक्तिः' इसमें कोई सन्देह नहीं—

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः॥

ये सब भगवान्‌के धाम हैं, वहाँ रहकर शुभ कर्म करनेसे अवश्य मुक्ति होगी। यदि धाम-महत्त्व न हो तो उसे कौन मानेगा? काशी, वृन्दावन, गंगा, यमुना आदि सब मुक्तिके धाम हैं।

× × ×

श्रीकृष्णके गुणानुवादमें कर्मकाण्ड, आचार-विचारका कोई काम नहीं। वहाँ तो गौ दुहते, झाड़ देते, दधि मथते तथा हरेक काम करते व्रज-बालाएँ श्रीकृष्णका गुणानुवाद गाया करती थीं।

× × ×

आजीवन ब्रह्मचर्य पालन करनेकी इच्छा करनेवाले व्यक्तिको यह दृढ़ प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये कि मैं आजीवन ब्रह्मचर्यका पालन करूँगा। तथा इन आठ साधनोंका भी पालन करना चाहिये (१) अष्ट प्रकारके मैथुनोंका सर्वथा त्याग। (२) स्त्रीका संकल्प ही न करे। (३) स्त्री या स्त्रीके चित्रका बने जहाँ-तक दर्शन ही न करे। (४) यदि भूलसे दृष्टि चली जाय तो एक बार दृष्टि पड़ते ही उधरसे दृष्टिको तत्काल हटा ले और दूसरी बार भूलकर भी उधर न देखे। (५) स्त्रीको भगवती-स्वरूप समझे। (६) स्त्री-संगियोंका संग न करे। (७) एकान्तमें भूलकर भी स्त्रीमात्रसे भाषण न करे। और (८) पशु, पक्षी आदि जीवमात्रको मैथुन करते न देखे।

× × ×

यदि किसीको विस्तारसे दैवीसम्पत्तिका वर्णन देखना हो या परमार्थसम्बन्धी उपयोगी बातें जाननी हों तो गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित 'साधन-पथ' को विचारपूर्वक पढ़ना चाहिये। उस छोटी-सी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पुस्तकमें बहुत कामकी बातें लिखी हैं। मैंने सैकड़ों लोगोंको यह पुस्तक पढ़नेके लिये कहा है।

× × ×

रासलीला नित्यलीला है। वह एक क्षणके लिये भी बन्द नहीं होती किन्तु उसे सब नहीं देख सकते, जिनकी दिव्य दृष्टि होती है वे ही देख सकते हैं।

× × ×

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्॥

जिसमें दैवीसम्पत्ति है वही भगवान्‌का भजन कर सकता है। बिना दैवीसम्पत्ति धारण किये भगवान्‌का यथार्थ भजन होना बहुत कठिन है, अतएव भजनके साथ-साथ दैवीसम्पत्तिको धारण करनेकी अत्यन्त आवश्यकता है। भगवान्‌का प्रभाव जानकर अनन्य मनसे भजन करना चाहिये। गोपियाँ भी इसी प्रकारसे भजन किया करती थीं। उन्होंने कहा है—

न खलु गोपिकानन्दनो भवा-
नखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये
सख उदेयिवान्सात्वतां कुले॥
(श्रीमद्भा० १०।३१।४)

हे भगवन्! आप केवल यशोदानन्दन ही नहीं हैं, किन्तु सम्पूर्ण विश्वके अन्तरात्मा हैं। सखे! आप अरण्यवासी मुनियोंकी प्रार्थनाके अनुसार विश्वकी रक्षाके लिये ही यादववंशमें अवतीर्ण हुए हैं।

इसका दूसरा अर्थ यह भी है कि आप गोपिकानन्दन नहीं हैं। यदि आप गोपिकानन्दन होते तो आपको दया जरूर आती, क्योंकि यशोदाजी बड़ी दयालु हैं और आप तो निर्दयीकी तरह हमें बड़ा कष्ट दे रहे हैं। आप सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तर्द्रष्टा भी नहीं हैं। यदि अन्तर्द्रष्टा होते तो हमारे हृदयकी वेदना देखकर जरूर प्रकट हो जाते।

× × ×

रुक्मिणीको भगवान्‌ने कहा कि तुमने सब राजाओंको छोड़कर मुझे पति बनाया सो बड़ी भूल की। तब वह बोली—'महाराज! आप ठीक ही कहते हैं। जिस परमात्माकी प्राप्तिकी इच्छावाले सम्राट् एवं राजा लोग अपने सम्पूर्ण राजवैभवको तिलाञ्जलि देकर चले जाते हैं, उन राजाओंके साथ आपकी तुलना नहीं हो सकती। क्योंकि आप राजराजेश्वर साक्षात् भगवान् हैं। आप हाड़-मांसके पुतले भी नहीं हैं। आप साक्षात् पूर्ण ब्रह्म हैं। इसलिये मैंने सब तरफसे अपना मन हटाकर आप भगवान्‌में आसक्ति की, सो अच्छा ही किया।' इसी प्रकार हम-लोगोंको भी सब सांसारिक पदार्थोंसे अपना मन हटाकर केवल भगवान्‌के अर्पण कर देना चाहिये।

× × ×

'कल्याण' मासिकपत्रने ध्यानसहित नाम-जपकी महिमा गाकर संसारका बड़ा उपकार किया, क्योंकि सब लोग जपके साथ ध्यान नहीं किया करते हैं। इससे बिना ध्यानके विशेष लाभ भी शीघ्र नहीं मिलता। भजन कैसे करना चाहिये, तुलसीदास-जीने कहा है—

कामिहि नारि पियारि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहि राम॥

लोभीकी भाँति नाम अधिकाधिक संख्यामें जपना चाहिये और कामीकी भाँति स्वरूपका ध्यान निरन्तर करना चाहिये।

× × ×

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सर्वोपयोगी प्रश्न

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

एक सज्जनने कुछ उपयोगी प्रश्न किये हैं, यहाँ वे उत्तरसहित प्रकाशित किये जाते हैं—

(१) प्र०—सच्चा वैराग्य किसप्रकार हो ?

उ०—संसारके सम्पूर्ण पदार्थ क्षणभङ्गुर और नाशवान् होनेके कारण अनित्य हैं, इस रहस्यको सच्चे वैराग्यवान् पुरुषोंके सङ्गसे समझनेपर सच्चा वैराग्य हो सकता है।

(२) प्र०—ईश्वर-प्राप्ति पुरुषार्थ और भगवत्कृपाद्वारा होती है, वह पुरुषार्थ किसप्रकार किया जाय और भगवत्कृपा किस तरह समझी जाय ?

उ०—सर्वव्यापी विज्ञानानन्दघन भगवान्‌की सब प्रकारसे शरण होना ही असली पुरुषार्थ है। अतएव भगवान्‌की शरण होनेके लिये वैराग्ययुक्त चित्तसे तत्पर होना चाहिये। भगवान्‌के नामका जप, उनके स्वरूपका ध्यान, उनकी आज्ञाका पालन और सुख-दुःखोंकी प्राप्तिके साधनोंमें एवं सुख-दुःखोंकी प्राप्तिमें उन परमात्माकी कृपाका पद-पदपर अनुभव करनेका नाम शरण है। और उनकी शरण होनेसे ही उसकी कृपाका रहस्य समझमें आ सकता है।

(३) प्र०—ईश्वरके दर्शन और प्राप्तिका सहज उपाय क्या है ?

उ०—अनन्य-भक्ति ही सहज उपाय है। भगवान्‌ने कहा है—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥
(गीता ११।५४)

'हे श्रेष्ठ तपवाले अर्जुन ! अनन्य-भक्ति करके तो इसप्रकार मैं प्रत्यक्ष देखनेके लिये और तत्त्वसे जाननेके लिये तथा प्रवेश करनेके लिये अर्थात् एकीभावसे प्राप्त होनेके लिये भी शक्य हूँ।'

अनन्य-भक्तिका स्वरूप यह है—

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥
(गीता ११।५५)

'हे अर्जुन ! जो पुरुष केवल मेरे लिये ही कर्म करता है, मेरे परायण है, मेरा भक्त है, आसक्तिसे रहित है और सम्पूर्ण प्राणियोंमें वैरभावसे रहित है, वह (अनन्य-भक्तिवाला पुरुष) मुझको (ही) प्राप्त होता है।'

सर्वव्यापी विज्ञानानन्दघन परमात्माके स्वरूपकी प्राप्ति तो ज्ञानयोगद्वारा भी हो सकती है परन्तु सगुण रूपके साक्षात् दर्शन केवल ईश्वरकी अनन्य-भक्तिसे ही हो सकते हैं। अनन्य-भक्ति और अनन्य-शरण यथार्थमें वस्तुतः एक ही है परन्तु व्याख्या करते समय शरणकी व्याख्यामें अनन्य-भक्तिका और अनन्य-भक्तिकी व्याख्यामें अनन्य-शरणका वर्णन हुआ करता है। जैसे उपर्युक्त श्लोकके 'मत्परमः' शब्दसे भगवत्-शरणका कथन किया गया है, वैसे ही गीता अध्याय ९ के ३४ वें श्लोकमें शरणके अन्तर्गत अनन्य-भक्तिका कथन आया है। गीता अ०९ के ३२ वें श्लोकमें भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा—स्त्री, वैश्य, शूद्र और पापयोनिवाले (अन्त्यज) भी मेरी शरण होकर परमगतिको प्राप्त हो जाते हैं—

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस उपदेशके बाद आगे चलकर भगवान्‌ने ३४ वें श्लोकमें शरणका स्वरूप इसप्रकार बतलाया—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥

'मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त हो, मेरा पूजन करनेवाला हो, मुझे प्रणाम कर। इसप्रकार मेरे शरण हुआ (तू) आत्माको मुझमें एकीभाव करके मुझको ही प्राप्त होगा।'

यों तो इस सारे ही श्लोकमें 'शरण' के नामसे अनन्य-भक्तिका ही वर्णन है परन्तु 'मद्भक्तो भव' शब्दसे स्पष्टरूपमें भक्तिका कथन है।

(४) प्र०—मनुष्य ईश्वरकी जरूरत क्यों नहीं समझता? और उस जरूरतके समझनेका उपाय क्या है?

उ०—ईश्वरके स्वरूप, रहस्य, स्वभाव, गुण, प्रभाव और तत्त्वको न जाननेके कारण ही ईश्वरकी जरूरत मनुष्यके समझमें नहीं आती। इस अज्ञानके नाश होते ही जरूरत समझमें आ जाती है। ईश्वरके उपर्युक्त स्वरूपादिको यथार्थतः जाननेवाले पुरुषोंके संगसे ही इस अज्ञानका नाश हो सकता है।

(५) प्र०—

उमा राम स्वभाव जिन जाना। तिनहिं भजन तजि भाव न आना॥

'भगवान्‌का ऐसा कौन-सा स्वभाव है जिसके जान लेनेपर भजन किये बिना न रहा जाय?'

उ०—भगवान् पुरुषोत्तम बिना ही कारण सबपर दया और प्रेम करनेवाले परम सुहृद् हैं, शरणागतवत्सल हैं, एवं दीनबन्धु हैं, इत्यादि अनेकों गुणोंसे युक्त उनके स्वभावको तत्त्वसे जान लेनेपर मनुष्य उनका भजन किये बिना नहीं रह सकता। श्रीभगवान् स्वयं कहते हैं—

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥
(गीता १५। १९)

'हे भारत! इसप्रकार तत्त्वसे जो ज्ञानी पुरुष मुझको पुरुषोत्तम जानता है वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वरको ही भजता है।'

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥
(गीता ५। २९)

'मुझको यज्ञ और तपोंका भोगनेवाला, सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वरोंका भी ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूतप्राणियोंका सुहृद् अर्थात् स्वार्थरहित प्रेमी ऐसा तत्त्वसे जानकर शान्तिको प्राप्त होता है।'

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥
(गीता ४। ११)

'हे अर्जुन! जो मुझको जैसे भजते हैं, मैं (भी) उनको वैसे ही भजता हूँ। (इस रहस्यको जानकर ही) बुद्धिमान् मनुष्यगण सब प्रकारसे मेरे मार्गके अनुसार वर्तते हैं।'

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥
(वा० रा० यु० १८। ३३)

'मेरा यह व्रत है कि जो एक बार भी मेरी शरण आकर 'मैं तुम्हारा हूँ', ऐसा कहकर मुझसे अभय चाहता है, उसे मैं समस्त प्राणियोंसे निर्भय कर देता हूँ।'

(६) प्र०—हम बड़ी-बड़ी बातें करना ही जानते हैं, साधन नहीं करते, ऐसा क्यों होता है?

उ०—बुरी आदतके कारण ऐसा होता है। सत्पुरुषोंके और उत्तम साधकोंके संगसे एवं शास्त्रके विचारसे यह आदत नष्ट हो सकती है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(७) प्र०—सच्चे महात्माओंके प्रति भी कभी-कभी अविश्वास होनेमें क्या कारण है ?

उ०—नास्तिक पुरुषोंका संग और पूर्वकृत पापोंके संस्कारोंका उदय; इन दो कारणोंसे सच्चे महात्माओंके प्रति भी कभी-कभी अविश्वास उत्पन्न हो जाता है। अतएव विचारके द्वारा नास्तिक पुरुषोंके संगका त्याग और कुसंस्कारोंका परिहार करना चाहिये। कुसंस्कारोंके नाशके लिये ईश्वरसे प्रार्थना भी करनी चाहिये।

(८) प्र०—यदि हम पुरुषार्थ नहीं करें, केवल भगवत्कृपा समझते रहें तो क्या उद्धार नहीं हो सकता ?

उ०—भगवत्-कृपाके समझनेका यह दुष्परिणाम नहीं हो सकता कि जिसमें समझनेवाला भगवत्के अनुकूल पुरुषार्थसे रहित हो जाय! क्योंकि भगवान्की शरण होना ही असली पुरुषार्थ है और शरण होनेसे ही मनुष्य भगवान्की कृपाके रहस्यको समझ सकता है। फिर उस कृपाके रहस्यको समझनेवाला पुरुष पुरुषार्थहीन कैसे हो सकता है?

(९) प्र०—भगवान् हर जगह मौजूद हैं, हमारी प्रार्थना दयार्द्र हृदयसे सुनते हैं और व्याकुल होनेपर प्रकट होकर दर्शन भी दे सकते हैं, ऐसा दृढ़ विश्वास कैसे हो ?

उ०—भगवान्के गुण, प्रेम, प्रभाव, रहस्य, लीला और तत्त्वके अमृतमय वचन उनके तत्त्वको जाननेवाले भक्तोंद्वारा पुनः-पुनः श्रवण करके मनन करनेसे एवं उनके बतलाये हुए मार्गके अनुसार चलनेसे दृढ़ विश्वास हो सकता है।

(१०) प्र०—कोई अपनेको नीचा समझता है तो वह नीचा हो जाता है, किन्तु गोसाईं तुलसीदासजी तो अपनेको दीन समझकर ही परमपदको पा गये। यह कैसे हुआ ?

उ०—नीचा कर्म करनेसे ही मनुष्य नीचा होता है, दीन समझनेसे ही नहीं। परमेश्वरके सम्मुख दीन-भावसे प्रार्थना करनेवाला तो नीच भी परमपदको प्राप्त हो जाता है। फिर गोस्वामी तुलसीदासजी परमपदको प्राप्त हुए, इसमें आश्चर्य ही क्या है ? अपनेको श्रेष्ठ समझना ही अपना पतन करना है, जो सच्चे हृदयसे अपनेको सबसे लघु, दीन समझता है, उसीका प्रभु उद्धार करते हैं। क्योंकि प्रभुका नाम दीनबन्धु बतलाया गया है। दूसरोंसे अपनेको श्रेष्ठ माननेवाला तो नीचे गिरता है। क्योंकि उसमें अहङ्कार-बुद्धि होती है और अहङ्कार अज्ञानजनित होनेसे पतनका कारण है। दूसरोंसे अपनेको श्रेष्ठ मानना ही मूढ़ता है। दीन मानना तो गुण है। अपनेको नीचा समझनेसे कोई नीचा नहीं होता, बल्कि वह तो सबसे ऊँचा समझा जाता है।

(११) प्र०—ईश्वरके प्रति सच्ची परायणता कैसे हो ?

उ०—ईश्वरपरायण भक्तोंके संग और उनकी आज्ञाका पालन करनेसे हो सकती है ?

(१२) प्र०—भगवान्को यन्त्री और अपनेको यन्त्र कैसे बनाया जा सकता है ?

उ०—जो भगवान्के यन्त्र बन चुके हैं अर्थात् शरण हो चुके हैं, उन पुरुषोंके संग और कथनानुसार साधनसे बनाया जा सकता है।

(१३) प्र०—भगवान्के सच्चे भक्तोंके दर्शन कैसे हो सकते हैं ?

उ०—पूर्वसञ्चित उत्तम कर्मोंके समुदायसे, भगवान्के भक्तोंमें सच्ची श्रद्धा होनेसे एवं भगवान् और भगवद्भक्तोंकी कृपासे सच्चे भक्तोंके दर्शन होते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भक्त-गाथा

[भक्तश्रेष्ठ नामदेव]

दक्षिण हैदराबादमें नरसी ब्राह्मणी नामक एक गाँव है। वहाँ दामा सेठ नामक परम भगवद्भक्त दर्जी (छींपी) रहते थे। उनकी धर्मपत्नीका नाम गोणाई था। भक्तश्रेष्ठ नामदेवजी इसी दम्पतिके पुत्ररत्न हैं। विक्रम संवत् १३२७ के कार्तिक शुक्ल १ रविवारके दिन सूर्योदयके समय नामदेवजीका जन्म हुआ था। ये पूर्वसंस्कारवश जन्मसे ही भगवद्भक्त थे। नामदेवजीके पूर्वज यदु सेठजी अत्यन्त सरल प्रकृतिके सदाचारी एवं पण्ढरपुरके भगवान् श्रीविट्ठलके एकनिष्ठ उपासक थे। दामा सेठ उन्हींकी पाँचवीं पीढ़ीमें हुए। नामदेव-सरीखे परम भागवतका जन्म ऐसे ही पुनीत कुलमें हुआ करता है।

माता-पिता ही बालकके सर्वप्रथम गुरु होते हैं। उन्हींकी बातोंका अनुकरण बालक किया करता है। नामदेवजीके माता-पिता भगवद्भक्त थे, वे निरन्तर भगवान्‌के नाम और गुणोंका गान किया करते थे। नामदेवजी भी उनसे भगवन्नाम सुन-सुनकर वही सीखने लगे। श्रीविट्ठलकी मूर्ति, विट्ठलका नाम, विट्ठलका जय-जयकार और विट्ठलकी पण्ढरी नगरीके निरन्तर श्रवण, मनन और निदिध्यासनसे नामदेव विट्ठलमय हो गये थे। नामदेवकी दृढ़ श्रद्धा हो गयी थी कि श्रीविट्ठल-मूर्ति चैतन्य है और वही सच्चे भगवान् हैं।

एक समय इनके पिताको कार्यवश कहीं बाहर जाना पड़ा। वे जाते समय नामदेवपर भगवान् विट्ठलकी पूजाका भार सौंप गये। लड़कपनकी सरल श्रद्धासे नामदेव पूजाका सामान और नैवेद्यके लिये कटोरीमें दूध लेकर भगवान्‌के सामने पहुँचे। सहज श्रद्धासे भगवान्‌की पूजा समाप्त कर दूधकी कटोरी भगवान्‌के सामने रखकर उसे पीनेके लिये भगवान्‌से कहने लगे। परन्तु भगवान् भी बड़े हठीले होते हैं, बालककी सीधी-सादी वाणीपर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। नामदेवजीने कुछ देर आँखें बन्द रखकर जब खोलीं, दूधको ज्यों-का-त्यों कटोरीमें पड़े देखा, इससे उनके मनमें कुछ दुःख हुआ। नामदेवजी सोचने लगे कि मुझसे ऐसा क्या अपराध हो गया है कि विट्ठल भगवान् मेरा निवेदन किया हुआ दूध नहीं पीते। वे बराबर दूध पीनेके लिये आग्रहपूर्ण निवेदन करने लगे परन्तु जब भगवान्‌ने उनका दूध ग्रहण नहीं किया तो उनको बड़ा दुःख हुआ, आँखोंमें प्रेमकोपसे आँसू भर आये। उन्होंने कहा कि 'विट्ठल! यदि आप मेरी कटोरीका दूध न पीयेंगे तो याद रखिये मैं भी जीवनभर कभी दूध नहीं पीऊँगा' इस बाल-प्रतिज्ञाने बड़ा काम किया। नामदेवने भगवान्‌की मूर्तिको पाषाणकी मूर्ति नहीं समझा था। उसके मन तो वे साक्षात् सच्चिदानन्दघन परमात्मा थे। हम चैतन्यको न मानकर ही मूर्ति-पूजा करते हैं, इसीसे भगवान् चैतन्यरूपसे हमारे सामने प्रकट नहीं होते। नामदेवजीने चैतन्य मानकर हठ किया। अतः उसी समय भगवान्‌को साक्षात् प्रकट होना पड़ा। भगवान्‌ने भक्तिप्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ दूध ग्रहण किया। भगवान्‌की प्रतिज्ञा ही ठहरी—

पत्र, पुष्प, फल, जल जो मेरे अर्पण करे सभक्ति विनोद।
प्रयतचित्तके दिये हुए उसको मैं खाता हूँ सह-मोद॥

(गीता ९। २६)

भगवान्‌से नामदेवजीकी पूरी जान-पहचान हो गयी। अब वे जो कुछ भी भगवान्‌को अर्पण करते, भगवान् प्रकट होकर उसे ग्रहण करते। इसप्रकार

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उनकी भक्तिका रंग दिनोंदिन गहरा होता गया। वे नौ सालकी उम्रमें ही वारकरी भक्तमण्डलीमें बाल-भागवत गिने जाने लगे।

उस समयकी सामाजिक प्रथाके अनुसार नामदेवजीका विवाह गोविन्द सेठ सदावर्तेकी लड़की राजाईके साथ छोटी उम्रमें कर दिया गया था। परन्तु ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती गयी त्यों-ही-त्यों उनकी भक्ति भी विशुद्ध होकर बढ़ती गयी। गृहस्थीके कार्योंमें उनका मन नहीं लगता था। उनकी स्त्री और माता व्यापार-धन्धा करनेके लिये उनसे कहा करतीं, परन्तु उनके लिये हरिकीर्तन छोड़कर और किसी भी काममें लगना असम्भव-सा हो गया। पण्ढरपुरके भक्तमण्डलमें नामदेवजीकी खूब प्रसिद्धि हो गयी। अब नामदेवजी नरसी ब्राह्मणी गाँवको छोड़कर पण्ढरपुरमें जाकर रहने लगे। यहाँ गोरा कुम्हार, साँवता माली आदि भक्तोंसे इनकी प्रीति हो गयी। सब मिलकर भक्तिरसमें सराबोर हुए भजन-कीर्तन करने लगे!

पण्ढरपुरमें हरिशयनी और हरिबोधिनी एकादशीको बड़ा भारी मेला लगा करता है। उस दिन भगवान्‌के दर्शनके लिये प्रायः सभी वारकरी सन्त पण्ढरपुर जाते हैं और भक्ति-प्रेम तथा सत्सङ्गका आनन्द लूटकर अपने-अपने स्थानको लौटते हैं। परन्तु नामदेवजीकी स्थिति वैसी नहीं थी। उन्होंने तो पण्ढरपुरको अपना निवास-स्थान ही बना लिया था जिससे उन्हें चन्द्रभागा-नदीका स्नान, पुण्डलीक भक्त तथा उनके भगवान् पाण्डुरङ्ग विट्ठलरायके दर्शन, निरन्तर आने-जानेवाले वैष्णव भक्तोंका सङ्ग तथा महाद्वार और चन्द्रभागा-नदीके रेतीले मैदानमें चलनेवाले कथा-कीर्तनमें विभोर रहनेका सौभाग्य प्राप्त था। विट्ठलके लिये तो वे ऐसे बन गये थे कि दिन-रात भीतर-बाहर केवल भगवान्‌के साथ ही क्रीड़ा करते थे। भगवान् विट्ठलके प्रति उनकी अनन्यभक्ति थी। वे उन कटिपर हाथ रक्खे ईंटपर खड़े पण्ढरीनाथ विट्ठल भगवान्‌के ध्यानमें मस्त रहते थे। "पण्ढरपुरमें लेनेमें और देनेमें विट्ठलका नाम ही लिया जाता है। विट्ठलके नामसे ही सारे काम करने होते हैं, इसप्रकार विट्ठलनामरूपी सुखका लेन-देन वहाँ चला करता है, जिससे सम्पूर्ण कार्य भगवन्नाम-स्मरण करते हुए ही करनेकी शिक्षा मिलती है। वहाँ भक्तभावन भगवान् अपने भक्तोंकी सम्पूर्ण इच्छाएँ पूर्ण कर देते हैं। जो इन पण्ढरीनाथके दर्शन करते हैं उनको ये पुरुषोत्तम कभी नहीं भूलते। इसप्रकारका ब्रह्मानन्द अन्य स्थानमें कहाँ है? पण्ढरपुर-क्षेत्र भगवान्‌के सुदर्शन-चक्रपर बसा हुआ है। जो लोग हरिबोधिनी और हरिशयनीके दिन भगवान्‌के दर्शनके लिये उत्कण्ठित रहते हैं, त्रिलोकेश्वर चक्रपाणि भगवान् ईंटपर खड़े उनकी बाट देखा करते हैं। श्रुतिके लिये अगम्य देव पण्ढरपुरमें अति सुलभ हैं। उनका रूप मधुर है, उनका नाम मधुर है, उनका यश मधुर है—उनका सब कुछ मधुर-ही-मधुर है।" यही नामदेवकी विट्ठल-उपासनाका रहस्य है।

एक स्थानमें नामदेवजीने कहा है कि 'हे पुरुषोत्तम! आपके प्रेमसे मैं स्वयं खिंच आया हूँ, मेरा और आपका सम्बन्ध शरीर और आत्मा-जैसा है, मगर ये दोनों भी आप ही हैं।' इस प्रेमभरे वर्णनमें एक यह रहस्य है कि नामदेवजीका भक्तिके साथ ही अद्वैत ज्ञानपर भी पूरा अधिकार था।

उनके अभङ्गोंमें कहीं-कहीं भगवान्‌के साथ प्रेमकलह भी दिखायी पड़ती है। बिना प्रेमके ऐसा कलह नहीं होती और यदि होती है तो उसका कुछ भी मूल्य नहीं है। नामदेवजीने एक अभङ्गमें कहा है—'आपके नामकी महिमा भक्तोंने ही बढ़ा दी है। अनेक नाम-रूपोंके अलङ्कार उन्होंने ही आपको पहना दिये

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हैं, वास्तवमें आप तो नाम-रूप और जाति-कुलसे हीन ही हैं। ये सब आपको भक्तोंसे ही प्राप्त हुए हैं। भक्तोंके कारण ही आप भक्तवत्सल कहलाते हैं। आपका बड़प्पन हमारे ही कारण है। हम जैसे आपके लिये पागल हो रहे हैं, वैसे ही आपको भी हमारे लिये पागल हो जाना चाहिये। यदि न हों तो भी हमारी क्या हानि है? हमारे प्रेम-सुखको तो आप हरण कर ही नहीं सकते?' नामदेवकी प्रेमकलहका यह एक छोटा-सा नमूना है।

ईश्वर-प्रेमकी प्रबलता, भावनाकी तीव्रता और सर्वस्व अर्पण, इसीमें आत्मनिवेदनकी परिपूर्णता है। जाग्रत्-स्वप्नादि सर्व अवस्थाओंमें भगवान्‌के सिवा कुछ भी प्रिय न लगना 'तच्चिन्तनं तत्कथनं अन्योन्यं तत्प्रबोधनम्' भागवतकी इस उक्तिके अनुसार भगवान्‌के गुणानुवादमें ही निमग्न रहना और शरीर-वाणी-सहित मनका भगवत्-प्रेममें घुल जाना ही भक्ति है। इसप्रकारका दुर्लभ प्रेम भगवान्‌की कृपासे ही मिलता है।

अभ्यास करके मनुष्य इसे नहीं पा सकते। भगवान्‌की कृपासे ही एकमात्र भगवान्‌में प्रियतमभाव उत्पन्न होता है। जिसके मन भगवान् प्रियतम हो जाते हैं, उसे फिर भगवान्‌का स्थान, भगवान्‌की मूर्ति, भगवान्‌के गुणानुवाद, भगवान्‌के भक्त, भगवान्‌के नाम, भगवान्‌की चर्चा आदि भगवत्सम्बन्धी प्रत्येक वस्तु अति प्रिय हो जाती है। ईश्वरप्रेमके निरतिशय सुखका लोभी मनुष्य उस सुखको पलभरके लिये भी नहीं छोड़ सकता। नामदेवजीके सारे अभङ्गोंमें इसी प्रकारका महान् प्रेम भरा है।

सन्त स्वभावतः उदारहृदय हुआ करते हैं। वे किसीकी निन्दा नहीं करते, परन्तु पाखण्डियोंका दम्भ दिखलाकर साधकको सावधान करनेके लिये उनके दुर्गुणोंका दिग्दर्शन उन्हें करना पड़ता है और ऐसा नामदेवजीने भी किया है।

प्रसिद्ध सन्त श्रीज्ञानेश्वर महाराजको एक बार नामदेवके सङ्गकी इच्छा हुई। उन्होंने नामदेवजीको तीर्थयात्रामें साथ चलनेको कहा। नामदेवजीने कहा कि आप मुझे भगवान्‌से आज्ञा दिला दें तो मैं चल सकता हूँ। ज्ञानेश्वरजी नामदेवके सङ्गकी इच्छा करते हैं, यह जानकर भक्तवाञ्छाकल्पतरु भगवान्‌ने नामदेवकी प्रशंसा करके ज्ञानेश्वरजीसे कहा—'नामदेव मेरा बड़ा लाड़ला है। मैं क्षणभरके लिये भी इसे दूर करना नहीं चाहता। तुम चाहते हो तो इसे ले जा सकते हो परन्तु इसकी सँभाल रखना।' इतना कहकर भगवान्‌ने ज्ञानेश्वरजीको नामदेवजीका हाथ पकड़ा दिया। नामदेवजीके साथ ज्ञानेश्वरका मिलन ऐसा ही था जैसा ऐकान्तिक भक्तिके साथ सर्वव्यापी ज्ञानका सम्मेलन!

नामदेवजी ज्ञानेश्वरजीके साथ भगवच्चर्चा करते हुए जाने लगे, परन्तु उनका चित्त तो श्रीपाण्डुरङ्गके चरणकमलोंमें ही अटक रहा था। वे कहते थे 'हे पाण्डुरङ्ग! तुम्हारे वियोगसे मेरा हृदय फटा जा रहा है। मुझे बड़ा उद्वेग हो रहा है। मेरे तो तीर्थ-व्रत, धर्म-अधर्म, सब कुछ तुम ही हो।' ज्ञानेश्वर महाराज उन्हें बहुत प्रकारसे सान्त्वना देकर कहते कि 'तुम धन्य हो जो ऐसा प्रेम तुम्हें प्राप्त हुआ है। तुम व्यर्थ शोक क्यों करते हो? भगवान् सर्वव्यापी हैं, तुम्हारे हृदयमें भी तो हैं।' नामदेवजी कहते 'आपका कहना यथार्थ है, परन्तु मुझे तो पुण्डलीकके पास खड़े पाण्डुरङ्गको देखे बिना कल नहीं पड़ती।' उनके इस अनन्यभावको देखकर ज्ञानेश्वरजी बड़े प्रसन्न होते थे।

एक समय ज्ञानेश्वरजीने नामदेवसे पूछा कि 'भजन किसप्रकार करना चाहिये। मन, बुद्धिको सात्त्विक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कैसे बनाया जा सकता है। श्रवणादि साधनोंका मर्म क्या है ? भक्ति और ध्यान क्या है ?' इन प्रश्नोंको सुनते ही विनयकी मूर्ति नामदेवजीने गद्गद होकर ज्ञानेश्वरजीके चरण पकड़ लिये और कहा कि 'मुझे तो पाण्डुरङ्गकी कृपाका ही भरोसा है। ऐसा ज्ञान मेरे भाग्यमें कहाँ ! मुझमें न ज्ञान है, न मैं बहुश्रुत हूँ। इसीलिये तो भगवान्‌ने मुझे आपके हाथ सौंप दिया है। आपका पूछना तो ऐसा है जैसा कल्पवृक्षका किसी दीनके पास याचना करना, अथवा कामधेनुका किसी दरिद्रके पास दैन्य प्रकट करना। मालूम होता है आप विनोदसे ऐसे प्रश्न पूछकर मेरा सुख बढ़ाना चाहते हैं।' इसपर ज्ञानेश्वरजीने कहा 'मैं तुम्हारे मुखसे अनुभूत साधन सुनना चाहता हूँ। तुम तो भगवान्‌के प्रेम-भण्डारी हो। तुम्हारी रसपूर्ण बातोंको सुननेके लिये मेरे कान उत्सुक हो गये हैं। इसलिये मुझे अपने अनुभवकी बातें जरूर बतलाओ।' ज्ञानेश्वरकी इस आज्ञाको पाकर नामदेवजी कहने लगे—

'मैं क्या कहूँ, मुझे तो नाम-संकीर्तन ही प्रिय है। उसके सामने दूसरे साधन व्यर्थ और कष्टप्रद प्रतीत होते हैं। यही भजन है। गुण-दोषोंको न देखकर सभीके साथ सच्ची नम्रताका व्यवहार करना ही वन्दन है। इससे अन्तःकरण सदा प्रसन्न रहता है। और सात्त्विकता प्राप्त होती है। समस्त विश्वमें एकमात्र मेरे विट्ठलको देखना और भगवान्‌के चरणोंका हृदयमें अखण्ड स्मरण करना ही उत्तम ध्यान है। जिसप्रकार हरिण नादसे मोहित होकर देहकी सुधि भूल जाता है वैसे ही मुखसे उच्चारण किये जानेवाले नाम-स्मरणमें मनको दृढ़तासे लगाये रखकर तल्लीन हो जाना ही प्रेमयुक्त श्रवण है। भृङ्गकीटन्यायसे भगवच्चरणोंका दृढ़ अनुसन्धान ही उत्तम निदिध्यासन है। सर्वभावसे, एकमात्र विट्ठलका ही ध्यान, सब भूतोंमें उन्हींके स्वरूपका अवलोकन, रज और तमसे रहित होकर सबसे आसक्ति हटाकर केवल प्रेम-सुधाका पान करना ही भक्ति है। अनुरागसे एकान्तमें गोविन्दका ध्यान करनेके सिवा अन्य कहीं भी विश्राम नहीं है। इन वचनोंको भी परम उदार, सर्वज्ञ मेरे पाण्डुरङ्गने ही मुझसे कहला दिया है।' नामदेवकी इस दिव्य वाणीको सुनकर ज्ञानेश्वरजी बहुत ही प्रसन्न हुए।

इसप्रकार तीर्थयात्रा करते हुए प्रभास, द्वारिका आदि क्षेत्र और अन्यान्य मोक्षपुरियोंके दर्शनकर दोनों ज्ञानी भक्त लौट रहे थे। रास्तेमें बीकानेरके समीपवर्ती कौलायतजी नामक गाँव आ गया। दोनोंको बड़ी प्यास लगी थी। पासमें ही एक कुआँ था परन्तु वह सूखा था। ज्ञानेश्वरजी सिद्धिप्राप्त योगी थे। उन्होंने लघिमा-सिद्धिके द्वारा कुएँके भीतर जमीनमें प्रवेश कर जल पी लिया और नामदेवजीके लिये जल लेकर वे ऊपर आ गये। परन्तु नामदेवजीने वह जल नहीं पीया, वे भावमग्न हुए कह रहे थे कि 'क्या मेरे विट्ठलको मेरी चिन्ता नहीं है।' भगवान् तो भक्तकी सेवाका अवसर ही ढूँढ़ा करते हैं, फिर ऐसे समयपर वे कैसे चूकते ? भगवत्कृपासे कुआँ जलसे भरकर बह निकला। भक्तके प्रेम-बन्धनका प्रभाव देखकर ज्ञानेश्वरजी भी आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने नामदेवको सचेत किया और गाढ़ आलिङ्गनकर वे उनके प्रेमकी प्रशंसा करने लगे। नामदेवने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। कुछ दिनोंमें यात्रा पूर्ण करके दोनों लौट आये।

नामदेव अपने प्राणोंसे भी प्यारे विट्ठलसे मिले और कहने लगे कि 'मेरे मनमें भ्रम था इसीलिये आपने मुझे दर-दर भटकाया। परन्तु भगवन् ! निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि पण्ढरपुरका-सा सुख अन्यत्र स्वप्नमें भी नहीं है। संसारमें अनेक तीर्थ हैं परन्तु मेरा मन तो चन्द्रभागाकी ओर ही लगा रहता है, आपके बिना अन्य देवकी ओर मेरे पैर चलना ही

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नहीं चाहते, मेरे कान दूसरे किसीके यशको सुनना नहीं चाहते। जहाँपर गरुड़चिह्नांकित पताकाएँ नहीं हैं वह स्थान कैसा? जहाँपर वैष्णवोंका मेला न हो तथा अखण्ड हरिकथा न चलती हो वह क्षेत्र भी कैसा? ये सारी बातें पण्ढरपुरमें विट्ठलके चरणोंमें हैं इसलिये मैं आपके सिवा कुछ भी नहीं जानता हूँ। परन्तु आपने मुझपर बड़ी कृपा की जो सर्वत्र मेरे लिये पण्ढरपुर कर दिया और याद करते ही मुझे दर्शन देते रहे!'

ज्ञानेश्वरजीके समाधि लेनेके बाद फिर एक बार नामदेव उत्तरभारतमें गये थे। नामदेवको विसोबा खेचरसे पूर्ण ज्ञानका बोध हुआ था। इसलिये उन्हींको वे अपना गुरु मानते थे।

नामदेवजीकी आयुका पूर्वार्द्ध पण्ढरपुरमें और उत्तरार्द्ध पञ्जाब आदि प्रान्तोंमें भक्तिका प्रचार करनेमें बीता। आपकी भक्ति बहुत ही उच्च कोटिकी थी।

भगवान्‌ने उस महात्मा भक्तको बहुत ही दुर्लभ बतलाया है जो सर्वत्र सबमें भगवान्‌को ही देखता है। वास्तवमें वही मनुष्य धन्य है जो सर्वत्र भगवद्दर्शनका अभ्यास करता है और उसमें सफल हो जाता है। श्रीनामदेवजीमें यह सर्वत्र भगवत्-दर्शनकी निष्ठा बहुत ही अच्छे स्वरूपमें प्रकट थी। वे जहाँ कहीं रहते, जिस किसी भी चीजको देखते, उनके मन भगवान्‌के सिवा अन्य कुछ भी नहीं दीखता। उनके जीवनकी इस बातको पुष्ट करनेवाली घटनाओंमेंसे कुछ नीचे लिखी जाती हैं।

(१) एक समय नामदेवजीकी कुटियामें आग लग गयी। आग एक तरफमें थी। आप प्रेममस्त हुए दूसरी तरफ रक्खी हुई चीजोंको उठा-उठाकर आगमें फेंकने लगे और कहने लगे कि 'प्रभो! खूब आये। आज तो लाल-लाल लपटोंसे लपलपाते हुए आये। परन्तु एक ही ओर क्यों आये? एक तरफकी चीजोंको आपने ग्रहण किया, दूसरी ओरकी चीजोंने क्या पाप किया जो आपकी कृपासे ये वञ्चित रहीं। प्रभो! इन्हें भी ग्रहण कीजिये।' यों कहकर लगे कीर्तन करने और नाचने। कुछ देरमें आग बुझ गयी। नामदेव कुटिया बिना हो गये। वर्षाकाल था, कहाँ रहें! भगवान्‌ने स्वयं मजूर बनकर बात-की-बातमें नामदेवजीकी कुटिया बनाकर उसपर छान छा दी, तबसे आप नामदेवजीकी छान छा देनेवाले मशहूर हुए।

(२) एक समय आप किसी गाँवमें जा निकले, और वहाँ एक सूने मकानमें ठहर गये। उसमें कोई ब्रह्मराक्षस रहता था। लोगोंने कहा, 'महाराज! इस घरमें न रहिये, इसमें भूत रहता है और वह आधी रातको आकर इसमें रहनेवालेको मार डालता है। नामदेवजी सबमें भगवान् देखते थे। उन्होंने कहा भूत भी तो मेरे विट्ठल ही बने होंगे। उन्होंने निर्भयतासे मुसकुरा दिया और वहीं टिक गये। आधीरातका समय हुआ। भूत आया। उसका शरीर बहुत ही लम्बा-चौड़ा और सूरत भयावनी थी। नामदेवजीने उसे देखते ही भगवद्भावसे प्रणाम करके यह पद गाया और कीर्तन करके नाचने लगे—

भले पधारे लंबकनाथ।
धरनी पाँव स्वर्ग लौं माथा जोजन भरके लाँबे हाथ॥
सिव सनकादिक पार न पावैं अनगिन साज सजाये साथ।
नामदेवके तुम ही स्वामी कीजै मोकों आज सनाथ॥
जब यह पद गावत भये तब वह प्रेत तुरंत।
पाय चतुर्भुज रूप तहँ भयो विकुंठ बसंत॥
(भक्तमाल रीवाँमहाराजकृत)

प्रेत तुरन्त भगवद्रूपमें परिणत हो गया। नामदेवजीके मन तो वह पहले भी भगवान् ही था!

(३) एक बार नामदेवजी किसी जंगलमें पेड़के नीचे रोटी बना रहे थे। रोटियाँ बनाकर रक्खी थीं। और आप लघुशङ्काको गये। इतनेमें एक कुत्ता आया

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और रोटियाँ मुँहमें उठाकर भाग चला, इतनेमें नामदेवजी आ गये। सबमें भगवान् देखनेवाले भक्तश्रेष्ठ, घीकी कटोरी हाथमें लेकर यह पुकारते हुए कुत्तेके पीछे दौड़े कि 'भगवन्! रोटियाँ रूखी हैं, अभी चुपड़ी नहीं हैं। मुझे घी लगाने दीजिये, फिर भोग लगाइये।' भगवान्ने कुत्तेका रूप त्यागकर शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये अपने दिव्य चतुर्भुजरूपमें उन्हें दर्शन दिया!

नामदेवजीकी भक्ति कितनी ऊँची बढ़ी हुई थी। इसका अनुमान उपर्युक्त घटनाओंसे किया जा सकता है। अनेक लोगोंको भक्तिमार्गमें लगाकर वि० सं० १४०७ में ८० वर्षकी अवस्थामें आप नश्वर शरीरको त्यागकर परमधाम पधारे। महाराष्ट्रमें नामदेवजी वारकरी पन्थके एक प्रकारसे संस्थापक ही कहे जा सकते हैं।

बोलो भक्त और उनके भगवान्की जय!

गीताका एक श्लोक

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥
(गीता २। २२)

अर्थात् जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागकर दूसरे नये वस्त्रोंको ग्रहण करता है वैसे (ही) जीवात्मा पुराने शरीरोंको त्यागकर दूसरे नये शरीरोंको प्राप्त होता है।

इस श्लोकमें श्रीभगवान्ने पूर्वशरीरको त्यागकर दूसरे नवीन शरीरके प्राप्तिके सम्बन्धमें वस्त्रोंके बदलनेका दृष्टान्त देकर अर्जुनको आत्माकी नित्यता समझायी है। वस्त्रोंके उदाहरणके विषयमें कई प्रकारकी शंकाएँ की जाती हैं अतः यहाँ उनका समाधान किया जाता है।

शंका—पुराने सड़े-गले गन्दे वस्त्रोंके त्यागमें भी मनुष्यको सुख होता है, और फिर नये धारण करनेमें भी सुख होता है परन्तु पुराने शरीरके त्यागमें और नयेके ग्रहणमें यानी मरने और जन्मनेमें सबको क्लेश होता है अतएव यह उदाहरण समीचीन नहीं है।

समाधान—पुराने शरीरके त्याग और नवीनके ग्रहणमें यानी मृत्यु और जन्ममें अज्ञानीको ही दुःख होता है और अज्ञानी तो बालकके समान है। ज्ञानी एवं भक्तको दुःख नहीं होता। भगवान्ने कहा है—

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥
(गीता २। १३)

अर्थात् जैसे जीवात्माकी इस देहमें कुमार, युवा और वृद्ध अवस्था (होती है) वैसे ही अन्य शरीरकी प्राप्ति होती है, उस विषयमें धीर पुरुष मोहित नहीं होता। श्रीरामजीके चरणोंमें दृढ़ प्रीति करके बालिने उसी प्रकार देहका त्याग कर दिया था जैसे हाथी अपने गलेसे फूलकी मालाका गिरना न जाने, यानी मृत्युके दुःखका उसे पता ही नहीं लगा—

राम-चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमनमाल जिमि कंठ ते गिरत न जानैं नाग॥

पुराने वस्त्रोंको त्यागने और नये धारण करनेमें भी हर्ष उन्हींको होता है जो नये-पुराने वस्त्रके तत्त्वको जानते हैं। छः महीने या सालभरके बच्चेको हर्ष नहीं होता। माँ जब उसके पुराने गन्दे कुरतेको उतारती है तब भी वह बालक रोता है। और जब नया साफ-सुथरा पहनाती है तब भी रोता है। तो भी माता उसके रोनेकी परवा न करके उसके हितके लिये वस्त्र बदल ही देती है। इसी प्रकार भगवान् भी अपने प्रिय जीवरूप बालकके हितार्थ उसके रोनेकी कुछ भी परवा न करके उसकी देहको बदल देते हैं। अतएव यह उदाहरण सर्वथा समीचीन है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शंका—भगवान्‌ने यहाँ शरीरोंके साथ 'जीर्णानि' शब्दका प्रयोग किया है परन्तु यह कोई नियम नहीं है कि वृद्ध होनेपर या शरीर पुराना होनेपर ही मनुष्यकी मृत्यु होती हो। हम देखते हैं कि नवीन उम्रके जवान और बच्चे भी मरते हैं। अतएव यह उदाहरण भी युक्तियुक्त नहीं है।

समाधान—यहाँ 'जीर्ण' शब्दसे अस्सी या सौ वर्षकी आयुसे तात्पर्य नहीं है। प्रारब्धवश युवा या बाल, जिस किसी अवस्थामें प्राणी मरता है वही उसकी आयु समझी जाती है और आयुकी समाप्तिका नाम ही जीर्णावस्था है। अतएव यह उदाहरण युक्तिसंगत है।

शंका—यहाँ 'वासांसि' और 'शरीराणि' ये दोनों ही शब्द बहुवचन हैं। कपड़ा बदलनेवाला मनुष्य तो एक साथ दो-चार पुराने वस्त्र त्यागकर नये ग्रहण कर सकता है, परन्तु देही यानी जीवात्मा तो एक ही पुराने शरीरको छोड़कर दूसरे एक ही नये शरीरको प्राप्त होता है। एक साथ बहुत-से शरीरोंका त्याग या ग्रहण करना युक्तिसंगत नहीं है अतएव यहाँ शरीरके लिये बहुवचनका प्रयोग उचित नहीं है।

समाधान—यहाँ एक ही साथ बहुत-से पुराने वस्त्रोंको त्यागकर, बहुत-से नये वस्त्र पहननेकी भाँति, एक ही साथ अनेकों पुराने शरीर छोड़कर नये ग्रहण करनेकी बात भगवान् नहीं कह रहे हैं। श्रीभगवान्‌का तात्पर्य है कि मनुष्य जैसे अपने जीवनमें क्रमसे अनेक बार अनेकों पुराने वस्त्रोंको छोड़ता और नये वस्त्रोंको पहनता है इसी प्रकार यह जीवात्मा भी अनेकों जन्मोंमें अनेकों बार पुराने शरीरोंको छोड़ता और नये शरीरोंको धारण करता आया है। न मालूम इससे पूर्व जीवात्माने कितने शरीर छोड़े हैं और कितने नये धारण किये हैं और भविष्यमें भी जबतक तत्त्वज्ञान नहीं होता, तबतक अनन्त पुराने शरीरोंका त्याग और नये शरीरोंका धारण करता रहेगा।

यदि कोई कहे कि स्थूल, सूक्ष्म और कारण-भेदसे शरीर तीन हैं इसीलिये भगवान्‌ने शरीरके लिये बहुवचनका प्रयोग किया है तो ऐसा कहना ठीक नहीं है। क्योंकि देही यानी जीवात्मा इस स्थूल शरीरको त्यागनेपर कारण और सूक्ष्म शरीरको इसमेंसे लेकर ही दूसरे स्थूल शरीरमें जाता है। तीनों शरीरोंका त्याग होनेपर तो जीवात्मा विज्ञानानन्दघन परमात्माको प्राप्त हो जाता है। फिर उसमें गमनागमनका कोई प्रश्न ही नहीं रह जाता। कारण और सूक्ष्म शरीरके सहित ही गमनागमन कहा जाता है। वास्तवमें तो आत्मा अचल और अक्रिय होनेके कारण उसमें किसी भी हालतमें गमनागमन नहीं है। सूक्ष्म और स्थूल शरीरके सम्बन्धसे उसमें गमनागमनकी औपचारिक कल्पना की जाती है। तीनों शरीरोंके त्याग करनेवालेको तो 'देही' ही नहीं कहा जा सकता। देही तो देहाभिमानीको ही कहा जा सकता है अतएव यहाँ तीनों शरीरोंका विषय नहीं है।

शंका—इसमें क्रियाका प्रयोग भी ठीक नहीं हुआ है। वस्त्रोंके लिये 'गृह्णाति' कहा है और शरीरके लिये 'संयाति' कहा है। दोनों जगह एक ही 'गृह्णाति' या 'संयाति' क्रियाका होना उचित था। और ऐसा करनेमें छन्दभंगकी भी कोई सम्भावना नहीं थी, फिर दो तरहका प्रयोग क्यों किया गया?

समाधान—यद्यपि फलमें कोई भेद नहीं है तथापि 'गृह्णाति' क्रियाका मुख्य अर्थ ग्रहण करनेमें है और 'संयाति' का मुख्य अर्थ गमनमें है। वस्त्र ग्रहण किये जाते हैं इसलिये वहाँ 'गृह्णाति' क्रिया दी गयी और एक शरीरको छोड़कर दूसरेमें जाना प्रतीत होता है इसलिये नवीन शरीरमें जानेके विषयमें 'संयाति' क्रिया दी गयी। अतएव क्रियाभेद होनेपर भी फलमें अभेद होनेके कारण ऐसा करना सर्वथा युक्तिसंगत ही है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परमहंस-विवेकमाला

(लेखक—स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी)

(गतांकसे आगे)

[मणि १०]

बालाकि—हे राजन् ! वेदप्रतिपादित स्वर्गादि अर्थोंमें प्रत्यक्ष और अनुमान-प्रमाणकी प्रवृत्ति चाहे न हो, परन्तु अर्थापत्ति आदि प्रमाणोंकी प्रवृत्ति स्वर्गादि अर्थोंमें हो सकती है।

अजातशत्रु—हे बालाकि ! अर्थापत्ति आदि प्रमाण अनुमान-प्रमाणसे भिन्न हैं अथवा अभिन्न हैं ? इनमें दूसरा—अभिन्न पक्ष नहीं बनता, क्योंकि अर्थापत्ति आदि प्रमाण यदि अनुमान-प्रमाणके अन्तर्भूत माने जायँ तो अनुमान-प्रमाणकी प्रवृत्तिमें पूर्व जो दोष कह आये हैं, वे सब दोष अर्थापत्ति आदि प्रमाणोंमें भी प्राप्त होंगे। इसलिये अनुमान-प्रमाणसे अर्थापत्ति आदि प्रमाण अभिन्न नहीं हो सकते और यदि अर्थापत्ति आदि प्रमाण अनुमान-प्रमाणसे भिन्न हैं—यह प्रथम पक्ष माना जाय तो वह भी नहीं बनता, क्योंकि यदि अर्थापत्ति आदि प्रमाणोंको अनुमान-प्रमाणसे भिन्न माना जायगा तो अर्थापत्ति आदि प्रमाण स्वतन्त्र होकर किसी प्रमाज्ञानको उत्पन्न नहीं करते। किसी दृष्टान्तको लेकर ही वे किसी पुरुषके प्रमाज्ञानको उत्पन्न करते हैं, और दृष्टान्त प्रत्यक्ष ज्ञानसे भिन्न नहीं होता, वह प्रत्यक्ष ज्ञानके अन्तर्भूत ही होता है। इसलिये अनुमान-प्रमाणसे भिन्न होने-पर भी अर्थापत्ति आदि प्रमाण वेदप्रतिपादित स्वर्गादिरूप अर्थोंमें प्रवृत्त नहीं होते। इसलिये हे बालाकि ! सम्पूर्ण दोषोंसे रहित वेदभगवान् जिस अर्थका बोधन करते हैं, वही अर्थ मुमुक्षुओंको अवश्य ग्रहण करना चाहिये। जैसे धर्मात्मा राजाकी आज्ञाको प्रजा ग्रहण करती है इसी प्रकार वेदभगवान्‌की आज्ञा बुद्धिमान् पुरुषोंको ग्रहण करनी योग्य है। वेदके अर्थमें कदापि असम्भावना नहीं करनी चाहिये। वेदभगवान् प्रति-दिन जाग्रत्‌को प्राप्त हुए वाक् आदि इन्द्रियोंकी उत्पत्तिका कथन करते हैं; अग्नि आदि देवताओं और शब्दादि विषयोंकी उत्पत्तिका भी कथन करते हैं। और सुषुप्ति-अवस्थामें सर्व वाक् आदिका लय भी वेदभगवान् कहते हैं। इसलिये हे बालाकि ! तू इसप्रकारके वेदके अर्थमें श्रद्धा धारण कर और सोते हुए पुरुषको उठानेके समयमें उसके शरीरमें स्थित आनन्दस्वरूप आत्माका और इसी प्रकार हृदयकमलमें स्थित आत्माका मैंने तुझे जो उपदेश किया इन दोनों प्रकारके उपदेशोंको पाकर अब तुझे आत्मामें परिच्छिन्नता-दृष्टि नहीं करनी चाहिये।

हे बालाकि ! जैसे घट, मठ, शरावादि उपाधियोंमें एक ही परिपूर्ण आकाश है इसी प्रकार एक ही परिपूर्ण आत्मा वाग् आदि उपाधियोंमें है। वागादि-विशिष्ट इस आत्माको मूढ़ पुरुष वक्ता, श्रोता तथा द्रष्टारूप मानते हैं; परन्तु तुझे इसप्रकार आत्माको परिच्छिन्न नहीं मानना चाहिये। उपाधियोंका त्याग करके तू एक ही आनन्दस्वरूप आत्माको परिपूर्ण जान।

बालाकि—हे राजन् ! यदि आत्मा सर्वत्र परिपूर्ण है तो आपने पहले हृदयदेशमें आत्माकी स्थिति किस-लिये बतलायी ?

अजातशत्रु—हे बालाकि ! जैसे केशोंके मूँडने-का साधन अस्तुरा नाईकी पेटीमें किसी एक स्थान-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पर रहता है, वैसे यह आनन्दस्वरूप आत्मा केवल हृदयदेशमें ही नहीं रहता, यह तो सब प्राणियोंके बाहर-भीतर व्यापक होकर रहता है। तो भी अन्तः-करणमें, इन्द्रियोंमें और शरीरमें आत्माकी विशेष करके उपलब्धि होती है; इसीलिये हृदयमें, इन्द्रियोंमें और शरीरमें आत्माकी स्थिति मैंने कही है। जैसे अग्नि सामान्यरूपसे सबमें व्यापक है तो भी काठमें अग्नि रहती है—ऐसा लोकमें कहा जाता है। इसलिये हे बालाकि! जैसे नाईकी पेटीमें अस्तुरारूपी शस्त्रकी जल्दी उपलब्धि होती है, इसी प्रकार हृदयकमलमें स्थित अत्यन्त स्वच्छ बुद्धिमें आत्माकी उपलब्धि विशेष-रूपसे होती है। जैसे नाईकी पेटीमें ही अस्तुरारूप शस्त्र रहता है, अन्यत्र नहीं रहता; इसी प्रकार बुद्धि-रूपी देशमें ही आत्मा रहता है, अन्यत्र नहीं रहता। इस अभिप्रायसे आत्माकी स्थिति बुद्धिमें मैंने कही है। इसप्रकार हृदयमें आत्माकी विशेष अभि-व्यक्तिको बोध करानेवाले अस्तुरेके दृष्टान्तका निरूपण करके हृदयकी अपेक्षासे शरीरादिमें आत्मा-के अल्प प्रकाशको बतानेवाले अग्नि आदिके दृष्टान्त-के अभिप्रायका मैंने निरूपण किया है।

हे बालाकि! यह आनन्दस्वरूप आत्मा जरायुज, अण्डज, स्वेदज तथा उद्भिज्ज, इन चार प्रकारके शरीरोंको उत्पन्न करके अपने चैतन्यरूपसे नखके अग्रभागसे लेकर शिखापर्यन्त समस्त शरीरमें व्याप्त रहता है। जैसे अग्नि यद्यपि सर्वत्र समान है तो भी अरणीरूपी काष्ठमें अग्निकी विशेष अभिव्यक्तिको देखकर 'काष्ठमें अग्नि रहता है' ऐसा कहनेमें आता है, इसी प्रकार यह आनन्दस्वरूप आत्मा यद्यपि चैतन्यस्वरूपसे सर्वत्र समान है तो भी शरीरमें चैतन्यकी विशेष अभिव्यक्ति देखकर 'शरीरमें आत्मा रहता है' ऐसा कहना होता है। शरीरमें जो आत्मा-की विशेष अभिव्यक्ति कही है, वह घटादिकी अपेक्षा-से कही हुई समझनी चाहिये। अन्तःकरणकी अपेक्षा शरीरमें आत्माकी अभिव्यक्ति अल्प होती है; इसलिये हे बालाकि! आकाशके समान सर्वत्र परिपूर्ण आत्मा इस शरीरमें चैतन्यरूपसे प्रतीत होता है, इस कारण-से सर्व शरीरोंमें नखके अग्रभागसे लेकर शिखापर्यन्त परमात्माका प्रवेश श्रुतिने कहा है। और हे बालाकि! जैसे मृत्तिका घटाकार परिणामको प्राप्त होती है, इसलिये मृत्तिकामें मुख्य-प्रज्ञा तथा गौण-प्रज्ञा सम्भव नहीं है; इसी प्रकार मन, इन्द्रिय तथा देहादि संघात भी अनेक प्रकारके परिणामको प्राप्त होते हैं, इसलिये इस संघातमें भी मुख्य अथवा गौण-प्रज्ञा सम्भव नहीं है। प्रज्ञास्वरूप आत्माके तादात्म्य-अध्यासके कारण अविचारकालमें शरीरादिमें चैतन्यस्वरूप प्रज्ञा प्रतीत होती है, विचार करनेपर शरीरादिमें प्रज्ञा सम्भव नहीं होती।

बालाकि—हे राजन्! मन, इन्द्रियों और शरीर-में आपने जो प्रज्ञाका अभाव कहा, वह सम्भव नहीं है, क्योंकि बुद्धिरूपी प्रज्ञा मन आदिमें सम्भव है।

अजातशत्रु—हे बालाकि! चैतन्य आत्माके सिवा मन, इन्द्रियाँ तथा शरीरादि सब जड़ और विकारी हैं, इसलिये मन आदिमें रहनेवाली बुद्धिरूपी प्रज्ञा भी जड़ और विकारी है। क्योंकि जैसे शरीरादि परिणामको प्राप्त होते हैं, इसी प्रकार बुद्धि भी परिणामको प्राप्त होती है, अतएव बुद्धि जड़ और विकारी है, चैतन्य-रूप नहीं है। इसलिये हे बालाकि! आनन्दस्वरूप आत्माके सिवा किसी भी वस्तुमें ज्ञानस्वरूप प्रज्ञा नहीं है। एक आत्मा ही ज्ञानस्वरूप है। हे बालाकि! जैसे आत्माके सिवा किसी भी अनात्म-पदार्थमें ज्ञान नहीं है, इसी प्रकार आनन्दस्वरूप आत्माके सिवा किसी अनात्म-पदार्थमें सुख भी नहीं है। एक आत्मा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ही सुखरूप है; ऐसा सुखस्वरूप तथा ज्ञानस्वरूप आत्मा सुख तथा ज्ञानसे रहित मन, इन्द्रिय तथा देहादिको अपने तादात्म्य-सम्बन्धसे सुखयुक्त तथा ज्ञानयुक्त करता है, जैसे धनी पुरुष अपने सेवकको धनवाला करता है, इसी प्रकार सुखस्वरूप और ज्ञानस्वरूप आत्मा मन तथा इन्द्रियोंको सुखयुक्त तथा ज्ञानयुक्त करता है। और हे बालाकि! इस सुखस्वरूप तथा ज्ञानस्वरूप आत्माका आश्रय करके वाक् आदि अध्यात्म तथा अग्नि आदि अधिदैव सब अपने-अपने नामादि विषयोंका निश्चय करते हैं। आत्माके सम्बन्ध बिना कोई भी वाक् आदि स्वतन्त्र होकर अर्थका निश्चय नहीं कर सकते। जैसे कि यथार्थ ज्ञानवाले और विपरीत ज्ञानवाले धनवान् पुरुषके निश्चयके अनुसार ही उसका नौकर किसी कार्यका निश्चय करता है, धनवान् पुरुषके निश्चय बिना नौकरको स्वतन्त्र निश्चय नहीं होता, इसी प्रकार आत्माके सम्बन्धसे ही वाक् आदिको निश्चय होता है, स्वतन्त्र निश्चय किसीको नहीं होता।

बालाकि—हे राजन्! बाह्य कार्यमें यद्यपि नौकरके लिये धनी पुरुषकी पराधीनता है तो भी ज्ञानरूपी आन्तर निश्चयमें नौकरको धनीकी अपेक्षा सम्भव नहीं है। इसलिये दृष्टान्त और दार्ष्टान्तकी एकता नहीं है।

अजातशत्रु—हे बालाकि! ज्ञानरूप आन्तर निश्चयकी उत्पत्तिमें यद्यपि नौकरको धनीकी अपेक्षा नहीं है तो भी धनीके निश्चय बिना नौकरका निश्चय निष्फल है अर्थात् ज्ञानरूप निश्चयसे पुरुषकी कार्यमें प्रवृत्ति होती है। यह प्रवृत्ति धनवान्के निश्चय बिना नौकरकी स्वतन्त्रतासे नहीं होती, धनवान्की सम्मति ग्रहण करके ही किसी कार्यमें नौकरकी प्रवृत्ति होती है, इसी प्रकार ज्ञानस्वरूप आत्माका आश्रय करके ही सर्व वाक् आदि, यह कार्य अवश्य करनेयोग्य है, यह कार्य करनेयोग्य नहीं है, इसप्रकार पदार्थका निश्चय करते हैं। ज्ञानस्वरूप आत्मा बिना कोई भी वाक् आदि स्वतन्त्र होकर पदार्थको नहीं जानते। इस दृष्टान्त और सिद्धान्तमें इसप्रकार फेर-फार है—

दृष्टान्तमें धनवान्के ज्ञानसे नौकरका ज्ञान भिन्न है और सिद्धान्तमें तो आत्माके ज्ञानसे भिन्न कोई भी ज्ञान वाक् आदि इन्द्रियोंमें नहीं है। आत्माका ज्ञान ही वाक् आदि इन्द्रियोंसे युक्त होकर अनेक भावको प्राप्त होता है, इसलिये आत्मा ही ज्ञानस्वरूप है। आत्माके सिवा सर्व अनात्म-पदार्थ जड़ हैं। हे बालाकि! उदाहरणतः भोगके साधनरूप धनादि पदार्थोंसे युक्त कोई वैश्य अपने पुत्र तथा नौकरोंसहित धनादि पदार्थोंको भोगता है, अकेला ही नहीं भोगता। यदि अकेला ही भोगे तो उसका सब धन चोर आदि ले जायँ। इसलिये वह सबके साथ ही उन पदार्थोंको भोगता है, इसी प्रकार आनन्दस्वरूप आत्मा भी वाक् आदि इन्द्रियोंसहित भोगोंको भोगता है, बिना उनके अकेला शुद्ध आत्मा भोग नहीं भोगता। और जैसे धनवान्के पुत्रादि, बान्धव और नौकर वैश्यके बिना स्वतन्त्र किसी पदार्थको नहीं भोगते, सब साथ मिलकर ही भोगते हैं; इसी प्रकार इन्द्रियादि आत्माके बिना भोगको नहीं भोगते, आत्माके साथ मिलकर ही वाक् आदि भोग भोगते हैं। सुख-दुःखके अनुभवका नाम भोग है, यह भोग उपाधिरहित आत्मामें सम्भव नहीं है। इसी प्रकार वाक् आदि जड़ पदार्थोंमें भी सम्भव नहीं है; किन्तु अन्तःकरणादि उपाधियुक्त आत्मा भोगका आश्रयरूप है। शुद्ध आत्मा वस्तुतः किसी भोगका आश्रयरूप नहीं है। इसलिये भोग मिथ्या है। हे बालाकि! जो हृदयाकाशमें स्थित शुद्ध

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आत्मारूप मैंने तुझसे कहा है, वही परमात्मा सर्व-संघातका अधिपति है। वही परमात्मा इस संघातके साथ तादात्म्य-अध्यासको प्राप्त होनेके कारण बुद्धिमान् पुरुषके द्वारा कठिनाईसे जाना जाता है। यदि आत्मा दुर्विज्ञेय न होता तो सर्व शास्त्रके जाननेवाले तुझको आत्माके यथार्थ स्वरूपमें भ्रान्ति नहीं होती। पूर्व-में तूने प्राणको ही आत्मारूप कहकर मुझे उपदेश किया था। यह तेरी भ्रान्ति ही आत्माकी दुर्विज्ञेयता-का सूचन करती है।

बालाकि—हे राजन्! जब आनन्दस्वरूप आत्मा इस संघातमें दुर्विज्ञेय है तो संघातसे भिन्न किसी अन्य स्थानमें स्थित आत्माको जाननेके लिये उत्साह क्यों नहीं करना चाहिये? संघातमें ही जाननेकी क्या आवश्यकता है?

अजातशत्रु—हे बालाकि! तू संघातसे भिन्न अन्य किसी स्थानमें स्थित आत्माको जाननेके लिये किञ्चित् भी उत्साह न कर। इस संघातमें ही आत्मा-को जाननेका उत्साह कर! जैसे अग्निकी उपलब्धिके स्थानरूप काष्ठको त्यागकर काष्ठ-सम्बन्धसे रहित अग्निको प्राप्त करनेकी इच्छा कोई भी बुद्धिमान् पुरुष नहीं करता, सब काष्ठमें ही अग्निकी इच्छा करते हैं, इसी प्रकार आत्माकी उपलब्धिके स्थानरूप संघातको त्यागकर अन्य स्थलमें आत्माकी खोज करना व्यर्थ है। इसलिये हे बालाकि! इस शरीरमें अन्तःकरणादि उपाधियोंसे रहित कूटस्थ आत्माको ब्रह्मरूपसे निश्चय करना चाहिये। हे बालाकि! हृदयाकाशरूप सर्वका आत्मा ही शयनकर्ता पुरुषका तथा शयनका आधार-रूप है, यही हृदयाकाशरूप आत्मा शयनकर्ता पुरुषके आगमनकी अवधि है। हे बालाकि! वाक् आदि इन्द्रियोंका लयरूप शयन दो प्रकारका है, एक स्वप्नरूपी शयन और दूसरा सुषुप्तिरूप शयन। उनमें प्रथम स्वप्नरूपी शयनके कर्ता बुद्धिके सिवा सम्पूर्ण वाक् आदि हैं और सुषुप्तिरूपी शयनकी कर्ता बुद्धि है। इन दोनों प्रकारके शयनसे आगमन करनेवाला भी बुद्धिसहित वाक् आदि इन्द्रियोंका समूह है। यद्यपि पूर्वमें विज्ञानमय भोक्ता-को शयनकर्तारूप तथा आगमनका कर्तारूप कह आये हैं तो भी यहाँ बुद्धिको और वाक् आदिको शयनकर्ता कहा है, इसलिये पूर्व और उत्तर-ग्रन्थमें विरोध प्रतीत होता है, परन्तु विचार करके देखा जाय तो विरोध नहीं है, क्योंकि बुद्धिविशिष्ट चैतन्य-का नाम विज्ञानमय है। विज्ञानमयके चैतन्यअंशमें कर्तापना सम्भव नहीं है। परिशेषसे बुद्धिमें ही कर्तापना सम्भव है। इस अभिप्रायसे बुद्धिको शयन-कर्ता कहा है, इसलिये पूर्वोत्तर-ग्रन्थका विरोध नहीं है।

हे बालाकि! प्राणरूप उपाधिमें और प्रज्ञारूप उपाधिमें जिस हृदयाकाशरूप आत्माका मैंने तुझे उपदेश किया है, उसी प्राणप्रज्ञा उपाधियुक्त आत्मा-का पूर्वमें देवराज इन्द्रको प्रतर्दन राजाने उपदेश किया था, आनन्दस्वरूप आत्माके साक्षात्कारके प्रभावसे देवराज इन्द्रने तीनों लोकोंमें उपद्रव करने-वाले असुरोंको मारा था, नीतिरहित विश्वरूपादि ब्राह्मणोंका और विचारसे रहित बहुत-से संन्यासियों-का भी वध किया था, तो भी आत्मज्ञानके प्रभावसे देवराज इन्द्रका एक बाल भी बाँका नहीं हुआ। इस आत्म-ज्ञानके प्रभावसे ही देवराज इन्द्र सब देवताओंमें श्रेष्ठ समझा जाता है और युद्ध आदि कार्योंमें वह अन्य किसी देवकी अपेक्षा नहीं करता। बल नामक असुरसे लेकर बड़े-बड़े असुरोंको अकेले इन्द्रने ही पराजित किया था। इसलिये समस्त बलवानोंमें इन्द्र मुख्य बलवाला गिना जाता है। यह देवराज इन्द्र अपने तेजसे शोभित होता है, इसलिये विराट् कहलाता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है। हे बालाकि! जैसे अद्वितीय आत्माके ज्ञानके प्रभावसे देवराज इन्द्र सबका स्वामी हुआ, इसी प्रकार आजकल भी जो कोई विवेकादि साधनोंद्वारा आनन्द-स्वरूप आत्माके ज्ञानको सम्पादन करेगा, वह भी आत्मज्ञानके प्रभावसे सब जीवोंका स्वामी होगा।

बालाकि-हे राजन्! आप कहते हैं कि देवराज इन्द्रने आत्मज्ञानके प्रभावसे सब असुरोंको जीता, यह आपका कथन युक्त नहीं है, क्योंकि पुराणोंमें असुरोंसे इन्द्रका पराजय भी बहुत स्थलोंपर सुननेमें आता है।

अजातशत्रु-हे बालाकि! जबतक देवराज इन्द्र प्रजापतिके उपदेशसे आत्मज्ञानको प्राप्त न हुआ तभीतक देवराज इन्द्रको जीतकर असुर तीनों लोकोंके अधिपति हुए। प्रजापतिके उपदेशसे आत्मज्ञानकी प्राप्ति होनेपर इन्द्र असुरोंको मारकर तीनों लोकोंका अधिपति हुआ, इसलिये हे बालाकि! आनन्दस्वरूप अद्वितीय आत्माका ज्ञान सब विद्याओंसे श्रेष्ठ है, अतएव मनुष्योंके द्वारा सम्पादन करनेयोग्य है। इति द्वितीयाध्याय। (क्रमशः)

वाल्मीकि-रामायण और भगवच्छरणागति

(लेखक—साहित्याचार्य पं० श्रीमथुरानाथजी शास्त्री, भट्ट, कविरत्न)

(गतांकसे आगे)

अच्छी बात है, भरत आपके साथ कभी भ्रातृभावका त्याग नहीं कर सकते, यह मान लेते हैं। किन्तु यदि आपकी ओरसे ही कदाचित् भ्रातृभाव शिथिल हो गया तो फिर भरतकी भी एकतानचर्यामें कुछ अन्तर अवश्य ही पड़ेगा। इस शङ्काके कारण आगे कहते हैं—'मद्विधा वा पितुः पुत्राः—मेरे-जैसे पिताके पुत्र भी सब नहीं होते।' पिताकी भी नहीं, पिताको द्वार बनाकर अपनी विमाताकी भी आज्ञा पानेपर जो सम्पूर्ण राज्यसुखोंको छोड़कर वनवासके कठिन दुःखोंको सह सकते हैं, ऐसे मेरे-जैसे पुत्र भी सब नहीं होते।

मान लीजिये, पिताने वनवासकी आज्ञा दे दी थी; किन्तु जन्मदात्री माता कौशल्या विप्रतिपन्न (असंमत) हो गयी थीं। कौशल्याने कहा था कि यह वचन राजाका नहीं, यह क्रूर वचन कैकेयीका है। 'वह मेरी सपत्नी है। अतएव सपत्नी होनेके कारण तुम्हारे विषयमें जो उसका अधर्म्य वचन है उसे सुनकर मुझे दुःखिनी छोड़कर तुम्हें जाना उचित नहीं'—

न चाधर्म्यं वचः श्रुत्वा सपत्न्या मम भाषितम्।
विहाय शोकसन्तप्तां गन्तुमर्हसि मामितः॥

'हे पुत्र! यदि मेरे निषेध करते हुए भी मुझे शोकसन्तप्त छोड़कर तुम चले जाओगे तो तुम नरकको प्राप्त होओगे जो जगत्प्रसिद्ध है'—

यदि त्वं यास्यसि वनं त्यक्त्वा मां शोकलालसाम्।
ततस्त्वं प्राप्स्यसे पुत्र निरयं लोकविश्रुतम्॥

कहिये, जब माताका इतना आग्रह था, तब यदि श्रीराम वनमें न जाते तो उनका दोष कौन समझ सकता था? क्योंकि माताका दर्जा पितासे बढ़कर शास्त्रमें गिना जाता है। कौशल्याने स्पष्ट कह दिया था कि—

यथैव राजा पूज्यस्ते गौरवेण तथा ह्यहम्।
साहं त्वां नानुजानामि न गन्तव्यमितो वनम्॥

'जिस तरह राजा तुम्हारे पूजनीय हैं मैं भी तुम्हारे लिये उसी तरह माननीय हूँ। मैं तुमको जानेकी अनुमति नहीं देती। अतएव तुम यहाँसे वन कभी नहीं जाना।' जब जननीकी यों स्पष्ट आज्ञा हो गयी थी तब श्रीराम यदि अयोध्यामें भी रहते तो भी उन्हें कोई दोषी नहीं कह सकता था; किन्तु परम्परासे ही सही, पितापर किसी तरह भी मिथ्यावादिताका कलङ्क न लगे इसलिये श्रीराम अपने सब सुखोंकी बलि देकर वनमें जानेको तैयार हो जाते हैं। इसीलिये यहाँ कहते हैं—'मद्विधा वा पितुः पुत्राः—मेरे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सदृश पिताके पुत्र भी सब नहीं होते।' अर्थात् जब मैं भी पिताकी आज्ञा पानेपर सर्वसमृद्ध राज्यको भी ठुकराकर जङ्गलमें जाना ही अपना कर्तव्य समझता हूँ और राज्यपर लोलुप-बुद्धि नहीं रखता तब मेरी तरफ़से भी भातृभावके त्यागका प्रसङ्ग कैसे आ सकता है ?

यहाँ बड़ी भारी शङ्का एक यह उपस्थित होती है कि मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रके मुखसे महर्षि यह आत्मश्लाघा कैसे करवा रहे हैं। 'मेरे बराबर कोई सुपुत्र नहीं' यह तो स्पष्ट आत्मश्लाघा है। जब धीरोदात्त नायक-तकको साहित्यवाले 'कृपावान् अविकत्थनः—दयालु और अपने मुखसे अपनी प्रशंसा नहीं करनेवाला' चित्रित करते हैं तब आदर्श पुरुष, यावन्मात्र नायकोंके नायक श्रीरामचन्द्र अपने ही मुखसे अपनी प्रशंसा करें, यह क्या समंजस समझा जायगा ? इसका समाधान कुछ लोग तो यह करते हैं कि यह प्रशंसा नहीं, सत्य कथन है। सत्य बात कहनेमें आत्म-श्लाघाका दोष नहीं आता। महाकवि कालिदास तो भला साहित्यवालोंके लिये मार्गप्रदर्शक हुए हैं। उन्होंने तो अपने नाटकोंमें धीरोदात्त नायकको साहित्य-लक्षणोंसे लक्षित ही चित्रित किया है, किन्तु वह दुष्यन्तके मुखसे कहलाते हैं—

सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु
प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ।

'सज्जनोंके लिये जहाँ सन्देहस्थल उपस्थित होता है वहाँ उनके अन्तःकरणकी वृत्ति ही प्रमाणभूत हो जाती है।' अर्थात् शकुन्तला हमारी प्रणयभाजन हो सकती है वा नहीं, इस संशयमें उसकी तरफ खिंचनेवाला मेरा हृदय ही कहे देता है कि शकुन्तला अवश्य क्षत्रियोंके द्वारा परिणेय है। यहाँ दुष्यन्त अपने मुखसे ही अपने आपको आदर्श सज्जन कह डालते हैं; किन्तु आजतक किसीने शाकुन्तलके नायकपर आत्मश्लाघाका दोष नहीं लगाया। क्योंकि यह श्लाघा नहीं, भूतार्थकथन है। महावीर हनूमान् तो सत्यपराक्रम और आदर्श योद्धा हैं। उन्हें अपने मुखसे अपनी तारीफ़ करके भला किससे क्या लेना था ? वह भी कहते हैं—

पन्नगाशनमाकाशे पतन्तं पक्षिसेविते ।
वैनतेयमहं शक्तः परिगन्तुं सहस्रधा ॥

'उड़नेमें गरुड़ तो सबसे वेगवान् गिने जाते हैं; किन्तु मैं आकाशमें उड़ते हुए गरुड़से भी आगे सहस्र प्रकारसे निकल सकता हूँ।' यहाँ हनूमान् अपनी गतिका सत्य परिचय दे रहे हैं, इसलिये इसे कोई आत्मश्लाघा नहीं कहता। 'काव्यादर्श' के प्रथम परिच्छेदमें दण्डी कहते हैं—

स्वगुणाविष्क्रिया दोषो नात्र भूतार्थशंसिनः ।
अपि स्वनियमो दृष्टस्तथा स्वन्यैरुदीरणात् ॥

'सत्यकथनमें स्वगुणप्रशंसाका दोष नहीं आता। और दूसरे, नायक अपने मुखसे अपना वृत्तान्त कह दे—इसे दोष भी नहीं समझा जाता, क्योंकि कई जगह अपने मुखसे अपना वर्णन देखा जाता है।' अथवा—पूर्वोक्त समाधानादि करनेकी जरूरत ही नहीं पड़ती। 'न सर्वे भ्रातरः' इत्यादि पद्यका तात्पर्य ही दूसरा है। श्रीरामचन्द्र कहते हैं—'हे तात ! सर्वे भ्रातरो भरतोपमाः न', सब भाई भरतके समान नहीं होते। जो कि भरत पिताके दिये हुए अपने राज्यको छोड़कर वनमें आते हैं और मुझसे कहते हैं कि यह राज्य तुम्हारा है, तुम्हीं लो। अतएव भरतके सिवा कोई दूसरा ऐसा त्यागी दीखता है ? इस बातको पुष्ट करनेके लिये दृष्टान्त देते हैं—'मद्विधा वा पितुः पुत्राः' 'जैसे मेरे समान पुत्र।' मेरे विरहका प्रसङ्ग पड़ते ही पिता लोकान्तरको चले गये, इस तरहका पुत्रवत्सल पिता जिसने प्राप्त किया हो ऐसा पुत्र मेरे समान दूसरा कोई होगा ? अपि तु, नहीं। इसी तरह 'सुहृदो वा भवादृशाः'—सुग्रीवसे कहते हैं कि 'जैसे तुम्हारे समान मित्र सब नहीं होते, जो अपने सब कार्य छोड़कर नाना प्रकारके कष्टोंको सहते हुए मित्रके कार्यके लिये प्राणपर्यन्तको कुछ नहीं गिनते। यहाँ 'मद्विधा वा पितुः पुत्राः, सुहृदो वा भवद्विधाः' यह दोनों दृष्टान्त हैं। इनमें यदि कोई अतिप्रशंसा भी हो तो भी उसका तात्पर्य 'न सर्वे भ्रातरः' इस बातकी पुष्टिमें है। अर्थात् मेरे समान वत्सल पिताके पुत्र और तुम-सरीखे एकान्त मित्र जिस तरह दुनियामें दुर्लभ हैं इसी तरह भरतके समान भाई भी सब नहीं होते।'

अथवा—'मद्विधाः पितुः पुत्राः सन्तु मा वा, परन्तु भरतसमा भ्रातरस्त्वत्समाः सुहृदश्च न सन्ति' इत्यर्थः। 'मेरे समान, पिताके पुत्र हों वा न हों, कोई बड़ी बात नहीं। परन्तु भरतके समान भाई और तुम्हारे समान मित्र कहीं नहीं दिखलायी देते।' इस अर्थमें आत्मश्लाघा-दोषका प्रसङ्ग ही नहीं आता। सच पूछिये तो जिन टीकाकारोंने 'मद्विधा वा पितुः पुत्राः' में आत्मश्लाघा-दोषकी शङ्का की है उनकी समझमें ही यह श्लोक नहीं आया है, ऐसा मालूम पड़ता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है। भगवान् श्रीरामचन्द्र यहाँ कह रहे हैं कि 'जो मेरे समान, पिताका वात्सल्यभाजन हुआ हो ऐसा पुत्र दुनियामें दूसरा नहीं है।' यहाँ पिताके प्रेम और वात्सल्यकी पराकाष्ठाकी तारीफ़ है। उसीके द्वारा फिर अपना सौभाग्य दिखाया गया है कि जिसे ऐसे वत्सल पिताके पुत्र होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ हो ऐसे बड़भागी पुत्र मेरे समान सब नहीं होते। यहाँ स्पष्ट झलक रहा है कि श्रीरामचन्द्र अपने पिता दशरथके वात्सल्यका स्मरण करके अपना अहोभाग्य बता रहे हैं। स्पष्ट ही यहाँ पिताकी प्रशंसा है। यदि यहाँ पिताके वात्सल्यकी प्रशंसामें तात्पर्य नहीं होता तो 'मद्विधा वा पितुः पुत्राः' यहाँ 'पितुः' पदकी कोई आवश्यकता न थी। 'मद्विधाः पुत्राः सर्वे न—मेरे समान पुत्र सब नहीं होते' यही कहना पर्याप्त था। बल्कि 'मेरे समान पिताके पुत्र' यों 'पिताके पुत्र' कहना तो उलटा भद्दा-सा मालूम होता है। परन्तु यहाँ पिताकी वत्सलताकी ही तारीफ श्रीरामचन्द्रको अभीष्ट है। अतएव आप कहते हैं 'मेरे समान वत्सलप्रकृति-पिताके पुत्र सब नहीं होते।' इस कथनमें ज़ाहिरा अपनी तारीफ दीखनेपर भी पिताके वात्सल्यकी ही सर्वात्मना स्तुति है। भक्त भगवान्‌से कहते हैं—'हे प्रभो! मेरे समान आज कौन बड़भागी होगा जिसको आपके समान दयालु स्वामी मिले हैं!' कहिये, क्या इस कथनमें भक्तपर आत्मश्लाघाका दोष लगाया जायगा?

राजा परीक्षित कहते हैं—

वयं धन्यतमा लोके गुरोऽपि क्षत्रबन्धवः।
यत्पिबामो मुहुस्त्वत्तः पुण्यं कृष्णकथामृतम्॥

'हे गुरो! हम गर्हणीय क्षत्रिय होनेपर भी आज अत्यन्त धन्य हैं जो आपके मुखसे निकले हुए पवित्र श्रीकृष्ण-कथामृतका बारंबार पान करते हैं।' कहिये, व्रत लेकर नियमानुसार श्रीमद्भागवतको सुनते हुए प्रशान्तप्रकृति परीक्षितपर भी क्या अपने मुखसे ही अपनी श्लाघा करनेका दोष लगाया जा सकेगा? नहीं, यहाँ स्पष्ट ही श्रीकृष्णकथामृतकी प्रशंसा वक्ताको अभीष्ट है। इसी प्रकार 'मद्विधा वा पितुः पुत्राः' में भी पिताके वात्सल्यकी ही प्रशंसा श्रीरामचन्द्र कर रहे हैं।

जिस समय कैकेयीने वनवासकी आज्ञा देनेके लिये श्रीरामचन्द्रको महलमें बुलवाया उस समय पुत्रवत्सल महाराज दशरथकी बड़ी करुणाजनक दशा थी। रामका वियोग होनेवाला है, इस विचारमात्रसे ही उनका हृदय तड़फड़ा रहा था। जैसे ही श्रीरामको सामने देखा, राजाका हृदय उमड़ आया।

रामेत्युक्त्वा तु वचनं बाष्पपर्याकुलेक्षणः।
शशाक नृपतिर्दीनो नेक्षितुं नाभिभाषितुम्॥

'वह केवल 'राम' इतनामात्र कह सके। आँखोंमें आँसुओंकी झड़ी लग गयी। दुःखकी दीनताके कारण राजासे न तो रामकी तरफ देखा ही गया और न कुछ बोला ही गया।' श्रीरामचन्द्र पिताकी यह दशा देखकर घबरा उठे। आपने बड़े विनयसे कैकेयीसे पूछा—

किं स्विदं यन्महीपतिः।
वसुधासक्तनयनो मन्दमश्रूणि मुञ्चति॥

'आज यह क्या है कि महाराज बड़ी उदासीसे नीची दृष्टि किये आँसू बहा रहे हैं?' कैकेयीने सब विष उगल दिया। श्रीरामचन्द्रने मस्तक नवाकर उस आज्ञाको ग्रहण किया। आपने कहा कि 'मा! आप मेरे स्वभावको नहीं जानतीं। अन्यथा महाराजतक इस बातको पहुँचानेकी क्या ज़रूरत थी। मैं तो आपकी ही आज्ञासे वन जानेको तैयार था। मैं मातासे आज्ञा ले लूँ और सीताको समझा दूँ, इतनामात्र अवकाश दीजिये। मैं आज ही वन चला जाऊँगा—

यावन्मातरमापृच्छे सीतां चानुनयाम्यहम्।
ततोऽद्यैव गमिष्यामि दण्डकानामहं वनम्॥

राजा अपने शोकके आवेगको बड़े धैर्यसे अपने हृदयहीमें रोक रहे थे; परन्तु रामके ये वचन सुनकर उनका धैर्य टूट गया। जो महापराक्रमी दशरथ बड़े-बड़े संग्रामोंमें कभी विचलित नहीं हुए थे, जिनके धैर्य और पराक्रमपर मनुष्य ही क्या, देवताओंतकको बड़ा भरोसा था, संकट पड़नेपर देवतातक जिन्हें सहायताके लिये बुलाते थे, आज वे ही महाराज दशरथ साधारण दीनोंकी तरह अधीर हो रहे हैं। और तो क्या, स्त्रियोंकी तरह बड़े ज़ोरसे रो उठते हैं। 'शोकादशक्नुवन् वक्तुं प्ररुरोद महास्वनम्।' क्यों? जो हृदय महासंग्रामोंमें निरन्तर बरसनेवाले शस्त्रोंके प्रहारोंसे कठिन पड़ गया है, जो हृदय शस्त्राघातोंके घट्टोंके कारण स्पर्शमें भी लोहवत् कठिन मालूम होता है वह इस तरह एकदम व्याकुल क्यों हो पड़ा है? इसका कारण है श्रीरामचन्द्रपर असाधारण प्रेम। बड़ी-बड़ी साधनाओंसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीरामचन्द्र-सा पुत्र मिला था। आज वही वनको जा रहा है—

अपुत्रेण मया पुत्रः श्रमेण महता महान्।
रामो लब्धो महातेजाः स कथं त्यज्यते मया॥

बस, इसीलिये परमवत्सल महाराज दशरथ आज साधारण मनुष्योंकी तरह शोक-मूढ़ होकर रो पड़े हैं।

राजा दशरथ नाना तरहसे अनुनय-विनय करके कैकेयी-को समझाते हैं। जिन महाराज दशरथके चरणोंपर बड़े-बड़े वीरोंके, महाराजाधिराजोंके मस्तक नवा करते थे आज वही कोसलाधिपति महाराज दशरथ कैकेयीके सामने झोली पसारकर भीख माँगते हैं, पैरोंमें प्रणाम करते हैं कि रामको वनमें भेजनेका हठ छोड़ दो। आप कहते हैं—

मम वृद्धस्य कैकेयि गतान्तस्य तपस्विनः।
दीनं लालप्यमानस्य कारुण्यं कर्तुमर्हसि॥
अञ्जलिं कुर्मि कैकेयि पादौ चापि स्पृशामि ते।
शरणं भव रामस्य माऽधर्मो मामिह स्पृशेत्॥

'मेरे बुढ़ापेकी तरफ़ देखो। मैं थोड़े दिनोंका पाहुना हूँ। बड़ी दीनतासे प्रार्थना करते हुए मुझपर तुम्हें अवश्य करुणा करनी चाहिये।' जिस वीरहृदयको कभी किसीसे दीनवचन कहनेतकका अवसर नहीं पड़ा था आज वही यों दयाका भिखारी हो रहा है! क्यों! अपने पुत्र श्रीरामचन्द्र-पर असीम प्रेम होनेके कारण!

जब किसी तरह भी कैकेयी मृदु नहीं हुई तब राजा कहते हैं—'अच्छी बात है। रामको वनवास हो और भरत युवराजपदवीपर बैठें, यही तो तुम्हें वर दिया गया है।' किन्तु मैं भी राज्यसुख और धनादिको छोड़कर रामके पीछे-पीछे वनको चला जाऊँगा फिर तुम और राजा भरत यहाँ रहकर आनन्दपूर्वक राज्यभोग करना—

अनुव्रजिष्याम्यहमद्य रामं
राज्यं परित्यज्य सुखं धनं च।
सहैव राज्ञा भरतेन च त्वं
यथासुखं भुंक्ष्व चिराय राज्यम्॥

जो महाराज थोड़े दिनके पाहुने कहे जा रहे हैं वही उस वृद्धावस्थामें जङ्गलोंका कष्ट भोगनेको तैयार हैं। क्योंकि श्रीरामचन्द्रसदृश पुत्रके प्रति वात्सल्य उनकी आत्माको बलात् खींच रहा है। जब श्रीरामका वनगमन निश्चित हो चुका और विदेहनन्दिनी श्रीसीतातक चीरवल्कल पहनकर मुनियोंकी तरह वनप्रस्थानकी आज्ञा माँगने दशरथके पास आयीं, राजासे यह करुण दृश्य नहीं देखा गया। वे आँखें मूँदकर रो उठे। उन्होंने निश्चित कर लिया, यह दुःखमय दृश्य मैं नहीं देख सकूँगा। किन्तु हाय, हृदय नहीं माना। श्रीराम चौदह वर्षके लिये वनको जा रहे हैं। मैं उन्हें फिर जाते देख सकूँगा कि नहीं। एक बार इन नेत्रोंसे प्रिय पुत्रका मुखदर्शन तो कर लूँ। यह सोचकर राजा वनको जाते हुए श्रीरामचन्द्रको देखनेके लिये बड़ी लालसासे उठ खड़े होते हैं। साथमें, दीनतासे विलाप करता हुआ रनवास भी पीछे-पीछे जाता है—

अथ राजा वृतः स्त्रीभिर्दीनाभिर्दीनचेतनः।
निर्जगाम प्रियं पुत्रं द्रक्ष्यामीति ब्रुवन् गृहात्॥

राजा दशरथ उस दृश्यको देखकर सुखी होनेके बदले अत्यन्त शोकाभिभूत हो गये। उनके हृदयकी गति एकदम भयानक हो पड़ी। उन्होंने देखा कि तमाम अयोध्या महलके आगे उमड़ आयी है। सबके नेत्रोंसे आँसू बरस रहे हैं। श्रीरामके रथके पीछे लटक-लटककर बड़ी दीनतासे प्रार्थना कर रहे हैं—'हे सुमन्त्र! घोड़ोंकी लगाम जरा रोक लो। रथको थोड़ा धीरे-धीरे चलाओ। हम श्रीरामका मुख देखना चाहते हैं। हमारे लिये यह अब दुर्लभ हो जायगा'—

संयच्छ वाजिनां रश्मीन् सूत याहि शनैः शनैः।
मुखं द्रक्ष्याम रामस्य दुर्दर्शं नो भविष्यति॥

दयालु श्रीरामचन्द्रसे यह करुण दृश्य नहीं देखा जाता। वे सुमन्त्रको तकाज़ा करते हैं—रथको जल्दी-जल्दी चलाओ। सूत बड़े असमञ्जसमें पड़ गये—

रामो याहीति तं सूतं तिष्ठेति च जनस्तदा।
उभयं नाशकत्सूतः कर्तुमध्वनि चोदितः॥

राजा दशरथ इस दुःखमय दृश्यको अधिक देरतक नहीं देख सके। उनकी चेतना जाती रही, 'निपपातैव दुःखेन कृत्तमूल इव द्रुमः—जड़ कटनेपर जिस तरह वृक्ष गिर जाता है इस तरह भूमिपर गिर पड़े।'

राजा शोकविह्वल, घरमें विकल पड़े हुए, पुत्रके लिये पछता रहे हैं—हाय! मैंने ही तो अपने हाथोंसे पुत्रको वन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भेजा है। महर्षि वाल्मीकि कहते हैं कि रामकी ज्यों-ज्यों याद आती थी, राजा इस तरह अनुताप करते थे जिस तरह कोई इच्छापूर्वक ब्राह्मणको मारकर पछताता हो, अथवा हाथोंसे अग्निको छूकर दुखी होता हो।

हत्वेव ब्राह्मणं कामात्स्पृष्ट्वाग्निमिव पाणिना।
अन्वतप्यत धर्मात्मा पुत्रं सञ्चिन्त्य राघवम्॥

जिन राघवके वियोगमें सम्पूर्ण अयोध्याके नर-नारी अपना-अपना घर छोड़-छोड़कर रामके पीछे-पीछे हो लिये, उस दिन अयोध्याके किसी घरमें सन्ध्याका स्वागत न हुआ, दीपकतक नहीं जला, पशु-पक्षियोंतकने भोजन छोड़ दिया, भला पुत्रवत्सल पिता दशरथके शोकका कुछ अन्त होगा! जिस समय श्रीराम रथमें बैठकर वनके लिये जाने लगे उस समय पुरवासियोंमें हाहाकार मच गया। लोगोंके आँसुओंके चौधारे बह रहे थे। तथ्यवाक् महर्षि वाल्मीकि उस समयकी दशा कहते हैं कि लोगोंके नेत्रोंसे इतना आँसू बहा कि भूमि सब तर हो गयी। पुरवासियोंके पैरोंसे रजका उड़ना बिल्कुल बन्द हो गया—

निर्गच्छति महाबाहौ रामे पौरजनाश्रुभिः।
पतितैरभ्यवहितं प्रणनाश महीरजः॥

साधारण पौरजनोंकी क्या कथा! संसारत्यागी, कर्मैकनिष्ठ ब्राह्मणतक श्रीरामचन्द्रको जाता हुआ देखकर उनके पीछे-पीछे हो लेते हैं। वे कहते हैं कि—'हे रामचन्द्र! हमारे इन सफेद बालोंको देखो, जो आपके जानेके दुःखमें भूमिपर लोटनेसे धूलिधूसर हो रहे हैं। हमारे इन सफेद बालोंकी तरफ ही देखकर लौट चलो राम! बहुत ब्राह्मणोंके यज्ञ समाप्तिके समय आपकी प्रतीक्षा करेंगे। यदि उनमें अपूर्णता रह जायगी तो उसका अपराध आपको लगेगा। अतएव इस धर्मके अनुरोधसे ही लौट चलिये—

याचितो नो निवर्तस्व हंसशुक्लशिरोरुहैः।
शिरोभिर्निर्भृताचार महीपतनपांसुलैः॥
बहूनां वितता यज्ञा द्विजानां य इहागताः।
तेषां समाप्तिरायत्ता तव वत्स निवर्तने॥

'हे रामचन्द्र, देखो! आज पक्षी भी आहारके लिये जाना छोड़कर, और तो क्या शरीरका हिलना-डुलनातक छोड़कर शोकके मारे अपने वृक्षके कोटरहीमें बैठे हैं। सर्व प्राणीमात्रपर दया करनेवाले आपसे लौट चलनेके लिये याचना करते हैं'—

निश्चेष्टाहारसञ्चारा वृक्षैकस्थाननिष्ठिताः।
पक्षिणोऽपि प्रयाचन्ते सर्वभूतानुकम्पिनम्॥

फिर भला, पिता दशरथके हृदयकी दशा तो क्या पूछते हैं! कुछ ही घण्टे बीते होंगे कि उनकी दशा बिगड़ने लगी। आधीरात जाते-जाते तो यह कौशल्यासे कहते हैं—

न त्वां पश्यामि कौशल्ये साधु मां पाणिना स्पृश।
रामं मेऽनुगता दृष्टिरद्यापि न निवर्तते॥

'हे कौशल्या! तुम मुझे दिखायी नहीं दे रही हो। तुम मुझे हाथसे अच्छी तरह छुओ। मेरी दृष्टि तो रामके साथ-साथ चली गयी, जो अभीतक भी नहीं लौटी।' हाय हाय! जो पिता अपने पुत्रके वियोगमें थोड़े ही समयमें अपने नेत्रतक खो बैठता है उस पिताके वात्सल्यकी तुलना कहीं मिल सकेगी! ऐसे पुत्रवत्सल पिता हर एकके भाग्यमें होंगे! इसीलिये श्रीरामचन्द्र कहते हैं कि—'मद्विधा वा पितुः पुत्राः—मेरे सदृश, पिताके वात्सल्यभाजन सब ही पुत्र नहीं होते।'

राजा दशरथ राममयैकप्राण थे। हठपर चढ़ी हुई कैकेयीको उन्होंने साम-दाम-क्रोध आदि सभी उपायोंसे समझाया। जब किसी तरह भी नहीं मानी, तब झुँझलाकर कहा कि 'मालूम होता है, तुमको अब वैधव्यका योग है। मैं रामके वियोगमें कभी नहीं जी सकूँगा। मैं कहे देता हूँ कि यदि तुम अभिषेकके काममें विघ्न डालोगी तो शीघ्र ही इस अभिषेक-सामग्रीसे राम मेरी और्ध्वदैहिक क्रिया करेंगे। तुम और तुम्हारे पुत्रका मैं हाथतक नहीं लगवाना चाहता'—

रामाभिषेकसंभारैस्तदर्थमुपकल्पितैः।
रामः कारयितव्यो मे मृतस्य सलिलक्रियाम्॥
सपुत्रया त्वया नैव कर्तव्या सलिलक्रिया।

श्रीरामके चले जानेपर जिस समय महलमें पड़े-पड़े राजा प्रलाप कर रहे थे उस समय भी उनके मुखसे यही निकला कि—हे कैकेयी! तू अब पूर्णमनोरथ हो जा। अब विधवा होकर इस राज्यमें रहना। मैं तो रामके बिना जीना नहीं चाहता—

सकामा भव कैकेयि विधवा राज्यमावस।
न हि तं पुरुषव्याघ्रं विना जीवितुमुत्सहे॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

राजा आकाशकी तरफ देखके फिर प्रलाप करते हैं—

हा हन्त कृतान्त !
अनपत्या वयं रामः पुत्रोऽन्यस्य महीपतेः ।
वने व्याघ्री च कैकेयी त्वया किं न कृतं त्रयम् ॥

'हे क्रूर विधाता ! हमको निःसन्तान तथा रामको दूसरे राजाका पुत्र, और कैकेयीको जङ्गलमें सिंहिनी क्यों न बनाया।'

राजाका जीवन श्रीरामचन्द्रके साथ-साथ चल रहा था। जैसे ही श्रीराम वनकी तरफ़ चले, राजा एकटक उनके रथकी तरफ़ देखते रह गये। जब रथकी धूलि भी दीखती बन्द हो गयी तब मूर्च्छित-अवस्थामें महलमें लाये गये। उनका जीवनसूत्र इस आशापर अटक रहा था कि अभी रामके साथ सुमन्त्र है। कदाचित् राम उसीके साथ यहाँ लौट आवें। बस, कुहकिनी इस आशाके सहारे वह जी रहे थे। सुमन्त्र जिस समय अयोध्याके समीप पहुँचे उस समय शून्य, निःशब्द उस अयोध्याको देखकर वे डर गये। जो अयोध्यापुरी रात-दिन उत्साहमय, शब्दमय, मूर्तिमान् उत्सवमय बनी रहती थी, रातको भी जो एक तरहसे जागरूक ही रहती थी, आज वही इसप्रकार भयङ्कर और सूनी क्यों दीख रही है ? सब सामग्री और राजासहित यह अयोध्यापुरी रामकी शोकाग्निसे दग्ध तो कहीं नहीं हो गयी ?

कच्चिन्न सगजा साश्वा सजना सजनाधिपा ।
रामसन्तापदुःखेन दग्धा शोकाग्निना पुरी ॥

जैसे ही सुमन्त्र नगरके द्वारमें घुसे और रामके रथका शब्द हुआ कि उस सूनी अयोध्यापुरीमेंसे निकल-निकलकर नर-नारियोंका झुण्ड उस रथकी तरफ़ दौड़ा। सब पूछते थे—'श्रीराम कहाँ हैं।' उन दीनोंकी उस विकल वेदनाकी उपेक्षा सुमन्त्रसे नहीं हो सकी। सबको श्रीरामका वृत्तान्त समझाकर ढाँढस बँधाते थे। लोग विलाप कर रहे थे। हाय ! सुमन्त्र यहाँसे रामको लेकर गये थे; किन्तु बिना रामके लौट रहे हैं। हाय ! महारानी कौशल्याको वे क्या जवाब देंगे जो अपने प्यारे बछड़ेसे बिछुड़ी हुई गौकी तरह उस रामशून्य महलमें चारों तरफ़ घूम रही है।

राजा दशरथने सुमन्त्रका आना जैसे ही सुना कि उनके निष्प्राण देहमें मानों फिरसे प्राण आ गये। उसी समय उन्हें महलमें लानेकी आज्ञा हुई, क्योंकि रामके पाससे आ रहे हैं न ? वहाँ सब काम बन्द थे। श्रीराममात्रकी चर्चा चल रही थी। वाल्मीकि कहते हैं—

तदाजुहाव तं सूतं रामवृत्तान्तकारणात् ।

राजा बोले—हे सुमन्त्र ! तुम्हारे दैन्यसे मालूम होता है, तुम भी रामको छोड़कर चले आ रहे हो—

शून्यः प्राप्तो यदि रथो भग्नो मम मनोरथः ।
नूनं दशरथं नेतुं कालेन प्रेषितो रथः ॥

'यदि रथ खाली आया है तो मेरा सब मनोरथ टूट गया। मालूम होता है, अब दशरथको लेनेके लिये कालने यह रथ भेजा है !' 'सुमन्त्र ! मुझको रामका सब वृत्तान्त कहो। वे वनमें कैसे रह रहे हैं ? हे सूत ! रामका बैठना, सोना, भोजन करना इत्यादि सब मुझसे कहो। जैसे ययाति साधुओंसे जीते थे वैसे मैं इसीसे जीऊँगा'—

आसितं शयितं भुक्तं सूत रामस्य कीर्तय ।
जीविष्याम्यहमेतेन ययातिरिव साधुषु ॥

पुत्रका दर्शन तो कहाँ, जो पिता उसके वृत्तान्तको सुनकर ही मरा हुआ जीता है भला उसके वात्सल्यकी तुलना कहीं मिलेगी ?

सुमन्त्र धैर्य बँधानेके लिये श्रीरामका सब वृत्तान्त कहकर कहते हैं कि—जब श्रीराम लौटनेके लिये अनुमत नहीं हुए तब मैंने ही उनसे प्रार्थना की कि 'मेरी यह आत्मा आपके बिना अयोध्यामें प्रवेश करना नहीं चाहती। अतएव मुझे भी वनवासमें साथ ले चलनेकी आज्ञा दीजिये। हे राम ! इन घोड़ोंको तो देखो। इनकी क्या दीन दशा हो रही है। यह सदा मेरी आज्ञामें रहनेवाले हैं; परन्तु जब आपसे शून्य इस रथको लेकर जाऊँगा तब ये उसे कैसे ले जायँगे ?'

मम तावन्नियोगस्थास्त्वद्बन्धुजनवाहिनः ।
कथं रथं त्वया हीनं प्रवक्ष्यन्ति हयोत्तमाः ॥

श्रीरामने कहा कि हे सुमन्त्र ! मुझे पिताजीका बड़ा

१ ययाति इन्द्रके शापसे जब स्वर्गसे गिरने लगे तब उन्होंने यही माँगा था कि मुझे साधु पुरुषोंमें डाल दो। ययाति उस साधुसमागममें स्वर्गसे भी अधिक सुखपूर्वक अपना जीवन बिताते थे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ध्यान है। मेरे विरहमें उनकी क्या दशा होगी, यह बड़ा सन्देहस्थान है। इक्ष्वाकुवंशी राजाओंका तुम्हारे समान दूसरा हितैषी नहीं। अतएव राजा मेरा सोच न करें, ऐसा उपाय तुम करना—

इक्ष्वाकूणां त्वया तुल्यं सुहृदं नोपलक्षये।
यथा दशरथो राजा मां न शोचेत्तथा कुरु॥

मैं मन मारकर वहाँसे लौटा तो सही; परन्तु मेरा अन्तरात्मा श्रीरामके पीछे-पीछे जाने लगा। हाय! मुझसे अधिक भाग्यवान् तो ये पशु घोड़े हैं जो रामके वियोगमें मुझसे अधिक विकल हो गये। बड़े-बड़े सङ्कटोंमें, सम्मुख युद्धोंमें कभी इन्होंने मेरी आज्ञा नहीं उलाँघी। इशारेमात्रपर ये बड़े उत्साहसे आगे बढ़ते थे; परन्तु रामको वनमें छोड़कर लौटते समय ये घोड़े किसी तरह अयोध्याकी तरफ आगे नहीं बढ़ना चाहते थे। इन्हें ज्यादा दबाता था, तो आँखोंसे गरम-गरम आँसू पटककर अपनी दीनता दिखाते थे—

मम त्वश्वा निवृत्तस्य न प्रावर्तन्त वर्त्मनि।
उष्णमश्रु विमुञ्चन्तो रामे सम्प्रस्थिते वनम्॥

राजाका शोक रामका वृत्तान्त सुनकर दूना उमड़ आता है। वे एकदम घबरा उठते हैं। कहते हैं—सुमन्त्र! यदि मैंने तुम्हारा कुछ भी भला किया हो तो तुम कृपा करके मुझे रामके पास पहुँचा दो। मेरे प्राण मुझे तकाज़ा कर रहे हैं। वे श्रीरामका दर्शन करके निकलना चाहते हैं—

सूत यद्यस्ति ते किञ्चिन्मया तु सुकृतं कृतम्।
त्वं प्रापयाशु मां रामं प्राणाः संत्वरयन्ति माम्॥

पुत्रके वियोगमें जिस पिताकी यह हालत है भला, उसके वात्सल्यकी कुछ सीमा है? जिसको ऐसा वत्सल-प्रकृति पिता मिला है, भला, उस पुत्रका सौभाग्य साधारण समझा जा सकता है? इसीलिये श्रीरामचन्द्रके मुखसे महर्षि कहलाते हैं कि —'मादृशा वा पितुः पुत्राः।'

राजचर्याके प्रसङ्गमें श्रीरामचन्द्रने पहले कहा था कि 'राजाओंमें प्रायः यह देखा जाता है कि व्यसन पड़नेपर पूर्व वैरको स्मरण करके एकपर एक प्रहार करनेको उद्यत हो जाता है' कहीं इस कथनसे सुग्रीव अपने ऊपर सन्देह-शंका न समझ बैठें, इसलिये श्रीरामचन्द्र आगे कहते हैं कि—'सुहृदो वा भवद्विधाः', 'हे सुग्रीव! तुम्हारे सदृश मित्र सब नहीं होते।' राजचर्यामें शत्रु भी अनेक हो जाते हैं तो मित्र भी बहुत बन जाते हैं; परन्तु मित्रके कार्यके लिये प्राणतकको कुछ नहीं गिननेवाले तुम्हारे सदृश मित्र सब नहीं हुआ करते। बालीके भयसे ऋष्यमूक पर्वतमें छिपे हुए सुग्रीव अबतक बड़ी दीनतासे काल बिता रहे थे। स्वजनोंसे मिलना कैसा, किष्किन्धाकी तरफ मुख करना भी उनके लिये मृत्युके समान था। अपनी प्राणप्रिया रुमासे मिलनेके लिये उनका हृदय अहर्निश तड़पा करता था, किन्तु दर्शनतक दुर्लभ था। किष्किन्धाधिपतिके अनुज होकर भी बड़े दुःखसे अपना समय काट रहे थे। दीन मनुष्य और-और दृष्टियोंसे चाहे दुखी गिना जाता हो परन्तु वह भी रूखी-सूखी खाकर अपने कुटुम्बके साथ आनन्दसे रहता है। यहाँ राज्याधिकारी होनेपर भी राज्य-सुख भोग तो कहाँ, अपनी प्रिय पत्नीका दर्शनतक दुर्लभ हो रहा था। किन्तु श्रीरामके अनुग्रहसे सुग्रीव जिस समय किष्किन्धाके राजा हो गये उनके सब दुःख निवृत्त हो गये। कहाँ एक स्त्रीमात्रसे मिलनेके मनोरथ किया करते थे और कहाँ अब अनन्त सुन्दरियोंसे भरे अन्तःपुरके एकमात्र नायक हो गये। राजलक्ष्मी उनके आगे हाथ बाँधकर खड़ी हो गयी। इतने दिन जो दुःख भोगा था उससे सहस्र-गुणित सुख सम्मुख उपस्थित थे। श्रीरामने भी सब कुछ सोच-समझकर वर्षाके चार मास उन्हें सुख-भोगका समय दे दिया। शरत्-काल आनेपर सुग्रीव अपने दूत भेजकर सीताका पता लगायें, यह बात निश्चित हो गयी।

बहुत कालसे उत्कण्ठित सुग्रीव राजसुख-भोगोंमें निलीन हो गये। बड़े मनोरथ करते-करते यह सुख बड़े कष्टसे प्राप्त हुआ था। बेचारे सुग्रीवका ही क्या दोष था? मेनकामें आसक्त तपस्वी विश्वामित्रतकको दस वर्ष एक दिनकी तरह बीत जाते हैं। इधर श्रीरामचन्द्र जानकीके वियोगमें इस वर्षाके एक-एक दिनको बड़े कष्टसे गिन-गिनकर बिता रहे थे। जैसे ही शरत्-काल आया और सुग्रीवके पाससे अबतक कोई सन्देश नहीं मिला तो श्रीरामको सुग्रीव-पर अत्यन्त क्रोध आया। आपने सुग्रीवके पास लक्ष्मणको भेजा और कहलाया कि 'क्या तुम मुझको भूल गये? क्या तुम क्रुद्ध हुए मुझको फिर सम्मुख युद्धमें देखना चाहते हो? इन्द्रके वज्रके समान मेरी प्रत्यञ्चाका शब्द फिर सुननेकी साध है?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

घोरं ज्यातलनिर्घोषं क्रुद्धस्य मम संयुगे।
निर्घोषमिव वज्रस्य पुनः संश्रोतुमिच्छसि॥

'जिस रास्ते होकर बाली गया है 'न स संकुचितः' वह नष्ट नहीं हुआ है। वह मौजूद है। यहाँ सब टीकाकारोंने 'संकुचित' पदका 'नष्ट' अर्थ किया है; किन्तु महर्षिने जिस स्वारस्यसे 'संकुचित' पदका प्रयोग किया है वह इस अर्थमें नहीं। श्रीराम 'संकुचित' पदसे यह सूचित करते हैं कि 'तुम यह समझकर निश्चिन्त मत रहना कि बाली मर चुका है, अब मुझे क्या डर है? नहीं नहीं, वह रास्ता इतना तंग नहीं कि अब दूसरा जा ही न सके। नहीं, जिसने बालीको मारा है वही तुम्हें भी उसी रास्ते होकर भेज सकता है। अपनी मर्यादामें बने रहो। बालीके रास्तेपर मत जाओ—

न स संकुचितः पन्था येन बाली हतो गतः।
समये तिष्ठ सुग्रीव मा बालिपथमन्वगाः॥

'याद रखना, पहले एक बाणसे अकेले बालीको ही मारा था; किन्तु जो तुम सत्यको उलाँघोगे तो तुम्हें बन्धु-बान्धवोंसहित मारूँगा।' जिसको अग्निके साक्ष्यसे मित्र बना चुके थे उसके प्रति यह वाक्य-प्रयोग, मैं समझता हूँ, कुछ कम उग्र नहीं है।

फिर लक्ष्मण तो अभी नवयुवक थे। उन्हें तो क्रोध आ भी जल्दी ही जाता था। वह जिस समय किष्किन्धाके दरवाजेपर पहुँचे, उनकी चढ़ी हुई त्योरियाँ और उष्ण निःश्वास देखकर वीर वानरलोग घबरा गये। लक्ष्मणने सुग्रीवके अन्तःपुरके पास पहुँचकर प्रत्यञ्चाका शब्द किया। उस भयंकर शब्दको सुनकर सुग्रीव घबरा उठा। उसने लक्ष्मणके क्रोधको शान्त करनेके लिये पहले ताराको भेजा, पीछे आप मिला। परन्तु इतनेपर भी लक्ष्मणके व्यङ्ग्यबाण कुछ कम तीव्र न थे। उन्होंने सुग्रीवसे कहा कि क्या तुमने मनुका पद्य सुना है—

गोघ्ने चैव सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा।
निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः॥

अर्थात् 'तुम कृतघ्न हो।' यही नहीं वे आगे कहते हैं—

अनार्यस्त्वं कृतघ्नस्त्वं मिथ्यावादी च वानर।

परन्तु सुग्रीव नतमस्तक होकर सब कुछ सुन लेते हैं। ताराद्वारा अपना अपराध क्षमापन कराते हैं। जब लक्ष्मणकी भृकुटि कुछ उतरने लगती है तब उनका भय कुछ कम होता है—

लक्ष्मणास्सुमहत्त्रासं वस्त्रं क्लिन्नमिवास्यजत्।

वह इस समय किष्किन्धाके राजा थे। असंख्यात वानर उनके इशारेपर नाच रहे थे। वानर भी कैसे, श्रीमारुतिके समान, जो समुद्र उलाँघकर लंकाधिपतितकको श्रीरामचन्द्रका प्रभाव समझा आये थे। जब इतना बल-सञ्चय उनके पास था और अपना कार्य भी सिद्ध हो चुका था, फिर राजसिंहासनस्थ होकर भी इस तरहके मर्मभेदी वचन सह जाना प्रत्येक राजाओंका काम नहीं। परन्तु सुग्रीव इन सबके उत्तरमें कहते हैं—

प्रणष्टा श्रीश्च कीर्तिश्च कपिराज्यं च शाश्वतम्।
रामप्रसादात्सौमित्रे पुनः प्राप्तमिदं मया॥

आप कहते हैं, खोई हुई लक्ष्मी और कीर्ति तथा यह पारम्परिक किष्किन्धाका राज्य हे लक्ष्मण! मुझे श्रीरामचन्द्रकी कृपासे ही मिला है। मैं उन रामचन्द्रकी क्या सहायता कर सकता हूँ, जिनके प्रत्यञ्चाके शब्दमात्रसे पर्वतोंसहित यह पृथ्वी डोल उठती है। मैं तो—

अनुयात्रां नरेन्द्रस्य करिष्येऽहं नरर्षभ।

वह जिस समय रावणको मारने जायँगे उस समय पीछे-पीछे मैं भी चला जाऊँगा।

प्राणपणसे सब तरहकी सहायता करता हुआ भी जो इस तरह अपनेमें विनीत भाव रखता है ऐसे मित्र क्या सर्वत्र सुलभ हैं? इसीलिये श्रीरामचन्द्र कहते हैं कि 'सुहृदो वा भवद्विधाः—हे सुग्रीव! तुम्हारे समान मित्र भी सब नहीं होते।'

(क्रमशः)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मेरा स्वप्न

(लेखक—एक दर्शक)

आज शरद्-पूर्णिमा है, निमल गगनस्थलमें सुधाकर अपनी स्वच्छ चाँदनी छिटकाते हुए खिलखिलाकर हँस रहे हैं। उनके चारों ओर अगणित तारागण उदय होकर शोभा बढ़ा रहे हैं, मानों किसीने चारों ओर प्रकाशमय मोती बखेर दिये हैं। इधर पतित-पावनी कलिकलुषनाशिनी कालिन्दी न्यारी ही छटा दिखा रही हैं। इनका निर्मल जल बड़े वेगसे बह रहा है। त्रिविध वायुके सञ्चारसे उनके जलमें अनेक प्रकारकी तरङ्गें उठ रही हैं। कहीं-कहीं तीरपर खड़े हुए वृक्षोंकी जड़ोंसे टकराकर कल-कल-ध्वनि हो रही है, जो सुननेवालोंके कर्ण-कुहरमें प्रवेशकर आनन्दा-मृतकी मधुर धारा बहा रही है। तीरपर भाँति-भाँति-के वृक्ष केला-कचनार, आम, जामुन, कटहल, बेर, पलास, चम्पा, चमेली, केतकी, जुही इत्यादि फूलों और फलोंसे लदे हैं, जिनपर बैठकर नाना प्रकारके पक्षी कलरव कर रहे हैं। कोयलोंकी कूहू-ध्वनि, पपीहोंकी पी-पुकार और भौंरोंका गुञ्जार चित्तको बरबस अपनी ओर खींच रहा है। ऐसे ही समयमें मैं घूमता-फिरता प्राकृतिक छटाको देखता हुआ कुछ दूर निकल गया, तो क्या देखता हूँ कि एक अति कमनीय-कान्ति बालक श्यामवर्ण, कमलनयन, पीताम्बर पहने, कछनी काछे, सब शृङ्गार किये, सिरपर मोर-मुकुट धारे, नटवर-वेष बनाये, चरण उठाये अधरोंपर वंशी धारे मन्द-मन्द मुसकुरा रहा है। फिर देखते-ही-देखते वहाँ बहुत-सी दिव्य देवियाँ नाना प्रकारके रंग-बिरंगे वस्त्रोंको पहने सुन्दर शृंगार किये आ पहुँचीं। सबने उस बालकका अभिनन्दन किया। इसके बाद उस विचित्र बालकने कुछ रूखे-से होकर कहा कि रातके समय इस भूत-प्रेतकी बिरियाँमें भयावनी बाटसे तुमलोग इस महावनमें क्यों आयीं? ऐसा साहस करना स्त्रियोंका धर्म नहीं है। कुलशीलवती स्त्रियोंका परम धर्म अपने पतियोंकी सेवा-शुश्रूषा करना और अपने गृहकार्यको सुदक्षतासे करते रहना है। अतएव अब तुमलोग तुरन्त लौट जाओ। इतना वचन उस बालकके मुँहसे सुनते ही सब युवतियाँ मानों अपार शोकसागरमें डूब गयीं और घबराकर रो-रोकर कहने लगीं। 'अहो मोहन! तुम बड़े ही निष्ठुर हो। पहले तो तुमने वंशी बजाकर हमारा मन हरण कर लिया, अब कठोर वचनोंसे प्राण भी लिया चाहते हो।' श्यामसुन्दर मुसकुराये और सबको साथ लेकर यमुना-किनारे पहुँचे। वहाँ एक मण्डलाकार चबूतरा बना था, जिसमें चारों ओर मोती जड़े हुए सपल्लव केलेके खम्भ लगाये हुए थे। उनमें वन्दनवार और भाँति-भाँति-के फूलोंकी माला बाँधी हुई थी। वहाँ जाकर सबने अनेक प्रकारके वाद्ययन्त्रोंमें सुर मिलाकर नाचना-गाना आरम्भ किया। उस समय वे सब नाचने-गानेमें इतने तल्लीन हुए कि किसीको भी देहकी सुधि न रही। अबतक तो मैं छुक-छिपकर यह सब देख रहा था पर अब मुझसे नहीं रहा गया। मैंने चाहा कि मैं भी उनके पास जाकर उनके सङ्ग नाचूँ, पर जैसे ही मैंने दौड़कर जाना चाहा, वैसे ही मेरी माताने आकर मुझे जगाया और आवाज दी कि क्या आज स्नान करने नहीं जाओगे। बस, निद्रा भङ्ग हो गयी, देखा सूर्योदय होनेमें अब अधिक देर नहीं है। मेरा उल्लास मनमें ही रह गया और मैं हाथ मलता रह गया। जब यह घटना याद आती है तो शरीर रोमाञ्चित हो जाता है और नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगती है। यह स्वप्नकी सच्ची घटना है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

घोरं ज्यातलनिर्घोषं क्रुद्धस्य मम संयुगे।
निर्घोषमिव वज्रस्य पुनः संश्रोतुमिच्छसि॥

'जिस रास्ते होकर बाली गया है 'न स संकुचितः' वह नष्ट नहीं हुआ है। वह मौजूद है। यहाँ सब टीकाकारोंने 'संकुचित' पदका 'नष्ट' अर्थ किया है; किन्तु महर्षिने जिस स्वारस्यसे 'संकुचित' पदका प्रयोग किया है वह इस अर्थमें नहीं। श्रीराम 'संकुचित' पदसे यह सूचित करते हैं कि 'तुम यह समझकर निश्चिन्त मत रहना कि बाली मर चुका है, अब मुझे क्या डर है? नहीं नहीं, वह रास्ता इतना तंग नहीं कि अब दूसरा जा ही न सके। नहीं, जिसने बालीको मारा है वही तुम्हें भी उसी रास्ते होकर भेज सकता है। अपनी मर्यादामें बने रहो। बालीके रास्तेपर मत जाओ—

न स संकुचितः पन्था येन बाली हतो गतः।
समये तिष्ठ सुग्रीव मा बालिपथमन्वगाः॥

'याद रखना, पहले एक बाणसे अकेले बालीको ही मारा था; किन्तु जो तुम सत्यको उलाँघोगे तो तुम्हें बन्धु-बान्धवोंसहित मारूँगा।' जिसको अग्निके साक्ष्यसे मित्र बना चुके थे उसके प्रति यह वाक्य-प्रयोग, मैं समझता हूँ, कुछ कम उग्र नहीं है।

फिर लक्ष्मण तो अभी नवयुवक थे। उन्हें तो क्रोध आ भी जल्दी ही जाता था। वह जिस समय किष्किन्धाके दरवाजेपर पहुँचे, उनकी चढ़ी हुई त्योरियाँ और उष्ण निःश्वास देखकर वीर वानरलोग घबरा गये। लक्ष्मणने सुग्रीवके अन्तःपुरके पास पहुँचकर प्रत्यञ्चाका शब्द किया। उस भयंकर शब्दको सुनकर सुग्रीव घबरा उठा। उसने लक्ष्मणके क्रोधको शान्त करनेके लिये पहले ताराको भेजा, पीछे आप मिला। परन्तु इतनेपर भी लक्ष्मणके व्यङ्ग्यबाण कुछ कम तीव्र न थे। उन्होंने सुग्रीवसे कहा कि क्या तुमने मनुका पद्य सुना है—

गोघ्ने चैव सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा।
निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः॥

अर्थात् 'तुम कृतघ्न हो।' यही नहीं वे आगे कहते हैं—

अनार्यस्त्वं कृतघ्नस्त्वं मिथ्यावादी च वानर।

परन्तु सुग्रीव नतमस्तक होकर सब कुछ सुन लेते हैं। ताराद्वारा अपना अपराध क्षमापन कराते हैं। जब लक्ष्मणकी भृकुटि कुछ उतरने लगती है तब उनका भय कुछ कम होता है—

लक्ष्मणास्यसुमहत्त्रासं वस्त्रं क्लिन्नमिवात्यजत्।

वह इस समय किष्किन्धाके राजा थे। असंख्यात वानर उनके इशारेपर नाच रहे थे। वानर भी कैसे, श्रीमारुतिके समान, जो समुद्र उलाँघकर लंकाधिपतितकको श्रीरामचन्द्रका प्रभाव समझा आये थे। जब इतना बल-सञ्चय उनके पास था और अपना कार्य भी सिद्ध हो चुका था, फिर राजसिंहासनस्थ होकर भी इस तरहके मर्मभेदी वचन सह जाना प्रत्येक राजाओंका काम नहीं। परन्तु सुग्रीव इन सबके उत्तरमें कहते हैं—

प्रणष्टा श्रीश्च कीर्तिश्च कपिराज्यं च शाश्वतम्।
रामप्रसादात्सौमित्रे पुनः प्राप्तमिदं मया॥

आप कहते हैं, खोई हुई लक्ष्मी और कीर्ति तथा यह पारम्परिक किष्किन्धाका राज्य हे लक्ष्मण! मुझे श्रीरामचन्द्रकी कृपासे ही मिला है। मैं उन रामचन्द्रकी क्या सहायता कर सकता हूँ, जिनके प्रत्यञ्चाके शब्दमात्रसे पर्वतोंसहित यह पृथ्वी डोल उठती है। मैं तो—

अनुयात्रां नरेन्द्रस्य करिष्येऽहं नरर्षभ।

वह जिस समय रावणको मारने जायँगे उस समय पीछे-पीछे मैं भी चला जाऊँगा।

प्राणपणसे सब तरहकी सहायता करता हुआ भी जो इस तरह अपनेमें विनीत भाव रखता है ऐसे मित्र क्या सर्वत्र सुलभ हैं? इसीलिये श्रीरामचन्द्र कहते हैं कि 'मुद्धदो वा भवद्विधाः—हे सुग्रीव! तुम्हारे समान मित्र भी सब नहीं होते।' (क्रमशः)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मेरा स्वप्न

(लेखक—एक दर्शक)

आज शरद्-पूर्णिमा है, निमल गगनस्थलमें सुधाकर अपनी स्वच्छ चाँदनी छिटकाते हुए खिलखिलाकर हँस रहे हैं। उनके चारों ओर अगणित तारागण उदय होकर शोभा बढ़ा रहे हैं, मानों किसीने चारों ओर प्रकाशमय मोती बखेर दिये हैं। इधर पतित-पावनी कलिकलुषनाशिनी कालिन्दी न्यारी ही छटा दिखा रही हैं। इनका निर्मल जल बड़े वेगसे बह रहा है। त्रिविध वायुके सञ्चारसे उनके जलमें अनेक प्रकारकी तरङ्गें उठ रही हैं। कहीं-कहीं तीरपर खड़े हुए वृक्षोंकी जड़ोंसे टकराकर कल-कल-ध्वनि हो रही है, जो सुननेवालोंके कर्ण-कुहरमें प्रवेशकर आनन्दा-मृतकी मधुर धारा बहा रही है। तीरपर भाँति-भाँति-के वृक्ष केला-कचनार, आम, जामुन, कटहल, बेर, पलास, चम्पा, चमेली, केतकी, जुही इत्यादि फूलों और फलोंसे लदे हैं, जिनपर बैठकर नाना प्रकारके पक्षी कलरव कर रहे हैं। कोयलोंकी कूहू-ध्वनि, पपीहोंकी पी-पुकार और भौंरोंका गुञ्जार चित्तको बरबस अपनी ओर खींच रहा है। ऐसे ही समयमें मैं घूमता-फिरता प्राकृतिक छटाको देखता हुआ कुछ दूर निकल गया, तो क्या देखता हूँ कि एक अति कमनीय-कान्ति बालक श्यामवर्ण, कमलनयन, पीताम्बर पहने, कछनी काछे, सब शृङ्गार किये, सिरपर मोर-मुकुट धारे, नटवर-वेष बनाये, चरण उठाये अधरोंपर वंशी धारे मन्द-मन्द मुसकुरा रहा है। फिर देखते-ही-देखते वहाँ बहुत-सी दिव्य देवियाँ नाना प्रकारके रंग-बिरंगे वस्त्रोंको पहने सुन्दर शृंगार किये आ पहुँचीं। सबने उस बालकका अभिनन्दन किया। इसके बाद उस विचित्र बालकने कुछ रूखे-से होकर कहा कि रातके समय इस भूत-प्रेतकी बिरियाँमें भयावनी बाटसे तुमलोग इस महावनमें क्यों आयीं? ऐसा साहस करना स्त्रियोंका धर्म नहीं है। कुलशीलवती स्त्रियोंका परम धर्म अपने पतियोंकी सेवा-शुश्रूषा करना और अपने गृहकार्यको सुदक्षतासे करते रहना है। अतएव अब तुमलोग तुरन्त लौट जाओ। इतना वचन उस बालकके मुँहसे सुनते ही सब युवतियाँ मानों अपार शोकसागरमें डूब गयीं और घबराकर रो-रोकर कहने लगीं। 'अहो मोहन! तुम बड़े ही निष्ठुर हो। पहले तो तुमने वंशी बजाकर हमारा मन हरण कर लिया, अब कठोर वचनोंसे प्राण भी लिया चाहते हो।' श्यामसुन्दर मुसकुराये और सबको साथ लेकर यमुना-किनारे पहुँचे। वहाँ एक मण्डलाकार चबूतरा बना था, जिसमें चारों ओर मोती जड़े हुए सपल्लव केलेके खम्भ लगाये हुए थे। उनमें बन्दनवार और भाँति-भाँति-के फूलोंकी माला बाँधी हुई थी। वहाँ जाकर सबने अनेक प्रकारके वाद्ययन्त्रोंमें सुर मिलाकर नाचना-गाना आरम्भ किया। उस समय वे सब नाचने-गानेमें इतने तल्लीन हुए कि किसीको भी देहकी सुधि न रही। अबतक तो मैं लुक-छिपकर यह सब देख रहा था पर अब मुझसे नहीं रहा गया। मैंने चाहा कि मैं भी उनके पास जाकर उनके सङ्ग नाचूँ, पर जैसे ही मैंने दौड़कर जाना चाहा, वैसे ही मेरी माताने आकर मुझे जगाया और आवाज दी कि क्या आज स्नान करने नहीं जाओगे। बस, निद्रा भङ्ग हो गयी, देखा सूर्योदय होनेमें अब अधिक देर नहीं है। मेरा उल्लास मनमें ही रह गया और मैं हाथ मलता रह गया। जब यह घटना याद आती है तो शरीर रोमाञ्चित हो जाता है और नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगती है। यह स्वप्नकी सच्ची घटना है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रेम-दिवाने

(लेखक—'श्रीप्रेम-पथ-पथिक')

प्रेम-दिवाने जे भये, कहैं बहकते बैन।
कबहूँ मुँह हाँसी छुटै, कबहूँ टपकै नैन॥

सचमुच जिन्हें प्रेमकी मस्ती चढ़ गयी है, जिन्हें प्रेमप्यालेके मतवाले मदकी एक बूँदका भी रसास्वादन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है और जो प्रेम-पथमें दिवाने हो गये हैं, वास्तवमें वे ही उस प्रेमीके दीदारको पानेके हकदार हैं और ऐसे ही दिवाने प्रायः—

'मैं मोर बनके मोहन, नाचा करूँगा बन-बन।
तू श्याम घटा बनकर आँखोंमें समा जाना॥

—की तान छेड़ते पाये जाते हैं। उन्हें राहगीरोंसे लज्जा नहीं, देखनेवालोंसे भय नहीं, पुलिसकी परवा नहीं और जानकारोंकी चिन्ता नहीं। वे तो अपनी ही मस्तीमें मस्त रहते हैं, अपनी ही धुनके घोड़ेपर सवार रहते हैं और अपनी अनोखी डफली बजानेमें ही लगे रहते हैं।

इन प्रेम-दिवानोंकी दुनिया ही न्यारी होती है, इनका रोना-हँसना विचित्र होता है, उठना-बैठना अनोखा होता है और खाना-पीना भी निराला होता है। इनको रोने-हँसने, जागने-सोने और रहने-सहनेका कोई पता ही नहीं रहता। देखनेवालेको मालूम होता है मानों इनकी कोई अत्यन्त प्यारी चीज़ खो गयी है, जिसकी तलाशमें ये रातों गलियोंकी खाक छानते फिरते हैं। यदि कहीं इन्हें 'संतन सँग बैठ-बैठ लोक-लाज खोई' वाली मीरा देख ले तो वह इनके सुरमें सुर मिलाकर अवश्य गाने लगे—

हे री मैं तो प्रेम-दिवानी मेरो दरद न जाणै कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी किस बिध सोणो होय॥
गगन-मँडलपर सेज पियाकी, किस बिध मिलणो होय।
घायलकी गति घायल जाने, जो कोइ घायल होय॥

वास्तवमें मीराने बात तो बड़े पतेकी कही है। भला, जिसे कभी प्रेम-बाण नहीं लगा हो वह इस दर्दका हाल क्या जाने! जो सूलीपर चढ़ गया है वह कैसे सोये? सचमुच इस प्रेम-प्यालेमें एक अजीब नशा है। जिसने एक बार पी लिया वह बेदामका गुलाम बन गया। उसे सोते-बैठते, हँसते-रोते और चलते-फिरते कभी चैन नहीं। इस मर्जकी दवा भी मिलना मुश्किल ही है। तारीफ तो यह है कि 'ज्यों-ज्यों दवाकी मर्ज बढ़ता ही गया।' कहीं घटनेका नाम नहीं। आँखें क्या हो गयीं मानों सावन-भादोंकी उमड़ी हुई गंगा। इसीलिये तो महात्मा कबीरने कहा है—

प्रेम-पियाला जो पिये, सीस दच्छिना देय।
लोभी सीस न दे सके, नाम प्रेमका लेय॥

ओह! इस दिव्य प्रेमकी आग भी बड़ी ग़जबकी है, जहाँ एक बार लग गयी फिर कभी बुझती ही नहीं। नींद और खाना-पीना सब हराम हो जाता है। इसका इलाज करनेवाले वैद्य-डाक्टर भी जल्दी नहीं मिलते। कहीं एकाध नीम-हकीम मिल भी गये तो फीस इतनी माँगते हैं और ओषधिका मूल्य इतना अधिक चाहते हैं कि मरीजके मूल्यसे भी मर्जकी कीमत बढ़ जाती है। जब मीराको प्रेम-लहर सताने लगी तो मीराने अपने इस नये मर्जकी दवाके लिये न मालूम कितनी गलियोंकी खाक छान डाली, पर कोई चतुर वैद्य न मिला। अन्तमें खोजते-ढूँढ़ते उसने बिलख-बिलखकर कहा—

दरदकी मारी बन-बन डोलूँ, बैद मिल्यो नहिं कोय।
मीराकी प्रभु पीर मिटै जब बैद साँवलियो होय॥

वास्तवमें 'साँवलिया' वैद्य मिल जाय तो फिर बेड़ा पार हो जाय।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इतना होनेपर भी यह प्रेमकी आग है बड़ी शीतल, जो इसमें कूद पड़ता है वही स्वर्गीय शीतलताका अनुभव करता है। परन्तु देखनेमें यह बड़ी भयानक है। इसीसे पूरे त्यागी विरागी भगवत्-रस-रसीले ही इस सुलगती हुई आगमें कूदनेका साहस करते हैं। इसके अधिकारी उँगलियोंपर गिने जाने लायक हैं, क्योंकि—

सीस उतारै भुइँ धरै, तापर राखै पाँव।
दास कबीरा यों कहे, ऐसा हो तो आव॥

बात भी ठीक ही है। प्रेम-पथपर चलना क्या है मानों दु-धारी तलवारकी धारपर चलना है। जरा-सा इधर-उधर हुए कि बस, अड़ड़ड़ड़धड़ाम। पर इससे क्या? प्रेम-पथ-पथिक इन अड़चनोंसे डरनेवाले थोड़े ही हैं। वे तो हर समय लोहेके चने चबानेको तैयार रहते हैं और उनका एक पैर सदैव सूलीही-पर रहता है। वे तो इस बातके लिये तैयार ही रहते हैं कि उनके सिरका गेंद बनाकर बीच बाजारमें खेला जाय। उनके शरीरकी बोटियाँ पशु और पक्षियोंको खिला दी जायँ। उन्हें कड़ी-से-कड़ी यातनाएँ दी जायँ और उन्हें नुकीले काँटोंपर इसलिये सुलाया जाय कि जिससे वे प्रेम-प्यारे मीतको एक पलके लिये भी भूल न जायँ।

प्रेम-दिवानोंकी दुनिया और हमारी दुनियामें बड़ा अन्तर है, आसमान-जमीनका फर्क है। हमारी दुनियामें प्रेमका रूप इतना बदल गया है कि हम प्रेमको समझ ही नहीं सकते। हम कामका ही प्रेमके नामपर प्रयोग करते हैं और पवित्र प्रेमको कलङ्कित और कलुषित करनेकी चेष्टामें अपना ही मुँह काला करते हैं। सच पूछो तो प्रेमके सच्चे अधिकारी प्रेम-दिवाने ही हो सकते हैं जो प्रेमकी वेदीपर हँसते-हँसते बलिदान हो जानेमें अपना अहोभाग्य समझते हैं।

प्रेमके दिवाने थे भक्त हरिदासजी। यवनोंने उनके साथ कैसे-कैसे अमानुषिक अत्याचार किये पर वाह रे प्रेम-दिवाने! तूने उफतक नहीं किया!! कोड़ोंकी मारसे शरीरकी चमड़ी छिल जाने और रक्तकी धारा बहनेपर भी तूने एक वीर और सच्चे प्रेमीकी भाँति उन काजी नामधारी अत्याचारियोंके लिये भगवान्‌से क्या ही उत्तम प्रार्थना की। भक्त हरिदासने अपने प्रभुसे कहा—'हे प्रभु! ये भूले हुए हैं। इन भूले हुए मनुष्योंको तू क्षमा प्रदान कर। यदि इन्हें समझ ही रहती तो मेरे साथ ऐसा क्रूर व्यवहार क्यों करते। हे पतितपावन! इन पतितोंका उद्धार कर, इनके अपराधोंको क्षमा कर। हे दयासिन्धु! कहीं ऐसा न हो कि मेरे कारण इन्हें कष्ट भोगना पड़े। मुझे चाहे जितना कठोर दण्ड दे, सहर्ष स्वीकार है पर हे नाथ! इन कुमार्गगामियोंको क्षमा प्रदान कर इन्हें सन्मार्गपर ले आ।'

प्रेमकी दिवानी थी भक्तिमती मीरा। उसे अनेक कष्ट दिये गये। उसपर अनेक लाञ्छन लगाये गये। उसके मारनेके लिये अनेकों उपाय किये गये, पर वाह री मीरा! तू तो उस प्रेमीका दीदार पा चुकी थी, तुझे तो उस प्रेम-प्यालेका चसका लग चुका था। भला, तू उसे कैसे छोड़ सकती थी। लोग हजार अत्याचार तुझपर करें। तेरे सम्बन्धी तुझे मारनेके लिये लाख उपाय करें पर तू तो उस प्रेमीके हाथ बिक चुकी थी जिसके राज्यमें दुःखका नाम भी नहीं और जिसके दामनकी छाँहमें दुनियाकी परवा नहीं।

बात भी ठीक है। जिसपर उस प्रभुकी दया हो जाती है फिर वह किसीके हाथ कैसे लग सकता है। वह प्रेम-दिवाना संसारका व्यवहार जानता ही नहीं। मान-अपमानका उसे बोध ही नहीं रहता। हानि-लाभका उसे ज्ञान ही नहीं। वह तो बस, अपने प्रेमीके लिये ही बेहाल रहता है।

'प्रेम-गली अति साँकरी, तामें दो न समाय।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्मविद्या और गृहस्थाश्रम

(लेखक—स्वामीजी श्रीनित्यानन्दजी भारती)

ब्रह्मविद्या अथवा आत्मतत्त्वज्ञानके विषयमें कुछ लोगोंकी यह धारणा है कि यह विद्या गृहस्थाश्रममें उपयोगी नहीं है और न इसके द्वारा कोई सच्चा गृहस्थ सुखी ही हो सकता है। इसी कारण कुछ लोगोंका यह भी विश्वास है कि ब्रह्मविद्या गृहस्थाश्रमका त्याग करनेपर ही प्राप्त की जा सकती है अथवा गृहस्थाश्रमका ब्रह्मविद्यामें अधिकार ही नहीं है। हम इस लेखमें इसी विषयपर विचार करेंगे कि क्या वास्तवमें गृहस्थाश्रम ब्रह्मविद्याका अनधिकारी है? क्या गृहस्थ होते हुए ब्रह्मविद्याका उपदेश नहीं किया जा सकता? क्या उसको इसीलिये आत्मतत्त्वज्ञानका उपदेश नहीं करना चाहिये कि वह गृहस्थी है?

यद्यपि इस विषयपर शब्दप्रमाण ही अपेक्षित है तथापि युक्ति-विचारके लिये भी इस क्षेत्रमें पर्याप्त स्थान है अतः पहले यौक्तिक विचार किया जाता है—

कहा जाता है कि गृहस्थ कर्मकाण्डका आश्रम है और कर्मकाण्ड अपने उपकरणों अर्थात् यज्ञादिकी सामग्रीके बिना सिद्ध नहीं हो सकता अतएव गृहस्थमें संग्रहके बिना कार्य नहीं चल सकता और ब्रह्मविद्या त्यागका उपदेश करती है। अतः संग्रह और त्याग परस्परविरोधी होनेसे एक आश्रमके विषय नहीं हैं, पृथक्-पृथक् आश्रमोंके विषय हैं। इसीलिये गृहस्थाश्रमका ब्रह्मविद्यामें अधिकार नहीं है। परन्तु यह कहना ठीक नहीं, क्योंकि कर्म और त्यागसे यहाँ निष्कामभावनाका उद्देश्य है। त्याग कामना—स्वार्थ और घृणायोग्य पाप कर्मोंका है न कि निष्काम शुभ कर्मोंका। हम ऐसे लोगोंको देख सकते हैं कि जो अपना तुच्छ स्वार्थ न रखकर उपकार-बुद्धि अथवा चित्तशुद्धिके लिये कर्म करते हैं और ऐसे भी लोगोंको देख सकते हैं जो त्यागी और ज्ञानी कहलाते हुए भी संग्रही हैं। कर्मका सर्वथा त्याग करना असम्भव है। कामना अथवा स्वार्थ ही दुःखका हेतु है। शरीर-रक्षाके लिये कर्म करना ही पड़ेगा, चित्तको शुद्ध रखनेके लिये सत्सङ्ग और स्वाध्यायादि करने ही होंगे। कुछ-न-कुछ संग्रह किये बिना यह काण्ड भी पूरे नहीं हो सकते। अतः एक ही आश्रममें यह एक होकर रह सकते हैं। एक गृहस्थी आसक्ति और फलकामनाको त्यागकर दान-पुण्य और अन्यान्य कर्तव्य कर्मोंको करता हुआ त्यागी कहला सकता है और एक संन्यासी या बाह्य त्यागी स्वार्थमें लिप्त होकर अथवा मनमें संसारके भोगोंकी लालसा रखकर संन्यासी या त्यागी नहीं कहा जा सकता।

कहा जाता है कि यदि गृहस्थी ब्रह्मविद्याको प्राप्त कर लेगा तो वह भी ब्रह्मविद्याका उपदेशक या आचार्य हो जायगा जिससे संन्यासियों या त्यागियोंकी मान-मर्यादामें फ़र्क़ आ सकता है। परन्तु ऐसा नहीं है यह दोष वहाँ आ सकता है जहाँ ब्रह्मविद्याका उपदेश करनेवाला महात्मा अधिकारी-अनधिकारीका विचार किये बिना ही ब्रह्मविद्याकी मान-मर्यादामें फ़र्क़ लाता है। वास्तवमें जो शान्त और सज्जनोचित-स्वभाववाला सात्त्विक मनुष्य है उसको उपदेश देनेसे कभी हानिकी आशङ्का नहीं करनी चाहिये और यदि ऐसा गृहस्थी उपदेष्टा हो जावे तो उसे आचार्य माननेमें भी सङ्कोच नहीं करना चाहिये। कोई जिज्ञासु यदि ब्रह्मविद्याका सच्चा ग्राहक है तो उसे किसी भी ब्रह्मज्ञानीका अनादर नहीं करना चाहिये। उसका यह काम नहीं है कि वह लोगोंके बाहरी चिह्नोंकी उधेड़-बुनमें लगा रहे अपितु उसे आत्मतत्त्वके विषयमें किसी भी ज्ञानीसे अपनी तृष्णा शान्त कर लेनी चाहिये।

यह भी कहा जाता है कि—यदि गृहस्थाश्रममें ही ब्रह्मविद्याका उपार्जन कर लिया जावेगा तो संन्यास या त्यागका आश्रम अनावश्यक हो जावेगा। यह कहना भी ठीक नहीं। त्यागका महत्त्व सदा ही रहता है। ज्ञानी गृहस्थ भी वानप्रस्थ या संन्यासकी इसलिये दीक्षा लेना चाहेगा कि उसे ज्ञानानुकूल आचार सम्पादन करने और विघ्न-बाधाओंसे परे रहनेमें सहायता मिले; यही कारण है कि ब्रह्मविद्याके आचार्य ब्रह्मर्षि याज्ञवल्क्यने पूर्ण तत्त्ववेत्ता होते हुए भी संन्यास लेना—नहीं-नहीं संन्यास करना आवश्यक समझा था। याज्ञवल्क्य-जैसे पूर्ण ब्रह्मज्ञानी, आजकलके गृहस्थ नहीं हैं जो अड़ियल टट्टूकी तरह गृहस्थमें पड़े रहना ही जीवनकी इतिश्री समझते हैं और मोहका त्याग न करनेमें ही ज्ञानका प्रयोग जानते हैं। अतः

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

घबराना नहीं चाहिये। वर्ण और आश्रमोंकी व्यवस्था ईश्वरीय ज्ञानके आधारपर व्यवस्थित है। वह स्वयं मनुष्यों-को अपनी ओर आकृष्ट करेगी और उसपर चलनेके लिये विवश करेगी।

आशय यह है कि आश्रम-व्यवस्था होनेपर भी ब्रह्म-विद्याका उपदेश योग्य गृहस्थको दिया जा सकता है और इसप्रकार करनेसे ब्रह्मविद्याका दुरुपयोग नहीं समझा जा सकता। सच पूछिये तो ब्रह्मविद्याकी—यह जाननेकी कि आत्मा असंग है, निर्लेप है, शोकसे परे है, आत्मा जन्म और मरणमें नहीं आता—आत्माका कुछ करनेसे लाभ नहीं और न करनेसे कुछ हानि नहीं, इत्यादि विचारोंकी—जितनी आवश्यकता संसारकी उलझनोंमें फँसे हुए गृहस्थीके लिये हैं उतनी और किसीके लिये नहीं। जैसे मैले वस्त्रोंके लिये साबुनकी आवश्यकता है, शुद्ध और साफ-सुथरोंके लिये नहीं, जैसे डूबते या गोते खाते हुए व्यक्तिके लिये नौकाकी आवश्यकता है, परन्तु किनारेपर पहुँचे हुएके लिये नहीं, अथवा रोगीको ओषधिकी आवश्यकता है, नीरोगके लिये नहीं, या जैसे बाल-बच्चेवाले दरिद्रके लिये घर और धन-धान्यादिकी आवश्यकता है इत्यादि। इसी प्रकार गृहस्थाश्रमके लिये ब्रह्मविद्याकी आवश्यकता है।

अस्तु, यह विचार यौक्तिक दृष्टिसे किया गया है परन्तु इसपर श्रौत या प्रामाणिक दृष्टि भी डाली जानी चाहिये इसलिये इतने आवश्यक विचारके बाद अब हम यह विचार करते हैं कि इस विषयमें श्रुति-स्मृतिका क्या सिद्धान्त है और ऐतिहासिक दृष्टिसे क्या सिद्ध होता है।

(१) यजुर्वेदकी माध्यन्दिनी शाखाकी बृहदारण्यक उपनिषद्में कई स्थानोंपर याज्ञवल्क्य ऋषिका उपदेश मिलता है जो कि कहीं जनकको और कहीं अन्य ऋषियोंको तथा स्त्रियोंको उपदेश किया गया है। तीसरे और चौथे अध्याय-में इसका विस्तार है। इस उपदेशका विषय आत्मविज्ञान और ब्रह्मकी पहचान है और उपदेश करनेवाले तथा शङ्काओंका समाधान करनेवाले वेदाचार्य ब्रह्मवेत्ता याज्ञवल्क्य हैं तथा उपदेश्य या शिष्य महाराजा जनक, तथा लाह्यायन, उद्दालक और शाकल्यादि ऋषि हैं और इसी श्रेणीमें गार्गीदेवी और मैत्रेयी भी हैं। ये दोनों देवियाँ उच्च ब्राह्मण-कुलकी पुत्रियाँ हैं। दोनों परम विदुषी हैं। गार्गी, ऋषिका—ऋषिकोटिकी स्त्री हैं और मैत्रेयी ऋषि याज्ञवल्क्यकी धर्मपत्नी है। यहाँ यह ध्यान रखनेयोग्य बात है कि याज्ञवल्क्य गृहस्थाश्रमी हैं और मैत्रेयी भी गृहस्थिनी है, राजा जनक और उद्दालक भी गृहस्थ हैं—गुरु और शिष्य दोनों गृहस्थ हैं।

(२) प्राचीनशाल, सत्ययज्ञ, इन्द्रद्युम्न, जन और बुडिल—ये पाँच महाश्रोत्रिय और बड़े भारी गृहस्थ एकत्रित होकर सोचने लगे कि 'को न आत्मा किं ब्रह्म' कौन आत्मा है और कौन ब्रह्म है। जब निर्णय न हो सका तो यह तै हुआ कि आजकल हमारे प्रान्तमें उद्दालक ऋषि वैश्वानरविद्याका अच्छा जानकार है, चलो उसकी शरणमें चलकर आत्मज्ञान लाभ करें। जब ये लोग उद्दालकके पास पहुँचे तो उद्दालकने कहा कि 'चलो—महाराज अश्वपतिके पास चलें। वह हमें ब्रह्मविद्याके रहस्य बतलावेगा।' इन लोगोंको अपने ब्राह्मणत्वका विचार था अतः राजाने टालमटोल की परन्तु जब दूसरे दिन समित्पाणि होकर शिष्यभावको स्वीकार कर लिया और राजाको गुरु मान लिया तो उसने ऋषियोंको ब्रह्मविद्याका उपदेश किया। इस कथामें ऋषियोंने महाराज अश्वपतिके लिये 'भगवो राजन् भगवान्' महाराजका शब्द प्रयुक्त किया है। स्मरण रहे कि भगवान् शब्द उपनिषदोंमें ब्रह्मविद्याके आचार्यों-के लिये ही प्रयुक्त किया गया है। यह कथा सामवेदकी छान्दोग्य उपनिषद्के पाँचवें प्रपाठकमें वर्णित है। यहाँ वैश्वानरविद्याके उपदेष्टा आचार्य राजर्षि अश्वपति हैं और शिष्य उद्दालकादि ब्रह्मर्षि हैं—दोनों गृहस्थ हैं। शतपथ ब्राह्मणके दसवें काण्डमें भी इस कथाका उल्लेख है।

(३) उद्दालक ऋषिका पुत्र श्वेतकेतु छोटी आयुमें उद्दण्ड-सा—आवारागर्द हो गया था, पहले तो ऋषिने स्नेहवश कुछ नहीं कहा परन्तु जब देखा कि यह उच्छृङ्खल हुआ जाता है तो उसे इसप्रकार उपदेश किया—

न वै अस्मत्कुलीनो ननूच्य ब्रह्मबन्धुरिव भवति।

'हमारे कुलमें उत्पन्न होनेवाला कोई बालक ब्रह्मबन्धु-सा नहीं हुआ। तू क्यों वेदाध्ययन छोड़कर कुलमर्यादाको दाग लगाता है।' श्वेतकेतु उस समय बारह वर्षका था। वह ऐसे वचनोंको न सह सका और किसी गुरुकुलमें विद्या-ध्ययन करने चला गया। जब वह बारह वर्षके बाद पिताके पास आया तो बड़ा अहङ्कारी प्रतीत होता था। उसने पिता-को नमस्कारतक न किया। श्वेतकेतुकी समझ थी कि मैं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वेदोंका अद्वितीय विद्वान् हूँ और मेरा पिता वेदवेत्ता नहीं है। जब उद्दालकने उसके इसप्रकारके भाव देखे तो यह कहा—'बेटा, तुमने वह आदेश जाना है जिससे अमत मत और अविज्ञात विज्ञात हो जाता है?' श्वेतकेतुने कहा—'नहीं।' इस आख्यानमें श्वेतकेतु स्नातक है और ब्रह्मविद्यासे शून्य है। उद्दालकको यह अभीष्ट नहीं कि उसकी सन्तान ब्रह्म-विद्यासे वञ्चित रहे। अतः गृहस्थाश्रममें भेजनेसे पूर्व ही उद्दालककी इच्छा है कि श्वेतकेतुको ब्रह्मविद्या दी जावे। ऐसा ही होता है और कई प्रकारके प्रकरणोंका विचार करते हुए उद्दालक अपने पुत्र श्वेतकेतुको 'तत्त्वमसि' का उपदेश करते हैं। यह कथा छान्दोग्य उपनिषद्के छठे प्रपाठकमें उद्धृत की गयी है। इस कथाका उपदेष्टा उद्दालक और शिष्य श्वेतकेतु है। गुरु गृहस्थ है और शिष्य ब्रह्मचारी है।

(४) जाबाल सत्यकामके गुरुकुलमें बहुत ब्रह्मचारी वेदाध्ययन करते थे। जब स्नातक होनेका समय आया तो कई तो विद्या समाप्त करके स्नातक होकर अपने-अपने घरोंको चले परन्तु उपकोसल नामक ब्रह्मचारीको बारह वर्ष तपोव्रत करनेपर भी स्नातक नहीं होने दिया गया। जब उपकोसलने सत्यकामसे कारण पूछा तो सत्यकामने उसपर ध्यान नहीं दिया। इसपर उपकोसलने खाना-पीना छोड़ अनशन आरम्भ कर दिया। सत्यकामकी धर्मपत्नीको यह बात बहुत बुरी लगी और उसने अपने पति आचार्य सत्यकामसे कहा-सुनी की और उपकोसलको भी समझाया इत्यादि। बादमें आचार्यने उपकोसलको ब्रह्मविद्या सिखायी और स्नातक करके घर भेजा। यह कथा भी छान्दोग्य उपनिषद्के चौथे प्रपाठकके दसवें खण्डमें है। यहाँ भी ब्रह्मविद्याका आचार्य सत्यकाम जाबाल ऋषि गृहस्थ ही है।

(५) श्वेतकेतु अपने आपको बड़ा तत्त्ववेत्ता समझता था। वह एक बार पाञ्चाल-देशके राजा प्रवाहणकी सभामें जा पहुँचा, वहाँ राजासे उसकी बातें हुईं जिससे उसको पता लगा कि वह तो तत्त्वज्ञ नहीं है। उसने श्वेतकेतुको लज्जित करनेके लिये पाँच प्रश्न किये। प्रश्नोंको सुनकर श्वेत-केतु अवाक् रह गया और दुखी होकर उद्दालकके पास आया। जब पिताने सब प्रश्न सुने तो कहा कि 'बेटा, इन प्रश्नोंको तो मैं भी नहीं समझा सकता, अतः चलो हम दोनों प्रवाहणसे यह विद्या सीखकर आवें।' जब पिता-पुत्र पाञ्चाल-राजके पास गये तो उसने उनका बड़ा मान किया, परन्तु जब उद्दालकने पाँचों प्रश्नोंका उत्तर माँगा तो राजा 'कृच्छ्री बभूव' अत्यन्त दुखी हुआ और कहने लगा कि 'बहुत काल यहाँ निवास करो। जब देखूँगा कि अधिकारी हो, तो उपदेश करूँगा।' पश्चात् राजाने उद्दालकको ब्रह्मविद्याका उपदेश किया। यह विद्या आत्माकी गति-प्रत्यागतिके सम्बन्धमें है और इसके द्वारा पुनर्जन्मके सिद्धान्त समझे जाते हैं। इसी कारण इसको पञ्चाग्नि-विद्या कहते हैं। यह कथा छान्दोग्य उपनिषद्के पाँचवें प्रपाठकमें कथन की गयी है, आचार्य गृहस्थ राजा प्रवाहण है और शिष्य उद्दालक ऋषि हैं।

(६) काशिराज अजातशत्रुको बालाकि ब्रह्मविद्या-का उपदेश देने गया। राजाने उसको सिर-आँखोंपर उठाया, परन्तु बातचीत होनेपर पता लगा कि बालाकिको परले सिरेका पता नहीं है, तब वह परास्त हो गया और गुरु बनता-बनता शिष्य हो गया। बालाकिने अभिमान छोड़ राजाको गुरु मान लिया और परब्रह्म-ज्ञानकी भिक्षा माँगी, राजाने उसके विनीत स्वभावपर प्रसन्न होकर बिना उपनयन किये ब्रह्मविद्याका उपदेश कर दिया, यह संवाद बृहदारण्यक उपनिषद्के दूसरे अध्यायमें वर्णित किया गया है, इस विद्याका आचार्य भी राजा अजातशत्रु गृहस्थ है और शिष्य बालाकि ब्रह्मचारी है।

(७) यजुर्वेदकी कठ-उपनिषद्में कथा है कि अरुण ऋषिका पोता नचिकेता नामक ब्राह्मणकुमार ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिके लिये यमके पास गया। आचार्यको घरपर न देख नचिकेताने अन्न-जल स्वीकार नहीं किया। आचार्यकी स्त्रीको यह बात बहुत बुरी मालूम हुई। उसने नचिकेताको अन्न-जल ग्रहण करनेके लिये बहुत आग्रह किया और कहा कि 'तुम्हारे ऐसा करनेपर हम गृहस्थियोंको दोष लगता है' परन्तु उसने उसकी बातोंपर ध्यान नहीं दिया और तीन दिन तथा तीन रात्रि बिना खाये-पिये अनशन-व्रत किये पड़ा रहा। जब यम आया तो उसने नचिकेताको आत्मज्ञान प्रदान किया। इस कथामें भी आचार्य यम गृहस्थ है और शिष्य ब्रह्मचर्याश्रमी है।

(८) वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्र कुत्राश्रमे वसन्।
इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

यह मनुस्मृतिके १२ वें अध्यायका १२० वाँ श्लोक है। इसमें मनु महाराजने कहा है कि 'वेद-शास्त्रके रहस्योंको जाननेवाला चाहे किसी भी आश्रममें क्यों न

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रहता हो वह अपनी आयुमें ही मोक्षका अधिकारी हो जाता है।

'कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः' (मनु० १। ९७) कर्म करनेवालोंमें ब्रह्मवेत्ता श्रेष्ठ हैं, इस श्लोकमें गृहस्थियोंमें ब्रह्मवेत्ता गृहस्थको ऊँचा आसन दिया गया है।

(९) न्यायागतधनस्तत्त्वज्ञाननिष्ठोऽतिथिप्रियः ।
श्राद्धकृत् सत्यवादी च गृहस्थोऽपि विमुच्यते ॥

यह याज्ञवल्क्यसंहिताके अध्यात्मप्रकरणका १०५ वाँ श्लोक है। इसमें महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं कि न्यायसे धन कमानेवाला, तत्त्वज्ञानमें निष्ठा रखनेवाला, अभ्यागतोंका सत्कार करनेवाला, श्राद्ध करनेवाला और सत्य बोलनेवाला जो गृहस्थ है वह भी मोक्ष पा जाता है।

इससे सिद्ध होता है कि गृहस्थ भी तत्त्वज्ञानी हो सकता है और मोक्ष-शास्त्रके अध्ययनका अधिकारी हो सकता है।

(१०) मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको जब बारह वर्षकी आयुमें औदासीन्यने घेर लिया तो ब्रह्मर्षि वशिष्ठजीने योगवासिष्ठद्वारा उन्हें ब्रह्मविद्याका उपदेश किया। श्रीरामजी ब्रह्मचारी हैं और ब्रह्मविद्या प्राप्त करनेके बाद गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट होते हैं, जिस सभामें यह उपदेश दिया गया है उसमें राजा दशरथ तथा अन्य ऋषि आदि बहुत लोग श्रोता थे। यह योगवासिष्ठकी कथा है।

(११) भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने सब उपनिषदोंका सार निकाल अर्जुनको गीताके रूपमें उपदेश किया है, गीता ब्रह्मविद्याकी मानी हुई शिक्षा है। यहाँ भी ब्रह्मविद्याके आचार्य वासुदेव श्रीकृष्ण गृहस्थाश्रमी हैं और शिष्य महात्मा अर्जुन भी गृहस्थाश्रमी ही है।

(१२) गीताके चौथे अध्यायमें कहा गया है—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥

इस ब्रह्मविद्याका मैंने ही सबसे पहले विवस्वान्को उपदेश किया था और उसके बाद विवस्वान्ने मनुको उपदेश किया और मनुने इक्ष्वाकुको उपदेश दिया। यहाँ-पर भगवान् विष्णु भी लक्ष्मीकान्त गृहस्थ ही हैं और यदि श्रीकृष्णजीके शरीरको माना जावे तो वे भी राधापति गृहस्थ ही हैं और विवस्वान् मनु और इक्ष्वाकु तो प्रसिद्ध गृहस्थ हुए हैं अतः यहाँ भी आचार्य और शिष्य दोनों गृहस्थ हैं।

(१३) गीताके छठे अध्यायमें कहा गया है—

शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्।

—योगभ्रष्ट व्यक्ति शुद्ध पवित्र श्रीमानोंके घरमें जन्म लेता है या अध्यात्मविद्याके ज्ञानी लोगों—योगियोंके कुलमें उत्पन्न होता है। परन्तु संसारमें ऐसा जन्म ग्रहण करना महान् दुर्लभ है।

यदि गृहस्थी लोगोंमें कोई ऐसा तत्त्वज्ञानी ब्रह्मवेत्ता नहीं होगा तो बेचारे योगभ्रष्टोंका उद्धार कैसे होगा? यही कारण है कि बृहदारण्यक उपनिषद्के अन्तिम भागमें जातकर्म-विद्याका व्याख्यान किया गया है और ब्रह्मवेत्ता सन्तान पैदा करनेके नियम वर्णन किये गये हैं तथा ऐसे माता, पिता और पुत्रोंकी स्तुति करके उपनिषद्-को समाप्त किया गया है। उपनिषद्के अन्तमें सन्तानोत्पत्ति-की प्रशंसा करना भी गृहस्थाश्रमका महत्त्व प्रकाशित करता है और गृहस्थोंको उत्साहित करता है कि स्वयं ब्रह्मविद्याके जानकार बनो और अपनी सन्तानको ब्रह्मज्ञानी बननेका गर्भसे ही अवकाश दो जिससे सबका परम कल्याण सिद्ध हो।

(१४) कृष्णयजुर्वेदकी तैत्तिरीय शाखाकी उपनिषद्-में आचार्य ब्रह्मविद्या दे चुकनेके पश्चात् अपने स्नातक ब्रह्मचारियोंको अन्तिम उपदेश देता है कि 'प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः'—गृहस्थाश्रमका त्याग मत करना, बल्कि सन्तान अवश्य पैदा करना।

(१५) अथर्ववेदीय मुण्डक उपनिषद्के अन्तिम भागमें लिखा है—'नास्या ब्रह्मवित् कुले भवति'—अर्थात् इस ब्रह्मविद्याके जाननेवाले पुरुषके कुलमें अवश्य ही ब्रह्मवेत्ता पुत्र उत्पन्न होता है, यह केवल व्यर्थ बात या स्तुतिमात्र ही नहीं है अपितु इसमें सत्यता है। हाँ, उतनी ही सत्यता है जितनी इस विद्याकी सत्यता है।

उपर्युक्त उद्धरणोंसे हमारा आशय केवल यह है कि प्राचीन कालसे गृहस्थी लोग ब्रह्मविद्याका श्रवण, मनन और निदिध्यासन करते आये हैं। अतः भविष्यमें भी गृहस्थोंको इस विद्याकी ओर दत्तचित्त होकर लगनेका शुभ अवसर देना चाहिये और यदि कोई ब्रह्मवेत्ता गृहस्थ हो तो उसकी मान-प्रतिष्ठा करनेमें संकीर्णता नहीं दिखानी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चाहिये और आवश्यकता हो तो ऐसे महाभागको आचार्योचित समादर देनेकी भी उदारता दिखानी चाहिये। यदि ऐसा किया जायगा तो बहुत-से योगभ्रष्ट पुण्यात्माओं-को ब्रह्मवेत्ता माता-पिताके मानसिक विचारोंको धारण करके मुक्ति लाभ करनेमें भारी सहायता मिलेगी और ऐसी सन्तानोंके उत्पन्न करनेसे गृहस्थोंका भी उद्धार होगा।

इसके साथ ही स्त्री-जातिके सम्बन्धमें भी इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि मदालसा तथा अन्य ब्रह्मविद्याकी जाननेवाली देवियोंकी जीवन कथाओंको भुलाया नहीं जा सकता, जिन्होंने आत्मचिन्तन करते हुए ज्ञानी सन्तानोंको जन्म दिया था तथा लोरी देते-देते अपनी सन्तानको परमार्थ-तत्त्वका उपदेश कर दिया था। मदालसाके वाक्य ये थे—

शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि
संसारमायापरिवर्जितोऽसि ।
संसारस्वप्नं त्यज मोहनिद्रां
(मदालसा वाचमुवाच पुत्रम्) ॥

'बेटा! तू शुद्ध है, बुद्ध है, निरञ्जन है अर्थात् संसारकी मायासे सर्वथा रहित है, प्यारे! तू संसारको एक स्वप्नका दृश्य ही समझ और मोह-निद्राको छोड़ दे।'

यदि हम गर्भविज्ञान या उत्पत्ति-शास्त्रके विशेष नियमोंपर दृष्टि डालें तो ऋषियों, महावीरों और धर्मात्मा तथा दुरात्माओंके बननेके अन्य कारणोंमें माता-पिताके मानसिक विचारोंको विशेष प्रभावशाली मानना होगा। विशेषकर माताके। यही कारण है कि आयुर्वेदाचार्य महर्षि सुश्रुतने इस विषयमें बड़े ही महत्त्वके उपदेश किये हैं और सन्तान पैदा करनेकी वैदिक विधिका सविस्तर वर्णन किया है। सुश्रुतने कहा है—

'यादृशं भजते हि स्त्री सुतं सूते तथाविधम्'

'स्त्री जैसे भी विचार करती अथवा रहन-सहन रखती है उसी प्रकारकी सन्तानको पैदा करती है।' क्या आप कपिल ऋषिकी जन्म-कथाको भूल चुके हैं? यह महात्मा जन्म-सिद्ध कहाते हैं। कारण यह है कि इनकी माता देवहूति देवी शुद्ध सात्त्विक प्रकृतिकी थी। पहले तो वह अपने पिता मनुके घरमें शास्त्राध्ययन कर चुकी थीं फिर बादमें पतिके घर आकर तो उनके और भी शुद्ध जीवन बितानेका अवसर हाथ आ गया था क्योंकि उनके पति अपने समयमें ऋषि कहलाते थे।

अतः जहाँ पुरुषोंको योग्य होनेपर ब्रह्मविद्याका अधिकार है वहाँ स्त्रियोंको भी है। आज जो आचार-हीनताका व्यापक रोग दिखायी देता है इसका मूल कारण भी गृहस्थाश्रमकी खराबी है। यदि गृहस्थाश्रम ठीक मर्यादामें आ जावे तो योग्य सन्तानोंके उत्पन्न होनेसे ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी—इन सबके दोषोंका परिमार्जन हो जावे और शुद्ध गृहस्थोंके शुद्ध अन्नको खा-कर सभी आश्रमी शुद्धाचरणसे समन्वित होकर अपना जीवन सफल करें। परन्तु यह तभी सम्भव है जब कि गृहस्थी लोग सदाचारपरायण होकर ब्रह्मज्ञानपर ध्यान रक्खें।

चाह

मनमें है बसी बस चाह यही
प्रिय नाम तुम्हारा उचारा करूँ।
बिठलाके तुम्हें हिय-मंदिरमें
मनमोहनि मूर्ति निहारा करूँ॥
भरके दृग-पात्रमें प्रेमका जल
पदपङ्कज नाथ! पखारा करूँ।
बन प्रेमपुजारी तुम्हारा प्रभो!
नित आरती भव्य उतारा करूँ॥

—हरिप्रसाद शर्मा 'अविकसित'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीयमकरामायण

(लेखक—श्रीअमृतलालजी माथुर)

[पूर्वप्रकाशितसे आगे]

अवधकाण्ड

भरत-मातुहि लोग कहा करै
कुबरि को सु कुजोग कहा करै ?
बहु प्रकारन-कारन पाय के
प्रभु कृपा वन-पावन पै भई ॥३३॥

बचन-पालक बालक बापके
सुन परे न परे जग आपके ।
विपिन-हीं पनही-विनही चले
भवनकों वनकों सम मानिके ॥३४॥

'गवनिए वन' ना मुखसों कही
नृप रहे करते दुख सोक ही ।
जदपि ना उनकी मनसा रही
प्रभु गह्यो पितुको पन-सार ही ॥३५॥

प्रभु गए मिलिवे निज अंब ते
उन भरे दृग-अंबुज अंबु[1] ते ।
अति भई हित-भाय सु दीन है
धरम-धारन-आयसु दीन है ॥३६॥

जगत-जीवनके वन-जानकी
सुनि उठी सँग जावन-जानकी ।
प्रभु कहे सु कलेसहु कानना
उन किये वह लेसहु कान ना ॥३७॥

मति विलच्छन लच्छन[2]लालकी
अस सुलच्छन लच्छन[3]में नहीं ।
सुख-द भाइ न भा इन-सा अहो
घर तजे रत जे प्रभु-संग भे ॥३८॥

सु घर पै धर पैर नहीं चले
सु वन-हीं विनहीं पनहीं चले ।
सु छवि लोक विलोक विलोकके
सजल-लोचन, सोच न सो सहैं ॥३९॥

दृग भरे अँसुवान सुवानके
विहग आरत[4] आरत-नादसों ।
तकि रहे सब वाहन दीन-से
दृग बहे जल-वाह नदीन-से ॥४०॥

मृदुल गात मनो वन-जात[5] हैं
जनक वैननते वन जात हैं ।
अस सुहावन तो मन-जात[6] ना
इन लखे अनतो[7] मन जात ना ॥४१॥

हरिहि हेरत होति चितै रई[8]
चित जराति विरंचि चितैरई[9] ।
दरस जा सम और रसाल ना
वन गए किन के उर साल[10] ना ॥४२॥

बहत हैं जब गामन-पासते
गहत हैं न किते मन पास ते ?
जिन लिए लखि एकहु बेर हैं
जनमके वह दास हुवे रहैं ॥४३॥

लखत जे प्रभुकों नर, नार हैं
तिननिके मन तो घर ना रहैं ।
सकल भावनि भान विसारहीं
छकि रहैं लखिके छवि-सार हीं ॥४४॥

सर हुतो जित पंक-मलान-सो
हरि लखे सु छयो कमलान सो ।
जिहिं बबूलनकी महि[11] माल[12] ही
सु वन नंदनकी महिमा लही ॥४५॥

---

१ जल । २ लक्ष्मणजी । ३ लाखोंमें । ४ रोते हैं । ५ कमल । ६ कामदेव । ७ अन्यत्र । ८ रति (प्रीति) । ९ चित्रकारी । १० खटकना । ११ पृथ्वीपर । १२ माला (पंक्ति) ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अवध भो विरहा अनखावनो
तजि दयो परजा अन खावनो।

हरि बिना नगरी सगरी बसी
पर रही सु हतास गरीब-सी ॥४६॥

तरु, लता-फल, फूल हरे नहीं
सुख सरी सरजू लहरे नहीं।

सरन में बिकसैं न सरोज हैं
सकल सेवक सैन[13] सरोज[14] है ॥४७॥

हरि बिना नृप भे रस-हीन ही
हह! परी वह पीर सही नहीं।

नहिं भयो भवमें तिन[15]-तोल है
तजि दयो तनकों तिन[16] तोल है ॥४८॥

महिप-मीच रु राम-विवासनै
सुनत ही तजिके भव-वासनै[17]।

सब समाज लिये वन भागहै[18]
भरत सो भवमें धन भाग है ॥४९॥

मुकुट, कुंडल, मालन सो कहा?
महिप-ता, धन, माल न सोक-हा।

प्रभु वहै धर नीरज-पैर हैं
सिर वहै धरनी-रज पै रहैं ॥५०॥

वन विलोकि प्रभू मन-भावते
अवध-वासिहु यों मन भावते।

प्रभु निहार निहार निहाल ए
हह! हमें हरि ना हरिना[19] किए ॥५१॥

दुचित भाव सबै हरिने हते
भरत भे सुखिया हरि-नेह ते।

जब दई प्रभु ने पद-पीठ[20] है
तब दई सब आपद पीठ है ॥५२॥

भरत गे बसि नंदि-गराम हीं
परम-राग रँगे रँग-राम हीं।

तप तपै नहिं गात-के[21] सोच[22] है
दरसको रस चातक-सो चहै ॥५३॥

कमल-से अति कोमल गात हैं
हिम सहैं जल, घाम लगात हैं।

बहत नैननसों रसु-धार है
पियत राम-सनेह सुधा रहै ॥५४॥

(इत्यवधकाण्डम्)

अरण्यकाण्ड

अहह! आप बहे जिस राहते
मगन संतत संभु सराहते।

धन सु थान महातप-धारनो
धन धरा हरि-होत-पधारनो ॥५५॥

पद प्रभाव प्रभा बनकी बढ़ी
सफल जीवन जीवनके भए।

सकल तापस-ताप सबै गई
रवि लखे बिलखे कज क्यौं रहैं? ॥५६॥

छकि रहैं लखि सो छवि-सार ही
मृग, विहंगम अंग बिसारही।

नहिं निहारत हारत नेक हैं
दरसकी रसकी धन टेक हैं ॥५७॥

सुमरती, मरती प्रभुपै किती
असुर-ती सुर-ती सु-रती चहैं।

यक रती न रती पर-ती न पै
सुधरती परती परतीत है ॥५८॥

(क्रमशः)

---

१३ सयन (स्वजन)। १४ रुदनयुक्त। १५ उनके। १६ तृण। १७ वासनाको। १८ भागे। १९ हरिण (मृग)। २० पादुका। २१ शरीरका। २२ फिक्र।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परमार्थ-पत्रावली

(श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पत्र)

[क्रमशः]

[४]

आपका पत्र मिला। प्रश्नोंका उत्तर पढ़कर आपको प्रसन्नता एवं सन्तोषकी प्राप्ति हुई सो यह आपकी दयाकी बात है।

आपने मिलनेकी इच्छा लिखी सो आपके प्रेमकी बात है।

मेरे लिये श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ, महान् पुरुष तथा और भी मेरी बड़ाईके शब्द लिखे सो नहीं लिखने चाहिये।

बिम्ब और प्रतिबिम्बके विषयमें आपने अपना जो अनुभव जनाया सो युक्तियुक्त है।

गुरुकृपासे आपको अनुभव हुआ लिखा सो अच्छी बात है, किन्तु यह विचारणीय विषय है। जिसको अनुभव हो जाता है वह इसप्रकारसे न तो किसीसे कहता है और न वह स्वयं यह समझता ही है कि मुझको अनुभव हो गया। वहाँ संशय, भ्रम और कर्मोंका अत्यन्त अभाव हो जाता है। श्रुतिमें कहा है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥

आपके पत्रसे आपका जिज्ञासुपन सिद्ध होता है इसलिये भी आपको अपने विषयमें विचार करना चाहिये। अपने आपको ज्ञानी मान लेना भी भूल है, क्योंकि ज्ञान होनेके बाद उसमें माननेवाला कोई नहीं रहता। अतएव आपका जिज्ञासुभाव ही युक्तियुक्त सिद्ध होता है।

प्रश्नोंका उत्तर

प्र०—अज्ञानसे उत्पन्न हुई स्वार्थ-बुद्धिका नाश होनेके लिये क्या उपाय है?

उ०—निष्कामभावसे किये जानेवाले भगवन्नामके जप और भगवत्-स्वरूपके ध्यानरूपी उपासनासे मल-विक्षेपका नाश होकर भगवान् एवं भगवान्-के भक्तोंकी परम दयासे तत्त्वज्ञान उत्पन्न होता है और उस तत्त्वज्ञानसे अविद्यासहित राग-द्वेषादि सम्पूर्ण क्लेशोंका एवं सम्पूर्ण कर्मोंमें स्वार्थ-बुद्धिका अत्यन्त अभाव हो जाता है और परमात्माके स्वरूपकी प्राप्ति भी हो जाती है। योगदर्शनके सूत्र हैं—

तस्य वाचकः प्रणवः।
तज्जपस्तदर्थभावनम्।
ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च।

प्र०—क्या जीवात्मा और प्रकृति ये दोनों परमेश्वरके सकाशसे बने हैं?

उ०—ऐसा कहना उचित नहीं है, क्योंकि जीवात्मा और प्रकृति दोनों अनादि माने गये हैं।

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
(गीता १३। १९)

अर्थात् प्रकृति और पुरुष दोनोंको ही अनादि जानो।

ये ईश्वरके सकाशसे भी बने नहीं, इसीलिये ईश्वर इनसे बिल्कुल निरपेक्ष है। ईश्वर फल भोगनेके लिये गुण और कर्मोंके अनुसार अच्छी और बुरी योनियोंके साथ जीवात्माका सम्बन्ध जोड़ देता है। किन्तु निरपेक्ष होने एवं कर्तापनके दोषसे रहित होनेके कारण ईश्वर करता हुआ भी अकर्ता समझा गया है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥
(गीता ४। १३)

गुण और कर्मोंके विभागसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र मेरे द्वारा रचे गये हैं परन्तु उनके कर्ता मुझ अविनाशी परमेश्वरको तुम अकर्ता ही जानो।

प्र०—जीवात्माके साथ अनादिकालसे अज्ञानका जो यह सम्बन्ध है इसको विज्ञानानन्दघन परमात्मा जानते हैं, ऐसा मेरा अनुभव है। अद्वैत-सिद्धान्तसे क्या यह बात ठीक है?

उ०—नहीं। अद्वैत-सिद्धान्तसे विज्ञानानन्दघन परमात्माकी दृष्टिमें तो अज्ञान है ही नहीं। जिनको अज्ञानका सम्बन्ध भासता है उन्हींकी दृष्टिमें अज्ञान है, और उन्हींके लिये वह अनादि-सान्त है। अद्वैत-सिद्धान्तसे तो जीवात्माके साथ अज्ञानका सम्बन्ध वास्तवमें है ही नहीं। अध्यारोप माना गया है।

प्र०—जीवात्मा और परमात्मा जब विजातीय वस्तु हैं तो फिर एक कैसे हो जाते हैं?

उ०—जीवात्मा, परमात्मा विजातीय नहीं हैं। इसीलिये जीवात्मा, परमात्माको प्राप्त होनेके बाद यानी परमात्मामें विलीन होनेके बाद पुनः वापस नहीं आता। जीवात्मामें जबतक अज्ञान है तभीतक वह परमात्मामें विलीन नहीं हो सकता। किन्तु ईश्वरकी भक्ति करनेसे आत्मा पवित्र होकर ईश्वरकी दयासे जब उसे परमात्मतत्त्वका साक्षात् ज्ञान हो जाता है तब उस ज्ञानके प्रतापसे अज्ञानका नाश होकर वह पवित्रात्मा बन जाता है और परमेश्वरमें तद्रूपताको प्राप्त हो जाता है यानी परमात्मामें मिल जाता है। फिर इस जीवात्माकी परमात्मासे अलग सत्ता ही नहीं रहती।

अज्ञानके कारण अनादिकालसे जीवात्मा उस परमात्मासे पृथक्-सा हो रहा है। इसीलिये इसकी जीव संज्ञा है। कारणरूप अविद्याके नाश होनेपर इसकी जीव-संज्ञाका भी नाश हो जाता है इसलिये अविद्या यानी मायाको अनादि-सान्त बतलाया गया है। जैसे सिन्दूरसे निकाला हुआ पारा पारेमें मिलकर तद्रूपताको प्राप्त हो जाता है फिर वह सिन्दूर नहीं बनता, वैसे ही मायासे छूटकर पवित्र हुआ जीव, शुद्धविज्ञानानन्दघन परमात्माको प्राप्त होकर पुनः जीवभावको नहीं प्राप्त होता।

[५]

पत्र दो आपके मिले जवाब देनेमें मेरे प्रायः ही देरी हो जाया करती है।.....

प्रश्नोंका उत्तर

प्र०—काम-क्रोधके कारण साधन प्रायः बहुत कम होता है।

उ०—विश्वासपूर्वक कटिबद्ध होकर साधन करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। फिर काम-क्रोधका आप ही नाश हो सकता है।

प्र०—बस संकल्प अधिक बाधक हो रहे हैं?

उ०—अभ्यासके द्वारा उन संकल्पोंके त्याग करनेकी कोशिश करनी चाहिये।

प्र०—धर्म-प्रचार, समाज-सुधार, धनोपार्जन—इन तीन कारणोंसे विद्याका अभ्यास करनेकी रुचि प्रबल हो रही है।

उ०—यह उचित ही है। विद्याके योग्य न बनूँ ऐसी निषेधात्मक प्रार्थना नहीं करनी चाहिये। तीनों हेतुओंसे विद्या सीखनेकी वृत्ति नीतिकी दृष्टिसे अनुचित नहीं है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्र०—प्रभुसे क्या माँगना चाहिये ?

उ०—प्रभुका प्रेमसहित अनन्यचिन्तन तो अवश्य ही माँगना चाहिये।

प्र०—साधनके विषयमें बराबर पूछ-ताछ करनी चाहिये!

उ०—समय कम मिलनेके कारण, एवं स्वभावकी ढिलाईसे पत्र देनेमें विलम्ब हो जाता है, नहीं तो पूछनेमें तो कोई संकोच नहीं है।

प्र०—साधनके लिये कड़ाई करनी चाहिये।

उ०—स्वभावकी नरमी एवं अनधिकार समझकर आप-पर कड़ाई नहीं की जा सकती अतएव आपको ही अपने ऊपर कड़ाई करनी चाहिये।

प्र०—जीवकी इतनी सामर्थ्य नहीं कि वह प्रमाद छोड़-कर बिना किसी प्रकारकी उत्तेजना पाये ही अपने लक्ष्य-पथपर अग्रसर होता जाय।

उ०—इसके लिये सत्य-कबीरकी साखीमें वर्णित कबीर-दासजीकी चेतावनीकी तरफ खयाल करनेसे बहुत मदद मिल सकती है।

प्र०—अध्यात्म-जगत्‌में इसीलिये एक मार्ग-प्रदर्शकके संकेत और तत्त्वावधानकी आवश्यकता और उपयोगिता एक विशेष स्थान रखती है।

उ०—मार्गदर्शक बहुत पुरुष हो चुके हैं, और हैं भी। जिनमें जिनकी श्रद्धा है उनके लिये वही मार्ग-प्रदर्शक बन सकता है। मार्गदर्शकोंकी कमी नहीं है किन्तु श्रद्धा और प्रेमकी आवश्यकता है।

प्र०—भगवान्‌की विस्मृति और भोगोंकी अनवरत उपासनाने इस अभिमानी ब्राह्मणको बहुत दूर ला गिराया है ?

उ०—इसके लिये विचारपूर्वक या हठसे परमेश्वरके स्वरूपका ध्यान या उनके नामका जप करनेके लिये कोशिश करनी चाहिये। हठसे ही कोशिश करनी चाहिये, ऐसा करनेसे सब कुछ हो सकता है।

प्र०—शिश्नोदरपरायण प्रमादीका उद्धार अपने बलपर होना परम कठिन है!

उ०—इसके लिये ईश्वरकी शरण लेनी चाहिये। ईश्वरके नामका जप, स्वरूपका ध्यान और उनकी आज्ञाका पालन करना ही ईश्वरकी शरण है।

प्र०—विषयोंके संग और सेवनसे अन्तःकरण मलिन होता जा रहा है ?

उ०—यदि यह बात आपके समझमें आ गयी हो तो विचारपूर्वक विषयसंग और सेवनका त्याग करना चाहिये। विचारसे त्याग न हो तो हठसे त्याग करना भी उत्तम है।

प्र०—सत्संगकी अभिरुचि पूर्वापेक्षा न्यून प्रतीत हो रही है!

उ०—इसके लिये श्रद्धालु पुरुषोंका संग एवं महापुरुषोंके प्रेम, रहस्य, गुण और प्रभावकी बातोंका श्रवण और विवेचन करना उत्तम है।

प्र०—देहाध्यास अधिक बढ़ा हुआ है।

उ०—इसके लिये दो ही उत्तम उपाय हैं।

(१) अभिमानको छोड़कर निष्काम प्रेमभावसे ईश्वरकी अनन्य शरण होना।

(२) गीता अ० १४। १९ के अनुसार द्रष्टा (साक्षी) होकर इस शरीर और शरीरके कर्मको आत्मासे पृथक् देखनेका अभ्यास करना।

प्र०—मान-बड़ाईके प्रदीप्त दीपकमें मन पतंग होकर उत्साहसे जलना चाहता है ऐसी परिस्थितिमें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आपको और सुहृद् भगवान्‌को छोड़कर किसके सामने पुकार करूँ ?

उ०—मान-बड़ाईको प्रदीप्त दीपक समझनेमें ही अभी कमी है अतएव इसको प्रदीप्त दीपकके सदृश अच्छी तरह समझनेकी कोशिश करनी चाहिये। समझनेपर मन जलकर मरना नहीं चाहेगा। इसको समझनेके लिये एकान्तमें करुणभावसे रोकर ईश्वरसे प्रार्थना करनी चाहिये।

प्र०—महापुरुषोंमें आरम्भमें जो श्रद्धा दीखती थी वह इस समय उस रूपमें नहीं दीखती, इसका कारण भी शायद साधनकी कमी और विषय-सेवनकी अधिकता ही होगी।

उ०—सबसे बढ़कर महापुरुष तो परमेश्वर ही हैं। उनमें निष्कामभावसे प्राप्त हुई सच्ची श्रद्धाका क्षय नहीं होना चाहिये। यदि कमी नजर आती हो तो उसके मूलमें कोई कामनाका होना सम्भव है। भगवान्‌के भक्तोंमें श्रद्धाकी कमी होनेमें कारण भगवान्‌के भक्तोंमें गुणोंकी तारतम्यताका देखना एवं विषयासक्त और नास्तिक पुरुषोंका संग तथा पूर्वकृत पापकी वासनाएँ इत्यादि अनेक हेतु हो सकते हैं।

प्र०—दूसरोंके दोष पहाड़ बनकर मेरी वाणीके आलोच्य विषय हो रहे हैं, निन्दामें रस मालूम देता है।

उ०—दूसरोंके दोष और अपने गुणोंकी आलोचनासे जो आनन्द होता है उसको मृत्युके समान समझकर उसका विषके तुल्य त्याग करना चाहिये, नहीं तो भारी पतन होना सम्भव है।

तपस्विनी तेरसा

(लेखक—श्रीभगवानदासजी हालना)

स्पेन-देशमें तेरसा नामकी एक बड़ी धर्मशीला नारी हो गयी है। वह बड़ी बुद्धिमती, प्रतिभाशालिनी, शक्तिमती, परिश्रमशीला और धर्मभावापन्न थी। लोगोंपर उसका बड़ा प्रभाव पड़ता था। उसका जन्म स्पेनके अवीला-नगरमें सन् १५१५ की २८ वीं मार्चको हुआ था। उसके पिताका नाम सेपेडा था जिसका एक प्रदेशके राजवंशमें जन्म हुआ था। उसकी माताका नाम वियाट्रीज था। वह बड़ी सुन्दरी और धर्मशीला नारी थी। तेरसाके पितृकुल और मातृकुलमें अनेक वीर हो गये हैं। तेरसाके पिता युद्ध करना एक बड़े गौरवकी बात समझते थे। यहाँतक कि तेरसाके स्वभावमें भी युद्ध करनेका भाव छिपा हुआ था। तेरसाके सात भाई और दो बहिनें थीं। उसके पिता बड़े तेजस्वी और चरित्रवान् थे और उसकी माता बड़ी धर्मशीला और अच्छे स्वभावकी थीं। तेरसा माताके समान सुन्दरी थी और सदा हँसमुख रहती थी। उसका प्रसन्न वदन देखकर लोग आनन्दित हो जाते थे। उसे बचपनमें जेबखर्चके लिये जो पैसे मिलते, उन्हें वह दरिद्रोंकी सहायतामें लगाती। दूसरोंकी कभी निन्दा नहीं करती थी, किसीसे मनमें ईर्ष्या नहीं रखती थी और माता-पिताकी हर तरह आज्ञा-पालन करती थी। तेरसा और उसके एक भाईने छोटी अवस्थामें ही एक बड़ी कीर्तिका काम किया। ये भाई-बहिन निरन्तर साधुओंके जीवन-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चरित्र पढ़ा करते थे। इन साधुओंमेंसे कितनोंहीने ईश्वरके लिये अपने जीवन अर्पित कर दिये थे। उन भाई-बहिनोंने भी ईश्वरके कार्यमें जीवन देना उचित समझा। इसके लिये उन्होंने निश्चय किया कि संन्यासी और संन्यासिनी होकर मूर-देशमें जायँगे। मूर-देशमें मुसलमान रहते थे। वहाँ ईसाई लोग अपने धर्मका प्रचार करते थे। भाई-बहिनोंने समझा धर्मका प्रचार करते हुए मुसलमान हमें मार डालेंगे तब ईश्वरके प्रति हमारा जीवन अर्पित हो जायगा। मनमें यह सोचकर किसीसे बिना पूछे-ताछे वे घरसे निकल पड़े। कुछ दूर जाकर स्पेनके एक विजय-स्तम्भके पास वे दोनों बैठ गये। वहाँ लोग कहते थे 'यहाँ तो सिंहका डर है। यहाँ रात्रिमें रहना भयावह है।' ये भाई-बहिन गुप्तरूपसे मूर-देशमें पहुँचना चाहते थे और यहाँ यह विपद् आ खड़ी हुई! तेरसाके चाचा घोड़ेपर सवार होकर उनकी तलाश करते उनके निकट आ गये। उन्होंने भाई-बहिनोंकी पोशाकसे समझ लिया कि यहाँ तो कुछ नया ही गुल खिला है। ये लोग किसी विशेष विचारसे ही यात्राके लिये निकले हैं। तेरसाको लाचार होकर अपने चाचासे सब बातें ठीक-ठीक कह देनी पड़ीं। उनके चाचा बड़े जबरदस्त आदमी थे। वे जबरन् दोनोंको घर वापस ले गये। दोनों भाई-बहिनोंके प्राण नहीं गये और साधु होनेपर भी वे साधु नहीं हुए।

तेरसाकी अवस्था जब बारह वर्षकी थी तभी उसकी स्नेहमयी माताका शरीरान्त हो गया। उस समय बड़ी बहिनपर घरका सारा भार आ पड़ा। जब माता थी तो वह तेरसाकी हर तरह रक्षा करती थी। माताकी तरह पिता रक्षा नहीं कर सकते थे। तेरसाकी बहिन बड़ी विलासिनी, धर्महीना और रंगपर चढ़ी हुई रमणी थी। तेरसा भी उसकी सङ्गतिसे दिन-दिन खराब होने लगी। उसमें पहले जो शुद्ध, सुन्दर भाव था वह जाता रहा। वह अब बड़े-बड़े सुन्दर कपड़े पहनने लगी, तेल-फुलेल लगाने और खूब ठाट-बाटसे रहने लगी। वह एक युवकके फेरमें पड़ गयी और शादी होनेकी बातचीत होने लगी। परन्तु भगवान्ने उसकी सहायता की। तेरसाके मनमें अचानक ऐसा आया कि यह ठीक नहीं है। वह धर्मगुरुके पास गयी। उसने उसे अपना सब हाल सुनाया। उसने कहा ऐसा करना बड़ा पाप है। अब तेरसाने अपने मनको उस युवककी तरफसे हटा लिया और विवेकसे काम लिया। उसने संन्यासिनीकी तरह जीवन बिताना तय किया। घरमें और कोई स्त्री नहीं थी जो तेरसाकी देख-भाल कर सके। पिताने उसे घरमें और रखना पसन्द नहीं किया। वह संन्यासिनियोंके मठमें भरती कर दी गयी। इसमें कितनी ही लड़कियाँ शिक्षा पाती थीं।

तेरसा डेढ़ बरसतक मठमें रही। वहाँ वह बहुत बीमार हो गयी। तब पिता उसे घरपर ले आये। घरपर उसकी सेवा-शुश्रूषा कौन करे! उसने अपने बहिनके घर जाना निश्चय किया। जहाँ बहिन रहती थी वहाँका जल-वायु बहुत अच्छा था। वहाँ जाते समय रास्तेकी सुन्दर वायुसे उसका शरीर स्वस्थ होने लगा। तेरसाको कवित्व और प्रकृतिके सौन्दर्यसे बड़ा प्रेम था। रास्तेमें पहाड़, नदी, लता-पताओंके आनन्दसे तृप्त होने लगी। रास्तेमें उसके एक चाचा रहते थे। वे एक बहुत बड़े जमींदार और सम्पन्न पुरुष थे। उनके अनेक मकान, घोड़ा-गाड़ी और दास-दासी थे। इसप्रकार ऊपरसे बड़े धनी होनेपर भी भीतरसे उनका हृदय संन्यासी था। उन्होंने अपनी भतीजीसे कहा कि 'तुम कुछ दिन यहाँ रहकर तब जाना और जितने दिन यहाँ रहो तुम्हें अपने अत्यन्त मीठे स्वरसे हमें ग्रन्थ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पढ़कर सुनाना होगा।' इस ग्रन्थ-पाठके सम्बन्धमें स्वयं तेरसाने यह लिखा है कि—

'मैंने अपने चाचाको उच्चस्वरसे ग्रन्थ पढ़कर सुनाये। मैं उनके पास थोड़े दिन रही। पर मैं क्या कहूँ उन ग्रन्थोंमें एक इन्द्रजालकी शक्ति छिपी हुई थी। वह शक्ति न जाने कैसे मेरे छिपे हुए मर्मके भीतर घुस गयी, उससे नेत्रोंका अन्धकार हट गया; जीवनकी चञ्चलता दूर हो गयी और धीरे-धीरे बाल्यावस्थाके ऊँचे भाव हृदयमें पुनः जाग्रत् होने लगे।'

तेरसा चाचासे विदा होकर बहिनके घर पहुँची। उस समय उसके मन और शरीर दोनों खूब सुखी थे। वह अपने भविष्यके सम्बन्धमें चिन्ता करने लगी। वह सोचने लगी कि मनुष्यको संसारके सुखमें रहनेसे वास्तविक सुख नहीं मिल सकता। ईश्वरको प्राप्त किये बिना पाप-ताप दूर नहीं होते और सच्ची शान्ति नहीं मिलती। ईश्वरके प्राप्त करनेके लिये घर त्यागकर संन्यासिनी होना जरूरी है। तेरसा तीन महीनेतक इसी चिन्तामें रही कि क्या करूँ, क्या न करूँ। अन्तमें उसने संन्यासिनी होनेका दृढ़ संकल्प कर लिया।

तेरसाने अपने पितासे अपना संकल्प कह सुनाया। इस बातसे उसके हृदयमें जितनी चोट लगी उसे उसकी अन्तरात्मा ही जानती थी। वह सोचने लगी कि यह मातृहीन तो हो ही चुकी है, मैंने इसे इतना बड़ा किया। अब यदि संन्यासिनी होगी तो इसे बड़े दुःख सहने पड़ेंगे! संन्यासीका धर्म बड़ा कठोर है। यदि यह धर्मभ्रष्ट हो गयी तो ऐसी रसातलको जायगी कि ठिकाना ही न लगेगा। पिताने उसे रोकनेका बहुत प्रयत्न किया, कहा कि जबतक मैं जीता हूँ, तू संन्यासिनी न हो पीछे खुशी हो तो हो जाना। तेरसा जानती थी कि पिताकी आज्ञा न माननेसे उन्हें बड़ी चोट लगेगी पर वह ईश्वरके समक्ष प्रतिज्ञाबद्ध हो चुकी थी, वह उस प्रतिज्ञासे हटना बड़ा भारी पाप समझती थी। पिताके कष्टका स्मरणकर उसका हृदय चूर-चूर हो गया पर अधर्म और नरकका भय कर वह अपने संकल्पपर दृढ़ रही और संन्यासिनी होनेकी तैयारी करने लगी।

सन् १५३३ की दूसरी नवम्बरको तेरसाके हृदयमें दैवी प्रकाश और पवित्रताका उदय हुआ जिससे वह आनन्दके मारे खिल उठी। उस समय उसकी अवस्था केवल १८ वर्षकी थी। पितृस्नेहके बन्धनको तोड़कर और संसारके सब सुखोंको लात मारकर वह संन्यासिनी होनेके लिये घरसे चल पड़ी। वहाँ एक मील दूर एविला-नगरमें संन्यासिनियोंका एक आश्रम था उसमें वह भरती हुई। उसे संन्यासकी दीक्षा देनेके लिये एक दिन नियत किया गया। उस दिन वहाँ उसके पिता भी मौजूद थे। एक दिन जो सुन्दर और सुकुमारी तेरसा अनेक वस्त्राभूषणोंसे शोभित होकर अनेक लोगोंको मोहित करती थी आज उसके सुन्दर बाल कटवा दिये गये। इस समय वह कोई आभूषण नहीं पहने थी केवल संन्यासिनीका वेश धारण किये थी। ऊपरके सब आडम्बरोंसे हीन होनेपर भी पिताको उस सौम्य बालिकाके हृदय-मन्दिरमें एक दिव्य ज्योतिका प्रकाश देखकर आश्चर्य हुआ और यह मालूम होने लगा कि उसके दुःख दूर हो गये हैं। देखते-देखते तेरसाकी संन्यास-दीक्षा पूर्ण हो गयी और पिता उदास चेहरा लिये हुए घर लौट आये।

तेरसाने संन्यास लेनेपर सालभरतक आश्रमका कठोर व्रत पालन किया था। उसके मनमें दृढ़ता थी पर वह ज्यादा शारीरिक कष्ट न सह सकी। इसलिये

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उसका स्वास्थ्य खराब हो गया। वह कभी-कभी मूर्छित भी हो जाया करती थी।

सन् १५३५ में तेरसा पिताके घरपर इलाज कराने आयी। पर इलाजसे रोग अच्छा नहीं हुआ। सन् १५३७ में वह फिर आश्रममें चली गयी। तीन वर्षतक लकवेसे पीड़ित रही किन्तु शय्यापर ही वह धर्म-ग्रन्थोंका पाठ करती रही और हृदयसे ईश्वरकी प्रार्थना करती रही। इस रोगावस्थामें ईश्वरपर उसका प्रेम और विश्वास और भी बढ़ गया।

अब तेरसाके ज्ञानचक्षु खुल गये। वह ईश्वरमें अपनी आत्माको स्थापन करनेका यत्न करने लगी। उसे कई साधुओंके दर्शन हुए। इन साधुओंके निर्मल चरित्र, परमात्मामें दृढ़ विश्वास और प्रेम देखकर धर्म-जीवनका गूढ़ रहस्य उसकी समझमें आ गया। साधुओंके ज्वलन्त उपदेशसे उसके हृदयमें धर्मभाव उद्दीप्त हो गया। इस सम्बन्धमें उसने लिखा है कि—

'इन दो साधुओंमेंसे एक साधुके प्रभावसे मेरे हृदयमें एक आश्चर्यमयी आध्यात्मिक शक्ति प्रवेश कर गयी। मनमें प्रतीत होने लगा कि संसारमें इससे बढ़कर और कोई वस्तु नहीं है पर मैं ऐसा नहीं कर सकती थी।'

अब वह कृच्छ्र साधन करने लगी। घोड़ोंके काममें आने लायक मामूली कम्बलोंके कपड़े बनाकर पहनती थी। शय्यापर काँटे बिछाकर सोती थी, उसके शरीरमें घाव हो गये थे और खूनसे रँग गयी थी। थोड़ा बहुत खाकर निर्वाह करती थी। शराब पीना तो क्या उसे छूना भी वह पाप समझती थी।

तेरसाने अनेक कष्ट सहनकर कठोर व्रत और तप किया जिससे उसे पूर्ण आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त हुआ और जिससे सच्चे मनसे वह ईश्वरके ध्यानमें लगी। उस समय यूरोपमें धर्मकी दशा बिगड़ी हुई थी। धर्मोपदेशकों और संन्यासियोंके मठ तो थे पर मठवालोंमें स्वयं इतनी कमियाँ आ गयीं कि वे स्वयं ही ठीक रास्तेपर नहीं चलते थे तो औरोंको क्या सुधारते। मठों और आश्रमोंकी यह दुर्दशा देखकर तेरसाकी तबीयत ऐसे नये आश्रम स्थापित करनेकी हुई जिसमें निन्दित रीतियोंको स्थान न दिया जाय। उस समय सन् १५२० में प्रसिद्ध धर्मसुधारक महानुभाव मार्टिन लूथर धर्मका प्रचार कर रहे थे। उससे भी यूरोपमें धर्मान्दोलनकी लहरें उठ रही थीं। इधर संन्यासिनी तेरसाका लक्ष्य भी अनेक बुरी बातोंको दूर करना था, इससे इनके भी कितने ही शत्रु हो गये पर ये दृढ़ता और निर्भीकतासे अपने कामपर डटी रहीं।

तेरसाने अपने उच्च आदर्शके अनुसार एक नया आश्रम स्थापन किया। इसमें चार संन्यासिनियाँ भरती होकर नये भावसे कार्य करने लगीं। उनका चित्त सत्य और धर्मके लिये व्याकुल हो उठा। लोगोंके क्रोधकी परवा न कर वे ईश्वरकी प्राप्तिके कार्यमें तेरसाकी संगिनी बन गयीं। यहाँ संक्षेपमें उसके आश्रमके नियमोंका कुछ परिचय दिया जाता है—

(१) जो आश्रममें वास करेंगी उनके पास निजकी सम्पत्ति न रह जायगी। वह सब सम्पत्ति आश्रमको मिल जायगी। आश्रममें रहनेवाली नारियाँ मांस नहीं खाने पावेंगी। वे बहुत कम दामके मोटे कपड़ेके बने वस्त्र पहिनेंगी। उनके सिरके बाल कटवाकर छोटे-छोटे कर दिये जायँगे।

(२) आश्रमनिवासिनियोंको प्रातःकाल ६ बजे उठना होगा। ६ से ८ तक ईश्वर-प्रार्थना। नियत समयपर घण्टा बजेगा, उस समय सब भोजन करें। भोजनके बाद एक घण्टा विश्राम करें।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२ बजेसे सब धर्म-ग्रन्थ पाठ करें। सन्ध्याके ६ बजे अन्तिम प्रार्थना।

(३) आश्रमका सिद्धान्त यह है कि यदि कोई व्यक्ति काम न करे तो उसे भोजन भी करना उचित नहीं है।

(४) धनके प्रति आश्रमवासिनियोंकी जरा भी आसक्ति नहीं होगी। आत्म-त्याग और वैराग्य ही आश्रमका मूल मन्त्र है।

चौथे नियमके सम्बन्धमें तेरसाने लिखा है कि 'दरिद्रता, वैराग्य और आत्म-त्यागकी शक्ति मनुष्यकी बड़ी भारी सम्पत्ति है। जो इस सम्पत्तिका अधिकारी होता है वह सब मनुष्योंपर अपना विशेषरूपसे प्रभाव डाल सकता है। हमें स्वयं इस बातका अनुभव हो गया है कि धन और पदमर्यादा—ये धर्मके मार्गमें बड़े विघ्न हैं। हम अपने आश्रमसे इन दोनोंको बिल्कुल अलग रक्खेंगी। वैराग्यके ऊपर ही हमारा आश्रम स्थापन होगा।'

तेरसा प्राणपणसे अपने आश्रमकी उन्नतिमें लग गयी। उसके विपक्षी बहुत चिढ़ गये, उसपर अदालतमें यह मुकदमा चलाया गया कि बिना शासकोंकी अनुमति लिये ही उसने नयी तरहका आश्रम स्थापित किया है। उसके आश्रमके धर्ममतमें और देशके प्रचलित धर्ममतमें बड़ा अनैक्य है। बड़ी दिक्कतके बादमें अन्तमें अदालतसे तेरसा जीत गयी। इस समय एक और अनहोनी बात हो गयी। वह यह कि तेरसाने बड़ा परिश्रम करके अपने आश्रमके सम्बन्धमें रोमके पोप (ईसाइयोंके सर्वप्रधान धर्माचार्य) की लिखी हुई अनुमति ले ली। इससे उसके खिलाफ आवाज उठानेकी लोगोंकी हिम्मत नहीं हुई, क्योंकि भीतर-भीतर वे जलते थे पर जिस आश्रमका रोमके पोपने समर्थन कर दिया किसीकी क्या सामर्थ्य है कि उसके खिलाफ आवाज उठावे।

फिर भी देशमें दो दल हो गये। एक दल तो सर्वथा रूढ़ियोंका पक्षपाती था जो तेरसा और उसके आश्रमकी निन्दा और उन्हें हर तरह हानि पहुँचानेका यत्न करने लगा। दूसरे दलमें अनेक शिक्षित लोग थे जो तेरसाके धर्मकार्यमें तन, मन, धनसे पूरी तरह सहायता करते थे।

तपस्विनी तेरसाका कर्मक्षेत्र धीरे-धीरे बढ़ने लगा। अनेक जगहें आश्रम स्थापन कर वह धर्मकी उन्नतिका यत्न करने लगी। उसके उपयोगसे एक कालेज भी स्थापित हुआ। कुछ दिनों बाद उस शक्तिशालिनी तपस्विनी नारीके सामने सैकड़ों स्त्री और पुरुष अपना सिर झुकाने लगे। जैसे संग्राममें योद्धा अनेक विघ्न-बाधा होनेपर भी अपने लक्ष्यसे क्षणभरके लिये नहीं हटता उसी प्रकार तपस्विनी तेरसा विघ्न-बाधाओंकी कुछ भी परवा न करके सदा अपने उद्देश्यमें अटल रहती थी। उसका ऐसा अद्भुत प्रभाव था कि धनी लोग आश्रमके लिये खूब रुपया देते थे, ज्ञानी लोग उसके काममें सहायता देते थे और धार्मिक जन उसके स्थापित आश्रमोंमें भरती होते थे। संन्यासिनी तेरसाने अकेली होनेपर भी सैकड़ों पुरुषोंकी शक्ति प्राप्त कर ली थी और वह बड़े उत्साहसे अपना उच्च धर्मकार्य कर रही थी।

धीरे-धीरे तेरसाकी महिमा और भी बढ़ने लगी। अनेक नर और नारी इस तपस्विनीके चरणोंमें बड़े भक्तिपूर्वक पुष्पाञ्जलि चढ़ाते थे। अनेक धार्मिक जन उसका उपदेश सुनकर धन्य होते थे; धनी लोग उसके पुण्य-कार्योंमें सहायता देकर फूले नहीं समाते थे। उसे कोई कितना भी बड़ा आदमी कितने भी अधिक धनकी सहायता क्यों न देता पर वह कभी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपने उच्च आदर्शसे नहीं हटी, कभी उसने अपनेको हीन नहीं होने दिया। इस तपस्विनीने अपने चरित्र और धर्मबलसे अपने लिये इतना ऊँचा आसन तैयार कर लिया था कि स्पेनका सम्राट् भी उसे उस आसनसे नहीं गिरा सकता था। तेरसा इतनी निर्भीक थी कि यदि सम्राट् कोई अन्याय करते तो यह वीर तपस्विनी उसका प्रतिवाद किये बिना नहीं रहती थी, इसी साहसके कारण सम्राट् भी उससे भय और भक्ति करते थे।

तेरसा जब आश्रमसे बाहर जाती तो मालूम होनेपर रास्तेमें दोनों तरफ लोगोंकी भीड़ हो जाती थी। धनी-दरिद्र, बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष—सभी उसको देखनेके उत्सुक थे, लोग उसकी गाड़ीके साथ-साथ जाते थे। उसपर लोगोंका बड़ा विश्वास था। वे सदा उसके आशीर्वादकी इच्छा करते थे। मिलानीडवा-नगरमें कितने ही दिनोंसे वर्षा नहीं हुई थी। वहाँ अकस्मात् तेरसा पहुँच गयी। उसके आते ही वहाँ बड़ी भारी वर्षा हुई। लोगोंने यही समझा कि नगरमें इस पुण्यात्मा नारीके पदार्पण करनेहीसे इतने दिनों बाद वर्षा हुई है।

तपस्विनी तेरसाकी चरित्र-लेखिकाने लिखा है कि, 'देशके लोग उसमें इतनी भक्ति और आदर करते थे कि राजा फिलिपि या उसके सेनापतिका भी लोग उतना आदर करते थे या नहीं, इसमें सन्देह ही है।'

सन् १५८२ की सितम्बर-मासमें आलवरकी श्रीमती ड्यूक-पत्नीकी यह तीव्र उत्कण्ठा हुई कि मुझे तपस्विनी तेरसाके दर्शन हों। ड्यूक-पत्नीके गर्भ था। उसका विश्वास था कि यदि तेरसा आशीर्वाद दे जायगी और ईश्वर-प्रार्थना कर जायगी तो सन्तान अच्छी होगी। पर तेरसा उस समय बहुत वृद्धा थी, उसका स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं था, स्थान भी दूर था; किन्तु ड्यूक-पत्नीकी भक्तिसे आकर्षित होकर वह उसके पास गयी। तेरसा वहाँ जाकर रोग-शय्यापर पड़ गयी और अपनेको प्रभुके हाथोंमें अर्पण कर शान्त चित्तसे रोग-यन्त्रणा सहने लगी।

मृत्युसे तीन दिन पहले उसने अपने अपराध जाहिर करने (confession) के लिये एक पादरीको बुलाया। वे पादरी तेरसापर बड़ी भक्ति और प्रेम करते थे। वे तेरसाको मृत्यु-शय्यापर देखकर अपने मनको नहीं रोक सके और उसके सामने घुटनोंके बल बैठकर अश्रु-विसर्जन करते हुए बोले कि, 'माँ! इस समय तुम हमें त्याग करके क्यों चली जा रही हो? परमात्मा इस पृथिवीपर तुम्हें और थोड़े दिनों बनाये रक्खें।' तपस्विनी तेरसाने उत्तर दिया कि 'पिताजी! आपके मुखमें यह बात शोभा नहीं देती। मेरा काम खतम हो गया है, अब मेरे संसारमें रहनेकी जरूरत नहीं है; अब मैं परमेश्वरके पास जानेके लिये तैयार हूँ।'

तपस्विनी तेरसाने आश्रमकी संन्यासिनियोंसे कहा, 'मैंने तुम्हें अनेक बुरे उदाहरण दिखाये हैं, उनके लिये मुझे आज क्षमा करो। तुम मेरे अन्याय-कार्यका अनुकरण मत करना। मुझमें अनेक पाप हैं। मैंने क्या आश्रमके नियम पालन किये हैं? मुझसे ऐसा नहीं हो सका। मैं तुमसे ईश्वरके नामपर अनुरोध करती हूँ कि आश्रमको उच्च आदर्शके अनुकूल ही चलाना।' इन शब्दोंमें कितनी सरलता, कितनी सचाई और कितना भक्तिका भाव भरा हुआ है इसका विचारशील पाठक स्वयं अनुभव करें।

यों तो तेरसा सदा ही ईश्वरका ध्यान किया करती पर इधर मृत्युसे कुछ दिन पहले वह विशेष-रूपसे ईश्वरहीका चिन्तन करती थी। सन् १५८२ में दूसरी अक्टूबरका दिन आ गया। रात्रिके ९ बजेका समय था। उस समय तपस्विनी तेरसाकी मूर्ति एक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अनुपम ज्योतिसे देदीप्यमान हो गयी थी। पासके लोगोंने देखा कि उस समय तेरसा ईश्वरके ध्यानमें पूरी तरह मग्न थी। उसी दशामें यह तपस्विनी अपना नश्वर शरीर त्यागकर सदाके लिये उसी परम पिता परमात्माके चरणोंमें लीन हो गयी। सन् १६१४ में रोमके पोपने परलोकवासिनी तेरसाको दिव्यलोककी अधिकारिणी घोषित किया। जिस समय यह समाचार स्पेनमें पहुँचा तो वहाँ सब श्रेणीके लोग आनन्दोत्सवमें उन्मत्त हो गये। सन् १६२२ की १२ वीं मईको रोमके पोपने तपस्विनी तेरसाको सन्तोंकी श्रेणीमें शामिल किया अर्थात् उस दिनसे वह भी और बड़े-बड़े सन्तोंकी तरह 'सेण्ट' (Saint) अर्थात् 'सन्त' कहलाने लगी।

विश्वास है कि तपस्विनी तेरसाकी जीवनीसे पाठक पूरा लाभ उठावेंगे। *

कल्याणका मार्ग

(लेखक—स्वामी ॐकारानन्दजी परमहंस)

मनुष्य-देहका मुख्य उद्देश्य सुखको प्राप्त करना और दुःखसे छूटना है। यह उद्देश्य कैसे प्राप्त हो सकता है, यही बात इस लेखमें बतलायी जायगी। श्रुति कहती है—

ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥
(ईशा० १)

जो कुछ जगत्में नामरूपात्मक है वह सब ईश्वरके द्वारा आच्छादित है। अर्थात् समस्त जगत्में ईश्वर (वैसे ही) ओतप्रोत है जैसे—

तिलेषु तैलं दधनीव सर्पि-
रापः स्रोतस्स्वरणीषु चाग्निः।
एवमात्मात्मनि गृह्यतेऽसौ
सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति॥
(श्वेता० १। १५)

तिलोंमें तेल, दहीमें घी, झरनोंमें जल और अरणि (समिधा) में अग्नि है। जो इसको देखना चाहता है उसके लिये यह सत्य और तपके द्वारा अपनेमें ही पाया जाता है। क्योंकि वह सब भूतोंमें समानरूपसे व्यापक है।

इसप्रकारका निश्चयात्मक ज्ञान हो जानेपर मनुष्य पाप नहीं कर सकता। वह सच्चा आस्तिक बन जाता है। सच्चा आस्तिक बननेपर ही सब दुःखोंकी निवृत्ति होकर परमानन्दकी प्राप्ति होती है। किसी महात्माने कहा है कि 'हे मन! जो तू पाप करना चाहे तो ऐसी जगह ढूँढ, जहाँ सर्वदर्शी परमात्मा तुम्हें न देखे। नहीं तो पाप ही न कर। हे मन! जिस कर्मको ईश्वरने बुरा बतलाया है, उससे बच, नहीं तो उसके राज्यसे बाहर चला जा।'

एक ब्रह्मनिष्ठ तपस्वीके पास दो जिज्ञासु परा विद्या सीखनेके लिये गये और उनसे प्रार्थना की कि 'हे भगवन्! हमें शिष्य बनाकर ब्रह्मका बोध कराइये।' यह सुनकर उस तपस्वीने उन दोनोंकी परीक्षा लेनेके विचारसे कहा कि 'जाओ, एक ऐसे स्थानसे एक-एक फल तोड़ लाओ, जहाँ कोई तुम्हें देखता न हो।' दोनों शिष्य चले गये और कुछ ही देरमें वापस आ गये। उनमें एक तो फल लेकर आया था और दूसरा खाली हाथ। तपस्वीने पहलेसे पूछा—'तुमको इस फलके तोड़ते समय किसीने देखा था या नहीं?' उसने उत्तर दिया कि फल तोड़ते समय मुझको किसीने नहीं देखा था। वहाँ कोई था ही नहीं। फिर तपस्वीने दूसरेसे खाली हाथ लौटनेका कारण पूछा। उसने उत्तर दिया कि 'भगवन्! मुझे तो कोई ऐसा स्थान नहीं मिला, जहाँ पहलेसे कोई देखनेवाला उपस्थित न हो। जहाँ गया, मैंने देखा, वहीं द्रष्टा भगवान् पहलेसे मौजूद हैं।' ठीक है, स्थानकी तो बात ही क्या, हमारे मन और बुद्धिमें जो कुछ होता रहता है उसका भी द्रष्टा (साक्षी) भगवान् है। वह तो मनका भी मन है, बुद्धिकी भी बुद्धि है। वह हमारी मन-

* बँगला 'तापसी' के आधारपर लिखित।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बुद्धिका द्रष्टा है। तपस्वीने इस शिष्यको गले लगा लिया और उसको अपना शिष्य बनाया और फल लानेवालेको यह कहकर वापस कर दिया कि तुम नास्तिक हो और परा-विद्याके अधिकारी नहीं हो।

प्रिय पाठकगण! सच्चा आस्तिक होना ही एकमात्र ब्रह्मसाक्षात्कारका साधन है। वह प्रभु—

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणश्चक्षोश्च चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥ (केन० १। २)

श्रोत्रका श्रोत्र है, मनका मन है, वाणीकी वाणी है, वह प्राणका प्राण है, चक्षुका चक्षु है, उस अपने आत्माको जानकर देहेन्द्रियादिमें आत्मभावका भलीभाँति त्याग कर विवेकी पुरुष इस लोकसे देह त्यागकर अमरत्वको प्राप्त होते हैं। वह कान, मन, वाणी और नेत्रोंका प्रेरक और साक्षी (द्रष्टा) है। इसलिये—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥

हे भगवन्! हम कानोंसे भगवच्चरित्र, सत्पुरुषोंका जीवनचरित्र और धर्मकथा ही सुनें और परनिन्दा, परुष वचन कदापि न सुनें। नेत्रोंसे कल्याणकारी वस्तुओंको देखें, परदारा और परधनकी ओर न देखें। और स्थिर दृढ़ अङ्गोंसे आपकी सदा स्तुति करते हुए अपनी आयु जो परहितके लिये है, उसे यज्ञ (परोपकार), दान और तप आदिमें लगा दें।

उपर्युक्त श्रुतिमें दूसरा पद है, 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः।' अभिप्राय यह है कि 'एकमात्र परमेश्वर ही सत्य है, जगत् उसमें कल्पित है। अतएव यह असत् है। इसलिये जगत्को सत्य समझना भूल है। इसप्रकार जगत्के सत्य भावको छोड़कर केवल आत्माके द्वारा सबको निराकृत कर जगत्से पृथक् हो आत्म-सुखको प्राप्त करे।' पचीस तत्त्वोंका यह स्थूल शरीर दृश्य, अनात्मा और भोगका आयतन है। मैं इसका द्रष्टा हूँ। अर्थात् मैं ये पचीस तत्त्व नहीं हूँ, और न ये तत्त्व ही मेरे हैं—ये तो पञ्चीकृत महाभूतके हैं। मैं इनका जाननेवाला साक्षी हूँ। जैसे घटका देखनेवाला घटसे अलग होता है, वैसे ही मैं इनसे अलग हूँ। सुख, दुःखके अनुभवरूप भोगका स्थान अन्नमय कोष है। जन्मसे पहले और मृत्युके बाद इस अन्नमय कोष—स्थूल शरीरका अभाव रहता है। यह उत्पत्ति और नाशवान् होनेके कारण घटके समान कार्य है और मैं सदा भावरूप हूँ। उत्पत्ति-नाशसे रहित होनेके कारण विलक्षण हूँ। इसलिये यह अन्नमय कोष—स्थूल शरीर मैं नहीं हूँ और न यह मेरा है। यह स्थूल शरीर दृश्य है और मैं इसका साक्षी—द्रष्टा हूँ। पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच प्राण, मन और बुद्धि—इन सतरह तत्त्वोंका सूक्ष्म शरीर है; अर्थात् प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय कोष ही सूक्ष्म शरीर है। यह सतरह तत्त्वोंका अपञ्चीकृत सूक्ष्म शरीर भोगका साधन और घटकी तरह जड है, मैं इसका साक्षी, चेतन हूँ। यह सूक्ष्म देह दृश्य है और मैं इसका द्रष्टा हूँ। इसके सिवा मैं आनन्दमय कोष (कारण-शरीर) भी नहीं हूँ और न यह मेरा है। यह तो दृश्य है और मैं इसका द्रष्टा हूँ। 'मैं जानता हूँ, मैं नहीं जानता'—ऐसी जो अन्तःकरणकी वृत्तियाँ हैं उनको ज्ञात-अज्ञात वस्तुरूपमें मैं जानता हूँ, देखता हूँ। इसीलिये मैं कारण-शरीर नहीं हूँ और न यह मेरा है—यह तो अज्ञानका है। मैं तो सब वृत्तियोंका साक्षी, निर्विकार हूँ।

स्वप्न और सुषुप्तिसे भिन्न इन्द्रियजन्य ज्ञानका आधार तथा उसके संस्कारका आधार जाग्रदवस्था है। इन्द्रियोंसे अजन्य विषयगोचर अन्तःकरणकी अपरोक्ष-वृत्तिका काल स्वप्नावस्था है और जहाँ सब कारणोंका लय हो जाता है वह सुषुप्ति है। अर्थात् सुख और अविद्यागोचर अविद्याकी वृत्तिका काल सुषुप्ति है। यह तीन अवस्था भी मैं नहीं हूँ, और न ये मेरी हैं; मैं तो इनका साक्षी हूँ और इनसे न्यारा हूँ। इसप्रकार अनात्मसे आत्म-तत्त्वको पृथक् देखना ही आत्मानात्मविवेक है।

तीसरा पद आता है—'मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।' इसका अर्थ है किसीके धनकी आकांक्षा न करो। अर्थात् जो कुछ ईश्वरने तुमको दिया है, उसको स्वीकार करके किसीके धनकी इच्छा मत करो। क्योंकि धन किसीका नहीं है। वृथा तृष्णाको बढ़ानेसे कुछ होता भी नहीं है, मिलता है वही जो प्रारब्धमें होता है। कहा भी है—

करम कमंडल कर गहे तुलसी जहँ लग जाय।
सरिता सागर कूप जल अधिक न बूँद समाय॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अनुपम ज्योतिसे देदीप्यमान हो गयी थी। पासके लोगोंने देखा कि उस समय तेरसा ईश्वरके ध्यानमें पूरी तरह मग्न थी। उसी दशामें यह तपस्विनी अपना नश्वर शरीर त्यागकर सदाके लिये उसी परम पिता परमात्माके चरणोंमें लीन हो गयी। सन् १६१४ में रोमके पोपने परलोकवासिनी तेरसाको दिव्यलोककी अधिकारिणी घोषित किया। जिस समय यह समाचार स्पेनमें पहुँचा तो वहाँ सब श्रेणीके लोग आनन्दोत्सवमें उन्मत्त हो गये। सन् १६२२ की १२ वीं मईको रोमके पोपने तपस्विनी तेरसाको सन्तोंकी श्रेणीमें शामिल किया अर्थात् उस दिनसे वह भी और बड़े-बड़े सन्तोंकी तरह 'सेण्ट' (Saint) अर्थात् 'सन्त' कहलाने लगी।

विश्वास है कि तपस्विनी तेरसाकी जीवनीसे पाठक पूरा लाभ उठावेंगे। *

कल्याणका मार्ग

(लेखक—स्वामी ॐकारानन्दजी परमहंस)

मनुष्य-देहका मुख्य उद्देश्य सुखको प्राप्त करना और दुःखसे छूटना है। यह उद्देश्य कैसे प्राप्त हो सकता है, यही बात इस लेखमें बतलायी जायगी। श्रुति कहती है—

ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥
(ईशा० १)

जो कुछ जगत्में नामरूपात्मक है वह सब ईश्वरके द्वारा आच्छादित है। अर्थात् समस्त जगत्में ईश्वर (वैसे ही) ओतप्रोत है जैसे—

तिलेषु तैलं दधनीव सर्पि-
रापः स्रोतस्स्वरणीषु चाग्निः।
एवमात्मात्मनि गृह्यतेऽसौ
सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति॥
(श्वेता० १। १५)

तिलोंमें तेल, दहीमें घी, झरनोंमें जल और अरणि (समिधा) में अग्नि है। जो इसको देखना चाहता है उसके लिये यह सत्य और तपके द्वारा अपनेमें ही पाया जाता है। क्योंकि वह सब भूतोंमें समानरूपसे व्यापक है।

इसप्रकारका निश्चयात्मक ज्ञान हो जानेपर मनुष्य पाप नहीं कर सकता। वह सच्चा आस्तिक बन जाता है। सच्चा आस्तिक बननेपर ही सब दुःखोंकी निवृत्ति होकर परमानन्दकी प्राप्ति होती है। किसी महात्माने कहा है कि 'हे मन! जो तू पाप करना चाहे तो ऐसी जगह ढूँढ, जहाँ सर्वदर्शी परमात्मा तुम्हें न देखे। नहीं तो पाप ही न कर। हे मन! जिस कर्मको ईश्वरने बुरा बतलाया है, उससे बच, नहीं तो उसके राज्यसे बाहर चला जा।'

एक ब्रह्मनिष्ठ तपस्वीके पास दो जिज्ञासु परा विद्या सीखनेके लिये गये और उनसे प्रार्थना की कि 'हे भगवन्! हमें शिष्य बनाकर ब्रह्मका बोध कराइये।' यह सुनकर उस तपस्वीने उन दोनोंकी परीक्षा लेनेके विचारसे कहा कि 'जाओ, एक ऐसे स्थानसे एक-एक फल तोड़ लाओ, जहाँ कोई तुम्हें देखता न हो।' दोनों शिष्य चले गये और कुछ ही देरमें वापस आ गये। उनमें एक तो फल लेकर आया था और दूसरा खाली हाथ। तपस्वीने पहलेसे पूछा—'तुमको इस फलके तोड़ते समय किसीने देखा था या नहीं?' उसने उत्तर दिया कि फल तोड़ते समय मुझको किसीने नहीं देखा था। वहाँ कोई था ही नहीं। फिर तपस्वीने दूसरेसे खाली हाथ लौटनेका कारण पूछा। उसने उत्तर दिया कि 'भगवन्! मुझे तो कोई ऐसा स्थान नहीं मिला, जहाँ पहलेसे कोई देखनेवाला उपस्थित न हो। जहाँ गया, मैंने देखा, वहीं द्रष्टा भगवान् पहलेसे मौजूद हैं।' ठीक है, स्थानकी तो बात ही क्या, हमारे मन और बुद्धिमें जो कुछ होता रहता है उसका भी द्रष्टा (साक्षी) भगवान् है। वह तो मनका भी मन है, बुद्धिकी भी बुद्धि है। वह हमारी मन-

* बँगला 'तापसी' के आधारपर लिखित।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बुद्धिका द्रष्टा है। तपस्वीने इस शिष्यको गले लगा लिया और उसको अपना शिष्य बनाया और फल लानेवालेको यह कहकर वापस कर दिया कि तुम नास्तिक हो और परा-विद्याके अधिकारी नहीं हो।

प्रिय पाठकगण! सच्चा आस्तिक होना ही एकमात्र ब्रह्मसाक्षात्कारका साधन है। वह प्रभु—

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचꣳ स उ प्राणस्य प्राणश्चक्षोश्च चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥ (केन० १। २)

श्रोत्रका श्रोत्र है, मनका मन है, वाणीकी वाणी है, वह प्राणका प्राण है, चक्षुका चक्षु है, उस अपने आत्माको जानकर देहेन्द्रियादिमें आत्मभावका भलीभाँति त्याग कर विवेकी पुरुष इस लोकसे देह त्यागकर अमरत्वको प्राप्त होते हैं। वह कान, मन, वाणी और नेत्रोंका प्रेरक और साक्षी (द्रष्टा) है। इसलिये—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥

हे भगवन्! हम कानोंसे भगवच्चरित्र, सत्पुरुषोंका जीवनचरित्र और धर्मकथा ही सुनें और परनिन्दा, परुष वचन कदापि न सुनें। नेत्रोंसे कल्याणकारी वस्तुओंको देखें, परदारा और परधनकी ओर न देखें। और स्थिर दृढ़ अङ्गोंसे आपकी सदा स्तुति करते हुए अपनी आयु जो परहितके लिये है, उसे यज्ञ (परोपकार), दान और तप आदिमें लगा दें।

उपर्युक्त श्रुतिमें दूसरा पद है, 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः।' अभिप्राय यह है कि 'एकमात्र परमेश्वर ही सत्य है, जगत् उसमें कल्पित है। अतएव यह असत् है। इसलिये जगत्को सत्य समझना भूल है। इसप्रकार जगत्के सत्य भावको छोड़कर केवल आत्माके द्वारा सबको निराकृत कर जगत्से पृथक् हो आत्म-सुखको प्राप्त करे।' पचीस तत्त्वोंका यह स्थूल शरीर दृश्य, अनात्मा और भोगका आयतन है। मैं इसका द्रष्टा हूँ। अर्थात् मैं ये पचीस तत्त्व नहीं हूँ, और न ये तत्त्व ही मेरे हैं—ये तो पञ्चीकृत महाभूतके हैं। मैं इनका जाननेवाला साक्षी हूँ। जैसे घटका देखनेवाला घटसे अलग होता है, वैसे ही मैं इनसे अलग हूँ। सुख, दुःखके अनुभवरूप भोगका स्थान अन्नमय कोष है। जन्मसे पहले और मृत्युके बाद इस अन्नमय कोष—स्थूल शरीरका अभाव रहता है। यह उत्पत्ति और नाशवान् होनेके कारण घटके समान कार्य है और मैं सदा भावरूप हूँ। उत्पत्ति-नाशसे रहित होनेके कारण विलक्षण हूँ। इसलिये यह अन्नमय कोष—स्थूल शरीर मैं नहीं हूँ और न यह मेरा है। यह स्थूल शरीर दृश्य है और मैं इसका साक्षी—द्रष्टा हूँ। पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच प्राण, मन और बुद्धि—इन सतरह तत्त्वोंका सूक्ष्म शरीर है; अर्थात् प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय कोष ही सूक्ष्म शरीर है। यह सतरह तत्त्वोंका अपञ्चीकृत सूक्ष्म शरीर भोगका साधन और घटकी तरह जड है, मैं इसका साक्षी, चेतन हूँ। यह सूक्ष्म देह दृश्य है और मैं इसका द्रष्टा हूँ। इसके सिवा मैं आनन्दमय कोष (कारण-शरीर) भी नहीं हूँ और न यह मेरा है। यह तो दृश्य है और मैं इसका द्रष्टा हूँ। 'मैं जानता हूँ, मैं नहीं जानता'—ऐसी जो अन्तःकरणकी वृत्तियाँ हैं उनको ज्ञात-अज्ञात वस्तुरूपमें मैं जानता हूँ, देखता हूँ। इसीलिये मैं कारण-शरीर नहीं हूँ और न यह मेरा है—यह तो अज्ञानका है। मैं तो सब वृत्तियोंका साक्षी, निर्विकार हूँ।

स्वप्न और सुषुप्तिसे भिन्न इन्द्रियजन्य ज्ञानका आधार तथा उसके संस्कारका आधार जाग्रदवस्था है। इन्द्रियोंसे अजन्य विषयगोचर अन्तःकरणकी अपरोक्ष-वृत्तिका काल स्वप्नावस्था है और जहाँ सब कारणोंका लय हो जाता है वह सुषुप्ति है। अर्थात् सुख और अविद्यागोचर अविद्याकी वृत्तिका काल सुषुप्ति है। यह तीन अवस्था भी मैं नहीं हूँ, और न ये मेरी हैं; मैं तो इनका साक्षी हूँ और इनसे न्यारा हूँ। इसप्रकार अनात्मसे आत्म-तत्त्वको पृथक् देखना ही आत्मानात्मविवेक है।

तीसरा पद आता है—'मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।' इसका अर्थ है किसीके धनकी आकांक्षा न करो। अर्थात् जो कुछ ईश्वरने तुमको दिया है, उसको स्वीकार करके किसीके धनकी इच्छा मत करो। क्योंकि धन किसीका नहीं है। वृथा तृष्णाको बढ़ानेसे कुछ होता भी नहीं है, मिलता है वही जो प्रारब्धमें होता है। कहा भी है—

करम कमंडल कर गहे तुलसी जहँ लग जाय।
सरिता सागर कूप जल अधिक न बूँद समाय॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तृष्णा सब व्याधियोंका मूल है और सन्तोष परम सुख है।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये॥
(ईश० १५)

'हे जगत्‌के पालन करनेवाले! मैं तुम्हारे मङ्गलमय मुखका दर्शन करना चाहता हूँ, वह मोहिनीमायारूपी स्वर्णमय पात्रसे ढँका हुआ है। तुम अपनी मायाको हटा लो, जिससे मैं तुम्हारा दर्शन कर सकूँ। मैंने सत्य धर्मको ग्रहण करके विधिपूर्वक तुम्हारी उपासना की है। उसका फल अब मुझ सत्यधर्मावलम्बीको प्राप्त होना चाहिये।' वस्तुतः परमार्थसे गिरानेवाली, मोक्षसे विमुख करनेवाली मोहिनी मायाके दो ही अस्त्र हैं—कनक और कामिनी। इनकी आसक्तिका त्याग करनेवाला ही मोक्षका अधिकारी होता है, वही सब दुःखोंसे छूटकर परमानन्दको भोगता है।

'पृतानि जपेदसतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्माऽमृतं गमयेति'—(बृहदारण्यक० १।३।२८)

उद्गाता इसप्रकार जपे—हे भगवन्! असत्‌से मुझे सत्यमें पहुँचा दो। अर्थात् असत्, अनित्य और नाशवान् पदार्थोंमें मैं कभी न फँसूँ। सदैव अपने सत् स्वरूपमें ही लगा रहूँ। मुझे तमसे ज्योति—प्रकाशमें पहुँचा दो। अर्थात् अविद्या, अज्ञान, अविवेकरूपी जो अन्धकार है उससे मुझे विद्या, ज्ञान, विवेकरूपी प्रकाशमें पहुँचा दो। मुझे मृत्युसे अमृतकी ओर पहुँचा दो। अर्थात् जो बार-बार जन्म-मरण-का चक्र लगा हुआ है, उससे मुझे छुड़ाकर अमृत अर्थात् मोक्ष (परमपद) को पहुँचा दो।

ॐ त्वमक्षितमसि, ॐ त्वमच्युतमसि ॐ त्वं प्राणसंशितमसि।
(छान्दोग्य० ३।१७।६)

'हे जीवात्मा! तू नाशरहित है; तू परिवर्तनरहित सदा एकरस है; तू मुख्य प्राण है, ब्रह्मस्वरूप है।' वस्तुतः जीव-ब्रह्ममें स्वरूपतः कोई भेद नहीं, केवल कल्पित उपाधिभेद है। दोनों एक ही हैं।

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम्।
ॐ क्रतो स्मर कृतꣳ स्मर क्रतो स्मर कृतꣳ स्मर॥
(ईश० १७)

यह शरीर नाशवान् है। इसकी कोई निश्चित अवधि नहीं है। इसलिये सदैव मृत्युको सामने खड़ा देखते हुए उपासक पुरुषको सूत्रात्मा प्राणका इसप्रकार अनुसन्धान (चिन्तन) करना चाहिये। मेरा प्राण किसी-न-किसी दिन अमर भावरूप वायु-देवतामें लीन हो जायगा और यह शरीर भस्मावशिष्ट हो जायगा। अतः हे मन! ॐकारके वाच्य परमात्माको स्मरण कर, सम्पूर्ण शुभ कर्मोंका स्मरण कर। हे मन! सँभल, सावधान हो जा। परमात्मामें दृढ़ होकर लग जा। आत्मस्वरूपके चिन्तनमें सदा लीन रह। इसीलिये, अर्थात् कर्म, उपासना और ज्ञानमें प्रवेश होनेके लिये तुझे मनुष्य-योनि मिली है।

जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल एकान्तमें बैठकर रात्रि-भरके अपने किये शुभाशुभ कर्मोंकी जाँच करता है, पुनः शुभ कर्मोंके लिये ईश्वरको धन्यवाद देता हुआ उन्हें ईश्वरार्पण और अशुभ कर्मोंके लिये पश्चात्ताप करता है तथा सायङ्काल दिनभरके अपने किये शुभाशुभ कर्मोंकी जाँचकर शुभ कर्मोंके लिये ईश्वरको धन्यवाद तथा अशुभ कर्मोंके लिये पश्चात्ताप करता हुआ उन्हें पुनः न करनेकी प्रतिज्ञा करता है, उस मनुष्यसे कुछ ही दिनोंमें सब अशुभ कर्म छूट जाते हैं और वह सच्चा आस्तिक होकर परमानन्दको भोगता है।

मनुष्यके मल, विक्षेप और आवरण—यही तीन मुख्य दोष हैं। मलको दूर करनेके लिये श्रुतिमें निष्काम कर्म करनेकी आज्ञा है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
एवन्त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

इस संसारमें निष्काम कर्मोंको अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये अवश्य ही करते हुए सौ वर्ष जीनेकी इच्छा करे, इस-प्रकार तुझ मनुष्यमें कर्म लिपायमान नहीं होगा, सन्ध्या-अग्निहोत्रादि नित्य-कर्म अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये होंगे। अन्तःकरणकी शुद्धि होनेपर ज्ञानकी प्राप्ति होगी और ज्ञानद्वारा तू मुक्तिको प्राप्त होगा।

विक्षेप-दोष उपासनाद्वारा दूर होता है। उपासनाके दो भेद हैं—प्रतीक और अहंग्रह।

'न प्रतीकेन हि सः।' (ब्र० सू० ४।१।४)

अर्थात् प्रतीकोंमें ब्रह्मदृष्टि करनी चाहिये, न कि ब्रह्ममें प्रतीक-भावना करना।

'आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च।' (ब्र०सू०४।१।३)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परमात्माको अपना आत्मा, अपना निजस्वरूप समझते हुए ही चिन्तन करना चाहिये। अथवा ब्रह्मसाक्षात्कार करनेके लिये उपासकको अपने आत्मस्वरूपमें ही ब्रह्मका निरन्तर चिन्तन करना होगा। अर्थात् उस परमात्माको अपनी आत्माके रूपमें जानना होगा।

इन दोनों उपासनाओंसे चित्तकी चञ्चलता दूर होती है और ज्ञानका उदय होता है। तब आवरण-दोष भी दूर हो जाता है। फिर जैसे विवेकसे अविवेक, प्रकाशसे अन्धकार, विद्यासे अविद्याका नाश होता है वैसे ही ज्ञानसे आवरण भी दूर हो जाता है और आवरणके दूर होते ही आत्म-ज्योतिमें स्थिति हो जाती है, जो परम पद है तथा मनुष्यके लिये परम पुरुषार्थ है।

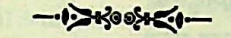

नराकार ईश्वर, अद्वैतवाद और भक्तिवाद

(लेखक—ठाकुर श्रीगजराजसिंहजी एम० ए०, एल-एल० बी०)

तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।
(यजुर्वेद)

अद्वैतशैववेदोऽयं द्वैतं न सहते क्वचित्।
(शिवपुराण)

लेखका उद्देश्य

हमारे इस तुच्छ लेखका उद्देश्य सामान्यतः सब सज्जनोंकी और विशेषकर उन साधारण कोटिके पाठकोंकी सेवा करना है जो 'कल्याण' के भक्ति-ज्ञान-विषयक कई असाधारण विद्वत्तापूर्ण अध्यात्म-सम्बन्धी लेखोंसे पूर्ण लाभ नहीं उठा सकते और जो, विद्वानोंमें मत-भेद होनेके कारण, कल्याणमार्गके अटल मूल सिद्धान्त और उनके वास्तविक परस्पर-सम्बन्धके निर्णयमें संशयात्मा रहा करते हों। इस उद्देश्यको ध्यानमें रख हमने प्रायः सम्पूर्ण कल्याणमार्गका विवेचन ऐसी सरल और साधारण बोलचालकी भाषामें किया है जिसे कठिन शास्त्रीय भाषासे अपरिचित साधारण पाठक भी समझ सकें और अनेक ग्रन्थोंका अवलोकन किये बिना ही सनातनधर्मकी साररूप वस्तुको ग्रहण कर सकें।

ईश्वर निराकार और सर्वशक्तिसम्पन्न है। फिर अवतार लेनेकी आवश्यकता क्या? प्रतिष्ठित पुरुषविशेष बननेकी सार्थकता क्या? ऐसे अनेक प्रश्न वे लोग किया करते हैं जो या तो अवतारवादको नहीं मानते या मानते हुए भी निश्चय और अनिश्चयकी सीमापर खड़े हैं। इनके सिवा ऐसे भी कई सज्जन हैं जो अवतारवादको मानते हुए भी अद्वैतवादको नहीं मानते। वाद-सम्बन्धी इस मत-भेदके कारण ज्ञानके पक्षपाती कई सज्जन भक्तिके पूर्ण महत्त्वका अनुभव नहीं करते और कभी-कभी तो माता (भक्ति) से बिल्कुल नाता तोड़ उसका अनादर करते देखे जाते हैं। इनके विपरीत कई भक्तिके पक्षपाती सज्जन भी भक्तिको साधन और साध्य मान ज्ञानकी न्यूनता दिखलाते रहते हैं और कभी-कभी तो उपहासरूपमें। इसप्रकार एक ही घरमें माँ-बेटेमें मत-भेद और कभी-कभी कलह देखी जाती है, क्योंकि कलियुग कलह-युग है ही।

जब हम इस मत-भेद और कलहसे आगे बढ़ 'पञ्चदेवोपासना' में प्रवेश करते हैं तो यह देखकर हमारे आश्चर्यकी सीमा नहीं रहती कि एक ही मार्गके यात्रियोंमें ही (भक्तिके पक्षपातियोंमें) उपास्यदेवविषयक कलह हुआ करती है। किसी समयमें तो शैव और वैष्णवोंकी कलह बहुत ही शोचनीय अवस्थापर जा पहुँची थी। सौभाग्यसे वर्तमानकालमें यद्यपि कलहकी उतनी उग्रता नहीं है तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि वह सर्वथा विनष्ट हो गयी है। कम-से-कम अभी भी भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय-प्रेमी कई सज्जन शिव और विष्णुमें कुछ-न-कुछ तारतम्य बतलाते हुए देखे जाते हैं, यद्यपि वे द्वेषबुद्धिसे ऐसा नहीं करते। इनके सिवा सर्वथा अभेदवादी भी पाये जाते हैं।

जब हम और भी आगे बढ़ वैष्णवधर्मान्तर्गत भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंमें प्रवेश करते हैं तो यहाँ भी अंश-अंशिभाव-की प्रधानता सर्वोपरि दिखायी देती है। प्रत्येक उपासक अपने उपास्यदेवको सर्वश्रेष्ठ, अंशी मानता और सिद्ध भी करता रहता है। निस्सन्देह जैसी वैष्णव-सम्प्रदायोंकी अनेकता और प्रबलता देखी जाती है वैसी अन्यत्र न

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मिलेगी। स्वभावतः अनेकतामें भेद-भावकी पूर्णता भी होनी चाहिये।

जब हम उक्त मत-भेदकी भूमि (शास्त्र) पर आते हैं तो यह पाते हैं कि शास्त्रोंमें, विशेषकर पुराण-संहिताओंमें, ऐसे परस्परविरोधी वाक्य मिलते हैं जिनसे अनेक मत और सम्प्रदायोंकी उत्पत्ति हो सकती है। उपासकगण पुराणोंसे अपने मतानुकूल प्रमाणोंको ग्रहणकर तथा प्रतिकूलकी उपेक्षाकर अपने-अपने विजयका डङ्का बजाते या बजा सकते हैं। कहीं ज्ञानकी श्रेष्ठता बतलायी गयी है, कहीं भक्तिकी। कहीं शिव-विष्णु (या पञ्चदेव) में अभेद प्रतिपादित है, कहीं किञ्चित् भेद भी। कहीं नारायण सब अवतारोंके कारण माने जा रहे हैं, कहीं राम और कृष्ण भी। कहीं नारायण ही रामके अंश माने जा रहे हैं, कहीं कृष्णके; कहीं राम-कृष्ण नारायणके, कहीं राम कृष्णके या कृष्ण रामके। एक ओर गर्गसंहिताके राम कृष्णमें लीन हो रहे हैं, दूसरी ओर शुकसंहिताके कृष्ण राममें या ब्रह्मवैवर्त्तके नारायण कृष्णमें। इसी प्रकार वैकुण्ठादि लोकोंका हाल है। सारांश, सत्यता कहाँ है? सबसे बड़े भगवान् कौन हैं, कहाँ रहते हैं? पता नहीं लगता। यदि ऐसे परस्पर-विरोधी वाक्योंका सामञ्जस्य हो, उक्त भगवानोंकी भी एकता स्थापित हो जाय तो अच्छा है, क्योंकि आनन्द एकतामें है, अनेकतामें नहीं—'यावन्नानात्वं तावत्कालकृतं भयम्।' यदि सामञ्जस्य न हो सके तो सत्यताका ही मुँह दीख जाय तो और भी अच्छा है। बस, हमारे लेखका यही उद्देश्य है।

हम कोई विद्वान् लेखक नहीं, प्रत्युत विद्वानोंके चरणोंकी रजके तुल्य भी नहीं हैं। अतएव हमारा यह दावा करना कि हम अपने उद्देश्यमें सफल ही हो जायँगे, निरा अभिमान होगा। तो भी इसी बहानेसे यदि कुछ भगवच्चर्चा और अध्यात्मनिरूपण हो जाय तो हमारा और पाठकोंका कल्याण ही है। अतः यह लेख भी 'कल्याण' के लिये है।

संक्षेपसे लिखते हुए भी यह लेख बहुत बड़ा अवश्य हो गया है। पर विषयको देखते हुए छोटा ही है। इस लेखद्वारा हम पाठकोंको अपने विषयकी सूक्ष्म उलझनोंमें न डालेंगे, क्योंकि हम इस योग्य भी नहीं हैं। अतः कल्याणमार्गके जिन मूलसिद्धान्तोंमें मतभेद पाया जाता है उन्हींका साधारण पाठकोंके कल्याणार्थ निरूपण कर भेदको अभेदमें परिवर्तित करेंगे। आशा है कि सहृदय और धैर्यशील पाठक इस लम्बी, कँकरीली, पथरीली और कण्टकमय यात्रामें अन्ततक हमारा साथ देंगे। अब हम अपने विषयमें प्रवेश करते हैं।

नराकार ईश्वर- की आवश्यकता

अद्वैतवादके समर्थक स्वामी विवेकानन्द-का विवेकयुक्त कथन है—

By the present constitution of our mind, we are limited and bound to see God as man, Truly has it been said that if the buffaloes want to worship God, they will, in keeping with their own nature, conceive Him as a huge buffalo; if a fish wants to do the same, it will have to form an idea of Him as a big fish; and man will have to think of God as man. For the man, the buffalo and the fish may be supposed to represent so many different vessels, with different shapes and capacities. And if we imagine those vessels to go to the sea of God to get filled with water, the result becomes that in man water takes the shape of a man, in the buffalo the shape of a buffalo, and in the fish the shape of a fish. For one has indeed no other way about thinking and worshipping God.

Two kinds of men alone do not worship God as man—the human brute who has no religion whatsoever and the liberated soul, the Paramahansa, who has risen beyond all weaknesses, transcended the limits of his own nature and realised God in himself.

(Swami on Bhakti Yoga)

अर्थात् 'हमें अपनी वर्तमान परिमित मानसिक स्थितिके अनुसार ईश्वरको मनुष्यरूपमें देखना (चिन्तन करना) पड़ेगा। सच ही कहा गया है कि यदि भैंस भजन करनेकी इच्छा करे तो वह भी अपनी आकृतिके अनुरूप ईश्वरको एक बड़ी भैंसके रूपमें देखेगी। इसी प्रकार मछली मछलीरूपमें देखेगी और पुरुष पुरुषोत्तमरूपमें (उत्तम पुरुषरूपमें)। उदाहरणार्थ, तीन बर्तन ऐसे लो जो क्रमशः मनुष्य, भैंस और मछलीके भिन्न-भिन्न आकार और परिमाण-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वाले हों। उन्हें ईश्वररूपी समुद्रमें डुबाओ। परिणाम यह होगा कि मनुष्याकार बर्तनका जल भी मनुष्याकार दिखायी देने लगेगा, भैंसाकार और मत्स्याकार बर्तनोंका क्रमशः भैंसाकार और मत्स्याकार। इसके सिवा ईश्वर-चिन्तन और पूजनका अन्य कोई उपाय ही नहीं है।

केवल दो कोटिके मनुष्य ईश्वरको मनुष्यरूपमें नहीं भजते। पहली कोटिमें वे आते हैं जो (नितान्त) धर्मशून्य नरपशु ही हैं। दूसरी कोटिमें वे परमहंस हैं जो अपनी परिमित मानसिक स्थिति और मानव-दोषोंसे परे हों अपने ही अन्तःकरणमें ईश्वरसाक्षात्कार कर चुके हैं।'

(स्वामीकृत 'भक्तियोग' से)

आगे चलकर स्वामीजीके कथनका भावार्थ यह है कि 'उक्त दोनों कोटियोंके बीचमें रहनेवाले साधारण मनुष्योंमेंसे यदि कोई कहे कि न तो मैं ईश्वरको मनुष्यरूपमें मानूँगा और न भजूँगा तो समझ लो कि वह केवल बकवादी पुरुष है जो चाहे जितनी ईश्वर-सम्बन्धी चर्चा क्यों न कर सके, अवतारवादको दूषित क्यों न बतला सके पर साक्षात्कार या आत्मानुभवकी दृष्टिसे सड़कपर घूमनेवाले अज्ञानी पुरुषके ही तुल्य है, प्रत्युत उससे भी अधिक त्रासदायक है। अज्ञानी पुरुष इसप्रकारकी बकवाद न कर सकनेके कारण दूसरे लोगोंकी शान्ति भङ्ग नहीं करता परन्तु बकवादी ज्ञानी अपनी वाचालतासे मनुष्यमात्रको त्रासदायक हो जाता है।'

स्वामीजीके उक्त वचन थोड़े, किन्तु बड़े सारगर्भित हैं जिनमें संक्षेपसे अद्वैतवाद, अवतारवाद और भक्तिवादका रहस्य आ गया है। पहले तो यही शिक्षा मिलती है कि साधारण स्थितिका पुरुष नराकार ईश्वरका चिन्तन किया करे। यदि नहीं करेगा तो वास्तविक आत्मोन्नति न कर सकेगा। निःसन्देह जिस धर्ममें जितनी अधिकतासे नराकार ईश्वरकी उपासना होगी उस धर्मके लोगोंमें उतनी ही अधिकतासे आत्मोन्नतिका प्रकाश भी होगा। सम्भवतः यही कारण हो सकता है कि साधारण लोग प्रायः ईश्वरके पूर्ण नराकार सुन्दर अवतार या रूपोंकी उपासना करते हैं, मत्स्यादि अवतारोंकी नहीं करते। न केवल साधारण पुरुष, किन्तु असाधारण ज्ञान-विज्ञान-विशारद ऋषियोंने भी साधारण लोगोंके ही कल्याणार्थ रामकृष्णावतारोंकी उपासना कर भक्तिरसका अक्षय श्रोत बहाया है, क्योंकि श्रेष्ठ पुरुषोंका अनुकरण दूसरे लोग भी किया करते हैं—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।

(गीता)

उक्त कथनके 'in keeping with their own nature' ये शब्द भी बड़े महत्त्वके हैं, जिनका आशय यही है कि प्रत्येक मनुष्य भी अपनी भिन्न-भिन्न प्रकृतिके भिन्न-भिन्न सुन्दर आदर्शानुसार ईश्वरके भिन्न-भिन्न नर-रूपों-की उपासना करता है। यदि हमारी प्रकृतिका आदर्श शृङ्गारोपासना है तो हम कृष्णकी शृंगारलीलाओंकी ओर झुकेंगे। यदि प्रकृतिकी प्रेरणा शरणागतिकी ओर है तो राम भी हमारे चहुँओर है। गोसाईंजीने क्या ही सुन्दर वर्णन किया है—

जिनकी रही भावना जैसी। प्रभु-मूरति देखी तिन तैसी॥
देखहिं भूप महारणधीरा। मनहुँ वीररस धरे शरीरा॥

× × × ×

पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई। नरभूषन लोचन सुखदाई॥

नारि बिलोकहिं हरषि हिय निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहति शृंगार धरि मूरति परम अनूप॥

भगवान् भी अपनी भिन्न-भिन्न लीलाओंद्वारा हमारी ही प्रकृतिके भिन्न-भिन्न आदर्शोंकी प्राप्ति कराते रहेंगे। यही भगवान्की असीम कृपा है, यही कृपामार्ग है, जो प्रायः अज्ञानवश साम्प्रदायिक विग्रहमार्ग बना दिया जाता है, यद्यपि प्रार्थना की जाती है नारायण-प्रसाद (ईश्वरकृपा) की। साधारण स्थितिमें और असाधारण स्थितिमें भी लोककल्याणार्थ अद्वैतवाद कृपामार्गको नहीं काटता। तात्पर्य यह कि ईश्वरके अमुक स्वरूपकी लीलाएँ अधिक महत्त्व रखती हैं, अमुककी कम—ऐसा कथन अज्ञानमूलक है—कम-से-कम हमारी ही रुचिके महत्त्वका शाब्दिक प्रकाश है। वास्तवमें हम अपने महत्त्वसे अलग नहीं और न हमारा महत्त्व हमसे अलग है। जो हमारे लिये महत्त्वदायक है वह दूसरेके लिये हो या न भी हो। अतएव यह लिख देना अनुचित नहीं कि उपासनादृष्टिसे ईश्वरके भिन्न-भिन्न स्वरूपोंके उपासकोंमें साम्प्रदायिक विग्रह होना कृत्रिमता और अज्ञानमूलक दुराग्रहमात्र है।

इसके सिवा यह शिक्षा भी मिलती है कि भक्तिवादके बिना अद्वैतवादकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। यदि हुई भी, तो वह अद्वैतवाद शीघ्र ही मुर्दा हो जायगा। पर किसी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्थिति-विशेषमें अद्वैतवादकी आवश्यकता भी है, किन्तु जाते हुएकी है, मुर्देकी नहीं।

अन्तिम शिक्षा यह मिलती है कि जैसे मनुष्य या मत्स्याकार वर्तनका जल भी उपाधि-भेदसे मनुष्य या मत्स्याकार दिखायी देने लगता है, यद्यपि जलका वैसा वास्तविक आकार नहीं है, वैसे ही भक्त पुरुषोंके लिये ईश्वर नराकार है यद्यपि वास्तविक स्वरूप निराकार है, अर्थात् ईश्वरका कोई आकार नहीं है। अतएव जबतक ज्ञानोत्पत्ति न हो जाय तभीतक नराकार ईश्वरके भजनकी आवश्यकता है, तत्पश्चात् उसकी आवश्यकता लोक-कल्याणार्थ है। दूसरे शब्दोंमें यही कहेंगे कि भक्ति साधन है, शुद्ध ज्ञान साध्य है। इसी आशयको लक्ष्यमें रख 'नारदपाञ्चरात्र' की आनन्दसंहितामें आनन्दके दो स्वरूप बतलाये गये हैं, यथा—

'आनन्दो द्विविधः प्रोक्तो मूर्तश्चामूर्त एव च।'

अर्थात् 'आनन्दके दो स्वरूप हैं—(१) मूर्त और (२) अमूर्त।' इसी अभिप्रायसे ब्रह्मवैवर्त्त (कृष्णजन्मखण्ड, अध्याय ४३) में विष्णुने शिवजीको ब्रह्मके 'सगुण' और 'निर्गुण'—दो भेद बतलाये हैं, जिनमेंसे मायाश्रित सगुण ब्रह्म है और मायातीत निर्गुण ब्रह्म। यथा—

तद्ब्रह्म विविधं वस्तु सगुणं निर्गुणं शिव।
मायाश्रितो यः सगुणो मायातीतश्च निर्गुणः॥

श्लोकमें आनेवाले 'सगुण' और 'निर्गुण' शब्दोंमें 'गुण' शब्दका एक ही अर्थ किया गया है। किन्तु एक ही कालमें ब्रह्मको सगुण और निर्गुण माननेमें 'निर्गुण' का अर्थ तो 'सत्, रज और तमसे रहित' करना होगा, पर 'सगुण' का अर्थ 'करुणादि सकल दिव्य गुणोंका आश्रय' लेना होगा।

यहाँतक संक्षेपमें स्वामीजीके कथनका सार बतलाया गया। अब यह विचार करना चाहिये कि अद्वैतवाद पुराणोंको भी सहन होता है या नहीं। विचार करनेसे मालूम होगा कि जैसे किसी असहनशील पुरुषको अपमान तनिक भी सहन नहीं होता वैसे ही पुराण भी किसी भी प्रकारके द्वैतको नहीं सह सकते। अपने कथनकी पुष्टिमें हम पाठकोंके सामने शैव-वैष्णवधर्मप्रधान पुराणोंके आठ प्रमाण उपस्थित करते हैं जिनसे किसी भी प्रकारका द्वैत सिद्ध न होगा, चाहे अर्थकी कितनी भी अधिक खींचतान क्यों न की जाये। प्रमाण ये हैं—

पुराणोंमें अद्वैतवाद

शिवपुराणे कैलाशसंहितायाम् अध्याय १० श्लोकार्द्ध १६६, १९४—

(१) अद्वैतशैववेदोऽयं द्वैतं न सहते क्वचित्॥

'यह अद्वैतशिव कभी भी द्वैत नहीं सहता।'

(२) सदाशिवोऽहमेवेति भावितात्मा गुरुः शिवः॥

'सदाशिवोऽहम्'—ऐसी भावना करनेवाला गुरु शिव है।'

तथा च विद्येश्वरसंहितायाम् अ० १३ श्लोकार्द्ध ३५, ४१—

(३) जीवब्रह्मैक्यविषयं बुद्ध्वा प्रणवमभ्यसेत्॥

'जीव और ब्रह्मकी एकता जानकर प्रणवका जप करे।'

(४) ब्रह्मबुद्ध्या तदैक्यं च सोहंभावनया जपेत्॥

'ब्रह्मबुद्धिसे एक जानकर 'सोहंभावना' से जपे।'

पुनश्च श्रीमद्भागवते प्रथमस्कन्धे द्वितीयाध्याये सूत-वचनम्—

(५) अतः पुम्भिर्द्विजश्रेष्ठा वर्णाश्रमविभागशः।
स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिर्हरितोषणम्॥१३॥
वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं च यदहैतुकम्॥७॥
एवं प्रसन्नमनसो भगवद्भक्तियोगतः।
भगवत्तत्त्वविज्ञानं मुक्तसङ्गस्य जायते॥२०॥
वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्॥११॥

'(सूतजी कहते हैं कि) हे द्विजश्रेष्ठो! वर्णाश्रम-विभागसे पुरुषोंके स्वनुष्ठित धर्मोंकी सिद्धि यही है कि भगवद्भक्ति हो।'

'भगवान् वासुदेवमें प्रयोजित भक्तियोग शीघ्र ही वैराग्य और शुद्ध ज्ञानको उत्पन्न करता है।'

'इसप्रकार भक्तियोगसे प्रसन्न हुए मुक्तसङ्गजनको तत्त्वका ज्ञान हो जाता है।'

'तत्त्ववेत्ताजन अद्वैतज्ञानको ही तत्त्वज्ञान कहते हैं।'

तथा च द्वादशस्कन्धे अन्तिमाध्याये सूतवचनम्—

(६) सर्ववेदान्तसारं यद्ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम्।
वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैकप्रयोजनम्॥१२॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणवाला अद्वैतज्ञान ही सर्ववेदान्तसार है, जिसमें निष्ठाजनित कैवल्यमुक्ति ही एक प्रयोजन है।'

बुद्धिमान् पाठक ध्यान देंगे कि श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धमेंसे जो चार श्लोक उद्धृत किये गये हैं उनमेंसे तेरहवाँ और सातवाँ श्लोक मिलकर अद्वैतज्ञानके साधनोंका भी प्रतिपादन कर शङ्कराचार्यजीके निम्नलिखित वाक्योंकी पुष्टि भी कर रहे हैं—

(७) स्ववर्णाश्रमधर्मेण तपसा हरितोषणात्।
साधनञ्च भवेत्पुंसां वैराग्यादिचतुष्टयम्॥
(अपरोक्षानुभूति)

'अपने-अपने वर्णाश्रम-धर्मोंका अनुष्ठान, तप और भगवद्-भक्तिद्वारा वैराग्यादि साधन-चतुष्टयकी प्राप्ति (ज्ञानकी उत्पत्ति) हो जाती है।'

ब्रह्माण्डपुराणान्तर्गत अध्यात्मरामायणके बालकाण्ड (सर्ग १ श्लोक ५०) में स्वयं भगवान् राम अपने परमभक्त हनुमान्‌जीको तत्त्वज्ञान और महावाक्यका उपदेश इस-प्रकार करते हैं—

(८) (क) ऐक्यज्ञानं यदोत्पन्नं महावाक्येन चात्मनः।
तदाविद्या स्वकार्यैश्च नश्यत्येव न संशयः॥

'महावाक्यद्वारा आत्मा और परमात्माका ऐक्यज्ञान होते ही अविद्या अपने कार्योंसहित निश्चयपूर्वक नष्ट हो जाती है।'

किष्किन्धाकाण्डके प्रथम सर्गमें (श्लोकार्द्ध ८९) भी कपिराज सुग्रीव राम-स्तुति करते हुए नानात्व (अनेकता) में कालकृत भय बतला एकताको ही अभयपद मान रहे हैं। यथा—

(ख) यावन्नानात्वमज्ञानात्तावत्कालकृतं भयम्।

'जहाँतक अज्ञानजनित एकता है वहाँतक कालकृत भय है।'

निःसन्देह सत्यधाम अभयपदके यात्रीके लिये यहाँतक दिया हुआ पाथेय ही पर्याप्त है। सबका सार यह निकला कि उपनिषदोंके समान पुराण भी किसी प्रकारका द्वैत नहीं सह सकते। सहनशील पाठक पुराणोंकी इस असहन-शीलताको क्षमा करें।

अद्वैतवाद सर्व-मान्य है या होना चाहिये।

न केवल पुराणोंका किन्तु समस्त शास्त्रों और शास्त्रज्ञोंका इस विषयमें एकमत है कि मुक्तियाँ क्रमशः चार प्रकारकी होती हैं जो पद्मपुराणके निम्नलिखित श्लोक-से विदित होती हैं—

काश्यां मृतस्तु सालोक्यं साक्षात्प्राप्नोति सत्तमः।
ततः सरूपतां याति ततः सान्निध्यमश्नुते।
ततो ब्रह्मैकतां याति न परावर्तते पुनः॥

अर्थात् 'काशीमें देह-त्याग करनेवाला श्रेष्ठ पुरुष साक्षात् सालोक्य-मुक्तिको प्राप्त करता है, तत्पश्चात् सारूप्य और सामीप्य-मुक्तियोंको। अन्तमें ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणा कैवल्यमुक्तिको प्राप्तकर आवागमनरहित हो जाता है।' इसीलिये मुक्तिकोपनिषद्‌में भगवान् रामने स्पष्ट कह दिया है—

कैवल्यमुक्तिरेकैव पारमार्थिकरूपिणी।
× × × ×
अतः सर्वेषां कैवल्यमुक्तिर्ज्ञानमार्गेणोक्ता॥

'कैवल्यमुक्ति ही परमकल्याणरूपिणी है जो ज्ञानमार्गसे (प्राप्य) कही गयी है।'

उक्त तीनों गौण मुक्तियोंमेंसे होता हुआ जीवात्मा कैवल्यमुक्तिके पहले परमात्मासे परम तुल्यता (extreme sameness) का अनुभव करता है। केवल अद्वैतज्ञान ही कैवल्यमुक्तिका अनुभव कराता है या अनुभवस्वरूप है क्योंकि 'केवल' शब्द ही 'एक' का द्योतक है। यदि कैवल्यमुक्तिमें किसी भी प्रकारका द्वैत सिद्ध करनेका प्रयत्न किया जाय तो साधनावस्थामें पूर्वकथित प्रमाणोंसे विरोध आता है जो भक्तिसे ज्ञानकी उत्पत्ति बतलाते हैं और सिद्धावस्थामें 'सदाशिवोऽहम्', 'द्वैतं न सहते क्वचित्' इत्यादि प्रमाणोंसे।

इसके सिवा द्वैतको सहन न कर सकनेवाले पुराणोंमें अद्वैतवादका न केवल वर्णन आया है किन्तु 'अद्वैत' शब्द भी बारंबार आया है। ऐसी स्थितिमें 'एक' का अर्थ किसी भी प्रकार 'दो' करना युक्तियुक्त न होगा। इसके भी सिवा यद्यपि 'वेद' शब्दका अर्थ 'ज्ञान' है तो भी वेदोंका विभाग-क्रम (कर्म, उपासना और ज्ञानकाण्ड) यह बतलाता है कि ज्ञानकाण्डका ज्ञान विशेष ज्ञान, विज्ञान या अद्वैतज्ञान है।

सबका सार यही निकला कि उक्त चार प्रकारकी मुक्तियोंको माननेवाले समस्त शास्त्रों और शास्त्रज्ञोंको अद्वैत-वाद मान्य है या होना चाहिये, यह बात निर्विवाद सिद्ध हो गयी। (क्रमशः)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कल्याण-भावना

[वसन्ततिलका-वृत्त]

(१)

कल्याण-भाव धर ईश ! तुझे नमूँ मैं,
तेरी अपार महिमा सब ठौर राजै ।
देवाधिदेव ! अज और अनन्त है तू,
सारा त्रिलोक दिखता तुझमें पड़ा-सा ।

(२)

आलोकमान नभ जीवन-दान-दाता,
तू व्याप्त है सब कहीं विमल प्रभासे ,
ये साधु-चित्त-खग हैं उड़ते तुझीमें,
है छा रही जगत पै तव दिव्य छाया ।

(३)

हे नाथ ! जोड़कर हाथ पुकारता मैं,
तेरी कृपा मधुर ही बल, जोर मेरा ।
माँगूँ न देव ! सुख किन्तु समत्व माँगूँ,
चाहूँ न भोग भवके, भव-नाश चाहूँ ।

(४)

देखूँ न दर्पयुत हो अपने गुणोंको,
निन्दार्थ दोष परके लख ना सकूँ मैं ।
शोभा लखूँ न कमला ललना-तनूकी,
अन्धा बना नयनसे इतना मुझे तू ।

(५)

देखूँ सदा विमल प्रेम विरोधियोंमें,
सौन्दर्य या दुख छिपे न कभी हियोंका ।
आकाश भेदकर सप्त तुझे लखूँ मैं,
मेरे बना नयनको बलवान ऐसे ।

(६)

गाऊँ न कीर्ति अपनी, परको न निंदूँ,
बोलूँ बुरे दुखद शब्द न शत्रुसे भी ।
भाषूँ न झूँठ यदि सम्पद भी दिलावे,
ऐसी महेश ! बन जाय जबान गूँगी ।

(७)

लावे सुपंथपर जो सब प्राणियोंको,
जो कष्ट नष्ट करती, हरती विरोध ,
जो स्पष्ट, मिष्ट, मित, प्रेमभरी, खरी हो,
ऐसी अमोघ कर दे बलवान वाणी ।

(८)

ना न्याय और श्रमसे जिसको कमाया,
पाया जिसे दिल दुखा करके किसीका ,
खादिष्ट हो वह, चखे उसको न तो भी,
ऐसी अशक्त रसना बन जाय मेरी ।

(९)

आहार जो कुछ मिले निरदोष सादा,
सन्तोषसे चख सके उसको सदा जो ,
दे धर्म-हेतु बल भूख-प्रमाण खाके,
हो शक्तियुक्त रसना बस नाथ ! ऐसी ।

(१०)

दुर्गन्ध है जगत माँहि, सुगन्ध भी है,
हैं ये सभी क्षणिक, दूषित, मोहकारी ।
सूँघे न ग्लानि अथवा रुचिसे इन्हें जो,
ऐसी अशक्त मम घ्राण बना विभो ! तू ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(११)

प्रेमी बना तव पदाम्बुज-गन्धहीका,
निर्गन्ध-जन्य सुख आत्मिकको दिलावे ।
हे इन्द्र-भृङ्गगण-सेवित ! गन्ध-ज्ञाता !
हो घ्राण-शक्ति इतनी बलवान मेरी ।

(१२)

ईर्ष्यालु, दुष्ट, पर-निन्दकको सुनूँ ना,
ना कान दूँ कुटिल, गर्वितकी गिरापै ।
मीठे अनीतिमय वैन न दे सुनाई,
ऐसी विभो ! वधिरता मुझको सदा दे ।

(१३)

सत्शास्त्रके वचन जो उरमें उतारे,
वाणी सुने सुजनकी, मम दोष जाने ,
तेरे सुने भजन भक्ति-सुधा-सने जो,
ऐसे बना श्रवण सार्थक नाथ मेरे ।

(१४)

छूवे न वित्त वनिता-तन वासनासे,
छूवे न शस्त्र कछु हिंसक भावनासे ,
जाने न दुःख-सुख कर्कश आदि छूके ।
हो स्पर्श-शक्ति बलहीन महेश ! ऐसी ।

(१५)

माने न दुःख कुछ कंटक अग्नि छूके,
छूवे मलीन तन सन्त दुखी जनोंका ,
छूती रहे तव पदाम्बुजको सदा ही,
हो स्पर्श-शक्ति तनकी मम नाथ ! ऐसी ।

(१६)

कीड़ा बनूँ विषय-पंक घिनावनेका,
स्वार्थी गुलाम बन श्वान समान जीऊँ ,
नीचा गिरूँ अधिक ही भव-कूपमें, हा !
होवे न जीवन कभी मम नाथ ! ऐसा ।

(१७)

पाऊँ सदा सुजन-संगति, साधु-सेवा,
चारित्र्य उच्च कर उच्च बनूँ सुरोंसे ,
निष्काम दुर्धर धरूँ तप मुक्ति-दाता,
पाऊँ महाफल यही नर-देहका मैं ।

(१८)

चाहूँ न रेशम, न दास, न पुष्पमाला,
प्यारे न रत्नमय भूषण भी मुझे हों ।
प्रासाद, वाहन, सिँहासन भी रुचै ना,
शोभा न भौतिक विभो ! परकीय माँगूँ ।

(१९)

शृंगार हों विनय संयमके दयाके,
ज्ञानादि आत्मिक गुणावलियाँ धरूँ मैं ।
आत्मा बने भवन, आत्मिक राज्य पाऊँ,
ऐसी अलौकिक बने मम देव ! शोभा ।

(२०)

निन्दा सहूँ गरल, दारिद-दाह, बाधा,
गोले सहूँ, खड्ग-चोट, कृतघ्नता भी ,
पीड़ा, क्षुधादि, विरहानल, शीत, गर्मी,
तेरी कृपावश सहूँ इनको खुशीसे ।

(२१)

अन्याय ना सह सकूँ पर पै प्रभो ! मैं,
आपत्ति देख सच पै चुप ना रहूँ मैं ,
न आत्मका पतन पातकसे सहूँ मैं,
ऐसी बना सहन-शक्ति महेश ! मेरी ।

(२२)

मैं भेड़-सदृश बनूँ गुरुके समीप,
आँसू रुकै न मम देख दुखीजनोंको ,
पीहूँ न चित्त तनसे वचसे किसीको,
ऐसा महेश ! कर कायर भी मुझे तू ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(२३)

ले प्रेम-खंग अपना रिपुता बिनासूँ,
साधूँ खकाज कर दूर हजार बाधा,
न्यौतूँ विपत्ति-दलको, डरको डराऊँ,
हो खावलम्बन सुसाहस ईश ! ऐसा ।

(२४)

जो देश, जाति, कुल, बांधवसे बँधा हो,
जो हो दुखान्त, चल, चंचल-वस्तु-जात,
जो क्रोध, लोभ जनकै खुदको भुला दे,
ऐसा न प्रेम अपुनीत करूँ प्रभो ! मैं ।

(२५)

उत्पत्ति खार्थ-विषसे जिसकी नहीं है,
मोहे न चित्त, धरता स्थिरता धरा-सी,
आकाश-सा विमल दिव्य असीम जो है,
हो प्रेम नाथ ! इस भाँति अनन्त मेरा ।

(२६)

हो दीन-बन्धु अभिमान करूँ कभी ना,
हो भक्ति-भाव तुझमें दृढ़ ज्यों सुमेरू,
निःखार्थ सेवक बनूँ सब विश्वहीका,
ऐसा सदा नत रहूँ यह ईश ! माँगूँ ।

(२७)

ऐश्वर्य तुच्छ समझूँ, प्रभुता घिनाऊँ,
सद्ज्ञान-दीप्त सुविचार-सुमेरु पै मैं—
ऊँचा चढ़ूँ, बन सकूँ सम ठीक तेरे,
चाहूँ महेश ! बनना इतना बड़ा मैं ।

(२८)

भूलूँ तुरन्त हित जो परका करूँ मैं,
रक्खूँ न याद निज हानि हुई किसीसे,
न्यायार्थ नाथ ! सब लौकिक खार्थ भूलूँ,
ऐसा मुलक्कड़ बना मुझको विभो ! तू ।

(२९)

भूलूँ न पाप अपने, परकी भलाई,
निःसारता, अथिरता जगकी न भूलूँ,
कर्तव्य, शास्त्र, गुरु-सीख रखूँ हियेमें,
ऐसी बना स्मरण-शक्ति महेश ! मेरी ।

(३०)

संसारके विषय मैं विष घोर मानूँ,
जानूँ न भेद सुख-दुःख, रिपू-सखामें,
स्वर्गीय भोग-सुख छोड़ भजूँ दुखोंको,
ऐसा विचित्र कर पागल भी मुझे तू ।

(३१)

है देह भिन्न मुझसे यह जान लूँ मैं,
निन्दा तथा सुयश-बन्धनमें पड़ूँ ना,
निर्लिप्त हो कमल-सा जगमें रहूँ मैं,
ऐसा प्रवीण मुझ मानवको बना दे ।

(३२)

सारांश है यह कि पाप करूँ नहीं मैं,
तृष्णा असत्य इनसे डरता रहूँ मैं,
तेरे विरुद्ध चलना खविनाश मानूँ,
ऐसी प्रभो ! निबलता मुझको सदा दे ।

(३३)

सम्पूर्ण इन्द्रिय कषाय सपक्ष जीतूँ,
खोऊँ न शान्ति, विचलूँ सुख-दुःखसे न,
पाके खबोध-असिको भव-पाश काटूँ,
ऐसा मुझे प्रबल तू कर चन्द्र-नाथ !

सच्चा वीर

(१)

दुख-क्षुब्ध जीवन-अब्धिमें छोड़े, न जो मुसकानको ।
सुखमें न भूले भाग्य-छलको, मौतके तूफानको ॥
मन-इन्द्रियाँ रखता सदा जो, आत्मके अधिकारमें ।
वह वीरवर आदर्श नर है, धन्य है संसारमें ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(२)

निज ज्ञानको जिसने न बेचा, स्वर्णके बाजारमें।
जिसकी रमी है बुद्धि केवल मुक्तिके सुविचारमें॥
जो मानता है स्वार्थ अपना, अन्यके उपकारमें।
वह वीरवर आदर्श नर है, धन्य है संसारमें॥

(३)

अभिलाष जिस नर-जन्मकी, सुर-वृन्द भी करते सभी।
उसको विनश्वर वस्तुओंमें, जो न खोता है कभी॥
अमरेन्द्रसे जो है बड़ा, सद्ज्ञानयुत आचारमें।
वह वीरवर आदर्श नर है, धन्य है संसारमें॥

(४)

जो ना बनाता दास परको, ना किसीका दास है।
है प्रेम जिसका अपरिमित, अविकार ज्यों आकाश है॥
आनन्दको जो खोजता है, आत्मके भण्डारमें।
वह वीरवर आदर्श नर है, धन्य है संसारमें॥

(५)

जिसकी अपावन देह, पावन दीन-सेवासे बनी।
हितकर मधुर जिसकी गिरा है, प्रेम-अमृतसे सनी॥
मन, वच, करम हैं एक जिसके, सत्यके दरबारमें।
वह वीरवर आदर्श नर है, धन्य है संसारमें॥

—ताराचन्द पाँडया

प्रयाग-पञ्चक्रोशीकी परिक्रमा

(लेखक—श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी)

स घोर कलिकालमें भगवत्-प्राप्तिके प्रायः सभी प्राचीन वैदिक साधन लुप्त-से ही हो गये। अब न तो कोई वेदोंका यथार्थ अध्ययन ही करता है और न वेदोंमें कथित यज्ञ-यागोंका ही अब प्रचार रहा है। ब्राह्मण और क्षत्रिय प्रायः नामधारी रह गये हैं। समयके प्रभावसे प्रायः सभी क्रियाहीन, श्रीहीन और आचारहीन हो गये हैं। कर्मकाण्डकी प्रथा लुप्तप्राय हो गयी है। घृत, दुग्ध तथा अन्य सामग्रियाँ भी शुद्ध नहीं मिलतीं। योग-साधनके जाननेवाले मिलते ही नहीं। प्राणायाम करनेयोग्य हमारा ब्रह्मचर्य ही नहीं रहा। ऐसी दशामें भगवत्-प्राप्ति कैसे हो? क्या इस समयके लिये उन साधनोंसे पृथक् कोई सुलभ, सरल और सर्वोपयोगी कोई साधन नहीं है? शास्त्रोंमें कहा है—हाँ, ऐसे भी सुलभ साधन हैं, जिनसे सांख्य, योग और कर्मकाण्डके बिना भी भगवत्-प्राप्ति या मुक्ति हो सकती है। वे मुख्यतया ये दो साधन हैं—

इत्यादिदोषविध्वस्तबुद्धीनां वै कलौ युगे।
तीर्थयात्रा हरेर्नाम स्मरणं तारकं मतम्॥

इस अनेक दोषोंसे युक्त घोर कलिकालमें तीर्थयात्रा और भगवन्नाम-संकीर्तन—ये ही दो सर्वश्रेष्ठ साधन हैं। श्रद्धापूर्वक तीर्थ-सेवन करो। भक्तिभावसे या जैसे बन सके वैसे भगवन्नामका स्मरण, कीर्तन और श्रवण करो। तुम संसारसागरसे पार हो जाओगे। तुम्हें वही गति प्राप्त हो जायगी, जो हजारों वर्षके निराहार तपसे अथवा राजसूय, अश्वमेध आदि यज्ञोंसे प्राप्त होती थी। यही क्यों, उनका फल तो कभी-न-कभी नाश भी हो जानेवाला है, किन्तु भगवन्नाम-कीर्तन और तीर्थ-सेवनका फल तो अक्षय है। इसलिये सब प्रकारसे तीर्थ-सेवा और भगवन्नाम-जप करना चाहिये।

तीर्थोंकी साङ्गता

शास्त्रकारोंने तीर्थयात्राके पाँच अङ्ग बताये हैं—स्नान, दान, ब्रह्मभोज, उपवास और परिक्रमा। इनके अतिरिक्त किन्हीं-किन्हीं क्षेत्रोंमें किसी-किसी क्रियाका विशेष माहात्म्य है—जैसे गयाजीमें श्राद्ध, प्रयागमें मुण्डन, जगन्नाथजीमें चावलका प्रसाद आदि-आदि। दानका वैसे तो कलियुगमें सभी जगह माहात्म्य है। दानके सहारे ही कलियुगमें धर्म टिका हुआ है; किन्तु तीर्थक्षेत्रोंमें इसका माहात्म्य विशेष है। इसी प्रकार स्नान, ब्रह्मभोज और परिक्रमाका भी माहात्म्य अन्य स्थानोंकी अपेक्षा तीर्थमें विशेष है। धर्ममें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रद्धा रखनेवाले हिन्दू अब भी यथाशक्ति तीर्थोंमें जाकर इन कार्योंको करते हैं।

तीर्थोंके राजा प्रयागराज

जो जडवादके उपासक हैं और इन पञ्चभूतोंके पदार्थों-को ही सत्य मानते तथा चर्म-चक्षुओंसे देखी जानेवाली चीजोंको ही प्रमाण मानते हैं, वे शास्त्रोंकी आधिदैविक और आध्यात्मिक बातोंको क्यों मानने लगे। उनके लिये तो जैसी ही प्रयागकी भूमि, वैसी ही अन्य स्थानोंकी। जैसा जाह्नवी-जल, वैसा ही अन्य जल। उन भाइयोंसे हमें कुछ कहना नहीं है। किन्तु जो धर्ममें विश्वास रखते हैं, शास्त्रवाक्योंको प्रमाण मानते हैं, उनसे हमें कहना है कि तीर्थ निर्जीव या काल्पनिक वस्तु नहीं हैं। वे सजीव हैं, सशरीर हैं और पापोंके नाश करनेकी उनमें शक्ति है। पुराणोंमें जहाँ-जहाँ भी ब्रह्माजीकी सभाका वर्णन आया है वहाँ अयोध्या, मथुरा आदि पुण्यप्रद पुरियों; गंगा, यमुना आदि परम पवित्र नदियों और प्रयाग, कुरुक्षेत्र आदि तीर्थोंका वहाँ सशरीर उपस्थित होना बताया गया है। ये सभी सदा लोकपितामह ब्रह्माजीकी उपासना करते हैं। शास्त्रकारोंकी ऐसी मान्यता है कि यह चराचर विश्व एक नियमित शासनके आधारपर चल रहा है। सभी जातिके प्राणियोंमें एक समर्थवान् पुरुष होता है, उसे उस जातिका राजा कहते हैं। कीट, पतङ्गसे लेकर देवताओंतकके राजा होते हैं। देवताओंके राजा तो इन्द्र प्रसिद्ध ही हैं, इसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थोंके राजा प्रयागराज हैं। अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका और द्वारका—ये सात पवित्र पुरियाँ इन प्रयागराजकी पटरानियाँ हैं। इनमें काशी सबसे बड़ी पटरानी बतायी गयी हैं। इसी आशयका पद्मपुराणमें यह श्लोक है—

पुर्यः सप्त प्रसिद्धाः पतिवचनकरी-
स्तीर्थराजस्य नार्यो
नैका स्यान्मुक्तिदाने प्रभवति सुगुणा
काश्यते ब्रह्म यस्याम्।
सेयं राज्ञी प्रधाना प्रियवचनकरी
मुक्तिदानेन युक्ता
येन ब्रह्माण्डमध्ये स जयति सुतरां
तीर्थराजः प्रयागः॥

प्रयागको प्रजापति-क्षेत्र कहते हैं। ब्रह्माजीने यहीं तप किया था और अनेकों यज्ञ किये थे। इसी कारण इसका नाम प्रयाग पड़ा। यहाँ गङ्गा-यमुना और सरस्वतीका सङ्गम है। शास्त्रकारोंने इसे पृथिवीकी जङ्घा माना है। महाप्रलयमें भी नाश न होनेवाला अक्षयवट यहीं है। महाप्रलयमें बालमुकुन्द भगवान् इसी वटवृक्षके पत्तोंपर पैरके अँगूठेको मुँहमें देकर क्रीड़ा करते रहते हैं। प्रयाग, प्रतिष्ठानपुर (झूसी) और अलर्कपुर (अरैल) को मार्कण्डेयजीने मत्स्यपुराणमें गार्हपत्याग्नि, आहवनीय और दक्षिणाग्नि माना है। सभी तीर्थ इस क्षेत्रमें आकर निवास करते हैं। आठों लोकपाल, सातों ऋषि, साध्य, यक्ष, गन्धर्व, अप्सरा, देवर्षि, ब्रह्मर्षि तथा समस्त ऋषि-महर्षि तीर्थराज प्रयागकी आराधना करते हैं। साठ करोड़से भी अधिक तीर्थोंका निवास प्रयागराजकी सन्निधिमें बताया जाता है। यहाँ पापोंके प्रायश्चित्त-स्वरूप या स्वर्गकी प्राप्तिके लिये प्राण त्यागनेकी प्रथा प्राचीन थी। यहाँ हठसे भी प्राण त्यागनेमें पाप नहीं माना जाता था। हैहयवंशीय महाराज गांगेयदेवने, कुमारिल भट्ट-जैसे वैदिकधर्मप्रवर्तक ऋषिने, निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव-जैसे अवतारी पुरुषोंके माता-पिताओंने तथा असंख्यों धर्मभीरु पुरुषोंने हँसते-हँसते वटमूलमें अपने प्यारे प्राणोंको त्यागकर लोकपावनी त्रिवेणीके पावन प्रवाहमें प्रसन्नतापूर्वक प्रवाहित कर दिया। यह अविनाशी क्षेत्र है, तीर्थोंका शिरोमणि है, तीर्थोंका भी तीर्थ है, पवित्रोंको भी पावन करनेवाला है और बिना सांख्य, योग और यज्ञ-यागोंके मुक्ति देनेवाला है। अबतक भी प्रति वर्ष महीने-डेढ़ महीनेका मकरका मेला यहाँ होता है। धर्मभीरु हजारों आस्तिक हिन्दू घोर शीतकालके समयमें गङ्गा-यमुनाकी बर्फके समान शीतल बालुकामें फूसकी कुटिया बनाकर मकरभर एक मास कल्पवास करते हैं, और यथाशक्ति दान, पुण्य, ब्रह्मभोज, स्नान, उपवासादि भी करते हैं, किन्तु पञ्चक्रोशीकी प्रथा प्रायः लुप्त-सी ही हो गयी है। इस कारण बहुत-से तीर्थ भी लुप्त हो गये हैं। जैसे नैमिषारण्य, काशीकी पञ्चक्रोशी, चित्रकूटकी परिक्रमा, व्रजकी चौरासी कोसकी परिक्रमा होती है, उसी प्रकार पहले यहाँकी भी परिक्रमा होती रही होगी। किन्तु अब तो यह प्रथा बहुत कालसे लुप्त हो गयी है। सभी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तीर्थोंके एकमात्र वन्दनीय और पूजनीय राजाकी परिक्रमा-प्रथा लुप्त हो जाना हम आस्तिक हिन्दुओंके लिये बड़ी ही लज्जा और दुःखकी बात है। मैं बहुत दिनोंसे पुराणोंका स्वाध्याय बड़े मनोयोगसे कर रहा हूँ। जहाँ-जहाँ पुराणोंमें तीर्थोंका प्रसङ्ग आया है वहाँ-वहाँ तीर्थराज प्रयागकी सबसे अधिक प्रशंसा की गयी है। प्रायः सभी पुराणोंमें प्रयागकी सर्वश्रेष्ठताका वर्णन है। इधर प्रयाग-माहात्म्य लिखनेके लिये प्रेम-विद्यालयके सञ्चालकोंने मेरा ध्यान इस ओर आकर्षित किया। इसीके लिये मुझे बहुत-से प्रयाग-माहात्म्य पढ़ने पड़े। तभी प्रयाग-पञ्चक्रोशीके पथके अन्वेषणकी जिज्ञासा हुई। जहाँ-जहाँ पता चला, वहाँ-वहाँ जाकर, साधु-महात्माओंसे पूछकर, शताध्यायी तथा अन्य माहात्म्योंको मिलाकर मैंने एक पञ्चक्रोशीका पथ तैयार किया है। अब उसीके सम्बन्धमें लिखा जाता है।

पञ्चक्रोशीकी परिक्रमा

यह पहले बताया जा चुका है, कि परिक्रमाकी प्रथा सनातन है। जिस क्षेत्रकी जितनी सीमा मानी जाती है, उसके चारों ओर घूमनेका नाम प्रदक्षिणा या परिक्रमा है। व्रजमण्डलको चौरासी कोसका बताते हैं। उसकी चौरासी कोसकी परिक्रमा है। इसी प्रकार काशी, कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य, अयोध्या, चित्रकूट सभी तीर्थोंकी सीमा है और उनकी उतनी ही बड़ी-छोटी परिक्रमा होती है। प्रयागका नाम प्रजापतिक्षेत्र है। इसकी सीमा युगोंके अनुसार घटती-बढ़ती रहती है। सत्ययुगमें चारों धाम इसकी सीमा थे। इसी प्रकार त्रेता-द्वापरमें अयोध्या, चित्रकूट, जाजमऊ—ये सभी इस क्षेत्रकी सीमामें ही माने जाते थे। अब कलियुगमें अक्षयवटसे चारों ओर दस-दस कोस, पाँच-पाँच कोस या अढ़ाई-अढ़ाई कोस इस क्षेत्रकी सीमा है। प्रयागकी एक परिक्रमा सवा महीनेकी बतायी जाती है और उसे चौरासी कोसकी बताते हैं।

दुर्वासाः पूर्वभागे निवसति बदरी-
खण्डनाथः प्रतीच्यां
पर्णाशो याम्यभागे धनददिशि तथा
मण्डलेशो मुनीशः।
पञ्चक्रोशे त्रिवेण्याः परित इह सदा
सन्ति सीमान्तभागे
सुक्षेत्रं योजनानां शरमितमभितो
भुक्तिमुक्तिप्रदं तत्॥

अर्थात् पूर्व भागमें पाँच कोसपर दुर्वासामुनि (कँकरा कुटवाके पास) रहते हैं। पश्चिममें पाँच कोस वरखण्डी शिव निवास करते हैं। दक्षिणमें पाँच कोस पर्णाश मुनि (पनासाके पास) रहते हैं और वटवृक्षसे पाँच कोस उत्तर मण्डलेश्वरनाथ (पणिला महादेव) निवास करते हैं। हमें तो यह श्लोक मिला नहीं, पता नहीं यह कहाँका है; इससे यही सिद्ध होता है कि प्रयागकी विस्तृत (बहिर्वेदी), मध्यम (मध्यवेदी) और संक्षिप्त (अन्तर्वेदी) ये तीन प्रकारकी परिक्रमा रही होंगी। यहाँपर हम प्रजापतिक्षेत्रकी पञ्चक्रोशी परिक्रमापर ही विचार करना चाहते हैं, जिसकी सीमा पुराणोंमें स्पष्ट बाँधी गयी है। जहाँतक प्रसिद्ध तीर्थ गिनाये गये हों वही असली पञ्चक्रोशीकी सीमा और परिक्रमा मानी जा सकती है। अब इसी बातपर विचार किया जायगा।

पञ्चक्रोशी परिक्रमाकी सीमाके साधन

परिक्रमा आदि धार्मिक रूढ़ियोंका सर्वोत्कृष्ट साधन तो परम्परासे चली आयी प्रचलित रूढ़ि ही है। बहुत सम्भव है, कभी-कभी रूढ़ियोंका विकृतरूप होकर कुछ-से-कुछ बन जाता है। किन्तु बुद्धिमान् पुरुष शास्त्रीय प्रमाणोंके आधार-पर उसकी यथार्थता सहजमें ही समझ लेते हैं। दुःख है कि आजकल प्राचीन रूढ़ियोंको ही मिटा देनेकी प्रवृत्ति लोगोंमें उठ रही है। कुछ भी हो, धर्म-प्राण हिन्दू-जाति किसी-न-किसी रूपमें अपनी परम्पराको अब भी थोड़ी-बहुत बनाये ही हुए है। कुम्भ आदि पुण्य-पर्वोंपर सभी सम्प्रदायोंके लाखों पुरुष माता जाह्नवीके तटपर धर्मके झण्डेके नीचे इकट्ठे हो जाते हैं। इसी प्रकार अन्य तीर्थोंकी भी मर्यादा किसी-न-किसी अंशमें विद्यमान है। किन्तु प्रयाग-पञ्चक्रोशीकी प्रथा लुप्तप्राय हो गयी है, अतः लोगोंको पञ्चक्रोशीका नाम तो याद है और अब भी मुख्य-मुख्य स्थानोंके दर्शन करके लोग कहते हैं कि हमने पञ्चक्रोशी कर ली, किन्तु यथार्थमें परिक्रमा अब कोई नहीं देते। हाँ, कार्तिकमें अक्षय नौमीको एक दिनकी परिक्रमा अब भी कुछ लोग देते हैं। मैंने लोगोंसे पञ्चक्रोशी परिक्रमाका पथ बहुत पूछा, किन्तु ठीक-ठीक किसीने नहीं बताया। सभीने अपना अनुमान दौड़ाकर हमें रास्ता बता दिया। अतः

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परिपाटी लुप्त-सी हो जानेके कारण परम्परागत परिक्रमा-पथ तो अब रहा नहीं।

एक बात और ध्यानमें रखनेकी है कि प्रयाग-पञ्च-क्रोशीकी परिक्रमा अन्य तीर्थोंसे भिन्न है। इसमें गंगा, यमुना और मिश्रित संगम इसप्रकार तीनोंके छः तट हैं। इन छहोंके किनारे तीर्थ हैं। परिक्रमामें ये तट छूटने न पावें और कहीं नदीको पारकर नद्यन्तर भी न हो। अतएव परिक्रमाके सम्बन्धमें इतनी बातें आवश्यक हैं।

(१) तीनों अग्निस्वरूप प्रतिष्ठानपुर (झूसी), अलर्कपुर (अरैल) और प्रयागकी परिक्रमा हो जाय।

(२) छः तटोंके कोई भी प्रधान तीर्थ न छूटने पावें।

(३) प्रयागके अष्टनायक—त्रिवेणी, माधव, सोम, भारद्वाज, वासुकी, अक्षयवट, शेष और प्रयाग—ये परिक्रमामें आ जायँ।

(४) पुराणोंमें जो प्रजापतिक्षेत्रकी सीमा बाँधी गयी है वहाँसे आगे न जाया जाय।

(५) जिस दिशामें जहाँ जाकर तीर्थोंके कथनका अन्त कर दिया हो, उसीको निश्चित सीमा माना जाय।

(६) वेणीमाधव (संगम) को छोड़कर कहीं भी नदीको पार न किया जाय।

(७) परिक्रमा सीधी दक्षिणावर्त हो जाय।

इन सातों बातोंका जिसमें पालन हो जाय वही यथार्थ, निश्चित और प्रामाणिक पञ्चक्रोशीका पथ निश्चित कर दिया जाय। इसी बातपर अब विचार करना है। पहले पुराणोंसे यह निश्चय करना है कि उन्होंने प्रजापतिक्षेत्रकी सीमा कहाँ-तक बतायी है। मत्स्यपुराणको द्वादशाध्यायीमें लिखा है—

आप्रयागप्रतिष्ठानात् पुरो वै वासुकेर्ह्रदात्।
कम्बलाश्वतरौ नागौ नागश्च बहुमूलकः॥
एतत् प्रजापतेः क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
अत्र स्नाता दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः॥

अर्थात् प्रयागप्रतिष्ठान (झूसी) से लेकर वासुकी तालाबसे आगेतक और कम्बलाश्वतर तथा नाग (तीर्थ) और बहुमूलक—इनके बीचमें जो भूमि है वही प्रजापति-क्षेत्र है और तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। इस बीचमें जो स्नान करते हैं वे स्वर्गको जाते हैं और जो मर जाते हैं वे फिर जन्म ग्रहण नहीं करते। ये ही श्लोक प्रयाग-माहात्म्य शताध्यायीमें यों लिखे हैं—

आप्रयागप्रतिष्ठानाद् यत्पुरो वासुकेर्ह्रदात्।
कम्बलाश्वतरौ नागौ नागश्च बहुमूलकः॥
एतत् प्रजापतेः क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
यत्र स्थिता न तप्यन्ते जना मृत्युदवाग्निना॥

दोनोंका भाव एक ही है। बहुत-से लोग नागको अलग न मानकर बहुमूलक नाग ऐसा अर्थ करते हैं। प्रयाग-पञ्चक्रोशीकी सं० १९४३ की छपी एक चौरासी कोसकी पुस्तकमें लवाइन गाँवमें बहुमूलक नागका स्थान लिखा है, वह एकदम अशुद्ध है; पता नहीं उस पुस्तकमें किस ग्रन्थके आधारपर अनेक ग्रामोंमें तीर्थोंके नाम गिनाये गये हैं और उनका प्रमाण भी धनुष और कोसोंमें लिखा है। उसकी एक भी बात शताध्यायीसे ठीक-ठीक नहीं मिलती। अतः उसे तो हम एकदम प्रामाणिक नहीं समझते। असलमें इस श्लोकमें 'च' करके नागको बिल्कुल अलग कर दिया है। हमारी इस बातकी पुष्टि इस बातसे भी होती है कि शताध्यायीमें गंगाजीके उत्तर-तटके तीर्थोंमें सबसे अन्तमें नागतीर्थका ही वर्णन किया है। जैसा कि इस श्लोकमें है—

तस्यैवाग्नेयदिग्भागे प्रान्तवेण्या उदक्तटे।
वर्तते नागतीर्थं हि नागनागगणैर्युतम्॥

अर्थात् व्यासाश्रम (अकेला पाठशाला) से अग्निकोणमें, त्रिवेणीके उस पार उत्तर-तटतर नागनामक तीर्थ है। वहाँ नागोंके भी नाग अपने गणोंके साथ रहते हैं। वहाँ अब भी नागेश्वरनाथजीका प्रसिद्ध मन्दिर है। फिर इसके बाद शेषजीने दक्षिणमें बहिर्वेदीके किसी भी तीर्थका वर्णन नहीं किया है। उससे आगे कह दिया है—

तस्यास्य तीर्थराजस्य ब्रह्मपुत्रा भवत्कृते।
वेदीनां त्रितयं प्रोक्तं किमन्यत् श्रोतुमिच्छथ॥

अर्थात् 'आप लोगोंके पूछनेपर मैंने अन्तर्वेदी, मध्यवेदी और बहिर्वेदीके तीर्थोंका वर्णन किया। अब आप लोग और क्या सुनना चाहते हैं?' इस बातसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि नागतीर्थ दक्षिण-दिशाकी सीमा है और इस श्लोकमें प्रजापतिक्षेत्र अथवा त्रिवेणीक्षेत्रकी सीमा ही बतायी जा रही है। इससे नाग कहनेसे उनका मतलब नागतीर्थ या नागेश्वरनाथसे ही है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अब फिर सोचना है कि तब वहुमूलकका क्या अर्थ है। वहुमूलक किस दिशाकी सीमापर है। वहुमूलक शब्दके मानी हैं, वहुत मूलवाला। नामकोषमें वटवृक्षको भी वहुमूलक कहा है, किन्तु यहाँ तो प्रजापतिक्षेत्रकी अवधि वता रहे हैं। अतः वहुमूलक कोई वटके अतिरिक्त दूसरा ही तीर्थ होना चाहिये, जो सीमाके सम्वन्धमें भी ठीक वैठे। लवाइनमें वहुमूलकका स्थान हो नहीं सकता, क्योंकि वह ठीक दक्षिणमें है और शताध्यायीमें स्पष्ट लिखा है—

ततो धनददिग्भागे विदूरे वहुमूलकः।
नागस्तु वर्तते तीर्थावधिस्तम्भधरः परः॥

अर्थात् कुवेरकी उत्तर-दिशामें थोड़ी दूरपर वहुमूलक नामका नाग है, वही तीर्थकी अवधिका स्तम्भरूप है। उत्तर-दिशामें हो और वासुकी ह्रदके आगे हो वही वहुमूलक नाग है। भोगवतीसे आगे उत्तरमें शेषनागजीका स्थान है और सहस्रफण होनेके कारण उनका नाम वहुमूलक भी है। अतः उत्तर-दिशाके वे ही स्तम्भ हैं, क्योंकि शताध्यायीमें और मत्स्यपुराणकी द्वादशाध्यायीमें भी शेषनागके स्थानसे आगे कोटितीर्थ (शिवकोटि) का वर्णन है। अतः शिवकोटितक हमें वहुमूलक स्थानकी सीमा समझनी चाहिये। क्योंकि मार्कण्डेयजी प्रजापति-क्षेत्रके तीर्थोंका ही वर्णन करते हैं और वहाँ स्पष्ट कहते हैं—

कोटितीर्थं समासाद्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत्।
कोटिवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥

अर्थात् कोटितीर्थमें जाकर जो प्राणोंको छोड़ देता है, वह करोड़ों वर्ष जाकर स्वर्गमें सुख भोगता है। शताध्यायीमें भी वहुमूलक नागके पूर्व गालव, भार्गव और चामर आश्रमोंका वर्णन करनेके अनन्तर कहा है—

कोटितीर्थं तु तत्पूर्वे गङ्गाया दक्षिणे तटे।
वर्तते परमस्थानं कोटितीर्थफलप्रदम्॥

अर्थात् इन उत्तरके आश्रमोंसे पूर्व तरफ गङ्गाजीके दक्षिण-तटपर कोटितीर्थोंके फलोंको देनेवाला कोटितीर्थ है। इन सभी वातोंसे भोगवतीसे आगे शिवकोटितक उत्तरकी सीमा सिद्ध होती है। पश्चिममें कम्वलाश्वतरके सामने (महेवाके पास हिन्दी-विद्यापीठ) अग्निकोणमें गङ्गाके उत्तर-तटमें नागतीर्थ सीमा हुई। क्योंकि गङ्गाजीके इस पार मानसतीर्थ (मनसइता नदीके संगम, सनोटीके पास) तक ही तीर्थोंका वर्णन है। अतः इधरकी सीमा मानसतीर्थ स्वतः ही सिद्ध है। इसप्रकार प्रजापतिक्षेत्र या वेणी-क्षेत्रकी सीमाका एक त्रिभुज वन गया। इधर नागतीर्थ (छतनगासे) सीधा मानसतीर्थ (सलौटी) तक, उधर कोटितीर्थ (शिवकोटि) से सिन्धुसागरतीर्थके सामने (हिन्दी-विद्यापीठ) तक, उधर कम्वलाश्वतरनाग (सैंनी) से लेकर नागेश्वरतक। वस, यही प्रजापतिक्षेत्र है। इसके वीचमें जो भूमि है उसीको वेणीक्षेत्र कहते हैं। इसकी लम्वाई शताध्यायीमें पाँच कोसकी वतायी है—

पञ्चक्रोशात्मकं क्षेत्रं षट्कोणं विश्वतोन्नतम्।
प्रकृष्टं सर्वयागेभ्यस्तुलायामधिरोहतु॥

अर्थात् जव देवता अन्य सभी तीर्थोंको तुलापर रखकर तौल चुके तव शेषजीने कहा—'पाँच कोसवाले विश्वतोन्नत इस छः कोणयुक्त प्रयागक्षेत्रको भी तराजूपर रखिये जो सम्पूर्ण यज्ञोंके द्वारा अति श्रेष्ठ है।' हम समझते हैं, हिन्दी-विद्यापीठसे नागेश्वरनाथ पाँच कोस अवश्य होंगे। और नागेश्वरनाथसे मनसइताके मुहाने (सनौटीके आगे) को तो पाँच कोस होनेमें कोई सन्देह ही नहीं। वहाँसे कँकरहा-घाट छः कोस हो तो कोई सन्देहकी वात नहीं। प्रयाग, अरैल और झूसी इन तीनोंको ही प्रजापतिक्षेत्र या वेणीक्षेत्र कहा है। शताध्यायीमें इन्हें क्रमशः अन्तर्वेदी, मध्यवेदी और वहिर्वेदी माना है। मत्स्यपुराणमें गार्हपत्याग्नि, आहवनीय और दक्षिणाग्नि कहा है। इन तीनोंका क्षेत्रफल वीस कोस माना है, जैसा कि शताध्यायीमें लिखा है—

पञ्चयोजनविस्तीर्णं प्रयागस्य तु मण्डलम्।
प्रविष्टस्यैव तद्भूमावश्वमेधः पदे पदे॥

'यह प्रयागमण्डल पाँच योजन (वीस कोस) में फैला हुआ है। इसकी भूमिमें प्रवेश करनेपर पद-पदपर अश्वमेध-यज्ञका फल होता है।' गङ्गा, यमुना और मिश्रित धाराके छः तट होनेके कारण इन तीनों वेदियोंकी त्रिकोण परिक्रमा होगी। और इसी क्रमसे शताध्यायीमें वताया गया है। परिक्रमा करनेपर वीस कोससे अधिक पड़ेगी भी नहीं।

इन सव प्रमाणोंसे नागेश्वरनाथ, मानसतीर्थ, कम्वलाश्वतरनाग और शिवकोटि—ये ही प्रजापतिक्षेत्रकी सीमा सिद्ध हुई। अव परिक्रमा इस ढङ्गसे वनानी चाहिये कि पुराणोंमें वतायी सीमाका भी उल्लंघन न हो और छहों

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तटोंके समस्त प्रसिद्ध तीर्थोंकी परिक्रमा भी हो जाय और साथ ही प्रयाग, अरैल, झूसी इनकी भी प्रदक्षिणा हो जाय। इन्हीं सब बातोंको ध्यानमें रखते हुए हमने परिक्रमाका पथ यों तैयार किया है।

परिक्रमाका पथ

पहले दिन त्रिवेणीमें स्नान करके और तन्दुल-पुष्पसे युक्त जलसे तर्पणादि करके, तीनों वेणियोंका पूजन-अर्चन करके यथाशक्ति दक्षिणा देकर, अक्षयवटमें जाना चाहिये। वहाँ अक्षयवटका तथा उनकी सन्निधिमें वास करनेवाले देवता, ऋषियोंका पूजन करके यमुना-किनारे घृतकुल्या, मधुकुल्या, निरञ्जनतीर्थ, आदित्यतीर्थ, ऋणमोचनतीर्थ, पापमोचनतीर्थ, रामतीर्थ, सरस्वतीकुण्ड, गोघट्टनतीर्थ, कामेश्वरतीर्थ (मनकामेश्वरनाथ) के दर्शन करते हुए वरुणघाटसे तक्षकेश्वर शिवजीके मन्दिरमें जाना चाहिये। वहाँसे तक्षककुण्ड, कालिय ह्रद, चक्रतीर्थ आदिमें मार्जन-प्रणाम करते हुए सिन्धुसागरतीर्थमें पहुँचना चाहिये। वहाँसे अतरसुइया (अत्रि-अनसूया) को सीधी सड़क गयी है। उससे ललितादेवीके दर्शन करके (अटालेके पूर्व) पाण्डवकूपकी प्रदक्षिणा करते हुए (गढ़ईके सराँय मुहल्लेमें) वरुणकूपके दर्शन करते हुए उधरसे सूर्यकुण्डपर पहुँचना चाहिये। वहाँ प्रणाम करके भरद्वाज-आश्रमपर आना चाहिये। दर्शन करनेके पश्चात् वहीं कहीं रात्रि-निवास करना चाहिये। सबेरे उत्तरकी तरफ़ कुछ दूर जाकर, द्रौपदीघाट होते हुए शिवकोटि पहुँचना चाहिये। वहाँ दर्शन-पूजन करते हुए शेषजी (बलदेवजी) नागवासुकी, भोगवती होते हुए दशाश्वमेधघाटपर आना चाहिये। वहाँ शिवजीके दर्शन करके दारागंजमें वेणीमाधवजीकी प्रदक्षिणा और दर्शन करके यदि दिन रहे तो गङ्गाजीके किनारे-किनारे लक्ष्मीतीर्थ, उर्वशीतीर्थ, सोमदत्त, दुर्वासा आदि तीर्थोंमें आचमन, मार्जन, नमस्कार करके अक्षयवटके नीचे अन्तर्वेदीकी यात्रा समाप्त करनी चाहिये। यदि पहुँच जायँ तो रात्रिभर संगमक्षेत्रमें रह जायँ नहीं तो दारागञ्जमें रात्रि-वास करें।

तीसरे दिन त्रिवेणी-स्नान, पूजन-संकल्प करके अरैलके आदि वेणीमाधव या विष्णु-माधवके दर्शन करके किनारे-किनारे हनुमान्-कुण्ड, सीता-कुण्ड, वरुण-तीर्थ, यमतीर्थ, चक्रमाधव, वीरतीर्थ, सोमतीर्थ (सोमेश्वरनाथ), सूर्यतीर्थ, कुबेरतीर्थ, वायुतीर्थ और अग्नितीर्थको नमस्कार करते हुए सीधे देवरखमें जाना चाहिये। अधिक देवोंसे रक्षित होनेके कारण इस क्षेत्रको 'देवरक्षक क्षेत्र' कहते होंगे, उसीका अपभ्रंश देवरख हुआ। यहाँ शुद्धाद्वैतके प्रवर्तक आचार्य श्रीवल्लभाचार्यजी रहते थे। उनके सबसे बड़े पुत्र श्रीगोपीनाथलालजीका जन्म यहीं हुआ था, तथा उनके द्वितीय पुत्र श्रीविट्ठलनाथजीके सात पुत्रोंमेंसे छः का प्राकट्य इसी स्थानपर हुआ था। यहींपर आचार्यदेवने श्रीचैतन्यदेव महाप्रभुको लाकर उनका सत्कार किया था (गौडीय सम्प्रदायके महाप्रभुओंके श्रीचैतन्यदेवकी स्मृतिमें यहाँ अवश्य कुछ बनाना चाहिये) वल्लभकुल सम्प्रदायका यह पूजनीय पीठ है। इसकी प्रदक्षिणा करके नैनीके लिये जो नन्नहन तालाब होकर सीधी सड़क जाती है उसीसे नैनी स्टेशन पहुँचना चाहिये। वहाँसे रेलके इसी पार छेंउकी स्टेशनके उस पार ददरी गाँवमें कम्बलाश्वतर (सैनीदेवीका चबूतरा) की प्रदक्षिणा करके छेंउकी गाँवसे होकर फिर स्टेशन आना चाहिये। वहाँसे सीधे यमुनाजीके किनारे महेवाके पास हिन्दी-विद्यापीठके आसपास कहीं ठहर जाना चाहिये।

चौथे दिन यमुनाजीके किनारे-किनारे समस्त तीर्थोंको प्रणाम करते हुए शूलटंकेश्वरके समीप अरैलमें आ जाना चाहिये। जिस तटपर जल मिल जाय वहाँ तो आचमन कर ले नहीं तो भक्तिके साथ प्रणाम ही कर लेना चाहिये। शूलटंकेश्वरका पूजन करके त्रिवेणी-स्नान करके मध्यवेदीकी यात्रा समाप्त करनी चाहिये और इस पार झूसीमें आकर रात्रिवास करना चाहिये।

पाँचवें दिन त्रिवेणी-स्नान करके समुद्रकूप, ऐलतीर्थ (ऐलेश्वरनाथ), नलतीर्थ, सन्धावट, हंसप्रपत्तन, ब्रह्मकुण्ड, शाल्मलीतीर्थ, उर्वशीतीर्थ, अरुन्धतीतीर्थ आदि तीर्थोंमें अर्चन-मार्जन करते हुए बदरासनौटीके पास मनसइता नदीके मुहानेतक जाना चाहिये। वहाँ मानसतीर्थको प्रणाम करके सीधे नागेश्वर—छतनगा पहुँचना चाहिये। वहाँ एक रात्रि निवास करे। छठे दिन गंगाके किनारे-किनारे शङ्खमाधव, व्यासाश्रम आदिमें होते हुए त्रिवेणी-स्नान करके यात्रा समाप्त करनी चाहिये। फिर यथाशक्ति दान, पुण्य, ब्राह्मणभोजन आदि करे। इसप्रकार तीनों वेदियोंकी यात्रा समाप्त करे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रयाग-पञ्चक्रोशी-परिक्रमाका फल

प्रयागमें समस्त तीर्थोंका निवास बताया गया है। महाभारतमें लिखा है—'जिसने प्रयागमें रहकर तीर्थ-सेवन कर लिया उसे अन्य तीर्थोंमें जानेकी आवश्यकता नहीं।' मत्स्यपुराणमें भगवान् मार्कण्डेयजी महाराज युधिष्ठिरसे कहते हैं—'राजन्! यह क्षेत्र श्रुतियोंका मूल है, इसकी भूमिमें जितने भी पैर चला जाय उतने ही अश्वमेध-यज्ञोंका फल होता है।' प्रयागकी परिक्रमा करनेसे समस्त तीर्थोंकी परिक्रमाका फल बताया गया है। शताध्यायीमें लिखा है—'जो विधिपूर्वक अन्तर्वेदीकी भी परिक्रमा करता है, उसके ऊपर माधव प्रसन्न होते हैं।' माधवकी प्रसन्नता होनेपर फिर संसारमें दुर्लभ ही क्या है? श्रद्धापूर्वक भक्तिभावसे शुद्ध-अन्तःकरण होकर जो तीर्थराज प्रयागकी प्रदक्षिणा करते हैं, उन्हें मनोवाञ्छित फलोंकी प्राप्ति होती है। जो सभी कामनाओंसे रहित होकर करते हैं उन्हें माधव अपने चरण-कमलोंकी भक्ति अथवा मुक्ति प्रदान करते हैं। प्रयागमें किये हुए सभी धर्मकार्य अक्षय हो जाते हैं! परिक्रमा-माहात्म्यमें लिखा है—

प्रयागे यत्कृतं पापं सूक्ष्मं तदपि दारुणम्।
वज्रलेपं तदाख्यातं तदप्यत्र विमुच्यते॥
पापं लोका ये प्रयागे प्रकुर्युः
तेषां पापं नित्यशो वृद्धिमेति।
पुण्यं शक्त्या साधवो ये तथैव
तेषां पुण्यं वर्धते ज्ञानकारि॥

'यदि प्रयागमें सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भी पाप किया जाय तो वह वज्रलेप होकर शरीरसे लिपट जाता है, छुटानेसे भी नहीं छूटता। यदि सालमें एक बार प्रदक्षिणा कर ली जाय तो छोटे-मोटे पाप तो प्रदक्षिणासे ही नाश हो जाते हैं। प्रयाग-क्षेत्रमें जो पुण्य करते हैं, उनका पुण्य नित्यप्रति बढ़ता ही जाता है और बढ़ते-बढ़ते अक्षय हो जाता है। इसी प्रकार जो क्षेत्रमें पाप करते हैं उनका पाप भी नित्यप्रति बढ़ता ही जाता है।' इसीलिये प्रयाग-प्रदक्षिणाका इतना फल बताया गया है। शेषजी प्रयागके माहात्म्यको नहीं कह सके। ब्रह्माजीने भी इसके वर्णनको अपनी शक्तिके बाहर कहा है—अतः इस श्लोकको लिखकर हम भी समाप्त करेंगे—

प्रयागयात्रापुण्यानि वक्तुं शक्नोति कः पुमान्।
दिव्यवर्षशतेनापि मादृशेन किमन्यतः॥

अर्थात् 'प्रयागकी यात्राके पुण्यको कौन मनुष्य कहनेमें समर्थ हो सकता है। यदि देवताओंके वर्षोंसे सैकड़ों वर्षों-तक कहते रहें तो भी पूरा न होगा। फिर मुझ-जैसे व्यक्तिकी तो सामर्थ्य ही क्या है?'

अन्तिम निवेदन

प्रयाग तीर्थोंका राजा है, पवित्र और पुण्यदायिनी अयोध्या, मथुरा आदि सप्तपुरियाँ इन तीर्थराजकी पट-रानियाँ बतायी गयी हैं। प्रलयमें भी नाश न होनेवाला अक्षयवट यहीं है। गंगा, यमुना और सरस्वती—इन तीनों जगत्पावनी पुण्यदायिनी सरिताओंका यहाँ संगम है, प्रजापतिका प्यारा यह क्षेत्र है। इसमें किया हुआ पाप तथा पुण्य अक्षय हो जाता है। इसीलिये जो शुद्ध अन्तःकरण-से पापोंको बचाकर यहाँ मकरभर कल्पवास करते हैं उन-का वह पुण्य अक्षय बन जाता है। इस क्षेत्रमें किये हुए थोड़े पुण्यप्रद कार्य भी अनन्त पुण्योंके देनेवाले हो जाते हैं, अतः धर्मप्रेमी समस्त हिन्दू-जातिके महानुभावोंका ध्यान मैं इन बातोंकी ओर आकर्षित करता हूँ—

(१) प्रयागकी पञ्चक्रोशीकी परिक्रमा जो कर सकें किया करें।

(२) इसके लिये लोगोंको उत्साहित करें, उसका माहात्म्य सुनावें।

(३) प्रयाग-यात्रा करनेवालोंकी यथाशक्ति सहायता करें। तीर्थयात्रावालोंके भोजन, जल, निवास तथा अन्यान्य आवश्यक सामग्रियोंका जो प्रबन्ध करते हैं उन्हें यात्राका चौथाई फल मिलता है। अतः ईश्वरने जिन्हें इस योग्य बनाया है वे यात्रियोंकी हर प्रकारसे सहायता करें।

(४) प्राचीन और जीर्ण हुए मन्दिरों, देवस्थानों और खण्डित प्रतिमाओंका पुनरुद्धार किया जाय।

प्रयागमें वापी, कूप, तड़ाग, धर्मशाला, देवमन्दिर और अन्नसत्र बनवानेका बड़ा माहात्म्य बताया है। हम समझते हैं प्राचीन मन्दिरोंके जीर्णोद्धारका पुण्य इनसे भी अधिक होगा। अतः उदार सज्जनोंको इस ओर ध्यान देना चाहिये। अन्तमें प्रयागके मुख्य अष्टनायकोंका स्मरण करके यह वक्तव्य समाप्त किया जाता है।*

त्रिवेणीं माधवं सोमं भरद्वाजं च वासुकिम्।
वन्देऽक्षयवटं शेषं प्रयागं तीर्थनायकम्॥

* इसकी विशेष जानकारीके लिये मेरी लिखी 'प्रयाग-पञ्चक्रोशी-परिक्रमा' नामक पुस्तक पढ़नी चाहिये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गीतोक्त कर्मयोग और आधुनिक कर्मवाद

जिस कर्मयोगको भगवान्‌ने, 'कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते' (गीता ५।२) कर्मसंन्याससे श्रेष्ठ बतलाया, जिसके आचरण करनेवालोंके लिये 'जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्' (गीता २।५१) जन्म-बन्धनसे छूटकर अनामय (अमृतमय) परमपदकी प्राप्ति बतलायी, वह गीतोक्त कर्मयोग क्या आधुनिक कर्मवाद ही है ? आजकल जगत्‌के विशिष्ट शिक्षित पुरुष जिस कर्मवादके पीछे पागल हैं, जीवनभरमें कभी जिन्हें इन प्रश्नोंपर विचार करनेके लिये फुरसत ही नहीं मिलती, या जो विचार करना आवश्यक ही नहीं समझते कि 'ईश्वर क्या है, प्रकृति क्या है, जगत्‌का क्या स्वरूप है, हम कौन हैं, कहाँसे आये हैं ?' ऐसी बातोंकी कल्पना करना जिनके मन समयका दुरुपयोग करना है और जो रात-दिन केवल भौतिक उन्नतिका आदर्श सामने रखकर ही अपनी, अपनी जातिकी, अपने देशकी और संसारकी भौतिक उन्नतिके लिये, पार्थिव भोग-पदार्थोंकी प्राप्ति और सम्भोगके लिये कर्ममें लग रहे हैं। एक मिनिटके लिये भी जिनको कर्मसे अवकाश नहीं है, उनका वह कर्म क्या गीतोक्त कर्मयोग है ? आजकल कुछ लोग ऐसा ही समझते हैं, या सिद्ध करना चाहते हैं कि गीतामें इसी कर्मयोगकी शिक्षा दी गयी है। इसीलिये वे अपनी या परायी ऐहिक उन्नतिके लिये कामासक्तिपूर्वक अनवरत कर्मप्रवाहमें बहते हुए मनुष्योंको 'कर्मयोगी' की पदवी देते हैं और गीताके श्लोकोंसे इसका समर्थन करना चाहते हैं। अतएव इस विषयपर कुछ विचार करना आवश्यक हो गया है।

आधुनिक कर्मवादका स्वरूप

इस कर्मवादके स्वरूपके सम्बन्धमें नाना मतभेद हैं और इसमें अनेकों प्रकारके परिवर्तन भी हो रहे हैं। इसका उत्तम स्वरूप यह है—

कर्म मनुष्यकी उन्नतिका मूल है, कर्मसे ही मनुष्य अपना, देशका और दीनोंका दुःख दूरकर सबको सुखी बना सकता है, अतएव किसी भी दूसरेपर कुछ भी भरोसा नहीं करके मनुष्यको निरन्तर कर्ममें ही लगे रहना चाहिये। जगत्‌का सारा दुःख केवल कर्मसे ही दूर हो सकता है। अतएव सबको सुख मिले, सबको समानरूपसे भोगपदार्थोंकी प्राप्ति हो, ऐश्वर्य बल विद्या कला विज्ञान आदिकी वृद्धि हो, सबकी आवश्यकताएँ पूरी हों। इसके लिये सबको सब प्रकारसे आलस्य छोड़कर दुःख-कष्टकी परवा न कर, सदा उत्साह और उल्लासपूर्वक कर्म करते रहना चाहिये। यही मनुष्यका कर्तव्य या धर्म है।

इस कर्तव्यके पालनमें विविध कर्मोंके नानाविध स्वरूप बन गये हैं। कोई कहता है, केवल विज्ञानसे ही सबकी उन्नति हो सकती है। रेल, जहाज, तार, टेलीफोन, बेतारका तार, वायुयान आदि अनेक प्रकारके परम अद्भुत यन्त्र और अन्य आवश्यक चीजें, जिनसे संसारमें सभी क्षेत्रोंमें बहुत कुछ सुभीता हो गया है, विज्ञानका ही फल है; इसके अतिरिक्त रक्षक, संहारक अनेक प्रकारकी चीजें विज्ञानने आविष्कार की हैं, जिनसे हम अपनी रक्षा और विपक्षका संहार सहज ही कर सकते हैं और नाना प्रकारसे सुखोपभोग करते हुए जीवन बिता सकते हैं, अतएव विज्ञानकी उन्नतिके कर्ममें लगे रहना चाहिये।

कोई कहता है, विज्ञानने मनुष्यको आलसी,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विलासी, हिंसक और पक्षपाती बना दिया है। विज्ञानके फलसे ही यन्त्र बने और यन्त्रोंके कारण ही पूँजीवाद और मजदूरवादकी सृष्टि हुई। कुछ लोगोंके पास धन आ गया और शेष जनताका बहुत बड़ा भाग भूखों मरने लगा अतएव विज्ञानकी ओरसे मन हटाकर यन्त्र-सभ्यताका नाशकर ग्राम्य-जीवनको सुधरे हुए आदर्शपर प्रतिष्ठित करना चाहिये। इसीमें सबका कल्याण है।

कोई कहता है कि देशकी रक्षाके लिये कानून, शस्त्रास्त्र और सेनाकी बड़ी आवश्यकता है, इसलिये इनकी वृद्धिमें लगना चाहिये और कोई इनसे संसारका अमंगल समझकर अधिकाधिक कानून, शस्त्रास्त्र और सेनाका विरोध करते हैं। कोई साम्राज्यवादी हैं तो कोई प्रजाराज्यवादी। कोई विषमतासे भलाई मानते हैं तो कोई व्यवहारमें पूर्ण समता चाहते हैं।

इसप्रकार नाना रूपोंमें कर्मका आश्रय लेकर आधुनिक जगत् कर्म और कर्मीकी पूजामें लगा है। इन सबके कर्मका स्वरूप कुछ भी हो परन्तु ईश्वर और धर्मकी आवश्यकता इनमेंसे किसीको नहीं है। कहीं अत्यन्त क्षीणरूपमें ईश्वर और धर्मकी बात सुनायी पड़ती है तो वह भी इस ऐहिक उन्नतिके लिये ही; वरं पाश्चात्य शिक्षाप्राप्त लोगोंमें तो अधिकांश प्रायः यही मानते हैं कि ईश्वर और धर्मकी बात करना या सुनना केवल व्यर्थ ही नहीं है, पतनका कारण है। इन पुराने विश्वासोंको—ब्रह्मोंको सर्वथा नष्टकर नवीन युगकी नवीन कल्पनाओंपर ही विश्वास करना चाहिये। इसीलिये आज चारों ओर क्रान्ति और अशान्ति है, एवं इसी क्रान्ति एवं अशान्तिके कार्योंको 'कर्मयोग', और दिन-रात इनमें लगे हुए लोगोंको 'कर्मयोगी' कहा जाता है। यह संक्षेपमें वर्तमान कर्मवादका स्वरूप है।

गीतोक्त कर्मयोगसे आधुनिक कर्मवादकी तुलना

अब गीताके कर्मयोगपर कुछ विचार कीजिये—

अवश्य ही, गीतामें किसी व्यक्ति, जाति, देश या विश्वके हितके लिये कर्म करनेका कहीं भी निषेध नहीं किया है, वरं स्वधर्म-पालन और सर्वभूतहितमें रत रहनेकी ही आज्ञा दी गयी है। परन्तु गीताकी दृष्टिमें कर्मके बाह्य स्वरूपका इतना महत्त्व नहीं है, जितना कर्त्ताकी बुद्धिका है। कर्म बाहरसे मृदु हो या कठोर, लोकदृष्टिमें अनुकूल हो या प्रतिकूल, प्रेम हो या युद्ध, भोग हो या त्याग, यदि उसमें ज्ञान, भक्ति और समत्व है तो वही कर्मयोग है। श्रीभगवान्‌ने (गीता १८। ४६ में) कहा है—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

'जिससे समस्त भूतोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त विश्वब्रह्माण्ड व्याप्त है अर्थात् जो स्वयं विश्वरूपमें प्रकाशित है, उस (परमेश्वर) की अपने कर्मद्वारा पूजा करके मनुष्य परमसिद्धिको प्राप्त होता है।'

इसमें ज्ञान और भक्तिसे युक्त कर्मकी व्याख्या है। यह जान लेना होगा कि श्रीभगवान् ही जगत्‌भरमें व्याप्त हैं, और मनुष्यको उन्हींकी पूजा करनी है, समस्त कर्म उन्हींकी पूजाके लिये हैं। कर्म कौनसे? केवल जप, तप, पाठ, पूजा ही नहीं, जिसका जो स्वकर्म हो, जिसके लिये जो कर्तव्य हो, उन्हींसे भगवान्‌की पूजा होगी। अर्जुन क्षत्रियके लिये धर्मयुद्ध ही कर्तव्य है, वहाँ रणाङ्गणमें आततायी प्रतिपक्षियोंका वध करके उनके रक्तसे ही कालरूपसे प्रसिद्ध भगवान्‌की पूजा करनी होगी। तुलाधार वैश्य क्रय-विक्रयरूप व्यापारसे भगवान्‌की पूजा करता है। धर्मव्याध सेवाद्वारा भगवान्‌को पूजता है, याज्ञवल्क्य संन्यास और ज्ञानद्वारा उनकी पूजा करते हैं। जनक-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ने राज्यपालन करके उन्हें पूजा। ब्रह्मचारी गुरुसेवा और विद्याध्ययनद्वारा भगवान्‌की पूजा करें। यह आवश्यक नहीं कि पूजाकी सामग्री एक-सी हो, आवश्यकता है, पुजारीके हृदयके भावकी। यदि वह भगवान्‌के स्वरूपको समझकर, भगवान्‌की पूजाके लिये—किसी फलके लिये नहीं—किसी कर्ममें आसक्त होकर नहीं, केवल यज्ञार्थ—भगवदर्थ—किसी भी कर्तव्यकर्मको करता है तो वही कर्मयोग है। यह याद रखना चाहिये ऐसे कर्म करनेवाले कर्मयोगीसे वास्तविक लोकहितसे विपरीत कर्म या पापकर्म कदापि नहीं बन सकते। अमृतसे कोई मरे तो गीतोक्त कर्मयोगीसे किसीका अहित हो!

इसी कर्मयोगकी व्याख्या भगवान्‌ने दूसरे अध्यायके निम्नलिखित श्लोकोंमें की है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥४७॥
योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते४८

हे अर्जुन! तेरा कर्म करनेमें अधिकार है, फलमें कदापि नहीं, कर्मफलके हेतुसे कर्म न कर, (परन्तु) कर्म न करनेमें भी मन न लगा। आसक्तिको त्यागकर सिद्धि-असिद्धिमें सम होकर, योगमें स्थित होकर (भगवान्‌के चिन्तनमें चित्त लगाये हुए ही) कर्म कर। (फल श्रीभगवान्‌के हाथमें है, उनकी इच्छासे जो कुछ भी फल होगा, बस, वही होना चाहिये, मुझे तो उनके चिन्तनमें चित्त लगाये हुए उनकी इच्छानुसार कर्म करना चाहिये) यह समत्व ही योग कहा जाता है।

असलमें कर्म करनेमें ही मनुष्यका अधिकार है, कर्मफलमें अधिकार नहीं है। कोई भी मनुष्य यह दावा नहीं कर सकता कि मैं केवल कर्म करके ही अमुक फल प्राप्त कर लूँगा। किसान खेत जोतकर उसमें बीज डाल सकता है। परन्तु उसमें अनाज उत्पन्न होना उसके हाथमें नहीं है। अनावृष्टि, अतिवृष्टि, चूहे, टिड्डी, पाला आदिसे पकी-पकायी फसल भी नष्ट हो सकती है। तथापि उसे खेत जोतकर बीज तो डालना ही चाहिये, क्योंकि यह उसके हाथकी बात है और यही उसका कर्तव्य है। इसपर भी यह प्रश्न हो सकता है कि 'जब फल अपने हाथमें नहीं है, तब कर्म ही क्यों किया जाय? चुपचाप बैठे रहनेसे भी जो होना होगा सो हो ही जायगा।' इसीलिये भगवान्‌ने पहलेसे सावधान कर दिया कि 'कर्म-त्यागकी ओर तेरा मन नहीं लगना चाहिये' क्योंकि कर्ममें मनुष्यका अधिकार है। यद्यपि जगत्‌में सब कुछ भगवान्‌की इच्छासे ही होता है। उन लीलामयकी ही सारी लीला है, परन्तु वे मनुष्यको निमित्त बनाते हैं—इसीलिये उसे कर्मका अधिकार दिया गया है। कौरवोंको भगवान्‌ने पहलेसे ही मार रक्खा था, विराट् स्वरूपमें अपनी विकराल दाढ़ोंमें सबको चूर्ण अवस्थामें दिखला भी दिया, अर्जुन निमित्त न बनते तब भी उनका संहार होता ही, परन्तु अर्जुनको निमित्त बनाकर ही भगवान्‌ने उनका संहार करवाया। अतएव मनुष्यको अपने अधिकारके अनुसार कर्म करना चाहिये परन्तु फलकी आशासे नहीं। अवश्य ही कर्म बिना उद्देश्यके नहीं होता, इसलिये मनुष्यके कर्ममें भी कोई उद्देश्य या लक्ष्य रहेगा। व्यापारमें धन मिले, युद्धमें जय हो, दवासे रोग नष्ट हो, यह उद्देश्य व्यापार, युद्ध और औषध-सेवनमें है, कर्मकी सफलताकी ओर दृष्टि है, परन्तु वास्तवमें फल कुछ भी हो, धन मिले या न मिले, जय हो या पराजय हो, रोग दूर हो जाय या बढ़ जाय, उसका उसमें समान भाव है। क्योंकि वह आसक्ति और कामनाके वश होकर कर्म नहीं करता, उसके कर्ममें इन कामनाओंकी प्रेरणा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नहीं है, उसके कर्म-प्रेरक भगवान् हैं, वह भगवान्‌की पूजाके लिये ही स्वकर्म या स्वधर्मका पालन करता है। उसका राज्य-ग्रहण या संन्यास दोनों भगवान्‌के लिये ही होते हैं। सब प्रकारकी आसक्ति, सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजयको समान समझकर भगवान्‌के साथ योगयुक्त होकर कर्म करना ही गीतोक्त कर्मयोग है। इसमें भगवान्‌का ज्ञान है, भगवान्‌की भक्ति है और फलमें सर्वथा समत्व है। इसीलिये भगवान्‌ने आरम्भमें ही कहा है—

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥
(गीता २। ३८)

सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजयको समान समझकर तदनन्तर युद्धमें प्रवृत्त हो, ऐसा करनेसे तुझे पाप नहीं लगेगा।

ऐसा न करनेसे पापकी सम्भावना है, क्योंकि कामना और आसक्तिके वश होकर केवल फलानुसन्धानमें लगे रहकर कर्म करनेसे धर्म और ईश्वरका ध्यान छूट जाता है। जिससे मनुष्य आरम्भमें विश्वहित या देशहित आदि उत्तम उद्देश्य होनेपर भी काम, क्रोध, द्वेष, हिंसा आदिके अधीन होकर लक्ष्यभ्रष्ट हो जाता है और आसुरीभावके साम्राज्यमें पहुँचकर असुरवत् कार्य करता हुआ नरकका भागी होता है।

भगवान्‌ने आसुरीभावका वर्णन करते हुए कहा—आसुरी भाववाले लोग कहते हैं कि—'जगत् आश्रयरहित है, इसके मूलमें कोई सत्य नहीं है, ईश्वर भी नहीं है, परस्परके काम-सम्बन्धसे ही सृष्टि हुई है, (प्रकृतिसे ही सब आप ही बन गया है) इसप्रकारकी नास्तिक दृष्टिको आधार बनाकर वे नष्टात्मा, अल्पबुद्धि, अत्याचारी मनुष्य जगत्‌का ध्वंस करनेके लिये ही उत्पन्न होते हैं। उनकी कामना किसी प्रकारसे पूरी नहीं होती। वे दम्भ, मान और मदसे पूर्ण हुए मोहवश असत् सिद्धान्तोंका ग्रहणकर हीन, अपवित्र निश्चयों और कार्योंको लेकर ही जगत्‌में बुरे आदर्शोंका प्रचार करते हुए विचरते हैं। उनकी भोग-चिन्ताओंका कोई पार नहीं, अशेष विषय-चिन्ताओंमें डूबे हुए ही वे मरते हैं। कामोपभोगके सिवा और कुछ नहीं है, यही उनका निश्चित मत है। वे सैकड़ों आशारूपी फाँसियोंमें बँधे हुए, काम-क्रोध-परायण, केवल विषयभोगोंकी प्राप्ति और सम्भोगके लिये अन्यायपूर्वक भोग-पदार्थोंके सञ्चय करनेमें लगे रहते हैं। आज यह मिला, अब वह मिलेगा; अभी मेरे पास इतना धन है, आगे और भी धन होगा; आज उस शत्रुको मारा है, अब उन शत्रुओंका काम तमाम करूँगा; मैं ऐश्वर्यवान् हूँ, मैं भोगी हूँ, मैं बलवान् हूँ, मैं सिद्ध हूँ, मैं सुखी हूँ, मैं धनी हूँ, मैं कुलवान् हूँ, मेरे समान दूसरा कौन है? मैं यज्ञ करूँगा, मैं दान दूँगा, मैं मौज करूँगा। इसप्रकारके अज्ञान-विमोहित, अनेक प्रकारकी चिन्ताओंसे सदा भ्रमित चित्तवाले, मोह-जालमें फँसे और कामोपभोगमें आसक्त मनुष्य महान् क्लेशमय अपवित्र नरकोंमें गिरते हैं।'

आजके कर्मवादके पीछे पागल-जगत्‌के लोगोंमें प्रायः इन्हीं लक्षणोंकी प्रधानता मिलेगी। ईश्वर और धर्मके बहिष्कार या विनाशकी दर्पपूर्ण कर्म-चेष्टा, ईश्वर और धर्मके नामपर भोगसुख प्राप्त करनेका दम्भपूर्ण प्रयत्न, व्यक्तियों, जातियों, राष्ट्रोंमें परस्पर विनाश करनेकी हिंसामयी नीति, यूरोपका द्वेष-लोभ-पूर्ण गत भीषण महायुद्ध और आगामी विश्वव्यापी महायुद्धका वर्तमान उद्योगपर्व, अन्दरसे द्वेष परवश हो बल बढ़ानेकी चेष्टामें लगे रहनेपर भी ऊपरसे मैत्री और शस्त्रसंन्यासकी पाखण्डभरी चेष्टा, दबे हुएको दबाने और उठते हुएको गिरानेकी अभिमान-पूर्ण क्रिया, प्राकृतिक अमिट भेदमें अभेद-स्थापनकी और नित्य अचल अभेदमें भेद-स्थापनकी अज्ञानमयी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri.

चेष्टा, पुरातन सर्वथा मिटाकर नवीन शृंखलाविहीन जीवनकी प्रतिष्ठाका प्रयत्न, अपनेसे भिन्न मत रखनेवालोंको गालियाँ देना और नीचा दिखानेकी कोशिश करना, परलोक, प्रारब्ध, ईश्वर और सदाचारकी कुछ भी परवा न कर केवल भोग-पदार्थोंकी प्राप्तिके लिये मर्यादा-रहित मनमाना आचरण करना आदि कार्योंसे इसका पूरा परिचय मिल जाता है। इसमें उनकी नीयतका दोष नहीं है, वस्तुतः ईश्वरको भुलाकर केवल इहलौकिक सुखकी प्राप्तिके हेतुसे, भोग-पदार्थोंके संग्रहके हेतुसे किये जानेवाले कर्मोंमें ऐसा होना स्वाभाविक है। इसीलिये यह समझ लेना चाहिये कि गीताका कर्मयोग ईश्वर-रहित, और आसक्ति तथा कामनायुक्त कर्मवाद नहीं है। गीताका कर्मयोग इससे बिल्कुल अलग है। वहाँ तो अर्जुनको भगवान्‌ने (गी० ३। ३० में) स्पष्ट आज्ञा दी है—

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥

'हे अर्जुन! तू मुझमें संलग्न किये हुए चित्तसे समस्त कर्म मुझमें अर्पण करके आशारहित और ममता-रहित होकर एवं मनस्तापसे मुक्त होकर युद्ध कर!'

युद्ध करनेकी आज्ञा है, परन्तु न राज्यमें ममत्व रहे, न विजयकी आशा रहे और न अभावजनित सन्तापसे चित्त जले। चित्त भगवान्‌में लगा है और उन्हींकी आज्ञानुसार उन्हींकी प्रेरणासे निष्काम-भावसे युद्ध हो रहा है। इस गीतोक्त कर्मयोगसे आधुनिक कर्मवादकी तुलना कैसे की जा सकती है?

यह सत्य है कि गीता जिसप्रकार ज्ञानकी अवहेलना नहीं करती, इसी प्रकार संसारकी, और सांसारिक कर्त्तव्यकर्म, जीविका, कुटुम्ब-पालन, माता-पिताकी सेवा, जातिसेवा, देशसेवा, आर्तसेवा, मानवीय अधिकार और धर्मके लिये युद्ध, दुर्बल-रक्षा, अत्याचारीका दमन, अन्यायका विरोध, परोपकार अथवा वर्णाश्रम-धर्मका यथाविधि पालन आदि किसी भी नैतिक धर्मका किञ्चित् भी विरोध नहीं करती, प्रत्युत इनके लिये उत्साहित करती है और स्वधर्म-पालनके लिये क्षत्रिय अर्जुनको हँसते-हँसते जीवनकी बलि चढ़ा देनेतकके लिये आज्ञा करती है। भगवान् अर्जुनसे कहते हैं, 'तुम आत्माके अमरत्व और सिद्धि-असिद्धिमें समत्वभावको मनमें रखकर, भगवान्‌को समझकर, भगवान्‌के लिये वीरकी भाँति युद्ध करो, रणक्षेत्रमें वीरगतिको प्राप्त करो या वीरकी तरह विजय-लाभ करो, परन्तु मनमें आसक्ति, कामना, ईर्ष्या, द्वेष, ममता, आशा आदि न रक्खो।' कर्त्तव्य-कर्मके लिये मर-मिटनेका कितना ऊँचा मार्मिक उपदेश है! आधुनिक कर्मवादसे यह क्षत्रिय-धर्म भी कितना ऊँचा है!

जगत् त्रिगुणात्मक है, इसमें निरन्तर तीनों गुणोंके ही कार्य हो रहे हैं। इनमेंसे जब जिस गुणकी प्रधानता होती है, तब उसके कार्यका रूप भी वैसा ही होता है। यह सिद्धान्त है कि प्रकृति स्वभावतः अधोगामिनी है, निरन्तर ऊपर उठनेकी चेष्टा न की जाय तो स्वभावसे पतन ही होता है। सत्त्वगुणसे भी यदि ऊपर चढ़नेकी, गुणातीत होनेकी चेष्टा न होगी तो सत्त्व, रजोमुखी होकर रजोगुणप्रधान और क्रमशः तमोमुखी होकर तमोगुणकी प्रधानताके रूपमें परिणत हो जायगा। सत्त्व और रज दबकर तम विकसित हो उठेगा। अतएव यह सिद्धान्त मान लेना चाहिये कि जिस कर्ममें भगवान्‌की ओर दृष्टि और भगवान्‌का आश्रय नहीं है, जो केवल इहलौकिक विषय-लाभकी दृष्टिसे किया जाता है, वह सत्त्वप्रधान होनेपर भी क्रमशः रजोगुणकी ओर बढ़कर रजप्रधान हो जाता है। रजोगुणकी वृद्धि होनेपर किन-किन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लक्षणोंका उदय होता है ? श्रीभगवान् कहते हैं—

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ॥
(गीता १४। १२)

'हे अर्जुन! रजोगुणके बढ़नेपर लोभ, कर्ममें प्रवृत्ति, कर्मोंका (अनेकमुखी) आरम्भ, चित्तकी चञ्चलता, विषय-भोगोंके प्राप्त करनेकी स्पृहा—ये लक्षण उत्पन्न होते हैं।' इसप्रकारके लक्षणोंसे युक्त रजोगुणी कर्मोंके कर्त्ताका स्वरूप बतलाते हुए श्रीभगवान् कहते हैं—

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः॥
(गीता १८। २७)

वह कर्म और फलमें आसक्तिवाला, फल चाहनेवाला, लोभी, हिंसक, अपवित्र आचरण करनेवाला और हर्ष-शोकमें डूबा रहनेवाला होता है।

आधुनिक कर्मवाद और कर्मवादियोंमें ये लक्षण, पूर्णरूपसे चरितार्थ होते हैं। अवश्य ही मोह, अप्रवृत्ति, आलस्य और प्रमादमय तामसिक जीवनसे यह जीवन कहीं श्रेष्ठ है, परन्तु यह आदर्श नहीं है। रजोगुण सत्त्वमुखी न होगा तो तमोमुखी हो जायगा और अन्तमें तमोगुणकी प्रधानताका रूप धारण कर लेगा। किसी समय भारतवर्षमें भी जन्म-कर्मफलप्रद भोगैश्वर्यगतिकी प्राप्तिके लिये कर्मकाण्डकी प्रचुरता थी, यद्यपि भारतका वह कर्मकाण्ड आधुनिक नास्तिकतापूर्ण कर्मवादसे बहुत ही ऊँचा था, तथापि उसमें लौकिक कामना और आसक्ति होनेके कारण वह कर्मप्रवृत्ति भी अन्तमें तमोमुखी हो गयी। भारतकी आजकी तामसिकता, उसका मोह और आलस्यमय जीवन इसीका परिणाम है। इसीलिये भगवान्ने घोषणा की थी कि 'भोगैश्वर्यमें आसक्तिवाले पुरुषोंकी बुद्धि निश्चयात्मिका नहीं होती।' परन्तु गीतोक्त कर्मयोगी भोगैश्वर्यमें आसक्त नहीं होते। वे न तो भोग-सुखकी स्पृहा करते हैं और न वैध भोगका अकारण विरोध ही करते हैं।

भगवान्ने उनके विषयभोगकी व्याख्या करते हुए कहा है—

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥
प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥
(गीता २। ६४-६५)

'जिसका अन्तःकरण अपने वशमें है, जिसमें राग-द्वेष नहीं है, वह पुरुष अपने वशमें की हुई इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंको भोगता हुआ प्रसाद (प्रसन्नता) प्राप्त करता है। उस (विमल) प्रसादसे समस्त दुःखोंका अभाव हो जाता है और उस प्रसन्नचित्तवाले पुरुषकी बुद्धि (एक परमात्मामें) शीघ्र ही स्थिर हो जाती है।'

मन और इन्द्रियोंका गुलाम होकर विषयोंकी आसक्तिसे नहीं, प्रत्युत मन और इन्द्रियोंको गुलाम बनाकर यथावश्यक ऊपर उठानेवाले विषयोंका सेवन करनेवाला पुरुष प्रसन्नता प्राप्त करता है। इसीलिये गीताके कर्मयोगकी शिक्षामें कामोपभोगकी अनित्यता, सुख-दुःखकी क्षणभंगुरताका बार-बार वर्णन आता है और विषयोंसे मन हटाकर इन्द्रिय-संयमपूर्वक कामना और फलासक्तिशून्य हृदयसे कर्म करनेकी आज्ञा दी जाती है। भगवान् कहते हैं—

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥
तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥
(गीता २। ६०-६१)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥
(गीता ५। २२)

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये॥
युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते॥
(गीता ५। ११-१२)

'हे अर्जुन! प्रयत्न करते हुए बुद्धिमान् पुरुषके मनको भी ये प्रमथन स्वभाववाली इन्द्रियाँ बलात्कारसे हर लेती हैं। अतएव इन इन्द्रियोंको वशमें करके मनको मुझमें लगाकर मेरे परायण हो जाना चाहिये। जिस पुरुषकी इन्द्रियाँ वशमें होती हैं उसीकी बुद्धि स्थिर होती है। इन्द्रियों और विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले ये जो सब भोग हैं, सो (मोहवश सुखरूप भासनेपर भी वस्तुतः) निःसन्देह दुःखके ही कारण हैं और सदा एक-से नहीं रहकर—कभी उत्पन्न होने और कभी नाश होनेवाले आदि-अन्तरूप हैं, अतएव बुद्धिमान् पुरुष इनमें नहीं रमता। इसलिये (ममत्व-बुद्धिरहित) निष्कामकर्मयोगी पुरुष इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीरद्वारा आसक्तिको त्यागकर केवल अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये कर्म करते हैं, इसीसे वे परमात्मामें चित्त लगाये हुए कर्मयोगी पुरुष कर्मफलको त्यागकर भगवत्-प्राप्तिरूप शान्तिको प्राप्त होते हैं। विषय-चिन्तनमें लगा हुआ सकामी मनुष्य फलासक्ति-के कारण कामनाके द्वारा बन्धनको प्राप्त होता है।'

अन्तःकरणकी शुद्धि हुए बिना भगवत्-भाव नहीं होता। भगवत्-भावकी प्राप्ति बिना शुद्ध भगवत्-प्रेरित कर्म नहीं हो सकते। इसलिये कर्मयोगी पहले भगवत्-भावकी प्राप्तिके लिये और भगवत्-भावकी प्राप्ति होनेपर केवल भगवान्‌की प्रेरणावश यन्त्रकी भाँति कर्म करता है। उस समय वह कर्मके बाह्य स्वरूप-को न देखकर—अर्जुनकी भाँति गुरुवध, स्वजनवध, भीषण हिंसा आदिकी बात न सोचकर—केवल भगवान्‌की प्रेरणाको देखता है। भगवान् ही उसकी गति, नीति, उद्देश्य, जीवन और धर्म होते हैं। भगवान्‌के साथ युक्त होकर भगवदीय कर्म करना ही उसका स्वभाव होता है। यही गीताकी अन्तिम शिक्षा है—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

इसका यह अर्थ नहीं है कि इन्द्रियोंके वशमें होकर, भोग-प्रवृत्तिकी प्रेरणासे मनमाना करते हुए मनुष्य उसे ईश्वरकी प्रेरणा समझने या कहने लगे। श्रद्धा-पूर्वक भगवान्‌का नित्य-निरन्तर चिन्तन करते हुए मनुष्यके अन्तःकरणमें जो शुद्ध स्फुरणा हो, और जिससे इन्द्रियभोग-लालसा और कामनाका क्रमशः दमन होता हो, जो शास्त्रोक्त कर्म हो, पहले-पहले ऐसे ही शुभ कर्मोंकी प्रेरणाको भगवत्-प्रेरणा समझे। साधना करते-करते भगवत्प्रेरणाकी स्पष्ट अनुभूति होने लगेगी। इसीलिये गीताकी शिक्षा वस्तुतः अर्जुन-जैसे योग्य अधिकारीके लिये है। परन्तु वह अधिकार भी गीताकी शरण, गीताका अध्ययन और मनन एवं गीताके उपदेशानुसार जीवन बनानेकी चेष्टा करनेसे ही प्राप्त होगा। इसलिये गीताकी शिक्षा वस्तुतः इन्द्रियसंयमी, तपस्वी, भक्त अधिकारीके लिये होते हुए भी, साधारणतः सभीके लिये है। अनधिकारके कारण ही गीताका दुरुपयोग होता है और इसीसे आधुनिक कर्मवादकी सिद्धि या उसका समर्थन गीताके द्वारा करनेकी व्यर्थ चेष्टा की जाती है।

गीताका कर्मयोग शुद्ध भगवद्‌मुखी है और आधुनिक कर्मवाद केवल भोगमुखी है, यही इनमें सबसे बड़ा अन्तर है। भोगमुखी होनेके कारण ही इसमें राग, द्वेष, घृणा, काम, क्रोध और पाप-ताप आदिका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्राबल्य है और इसीलिये ऐसे कर्मवादियोंकी यह समझ है कि बिना कामनाके कर्म कैसे हो सकता है ? बिना राग-द्वेषके कर्ममें प्रवृत्ति ही क्यों होने लगी ? यदि फलकी ही इच्छा नहीं है तो कर्ममें बेगारके भावको छोड़कर उत्साह होगा ही क्यों ? भोगमुखी रजोगुणी कर्मप्रवृत्तिमें आसक्ति, कामना, क्रोध, द्वेष, राग, घृणा आदि दोष रहते हैं, इसीसे ऐसी समझ बन गयी है। परन्तु जिनमें सत्त्वगुणका प्रकाश हो गया है, जिनकी बुद्धि परमात्ममुखी है—वे भगवान्‌के लिये कठोर-से-कठोर कर्म करनेमें भी सात्त्विक उत्साह पाते हैं। मजा यह कि फलकी आसक्ति या राग-द्वेष-पूर्वक होनेवाले कर्ममें कर्म करते समय कामना, आशंका, भय, उद्वेग, चञ्चलता आदिके कारण मार्गच्युत होनेका जो डर रहता है और फलके अनुकूल न होनेपर जो विषाद होता है, वह गीतोक्त कर्मयोगी-को नहीं होता। वह तो अनुकूल, प्रतिकूल फलको भगवान्‌के चरणोंमें अर्पणकर, यन्त्रीके यन्त्रकी भाँति नित्य नये उत्साह और आनन्दके साथ स्वामी या प्रियतम प्रभुका कार्य करते-करते कभी थकता ही नहीं। क्योंकि सर्वशक्तिमान् प्रभु उसे अनवरत शक्ति-दान करते रहते हैं, वह चलता ही प्रभुकी शक्तिसे है, अपना अहंकार उसे कभी नहीं होता। वह कभी मार्ग नहीं भूलता, क्योंकि उसे निरन्तर प्रभुसे प्रकाश मिलता रहता है। प्रभुके नित्य-चिन्तनसे उसके हृदयमें भगवान्‌की दिव्य ज्योति सदा जगमगाया करती है। वह कभी मनमानी वस्तु पाकर या सफलतासे प्रमत्त होकर कर्तव्यच्युत नहीं होता, क्योंकि कोई नयी वस्तु पानेके लिये उसके मनमें अभिलाषा ही नहीं रहती। वह तो प्रभुका सेवक है, व्यापारी नहीं ! भगवान्‌की शक्तिसे उसकी शक्ति, भगवान्‌के ज्ञानसे उसका ज्ञान, भगवान्‌के प्रेमसे उसका प्रेम, भगवान्‌की दिव्य बुद्धिसे उसकी बुद्धि, सदा शक्ति, ज्ञान, प्रेम और विवेक पाती रहती है। अतएव वह कर्मयोगी अत्यन्त कुशलता, अदम्य उत्साह, अतुल तेज, अमल विवेक, अपार शान्ति, अमित आनन्द और अलौकिक प्रेमका मूर्तिमान् स्वरूप बना हुआ भगवान्‌के लिये सदा उल्लाससहित कर्म किया करता है। वह कर्म, अकर्म और विकर्मके तत्त्वको समझकर ही कर्म करता है, इसीसे उसके कर्ममें ज्ञान, भक्ति और समता—तीनोंका संयोग रहता है, जो आसक्ति, कामना और राग-द्वेषादि वैरियोंके वशमें होकर बिना जीते हुए मन-इन्द्रियोंसे कर्म करनेवाले कर्मवादीके लिये कभी सम्भव नहीं है। सात्त्विक कर्त्ताका लक्षण भगवान् बतलाते हैं—

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते॥
(गीता १८। २६)

आसक्तिसे रहित, अनहंवादी, धैर्य और उत्साहसे युक्त, सिद्धि और असिद्धिमें हर्ष-शोकादि विकारोंसे रहित कर्त्ता सात्त्विक कहा जाता है।

गीताने तो इस सात्त्विकतासे भी ऊपर उठनेका आदेश किया है। क्योंकि सतोगुण भी जीवको बाँधता है। (यद्यपि सत्त्वगुणका बन्धन जाग्रत् और प्रयत्नशील रहनेपर बन्धन काटनेवाला ही होता है।) इसीसे भगवान्‌ने कहा है—'निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन !' अर्जुन ! तू तीनों गुणोंसे रहित हो जा। गीताके कर्मयोगी-के द्वारा गुणातीत होनेपर भी लोकसंग्रहार्थ कर्म होते हैं। इस बातको भगवान्‌ने तीसरे अध्यायमें स्वयं अपना उदाहरण देकर बहुत अच्छी तरह समझाया है और निरन्तर निष्कामभावसे भगवदर्थ कर्म करने-की आज्ञा दी है। एवं अन्तमें उस निष्काम कर्मसे ही शाश्वतपदकी प्राप्ति बतलायी है। भगवान् कहते हैं—

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव॥
(गीता १८। ५६-५७)

'मेरा आश्रयी होकर निष्काम कर्मयोगी पुरुष समस्त कर्मोंको करता हुआ ही मेरी कृपासे सनातन अव्यय पदको प्राप्त करता है अतएव सब कर्मोंको मनसे मुझमें अर्पण करके मेरे परायण हो समत्व बुद्धि-रूप कर्मयोगका अवलम्बन करके (हे अर्जुन!) तू निरन्तर मुझमें चित्त लगानेवाला हो।'

जो लोग वास्तवमें कर्मयोगका आश्रय लेकर भगवान्‌को प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें उचित है कि वे भगवान्‌का निरन्तर चिन्तन करते हुए ही भगवान्‌की आज्ञानुसार कर्तव्यकर्मका—स्वधर्मका आचरण करें। भगवान्‌ने गैरंटी देते हुए कहा है—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥
(गीता ८।७)

अर्जुन! इसलिये सब समय (निरन्तर मेरा स्मरण करता हुआ ही युद्ध (स्वधर्म-पालन) कर। इसप्रकार युद्धमें मन-बुद्धि अर्पण करनेसे तू निःसन्देह मुझको ही प्राप्त होगा।

ऐसे ही मनसे भजन करते हुए भगवदर्थ कर्म करनेवाले योगियोंको भगवान्‌ने सबमें श्रेष्ठ बतलाया है—

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥
(गीता ६। ४७)

समस्त योगियोंमें भी जो श्रद्धावान् पुरुष मुझमें अन्तरात्माको लगाकर निरन्तर मुझे भजता है, वही योगी मेरे मतमें परम श्रेष्ठ है।

गीताके इस निष्काम कर्मयोगसे, आधुनिक राग और कामनामय कर्मवादमें कितना महान् अन्तर है; ऊपरके संक्षिप्त विवेचनसे पाठक इसको समझ गये होंगे।

हनुमानप्रसाद पोद्दार

मनमोहनसे

(१)

स्मृति बनकर रहते हो क्यों तुम मुझको घेरे।
दिखलाते हो नहीं पास इतने हो मेरे॥
कर न सका सेवा, सुश्रूषा, आगत, स्वागत।
इससे रूठ न जाना, आना नित्य सबेरे॥

(२)

जितना आप समझते उससे अधिक घृणित हूँ।
कोई और नहीं है जितना घोर पतित हूँ॥
किन्तु मुझे चिन्ता क्या, जबतक आप 'आप' हैं,
आप पतितपावन, मैं चरणोंमें अर्पित हूँ॥

—पद्मकान्त मालवीय

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विवेक-वाटिका

मुझमें मन लगा दो और मुझमें ही बुद्धि लगा दो; फिर तुम निस्सन्देह मुझको ही प्राप्त होओगे।

—भगवान् श्रीकृष्ण

❀ ❀ ❀

जैसे एक ही अग्नि भिन्न-भिन्न काष्ठोंमें प्रवेश करके अनेक रूपवाला हो जाता है। इसी प्रकार एक ही आत्मा समस्त भूतोंमें अनेक प्रकारका हो जाता है। —उपनिषद्

❀ ❀ ❀

शोक, मोह, दुःख, सुख और देहकी उत्पत्ति सब मायाके ही कार्य हैं और यह संसार भी स्वप्नके समान बुद्धिका ही विकार है। इसमें वास्तविकता कुछ भी नहीं है। एक भगवान् ही सत्य है। —श्रीमद्भागवत

❀ ❀ ❀

शरीर और मन-बुद्धिको जीता हुआ अपरिग्रही, निराशी मनुष्य शरीर-सम्बन्धी कर्म करता हुआ भी पापको प्राप्त नहीं होता। —श्रीमद्भगवद्गीता

❀ ❀ ❀

सुख-दुःख, हानि-लाभ आदि द्वन्द्वोंमें फँसे हुए जीवोंमें जो मनुष्य हर्ष-शोक-रहित होकर विचरण करता है वही मुक्त है। —देवर्षि नारद

❀ ❀ ❀

मैं न राज्य चाहता हूँ, न स्वर्ग चाहता हूँ और न मोक्ष ही चाहता हूँ। मैं दुःखपीड़ित प्राणियोंके दुःखका नाश चाहता हूँ। —राजा शिवि

❀ ❀ ❀

मैं परमेश्वरसे आठ सिद्धियोंवाली उत्तम गति या मुक्ति नहीं चाहता, मैं केवल यही चाहता हूँ कि समस्त देहधारियोंके अन्तःकरणमें स्थित होकर उनके कष्टोंको भोगूँ, जिससे उन्हें कष्ट न हो। —राजा रन्तिदेव

❀ ❀ ❀

लोभ, दीनता, भय और धन आदि किसी भी कारणसे मैं अपना धर्म नहीं छोड़ सकता—यह मेरा दृढ़ निश्चय है।

—भीष्मपितामह

❀ ❀ ❀

सब जीवोंमें आत्मभावना रखनेके कारण यदि समस्त गुणोंके आधार अद्वितीय परमात्मा मुझपर प्रसन्न हों तो (मुझे मारनेकी चेष्टा करनेवाले) ये ब्राह्मण (दुर्वासाजी) सन्तापसे छूट जायँ। —अम्बरीष

❀ ❀ ❀

धर्म-पालनमें बहानेबाजी कभी नहीं करनी चाहिये, मैंने सत्यहीसे सब शस्त्र प्राप्त किये हैं। मैं सत्यसे कभी नहीं डिग सकता। —भक्तवर अर्जुन

❀ ❀ ❀

श्रीहरिके चरणोंकी सेवा मनुष्योंको स्वर्ग, मोक्ष, इस लोककी महान् सम्पत्ति और सब प्रकारकी सिद्धियोंको देनेवाली है। —सुदामा

❀ ❀ ❀

भगवान्‌की पूजा छोड़कर जो लोग दूसरेकी पूजा करते हैं, वे महामूर्ख हैं। —भक्त चक्रिक मील*

❀ ❀ ❀

'मैं' और 'मेरा' इन दो शब्दोंमें ही सारे जगत्‌के दुःख भरे हैं। जहाँ 'मैं' 'मेरा' नहीं है वहाँ दुःखोंका अत्यन्त अभाव है। —स्वामी रामतीर्थ

❀ ❀ ❀

---

* राजा शिवि, रन्तिदेव, अम्बरीष, भीष्म, अर्जुन, सुदामा और चक्रिककी शिक्षाप्रद जीवनी पढ़नी हो तो गीताप्रेससे प्रकाशित 'आदर्श भक्त' नामक पुस्तक मँगवाइये। मूल्य ।-) है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मनुष्य-स्वभाव

(लेखक—स्वामी श्रीरामानन्द संन्यासी शास्त्री, व्याकरणाचार्य, साहित्यालङ्कार, वेदान्त-विभूति)

उत्तरकाशीके कुछ आगे गङ्गा-तटके विशाल शिला-पट्टपर बैठे एक महात्मा कुछ विचार कर रहे थे। हम सायं-प्रातः जब उधर जाते, संन्यासीजीको उसी स्थितिमें बैठे पाते। एक दिन हमने उनके पास जाकर कुछ पूछा। उन्हें अपने पास हमारा जाना और पूछना अच्छा नहीं लगा। वे भीतरसे रूखे पर बाहरसे मृदु शब्दोंमें बोले 'जैसे मैं तुम्हारे समाजका त्याग करके यहाँ तुम्हारे अनधिकृत देशमें आकर समय व्यतीत कर रहा हूँ वैसे ही तुम्हें भी चाहिये कि मुझे दृष्टिके ओझल कर दो। मैं जिस प्रश्नपर विचार कर रहा हूँ वह अभीतक हल नहीं हुआ है, फिर मैं तुमको इस अनिश्चित विषयपर क्या कह सकता हूँ। यदि कुछ कहा भी तो तुम मानने कब लगे। कदाचित् मान भी लो तो भी प्रयोग (अमल) में तो ला ही नहीं सकते। तुम रात-दिन सब कुछ देख-सुन रहे हो, पर व्यवहार तुम्हारा बधिरान्धकी तरह है। वेद-पुराण पढ़नेका ढोंग रचकर तुमने अपनी आँखें फोड़ डालीं, पर इस द्रविड़-प्राणायामका मनपर भी कुछ असर पड़ा? तुम जन्मभर इधर-उधर दौड़कर जुलाहेकी तरह ताना-बाना सा बुनते रहे पर वह वस्त्र नहीं तैयार किया, जिसे ओढ़ परमेश्वरकी राजसभामें जाकर मुँह दिखाने लायक बन सकते! बड़े-बड़े व्यापारोंसे विपुल धन सञ्चय किया सही पर वैसी एक कानी कौड़ी भी नहीं कमायी जिसे वहाँके बाजारमें भुना सको!

पढ़े-लिखे शिक्षित बननेके लिये अनेकों विद्यालय और महाविद्यालय खोल डाले, पर तुम उस रेखासे एक इञ्च भी आगे नहीं बढ़े, जहाँ सैकड़ों वर्ष पहले खड़े या पड़े थे। धर्म-सभाओंके ऊँचे मञ्चसे गला फाड़कर भरी सभामें स्वतन्त्र, सदाचारी, बली, धनी और ज्ञानी बननेका सबको मार्ग दिखाते रहे पर स्वयं इन गुणोंके पास फटकतेतक नहीं हो। यह भी जानते हो कि कार्य करनेसे सिद्ध होगा, कहनेसे बिगड़ सकता है, परन्तु तो भी करते नहीं। तुमने बड़े-बड़े विद्यालय कहने-सुननेहीके लिये बना रक्खे हैं, कुछ करने-धरनेके लिये नहीं! तुम्हें गर्व है कि हम लोगोंको विद्वान् बना रहे हैं, पर मैं कहता हूँ कि तुम उनके स्वभावको और भी खराब करके उनके जीवनकी मिट्टी पलीद कर रहे हो। अपने जाननेमें भलाई कर रहे हो, पर हो बुराई रही है। सब कुछ जानते हो, पर काम ऐसे कर रहे हो जो पशु-पक्षियोंको भी लज्जित कर दें। संसारभरकी बड़ी-बड़ी बातें छोड़कर मैं केवल इसी तुच्छ-सी बातके विषयमें तुमसे पूछता हूँ कि, 'क्या तुमलोग यह जरा-सी बात भी नहीं समझते कि किसीके अत्याचार करनेपर जैसे मुझे कष्ट होता है वैसे ही यदि मैं किसीको दुःख दूँगा तो उसकी आत्मा भी रो पड़ेगी!' पर नहीं, लोग जिस बातको अपने लिये बुरा समझते हैं, उसीको दूसरोंके लिये करनेमें संकोच नहीं करते। या जिस वस्तुसे अपना हित साधन करना चाहते हैं, उसीसे दूसरेको लाभान्वित नहीं होने देते।

अवतार, ऋषि, मुनि, आचार्य, पण्डित तथा अन्य अनेक सज्जनोंने मनुष्य-समाजको समय-समयपर बड़े उपयोगी अमूल्य उपदेश दिये और अनेक कार्यक्रम उपस्थित किये पर इसने उनपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया, दिया तो विपरीत ही। यागादि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अनुष्ठान, भक्ष्यादि विविध पदार्थ, ज्योतिष-वैद्यकादि अनुशासन, भगवद्भक्ति आदि निष्कण्टक राजमार्ग, बड़ी-बड़ी संस्थाएँ और भी अनेक वस्तुएँ परमेश्वरने तथा महापुरुषोंने मनुष्यके लाभके लिये बनायी-बतायी, पर तब भी यह सन्तुष्ट कहाँ हो सका है? महात्मा तथा शास्त्रोंमें बतलाये हुए एक-एक उपाय इसका उद्धार कर सकते हैं, पर यह ध्यान दे तब तो।

उलटे, इसके भयानक व्यापारको देखकर स्थिरा (पृथिवी) का भी कलेजा काँप जाता है। जब यह भयानक शस्त्रास्त्रोंसे सजकर बहुत-से नृशंस मनुष्योंको साथ ले दिन-दुपहरे बाजे बजाकर दूसरेकी प्रतिष्ठा अपहरण करने जाता है, उस समय इसका मनुष्यत्व और विवेक इसके साथ कहाँ रहता है? दूसरेका सर्वनाश करके यह समझता है कि मेरी विजय हो गयी। पर मेरा विश्वास है कि उसने अपना सब कुछ गँवा दिया। वह चाहे हँसे पर मेरे विचारसे वह रो रहा है। मनुष्यको कदापि यह अधिकार नहीं है कि वह किसीकी ऐसी वस्तु छीन ले जिसे वह कभी दे नहीं सकता, पर मनुष्य ऐसा करता है, वह प्राणीके प्राण चुटकी बजाकर ले लेता है, पर अपने प्राणोंके बदले भी उसे दे नहीं सकता। यह अपने जरा-से स्वार्थके लिये सहर्ष उस जन्तुके जीवनसे खेल बैठता है जो जन्मभर इसकी सेवा या सहायता करता है या करता रहता है।

भावनाएँ भी इसकी बड़ी विलक्षण हैं, इसने कुछ जीवोंको ऊँचा और कुछको नीचा मान रक्खा है। हम यह नहीं कहते कि प्रकृतिने जगत्की सब वस्तुएँ तुल्य रची हैं। पर उनमें इतना भेद नहीं है जितना मनुष्य समझ रहा है। वस्तुमात्र भगवान् विराट्के अङ्गोपाङ्ग हैं। मनुष्य दूसरोंको अपनेसे हीन समझता है पर यह विचारकर पहले अपनेमें अपना आपा तो देख ले, तब पता लगेगा कि जन्म-जन्मान्तरके पापोंके कितने भयानक कीचड़से इसके अङ्ग-अङ्ग सने हैं। स्वार्थ यदि अनुमोदनीय नहीं है, तो मैं ऐसे मनुष्य-स्वभावकी प्रशंसा नहीं कर सकता। क्या पूछते हो? मैं मनुष्य-स्वभावपर ही विचार कर रहा था। पर मैं अभीतक इस निर्णयपर नहीं पहुँचा हूँ कि मनुष्यका ऐसा स्वभाव क्यों है, जिससे वह स्वयं दुःख-समुद्रमें डूबता है और दूसरोंको क्लेशकी आग-में झुलसाता है।

मैं यह सोच रहा था कि मनुष्य यदि स्वात्मीयता-का चश्मा लगाकर सर्वत्र अपना आपा देखने लगे तो इसके कौन-से व्यवहारमें त्रुटि आ सकती है? यदि भगवद्भक्तिका जामा पहनकर भूमण्डलमें विचरने लगे तो वह कौन-सी जगह रह जायगी जहाँ अपना आत्मीय समझकर आगे-से-आगे सभी कुटुम्ब इसका स्वागत करनेके लिये उपस्थित न हो जायँगे? यदि यह शस्त्रधारी शूरकी तरह हाथमें भाला लेकर मैदानमें निकल पड़े तो बाह्याभ्यन्तर शत्रुओंकी एक न चले। यदि यह भेद-बुद्धि दूर कर दे तो सब जड-चेतन मारे खुशीके फूले न समायें और यह भी सबको देखकर हँसकर नाचने लगे। ऐसा होनेसे इसके सब बिगड़े काम बन जायँगे। यह नाचेगा, दुनियाँ गावेगी। यह भागेगा, संसार रोकेगा। यह श्रीकृष्ण-की वंशी लेकर आवेगा, जनता गोपी बनकर दौड़ेगी। वह चलना चाहेगा, लोग इसके आगे आँखें बिछा देंगे। इस शालिग्राम-प्रतिमाको जगत् हृदयके सिंहासनपर बैठावेगा। उस समय प्राणि-हृदय-तन्त्रीके तारोंको यह छेड़ेगा तो उससे वैदिक मन्त्रात्मक शब्द-पुञ्जकी सुरीली आवाज आवेगी।

जब मनुष्य सबको अपना और अपनेको सबका समझने लगेगा, तब न इससे कोई डरेगा और न यह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

किसीसे भय मानेगा। उस समय सारा जगत् भाइयों-की तरह सब व्यवहारोंको करता हुआ देखेगा कि आनन्दघन घनश्याम, श्यामसुन्दर, सुन्दरसरोज, सरोजाक्ष, अक्षमालाधारी, धरणीधर भगवान् श्रीकृष्ण यह आशीर्वाद दे रहे हैं कि—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

पर यह सब कुछ मनुष्य-स्वभावपर निर्भर है।'

ऐसा कहकर महात्मा चुप हो गये। फिर पूर्ववत् ध्यानावस्थित हो कुछ सोचने लगे। हमने जाना कि ये 'कल्याण' के प्रेमी हैं, 'कल्याणमार्ग' के पथिक हैं। अनन्तर हम उनका अभिवादन करके चले आये।

कल्याण

रे संगसे सदा दूर रहो; बुरा संग बुरे मनुष्यका ही नहीं होता। बुरी जगह, बुरा अन्न, बुरा ग्रन्थ, बुरा दृश्य, बुरी बात, बुरा वातावरण आदि सभी बुरे संग हैं। लगातारके बुरे संगसे बुरे परमाणुओंके द्वारा अन्दरके अच्छे परमाणु जब दब जाते हैं, तब बुरी बातें स्वाभाविक ही अच्छी मालूम होने लगती हैं। जैसा मन होता है वैसी ही दृष्टि होती है और जैसी दृष्टि होती है वैसा ही दृश्य दीखता है। सच्चे साधुको प्रायः सभी साधु दिखायी पड़ते हैं, चोरको चोर दीखते हैं, कामीको सब कामी और लोभीको लोभी दीखते हैं।

× × ×

बुरे वातावरणमें रहते-रहते चित्त बुरा हो जाता है; फिर उसमें बुरे संकल्प उठते हैं; जिसके चित्तमें बुरे संकल्प उठते हैं, उसके समान दुखी तथा अपराधी और कौन होगा? क्योंकि वह अपने चित्तके बुरे संकल्पोंको जगत्में फैलाकर दूसरोंको भी बुरा बनाता है।

× × ×

चित्तमें सदा सत्-संकल्प रहने चाहिये। सत्-संकल्पके लिये सत्-संग, सत्-आलोचन, सद्ग्रन्थपाठ, सद्गुरु-सेवन आदिकी आवश्यकता है। जिसका चित्त सत्-संकल्पसे भरा है, वही सुखी और परोपकारी है; क्योंकि वह अपने संकल्पोंको जगत्में फैलाकर दूसरोंको भी सन्मार्गपर लाता है।

× × ×

यह निश्चय करो कि मेरे चित्तमें कभी बुरी कल्पना नहीं आ सकती, मैं पवित्र हूँ, भगवान्की कृपासे मेरा हृदय शुद्ध हो गया है। सर्वशक्तिमान् भगवान्का अभय हाथ सदा मेरे सिरपर है। मैं उनकी छत्रछायामें हूँ। पाप-ताप मेरे पास नहीं आ सकते।

× × ×

यह निश्चय करो कि मैं दुःखके संसारसे परे हूँ। मुझमें दुःख नहीं आ सकता। जगत्में मेरे प्रतिकूल कुछ नहीं हो सकता; सबमें अनुकूल भावना करो और नित्य सुखी रहो।

× × ×

रोगकी अवस्थामें यह निश्चय करो कि बीमारी शरीरको है, मैं तो नित्य निरामय हूँ, मुझको कभी कोई रोग नहीं हो सकता। मैं सबका द्रष्टा हूँ। शरीर क्षणभंगुर है, नाशवान् है, किसी दिन नाश होगा ही। मैं अज हूँ, अविनाशी हूँ, अमर हूँ।

× × ×

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शोकके प्रसंगमें यह निश्चय करो कि मेरे लिये कभी शोकका प्रसंग आ ही नहीं सकता; प्रकृति जादूभरी है, और परिवर्तनशील है, इसमें उपजने और नष्ट होनेका खेल सदा होता ही रहता है। रूप बदलता है, मूल वस्तु कभी नष्ट नहीं होती, फिर मैं शोक क्यों करूँ? अथवा, यह निश्चय करो कि मेरे स्वामी भगवान् जो कुछ विधान करते हैं, उसीमें मेरा परम कल्याण है, यह ध्रुव सत्य है। शोक करना स्वामीके विधानपर असन्तोष प्रकट करना है जो सर्वथा अनुचित है। वस्तुतः भगवान् हमारी भलाईके लिये ही सब कुछ करते हैं।

× × ×

कामके प्रसंगपर यह विचार करो कि जगत्की सारी सुन्दरता मेरे प्रभुकी सुन्दरताका एक कण है। मैं मोहवश उस परम सुन्दरको छोड़कर हाड़-मांसके थैलेपर आसक्त हो रहा हूँ, यह अज्ञान है। मैं अपने प्रभुकी कृपासे इस अज्ञानके वश नहीं हो सकता। मैं निर्मल हूँ, मैं असंग हूँ, मेरे हृदयमें राम हैं, मैं रामका हूँ, राम मेरे हैं, राम मुझे अपना स्वरूप मानते हैं, अतः मेरे निकट काम नहीं आ सकता। मेरे रामकी सुन्दरताके सामने सारी सुन्दरताएँ तुच्छ हैं, सूर्यके सामने जुगनूके समान भी नहीं हैं।

× × ×

क्रोधका अवसर आनेपर चुप रह जाओ और विचार करो। जगत्में सब ओर भगवान्का विस्तार है। भगवान् ही विश्वरूपमें प्रकाशित हैं; मैं भगवान्-पर क्रोध कैसे करूँ, उनका अपमान कैसे करूँ! और निश्चय करो कि मैं क्रोधसे परे हूँ। मेरा हृदय नित्य क्षमासे पूर्ण है। सारे प्राणियोंके प्रति प्रेम, मैत्री, क्षमा और दया करना ही मेरा स्वभाव है। कठोर-से-कठोर वचन और व्यवहारको मैं सहर्ष सहन करूँगा। मेरे मनमें किसीके प्रति द्वेष नहीं है, इसलिये मैं क्रोधके वश कभी नहीं हो सकता।

× × ×

लोभकी बात सामने आनेपर मनमें विचार करो और निश्चय करो कि मैं पूर्ण हूँ, मैं किसीका धन नहीं चाहता। मेरे लिये जगत्में लुभानेवाली वस्तु कोई भी नहीं है। मुझमें कोई कामना, आकांक्षा नहीं है, फिर किसी चीज़के लिये मुझको लोभ कैसे हो सकता है!

× × ×

कुछ समय प्रतिदिन एकान्तमें बिताओ, मौन रहो। शरीरका एकान्त और वाणीका मौन भी बहुत ही आवश्यक और लाभकारी है। एकान्त और मौन-अवस्थामें भगवान्का ध्यान और भगवन्नामका जप करो। मनके एकान्त और मौनके लिये साधन करो। मनमें किसी भी संकल्पका न उठना ही मनका एकान्त और मौन है। चित्त सर्वथा निर्विषय होकर केवल अचिन्त्य परमात्माके स्वरूपमें लग जाय। संसार और शरीरका कहीं मनमें पता ही न रहे।

× × ×

वाणीका इतना संयम तो अवश्य ही कर लो—बिना कार्यके अनावश्यक बातें बिल्कुल न करो, किसीकी निन्दा-चुगली न करो, मरसक किसीकी स्तुति भी न करो, अश्लील शब्दोंका उच्चारण न करो, कड़ुए शब्द न बोलो, असत्य और दूसरेका अहित करनेवाले शब्द तो कभी मुँहसे भी न निकालो।

× × ×

मनमें भय, अशान्ति, उद्वेग और विषादको स्थान न दो। भगवान्की दया अथवा आत्माकी पवित्रता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और नित्यतापर विश्वास रखकर सदा शान्त, निर्भय और प्रसन्न रहनेका यत्न करो।

× × ×

उत्तेजनासे सदा बचे रहो, धीरज कभी न छोड़ो। उत्तेजना और अधैर्यसे शारीरिक और मानसिक रोग होते हैं, जिनसे छूटना मुश्किल हो जाता है।

× × ×

किसीका अनादर न करो, किसीसे घृणा न करो, किसीका जी न दुखाओ। स्वयं सह लो, परन्तु स्वार्थवश किसीको कष्ट सहनेके लिये बाध्य कभी न करो। किसी भी अच्छे काममें लगे हुए पुरुषका दिल न तोड़ो, उसे उत्साह दिलाओ और यथासाध्य उसके अच्छे काममें सहायता दो।

× × ×

गरीब, दीन, रोगी और आतुरोंमें भगवान्‌को विशेषरूपसे देखकर उनकी सेवा करो और बड़े आदर तथा प्रेमके साथ उनसे मिलो, उन्हें अपनाओ, और यथासाध्य उनके दुःख दूर करनेमें सहायता दो तथा उन्हें अपना बनाकर प्रभुके भजनमें लगा दो।

× × ×

हृदयकी सरलतामें देवत्व या ऋषित्व है और कपटमें असुरत्व है। मनको सरल बनाओ। बात न बना सको तो चिन्ता नहीं। सम्भव है कपटी और वाक्-चतुर मनुष्योंकी नजरमें तुम मूर्ख समझे जाओ अथवा लोगोंकी भ्रमपूर्ण दृष्टिसे तुम ऐहिक उन्नति न कर सको, परन्तु निश्चय रक्खो, कपट-चातुरीसे अपनेको बुद्धिमान् सिद्ध करनेवालोंसे तुम निश्चय ही बहुत ऊँची स्थितिपर हो।

× × ×

एक महात्माने कहा था—आजकल प्रायः लोगोंको ऊपरसे सुहावनी बातें कहनी आ गयी हैं, परन्तु हृदयमें दम्भ-कपट भर गया है। पहलेके लोग चाहे बोलना न जानते हों परन्तु उनका हृदय सरल था। वे अपना दोष छिपाना नहीं जानते थे। सावधान, दम्भी बनकर सुहावनी वाणी बोलनेवाले सभ्य बननेकी अपेक्षा सरल ग्रामीण बनना सच्ची उन्नतिका लक्षण है। सरलतामें पवित्रता है और कपटमें अपवित्रता है। कपटी मनुष्य दूसरेको जितना नुकसान पहुँचाता है उससे कहीं अधिक अपनी हानि करता है।

× × ×

अपने पापोंको छिपाओ मत, और पुण्योंको प्रकट न करो। छिपानेसे पाप बढ़ेंगे और प्रकट करनेसे पुण्य घटेंगे। पुण्यको कपूर समझो, बोतलका मुँह खोलकर रक्खोगे तो उड़ जायगा। पाप बुरी वस्तु है, छिपाकर रक्खोगे तो अन्दर-ही-अन्दर जहरीली गैस पैदा करके हृदयके तमाम शुद्ध भावोंको नष्ट कर देगा।

× × ×

जीवनके एक-एक क्षणको मूल्यवान् समझो और बड़ी सावधानीके साथ प्रत्येक क्षण भगवच्चिन्तन या आत्मचिन्तन करते हुए लोकहितके कार्यमें बिताओ। तुम्हारा कोई क्षण ऐसा नहीं जाना चाहिये जिसमें किसीका तुम्हारे द्वारा अहित हो जाय। अहित वाणी और शरीरसे ही होता हो, सो बात नहीं है; यदि तुम्हारे मनमें बुरा विचार आ गया तो मान लो तुम अपना और दूसरोंका अहित करनेवाले हो गये। बुरा विचार कभी मनमें न आने दो। यदि पूर्वसंस्कारवश आ जाय तो उसको तुरन्त निकाल बाहर कर दो। बुरे विचारको आश्रय कभी मत दो, उसकी ओरसे लापरवाह न रहो।

× × ×

"शिव"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीहरिः

कल्याण फाल्गुन १९९० की

विषय-सूची

	पृष्ठ-संख्या
१–मोह-महिमा [कविता] (श्रीछविनाथजी)	१०६७
२–पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश	१०६८
३–गीतामें चतुर्भुज रूप (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	१०७१
४–भूकम्प और हमारा कर्तव्य (हनुमानप्रसाद पोद्दार)	१०७५
५–कल्याण ("शिव")	१०८१
६–परमहंस-विवेकमाला (स्वामीजी श्रीसोलेबाबाजी)	१०८३
७–अन्तिम लालसा [कविता] (अवधवासी लाला श्रीसीतारामजी बी० ए०)	१०८९
८–भक्ति क्या है ? (परिव्राजक श्रीमद्ब्रह्मचारी गोपाल चैतन्यदेव)	१०९०
९–उद्वेग [कविता] (महात्मा जय गौरी-शङ्कर सीताराम)	१०९५
१०–नास्तिक ईश्वर, अद्वैतवाद और भक्तिवाद (ठाकुर श्रीगजराजसिंहजी एम० ए०, एल-एल० बी०)	१०९६
११–भगवत्प्रेमियोंके लिये आवश्यक बातें (स्वामी श्रीशान्तयोगानन्दजी)	११०१
१२–उपनिषद्-गाथा	११०४
१३–कौन छिपे हो ? (श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल)	११०७
१४–कालिङ्गर-यात्रा (श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी एम० ए०, डिप्टी कलेक्टर)	१११०
१५–नाम-माहात्म्य (श्रीमत्शङ्कर दण्डी स्वामीजी शङ्करानन्द तीर्थ)	१११५
१६–होलीके अवसरपर (पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र एम० ए०, 'माधव')	११२५
१७–ज्ञानगुदड़ी [कविता] (श्रीवासुदेवजी शास्त्री)	११२८
१८–भक्त-गाथा	११२९
१९–चाह [कविता] (अज्ञात)	११३२
२०–परमार्थ-पत्रावली (श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पत्र)	११३३
२१–वंसीघर [कविता] (पं० श्रीप्रमोदजी त्रिपाठी)	११३४
२२–विवेक-वाटिका	११३५
२३–जीवात्मासे [कविता] (पाण्डेय श्रीराम-नारायणदत्तजी व्याकरण-शास्त्री 'राम')	११३६
२४–श्रीयमकरामायण [कविता] (श्रीअमृत-लालजी माथुर)	११३७
२५–कृपालु लेखकों और चित्रकारोंसे प्रार्थना (हनुमानप्रसाद पोद्दार सम्पादक)	११३८
२६–प्रयाग-पञ्चक्रोशी-परिक्रमा (श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी)	११४१
२७–योगवाशिष्ठसार (श्रीकन्हैयालालजी मास्टर)	११४३

एक नयी पुस्तक **प्रकाशित हो गयी**

संक्षिप्त सचित्र भक्त-चरित-मालाका आठवाँ पुष्प

प्रेमी भक्त

एण्टिक कागज, पृष्ठ १०३, चित्र रंगीन ३, दोरंगा १, सादा ३, सुन्दर टाइटल, अच्छी छपाई, मूल्य ।–) पाँच आनामात्र ।

इसमें भक्त बिल्वमङ्गल, भक्त जयदेव, श्रीरूप-सनातन, भक्त यवन हरिदास, भक्त रघुनाथदासकी आदर्श प्रेम और आनन्दसे भरी कथाएँ हैं । ये कथाएँ कल्याणमें समय-समयपर निकलनेवाली भक्तोंकी जीवनियोंमेंसे चुनकर पुस्तक-रूपमें सजायी गयी हैं जिससे कि पाठकोंको पढ़नेमें सुविधा हो । अनेक सुन्दर-सुन्दर चित्रोंसे पुस्तककी शोभा और भी बढ़ गयी है । यह पुस्तक सबके पढ़ने योग्य और मनन करने योग्य है ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कल्याणके नियम

उद्देश्य

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचार-समन्वित लेखोंद्वारा जनताको कल्याणके पथपर पहुँचानेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य है।

प्रबन्ध-सम्बन्धी नियम

(१) यह हर महीनेकी कृष्णा एकादशीके लगभग प्रकाशित होता है।

(२) इसका डाकव्यय और विशेषांकसहित अग्रिम वार्षिक मूल्य भारतवर्षमें ४≋) और भारतवर्षसे बाहरके लिये ६॥=) नियत है। एक संख्याका मूल्य ।) है। बिना अग्रिम मूल्य प्राप्त हुए, पत्र प्रायः नहीं भेजा जाता। नमूना ।) मिलनेपर भेजा जाता है।

(३) एक वर्षसे कमके ग्राहक नहीं बनाये जाते। ग्राहक प्रथम अङ्कसे १२ वें अङ्कतकके ही बनाये जाते हैं। एक सालके बीचके किसी अङ्कसे दूसरी सालके उस अङ्क-तक नहीं बनाये जाते। कल्याणका वर्ष श्रावणसे आरम्भ होकर आषाढ़में समाप्त होता है।

(४) इसमें व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी दरमें स्वीकारकर प्रकाशित नहीं किये जाते।

(५) कार्यालयसे 'कल्याण' दो-तीन बार जाँच करके प्रत्येक ग्राहकके नामसे भेजा जाता है। यदि किसी मासका 'कल्याण' ठीक समयपर न पहुँचे तो अपने डाकघरसे लिखा-पढ़ी करनी चाहिये। वहाँसे जो उत्तर मिले, वह अगला अङ्क निकलनेके कम-से-कम सात दिन पहलेतक कार्यालयमें पहुँच जाना चाहिये। देर होनेसे या डाकघरका जवाब शिकायती पत्रके साथ न आनेसे दूसरी प्रति बिना मूल्य मिलनेमें बड़ी अड़चन होगी।

(६) पता बदलनेकी सूचना (हिन्दी) महीनेकी कृष्ण प्रतिपदाके पहले-पहले कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये। **लिखते समय ग्राहक-संख्या, पुराना और नया नाम, पता साफ-साफ लिखना चाहिये।** महीने-दो-महीनोंके लिये बदलवाना हो तो अपने पोस्टमास्टरको ही लिखकर प्रबन्ध कर लेना चाहिये।

लेख-सम्बन्धी नियम

भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान, वैराग्यादि ईश्वरपरक, कल्याणमार्गमें सहायक, अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेप-रहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख भेजनेका कोई सज्जन कष्ट न करें। लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकको है। असुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये **सम्पादक उत्तरदाता नहीं हैं।**

आवश्यक सूचनाएँ

(१) ग्राहकोंको अपना नाम-पता स्पष्ट लिखनेके साथ-साथ ग्राहक-संख्या अवश्य लिखनी चाहिये।

(२) पत्रके उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजना आवश्यक है।

(३) ग्राहकोंको चन्दा मनिआर्डरद्वारा भेजना चाहिये क्योंकि वी० पी० के रुपये प्रायः देरीसे पहुँचते हैं। कभी-कभी तो डेढ़-दो महीनोंतक नहीं मिलते। इससे निश्चय नहीं होता कि वी० पी० छूटी या नहीं। रुपये न मिलनेतक ग्राहकोंमें नाम नहीं लिखा जाता, मिलनेपर ही आगेके अङ्क भेजे जाते हैं। खर्च दोनोंमें एक ही है परन्तु पहला अत्यन्त सुविधाजनक और दूसरा असुविधाका है। जिनका रुपया आता है उन्हींको कल्याण पहले भेजा जाता है।

(४) प्रेस-विभाग और कल्याण-विभाग अलग-अलग समझकर अलग-अलग पत्र-व्यवहार करना और रुपया आदि भेजना चाहिये। कल्याणके मूल्यके साथ पुस्तकों या चित्रोंका मूल्य या अधिक पैसे नहीं भेजने चाहिये।

(५) सादी चिट्ठीमें टिकट कभी नहीं भेजना चाहिये।

(६) मनिआर्डरके कूपनपर रुपयोंकी तादाद, रुपये भेजनेका मतलब, ग्राहक-नम्बर, पूरा पता आदि सब बातें साफ-साफ लिखनी चाहिये।

(७) प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनिआर्डर आदि **'व्यवस्थापक "कल्याण" गोरखपुर'** के नामसे और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि **'सम्पादक "कल्याण" गोरखपुर'** के नामसे भेजने चाहिये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीकृष्ण-उद्धव

ऊधो ! मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं !

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

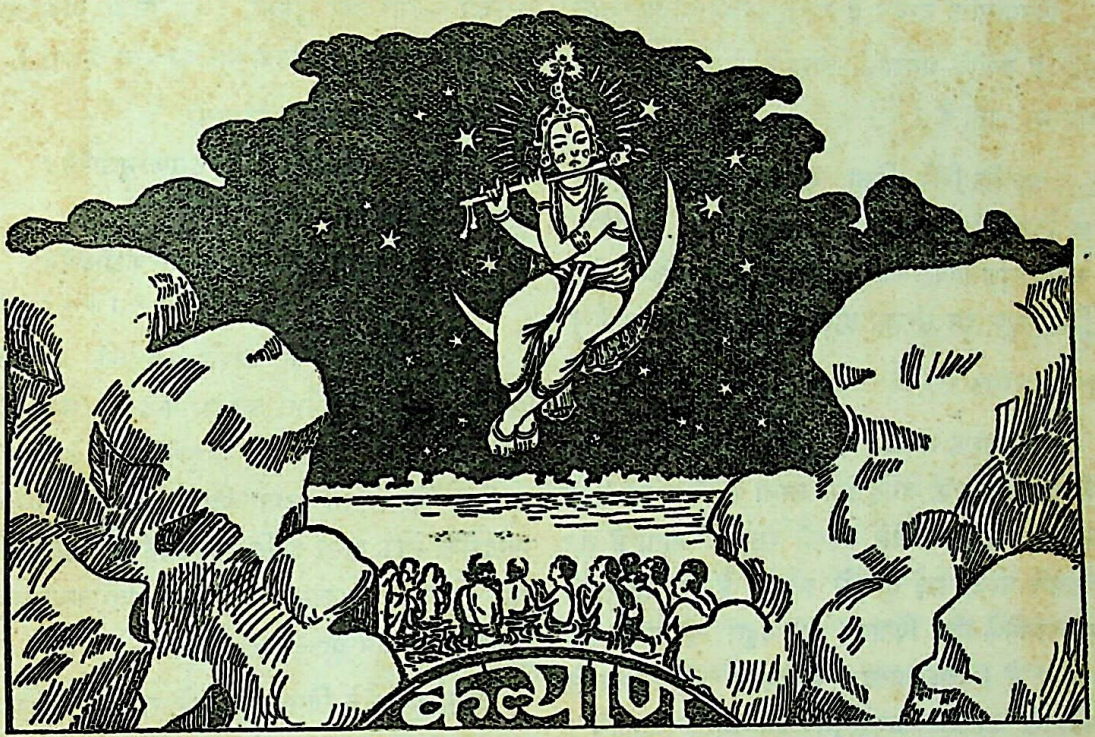

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

वर्ष ८ | गोरखपुर, फाल्गुन १९९० मार्च १९३४ | संख्या ८ पूर्ण संख्या ९२

मोह-महिमा

रहा है न कोई यहाँ, रहिहै न कोई यहाँ, जाने सब कोई, पै न माने मोह परिगे।
हाथी अरु घोड़े रथ छोड़े सब ठौर ठौर, मौननमें गाड़े मूरि माँड़े, ते बिसरिगे॥
कहै छबिनाथ रघुनाथके भजन बिन, ऐसे ही बिचारे जनम कोटिन निसरिगे।
बंगवाले जोरवाले जाहिर जरबवाले जोशवाले जालिम चिताकी आग जरिगे॥

—छबिनाथ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश

विषयासक्ति बन्धन है परन्तु भगवदासक्ति बन्धन नहीं है क्योंकि भगवान्‌में आसक्ति होनेसे विषयासक्ति नष्ट हो जाती है।

आसक्ति किये बिना जब हम रह नहीं सकते तो फिर हमें भगवान्‌में ही आसक्ति करनी चाहिये, चाहे सगुण साकारमें हो, चाहे निर्गुण निराकारमें हो। जिस तरफ दृढ़ संकल्प होगा उसीमें आसक्ति होगी।

× × ×

एक तरफ भगवान् हैं, दूसरी तरफ सारा संसार है। हमको एक जगह प्रेम करना है तो दूसरी जगह छोड़ना पड़ेगा। जैसे लड़की ससुराल जाती है तब पिताके घरको बड़े दुःखसे छोड़ती है, पर ससुरालमें मन लगनेके बाद पिताका घर बहुत ही कम याद आता है। इसी प्रकार साधकको सारे संसारसे आसक्ति हटाकर भगवान्‌में प्रेम करना चाहिये। आरम्भमें दुःख-सा प्रतीत होगा, परन्तु भगवान्‌में प्रेम होनेके बाद संसार याद ही नहीं आवेगा। यह मोह केवल वेदान्त-विचारसे थोड़े ही छूटेगा क्योंकि आजकल वेदान्त-विचार करनेवाले तो बहुत देखे जाते हैं परन्तु मोह बिरलोंका ही छूटता है। इसलिये भगवान्‌का आश्रय लेकर निरन्तर उनका भजन करनेसे ही मोह छूट सकता है।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥
(गीता ७।१४)

× × ×

सगुणमें प्रेम होनेके चार उपाय हैं—(१) भगवान्‌के नामका बारम्बार जप करना, (२) उनके गुणानुवादको बारम्बार कहना तथा सुनना, (३) उनके स्वरूपका ध्यान करना और (४) उनके भक्तोंका संग करना।

स वै मनः कृष्णपदारविन्दयो-
र्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने।
करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु
श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये॥
(श्रीमद्भा० ९।४।१८)

उस (अम्बरीष) ने अपने चित्तको भगवान् श्रीकृष्णके सुरमुनिदुर्लभ चरणारविन्दका चञ्चरीक बना दिया, वाणीको भगवान् वैकुण्ठाधिपतिके हृदयहारी गुणोंके वर्णनमें लगा दिया, हाथोंको श्रीहरिके मन्दिरोंको साफ करने आदि कार्यमें नियुक्त कर दिया और कानोंको भगवान् अच्युतकी त्रिभुवनपावनी कथाओंके सुननेमें तत्पर कर दिया।

तुलसीदासजीने बिनय-पत्रिकामें सब देवताओंकी वन्दना की किन्तु उन सबसे भीख केवल रामपदारविन्दकी ही माँगी, इसी प्रकार सूरदासजी कृष्णपदपङ्कजके भ्रमर बने रहे। अतएव साधकको भी भगवान्‌के किसी एक रूपमें मन लगानेकी चेष्टा करनी चाहिये किन्तु आजकल तो लोग कभी साकारकी उपासना करते हैं तो कभी निराकारकी, कभी वेदान्ती बनकर योगवासिष्ठ विचारते हैं तो कभी उपदेशक बनकर ब्रह्मका उपदेश देते हैं, इसीलिये उनको सिद्धि भी शीघ्र नहीं मिलती?

× × ×

प्र०—मनुष्यको भगवान्‌की इच्छापर रहना चाहिये या पुरुषार्थपर।

उ०—भगवान्‌की आज्ञा पालन करते हुए पुरुषार्थ करनेमें तत्पर रहना एवं फलमें उनकी इच्छापर निर्भर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रहना चाहिये क्योंकि पुरुषार्थ तीव्र करनेसे भगवत्-कृपासे सब कुछ हो सकता है। पुरुषार्थ करते हुए भी सिद्धि-असिद्धिमें भगवान्‌की इच्छाकी प्रधानता समझनी चाहिये। यही भक्तोंकी मान्यता है। भगवान्‌की इच्छा मानकर पुरुषार्थ किसी कालमें भी न छोड़े।

प्रेम करनेमें विचारकी जरूरत नहीं है क्योंकि विचार करनेसे तो वस्तुका निश्चय होता है, प्रेम नहीं।

× × ×

हम दृढ़ संकल्पसे सब कुछ कर सकते हैं। संकल्पसे सृष्टिकी उत्पत्ति एवं प्रलय भी कर सकते हैं। ईश्वर-प्राप्ति भी दृढ़ संकल्पसे हो सकती है। चार महीने कुछ किया, छः महीने कुछ किया, इसीसे काम बिगड़ जाता है।

× × ×

ज्ञानी और भक्तोंको त्रिकालमें भी दुःख नहीं होता और संसारी जनोंका दुःख त्रिकालमें भी नहीं छूटता।

भगवान्‌में मन जोड़नेसे भगवान्‌में प्रेम हो सकता है। जैसे विषयोंके संगसे विषयोंमें प्रेम होता है वैसे ही भक्तोंके संगसे भगवान्‌में प्रेम हो सकता है।

× × ×

प्रथम श्रद्धा करनी चाहिये, फिर सत्सङ्ग करना चाहिये। सत्सङ्ग भी भक्तोंका करना चाहिये। विरोधी अद्वैतवादके ग्रन्थोंको न सुने, न देखे और न उनकी निन्दा ही करे, क्योंकि भक्तोंके द्वैतभाव रहता है। जो अद्वैतके ग्रन्थोंको पढ़ता एवं सुनता है उसकी भक्ति दब जाती है। वेदान्त-विचार करनेवाला तो भक्ति कर सकता है किन्तु भक्त यदि वेदान्त-विचार करेगा तो उसकी भक्ति दूर हो जायगी। भक्तको तो भगवान्‌के गुणानुवाद ही सुनने और उन्हींकी भक्ति करनी चाहिये। भक्ति—(१) वैधी, (२) गौणी, (३) अनुरागात्मिका और (४) प्रेमलक्षणा, इस भेदसे चार प्रकारकी है।

१—मनुष्य-जन्मका कर्तव्य समझकर अपने पूर्वजोंकी देखा-देखी शास्त्रोक्त विधिके अनुसार जो भक्ति की जाती है उसे वैधी भक्ति कहते हैं।

२—भगवान्‌के गुण श्रवण करके मीराबाई, नरसी मेहता आदिकी तरह जो भक्ति की जाती है, उसे गौणी भक्ति कहते हैं।

३—गुण-अवगुणका विचार न कर भगवान्‌के साथ जो स्वाभाविक प्रेम होता है उसे अनुरागात्मिका भक्ति कहते हैं।

४—इन तीनोंके बाद जो स्वतः ही भगवान्‌के साथ प्रगाढ़प्रेम हो जाता है उसे प्रेमलक्षणा भक्ति कहते हैं। उसका यथार्थ वर्णन हो ही नहीं सकता।

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥

गीताका यह श्लोक मुझे बड़ा प्रिय है।

× × ×

श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धकी रासपञ्चाध्यायीको भगवान्‌में आसक्ति होनेके लिये पढ़ना चाहिये तथा भगवान्‌की पूजा-सेवा भी उन्हींमें आसक्ति होनेके लिये करनी चाहिये। यद्यपि भगवान् नित्यतृप्त हैं, सेवा-पूजासे उन्हें कौन तृप्त कर सकता है, तथापि भक्तोंपर दया करके भगवान् उनकी प्रीति बढ़ानेके लिये उनके द्वारा की हुई सेवा-पूजा ग्रहण करते हैं। अतः नित्य-निरन्तर भगवान्‌के गुणानुवाद कथन-श्रवण एवं नाम-संकीर्तन तथा साधुसङ्ग आदि भक्ति-वर्धक कार्य करते रहना चाहिये। इससे भगवान्‌में आसक्ति हो सकती है।

प्रथम श्रद्धा फिर सत्सङ्ग और उसके बाद भजन-क्रिया होती है। निन्दा भूलकर भी किसीकी नहीं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करनी चाहिये, निन्दासे जितनी हानि होती है उतनी किसीसे नहीं होती। इस निन्दाको भगवन्नाम-जपमें पहला अपराध माना है इसलिये किसीके दोष नहीं देखने चाहिये एवं न निन्दा ही करनी चाहिये।

प्रश्नोंका जो उत्तर मैं देता हूँ वह सब शास्त्र-सम्मत ही होगा ऐसी बात नहीं है क्योंकि मैं शास्त्रोंका ज्ञाता नहीं हूँ और मैं जो उत्तर देता हूँ वह सब ठीक ही होगा यह बात भी नहीं है, क्योंकि मैं तो साधारण व्यक्ति हूँ। सबका यथार्थ उत्तर मैं दे सकूँगा या नहीं यह भी नहीं कह सकता। अतएव अपने मनोविनोदके लिये जैसा मुझे जँचता है, वैसा ही उत्तर दे देता हूँ। इसीको प्रमाणस्वरूप नहीं मानना चाहिये।

× × ×

प्र०—भजन किसे कहते हैं? अर्थात् भजनका स्वरूप क्या है?

उ०—अन्तःकरणकी वृत्तिका भगवदाकार हो जाना ही भजन है। भजनका दूसरा अर्थ सेवा है। सेव्यको पूर्ण सुख पहुँचाना, उन्हींके सुखसे अपनेको परमानन्द होना; यह उनकी इच्छाके लिये नहीं, अपने ही आनन्दके लिये; क्योंकि ईश्वर या महापुरुषको सेवा करानेकी आवश्यकता नहीं होती। सेव्यके तद्रूप हो जाना ही सेवाका लक्ष्य है।

प्र०—भजन क्यों करना चाहिये?

उ०—हम छोटे हैं, अवगुणी हैं, दीन, हीन हैं, और दुखिया हैं, इन बातोंको दूर करनेके लिये भजन करना चाहिये। जिसका भजन करेंगे उसके गुण अपनेमें आ जायँगे। हमारी अल्पशक्ति एवं चाहना—कामनाको दूर करनेके लिये भजन करना चाहिये। सबसे बड़ेका भजन करनेसे सबसे बड़ा बना जाता है।

प्र०—भजन करनेसे क्या लाभ है?

उ०—प्रेम किये बिना हमसे रहा नहीं जाता। प्रेमकी पराकाष्ठाको पहुँच जाना, प्रेमस्वरूप परमात्माको प्राप्त कर लेना ही भजनका मुख्य लाभ है।

प्र०—भजन न करनेसे क्या हानि है?

उ०—भजन किये बिना कोई रह नहीं सकता, विषयोंका भजन करनेसे विषयोंकी प्राप्ति होगी, विषय क्षणभंगुर हैं इसलिये उन विषयोंके नाश होनेपर दुःख होगा अतएव भजन न करनेसे निरन्तर दुःखोंकी प्राप्ति होगी इससे बढ़कर क्या हानि होगी?

प्र०—भजन करनेका अधिकारी कौन है?

उ०—जो विषयमें दुःख देखे या जिसे विषय दुःख-रूप दीखें, वही भजनका मुख्य अधिकारी है। जो विषयानन्दमें मस्त रहते हैं वे भजन नहीं कर सकते।

प्र०—भजन करनेवालोंसे पाप-कर्म क्यों नहीं छूटते?

उ०—विषय-चिन्तन करनेको समय मिलता है, जिससे पाप होता है। यदि निरन्तर भजन होने लगे तो फिर उससे पाप नहीं हो सकते। जन्म-जन्मान्तरोंसे विषय-सेवन करते आये हैं इसलिये एक जन्मका सारा समय भजनमें लगावें तो भी थोड़ा ही है परन्तु उसे भी नहीं लगाते। जितना भजन करते हैं उतने तो पाप छूटते ही हैं।

प्र०—भजन करनेवालोंको एकान्तकी आवश्यकता है या नहीं?

उ०—एकान्तकी अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि एकान्तके बिना विरोधी वृत्ति दूर नहीं होती है।

प्र०—भजन करनेवालोंको क्या करना चाहिये?

उ०—आवश्यकतासे अधिक प्रवृत्ति करनेसे भजन नहीं होगा, अतः अधिकाधिक भजन करना और संसारकी ओरसे चित्त हटाना चाहिये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गीतामें चतुर्भुज रूप

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

एक सज्जनका प्रश्न है कि भगवान्‌ने गीताके ११ वें अध्यायके ४५ वें और ४६ वें श्लोकमें अर्जुनके प्रार्थना करनेपर कौन-सा रूप दिखलाया ? वह मनुष्यरूप था या देवरूप ? यदि देवरूप था तो अर्जुनने ४१ वें एवं ४२ वें श्लोकमें प्रभाव नहीं जाननेकी बात कैसे कही ?

उत्तर

श्रीमद्भगवद्गीताके ११ वें अध्यायके ४५ वें श्लोकमें अर्जुनने कहा है—

तदेव मे दर्शय देव रूपं
प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥

इस श्लोकार्धका अर्थ—'हे देव ! आप उसी रूपको मेरे लिये दिखलाइये, हे देवेश ! हे जगन्निवास ! प्रसन्न होइये' यह भी हो सकता है, और 'हे देवेश ! आप उसी देवरूपको मेरे लिये दिखलाइये, हे जगन्निवास ! प्रसन्न होइये' यह भी हो सकता है । 'देव' शब्दके साथ 'रूपम्' की सन्धि कर देनेसे 'देवरूप' स्पष्ट हो जाता है । अलग-अलग रखनेसे देव सम्बोधन हो जाता है । वहीं 'देवेश' सम्बोधन है इसलिये 'देव' सम्बोधनकी आवश्यकता नहीं है, परन्तु यदि 'देव' सम्बोधन मान लिया तो भी कोई आपत्ति नहीं है । प्रायः संस्कृत-टीकाकारोंने सम्बोधन ही माना है । गीताप्रेसकी साधारण टीकामें भी सम्बोधन माना गया है । ऐसा मानकर भी अर्जुनकी प्रार्थनाका भाव 'देवरूप' दिखलानेमें ही है ऐसा समझना चाहिये । क्योंकि ४६ वें श्लोकमें अर्जुन स्पष्ट कहता है—

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त-
मिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन
सहस्रबाहो भव विश्वमूर्त्ते ॥

'मैं वैसे ही आपको मुकुट धारण किये हुए, गदा और चक्र हाथमें लिये हुए देखना चाहता हूँ, इसलिये हे विश्वस्वरूप ! हे सहस्रबाहो ! आप उस ही चतुर्भुज रूपसे युक्त हो जाइये !'

भगवान् श्रीकृष्ण भी समय-समयपर चतुर्भुज रूपसे, केवल अर्जुनको ही नहीं, दूसरोंको भी दर्शन दिया करते थे, जिसके लिये महाभारत और भागवत आदि ग्रन्थोंमें प्रमाण मिलते हैं—

पर्यङ्कादवरुह्याशु तामुत्थाप्य चतुर्भुजः ।
(श्रीमद्भा० १० । ६० । २६)

'पलङ्गसे शीघ्र उतरकर नीचे पड़ी हुई रुक्मिणीको चतुर्भुज भगवान्‌ने उठाया ।'

न ब्राह्मणान्मे दयितं रूपमेतच्चतुर्भुजम् ।
सर्ववेदमयो विप्रः सर्वदेवमयो ह्यहम् ॥
(श्रीमद्भा० १० । ८६ । ५४)

'यह मेरा चतुर्भुज रूप भी मुझे ब्राह्मणोंसे अधिक प्रिय नहीं है क्योंकि ब्राह्मण सर्व वेदमय हैं और मैं सर्व देवमय हूँ ।'

तथा स सम्यक् प्रतिनन्दितस्तत-
स्तथैव सर्वैर्विदुरादिभिस्तथा ।
विनिर्ययौ नागपुराद्गदाग्रजो
रथेन दिव्येन चतुर्भुजः स्वयम् ॥
(महा० अश्व० ५२ । ५४)

'कुन्तीने भलीभाँति आशीर्वाद दिया, विदुर आदि सबने सम्मान किया, तब चतुर्भुज श्रीकृष्ण स्वयं दिव्य रथमें बैठकर हस्तिनापुर जानेको तैयार हो गये !'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सोऽयं पुरुषशार्दूलो मेघवर्णश्चतुर्भुजः।
संश्रितः पाण्डवान् प्रेम्णा भवन्तश्चैनमाश्रिताः॥
(महा० अनु० १४८। २२)

'वे पुरुषोंमें सिंहके समान हैं, मेघवर्ण हैं, चार भुजावाले हैं, वे प्रेमके कारण तुम पाण्डवोंके अधीन हैं और तुमने उनका आश्रय लिया है।

इन प्रमाणोंसे तो चतुर्भुज मनुष्यरूप मान लेनेमें भी कोई आपत्ति नहीं आती परन्तु यहाँ वैसा नहीं माना जा सकता। क्योंकि ४८ वें श्लोकमें भगवान्‌ने 'न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैः' आदि कहकर विश्वरूपकी प्रशंसा की है। फिर आगे चलकर ५३ वें श्लोकमें भी 'नाहं वेदैर्न तपसा' आदि कहकर करीब-करीब इसी प्रकारकी प्रशंसा पुनः की है। यह प्रशंसा विश्वरूपकी नहीं मानी जा सकती क्योंकि अत्यन्त समीपमें इसप्रकार पुनरुक्ति-दोष आना युक्तिसंगत नहीं है।

दूसरे, वहाँ ५४ वें श्लोकमें यह कहा गया है कि अनन्यभक्तिके द्वारा मैं अपना ऐसा रूप दिखा सकता हूँ, परन्तु विश्वरूपके लिये भगवान् पहले कह चुके हैं कि 'यह मेरा परम तेजोमय विश्वरूप तेरे सिवा दूसरे किसीने पहले नहीं देखा। मनुष्यलोकमें इस विश्व-रूपको मैं वेदाध्ययन, यज्ञ, दान, क्रिया और उग्र तपसे भी तेरे सिवा दूसरेको नहीं दिखा सकता।' इसका यह अर्थ नहीं कि अनन्य भक्तिके द्वारा भगवान्‌का विश्वरूप नहीं देखा जा सकता, या यह भी अर्थ नहीं कि श्रीभगवान् विश्वरूपके दिखलानेमें असमर्थ हैं। अभिप्राय यह है कि जैसा रूप अर्जुनको दिखलाया, वैसा दूसरेको नहीं दिखाया जा सकता। क्योंकि वह महाभारतकालका रूप है। भीष्मादि दोनों सेनाओंके वीर भगवान्‌के दाढ़ोंमें हैं। यह रूप सदा एक-सा नहीं रहता, बदलता रहता है, इसीलिये भगवान्‌ने स्पष्ट कहा कि 'इस नर-लोकमें दूसरे किसीने न तो यह रूप पहले देखा है और न आगे देख सकता है।' यद्यपि सञ्जयने भी यह रूप देखा था परन्तु वह समकालीन था। भगवान् श्रीकृष्ण-ने गीतासे पूर्व एक बार कौरवोंकी राजसभामें विश्वरूप दिखलाया था, और दूसरी बार महाभारत-युद्धके बाद (अश्वमेधपर्वमें) उत्तङ्क मुनिको भी दिखलाया था परन्तु वे दोनों ही रूप इस विश्वरूपसे भिन्न थे। तीसरी बात यह है कि इस विशाल विश्वरूपको देखनेके लिये दिव्यचक्षुकी आवश्यकता थी। भगवान्‌ने 'दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्' कहकर अर्जुनको विश्वरूप देखनेके लिये दिव्य चक्षु दिये थे। परन्तु यहाँ दिव्य चक्षुकी कोई बात नहीं है। अनन्य भक्ति करनेवाला कोई भी उस स्वरूपको देख सकता है। इससे यह सिद्ध होता है कि ५२ से ५४ श्लोकमें की गयी महिमा विश्वरूपकी नहीं है।

यदि यह कहा जाय कि वह महिमा विश्वरूपकी तो नहीं है परन्तु भगवान्‌के चतुर्भुज मनुष्यरूपकी है तो यह भी युक्तियुक्त नहीं है। क्योंकि वहाँ ५२ वें श्लोकमें कहा गया है कि 'मेरा यह दुर्लभ रूप जो तुमने देखा है, इस रूपको देखनेकी देवता भी सदा आकांक्षा करते हैं—'देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः'—देवता मनुष्यरूप चतुर्भुजकी आकांक्षा क्यों करने लगे? वह तो मनुष्योंको भी दीख सकता था फिर देवताओंके लिये कौन-सी दुर्लभ बात थी? यदि यह कहा जाय कि देवता विश्वरूपके दर्शनकी आकांक्षा करते हैं सो यह भी ठीक नहीं है क्योंकि जिसके मुखारविन्दमें दोनों सेनाओंके वीर जा रहे हैं, और चूर्ण हो रहे हैं, ऐसे घोर रूपके दर्शनकी आकांक्षा देवतागण क्यों करने लगे? इससे यही सिद्ध होता है कि दूसरी बार की

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हुई महिमा भगवान्‌के देवरूप चतुर्भुजकी है। अर्जुनके 'गदिनं चक्रिणम्' शब्दोंसे भी यही सिद्ध होता है क्योंकि नररूप भगवान् तो युद्धमें शस्त्र ग्रहण न करनेकी दुर्योधनसे प्रतिज्ञा कर चुके थे फिर गदादि धारण करनेके लिये अर्जुन उनसे क्योंकर कहता? सञ्जयके वचनोंसे भी यही सिद्ध होता है कि पहले भगवान्‌ने अर्जुनकी प्रार्थनाके अनुसार अपना चतुर्भुज देवरूप दिखलाया, फिर तुरन्त ही सौम्यवपु द्विभुज मनुष्यरूप होकर अर्जुनको आश्वासन दिया।

चतुर्भुज देवरूपके प्राकट्यके बाद और मनुष्यरूप होनेके पूर्व अर्जुनकी कैसी स्थिति रही इसका कोई वर्णन नहीं मिलता। भगवान्‌के मनुष्यरूप हो जानेके बाद ही अर्जुन अपनी स्थितिका वर्णन करता है कि 'अब मैं अपनी प्रकृतिको प्राप्त हो गया।' इससे अनुमान होता है कि भगवान् श्रीकृष्णके सौम्य मनुष्य-रूप धारण करनेपर ही अर्जुन अपनी पूर्व स्थितिमें आया। चतुर्भुज देवरूप-दर्शनके समय उसकी स्थिति सम्भवतः आश्चर्ययुक्त और हर्षोन्मत्त-सी हो गयी होगी। किन्तु इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसीसे बहुत-से संस्कृत-टीकाकारोंने चतुर्भुज देवरूपके प्रकट होनेका वर्णन नहीं किया। परन्तु सञ्जयके कथनमें इसका स्पष्ट वर्णन है, सञ्जय कहता है—

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा
स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः।
आश्वासयामास च भीतमेनं
भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा॥
(गीता ११।५०)

इस श्लोकका सरल और स्पष्ट अन्वय यों होता है—

वासुदेवः अर्जुनम् इति उक्त्वा भूयः तथा स्वकं रूपं दर्शयामास च पुनः महात्मा सौम्यवपुः भूत्वा एनं भीतम् आश्वासयामास।

अर्थात् वासुदेव भगवान्‌ने अर्जुनके प्रति इसप्रकार कहकर फिर वैसे ही अपने चतुर्भुज (देव) रूपको दिखाया और फिर महात्मा कृष्णने सौम्य मूर्ति होकर इस भयभीत हुए अर्जुनको धीरज दिया।

उपर्युक्त आधे श्लोकके 'भूयः तथा स्वकं रूपं दर्शयामास' इन वचनोंसे यह सिद्ध है कि श्रीभगवान्‌ने ४९ वें श्लोकमें जो यह—'व्यपेतभीः प्रीतमनाः त्वं तद् एव मे इदं रूपं पुनः प्रपश्य।' अर्थात् 'भय-रहित हुआ प्रीतियुक्त मनवाला तू मेरे उसी रूपको देख' कहा था, वही अर्जुनका वाञ्छनीय देवरूप दिखलाया। इसके बादके आधे उत्तरार्द्धमें पुनः सौम्य मनुष्यवपु होकर धीरज देनेकी बात आ गयी।

ऐसा सीधा अन्वय न लगाकर कोई-कोई 'सौम्य-वपु' को 'स्वकं रूपम्' का विशेषण मान लेते हैं परन्तु वैसा नहीं बन सकता क्योंकि 'स्वकं रूपम्' द्वितीया विभक्तिका एक वचन और कर्म है, यहाँ 'सौम्यवपु' महात्मा कृष्णका विशेषण है और कर्तामें प्रथमा विभक्तिका एक वचन है। इसके सिवा ऐसा माननेमें 'भूत्वा' अव्यय भी व्यर्थ हो जाता है। कोई-कोई क्लिष्ट कल्पना करके खींचतानकर ऐसा अन्वय करते हैं—

महात्मा वासुदेवः अर्जुनम् इति उक्त्वा पुनः सौम्यवपुः भूत्वा तथा स्वकं रूपं दर्शयामास च एनं भीतं पुनः आश्वासयामास।

इस अन्वयके अनुसार ऐसा अर्थ बनता है कि भगवान् पहले सौम्यवपु हुए और तब अर्जुनको अपना रूप दिखलाया। जब सौम्यवपु हो ही गये तो फिर दिखलाया क्या, सौम्यवपु होते ही अर्जुनने देख ही लिया। 'भूत्वा' अव्यय किसी दूसरी क्रियाकी अपेक्षा करता है और वह क्रिया 'आश्वासयामास' ही होनी चाहिये क्योंकि वही नजदीकमें है। परन्तु इसको न लेकर 'स्वकं रूपं दर्शयामास' क्रिया लेनेसे अन्वयकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कल्पना अत्यन्त क्लिष्ट हो जाती है और अर्थ भी ठीक नहीं बैठता। 'महात्मा' शब्दको भी 'वासुदेव' का विशेषण नहीं लेना चाहिये क्योंकि वह 'सौम्यवपु' के समीप है। परमार्थप्रपा-टीकामें भी यही अर्थ लिया गया है कि भगवान्‌ने पहले चतुर्भुज देवरूप दिखलाया पीछे सौम्यवपु होकर आश्वासन दिया।

अब यह शंका रह जाती है कि अर्जुनने ४५ वें श्लोकमें तदेव (तद् एव) और ४६ वें श्लोकमें तेनैव (तेन एव) यानी उसी रूपको देखनेकी प्रार्थना की है। यहाँ इन 'तत्' और 'तेन' शब्दोंसे यह अर्थ निकलता है कि अर्जुनका सङ्केत पहले देखे हुए स्वरूपको देखनेके लिये ही है। यदि यह कहा जाय कि 'तत्' शब्दसे अत्यन्त समीपका रूप लिया जानेके कारण मनुष्यरूप ही मिलता है सो ठीक है परन्तु उपर्युक्त विवेचनसे यह सिद्ध हो चुका है कि अर्जुनकी प्रार्थना मनुष्यरूप दिखलानेकी नहीं, देव-रूप दिखलानेके लिये थी। तब यह शंका होती है कि क्या वह देवरूप पहले कभी अर्जुनने देखा था और यदि देखा था तो फिर ४१ वें और ४२ वें श्लोकोंमें प्रभाव न जाननेकी बात उसने कैसे कही ? इस शंकाका समाधान यह है कि अर्जुनके 'देवरूपं किरीटिनं गदिनं तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन' आदि शब्दोंसे ऐसा प्रतीत होता है कि अर्जुनने किसी समय भगवान्‌के देवस्वरूपका गुप्तरूपसे दर्शन किया था, तभी इतने विशेषणोंसे उसका लक्ष्य करवा रहा है, नहीं तो 'तदेव मे दर्शय देव रूपम्' इतना ही कहना काफी था, अन्य किसी विशेषणकी आवश्यकता ही नहीं थी। चतुर्भुज देवरूपसे अर्जुनके दर्शन करनेका वर्णन महा-भारतमें इससे पूर्व कहीं आया हो तो मुझे ध्यान नहीं है। किन्तु वर्णन न भी आया हो तो भी इन शब्दोंसे यही मान लेना चाहिये कि अर्जुनने किसी समय पहले चतुर्भुज देवस्वरूपका दर्शन किया था। भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनकी सभी लीलाएँ ग्रन्थोंमें नहीं लिखी गयीं, उनके चरित्रोंका विस्तारसे वर्णन नहीं मिलता है, और यह बात भी गुप्त थी, इसीसे 'तदेव' 'वही' कहकर अर्जुन इशारा करता है।

अब रही प्रभाव न जाननेकी बात, सो यद्यपि ४१ वें और ४२ वें श्लोकमें आये हुए शब्दोंसे यह प्रतीत होता है कि मानों अर्जुन भगवान्‌के प्रभावको नहीं जानता था परन्तु वास्तवमें ऐसी बात नहीं है। अपनी लघुता दिखलाना तो भक्तोंका स्वभाव ही होता है। प्रभावके सम्बन्धमें स्वयं अर्जुनने गीतामें इससे पहले कहा है—

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम्॥
आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे॥
(१०। १२, १३)

'आप परम ब्रह्म, परम धाम एवं परम पवित्र हैं, क्योंकि आपको सब ऋषिजन सनातन दिव्य पुरुष, देवोंके भी आदिदेव, अजन्मा और सर्वव्यापी कहते हैं। वैसे ही देवर्षि नारद, असित, देवल ऋषि, महर्षि व्यास और स्वयं आप भी मेरे प्रति कहते हैं।'

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे।
अनन्त देवेश जगन्निवास
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत्॥
त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप॥
(११। ३७, ३८)

'हे महात्मन्! ब्रह्माके आदिकर्ता और सबसे बड़े आपके लिये वे कैसे नमस्कार नहीं करें, क्योंकि हे अनन्त! हे देवेश! हे जगन्निवास! जो सत्, असत्

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और उनसे परे अक्षर अर्थात् सच्चिदानन्दघन ब्रह्म है वह आप ही हैं। और हे प्रभो! आप आदिदेव सनातन पुरुष हैं, आप इस जगत्के परम आश्रय और जाननेवाले तथा जाननेयोग्य और परम धाम हैं। हे अनन्तरूप! आपसे यह सब जगत् व्याप्त अर्थात् परिपूर्ण है।'

इससे सिद्ध होता है कि अर्जुन भगवान्के प्रभावको जानता था और उनका प्रेमी भक्त था। न जानता होता तो ऐसे वचन क्योंकर कहता और क्यों स्वयं भगवान् अपने श्रीमुखसे उसे 'भक्तोऽसि मे सखा चेति' कहते और क्यों उसके रथके घोड़े हाँकनेका काम करते। अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णको हृदयसे साक्षात् परमात्मा मानता था परन्तु कभी न देखे हुए भयङ्कर विराट्रूपको देखकर उसने आश्चर्यचकित और भयभीत होकर ४१ वें और ४२ वें श्लोकमें वैसे वचन कह दिये। इसीलिये भगवान्ने आश्वासन देते हुए उसे 'मा ते व्यथा मा च विमूढभावः व्यपेतभीः' आदि कहकर एवं अपने देवरूपके दर्शन करवाकर निर्भय और शान्त किया। यदि भगवान्का प्रभाव जाननेमें अर्जुनकी यत्किञ्चित् कमी मानी जाय तो गीताके उपदेशसे उसकी भी सर्वथा पूर्ति हो गयी।

इस विवेचनसे यह सिद्ध होता है कि भगवान् श्रीकृष्णने विश्वरूपके बाद अर्जुनको चतुर्भुज देवरूपसे दर्शन दिये और फिर सौम्यवपु द्विभुज मनुष्यरूप होकर उसे आश्वासन दिया।

भूकम्प और हमारा कर्तव्य

सब लोग अपने-अपने कामोंमें लगे थे, सभी निश्चिन्त-से होकर मनमाना खेल खेल रहे थे, किसीके मनमें यह कल्पना भी नहीं थी कि अभी, एक ही क्षणके बाद अकस्मात प्रलयका-सा भयानक दृश्य उपस्थित हो जायगा, सहसा धरती धूज उठेगी, कुछ ही मिनटोंमें पृथिवी फटकर उसमेंसे जलकी तप्त धाराएँ निकल-निकलकर गर्जो ऊपरको उछलने लगेंगी, बालू निकलकर उपजाऊ जमीनको रेगिस्तान बना देगी और कूँओंको भर देगी। मजबूत-से-मजबूत मकान चकनाचूर हो जायँगे या जमीनके अन्दर धँस जायँगे, घरकी सारी प्यारी चीजें जहाँ-की-तहाँ तहस-नहस हो जायँगी, वर्षोंसे संग्रह किये हुए पदार्थ मिट्टीमें मिल जायँगे, सदियोंसे क्रमशः उन्नत होते हुए सुन्दर शहर विध्वंस हो जायँगे, मौज-शौकका सारा सामान नष्ट हो जायगा, भागकर प्राण बचानेतकका मौका नहीं मिलेगा; जहाँ-के-तहाँ पत्थरोंके नीचे दबकर या जमीनमें धँसकर प्रिय प्राणोंको बिलखते हुए विसर्जन कर देना पड़ेगा, बचे हुए लोग प्यारे परिवार और घर-द्वारसे हीन होकर कराहते रह जायँगे, सुन्दर रमणीय भूमि सियार, गीध, कौवे और चोरोंके उपद्रवसे पूर्ण घोर श्मशानके रूपमें परिणत हो जायगी। क्षणभर पहले ही जो धन-जनसे सम्पन्न लोग महलोंमें रहते थे, उन्हींको अकेले-दुकेले पड़े हुए भयरहित आश्रय, बैठनेके लिये जरा-सी निरापद जगह, तनिक-सी छाया, मुट्ठीभर अन्न, चुल्लूभर पानी और दो हाथ कपड़ेके लिये दूसरोंकी ओर ताकना पड़ेगा, महलोंकी रानियाँ सद्यप्रसूत शिशुको लेकर खुले मैदानमें जाड़ेसे ठिठुरती हुई चादर तानकर पड़ी रहेंगी, स्वच्छ सुगन्धित वायुमण्डल मुर्दोंकी दुर्गन्धसे दूषित हो जायगा, सजी हुई सड़कें टूटे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मकानोंके ईंट-पत्थरों और लाशके ढेरसे पट जायँगी और चारों ओरसे उठी हुई करुणक्रन्दन-ध्वनि और घोर आर्त्तनाद कठोर-से-कठोर हृदयको भी पानी-पानी कर देगा। उस दिनके भूकम्पसे यही अकल्पित बात हो गयी; पलक मारते-मारते ही नाटकका परदा पलट गया। जगन्नाटकके सूत्रधारका किया हुआ यह पट-परिवर्तन महान् भयानक, दुःखदायी और हृदय-विदारक होनेके साथ ही परम आश्चर्यमय और अचिन्त्य शिक्षाप्रद था!

भगवान्‌की अघटनघटनापटीयसी प्रकृति बड़ी विचित्र है। संसारमें ऐसा कोई नहीं है जो दयालु और न्यायकारी सर्वसमर्थ भगवान्‌की इस अतुलनीय शक्तिशालिनी प्रकृतिपर विजय प्राप्त कर सके। मनुष्य प्रकृतिके किसी एक नगण्य क्षुद्रतम अंशके किसी आंशिक रहस्यको समझकर या उसका मनमाना अर्थ लगाकर अपनेको सफल मान लेता है और विजयगर्वसे उन्मत्त हो उठता है। ईश्वरकी कुछ भी आवश्यकता न समझकर वह विज्ञानको ही सुख-समृद्धिका एकमात्र आधार समझ लेता है, और रेल, तार, बेतारका तार, वायुयान आदि बनाकर अपनेको असम्भवका सम्भव करनेवाला मानकर दर्प करने लगता है, परन्तु दर्पहारी दयालु भगवान्‌की प्रकृतिके नृत्यका एक ही क्षणिक पादनिक्षेप सहसा उसके समस्त दर्पको पूर्णरूपसे चूर्ण कर डालता है। पल-पलमें पैंतरे बदलनेवाली प्रकृतिनटीके विचित्र नृत्य और उसकी अद्भुत क्रीड़ाओंका तनिक-सा रहस्य समझनेमें भी समस्त वैज्ञानिकोंका विज्ञान और उनका बुद्धि-कौशल व्यर्थ हो जाता है। भूकम्पके कारणकी खोज करनेवाले वैज्ञानिक आज भाँति-भाँतिकी अटकलें लगा रहे हैं। कोई कहते हैं हिमालयमें पहाड़ोंके ऊपर उठनेसे भूकम्प हुआ, कोई कहते हैं नेपालमें ज्वालामुखी-पहाड़में धड़ाका हो गया, कोई कहते हैं एक तारा पृथिवीके बहुत समीप आ गया था, उसकी आकर्षणशक्ति बढ़ जानेके कारण भूकम्प हो गया। परन्तु भूकम्पके उपद्रवसे बचनेका समीचीन उपाय कोई भी अबतक नहीं बतला सके। और यदि कोई ऐसा क्षणिक उपाय बतला भी दें तो उससे क्या हुआ? प्रकृतिकी संहारलीलासे न तो आजतक कोई बचा और न बच सकता है। ग्रहोंका योग निमित्त बने या वैज्ञानिकोंके कथनानुसार पहाड़ियों-का उठना निमित्त बने, इन सब योगोंमें भी सत्यता है परन्तु मूल-कारण प्रकृतिकी संहारलीला है जो जीवोंके कर्मवश प्रकृतिके स्वभावानुसार प्रतिक्षण हो रही है। संसारकी प्रत्येक वस्तु प्रतिक्षण बदल रही है। क्षणभंगुर और विनाशी जगत्‌में कोई भी वस्तु स्थिर और नित्य नहीं है, संहारका स्रोत अनवरत-रूपसे सर्वदा बह रहा है। परन्तु जीवोंके प्राक्तन कर्मोंके फलस्वरूप जब किसी एक ही सीमित स्थानमें, एक ही साथ और एक ही समय सहसा संहारका दृश्य सामने आ जाता है, तब हम उसे देखकर काँप उठते हैं, और कुछ क्षणोंके लिये जगत्‌को अनित्य और असार समझकर भगवान्‌के शरण होने लगते हैं—भूकम्पके समय नास्तिकोंके मुखोंसे भी भगवान्-के नामकी ध्वनि सुनायी देती है—परन्तु दूसरे ही क्षण हमारा यह क्षणिक वैराग्य भाँगके नशेकी भाँति उतर जाता है और हम फिर पूर्ववत् मायामुग्ध हो क्षणविनाशी विषयोंके संग्रह और भोगमें लग जाते हैं। कर्मफल भुगतानेके अतिरिक्त ऐसी घटनाएँ हम अज्ञानग्रस्त मनुष्योंको चेतावनी देनेके लिये भी संघटित होती हैं। भगवान् दया करके हम भूले हुओं-को चपत लगाकर पके फोड़ेमें आपरेशन करके हित करनेवाले डाक्टरकी भाँति, सचेत करके मार्गपर लाते हैं और अपनी ओर आकर्षित करते हैं। बच्चे जब

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

काँचके टुकड़ों या छुरी-काँटोंके खिलौनोंसे खेलनेमें इतने संलग्न हो जाते हैं कि थोड़ी-बहुत चोट लगने-पर भी खेलको छोड़कर आवश्यक काममें नहीं लगते, तब माता-पिता या अभिभावक बच्चोंके हितके लिये उन खिलौनोंको जबरदस्ती छीनकर फेंक देते या तोड़ डालते हैं और उन्हें चपत मारकर अलग हटा देते हैं, इसी प्रकार भगवान् भी हमारे हितके लिये कभी-कभी ऐसी घटनाएँ किया करते हैं !

इसप्रकारकी घटनाओंको देखकर हमें अनित्य, क्षणभंगुर और दुःखरूप जगत्के असली स्वरूपका ज्ञान होना चाहिये। हमें सोचना चाहिये कि हमें मरते या हमारी सम्पत्तिका नष्ट होते उतनी भी देर नहीं लगती जितनी मिट्टीके बने बरतनोंको फोड़ने-में लगती है। और वास्तविक वैराग्यके द्वारा हमारा चित्त जगत्के पदार्थोंसे हटकर सदाके लिये श्रीभगवान्में लग जाना चाहिये।

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥

'इस अनित्य और सुखशून्य लोकको पाकर तुम मुझे भजो।' दयालु भगवान्की इस गीतोक्त आज्ञा-को पूर्णरूपसे समझकर उसका अनुसरण करनेके लिये यही सुअवसर है। इसी अवसरमें यह सिद्धान्त प्रत्यक्ष हो जाता है कि जगत्में कुछ भी स्थिर नहीं है, मनुष्य किसी भी वस्तुको अपने बलपर बनाये नहीं रख सकता और यह जगत् दुःखसे पूर्ण है। इस जगत्में पैदा होकर जो मनुष्य इसके अनित्य एवं विनाशी स्वरूपको पहचानकर नित्य, अज, अविनाशी सच्चिदानन्दघन परमात्माके भजनमें मन लगाता है वही बुद्धिमान् है और वही नित्य आत्यन्तिक सुखको प्राप्त होता है। हमें इस भयानक भूकम्पसे यही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

अवश्य ही इस भयानक दुर्घटनासे देशकी—खास करके बिहारके कुछ नगरोंमें हमारी जो दुर्दशा हुई है वह बड़ी ही रोमाञ्चकारी, भयङ्कर और हृदयको हिला देनेवाली है। परन्तु यह निश्चय समझना चाहिये कि इसमें प्रधान कारण हमलोगोंके दुष्कर्म ही हैं। शास्त्रोंमें कहा गया है कि राजा एवं प्रजाके पापोंसे ही भूकम्प, बाढ़, महामारी आदि उपद्रव हुआ करते हैं। भगवान्के विधान और कर्म-विज्ञानके अनुसार यह निश्चित है कि सुख-दुःख मनुष्यके अपने किये हुए कर्मोंका ही फल है और कर्मोंका सर्वथा क्षय न हो जानेतक वह उसे भोगनेके लिये सर्वथा बाध्य है। अपार कर्मजालके जलनेका साधन ज्ञानाग्नि है जो भगवान्की अनन्य शरणागतिसे प्रज्वलित होती है। आजका अज्ञानी और अभिमानी मनुष्य तो भगवान्का नाम मिटाकर ही अपरिमित सुख-शान्ति प्राप्त करना चाहता है और यथेच्छाचार एवं उच्छृङ्खलता-को ही उन्नति समझकर दिनोंदिन अज्ञानके गड्ढेमें और भी गहरा उतरता जा रहा है। वर्तमान धर्म-नाशक विचार और आन्दोलन इस बातके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इस विपरीत गतिका परिणाम तो ऐसा दुःख ही होगा ! अतएव हमें सचेत होकर श्रीभगवान्की शरण ग्रहण करनी चाहिये और भगवत्कृपासे उस पूर्ण नित्यानन्दमयी स्थितिपर पहुँचनेका प्रयत्न करना चाहिये जो त्रितापसे सर्वथा रहित है, जिसके लिये श्रीभगवान् कहते हैं—

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः॥
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

(गीता ६। २१-२२)

'इन्द्रियोंसे अतीत, केवल शुद्ध एवं सूक्ष्म बुद्धिसे ही ग्रहण करने योग्य जो अनन्त सुख है उसको जिस

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अवस्थामें अनुभव करता है और जिसमें स्थित वह पुरुष श्रीभगवान्‌के स्वरूपसे (तत्त्वसे) चलायमान नहीं होता, एवं परमात्माकी प्राप्तिरूप जिस लाभको प्राप्त होकर उससे अधिक अन्य कुछ भी लाभ नहीं मानता एवं जिसमें स्थित होकर भारी-से-भारी दुःखसे भी चलायमान नहीं होता!'

भगवान्‌की कृपाके रहस्यको समझनेकी चेष्टा करते हुए दुःखोंसे तो हमें किसी भी हालतमें अधीर नहीं होना चाहिये। दुःखकी हर हालतमें भगवान्‌की दयाका अनुभवकर हमें श्रीभगवान्‌का धन्यवाद करना चाहिये। हमें विवेकपूर्वक विचार करना चाहिये—

१—जगत्‌में कोई भी वस्तु नित्य और अविनाशी नहीं है। विनाशी वस्तुका एक दिन नाश होगा ही, वह आज ही हो गया तो इसमें दुःखकी कौन-सी बात है। वास्तवमें कालके द्वारा सभी ग्रसित हैं। भगवान्‌ने अपने कालस्वरूप विराट्‌रूपमें अर्जुनको दिखला दिया था कि उनकी दाढ़ोंमें भीष्मादि वीर चूर्ण हो रहे हैं।

२—जहाँ प्रतिकूल भावना है वहाँ दुःख है और जहाँ अनुकूल भावना है वहाँ सुख है। यह अनुकूल-प्रतिकूल भावना अज्ञानके कारण मनोकल्पित है। इसीसे राग-द्वेष होते हैं। शत्रुमें प्रतिकूल भावना होनेके कारण उसके विनाशमें दुःख नहीं होता, प्रत्युत सुख होता है, एवं मित्रमें अनुकूल भावना होनेके कारण उसके विनाशमें दुःख होता है। अतएव सुख-दुःख वस्तुतः किसी घटनामें नहीं हैं, हमारे मनकी कल्पनामें हैं। यदि संसारमें होनेवाली प्रत्येक घटनाको हम भगवान्‌की लीला समझें (जो वास्तविक सत्य है) और प्रतिकूल भावनाको सर्वथा नष्ट कर दें तो हमें किसी भी हालतमें दुःख नहीं हो सकता!

३—संसार सब मायाका खेल है, नाटककी भाँति इसके दृश्य बदलते हैं। आत्मामें कभी कोई अन्तर नहीं पड़ता; वह सदा एकरस, नित्य, अज, अविनाशी है, जगत्‌के नाशसे उसका नाश नहीं होता। हम शरीर नहीं आत्मा हैं, इसलिये प्रकृतिके कार्यरूप जगत्‌में परिवर्तन होनेसे हमें दुःख क्यों होना चाहिये?

४—दुःख करनेसे दुःख नहीं मिटता, वरं बढ़ता है। अभावकी पूर्तिसे भी दुःख सर्वथा नहीं मिटता, क्योंकि एक अभावकी पूर्तिके साथ ही कई नये अभावोंकी सृष्टि हो जाती है। दुःख विवेकसे मिटता है। अतएव विवेक-बुद्धिसे भी हमें दुःख नहीं करना चाहिये।

५—हम अपने लौकिक पुरुषार्थसे भूकम्प-जैसी घटनाओंको टाल भी नहीं सकते, साथ ही बुरे प्रारब्धका भोग हो जानेसे हम कर्मोंके ऋणसे मुक्त हो जाते हैं। इसलिये भी दुःख नहीं करना चाहिये।

६—दुःखमें जगत्‌से वैराग्य और भगवान्‌का स्मरण होता है। वैराग्य और भगवान्‌की स्मृति परम और नित्य सुख परमात्माकी प्राप्तिमें प्रधान कारण हैं। अतएव परम सुखको प्राप्त करानेवाले दुःखसे हमें दुखी क्यों होना चाहिये। वह तो सौभाग्यसे मिलता है, ऐसा मानना चाहिये। कुन्तीदेवीने भगवान्‌से दुःखका वरदान माँगा था। महात्मा ईसाने कहा है 'भगवान्‌के धाममें दुखी और दीनोंको ही स्थान मिलता है।'

७—एक भगवान्‌के सिवा जगत्‌में और कुछ भी नहीं है। भगवान् ही सुख-दुःखका चोला पहनकर प्रकट होते हैं। ऐसा समझकर हमें दुःखसे घबराना नहीं चाहिये।

इसप्रकार विचार करके भूकम्पसे पीड़ित भाई-बहिनोंको धैर्य धारण करके मनमें सन्तोष करना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चाहिये और मन लगाकर दयामय प्रभुका भजन-स्मरण-कीर्तन करना चाहिये, जिससे हमारे परिवारके परलोकगत आत्माओंको सद्गति मिले और पुनः ऐसी दुःखदायी घटना न हो या किसी भी घटनाका हमारे मनपर दुःखदायी प्रभाव न पड़े। असलमें श्रीभगवान्‌की शरणसे ही हम सारे दुःखोंसे छूट सकते हैं। वर्तमान दुर्घटनाने हमारी आँखें कुछ-कुछ खोल दी हैं। पलभरमें सब कुछ विध्वंस हो जाना और पत्थरोंके ढेरोंमेंसे कई दिनों बाद छोटे-छोटे बच्चोंतक-का, बिना जरा-सी भी चोट लगे, जीवित निकलना, भगवान्‌की महिमाका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसप्रकारकी कई खबरें इस बार मिली हैं। लगभग पैंतीस वर्षपूर्व आसामके भयानक भूकम्पमें इन पंक्तियोंका लेखक भी शिलांगमें पत्थरोंके ढेरमें दबकर भगवदिच्छासे इसी प्रकार बच गया था। इन घटनाओंके स्मरणसे ही हृदय गद्गद हो जाता है।

मेरे उपर्युक्त कथनका यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि भूकम्प-पीड़ित भाई-बहिनोंपर पड़ी हुई इस भयानक विपत्तिको कर्मका फल बतला देने और उन्हें भगवान्‌का भजन करनेके लिये कह देनेमें ही हमारे कर्तव्यकी समाप्ति हो जाती है। भूकम्पपीड़ित उन भाइयोंका दुःख तो हम सबका दुःख है। इस समय हमारा सबसे पहला कर्तव्य पीड़ित भाई-बहिनोंकी अन्न, वस्त्र, ओषधि आदिके द्वारा तन, मन, धनसे सेवा करना है। यद्यपि भूकम्पसे धन-जनकी जो भयानक हानि हुई है उसकी पूर्ति हमलोग किसी प्रकार भी नहीं कर सकते तथापि अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार जाति, धर्म, देश, सिद्धान्त आदिका भेद भुलाकर उनके दुःखको अपना ही दुःख समझकर उसे कम करने-की चेष्टा करना हमारा प्रधान धर्म है। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों ही दृष्टियोंसे इस समय सेवा की जा सकती है—

१—आज एक प्रान्तके कुछ भाइयोंपर जैसी विपत्ति आयी है, वैसी ही कल दूसरे प्रान्तके भाइयोंपर भी आ सकती है। हम सभी मौतके मुँहमें बैठे हैं। यदि इस समय अपीड़ित भाई पीड़ित भाइयों-की सेवा करेंगे तो उनपर विपत्ति आनेपर (ईश्वर करे किसीपर भी विपत्ति न आवे) वे भी वैसी ही सहायताकी आशा रख सकते हैं। इसके सिवा संसारमें हम सभीका परस्पर सम्बन्ध है, फिर, एक देशवासियोंका स्वार्थ तो परस्पर सम्बद्ध है ही। एक दूसरेके हानि-लाभका प्रभाव एक दूसरेपर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षरूपसे पड़ता ही है। इस स्वार्थ-दृष्टिसे भी सेवा करनी चाहिये।

२—दया धर्मका मूल है, निर्दय मनुष्य यथार्थ धर्मात्मा नहीं हो सकता। धर्म ही मनुष्यको विपत्तिसे बचाता है परन्तु जो मनुष्य इसप्रकारकी दयनीय स्थितिमें पड़े हुए अपने ही भाई-बहिनोंकी सेवाके लिये अपनी शक्तिके अनुसार अग्रसर नहीं होता, वह धर्मका अर्जन कैसे कर सकता है? अतएव इस धर्मकी दृष्टिसे भी सेवा करनी चाहिये।

३—सेवाका फल सुख है, अतएव यहाँ और परलोकमें जिनको सुखकी कामना हो, उनको इस समय सेवा करनी चाहिये। योग्य देश-काल-पात्रके अनुसार दान करनेका भी यही सुअवसर है। अतएव खुले दिलसे सेवा करके कामनाकी पूर्ति करनी चाहिये।

४—दुःखसे पीड़ित भाई-बहिनोंकी निष्काम सेवा ही श्रीभगवान्‌की वास्तविक पूजा है। जहाँ अन्नका अभाव है, वहाँ मानों भगवान् अन्न माँगते हैं, वहाँ अन्नसे भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। जहाँ जलके लिये जीव व्याकुल हैं, वहाँ यथेष्ट जलकी व्यवस्थाकर भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जहाँ वस्त्रके अभावसे हमारे भाई और हमारी मा-बहिन-बेटियाँ लाज बचानेमें और सरदी-गरमीसे बचनेमें असमर्थ हों वहाँ वस्त्र ही भगवान्‌की पूजाका प्रधान उपकरण है। इसप्रकार सच्चे सेवकों और धार्मिकोंकी परीक्षाके लिये भी भगवान् उन्हें ऐसा अवसर दिया करते हैं, जिसकी कोई भी इच्छा नहीं करता। इस उत्पात, अभाव और दुर्दशाके भयानक रुद्ररूपमें मानों साक्षात् भगवान् ही प्रकट हुए हैं, सर्वभूतहितैषी ज्ञानी और सब भूतोंमें भगवान्‌की झाँकी करनेवाले भक्तोंको ऐसा समझकर इस समय तन, मन, धनसे भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। सन्तोषकी बात है कि सरकार, देशके नेता और सर्वसाधारण इस समय सेवाके लिये तन, मन, धनसे लग रहे हैं। इसमें और भी वृद्धि होनी चाहिये, तथा गरीबों और दुखियोंकी विशेषरूपसे सेवा करनी चाहिये। इसप्रकार भगवद्भावसे की हुई निष्काम सेवा मोक्षकी प्राप्तिमें प्रधान कारण हो, इसमें क्या आश्चर्य है? अतएव प्रार्थना है कि—

(क) सभी भाइयोंको तन, मन, धनसे, यथाशक्ति अन्न, वस्त्र, ओषधि आदिसे, सस्ती दूकानें खोलकर, अस्थायी मकान बनवाकर, कूड़ा और बालू हटानेमें मदद देकर, कुएँ साफ करवाकर तथा अन्यान्य आवश्यक साधनोंद्वारा पीड़ित भाई-बहिनोंकी सेवा करनी चाहिये।

(ख) अपने तथा सबके सब प्रकारके कल्याणके लिये स्थान-स्थानमें अपने-अपने धार्मिक विश्वासके अनुसार भगवत्-प्रार्थना, भगवन्नाम-जप, भगवन्नाम-संकीर्तन, हवन इत्यादि करने-कराने चाहिये। विपत्तिसे बचनेका सर्वोत्तम उपाय भगवत्-शरणागति ही है।

जीवन और धन क्षणविनाशी हैं, हम जिस जीवन और धनपर इतना अभिमान करते हैं, उसकी स्थितिका एक क्षणका भी ठिकाना नहीं है, पता नहीं किस पलकमें प्रलय हो जाय! अतएव विषयोंसे मोह हटाकर हमें शास्त्रानुकूल पवित्र जीवन बिताना चाहिये और प्रतिपल बड़ी सावधानीके साथ भगवान्‌का चिन्तन करते रहना चाहिये। प्रतिक्षण भगवान्‌के चिन्तनमें लगे हुए मनुष्यकी मृत्यु किसी भी समय, किसी परिस्थिति-में होनेपर भी उसके लिये भगवत्प्राप्ति निश्चित है। युद्धमें प्रतिक्षण मृत्युके लिये तैयार अर्जुनको भगवान्‌ने स्वयं कहा था—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥

'अतएव तू सब समय मेरा स्मरण करता हुआ ही युद्ध कर। युद्धमें मन, बुद्धि अर्पण करनेवाला तू (किसी समय मृत्युको प्राप्त हो जानेपर भी) मुझको ही प्राप्त होगा।'

मनुष्यके लिये सबसे बड़ी सावधानी यही है कि वह प्रतिपल इस बातको सँभालता रहे कि मेरा चित्त भगवान्‌का चिन्तन कर रहा है या नहीं। यदि प्रतिक्षण निरन्तर भगवान्‌का चिन्तन हो रहा है तो कोई चिन्ता नहीं। भगवत्-कृपासे हर हालतमें मंगल ही होगा। भगवान्‌का चिन्तन छूट जाना ही सबसे बड़ी विपत्ति है। अतएव भगवान्‌के चिन्तनमें हमलोगोंको सावधान रहना चाहिये।

दूसरी एक सावधानी सांसारिक है। इस बारके भूकम्पसे यह सिद्ध हो गया कि तंग गलियोंमें बड़ी-बड़ी ऊँची इमारतें बनी होनेके कारण ही इतनी अधिक मृत्यु हुई, लोग यथेच्छ भागकर भी जान नहीं बचा सके। अतएव अबसे जो मकान बनाये जायँ वे बहुत ऊँचे न हों, तंग गलियोंमें न होकर खुली

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जगह हों और चौकवाले हों। कलकत्तेके बिशप महोदयने 'कल्याण'के पाठकोंको यह सन्देश पहुँचा देनेका अनुरोध किया है और यह बात सर्वथा उचित भी है यद्यपि सर्वथा ऐसा हो जाना कई कारणोंसे कठिन है। थोड़े जीवनके लिये विशालकाय महलोंका बनवाना और मौज-शौककी अपार सामग्रियोंका जुटाना अन्तमें दुःखका कारण ही होता है।

अन्तमें यह निवेदन है कि हम सभीको ईश्वरमें परम विश्वास रखकर ईश्वरका अनन्य स्मरण करते हुए अपने भगवत्-मुखी शुद्ध आचरणोंके द्वारा जनतामें भगवद्भक्ति फैलानी चाहिये। याद रखना चाहिये कि श्रीरामके अनुकूल आचरणोंसे ही विश्वमें रामराज्यकी प्रतिष्ठा हो सकती है और रामराज्यमें किसी प्रकारका ताप कभी व्याप नहीं सकता।

दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहिं काहुहिं व्यापा॥

हनुमानप्रसाद पोद्दार

कल्याण

जिसके मनमें प्रेम, सत्य, दया, आनन्द, सरलता, समता आदि गुण भरे हैं वही यथार्थमें सुन्दर है, चाहे वह देखनेमें बदसूरत ही क्यों न हो। और जिसके मनमें वैर, असत्य, क्रूरता, विषाद, कपट, विषमता आदि दोष भरे हैं वह देखनेमें परम सुन्दर होनेपर भी यथार्थमें कुरूप है, अतएव मनमें दैवी गुणोंको भरनेकी चेष्टा करो।

जिसका मन वशमें है, वही यथार्थमें स्वाधीन है। देहका बन्धन बन्धन नहीं है, असली बन्धन है मनका बन्धन। एक आदमी देहसे स्वतन्त्र है परन्तु यदि वह मनके अधीन है तो उसे सर्वथा पराधीन ही समझना चाहिये। मनपर विजय प्राप्त करनेवाला ही यथार्थ विजयी है। अतएव मनको वशमें करो।

मनके वशमें करनेके लिये यदि तुम्हें विधि या नियमोंके बन्धनमें रहना पड़े तो अपना सौभाग्य समझो, यह बन्धन ही तुम्हें मनकी गुलामीसे मुक्त करेगा। उच्छृङ्खलता बन्धनकी गाँठोंको और भी कस देती है अतएव नियमोंकी शृंखलामें बँधे रहनेमें ही मंगल समझो।

जिसके मनमें भगवान्‌के प्रति भक्ति है, वही यथार्थ भक्त है, बाहरी आडम्बरवाला नहीं! भगवान् मनपर ध्यान देते हैं, भेषपर नहीं। इसलिये मनसे भगवान्‌की भक्ति करो, दुनियाके लोग चाहे तुम्हें भक्त न मानें।

× × ×

किसीके साथ किसी बातको लेकर कुछ अनबन हो जाय और बर्तावमें कोई दोष आ जाय तो फिर उसके साथ अच्छा बर्ताव करनेके लिये इस बातकी बाट न देखो कि पहले वह मुझसे अच्छा बर्ताव करे। सम्भव है वह भी इसी प्रकार तुमसे अच्छे बर्तावकी प्रतीक्षा करता हो। ऐसी अवस्थामें तुम कभी अच्छा बर्ताव कर ही नहीं सकोगे। अतएव अपनी ओरसे पहलेसे ही अच्छा बर्ताव करना आरम्भ कर दो। तुम्हारे बर्तावसे उसपर असर पड़ेगा और वह भी अच्छा बर्ताव करने लगेगा।

× × ×

किसीका उपकार करके उसे जनानेकी इच्छा न करो, उपकार जितना गुप्त रहेगा उतना ही वह अधिक मूल्यवान् होगा। जना देनेसे उपकारकी कीमत घट जाती है और उपकार पानेवालेको कभी-कभी बड़े संकोचमें पड़ना पड़ता है।

× × ×

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सच्चे सन्त अपने सन्तपनेका ढिंढोरा नहीं पीटते, बल्कि उनमेंसे बहुतोंको अपने सन्तपनेका भी पता नहीं रहता। वे अपनेको साधारण पुरुष मानते हैं परन्तु उनके संगसे बड़े-से-बड़े पापी भी तर जाया करते हैं।

सन्तोंका मिलना और उनको पहचानना बड़ा कठिन है। सन्त प्रायः छिपे रहते हैं। उनके ऊपर-के आचरणोंसे लोग सहजमें उनको नहीं पहचान सकते; दूसरी बात यह है कि सन्तको साधारण पुरुष पहचाने भी कैसे; वह तो उसे अपनी बुद्धिके अनुसार ही परखना चाहता है परन्तु उसका वह परखना वैसा ही निरर्थक होता है जैसा पत्थर तौलनेके बड़े काँटेपर बहुमूल्य हीरेको तौलना।

भगवत्कृपासे ही सन्त मिला करते हैं, परन्तु उनका मिलना व्यर्थ नहीं जाता, उससे कुछ-न-कुछ फल मिलता ही है। यदि मनुष्य उन्हें यथार्थरूपसे पहचान ले तो वह भी वैसा ही बन जाय। सन्तों-को पहचानना ही उनसे यथार्थ मिलना है। इसी-लिये सन्त-मिलनकी इतनी प्रशंसा की गयी है।

× × ×

दुःख पापका फल है और सुख पुण्यका; आज जो हमलोगोंपर, संसारपर नित-नये दुःख आ रहे हैं, इससे यह सिद्ध है कि संसारमें पाप बढ़ रहा है। बुद्धिमें पाप समा जानेके कारण पापकी वृद्धिमें ही उन्नति नजर आती है और इसीलिये लोग उसीमें लग रहे हैं। अतएव सुख चाहनेवालोंको जगत्के इन वर्तमान विपरीतगामी लोगोंसे उलटा चलना चाहिये, क्योंकि पापका प्रतिपक्षी ही पुण्य होता है। और पुण्यका फल ही सुख है।

पापमें पुण्य, अकर्तव्यमें कर्तव्य, अधर्ममें धर्म या बन्धनमें मुक्त-भाव होना विपरीत बुद्धिका ही परिणाम है। आज संसारमें यही हो रहा है। इसका फल दुःख और बन्धन अवश्यम्भावी है। विपरीत ज्ञानका कारण अविद्या है जो भगवान्की कृपासे ही नष्ट हो सकती है। भगवान्की कृपा प्राप्त करनेके लिये भगवद्भजन परम आवश्यक है। अतएव मन लगाकर सबको श्रीभगवान्का भजन करना चाहिये।

× × ×

जो संसारके विषयोंपर जितना कम सोचता है और जितना कम बोलता है वह आध्यात्मिक मार्गपर उतना ही शीघ्र आगे बढ़ सकता है। इसलिये जहाँतक बने चित्तमें जगत्के प्रपञ्चोंको कम-से-कम आने दो और बिना आवश्यकताके जीभको कभी न खोलो। कम-से-कम, बुद्धिमान् कहलानेके लिये तो कभी न बोलना ही अच्छा है।

जो जितना कम बोलता है उससे उतने ही कम मिथ्या बोल जाने और पर-निन्दा होनेकी गुञ्जाइश रहती है। मिथ्या और निन्दा बड़े पाप हैं, अतएव वाणीका संयम करके इन्हें यथासाध्य कम करो।

वाणीसे होनेवाले पापोंमें चार प्रधान हैं—मिथ्या बोलना, किसीकी निन्दा या चुगली करना, कड़ुआ बोलना और व्यर्थकी बातें करना। अतएव जहाँतक बने कम बोलो और जो बोलो उसमें चार बातोंका ध्यान रक्खो—तुम्हारे शब्द उद्वेग पैदा करने-वाले न हों, मिथ्या न हों, प्रिय हों और हितकारी हों। ऐसा सब समय न बोल सको तो इन चारोंमेंसे तीन, दो या कम-से-कम एक सत्यपर तो डटे ही रहो! नहीं तो वाणीसे भगवान्के गुण और नामका गान करो। मुँहसे व्यर्थ तो बोलो ही मत! बोलना ही पड़े तो बोलो रामकी बात या आवश्यक कामकी बात! यही भगवान्की आज्ञा है।

× × ×

"शिव"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परमहंस-विवेकमाला

(लेखक—स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी)

(गतांकसे आगे)

[मणि १०]

बृहदारण्यक उपनिषद् तृतीय अध्याय

देवी—हे डोरूशङ्कर ! तूने जो बालाकि ब्राह्मणकी कथा पूछी थी, वह मैंने तुझसे कही; इससे तेरी समझमें आ गया होगा कि ब्रह्मविद्या-सम्पन्न ही गुरु पदवीके योग्य है, चाहे वह ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो, वैश्य हो, अथवा शूद्र हो। जो ब्रह्मवेत्ता है, वही गुरु है। उसके सिवा सब शिष्य हैं। ब्रह्मविद्याका ऐसा ही माहात्म्य है कि वह शिष्यको भी गुरु बना देती है। अब जो कुछ तुझे पूछना हो, पूछ !

डोरूशङ्कर—हे देवी ! पूर्वमें आपने ऐसा कहा था कि दध्यङ् ऋषिने यह कहा था कि एक याज्ञवल्क्य ही सम्पूर्ण ब्रह्मविद्याका वर्णन करेंगे, उनके सिवा अन्य ऋषि अपने शिष्योंको सम्पूर्ण ब्रह्मविद्याका उपदेश नहीं करेंगे, आधी ब्रह्मविद्याका उपदेश करेंगे। हे देवी ! याज्ञवल्क्य ऋषिका वृत्तान्त मुझे सुनाइये, उन्होंने सम्पूर्ण ब्रह्मविद्याका कैसे, कहाँपर और किसको उपदेश किया था, यह सब विस्तारपूर्वक मुझे सुनाइये; यह कथा विचित्र होगी, ऐसा मेरा निश्चय है।

याज्ञवल्क्य तथा आश्वलादि ऋषियोंका संवाद

देवी—हे डोरूशङ्कर ! याज्ञवल्क्य नामके ऋषिने प्रथम वैशम्पायन नामके ऋषिसे वेद-विद्याका अध्ययन किया था। उस विद्याको उन्होंने क्रोधयुक्त होकर उनसे ले लिया, यह वृत्तान्त मैं तुझे तैत्तिरीय उपनिषद्में सुना चुकी हूँ। उनकी दी हुई विद्याका त्याग करके याज्ञवल्क्य ऋषि फिर विद्या प्राप्त करनेके लिये सूर्यभगवान्को प्रसन्न करनेके हेतुसे महान् तप करने लगे। सूर्यभगवान् सूर्य-मण्डलमें रहनेवाले नाम, रूप तथा क्रियायुक्त सर्व प्रपञ्चके स्वरूपवाले, रक्त पुष्प-समान नेत्रवाले तथा नखसे लेकर केशपर्यन्त सुवर्ण-समान शरीरवाले हैं। ये सूर्यभगवान् ऊपर, नीचे तथा मध्यवर्ती सर्व जीवोंको मनवाञ्छित पदार्थ देनेवाले और समष्टि, स्थूल, सूक्ष्म और कारण उपाधिवाले विराट्, हिरण्यगर्भ और ईश्वररूप हैं। इन सूर्यभगवान्-मेंसे श्वास-प्रश्वासके समान बिना ही यत्नके सर्व वेद उत्पन्न होते हैं। ये सूर्यभगवान् ऋक्, यजुष् और साम तीन वेदस्वरूप हैं। ये सूर्यभगवान् दिनके प्रथमभागमें ऋग्वेदरूपसे, दिनके मध्यभागमें यजुर्वेदरूपसे और दिनके अन्तभागमें अथर्वाङ्गिरस-युक्त सामवेदरूपसे प्रकाशित होते हैं। जैसे मधु मनुष्यको आनन्द देनेवाला है, इसी प्रकार वसु आदि देवताओंको आनन्द देनेवाले और सब कर्मोंका फल देनेवाले सूर्यभगवान् आदित्यरूप मधु हैं। आदित्यमें सूर्यभगवान् सर्वदा निवास करते हैं। यह आदित्यरूप मधु रक्त, शुक्ल, कृष्ण, पीत और अति कृष्ण-इन पाँचों रूपोंसे युक्त है। यह आदित्यरूप मधु यथाक्रम रक्त आदि रूपवाले ऋक्, यजुष्, साम, अथर्वाङ्गिरस और उपनिषद्-इन पाँच वेदरूपी भ्रमरोंसे बना हुआ है। जैसे मक्खी पुष्पमेंसे रसको ग्रहण करके जहाँ मधु होता है, वहाँ ले जाती है, इसी प्रकार ऋग्वेदादि भ्रमर यागादि कर्मरूप पुष्पोंमेंसे मन्त्ररूपको प्राप्त होकर यागादि कर्मोंकी सूक्ष्म अवस्थारूप जो पुण्यरूप अदृष्ट है, उस अदृष्टरूपी रसको आदित्यरूप मधुमें ले जाते

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हैं। ये सूर्यभगवान् सबको आनन्द देनेवाली वृष्टि करते हैं। स्मृतिमें कहा है—

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥

अर्थात् 'अग्निमें दी हुई आहुति सूक्ष्मरूपसे आदित्यको प्राप्त होती है, आदित्यसे वृष्टि होती है, वृष्टिसे अन्न उत्पन्न होता है और अन्नसे प्रजा उत्पन्न होती है।' सूर्यभगवान् सर्व प्राणियोंके भीतर रहनेवाले प्राणरूप हैं। ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त सर्व स्थावर-जङ्गम प्राणी सूर्यभगवान्‌के हृदयमें रहते हैं। ऐसे सूर्यभगवान्‌को याज्ञवल्क्य तपसे प्रसन्न करने लगे। सूर्यभगवान्‌को प्रसन्न करके उन्होंने उनसे ब्रह्मविद्या प्राप्त की। पश्चात् गृहस्थाश्रम धारण करके याज्ञवल्क्य अधिकारी शिष्योंको चारों वेदोंका अध्ययन कराने लगे। उनकी शिष्य-मण्डली चार प्रकारकी थी—एक मण्डली ऋग्वेद, दूसरी यजुर्वेद, तीसरी सामवेद और चौथी अथर्ववेदका अध्ययन करनेवाली थी। जैसे सूर्यभगवान् पूर्वादि दिशाओंके मध्यमें प्रकाशते हैं, इसी प्रकार याज्ञवल्क्य चार प्रकारके शिष्योंके मध्यमें शोभित होते थे।

याज्ञवल्क्यकी कीर्ति

हे डोरूशङ्कर! याज्ञवल्क्यकी कीर्ति दूर-दूर फैल गयी। याज्ञवल्क्यकी कीर्ति सुनकर आश्वलादि ब्राह्मण ईर्ष्यावश सन्तापको प्राप्त हुए। महाराजा जनक याज्ञवल्क्यकी कीर्ति सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुए। दुष्ट पुरुष परायी कीर्तिको सुनकर विषादको प्राप्त होते हैं और सज्जन दूसरेकी बड़ाईको सुनकर प्रसन्न होते हैं। इसी प्रकार आश्वलादि ब्राह्मणोंको याज्ञवल्क्यकी प्रशंसा सुनकर महान् शोक हुआ और राजा जनक उनकी कीर्ति सुनकर आनन्दको प्राप्त हुए। हे प्रियदर्शन! वस्तु कोई दोषरूप नहीं है, परन्तु द्वेषी पुरुष अपने द्वेषके कारण उसमें दोष देखता है और रागी पुरुष उसमें गुण देखता है; उदासीन पुरुषको न राग होता है, न द्वेष होता है; किन्तु सब वस्तुओंको असत् समझकर वह सबमें समान ही रहता है। राजा जनक याज्ञवल्क्यको अपनी सभामें बुलाकर उनसे उपदेश लेना चाहते थे और आश्वलादि ब्राह्मण उनको ऐसा करनेसे रोकनेके लिये अनेक प्रकारसे याज्ञवल्क्य और याज्ञवल्क्यकी विद्याकी निन्दा किया करते थे।

आश्वलादिके निन्दा-वचन

इस याज्ञवल्क्यने किसी लौकिक गुरुसे तो विद्या प्राप्त नहीं की है, सुनते हैं कि सूर्यभगवान्‌से इसने विद्या प्राप्त की है; भला, ऐसा कहीं सम्भव है? यदि उसने सूर्यनारायणसे साक्षात् ही विद्याध्ययन किया है तो वह अपने मुखसे शिष्योंको क्यों पढ़ाता है? जैसे हम सब ब्राह्मण मुखसे विद्या पढ़ाते हैं, इसी प्रकार याज्ञवल्क्य भी मुखसे ही विद्या पढ़ाता है; इसलिये 'मैंने सूर्यभगवान्‌से विद्या पढ़ी है' यह याज्ञवल्क्यका कथन यथार्थ नहीं है। और 'सूर्यके रथमें बैठकर मैंने विद्या पढ़ी है' यह भी याज्ञवल्क्यका कहना असंगत है, क्योंकि यदि पूर्वमें रथमें बैठाकर सूर्यने विद्या पढ़ाई हो, तो अब भी प्रज्वलित अग्निमें बैठकर याज्ञवल्क्य विद्याका पठन क्यों नहीं करता? तेजके समूह सूर्यभगवान्‌ने जब याज्ञवल्क्यको वेदोंका अध्ययन कराया है तो अब भी तेजका समूह उसको वेदोंका उपदेश क्यों नहीं करता? 'याज्ञवल्क्यके तपसे प्रसन्न होकर सूर्यभगवान्‌ने दूसरा शरीर धारण करके याज्ञवल्क्यको वेदोंका पाठ कराया था,' यदि कोई ऐसा कहे तो सम्भव नहीं है; क्योंकि यदि सूर्यदेवका शरीर अङ्गीकार किया जायगा तो जैसे शरीरवाले स्त्री आदि पदार्थ अनित्य हैं, इसी प्रकार सूर्यभगवान् भी अनित्य ठहरेंगे। यदि सूर्यनारायण अनित्य हों तो उनमें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और हममें विशेषता ही क्या रहे ? इसलिये सूर्यसे विद्या प्राप्त होना सम्भव नहीं है। और दूसरा कोई प्रसिद्ध गुरु याज्ञवल्क्यका है नहीं, इसलिये ऐसा जान पड़ता है कि याज्ञवल्क्य अपने कपोल-कल्पित वचनोंको वेद मानकर उनका अध्ययन करता और शिष्योंको कराता है। और 'मैंने सूर्यके पाससे वेद पढ़े हैं' ऐसा कहकर अज्ञानी जीवोंको मोहमें डालता है। गुरु-सम्प्रदायके अनुसार उदात्तादि स्वरविशिष्ट वर्णोंकी आनुपूर्वीको बुद्धिमान् वेद कहते हैं। इसप्रकारके वेदके लक्षणसे रहित जितने वचन हैं, वे नटपुरुषके वचनके समान हैं। और इस याज्ञवल्क्यका गुरु-सम्प्रदाय प्रसिद्ध नहीं है, इसलिये याज्ञवल्क्यके वचन नटपुरुषके वचनके समान हैं। पदक्रमके सम्प्रदाय विना ही याज्ञवल्क्य हाथ हिलाकर यजुर्वेदका नटके समान पाठ करता है, इसलिये याज्ञवल्क्य यजुर्वेदको नहीं जानता। पूर्वमें वैशम्पायनसे उसने यजुर्वेदका अध्ययन किया था, उसको भी वह हालमें नहीं जानता, तो अन्य वेदको वह किसप्रकार जान सकता है ? नहीं जान सकता।

हे डोरूशङ्कर ! इस लोकमें अपनी कीर्तिको सुनकर तो प्रायः सभी प्रसन्न होते हैं, किन्तु विरले ही पुरुष ऐसे होते हैं, जो दूसरेकी कीर्ति सुनकर प्रसन्न हों। शिष्ट पुरुष ही दूसरे पुरुषकी बड़ाई सुनकर आनन्द मानते हैं, नहीं तो सब अपनी ही कीर्ति सुनना चाहते हैं। जैसे पूर्ण चन्द्रको देखकर समुद्र प्रसन्न होकर उछलता है, इसी प्रकार दूसरेकी कीर्ति सुनकर शिष्ट पुरुष फूले नहीं समाते। ऐसे पुरुष ही धन्य हैं ! मूढ़ पुरुष तो दूसरेकी कीर्ति सुनकर प्रसन्न होनेके बदले उलटे खिन्न होते हैं, ऐसे पुरुष बुद्धिमानोंकी सभामें निन्दाके ही पात्र होते हैं और परलोकमें भी दुःखके भाजन बनते हैं। उपर्युक्त प्रकारसे आश्वलादि ब्राह्मणोंने याज्ञवल्क्यकी कीर्तिपर अनेक प्रकारसे बट्टा लगाना चाहा; परन्तु जनक राजाके मनमेंसे उनकी कीर्ति निकली नहीं, किन्तु और भी अधिक समाती गयी।

याज्ञवल्क्यकी क्षमा

हे प्रियदर्शन ! इसप्रकार आश्वलादि ब्राह्मणोंकी की हुई निन्दाको यद्यपि याज्ञवल्क्य जानते थे और लोगोंसे उन्होंने सुन भी रक्खा था, तो भी वे क्षोभको प्राप्त नहीं होते थे, आत्मज्ञानके प्रभावसे उलटे प्रसन्न होते थे। जैसे वर्षाकालमें गर्जना विना ही मेघ जलकी वृष्टि करते हैं, इसी प्रकार याज्ञवल्क्य अपने मुखसे अपनी स्तुति किये विना पूर्वके समान अपने शिष्योंको अर्थसहित सर्व वेदोंका पाठ कराते रहते थे, और निन्दा करनेवाले ब्राह्मणोंसे कभी कुछ भी नहीं कहते थे। जैसे मार्गमें भोंकते हुए कुत्तोंको देखकर हाथी उनके भोंकनेपर किञ्चित् भी ध्यान नहीं देता, वह झूमता हुआ चला ही जाता है, इसी प्रकार आश्वलादि ब्राह्मणोंके द्वारा निन्दा सुनकर याज्ञवल्क्य मुनि किञ्चित् भी खिन्न नहीं होते थे, उलटे प्रसन्न हुआ करते थे।

हे डोरूशङ्कर ! इसप्रकारकी याज्ञवल्क्यकी कीर्ति सुनकर मिथिलापति राजा जनकको उनके दर्शनकी अत्यन्त उत्कण्ठा हुई। जनक राजाके इस अभिप्रायको जानकर राजाके पुरोहित आश्वलादिने राजा जनकके सामने उनकी निन्दा की। बुद्धिमान् राजा आश्वलादि ब्राह्मणोंके दुष्ट अभिप्रायको जान गये, परन्तु उन्होंने उनसे कुछ भी नहीं कहा। याज्ञवल्क्यको बुलानेकी इच्छासे राजाने यज्ञका आरम्भ किया और अपने विश्वासु ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंको उसने इसप्रकार आज्ञा दी—

जनक—हे ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यो ! मैंने यज्ञ करनेका विचार किया है, इसलिये तुम सब देशोंमें जाकर सब ब्राह्मणोंको बुला लाओ !

हे सौम्यदर्शन ! इसप्रकार जनक राजाकी आज्ञा पाकर सेवकगण कुरु-पाञ्चालसे लेकर सब देशोंमें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गये और उन देशोंमें रहनेवाले सभी विद्वान् ब्राह्मणोंको बुला लाये और शिष्योंसहित याज्ञवल्क्यको भी लिवा लाये। ब्राह्मणोंके आ जानेसे जनक राजाके महलमें वेदोंकी महान् ध्वनि होने लगी। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य-तीनों वर्णोंको यह ध्वनि आनन्द देती थी। जनक राजाके यज्ञमें आश्वलायन नामका ब्राह्मण ऋग्वेदोक्त कर्म करनेवाला होतारूप हुआ। जरत्कार ब्राह्मणका पुत्र आर्तभाग, लह्य नामके ब्राह्मणका पुत्र भुज्यु, चक्र नामके ब्राह्मणका पुत्र उषस्त, कुषीतक नामके ब्राह्मणका पुत्र कहोल, ब्रह्मनिष्ठ गार्गि, अरुण नामके ब्राह्मणका पुत्र उद्दालक, शकलका पुत्र शाकल्य, जिसका दूसरा नाम विदग्ध है, ये सब उस यज्ञमें आये थे। शाकल्य अत्यन्त वाचाल, अत्यन्त अभिमानी और पापी होनेसे याज्ञवल्क्यके साथ द्वेष करता था। चारों वेदोंके शिष्य-प्रशिष्योंसहित याज्ञवल्क्य वहाँ आये थे। आश्वलादि ब्राह्मणोंके अपने-अपने शिष्योंसहित और इसके सिवा अनेक विद्वानोंके वहाँ आनेसे करोड़ों ब्राह्मण एकत्र हो गये थे। इसप्रकार राजा जनकने याज्ञवल्क्यके आगमनका उपाय किया। प्रसङ्ग पाकर राजा जनक आश्वलादि सब ब्राह्मणोंसे हाथ जोड़कर इसप्रकार कहने लगे—

राजा जनक—हे ब्राह्मणो! अश्वमेधादि सामग्रीसे मैं देवताओंका पूजन करना चाहता हूँ, आप सब ब्राह्मण मुझे यज्ञ करनेकी आज्ञा दीजिये। आपकी आज्ञा पाकर मैं सर्व दिशाओंको भेरी आदिके शब्दोंसे पूर्ण करूँगा।

जब राजा जनकके इसप्रकार पूछनेपर सब ब्राह्मणोंने आज्ञा दे दी, तब राजाको यह इच्छा हुई कि इस मेरे यज्ञमें एकत्र हुए सभी ब्राह्मण महात्मारूप हैं, सदाचारी हैं, वेद-वेदान्तमें कुशल हैं और शिष्योंसे युक्त हैं, किन्तु इन सब ब्राह्मणोंमें सबसे अधिक वेदवेत्ता कौन है, यह मुझे जानना चाहिये। सब ब्राह्मणोंमेंसे एककी श्रेष्ठता जाननेके लिये राजा अपने मन-ही-मनमें इसप्रकार विचार करने लगा—

राजा जनक—(मनमें) यदि मैं इस ब्राह्मणोंके समाजमें किसीसे पूछूँगा कि तुम सब ब्राह्मणोंमें कौन सबसे अधिक विद्वान् है तो ब्राह्मण अपने किसी मित्रको ही अधिक विद्वान् बतावेंगे, क्योंकि जिसमें जिसका द्वेष होता है, वह साक्षात् देव, गुरु अथवा विद्यामें बृहस्पतिके समान हो तो भी द्वेषवान् उसकी निन्दा ही करता है। और जिसका जिसमें स्नेह होता है, यदि वह एक अक्षर भी न जानता हो और कृषिकारके समान महामूढ हो तो भी स्नेहवान् उसकी स्तुति करता है। इसलिये राग-द्वेषवाले किसी ब्राह्मणसे पूछनेसे सबसे श्रेष्ठ ब्राह्मणका निश्चय नहीं हो सकता। यदि कोई कहे कि जो ब्राह्मण राग-द्वेषसे रहित, उदासीन हो, उससे पूछनेसे अधिक विद्वान्का निश्चय हो जायगा तो यह भी ठीक नहीं है; उदासीनसे पूछनेपर भी अधिकताका ज्ञान नहीं हो सकता। क्योंकि शम-दमादि गुणोंके ज्ञानसे अधिकताका ज्ञान होता है और क्रोधादि दोषोंके ज्ञानसे न्यूनताका ज्ञान होता है। शम-दमादि गुणोंवाला उदासीन होता है। उदासीनको क्रोधादि दोषोंका ज्ञान नहीं होता, इसलिये उदासीनके वचनसे सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मणका निश्चय होना असम्भव है। यदि कोई कहे कि उदासीनको यद्यपि स्वयं ब्राह्मणोंके गुण-दोषका ज्ञान नहीं होता, किन्तु यदि तुम सब ब्राह्मणोंके गुण-दोषोंका उदासीनके सामने वर्णन करोगे तो वह तुमको सर्वश्रेष्ठ विद्वान्को बता देगा, तो यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि जब मैं अपने मुखसे ब्राह्मणोंके गुण-दोष सुनाऊँगा तब उदासीन उनमेंसे किसीकी श्रेष्ठता कहेगा। यह बात तो मैं उसके बतानेसे पहले ही जान सकता हूँ। उदासीनसे गुण-दोष कहना निष्फल है, ऐसा करनेसे भी श्रेष्ठताका निश्चय नहीं हो सकता। यदि मैं एक-एक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ब्राह्मणको एकान्तमें बुलाकर पूछूँ कि तुम सबसे श्रेष्ठ हो या नहीं, और उसके कहनेसे सर्व-श्रेष्ठ ब्राह्मणको जान लूँ तो यह भी नहीं बनता। क्योंकि यदि मैं एक-एकको बुलाकर पूछूँगा तो सभी अपनेको अधिक बतावेंगे, कोई भी अपनेको न्यून नहीं बतावेगा; इसलिये इस उपायसे भी श्रेष्ठ विद्वान्का निश्चय नहीं हो सकता। कोई कहे कि गुह्य अर्थका बोध करानेवाले प्रश्न तुम सब ब्राह्मणोंसे करो और जो तुम्हारे प्रश्नका यथार्थ उत्तर दे, उसको श्रेष्ठ जान लो, तो इस उपायसे भी श्रेष्ठ विद्वान्का निश्चय नहीं होगा। इसमें तो उलटी मेरी हानि होगी, क्योंकि यदि मैं ब्राह्मणोंसे कहूँगा कि मैं तुमसे गुह्य प्रश्न करूँगा तो ब्राह्मण क्रोधित होकर मुझे शाप देकर भस्म कर देंगे। इसलिये पूर्वोक्त किसी उपायसे सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मणका निश्चय नहीं होगा। ब्राह्मणोंकी अधिकता और न्यूनताकी जाँच तो परस्पर इनके शास्त्र-विवाद करानेसे ही होगी। इसलिये सर्व ब्राह्मणोंका परस्पर विवाद कराके सबसे श्रेष्ठ ब्राह्मणका निर्णय करना चाहिये। इसमें भी एक हानि है कि यदि मैं इन ब्राह्मणोंसे कहूँगा कि तुम सब परस्पर विवाद करो तो ये ब्राह्मण क्रोधित होकर मुझे शाप देंगे, इसलिये मुझे ऐसा करना चाहिये कि मेरे कहे बिना ही ये सब परस्पर विवाद करें। धनके सिवा ऐसा कोई दूसरा उपाय नहीं है। धन ही समस्त विवादोंका कारण है, इसलिये यदि मैं इन सब ब्राह्मणोंके सामने बहुत-सा धन रक्खूँगा तो धनके लोभसे ब्राह्मण स्वयं ही परस्पर विवाद करेंगे। उनके विवाद करनेसे सबसे श्रेष्ठ विद्वान्का निर्णय हो जायगा।

धनमें सर्व विवादकी कारणता

विषयभोगका साधनरूप धन किस जीवके चित्तमें क्षोभ उत्पन्न नहीं करता? धनसे सभीके चित्तमें क्षोभ होता है। भाव यह कि ब्रह्मवेत्ता कहे जानेवाले संन्यासीके चित्तमें भी धन क्षोभ कर देता है, तो फिर अन्य कुटुम्बी गृहस्थके चित्तमें क्षोभ कर दे, तो इसमें संशय ही क्या है? चित्तके क्षोभके कारण काम, क्रोध, लोभ तथा मोहादि धनसे ही उत्पन्न होते हैं, धन बिना काम-क्रोधादि विकार उत्पन्न नहीं होते। अन्वय-व्यतिरेकसे धनमें ही काम-क्रोधादिकी कारणता रहती है। जहाँ धन होता है, वहीं काम-क्रोधादि होते हैं; इसका नाम अन्वय है। जहाँ धन नहीं होता वहाँ काम-क्रोधादिका अभाव होता है, इसका नाम व्यतिरेक है। क्षुधासे पीड़ित निर्धन दरिद्री पुरुष कामजन्य सुखको प्राप्त नहीं होता, क्योंकि निर्धन ऐसा विचार करता है कि यदि मैं विवाह करूँगा तो जितना अन्न मैं भोजन करूँगा, उतना ही अन्न स्त्री भोजन करेगी। स्त्रीके भोजनके लिये मैं कहाँसे अन्न लाऊँगा जब कि मैं अपना ही पेट नहीं पाल सकता। ऐसा विचारकर दरिद्री विवाह नहीं करता। जैसे कृमिवाले तथा दुर्गन्धवाले मृतकको कोई स्पर्श नहीं करता, इसी प्रकार निर्धन मनुष्यको देखकर कामसे आतुर हुई स्त्री भी उसको स्पर्श करनेकी इच्छा नहीं करती। तात्पर्य यह है कि धर्मशास्त्रकी रीतिसे विवाहित पतिव्रता स्त्री भी अपने पतिको निर्धन देखकर उससे प्रेम नहीं करती, तब व्यभिचारिणी स्त्रीके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है। जैसे सिद्धाञ्जन पृथिवीमें दबे हुए धनके दर्शनका कारणरूप है, इसी प्रकार दरिद्रतारूप सिद्धाञ्जन भी सब धर्मोंके दर्शनमें साधनरूप है। क्योंकि जैसे अपनी माता आदिमें किसीको काम-भावना नहीं होती, इसी प्रकार दरिद्री किसी स्त्रीमें काम-भावना नहीं करता, किन्तु क्षुधातुर दरिद्री केवल अन्नकी ही भावना करता है। जैसे विवेकी सबको आत्मारूप जानकर किसीपर क्रोध नहीं करता, इसी प्रकार दरिद्री भी राजा और धर्मराजके भयसे किसीपर क्रोध नहीं करता। इसी प्रकार निर्धन कोई पाप भी नहीं करता, क्योंकि वह विचारता है कि मैंने पूर्वजन्म-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में अत्यन्त पाप-कर्म किये थे, उन्हींके फलरूप दरिद्रता मुझे प्राप्त हुई है। दरिद्रताके कारण ही मेरी माता, पिता, स्त्री तथा पुत्र भी मेरा निरादर करते हैं। कोई मेरा आदर नहीं करता। इसलिये पूर्वके पाप-कर्मका फलरूप दरिद्रताका भली प्रकार अनुभव करते हुए भी यदि मैं फिर पाप-कर्म करूँगा तो जन्मान्तरमें मुझे फिर दरिद्रता प्राप्त होगी, इसलिये पाप-कर्म करना मुझे योग्य नहीं है। जैसे सर्पको मृत्युका कारणरूप जानकर कोई बुद्धिमान् उसके ऊपर होकर नहीं जाता, उसी प्रकार निर्धन मनुष्य अपने मनमें विचारकर पाप-कर्ममें प्रवृत्त नहीं होता। जब निर्धन मनुष्य किञ्चित् भी धर्मको नहीं जानता हुआ भी पापकर्म नहीं करता तो शास्त्रप्रमाणसे धर्मको जाननेवाला दरिद्री तो पापमें क्योंकर प्रवृत्त होगा ? दरिद्री मनुष्य राजा आदिके भयसे पर-द्रव्यकी तथा पर-स्त्रीकी इच्छा नहीं करता। क्षुधातुर दरिद्री थोड़े-से अन्नकी आप्तिसे ही प्रसन्न हो जाता है, इसलिये दरिद्रीमें लोभ भी नहीं होता। इसप्रकार धनके अभावसे कामादि दोषोंका अभावरूप व्यतिरेक देखनेमें आता है। धन होनेसे कामादि दोषकी प्राप्तिरूप अन्वय निम्नलिखित प्रकारसे देखनेमें आता है। धनके मदसे अन्धा धनी अपने बलसे राजाकी, गुरुकी तथा देवकी अवज्ञा करता है। इसलिये धनवालेको इस लोक और परलोकमें अनन्त दुःखकी प्राप्ति होती है। धनवान् जब पर-स्त्री आदि पदार्थोंमें मोहको प्राप्त होता है तब इस लोकमें उसकी कीर्तिका नाश होता है, सब लोग उसको धिक्कारते हैं और मरनेके बाद वह नरकमें दुःख भोगता है। जैसे प्रज्वलित अग्नि घीसे और काष्ठसे तृप्त नहीं होती, इसी प्रकार धनवान् धनकी प्राप्तिसे कभी तृप्त नहीं होता, वह अधिकाधिक पदार्थोंकी प्राप्तिकी सर्वदा इच्छा किया करता है। पूर्वके पुण्यके प्रभावसे यदि धनवान्को समुद्रपर्यन्त सारी पृथिवीका राज्य मिल जाय तो स्वर्गलोककी प्राप्तिकी इच्छा करता है। इसलिये धनवान्के लोभकी शान्ति नहीं होती। लोभसे धनवान् परस्त्रीका तथा परधनका हरण करता है, निन्दित कर्म करते हुए भी वह निर्लज्जके समान अन्य प्राणियोंकी हँसी करता है। इसलिये सब जीवोंकी अपेक्षा धनवान् अधम है। धनसे मोहको प्राप्त हुआ धनवान् अपने हिताहितको नहीं जानता। मोहके वश होकर धनवान् दुःखको ही प्राप्त होता है। धनसे मोहको प्राप्त हुआ पुरुष माता, पिता, पुत्र तथा वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको शरीरसे, मनसे और वाणीसे हनन करता है। इसप्रकार धनवान् काम-क्रोधादि सर्व दोषोंको प्राप्त होता है। धनसे रहित दरिद्रीको काम-क्रोधादि दोष प्राप्त नहीं होते, इसलिये दरिद्री सर्वदा आनन्दमें रहता है। 'यदि मैं किसी धनवान्से धनकी याचना करूँगा और वह मुझे अन्न भी नहीं देगा तो मेरी याचना व्यर्थ जायगी और मुझे पश्चात्ताप करना पड़ेगा, इसलिये मुझे धनवान्से याचना करनी योग्य नहीं है' इसप्रकार विचारकर निर्धन लोभसे रहित होता है। 'मेरी माता, पिता तथा अन्य बान्धव मेरे हितकारी हैं, इसलिये माता-पितादि जो-जो मुझे आज्ञा करें वह मुझे अवश्य माननी चाहिये' ऐसा विचारकर निर्धन मोहसे निवृत्त होता है। इससे सिद्ध होता है कि धनसे सर्व कामादि दोष उत्पन्न होते हैं। जब ब्रह्मवेत्ताको भी धनसे काम-क्रोधादि दोष प्राप्त होते हैं तो फिर बहिर्मुख अज्ञानी जीवोंका कहना ही क्या है ?

डोरूशङ्कर—हे देवी ! धन देखकर ब्रह्मवेत्ताके मनमें भी क्षोभ हो आता है और पतिव्रता भी निर्धन पतिसे प्रेम नहीं करती, ये दो बातें जनक राजाकी मुझे नहीं रुचतीं।

देवी—हे वत्स ! ब्रह्मवेत्ता दो प्रकारके होते हैं—एक परोक्ष ब्रह्मज्ञानी और दूसरे अपरोक्ष ज्ञानी। परोक्ष ज्ञानीके मनमें धनसे क्षोभ होना सम्भव है और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपरोक्ष ब्रह्मज्ञानीका मन तो पर्वतके समान अचल होता है, उसके मनमें क्षोभ होना सर्वथा असम्भव है। पतिव्रता भी उत्तम, मध्यम और अधम–तीन प्रकारकी होती हैं। मध्यम और अधम पतिव्रता निर्धन पतिसे प्रेम नहीं करती, उत्तम पतिव्रता तो पतिका कभी बाल बाँका होना भी नहीं चाहती।

उपर्युक्त विचार करके राजा जनकने सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मणको जाननेके लिये यह उपाय सोचा कि ब्राह्मणोंके समाजमें द्यूतके समान मैं बहुत-सा धन सर्व ब्राह्मणोंके सामने रक्खूँ। उन ब्राह्मणोंमेंसे जो अधिक विद्वान् होगा, जब वह धन लेकर जायगा तो सब ब्राह्मण क्रोधसे व्याकुल होकर परस्पर स्वयं ही विवाद करेंगे। यदि कोई शंका करे कि धनसे ब्राह्मणोंके मनमें क्षोभ करानेसे तो तुमको पाप लगेगा तो ऐसा नहीं है, क्योंकि नीतिपूर्वक धर्मका आचरण करनेसे राजाको पाप नहीं लगता, वह उलटा सुखका साधन होता है। धर्म करनेसे मुझे पाप नहीं लगेगा। भाव यह है कि ब्राह्मणोंके मनमें क्षोभ उत्पन्न करनेका कारण मैं नहीं हूँ, किन्तु उनके लोभादि दोष कारण हैं। इसलिये इस उपायसे सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मणके जाननेमें मुझे कुछ पाप नहीं लगेगा। कोई शङ्का करे कि सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मणको जानकर तुम उसको धन दोगे, यदि वह उस धनसे पापकर्म करेगा तो तुमको भी परम्परासे पापकी प्राप्ति होगी, तो ऐसा नहीं है। सर्वश्रेष्ठ आत्मदर्शी विद्वान् धनको लेकर पापकर्म नहीं करेगा, क्योंकि शम-दमादियुक्त ब्राह्मण ही सबसे श्रेष्ठ है। शम-दमादि गुणवालेमें काम-क्रोधादि दोषोंकी उत्पत्ति नहीं होती और काम-क्रोधादि बिना पापकर्ममें प्रवृत्ति नहीं होती। शम-दमादिवालेमें काम-क्रोधादि न होनेसे काम-क्रोधादिरहित शम-दमादि गुणवाला सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण पापकर्म किसी प्रकार भी नहीं करेगा।

देवी—हे वत्स! ऐसा विचारकर राजा जनक फिर अपनेमें विचार करने लगा—

(क्रमशः)

अन्तिम लालसा

झाकी देखिय अवधपुरीकी।
अन्तरिक्ष-नभमें जहँ व्यापी,
पावनि चरनधूरि सिय पीकी॥
मन्दिर-पाँति बढ़ावति सोभा,
हाट-बाट, प्रत्येक गलीकी।
कीजै लोचन तृप्त देखि छवि,
रघुनन्दन अरु जनक-ललीकी॥
सन्त अनेक पुरी सेवत यह,
जिनकी विषय-वासना फीकी।
ज्ञान-प्रकास पसारि लेत हरि,
छन महँ तमोवृत्ति जगतीकी॥
सेइय सदा सुखद सरयू सरि,
छटा लसत मन्दिर-अवलीकी।
तरल तरंग उठत सोहत जनु,
सीढ़ी-सी जनु मुक्ति-थलीकी॥
बसे प्रयाग, भ्रमे व्रज-मंडल,
गली लखी शिवके कासीकी।
अवधपुरीहीके सेवनसे,
जरनि मिटति है जनके जीकी॥
युगल नाम मुख रटत निरन्तर,
श्रवन सुनत लीला उनहीकी।
लखत युगल-छवि मुँदत नयन मन,
लगी सुरति श्रीअवधधनीकी॥
निकसै प्रान मातु सरयू-तट,
जौ पै है करनी कछु नीकी।
यहै एक लालसा रही अब,
सीताराम अवधवासीकी॥

अवधवासी सीताराम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भक्ति क्या है ?

(लेखक—परिव्राजक श्रीमद्ब्रह्मचारी गोपाल चैतन्यदेव)

भक्ति-लाभ करनेके पूर्व 'भक्ति क्या है ?' इसे विशेष रूपसे समझना होगा। शाण्डिल्य ऋषि कहते हैं—

सा परानुरक्तिरीश्वरे। (शाण्डिल्यसूत्र)

'परमेश्वरमें परम अनुरक्तिका ही नाम भक्ति है।' जिसके द्वारा श्रीभगवान्‌की कृपाकी प्राप्ति होती है और सारी वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं—उसे ही भक्ति कहते हैं। दूसरे शब्दोंमें भक्तिका अर्थ है—'भगवान्‌में परम प्रेम।' देवर्षि नारदजीने कहा है—

सा कस्मै परमप्रेमरूपा। (नारदसूत्र)

ज्ञान-कर्म, वासना-कामना, धर्माधर्म, धन-ऐश्वर्य, स्त्री-पुत्र, यहाँतक कि अपने आपको भी भूलकर भगवान्‌में जो ऐकान्तिक अनुरक्ति होती है उसीका नाम भक्ति है। भक्तप्रवर प्रह्लादजी भगवान्‌से कहते हैं—

या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु॥
(विष्णुपुराण)

'अविवेकी जनोंकी विषयोंमें जैसी प्रबल आसक्ति रहती है, हे भगवन्! तुमको स्मरण करते हुए मेरे हृदयकी भी वैसी ही आसक्ति दूर न हो।' तात्पर्य यह है कि फलकी लालसा छोड़कर, विचारशून्य होकर भगवान्‌में जो अनुरक्ति होती है, उसीको सच्ची भक्ति कहते हैं।

इसप्रकारकी भक्ति जिनको प्राप्त है वे ही सच्चे भक्त हैं। भक्त भगवान्‌के लिये अपने-आपको खो देते हैं। वे भक्ति-भावमें बेसुध होकर, केवल भगवान्‌को ही अपना समझकर संसारमें सर्वत्र उन्हें देखते हैं। जलमें—स्थलमें, चन्द्रमें—सूर्यमें, वनमें—गृहमें, नक्षत्रमें—बादलमें, सागरमें—गंगामें, गोदावरीमें—नर्मदामें, काशीमें—प्रयागमें, अग्निमें—वायुमें, अश्वत्थमें—वटमें, संसारके सभी पदार्थोंमें विश्व-व्यापीरूपमें उन्हें देखकर—उन्हींको आत्मसमर्पण कर—मन, बुद्धि, अहङ्कार आदि सारे तत्त्वोंको उनके ही श्रीश्रीचरण-कमलोंमें समर्पणकर भक्त कृतार्थ हो जाते हैं। वे भक्तिके कारण गद्गद होकर आकुलकण्ठसे भगवान्‌से कहते हैं कि 'हे प्रभु! तुम्हीं मेरे सर्वस्व हो, तुम्हीं स्वामी हो। मैं जप-तप, व्रत-नियम, पूजा-हवन कुछ भी नहीं जानता, तुम्हारे सिवा और कुछ भी मैं नहीं चाहता। तुम्हें प्राप्तकर मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा। हे प्राणाधिक! हे हृदयेश्वर! तुम मुझपर कृपा करो, मुझे अपने चरणकमलकी धूलि बना लो।'

भगवान् भी भक्तिके अधीन रहते हैं। भक्तके उपहारको वे जिसप्रकार प्रेमपूर्वक ग्रहण करते हैं वैसे और किसी वस्तुको भी नहीं स्वीकार करते। भक्ति-पूर्वक पुकारनेसे दर्शन दिये बिना उनसे नहीं रहा जाता। भक्तियुक्त पुकार सुनकर वे पीतलकी प्रतिमामें प्रकट होकर भोजन करते हैं, लोलक पहननेके लिये पत्थरकी प्रतिमाके नासिकामें भी छेद हो जाता है। शालग्रामकी शिला भी आभूषण पहननेके लिये हाथ निकालती है। भक्तिद्वारा जब ऐसी-ऐसी कितनी ही अनोखी बातें हो जाती हैं, तब संसारमें ऐसा कौन-सा काम है जो उसके द्वारा साध्य न हो? भक्तिके कारण ही भक्तचूडामणि प्रह्लादके लिये स्फटिक-स्तम्भको फाड़कर नृसिंहकी मूर्तिका आविर्भाव हुआ था। भगवान् भक्तके अधीन हैं, भक्तिद्वारा वे उसका खिलौना बन जाते हैं।

सारी इन्द्रियोंकी शक्तिके साथ मनका जो तद्गत

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भाव होता है, उसीको भक्ति कहते हैं। ऐसी दशामें भक्तिको इच्छाशक्तिकी ऐकान्तिकी स्वमुखी वृत्ति कहा जा सकता है। इच्छाशक्ति (Will-force) के ऐकान्तिक व्यवहारसे वे मूर्तिरूप ग्रहण करते हैं। जैसे समुद्रका जल बहुत अधिक सर्दीके कारण जमकर बर्फ बन जाता है—ठोसरूप धारण करता है, उसी प्रकार निराकार, निर्विकार, अनन्त, चिन्मय भगवान् भी भक्तकी ऐकान्तिक इच्छाशक्तिके बलसे चिद्घन मूर्ति धारणकर प्रकाशित होते हैं— जगन्मय, मनोमय मूर्ति धारणकर दर्शन देते हैं।

अगुन अरूप अलख अज जोई। भक्त प्रेमबस सगुन सो होई॥

जैसे दोर्दण्ड-प्रतापसे युक्त किसी मण्डलके न्यायाधीश न्यायालयमें चाहे कितने ही प्रतापशाली क्यों न हों, घरपर अपने बालकके अनुरोधसे विद्या, बुद्धि तथा शक्ति-सम्पन्न होते हुए भी उन्हें घोड़ा बननेके लिये बाध्य होना पड़ता है; उसी प्रकार ज्ञानमय तथा विराट् शक्तिमय भगवान्को भी अपने भक्तके आन्तरिक अनुरोधसे उसीका मनचाहारूप धारण करना पड़ता है। उपर्युक्त न्यायाधीशके साथ दूसरे मनुष्य बातचीत करते हुए भयभीत होते तथा सङ्कोच भी मानते हैं; परन्तु उनका वह नन्हा-सा बालक उनकी मूँछ पकड़कर जैसे उन्हें घोड़ा बननेके लिये बाध्य करता है, उसी प्रकार दूसरे लोग भगवान्के विश्वरूप तथा उनकी विराट् विभूतिको देखकर होश-हवास खो बैठते हैं; पर जिन भाग्यवान् पुरुषोंने भगवत्कृपासे उन्हें अपना समझ लिया है उन भक्तोंके लिये भगवान् उनकी इच्छाके अनुसार मूर्ति धारणकर दर्शन देते हैं। इस भक्ति-तत्त्वको यथार्थतः हृदयङ्गम करनेके लिये स्वयं भगवान्की कृपाके अतिरिक्त दूसरा और कोई उपाय नहीं है।

बहुतेरे सज्जन समझते हैं कि ज्ञान भक्तिका शत्रु है। हमारे देशमें बहुत दिनोंसे ज्ञान और भक्तिके विषयमें वाद-विवाद चल रहा है। ज्ञान बड़ा है या भक्ति बड़ी है—इस विषयको लेकर अनेकों तर्क-वितर्क हो रहे हैं। आजकल तो यहाँतक हो गया है कि ज्ञान-मार्गके साधकगण भक्ति-मार्गके साधकको देखकर उसे 'पाखण्डी' आदि उपाधियोंसे सम्बोधित करते हैं, तथा भक्ति-मार्गके साधक ज्ञान-मार्गके साधकको देखकर उसे 'अरसिक' कहकर उपेक्षा करते हैं। इनमेंसे कोई भी अपने इस आचरणके विषमय भावी-फलका विचार नहीं करते। हिंसा-द्वेषद्वारा मलिन चित्त होनेके कारण इस विषयपर विचार करनेको उन्हें छुट्टी ही नहीं मिलती। भक्तगण कहते हैं कि 'ज्ञानमें मीठापन है अवश्य, परन्तु वह मिश्रीके समान अत्यन्त शुष्क है। इसपर ज्ञानी उत्तर देते हैं कि 'भक्ति सुपेय अवश्य है, परन्तु वह दूधकी भाँति मीठेपनसे रहित है।' इन दोनोंमेंसे कोई भी यह नहीं समझता कि दूध और मिश्री ही कर्मके आवर्तनसे मिल जानेपर खूब गाढ़े अमृतकी भाँति अत्यन्त स्वादयुक्त शर्बत बन जाते हैं। ज्ञानी यह नहीं समझते कि दूधमें मिश्रीके पिघलकर अदृश्य हो जानेमें उसका अस्तित्व कभी नष्ट नहीं होता। उसी प्रकार भक्त भी यह नहीं समझते कि मिश्रीकी सहायतासे यद्यपि दूधका स्वाद दूसरे प्रकारका हो जायगा, तथापि वह दूसरा रूप धारण न कर जिस रूपमें था वैसा ही बना रहेगा, बल्कि साथ ही मिश्री उसके माधुर्यको और बढ़ा देगी। इसप्रकारके ज्ञानी और भक्त—दोनोंमें कोई भी नहीं समझते कि धर्मकी भित्ति ज्ञान और भक्ति दोनोंके शुभ सम्मिलनपर ही सुप्रतिष्ठित है। यह रहस्य जनसाधारणको ज्ञात नहीं; इसी कारण धर्मरूपी कल्पवृक्षमें सैकड़ों लताएँ और उपलताएँ लिपटकर उसे जीर्ण-शीर्ण शुष्क काष्ठके रूपमें परिणत कर रही हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ज्ञान कदापि भक्तिका विरोधी नहीं हो सकता। हाँ, व्यावहारिक (सांसारिक) ज्ञान तो भक्तिका विरोधी अवश्य होता है। ज्ञानके अतिरिक्त भक्तिके लिये उपयुक्त स्थान ही कहाँ है? चित्‌के अतिरिक्त अन्यत्र आनन्दका विकास कहाँ हो सकता है? मनमें जो संस्कार रहते हैं, उनका विकास विषय-ज्ञानके द्वारा इन्द्रिय-मार्गसे होता है। विकास होनेपर ज्ञानका उदय होता है, और ज्ञानके उत्पन्न होते ही भक्ति आ पहुँचती है। भक्ति-लाभ होनेपर फिर ज्ञानका कोई प्रयोजन नहीं रह जाता। फिर वह वैसा हो ही जाता है। शास्त्रोंमें भी इस बातका उल्लेख मिलता है—

ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्य ज्ञानं पश्चात्परित्यजेत्।
(उत्तरगीता)

ज्ञानके द्वारा ज्ञेय वस्तुका लाभ हो जानेपर फिर ज्ञानकी आवश्यकता ही क्या रहेगी? साधक जब ज्ञानके द्वारा उन्हें प्राप्त कर लेता है, या अनुभव कर लेता है, तब वह ज्ञानको दूर कर देता है, अथवा यों कहिये कि ज्ञान अपने आप दूर हो जाता है। ज्ञान और भक्ति दोनों मानों सोदर भाई-बहिन हैं। ज्ञानसे बिना पूछे यदि भक्ति कहीं जाय, तो ज्ञान अपनी उस छोटी बहिनको समझा-धमकाकर वहाँसे वापस ला सकता है। इसी कारण एक बार जिस पुरुषके हृदयमें भक्तिका विकास देखा जाता है, दूसरे समय उसीके हृदयमें दानवी वृत्तिरूपी पिशाचिनीका ताण्डव नृत्य भी देखनेमें आता है, भक्तिमयी रसीली वाणीके स्थानमें नास्तिकताकी कर्कश ध्वनि सुनायी पड़ने लगती है। परन्तु ज्ञान जहाँ एक बार भक्तिको किसी स्थानपर बैठा देता है, वहाँ उसे किसी प्रकारका सङ्कोच नहीं होता। साथ ही ज्ञान पुरुष है, अतः सभी जगह उसका जाना सम्भव नहीं है; परन्तु भक्ति बालिका है—सुतरां अन्तःपुरके सभी स्थानोंमें उसकी सहज गति है। जहाँ कुतर्कका व्यर्थ वितण्डावाद होता है, वहाँ भक्ति नहीं जाती। वह चाहती है शुद्ध, बुद्ध, सरल स्थान, वह विचार—वितर्क नहीं समझना चाहती। परन्तु ज्ञानके साथ जानेमें उसे कोई आपत्ति नहीं होती। वे दोनों भाई-बहिन एक साथ जिस स्थानपर जाते हैं, वह स्थान दैवी प्रकाशसे प्रकाशित हो उठता है। वहाँपर पारिजातकी सुगन्ध फैल जाती है, स्वर्गकी मन्दाकिनी स्वयं उलटी प्रवाहित होकर अपने सुधामयी प्रवाहसे उस स्थानको परिप्लावित कर देती है। तब फिर ज्ञान आड़में छिपकर स्नेहपूर्ण नेत्रोंसे अपनी बहिनको देखता है और वह बालिका भक्ति लज्जाशून्य हो, सङ्कोचरहित चित्तसे अकेली ही नाना प्रकारकी क्रीडा और आनन्द-लीलाएँ करती है। तब वही शुभ्रा, शीतला, पीयूषवर्षिणी, ज्योतिःस्वरूपा, आनन्दमयी, सरला बालिकारूपिणी भक्ति भक्तके हृदयासनपर मूर्तिमती अधिष्ठात्री देवीके रूपमें विराजकर उसके हृदयद्वारको खोल देती है। तत्क्षण जगत् आनन्दमय हो उठता है, हृत्क्षेत्रमें शान्तिकी शतशः प्रेमधाराएँ बहने लगती हैं। सब लोगोंको उस आनन्दमयीकी गोदमें खेलते देखकर भक्त कृतकृत्य हो जाता है।

अतएव भक्ति ज्ञान-पथमें बाधा डालनेवाली नहीं है। बल्कि इन दोनों भाई-बहिनमें अटूट प्रेम है—एक दूसरेको छोड़कर वे नहीं रह सकते। यदि तुम किसीको ज्ञानी समझते हो, तो अनुसन्धान करके देखनेपर ज्ञात होगा कि उसके पीछे भक्ति, लज्जा-विनम्र-वदना होकर हाथ पकड़े हुए खड़ी है। इसी प्रकार भक्तके हृदयका अनुसन्धान करनेपर भी यही देखनेमें आता है कि भक्तिको गोदमें बैठाये हुए वहाँ ज्ञान विराजमान है। किसी कारणसे जब भक्ति सङ्कुचित होती है तब ज्ञान उसके सामने आकर खड़ा हो जाता है। प्रेमकी मूर्तिमत

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रतिमाएँ सरलहृदया गोपबालिकाएँ भक्तिसे उन्मादिनी-सी होकर जब श्रीकृष्णकी वंशीकी सुमधुर ध्वनिसे आकृष्ट हो परवश होते हुए भी शारदी पूर्णिमाकी शुभ्र ज्योत्स्नामें दौड़कर उनके श्रीश्रीचरणकमलोंमें पहुँची थीं, उस समय श्रीश्रीभगवान् कृष्णने उन ज्ञानशून्य गोपबालाओंको नाना प्रकारसे समझा-बुझाकर भक्तिके उद्भ्रान्त उच्छ्वासको रोकनेके लिये प्रयत्न किया था। परन्तु उन हृस्व-दीर्घ-ज्ञान-शून्या गोप-बालाओंने जब महान् सुन्दर अनुभव-ज्ञानका परिचय दिया तब श्रीभगवान्को निरुत्तर होना पड़ा। उनका वह अपूर्व ज्ञान श्रीमद्भागवतके पृष्ठोंमें अङ्कित होकर आज भी हजारों भक्त नर-नारियोंके चित्तको दिव्या-नन्दसे पूरित कर रहा है। इसी कारण हम यह कहते हैं कि भक्ति और ज्ञानमें एकके आधिक्यको देखकर दूसरेके अस्तित्वको अस्वीकार करनेसे काम नहीं चल सकता। इनमेंसे एकके विद्यमान रहनेसे दूसरेकी विद्यमानताको अस्वीकार करना कभी सम्भव नहीं, क्योंकि दोनों ही परस्पर एक अच्छेद्य सम्बन्धसे संयुक्त हैं; सुतरां, ज्ञान भक्तिका विरोधी नहीं है, बल्कि ज्ञान ही भक्तिको साथ लेकर आ पहुँचता है। परन्तु एक बार जब हृदयमें भक्तिका उदय होकर वह सारे हृदयपर अपना प्रभाव फैला-कर विराजमान हो जाती है तब फिर ज्ञानकी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। जिस मनुष्यने आमके रसका आस्वादन कर लिया है उसके लिये आमकी मधुरताको जाननेके लिये किसी प्रयोगशालाके रासायनिक विश्लेषणकी आवश्यकता नहीं पड़ती। ज्ञान स्वयं चाहे जहाँ जाय, परन्तु वह अपनी छोटी बहिन—भक्तिको कहीं अकेली क्यों जाने देगा ? इसी कारण भक्तिके कहीं अकेली जानेपर ज्ञान तत्काल ही उसे धमकाकर लौटा लाता है। तात्पर्य यह है कि भक्ति बिना ज्ञानके कहीं भी नहीं जा सकती। अतः ज्ञान भक्तिका विरोधी नहीं, बल्कि वह भक्तिका प्रतिष्ठापक है। परन्तु भक्तिकी प्रतिष्ठा होनेपर जब ज्ञानकी आवश्यकता नहीं रहती तब भक्ति अकेले ही नाच-कूदकर, हँस-खेलकर आनन्दसे क्रीडा करती है।

ज्ञानका अर्थ है ईश्वरकी सत्ता और महत्तापर पूर्ण विश्वास होना। अनेकों पुस्तकोंके पढ़ने तथा अनेकों बातोंके जाननेको ज्ञान नहीं कह सकते। संशयरहित होकर भगवान्के अस्तित्वपर विश्वास करनेको ही ज्ञान कहते हैं। दूसरे शब्दोंमें कह सकते हैं कि साधनाके द्वारा ईश्वरीय सत्ताको उपलब्ध करनेका नाम ही ज्ञान है। मनमें संशय रहनेपर हृदयमें भक्तिका भाव कैसे टिक सकता है ? सुतरां, ज्ञानके बिना भक्ति आ ही नहीं सकती—यह बात निश्चयरूपसे प्रमाणित हो गयी। जब कर्मके द्वारा चित्तके शुद्ध होनेपर ज्ञानके द्वारा आत्म—परमात्म-ज्ञान लाभ होता है, तभी भक्तिका उदय होता है तथा ऐसे ही पुरुषके हृदयमें भक्ति अपना आसन दृढ़तापूर्वक जमा लेती है।

केवल इस भक्तिसे ही भगवान्की प्राप्ति हो सकती है। बेचारे जीवमें इतनी शक्ति कहाँ, कि जिसके द्वारा वह अनन्त शक्तिमय भगवान्को अपने अधीन कर सके ? जीवको इतना ज्ञान कहाँ, कि जिसके द्वारा वह खद्योत होते हुए भी अनन्त प्रकाश-मान सूर्यको प्रकाशित कर सके ? सुतरां, जीवके लिये भक्तिके अतिरिक्त दूसरा उपाय ही नहीं है। भगवान् अपने श्रीमुखसे ही भक्ति और भक्तोंकी श्रेष्ठताको दिखलाते हुए कहते हैं—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥
(गीता ९। ३०-३१)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'हे अर्जुन ! अति दुराचारी व्यक्ति भी यदि अनन्यचेता होकर भजन करता रहे तो उसे भी साधु मानना चाहिये, क्योंकि उसने सम्यक्‌रूपसे ज्ञान लाभ किया है। जो व्यक्ति इसप्रकारसे मेरा भजन करता है, वह शीघ्र ही धर्मात्मा बन जाता है एवं नित्य शान्ति लाभ करता है। हे कौन्तेय ! तुम इसे जान लो कि मेरे भक्तका कभी नाश नहीं होता।'

भक्त सर्वसद्गुणसम्पन्न होता है। उसके स्वरूपके विषयमें भगवान् कहते हैं—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी॥
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥
अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥
यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः॥
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥
ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः॥

(गी० १२। १३-२०)

'जो भक्त द्वेषरहित, सब भूतोंका मित्र, कृपालु, ममतारहित, अहङ्कारसे शून्य, सुख-दुःखमें एक-सा रहनेवाला, क्षमावान्, सतत प्रसन्न चित्त, अप्रमत्त, जितेन्द्रिय और दृढनिश्चय होकर मुझे ही मन तथा बुद्धि समर्पण किये हुए है, वही मुझे प्रिय है। दूसरे लोग जिसके द्वारा उद्विग्न नहीं होते तथा दूसरे लोगोंके द्वारा जो उद्विग्न नहीं होता, एवं जो हर्ष, विषाद, भय और उद्वेगसे रहित है, वही भक्त मुझे प्रिय है। जो निःस्पृह, शुचि, दक्ष, पक्षपातरहित, मनःपीड़ासे रहित तथा सब प्रकारके सकाम कर्मोंका त्याग कर चुके हैं, वे ही भक्त मुझे प्रिय हैं। जो शोक, हर्ष, द्वेष, आकांक्षा और शुभाशुभका परित्याग कर चुके हैं, वे ही भक्त मुझे प्रिय हैं। जो सब प्रकारकी आसक्तिका परित्याग कर शत्रु-मित्र, मान-अपमान, शीत-उष्ण, सुख-दुःख, निन्दा-प्रशंसा, सभी प्रकारके द्वन्द्वोंको एक ही समान समझते हैं, तथा जो मौनी हैं, यथालाभसे ही सन्तुष्ट हो जाते हैं, जो किसी भी स्थानपर सदाके लिये वास नहीं करते हैं, जिनकी मति स्थिर हो गयी है, वे ही भक्त मुझे प्रिय हैं। जो मुझपर लक्ष्य रखकर परम श्रद्धाके साथ उपर्युक्त धर्मरूप अमृतका पान करते हैं, वे भक्त मुझे परम प्रिय होते हैं।'

अब विचारवान् पाठक समझ गये होंगे कि भक्त बननेके लिये किन-किन गुणोंसे भूषित होनेकी आवश्यकता है। केवल बाह्य आडम्बरसे ही कोई भक्त नहीं बन सकता; भक्त बननेके लिये तो उपर्युक्त सारे गुणोंसे युक्त होना पड़ेगा। भगवान् श्रीमुखसे कहते हैं—

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते॥
तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥

(गी० १२। ६, ७)

'जो पुरुष मुझमें सारे कर्मोंको समर्पणकर मत्परायण हो अनन्य पराभक्तिद्वारा मेरा ही ध्यान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और उपासना करते हैं, मैं उनको बहुत शीघ्र मृत्यु-रूपी संसार-सागरसे उद्धार कर देता हूँ।'

अतएव भक्ति ही भगवत्-आराधनाकी प्राण-स्वरूप है। भक्तिसे रहित पुरुषके जप, तप, उपासना आदि सभी अनुष्ठान वन्ध्यासे सन्तान उत्पन्न करनेकी चेष्टाके समान निष्फल हैं। यथार्थ साधक भक्तिके अतिरिक्त दूसरी किसी भी वस्तुकी आकांक्षा नहीं करते। भक्ति-के द्वारा भक्त जिस अवस्थाको प्राप्त होता है, उसका शब्दोंमें वर्णन नहीं किया जा सकता।

भक्तिके साधनसे धीरे-धीरे प्रेमाभक्तिका उदय होता है। तब भक्त शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा कान्ता आदि प्रेमके उच्चोच्च स्तरमें पहुँचकर माधुरी लीलामें वेसुध हो जाता है। उस समय साधकको संसारमें सर्वत्र ही भगवान्‌के दर्शन होते हैं, तब वे समझ जाते हैं कि—

विस्तारः सर्वभूतस्य विष्णोर्विश्वमिदं जगत्।
द्रष्टव्यमात्मवत् तस्मादभेदेन विचक्षणैः॥
(विष्णुपुराण)

'सब भूतोंका यह अखिल जगत् विष्णुका विस्तार-मात्र है। इसलिये विचक्षण—ज्ञानी पुरुष सबको अपने साथ आत्मवत् अभेदरूपसे देखते हैं।' परन्तु जबतक भेद-ज्ञान विद्यमान रहता है, तबतक कभी भी वे भक्तिके अधिकारी नहीं बन सकते। पुराणोंमें जो हर-गौरीकी मूर्ति प्रकट की गयी है, वह ज्ञान और भक्तिका एक उज्ज्वल प्रत्यक्ष दृष्टान्त है। महादेव ज्ञानकी मूर्ति हैं और गौरी प्रेममयी मूर्ति हैं। अतः महादेवके त्यागकी शुष्कता गौरीके प्रेमके माधुर्य-द्वारा उज्ज्वल हो उठती है। प्रकाश यदि फानूसके द्वारा ढँका न जाय तो वह कुछ रूखा और अनुज्ज्वल मालूम होता है, परन्तु फानूससे ढँकनेपर वही प्रकाश स्निग्ध और उज्ज्वल आलोक निकालता है। ठीक उसी प्रकार ज्ञान जब प्रेमके फानूसद्वारा आच्छादित होता है तब वह स्निग्ध और मधुरोज्ज्वल ज्योतिको प्रसारित कर साधकको परितृप्त कर देता है।

भक्तियोगकी साधनाके द्वारा सिद्धि प्राप्त करनेपर भक्तिके—प्रेमके बलसे जगत्‌रूपी जगन्नाथको भक्त अपने साथ भगवान्‌में लय करके कृतार्थ हो जाते हैं।

उद्वेग

यह विह्वलता, और विकलता, आह! उष्ण आँसूकी धार।
यह वियोग-दुख, मिलन-मोद वह, उनका वह प्रिय मधुर दुलार॥
वह मुसकान अमिय रस भीनी, यह भयकारक कोप कराल।
यह गाम्भीर्य और चंचलता, तृष्णा तृतीका जंजाल॥
मिश्रण सब विपरीत भावका, वह उन्माद और वह भेव।
इस नन्हे-से कोमल हियमें, कहाँ छिपा रक्खूँ मैं देव?॥

—महात्मा जय गौरीशङ्कर सीताराम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नराकार ईश्वर, अद्वैतवाद और भक्तिवाद

(लेखक—ठाकुर श्रीगजराजसिंहजी, एम० ए०, एल-एल० बी०)

(पूर्वप्रकाशितसे आगे)

अद्वैतवाद स्वीकार करनेके बाद भक्ति-ज्ञान-सम्बन्धी किसी भी प्रकारके वाद-विवादकी आवश्यकता नहीं रह जाती, क्योंकि श्रीमद्भागवतके—

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं च यदहैतुकम् ॥

इस श्लोकमें स्पष्ट और शीघ्र ही भक्तिसे ज्ञानकी उत्पत्ति बतलायी गयी है ।

किन्तु इस अटल सिद्धान्तकी उपेक्षा कर भक्ति और ज्ञानके पक्षपाती सज्जनगण अपने-अपने मतको सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करनेका प्रयास किया करते हैं । ज्ञानके पक्षपाती सज्जन सर्वश्रेष्ठ साधन (भक्ति) की श्रेष्ठताका अनुभव नहीं करते । कभी-कभी तो माता (भक्ति) से बिल्कुल नाता तोड़ उसका अनादर किया करते हैं, इसी प्रकार भक्तिके पक्षपाती भक्तिको साधन और साध्य मान ज्ञानकी न्यूनता दिखलाते हैं । इसप्रकार माँ-बेटेकी कलह देखी जाती है, क्योंकि कलियुग कलहयुग ही है ।

प्रायः यह भी कहा जाता है (यह कथन कुछ अंशमें ठीक भी है) कि बिना किसी वस्तुका ज्ञान हुए उसमें प्रतीति और प्रीति नहीं हुआ करती । इसलिये ज्ञानसे भक्ति, न कि भक्तिसे ज्ञानकी उत्पत्ति होती है । किन्तु अभेद-दृष्टिसे देखनेपर यह सब मत-भेद और कलह भेद-बुद्धिमें हुआ करता है, अभेद-बुद्धिमें नहीं । इसलिये अभेद-बुद्धिकी शरण ले, अब हम माँ-बेटेकी कलह मिटानेके लिये भक्तिका पूर्ण सम्मान करते हुए अर्थात् उसे साधन और साध्यरूपा मानते और उसका गौरव बढ़ाते हुए, अद्वैतवादकी कृतज्ञता, उदारता और महत्ता भी दिखलाते हैं ।

पुराणोंमें प्रेम-लक्षणा भक्तिका महत्त्व और साधन-साध्य-विचार । गोसाईं तुलसीदास और अद्वैतवाद ।

उक्त पक्षपात केवल साधन-साध्य-विषयक मतभेदमें है । किन्तु इस मत-भेदसे अधिक भेद नहीं पड़ता, क्योंकि हम पहले बतला ही चुके हैं कि जनसाधारणको भक्तिकी ही शरण लेनी चाहिये । तो भी मत-भेद और कलह दूरकर सिद्धान्त-निर्णयके लिये इस विषयमें लिखना आवश्यक भी है । अस्तु ।

(अ) शास्त्रोंमें कहीं-कहीं साधनपर साध्यके समान या उससे भी अधिक ज़ोर दिया गया है । उदाहरणार्थ, घी-को आयु ही कह दिया है (आयुर्वै घृतम्); पर घी आयु-वर्धक ही बना रहता है, आयु नहीं हो जाता । इसी प्रकार 'एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोङ्कारः'—इस श्रुतिमें ओंकारको पर और अपर ब्रह्म ही कह दिया है, क्योंकि प्रणव अपरब्रह्मकी प्राप्तिद्वारा परब्रह्मतक पहुँचा देने (आत्मा-नुभव करा देने) का साधन है ।

पुराणोंमें तो साधनपर साध्यसे भी अधिक जोर दिया गया है । 'नाहं वसामि वैकुण्ठे' इत्यादि प्रसिद्ध वाक्यमें भगवान्‌का कथन है कि 'हे नारद ! न मैं वैकुण्ठमें वास करता और न योगियोंके हृदयमें, किन्तु भक्त जहाँ मेरा गान करते हैं (जहाँ हरिकीर्तन या नामकीर्तन होता है) वहाँ मैं उपस्थित रहता हूँ ।' उक्त भगवद्वाक्यका आशय यह नहीं है कि भगवान् वैकुण्ठ और योगियोंके हृदयमें बसते ही नहीं । यदि यही आशय लिया जाय तब तो वैकुण्ठ और योगियोंके हृदयमें अनुपस्थित रहनेसे सर्वव्यापकता नष्ट हो भगवान्‌की ही असिद्धि हो जाती है । फिर भक्तिकी प्रधानता कहाँ ?

पर कीर्तन भी तो वैकुण्ठ-प्राप्तिका साधन है । अजामिलकी कथा प्रसिद्ध ही है । इसलिये उक्त असिद्धिसे बचनेके लिये यही आशय लेना चाहिये कि 'कीर्तनरूपी साधनमें लोगोंकी रुचि बढ़ानेके लिये, न कि अन्य साधनों-की निन्दा कर साम्प्रदायिक विग्रह मचानेके लिये (प्रेम-प्रकाशाय न विग्रहाय) भगवान्‌ने कीर्तनकी प्रशंसा वैकुण्ठ और योगसे भी अधिक कर डाली ।'

कीर्तनपर ऐसा ज़ोर देनेका कारण यह है कि कलियुग-में यही सरल साधन है । पुराणोंमें कलियुगी लोगोंकी आयु और अधिकारका ध्यान हमेशा रक्खा गया है । यदि यह बात हमेशा ध्यानमें रहे तो साधन-साध्य-सम्बन्धी भ्रम या मत-भेद कभी न हो । उदाहरणार्थ, श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धके प्रथम अध्यायमें शौनकादि ऋषि सूतजीसे कहते हैं—

प्रायेणाल्पायुषः सभ्य कलावस्मिन्युगे जनाः ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रकरणमें ऋषियोंका आशय यही है कि कलिकालमें ज्ञानके अधिकारीका मिलना दुर्लभ होगा। 'सर्ववेदान्त-सिद्धान्त-सार-संग्रह' में ज्ञानके अधिकारीका लक्षण बतलाते हुए स्वामी शंकराचार्य लिखते हैं—

साधनचतुष्टयसम्पत्तिर्यस्यास्ति धीमतः पुंसः।
तस्यैवैतत्फलसिद्धिर्नान्यस्य किञ्चिदूनस्य॥

—श्लोकमें 'किञ्चिदूनस्य' का आशय यही है कि यदि चारों साधनों (विवेक, वैराग्य, शम, दम, तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा, समाधान और मुमुक्षुत्व) मेंसे किसी एककी भी कुछ कमी हो तो अभेदज्ञान नहीं होगा। कलिकालमें ऐसा पुरुष मिलना दुर्लभ है। दुर्लभ क्यों न होगा जब कि स्वयं भगवान्‌के प्रिय सखा अर्जुन संन्यासयोगके अधिकारी नहीं माने गये।

इसलिये कलियुगके अधिकारको लक्ष्यमें रख शौनकादि ऋषि भगवान् वासुदेवके चरित्रोंको सुननेकी अभिलाषा करते हैं और फलस्वरूप भागवतपुराणका उदय होता है। यदि प्रेमलक्षणा भक्ति या उसके साधनोंपर पुराणोंमें ऐसा ज़ोर न दिया जाता तो अधिकांशमें कलियुगी अनधिकारी लोग भक्तिमार्गको त्याग ज्ञानमार्गके यात्री बन बैठते। परिणाम यह होता कि देहाभिमानकी वृद्धिद्वारा [अनधिकारीके लिये ज्ञानमार्गकी अहंग्रहोपासना (अहं ब्रह्मास्मि) अहंकारोपासना बन जाती है।] उभयमार्ग-भ्रष्ट हो दुर्गति-धाममें पहुँचते। अतः भक्तिमार्गपर ज़ोर देनेवाले पुराण हमारे बड़े ही शुभचिन्तक रहे। सम्भव है, इसी दृष्टिसे भक्तिके आचार्य भी रहे हों। कम-से-कम तुलसीदास तो अवश्य रहे, जैसा कि आगे विदित होगा। अतएव यह सिद्ध हो गया कि कलियुगके ज्ञानके अधिकारको लक्ष्यकर कीर्तनरूपी सरल साधनकी प्रशंसा साध्यसे भी अधिक की गयी है। पर इस प्रशंसासे वैकुण्ठ, योग या श्रवण, स्मरण, पादसेवन इत्यादि भक्तिके अन्य साधनोंकी निन्दा नहीं समझनी चाहिये, नहीं तो भक्ति और भगवान्‌की ही असिद्धि हो जायगी।

भक्तिरूपी साधनकी सर्वश्रेष्ठता देखते हुए कीर्तनपर ऐसा ज़ोर देना सिद्धान्तपक्षमें भी आवश्यक था, क्योंकि कालान्तरमें अभ्यासकी वृद्धि होनेपर भगवान् साधकको ऐसा बुद्धियोग दे देते हैं जिससे वह तत्त्वज्ञान लाभकर शुद्ध स्वरूपको पा लेता है (उसे आत्मज्ञान हो जाता है), क्योंकि गीताकी प्रतिज्ञा ही है कि—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

इसी बुद्धियोगको लक्ष्यमें रख आगे भगवान् अर्जुनसे दृढ़तापूर्वक कहते हैं—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

'हे अर्जुन! मुझमें मन लगा, मेरा भक्त हो, मेरी पूजा कर, मुझे नमस्कार कर। ऐसा करनेसे तू मुझे ही (मेरे शुद्ध स्वरूपको) प्राप्त होगा। मैं सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ, क्योंकि तू मुझे प्रिय है।' वास्तवमें श्रीकृष्णरूपमें भगवान् अर्जुनको प्राप्त ही थे। इसलिये 'मामेवैष्यसि' का प्रयोग कर भगवान्‌ने यह बतलाया है कि प्रेमलक्षणा भक्तिसे 'ददामि बुद्धियोगम्' इत्यादि वचनानुसार तू तत्त्वज्ञान लाभकर मेरे शुद्ध स्वरूपको पा जायगा। 'सत्यं ते प्रतिजाने' इत्यादि शब्दोंमें भगवान्‌ने यह संकेत किया है कि 'हे अर्जुन! यह सत्यमार्ग है। मैं तुझे धोखा नहीं दे रहा हूँ, क्योंकि तू मुझे प्रिय है। तू मुझपर विश्वास कर।'

इसप्रकार कीर्तनरूपी साधनसे कालान्तरमें भक्तिकी वृद्धि हो जानेपर भगवान्‌से दिया हुआ बुद्धियोग (ज्ञानयोग) उपलब्ध होता है। यही भगवत्कृपा है, गुरुकृपा भी यही है, क्योंकि भगवान् गुरु भी हैं (आचार्यं मां विजानीयात्)। इसी कृपाको प्राप्त करनेके लिये अधिकारी शिष्य सद्गुरुके पास जा तत्त्वज्ञानका लाभ करता था—

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेदिति श्रुतिः।

किन्तु यदि अधिकारी गुरु और शिष्य न मिलें तो वैसी ही दशा होती है जैसी मुण्डकोपनिषद्‌की निम्नलिखित श्रुति कथन कर रही है—

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः
स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा
अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥
(१।२।८)

'अविद्याके अन्दर रहकर भी जो अपनेको धीर और पण्डित मान ब्रह्मज्ञानी बन बैठते हैं वे मूढ़ ठोकरें खाते हुए चक्कर लगाते हैं। अन्धों (अनधिकारी शिष्यों) को राह बतलानेवाले अन्धों (अनधिकारी गुरुओं) के समान (दोनों दुर्गतिधाममें पहुँचते हैं)।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इसी आशयको व्यक्त करनेके लिये पद्मोत्तरखण्डमें भक्तिरूपिणी माताके 'ज्ञान' और 'वैराग्य' नामक दो पुत्र बतलाये गये हैं (जैसा कि पूर्वकथित 'जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं च यदहैतुकम्'—भागवत-वचनोंमें भी कहा गया है), जो इतने दुर्बल हैं कि माता हमेशा दुखी रहा करती है। भाव यह है कि भक्ति बिना ज्ञान और वैराग्यकी उत्पत्ति नहीं होती। यदि हुई भी तो पुत्रोंकी दुर्बलता रहेगी जिससे माता सदा दुखी रहा करेगी, क्योंकि ऐसे पुत्र माताका निरादर भी करते रहेंगे। माता कुपूतोंका भी निरादर नहीं करती, केवल दुखी ही रहा करती है। शिक्षा यह मिली कि ज्ञानके पक्षपाती सज्जनोंको माता (भक्ति) का सदा आदर करना चाहिये और भक्तिके पक्षपातियोंको अद्वैतवादसे सदा प्रेम करना चाहिये। सारांश, आपसमें झगड़ा कभी नहीं करना चाहिये। अस्तु।

पुराणोंमें भक्तिको साध्य भी माना है। सो भी ठीक है। क्योंकि उपनिषद् और पुराणोंमें साधनपर साध्यके समान या उससे भी अधिक ज़ोर दिया जाना सिद्ध हो चुका है। इसके सिवा यदि भगवान् साध्य हैं तो भक्ति भी साध्य है, क्योंकि भक्ति भगवान्‌की है और भगवान् भक्तिके हैं (हम भक्तनके भक्त हमारे)। इसलिये भी भक्तिको साधन और साध्य मान लेनेमें कोई आपत्ति नहीं ('जो निर्विशेष सत्तामात्र स्फूर्ति होती है, जैसे सूर्यकी धूप, उसको ज्ञानकाण्डमें 'ब्रह्म' कहते हैं। जो मायासाक्षी, सर्वान्तर्यामीरूपसे स्फूर्ति होती है उसे योगमार्गादिमें 'परमात्मा' कहते हैं। जो सर्वरसमय षडैश्वर्यसम्पन्न दिव्य मङ्गल विग्रहरूपसे स्फूर्ति होती है उसे भक्तिपथमें 'भगवान्' कहते हैं')। इसके सिवा स्वयं भगवान्‌ने लोककल्याणार्थ भक्तिको साध्य माना है। भगवान्‌का कथन है कि 'हे पार्थ! तीनों लोकों-में मेरा कोई भी कर्त्तव्य नहीं है'—

न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।

तो भी भगवान्‌का एक स्वरूप दूसरे स्वरूपकी भक्ति करता है—राम या कृष्ण शङ्करकी या शङ्कर राम या कृष्णकी। वास्तवमें शङ्कर, राम और कृष्णको चारों मुक्तियोंमेंसे किसीकी भी कामना और आवश्यकता नहीं है। तो भी वे लोककल्याणार्थ भक्तिको साध्य मान रहे हैं, क्योंकि 'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।' न केवल भगवान् ही लोककल्याणार्थ भक्ति करते हैं, किन्तु आत्माराम ज्ञान-विज्ञान-विशारद ऋषियोंने भी भगवान्‌का अनुकरण किया है, क्योंकि 'परोपकाराय सतां विभूतयः।' अतः अपने मुक्तिजनित परमानन्दको त्याग ('मुक्ति निरादरि भक्ति लुभाने' के अनुसार) वे भी अहैतुकी भक्ति करते हैं। यथा—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः॥
(श्रीमद्भा० १।७।१०)

वास्तवमें वे मुक्तिका निरादर इसलिये नहीं करते कि परमानन्द न्यूनानन्द है। यदि ऐसा होता तो उस अवस्थामें जाते ही क्यों?

न केवल ऋषियोंने, किन्तु भगवान्‌के सिद्ध भक्तोंने भी भगवान्‌का अनुकरण कर तुलसीदासजीके निम्नलिखित वाक्योंको सत्य कर दिखाया है—

अर्थ न धर्म न कामरुचि गति न चहौं निर्बान।
जनम जनम रति रामपद यह बरदान न आन॥

वास्तवमें जब भगवच्चरणोंमें इतना ऊँचा प्रेम हो गया तब आवागमनका चक्कर ही क्यों?

सारांश, इन्हीं सब कारणोंसे पुराणोंमें साधन और साध्यरूपिणी भक्ति-माताका गौरव बढ़ा हुआ है। माताके इस बढ़े हुए गौरवसे अद्वैतवादकी प्रसन्नता, नम्रता, कृतज्ञता, उदारता और महत्ताका भी परिचय मिल जाता है। परिचय मिलनेके बाद भी साधन साधन ही बना रहता है, साध्य नहीं हो जाता। वेदोंका उपासनाकाण्ड ज्ञानकाण्डके पहले ही रहता है, आगे नहीं हो जाता।

(ब) अब हम संक्षेपसे यह बतलानेका प्रयत्न करते हैं कि अभीतक जो कहा जा चुका है उसकी पुष्टि कलिकालके वैष्णवशिरोमणि तुलसीदासजीने भी की है, जिनके ग्रन्थोंकी सहायतासे भक्तिके पक्षपाती सज्जनगण अटल सिद्धान्तमें उथल-पुथल किया करते हैं। इसी सम्बन्धमें यह भी बतलावेंगे कि पुराणोंमें भक्तिसे ज्ञान, न कि ज्ञानसे भक्तिकी उत्पत्ति क्यों बतलायी गयी जब कि किसी भी पदार्थको जाने बिना उसमें प्रतीति और प्रीति नहीं हुआ करती?

गोसाईंजीके विषयमें प्रथम तो यही विचार करनेकी आवश्यकता है कि वे अद्वैत-सिद्धान्तको कैसे अस्वीकार कर सकते थे जब कि उन्हें श्रीरामजीसे मिलानेवाले हनूमान्‌जीका शिवसंहितान्तर्गत प्रसिद्ध वाक्य विद्यमान है, जिसका आशय है कि 'हे राम! देहबुद्धिसे मैं आपका दास हूँ,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जीवबुद्धिसे अंश हूँ, पर आत्मबुद्धिसे आप ही हूँ। ऐसी मेरी निश्चल मति है।' आत्मबुद्धिके इसी आशयको लक्ष्य बना स्वामी शङ्कराचार्यने भी 'आत्मबोध' में यह कहा है—

तीर्त्वा मोहार्णवं हत्वा कामक्रोधादिराक्षसान्।
शान्तिसीतासमायुक्त आत्मा रामो विराजते॥

'मोहरूपी समुद्रको पारकर, काम-क्रोधादि राक्षसोंका नाश कर आत्माराम शान्तिरूपिणी सीतासहित विराजमान होता है।'

इसके सिवा गोसाईंजीकृत 'रामचरितमानस' 'अध्यात्म-रामायण' का (जो अद्वैतवादसे परिपूर्ण है) अधिकांशमें ऋणी भी है। ऐसी स्थितिमें गोसाईंजी अद्वैतवादका पूर्ण मान करते हुए अधिकारभेदसे सेवक-सेव्यभाव या विशिष्टाद्वैतनामक भक्तिमार्गपर जोर क्यों न देंगे? वे रामके अनन्यभक्त अवश्य थे, किन्तु किसी सम्प्रदायविशेषके अनन्य दास भी न थे। उनकी विशेषता और अनन्यतामें उदारताका परिचय इसीसे मिलता है कि हनुमद्वचनानुसार वे भी उत्तम अधिकारीके लिये अद्वैतवादका समर्थन करते हुए लिखते हैं—

(१) ग्यान-भवन तनु दियेहु नाथ, सोउ पाय न मैं प्रभु जाना।
(विनय-पत्रिका)

(२) जनक, जननि, गुरु, बंधु, सुहृद, पति, सब प्रकार हितकारी।
द्वैतरूप तम-कूप परौं नहिं, अस कछु जतन बिचारी॥
(विनय-पत्रिका)

(३) सोऽहमस्मि इति बृत्ति अखंडा। दीप-सिखा सोइ परम प्रचंडा॥
(रामायण)

(४) अति दुर्लभ कैवल्य परमपद। सन्त, पुराण, निगम-आगम बद॥
राम-भजन सोइ मुक्ति गुसाईं। अनइच्छित आवति बरिआईं॥
(रामायण)

(५) सपने होइ भिखारि नृप, रंक नाकपति होइ।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोइ॥
(रामायण)

उक्त पदोंमें फलसहित सम्पूर्ण अद्वैतवाद आ जाता है और भक्तिरूपी साधनकी श्रेष्ठता भी प्रकाशित हो जाती है। अब देखिये, 'प्रेमप्रकाशाय न विग्रहाय' गोसाईंजी हनुमद्वचनानुसार अधिकारभेदसे विशिष्टाद्वैतनामक भक्तिमार्गपर जोर देते हुए लिखते हैं—

(६) जाने बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती।
प्रीति बिना नहिं भक्ति दृढ़ाई। ... ...॥
(रामायण)

(७) सेवक-सेव्य-भाव बिनु भव न तरिय उरगारि।
भजहु रामपदपंकज, अस सिद्धान्त बिचारि॥
(रामायण)

(८) अर्थ न धर्म न कामरुचि, गति न चहौं निर्बान।
जनम जनम रति रामपद, यह बरदान, न आन॥
(रामायण)

कृपाकर पाठक विचार करें कि पहले और दूसरे पदमें गोसाईंजी अद्वैतज्ञान या कैवल्य-मुक्तिकी अभिलाषा करते हैं, किन्तु आठवें दोहेमें लोककल्याणार्थ तथा पूर्वकथित अन्यान्य कारणोंसे अनिच्छा भी प्रकट कर रहे हैं। चौथी चौपाईमें—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

—इस गीता-वाक्यका आश्रय ले भजनकी महिमा बतला रहे हैं अर्थात् भक्तिरूपी साधनकी श्रेष्ठता व्यक्त कर रहे हैं।

बुद्धिमान् पाठक सातवें दोहेमें हनुमद्वाक्यका समर्थन भी पायेंगे, जो कथन कर रहा है कि 'देहबुद्धिसे मैं आपका दास हूँ।'

अन्तमें पाठक पहले विनयपद और छठी चौपाईमें आनेवाले 'जाना' और 'जाने' शब्दोंके अर्थोंपर विचार करें। पहले विनयपदका 'जाना' पूर्वोक्त 'तमेव विदित्वा' इत्यादि वेदमन्त्रके अर्थानुसार अनुभवात्मक ज्ञान (विज्ञान) या अपरोक्षानुभूतिके अर्थमें आया है। अध्यात्मरामायणके निम्नलिखित श्लोककी प्रतिध्वनि है—

निर्विकल्पो निर्विकारो निराकारो निरीश्वरः।
षड्भावरहितोऽनादिः पुरुषः प्रकृतेः परः॥
मायया गृह्यमाणस्त्वं मनुष्य इव भाव्यसे।
ज्ञात्वा त्वां निर्गुणमजं वैष्णवा मोक्षगामिनः॥
(यु० का० स० ३)

उक्त श्लोककी रेखाङ्कित पंक्तिमें वैष्णवोंसे अद्वैतवादका मान कराया गया है, अतः समस्त वैष्णवोंको करना चाहिये। इसप्रकार पहले विनयपदके 'जाने' का अर्थ हुआ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

किन्तु छठी चौपाईका 'जाने' शब्द सगुण ब्रह्म (राम) के ऐश्वर्य और लीलामय चरित्रोंके रहस्यज्ञान (शास्त्रीय ज्ञान) अथवा द्वैतज्ञानके अर्थमें आया है, जिससे भगवान्‌में प्रतीति और प्रीति हो प्रेमलक्षणा भक्तिकी दृढ़ता होती है। शास्त्रीय भाषामें यह कहेंगे कि पहले विनयपदका 'जाना' ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेयरूपी त्रिपुटीलय या अद्वैतसिद्धि है। किन्तु छठी चौपाईके 'जाने' से सेवक-सेव्य-भावकी दृढ़ता या द्वैतसिद्धि है। अतः छठी चौपाईके 'प्रीति बिना नहिं भक्ति दृढाई' के आगे यदि 'बिनु दृढ़ भक्ति ज्ञान नहिं भाई'—पद जोड़ दिया जाय तो पहले विनयपदके 'जाना' का अर्थ आ जायगा।

उपनिषद् और पुराणोंमें 'ज्ञान' या 'प्रज्ञान' शब्द सब प्रकारके ज्ञानके अर्थोंमें आया है। कठोपनिषद् (२। २४) और गीता (६। ४६) में 'ज्ञान' शब्द केवल शास्त्रविषयक पाण्डित्यके अर्थमें आया है। ज्ञान कई प्रकारका होता है, जैसे भविष्यकी बात जान लेना, अनेक विद्याएँ पढ़ लेना, वेदाध्ययन कर लेना, इत्यादि। पर इन सबमें ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेयकी पृथक्ता रहती है। इसलिये यह सब द्वैतावस्थाका ज्ञान है। किन्तु शुद्ध अद्वैतज्ञान इन सबसे भिन्न है।

स्वामी रामदास अपने 'दासबोध' में शुद्ध अद्वैतज्ञानका लक्षण करते हुए लिखते हैं कि 'जहाँ दृश्यमान कुछ नहीं है, जहाँ 'अहं ब्रह्मास्मि' यह ज्ञान भी अज्ञान है (अर्थात् ब्रह्मस्वरूपकी प्राप्ति होनेपर यह ज्ञान भी न रहना चाहिये कि हम ब्रह्मस्वरूप हैं। यदि रहा तो वह भी अज्ञान है), ऐसा शुद्ध और विमल स्वरूपज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है (अनुवाद)।' इसी अभेदज्ञानको लक्ष्यकर योगवासिष्ठ के उपशम नामक प्रकरणके १५० वें सर्गमें बतलाया है कि शुद्ध ज्ञान 'उस अवस्थाविशेषको कहते हैं जहाँ 'मैं' और 'तू' शब्दोंका कुछ अर्थ ही न रहे। इसीको मुनीश्वर परब्रह्म कहते हैं (अनुवाद)।' इस ज्ञानका उत्तम वर्णन केनोपनिषद्की निम्नलिखित श्रुति भी कर रही है—

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि। इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे॥

(१। ३)

न वहाँ नेत्र पहुँचता है, न वाणी और न मन। हम नहीं समझते, नहीं जानते कि किसप्रकारसे उसका कोई अनुशासन करे। वह न ज्ञात है, न अज्ञात है। यह हमने पहले उन (ऋषियों) से सुना है जिन्होंने पहले हमारे लिये उसकी व्याख्या की है।

उक्त श्रुतिसे स्पष्ट है कि शुद्ध ज्ञान मन, बुद्धि, तर्कादि-से परे है। जो उस अवस्थामें पहुँच गया है वही उस परमानन्दको जान सकता है। इसप्रकारकी स्पष्ट श्रुतिके होते हुए भी विपक्षीगण तर्कसे सिद्ध किया करते हैं कि ऐसी कोई अवस्था ही नहीं हो सकती, बल्कि यह जडावस्था है। पर यदि जड-अवस्था होती तो परमानन्दस्वरूपिणी न कहलाती। इसके सिवा कहीं-कहीं तो अचेतन-अवस्थामें वह शान्ति है जो चेतनावस्थामें नहीं। यदि रातभर पूरी तरहसे नींद न आये तो दिनभर बेचैनीमें जाय।

अब जैसे लोकमें वैसे शास्त्रमें यह अवश्य देखा जाता है कि बिना ज्ञानके किसी भी विषयमें प्रतीति और प्रीति नहीं होती। पर यह कथन उपर्युक्त शुद्ध अद्वैत-ज्ञानके अतिरिक्त पूर्वोक्त अन्य प्रकारके ज्ञानमें घटित होता है, जहाँ प्रतीति और प्रीति करने और करानेवालेमें भेद रहा करता है। किन्तु शुद्ध अद्वैत ज्ञानमें तो 'मैं' और 'तू' शब्दोंका ही कुछ अर्थ नहीं रहता अर्थात् सर्वथा अभेद हो जाता है। फिर इस (अभेद) ज्ञानसे भेदजनित भक्तिकी उत्पत्ति कैसे होगी? इस अभेदावस्थामें कौन किसको देखेगा या कौन किसकी भक्ति करेगा? 'तत्र कः कं पश्येत्'—इस श्रुतिका भी यही आशय है। सारांश, शुद्ध (अद्वत) ज्ञानसे (भेद) भक्तिकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। अन्य प्रकारके ज्ञानसे होती है। प्रकरणमें 'सेवक-सेव्यभाव' इत्यादि दोहेमें गोसाईंजीने देहबुद्धिसे इस भावपर बड़ा जोर दिया है। सो ठीक भी है, क्योंकि हनुमान् तथा रामायणके प्रायः सभी भक्त इस भावके भूखे थे। इस भावमें गोसाईंजीने हनुमान् और भरतजीका विशेष अनुकरण किया है, न कि किसी सम्प्रदाय-विशेषका। स्वयं अपने श्रीमुख-से कह भी दिया है—

सियराम-प्रेम-पियूष-पूरन होत जनम न भरतको।
× × × ×
कलिकाल तुलसीसे सठहिं हठि रामसनमुख करत को॥

यदि पक्षपातरहित विचारदृष्टिसे देखा जाय तो अद्वैत-ज्ञान (जहाँ भक्ति-भावका ही अभाव है) के अतिरिक्त भक्तिके समस्त भावोंमें सेवक-सेव्य-भाव न्यूनाधिकतासे विद्यमान रहता है। स्त्री-पुरुषके बीचमें जो अत्यन्त प्रेम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रहता है उसमें भी यह भाव वर्तमान है। जब किसी संसारी विषयमें किसी मनुष्यकी अत्यन्त प्रीति देखी जाती है तो कह दिया जाता है कि वह पुरुष उस विषयका दास हो गया है। इसीलिये सेवक-सेव्य-भाव रखते हुए भी गोसाईंजी लिखते हैं—

कामिहिं नारि पियारि जिमि, लोभिहिं प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहिं राम॥

निस्सन्देह यह नहीं कहा जा सकता कि कामीको नारीसे अधिक प्रेम रहता है या लोभीको दामसे। पर यह कहा जा सकता है कि कामी कामका, या लोभी दामका वैसा ही दास रहता है जैसे तुलसी, भरत और हनुमान् रामदास थे। इसीलिये भक्तशिरोमणि प्रह्लादने भक्तिकी सर्वोत्तम परिभाषा करते हुए कहा है कि 'या प्रीतिरविवेकानां विषयेषु' इत्यादि, अर्थात् 'जैसी प्रीति अविवेकी पुरुषोंकी विषयोंमें रहती है वैसी ही मेरी भगवान्‌में हो।' निस्सन्देह विषयोंकी गुलामी यदि रामगुलामीमें परिवर्तित हो जाय तो मनुष्य भी भागवतरत्न बन जाय और निम्नलिखित हनुमद्वाक्य भी सत्य हो जाय—

देहबुद्ध्या तु दासोऽहं·····इति मे निश्चला मतिः।

सबका सार यही निकला कि गोसाईं तुलसीदासने भी अद्वैत-सिद्धान्तका मान कर 'प्रेमप्रकाशाय न विग्रहाय' विशिष्टाद्वैत नामक भक्तिमार्गपर जोर दिया है और भक्तिरूपी साधनकी श्रेष्ठता प्रतिपादन करते हुए यह लिख दिया है—

जे अस भगति जानि परिहरहीं। केवल ग्यानहेतु श्रम करहीं॥
ते जन कामधेनु गृहत्यागी। खोजत आक फिरहिं पय लागी॥

निस्सन्देह यह सत्य भी है, क्योंकि 'मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी' (शंकराचार्यः विवेकचूडामणौ)। तुलसीकृत ग्रन्थोंमें वास्तविक सिद्धान्त ढूँढ़नेके पहले यह हमेशा ध्यानमें रखना चाहिये कि पुराणोंके सदृश गोसाईंजीने भी कलियुगके अल्पाधिकारको लक्ष्यमें रक्खा है और 'प्रेमप्रकाशाय न विग्रहाय' के नियमसे काम लिया है। यदि इतना ध्यान रहे तो, न तो वेदोंका उपासनाकाण्ड ज्ञानकाण्डके आगे रक्खा जायगा और न अटल सिद्धान्तका गला घोंटा जायगा। अन्धकारका विनाश होगा, सूर्यका प्रकाश होगा। अन्तमें यह लिख देना अत्युक्ति नहीं कि पूर्वोक्त हनुमद्वचनोंका पूर्णतया पालन करनेवाले वैष्णवशिरोमणि तुलसीदास सिद्धान्तमें यदि किसी आचार्यसे मिलते हैं तो शङ्कराचार्यसे और अधिकारभेदसे अन्य आचार्योंसे। इसप्रकार भेंट करते हुए वे हमारे वर्तमान विषय-भागको भी समाप्त करते हैं।

भगवत्प्रेमियोंके लिये आवश्यक बातें

(लेखक—स्वामी श्रीशान्तयोगानन्दजी)

१—साधककी प्रारम्भिक अवस्था अवनति और उन्नतिसे भरपूर होती है। भाव यह है कि साधक कभी सञ्चित कुसंस्कारोंके प्रभावसे भगवत्पथसे गिर जाता है और कभी पुरुषार्थसे पुनः उस पथपर आरूढ़ हो जाता है। जैसे दो पहलवान लड़ते हैं तो कभी एक गिरता है और कभी दूसरा, इसी प्रकार साधकमें कभी आसुरी शक्ति बलवान् होती है तो कभी दैवी। यदि इसप्रकार कभी साधक गिर जाय तो उसे निराश नहीं होना चाहिये। कहा भी है—'Failures are pillars of success'. परन्तु सत्सङ्ग, स्वाध्याय और भजन इत्यादिके द्वारा प्रयत्न करते हुए दैवी सम्पत्तिके पहलवानको शक्तिशाली बनाना चाहिये जिससे वह आसुरी सम्पत्तिके पहलवानको सदाके लिये पराजित कर सके।

२—साधकके इसप्रकार गिरनेकी दशामें अज्ञानी पड़ोसियोंके द्वारा ऐसे कटु आक्षेप होते हैं कि वह बेचारा घबड़ा जाता है। ऐसी अवस्थामें बहुधा नवीन साधक साधन-पथसे अलग हो जाता है और भगवत्पथपर अग्रसर होनेका फिर साहस ही नहीं करता। इसके विरुद्ध वह सोचता है कि साधन करनेकी अपेक्षा साधन न करना ही ठीक है, क्योंकि भूल होनेपर उसमें उतना लज्जित तो नहीं होना पड़ेगा। ऐसे नवीन साधकको सोचना चाहिये कि वे साधन न करनेवाले लोग जब साधनपथमें आयँगे तो स्वयं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कितनी ही बार गिरेंगे, मैं तो उनसे कुछ ऊँचा हूँ जो भगवत्पथपर चलने लगा हूँ। यदि साधनमें लगा रहूँगा तो एक दिन उन सबके लिये आदर्श बन जाऊँगा। यहाँ एक बात और ध्यानपूर्वक विचारने-योग्य है। जो साधक भगवत्पथमें पदार्पण कर चुका है उसका कभी पतन हो ही नहीं सकता। वह तो उस मार्गमें नीची सीढ़ीसे ऊँची सीढ़ीपर चढ़ता है। स्वामी विवेकानन्दने ठीक ही कहा है— 'Man travels from truth to truth, and not from error to truth.' अर्थात् मनुष्य सत्यसे सत्यकी ओर बढ़ता है न कि असत्यसे सत्यकी ओर। अतः किसी भी अवस्थामें भगवद्भजनका त्याग करना बुद्धिमानी नहीं कही जा सकती।

३—यदि यह स्वीकार भी कर लें कि सचमुच साधक भगवत्पथसे गिर जाता है, तो भी उसे भजन नहीं छोड़ना चाहिये। क्योंकि भजनके प्रतापसे अल्पकालमें ही वह पुनः उत्थानको प्राप्त होगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। ऐसा नहीं करनेसे उसका घोर पतन हो जायगा। इसलिये भजन मनुष्यके लिये प्रत्येक दशामें कल्याण करनेवाला है, चाहे उसकी अवस्था गिरी हुई हो या उन्नत हो।

४—अनेकों सांसारिक जीव भूलमें पड़े हुए हैं। वे सोचते हैं कि हमारे अन्दर दोष हैं, इससे हम भगवान्‌का भजन कैसे कर सकते हैं? हम ऑफिसमें, दूकानमें नाना प्रकारके झूठ बोलते हैं, हमारे मनमें भजनकी रुचि भी नहीं होती। परन्तु वे विचारते नहीं कि आजकल कलियुगका समय है। आजकलका वायुमण्डल कुसंस्कारोंसे इतना पूर्ण है कि प्रायः अच्छे-से-अच्छे साधकपर भी इसका कुछ-न-कुछ प्रभाव पड़ जाता है। परन्तु यदि हम भजनसे विमुख न होकर भगवत्पथमें लगे रहेंगे तो एक-न-एक दिन महान् शुद्धताको प्राप्त हो जायँगे और फिर हमारे सारे दोष सदाके लिये दूर हो जायँगे। जिसप्रकार जिस पेड़पर बाज रहता है वहाँ दूसरी छोटी चिड़ियाँ नहीं आतीं, उसी प्रकार जिस हृदयमें भगवान्‌के नामने स्थान कर लिया, वहाँसे सारे दुर्व्यसन दूर भाग जाते हैं।

५—कुछ भोले भाई कहा करते हैं कि हमें इतने काम-धन्धे रहते हैं कि भजनके लिये फुरसत ही नहीं मिलती। ऐसे लोगोंको याद रखना चाहिये कि भजनका उत्तम समय प्रातःकाल ४ बजे है, जब कोई कारोबार खुला नहीं होता है। बहुत-से साधक तो सोनेके समय ही दो-दो, तीन-तीन घण्टे भजन किया करते हैं, क्योंकि उस समय किसी सांसारिक कामकी चिन्ता नहीं होती। परन्तु भगवान्‌का प्रिय पात्र बननेके लिये तो साधकको व्यवहारके समय भी भगवान्‌का स्मरण करते रहनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

६—आजकल लड़ाई-झगड़ेका चारों ओर प्राबल्य है। प्रायः कोई घर इससे बचा नहीं है। भाई-भाईमें अनबन है, पिता-पुत्रमें लड़ाई है। मनुष्य मनुष्यका शत्रु बन रहा है। संसारमें स्वार्थका बाजार गर्म है। एक देश दूसरे देशको हड़पा चाहता है। इस भयङ्कर अशान्तिका कारण क्या है? भलीभाँति विचार करनेपर जान पड़ेगा कि संसार इस बातको भूल गया है कि सर्वव्यापी भगवान् सामान्यरूपसे प्रत्येक जीवके भीतर विराजमान हैं। इसी कारणसे प्रत्येकके हृदयमें द्वैत-भावनाका साम्राज्य स्थापित हो गया है, जिसके परिणामस्वरूप आज समस्त संसार दुःखित है। इस महा विपत्तिकी एकमात्र अचूक ओषधि भगवान्‌का नाम है। यदि घर-घर भगवन्नामका जप होने लगे तो सारी हालत सुधर जायगी, सर्वत्र आनन्द उमड़ जायगा और यह संसार, जो आज दुःख-सागर-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के रूपमें दीख पड़ता है, सुख-सागरके रूपमें परिवर्तित हो जायगा।

७—नवीन साधक बहुधा कहा करते हैं कि 'भजनमें हमारा दिल नहीं लगता।' वह ठीक कहते हैं, परन्तु उन्हें इस दृष्टान्तपर विचार करना चाहिये। एक चूहा था; उसके पीछे एक बिल्ली दौड़ी। चूहा एक कमरेमें घुस गया; बिल्ली भी उसके पीछे वहाँ पहुँची। बाहरकी रोशनीसे चूहेकी आँखें चौंधियाई हुई थीं, इसलिये कमरेमें उसे अपना बिल नहीं दीख पड़ा। चूहा लौटकर कमरेसे तुरन्त बाहर भागा। बिल्ली उसके पीछे थी ही, एक ही झटकेमें उसने चूहेका प्राणान्त कर दिया। विचारनेकी बात है कि यदि चूहा कमरेके अन्दर थोड़ा धैर्य रखता तो आँखकी चौंधियाहट दूर होनेपर उसे बिल ज़रूर दीख पड़ता और उसके प्राण बच जाते। नवीन साधककी भी ऐसी ही दशा होती है। उसके मनरूपी चूहेके पीछे विषयरूपी बिल्ली लगी है। जब वह मनरूपी चूहा भगवद्भजनरूपी कमरेमें घुसता है तो विषयरूपी बिल्ली वहाँ भी उसके पीछे जाती है, बाहरके (सांसारिक) प्रकाशसे उसकी आँखें चौंधियाई होती हैं। यदि वह थोड़ी देर धैर्य रखकर उस कमरेमें पड़ा रहे तो उसे भगवत्-शरणागतिरूपी बिल मिल जायगा, जिसमें प्रवेश कर वह परम आनन्दको प्राप्त होगा। अन्यथा धैर्य छोड़कर उस भगवद्भजनरूपी कमरेसे बाहर होनेसे उसका सर्वनाश हो जायगा और वह अनन्त कालके लिये जन्म-मरणके चक्करमें पड़ा रहेगा। इसलिये साधकको भजनमें लगे रहना चाहिये। थोड़े ही समयमें उसे जपका आनन्द मिलेगा, मनमें शान्ति आयगी, दुर्व्यसन दूर हो जायँगे। केवल कुछ समय धैर्य धारण करना आवश्यक है। भजन प्रारम्भ करनेके पूर्व जो दुर्व्यसन उठते थे उनका वेग भगवान्‌के स्मरणसे बन्द हो जायगा। फिर शनैः-शनैः उनसे बिल्कुल ही छुटकारा मिल जायगा।

८—साधारणतः भगवत्प्रेमी सोचा करते हैं कि जो नर-नारी भगवद्भजन नहीं करते वह दैव-जन्मसे वञ्चित होकर पश्चात्ताप करेंगे। यह विचार बिल्कुल ठीक है। परन्तु एक सूक्ष्म विचारसे भगवत्प्रेमीजन भी पश्चात्तापके भागी होंगे। क्योंकि भजनमें भी न्यून और अधिकका प्रश्न उठता है। जो अधिक भजन करते हैं उनको अधिक लाभ होता है और जो न्यून करते हैं उनको कम। इसलिये कम भजन करनेवालेको परमात्माके दरबारमें अधिक भजन करनेवालोंको देखकर अवश्य पश्चात्ताप होगा कि हमने दुर्लभ मानव-जीवनको पाकर व्यर्थ नष्ट कर दिया, मनभर भगवान्‌का भजन नहीं किया।

९—सत्-शास्त्रोंका स्वाध्याय, सत्सङ्गति, भजन, सब प्राणियोंपर दया, दूसरोंका गुण-वर्णन, कथा-सत्सङ्गमें जाना, दूसरोंको भी सन्मार्गपर लानेकी चेष्टा करना आदि साधनोंसे विशेषरूपसे भगवत्कृपा प्राप्त होती है।

१०—साधु-सन्तोंकी निन्दा करनेसे मनुष्यका जो अकल्याण होता है, वह कथनमें नहीं आ सकता। मनुष्यकी यह वृत्ति शूकर-वृत्तिके नामसे प्रख्यात है। शूकर जैसे बगीचेमें जाकर भी फल-फूलकी ओर न देखकर गन्दी चीज़ ही खोजता है, इसी प्रकार वह मनुष्य भी साधुओंके दोष देखकर उन्हींमें रमता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उपनिषद्-गाथा

(१)

जबाला नाम्नी एक सदाचारिणी ब्राह्मणी थी। उसके सत्यकाम नामक पुत्र था। जब वह विद्याध्ययन करने योग्य हुआ, तब एक दिन उसने गुरुकुल जानेकी इच्छासे अपनी मातासे पूछा—'हे पूजनीया माता! मैं ब्रह्मचर्य-पालन करता हुआ गुरुकी सेवामें रहना चाहता हूँ, गुरु मुझसे नाम और गोत्र पूछेंगे; मैं अपना नाम तो जानता ही हूँ परन्तु गोत्र नहीं जानता, अतएव मेरा गोत्र क्या है सो बतलाओ।'

जबालाने कहा 'बेटा! तू किस गोत्रका है, इस बातको मैं नहीं जानती। मेरी जवानीमें, जब तू पैदा हुआ था, तब मेरे स्वामीके घरपर बहुत-से अतिथि आया करते थे। मेरा सारा समय उनकी सेवामें ही बीत जाता था, इससे मुझको तेरे पितासे गोत्र पूछने-का समय नहीं मिला, अतएव मैं तेरा गोत्र नहीं जानती। मेरा नाम जबाला है और तेरा सत्यकाम; बस, मैं इतना ही जानती हूँ, तुझसे आचार्य पूछें तो कह देना कि मैं जबालाका पुत्र सत्यकाम हूँ।'

माताकी आज्ञा लेकर सत्यकाम महर्षि हरिद्रुमके पुत्र गौतम ऋषिके घर गया और प्रार्थना करके बोला कि 'हे भगवन्! मैं ब्रह्मचर्यका पालन करता हुआ आपके समीप रहकर सेवा करना चाहता हूँ। मुझे स्वीकार कीजिये।' गुरुने बड़े स्नेहसे पूछा 'हे सौम्य! तेरा गोत्र क्या है?' सरल सत्यकामने नम्रतासे कहा 'भगवन्! मेरा गोत्र क्या है, इस बातको मैं नहीं जानता। मैंने यहाँ आते समय मातासे पूछा था तब उन्होंने कहा कि मैं युवावस्थामें अनेकों अतिथियोंकी सेवामें लगी रहनेके कारण स्वामीसे गोत्र नहीं पूछ सकी, मैं केवल इतना ही जानती हूँ कि मेरा नाम जबाला है और तेरा सत्यकाम है। अतएव हे भगवन्! मैं जबालाका पुत्र सत्यकाम हूँ।'

सत्यवादी सरल-हृदय सत्यकामकी सीधी-सच्ची बात सुनकर ऋषि गौतम प्रसन्न होकर बोले 'वत्स! ब्राह्मणको छोड़कर दूसरा कोई भी इसप्रकार नहीं कह सकता—'नैतद् ब्राह्मणो विवक्तुमर्हति'—ऐसा सत्य और कपटरहित वचन कहनेवाला तू निश्चय ब्राह्मण है। मैं तेरा उपनयन-संस्कार करूँगा, जा थोड़ी-सी समिधा ले आ।'

विधिवत् उपनयन-संस्कार होनेके बाद वेदा-ध्ययन कराकर ऋषि गौतमने अपनी गोशालामेंसे चार सौ दुबली-पतली गौएँ चुनकर अधिकारी शिष्य सत्यकामसे कहा—'पुत्र! इन गौओंको चराने वन-में ले जा। देख, जबतक इनकी संख्या पूरी एक हजार न हो जाय तबतक वापस न आना।' सत्यकाम-ने प्रसन्न होकर कहा 'भगवन्! इन गौओंकी संख्या पूरी एक हजार न हो जायगी, तबतक वापस नहीं आऊँगा।' 'नासहस्रेणावर्तयेति'—यों कहकर सत्यकाम गौओंको लेकर जिस वनमें चारे-पानीकी बहुतायत थी, उसीमें चला गया और वहीं कुटिया बनाकर वर्षोंतक गौओंकी खूब तन-मनसे सेवा करता रहा।

गुरु-भक्तिका कितना सुन्दर दृष्टान्त है। ब्रह्मज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छावाले शिष्यको गुरु गौ चराने वनमें भेज दे और वह चुपचाप आज्ञा शिरोधार्य कर वर्षोंतक निर्जन वनमें रहने चला जाय। यह बात ज्ञान-पिपासु गुरुभक्त भारतीय ऋषिकुमारोंमें ही पायी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जाती है। आजकी संस्कृति तो इससे सर्वथा विपरीत है। अस्तु!

सेवा करते-करते गौओंकी संख्या पूरी एक हजार हो गयी। तब एक दिन एक वृषभने आकर पुकारा—'सत्यकाम!' सत्यकामने उत्तर दिया 'भगवन्! क्या आज्ञा है।' वृषभने कहा 'वत्स! हमारी संख्या एक हजार हो गयी है; अब हमें गुरुके घर ले चलो, मैं तुमको ब्रह्मके एक पादका उपदेश करता हूँ।' सत्यकामने कहा 'कहिये भगवन्!' इसके बाद वृषभने ब्रह्मके एक पादका उपदेश देकर कहा 'इसका नाम प्रकाशवान् है। अगला उपदेश तुझे अग्निदेव करेंगे।'

दूसरे दिन प्रातःकाल सत्यकाम गौओंको हाँककर आगे चला, सन्ध्याके समय रास्तेमें पड़ाव डालकर उसने गौओंको वहाँ रोका और उन्हें जल पिलाकर रात्रि-निवासकी व्यवस्था की। तदनन्तर वनमेंसे काठ बटोरा और अग्नि जलाकर पूर्वाभिमुख होकर बैठ गया। अग्निदेवने तीन बार कहा 'सत्यकाम!' सत्यकामने उत्तर दिया 'भगवन्! क्या आज्ञा है?' अग्निने कहा 'हे सौम्य! मैं तुझे ब्रह्मके द्वितीय पादका उपदेश करता हूँ।' सत्यकाम बोला, 'कीजिये भगवन्!' तदनन्तर अग्निने ब्रह्मके दूसरे पादका उपदेश करके कहा—'इसका नाम अनन्तवान् है। अगला उपदेश तुझे हंस करेगा।'

सत्यकाम रातभर उपदेशका मनन करता रहा। प्रातःकाल गौओंको हाँककर आगे बढ़ा और सन्ध्या होनेपर किसी सुन्दर जलाशयके किनारे ठहर गया। गौओंकी रात्रि-निवासकी व्यवस्था की और आप आग जलाकर पूर्वाभिमुख होकर बैठ गया। इतनेमें एक हंस ऊपरसे उड़ता हुआ आया और सत्यकामके पास बैठकर बोला—'सत्यकाम!' सत्यकामने कहा 'भगवन्! क्या आज्ञा है?' हंसने कहा 'हे सत्यकाम! मैं तुझे ब्रह्मके तीसरे पादका उपदेश करता हूँ।' सत्यकामने कहा 'भगवन्! कृपा करके कीजिये।' पश्चात् हंसने ब्रह्मके तीसरे पादका उपदेश करके कहा 'इसका नाम ज्योतिष्मान् है। अगला उपदेश तुझे जलमुर्ग करेगा।'

रातको सत्यकाम ब्रह्मके चिन्तनमें लगा रहा। प्रातःकाल गौओंको हाँककर आगे चला और सन्ध्या होनेपर एक वटके वृक्षके नीचे ठहर गया। गौओंकी उचित व्यवस्था करके वह अग्नि जलाकर पूर्वाभिमुख होकर बैठ गया। इतनेमें एक जलमुर्गने आकर पुकारा 'सत्यकाम!' सत्यकामने उत्तर दिया 'भगवन्! क्या आज्ञा है?' मुर्गेने कहा 'वत्स! मैं तुझे ब्रह्मके चतुर्थ पादका उपदेश करता हूँ।' सत्यकाम बोला 'प्रभो! कीजिये।' तदनन्तर जलमुर्गने आयतनवान्‌रूपसे ब्रह्मका उपदेश किया।

इसप्रकार सत्य, गुरुसेवा और गो-सेवाके प्रतापसे वृषभरूप वायु, अग्निदेव, हंसरूप सूर्यदेव और मुर्गरूप प्राणदेवतासे ब्रह्मज्ञान प्राप्तकर सत्यकाम एक हजार गौओंके बड़े समूहको लेकर आचार्य गौतमके घर पहुँचा। उस समय उसके मुखमण्डलपर ब्रह्मतेज छिटका हुआ था, आनन्दकी सहस्र-सहस्र किरणें झलमला रही थीं। गुरुने सत्यकामकी चिन्तारहित, तेजपूर्ण दिव्य मुखकान्तिको देखकर कहा 'वत्स सत्यकाम!' उसने उत्तर दिया 'भगवन्!' गुरु बोले—'हे सौम्य! तू ब्रह्मज्ञानीके सदृश दिखायी दे रहा है, वत्स, तुझको किसने उपदेश किया?' सत्यकामने कहा—

'भगवन्! मुझको मनुष्येतरोंसे उपदेश प्राप्त हुआ है।' यों कहकर उसने सारा हाल सुना दिया और कहा 'भगवन्! मैंने सुना है कि—

'भगवद्दृश्येभ्य आचार्यादेव विद्या विदिता साधिष्ठं.....'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आप-सदृश आचार्यके द्वारा प्राप्त की हुई विद्या ही श्रेष्ठ होती है, अतएव मुझे आप ही पूर्णरूपसे उपदेश कीजिये।' गुरु प्रसन्न हो गये और उन्होंने कहा—'वत्स! तूने जो कुछ प्राप्त किया है, यही ब्रह्मतत्त्व है। अब तेरे लिये कुछ भी जानना शेष नहीं रहा।'

(२)

एक समय देवता, मनुष्य और असुर सबके पितामह प्रजापति ब्रह्माजीके पास शिष्य-भावसे विद्या सीखने गये, एवं नियमपूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए उनकी सेवा करने लगे। इसप्रकार कुछ काल बीत जानेपर उन्होंने उपदेश ग्रहण करना चाहा। सबसे पहले देवताओंने जाकर प्रजापतिसे प्रार्थना की 'भगवन्! हमें उपदेश कीजिये।' प्रजापतिने उत्तरमें एक ही अक्षर कह दिया 'द'। स्वर्गमें भोगोंकी भरमार है, भोग ही देवलोकका सुख माना गया है, कभी वृद्ध न होकर देवगण सदा इन्द्रिय-भोगोंमें लगे रहते हैं; अपनी इस अवस्थापर विचारकर देवताओंने 'द' का अर्थ 'दमन'—इन्द्रिय-संयम समझा और अपनेको कृतकृत्य मानकर प्रजापतिको प्रणामकर वे वहाँसे चलने लगे। प्रजापतिने पूछा 'क्यों, मेरे उपदेश किये हुए अक्षरका अर्थ तो तुम समझ गये न?' देवताओंने कहा 'जी, समझ गये, आपने हम विलासियोंको इन्द्रिय-दमन करनेकी आज्ञा की है।' प्रजापतिने कहा 'तुमने ठीक समझा, मेरे 'द' कहनेका यही अर्थ था। जाओ, परन्तु मेरे उपदेशके अनुसार चलना, तभी तुम्हारा कल्याण होगा।'

तदनन्तर मनुष्योंने प्रजापतिके पास जाकर कहा 'भगवन्! हमें उपदेश कीजिये।' प्रजापतिने उनको भी वही 'द' अक्षर सुना दिया। मनुष्योंने विचार किया हम कर्मयोनि होनेके कारण सदा लोभवश कर्म करने और अर्थ-संग्रह करनेमें ही लगे रहते हैं। इसलिये प्रजापतिने हम लोभियोंको दान करनेका उपदेश किया है। यह निश्चयकर वे अपनेको सफलमनोरथ मानकर चलने लगे, तब प्रजापतिने उनसे पूछा 'तुम लोग मेरे कथनका अर्थ समझकर जा रहे हो न?' संग्रहप्रिय मनुष्योंने कहा 'जी हाँ, समझ गये, आपने हमें दान करनेकी आज्ञा दी है।' यह सुनकर प्रजापति प्रसन्न होकर बोले—'हाँ, मेरे कहनेका यही अर्थ था, तुमने ठीक समझा है। अब इसके अनुसार चलना, तभी तुम्हारा कल्याण होगा।'

इसके पश्चात् असुरोंने प्रजापतिके पास जाकर प्रार्थना की 'भगवन्! हमें उपदेश कीजिये।' इनको भी प्रजापतिने 'द' अक्षरका ही उपदेश किया। असुरोंने समझा, 'हम लोग स्वभावसे ही हिंसावृत्तिवाले हैं, क्रोध और हिंसा हमारा नित्यका व्यापार है, अतएव प्रजापतिने हमें इस दुष्कर्मसे छुड़ानेके लिये कृपा करके जीवमात्रपर दया करनेका ही उपदेश दिया है।' यह विचारकर वे जब चलनेको तैयार हुए तब प्रजापतिने यह सोचकर कि ये लोग मेरे उपदेशका अर्थ समझे या नहीं, उनसे पूछा 'तुम जा रहे हो, परन्तु बताओ मैंने तुम्हें क्या करनेको कहा है?' तब हिंसाप्रिय असुरोंने कहा 'देव! आपने हम हिंसकोंको 'द' कहकर प्राणिमात्रपर दया करनेकी आज्ञा की है।' यह सुनकर प्रजापतिने कहा 'वत्स! तुमने ठीक समझा, मेरे कहनेका यही तात्पर्य था। अब तुम द्वेष छोड़कर प्राणिमात्रपर दया करना, इससे तुम्हारा कल्याण होगा।'

देव दनुज मानव सभी लहैं परम कल्यान।
पालैं जो 'द' अर्थकौं दमन दया नित दान॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कौन छिपे हो ?

(लेखक—श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल)

तुम कौन हो जो मुझसे आड़में छिपे रहते हो ? यह सही कि तुम दीखते नहीं हो परन्तु हृदयमें तुम्हारा अनुभव तो खूब होता है। काया नहीं दीखती पर छायाको तो तुम नहीं छिपा सकते। ओ चतुर! कौन हो तुम, क्यों मेरे साथ इस तरह खेल करते हो? नील गगनमें अगणित नक्षत्र झलमला रहे हैं, बादलका जरा-सा टुकड़ा बीच-बीचमें चन्द्रमाके निर्मल प्रकाश-को म्लान कर डालता है। चन्द्रोज्ज्वला यामिनी, जो अभी-अभी सुन्दरी युवतीके हास्य-सरस मुखकी भाँति शोभित हो रही थी, अकस्मात अतर्कित क्षीण मेघमालाके उत्पन्न हो जानेसे उसकी वह हास्य-ज्योति एक अपूर्व गम्भीरताके रूपमें परिवर्तित हो गयी। इसी प्रकार तुम्हारा हँसीसे खिलता हुआ मुखकमल भी पल-पलमें अपूर्व गम्भीरतासे भर जाता है। कभी देखता हूँ, बादलोंमें चन्द्रमा अपनेको छिपा लेता है, फिर जरा-सी देरमें ही न मालूम क्यों पुनः हँसता हुआ बाहर निकल आता है। मानों बादलोंके साथ वह आँखमिचौनी खेल रहा है। तुम भी कभी जीवके हृदयाकाशमें चन्द्ररेखा-सदृश अपूर्व ज्योतिरूपमें प्रकट होते हो, फिर कभी अमावस्याके घोर अन्धकारसे हृदयदेशको ढककर उसमें छिप जाते हो, और फिर चन्द्रमाकी भाँति पुनः धीरे-धीरे प्रकट हो जाते हो। अरुणोदयके साथ-साथ जब पूर्वाकाश सिन्दूर-रङ्गसे रँगकर लाल हो जाता है, तब समुद्रकी सुनील जलराशि-की लहराती हुई तरङ्गोंसे कैसी एक अपूर्व छबि प्रकट होती है—मानों हिलोरें खाते हुए समुद्रकी तरङ्गोंके आघातसे एक अभिनव शिशु समुद्रके वक्षः-स्थलपर नाच उठता है। उस समय जान पड़ता है मानों कोई उस छबिसे खेल रहा है। इसके थोड़ी ही देर पहले देखा था कि नव-प्रभातके आगमनकी सूचना देनेके लिये चञ्चला बालिका उषा नाचती और हँसती हुई किसी अन्धकारके अदृश्य गृहसे बाहर निकल रही थी। उसकी उस हँसीसे कितने चम्पा-चमेली, मल्लिका-मालती, हरसिंगार खिल उठे। मौलश्रीके पुष्प तो आनन्दकी अधिकतासे डगमगाते हुए किसीको देखकर बाहर निकलनेके लिये झर पड़े। मृदुगन्धवह उनके देहसे सुगन्ध ग्रहणकर बालिका उषाके वक्षोंपर मलकर चला गया, दिगङ्गनाएँ कुसुम-सुवासको प्राप्तकर हँस उठीं, कोकिलाएँ किसीकी आहट पाकर पञ्चम स्वरसे कुञ्जवनमें गान करने लगीं। सारी प्रकृतिमें एक आनन्द-स्रोत बह उठा। यह आनन्द किसका है? इतना प्रकाश किसका है? किसे देखकर सब इतने आनन्दमें भर गये? मनचाहे खिलाड़ीको पाकर शिशु जिसप्रकार आनन्दसे मत्त हो जाता है, उसी प्रकार आज यह कौन सुकुमार नयनानन्द अखिलजनमनोहर शिशु प्रकट हो गया, जिसको पाकर फल-फूल, तरु-लता, आकाश और दिशाएँ सब हँस उठीं—समस्त जन-समुदायकी चेतना जग उठी? इस बार पकड़े गये। अब यों छिप-छिपकर खेल-तमाशा नहीं कर सकोगे!

अच्छा, तुम्हारा यह कैसा आनन्द है? पर्देकी ओटसे तुम्हारा यह कैसा कौतुक है? हमको कभी राजा बना देते हो और कभी भिखारीके कपड़े पहना देते हो। यह तुम्हारा कैसा आमोद-प्रमोद है? मैं इतना क्षुद्र हूँ, तो भी मेरे साथ खेलनेमें,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तमाशा करनेमें, क्या तुम्हारी मान-मर्यादामें कोई कमी नहीं आती ? तब क्या तुम प्रौढ़ नहीं हो ? विज्ञ नहीं हो ? एक छोटे-से बच्चेके समान खेलते हो ? और क्या ? मैं कितने दिनोंसे देख रहा हूँ, इतना समय बीत गया तथापि तुम्हारा लड़कपन तो गया नहीं ? मैं देखते-देखते बड़ा हुआ, बूढ़ा हुआ और आज इस जीर्ण-शीर्ण अवस्थामें बैठा हूँ—परन्तु तुम कौन हो जो नित्य किशोर, अपूर्व सौन्दर्यशाली, सङ्गीत-सुरभिसे परिपूर्ण, मेरे हृदय-कुञ्जमें बैठे-बैठे इतनी तानें छेड़ रहे हो ? वंशीके सुरमें कितनी तरङ्गें भरकर सबको अपने चरणकमलकी ओर खींचे रखते हो ? संसारके साथ हृदयका जो संयोग-सूत्र मजबूतीसे बँध गया था, तुम्हारे आकुल आह्वानके स्वरसे वह सूत्र टूट गया ! सभीको खेलमें बुला रहे हो ? तो फिर घरमें कौन रहेगा ? अच्छा, तुमको खेल इतना अच्छा लगता है ? कितने दिनोंसे कितने खेल खेल रहे हो ? ओ ! इस अपने खेलको तुम क्या कभी बन्द नहीं करोगे ?

अच्छा, यदि खेल तुम्हें इतना प्यारा है, तो फिर इतने छिप-छिपकर क्यों खेलते हो ? तुम्हारी पूरी सूरत तो कभी नहीं दिखायी पड़ती । कभी पीठ, कभी पीठपर लटकती हुई वेणी, कभी कमल-कुसुमकी रक्त आभाके समान कोमल और दृढ़ करतल, कभी स्थल-कमलकी कान्तिके समान, बाल-रविकी अपूर्व लालिमाके सदृश दो छोटे-छोटे श्रीचरण, कभी शत शशधरके समान सुधा-सुन्दर श्रीमुख और कभी स्थिर विद्युत्‌की शोभाको अपहरण करनेवाली तुम्हारे नयन-कोरकी हास्य-रेखा दिखायी पड़ती है ! कभी वंशी-स्वर, सुन्दर-सुधासे भरित, हृदयको उन्मत्त करनेवाले अपने कोमल कण्ठके नीरव संगीतका प्रकाश कर, अपनी तनिक-सी झलक दिखाकर तुम किसी अदृश्य गृहमें छिप जाते हो ! नेत्र तुम्हें देखनेकी लालसासे ताकते-ताकते अन्धे हो गये, कान तुम्हारी मधुर वाणी सुननेकी आशामें स्तब्ध हो प्रतीक्षा करते-करते बहरे हो गये; अङ्ग तुम्हारे स्पर्शके लिये चिरकालसे क्रन्दन करते-करते विवश हो गये; मन तुम्हारी खोजमें चिन्ता करता-करता पागल हो गया ! हे चञ्चल, हे अनन्त, तो भी तुम नहीं मिले ! क्या तुम नहीं मिलोगे ? क्या यही तुम्हारा नियम है ? मैं अनन्त कालतक अपने अश्रुजलसे वक्षःस्थलको परिप्लावित करता रहूँगा और तुम पर्देमें बैठे-बैठे बाँसुरी बजाते रहोगे ? क्या यही ठीक होगा ? सुनता हूँ तुम बहुत बड़े आदमी हो । क्या इसीलिये तुमको असीम और अनन्त कहते हैं ? क्या यह ठीक है ? तो फिर तुम्हारा छोर पानेका क्या उपाय है ? यदि तुम इतने बड़े हो, मेरे मन-बुद्धिके अगोचर ही रहना चाहते हो, तो तुमने अपना रूप क्यों प्रकट किया था ? और क्यों मेरे मनमें अपने लिये इतनी व्याकुलता ही भर दी ?

मैंने समझा था कि तुम सूर्यकी अपेक्षा भी कितने गुने बड़े हो, न मालूम कितने सूर्य आकाशमें जड़े हुए तारोंके समान तुम्हारे अन्दर टिमटिमाते हुए झलमला रहे हैं । तुम इतने बड़े हो ! और मैं ? जो पृथिवी सूर्यके सामने एक तुच्छ पदार्थ है—मैं उसी पृथिवीके एक क्षुद्रतर प्रदेशके क्षुद्रतम अंशके एक कोनेमें छोटे-से-छोटा एक जीवमात्र हूँ ! तुम इतने बड़े होकर मेरी, इतने छोटेकी खबर क्यों रक्खोगे ? देशका एक बादशाह होता है, वह तो अपनी असंख्य प्रजामेंसे बहुत कमको जानता है और उनके व्यक्ति-गत सुख-दुःखसे भी उसका कुछ आता-जाता नहीं है । मैं समझता था तुम भी ठीक उसी प्रकारके हो ! इससे इतना-सा एक आनन्द था कि मैं तुम्हारी नजरसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बाहर एक प्रकारसे मजेमें हूँ। तुम अपनी महिमामें विराजमान हो, तो मैं अपने क्षुद्रत्वको लेकर एक कोनेमें पड़ा हुआ हूँ।

परन्तु तुम्हारी यह कैसी अद्भुत लीला है ? मैं जो इतना क्षुद्र हूँ और ये बालूके कण कितने छोटे हैं, तुम इनमेंसे किसीको नहीं भूलते—सभीके साथ तुम्हारा पूर्ण परिचय है ! इन क्षुद्रोंके पास भी तुम अपनी पूर्णता लिये सदा विराजमान हो ! किसीको दीन मानकर घृणा नहीं करते, क्षुद्र समझकर उपेक्षा नहीं करते; ऐसे क्षुद्रोंके साथ भी समानताका बर्ताव करते हो—इन्हें सखा कहकर पुकारते हो ! मैं सोचता था विश्वको लेकर तुम एक विराट् वस्तुके रूपमें पड़े हो, मेरे-जैसे अति क्षुद्र जीवको, पुकारनेपर तुम्हारा उत्तर क्यों मिलेगा ? हरि ! हरि ! हरि ! मैं छिपकर बगलसे निकल जाना चाहता हूँ, छोड़ना चाहता हूँ पर तुम नहीं छोड़ते ! तुम तो बिना ही पुकारे आकर खड़े हो गये ! यह कैसा तुम्हारा अद्भुत खेल है नाथ ? तुम्हारी यह कैसी व्यवस्था है ? मेरे भूलनेसे क्या होगा, तुम जो भूलने नहीं देते ! मैं तुम्हारी तरफ नहीं ताकता, इससे क्या हुआ ? तुम जो आँखोंकी दृष्टिको ही निकाले लेते हो ! अच्छा, मुझ इतने क्षुद्रके साथ यह तुम्हारा खेल कैसा ? मैंने सोचा था, तुम असीम, अनन्त, महान् विराट् हो, तुम्हारे रोम-रोममें कितने ब्रह्माण्ड बुद्बुदके समान उठते हैं और पुनः विला जाते हैं; फिर मेरी खबर तुम रक्खो, ऐसी सम्भावना कहाँ ? मैं खूब निश्चिन्त था। पर अब यह क्या देखता हूँ ? मेरी सारी समझ ही उलटी हो गयी। तुम तो मेरी पूरी खबर रखते हो। मेरे मनकी ही क्या ? घरकी कोई भी खबर तुम्हारी जानकारीसे अलग नहीं है ! अच्छा, बताओ तो, इतनी खबर कैसे रखते हो ? कितने ब्रह्माण्ड हैं, कितने जीव हैं, तुम एक-एककी पूरी खबर रखते हो, एक दिन भी भूल नहीं होती, यह सब कैसे करते हो ? इस बातपर विचार करते ही बुद्धि चकरा जाती है ! अच्छा, इतने बड़े थे तो इतने छोटे कैसे हो गये ? अवश्य ही छोटे हो गये हो, नहीं तो मेरे साथ-साथ कैसे घूम-फिर सकते ? तुम जो सर्वव्यापी और एक अखण्ड हो, जरासेके अन्दर और सबके अन्दर भी वही तुम सर्वव्यापी-अखण्ड,सच्चिदानन्दघन अनन्त ज्ञाननिलय ज्ञानरूपमें हो, और पुनः प्रत्येक क्षुद्र अवयवके सामान्य अंशमें भी तुम वही ज्ञानमय-प्रेममय हो। तुम्हारी यह कैसी लीला है ? बताओ तो, क्या यही तुम्हारी माया है ?

हृदयको कैसे समझाऊँ ? कैसे इस बातपर विश्वास करूँ कि तुम भी मुझको चाहते हो ? परन्तु यह जो प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि तुम मुझे एक घड़ीके लिये भी नहीं छोड़ते; मैं अपने प्रत्येक चिन्तनमें, प्रत्येक कर्ममें तुम्हारा अस्तित्व पाता हूँ—मेरे गोपनीय मनकी एकान्त कोठरीमें जो कुछ भी है, वह सभी तुम्हें ज्ञात है। तुम्हें किसी प्रकार भी धोका नहीं दिया जा सकता !

हे मायावी, एक बार इस अपने पर्देको हटा लो, घूँघट खोल दो, तुम्हारी आवरणहीन मुखश्रीको मैं एक बार देख लूँ !

हे पागल, हे अनादि-अनन्त कालके शिशु, हे नित्य अविनाशी, नित्य आनन्दमय किशोर, हे मेरे पुरातन, सर्वप्राचीन सनातन पुरुषोत्तम ! क्या मेरी प्रार्थना सुनोगे ? कमल-रक्त-राग-रञ्जित तुम्हारे श्रीचरणकी जो छाया मैंने देखी है, उसे क्या एक बार और दिखलाओगे ? कहाँ हो मेरे नयनभुलावन, मनलुभावन ? कहाँ हो मेरी आँखोंका नित्य आलोक, मेरे प्राणोंका परम पुलक ? तुम्हारी वह भुवनमोहिनी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हृदय-शीतलकरी मधुर मूर्ति कहाँ है ? अब कब-तक मुझसे अपने पूर्ण स्वरूपको छिपाये रक्खोगे ? एक बार आओ, अचानक आओ, उस अपनी अपूर्व मुनिमनलुभावनी माधुरीको लेकर, सुरासुरवन्दित अपूर्व शोभनश्रीको लेकर, एक बार मोहन-वेशमें मधुररूपमें मेरे हृदयदेशमें आकर खड़े तो हो जाओ ! तुम्हारे आवरणहीन परिपूर्ण अरूप रूपको देखकर इस मनुष्य-जीवनको सार्थक करूँ !

कालिञ्जर-यात्रा

(लेखक—श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी, एम० ए०, डिप्टी कलेक्टर)

भारतवर्षके इतिहाससे परिचित पाठक-गण सुप्रसिद्ध कालिञ्जरके दुर्गकी प्राचीनता तथा ऐतिहासिक महत्ताको अच्छी तरह जानते ही होंगे, पर उनमेंसे अधिकतर सज्जन कदाचित् इस बातको सुनकर आश्चर्य करेंगे कि कालिञ्जरका धार्मिक महत्त्व भी इस ऐतिहासिक कीर्तिसे किसी तरह कम नहीं है। इस दुर्गमें स्थित श्रीनीलकण्ठेश्वर-का गुफामन्दिर तथा अन्य देवताओंके स्थान अत्यन्त प्राचीन और महत्त्वशाली हैं। कालिञ्जरमाहात्म्य नामक पुस्तकके अनुसार यह गढ़ चतुर्युगी है। सत्ययुगमें इसका नाम केरतन था, द्वापरमें पिंगलगढ़, त्रेतामें महागढ़ और वर्तमान कलियुगमें कालिञ्जर है। प्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान् विल्सनका कहना है कि इस कालिञ्जराद्रि नामक पर्वतका उल्लेख वेदोंमें भी एक उत्कृष्ट तपस्या-स्थानके रूपमें मिलता है। अतः आज उसी कालिञ्जरका कुछ विवरण पाठकोंकी सेवामें भेंट किया जाता है।

महाभारत-वनपर्वके ८७ वें अध्यायमें कालिञ्जरगिरि तथा उसपर स्थित परमपुनीत हिरण्यविन्दु नामक सरोवर-का उल्लेख है। इसप्रकार कालिञ्जरका कम-से-कम ५००० वर्ष पूर्व एक सुप्रसिद्ध स्थान होना निर्विवाद ही मानना पड़ेगा। मेरी समझमें कालिञ्जर क़िलेका वर्तमान कोटितीर्थ नामक तालाब ही कदाचित् प्राचीन हिरण्यविन्दु-सरोवर है।

इस क़िलेके विषयमें यह किंवदन्ती प्रचलित है कि आदिमें यह केवल तपस्वियोंका निवासस्थान ही था और इस पर्वतपर सबसे पहले पाण्डवोंने क़िला बनवाया। वर्तमान दुर्गके विषयमें सुप्रसिद्ध चन्दबरदायी कविका कहना है कि यह चन्देलराजवंशके प्रथम राजा चन्द्रब्रह्मद्वारा ईसाकी तीसरी शताब्दीके मध्यमें बनवाया गया।

इतिहासकारोंका मत है कि वर्तमान इतिहासकालमें मध्यभारतके हैहय या चेदी राजवंशने ईसाकी तीसरी शताब्दीमें इस दुर्गको आक्रमण करके जीत लिया। प्रायः ३३६ ईस्वीके लगभग सम्राट् समुद्रगुप्तने इस दुर्गको अपने राज्यमें मिला लिया। इसके बाद करीब ५०० वर्ष-तक कालिञ्जरपर किसी आक्रमणका ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता। मालूम होता है कि ईसाकी नवीं शताब्दीमें खजुराहोके चन्देल-राजाओंने किसी युक्तिसे अपने पूर्वज राजा चन्द्रब्रह्मके बनवाये हुए कालिञ्जरको पुनः हस्तगत कर लिया। दसवीं शताब्दीके अन्तमें मुसल्मान ऐतिहासिक अबूरिहान कालिञ्जरके समृद्धिशाली नगरको खजुराहोके राज्यके अन्तर्गत लिखता है।

सन् १०२२ में महमूद ग़जनीने कालिञ्जरको आ घेरा, पर किसी कारण उसने आक्रमण न किया, राजासे सुलह कर ली। उस समयके राजा नन्ददेव थे। इन्हींके प्रपौत्र सुप्रसिद्ध परमाल या परमार्धिदेव थे, जो पृथ्वीराज तथा जयचन्दके समकालीन थे और जिनके समयमें चन्देलवंशका अन्त हुआ। प्रसिद्ध वीर आल्हा तथा ऊदल नामके बनाफर राजपूत, जो उग्र उपासक भी थे, इन्हीं परमालके सेनानायक थे। परमालके राज्यकालमें सन् १२०३ में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कुतुबुद्दीनने कालिञ्जरपर आक्रमण किया और उसे जीतकर देहलीके शासनके अन्तर्गत किया। पर मुसल्मानोंका प्रभुत्व छः वर्षसे अधिक न रहा। हिन्दुओंने फिर कालिञ्जर-पर दखल कर लिया। लगभग सवा तीन सौ वर्षतक कालिञ्जर पुनः हिन्दुओंके हाथमें रहा। बीच-बीचमें मुसल्मानोंके आक्रमण होते ही रहे, पर इस दुर्गकी अजेय दृढ़ताके सामने उनकी कुछ न चली। सन् १५३० में हुमायूँने कुछ कालतक कालिञ्जरपर अधिकार किया, पर शीघ्र ही उसे भी राजासे सन्धि करनी पड़ी। सन् १५४५ में शेरशाहने इस दुर्गके आक्रमणमें अपनी जान गँवायी। अकबरके समयमें कालिञ्जरके राजाने मुग़लोंसे मेल रखना ही उचित समझा और तबसे सत्रहवीं शताब्दीके अन्ततक कालिञ्जर मुग़ल-साम्राज्यका एक मुख्य अंग रहा। अठारहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें औरंगजेबके मरते ही सुप्रसिद्ध बुन्देला वीर महाराज छत्रसालने इस क़िलेको अपने हाथमें कर लिया। तबसे किसी-न-किसी रूपमें यह दुर्ग बुन्देलोंहीके पास रहा और अन्तमें सन् १८१२ में सन्धि-द्वारा अंगरेजोंके हाथमें आया। कुछ दिनतक तो अंग्रेजोंने कालिञ्जरमें सेना रक्खी, पर हालमें बीस-पचीस वर्षसे वह भी हटा ली गयी और नीचे शान्ति हो जानेके कारण दुर्ग-निवासियोंने भी गढ़के भीतर रहनेकी कोई आवश्यकता न समझी। वे नीचे आकर बस गये। उस समयसे कालिञ्जर-का क़िला उजाड़ पड़ा है और कोई भी वहाँ बे-रोक-टोक जा सकता है।

कालिञ्जर जानेके लिये सुगम मार्ग तो यह है कि रेलसे बाँदा जावे (यह स्टेशन G. I. P. R. की मानिकपुर—झाँसी-शाखापर चित्रकूट स्टेशनसे पाँच-छः स्टेशन आगे है)। बाँदासे बाईस मीलपर नरेनीतक मोटर-लारियाँ बराबर जाती हैं। नरेनीसे कालिञ्जर चौदह मील है और सड़क साधारण है। बैलगाड़ियाँ सुगमतासे मिल जाती हैं। बाँदा, नरेनी तथा कालिञ्जरकी तलहटीके ग्राममें किसी भी मन्दिरमें ठहरनेका प्रबन्ध हो सकता है। कालिञ्जर ग्राममें पं० गजाधर दुबेका मन्दिर है। वहाँ आरामसे दो-एक दिवस रह सकते हैं।

कालिञ्जरका क़िला कालिञ्जर ग्रामके निकट ही एक पूरी पहाड़ीपर बना हुआ है। इस पहाड़ीकी ऊँचाई नीचेकी सड़कसे सात-आठ सौ फ़ुट है। इस ऊँचाईका ऊपरी चौथाई भाग तो इतनी सीधी और खड़ी चट्टानोंका है कि उसपर चढ़नेमें कभी भी कोई आक्रमणकारी सफल नहीं हुआ। चट्टानें क्या हैं, सीधी दीवारें हैं। यही हाल चारों ओर है।

पहाड़ीके ऊपर प्रायः समतल भूमि ही है। इस समतल भूमिके चारों ओर लगभग चार-पाँच मील लम्बी एक बड़ी चौड़ी तथा सुदृढ़ दीवार बनी हुई है। यह दीवार उपर्युक्त खड़ी चट्टानोंपर बनी है और इसकी चौड़ाई प्रायः २५ फ़ुट है। अर्थात् एक ही समयमें तीन बैलगाड़ियाँ बराबर-बराबर इस दीवारपर चल सकती हैं। मैंने उत्तरी भारतके किसी भी दुर्गमें इतनी चौड़ी दीवार नहीं देखी। इस दीवारकी दृढ़ता तथा नीचेकी खड़ी चट्टानें ही इस दुर्गके अजेय होनेके मुख्य कारण हैं। इनके अतिरिक्त इस दुर्गके निर्माणमें बड़ा रण-कौशल छिपा हुआ है।

इस क़िलेको साधारणतः देखनेके लिये दस-बारह घण्टे चाहिये। पर्याप्त समय बिना पूरा-पूरा आनन्द नहीं आता। अतः यात्रियोंको प्रातःकाल पाँच-छः बजे स्नानादि-से निवृत्त होकर ऊपर चढ़ना चाहिये। साथमें भोजनके लिये कुछ ले लेना चाहिये, क्योंकि ऊपर कहीं कुछ नहीं मिल सकता। जल अवश्य स्थान-स्थानपर मिलता है। तीसरे पहरतक आनन्दसे नीचे आ सकते हैं। रात्रिको ऊपर ठहरना उचित नहीं। यहाँके लोगोंको तो रात्रिको कभी-कभी इस दुर्गमें बड़े-बड़े जटाधारी साधु दीख पड़ते हैं, जिनसे ये डरते हैं; पर स्थान उजाड़ होनेके कारण विशेष-रूपेण वन्य पशुओंकी आशङ्का रहती है।

आइये, अब आपको इस सुविख्यात दुर्गकी सैर करावें। यात्रियोंको चाहिये कि यथासम्भव देव-स्थानकी यात्रा इस-प्रकार करें कि तीर्थ दाहिनी ओर पड़े। अतः हमलोग भी दुर्गकी दीवारके साथ-साथ इस पुण्यक्षेत्रकी दक्षिणावर्त परिक्रमा करेंगे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस लेखके साथ दिये हुए मानचित्रको देख-देखकर नीचेका विवरण पढ़नेमें सरलतासे तीर्थों तथा अन्य स्थानोंकी स्थिति ही नहीं समझमें आवेगी वरं आनन्द भी आयेगा।

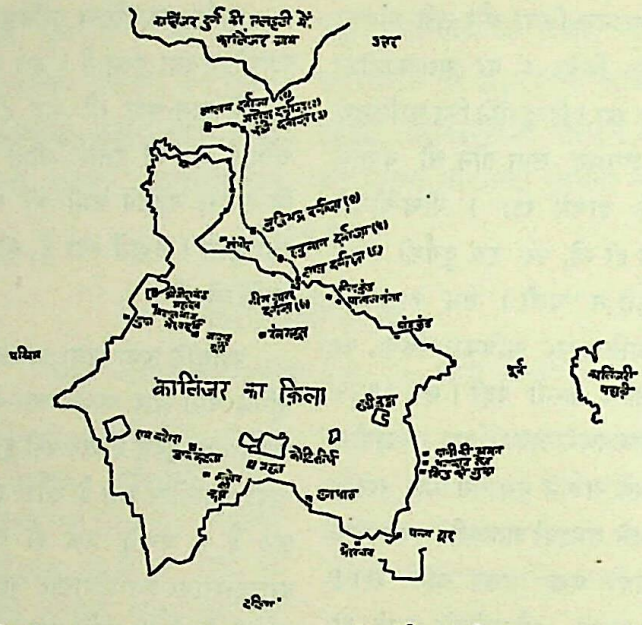

यात्रियोंको नीचे गाँवसे कोई पथ-प्रदर्शक साथमें ले लेना चाहिये। चार-छः आनेके पुरस्कार-में कोई भी जानेको तैयार हो जायेगा।

इस क़िलेमें केवल दो ही द्वार या फाटक हैं। इनमें-से पीछेकी ओरवाला पन्नाद्वार चुनवाकर बन्द करा दिया गया है। दूसरा द्वार मुख्य फाटक या नीम गारद दरवाजा है जिससे लोग क़िलेमें जाते हैं। कहीं-कहींपर क़िलेकी दीवार भी टूट गयी है और इन स्थानोंसे भी यहाँके लोग क़िलेमें आते-जाते हैं, पर यात्रियोंको इन मार्गोंसे न जाना चाहिये, क्योंकि गिरने-पड़नेका अधिक भय है।

उपर्युक्त नीम गारद नामक क़िलेके मुख्य द्वारपर पहुँचनेके लिये पहाड़की चढ़ाईपर छः बाहरी फाटकोंमेंसे होकर जाना पड़ता है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग है ही नहीं। इन बाहरी फाटकों या दरवाजोंके नाम आलम, गणेश, चण्डी, बुद्धिभद्र, हनुमान् तथा लालद्वार हैं। प्रत्येक फाटककी बनावट अपने ढंगकी निराली तथा उत्तरोत्तर अधिक सुदृढ़ है। इन फाटकोंमें देवमूर्तियाँ तथा ७००-८०० वर्ष पूर्वतकके पाषाण-लेख मिलते हैं। मालूम होता है कि दुर्ग-निर्माणके समय अथवा हिन्दू राजाओंके राजत्व-कालमें क़िलेके बाहर आत्माके पञ्चकोषोंकी तरह केवल पाँच ही बाहरी फाटक थे, क्योंकि आलम दरवाजा औरङ्गजेबके समयमें सन् १६७३ में बनवाया गया। तीसरे और चौथे फाटकोंके बीचमें रास्ता कुछ खराब हो गया है।

लाल दरवाजेसे एक पगडण्डी खम्भोर नामक स्थानको गयी है। यहाँ पहाड़में एक बड़ी-सी दालान खुदी हुई है जिसकी ऊपरी चट्टान कई खम्भों-पर रुकी है। इस दालान-को एक विशाल कुण्ड कह सकते हैं, क्योंकि वहाँ जल भरा हुआ है। पास-हीमें कन्धेपर बहँगी लिये हुए कई श्रमणोंकी प्रति-माएँ खुदी हैं और एक सात-आठ हाथ ऊँची भैरवनाथकी मूर्ति भी चट्टानमें बनी है। भैरवजी-के पास एक छोटी-सी स्त्री-मूर्ति बनी है जो कदाचित् भैरवीकी है।

खम्भोरसे लौटकर लाल दरवाजेको पार करके क़िलेमें प्रवेश कीजिये। नीम गारद फाटक वह स्थान है जहाँ कुछ कालतक ब्रिटिश पुलिसकी एक चौकी थी। यहींपर कई कब्रें तथा एक टूटी-फूटी मस्जिद है, जो हुमायूँ बादशाहके समयके अवशिष्ट चिह्न हैं।

अब रङ्गमहलको देखकर सीताकुण्डकी ओर चलिये। मार्गमें ४ अन्य महलोंके ध्वंसावशेष तथा उजाड़ बस्ती और टूटी बारकोंके चिह्न चारों ओर दीखते हैं। ये महल प्रायः बुन्देलोंके समयके हैं। इनकी बनावटसे उस समयके रहन-सहन तथा रक्षा-प्रणालीपर बड़ा प्रकाश पड़ता है।

इन्हीं महलोंके मार्गमें कई देवमूर्तियाँ मिलती हैं। ये बहुत पुरानी हैं और कम-से-कम १००० वर्ष पूर्व चन्देल राजाओंके समयकी प्रतीत होती हैं। एक स्थानपर माता और शिशु खड़े हैं और एक स्थानपर माता शिशुको स्तनपान करा रही है। दूसरे स्थानपर एक विचित्र तरहके पञ्चलिङ्ग महादेव हैं। कैथके बराबर चार गोले नीचे बने हैं और उनके ऊपर एक वैसा ही पाँचवाँ गोला बना है। ऐसी शिवमूर्ति कदाचित् ही कहीं और मिले।

इन चीज़ोंको देखकर आगे बढ़नेपर सीताकुण्ड मिलता है। एक छोटा-सा जलकुण्ड है, जिसके ऊपर एक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बैठी हुई प्रतिमा खुदी है। इसी कुण्डके समीप पहाड़में कटी हुई एक कोठरी है। यह कोठरी ईंट, पत्थर, चूना इत्यादिसे नहीं बनी है, किन्तु समूची-की-समूची चट्टानको छेनियोंसे काटकर बनायी गयी है। इस गुफागृहको देखकर बम्बई-प्रान्तके अजन्ता, इलोरा, एलिफेंटा, कनेरी, कारली, नासिक; उड़ीसा-प्रान्तके देवगिरि, उदयगिरि, खण्डगिरि; तथा गयाके गुफा-मन्दिरोंकी बनावटका अनुमान हो सकता है। कोठरी बड़ी सफाईसे बनी है और द्वारमें काठके दरवाजोंके लिये छिद्र बने हैं। भीतर सामने ही एक कोच-सा उसी तरह पत्थर काटकर गढ़ा गया है। इस कोचपर अनेक लेख और मितियाँ खुदी हुई हैं। मितियाँ चार सौ वर्ष पूर्वतककी हैं। सीताकुण्डके पास एक लेख ६५० वर्ष पूर्वका है।

सीताकुण्डके समीप ही पाताल-गङ्गा नामक स्थान है। इसकी बनावट भी अत्यन्त अद्भुत है। जिसप्रकार कोयले अथवा नमककी खानोंमें सुरंगें बनायी जाती हैं ठीक उसी प्रकारकी एक खड़ी सुरंग कुएँके रूपमें ४०-५० फीट नीचेतक गयी है। उतरनेके लिये छेनीसे गढ़ी हुई सीढ़ियाँ हैं। सुरंगके नीचे एक बड़ा-सा शुद्ध जलका कुण्ड है। बीचमें दो स्थानोंपर बड़े-बड़े छिद्र-से हैं, जिनमें हुमायूँके समयके फारसी लेख खुदे हुए हैं और जिनसे बाहरकी 'मुनिमनसामपि मोहनकारिणि' सुरम्य वनस्थली दीख पड़ती है। जिस समय यह लेखक इस सुरंगमें उतर रहा था उस समय ऐसा प्रतीत हुआ कि जलके समीप अन्तिम सीढ़ीपर कोई महात्मा चुपचाप बैठे हैं। पर नीचे पहुँचने-पर कोई नहीं मिला, न जलमें किसीके उतरनेका शब्द हुआ। ऐसे प्राचीन तपस्या-स्थानमें इसप्रकारकी घटनाएँ कोई अनोखी बात नहीं। सुरंगका अन्तस्तल जप करनेके योग्य बड़ा ही सुन्दर स्थान है। रास्तेमें उतरते समय अनेक चमगादड़ मिलते हैं।

पाण्डुकुण्ड नामक स्थान एक उभरी हुई चट्टानकी छोरपर एक अँधेरी सुरंगमें होकर जानेसे मिलता है। यहाँका छोटा-सा जलकुण्ड बड़ा ही स्वच्छ है। बराबर चट्टानोंके बीचसे जल आता रहता है और नीचे शब्द करता हुआ गिरता है। इस स्थानसे भी क़िलेके बाहरका दृश्य बड़ा ही सुन्दर लगता है।

पाण्डुकुण्डसे आगे बढ़कर जो ३ बुर्ज पड़ते हैं वे कालिञ्जरी नामक पहाड़ीके ठीक सामने हैं। सन् १८१२ ईस्वीमें अंग्रेजोंने इसी कालिञ्जरी पहाड़ीसे गोलाबारी करनेके उपरान्त धावा बोला था। पर परिणाम यही हुआ कि सैकड़ों जानें गँवाकर पीठ दिखलानी पड़ी। इस पराजय-के उपरान्त वह सन्धि हुई, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

इसके आगे बुड्ढी-बुड्ढा (बुद्धिभद्र) नामक तालाब है। यह चट्टानोंपर बना हुआ है और ५० फीट लम्बा तथा २५ फीट चौड़ा है। इसके चारों घाटोंपर सीढ़ियाँ बनी हैं। इस सरोवरका जल कुष्ठके लिये अत्यन्त लाभदायक माना जाता है। कहते हैं कि राजा कीर्तिब्रह्मका कुष्ठ इसी जलमें स्नान करनेसे अच्छा हुआ था। इस सरोवरके दाहिनी ओर कई इमारतोंके अवशेष विद्यमान हैं।

कुछ ही दूरपर क़िलेकी दीवार टूटी हुई है और नीचे जानेके लिये पगडण्डी बन गयी है। इस पगडण्डीसे उतरने-पर तीन स्थान मिलते हैं। सिद्धकी गुफा नामक स्थानपर खड़ी चट्टानमें बैठनेके लायक ताक़-से बने हैं, जिनमें कहा जाता है कि तपस्वी लोग बैठकर तपस्या करते थे। भगवान-सेजमें सीताकुण्डवाली गुफाके भीतरकी कोचकी तरह एक बेञ्च बनी है। पानीकी अमन भी एक गुफा है जिसका द्वार बड़ा छोटा है। इस कारण इसके भीतर घुटनोंके बल जाना होता है। भीतर जलकुण्ड है। इसी प्रकारका छोटा द्वार चुनारवाले दुर्गाखोहके मन्दिरमें है और ऐसे ही कुछ स्थानोंका उल्लेख Madame Blavatsky कृत 'Through Jungles and Caves of Hindustan' नामक पुस्तकमें मिलता है। प्रायः योगी लोग अपने योगाभ्यासकी गुफाओंके द्वार ऐसे ही बनाते हैं।

इन स्थानोंसे लौटकर आगे बढ़नेपर पन्नाद्वार मिलता है जो चुनवा दिया गया है और जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

पन्नाद्वारके समीप ही एक दूसरा बन्द द्वार है, जिसके पाससे फिर नीचेको पगडण्डी जाती है। इस मार्गसे पूर्वकी ओर लगभग एक फर्लांग जानेपर भैरवनाथका एक अति उग्र स्थान मिलता है। कहते हैं कि इस स्थानपर रीछ और मधुमक्खियाँ कभी-कभी मिलती हैं, पर मुझे इनमेंसे किसीके दर्शन नहीं हुए। यह स्थान अवश्य दर्शनीय है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नीचे तो छोटा-सा कुण्ड है और उसके १५-२० हाथ ऊपर सीधी चट्टानमें भैरवनाथजीकी विशाल मूर्ति है। मूर्तिके नीचे केवल एक फुट चौड़ा चट्टानका टुकड़ा है अन्यथा खड़े होनेका कोई स्थान नहीं। मूर्ति ६-७ हाथ ऊँची है और बड़ी भयङ्कर है। मैंने तो ऐसी उग्र भैरव-मूर्ति अबतक और कहीं नहीं देखी। मूर्ति नग्न है। गलेमें मुण्डमाल है और हाथोंमें तन्त्रोक्त अस्त्र-शस्त्रादि हैं। आकृति संहारकालीन है। इस मूर्तिको देखकर भैरवनाथजीका निम्न-लिखित ध्यान याद आ गया—

ध्यायेत्त्रैलोक्यकान्तं शशिशकलधरं मुण्डमालं महेशं
दिग्वस्त्रं पिङ्गकेशं डमरुमथ सृणिं शूलखट्वौ दधानम्।
नागं घण्टां कपालं करसरसिरुहैर्बिभ्रतं भीमदंष्ट्रं
सर्पाकल्पं त्रिनेत्रं मणिमयविलसत्किङ्किणीनूपुराढ्यम्॥

भैरवजीके समीप ही पूर्णाकृति भैरवीकी बैठी हुई मूर्ति है। इन दोनों मूर्तियोंके नीचे अनेकानेक लेख खुदे हैं, जिनमें सबसे पुराना संवत् ११८६ का अर्थात् ८०० वर्ष पुराना है। लोग इन भैरवजीको मिण्डकी (माण्डूक्य ?) भैरव कहते हैं।

क़िलेकी दीवारके भीतर इससे आगे मृगधारा नामक स्थान मिलता है। एक कोठरीमें झरना बहता है और उसके निकट पत्थरमें कई छोटे-छोटे मृग खुदे हुए हैं जिनकी संख्या ७ है। वास्तवमें यहाँ दो कोठरियाँ हैं और भीतरी कोठरीमें यह तीर्थ है।

कोटितीर्थ नामक सरोवर लगभग सौ गज़ लम्बा है और इसमें सीढ़ियाँ बनी हैं। इन सीढ़ियोंमें बहुतेरे नक़ाशीदार पत्थर लगे हुए हैं। समीपमें शिवजीका मन्दिर भी है। इस स्थानके दिव्य-भावसे मेरा यह अनुमान है कि कदाचित् महाभारतका हिरण्यबिन्दु-सरोवर यही है। पास ही पन्नाके राजा अमानसिंहका महल है।

वाचोप, जिसकी क्रूर आगे मिलती है, बुन्देलखण्डका कलक्टर था और यहाँ सन् १८१८ में मरा था।

रामकटोरा सरोवर भी बड़ा-सा जलाशय है। इससे कुछ दूरपर एक बड़ी सुन्दर काले पत्थरकी वाराहमूर्ति मिलती है। पूरे सूअरके क़दकी प्रतिमा है और टूटी हुई है। इसकी बनावटसे प्रतीत होता है कि यह बहुत ही पुरानी है। सम्भव है, मुसल्मान-शासनकालमें यह तोड़ी गयी हो।

इस मूर्तिके समीप ही दो फाटकोंसे होकर नीचेको कालिञ्जरके सुप्रसिद्ध श्रीनीलकण्ठेश्वरके मन्दिरको मार्ग गया है। इनमें एक द्वार तो राजा परमालका बनवाया हुआ है और दूसरा राजा अमानसिंह पन्नावालेका। प्रायः पचीस-तीस सीढ़ी उतरनेपर मन्दिर मिलता है। मार्गमें छोटे-छोटे मन्दिरोंमें श्रीराम-जानकी, हनूमान् इत्यादि-की मूर्तियाँ हैं, जो असाधारण बनावटकी हैं। यह असाधारणता उनकी प्राचीनताका द्योतक है।

श्रीनीलकण्ठेश्वरके मन्दिरके समीप ही कुछ सीढ़ियाँ चढ़कर एक बगलमें स्वर्गारोहण नामक खम्भोरके सदृश सरोवर है। इसी प्रकारका एक छोटा-सा गृहसरोवर चित्रकूटमें हनुमानधारा नामक स्थानमें है। स्वर्गारोहणके खम्भे खम्भोरसे अच्छे हैं। उनमेंसे एकपर गङ्गा-यमुना दो स्त्रियोंके रूपमें अङ्कित हैं।

श्रीनीलकण्ठेश्वरका मन्दिर एक बड़ी-सी गुफामें है, जिसके सामने मन्दिरके जगमोहन इत्यादि बने हैं। पर ये अब अधिकतर टूटे-फूटे पड़े हैं। गुफ़ाका अस्तित्व इस तीर्थके प्राचीनताका द्योतक है। सम्भव है, बाहरी मण्डप राजा परमालके समयमें बारहवीं शताब्दीमें बना हो। मन्दिरकी गुफ़ा श्रीविन्ध्यवासिनी क्षेत्रके अष्टभुजी-मन्दिरकी तरह है। भेद केवल इतना ही है कि यह गुफ़ा ऊँची तथा विस्तृत है। गुफ़ामें शङ्करजी मुखलिङ्गरूपसे दाहिनी ओर एक पत्थरपर विराजमान हैं। गुफ़ामें पार्वतीजी इत्यादिकी भी प्रतिमाएँ हैं। इस गुफ़ामें भीतर-ही-भीतर प्रयागके क़िलेमें अक्षयवटकी गुफ़ाकी नाईं एक संकीर्ण परिक्रमा बनी है जिसमें अनेक शिवलिङ्ग हैं।

गुफ़ाके बाहर एक भग्न मूर्ति गोरखनाथजीकी है। और उसीके समीप पड़े हुए कई स्तम्भोंमें तान्त्रिक भोगासन-की अनेक अश्लील मूर्तियाँ खुदी हैं।

गुफ़ाके पूर्व ओर एक चौबीस फीट ऊँची तथा विशाल कालभैरवकी मूर्ति है। उन्हींके पास एक छोटी कालीकी प्रतिमा है। दोनों मूर्तियोंका नीचेका भाग जलमग्न रहता है, क्योंकि वहाँ एक छोटा-सा कुण्ड है।

भैरवनाथसे थोड़ी दूरपर पूर्वकी ओर सीताकुण्डकी तरह एक गुफ़ा है, जिसके भीतर कई प्राचीन लेख हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मकर-संक्रान्ति तथा कार्तिकीपूर्णिमापर यहाँ बड़ा मेला लगता है और कानपुर, बाँदा, हमीरपुर तथा फ़तेहपुर ज़िलोंसे और रीवाँ इत्यादि रियासतोंसे ५-६ हजार यात्री आते हैं।

श्रीनीलकण्ठके दर्शनके उपरान्त और कोई विशेष द्रष्टव्य स्थान नहीं रह जाता। अतः चाहे खम्भोरके पाससे अथवा मुख्य फाटकसे नीचे आ जाना चाहिये।

कालिञ्जरसे चित्रकूट प्रायः ३०-४० मील दूर है।

मेरी समझमें तो प्रत्येक भक्त तथा ऐतिहासिकको कालिञ्जरका दुर्ग देखना चाहिये। इतने प्राचीन देवस्थान किसी एक स्थलमें अन्यत्र कम मिलेंगे और ऐसा सुदृढ़ दुर्ग भी सम्पूर्ण भारतवर्षमें कदाचित् ही कहीं और मिले।

नाम-माहात्म्य

(लेखक—श्रीमत्शङ्कर दण्डी स्वामीजी शङ्करानन्द तीर्थ)

वाच्यं वाचकमित्युदेति भवतो नाम! स्वरूपद्वयं
पूर्वस्मात्परमेव हन्त करुणं तत्रापि जानीमहे।
यस्तस्मिन् विहितापराधनिवहः प्राणी समन्ताद्भवे-
दास्येनेदमुपास्य सोऽपि हि सदानन्दाम्बुधौ मज्जति

'हे भगवन्नाम! तुम्हारे दो रूप हैं; एक वाच्य और दूसरा वाचक। तुम वाचक हो और भगवान् तुम्हारे वाच्य हैं। यद्यपि दोनों ही अभिन्न, एक तत्त्व हैं, तथापि वाच्य भगवान्की अपेक्षा उनका वाचक 'नाम' अधिक दयालु है। जो जीव भगवान्के सामने अनेकों अपराधोंके अपराधी हैं, वे केवलमात्र मुख-द्वारा नामकी उपासना करके अर्थात् नामकीर्तन करके निरपराधी हो जाते हैं एवं भगवान्की कृपा प्राप्त करके आनन्दसिन्धुमें निमग्न हो जाते हैं।'

जाति-शत्रु, पाण्डव-गृहिणी एकवस्त्रा द्रौपदीको सभाके बीच सबके सामने लाकर अपमानित और लाञ्छित करनेके उद्देश्यसे दुःशासनने जैसे ही द्रौपदीके परिधेय वसनमें हाथ लगाया, किसी ओर आत्म-रक्षाका उपाय न देख द्रौपदी अनाथनाथ, दीन-बन्धु, विपद्-तारण श्रीमधुसूदनको मनःप्राणसे, अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे पुकारने लगी—

गोविन्द द्वारिकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय।
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव॥
हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्त्तिनाशन।
कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन॥
कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन।
प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्येऽवसीदतीम्॥

'हे द्वारकावासी गोविन्द! हे गोपीजनप्रिय श्रीकृष्ण! कौरव मुझे अपमानित करनेके लिये घेरे हुए हैं, क्या तुम इसको नहीं जानते? हे नाथ! हे रमानाथ! हे दुःखहारी जनार्दन! कौरवरूपी समुद्रमें निमग्न हुई मुझको उबार लो। हे विश्वात्मा! विश्वभावन महायोगी श्रीकृष्ण! हे गोविन्द! कौरवोंके बीचमें असहाय और निराश होकर तुम्हारे शरणापन्न मेरी रक्षा करो।' भगवान्ने तत्काल पुकार सुन ली। दुःशासन साड़ी पकड़कर ज़ोरसे खींचता हुआ उसे खोलना चाहता है, उस साड़ीका अन्त नहीं आता। दस हजार हाथियोंके समान बल रखनेवाले दुःशासनको थककर अन्तमें बैठ जाना पड़ा।

'दस हजार गज-बल घट्यो, घट्यो न दस गज चीर।'
'दुःशासनकी भुजा थकित भइ, बसनरूप भये श्याम'

सभी जानते हैं कि उस घोर विपत्तिके समय भगवान् श्रीकृष्ण मधुसूदन द्वारकामें थे और यह घटना हस्तिनापुरकी कुरु-सभामें हुई थी। किन्तु भगवान्का नाम उच्चारण करनेसे द्रौपदीकी लाज

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बच गयी और उसके मानकी रक्षा हुई। धन्य है नामकी महिमा!

श्रीमद्भगवद्गीताके दशम अध्यायमें भगवान् श्रीमुखसे कहते हैं—'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि'—सब यज्ञोंमें मैं 'जप-यज्ञ' हूँ। ब्रह्मयज्ञ, तपोयज्ञ, प्राणयज्ञ, इन्द्रिय-निग्रह-यज्ञ, स्वाध्याय-यज्ञ, दान-यज्ञ, देव-यज्ञ प्रभृति नाना प्रकारके यज्ञोंका विवरण वेदोंमें देखा जाता है। परन्तु भगवान् सब यज्ञोंमें नामस्मरणरूपी जप-यज्ञको ही श्रेष्ठ कहते हैं। नाम-माहात्म्यके विषयमें इसकी अपेक्षा अधिक प्रशंसा और क्या हो सकती है?

वैष्णवखण्डके मार्गशीर्ष-माहात्म्यमें भगवान् स्वयं कहते हैं—

पापानलस्य दीप्तस्य भयं मा कुरु पुत्रक।
श्रीकृष्णनाममेघोत्थैः सिच्यते नीरविन्दुभिः॥

'हे पुत्र! प्रदीप्त पापाग्नि देखकर भीत न होना। श्रीकृष्णके नाम-रूपी बादलोंकी बूँदोंसे यह आग बुझ जायगी।' आगेके श्लोकमें वे फिर कहते हैं—

कलिकालभुजङ्गस्य तीक्ष्णदंष्ट्रस्य किं भयम्।
श्रीकृष्णनामदारूत्थवह्निदग्धः स नश्यति॥

'हे पुत्र! कलिकालरूपी सर्पकी तेज दाढ़ोंसे क्या भय है? श्रीकृष्णके नामरूपी दावानलमें दग्ध होकर वह नष्ट हो जायगा।'

दूसरे शास्त्रमें लिखा है—

नराणां विषयान्धानां ममताकुलचेतसाम्।
एकमेव हरेर्नाम सर्वपापविनाशनम्॥

'विषयान्ध, मायाजालमें बँधे हुए जीवोंके उद्धारके लिये एकमात्र हरिका नामकीर्तन ही उपायस्वरूप है। कीर्तनके प्रभावसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं।'

पद्मपुराणमें कहा है—

कीर्तनादेव कृष्णस्य विष्णोरमिततेजसः।
दुरितानि विलीयन्ते तमांसीव दिनोदये॥
नान्यत् पश्यामि जन्तूनां विहाय हरिकीर्तनम्।
सर्वपापप्रशमनं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तम॥

'जिसप्रकार सूर्योदय होनेसे अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार अपरिमित प्रभावशाली भगवान्के नामकीर्तनद्वारा मनुष्यके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। हे द्विजोत्तम! सब प्रकारके पापोंके नाश करनेवाले भगवन्नाम-कीर्तनके अतिरिक्त कलियुगमें दूसरा कोई प्रायश्चित्त नहीं है।'

स्कन्दपुराणमें कहा है—

हर हर हर शब्दमादितो वै
मुहुरभिधाय मुनीन्द्रवर्यवृन्दः।
अपठदखिलमेघघोषतुल्यं
सकलहिताय नमः शिवाय शब्दम्॥

'श्रेष्ठ मुनियोंने सबके कल्याणके लिये मेघ-गर्जनके समान उच्च स्वरसे 'हर हर हर' कहकर 'नमः शिवाय' पाठ किया, जिसके श्रवणमात्रसे नरकके जीवगण मुक्त होकर शिवलोकमें चले गये।'

विष्णुपुराणमें भी कहा गया है—

अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः।
पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्मृगैरिव॥

'जिसप्रकार सिंहके भयसे हरिण भाग जाते हैं उसी प्रकार अवश होकर भी नामकीर्तन करनेसे समस्त पाप पापीको त्यागकर भाग जाते हैं।'

गरुडपुराणमें नाममाहात्म्यके सम्बन्धमें लिखा है—

हरेर्नाम्नश्च या शक्तिः पापनिर्हरणे द्विज।
तावत्कर्त्तुं समर्थो न पातकं पातकी जनः॥

'भगवन्नाममें पाप नाश करनेकी इतनी शक्ति

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वर्तमान है कि पापी पुरुष समस्त जीवनमें उतना पाप ही नहीं कर सकता।'

वैष्णवखण्डमें श्रीभगवान् ठीक यही बात कहते हैं—

नाम्नोऽस्य यावती शक्तिः पापनिर्दहने मम।
तावत्कर्त्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः॥

अन्यत्र कहा गया है कि—

तरणिरिव तिमिरजलधेः
जयति जगन्मङ्गलं हरेर्नाम।

'जगत्का मङ्गल करनेवाला भगवन्नाम माया-मोह-दुःखसे परिपूर्ण संसार-सागरको पार करनेके लिये नौकारूप है।' महाप्रभु गौराङ्गदेव कहते हैं—

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्याविधूज्जीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्॥

'भगवान् श्रीकृष्णके नामकीर्तनके प्रभावसे चित्त-रूपी दर्पण निर्मल होता है एवं विषयवासनाका दावानल बुझ जाता है। चन्द्रोदय होनेपर जैसे पद्मिनी विकसित हो उठती है, उसी प्रकार भगवन्नाम-कीर्तनके द्वारा आत्माका पुण्य-पुष्प खिल उठता है। नामकीर्तनसे विद्यारूपी चन्द्रका उदय होता है, अतएव नाम विद्याको जीवन देनेवाला है। भगवन्नाम आनन्दसिन्धुको बढ़ानेवाला है, पद-पदमें पूर्णामृतका स्वाद प्रदान करता है। समस्त जगत्के आत्माको नामप्रेमके आनन्द-समुद्रमें निमग्न करनेवाला श्रीकृष्ण-कीर्तन विजयको प्राप्त हो।'

× × × ×

चारों युगोंमें कौन युग श्रेष्ठ है? किस युगमें थोड़ी साधनाके द्वारा महान् फल प्राप्त होता है?—इसी बातको लेकर एक समय मुनियोंमें विवाद उपस्थित हो गया। 'नाना मुनियोंके नाना मत।' किसीने कहा सत्ययुग श्रेष्ठ है, किसीने कहा त्रेता श्रेष्ठ है। किसीने द्वापरको, तो किसीने कलियुग-को श्रेष्ठ बतलाया। स्वयं कुछ निश्चित न कर सकनेके कारण सभी मुनि भगवान् व्यासजीके निकट निर्णयके लिये गये। व्यासके आश्रमपर पहुँचकर उन्होंने देखा कि व्यासजी पवित्रसलिला जाह्नवीमें स्नान कर रहे हैं। वे निकटस्थ एक वृक्षके नीचे खड़े होकर उनकी प्रतीक्षा करने लगे। परमज्ञानी व्यासदेव मुनियोंके आगमनके कारणको जान स्नान करते हुए ही बीच-बीचमें बोलने लगे—'हे कलियुग, तुम धन्य हो! हे कलि, तुम्हीं साधु हो।'

जब स्नान करके व्यासदेव अपने आश्रममें आये, तब मुनिलोग भी वहाँ पहुँच गये। यथाविधि अभिवादन कर सबने आसन ग्रहण किया और वेदव्यासजीने उनसे आगमनका कारण पूछा। वे अत्यन्त विनम्र शब्दोंमें बोले—हे महाज्ञानी प्रभु! एक विषयके सन्देहको दूर करनेके लिये हम आपके श्रीचरणोंमें उपस्थित हुए हैं, परन्तु उस विषयको हम आपके सामने पीछे रखना चाहते हैं। पहले हमें जाननेकी इच्छा होती है कि आप स्नान करते समय 'धन्य कलियुग! हे कलि, तुम्हीं साधु हो' ऐसा कहकर कलियुगका गुणगान किसलिये कर रहे थे। यदि आप हमलोगोंको योग्य समझें तो कृपा करके हमें इसका मर्म सुनाकर कृतार्थ कीजिये।

व्यासदेव बोले—

यत्कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन यत्।
द्वापरे यच्च मासेन अहोरात्रेण तत्कलौ॥
तपसो ब्रह्मचर्यस्य जपादेश्च फलं द्विजाः।
प्राप्नोति पुरुषस्तेन कलिः साध्विति भाषितम्॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'हे द्विजश्रेष्ठवृन्द ! सत्ययुगमें दस वर्ष परिश्रम करनेपर, त्रेतामें एक वर्ष साधन करनेपर तथा द्वापरमें एक मास यत्न करनेपर तपस्या, ब्रह्मचर्य, जप प्रभृतिके द्वारा जो फल प्राप्त होता है, कलियुगमें केवल एक दिन-रातकी साधनाके द्वारा मनुष्य वही फल प्राप्त कर सकता है । इसी कारण 'धन्य-धन्य' कहकर मैंने कलियुगका गुण-कीर्तन किया था । मुनियोंने पूछा—हे प्रभो ! सत्य, त्रेता और द्वापर-युगमें इतने दिन परिश्रम करके ध्यान, यज्ञ, पूजा, जप प्रभृतिसे अति कष्टपूर्वक जो फल प्राप्त होता है, वह फल कलियुगमें एक दिन-रात्रिमें किस साधनाके द्वारा प्राप्त हो जाता है ?'

उत्तरमें व्यासजी कहते हैं—

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥

'सत्ययुगमें ध्यान-धारणाके द्वारा, त्रेतामें यज्ञके द्वारा, द्वापरमें पूजा-अर्चनाके द्वारा जो फल प्राप्त होता है, कलियुगमें केवल भगवन्नामके कीर्तनके द्वारा मनुष्यको वही फल प्राप्त हो सकता है ।'

स्कन्दपुराणमें भगवान् स्वयं कहते हैं—

सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् ।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥

'जिसने एक बार 'हरि' इन दो अक्षरोंका उच्चारण किया वही मोक्षके लिये कमर कसकर तैयार हो गया ।'

केदारखण्डमें भक्तप्रवर प्रह्लाद कहते हैं—

रामनाम जपतां कुतो भयं
सर्वतापशमनैकभेषजम् ।
पश्य तात मम गात्रसन्निधौ
पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना ॥

अग्निसे बाहर निकलकर प्रह्लाद अपने पितासे कहने लगे—'हे पितृदेव ! राम-नाम जप करनेवालेको भय कहाँ ? राम-नाम समस्त तापोंको नाश करनेवाली सञ्जीवनी बूटी है । मेरा शरीर देखिये, अग्नि भी इसके लिये शीतल हो गयी !'

विष्णुपुराणमें कहा है—

अविकारी विकारी वा सर्वदोषैकभाजनः ।
परमेशपदं याति रामनामानुकीर्तनात् ॥

'विकाररहित, विकारयुक्त या समस्त दोषोंकी खानि मनुष्य भी रामनामके कीर्तनद्वारा परमात्माके परमपदको प्राप्त कर सकता है ।'

श्रीचैतन्यचरितामृतमें कहा है—

कलिकाले नामरूपे कृष्ण-अवतार ।
नाम हैते हय सर्व जगत् विस्तार ॥
नाम बिना कलिकाले नाहि आर धर्म ।
सर्व-मन्त्रसार नाम एइ शास्त्रमर्म ॥
कृष्ण-मन्त्र हैते हबे संसार-मोचन ।
कृष्ण-नाम हैते पाबे श्रीकृष्ण-चरन ॥

महात्मा कबीर कहते हैं—

केसव केसव कूकिये, न कूकिये असार ।
रात-दिवसके कूकते कभी तो सुनैं पुकार ॥

इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

रामनाम रटते रहो, जब लग घटमें प्रान ।
कबहुँ तो दीनदयालके भनक परैगी कान ॥
चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम-प्रभाऊ। कलि बिसेष नहिं आन उपाऊ॥
कलिजुग केवल नाम अधारा। सुमिरि सुमिरि भव उतरहु पारा॥

महात्मा नानकजी कहते हैं—

भय-नासन दुर्मति-हरन कलिमहँ हरिको नाम ।

नाम-माहात्म्यके प्रसङ्गमें परमहंस श्रीरामकृष्ण-देवने कहा था—

'भगवान्‌के नामसे सब पाप कट जाते हैं । काम, क्रोध, शरीरकी सुखेच्छा, ये सब भाग जाते हैं ।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीचैतन्यदेवने कहा है—

ईश्वरके नामका बड़ा माहात्म्य है; शीघ्र ही फल न हो तो भी कभी-न-कभी फल होगा ही । किसी घरकी छानपर बीज रख दिये थे, बहुत दिनों बाद वह मकान गिर पड़ा, तब वे बीज भी मिट्टीमें पड़ गये और उनसे फल उत्पन्न हो गये ।

साधकने नाम-महिमाका कीर्तन करते हुए गाया है—

आमि दुर्गा दुर्गा बले मा मरि ।
आखेरे ए दीने, ना तारे के मने,
जाना जाबे गो शंकरी ॥

'हे मा ! यदि मैं दुर्गा-दुर्गा कहकर मरता हूँ तो हे शङ्करी ! देखूँगा, आखिर इस दीनको तुम कैसे नहीं तारती हो ।'

× × ×

संयुक्तप्रान्तके कान्यकुब्ज-भागमें अजामिल नामक एक बड़ा ही सदाचारी, शास्त्रज्ञ, जितेन्द्रिय, सत्यवादी, देव-द्विजगुरुभक्तिसम्पन्न, दयालु ब्राह्मण रहता था । वह अपनी आतिथेयताके लिये सारे देशमें प्रसिद्ध था । उसकी सती सहधर्मिणी परम सुन्दरी और देवद्विज तथा अतिथिसेवामें छायाकी भाँति सहायिका थी । एक दिन अजामिल पिताकी आज्ञासे फल, फूल, समिधा आदि लानेके लिये वन गया था । वहाँसे लौटते समय रास्तेमें एक शराब पिये हुए मतवाले शूद्रको किसी वेश्याके साथ निर्लज्जरूपसे हँसते, गाते और रमण करते देखा; क्षणभरके कुसंगका भी बहुत बुरा प्रभाव उसके मनपर पड़ा । पवित्र ब्राह्मण युवकका चित्त चञ्चल हो उठा; वह कामपीड़ित हो अपनी वंशमर्यादा, शास्त्रज्ञान, लोकसम्मान, धर्म, कर्म और पतिव्रता सती साध्वी सहधर्मिणी सबको भुलाकर उस वेश्यामें आसक्त हो गया । पिताकी सारी सम्पत्ति वेश्याकी सेवामें नष्ट हो गयी । घरका सारा धन लुटा देनेके बाद दरिद्र अजामिल नाना प्रकारके बुरे उपायोंसे धन-संग्रह करके उस वेश्या और वेश्याकी सन्तानका पालन-पोषण करने लगा । ऐसा कोई पाप नहीं था जो उसने वेश्याके मनोरञ्जनके लिये न किया हो । उक्त स्वैरिणीके गर्भसे उसके दस सन्तान हुई । इनमें सबसे छोटे लड़केका नाम 'नारायण' था । 'नारायण' पर उसका बहुत अनुराग था, वह नारायणको छोड़कर क्षणभर भी अलग नहीं रह सकता था । आखिर अजामिलका मृत्युकाल आ पहुँचा । मृत्युके समय भीषण-मूर्ति यमदूतोंको देखकर अजामिलका हृदय भयके मारे काँप उठा और वह जोर-जोरसे 'नारायण' नाम ले-लेकर पुत्रको पुकारने लगा । मृत्युके समय अजामिलके मुखसे भगवान्‌का पवित्र नाम सुनते ही भगवान् विष्णुके पार्षद वहाँ आ पहुँचे । उन्होंने आकर देखा, यमदूत अजामिलकी आत्माको यमपुरी ले जानेकी तैयारी कर रहे हैं । विष्णु-पार्षदोंने यमदूतोंको समझाया और नहीं माननेपर धमकाकर अजामिलकी आत्माको उनके हाथोंसे छुड़ा लिया । भगवान्‌के वे सभी पार्षद नवीन किशोर-वयस्क, कमलनयन, पीताम्बरधारी, किरीटमुकुट-सम्पन्न थे; उनके मनोरम चतुर्भुज शंख-चक्र-गदा-पद्मसे सुशोभित हो रहे थे । ऐसे सुन्दर-दर्शन भगवद्वेशधारी पवित्र पुरुषोंका सहसा आना और बलपूर्वक अजामिलकी आत्माको छुड़ा लेना देखकर यमदूतोंके आश्चर्यका पार नहीं रहा । क्योंकि उनके लिये यह बिल्कुल नयी बात थी । यमराजको छोड़कर मृत जीवोंका विचार और शासन करनेवाला दूसरा भी कोई है, इस बातको वे जानते ही नहीं थे । अतः वे चुप रह गये और थोड़ी देर बाद विष्णु-पार्षदोंसे बोले—

'वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः ।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'वेदमें जिन कर्तव्यकर्मोंका निर्देश किया गया है, वे ही धर्म हैं; उनके विपरीत आचरण करनेको ही अधर्म कहते हैं।' इसके बाद उन्होंने अजामिलके वेद-विरुद्ध आचरणोंका इतिहास सुनाकर शेषमें कहा इस 'अकृत-प्रायश्चित्त पापीको हम दण्डधारी यमराजके पास ले जायँगे। वहाँ यह पापी अपने पापोंका यथोचित दण्ड पाकर शुद्ध हो जायगा।'

यह सुनकर विष्णुके पार्षद बोले—

अयं हि कृतनिर्वेशो जन्मकोट्यंहसामपि।
यद्व्याजहार विवशो नाम स्वस्त्ययनं हरेः॥
एतेनैव ह्यघोनोऽस्य कृतं स्यादघनिष्कृतम्।
यदा नारायणायेति जगाद चतुरक्षरम्॥
स्तेनः सुरापो मित्रध्रुग्ब्रह्महा गुरुतल्पगः।
स्त्रीराजपितृगोहन्ता ये च पातकिनोऽपरे॥
सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम्।
नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः॥
न निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवादिभि-
स्तथा विशुद्ध्यत्यघवान् व्रतादिभिः।
यथा हरेर्नामपदैरुदाहृतै-
स्तदुत्तमश्लोकगुणोपलम्भकम्॥
नैकान्तिकं तद्धि कृतेऽपि निष्कृते
मनः पुनर्धावति चेदसत्पथे।
तत्कर्मनिर्हारमभीप्सतां हरे-
र्गुणानुवादः खलु सत्त्वभावनः॥
अथैनं माऽपनयत कृताशेषाघनिष्कृतम्।
यदसौ भगवन्नाम म्रियमाणः समग्रहीत्॥
साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥
अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्।
सङ्कीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथाऽनलः॥

(श्रीमद्भा० ६। २। ७—१४, १८)

'इस अजामिलने एक जन्मकी तो क्या, करोड़ों जन्मोंके समस्त पापोंका प्रायश्चित्त कर लिया है, क्योंकि इसने विवश दशामें मोक्ष प्रदान करनेवाले श्रीहरिके नामका उच्चारण किया है। जब इसने 'नारायण! आओ' कहकर भगवान्‌के चार अक्षरों-वाले 'नारायण' नामका उच्चारण किया, तभी इस पापी अजामिलके समस्त पापोंका प्रायश्चित्त हो गया। जो मनुष्य ब्राह्मणका स्वर्ण चुराता है, मद्यपान करता है, मित्रद्रोही है, गुरु-पत्नीगामी है, ब्राह्मण, स्त्री, राजा, पिता-माता एवं गौका वध करनेवाला है, तथा अन्यान्य महापापोंका करनेवाला है, उस महापापी-के लिये श्रीविष्णुभगवान्‌का नामोच्चारण ही उत्तम प्रायश्चित्त है। क्योंकि भगवान्‌के नामोच्चारणके द्वारा परमेश्वरका ज्ञान—ब्रह्मविद्या उत्पन्न होती है। श्रीहरि-के नामोच्चारणद्वारा पापी मनुष्य जिसप्रकार शुद्धता प्राप्त करते हैं, वेदज्ञाता मनु प्रभृति महानुभावोंके द्वारा उपदिष्ट द्वादशवर्षव्यापी प्रायश्चित्तद्वारा पापीकी वैसी शुद्धि नहीं होती। क्योंकि भगवान्‌के नामोच्चारणसे मनमें महायशस्वी परमेश्वरके गुणोंका प्रकाश होता है, किन्तु व्रतसे केवल पापोंकी निवृत्ति ही हो सकती है। व्रतादि प्रायश्चित्तके द्वारा पूर्ण पवित्रता प्राप्त नहीं होती, क्योंकि प्रायश्चित्त करनेके बाद भी मन पाप-मार्गमें दौड़ता रहता है। अतएव जो लोग पापोंका मूलोच्छेद कर परम शुद्धि प्राप्त करना चाहते हैं, उनके लिये श्रीहरिका नामोच्चारण ही उत्तम प्रायश्चित्त है। क्योंकि नामोच्चारण पापके मूल अज्ञानको दूर कर अन्तःकरणको अत्यन्त शुद्ध करता है। अतएव हे यमदूत! तुम इस ब्राह्मणको न ले जाओ क्योंकि मृत्युकालमें इसने भगवन्नामका उच्चारण कर समस्त पापोंका प्रायश्चित्त कर लिया है। किसी भी बहानेसे, परिहासमें, संगीतके पद पूर्ण करनेके लिये अथवा अवज्ञाके रूपमें वैकुण्ठाधिपति भगवान्‌के नाम-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

का उच्चारण करनेसे वासनासहित पाप नष्ट हो जाते हैं। शास्त्र-रहस्यके जाननेवाले विद्वान् इसको भली-भाँति जानते हैं। ज्ञात या अज्ञातरूपसे जिसप्रकार काष्ठमें अग्नि डालनेसे वह काष्ठको जला डालती है उसी प्रकार जाने या अनजाने, जैसे भी हो, भगवान्‌के नामका कीर्तन करनेसे कीर्तनकारीके समस्त पाप भस्मीभूत हो जाते हैं।'

इसप्रकार कह विष्णुके पार्षदोंने अजामिलको यम-पाशसे छुड़ा लिया। अजामिलके परमपदकी प्राप्ति-की बात कहकर ज्ञानिशिरोमणि परमभागवत श्रीशुकदेव राजा परीक्षितसे कहने लगे—

एवं स विप्लावितसर्वधर्मा
दास्याः पतिः पतितो गर्ह्यकर्मणा।
निपात्यमानो निरये हतव्रतः
सद्यो विमुक्तो भगवन्नाम गृह्णन्॥
नातः परं कर्मनिबन्धकृन्तनं
मुमुक्षतां तीर्थपदानुकीर्तनात्।
न यत्पुनः कर्मसु सज्जते मनो
रजस्तमोभ्यां कलिलं ततोऽन्यथा॥
म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पुत्रोपचारितम्।
अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन्॥
(श्रीमद्भा० ६। २। ४५-४६, ४९)

'इस दासीपति अजामिलके समस्त धर्म नष्ट हो गये थे, चोरी आदि निन्दित कर्मोंके करनेसे वह ब्राह्मणत्वसे भ्रष्ट हो गया था तथा यमदूत उसे नरकमें ले जा रहे थे, परन्तु भगवन्नामके उच्चारणमात्रसे वह यमपाशसे मुक्त हो गया। अतएव मोक्षकी कामना करनेवाले पुरुषके लिये तीर्थपाद भगवान्‌के नाम-कीर्तनकी अपेक्षा पापोंका समूल उच्छेद करनेवाला दूसरा कोई भी श्रेष्ठ उपाय नहीं है। क्योंकि कीर्तनके प्रभावसे मन पुनः कुकर्ममें आसक्त नहीं होता, परन्तु देखा जाता है कि अन्यान्य प्रायश्चित्त करनेपर भी मन राजसिक और तामसिक गुणोंसे मलिन होकर पुनः पापाचरणमें प्रवृत्त हो जाता है। मृत्युकालमें विवश होकर पुत्रभावसे हरिनाम उच्चारण करनेसे ही अजामिलको भगवद्धामकी प्राप्ति हुई थी। अतएव श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भगवद्भावनाके साथ नाम-कीर्तन करनेवाले निष्पाप पुरुष परमधामको प्राप्त होंगे, इसमें सन्देह ही क्या हो सकता है?'

× × ×

प्राचीन कालमें नन्दिग्राममें पुष्कर नामके दो ब्राह्मण वास करते थे। उनमेंसे एक आस्तिक-बुद्धिसे युक्त, स्वधर्मपरायण, देवता और ब्राह्मणोंके प्रति भक्ति-सम्पन्न था और दूसरा इसके विपरीत पापोंमें जीवन बिताता था। जब पापी पुष्करका मृत्युकाल निकट आया तो यमराजने अपने दूतोंको उसे लानेके लिये भेजा। दूत भूलसे उसके बदले पुण्यात्मा पुष्करको यम-भवनमें ले गये। उसे देखते ही यमराजको दूतोंकी भूल मालूम हो गयी और भविष्यके लिये उन्होंने दूतोंको सावधान करते हुए बड़ी फटकार बतलायी। इसके बाद पुष्करका यथेष्ट सम्मान कर यमराज कहने लगे—'हे पुष्कर! तुम्हें लानेके लिये मैंने दूतोंको आज्ञा नहीं दी थी, ये भ्रमवश तुम्हें ले आये हैं, तुम पुनः अपने देहमें चले जाओ।' पुष्करने कहा—'हे धर्मराज! पृथिवीपर रहते समय अनेकों बार नरककी बात मैंने सुनी है, अब यहाँ आ जानेपर नरक देखनेकी मेरी इच्छा हो रही है, मुझे एक बार नरक दिखला दीजिये।' धर्मराज उसको नरकमें ले गये। नारकीय जीवोंका यन्त्रणा-पूर्ण हाहाकार सुनकर पुण्यात्मा पुष्करके प्राण रो उठे, उन्होंने उनसे कहा—'अब हाहाकार क्यों करते हो? क्या पहले तुम्हें यह मालूम नहीं था? सर्व पापोंके नाश करनेवाले भगवन्नामके रहते हुए

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भी तुमलोग इस भीषण यन्त्रणादायक नरकमें आये हो, यह बड़े ही आश्चर्यकी बात है !' नरकस्थ जीव बोले—'हे पुण्यात्मा महानुभाव पुष्कर ! आप जो कह रहे हैं, वह बिल्कुल सच है। जो हो, कुछ समयतक आप कृपाकर यहाँ ठहरें, आपके शरीरको स्पर्श करनेवाले वायुके सेवनसे हमें शान्ति मिल रही है।' इसपर यमराज बोले—'हे पुष्कर ! तुम्हें इन सब बातोंसे क्या मतलब ? चलो, तुम्हें अपने घर पहुँचा दें।' दयार्द्र-हृदय कोमल-प्राण पुष्करने कहा—'हे धर्मराज ! इन सब पीड़ा-कातर जीवोंका उद्धार किये बिना इस स्थानसे जानेकी मेरी इच्छा नहीं होती।' इतना कहकर वह भगवान्‌के पतितपावन नामका कीर्तन करने लगा—

गोविन्द गोविन्द हरे मुरारे
गोविन्द गोविन्द मुकुन्द कृष्ण।
गोविन्द गोविन्द रथाङ्गपाणे
गोविन्द दामोदर माधवेति॥

भक्तके मुखसे सर्वपापनाशक परम कल्याणकारी भगवन्नामको सुनकर उस नरकमें रहनेवाले सभी जीव मुक्त हो गये और दिव्य रूप धारण कर—'हे पुष्कर ! तुम्हारी यह कीर्ति अक्षय होगी'—ऐसा कहते हुए वैकुण्ठ चले गये ! इसी कथाका स्मरणकर ब्रह्माजी अपने पुत्र नारदजीसे कहते हैं—

नामस्मरणमाहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते।
पुष्करेण यथा पूर्वं नारकीयाश्च मोचिताः॥
(स्कन्द० वैष्णव० कार्तिकमा० २। ४५)

× × ×

नामका ऐसा माहात्म्य होते हुए भी जीवको नरकमें पड़ते देखकर व्यासदेव आश्चर्यान्वित होकर कहते हैं—

नारायणेति शब्दोऽस्ति वागस्ति वशवर्तिनी।
तथापि नरके घोरे पतन्तीति किमद्भुतम्॥

'नारायण' शब्दके वर्तमान रहते एवं नाम-कीर्तनके लिये जीभके वशमें होते हुए भी जीव नरकमें गिरता है, यह कैसी अद्भुत बात है ?' अन्यत्र लिखा है—

जिह्वां लब्ध्वाऽपि यो विष्णुं कीर्तनीयं न कीर्तयेत्।
लब्ध्वाऽपि मोक्षनिःश्रेणीं स नारोहति दुर्मतिः॥

'जिह्वा प्राप्त करके भी जो कीर्तनीय भगवान्‌के नामका कीर्तन नहीं करता वह दुर्मति मोक्ष-प्राप्तिकी सीढ़ी प्राप्त करके भी उसपर नहीं चढ़ता।' दूसरी जगह शास्त्रमें लिखा है—

नामाश्रयः कदाचित् स्यात् तरत्येव स नामतः।

'नामका आश्रय लेकर रहनेसे नामके प्रभावसे किसी समय निश्चय ही उसका उद्धार होगा।'

महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव कहते हैं—

नामेर फले कृष्णपदे प्रेम उपजय।

'नामके फलसे श्रीकृष्णके चरणोंमें प्रेम उत्पन्न होता है।'

भगवन्नाम त्रिताप-तप्त मनुष्यको शान्ति प्रदान करता है, दुःखसागरमें मग्न जीवका उद्धार कर उसे सुख-स्थानमें ले जाता है, महापापीके पापोंको दूरकर उसे पवित्र करता है एवं मायारूपी अन्धकारमें ज्योतिरूप धारणकर मुक्तिका मार्ग दिखा देता है। भवसागरमें डूबते हुए जीवके लिये भगवन्नाम नौका-स्वरूप है, मुक्तिमार्गके पथिकके लिये यह यथार्थ बन्धु है, अन्तःकरणकी मलिन वासनाका नाश करनेके लिये यह दिव्य ओषधि है, और भगवान्‌से भेंट करानेके लिये यह यथार्थ मित्र है। भगवन्नाम भक्तोंका परम संबल है, ज्ञानियोंका परम धन है। विषयरूपी विषसे भरे हुए इस संसारमें भगवन्नाम अमृतके समान मधुरसे भी मधुरतम है। स्कन्दपुराणके प्रभास-खण्डमें सूतजी कहते हैं—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मधुरमधुरमेतन्मङ्गलं मङ्गलानां
सकलनिगमवल्लीसत्फलं चित्स्वरूपम् ।
सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा
भृगुवर ! नरमात्रं तारयेत् कृष्णनाम ॥

'हे भृगुवंशीय शौनक ! श्रीकृष्ण-नाम सब शास्त्रोंका श्रेष्ठ फल है, चैतन्यस्वरूप मङ्गलका मङ्गल एवं मधुरसे भी मधुर है । श्रद्धापूर्वक जो इस नामका गान करता है उसे यह संसार-सागरसे पार कर देता है; यही क्यों, एक बार मात्र अवज्ञासे भी इस नामको लेनेसे मनुष्य भवसागरसे तर जाता है ।'

बड़े भाग्यसे नाममें प्रेम होता है । प्रेमसे मधुरता उत्पन्न होती है । मधुरताका स्वाद पानेसे तन्मयता आती है । तन्मय होनेसे जो आनन्द होता है वह स्वयं वेद्य है और स्वयं ही उसका बोध होता है । इस माधुर्यको परम सौभाग्यवती व्रज-गोपिकाओंने प्राप्त किया था ।

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप-
प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुमुख्यो
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥

'व्रजस्त्रियाँ धन्य हैं ! वे गौ दुहते समय, धान कूटते समय, दधि-मन्थनके समय, गोबरके द्वारा आँगन लीपते समय, झूलेमें झूलते समय, रोते हुए बालकको शान्त करते समय, मसाला साफ करते समय, प्रेमपूरित साश्रु नयनोंसे श्रीकृष्णचन्द्रका नामकीर्तन करती हैं ।' व्रजनारियोंको श्रीकृष्ण-नामका माधुर्य प्राप्त हुआ था, इसी कारण वे किसी भी समय इस मधुमय नाम-कीर्तनके लोभको नहीं त्याग सकीं ।

प्रेमावतार श्रीगौराङ्गदेवकी कृपा प्राप्तकर न्याय-वेदान्त-सांख्य-मीमांसा-शास्त्रके अध्यापकशिरोमणि वासुदेव सार्वभौम महाशयने हरिनामके मधुर रससे मत्त होकर कहा था—

परिवदतु जनो यथा तथायं
ननु मुखरो न ततो विचारयामः ।
हरिरसमदिरामदेन मत्तो
भुवि विलुठाम नटाम निर्विशाम ॥

'सांसारिक पुरुष मेरी जितनी चाहें निन्दा करें—मैं उसका कुछ भी विचार नहीं करता, जिसे मुख है वह जो इच्छा हो कहे । मैं तो हरिरसमदसे मत्त होकर कभी पृथिवीपर लोटता हूँ, कभी नाचता हूँ और कभी सो जाता हूँ ।'

सौभाग्यवश जिन्होंने एक बार भगवन्नामके रसका स्वाद पाया है, उनके सामने पृथिवीके समस्त विषयोंका स्वाद नीरस और तुच्छ हो जाता है ।

× × × ×

जिसप्रकार भगवान्‌की महिमा और लीलाका अन्त नहीं है, उसी प्रकार उनके नामका माहात्म्य भी अनन्त है । नाम और नामी अभिन्न हैं, नाम साक्षात् ब्रह्म है । जिसप्रकार अचिन्त्य शक्ति भगवान् जीवोंके उद्धारके लिये उन्हें उपदेश देनेके लिये नररूपमें अवतीर्ण होते हैं—

अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमाश्रितः ।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥
नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप ।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥

—उसी प्रकार जीवके उद्धारके लिये नाम भी अपने अनादिकालीन नित्य अवतारूपमें विद्यमान हैं । यह नामावतार कलिमें विशेषरूपसे प्रकट है । क्योंकि कलिके असहाय, अल्पायु, दुर्बल जीवोंपर प्रेममय भगवान्‌की विशेष दया होती है ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नाम-साधनके समान निर्दोष, सरल, सुगम और सार्वजनिक साधन संसारमें दूसरा और नहीं है। छोटे-बड़े, धनी-निर्धन, रोगी-नीरोग, पण्डित-मूर्ख, ब्राह्मण-चाण्डाल सबका इसमें समान अधिकार है। इसमें उम्रकी कोई कैद नहीं, योग्यताका प्रश्न नहीं, स्थानका विचार नहीं, कालका विचार नहीं, वर्णका विचार नहीं, जातिका विचार नहीं और न स्त्री-पुरुषका ही कोई प्रश्न है।

न देशकालनियमः शौचाशौचविनिर्णयः।
परं सङ्कीर्तनादेव रामरामेति मुच्यते॥

नाम-साधनामें न तो किसी प्रकारका परिश्रम होता है और न व्यय। भगवान्‌के जिस नाममें जिसकी रुचि हो, प्रीति और विश्वास हो—उसी नामका ही श्वास-प्रश्वासके साथ जप करते रहो। हाथसे काम करो, मनमें जप या मुखसे नामोच्चारण करो—समय आनेपर स्वयं ही नामका माहात्म्य समझकर अपनेको धन्य मानोगे तथा नामके प्रभावसे शाश्वत आनन्दकी प्राप्तिके अधिकारी हो सकोगे। ॐ, शिव, दुर्गा, काली, तारा, राम, कृष्ण, हरि, नारायण, केशव गोविन्द, जनार्दन प्रभृति एक ही भगवान्‌के विभिन्न नाम हैं, प्रत्येक नाम अनन्त शक्तिमय और परम कल्याणकारी है।

नाम-साधन इसप्रकारका सहज और सुगम साधन-मार्ग है। परन्तु हम ऐसे अभागे हैं कि इसप्रकारका उपाय प्राप्त करके भी उसे ग्रहण नहीं करते।

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।
एतादृशी तव कृपा भगवन् ममापि
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः॥

'हे भगवन्! जीवोंके कल्याणके लिये आपने अनेकों नामोंको प्रकट किया है तथा नाममें अपनी पूर्ण शक्ति अर्पण कर दी है। भजन करनेके लिये काल, अवस्था, अधिकार आदिका कोई भी नियम नहीं है। आपकी तो ऐसी असीम कृपा है और हमारा ऐसा दुर्भाग्य है कि नाममें हमें प्रेम ही नहीं उत्पन्न हुआ।'

भगवन्नामकी अपार महिमा है। नामके प्रभावसे ही भक्तराज हनुमान्‌ने भगवान्‌को अपने वशमें कर लिया था—

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखेउ रामू॥
(रामचरितमानस)

भक्त नामके माहात्म्यसे जिस समुद्रको अनायास पार कर गये थे उसी समुद्रको पार करनेके लिये स्वयं भगवान्‌को पुल तैयार करना पड़ा था। यह सभी जानते हैं कि प्रह्लाद, ध्रुव आदिने नामके प्रभावसे ही भगवान्‌का दर्शन प्राप्त किया था।

शास्त्र और साधु-महात्माओंने सभी युगोंके लिये नाम-महिमाका कीर्तन किया है, परन्तु कलियुगके लिये तो नाम-साधनके अतिरिक्त दूसरे साधनमें मनुष्यका अधिकार नहीं है, एवं नामके समान मुक्तिकी प्राप्तिके लिये और दूसरा मार्ग नहीं है। मुक्तकण्ठसे ऐसा निर्देश करते हैं—

रामेति वर्णद्वयमादरेण
सदा स्मरन्मुक्तिमुपैति जन्तुः।
कलौ युगे कल्मषमानसाना-
मन्यत्र धर्मे खलु नाधिकारः॥

"'राम' इन दो अक्षरोंके श्रद्धापूर्वक स्मरण करनेसे जीव मुक्ति प्राप्त कर सकता है। कलियुगमें पापियोंके पाप-नाशके लिये अन्य किसी प्रकारके साधनमें जीवका अधिकार नहीं है।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपनी सम्पूर्ण शोभाको धरातलके अणु-अणुमें बिखेर दिया है। यह समस्त जगत् ही हरिमय, माधवमय हो जाता है। विराट् प्रकृतिके रंगमञ्चपर माधवकी यह माधुर्यपूर्ण लीला समस्त चराचरको बेसुध कर देती है। यों तो अनन्त काल ही प्रभुकी सुगन्धमय निःश्वाससे सुगन्धित तथा अनुप्राणित है, परन्तु वसन्तकी इसी महामोहकताने ही 'ऋतूनां कुसुमाकरः' के रूपमें प्रभुकी पावन झाँकीका स्वाद पाया है। फूलोंके भारसे झुकी हुई लता-वल्लरियों तथा मञ्जरियोंकी सुगन्धसे मँह-मँह करती अमराइयोंके भीतरसे कृष्णकी मधुर मुरलीका मोहक स्वर कितना स्पष्टतः सुन पड़ता है! विश्वके अणु-अणुमें बिखरे हुए अपने प्रभुकी इस अतुल शोभाको देखकर किसका हृदय बरबस खिंच नहीं जाता?

इसी होलीकी गोदमें हमारी कितनी ही धार्मिक स्मृतियाँ सोयी हुई हैं। प्रभुके अनन्य सेवक और अटल भक्त प्रह्लादकी भी परीक्षा तो इसी रातको हुई थी। पिताने देखा कि किसी प्रकार भी समझाने-बुझानेसे यह हठी बालक अपना हठ छोड़ता नहीं, 'राम-नाम' छोड़ता नहीं—तो सोचा कि इसे आगकी भट्ठीमें ही झोंककर काम तमाम कर दें। बच्चेकी फूआ 'होलका' 'फायर प्रूफ' थी ही। वह गोदमें बालक प्रह्लादको लेकर बैठी परन्तु……!! वही बेचारी भस्म हो गयी और भक्त प्रह्लाद तो हँसता हुआ उस भयंकर भट्ठीसे बाहर निकल आया; उसका शरीर केवल पसीना छूट जानेके कारण परम शीतल अथ च स्वस्थ हो गया था! यह है भगवान्‌के चरणोंमें अनन्य भावसे आत्मसमर्पणका शुभ परिणाम! भगवान्‌को अपने शरणापन्न भक्तकी कितनी अधिक चिन्ता होती है! 'हम भक्तनके भक्त हमारे' की विरुद भगवान्‌ने कितनी तत्परतासे निबाही है! 'मत्प्रसादात्तरिष्यसि' की कितनी सुन्दर व्याख्या, प्रह्लादकी होलीवाली रातकी कठिन परीक्षा है!

होलीकी रातहीको प्रेमकी दिव्य मूर्ति श्रीश्रीमहाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्यदेवजीका अवतार इस वसुन्धरापर हुआ था। संवत् १५४२ के फाल्गुनकी पूर्णिमाको ही माता शचीकी कोखमें भगवान् श्रीचैतन्यदेवने इस वसुन्धराको कृतार्थ किया था। सन्ध्याका समय था। सूर्यकी लाल-लाल किरणें वसुन्धरापर अपनी शोभा बिखेर रही थीं। होलीके दिन प्रेमसे यों ही वसुन्धरा सराबोर रहती है, उसपर प्रेमके इस देवताका विशुभ्र ज्योतिः-पुञ्ज! नवद्वीपके उस महापुरुषने समस्त संसारको दिव्य प्रेमका साक्षात्कार कराया, सभीको प्रेमका अमृत पिलाया। आज भी 'हरि बोल, हरि बोल,' 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे' तथा 'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव' के रूपमें कीर्तन करते समय कृष्णके साक्षात् अवतार महाप्रभु श्रीगौराङ्गदेवकी मधुर स्मृति हरी हो आती है और सहसा यह श्लोक स्मरण हो आता है—

हे देव! हे दयित! हे भुवनैकबन्धो!
हे कृष्ण, हे चपल, हे करुणैकसिन्धो!
हे नाथ! हे रमण! हे नयनाभिराम!
हा! हा! कदानुभवितासि पदं दृशोर्मे॥

धन्य है होलीकी रात, जिसकी गोदमें प्रेमावतार श्रीचैतन्यदेवकी मधुर तथा पावन स्मृति विद्यमान है। जब-जब होली आती है, तब-तब मानो पुनः श्रीकृष्णचैतन्यजी हमारे बीच आ जाते हैं और प्रेमकी वंशी टेरकर हमारे हृदयको हरिके चरणोंमें सर्वभावेन समर्पित करनेके लिये प्रेरित कर जाते हैं। धन्य है, परमधन्य है होलीकी यह रात!!

होलीके दिन हम पुराने वस्त्रको परित्यागकर नवीन वस्त्र धारण करते हैं। शरीरका मैल उबटन लगाकर छुड़ाते हैं तथा शरीरको भीतर-बाहर पवित्र तथा सुगन्धित करते हैं। केसरका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चन्दन और रोली लगाते हैं। इसका वास्तविक महत्त्व न समझकर हममेंसे अधिकांश लोग केवल बाह्य शोभा-शृंगारमें ही होलीके दिनको नष्ट कर देते हैं। होलीका दिन हमारे लिये नवीन जीवनका सन्देश लाता है। जिसप्रकार हम शरीरका मैल हटाकर मनको स्वच्छ और पवित्र कर लेते हैं, उसी प्रकार आत्माको भी प्रभुके चरणोंमें समर्पित कर, सर्वभावेन भगवान्‌की शरणमें जाकर अपना वास्तविक कल्याण कर सकते हैं। जिसप्रकार शरीरका मैल छुड़ाते हैं, उसी प्रकार मनपर जमी हुई काईको भी धो डालना चाहिये और हृदयके दर्पणको इतना स्वच्छ और सुविमल कर दिया जाय कि भगवान्‌का रूप उसमें भलीभाँति देखा जा सके। जिस-प्रकार उस दिन हम पुराने वस्त्र छोड़कर नये वस्त्र धारण करते हैं, उसी प्रकार हमें पुराने, जीर्ण, मलिन तथा कुत्सित विचारोंका सर्वथा परित्याग कर नवीन उत्साह और प्रेमसे प्रभुके पथमें चलकर भक्ति, ज्ञान और वैराग्यकी साधनामें प्रवृत्त हो जाना चाहिये। इस त्योहारपर पुराने वस्त्रोंको छोड़कर नये वस्त्र धारण करनेका एक और भी अभिप्राय है और वह यह है कि हम भली-भाँति समझें कि इस कायाके बनने-मिटनेसे आत्मा बनती-मिटती नहीं। जिसप्रकार हम पुराने वस्त्रको छोड़कर नया वस्त्र धारण कर लेते हैं, उसी प्रकार यह आत्मा भी पुराने, जीर्ण, जर्जर शरीरको छोड़कर नया वस्त्र धारण कर लेती है। समस्त कल्मषको धोकर पवित्र हो जाना ही, भीतर-बाहर निर्मल, शुद्ध, सात्त्विक हो जाना ही होलीका उद्देश्य है और प्रतिवर्ष वह हमारे लिये यही सन्देश लाती है।

होलीके दिनका पारस्परिक मिलना भी देखने-हीकी, अनुभव करनेहीकी वस्तु है। कितने निश्छलभावसे हम एक दूसरेसे मिलते हैं! वैर, विरोध, घृणा, द्वेष आदि होलीके मधुर वाता-वरणमें लापता हो जाते हैं और सर्वत्र हम अपने हरिको देखकर गद्‌गद हो जाते हैं; ऐसा प्रतीत होता है मानो 'विश्ववन्धुत्व'का बहिया छूट पड़ा हो। 'सर्वं खल्विदं श्रीकृष्णः' का एक अनन्त, परम पावन अथ च दिव्य स्रोत वसुन्धरा-पर बह पड़ा हो और हम समस्त जीव—पशु, पक्षी, कीट, पतंग, चर, अचर उस परम शोभाका पान कर-कर आत्म-विस्मृत हो जाते हैं। बिना किसी दुराव अथवा छिपावके, हृदयसे हृदय मिलते हैं! कितना सुन्दर और आह्लाददायक होता है! राजा-रंक, बड़े-छोटे, अमीर-गरीबका भाव कम-से-कम उस दिन तो मिट ही जाता है!!

देशकी स्वतन्त्रताके साथ-ही-साथ हमने अपने त्योहारोंका सौन्दर्य भी नष्ट कर दिया। धार्मिक और सामाजिक जीवनमें सदाचार और निष्ठाका प्रायः लोप हो रहा है और असदाचरण, आडम्बरने डेरा जमा दिया है। होली-जैसे पवित्र और राष्ट्रीय त्योहारपर भी हम समाजमें कितनी गन्दगी और अनाचारका बीज बो देते हैं। होलीके दिनों किसी भी स्त्रीको 'भावज' बना डालना तो साधारण बात है। स्त्रियोंको बुरी दृष्टिसे देखना, उनकी ओर घूरना, उनपर आवाजें कसना और चुहलबाजी करना होलीके दिनका साधारण नित्यकर्म हो जाता है। वेश्या और वारुणीकी बाढ़-सी आ जाती है। गाँजा-भाँग तो उसकी साधारण आवश्यकतामें सम्मिलित कर ली जाती है। गन्दी-गन्दी गालियोंकी वर्षा-सी होती रहती है—पुरुष-स्त्रीका भेद-भाव मिटाकर, बड़े-छोटेका भाव अलग कर जिस-तिसके मुखपर अबीर-गुलाल मल दी जाती है। रंगभरी पिचकारियाँ जिसपर न छूट जायँ, कीचड़ जिसपर न उछाल दिया जाय! गन्दी और अश्लील बातें तो कानूनन जायज़ समझी जाती हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यह है पराधीन देशके एक पतित समाजका रोमाञ्चकारी दृश्य ! ऐसा कौन आदमी होगा जो देश और समाजके कल्याणकी कामना न करता हो—जो इस दूषित और गन्दी प्रथाके खिलाफ बगावत करनेके लिये उत्सुक न हो। अपनेको 'मनुष्य' कहनेवाले प्रत्येक व्यक्तिका—चाहे वह पुरुष हो अथवा स्त्री—यह एकमात्र कर्त्तव्य हो जाता है कि यदि उसे हिन्दू-समाजमें रहना है, यदि अपनेको ऋषि-मुनियोंकी सन्तान कहनेका गर्व है तो इस महानाशक तथा पतनकारी प्रथाका समूल अन्त कर दे, और समाजमें इस नवीन ज्योतिको फैलानेवाले परम दिव्य दिवसको व्यक्ति, समाज, देश और लोकको सदाचारी, पवित्र, शुद्ध, भगवद्भक्ति-परायण, धर्मात्मा, साधु तथा सज्जन बनानेमें लगा दे। स्वयं तो आचरण तथा उपदेशद्वारा समाजमें एक आदर्श जीवनकी सृष्टि करे ही, साथ ही अपनी शक्तिभर इस पावन अवसरसे लाभ उठानेकी कोशिश करे। हमारी समझमें ऐसे पुण्य-अवसरोंपर समाजको कल्याण-मार्गकी ओर प्रेरित करनेके कुछ ऐसे तरीके हो सकते हैं—

(१) होलीके प्रमुख उद्देश्यको जनताको समझाया जाय। प्रह्लादकी कथा सरल हिन्दीमें सभीको सुनायी-समझायी जाय।

(२) गाँव-गाँवमें, घर-घरमें यज्ञ किया जाय, हवन किया जाय और इस-प्रकार समस्त वातावरण पवित्र तथा सुगन्धित किया जाय।

(३) सत्संगका खूब प्रचार हो। उस अवसरपर ब्रह्मचर्य और पातिव्रत धर्मकी महिमा कही जाय और भक्तिकी विशद व्याख्या की जाय।

(४) हरिकीर्तनका विराट् आयोजन हो। प्रत्येक ग्राममें लोग घूम-घूमकर भक्ति और ज्ञानसे ओतप्रोत गीत गावें तथा सदाचारका प्रचार करें।

(५) श्रीचैतन्यमहाप्रभुका जन्म होलीके दिन ही हुआ था। उनकी जन्मतिथिका उत्सव समारोहके साथ मनाया जाय।

(६) होलीके दिन मृदंग, झाँझ, ताल आदिके साथ नगर-कीर्त्तन निकाला जाय और उसमें सभी लोग प्रेमसे मिलें, यथायोग्य रोली-अबीर लगावें।

ज्ञानगुदड़ी

मानुष शरीर पुण्यपुंजसे मिले है कभी; इसे पाय विषयोंके बीच भरमाये हो।
दारा-सुत-नाती, धराधाम आदि नाशवान वस्तुओंमें व्यर्थ सदा चित्त भटकाये हो॥
व्रजके विहारी, घनतुल्य तापहारीके न पादपंकजोंमें मन-भृंगको लगाये हो।
भूले! पांथ, भोले! जरा यह तो विचारो तुम कौन, कहाँ जाओगे, कहाँसे चल आये हो॥

—वासुदेव शास्त्री

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भक्त-गाथा

भक्त कण्डु मुनि

प्राचीन कालमें कण्डु नामक एक तपोनिष्ठ मुनि थे। गोमतीके तीरपर एकान्त स्थलमें कण्डु मुनिका नाना प्रकारके पुष्पोंसे सुशोभित, कन्द-मूल-फलपूर्ण परम रमणीय आश्रम था। मुनि उस आश्रममें निवास करते हुए व्रत, उपवास, नियम, स्नान, मौन और संयमादिसहित परम अद्भुत महान् तपस्या करने लगे। वे गरमीके दिनोंमें पञ्चाग्नि तपते, वर्षा-ऋतुमें खुली जगहमें भूमिपर शयन करते और जाड़ेकी मौसिममें भीगा वस्त्र पहनते। उनका इस-प्रकारका उग्र तप देखकर देवता, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधरादि सभी आश्चर्यमें डूब गये। देवराज इन्द्रको मुनिकी तपस्या देखकर बड़ा भय हुआ। सकामभावसे की हुई महान् तपस्याका फल स्वर्ग या स्वर्गराज्यके आधिपत्य—इन्द्रपदकी प्राप्ति है। इसीलिये इन्द्र ऐसे सकाम तपस्वियोंसे डरा करते हैं। इन्द्रने देवताओंके साथ सलाह करके प्रम्लोचा नाम्नी अति सुन्दरी, चिरयौवना अप्सराको कामदेवादिके साथ मुनिकी तपस्या भंग करनेके लिये भेजा। प्रम्लोचा उग्रतपा मुनिके शाप-भयसे एक बार तो जानेको तैयार नहीं हुई, परन्तु अन्तमें देवराज इन्द्रके आग्रहसे उसे जाना पड़ा। दलबलसहित प्रम्लोचाने मुनिके आश्रममें पहुँचकर मधुर स्वरसे गायन आरम्भ किया। वसन्तने अपनी शक्तिका विस्तार किया। पुष्पधन्वा मदनने मुनिके मनमें क्षोभ पैदा कर दिया। भगवान्‌के आश्रयसे रहित, अपने तपोबलपर अभिमान करनेवाले, उग्रतपा मुनि मदनमोहित होकर प्रम्लोचाके वशमें हो गये! इन्द्रका उद्देश्य सिद्ध हुआ, मुनिका तप भंग हो गया। एकान्तमें स्त्रीके दर्शन-मात्रसे ही बड़े-बड़े तपस्वी मुनियोंके मन डिग जाते हैं। इसीलिये साधकको सावधान करते हुए शास्त्रोंने 'स्त्री और स्त्रीसंगियोंके संग' का भी त्याग करनेकी आज्ञा दी है। पाश्चात्य सभ्यताके उपासक जो भोले भाई आजकल स्त्री-पुरुषोंके अमर्यादितरूपसे साथ रहने, साथ पढ़ने और एकान्तमें मिलने-जुलने आदिमें कोई आपत्ति नहीं समझते, वे इस महान् कुपरिणामको भूल रहे हैं! प्रथम तो स्त्री-पुरुषका एकान्तमें मिलन ही बहुत बुरा है, दूसरे जो अभिमानी मनुष्य सद्बुद्धि-प्रेरक सर्वशक्तिमान् भगवान्‌के बलपर भरोसा नहीं करता, ईश्वरके आश्रयमें विश्वास नहीं करता, उसका तो स्त्रीके साथ एकान्तमें मिलकर बचना उतना ही कठिन है, जितना जलती हुई अग्निमें गिरकर सूखे काठका बचना! कण्डु मुनिका भी यही हाल हुआ। उन्होंने कामपरवश हो वाराङ्गना प्रम्लोचाको अपने आश्रममें रख लिया और तपोबलसे चिरकालके लिये सुन्दर षोडशवर्षीय युवक बनकर उसके साथ रहने लगे। प्रम्लोचा उनका तपोबल देखकर दंग रह गयी।

तपस्वी मुनि मोहवश स्नान, सन्ध्या, होम, स्वाध्याय, देवतार्चन, व्रत, उपवास, नियम, ध्यान आदि सब कुछ भूलकर, रात-दिन उसी अप्सरामें आसक्त रहने लगे। उन्हें अपने तप-नाशकी बात भी याद नहीं रही। मोह यहाँतक बढ़ा कि उन विषयासक्त मुनिको सुबह-शाम, दिन-रात, पक्ष-मास, ऋतु-वर्ष आदि गतकालका भी कुछ पता नहीं रहा।

स्नानं सन्ध्यां जपं होमं स्वाध्यायं देवतार्चनम्।
व्रतोपवासनियमं ध्यानञ्च मुनिसत्तमाः॥
त्यक्त्वा स रेमे मुदितस्तया सार्द्धमहर्निशम्।
मन्मथाविष्टहृदयो न बुबोध तपःक्षयम्॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सन्ध्यारात्रिदिवापक्षमासर्त्वयनहायनम्।
न बुबोध गतं कालं विषयासक्तमानसः॥

इसप्रकार कण्डु मुनिको विषय-सेवनमें सौ वर्षसे अधिक बीत गये। तब एक दिन प्रम्लोचाने कहा—'भगवन्! मैं अब स्वर्ग जाना चाहती हूँ, कृपा करके आज्ञा दें।' आसक्तचित्त मुनिने कहा—'कल्याणि! कुछ समय और ठहर जाओ।' पुनः सौ वर्ष बीतनेपर प्रम्लोचाने फिर जानेकी आज्ञा माँगी, तब मुनिने पुनः वैसे ही कुछ समय और ठहरनेको कहा। यों शताब्दियोंपर शताब्दियाँ बीतने लगीं। प्रम्लोचाकी स्वर्ग जानेकी इच्छा बार-बार होती परन्तु वह तपस्वी मुनिके शापके भयसे बिना आज्ञा जा नहीं सकती। वह जब-जब मुनिसे हाथ जोड़कर आज्ञा माँगती तभी मुनि उसे कुछ समयतक और ठहरनेके लिये कह देते। एक दिन सन्ध्याके समय पूर्व सुकृतके प्रतापसे मुनिको कुछ चेत हुआ, वे जल्दीसे उठकर कुटियासे बाहर जाने लगे। यह देखकर प्रम्लोचाने कहा 'भगवन्! कहाँ पधार रहे हैं?' मुनि बोले—'सूर्यास्त हो रहा है, सन्ध्योपासना करूँगा; नहीं तो कर्म लोप हो जायगा।' मुनिकी यह बात सुनकर प्रम्लोचाको बड़ी प्रसन्नता हुई और वह विनयपूर्वक बोली—'हे सर्वधर्मज्ञ! आज नया सूर्यास्त थोड़े ही हो रहा है; कितना समय बीत गया? सूर्यास्त तो रोज ही होता था, आपने तो कभी सन्ध्या नहीं की। क्या आपको यह बात स्मरण नहीं रही?' मुनिने चकित-से होकर कहा, 'हे कल्याणि! तुम यह क्या कह रही हो? मैंने आज ही प्रातःकाल तो तुमको नदीतीरपर देखा था; इसके बाद तुम दिनभर आश्रममें रहीं। अब सन्ध्याकाल उपस्थित है, सूर्य अस्त हो रहे हैं, मैं सन्ध्या करने जा रहा हूँ; इसपर तुम मेरा उपहास कैसे कर रही हो?' प्रम्लोचाने कहा 'भगवन्! आपका कहना सत्य है, मैं आयी तो प्रातःकालके समय ही थी, परन्तु उस प्रातःकालको आज पूरे सोलह सौ वर्ष, छः महीने और तीन दिन बीत चुके हैं।' मुनि बोले 'हे शुभे! क्या सचमुच इतना समय बीत चुका? तुम मेरा मजाक तो नहीं उड़ा रही हो? मुझे तो अबतक यही प्रतीत हो रहा है कि तुम सिर्फ आज ही सुबहसे मेरे पास हो!' प्रम्लोचा बोली—'भगवन्! आपके सामने झूठ बोलनेकी हिम्मत किसकी होगी? खास करके आज तो आप सत्पथपर आरूढ़ हो रहे हैं, इसलिये मैं क्यों मिथ्या कहूँगी?' प्रम्लोचाकी बात सुनकर मुनि अपनी स्थितिपर विचार आते ही व्याकुल हो गये और भाँति-भाँतिसे अपने आचरणोंकी और इन्द्रियोंके दासत्वकी निन्दा करने और अपनेको धिक्कारने लगे! अप्सरा प्रम्लोचा इस समय शापके भयसे काँप रही थी, उसकी ओर देखकर मुनिने कहा—'पापिनी, तुमने बहुत बुरा किया, अपनी दृष्टिरूपी महामोहन-मन्त्रसे मेरी तपस्याका नाश करके तुमने मुझे निन्दाका पात्र बना दिया। परन्तु क्या करूँ, बातचीतमें सात शब्द उच्चारण होनेपर ही साधुओंकी मित्रता हो जाती है, तुम तो इतने समयतक मेरे साथ रही हो। इसीलिये अपनी क्रोधाग्निमें मैं तुम्हें भस्म नहीं करता। फिर तुम्हारा दोष ही क्या है? तुम्हारे प्रति क्रोध करनेका भी कोई कारण नहीं दिखायी देता, क्योंकि दोष तो सब मेरा ही है; मैं अजितेन्द्रिय और विषयलोलुप हूँ, नहीं तो तुम मुझे कैसे अपने जालमें फाँस सकतीं? जाओ, अब जल्दी मेरी नजरसे ओझल हो जाओ!'

प्रम्लोचा प्राण बचाकर भागी; उस समय वह गर्भवती थी, उसके मारिषा नाम्नी कन्या हुई; प्रसिद्ध दक्ष प्रजापति इसी मारिषाके पुत्र थे। सच कहा जाय तो संसारमें हम सभी विषयासक्त मनुष्य धर्म-कर्म सब कुछ छोड़कर अतीतकालको भूलकर दिन-रात विषय-सेवनमें लगे हुए हैं। कभी विषय-सेवनसे मन हटाकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परलोक या परमेश्वरकी बात सोचनेकी हमें फुरसत ही नहीं मिलती। भगवत्कृपासे जिसको चेत होता है उसकी तो यही मुनि कण्डुकी-सी दशा होती है। और जिसको विषय-सेवनसे पश्चात्ताप होता है वही भगवान्‌के मार्गपर आरूढ़ होता है। अस्तु !

तपोभ्रष्ट मुनि कण्डु पश्चात्तापकी आगमें जलने लगे। अब और कोई उपाय न देखकर भक्तवत्सल करुणामय भगवान्‌के भजनकी ओर उनकी वृत्ति गयी। वे पुरी नगरीमें आकर पुरुषोत्तम श्रीहरिकी शरण ग्रहण-कर नियम-व्रतोंका पालन करते हुए परम श्रद्धाके साथ मन लगाकर श्रीभगवान्‌के 'ब्रह्मपार' स्तोत्रका जाप करने लगे। ब्रह्मपारस्तोत्र यह है—

पारं परं विष्णुरपारपारः
परः परेभ्यः परमात्मरूपः।
स ब्रह्मपारः परपारभूतः
परः पराणामपि पारपारः॥
स कारणं कारणसंश्रितोऽपि
तस्यापि हेतुः परहेतुहेतुः।
कार्योऽपि चैवं सह कर्मकर्तृ-
रूपैरनेकैरवतीह सर्वम्॥
ब्रह्म प्रभुर्ब्रह्म स सर्वभूतो
ब्रह्म प्रजानां पतिरच्युतोऽसौ।
ब्रह्माव्ययं नित्यमजं स विष्णु-
रपक्षयाद्यैरखिलैरसङ्गः॥
ब्रह्माक्षरमजं नित्यं यथासौ पुरुषोत्तमः।
तथा रागादयो दोषाः प्रयान्तु प्रशमं मम॥
(ब्रह्मपुराण अ० १७८ श्लो० ११४—११७)

भगवान्‌के अनन्यशरणापन्न मुनिवर कण्डु भगवान्‌के दर्शनोंके लिये उत्सुक होकर निरन्तर उपर्युक्त ब्रह्मपार स्तोत्रका जप करने लगे। मुनिकी स्तुति सुनकर और उनकी सुदृढ़ परम भक्ति देखकर भक्तवत्सल गरुड-वाहन भगवान् एक दिन ध्यानमग्न मुनिके सामने पधारे और मेघगम्भीर स्वरसे बोले—'हे सुव्रत मुनि ! तुम क्या चाहते हो ?' कहो, मैं अभीष्टवरदाता तुम्हारे सामने उपस्थित हूँ।' ध्यानमग्न मुनिने भगवान्‌की दिव्य वाणी सुनकर आँखें खोलीं और सामने खड़े हुए श्रीहरिके दर्शन किये।

अतसीपुष्पसङ्काशं पद्मपत्रायतेक्षणम्।
शङ्खचक्रगदापाणिं मुकुटाङ्गदधारिणम्॥
चतुर्बाहुमुदाराङ्गं पीतवस्त्रधरं शुभम्।
श्रीवत्सलक्ष्मसंयुक्तं वनमालाविभूषितम्॥
सर्वलक्षणसंयुक्तं सर्वरत्नविभूषितम्।
दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गं दिव्यमाल्यसमन्वितम्॥
ततः स विस्मयाविष्टो रोमाञ्चिततनूरुहः।
दण्डवत् प्रणिपत्योर्व्यां प्रणाममकरोत्तदा॥
अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः।
इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलस्तं स्तोतुमुपचक्रमे॥
(ब्रह्मपुराण १९८। १२३—१२७)

भगवान् श्रीहरिको अलसीके पुष्पों-जैसे नीलवर्ण, कमलसदृश विशाल नेत्रवाले, हाथोंमें शङ्ख-चक्र-गदा लिये, मुकुटाङ्गद धारण किये, चतुर्भुज, अति सुन्दर कलेवर-वाले, पीताम्बर पहने, शुभदर्शन, श्रीवत्सचिह्नको हृदयपर धारण किये, वनमाला और समस्त रत्नोंसे विभूषित, दिव्य चन्दन लगाये हुए और दिव्य माला धारण किये देखकर मुनि मुग्ध हो गये और पुलकित होकर दण्डकी तरह पृथ्वीपर गिर पड़े। पश्चात् श्रीचरणोंमें प्रणाम करके बोले—'अहा ! आज मेरा जन्म सार्थक हो गया, आज मेरी सम्पूर्ण तपस्या सफल हो गयी।' यों कहकर उन्होंने दिव्य वाणीसे भगवान्‌के गुण, प्रभाव और रहस्यसे पूर्ण सर्वशास्त्रमयी स्तुति की।

मुनिके सरल हृदयके सत्य स्तवनको सुनकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रेमविह्वल हो भगवान्‌ने कहा—'हे मुनिश्रेष्ठ! तुम्हारी जो कुछ भी इच्छा हो, मुझसे शीघ्र माँग लो।' भगवान्‌के प्रेमपूर्ण दिव्य वचन सुनकर मुनिने कहा—'हे जगन्नाथ! हे स्वामिन्! यह संसार बड़ा ही दुस्तर, कँपा देनेवाला, अनित्य, दुःखमय, केलेके पेड़के समान सारहीन, मायासे बना हुआ, जलके बुद्‌बुदेके समान चञ्चल, महान् उपद्रवोंसे पूर्ण, दुःखोंसे भरा हुआ और अति भयानक है। तुम्हारी मायासे मोहित हुआ मैं अनादिकालसे इसमें चक्कर लगा रहा हूँ। मैं इतने लम्बे समयतक विषयोंमें डूबा रहा फिर भी इसका अन्त नहीं आया। अतएव मैं संसारभयसे पीड़ित होकर आपके शरणापन्न हुआ हूँ। हे देवेश! हे कृष्ण (अपनी ओर खींचनेवाले)! मुझपर कृपा करो और मुझे अपने उस सनातन परमपदपर पहुँचा दो जहाँ जाकर फिर कोई वापस नहीं लौटता।'

श्रीभगवान्‌ने कहा—'हे भक्त मुनि! तुम्हें अवश्य ही मोक्षकी प्राप्ति होगी। क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र और अन्त्यजादिमें जो कोई भी मेरी भक्ति करता है उसीको मेरी प्राप्तिरूप परमसिद्धि मिल जाती है, फिर हे द्विजोत्तम! तुम्हारी तो बात ही क्या है? चाण्डाल भी यदि सम्यक् श्रद्धाके साथ मेरी भक्ति करता है तो उसे भी मनवाञ्छित सिद्धि प्राप्त हो जाती है, फिर दूसरोंके लिये तो कहना ही क्या है?

मद्भक्ताः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रास्तथान्त्यजाः।
प्राप्नुवन्ति परां सिद्धिं किं पुनस्त्वं द्विजोत्तम॥
श्वपाकोऽपि च मद्भक्तः सम्यक्छ्रद्धासमन्वितः।
प्राप्नोत्यभिमतां सिद्धिमन्येषां तत्र का कथा॥

इतना कहकर दुर्विज्ञेयगति भक्तवत्सल भगवान् श्रीहरि वहीं अन्तर्द्धान हो गये। तदनन्तर मुनि सर्वकामनाओंका त्याग कर, ममता और अहंकारको छोड़कर, समस्त इन्द्रियोंका भलीभाँति संयम कर एकाग्र मनसे सम्यक्‌रूपसे विज्ञानानन्दघन चेतन भगवान्‌के ध्यानमें निमग्न हो गये और अन्तमें देव-दुर्लभ परम मोक्षपदको प्राप्त हुए।

चाह

तुम्हरी चाही होत है, जब प्रियतम! दिन-रात।
तब मम चाहीकी रही, कहो, कौन-सी बात॥
मेरी चाही करनकी, जो है तुम्हरी चाह।
तो तुम्हरी चाही करो, यह है मेरी चाह॥
मेरी चाही हो वही, जो है तुम्हरी चाह।
तुम्हरी बिन चाही कभी, मत हो मेरी चाह॥
तुम्हरी चाहीमें प्रभो, है मेरा कल्यान।
मेरी चाही मत करो, मैं मूरख अज्ञान॥
मम हित-अनहित सकल तुम, चितवत जब दिन-रैन।
तब मम सुख-दुख, अमन-मन, तुम सम कहत बनै न॥

—अज्ञात

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परमार्थ-पत्रावली

(श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पत्र)

[गतांकसे आगे]

[६]

श्रीनारायणकी प्राप्तिमें पुरुषार्थ ही प्रधान है; परन्तु लोगोंको इस बातका विश्वास न होनेके कारण वे धनके लिये तो पुरुषार्थ करते हैं, परन्तु भगवान्‌के लिये नहीं करते। मनुष्य जितनी चेष्टा धनके लिये करता है उतनी यदि भगवान्‌के लिये करे तो अवश्य भगवान्‌के दर्शन हो सकते हैं। धन तो प्रारब्ध होनेपर ही मिल सकता है; पुरुषार्थसे मिलता तो अबतक सभी धनवान् हो गये होते, क्योंकि धनवान् बननेके लिये तो प्रायः सभी चेष्टा करते हैं।

संसारमें बहुतेरे मूर्खोंके पास भी धन देखा जाता है, और बुद्धिमान् धनके अभावमें दुःख उठाते देखे जाते हैं। किसीको बहुत चेष्टा करनेपर धन नहीं मिलता और किसीको बिना ही चेष्टाके धनकी प्राप्ति हो जाती है। इससे यह मालूम होता है कि धनकी प्राप्ति प्रारब्धके अधीन है।

परन्तु भगवान्‌की प्राप्ति तो पुरुषार्थके अधीन है। इतनेपर भी लोग भगवान्‌के लिये पुरुषार्थ न करके धनके लिये करते हैं, इससे बढ़कर क्या मूर्खता हो सकती है? इस बातपर विचार करके श्रीभगवान्‌की प्राप्तिके लिये भजन, ध्यान, सत्संगरूपी पुरुषार्थमें निष्काम भावसे अधिक-से-अधिक समय लगाना चाहिये। यदि दूकानका काम भी निष्कामभावसे, प्रभुका ही समझकर किया जाय तो वह भी भगवत्प्राप्तिके लिये किया जानेवाला पुरुषार्थ ही समझा जायगा। हाँ, लोभसे किया जाय तो दूसरी बात है।

[७]

आपने लिखा कि भजन-ध्यानकी इच्छा है परन्तु जैसा होना चाहिये वैसा नहीं होता, सो ठीक है। भजन-ध्यानको सबसे उत्तम महत्त्वकी वस्तु समझनेसे ही भजन-ध्यान हो सकता है। यदि यह बात अच्छी तरह समझमें आ जाय कि भजन-ध्यानसे सब कुछ हो सकता है तो फिर भजन-ध्यानके लिये वैसी ही विशेष चेष्टा हो सकती है जैसी रुपयोंके लिये होती है। क्योंकि लोगोंने यह भलीभाँति समझ रक्खा है कि रुपयोंसे संसारकी सभी चीजें मिल सकती हैं। रुपयेसे भगवान् नहीं मिलते, इस बातको भी लोग जानते हैं; परन्तु भगवान् भले ही न मिलें, भगवान्‌से क्या मतलब है? रुपये मिलने चाहिये, फिर संसारके सब आराम आप ही मिल जायँगे। इसप्रकार मूर्खता हृदयमें धँसी हुई है, तब दूसरी बातका असर कैसे पड़ सकता है?

इसमें पूर्वके पाप ही कारण हैं, इन पापोंका नाश भजन और सत्संगसे हो सकता है। अतएव यही लिखना है कि यदि आपको विश्वास हो तो भजन-सत्संगमें श्रद्धा करके चेष्टा करनी चाहिये। फिर समयपर स्वयं ही लाभ होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

[८]

जिसप्रकार नौकरको काम करनेमें हर समय मालिकका डर लगा रहता है, जिससे वह जानकर कोई भूल नहीं करता, इसी प्रकार प्रभुका भय रखना चाहिये। और जिसप्रकार नौकर सब काम करता हुआ भी लाभ-नुकसान सब मालिकका समझता है, वेतनके सिवा अपना कुछ भी नहीं समझता, इसी प्रकार सब कुछ भगवान्‌का समझना चाहिये और जो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कुछ मोटा खाना, मोटा पहनना मिले उसीको भगवान्‌का प्रसादरूप वेतन समझना चाहिये।

अपना यह शरीर भी प्रभुके प्रसादसे ही बना है, अतएव यह भी मालिकका ही है। इसप्रकार समझनेवाला नौकर मालिकको बहुत ही प्रिय होता है। ऐसा विचारकर उस प्रभुका सच्चा सेवक बनना चाहिये, सेठ, बाबू या मालिक नहीं; जो सेठ, बाबू या मालिक बनते हैं उन्हींपर सारा भार आता है। वास्तवमें नौकर यदि मालिक बन बैठता है तो मालिक उसे निकालनेकी ही कोशिश करता है, क्योंकि वह समझता है कि मैंने इसको नौकर रक्खा था, यह मालिक बन बैठा। अन्तमें वह निकाल दिया जाता है और उसकी दुर्दशा होती है। इसी प्रकार जो भगवान्‌के धनका मालिक बन बैठा है उसकी दुर्दशा होनेवाली है, पहले भी बहुत बार हो चुकी है!

[९]

श्रीगीताजीका अर्थसहित अभ्यास करना चाहिये। निष्कामभावसे सब भाइयोंकी सेवा करनेसे भी अन्तःकरणकी शुद्धि होकर बहुत ही शीघ्र श्रीभगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है। मनसे सबका हित चाहना बड़ी सेवा है और सबको श्रीभगवान्‌की भक्तिमें लगानेकी चेष्टा करना तो परम सेवा है। इन बातोंसे भगवान् बहुत प्रसन्न होते हैं, अतएव निष्कामभावसे इस विषयकी दलाली करनी चाहिये, अर्थात् लोगोंको भगवान्‌के भजन-ध्यानमें लगाना चाहिये। आपको विचार करना चाहिये। समय बहुत थोड़ा रह गया है। अब भी नहीं चेतेंगे तो फिर कब चेतेंगे? फिर कौन-सी वस्तु आपके काम आवेगी? जब शरीर ही आपका नहीं है तब स्त्री, पुत्र, पौत्र और धनकी तो बात ही क्या है? वहाँ तो केवल भगवान्‌का प्रेम ही काम आता है, और कोई भी चीज काम नहीं आती। संसारके लोग सब अपने मतलबमें लगे हैं। यों समझकर उस निष्काम प्रेमी, दीनदयालु भगवान्‌के शरण होना चाहिये। केवल उसीसे प्रेम करना चाहिये। अपने प्राणोंसे भी अधिक उससे प्रेम करना चाहिये। प्राण भले ही चले जायँ, परन्तु उसके प्रेममें कभी कलङ्क न लगने पावे। विचार करना चाहिये, आप किसलिये आये थे, यहाँ क्या करना चाहिये और क्या कर रहे हैं।

बंसीधर

सोहै नील अंगनिमें लहरि पिताम्बरकी, अंबर उषाको जनु अंचल-उताल है।
आनन-सरोज पै चिकुर अलि-वृंद राजैं, इंद्रधनु जैसी मंजु भ्रकुटि बिसाल है॥
लीन्हे कर मुरलि लकुटि इमि भासमान, असुर सँघारन सुदीन पै दयाल है।
कोटि काम हूँ सों है 'प्रमोद' अभिराम कौन? कंठ बनमाल जाके ऐसो नँदलाल है॥

—प्रमोद त्रिपाठी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विवेक-वाटिका

मुझ अव्यक्तमूर्तिसे यह सब जगत् परिपूर्ण है और सब भूत मेरे अन्दर स्थित हैं; मैं उनमें स्थित नहीं हूँ, और वे भूत भी मुझमें स्थित नहीं हैं; मेरी योगमाया और प्रभावको देखो कि सब भूतोंको धारण-पोषण करनेवाला और भूतोंको उत्पन्न करनेवाला मेरा आत्मा उन भूतोंमें स्थित नहीं है। —भगवान् श्रीकृष्ण

❀ ❀ ❀

वह ब्रह्म महान् है, स्वप्रकाशरूप है, अचिन्त्य है, सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म है, दूरसे भी दूर है और पाससे भी पास है। वह आप ही इस बुद्धिरूपी गुहामें बैठकर देखता है। —उपनिषद्

❀ ❀ ❀

जो संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण हैं, स्वयं कारणरहित हैं, जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाके अन्तर्गत और साक्षीरूपसे उनसे पृथक् हैं तथा जिनके द्वारा सञ्जीवित होकर देह, इन्द्रिय, प्राण और हृदय अपने-अपने कार्यमें प्रवृत्त होते हैं, वे ही परमतत्त्व नारायण हैं। —श्रीमद्भागवत

❀ ❀ ❀

जिस वस्तुके नाशसे बड़ा दुःख होता है उसके प्राप्त होनेसे पूर्व सुख या दुःख कुछ भी नहीं होता। अतएव उसकी प्राप्तिके पूर्वकी अवस्थाको ध्यानमें रखकर मनको दुखी नहीं करना चाहिये। —देवर्षि नारद

❀ ❀ ❀

संसारमें न तो कोई किसीका मित्र है, न शत्रु है। जो व्यक्ति किसीको शत्रु मानकर उसपर क्रोध करते हैं वे वास्तवमें अपनी ही हानि करते हैं। —भक्तराज प्रह्लाद

❀ ❀ ❀

गंगा सागरमें मिलनेके लिये जाती है, परन्तु जाती हुई जगत्का पाप-ताप निवारण करती और किनारेके पेड़ोंको पोसती जाती है, अथवा सूर्यभगवान् नित्य परिक्रमा करते हुए संसारका अन्धकार दूर करते और कमलोंको विकसित करते जाते हैं; इसी प्रकार आत्मज्ञानी सन्त अपने सहज-कर्मोंसे संसारमें बँधे बन्दियोंको छुड़ाते, डूबे हुओंको निकालते और आर्तोंका दुःख दूर करते रहते हैं। —ज्ञानेश्वरमहाराज

❀ ❀ ❀

एक भक्तने स्वप्नमें किसी सुन्दर पुरुषको देखकर पूछा कि तुम कौन हो और कहाँ रहते हो, तो उसने कहा कि मेरा नाम 'संयम' है और मैं भक्तोंके हृदयमें रहता हूँ। फिर एक दिन किसी मैले-कुचैले भयानक आदमीको देखा और उससे भी वही बात पूछी, तब उसने कहा कि मेरा नाम 'पाप' है और मैं विषयी पुरुषोंके हृदयोंमें रहता हूँ। —पारसभाग

❀ ❀ ❀

दण्डसे सभी डरते हैं, मृत्युसे सभी भय खाते हैं, इन बातोंको अपने समान जानकर न किसीको मारे, न मारनेकी प्रेरणा करे। —बुद्धदेव

❀ ❀ ❀

मिट्टी कुम्हारसे कहने लगी कि तू मुझे क्या रूँदता है, एक दिन ऐसा होगा जब मैं तुझे रूँदूँगी यानी मरनेपर शरीर मिट्टीमें मिल जायगा। —कबीर साहेब

❀ ❀ ❀

विलम्ब न करो, श्रीरामको तुरन्त भज लो, तनरूपी तरकससे श्वासरूपी तीर निकला जा रहा है। फिर पछताना पड़ेगा। —तुलसीदास

❀ ❀ ❀

मनुष्यको चाहिये कि जब विपत्ति आन पड़े तब इस विचारमें समय न खोवे कि इस विपत्तिका कारण क्या है और इसे रोकनेके लिये पहले क्या करना चाहिये था। वह अवसर तो बीत गया। अब तो वर्तमान विपत्तिसे बचनेका उपाय सोचे और जो उपाय ध्यानमें आवे उसको काममें लावे। —हितोपदेश

❀ ❀ ❀

कार्यके सब सांसारिक उद्देश्योंको हटा दो। इच्छारूपी प्रेतोंको उतार दो। अपने सब कामोंको पवित्र बना दो। आसक्तिके रोगसे अपनेको छुड़ा लो! —स्वामी रामतीर्थ

❀ ❀ ❀

जिसने एक बार श्रीकृष्णरूपको देख लिया उसकी आँखें फिर उससे नहीं फिरतीं, अधिकाधिक उसी रूपको आलिंगन करती और उसीमें लीन हो जाती हैं।

—एकनाथ महाराज

❀ ❀ ❀

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जीवात्मासे

(१)

तू तो है अमर, मरना ही है यहाँका धर्म,
मर्म जान, मनमें विरक्ति-भाव भर दे।
एरे जीव-विहग! न तेरे यहाँ कोई, यह—
रज्ज ममताकी छिन्न-भिन्न कर धर दे॥
मन्दिर बताता निज, बन्दी रहता है जहाँ,
ओह! तुझपर मोहके हैं पड़े परदे।
विचर स्वछन्द मन्द! चिदानन्द-काननमें,
देह-पींजरेसे अरे! नेह दूर कर दे॥

(२)

जाके गेह-गेह नाता-नेह क्या बढ़ाता फिरे,
ले विचार, चार दिनका ही यहाँ मेला है।
देगा कौन काम अन्तयाममें कहो,जो दाम—
पानेको अधेला औ छदाम कष्ट झेला है॥
खेला बाल बन, अवहेला युवापन व्यर्थ,
चिन्ताकी चितामें वृद्धताने ला ढकेला है।
क्लेशसे जुटाता संगियोंका क्या झमेला अरे!
प्रियके प्रदेश जाना पड़ता अकेला है॥

(३)

रूप, रस, गन्ध आदिके प्रबन्धमें क्यों पड़ा;
एरे अन्धमति! यह बन्ध-बीज बोता है।
सोता है अचेत जो विषय-विष-मन्दिरमें,
पाकर विषम परिणाम कैसे रोता है॥
हानि करता है विष-पान करनेसे; किन्तु—
ध्यान करनेसे ही विषय-ज्ञान खोता है।
हालाहल जान बचना ही इससे है भला,
विषसे विशेष विषयोंका नशा होता है॥

(४)

राग, रंग, संगमें उमंगसे लगाता सदा,
गाता सदा जीत-गीत जगत-विजेता है।
एहो 'राम कवि' रोग भोगका बढ़ाता नित्य—
योग औ वियोगमें उलझ दुख देता है॥
खाता विषयोंको है, अघाता न कदापि अहो!
पापमें निरत इन्द्रियोंका बना नेता है।
नाच यों पिशाच-सो सताता जो स्वतन्त्र मन,
राम-मन्त्र मार इसे बाँध क्यों न लेता है॥

(५)

चित्तको ही जान ले निमित्त क्लेश आदिका यों,
व्यर्थ द्वेष-द्वेषीकी न कल्पना बढ़ावे तू।
मान-अपमान भी स्वकृत-परिणाम मान,
हानि-लाभसे न कभी रंच घबरावे तू॥
पाप करता जो अभिशाप क्यों मिले न उसे
बोई विष-वेलि क्यों अमर-फल पावे तू।
ढूँढ़ अपने ही गूढ़ दोष सदा एरे मूढ़!
मेरे दीनबन्धुको न निठुर बतावे तू॥

(६)

नाम-जप होता नाममात्र ही तथापि अहो!
फल मिल जाने हेतु हृदय विकल है।
बाहर मचाता है पुकार बार-बार किन्तु—
अन्तरमें तेरे तो प्रतीति न अटल है॥
दम्भसे लुभाना मत, जानता नहीं तू अभी—
प्रभुका स्वभाव अरे! कितना सरल है।
होना हो सफल तो स्वबल-अभिमान छोड़,
करुणानिधानको सुहाता नहीं छल है॥

—पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीयमकरामायण

(लेखक—श्रीअमृतलालजी माथुर)

[गतांकसे आगे]

जबर-ती बरती पथ पापके
जब रती बनमें प्रभु सों चही।
कन-कटी नकटी वह ह्वै गयी
अति डरावन रावन-सोदरा ॥५९॥

चढि खरादिक संगर-हेत ही
सदल सैनिक संग रहे तही।
यक हु गो रन ते कब लोटिके ?
हरि-विरोधक ते कबलों टिके ? ॥६०॥

हरि हि गो वन मारिच लै जितै
लखन हू मन मारि चले तिते।
कुल-मरावन रावन ह्वै गयो
सिअ-वधू अवधू बनि लै गयो ॥६१॥

नृप सुता पसु-ता तसु ताकिके
धृति-निकंदन क्रंदन है कियो।
सुनि सु आरन आरन गीधने
किय विदारन दारुन दूठकों ॥६२॥

तन हु जीरन जी रनमें दयो
थकित देख दसान दसाननो।
निकट जाय लिये करवार[1]कों
करनि[2] काटि गयो कर वार[3]कों ॥६३॥

सुनि प्रलोभन-बैन अनेक ही
निदरि रावन सों सिअने कही।
जदिनलों विरहा रह राम सों
सुख-विहार, अहार हराम-सो ॥६४॥

सिय-बिना निज साल विलोकके
प्रभु चरित्र किये भुवि लोकके।
प्रभु-प्रिआ-रत आरत नादसों
सकल आरन[4] आरन[5]-सो लगो ॥६५॥

अवनि ता बनिता न निहारिके
विकल नाग मनो मनि हारि के।
विरहते रहते अति दीन हैं
विहग[6]कों मुगती गति दीन हैं ॥६६॥

रस-वरी सबरी हरि रागके
मग निहारति हारति जो नहीं।
मगन[7]-कंकर कंटक टारती
मगन, कंठ सुराम उचारती ॥६७॥

भगति भाव सुभाव सु भायके
भवन ता वन-तारक[8] आयके।
मधुर बेर हि बेर सराहते
हरि सु बेर भखे रस-राह ते ॥६८॥

न कछु जात, न पाँत, न पारखो
न गुन-रूप, न सोच, न सोचनो।
निज सनेह-सने हिय हेरिके
सु अपनावत लावत लाज ना ॥६९॥

न कछु जो पहरे भगवा नहीं
जुहिय में विहरे भगवान ही।
तिहि सदा सिव आदितऊ चहै
निपट नीच हु होवत ऊँच है ॥७०॥

(इत्यरण्यकाण्डम्)

किष्किन्धाकाण्ड

मिलन भो हरिसों हनुमानको
करत वा सुखको अनुमान को ?
चिर विजोगहि, जोगहि सो भयो
सु-पितुको सुतको सुमिलाप है ॥७१॥

परम पंथ सुधारन बालके
निज भुजा सिर धारन बालके।
अभय भूप कियो सुगरीवको
प्रभु बिना जग को, सुगरीव को ? ॥७२॥

(इति किष्किन्धाकाण्डम्)

---

१ तलवार। २ पंखोंको। ३ प्रहार। ४ वन। ५ रोना। ६ जटायु। ७ रास्तोंके। ८ दण्डकवनको पवित्र करनेवाले राम। ९ अंगद।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कृपालु लेखकों और चित्रकारोंसे प्रार्थना

शक्ति-अंक

इस बार 'कल्याण' का 'शिवांक' निकला था। 'शिवांक' की २२५०० प्रतियाँ छपी थीं परन्तु माँग अधिक रहनेके कारण २५०० प्रतियोंका दूसरा संस्करण फिरसे छापा गया है। इस समय साधारण अंक २४२५० छप रहे हैं। हमलोगोंमें योग्यता, शक्ति, कार्यसञ्चालनपटुता, विद्वत्ता आदि गुणोंका अभाव होनेपर भी, तथा कल्याणमें बीसवीं सदीके अनुकूल सामग्री न रहनेपर भी इसका जो इतना आशातीत विस्तार हो रहा है, इसमें भगवदिच्छा ही प्रधान कारण है। इस समय भगवत्प्रेरणासे कल्याण-का प्रचार प्रायः भारतके सभी प्रान्तों और सभी क्षेत्रोंमें है। अन्य भाषाभाषी अनेक भाई-बहिन 'कल्याण' पढ़नेके लिये हिन्दी सीखते हैं। इसके अतिरिक्त भारतकी जनता 'कल्याण'से कुछ आध्यात्मिक लाभ भी उठा रही है। हिन्दीसे सर्वथा अनभिज्ञ महानुभावोंके आग्रहसे छोटा-सा अङ्गरेजी संस्करण निकालनेकी भी व्यवस्था हुई है। यह सब अचिन्त्यशक्ति भगवान्‌की दयासे ही हो रहा है। अपना पुरुषार्थ मानना तो मिथ्या अभिमानमात्र है।

इसके बाद चार अंक और निकलनेपर आगामी आषाढ़में 'कल्याण' का आठवाँ वर्ष समाप्त हो जायगा। आगामी वर्षका प्रथमांक—

श्रीशक्ति-अंक

—होगा। इससे यह नहीं समझना चाहिये कि साम्प्रदायिक भावनाओंसे ऐसा किया जा रहा है। उद्देश्य है सब रूपोंमें एक ही सच्चिदानन्दघन परमात्माका प्रतिपादन करना। श्रीविष्णु, शिव, शक्ति, राम, कृष्ण आदि एक ही प्रभुके भिन्न-भिन्न नाम-रूप हैं। एक ही प्रभुके गुण और महिमाओंका बखान करके पृथक्-पृथक् माननेवालोंको एक ही प्रभुके चरणोंमें लानेके लिये 'कल्याण'का यह प्रयत्न है। इससे यह मालूम हो गया होगा कि शक्ति-अंक जैसा शाक्तोंके लिये प्रिय और आवश्यक होगा, वैसा ही शैव और वैष्णवोंके लिये भी होगा। वेदान्तियोंके लिये तो कामकी चीज है ही। अतएव इस बार सभीको विशेष-रूपसे 'कल्याण' के प्रति प्रेम बढ़ाना चाहिये। पिछले विशेषांकोंकी भाँति इस अंकमें भी अनेक सन्त, महात्मा, साधक और सम्माननाय विद्वानोंके महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित करनेका प्रयत्न किया जा रहा है। इस अङ्कके लिये नीचे लिखे विषयोंमेंसे किसी विषयपर या अन्य किसी शक्तिसम्बन्धी उपयोगी विषयपर निबन्ध लिखकर भेजनेके लिये पूज्यचरण सन्त, महात्मा और विद्वानोंसे प्रार्थना की गयी है। लेख आ रहे हैं। सन्त, महात्मा एवं विद्वान् महानुभावोंसे प्रार्थना है कि वे अपने लेख या कविता आगामी चैत्रशुक्ल १ तक भेजनेकी कृपा करें। लेख बहुत बड़ा न हो। लेखमें किसी सम्प्रदायके सिद्धान्तोंपर तथा आचार्योंपर आक्रमण न हो; तथा हासिया छोड़कर साफ अक्षरोंमें कागजकी एक पीठपर ही लिखा हुआ रहे। लेख हिन्दी, संस्कृत, मराठी, गुजराती, बङ्गला, अङ्गरेजी और उर्दूमेंसे किसी भी भाषामें भेज सकते हैं। लेखके साथ चित्र भी भेज सकते हैं। मांस, मद्य और बलिदान-निषेधपर तथा 'पञ्च मकार'के यथार्थ अर्थपर विद्वत्ता, प्रमाण और युक्तिपूर्ण लेख लिखनेके लिये विशेषरूपसे प्रार्थना है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शक्तिके ५१ पीठोंके, शक्तियन्त्रोंके, शक्ति-मन्दिरों और तीर्थोंके चित्रोंकी वर्णनसहित आवश्यकता है। जिन महाशयोंके पास ऐसे चित्र हों या जो फोटो लेकर भेज सकें वे कृपापूर्वक पत्रव्यवहार करें। श्रीशक्तिके ध्यान और लीलासम्बन्धी सुन्दर रङ्गीन चित्र किन्हीं सुयोग्य चित्रकारके पास हों और वे ब्लाक बनानेके लिये देनेकी कृपा करें तो बड़ा उत्तम हो। इस सहायताके लिये हम उनके बड़े कृतज्ञ होंगे। श्रीशक्ति-सम्बन्धी किसी चमत्कारपूर्ण घटनाका विवरण और चित्र भी कोई भेज सकें तो बड़ी कृपा हो।

प्रार्थी

हनुमानप्रसाद पोद्दार, सम्पादक

लेख-सूची

१–सर्वोपरि महाशक्ति।
२–शक्ति-तत्त्व।
३–शिव-शक्ति।
४–शक्ति और शक्तिमान्‌का अभेद।
५–महाशक्तिका स्वरूप-विमर्शन।
६–परा और अपरा शक्ति।
७–विद्या और अविद्या-शक्तिका स्वरूप
८–ब्रह्मविद्या।
९–शक्तिके विभिन्न (सौम्य, उग्र आदि) स्वरूप और भाव।
१०–सच्चिदानन्दरूपा शक्ति।
११–अद्वय शक्तिवाद।
१२–अवरोह और आरोह-क्रमसे शक्ति-की लीला।
१३–ह्लादिनी-शक्ति।
१४–गायत्री-तत्त्व।
१५–महालक्ष्मी, महाकाली और महा-सरस्वती।
१६–तारा-रहस्य।
१७–जगद्धात्री और अन्नपूर्णा।
१८–राजराजेश्वरी (बाला, ललिता, त्रिपुर-सुन्दरी, श्रीविद्या, षोडशी)।
१९–मातृका-तत्त्व।
२०–नायिका-रहस्य।
२१–योगिनी-रहस्य।
२२–दश महाविद्या।
२३–नवदुर्गा।
२४–छः प्रधान शक्तियोंके स्वरूप और कार्य।
२५–माया, महामाया और योगमाया।
२६–श्रीराधा-तत्त्व।
२७–श्रीसीता-तत्त्व।
२८–शक्ति-देह-तत्त्व (बैन्दव और शुद्ध चिन्मय)।
२९–त्रिपुरा-रहस्य।
३०–जगत्प्रसविनी आद्याशक्तिसे त्रिदेव सच्चिदानन्दभाव और जीवात्मा।
३१–सात्त्विकी शक्ति।
३२–रजोगुणी और तमोगुणी शक्तियोंसे आध्यात्मिक हानि और उनके अतिक्रमका उपाय।
३३–षट्‌चक्र और सहस्रारमें शक्ति और कुल-कुण्डलिनी शक्ति।
३४–वाक्य-तत्त्व और मन्त्र-शक्ति।
३५–रेखातत्त्व और यन्त्र-विज्ञान।
३६–श्रीयन्त्र।
३७–योनि-यन्त्रका रहस्य एवं एक महायोनिसे अनेक योनि।
३८–श्रीविद्याकी साधनाका रहस्य।
३९–क्रम और अक्रमोपासना।
४०–आम्नाय-भेदसे शक्तिकी उपासना।
४१–बीजोद्धार।
४२–नाद, बिन्दु और कला।
४३–वेदोंमें शक्ति-तत्त्व।
४४–उपनिषदोंमें शक्ति-तत्त्व।
४५–ब्रह्मसूत्रमें शक्ति-तत्त्व।
४६–पुराणोंमें शक्ति-तत्त्व।
४७–महाभारत और रामायणमें शक्ति-उपासना।
४८–गीतामें शक्ति-तत्त्व।
४९–तन्त्रमें अद्वैतवाद।
५०–वैष्णव और शाक्त-तन्त्र।
५१–शाक्त-दर्शन।
५२–शैव और शाक्त-दर्शनका सम्बन्ध।
५३–तान्त्रिक साहित्यमें शाक्त-दर्शन-का स्थान।
५४–दीक्षारहस्य और उसके प्रकारभेद।
५५–दत्तात्रेय और शाक्त-धर्म।
५६–दुर्वासा, परशुराम, अगस्त्य, लोपामुद्रा आदि और हादीविद्या।
५७–ललिता-त्रिशती।
५८–षडध्व-शुद्धि।
५९–बीज, शक्ति, कीलक और न्यासका रहस्य।
६०–लतासाधन और शवसाधन।
६१–दश महाविद्याका दशावतारसे सम्बन्ध।
६२–कामेश्वर, कामेश्वरी।
६३–कुल-पञ्चाङ्ग।
६४–खड्गमालाका माहात्म्य।
६५–अन्तर्यागका रहस्य।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

६६–कौलाचार।
६७–गान्धर्व-क्रम।
६८–शक्तिके द्वारा असुर-संहारका रहस्य
६९–भण्डासुर-युद्ध।
७०–ओघत्रय।
७१–गुरु-तत्त्व।
७२–आचार और भावभेद।
७३–शाक्त और वैदिक उपासनाका सम्बन्ध।
७४–वीर और पशुभाव।
७५–दुर्गासप्तशती।
७६–अनुष्ठान और पुरश्चरण-विधि।
७७–पञ्च मकार और भैरवी-चक्रका आध्यात्मिक रहस्य।
७८–शक्ति-पूजामें मांस-मद्यका सर्वथा निषेध।
७९–मातृ-भावनाकी उपासनाका श्रेष्ठत्व और अहिंसाकी परमावश्यकता।
८०–बलिके पशु इन्द्रियविकार ही हैं।
८१–वाममार्गका अर्थ और यथार्थ रूप।
८२–वाममार्गमें भ्रष्टाचारका प्रवेश।
८३–कुमारी-पूजा-रहस्य।
८४–नवरात्र, शारदी और वासन्ती पूजा।
८५–शक्ति-उपासनाका परम लक्ष्य ब्रह्मप्राप्ति।
८६–गायत्री, विद्या, लक्ष्मी, उमा, राधा, सीता आदि शक्तियोंकी उपासना बिना तत्तद्दिष्टकी प्राप्तिमें अत्यन्त कठिनता।
८७–स्त्रीमात्र दुर्गारूप और शक्ति-उपासनामें ब्रह्मचर्यकी परमावश्यकता।
८८–शक्ति-उपासनामें विषय-वैराग्यकी आवश्यकता।
८९–शक्तिके सिद्ध-पीठ और मणिद्वीप।
९०–कामरूपादि पीठ-चतुष्टयका स्वरूप।
९१–सती और पार्वती एवं पार्वतीका तप और विवाह।
९२–महाकाली और कृष्ण एवं कालीके अनेक स्वरूप।
९३–देवियोंके ध्यान।
९४–द्विभुज, चतुर्भुज, अष्टभुज, दशभुज, अष्टादशभुज और सहस्रभुज शक्तिमूर्ति।
९५–शक्तिसहस्रनाम।
९६–शक्ति-सञ्चार।
९७–शक्ति-उपासनासे परम लाभ।
९८–शक्तिकी कृपाका प्रत्यक्ष अनुभव।
९९–शक्तिसाधकोंकी जीवनी।
१००–शक्ति-उपासनाकी प्राचीनता।
१०१–शक्ति-उपासना सार्वभौम है।
१०२–भारतेतर देशोंमें शक्ति-उपासना।
१०३–बौद्ध-दर्शनमें प्रज्ञापारमिता, तारा आदिकी उपासना।
१०४–जैन-धर्ममें शक्ति-उपासना।
१०५–महाचीन-क्रम।
१०६–श्रीशङ्कराचार्य और शाक्त-धर्म।
१०७–श्रीरामकृष्ण परमहंस और काली।
१०८–नाथ-सम्प्रदायमें शक्ति-उपासना।
१०९–सिक्ख-गुरु और शक्ति-उपासना।
११०–भारतके प्रधान शक्ति-मन्दिर और तीर्थ।
१११–उत्तराखण्डके श्रीनगर और दक्षिणके श्रीयन्त्रादिका रहस्य।
११२–जगत् शक्तिका विलास है।
११३–शक्ति-सौन्दर्य।
११४–शक्ति-विज्ञान।
११५–शक्ति-विकासके साधन।
११६–दिव्य शक्तियाँ।
११७–गोपी-शक्ति।
११८–भक्ति-शास्त्रोंमें शक्तिका स्थान।
११९–वैष्णव-सम्प्रदायोंमें विभिन्न रूपोंमें शक्ति-उपासना।
१२०–पञ्चदेवोंमें शक्ति और सबकी एकता।
१२१–महालक्ष्मी-पूजन जड-धनोपासना नहीं है।
१२२–संस्कृत-साहित्यमें शक्ति।
१२३–हिन्दी-साहित्यमें शक्ति।
१२४–अंग्रेजी-साहित्यमें शक्ति।
१२५–शक्ति और पातिव्रत-धर्म।
१२६–श्रीराधा और व्रजकाव्य।
१२७–बंगालकी दुर्गा-पूजा।
१२८–शक्तिके विभिन्न वाहनोंका रहस्य।
१२९–शाक्त-सम्प्रदायोंके भेद।
१३०–शक्ति-पूजाके विघ्न।
१३१–देवीभागवतमें शक्तिका स्वरूप।
१३२–वैष्णवी शक्ति।
१३३–ज्ञानशक्ति।
१३४–वैराग्य-शक्ति।
१३५–योग-शक्ति।
१३६–ऋद्धि-सिद्धि-शक्ति।
१३७–इच्छा-शक्ति।
१३८–ध्यान-शक्ति।
१३९–प्रेम-शक्ति।
१४०–सत्य-शक्ति।
१४१–सेवा-शक्ति।
१४२–श्रद्धा-शक्ति।
१४३–राष्ट्र-शक्ति।
१४४–आचार-शक्ति।
१४५–ब्रह्मचर्य-शक्ति।
१४६–बौद्धिक शक्ति।
१४७–मानसिक शक्ति।
१४८–विद्युत्-शक्ति।
१४९–विज्ञान और शक्ति।
१५०–संघ-शक्ति।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रयाग-पञ्चक्रोशी-परिक्रमा

(भूल-सुधार)

घ मासके कल्याणमें पृष्ठ १०४५ पर मेरा 'प्रयाग-पञ्चक्रोशी-परिक्रमा' नामक लेख छपा है। प्रयागकी पञ्चक्रोशी-परिक्रमाकी प्रथा लुप्त हो गयी है। उसका कोई निश्चित मार्ग नियत नहीं है, जिस समय मैं परिक्रमाका पथ तैयार कर रहा था उस समय मेरे ध्यानमें दो ही बातें थीं। (१)-प्रयाग-माहात्म्यशताध्यायी और मत्स्यपुराणकी द्वादशाध्यायी तथा अन्य पुराणोंमें बताये हुए प्रयागमण्डलके कोई भी तीर्थ छूटने न पावें। (२)-छः तटोंके किनारे-किनारे परिक्रमा हो जाय और किसी समय भी सही रोज त्रिवेणी-स्नान हो जाय। इन्हीं बातोंको ध्यानमें रखते हुए मैंने एक परिक्रमा-पथ तैयार करके प्रकाशित करनेके लिये भेज दिया। पीछेसे मुझे अपनी भूल मालूम हुई।

इन बातोंको ध्यानमें रखकर जो पथ तैयार किया था, उसीके अनुसार सभी मुख्य-मुख्य तीर्थोंकी यात्रा तो हो जाती है और प्रतिष्ठान (झूसी), अरैल (अलर्कपुर) तथा प्रयाग—इन तीनों अग्निस्वरूप तीर्थोंकी परिक्रमा भी हो जाती है तथा छः तटोंकी भी यात्रा हो जाती है। किन्तु प्रयागमण्डल तथा अन्तर्वेदी इन दोमेंसे किसीकी भी विधिवत् परिक्रमा नहीं होती। दोनोंको मिलाकर तीर्थ करनेसे तीर्थयात्रा हो जाती है, परिक्रमा पूरी नहीं होती। इस भूलके मालूम होते ही मैंने अपनी 'प्रयाग-पञ्चक्रोशी-परिक्रमा' नामक पुस्तकमें अन्तर्वेदी और पञ्चक्रोशीकी परिक्रमाओंको एकदम अलग-अलग कर दिया और उनका क्रम भी सर्वथा भिन्न मानकर उन्हें यात्रियोंकी इच्छापर छोड़ दिया कि चाहें तो वे दोनोंको साथ करें या इच्छा हो तो अलग-अलग भी कर सकते हैं। इसी नियमसे मैंने माघ कृष्ण ११ को अन्तर्वेदीकी परिक्रमा की भी थी। एक भूल और भी हो गयी। पिछले लेखमें मैंने शेषजीको ही बहुमूलक नागका स्थान माना है, यह भी मुझे अपना भ्रम ही प्रतीत हुआ। क्योंकि बहुमूलक नागका कोई प्रसिद्ध स्थान तो है नहीं, अनुमानसे ही सब कुछ निश्चित करना पड़ता है। शताध्यायीमें उत्तर-दिशामें थोड़ी दूर-पर बहुमूलक नागका स्थान बताया गया है, जैसा कि इस श्लोकमें कहा है—

ततो धनद दिग्भागे विदूरे बहुमूलकः।
नागस्तु वर्तते तीर्थावधिस्तम्भधरः परः॥

अर्थात् 'वहाँसे कुबेरकी उत्तर-दिशामें थोड़ी दूरपर बहुमूलक नामका नाग है।' मैंने अक्षयवटसे उत्तर-दिशामें लगा लिया, किन्तु इस श्लोकसे पहले विकर-क्षेत्र (वीकर देयरिया) का वर्णन है, अतः अर्थ हुआ वीकरसे उत्तरमें थोड़ी दूरपर बहुमूलक नामका नाग है। वीकरसे थोड़ी दूरपर उत्तरमें तो करहदा गाँवके समीप बनखण्डी शिवजीका स्थान है। यह स्थान भी बहुत प्राचीन है, यहाँ मेला भी लगते हैं और प्राचीन परिक्रमा करनेवाले यहाँ ठहरते भी थे। इन्हीं सब बातोंसे मैंने करहदा गाँवके आस-पास ही बहुमूलक नागका स्थान निश्चित किया है। इन बातोंको ध्यानमें रखनेपर नीमी गाँवके पास नागेश्वर-नाथ, पण्ढिला महादेवजीके पास मानसतीर्थ (मनसइताका मुख बदरासनौटीके पास), नैनीके पास सैंनी झीलपर कम्बलाश्वतरनाग, करहदा गाँवके पास बहुमूलक नाग, नीमा गाँवके पास द्रौपदीघाट और कोटितीर्थ(शिवकोटि)—ये ही इस २० कोसवाले प्रजापति-क्षेत्रकी सीमा सिद्ध हुई। अन्तर्वेदीकी परिक्रमाको छोड़कर इन छःमें होकर रात्रिवास करते हुए परिक्रमा करनेसे समस्त प्रयागमण्डलकी परिक्रमा हो जायगी। अन्तर्वेदीकी परिक्रमाको चाहे पहले कर ले या पीछे। इस सीमाको मानकर अब परिक्रमाका क्रम यों होगा—

परिक्रमाका पथ

पहले दिन त्रिवेणीमें स्नान करके यव, तन्दुल, तिल, पुष्पसे संयुक्त जलसे तर्पण आदि करके तीनों वेणियोंका पूजन-अर्चन करके यथाशक्ति दक्षिणा देकर, अक्षयवटका तथा उनकी सन्निधिमें वास करनेवाले देवता ऋषियोंका पूजन करके, यमुनाके किनारे-किनारे घृतकुल्या, मधुकुल्या, निरञ्जनतीर्थ, आदित्यतीर्थ, ऋणमोचनतीर्थ, पापमोचनतीर्थ, रामतीर्थ, सरस्वतीकुण्ड, गौघट्टनतीर्थ, कामेश्वरतीर्थ (मनकामेश्वरनाथ) के दर्शन करते हुए वरुआ घाटसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तक्षकेश्वर शिवजीके मन्दिरमें जाना चाहिये। वहाँसे तक्षक-कुण्ड, कालियह्रद, चक्रतीर्थ आदिमें मार्जन-प्रणाम करते हुए सिन्धुसागर-तीर्थपर पहुँचना चाहिये। वहाँसे अतरसुइया (अत्रि-अनसूया) को सीधी सड़क गयी है। उससे ललिता-देवीके दर्शन करके (अटालेके पूर्व) पाण्डवकूपकी प्रदक्षिणा करते हुए (गढ़ईकी सराय मुहल्लेमें) वरुणकूपके दर्शन करते हुए उधरसे सूर्यकुण्डपर पहुँचना चाहिये, वहाँ प्रणाम करके भरद्वाजमुनिके आश्रमपर ठहर जाना चाहिये।

दूसरे दिन भरद्वाजसे कुछ उत्तर जाकर नाग, वासुकीके दर्शन-पूजन करके भोगवती होते हुए दारागञ्जमें श्रीवेणी-माधवजीके दर्शन करने चाहिये। वहाँसे दशाश्वमेधेश्वर शिवजीके दर्शन करते हुए गङ्गाजीके किनारेके लक्ष्मीतीर्थ, उर्वशीतीर्थ, दत्त, सोम, दुर्वासा आदि तीर्थोंको प्रणाम करते हुए वट-मूलमें पहुँचकर त्रिवेणी-स्नान करके अन्तर्वेदीकी यात्रा समाप्त करनी चाहिये और वहीं सङ्गममें रात्रि-वास करना चाहिये।

तीसरे दिन प्रातः त्रिवेणी-स्नान करके उस पार अरैलमें सुधारसतीर्थ, शूलटंकेश्वर और उर्वशी आदि तीर्थोंमें दर्शन-मार्जन करते हुए आदि वेणीमाधवजीके मन्दिरमें आना चाहिये। वहाँसे दर्शन-पूजन करके हनुमानतीर्थ, सीताकुण्ड, रामतीर्थ, वरुणतीर्थ, चक्रमाधव, वीरतीर्थ आदिमें प्रणाम करते हुए सोमेश्वरनाथजीके मन्दिरमें पहुँचना चाहिये। वहाँ पूजन-प्रदक्षिणा करके गङ्गाजीके किनारे-किनारे सोमतीर्थ, सूर्यतीर्थ, कुबेरतीर्थ, वायुतीर्थ, अग्नितीर्थ आदिमें होते हुए (नागेश्वरके ठीक सामने) लवाइन गाँव-में पहुँचना चाहिये। वहाँसे सीधे छौकी-स्टेशनके पास कम्बलाश्वतरनागोंकी सैंनी झीलपर पहुँचना चाहिये। वहाँ सैंनी देवीके चबूतराकी प्रदक्षिणा करके सैंनी झीलके तटपर रामसागर-तालाबपर रात्रिवास करना चाहिये या दिन रह जाय तो विकरक्षेत्र (वीकर) में पहुँचकर रात्रि-वास करे।

चौथे दिन वीकरमें यमुनाजीके बीचमें शिवजीके दर्शन करके यमुनाजीको पार करके जलालपुर पहुँचना चाहिये। वहाँसे यमुनाजीके किनारे ऊपर-ऊपर तारापुर, गुहटी, पुरवा होते हुए करहदा गाँवके आस-पास रात्रि-वास करना चाहिये। यह गाँव यमुनाजीके किनारेपर है। देखनेमें तपोभूमि दिखायी पड़ती है, यहींपर अति प्राचीन बनखण्डी महादेवजीका स्थान है। बहुमूलक नागका स्थान भी सम्भवतया यहीं कहीं होगा।

पाँचवें दिन यमुना-स्नान करके बेगमसरायके पास होते हुए देवगिरिसे गङ्गाजीके किनारेपर पहुँचना चाहिये। और द्रौपदीघाटपर रात्रि-वास करना चाहिये।

छठे दिन गङ्गाजीके किनारे-किनारे समस्त तीर्थोंको प्रणाम करते हुए शिवकोटिमें रात्रि वास करना चाहिये।

सातवें दिन शिवकोटिसे गङ्गाजीको पार करके पण्डिला महादेवके समीप जहाँ आजकल मनसइताका मेला लगता है, वहीं मानस-तीर्थ है। उसके समीप रात्रि-वास करना चाहिये।

आठवें दिन सनौटी, बदरा होते हुए सीधे नागेश्वर शिवजीके समीप छतनगामें रात्रि-वास करना चाहिये।

नौवें दिन गङ्गा-किनारे-किनारे मंशीके बगीचामें शङ्खमाधवजीके दर्शन करके व्यासाश्रम (अकेला पाठशाला), समुद्रकूप, (झूसीके किलेमें) ऐलेश्वरशिव (पुरानी झूसीमें) ऐलतीर्थ, सङ्कर्षहरमाधव, सन्ध्यावट, हंसकूप, हंसतीर्थ, ब्रह्मकुण्ड, उर्वशीतीर्थ, अरुन्धतीतीर्थ और यज्ञ-तीर्थोंमें आचमन-प्रणाम करते हुए दशाश्वमेध-घाटके सामने गङ्गा पार करके दारागञ्जमें पहुँचना चाहिये और वहाँसे गङ्गा-किनारे-किनारे अक्षयवटके दर्शन करके त्रिवेणीजीमें यात्रा समाप्त करनी चाहिये और इस मन्त्रको पढ़ना चाहिये—

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्॥

अर्थात् जिनका नाम उच्चारण करनेपर तप, यज्ञ आदि समस्त क्रियाएँ न्यून होनेपर भी पूरी हो जाती हैं, उन अच्युत भगवान्‌को नमस्कार है। यह कहकर, 'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव' आदि नामों-से कुछ देर भगवन्नामोंका कीर्तन करके यथाशक्ति दान-पुण्य, ब्राह्मण-भोजन कराकर यात्रा समाप्त करनी चाहिये।

इसप्रकार यात्रा करनेसे पूरे प्रयाग-मण्डल तथा तीन अग्निस्वरूप प्रयाग, प्रतिष्ठानपुर (झूसी), अलर्कपुर (अरैल) की प्रदक्षिणा हो जायगी। ६ तटोंके कोई भी प्रधान तीर्थ न छूटने पायेंगे। त्रिवेणी, माधव, सोम आदि प्रयागके अष्ट नायक तथा १३ माधव इसके अन्तर्गत आ जायँगे। पुराणोंमें बतायी हुई परिधिका भी उल्लंघन न होगा। मैं समझता हूँ, यह परिक्रमा सरल है, सुलभ है, शास्त्र-सम्मत है। इसका प्रचार और प्रसार होना चाहिये। जो भाई पूरी पञ्चक्रोशी न कर सकें। वे अन्तर्वेदीकी तो अवश्य

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ही करें। केवल डेढ़ दिनमें हो जाती है। मैंने यह यात्रा-पथ प्रयाग-माहात्म्य-शताध्यायी और मत्स्य-पुराणकी द्वादशाध्यायीके ही आधारपर तैयार किया है। यदि कोई विद्वान् महानुभाव इसमें कोई शास्त्रीय दोष बतावेंगे और कुछ घटाने-बढ़ानेकी सम्मति देंगे तो अगले संस्करणोंमें घटा-बढ़ा दिया जावेगा और परिक्रमामें भी वे स्थान अगले वर्षोंसे सम्मिलित कर लिये जायँगे। यह नियम नहीं है कि पहले अन्तर्वेदीकी ही करे तब पञ्चक्रोशी करे, चाहे पहले पञ्चक्रोशी करके तब अन्तर्वेदीकी करे। यह भी नियम नहीं है कि ८-९ दिनमें ही करे। अमुक ही स्थानमें ठहरे, जहाँ चाहे ठहर सकता है, जितने दिनमें चाहे कर सकता है। जिस मास या पक्षमें चाहे कर सकता है।

प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

योगवाशिष्ठसार

[स्थिति-प्रकरण]

(ले०—श्रीकन्हैयालालजी मास्टर)

यह जगत् भ्रमसे चित्तमें स्थित प्रत्यक्ष-सा भासता है, वास्तवमें नहीं है। देखनेमें रमणीय भासता है परन्तु अत्यन्त असत्‌रूप है। इसमें सार कुछ नहीं है। स्वरूपमें जागनेपर जगत्-भ्रम मिट जाता है। जब सन्तोंके सङ्ग और सत् शास्त्रोंके विचारसे आत्म-तत्त्वका बोध होता है तब इन्द्रियाँ जीती जाती हैं, जगत्‌का अत्यन्त अभाव हो जाता है और आत्मबोध प्राप्त होता है। सब कर्मोंका बीज मन है, जब मनरूपी बीज नष्ट होता है तब जगत्‌रूपी अङ्कुर भी नष्ट हो जाता है। जब मनसे दृश्यका अभाव होता है तब मन भी मृतक हो जाता है। जगत्‌के अत्यन्त अभावका चिन्तन करना और आत्मस्वरूपका चिन्तन करना, यही परम औषध है। इस उपायसे मन नष्ट होता है। जबतक मन नष्ट नहीं होता तबतक मनके मोहसे जन्म-मरण होता है और जब ईश्वर—परमात्माकी प्रसन्नता होती है तब मनके बन्धनसे मुक्ति होती है। सम्पूर्ण जगत् मनरूप है और मन जगत्‌रूप है, दोनोंमेंसे एकके नष्ट होनेसे दोनों नष्ट हो जाते हैं।

इस लोकमें सब जीवोंके दो शरीर हैं, एक मनरूप और दूसरा अधिभूतरूप। अधिभूतरूप जड़ और अत्यन्त विनाशी है और जहाँ इसको मन प्रेरित करता है वहीं चला जाता है, स्वयं कुछ कर नहीं सकता। मन भला होता है तो वह उत्तम लोकमें जाता है और मन दुष्ट होता है तो नीच स्थानमें जाता है। जिसको मन असत् करता है वह असत् भासता है और जिसको सत् करता है वह सत्। यावत् जगत् मनकी फुरनामें स्थित है, जैसा मन फुरता है, वैसा ही रूप भासता है। जब मन शरीरकी वासनाको त्यागकर परमार्थकी ओर आता है तब भ्रमको नहीं प्राप्त होता। यह पुरुष अपनी इच्छासे ही बँधता है और अपनी इच्छासे ही मुक्त होता है। जब बहिर्मुख देहादि अभिमानसे मिलता है तब अपनेको बाँधता है और जब पुरुषार्थ करके अन्तर्मुख होता है तब मुक्ति पाता है। शुद्ध ब्रह्ममें जो संवित्‌का उल्लेख होता है वह कर्मका बीज है, वही आगे विस्तारको पाता है। जिस जीवने मनको जीतकर सर्वात्म-ब्रह्मका दर्शन किया है वही जीवन्मुक्त हुआ है।

तीन प्रकारके जीव हैं—एक अज्ञानी, दूसरे जिज्ञासु और तीसरे ज्ञानी। अज्ञानी-मूढ़ोंको शास्त्रके श्रवण और विचारमें कुछ भी रुचि नहीं होती। जिज्ञासुओंके निमित्त ही ज्ञानियोंने शास्त्र रचे हैं, जिनसे वे भी मोक्षके भागी होते हैं। सत् शास्त्रोंको जब निष्पाप पुरुष विचारता है तब उसको निर्मल बोध उत्पन्न होनेसे मोह निवृत्त हो जाता है। मूढ़-अज्ञानी अपने ही सङ्कल्पसे आप ही दुखी होते हैं। जितने भूतप्राणी हैं, सबके सुख-दुःखका कारण मनरूपी शरीर है; सब अनर्थोंका कारण यह चित्त है, जबतक चित्त शान्त नहीं होता, तबतक जीवको आनन्द नहीं मिलता, जब अमन-शक्तिपदको प्राप्त होता है तब महा आधि-व्याधि-दुःखोंसे तरकर जीव परमानन्दको प्राप्त होता है।

ज्ञानी और अज्ञानी दोनोंके व्यवहार एक-से हो सकते हैं, परन्तु स्थितिमें भेद है। ज्ञानी अनासक्त—निर्लेप रहता है और अज्ञानी क्रियामें बद्ध होता है। ज्ञानी सुख-दुःख दोनोंमें शान्तबुद्धि रहता है। अज्ञानी हर्ष-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शोकसे तपायमान होता है। अज्ञानी बाहरसे क्रियाका त्याग करता है तो भी बद्ध रहता है और ज्ञानी समस्त क्रिया करता हुआ भी मोक्षरूप है। अन्तःकरणके अनात्म-धर्ममें जो बद्ध है वह बाहर कर्मेन्द्रियसे मुक्त हो तो भी बन्धनमें ही है, और जो अन्तःकरणसे मुक्त है वह कर्मेन्द्रियसे बद्ध-सा भासनेपर भी मुक्त है। जिसने समस्त क्रीडाको त्याग दिया है परन्तु जो हृदयमें जगत्की सत्यता रखता है वह चाहे कुछ करे या न करे, तो भी बन्धनमें है, और जो बाहरसे चाहे जैसा भी शास्त्रानुकूल व्यवहार करता हो पर हृदयसे अद्वैत ज्ञानमें स्थित है तो वह मुक्तरूप है, उसको कर्म नहीं बाँधते। अन्तःकरणसे शून्य रहकर सब एषणाओंसे रहित हो आत्मपदमें स्थित हो जाओ और अपने प्रकृतिके अनुसार व्यवहार करो। यह जाग्रत् जगत् दीर्घ स्वप्न है और चित्तरूपी हस्तीका बन्धन है। चित्त-सत्तासे जगत् सत् भासता है और जगत्-सत्तासे चित्त है, एकके नाश होनेपर दोनोंका नाश हो जाता है।

सब जीवोंकी तीन अवस्थाएँ होती हैं—जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति। जीवको आत्मामें प्रमाद होनेसे तीनों अवस्थाओंमें भटकना पड़ता है। जब चित्तकला तुरीयामें स्थित होती है तब वह जीवन्मुक्त होता है। जो पुरुष आत्म-सत्ताको देखता है उसको जगत् नहीं भासता। और जो जगत्को देखता है उसको आत्म-सत्ता नहीं भासती। आत्मा सबका अधिष्ठान है उसमें यह जगत् दीर्घ स्वप्नके रूपमें उदय हुआ है और बाह्यरूप होकर भासता है। इस स्वप्नसे दूसरे स्वप्न होते हैं। इसी प्रकार सृष्टिकी स्थिति हुई है—जैसे एक बीजसे अनेक वृक्ष होते हैं वैसे ही एक चिदणुमें अनेक सृष्टि स्थित हैं।

ब्रह्मासे कीटपर्यन्त समस्त जगत्में एक परमात्म-सत्ता कहीं चैतन्य और कहीं जडरूप होकर दिखायी देती है। सर्वगत अविनाशी आत्मा ही सबका बीज है और उसीके भीतर सब जगत् स्थित है। पर जिसको आत्माका प्रमाद है उसको नानारूप भासता है। जिसको सत्सङ्ग और शास्त्रके संयोगसे विचार उपजा है उसकी भोगकी तृष्णा दिनोंदिन घटती जाती है और आत्म-विचार दृढ़ होता जाता है। ज्यों-ज्यों विवेक दृढ़ होता है त्यों-त्यों वह इन्द्रियोंको जीतता है। सन्तोषसे उसका हृदय शीतल होता है और उसे सब कुछ आत्मा ही भासता है। जब विवेक आता है तब वह राग-द्वेषको नाश करता है और विषय-भोगकी तृष्णाको नष्ट करता है। विवेकके उदय होते ही अज्ञान नष्ट हो जाता है और पावनपदकी प्राप्ति होती है। सब जीवोंका बीज परमात्मा है और वह सब ओरसे आकाशकी नाईं स्थित है।

दीर्घकाल-प्रतीतिका नाम जाग्रत् है और अल्पकालका स्वप्न। शरीरके भीतर स्थित होकर जो शरीरको जीवित करता है उसका नाम जीव है। जब जीवधातु स्पन्दरूप होता है तब वह जीवितके रन्ध्रोंमें फैलता है। मन, वाणी और देहसे सब व्यवहार होने लगते हैं और रन्ध्र खुल जाते हैं, तब उसको जाग्रत् कहते हैं। जब चित्तकला जाग्रत्-व्यवहारमें अस्पष्टरूप होती है और भीतर होकर फुरती है तब उसके भीतर जगद्भ्रम भासने लगता है वह स्वप्न कहलाता है। जहाँ मन, वाणी और शरीरमें कोई क्षोभ नहीं, स्वच्छ वृत्तिरूप जीवधातु भीतर स्थित है, हृदयकोशमें प्राणवायुसे क्षोभ नहीं होता और नाड़ी रससे पूर्ण होती है, उस मार्गसे प्राण आ-जा नहीं सकते, वहाँ क्षोभसे रहित समवायु चलता है, उसका नाम सुषुप्ति है। जड़रूप उस सुषुप्ति-अवस्थासे जागकर दृश्य-भावको न प्राप्त होकर आत्माका निर्विकल्प प्रकाशमें स्थित होना ज्ञानरूप तुरीया है। अनुभवज्ञानमें स्थित होकर जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिका व्यवहार होते हुए भी निश्चयमें इनका रञ्चक भी सद्भाव न होना, केवल ज्ञानमें अहंप्रतीति होना और वृत्तिका उससे चलायमान न होना तुरीयपद है। जीव उसमें स्थित हुआ जीवन्मुक्त होता है।

संसाररूप मदसे जीव उन्मत्त हो जाता है तब उसे स्वरूपकी स्मृति नहीं रहती। इसीका नाम अविद्या है। जो दृश्यसे मिला है उसका कल्याण नहीं होता। जिसके आगे मनका पटल है उसको स्वरूपका भान नहीं होता। जब मनरूपी आवरण दूर होता है तब आत्मा भासता है। मनका रूप फुरना है उसीको सङ्कल्प कहते हैं। सङ्कल्पोंका त्याग करो, असङ्कल्प होनेसे मन नष्ट हो जायगा। जब तुम सब भाव और सब पदार्थोंमें असङ्ग होओगे तब साक्षी पुरुष प्रसन्न होगा और उससे तुमको निर्विकल्प चिदात्माकी प्राप्ति होगी; जहाँ न जगत्की सत्ता है, न सुख है, न दुःख है। केवल केवलीभाव है,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जो अपने आपमें प्रकाशित है। जब संसारकी भावना तुम्हारे हृदयसे उठ जायगी तब तुम निर्मल स्वरूपमें स्थित होओगे, तब दृश्य-भ्रम निवृत्त हो जायगा। जब जीवको सन्तोंके सङ्ग और सत् शास्त्रोंके विचारसे विचार उपजता है तब दूसरी ओरसे वृत्ति निवृत्त होकर संसारका मनन भी निवृत्त हो जाता है। तब विवेकरूपी बुद्धि उदय होती है और संसारदृश्यकी त्यागबुद्धि होती है, द्रष्टा पुरुष प्रकट होता है और दृश्य अदृश्यताको प्राप्त हो जाता है। जब यह पुरुष ज्ञान-ज्ञेय होता है तब परम तत्त्वमें जागता है और संसारकी ओरसे वैराग्य और विषयोंमें अविषय-बुद्धि उपजती है। जब ऐसी बुद्धि होती है तब मन अपनी सत्ताको त्यागकर आत्मरूप बन जाता है। जब विवेकरूपी सूर्य उदय होता है तब मन गलकर आत्मरूप हो जाता है। संसाररूपी वासनाके जालमें जीवरूपी पक्षी फँसे हैं, जब वैराग्य-रूपी चूहा इसको कतर लेता है तब जीव निर्बन्ध हो जाता है।

जो पुरुष जानता है कि संसार-भ्रम मिथ्या उदय हुआ है और परम आपदाका कारण देह अनात्मरूप है, आत्मासे यह जगत् भिन्न नहीं, सब आत्मसत्तासे स्थित है, वही यथार्थ देखता है। सब चैतन्य सत्ता है, आत्मा अनन्त चिदाकाशरूप है और देश, काल, वस्तुके परिच्छेदसे रहित है। आधि, व्याधि, भय, उद्वेग, जरा, मरण, जन्म आदिसे आत्मा संयुक्त नहीं। जो ऐसा देखता है वही यथार्थ देखता है। मैं सर्वशक्तिमान् अनन्त आत्मा हूँ, सर्व पदार्थोंमें स्थित और अद्वैत चिदादित्य हूँ, जो ऐसा देखता है वही यथार्थ देखता है। अधः, ऊर्ध्व, मध्य और सबमें आत्मा व्याप्त है, आत्मासे भिन्न द्वैत कुछ नहीं, जो ऐसा देखता है वही यथार्थ देखता है। जिसने उत्तम पदका आश्रय किया है ऐसे जीवन्मुक्त पुरुषका कुम्हारके चक्रकी नाईं प्रारब्ध शेष रहता है, शरीरके सुख और दुःखमें वह सुखी या दुखी नहीं होता, वह सदा अपने स्वरूपमें स्थित रहता है। यह शरीर-रूपी पुर ज्ञानीके लिये महा सुखका कारण है और सौभाग्यप्रद सुन्दररूप है। ज्ञानी जबतक व्यवहारमें रहते हैं, तबतक शास्त्रानुकूल शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धको ग्रहण करते और शरीररूपी नगरमें भ्रमसे रहित निष्कण्टक राज्य करते हैं। वे आसक्तिसे रहित हैं इस कारण काम, क्रोध, लोभ, मान, मोहादिमें प्रवेश नहीं करते और न अपने देशमें उनको आने ही देते हैं। उनके देश उदारता, धीरज, सन्तोष, वैराग्य, समता, मैत्री, मुदिता और उपेक्षा हैं। वे सत्यता और समता दो स्त्रियोंको साथ रखते हैं और उनसे सदा शोभायमान होते हैं। ज्ञानी मनरूपी घोड़ेपर आरूढ़ होकर विचाररूपी लगाम लगाकर जीव-ब्रह्मकी एकतारूपी सङ्गम-तीर्थमें स्नान करने जाता है जिससे वह सदा आनन्दमय रहता है और भोग-मोक्ष दोनोंसे सम्पन्न होता है। ज्ञानी सब क्रियाओंका कर्त्ता-भोक्ता है, परन्तु किसीमें लिप्त नहीं होता। सदा एकरस भगवान् आत्मदेवमें रहता है। उसके निश्चयमें जगत्-जीव कोई नहीं और वह धर्म, अर्थ, काम, मोक्षकी पूर्णताको प्राप्त होता है। वह संसारके पदार्थोंमें चित्तको नहीं लगाता, उसके सब संशय सम्यक् ज्ञानसे शान्त हो जाते हैं, उसकी वासनाके समूह नष्ट हो जाते हैं और वह परिपूर्ण होकर स्थित होता है।

चञ्चल मन ही जीवोंको परम सुखसे गिराता है। इसलिये मनरूपी हस्तीको विचाररूपी अंकुशसे वशमें करो, तभी सिद्ध-पदको प्राप्त होओगे। इन्द्रियाँ और मन चील पक्षी हैं। जब इनको विषयभोग नहीं होते तब ऊँचेको उड़ते हैं और जब विषय प्राप्त होते हैं तब पुनः नीचेको आ गिरते हैं। जिस पुरुषने विवेकरूपी जालसे इनको बाँध लिया है उसको ये नहीं खा सकते। जिस पुरुषके चित्तका गर्व नष्ट हो गया है और जिसने इन्द्रियरूपी शत्रुओंको जीत लिया है, उसकी भोगवासना नष्ट हो जाती है। जब विवेकसे मनुष्य मनको वशमें कर लेता है तब इन्द्रियाँ स्वयमेव उसकी चाकर बन जाती हैं। मनरूपी मणिको आत्मविचार-शिलासे घिसो, वैराग्यजलसे उज्ज्वल करो और उसमें अभ्यासरूपी छेद करके विवेकरूपी तागेसे पिरोकर कण्ठमें पहनो तो शोभा देगा। जो पुरुष वासनाकी ताँतसे बँधे हुए हैं वे लोकके वश हो जाते हैं। जो बुद्धिमान् पुरुष वासनारहित हैं और जिनकी सर्वत्र असंशक्तबुद्धि है, जो किसीमें बद्ध नहीं होते और इष्ट-अनिष्टमें समभाव रहते हैं वे किसीसे जीते नहीं जाते।

जिसको देहमें अहंभावना और जगत्में सत्बुद्धि होती है, वह जीव है और वही दीनताको प्राप्त होता है। वह चाहे कैसा ही बली हो उसको जीतना सुगम है। जिसको 'अहम्, मम, इदम्' आदि बुद्धि नहीं है और जिसका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अन्तःकरण राग-द्वेषसे क्षुब्ध नहीं होता उसको शस्त्रास्त्रोंसे कोई नहीं जीत सकता। संसाररूपी वृक्षका बीज अहंकार है जबतक अहंकार है तबतक अनेक दुःख और आपदाएँ प्राप्त होती हैं। इसलिये अहंकारको यत्नपूर्वक दूर करो। 'अहम्'के साथ ही 'मम' का नाश आप ही हो जायगा। आत्मा-रूपी अमृतका चन्द्रमा अहंकाररूपी मेघसे अदृश्य हो गया, इससे वह नहीं भासता। विवेकरूपी पवनके चलनेसे अहंकार-रूपी बादल नष्ट होते हैं और तब आत्मारूपी चन्द्रमा प्रत्यक्ष भासता है। जो आत्मामें जागते हैं और जगत्में सोते हैं वे मोक्षरूप हैं और जो आत्मामें सोये हैं और जगत्में जगे हैं वे अज्ञानी बन्धनरूप हैं। अज्ञानरूपी अहंकारसे जीव लघुताको प्राप्त होता है और मिथ्या भ्रम देखता है और अपनी वासनाकी कल्पनासे जगत् उसे सत्‌रूप भासता है। इसलिये हृदयसे निश्चयात्मक तत्त्वमें रहो और बाहर यथाविधि आचार करो। जिसके हृदयमें वैराग्य, धैर्य, सन्तोष, उदारता आदि गुण प्रवेश करते हैं वही पुरुष परम ऐश्वर्यशाली होता है और आपदाको नष्ट करता है। उसका शरीर क्षीरसमुद्र है और उसके हृदयमें विष्णुभगवान् विराजते हैं। जिस पुरुषका शास्त्रके अनुसार व्यवहार है उसका संसार-दुःख नष्ट हो जाता है और उसके आयु, बल, यश, गुण और लक्ष्मीकी वृद्धि होती है।

यह निश्चय धारण करो कि 'न मैं हूँ, न कोई मेरा है' अथवा 'सब मैं ही हूँ, मुझसे भिन्न कुछ नहीं' जब यह निश्चय दृढ़ होगा, तब संसारकी द्वैत-भावना मिट जायगी और सर्वदा केवल आत्मतत्त्वका भान होगा। संसारके विषय-भोगोंको विष और अग्निके समान जानो, वे नाशके कारण हैं। सत्संगरूपी वृक्षसे विवेकरूपी फल उत्पन्न होता है और उस फलसे समतारूपी अमृत स्रवित होता है, उससे मन निर्द्वन्द्व और सर्व कामनासे रहित निरुपद्रव हो जाता है। शास्त्रके अर्थका धारण करनेसे सन्देह नष्ट हो जाता है और नाना प्रकारकी कल्पनाका जाल टूट जाता है। इससे जीवन्मुक्त अलेप होता है, संसारका कोई क्षोभ उसको स्पर्श नहीं करता और वह निरिच्छित, निरुपस्थित, निर्लेप और दुःखशून्य होता है। फिर शोकसे रहित हुआ वह चित्-जड़ग्रन्थिसे मुक्त और परमानन्दरूप होता है।

जो तत्त्व अमृत और ब्रह्मस्वरूप है वह सर्वव्यापी, निरामय, चैतन्य-प्रकाश, अनन्त और आदि-अन्तसे रहित निर्भ्रम है। जब वह चैतन्य-प्रकाश स्पन्दरूप हो फुरता है, तब दीपकवत् तेज प्रकाश चेतनरूपमें चित्तकला जगत्‌को चेतने लगता है, तभी जगत् फुरता है। आत्मासे चित्त-शक्ति भिन्न नहीं, परन्तु संकल्पके धारणसे ही कल्पना भावको प्राप्त होती है और विकल्प कलनासे क्षेत्रज्ञरूप होती है। वह क्षेत्रज्ञ चित्तकला अहंभावकी वासना करती है और उस अहंकारसे आत्मासे भिन्नरूप धारण करती है।

असत्‌रूप संसारमें ज्ञानीके ग्रहण करनेयोग्य कोई पदार्थ नहीं। जब सब जगत्में ब्रह्मतत्त्व है तो त्रिलोकीमें इसी पदार्थके ग्रहणकी इच्छा कीजिये। जो वस्तु आदि-अन्तमें असत्य है उसे मध्यमें भी असत्य मानना चाहिये। उसके पीछे जो शेष रहता है वही सत्यरूप है। यदि आप संयुक्त सम्पूर्ण जगत् असत् मानें तो भी कुछ विषाद नहीं। और यदि आप संयुक्त सब सत्य जानें तो भी इस दृष्टिसे हर्ष-शोक नहीं। यह दोनों निश्चय सुखदायक हैं। जो नष्ट हो सो हो और जो प्राप्त हो सो हो, उसमें हर्ष-शोक न करना। उसको यथाशास्त्र हर्ष-शोकसे रहित भोगो और जो न प्राप्त हो उसकी इच्छा न करो। यह पण्डितोंका लक्षण है। संसारके जितने पदार्थोंकी इच्छा होती है वे सब बन्धनके कारण हैं। जिसकी बुद्धिमें यह निश्चय हो गया है कि 'सर्व मैं हूँ' वह किसी पदार्थकी इच्छा नहीं करता। शुद्ध तत्त्व जो सत्य-असत्य जगत्‌के मध्य भावमें है उसका हृदयसे आश्रय करो। जिस पुरुषको पदार्थोंमें न इच्छा है, न अनिच्छा है और जो कर्मोंमें स्वाभाविक स्थित है उसको कर्मका स्पर्श नहीं होता, वह कमलवत् सदा निर्लेप रहता है। इन्द्रियोंसे वैध व्यवहार करो, परन्तु इनमें इच्छा-शून्य रहो। जब अहंकार, जो इन्द्रियोंके अर्थका सार है हृदयमें न रहेगा तब तुम योग्य पदको प्राप्त होओगे। जैसे अग्निसे भूना बीज खेतमें नहीं उपजता वैसे ही ज्ञानी फिर जन्म नहीं पाता। व्यवहार-चेष्टा जैसे अज्ञानीकी होती है वैसे ही हो तो आपत्ति नहीं, परन्तु हृदयसे भोगादिकी ओर चित्त न लगाकर आत्मपरायण हो जाओ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

कल्याण चैत्र १९९० की

विषय-सूची

पृष्ठ-संख्या

१–चेतावनी [कविता] (कबीरजी) ... ११४७
२–पूज्य नागा बाबाजी महाराज (बाँधगुफा, प्रयाग) के उपदेश ११४८
३–गीतोक्त साम्यवाद (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ११४८
४–पञ्चमहायज्ञ (हनुमानप्रसाद पोद्दार) ... ११५३
५–परमहंस-विवेकमाला (स्वामीजी श्री-भोलेबाबाजी) ११६३
६–आरुणि (पं० श्रीदेवीप्रसादजी भट्ट शास्त्री) ... ११७२
७–मूर्ति-पूजा (डा० श्रीबनारसीप्रसादजी भोजपुरी) ११७८
८–निराकार ईश्वर, अद्वैतवाद और भक्तिवाद (ठाकुर श्रीगजराजसिंहजी एम० ए०, एल-एल० बी०) ११७९
९–सन्तोंकी प्रेमानुभूति (पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए०) ११८४
१०–सन्ध्योपासनाका महत्त्व (पं० श्रीकलाधरजी त्रिपाठी) ११८८
११–रामकी कृपा [कविता] (साहित्यरत्न पं० श्रीशिवरत्नजी शुक्ल 'सिरस') ... ११९५
१२–रामकी कथा [कविता] (साहित्यरत्न पं० श्रीशिवरत्नजी शुक्ल 'सिरस') ... ११९५
१३–मानस-मङ्गलाचरणमें सीता-राम-वन्दना (श्रीरामदासजी गौड़ एम० ए०) ... ११९६
१४–वृद्ध-वाणी (भिक्षु श्रीगौरीशङ्करजी) ... ११९९
१५–मोहिनी बाँसुरी [कविता] (पं० श्रीप्रमोदजी त्रिपाठी) ११९९
१६–तुलसीकृत रामायणमें भेदभक्ति (श्रीजयराम-दासजी 'दीन' रामायणी) १२००
१७–भक्त-गाथा १२०८
१८–जगत्स्वप्न (श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल) ... १२१५
१९–परलोक-मीमांसा (श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीस्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज मण्डलेश्वर) १२१६
२०–प्रेम [कविता] (पं० श्रीगयाप्रसादजी शास्त्री 'श्रीहरि') १२२०
२१–मदारी ! (श्रीअमृतलाल जीवराज ठक्कर) १२२१
२२–परमार्थ-पत्रावली (श्रीजयदयालजी गोयन्दका-के पत्र) १२२४
२३–विवेक-वाटिका १२२६

शक्ति-अङ्कके लेख और चित्र शीघ्र भेजिये।

समस्त प्रेमियोंसे सादर निवेदन है कि कल्याणके आगामी शक्ति-अङ्कके लिये बहुत-से लेख और चित्र आये हैं और आ रहे हैं। अबकी बार छपाई जल्दी आरम्भ होगी। अतएव लेख तथा शक्ति-पीठोंके चित्र कृपापूर्वक बहुत शीघ्र भेजिये।

हनुमानप्रसाद पोद्दार

सम्पादक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीहरिः

गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तकें

१–श्रीमद्भगवद्गीता–शांकरभाष्य, सरल हिन्दी-अनुवाद, इसमें मूल भाष्य है और भाष्यके सामने ही अर्थ लिखकर पढ़ने और समझनेमें सुगमता कर दी गयी है। श्रुति, स्मृति, इतिहासोंके प्रमाणोंका सरल अर्थ दिया गया है, भाष्यके पदोंको अलग-अलग करके लिखा गया है और गीतामें आये हुए हरेक शब्दकी पूरी सूची है। पृष्ठ ५०४, ३ चित्र, मू० साधारण जिल्द २॥), पक्की जिल्द २॥।)

२–श्रीमद्भगवद्गीता–मूल, पदच्छेद, अन्वय, साधारण भाषा-टीका, टिप्पणी, प्रधान और सूक्ष्म विषय एवं त्यागसे भगवत्प्राप्तिसहित, मोटा टाइप, मजबूत कागज, सुन्दर कपड़ेकी जिल्द, पृष्ठ ५७०, बहुरंगे ४ चित्र १।)

३–श्रीमद्भगवद्गीता–गुजराती टीका, गीता १।) वालीकी तरह १।)

४–श्रीमद्भगवद्गीता–मराठी टीका, गीता १।) वालीकी तरह १।)

५–श्रीमद्भगवद्गीता–(श्रीकृष्ण-विज्ञान) अर्थात् श्रीमद्भगवद्गीताका मूलसहित हिन्दी-पद्यानुवाद (सचित्र) पृ० २७५, मोटा एण्टिक कागज, गीताके श्लोकोंके सामने ही कवितामें अनुवाद छपा है। दो सुन्दर चित्र भी हैं। मू० ॥।) स० १)

६–श्रीमद्भगवद्गीता–प्रायः सभी विषय १।) वालीके समान, विशेषता यह है कि श्लोकोंके सिरेपर भावार्थ छपा हुआ है, साइज और टाइप कुछ छोटे, पृष्ठ ४६८, मूल्य ॥≡) सजिल्द ॥।=)

७–श्रीमद्भगवद्गीता–बंगला टीका, हिन्दी गीता ॥≡) वालीकी तरह, मूल्य १) सजिल्द १।)

८–श्रीमद्भगवद्गीता–श्लोक, साधारण भाषा-टीका, टिप्पणी, प्रधान विषय और त्यागसे भगवत्-प्राप्ति नामक निबन्धसहित, साइज मझोला, मोटा टाइप, ३३२ पृष्ठकी शुद्ध छपी और अच्छे कागजकी सचित्र पुस्तकका मू० ॥) स० ॥≡)

९–गीता–साधारण भाषा-टीका, त्यागसे भगवत्प्राप्तिसहित, सचित्र, ३५२ पृष्ठ, मूल्य =)॥ सजिल्द ≡)॥

१०–गीता–मूल, मोटे अक्षरवाली, सचित्र मूल्य ।–) सजिल्द ।≡)

११–गीता–भाषा, इसमें श्लोक नहीं है। केवल भाषा है, अक्षर मोटे हैं, १ चित्र भी लगा है, मू० ।) सजिल्द ।=)

१२–गीता–मूल ताबीजी, साइज २×२॥ इञ्च, सजिल्द =)

१३–गीता–मूल, विष्णुसहस्रनामसहित, सचित्र और सजिल्द =)

१४–गीता–७॥×१० इञ्च साइजके दो पन्नोंमें सम्पूर्ण –)

१५–गीता-सूची (Gita-List)–संसारकी अनुमान २००० गीताओंका परिचय ॥)

१६–श्रीविष्णुपुराण–हिन्दी-अनुवाद-सहित, ८ चित्र, पृष्ठ ५४८, मू० २॥) सजिल्द २॥।)

१७–अध्यात्मरामायण–(सातों काण्ड) सम्पूर्ण, मूल और हिन्दी-अनुवाद-सहित, ८ रंगीन चित्र, मूल्य साधारण जिल्द १॥।) कपड़ेकी जिल्द २)

*१८–प्रेम-योग–सचित्र, लेखक–श्रीवियोगी हरिजी, पृष्ठ ४२०, बहुत मोटा एण्टिक कागज, मू० १।) सजिल्द १॥)

*१९–विनय-पत्रिका–सरल हिन्दी-भावार्थ-सहित, ६ चित्र, अनुवादक—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, मू० १) सजिल्द १।)

२०–श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (खण्ड १)–सचित्र, श्रीचैतन्यदेवकी इतनी बड़ी जीवनी अभी हिन्दीमें कहीं भी नहीं छपी। यह ५ खण्डोंमें पूर्ण होगी। पृष्ठ ३६०, मूल्य ॥।=) सजिल्द १=) मात्र।

२१– ,, ,, (खण्ड २)–९ चित्र, ४५० पृष्ठ। अभी छपी है। अवश्य पढ़िये। मू० १=) सजिल्द १।=)

२२–तत्त्व-चिन्तामणि भाग १–सचित्र, लेखक–श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ ४०६, एण्टिक कागज, मू० ॥=) सजिल्द ॥।–)

२३– ,, ,, २–सचित्र, लेखक– ,, ,, पृष्ठ ६३०, एण्टिक कागज, मू० ॥।=) सजिल्द १=)

२४–भागवतरत्न प्रह्लाद–३ रंगीन, ५ सादे चित्रोंसहित, पृष्ठ ३४०, मोटे अक्षर, सुन्दर छपाई, मूल्य १) सजिल्द १।)

२५–श्रीज्ञानेश्वर-चरित्र–(सचित्र) महाराष्ट्रके प्रसिद्ध सन्तकी जीवनी और उपदेश, मूल्य ॥।–)

२६–विष्णुसहस्रनाम–शांकरभाष्य हिन्दी-अनुवाद-सहित सचित्र मू० ॥=)

२७–एकादश स्कन्ध–(श्रीमद्भागवत) सचित्र हिन्दी-टीका-सहित। यह स्कन्ध बहुत ही उपदेशपूर्ण है। मू० ॥।) स० १)

२८–देवर्षि नारद–२ रंगीन, ३ सादे चित्रोंसहित, पृष्ठ २४०, सुन्दर अक्षर, मू० ॥।) सजिल्द १)

२९–नैवेद्य–(सचित्र) लेखक—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, पृ० ३५०, मू० ॥=) सजिल्द ॥।–)

३०–तुलसी-दल–(सचित्र) लेखक— ,, पृष्ठ २६४, मूल्य ॥) सजिल्द ॥≡)

* छप रही हैं, शीघ्र मिलनेकी आशा है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

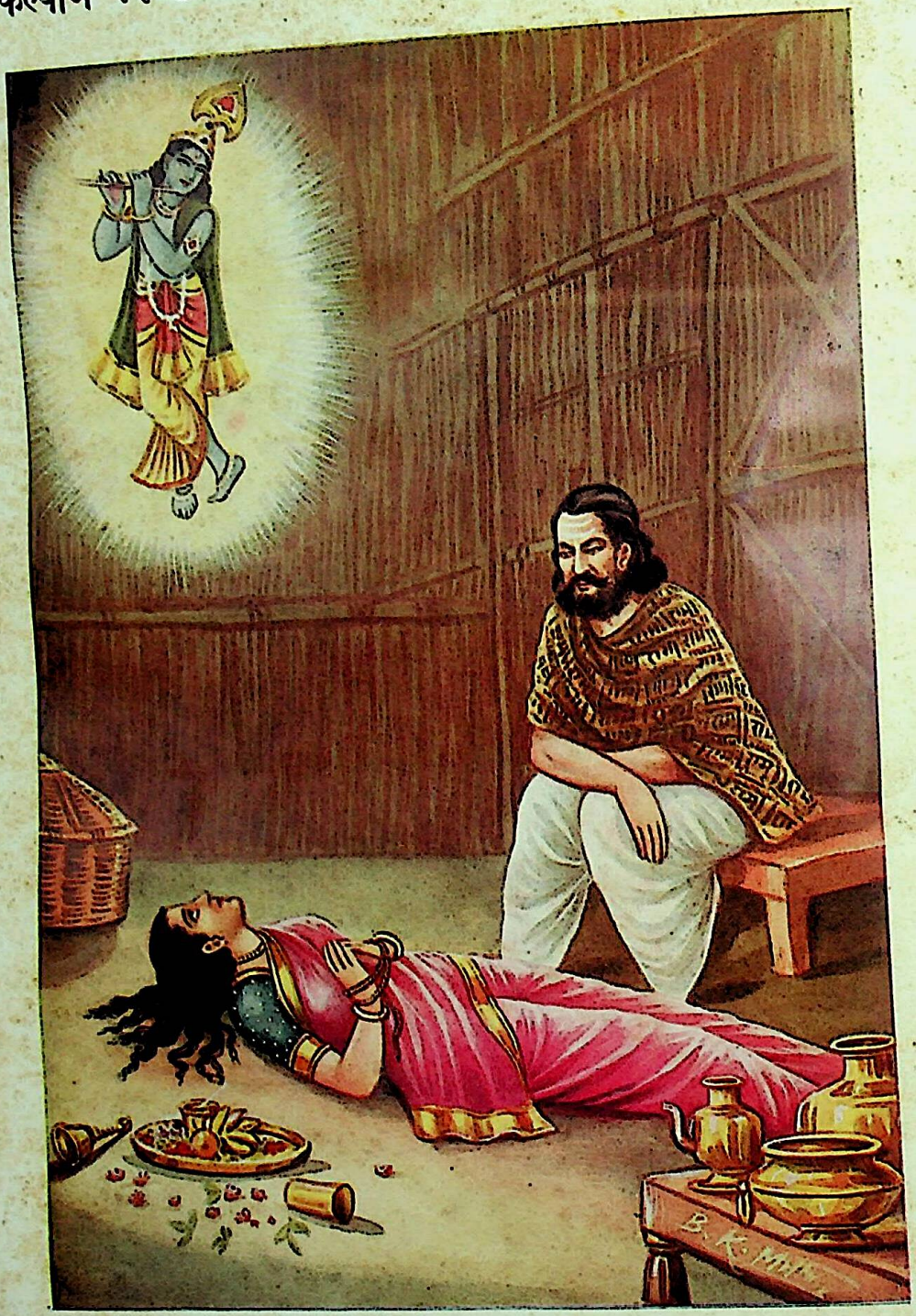

ऋषिपत्नीका भगवत्प्रेम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु । मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

वर्ष ८ | गोरखपुर, चैत्र १९९१ अप्रैल १९३४ | संख्या ९ पूर्ण संख्या ९३

बीत गये दिन भजन बिना रे !
बाल-अवस्था खेल गँवायो, जब जवानि तब मान घना रे ॥१॥
लाहे कारन मूल गँवायो, अजहुँ न गइ मनकी तृसना रे ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो ! पार उतर गये संत जना रे ॥२॥

—कबीरजी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पूज्य नागा बाबाजी महाराज (बाँधगुफा, प्रयाग) के उपदेश

प्रथम ब्रह्मचर्यको धारणकर विषय-सुखसे निराश हो जाय। पश्चात् सद्गुरुके पास जाकर उनसे प्रार्थना करे कि मैं आपकी शरणमें आया हूँ, मेरा संसारसे उद्धार कीजिये। उसी समयसे उनकी सेवामें लग जाय। अपने इष्टके प्रेमी सद्गुरुकी सेवामें जाकर तत्परतासे उनकी सेवामें लग जाय। जो नामके प्रेमी सन्त हैं उन्हींकी शरणमें जाय। वे सद्गुरु तुम्हें भगवन्नाम जपनेकी शिक्षा देंगे। उनके पास जाकर यह तीन प्रतिज्ञा कर ले—(१) जो सद्गुरु आज्ञा देंगे वही काम मैं करूँगा, (२) उनके सामने सत्य भाषण करूँगा, (३) उनसे छल-कपट कभी न करूँगा। सद्गुरुकी आज्ञा हो कि तुम राम-नाम जपो। चलते-फिरते, खाते-पीते, शारीरिक क्रिया तथा सेवाका सब कार्य करते समय राम-नामका उच्चारण जिह्वासे न छूटे। केवल शौच-समय वाणीसे जप न करके मनसे करता रहे। रात्रिमें केवल चार घण्टे सोनेके समय जप बन्द रहे। अन्य बीस घण्टेतक नामजप निरन्तर होता रहे। रात्रिके बारहसे चार बजेतक शयन करे। सद्गुरुके सिवा किसी दूसरेसे अपनी इच्छासे भाषण न करे। विषयोंसे विषयेन्द्रियोंका निरोध कर ले। एकान्त देशमें रहे। अधिक भोजन न करे जिससे आलस्य आवे। मनको संकल्प-विकल्पसे रहित कर ले। इसप्रकार करनेसे कम-से-कम पाँच वर्षके बाद तो आनन्द यानी प्रेम प्राप्त होना प्रारम्भ हो जायगा। जितना अधिक बढ़ाना हो, उतने समयतक बढ़ाता रहे अर्थात् उपर्युक्त नियमोंका पालन करते हुए ही जीवन व्यतीत करे।

प्रथम नाममें प्रेम होगा, उसके बाद नामीमें प्रेम होगा। पाँच वर्षके बाद नाममें इतना प्रेम हो जायगा कि किसीके छुड़ानेसे भी वह नाम छोड़ नहीं सकेगा क्योंकि उसको नाममें रस मिलने लगेगा। नाममें प्रेम होनेके बाद नामीसे प्रेम हो जायगा।

गीतोक्त साम्यवाद

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

आजकल संसारमें साम्यवादकी बड़ी चर्चा है। सब बातोंमें समताका व्यवहार हो, इसीको लोग साम्यवाद समझ रहे हैं और ऐसा ही उद्योग कर रहे हैं जिससे व्यवहारमात्रमें समता आ जाय। परन्तु विचारकर देखनेसे पता लगता है कि परमात्माकी इस विषम सृष्टिमें सभी व्यवहारोंमें समता कभी हो ही नहीं सकती, और होनेकी आवश्यकता भी नहीं है। न संसारमें सबकी आकृति एक-सी है, न बुद्धि, बल, शरीर और स्वभाव आदिमें ही समता है। ऐसी अवस्थामें देश, काल, पात्र और पदार्थोंमें सर्वत्र समानभावसे समता कदापि सम्भव नहीं है। इसीसे ऐसा साम्यवाद सफल नहीं होता, और न कभी हो सकता है।

यथार्थ साम्यवादका विकास भारतीय ऋषियोंकी प्रज्ञासे हुआ था, जिसका वर्णन हमारे शास्त्रोंमें खूब मिलता है। श्रीमद्भगवद्गीतामें तो श्रीभगवान्‌ने जीवन्मुक्तका प्रधान लक्षण 'समता' ही प्रतिपादन किया है। यह 'समता' ही सर्वोच्च साम्यवाद है, यही सच्ची एकता है, यही परमेश्वरका स्वरूप है। यह धर्ममय है, इसमें अमर्यादित उच्छृङ्खल जीवनको

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अवकाश नहीं है, यह परम आस्तिक है, रसमय है, रहस्यमय है, समस्त दुःखोंका सदाके लिये नाश करनेवाला है, मुक्ति देनेवाला है अथवा साक्षात् मुक्तिरूप ही है; इसमें स्थित होनेका नाम ही ब्राह्मी स्थिति है। जो पुरुष इस साम्यवादमें स्थित है वही स्थितप्रज्ञ है, वही गुणातीत है, वही ज्ञानी है, वही भक्त है और वही जीवन्मुक्त है। यह साम्यवाद केवल कल्पना नहीं है; आचरणके योग्य है, और इसका आचरण सभी कोई कर सकते हैं, यह समता ही परमात्मा है। जिसने सर्वत्र ऐसी समता प्राप्त कर ली, उसने मानों समस्त संसारको जीतकर परमात्माको ही प्राप्त कर लिया। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः॥
(५।१९)

जहाँ यह समता है, वहीं सर्वोच्च न्याय है; न्याय ही सत्य है और सत्य परमात्माका स्वरूप है; जहाँ परमात्मा है, वहाँ नास्तिकता, अधर्म-भावना, काम, क्रोध, लोभ, असत्य, कपट, हिंसा आदिके लिये गुञ्जाइश ही नहीं है। अतएव जहाँ यह समता है, वहाँ सम्पूर्ण अनर्थोंका अत्यन्त अभाव होकर सम्पूर्ण सद्गुणोंका विकास आप ही हो जाता है। क्योंकि अनुकूलता-प्रतिकूलतासे ही सब दोषों और दुराचारों-की उत्पत्ति होती है, और समतामें इनका अत्यन्त अभाव है, इसलिये वहाँ किसी प्रकारके दोष और दुराचारके लिये स्थान नहीं है।

समता साक्षात् अमृत है, विषमता ही विष है। यह बात संसारमें प्रत्यक्ष देखी जाती है। इसलिये सम्पूर्ण पदार्थों, सम्पूर्ण क्रियाओं और सम्पूर्ण चराचर भूतोंमें जिनकी समता है वे ही सच्चे महापुरुष हैं। इस समताका तत्त्व सुगमताके साथ भलीभाँति समझानेके लिये श्रीभगवान्‌ने गीतामें अनेकों प्रकारसे सम्पूर्ण क्रिया, भाव, पदार्थ और भूतप्राणियोंमें समताकी व्याख्या की है। जैसे—

मनुष्योंमें समता

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते॥
(६।९)

'(जो पुरुष) सुहृद्, मित्र, वैरी, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेषी और बन्धुगणोंमें, धर्मात्माओं और पापियोंमें भी समान भाववाला है, वह अति श्रेष्ठ है।'

मनुष्यों और पशुओंमें समता

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥
(५।१८)

'ज्ञानीजन विद्याविनययुक्त ब्राह्मणमें तथा गौ, हाथी और कुत्तेमें एवं चाण्डालमें भी समभावसे देखनेवाले होते हैं।'

सम्पूर्ण जीवोंमें समता

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥
(६।३२)

'हे अर्जुन! जो योगी अपनी सादृश्यतासे सम्पूर्ण भूतोंमें सम देखता है, और सुख अथवा दुःखको भी (सबमें सम देखता है) वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है।'

कहीं-कहींपर भगवान्‌ने व्यक्ति, क्रिया, पदार्थ और भावकी समताका एक ही साथ वर्णन किया है। जैसे—

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥
(१२।१८)

'(जो पुरुष) शत्रु-मित्रमें और मान-अपमानमें सम है तथा सर्दी-गर्मी और सुख-दुःखादिमें सम है और (सब संसारमें) आसक्तिसे रहित है (वह भक्त है)।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यहाँ शत्रु-मित्र 'व्यक्ति' के वाचक हैं, मान-अपमान 'परकृत क्रिया' हैं, शीत-उष्ण 'पदार्थ' हैं और सुख-दुःख 'भाव' हैं।

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥
(१४।२४)

'(जो) निरन्तर आत्मभावमें स्थित हुआ दुःख-सुखको समान समझनेवाला है, (तथा) मिट्टी, पत्थर और स्वर्णमें समान भाववाला और धैर्यवान् है, (तथा) जो प्रिय और अप्रियको तुल्य समझता है और अपनी निन्दा-स्तुतिमें भी समान भाववाला है (वही गुणातीत है)।'

इसमें भी दुःख-सुख 'भाव' हैं, लोष्ट, अश्म और काञ्चन 'पदार्थ' हैं, प्रिय-अप्रिय 'सर्ववाचक' हैं और निन्दा-स्तुति 'परकृत क्रिया' हैं।

इसप्रकार जो सर्वत्र समदृष्टि है, व्यवहारमें अहंता-ममता रहते हुए भी जो सबमें सर्वत्र समबुद्धि रहता है, जिसका समष्टिरूप समस्त संसारमें आत्म-भाव है वह समतायुक्त पुरुष है, और वही सच्चा साम्यवादी है।

इस समताका सम्बन्ध प्रधानतया आन्तरिक भावोंसे है; इसमें सर्वत्र समदर्शन है, समवर्त्तन नहीं है। यह समत्व बाहरी व्यवहारोंमें सर्वत्र एक-सा नहीं है। बाहरी व्यवहारोंमें तो दाम्भिक और शास्त्रकी अवहेलना करनेवाले भी ऐसा कर सकते हैं। इस समता-का रहस्य इतना गूढ़ है कि क्रिया और व्यवहारमें यथायोग्य भेद रहते हुए भी इसमें वस्तुतः कोई बाधा नहीं आती। बल्कि देश, काल, जाति और पदार्थोंकी विभिन्नताके कारण कहीं-कहीं तो बाहरी व्यवहारमें विषमता न्यायसंगत और आवश्यक समझी जाती है। परन्तु वह विषमता न तो दूषित है और न उससे असली समतामें कोई अड़चन ही आती है।

एक विपद्ग्रस्त देश है, और दूसरा सम्पन्न है, इन दोनों देशोंमें व्यवहारमें विषमता रहेगी ही; विपद्ग्रस्त देशकी सेवा करना आवश्यक होगा, सम्पन्न देशकी नहीं। व्यवहारकी इस विषमताकी आवश्यकता-को कौन दूषित बतला सकता है? हाँ, उस विपत्तिग्रस्त देशमें यदि ममता और स्वार्थके भावसे दुखी लोगोंकी सेवामें भेद किया जाय तो वह विषमता अवश्य दूषित है। मान लीजिये, एक जगह बाढ़ आ गयी; लोग डूब रहे हैं। वहाँ यदि यह भाव हो कि अमुक यूरोपियन है, हम भारतीय हैं, इससे भारतीयको ही बचावेंगे, यूरोपियनको नहीं; अथवा अमुक मुसलमान है, हम हिन्दू हैं, हम अपनी जातिवालेकी रक्षा करेंगे, विजातीयकी नहीं। इसप्रकार-की देश और जातिगत आन्तरिक भेदबुद्धिजनित विषमता अवश्य दूषित है। आपत्तिकालमें देश, काल, जाति और कुटुम्बका अभिमान त्यागकर सबकी समभावसे सेवा करनी चाहिये। ममता, स्वार्थ और आसक्तिवश जो देश, काल, पदार्थ, जाति आदिमें विषमताका व्यवहार किया जाता है वास्तवमें वही विषमता है। ऐसी विषमता महापुरुषोंमें नहीं होती।

इसी प्रकार काल-भेदसे भी व्यवहारमें विषमता रहती है; हम रातको सोते हैं, दिनमें व्यवहार करते हैं, प्रातः-सायं सन्ध्या-वन्दनादि ईश्वरोपासना करते हैं; यह विषमता आवश्यक है। ऐसे ही जिस समय दुर्भिक्ष पड़ता है, उसी समय अन्नदान दिया जाता है। जलदान ग्रीष्ममें आवश्यक है, सर्दीमें उतना नहीं। वस्त्रदान शीतमें आवश्यक है, गर्मीमें इतना नहीं। अग्नि जलाकर जाड़ेमें तापा जाता है, गर्मीमें नहीं। छाता वर्षाकालमें लगाया जाता है, जाड़ेमें नहीं लगाया जाता। परन्तु यह विषमताका व्यवहार सर्वथा युक्तियुक्त ही नहीं, आवश्यक माना जाता है।

खान-पान और व्यवहारमें गौ, कुत्ते, हाथी,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चाण्डाल और ब्राह्मणमें विषमता सर्वथा युक्तियुक्त है। गौ और हाथीका खाद्य घास-पात है, मनुष्यका नहीं। कुत्ता मांस भी खाता है, परन्तु वह गौ तथा हाथीके लिये उपयोगी नहीं; मनुष्यके लिये तो अत्यन्त ही अनुपयोगी है। इन सबका परस्पर एक दूसरेके साथ खान-पान कभी सम्भव नहीं। कोई भी बुद्धिमान् पुरुष इन पाँचों प्राणियोंके साथ व्यवहारमें समताका प्रतिपादन नहीं कर सकता। मनुष्य और पशुकी बात तो अलग रही, तीनों पशुओंमें भी व्यवहारमें बड़ी विषमता है। हाथीकी जगह कुत्तेपर सवारी कोई नहीं कर सकता, गौकी जगह कुतियाका दूध नहीं पिया जा सकता। जो लोग समदर्शनको समवर्तन सिद्धकर व्यवहारमें अभेद लाना चाहते हैं, वे वस्तुतः इसका मर्म ही नहीं समझते। इनका भेद तो प्रकृतिगत है जो किसी तरह भी मिटाया नहीं जा सकता। परन्तु हाँ, इन ब्राह्मण, चाण्डाल, हाथी, गौ और कुत्ते आदि किसी भी प्राणीको दुःख-की प्राप्ति होनेपर उसके दुःखको निवारण करके उसको सुख पहुँचानेके लिये वैसा ही समान व्यवहार करना चाहिये जैसा हम अपने हाथ, पैर, मस्तक आदिका दुःख निवारण करके सुख पहुँचानेके लिये करते हैं। इसी प्रकार 'आत्मत्व' भी सबमें ठीक वैसा ही होना चाहिये जैसा हमारा अपनी देहमें है। इसी समताका नाम समता है।

इसी प्रकार मिट्टीके ढेले, पत्थर और सोनेमें भी व्यावहारिक भेद आवश्यक है। मिट्टीके ढेलेको सँभाल-कर रखनेकी जरूरत नहीं, परन्तु सोना सुरक्षित रखना पड़ता है। सोनेके बदले मिट्टी या पत्थरका आदान-प्रदान नहीं हो सकता। इनके संग्रह-ग्रहण, आदान-प्रदान, व्यवहार और मूल्य आदिमें विषमता रहती ही है; परन्तु हाँ, आन्तरिक भावमें इनमें भेद नहीं होना चाहिये। अपना सङ्कट निवारण करनेके लिये जैसे धनको मिट्टीकी तरह समझकर खर्च किया जाता है, उसी प्रकार न्याय प्राप्त होनेपर दूसरे प्राणीके हितके लिये भी धनको धूलके समान समझ-कर व्यवहार करना चाहिये। लोभवश धनका संग्रह करने और न्यायसङ्गत आवश्यकता आनेपर खर्च न करनेमें विषमता है। जहाँ यह विषमता होगी, वहाँ न्यायान्यायका विचार छोड़कर धनका संग्रह होगा और न्यायसङ्गत खर्चमें हिचकिचाहट होगी। अतएव अन्यायसे उपार्जन करनेके समय और न्याययुक्त खर्चके समय धनको धूलके समान समझकर वैसे उपार्जनसे हट जाना और खर्च करनेमें सङ्कोच नहीं करना चाहिये। यही 'समलोष्टाश्मकाञ्चनः' है। एकके कुछ भी धन नहीं है, दूसरा धन और भोगपदार्थोंका संग्रह करता है; परन्तु यदि वह अपने और कुटुम्बके लिये या भोगसुखके लिये न करके सम्पूर्ण भूतप्राणियोंके हितके लिये ही करता है तो इस संग्रहमें विषमता होनेपर यह दूषित नहीं है वरं आवश्यक है।

पदार्थोंकी विषमता लीजिये—अग्नि और जलमें विषमता है, विष और अमृतमें विषमता है, मीठे और कटुमें विषमता है, पथ्य और कुपथ्यमें विषमता है। व्यवहारमें पुरुष और स्त्री-जातिमें विषमता है; पुरुष-पुरुषमें भी पिता और पुत्रमें भेद आवश्यक है, स्त्री-स्त्रीमें भी माता और स्त्रीमें भेद रखना धर्म है। अपने ही शरीरमें दाहिने और बायें हाथमें भी व्यवहारका भेद युक्तिसङ्गत है। संसारमें जहाँ विशेष समताका उदाहरण दिया जाता है वहाँ कहा जाता है कि 'ये दोनों हमारे दायें-बायें हाथके समान एक-से हैं।' परन्तु देखा जाता है कि दाहिने-बायें हाथके व्यवहार-में परस्पर बड़ा अन्तर है। खान, पान, दान, सम्मान आदि उत्तम व्यवहार और प्रधान-प्रधान क्रियाएँ अधिकांशमें दाहिने हाथसे की जाती हैं और शौचादि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपवित्र व्यवहार बायेंसे होते हैं। इसी प्रकारका व्यवहारका भेद अपने अङ्गोंमें भी है। पैर, हाथ, मस्तक आदि एक ही शरीरके अङ्ग हैं; परन्तु चरणसे शूद्रका, हाथोंसे क्षत्रियका और मस्तकसे ब्राह्मणका-सा व्यवहार होता है। किसीका सत्कार करते समय सिर झुकाया जाता है न कि पैर सामने किया जाता है। सिरपर लाठी आती हो तो हाथोंकी आड़से उसे बचाते हैं न कि पैरोंकी आड़ की जाती है। पैरोंपर लाठी लगनेकी सम्भावना होनेपर उन्हें सिकोड़कर बैठ जाते हैं और पैरोंको बचाकर हाथोंपर और पीठपर चोट सह लेते हैं। किसी दूसरे मनुष्यके चरणका स्पर्श हो जानेपर मस्तक नवाकर और हाथ जोड़कर क्षमा-प्रार्थना करते हैं। अङ्ग सभी हमारे हैं, फिर पैर लगा तो क्या और हाथ छू गया तो क्या। परन्तु व्यवहारमें ऐसा नहीं माना जाता। मस्तकके हाथ स्पर्श करनेसे हाथको पवित्र मानते हैं और उपस्थ-गुदादि इन्द्रियोंसे छू जानेपर हाथ धोते हैं। जब अपने एक ही शरीरमें व्यवहारका इतना भेद आवश्यक और युक्तियुक्त समझा जाता है, तब देश, काल, जाति और पदार्थोंमें रहनेवाले अनिवार्य भेदको दूषित मानना तो सर्वथा अयुक्त और न्यायविरुद्ध है। इतना भेद होनेपर भी आत्मदृष्टिमें कोई भेद नहीं है। किसी भी अङ्गके चोट लगनेपर उसे बचानेकी चेष्टा समान ही होती है और दुःख-दर्द भी समान ही होता है। प्रसूति और रजस्वला-अवस्थामें हम अपनी पूजनीया माताके साथ भी अस्पृश्यताका व्यवहार करते हैं, किन्तु वही माता यदि बीमार हो तो हम उसी अवस्थामें आदरपूर्वक उनकी सेवा करते हैं और तदनन्तर स्नान करके पवित्र हो जाते हैं। इसी प्रकार पशु, पक्षी या मनुष्य आदिमें जो अस्पृश्य माने जाते हैं, उनके साथ अन्य समय व्यवहारमें भेद होनेपर भी उनकी दुःखकी स्थितिमें प्रेमपूर्वक सबकी सेवा करनी चाहिये। सेवा करनेके बाद स्नान करनेपर मनुष्य पवित्र हो जाता है। इसप्रकार शास्त्रानुमोदित व्यवहारकी विषमता आवश्यक और उचित है। इसको अनुचित मानना ही अनुचित है। अवश्य ही आत्मामें इससे कोई भेद नहीं आता और न भेद मानना ही चाहिये। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥
(६। २९)

'हे अर्जुन! सर्वव्यापी अनन्त चेतनमें एकीभावसे स्थितिरूप योगसे युक्त हुए आत्मावाला तथा सबमें समभावसे देखनेवाला योगी आत्माको सम्पूर्ण भूतोंमें बर्फमें जलके सदृश व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको आत्मामें देखता है। जैसे स्वप्नसे जगा हुआ पुरुष स्वप्नके संसारको अपने अन्तर्गत सङ्कल्पके आधार देखता है, वैसे ही वह पुरुष सम्पूर्ण भूतोंको अपने सर्वव्यापी अनन्त चेतन आत्माके अन्तर्गत सङ्कल्पके आधार देखता है।'

श्रुति कहती है—

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥
यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥
(ईश० ६-७)

'जो विद्वान् सब भूतोंको आत्मामें ही देखता है और आत्माको सब भूतोंमें देखता है वह किसी भी प्राणीसे घृणा नहीं करता। तत्त्ववेत्ता पुरुषके लिये जिस कालमें सम्पूर्ण भूतप्राणी आत्मा ही हो जाते हैं अर्थात् वह सबको आत्मा ही समझ लेता है, उस एकत्वको देखनेवालेको कहाँ शोक और कहाँ मोह है!'

इसप्रकार व्यवहारमें शास्त्रकी मर्यादाके अनुसार

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लोकसंग्रहके लिये ममता और स्वार्थसे रहित होकर, न्याययुक्त विषमताका व्यवहार करते हुए भी, सबमें उपाधियोंके दोषसे रहित ब्रह्मको सम देखना, और रागद्वेषरूपी विकारोंसे रहित होकर मान-अपमान, लाभ-हानि, जय-पराजय, शत्रु-मित्र, निन्दा-स्तुति, सुख-दुःख, शीत-उष्ण आदि समस्त द्वन्द्वोंमें सर्वदा समतायुक्त रहना ही यथार्थ साम्यवाद है। इसी साम्य-वादसे परम कल्याणकी प्राप्ति हो सकती है।

आजकलका साम्यवाद ईश्वरविरोधी है और यह सर्वत्र ईश्वरको देखता है; वह धर्मका नाशक है, यह पद-पदपर धर्मकी पुष्टि करता है; वह हिंसामय है, यह अहिंसाका प्रतिपादक है; वह स्वार्थ-मूलक है, यह स्वार्थ-को समीप भी नहीं आने देता; वह खान-पान-स्पर्शादिमें एकता रखकर आन्तरिक भेदभाव रखता है, यह खान-पान-स्पर्शादिमें शास्त्रमर्यादानुसार यथायोग्य भेद रखकर भी सबमें आत्माको अभिन्न देखनेकी शिक्षा देता है; उसका लक्ष्य केवल धनोपासना है, इसका लक्ष्य ईश्वरप्राप्ति है; उसमें अपने दलका अभिमान है और दूसरोंका अनादर है, इसमें सर्वथा अभिमानशून्यता है और सारे जगत्‌में परमात्माको देखकर सबका सम्मान करना है, कोई दूसरा है ही नहीं; उसमें बाहरी व्यवहारकी प्रधानता है, इसमें अन्तःकरणके भावकी प्रधानता है; उसमें भौतिक सुख मुख्य है, इसमें आध्यात्मिक सुख मुख्य है; उसमें परधन और परमतसे असहिष्णुता है, इसमें सबका समान आदर है; उसमें राग-द्वेष है, इसमें राग-द्वेष-रहित व्यवहार-मात्र है।

अतएव इन सब बातोंपर विचार करके बुद्धिमान् पुरुषोंको इस गीतोक्त साम्यवादका ही आदर करना चाहिये।

पञ्चमहायज्ञ

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय ! मुक्तसङ्गः समाचर॥
(गीता ३। ९)

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन! यज्ञके निमित्त किये जानेवाले कर्मको छोड़कर अन्य कर्ममें लगनेवाला यह मनुष्य कर्मद्वारा बँधता है, अतएव तुम आसक्तिरहित होकर यज्ञके लिये कर्मका भलीभाँति आचरण करो।

यज्ञार्थ-कर्म क्या है?

'यज्ञो वै विष्णुः' इस श्रुतिके अनुसार यज्ञका अर्थ भगवान् विष्णु होता है; विष्णु समस्त चराचरमें व्याप्त हैं, इन विश्वरूप भगवान्‌की पूजाके लिये किये जानेवाला प्रत्येक कर्म यज्ञार्थ-कर्म है। यज्ञार्थ-कर्मसे बन्धन नहीं होता, बन्धन होता है स्वार्थ-कर्मसे। जो स्वार्थको छोड़कर, कर्म और उसके फलमें आसक्तिका त्याग कर केवल भगवत्-प्रीत्यर्थ अपने वर्णाश्रमानुकूल कर्तव्य-कर्म करता है वही यथार्थमें यज्ञार्थ-कर्म करनेवाला है और उसीको भगवत्कृपासे भवबन्धनसे मुक्ति प्राप्त होती है। इस बातको ध्यानमें रखकर मनुष्य अपनी प्रत्येक वैध चेष्टाको मुक्तिका साधन बना सकता है।

पञ्चमहायज्ञ

इसमें भी पञ्चमहायज्ञ तो प्रत्येक गृहस्थके लिये अत्यावश्यक नित्यकर्म हैं। इनका नाम महायज्ञ इसी-लिये है कि इनका सम्बन्ध समस्त विश्वसे है। अन्यान्य यज्ञ प्रधानतया व्यक्तिगत लाभके लिये होते हैं, परन्तु इन महा-यज्ञोंके तो सिद्धान्तमें ही विश्वकल्याण भरा है। विश्वरूप बने हुए भगवान्‌के पाँच स्वरूप हैं—ऋषि, देवता, पितर, मनुष्य और अन्यान्य भूत-प्राणी (पशु, पक्षी, वृक्ष, ओषध, लता, गुल्म आदि)। इन पाँचोंका सम्बन्ध प्रत्येक प्राणीसे है। मनुष्य-प्राणी जगत्‌में विवेकसम्पन्न है, वह इस बातको भलीभाँति हृदयङ्गम कर सकता है कि इन पाँचोंकी सहायतासे ही हमारा जीवन-निर्वाह होता है। वस्तुतः भगवान्‌की सृष्टिमें ऐसा एक भी पदार्थ नहीं है जो व्यर्थ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हो, और जिससे किसीको लाभ न पहुँचता हो एवं जिसकी सृष्टि, स्थिति या संहारके कार्यमें कहीं-न-कहीं आवश्यकता न हो। सभी प्राणियोंका परस्पर सम्बन्ध है। प्राणियोंके हितमें ही विश्वका हित है। अतएव भगवान्‌की सृष्टिका कोई भी पदार्थ, विश्वरूप भगवान्‌का कोई भी क्षुद्रतम स्वरूप,—अथवा विश्व-शरीररूप कार्य-ब्रह्मका कोई भी अङ्ग उपेक्षणीय नहीं है। इसलिये मनुष्यको विश्वके समस्त अङ्गोंका प्रतिनिधित्व करनेवाले इन पाँच अङ्गोंकी सेवा सदा करनी चाहिये। इनकी सेवासे सारे विश्वकी सेवा होती है, जहाँ विश्वका कल्याण है, वहाँ आत्मकल्याण तो है ही।

पञ्चमहायज्ञके सिद्धान्तको समझनेमें ही मनुष्यकी व्यष्टिगत क्षुद्रता नष्ट हो जाती है। वह देखता है कि भगवान् स्वयं विश्वमें अनेक रूप धारण करके स्थित हैं, वे ही ऋषि बनकर जगत्‌को ज्ञाननेत्र प्रदान करते हैं, वे ही देवता बनकर सबका पालन-पोषण करते हैं, वे ही पितर बनकर सबका कल्याण करते हैं, वे ही मनुष्य बनकर सबकी सहायता करते हैं और वे ही भूत-प्राणी बनकर सबका उपकार करते हैं। इसप्रकार भगवान्‌को सर्वत्र देखकर वह विनम्रभावसे उन्हें भोग लगाकर बचा हुआ प्रसाद स्वयं पाना चाहता है। यह प्रसाद ही अमृत है। अपनी कमाईसे पहले इन पाँचोंको तृप्त करे, इसके बाद जो कुछ बच रहे, उसे भगवत्प्रसाद समझकर स्वयं ग्रहण करे; ऐसा करनेवाला मनुष्य समस्त पापोंसे छूट जाता है। भगवान् कहते हैं—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥
(गीता ३। १३)

'यज्ञसे शेष बचे हुए अन्नको खानेवाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापोंसे छूट जाते हैं, परन्तु जो पापी मनुष्य केवल अपने लिये ही पकाते हैं वे पाप खाते हैं।'

अभिप्राय यह कि संसारमें मनुष्य जो कुछ भी उपार्जन करे उसको पहले ऋषि, देवता, पितर, मनुष्य और अन्य भूत-प्राणियोंकी सेवामें लगावे। फिर जो कुछ बच रहे उसीसे अपना निर्वाह करे। ऐसा करनेवाला ही पापोंसे छूटता है। जो ऐसा नहीं करता, केवल अपने मौज-शौक या अपने शरीर-पालनके लिये ही कमाता-खाता है, वह तो पाप कमाता है और पाप ही खाता है। पञ्चमहायज्ञका यही व्यापक अर्थ है और इसीके अनुसार सबको यथासाध्य करना चाहिये। यह विश्वरूप भगवान्‌की पूजा है और निष्कामभावसे इसप्रकार पूजा करनेवाले मनुष्यको भगवत्प्राप्ति होती है।

इसके सिवा दो बातें और विचारणीय हैं, एक तो यह कि इन पाँचोंसे हमारा बड़ा उपकार होता है। यदि हम उपकारका बदला कुछ भी न दें तो हम कृतघ्न होते हैं और कृतघ्नकी बहुत बुरी गति होती है। दूसरे, मनुष्यके जीवन-निर्वाहके लिये अनेकों जीवोंकी नित्य अनिवार्य हिंसा होती है, उसके पापसे बचनेके लिये भी शास्त्रविधिके अनुसार पञ्चमहायज्ञकी आवश्यकता है। इन दोनों बातोंको कुछ समझ लेना है—पहले तो यह समझ लेना है कि ऋषि, देवता, पितर, मनुष्य और अन्य प्राणियोंसे हमारा क्या उपकार होता है; और दूसरे यह समझना है कि मनुष्यके लिये प्रतिदिन अनिवार्य हिंसा कौन-सी होती है, और उसके पाप-नाशके लिये शास्त्रमें क्या विधान है।

ऋषि

वेदके मन्त्रोंको अथवा सृष्टिके गुह्यतम रहस्योंको दिव्य दृष्टिसे देखनेवाले तत्त्वज्ञानी, ईश्वरभक्त, तपस्वी, सदाचारी, त्यागी, निस्स्वार्थी, अरण्यवासी, पुण्यजीवन, प्रातःस्मरणीय ऋषियोंकी कृपासे ही शास्त्रोंकी रचना हुई, जिनके द्वारा मनुष्योंके ज्ञाननेत्र खुले और उन्हें विविध भौतिकी आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक विद्याओं और कलाओंकी प्राप्ति हुई। उन परम पूजनीय महापुरुषोंने अपना सारा तपःपूत जीवन अकेले जंगलोंमें रहकर ज्ञानके अर्जनमें लगाया और बड़े ही उदारभावसे अपने उपार्जित ज्ञानको बिना किसी बदलेकी भावनासे केवल लोकोपकारार्थ—भगवान्‌के सृष्टियज्ञमें पवित्र आहुति देनेके भावसे—ग्रन्थित करके वे हमलोगोंको दे गये, और आज भी ग्रन्थोंके अतिरिक्त स्वयं, वे हमारे बिना ही माँगे और बिना ही पहचाने परोक्षरूपसे हमारी सहायता कर रहे हैं। यदि भगवद्रूप ऋषिगण शास्त्रोंद्वारा हमें ज्ञान प्रदान न करते तो हमारी न मालूम क्या दशा होती और हमारा वह पशुजीवन प्राकृतिक पशुओंसे भी न मालूम कितना नीचे गिरा हुआ होता! ये ऋषिगण भगवान्‌की

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आध्यात्मिक शक्तिके अधिष्ठाता हैं और जगत्‌में सदा-सर्वदा आनन्दमय अध्यात्म-ज्ञानकी ज्योतिका विस्तार करते रहते हैं। इनके उपकारका कभी बदला नहीं चुकाया जा सकता।

देवता

देवताओंके द्वारा ही सृष्टिका समस्त कार्य चल रहा है। देवता श्रीभगवान्‌की अधिदैवशक्तिके अधिष्ठाता हैं, और प्रत्येक क्रियामें इन देवताओंका हाथ रहता है। देवताओंके द्वारा ही विश्वकी समस्त क्रियाएँ सुसम्पन्न और सुरक्षित होती हैं। हमारे मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, शरीर आदि सब, इन देवताओंकी सहायतासे ही बराबर कार्य करते हैं। देवताओंकी शक्तिसे ही कर्म जड़ होनेपर फल उत्पन्न करता है। जल, अग्नि, वायु, अन्न आदिरूपमें देवता ही हमारा पोषण करते हैं। समयपर वर्षा बरसना, चन्द्र-सूर्यका नियमितरूपसे उदय और अस्त होना, ऋतुओंका बदलना आदि कार्य देवताओंके ही हैं। जगत्‌में स्वास्थ्य, आवश्यक पदार्थ और सुख-शान्तिकी प्राप्ति देवताओंकी कृपासे ही होती है। देवताओंका हमपर बड़ा भारी उपकार है। देवता नित्य और नैमित्तिक-भेदसे दो प्रकारके हैं। रुद्र, आदित्य, वसु, इन्द्र, प्रजापति, महाशक्ति आदि देव-देवियाँ नित्य हैं, और सुकर्मवश देवयोनिको प्राप्त होनेवाले जीव एवं ग्रामदेवता, वनदेवता, कुलदेवता आदि नैमित्तिक हैं। दोनों ही प्रकारके देवताओंसे हमें सहायता मिलती है।

पितर

देवताओंकी भाँति पितर भी दो प्रकारके हैं। नित्य और नैमित्तिक। अर्यमा, अग्निष्वात्ता, सोमपा आदि पितर नित्य हैं, जो सृष्टिके आदिकालसे ही हमारी सहायता-में लगे हैं; तथा कर्मवश पितृलोकमें गये हुए हमारे पूर्वज नैमित्तिक पितर हैं। पितर भगवान्‌की आधिभौतिक शक्तिके अधिष्ठाता हैं। व्यक्तिगत और देशगत स्वास्थ्य, सन्तान, धन, विद्या आदिकी उन्नतिमें पितरोंका बहुत हाथ है। पितरोंकी कृपासे जगत् सुखी होता है। हमारे माता-पिता हमारे लिये कितना कष्ट सहते हैं, किसप्रकारसे स्वयं कष्ट सहकर हमारा पालन करते हैं, हमारे लिये उनके हृदयमें स्नेहका कितना अटूट भण्डार भरा रहता है, इस बातका प्रायः सबको अनुभव है। माता-पिताके महान् उपकारका बदला सन्तान कब चुका सकती है? इसी प्रकार मरनेके बाद पितरलोकमें गये हुए पितर भी अपनी सन्तानकी हित-कामना और उनका हित-साधन करते रहते हैं। नित्य-पितर तो माता-पिताकी भाँति नित्य ही स्नेहपूरित हृदयसे सबका उपकार करते रहते हैं।

मनुष्य

मनुष्योंसे मनुष्योंके उपकारका तो सबको अनुभव है। यहाँ तो परस्परकी सहायता बिना एक मिनट भी काम नहीं चल सकता। संसारमें ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो यह कह सके कि मेरी जीवन-यात्रा किसी भी दूसरे मनुष्य-की सहायताके बिना केवल अपने ही बलपर चल रही है। देश, जाति और समाजका संगठन ही पारस्परिक सहायता-से जीवनको सहज और सुखमय बनानेके लिये है। राजा, बादशाह, विद्वान् आदि सभी दूसरे मनुष्योंसे सहायता प्राप्त करते हैं।

भूतप्राणी

भूतप्राणियोंका तो कहना ही क्या है? पशु-पक्षियोंसे, और ओषधि, लता, गुल्म और वृक्षादिसे मनुष्यका कितना भारी उपकार हो रहा है, इसका कोई सीमा-निर्देश नहीं कर सकता। गाय, बैल, भैंस, घोड़े, ऊँट, हाथी, खच्चर, गदहे, कुत्ते आदिसे तो प्रत्यक्ष ही हमारा उपकार होता है; परन्तु विचारकर देखा जाय और प्राणि-जगत्‌के रहस्यको समझनेकी चेष्टा की जाय तो पता लगेगा कि जिन प्राणियोंको मनुष्य हिंसक और भयानक समझकर सदा मारनेके लिये तैयार रहता है, वे प्राणी भी न मालूम हमारा कितना उपकार करते हैं। एक विद्वान् पुरुषने बतलाया था कि यदि साँप न होते तो जहरीली हवा फैल जाती जिससे मनुष्य रह नहीं सकते। जहरीली हवाको साँप भक्षण कर जाते हैं।

इसप्रकार ऋषि, देवता, पितर, मनुष्य और अन्यान्य भूतप्राणी सभी हमारे उपकारी सिद्ध होते हैं। इनका ऋण किसी अंशमें चुकाकर कुछ कृतज्ञता प्रकट की जाय, तथा इनको प्रसन्न करके विश्वको लाभ पहुँचाया जाय, इसके लिये पञ्चमहायज्ञ अवश्य करने चाहिये।

दूसरी बात है नित्य होनेवाली अनिवार्य हिंसाकी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गृहस्थमें विशेष रूपसे हिंसा पाँच प्रकारसे होती है। मनु महाराज लिखते हैं—

पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः।
कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन्॥
(मनु० ३।६८)

'गृहस्थके घरमें पाँच हिंसाके स्थान हैं—चूल्हा, चक्की, झाड़, ऊखल और जलघट; इन वस्तुओंका उपयोग करनेवाला गृहस्थ पापके बन्धनमें पड़ता है।' इस पापसे छूटनेका उपाय वे बतलाते हैं—

तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः।
पञ्च क्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम्॥
(मनु० ३।६९)

'इन सब हिंसाओंके प्रायश्चित्तके लिये महर्षियोंने गृहस्थोंके लिये क्रमसे नित्य पञ्चमहायज्ञ निर्माण किये।'—

पञ्चैतान्यो महायज्ञान्न हापयति शक्तितः।
स गृहेऽपि वसन्नित्यं सूनादोषैर्न लिप्यते॥
(मनु० ३।७१)

'जो पुरुष अपनी शक्तिके अनुसार इन पाँच महायज्ञोंको करता है, वह गृहस्थाश्रममें रहनेपर भी नित्य हिंसाके पापसे लिप्त नहीं होता।'

यद्यपि आजकल पाश्चात्य सभ्यताके प्रसारसे हमारे घरोंमेंसे प्रायः चक्की-ऊखलका बहिष्कार-सा होने लगा है, परन्तु इनके बदलेमें बड़े-बड़े हिंसाके कार्य इतने बढ़ गये हैं, जिनका कोई ठिकाना नहीं। चक्की-ऊखलका काम भी मशीनोंद्वारा होता ही है, जहाँ और भी अधिक हिंसा होती है। सच पूछा जाय तो आजकल मनुष्य विषयभोग और शारीरिक आरामके पीछे पागल होकर जिस लापरवाहीसे जीव-हिंसा कर रहा है, उतनी शायद पहले कभी नहीं होती थी। लाखों प्रकारकी पशु-पक्षियोंकी हिंसासे बननेवाली दवाइयाँ और मौज-शौकके सामान, बड़ी-बड़ी इमारतें, मीलें, रेल, कारखाने, मशीनें, कपड़े, जूते और न मालूम कितनी ऐसी मनुष्यकी बढ़ी हुई राक्षसी आवश्यकताओंको पूरी करनेवाली चीजें हैं, जिनके निर्माणमें असंख्य जीवोंकी हिंसा होती है। परन्तु मनुष्यको इसका आज कोई खयाल नहीं है। प्राचीन कालके यज्ञोंमें होनेवाली हिंसा आजकी इस हिंसाके सामने समुद्रमें कणके समान थी। आज मनुष्यके सुखके लिये एक-एक आविष्कारके प्रयोगमें न मालूम कितने निर्दोष प्राणियोंके प्राण हरण किये जाते हैं। आज एक मनुष्यके लिये दिनभरमें जितनी हिंसा होती है, उतनी शायद हिंसक जन्तु अपनी उदरपूर्तिके लिये नहीं कर सकता होगा। इस हिंसामय जीवनका उद्धार तो भगवान्‌के भजनसे ही होगा। परन्तु कम-से-कम पञ्च-महायज्ञ तो जरूर ही करने चाहिये।

पञ्चमहायज्ञ किसप्रकार करें?

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥
(मनु० ३।७०)

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा।
नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत्॥
(मनु० ४।२१)

'अध्यापन (स्वाध्याय) ब्रह्मयज्ञ या ऋषियज्ञ है, तर्पण पितृयज्ञ है, होम देवयज्ञ है, बलि भूतयज्ञ है और अतिथि-सत्कार मनुष्ययज्ञ है। इस ऋषियज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ और पितृयज्ञको सदा-सर्वदा यथाशक्ति करना चाहिये; इसका त्याग कभी नहीं करना चाहिये।

अब इनमेंसे प्रत्येकपर कुछ-कुछ विचार करना है।

ऋषियज्ञ या ब्रह्मयज्ञ

महान् तपस्वी महर्षियोंके ऋणसे मुक्त होना तो हमारे लिये सम्भव ही नहीं है और न ऋषियोंको ही किसीसे कुछ कामना है, परन्तु अपनी कृतज्ञता प्रकट करनेके लिये हमें ऋषियज्ञ या ब्रह्मयज्ञ अवश्य करना चाहिये। ब्रह्मयज्ञसे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है और ऋषिगण प्रसन्न होकर आध्यात्मिक प्रकाश फैलाते हैं, जिससे अपने परम कल्याणके साथ ही विश्वका कल्याण होता है। ऋषियज्ञ करनेके प्रकार हैं—

१—अपने-अपने अधिकार और योग्यताके अनुसार वेद, पुराण, महाभारत, रामायण, गीता, स्मृतिआदि सद्ग्रन्थोंको पढ़ना, सुनना और उनमें वर्णित ज्ञानको ग्रहण करना।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२–ऋषियोंके बतलाये हुए मार्गके अनुसार शुद्ध आचरण करना।

३–ऋषियोंके बनाये हुए आश्रम-धर्मके विधानपर चलना। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासका यथाविधि आचरण करना।

४–ऋषियोंके दिव्य उपदेशका जगत्‌में प्रचार हो, इसके लिये स्वयं उनके उपदेशानुसार आचरण करते हुए विश्वमें उसका प्रचार करना।

५–तर्पण-दानादिसे ऋषियोंको तृप्त करना।

देवयज्ञ

भगवान्‌ने श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥
देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥
इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः॥
(३। १०–१२)

'प्रजापतिने कल्पके आदिमें यज्ञके साथ ही प्रजाको रचकर कहा कि इस यज्ञद्वारा (देवताओंको प्रसन्न करके तुम) अपनी उन्नति करो। यह यज्ञ तुम्हें इच्छित फल देनेवाला हो। इस यज्ञके द्वारा तुम देवताओंकी उन्नति करो और देवता (अपनी शक्तिसे) तुम्हारी उन्नति करें। यों परस्पर उन्नति करते हुए तुम परम श्रेय (मोक्ष) को प्राप्त होओगे। यज्ञके द्वारा उन्नत (और शक्तिसंवर्धित) देवता तुम्हें (बिना ही माँगे) इच्छित प्रिय पदार्थोंको देंगे, उनके द्वारा दिये हुए पदार्थोंको जो मनुष्य उन्हें बिना ही दिये स्वयं भोगता है, वह निश्चय ही चोर है।'

इससे देवयज्ञकी सार्थकता और आवश्यकता सिद्ध हो गयी। देवयज्ञसे इस लोकमें समस्त सुख और भगवदाज्ञानुसार निष्काम बुद्धिसे करनेपर परम कल्याण–मोक्षकी प्राप्ति होती है। देवताओंकी प्रसन्नतासे लोककल्याण तो आप ही होता है।

देवताओंके दो स्वरूप हैं, एक देवलोकमें रहनेवाले शरीरधारी देव, दूसरा चन्द्र, सूर्य, जल, अग्नि, वायु, पृथिवी, विद्युत् आदिके रूपमें रहे हुए, तथा पशु, पक्षी आदि जीवोंके अधिष्ठातृ देवता। इन देवताओंकी जितनी उन्नति होगी, इनका कार्य जितना व्यवस्थित और सुचारुरूपसे होगा, उतना ही विश्वको सुख होगा। अब भी सच पूछा जाय तो देवताओंने अपने कर्तव्यको प्रायः नहीं छोड़ा है, वे अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़ हैं; परन्तु हमलोगोंने देवयज्ञको छोड़कर अपनी शर्त तोड़ दी, इसीलिये दैविक दुर्घटनाएँ आजकल जगत्‌में विशेष हो रही हैं। इसका कारण यही है कि देवताओंकी क्रियाओंमें हमारे दोषसे कहीं-कहीं गड़बड़ी आ जानेसे अधिदैव जगत्‌में अस्तव्यस्तता आ गयी है, उसीके फलस्वरूप अनावृष्टि, अतिवृष्टि, बाढ़, अकाल, भूकम्प, संक्रामक रोग आदि होते हैं। इसीका दूसरा नाम दैवीकोप है।

सृष्टिकार्यके सञ्चालनमें सबका भाग है। जगन्नाटकके सूत्रधारने प्रत्येक प्राणीको अलग-अलग पार्ट दे रक्खा है, एक भी पार्टके खराब होने या न होनेसे मालिकके खेलमें गड़बड़ी आ जाती है। इसीलिये सब ओर व्यवस्था रखनेका विधान है और शास्त्रोंकी रचना हुई है। मनुष्योंने अपना कर्तव्य छोड़ दिया, इसीलिये जगत्‌का खेल कुछ खराब-सा दीखने लगा और मनुष्योंपर विपत्तियाँ आने लगीं। खेल बिगाड़नेवाले अभिनेतापर नाटक-मण्डलीके स्वामीका कोप होना और उसे दण्ड प्राप्त होना स्वाभाविक ही है। यह ऐसी संगठित व्यवस्था है कि ईश्वर-आज्ञानुसार अच्छेका फल अच्छा, और बुरेका बुरा अपने आप ही (automatically) हो जाता है।

भगवान् कहते हैं—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥
एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति॥
(गीता ३। १४–१६)

'अन्नसे प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है, अन्नकी उत्पत्ति वृष्टिसे होती है, वृष्टि यज्ञसे होती है और यज्ञ कर्मसे उत्पन्न होता है। कर्म ब्रह्म (वेद) से उत्पन्न होता है, ब्रह्म (वेद) अक्षर अविनाशी परमात्मासे उत्पन्न है। इसलिये सर्वव्यापक परमात्मा सदा-सर्वदा यज्ञमें स्थित रहता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हे पार्थ ! जो इस लोकमें इसप्रकार चलते हुए सृष्टि-चक्रके अनुसार नहीं चलता (यज्ञ नहीं करता), वह इन्द्रियोंके सुख-भोगमें लगा रहनेवाला (कर्तव्यहीन) पापात्मा मनुष्य व्यर्थ ही जीता है ।'

चक्रमें कहीं जरा-सी अस्तव्यस्तता हुई कि सारे रथकी गतिमें गड़बड़ी हो जाती है, इसीलिये देवयज्ञ अत्यन्त आवश्यक है । देवयज्ञ यह है—

(१) देवताओंके लिये शास्त्रविधिके अनुसार होम करना । हवनसे केवल वायुशुद्धि ही नहीं होती, बल्कि दैवजगत्से जो हमारा नित्य-सम्बन्ध है वह और भी दृढ़ होता है और देवताओंकी प्रसन्नतासे हमारे विघ्नबाधाओंके नाश और इच्छित सुख-भोगकी प्राप्तिमें विशेष सुगमता हो जाती है । होम यज्ञका एक प्रधान रूप है ।

(२) शास्त्र-निर्णीत समयोंपर विभिन्न देवताओंकी निष्काम उपासना करना ।

(३) देव-मन्दिरोंकी स्थापना और यथाविधि देव-पूजा करना ।

(४) तर्पण-दानादिसे देवताओंको सन्तुष्ट करना ।

(५) समस्त भूतप्राणियोंके साथ यथायोग्य सद्व्यवहार करके, एवं जल, वायु, अग्नि, विद्युत् आदिको पवित्र, क्रियाशील रख उनका यथायोग्य सदुपयोग करके सबके अधिष्ठातृ देवताओंको प्रसन्न और समुन्नत करना ।

पितृयज्ञ

मनु महाराजने 'तर्पण' को पितृयज्ञ बतलाया है । तर्पणमें तृप्तिका भाव है । इसका प्रधान उद्देश्य है पितरोंको तृप्त करना । उनके तृप्त होनेसे उनके आशीर्वादद्वारा हमारी सुख-समृद्धिकी अपने आप ही वृद्धि होती है । पितृयज्ञ यह है—

(१) जीवित माता-पिता और गुरुजनादिके चरणोंमें नित्य श्रद्धा-भक्तिसे प्रणाम करना, उनकी सेवा करना; अन्न, धन एवं आवश्यक पदार्थोंद्वारा उनकी इच्छानुसार उन्हें सुख पहुँचाना । उनका सच्चे हृदयसे हित चाहना और करना एवं उनकी शास्त्रसे अविरुद्ध सभी आज्ञाओंको स्वार्थ छोड़कर आदरपूर्वक पालन करना ।

(२) परलोकगत पितरोंके लिये नित्य श्राद्ध और तर्पण करना, एवं उनको प्रिय लगनेवाली वस्तुओंका उनके अर्थयोग्य पात्रको दान करना ।*

(३) सदाचारपरायण रहकर परलोकगत पितरोंको सुख पहुँचाना; उनकी आत्माकी शान्तिके लिये ब्राह्मण-भोजन, व्रत, जप, तप, हवन आदि करना-कराना; भगवान्की भक्ति करके उन्हें और भी ऊँची गति अथवा मोक्षकी प्राप्ति करानेके लिये प्रयत्न करना । परलोकगत पितर सदाचारी, हरिभक्त सन्तानसे बहुत आशा रखते हैं और ऐसे सन्तानको देखकर वे अत्यन्त ही प्रसन्न होते हैं । यहाँतक कि हर्षके मारे वे नाच उठते हैं । शास्त्रमें कहा है—

आस्फोटयन्ति पितरो नृत्यन्ति च पितामहाः ।
मद्वंशे वैष्णवो जातः स नस्त्राता भविष्यति ॥

कथा प्रसिद्ध है कि प्रह्लादकी भक्तिसे उसके पितृकुलका उद्धार हो गया था ।

(४) हरिनाम-संकीर्तनके द्वारा परलोकगत पितरोंके कष्टोंका हरण करना । यह अनुभवसिद्ध प्रयोग है ।

(५) सदाचार, सेवा, सद्व्यवहार और दानादिके द्वारा जगत्में अपने पितरोंकी कीर्ति फैलाना ।

एक बात याद रखनेकी है कि हम जो आज मनुष्य-शरीरको प्राप्त हैं सो पहले भी सदासे मनुष्य ही थे ऐसी बात नहीं है; जितनी प्रकारकी योनियाँ भगवान्ने रची हैं, प्रायः सभी योनियोंमें हम उत्पन्न हो चुके हैं, और उन सभी योनियोंके हमारे माता-पिता आदि अब भी (जो मुक्त न हो गये हैं) विश्वमें कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी योनि और स्थितिमें वर्तमान हैं । अतः इस न्यायसे भी हमारा सबके साथ आत्मीय सम्बन्ध है । इसीलिये सबकी तृप्तिके निमित्त श्राद्ध और तर्पणका विधान है । विष्णुपुराणमें कहा है कि तर्पणके समय पितरोंका तर्पण करके इसप्रकार कहता हुआ मनुष्य सब भूतोंकी तृप्तिके लिये सबको जल देवे ।

'देव, असुर, यक्ष, नाग, गन्धर्व, राक्षस, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, कूष्माण्ड, पशु, पक्षी, जलचर, स्थलचर और वायुभक्षक सर्प आदि सभी प्रकारके जीव मेरे दिये हुए जलसे तृप्त हों । जो प्राणी सम्पूर्ण नरकोंमें नाना प्रकारकी यातनाएँ

* श्राद्ध-तर्पणका विषय बहुत ही समझने लायक है । हो सका तो कभी इस विषयपर स्वतन्त्र लेख लिखा जा सकता है ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भोग रहे हैं उनकी तृप्तिके लिये मैं जल-दान करता हूँ। जो मेरे बन्धु हैं या अबन्धु हैं अथवा जो दूसरे जन्मोंमें मेरे बन्धु थे एवं और भी जो-जो मुझसे जलकी इच्छा रखते हैं वे सब मेरे दिये जलसे तृप्त हों। भूख-प्याससे व्याकुल जीव कहीं भी क्यों न हों, मेरा दिया हुआ यह तिलोदक उनकी सदा तृप्ति करता रहे।' (विष्णुपुराण ३। ११। ३२—३७)

देखनेमें यह बहुत ही उदार भावना है, और उदार भावना है भी! परन्तु वास्तवमें यह कर्तव्य ही है। सृष्टि-यज्ञके सञ्चालनार्थ भगवान्‌की आज्ञानुसार सबकी उन्नति करनेमें ही अपनी उन्नति है। विश्वमात्रके समस्त प्राणियोंको तृप्त करना ही तर्पणका उद्देश्य है।

मनुष्ययज्ञ

मनुष्यका कार्य मनुष्यसे ही चलता है, अतएव प्रत्येक मनुष्यको अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार मनुष्यमात्रकी सेवा करनी चाहिये। वह इसप्रकार हो सकती है—

(१) अपने आश्रित जनोंका आदरपूर्वक पालन-पोषण करना।

(२) रोगियोंकी आदर-सत्कार और सावधानीसे सेवा करना।

(३) किसी भी मनुष्यको दुःख न पहुँचाकर यथा-साध्य अन्न, वस्त्र, सत्परामर्श, सद्विद्या और सद्व्यवहार आदिसे सबको सुख पहुँचाना। यथासाध्य सेवा करवानेकी इच्छा न रखकर सेवा करनेकी इच्छा रखना और यत्न करना। इतनेपर भी दूसरोंसे सेवा तो करानी ही पड़ेगी, क्योंकि जीवन-निर्वाहमें इससे बचनेकी गुंजाइश ही नहीं है।

(४) अपने सदाचरण, उत्तम बर्ताव और भगवद्भक्तिसे दूसरे मनुष्योंके लिये उत्तम आदर्श उपस्थित करना।

(५) सदा निष्कामभावसे सबके हितमें संलग्न रहना।

इसमें जिससे जितना अधिक कार्य हो सके, उतना ही करना और अधिकाधिक करनेकी चेष्टा करते रहना। अपनेको मनुष्य-जातिका सेवक मानकर कहीं गर्वमें नहीं फूल उठना चाहिये। वास्तवमें एक मनुष्य असंख्य मनुष्योंसे जितनी सेवा ग्रहण करता है, अकेला उन सबका बदला कभी चुका ही नहीं सकता। अतएव जितनी सेवा हो सके उतनीको ही थोड़ी समझे, और सेवा करनेका अवसर भगवान्‌ने दिया इसके लिये भगवान्‌की कृपा समझे, एवं सेवा करानेवालोंने हमारी तुच्छ सेवा स्वीकार की इसके लिये उनका उपकार मानकर कृतज्ञ हृदयसे सदा विनम्र रहता हुआ सेवामें लगा ही रहे। शास्त्रकारोंने सबके सुभीतेके लिये केवल अतिथि-सेवनको ही मनुष्ययज्ञमें बतलाया है, अतएव अतिथि-पूजन तो अवश्य ही करे। धन और अन्न पैदा करना, रसोई बनाना आदि सभी कार्य यज्ञरूप हैं। रसोईमें जो कुछ बने, उससे पहले बलिवैश्वदेवके द्वारा सबके लिये भाग निकालकर फिर अतिथिको सादर भोजन कराना चाहिये। 'अतिथिदेवो भव' यह श्रुतिवाक्य प्रसिद्ध है। पाराशर-स्मृतिमें कहा है—

वैश्वदेवविहीना ये आतिथ्येन बहिष्कृताः।
सर्वे ते नरकं यान्ति काकयोनिं व्रजन्ति च॥
पापो वा यदि चाण्डालो विप्रघ्नपितृघातकः।
वैश्वदेवे तु सम्प्राप्तः सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः॥
(१। ५७-५८)

'जो वैश्वदेव नहीं करते तथा अतिथिका सत्कार नहीं करते वे सब नरकोंमें पड़ते हैं और फिर कौवेकी योनिको प्राप्त होते हैं। वैश्वदेवके समय आनेवाला चाहे पापी हो, चाण्डाल हो, ब्रह्महत्यारा हो या अपने पिताको मारनेवाला ही क्यों न हो वह अतिथि है और उसका सत्कार करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है।' मतलब यह कि रसोई बननेके बाद बलिवैश्वदेव होनेपर कोई भी आ जाय, अन्न देकर उसका सत्कार अवश्य करना चाहिये।

विष्णुपुराणमें लिखा है कि 'वैश्वदेव करनेके बाद गौ दुहनेमें जितना समय लगता है उतने समयतक अथवा इससे भी अधिक देरतक अतिथिकी बाट देखता हुआ आँगनमें खड़ा रहे। अतिथि आ जाय तो उसका स्वागत करे, आसन दे और चरण धोकर सत्कार करे। फिर श्रद्धापूर्वक उसे भोजन करवाकर मीठी वाणीसे कुशल-प्रश्न पूछता हुआ उसके जानेके समय कुछ दूरतक पीछे-पीछे जाकर उसको प्रसन्न करे। जिसके कुल और नामका कोई पता न हो तथा जो दूर देशसे आया हो, उसीको अतिथि माने, गाँवमें रहनेवाले परिचितको नहीं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(परिचित और सम्बन्धीका तो सत्कार करना ही चाहिये) परन्तु जिसके पास कोई सामग्री न हो, जिससे कोई सम्बन्ध न हो, जिसके कुल-शीलका कोई पता न हो और जो भोजन करना चाहता हो ऐसे अतिथिका सत्कार किये बिना भोजन करनेवाला मनुष्य अधोगतिको प्राप्त होता है। गृहस्थको चाहिये कि अतिथिके अध्ययन, गोत्र, आचरण और कुल आदिके विषयमें कुछ भी पूछताछ न कर हिरण्यगर्भ-भगवान्-बुद्धिसे उसकी पूजा करे। जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौट जाता है उसे वह अपना पाप देकर उसके शुभ कर्मोंका हरण करके ले जाता है। धाता, प्रजापति, इन्द्र, अग्नि, वसु और अर्यमा ये समस्त देव और पितर अतिथिमें प्रविष्ट होकर अन्न-भोजन करते हैं। अतएव मनुष्यको अतिथिपूजनके लिये सदा चेष्टा करनी चाहिये। जो पुरुष अतिथिको भोजन न देकर स्वयं भोजन करता है वह केवल पाप ही खाता है—

स केवलमघं भुङ्क्ते यो भुङ्क्ते ह्यतिथिं विना।

तदनन्तर नैहरमें आयी हुई विवाहिता कन्या, दुखिया, गर्भिणी स्त्री, वृद्ध और बालकोंको संस्कृत अन्नसे भोजन कराकर अन्तमें गृहस्थ स्वयं भोजन करे। इन सबको भोजन कराये बिना ही जो स्वयं भोजन कर लेता है, वह पापमय भोजन करता है और अन्तमें मरकर नरकमें श्लेष्मभोजी कीड़ा होता है। (विष्णुपुराण ३। ११। ५८ से ६३, ६८ से ७२)

इसी प्रकार मनु महाराजके भी वचन हैं—

सायंकाल सूर्यास्त हो जानेपर या बलिवैश्वदेवके समय यदि अतिथि घरपर आ जाय तो उसे वापस न करे। घरमें टिकाकर भोजन करावे। घी, दूध, दही आदि जो पदार्थ अतिथिको नहीं खिलाया गया हो उसे स्वयं भी न खाय। अतिथिकी सेवा करनेसे धन, कीर्ति, आयु और स्वर्गकी प्राप्ति होती है। अन्यान्य मित्र, सम्बन्धी आदि घरपर आ जायँ तो यथाशक्ति उनको भी, स्वयं अपनी स्त्री-सहित सेवामें हाजिर रहकर उत्तम भोजन करावे। सुवासिनी स्त्री, कुमारी कन्या, रोगी और गर्भिणी स्त्रीको अतिथियोंके पहले भोजन करानेमें कोई विचार न करे। जो मूर्ख इन सबको खिलाये बिना ही स्वयं पहले खा लेता है वह इस बातको नहीं जानता कि मरनेके बाद मेरे शरीरको कुत्ते और गीध नोच-नोचकर खायँगे। ब्राह्मण, अतिथि, सम्बन्धी और माता-पितासे लेकर नौकरतक पोष्यवर्ग आदिको भोजन करानेके बाद बची हुई रसोईको पति-पत्नी भोजन करें। देवता, ऋषि, मनुष्य, पितर और घरके देवताओंका (अन्नके द्वारा) पूजन करके पीछे गृहस्थ उनसे बचा हुआ अन्न खाय। जो मनुष्य पञ्चमहायज्ञ न करके केवल अपना पेट भरनेके लिये भोजन तैयार करता है वह केवल पाप ही खाता है। क्योंकि यज्ञसे बचा हुआ अन्न ही सत्पुरुषोंको भोजन करना चाहिये, यही शास्त्रविधि है। (मनुस्मृति ३। १०५-६, ११३-११८)

इसप्रकार नित्य स्वयं अतिथिसेवन करे। परन्तु जहाँतक हो सके किसीका अतिथि बने नहीं। नहीं तो मुफ्तखोरीकी आदत पड़ जायगी और लोगोंकी श्रद्धा अतिथि-सेवासे हट जायगी। आजकल प्रायः ऐसा ही हो रहा है। मनु महाराज कहते हैं—

उपासते ये गृहस्थाः परपाकमबुद्धयः।
तेन ते प्रेत्य पशुतां व्रजन्त्यन्नादिदायिनाम्॥

(३। १०४)

पराये भोजनका दोष न जाननेवाले जो गृहस्थ दूसरेके घर अतिथि बनकर भोजन करते हैं वे मरकर भोजन करानेवालोंके घर पशु होते हैं।

भूतयज्ञ

जगत्में जितने प्राणी हैं, सभी श्रीपरमात्माके स्वरूप हैं। श्रीमद्भागवतमें कहा है—

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः॥

(११। २। ४१)

'आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, नक्षत्रादि, प्राणी, दिशाएँ, वृक्ष, नदियाँ और समुद्र आदि समस्त भूत भगवान् श्रीहरिके शरीर ही हैं; अतः सबको अनन्यभावसे प्रणाम करे।' एकान्त-भक्तोंके लिये तो भगवान् अपने भक्त उद्धवसे कहते हैं—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रणमेद्दण्डवद्भूमावाश्वचाण्डालगोखरम् ॥
(११।२९।१६)

'कुत्ते, चाण्डाल, गौ और गदहेको भी (मेरा स्वरूप समझकर) पृथ्वीपर गिरकर साष्टांग प्रणाम करे।'

इसप्रकार भगवत्-स्वरूप होनेसे सभी प्राणी पूज्य और सेवाके पात्र हैं। जहाँतक हो सके यथायोग्य व्यवहार करते हुए सबके साथ उत्तम-से-उत्तम बर्ताव करना चाहिये। मनुष्यके लिये प्राणियोंकी बहुत बड़ी हिंसा होती है। मनुष्यके श्वाससे नित्य न मालूम कितने जीव मारे जाते हैं। खेती आदिमें तो हिंसा होती ही है। इसके सिवा बड़े दुःखकी बात तो यह है कि मनुष्य अपने पापी पेटको भरने और जीभके स्वादके लिये मूक पशु-पक्षियोंको मारकर उनका मांस खाते हैं। यह बहुत बुरी बात है। श्रीमद्भागवतमें कहा है—

ये त्वनेवंविदोऽसन्तः स्तब्धाः सदभिमानिनः।
पशून्द्रुह्यन्ति विस्रब्धाः प्रेत्य खादन्ति ते च तान्॥
(११।५।१४)

'यथार्थ तात्पर्यको न जाननेवाले जो लोग अति गर्व और पाण्डित्याभिमानके कारण पशुओंसे द्रोह करते हैं, उनके द्वारा वध किये हुए वे पशु मरकर उन्हींको खाते हैं।' किसी भी प्राणीको दुःख पहुँचाना सबके आत्मारूप परमात्मासे ही द्रोह करना है। भागवतमें कहा है—

द्विषन्तः परकायेषु स्वात्मानं हरिमीश्वरम्।
मृतके सानुबन्धेऽस्मिन्बद्धस्नेहाः पतन्त्यधः॥
(११।५।१५)

'इस अवश्य नष्ट होनेवाले शरीर और एक दिन अवश्य ही छूट जानेवाले धनमें स्नेह करके जो मनुष्य दूसरे शरीरोंमें स्थित अपने ही आत्मा श्रीहरिसे द्वेष करते हैं वे अवश्य ही अधोगतिको प्राप्त होते हैं।'

अतएव मांसाहार बिल्कुल छोड़ देना चाहिये और यथासाध्य समस्त जीवोंको सुख पहुँचाने और उनका हित करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

अन्न और रसोईमेंसे प्रतिदिन गौ, बैल, कुत्ते, बिल्ली, बन्दर, कबूतर, कौये आदि पशु-पक्षियोंको पहले देना चाहिये। घरमें इनका रहना परोक्षरूपसे बड़ा लाभदायक है। इस लाभको हमलोग समझ नहीं सकते, इसीसे उनकी कद्र नहीं करते। अतएव इनका स्वत्व इन्हें देना ही चाहिये। इसके सिवा, हम न मालूम कितनी बार पशु-पक्षी हो चुके हैं, और यदि मुक्त नहीं होंगे तो कितनी बार फिर भी होना पड़ेगा। इस अवस्थामें यदि हम इन्हें अन्न-जलादि देकर सुखी रक्खेंगे तो वैसी योनि प्राप्त होनेपर हम भी वैसी ही आशा रख सकते हैं। यदि यह प्रथा चल जायगी कि पशु-पक्षियोंको कुछ भी न दिया जाय तो घरमेंसे धर्म तो उठ ही जायगा, साथ ही जब हम उस योनिमें जायँगे तो हमें भी अभावका दुःख उठाना पड़ेगा। यदि इसके बदलेमें पशु-पक्षियोंको उदारतासे अन्नादि दिये जानेकी प्रथा सुचारुरूपसे चल जाय तो उक्त योनियोंमें जानेवाले आजके सभी मनुष्योंके लिये सुखकी आशा की जा सकती है। इसके अतिरिक्त सर्वभूतस्थित ईश्वरकी सेवा तो होती ही है। और यदि ईश्वरकी सेवाके भावसे किसी प्रकारकी भी कामना न रखकर सब जीवोंकी सेवा की जाय तो उसको फलस्वरूप भगवत्-प्राप्ति हो सकती है। अतएव यथासाध्य समस्त भूत-प्राणियोंकी सेवा करनी चाहिये। गौ, कुत्ते, बिल्ली, कबूतर, कौये, चींटी आदि सबको यथासाध्य अन्न-जल देना चाहिये। एवं रसोई बननेपर बलिवैश्वदेवमें सबके लिये बलि देनी चाहिये। विष्णुपुराणमें कहा है—

'बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओंमें क्रमशः इन्द्र, यम, वरुण और चन्द्रमाके लिये हुतशिष्ट सामग्रीसे बलि देवे। पूर्व और उत्तर दिशाओंमें धन्वन्तरिके लिये बलि दे तथा इसके अनन्तर बलिवैश्वदेव-कर्म करे। बलिवैश्वदेवके समय वायव्यकोणमें वायुको तथा अन्य सम्पूर्ण दिशाओंमें वायु एवं उन दिशाओंको बलि दे। इसी प्रकार ब्रह्मा, अन्तरिक्ष और सूर्यको भी उनकी दिशाओंके अनुसार बलि देवे। फिर विश्वदेवों, विश्वभूतों, विश्वपतियों, पितरों और यक्षोंके लिये यथास्थान बलि-प्रदान करे।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'तदनन्तर बुद्धिमान् पुरुष इसप्रकार कहकर समस्त प्राणियोंको बलि दे। 'देवता मनुष्य, पशु, पक्षी, सिद्ध, यक्ष, सर्प, दैत्य, प्रेत, पिशाच, वृक्ष तथा चींटी, कीट-पतंग आदि जो कर्म-बन्धनसे बँधे हुए क्षुधातुर होकर मेरे दिये हुए अन्नकी इच्छा करते हैं, उन सबके लिये मैं यह अन्नदान करता हूँ, ये इससे तृप्त और सुखी हों। जिनके माता, पिता अथवा कोई भी और बन्धु नहीं है तथा अन्न बनानेका साधन एवं अन्न भी नहीं है, उनकी तृप्तिके लिये मैंने पृथिवीपर यह अन्न रक्खा है, इससे वे तृप्त होकर सुखी हों। सम्पूर्ण प्राणी, यह अन्न और मैं—सभी विष्णु हैं, क्योंकि विष्णुसे भिन्न और कुछ है ही नहीं। अतः मैं समस्त भूत-प्राणियोंको यह अन्न उनके पोषणके लिये दान करता हूँ। यह जो चौदह प्रकारका (सिद्ध, गुह्यक, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, विद्याधर, पिशाच, सरीसृप, वानर, पशु, मृग, पक्षी और मनुष्य) भूत समुदाय है, उसमें जितने भी प्राणी हैं उन सबकी तृप्तिके लिये मैंने यह अन्न प्रस्तुत किया है, इससे वे प्रसन्न हों।' इसप्रकार कहकर गृहस्थ पुरुष श्रद्धापूर्वक समस्त जीवोंके उपकारके लिये पृथिवीमें अन्न-दान करे, क्योंकि गृहस्थ ही सबका आश्रय है। तदनन्तर कुत्ता, चाण्डाल, पक्षी एवं अन्यान्य जो कोई पतित और पुत्रहीन पुरुष हों उनको अन्न देकर तृप्त करे।' (विष्णुपुराण ॐ ३। ११। ४६ से ५७)

शास्त्रकी ऐसी आज्ञाओंका अनुसरण कर हमलोगोंको पशु-पक्षियोंके साथ परम आत्मीयताका बर्ताव करना चाहिये। भूत-यज्ञके लिये ये कार्य करने उचित हैं—

(१) नियमित बलिवैश्वदेव† प्रतिदिन करना।

(२) यथासाध्य गौ, कुत्ते, बिल्ली, चींटी, कौवे, कबूतर आदिको अन्न-जल देना।

(३) किसी भी प्राणीको कष्ट न देना। मांसाहारके विरुद्ध प्रचार करना। गौ-हिंसा एवं अन्य पशु-हिंसा बन्द करानेमें सहायता करना। बैल, भैंसे आदिको निर्दयतापूर्वक दिये जानेवाले कष्टोंसे बचाना।

(४) जिसमें प्राणिहिंसा होती हो, ऐसे खाद्य-पदार्थ, दवा, कपड़े, जूते आदिका व्यवहार न करना।

(५) सभी जीवोंको आत्मवत् समझकर सबके साथ सद्व्यवहार करना।

इसप्रकारसे पञ्चमहायज्ञका अनुष्ठान प्रतिदिन सबको करना चाहिये।

श्रीभगवान् कहते हैं—

वेदाध्यायस्वधास्वाहाबल्यन्नाद्यैर्यथोदयम्।
देवर्षिपितृभूतानि मद्रूपाण्यन्वहं यजेत्॥
(श्रीमद्भा० ११। १७। ५०)

'गृहस्थको चाहिये कि वेदाध्ययन (ऋषियज्ञ), स्वधा (पितृयज्ञ), स्वाहा (देवयज्ञ), बलिवैश्वदेव (भूतयज्ञ) और अन्नदान (मनुष्ययज्ञ) आदिके द्वारा मेरे ही रूप देव, ऋषि, पितर, मनुष्य और अन्य समस्त प्राणियोंका यथाविधि पूजन करता रहे।' और—

यदृच्छयोपपन्नेन शुक्लेनोपार्जितेन वा।
धनेनापीडयन्भृत्यान्न्यायेनैवाहरेत्क्रतून्॥
(११। १७। ५१)

'आप ही प्राप्त हुए अथवा शुद्ध वृत्तिके द्वारा सत्य और न्यायपूर्वक उपार्जित धनसे, अपने द्वारा जिनका भरण-पोषण होता हो उन लोगोंको कष्ट न पहुँचाकर यज्ञादि कर्म करता रहे।' परन्तु इतनी सावधानी जरूर रक्खे कि—

कुटुम्बेषु न सज्जेत न प्रमाद्येत्कुटुम्ब्यपि।
विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत्॥
(११। १७। ५२)

'अपने कुटुम्ब या किसीमें आसक्त न हो जाय, बड़ा कुटुम्ब होकर प्रमादवश भगवान्‌के भजनको कभी न भुलावे। बुद्धिमान् विवेकी पुरुषको चाहिये कि इस दृश्य प्रपञ्चके समान अदृश्य स्वर्गादिको भी नाशवान् ही जाने।' और हृदयसे सदा भगवद्भजन करता हुआ भगवान्‌की प्रीतिके लिये ही सब कर्म करे। भगवत्प्रीत्यर्थ होनेवाले कर्मका नाम ही यज्ञ है और इसीका नाम कर्मयोग है।

हनुमानप्रसाद पोद्दार

---

* विष्णुपुराण हिन्दी-अनुवाद-सहित गीताप्रेससे प्रकाशित हो गया है। मूल्य २॥) सजिल्द ३॥) है।

† 'बलिवैश्वदेव' के विधिका छपा हुआ पन्ना गीताप्रेसमें मिलता है, मूल्य दो पैसा है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परमहंस-विवेकमाला

(लेखक—स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी)

(गतांकसे आगे)

[मणि १०]

राजा जनक—(मनमें) ब्राह्मणोंकी इस समाजमें याज्ञवल्क्यके सिवा कोई भी दूसरा ब्राह्मण पूर्ण विद्वान् नहीं है। सूर्यभगवान्‌के शिष्य याज्ञवल्क्य ही सबसे अधिक विद्वान् हैं, कोई कहे कि याज्ञवल्क्यकी श्रेष्ठताको तुमने किसप्रकार जाना, तो उसका उत्तर यह है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा गर्व इत्यादि दोषोंका जिसमें अभाव हो, वही विद्वान् है। विद्वान्‌के ये लक्षण याज्ञवल्क्यमें घटते हैं। याज्ञवल्क्यमें काम, क्रोधादि दोष नहीं हैं क्योंकि इतनी विद्या प्राप्त होनेपर भी उनमें गर्व नहीं है, वे जड पुरुषके समान मौन धारण किये बैठे हैं इसलिये उनके समान विद्वान् कोई दूसरा नहीं है। यदि कोई कहे कि यदि याज्ञवल्क्य राग-द्वेषसे रहित हैं तो वे तुम्हारा धन किसप्रकार लेंगे, क्योंकि राग-द्वेष बिना धनादि पदार्थोंका ग्रहण नहीं होता। इसका उत्तर यह है कि याज्ञवल्क्य जो मेरा धन ग्रहण करेंगे तो वे अपने भोगके लिये ग्रहण नहीं करेंगे, जीवोंके उपकारके लिये ही करेंगे और इसीलिये वे ब्राह्मणोंको सभामें जीतेंगे। यह मेरा धन जब उनके हाथमें जायगा, तो उस धनसे सबका उपकार होगा, क्योंकि मुनिका धन तथा शरीर अपने भोगके लिये नहीं होता, केवल दूसरोंके उपकारके लिये ही होता है। जैसे कोई पामर धनादिकी इच्छासे प्रसन्नदृष्टिसे राजाकी ओर देखता है, इसी प्रकार ये मुनि प्रसन्नदृष्टिसे मेरी ओर देखते हैं, इससे यह समझमें आता है कि मुनिका मेरे ऊपर परम अनुग्रह है। भाव यह है कि जहाँ-जहाँ प्रसन्नतापूर्वक दृष्टि होती है, वहाँ-वहाँ धनादि पदार्थकी इच्छा होती है अथवा अनुग्रह होता है। इच्छा अथवा अनुग्रह बिना प्रसन्नतापूर्वक दृष्टि नहीं होती। मुनिमें धनादि पदार्थोंकी इच्छा तो है नहीं, अतएव अनुग्रहसे ही ये मेरी ओर देखते हैं। याज्ञवल्क्यमें राग-द्वेष नहीं है, क्योंकि याज्ञवल्क्यको जीतनेकी इच्छावाले जो अहंकारी ब्राह्मण हैं वे मिलकर मुनिके प्रति अपशब्द बोलते हैं परन्तु मुनि उनके वचनोंको अज्ञानी पुरुषके समान सुन रहे हैं, अपशब्द सुनकर भी मुनि जडके समान उनको उत्तर नहीं देते। इससे जाननेमें आता है कि मुनिके मनमें क्षोभ नहीं है। जो क्षोभसे रहित होता है वह राग-द्वेषसे रहित होता है।

हे वत्स! इसप्रकार जनक राजाने भलीभाँति विचारकर कामधेनुके समान एक हजार गौ और चालीस हजार सोनेके निष्क सभामें लानेके लिये मन्त्रीको आज्ञा दी। भाव यह है कि एक हजार गौओंके दो हजार सींग होते हैं। उनमें एक-एक सींगमें बीस-बीस सोनेके निष्क राजाने बँधवाये। नौ तोले सुवर्णका एक निष्क होता है। शास्त्रकी रीतिसे जब गौएँ सभामें आ गयीं, तब राजा सब ब्राह्मणोंसे इसप्रकार कहने लगा—

राजा—हे सर्व ब्राह्मणो! आपलोगोंमें एक-से-एक बढ़कर वेदवेत्ता हैं, जो आपमें सबसे श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता हों वे इन सब गौओंको अपने आश्रममें ले जायँ।

राजाके इसप्रकारके वचन सुनकर सभी ब्राह्मण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नीचेको मुख करके चुप हो गये। अपनी विद्याके बलसे कोई भी ब्राह्मण सब ब्राह्मणोंको जीतनेको समर्थ नहीं हुआ। सारे ब्राह्मणोंको चुप देखकर याज्ञवल्क्य मुनि अपने सामवेदपाठी शिष्यसे कहने लगे—

याज्ञवल्क्य—हे सामवेदपाठी शिष्य! तू इन सब गौओंको जल्दीसे मेरे घरपर ले जा और सब ब्राह्मणोंसे ऊँचे स्वरसे कह दे कि हे ब्राह्मणो! सबसे श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता याज्ञवल्क्य गौओंको लिये जाता है।

मुनिके वचन सुनकर सामवेदपाठी शिष्य इसी प्रकार सब ब्राह्मणोंसे कहकर गौओंको मुनिके आश्रममें ले गया। यह देखकर ब्राह्मण याज्ञवल्क्यपर क्रोध करने लगे और राजा जनक परम आनन्दको प्राप्त हुआ। तात्पर्य यह है कि मुनि एक ही समय ब्राह्मणोंके दुःखके कारण और जनक राजाको सुखके कारण हुए। सांख्य-शास्त्रवाले शब्द-स्पर्शादि विषयोंमें ही सुख-दुःख मानते हैं, यह उनका मानना ठीक नहीं है क्योंकि सुख-दुःख विषयोंमें नहीं रहता, अपने मनमें रहता है, यही पक्ष समीचीन है क्योंकि स्नेहवाले चित्तमें सुखकी उत्पत्ति होती है, जैसे कि जनकको सुख उत्पन्न हुआ। जिस चित्तमें द्वेष होता है, उसमें दुःखकी उत्पत्ति होती है, जैसे कि ब्राह्मणोंको दुःख उत्पन्न हुआ। यदि सुख-दुःख धर्म विषयोंमें होते हों तो विषयोंसे सबको सुख अथवा दुःखकी प्राप्ति समान होनी चाहिये परन्तु ऐसा नहीं होता, एक ही विषयसे किसीको सुखकी प्राप्ति होती है तो दूसरेको दुःखकी प्राप्ति होती है। इस विषमताका सब जीवोंको अनुभव है, इसलिये विषयोंका धर्म सुख-दुःख नहीं है। बाह्य कारण बिना ही 'यह वस्तु रमणीक है' ऐसी कल्पनासे मनमें सुख होता है और 'यह वस्तु अरमणीक है' ऐसी कल्पनासे दुःख उत्पन्न होता है। जैसे कि निर्जन वनमें रहनेवाले राग-द्वेष-रहित पुरुषको अपने मनसे ही आनन्द होता है और निर्जन वनमें रहनेवाले रागी पुरुषको अपने मनसे ही वहाँ दुःख होता है। किसी विषयके कारण वनमें सुख-दुःखकी प्राप्ति नहीं होती, वह मनसे ही होती है, इसलिये मन ही सुख-दुःखका आश्रयरूप है। यह सिद्ध हुआ।

ब्राह्मण-क्रोध-निरूपण

हे वत्स! इसप्रकार गौओंको गयी देखकर क्रोधके कारण ब्राह्मण अपने-अपने आसनसे उठकर खड़े हो गये। उनके होठ थर-थर काँपने लगे और वे अपने ऊपरके दाँतोंसे नीचेके होठको चबाने लगे। जैसे भूतके आवेशवाला पुरुष अनेक प्रकारकी रुदनादि चेष्टा करता है इसी प्रकार क्रोधसे कितने ही ब्राह्मण लाल नेत्रोंसे रक्त बरसाने लगे। कितने ही उन्मत्तके समान अनेक प्रकारके अपशब्द बोलने लगे। इसप्रकार ब्राह्मण यज्ञमण्डपमें महान् घोर शब्द करने लगे! जैसे पूर्णिमाके दिन समुद्रमें क्षोभ होता है, इसी प्रकार ब्राह्मण क्षोभयुक्त होकर कहने लगे—हम सब विद्वान् ब्राह्मणोंको यह अकेला याज्ञवल्क्य उल्लंघन करके जाता है, इसलिये हमारे कुलको धिक्कार है। हमारे पढ़ानेके लिये बनायी हुई हमारी पाठशालाओंको धिक्कार है। हमारे जीवनको धिक्कार है। अध्ययन करते समय हमने जो गुरुकी सेवा की, उस सेवाको धिक्कार है। हमारे वेदके अध्ययनको धिक्कार है और वेदके अध्ययन करनेवाले हमारे शिष्योंको धिक्कार है। इसप्रकार सब ब्राह्मणोंकी चेष्टा देखकर आश्वल नामके एक ब्राह्मणको अत्यन्त क्रोध आ गया और वह याज्ञवल्क्यके पास आकर इसप्रकार कहने लगा—

आश्वल—रे गुरुसम्प्रदायसे रहित दुराचारी याज्ञवल्क्य! हम सब ब्राह्मणोंसे क्या तू ही अधिक विद्वान् है? रे याज्ञवल्क्य! तुझमें विद्याकी अधिकता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नहीं है, लोभ तथा गर्वकी ही अधिकता है। हम सब ब्राह्मण हिरण्यगर्भके समान गर्व-लोभादि दोषोंसे रहित और शम-दमादि साधन-सम्पन्न हैं। तर्करूप मननकी सिद्धिके लिये हम चौदह विद्या जानते हैं। चौदह विद्याएँ ये हैं—ऋक्, यजुष्, साम तथा अथर्व ये चार वेद; शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष तथा पिंगल ये छः वेदके अङ्ग; मीमांसा, न्याय, पुराण, और धर्मशास्त्र ये चौदह विद्याएँ हैं। आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद और अर्थशास्त्र ये मिलाकर अठारह विद्याएँ होती हैं। लज्जासे रहित होनेसे कोई भी पुरुष पृथिवीपर पण्डित नहीं होता, लज्जावाला पुरुष ही पण्डित होता है। जैसे कि हम सब वेदवेत्ता ब्राह्मणोंमें लज्जासे रहित होकर तू पण्डित बनता है। भला! महान् बलवाले वासुकि आदि सर्पोंको कौन पैरसे स्पर्श करेगा? तीनों लोकोंके दाह करनेवाले कालकूट-विषको योग-साधनसे रहित कौन पुरुष भक्षण कर जायगा? प्रज्वलित अग्निको हाथमें रखकर कौन पुरुष घर ले जायगा? इसी प्रकार तेरे सिवा दूसरा कौन मनुष्य समस्त ब्राह्मणोंको क्रोधित करेगा? एक तू ही गर्व, लोभ और अविनयके कारण ब्राह्मणोंको क्रोधित करनेवाला है। इन सब ब्राह्मणों-में एक-एक ब्राह्मण क्रोधसे युक्त होकर सारे जगत्को भस्म कर सकता है! क्रोधयुक्त ये सब ब्राह्मण तुझ-सरीखे अधमका अवश्य नाश कर देंगे।

हे वत्स! उपर्युक्त अनेक वचनोंरूपी बाणोंसे आश्वल याज्ञवल्क्यके कर्णको भेदन करने लगा, परन्तु जैसे पाषाणकी वृष्टिसे ताड़न किया हुआ पर्वत क्षोभको नहीं प्राप्त होता इसी प्रकार याज्ञवल्क्य क्षोभ-को नहीं प्राप्त हुए। आश्वलके वचन सुनकर वे अपने मनमें हँसने लगे और इसप्रकार कहने लगे—

याज्ञवल्क्य—हे आश्वल! इन ब्राह्मणोंकी समाजमें जो ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण हों मैं उनको सर्वदा नमन करता हूँ।

आश्वल—हे याज्ञवल्क्य! यदि तेरी ब्राह्मणोंमें इतनी श्रद्धा है तो तू सब ब्राह्मणोंकी गौएँ किसलिये हरण करके ले गया?

याज्ञवल्क्य—हे आश्वल! सुवर्णसहित गौओंको देखकर मेरी अभिलाषा उनको ले जानेकी हुई, इसलिये मैं उनको हरण करके ले गया, इसमें ब्राह्मण किसलिये क्रोध करते हैं? यदि मैं ब्राह्मणोंकी गौएँ अपने घर ले जाता तो ब्राह्मणोंका मुझपर क्रोध करना उचित था परन्तु मैंने ब्राह्मणोंकी गौएँ नहीं ली हैं। जनक गौओंका दाता है और मैं ले जानेवाला हूँ। इसमें ब्राह्मणोंके क्रोधका क्या कारण है? यदि इन ब्राह्मणोंको और तुम्हें मेरे समान गौ और धन लेनेकी इच्छा हो तो राजा बहुत धनवान् है, उससे गौ और धन ले लो! तुमको धन और गौ देनेसे मैं राजाको रोकूँगा नहीं। इसलिये मुझपर क्रोध करना उचित नहीं है।

हे वत्स! जब मुनिने आश्वलसे इसप्रकार कहा तो जैसे घी डालनेसे अग्नि क्षोभको प्राप्त होता है, इसी प्रकार आश्वल फिर क्षोभको प्राप्त हुआ और मुनिसे विवाद करनेके लिये उसने आठ प्रश्न पूछे। आश्वलके उन आठ प्रश्नोंमें चार प्रश्न अतिमोक्षरूप हैं और चार प्रश्न सम्पद्रूप हैं। कर्मी पुरुषके वाक् आदि अध्यात्मका अग्नि आदि अधिदैवके साथ जो भेद है, उस भेदका नाम मृत्यु है, उस भेदरूप मृत्युकी निवृत्तिका साधनरूप जो वाक् आदिका अग्नि आदिके साथ अभेद-ज्ञान है उसको मोक्ष कहते हैं। इस अभेद-ज्ञानसे वाक् आदि अध्यात्मको अग्नि आदि अधिदैव-की प्राप्तिरूप जो फल होता है, उस फलको अति-मोक्ष कहते हैं। अतिमोक्षरूप फलका विषय

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जिन प्रश्नोंमें होता है, वे प्रश्न अतिमोक्ष कहलाते हैं। निकृष्ट वस्तुमें समान धर्मको लेकर जो उत्कृष्ट दृष्टि की जाती है, उस दृष्टिको सम्पत् कहते हैं। जैसे कि श्राद्धके अन्नमें अमृत-दृष्टि और ब्राह्मणमें विष्णु-दृष्टि। इसप्रकारकी सम्पत्को विषय करनेवाले जो प्रश्न होते हैं, उन प्रश्नोंको सम्पत् कहते हैं।

आश्वलके अतिमोक्ष-प्रश्न और उनका उत्तर

आश्वल—(१) हे याज्ञवल्क्य! ऋत्विगादि साधनोंसे सम्पन्न होनेपर भी अग्निहोत्रादि कर्म परिच्छेद-भावजन्य प्रमादरूप मृत्युसे व्याप्त हैं। यद्यपि शास्त्रोक्त कर्मके अनुष्ठानसे अशास्त्रीय इन्द्रियादिकी निवृत्ति हो जाती है तो भी परिच्छिन्नभावकी निवृत्ति ज्ञानके बिना नहीं होती, इसलिये किसप्रकारके ज्ञानसे परिच्छिन्नभावको त्यागकर यजमान अपरिच्छिन्नरूप फलको प्राप्त होता है?

याज्ञवल्क्य—(१) हे आश्वल! कर्म-कर्ता यजमानके अध्यात्मरूप वाक्के, वाक्के अधिदैवरूप अग्निके तथा वाक्के अधियज्ञरूप होताके अभेदको विषय करनेवाली 'यजमानकी वाक्रूप और अधिदैव अग्निरूप मैं हूँ' इसप्रकार होताकी जो दृष्टि है, वह यजमानके इस परिच्छेदजन्य मृत्युको टालनेवाली है।

आश्वल—(२) दिनरात्रिरूप कालसे सर्व पदार्थ परिच्छिन्न हो रहे हैं, इस परिच्छिन्नभावकी निवृत्ति किस उपायसे होती है?

याज्ञवल्क्य—(२) यजमानके अध्यात्मरूप चक्षुके, अधिदैवरूप सूर्यके तथा अधियज्ञरूप अध्वर्युके अभेदको विषय करनेवाली 'यजमानका चक्षुरूप और अधिदैव सूर्यरूप मैं हूँ' इसप्रकारकी अध्वर्युकी जो दृष्टि है, वह इस परिच्छेदको निवृत्त करती है।

आश्वल—(३) शुक्लपक्ष तथा कृष्णपक्षरूप कालसे सर्व पदार्थ परिच्छिन्न हो रहे हैं, इस अपरिच्छिन्न-भावकी निवृत्ति किस ज्ञानसे होती है?

याज्ञवल्क्य—(३) यजमानके अध्यात्मरूप प्राणके, अधिदैवरूप वायुके तथा अधियज्ञरूप उद्गाताके अभेदको विषय करनेवाली 'यजमानका प्राणरूप और अधिदैव वायुरूप मैं हूँ' इसप्रकारकी जो उद्गाताकी दृष्टि है, वह इस परिच्छेदको निवृत्त करती है।

आश्वल—(४) स्थूल शरीरको त्यागकर निराश्रय-रूप आकाशमें किस साधनसे यजमान गमन करता है?

याज्ञवल्क्य—(४) यजमानका अध्यात्मरूप मन, अधिदैवरूप चन्द्रमा तथा अधियज्ञरूप ब्रह्मा—इन तीनोंके अभेदको विषय करनेवाली 'यजमानका मन-रूप और अधिदैवरूप चन्द्रमा मैं हूँ' इसप्रकारकी जो ब्रह्माकी दृष्टि है, उस दृष्टिके प्रभावसे यजमान आकाश-में गमन करता है।

यहाँ दृष्टि-शब्दसे ज्ञान लेना चाहिये और परिच्छेद-शब्दका अर्थ भेद लेना चाहिये। ऋग्वेदके जाननेवाले ब्राह्मणको होता कहते हैं, यजुर्वेदके जाननेवाले ब्राह्मणको अध्वर्यु कहते हैं, सामवेदके जाननेवाले ब्राह्मणको उद्गाता कहते हैं और ऋक्, यजुष्, साम—इन तीनों वेदोंके जाननेवाले ब्राह्मणको ब्रह्मा कहते हैं। ये चार ऋत्विक् यज्ञके करानेवाले हैं। यज्ञ करानेवाले क्षत्रिय आदिको यजमान कहते हैं।

आश्वलके सम्पद्रूप चार प्रश्न और उनका उत्तर

आश्वल—(१) होताके सम्पद्रूप ज्ञानसे यजमान-को किस फलकी प्राप्ति होती है?

याज्ञवल्क्य—(१) याज्या, पुरोनुवाक्या तथा शस्या—इन तीन ऋचाओंमें तीनकी संख्या रहती है और तीनों लोकोंमें भी तीनकी संख्या रहती है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस तीन संख्यारूप धर्मको लेकर जब होता याज्यादि तीनों ऋचाओंको तीन लोकरूपसे देखता है तब होताके सम्पद्रूप ज्ञानसे यजमानको तीनों लोकोंका जयरूप फल प्राप्त होता है। यहाँ 'यज' इसप्रकारकी प्रेरणाके पीछे जो ऋचा पढ़ी जाती है उस ऋचाको 'याज्या' कहते हैं, 'ब्रूहि' इसप्रकारकी प्रेरणाके पीछे पढ़ी हुई ऋचाको 'पुरोनुवाक्या' कहते हैं और एक श्वाससे पठन की हुई ऋचाको 'शस्या' कहते हैं।

आश्वल-(२) अध्वर्युके सम्पद्रूप ज्ञानसे यजमानको किस फलकी प्राप्ति होती है ?

याज्ञवल्क्य-(२) अग्निमें होमी हुई अध्वर्युकी आहुतियाँ उज्ज्वलत्व, सशब्दत्व तथा अधोगामित्वरूपसे तीन प्रकारकी होती हैं, जैसे आहुतियोंमें उज्ज्वलत्व आदि धर्म हैं इसी प्रकार देवलोक, पितृलोक तथा मनुष्यलोक इन तीनों लोकोंमें उज्ज्वलत्व आदि धर्म हैं। इन उज्ज्वलत्वादि समान धर्मोंको लेकर जब अध्वर्यु तीनों आहुतियोंको देवलोकादि रूपसे देखता है, तब अध्वर्युके इस सम्पद्रूप ज्ञानसे यजमानको देवलोक, पितृलोक तथा मनुष्यलोक-इन तीनों लोकोंका जयरूप फल प्राप्त होता है।

आश्वल-(३) ब्रह्माके सम्पद्रूप ज्ञानसे यजमानको किस फलकी प्राप्ति होती है ?

याज्ञवल्क्य-(३) वृत्तिरूपसे मन अनन्त है तथा विश्वदेवता भी अनन्त है, अनन्तरूप सामान्य धर्मको लेकर जब ब्रह्मा मनका विश्वदेवतारूपसे चिन्तन करता है, तब ब्रह्माके इस सम्पद्रूप ज्ञानसे यजमानको अनन्त फलकी प्राप्ति होती है।

आश्वल-(४) उद्गाताके सम्पद्रूप ज्ञानसे यजमानको किस फलकी प्राप्ति होती है ?

याज्ञवल्क्य-(४) उद्गाता अपनी गान की हुई याज्या, पुरोनुवाक्या तथा शस्या-इन तीन ऋचाओंको जब प्राण, अपान तथा व्यानरूपसे देखता है, तब उद्गाताके इस सम्पद्रूप ज्ञानसे यजमानको भूः, भुवः तथा स्वर्-इन तीन लोकोंके जयरूप फलकी प्राप्ति होती है।

जब याज्ञवल्क्यने इसप्रकार आश्वलके आठ प्रश्नोंका उत्तर दिया तो आश्वल याज्ञवल्क्यको जीतनेका सामर्थ्य अपनेमें न देखकर लज्जित हो गया और याज्ञवल्क्यके साथ विवाद करनेके लिये आर्तभागके मुखकी तरफ देखता हुआ, आप चुप होकर बैठ गया।

याज्ञवल्क्य तथा आर्तभागका विवाद

आर्तभाग-हे याज्ञवल्क्य ! ग्रह कितने हैं और अतिग्रह कितने हैं ?

याज्ञवल्क्य-हे आर्तभाग ! ग्रह आठ हैं और अतिग्रह भी आठ हैं।

आर्तभाग-हे याज्ञवल्क्य ! आठ ग्रह क्या हैं और आठ अतिग्रह क्या हैं ?

याज्ञवल्क्य-हे आर्तभाग ! श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसन, घ्राण, मन, वाक् तथा हस्त ये आठ इन्द्रियाँ जीवको बन्धन करनेवाली हैं, इसलिये इन आठको ग्रह कहते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, इच्छा, नाम तथा क्रिया ये आठ श्रोत्रादि इन्द्रियोंके क्रमसे विषय हैं। इन शब्दादि बिना केवल श्रोत्रादि इन्द्रियाँ जीवका बन्धन नहीं करतीं, शब्दादि विषययुक्त श्रोत्रादि इन्द्रियाँ ही जीवके बन्धनका कारण हैं इसलिये शब्दादि आठ विषयोंको अतिग्रह कहते हैं। जैसे समुद्रमें गये हुए पुरुषको मकरादि ग्रह भक्षण कर लेते हैं, इसी प्रकार मकरादि ग्रहोंको उनसे अधिक बलवान् तिमिंगल आदि भक्षण कर लेते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इसी प्रकार संसाररूपी समुद्रमें पड़े हुए अज्ञानी जीवको श्रोत्रादि इन्द्रियरूप ग्रह भक्षण कर लेते हैं। यानी जीवको श्रोत्रादि इन्द्रियाँ अपने वश कर लेती हैं, इन श्रोत्रादि इन्द्रियरूप ग्रहको शब्दादि अतिग्रह भक्षण कर लेते हैं यानी शब्दादि विषय श्रोत्रादि इन्द्रियोंको अपने वश कर लेते हैं, इसीका नाम भक्षण है। जैसे बिल्ली चूहेको भक्षण करती है इसी प्रकार श्रोत्रादि इन्द्रियाँ जीवको भक्षण करती हैं। जैसे पिशाचादि ग्रहसे घिरा हुआ मनुष्य अपने हित-अहितको नहीं जानता, इसी प्रकार इन्द्रियोंके अधीन हुआ जीव अपने मोक्षरूप हितको तथा बन्धनरूप अहितको नहीं जानता। जैसे किसी बलवान् पुरुषसे बाँधा हुआ मगर यद्यपि किसी भी पुरुषके मारनेकी इच्छा नहीं करता, तो भी बलवान् पुरुषरूप अतिग्रहसे प्रेरणा किया हुआ वह अन्य पुरुषके भक्षण करनेके लिये प्रवृत्त होता है, इसी प्रकार श्रोत्रादि इन्द्रियरूपी ग्रह यद्यपि जीवको बाँधनेकी इच्छा नहीं करता तो भी शब्दादि विषयरूप अतिग्रहके अधीन होकर श्रोत्रादि इन्द्रियाँ जीवका बन्धन करनेको प्रवृत्त होती हैं।

डोरूशङ्कर—हे देवी! याज्ञवल्क्यने जो आठ ग्रह और आठ अतिग्रह कहे, सो ठीक नहीं है क्योंकि अन्य शास्त्रोंमें पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, एक अन्तःकरण ये ग्यारह इन्द्रियाँ कही हैं और ग्यारह ही उनके विषय कहे हैं। इन दोनों शास्त्रोंका विरोध होता है।

देवी—हे वत्स! यद्यपि इन्द्रियाँ और विषय ग्यारह ही हैं तो भी श्रोत्रादि आठ इन्द्रियोंकी और शब्दादि आठ विषयोंकी प्रधानता लेकर याज्ञवल्क्यने आठ ग्रह और आठ अतिग्रह कहे हैं। इनमें उपस्थका त्वक्-इन्द्रियमें अन्तर्भाव है क्योंकि त्वक्-इन्द्रिय सारे शरीरमें व्यापक है इसलिये स्त्री-पुरुषके सम्बन्धसे उपस्थमें जो सुख होता है, वह सुख स्पर्शसे होता है अतएव वह सुख त्वक्-इन्द्रिय-जन्य है। इसलिये उपस्थका त्वक्-इन्द्रियमें अन्तर्भाव है। पाद-इन्द्रियसे गमनरूप क्रिया होती है और पायु-इन्द्रियसे मलका परित्यागरूप क्रिया होती है और हस्त-इन्द्रियसे ग्रहणरूप क्रिया होती है। इसप्रकार क्रियाकी साधनता तीनोंमें समान है इसलिये पाद तथा पायुका हस्त-इन्द्रियमें अन्तर्भाव है। जिस समय पायु-इन्द्रियका मलका परित्यागरूप व्यापार होता है और पाद-इन्द्रियका गमनरूप व्यापार होता है, उस समय हस्त-इन्द्रियका आकुञ्चन तथा प्रसारणरूप व्यापार अवश्य होता है, इससे ऐसा जाननेमें आता है कि पायु, पाद तथा हस्त इन तीनोंकी नाड़ीका सम्बन्ध है। इस नाड़ीके सम्बन्धकी समानता ग्रहण करके याज्ञवल्क्यने पायु तथा पादका हस्तमें अन्तर्भाव कहा है, इसप्रकार जब याज्ञवल्क्यने आर्तभागके प्रश्नोंका उत्तर दे दिया तब फिर आर्तभागने निम्नलिखित प्रश्न किया—

आर्तभाग—हे याज्ञवल्क्य! हिरण्यगर्भसे लेकर जितना जड तथा अजड प्रपञ्च है, उसको ग्रह-अतिग्रहरूप मृत्यु भक्षण करता है, इसलिये सब जगत् ग्रह-अतिग्रहरूप मृत्युका अन्न है। यह ग्रह-अतिग्रहरूप मृत्यु भी जिस देवताका अन्न है, वह देवता कौन है? भाव यह है कि ग्रह-अतिग्रहरूप मृत्युका भक्षण करनेवाला कोई दूसरा है या नहीं है? यदि ग्रह-अतिग्रहरूप मृत्युका भक्षण करनेवाला कोई दूसरा है तो वह भक्षण करनेवाला नित्य है या अनित्य है? यदि नित्य कहोगे तो द्वैतापत्ति होगी और यदि अनित्य कहोगे तो दूसरे भक्षण करनेवालेका कोई तीसरा भक्षण करनेवाला होगा और तीसरेका भक्षण करनेवाला चौथा मानना पड़ेगा। इसप्रकार अनवस्था-दोषकी प्राप्ति होगी। यदि कहो कि ग्रह-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अतिग्रहरूप मृत्युका भक्षण करनेवाला कोई नहीं है तो मोक्षकी प्राप्तिके लिये अनेक प्रकारके यत्न करना निष्फल होगा।

याज्ञवल्क्य-हे आर्तभाग! जैसे सब पदार्थोंके भक्षण करनेवाले अग्निका जल भक्षण कर जाता है, इसी प्रकार सब जगत्के भक्षण करनेवाले ग्रह-अतिग्रह-रूप मृत्युका आत्मसाक्षात्कार भक्षण कर जाता है, इसलिये मोक्षकी प्राप्तिके लिये यत्न करना व्यर्थ नहीं है। जैसे कतरेणु जलकी मृत्तिकाको निवृत्त करके आप भी निवृत्त हो जाता है, उसकी निवृत्तिके लिये दूसरे साधनकी अपेक्षा नहीं रहती, इसी प्रकार महा-वाक्यसे उत्पन्न हुआ अन्तःकरणकी वृत्तिरूपी ज्ञान कार्यसहित अज्ञानकी निवृत्ति करके स्वयं भी निवृत्त हो जाता है, इस ज्ञानकी निवृत्तिके लिये किसी दूसरे साधनकी अपेक्षा नहीं होती, इसलिये द्वैतापत्ति तथा अनवस्था ये दोनों प्रकारके दोष प्राप्त नहीं होते।

आर्तभाग-हे याज्ञवल्क्य! जब ब्रह्मवेत्ता पुरुष स्थूल शरीरका परित्याग करता है, उस समय ब्रह्म-वेत्ता पुरुषका प्राण अज्ञानी जीवके प्राणके समान लोकान्तरमें जाता है या नहीं? यदि अज्ञानी जीवके प्राणके समान ब्रह्मवेत्ताका प्राण लोकान्तरमें जाता है तो जैसे अज्ञानी जीवको लोकान्तरमें दूसरे शरीरकी फिर प्राप्ति होती है, इसी प्रकार ब्रह्मवेत्ता-को भी लोकान्तरमें फिर शरीरकी प्राप्ति होगी। यदि यह कहो कि मरणकालमें ब्रह्मवेत्ता पुरुषका प्राण लोकान्तरमें नहीं जाता, तो शरीरमें प्राण होनेसे ब्रह्मवेत्ताकी मृत्यु नहीं होनी चाहिये, इसलिये ब्रह्मवेत्ता पुरुषके शरीरमें कभी मरण-व्यवहार नहीं होना चाहिये और प्रारब्ध-कर्मके नाश होनेपर ब्रह्मवेत्ताके शरीरमें मरण-व्यवहार होता हुआ सब लोगोंके देखनेमें आता है।

याज्ञवल्क्य-हे आर्तभाग! ब्रह्मवेत्ताका प्रारब्ध-कर्म जब क्षीण होता है, तब उसका प्राण शरीरसे बाहर नहीं जाता, वह शरीरके अन्दर ही लय हो जाता है। भाव यह है कि अविद्या, काम तथा कर्म ये तीन प्राणके लोकान्तर-गमनमें कारणरूप हैं, और ब्रह्मवेत्ताके अविद्या, काम तथा कर्म ये तीनों आत्मज्ञानसे निवृत्त हो जाते हैं इसलिये ब्रह्मवेत्ताके प्राणका लोकान्तरमें गमन नहीं होता। अतएव ब्रह्मवेत्ताको अज्ञानी जीवके समान फिर शरीरकी प्राप्ति नहीं होती। स्थूल शरीरके साथ प्राणके सम्बन्धकी निवृत्तिका नाम मरण है, प्राणके लय हो जानेसे इस सम्बन्धकी निवृत्ति सम्भव है, इसलिये विद्वान्के शरीरमें मरण-व्यवहार सम्भव है।

आर्तभाग-हे याज्ञवल्क्य! ब्रह्मवेत्ता पुरुषका प्राण शरीरसे बाहर नहीं जाता, शरीरके अन्दर ही उसका लय हो जाता है, यह किसप्रकार जाना जा सकता है?

याज्ञवल्क्य-हे आर्तभाग! जीवित अवस्थामें अत्यन्त कृश शरीर भी मरनेके बाद भेरीके समान फूलकर स्थूल हो जाता है। इस स्थूलताका कारण दूसरा कोई पदार्थ नहीं है, धनञ्जय नामका प्राण ही इस स्थूलताका कारण है, इसलिये मरणके पीछे शरीरकी विलक्षणतारूप हेतुसे शरीरमें प्राणके लयका अनुमान होता है।

आर्तभाग-हे याज्ञवल्क्य! ब्रह्मवेत्ताका प्राण लोकान्तरमें नहीं जाता, इसमें क्या प्रमाण है?

याज्ञवल्क्य-हे आर्तभाग! इस विषयमें श्रुति भगवती ही प्रमाणरूप हैं, श्रुतिमें कहा है—

अस्य परिद्रष्टुरिमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति॥

जैसे नदियोंका समुद्रमें लय हो जाता है,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इसी प्रकार ब्रह्मवेत्ताकी ग्यारह इन्द्रियाँ तथा पाँच प्राण ये सोलह कलाएँ जो अधिष्ठानरूप पुरुषमें प्रतीत होती हैं, वे अधिष्ठानरूप पुरुषमें लयभावको प्राप्त होती हैं। इसलिये ब्रह्मवेत्ता पुरुषका प्राण लोकान्तरमें गमन नहीं करता। यदि ब्रह्मवेत्ता पुरुषका प्राण भी लोकान्तरमें गमन करेगा तो ब्रह्मवेत्ताको भी अज्ञानीके समान अवश्य दूसरे शरीरकी प्राप्ति होगी। और जो बारम्बार शरीर धारण करता है, उसको मोक्षकी प्राप्ति सम्भव नहीं है, इसलिये ब्रह्मवेत्ताका प्राण लोकान्तरमें नहीं जाता।

आर्तभाग–हे याज्ञवल्क्य! जिस समय ब्रह्मवेत्ता मोक्षको प्राप्त होता है, उस समय ब्रह्मवेत्ताका कोई वस्तु त्याग करती है या नहीं करती? भाव यह है कि जीवन्मुक्ति-अवस्थाके समान उसमें सम्पूर्ण द्वैतका लय हो जाता है अथवा कुछ शेष भी रहता है?

याज्ञवल्क्य–हे आर्तभाग! अन्य सब पदार्थ मुक्तपुरुषका त्याग कर देते हैं, किन्तु वामदेवादि मुक्तपुरुषोंके नाम उनका त्याग नहीं करते। यद्यपि वामदेवादि मुक्तपुरुष नाम, रूप, क्रियास्वरूप भेद-प्रपञ्चसे मुक्त हो गये हैं, इसलिये वस्तुतः मुक्त-पुरुषमें वामदेवादि नामोंका सम्बन्ध सम्भव नहीं है तो भी लौकिक पुरुष वर्तमानमें वामदेवादि मुक्त-पुरुषोंके नामोंको ग्रहण करते हैं; इसलिये लौकिक पुरुषोंकी दृष्टिसे मोक्ष-अवस्थामें भी मुक्तपुरुषोंके वामदेवादि नाम रहते हैं और इन मुक्तपुरुषोंके नाम अनन्त हैं और विश्वदेवता भी अनन्त हैं। इसलिये जो पुरुष अनन्त नामोंमें अनन्त विश्व-देवताओंका अभेदरूपसे चिन्तन करता है, उसको अनन्त फलकी प्राप्ति होती है।

आर्तभाग–हे याज्ञवल्क्य! जिस समय जीवकी मरण-अवस्था होती है, उस समय जीवकी अध्यात्म-रूप वाक्-इन्द्रिय अधिदैवरूप अग्निको प्राप्त होती है, अध्यात्मरूप प्राण अधिदैवरूप वायुको प्राप्त होता है, अध्यात्मरूप नेत्र-इन्द्रिय अधिदैवरूप सूर्यको प्राप्त होता है, अध्यात्मरूप श्रोत्र-इन्द्रिय अधिदैवरूप दिशाको प्राप्त होता है, अध्यात्मरूप मन अधिदैवरूप चन्द्रमाको प्राप्त होता है, अध्यात्म-रूप शरीर अधिदैवरूप पृथिवीको प्राप्त होता है और शरीरके अन्दर रहा हुआ अध्यात्मरूप आकाश अधिदैवरूप बाह्य आकाशको प्राप्त होता है। शरीरमें रहे हुए अध्यात्मरूप लोम अधिदैवरूप ओषधिको प्राप्त होते हैं, शरीरमें रहे हुए अध्यात्मरूप केश अधिदैवरूप वनस्पतिको प्राप्त होते हैं, अध्यात्म-रूप रुधिर तथा वीर्य अधिदैवरूप जलको प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार अन्य अध्यात्मरूप इन्द्रियोंका अपने अधिदैवरूपमें लय हो जाता है। अग्नि आदि देवोंके आश्रयसे रहित होकर अपने-अपने व्यापारका न करना, यही मरण-समय वाक् आदिका अग्नि आदि-में लय है। इसप्रकार सर्व वाक् आदि इन्द्रियोंका लय होनेपर भी अज्ञानी जीव किसके आश्रयसे परलोकमें सुख-दुःखको भोगता है?

हे डोरूशङ्कर! इसप्रकारके आर्तभागके प्रश्नको सुनकर याज्ञवल्क्यने इस प्रश्नके अर्थको गुह्य मानकर इस प्रश्नका उत्तर सभामें नहीं कहा किन्तु आर्तभाग-का हाथ पकड़कर वे उसको एकान्तमें ले जाकर इस प्रश्नका उत्तर देने लगे।

डोरूशङ्कर–हे देवी! आर्तभागका प्रश्न कर्मविषयक है और पूर्वमें याज्ञवल्क्यने सभामें ही रहकर ब्रह्म-विद्याका उपदेश किया है। इससे ऐसा समझमें आता है कि ब्रह्मविद्यासे भी कर्मविद्या अति गुह्य है।

देवी–हे वत्स! ब्रह्मविद्याकी अपेक्षा कर्मविद्या गुह्य है, इस अभिप्रायसे याज्ञवल्क्य आर्तभागको एकान्त-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में नहीं ले गये। एकान्तमें ले जानेका यह कारण है कि मरणको प्राप्त हुआ अज्ञानी जीव अपने पुण्य-पाप-रूप कर्मके अनुसार परलोकमें सुख-दुःख भोगता है, इस बातको बालकसे लेकर गोपालपर्यन्त सब लोग जानते हैं। इस प्रसिद्ध विषयका विचार विद्वानोंकी सभामें करना योग्य नहीं है, ऐसा करनेसे प्रश्नकर्ता आर्तभाग और उत्तरदाता याज्ञवल्क्य दोनोंको तुच्छता प्राप्त होती है। भाव यह है कि सभामें सब ब्राह्मण आर्तभागकी तथा याज्ञवल्क्यकी इस मोटे प्रश्नका प्रश्नोत्तर करनेमें हँसी करते। जैसे भोजनसे क्षुधाकी निवृत्ति होती है, यह बात सब लोग जानते हैं, परन्तु यदि बुद्धिमानोंकी सभामें जाकर कोई पुरुष प्रश्न करे कि क्षुधाकी निवृत्ति किससे होती है और कोई बुद्धिमान् उत्तर दे कि भोजनसे क्षुधाकी निवृत्ति होती है तो प्रश्नकर्ता और उत्तरदाता दोनोंका उपहास होता है। इसी प्रकार अपना और आर्तभागका उपहास विचारकर याज्ञवल्क्य आर्तभागको एकान्त प्रदेशमें ले गये।

याज्ञवल्क्य—हे आर्तभाग! जैसे जीवित अवस्था-में अज्ञानी जीव पुण्य तथा पापके अनुसार सुख तथा दुःख भोगता है, इसी प्रकार मरणके बाद भी अज्ञानी जीव पुण्य-पापरूप कर्मका आश्रय लेकर सुख-दुःखरूप फल भोगता है। हे आर्तभाग! पापी पुरुष नरकमें जाता है तथा पुण्यवान् पुरुष देवभावको प्राप्त होता है। जो पुरुष पुण्य तथा पापवाला होता है, वह मनुष्य-शरीरको प्राप्त होता है। यह जीव यद्यपि अपने वास्तव स्वरूपसे न तो अधिक है, न न्यून है और न समान है, तो भी कर्मवश होकर अधिकता, न्यूनता तथा समानताको प्राप्त होता है। उनमें जो जीव पुण्यात्मा होता है, वह हिरण्यगर्भादि अधिकता-को प्राप्त होता है। जो पापात्मा होता है, वह वृक्षादि न्यूनताको प्राप्त होता है और पुण्य तथा पाप दोनोंका कर्ता जीव मनुष्यादिरूप समानताको प्राप्त होता है। शरीर, मन तथा वाणीसे अन्य किसी प्राणीको सुख तथा दुःखकी प्राप्ति करानेवाला जीव इस जन्ममें अथवा अन्य जन्ममें उसी शरीर, मन तथा वाणीसे सुख अथवा दुःखको प्राप्त होता है। जिस देश, जिस काल, जिस निमित्त, जिस प्रकार, जिस शरीर तथा जिस अवस्थासे अन्य प्राणीको न्यून अथवा अधिक सुख अथवा दुःख पहुँचानेवाला पुरुष अन्य जन्मको प्राप्त होकर उसी देश, उसी काल तथा उसी निमित्त-से वैसे ही न्यून अथवा अधिक सुख अथवा दुःखको प्राप्त होता है। इसलिये इस लोकमें तथा परलोकमें अज्ञानी जीवको जो सुख तथा दुःखरूप फल होता है, वह पूर्वके पुण्य-पापरूप कर्मसे उसी देश-कालादि-में समान होता है, और किसी स्थानमें विशेष भी होता है। जैसे कि काशी आदि स्थानोंमें तथा सूर्य-ग्रहण-कालमें सुपात्र ब्राह्मणको थोड़ा भी दान करनेसे वह कोटिगुणा वृद्धिको प्राप्त होता है। जैसे वर्षा-कालमें उत्तम भूमिमें बोया हुआ बीज वृद्धिको प्राप्त होता है, इसी प्रकार उत्तम देश-कालादिमें दिया हुआ दान वृद्धिको प्राप्त होता है। जो पुरुष धनादि पदार्थ बढ़ानेके लिये व्यापारादि करता है, और वे धनादि पदार्थ जैसे दिन-दिन वृद्धिको प्राप्त होते हैं इसी प्रकार देहाभिमानी अज्ञानी जीवका पुण्य-पापरूप कर्म दिनोंदिन वृद्धिको प्राप्त होता है। जैसे अत्यन्त सूक्ष्म वटका बीज देश-कालादि निमित्त मिलनेसे महान् वटवृक्षका कारणरूप होता है, इसी प्रकार यज्ञादि कर्म हिंसादि पापसे बना हुआ सूक्ष्म पुण्य-पापादिरूप अदृष्ट भी देश-कालादि निमित्त पाकर महान् सुख-दुःखका कारण होता है, इसलिये पुण्य-पापरूप कर्म ही सुख-दुःखरूप फलके भोगमें प्रधान कारण है।

जब आर्तभागके प्रश्नका उत्तर याज्ञवल्क्यने इस-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रकार दिया तो आर्तभाग याज्ञवल्क्यकी अत्यन्त स्तुति करने लगा और याज्ञवल्क्यने भी उसकी स्तुति की। पश्चात् दोनों सभामें आ गये और आर्तभाग भुज्यु नामके ब्राह्मणकी तरफ देखकर स्वयं प्रश्न करनेसे निवृत्त हो गया। पश्चात् भुज्यु नामका ब्राह्मण याज्ञवल्क्यसे अपनी उत्कृष्टता जतानेके लिये और प्रश्न करनेके लिये अपना पूर्व वृत्तान्त इसप्रकार सुनाने लगा। (क्रमशः)

आरुणि

(एक पौराणिक गाथा)

प्राचीन समयमें धौम्य नामक एक ऋषि थे। उनका आश्रम एक पवित्र नदीके तटपर था। आश्रम बहुत ही सुहावना था। आश्रममें सैकड़ों ब्रह्मचारी रहते थे जो उनसे विद्या पढ़ते थे।

प्रतिदिन गुरुकी पर्णशालासे स्वाहाकी ऊँची आवाज हुआ करती थी और सब पापोंको नाश करनेवाला सुगन्धित होमका धुआँ कुटीसे निरन्तर निकला करता था, जिससे वहाँके वृक्षोंकी पत्तियाँ धुमैली पड़ गयी थीं और आश्रमके आस-पास दूर-दूरतक सुगन्धि फैली रहती थी।

प्रतिदिन प्रातःकाल आश्रमके पासवाले वृक्षोंपर पक्षियोंके मधुर कलरवसे सारा आश्रम गूँज उठता था। वहाँ सवेरे कोई वेद पढ़ता था, कोई हवनके लिये लकड़ियाँ लाता, कोई अर्घ्यके लिये फूल लाता, कोई फल लाता, कोई गाय दुहता, कोई वृक्षोंको पानीसे सींचता, कोई आश्रमके रास्ते साफ करता, कोई वृक्षोंकी डालियोंपर धोती सुखाता, कोई आश्रमके वृक्षोंके थल्हे सँभालता, कोई स्नान करता, कोई सूर्यको अर्घ्य देता और कोई वृक्षके नीचे बैठकर ध्यान लगाता था। प्रतिदिन ऋषिपत्नी पर्णशालाके पास एक ऊँचे स्थानपर बैठकर हरिनोंको कोमल-कोमल कुश और दूब खिलातीं और उनकी उछल-कूदसे चित्तको आनन्दित करती थीं।

कभी कोई हरिन दौड़कर दूसरे हरिनके मुँहकी घास छीननेकी कोशिश करता, कभी कोई ऋषिपत्नीके पास रक्खी हुई घासको लेकर भागता, कभी कोई प्यारसे ऋषिपत्नीको पीछेसे आकर खुजलाने लगता, जिससे वे चौंक पड़तीं। कभी कोई ईर्ष्यासे आपसमें लड़ने लगते थे तो ऋषिपत्नी उन्हें छुड़ातीं और अलग-अलग घास डालकर उनके अधिक घास लेनेके लोभको संवरित करतीं।

एक दिन सन्ध्याके समय गुरुके आँगनमें सभी बैठे थे, शास्त्र और जीवनके विषयोंपर चर्चा हो रही थी। शातातपने पूछा कि शास्त्र कितने हैं? जाबालिने उत्तर दिया कि शास्त्र अनेक हैं पर उनमें छः दर्शनोंको ही लोग मुख्य शास्त्र कहते हैं। नये आये हुए दण्डपाणिने कहा कि शास्त्रोंमें तो लिखा है कि 'सबेरे उठना चाहिये,' आजकल सर्दीके दिन हैं और हम जाड़ेके मारे ठिठुरे जाते हैं, सबेरे ठण्डी-ठण्डी हवा चलती है, उसी समय नदीमें नहाना पड़ता है, फिर 'सन्ध्या करो' वहाँ भी पानीसे पीछा नहीं छूटता—इस तरह इन शास्त्रोंने तो हैरान कर लिया, ऐसे शास्त्र किस कामके? वीणापाणिने कहा—भाई! ऐसा नहीं कहना चाहिये, सबेरे उठनेसे आलस्य छूट जाता है, स्नान करनेसे शरीर स्वच्छ हो जाता है, मन प्रसन्न रहता है, सन्ध्या-वन्दनसे आत्मा पवित्र रहती है, हमसे अज्ञात दशामें जो पाप होते

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रहते हैं उनका नाश हो जाता है। शीत सहनेसे हमारा शरीर दृढ़ हो जाता है, हम सब कामोंके करनेमें समर्थ हो सकते हैं, देखो, पहाड़ी मनुष्य हमारी अपेक्षा अधिक बलिष्ठ होते हैं। इसी अवसरमें गुरुजीने सबको एक बार गौरसे देखा, गिना, फिर बड़ी आतुरतासे धौम्यसे कहा, 'आज आरुणि क्यों नहीं दिखायी देता।'

आरुणि पंजाबका रहनेवाला था, बीस वर्षसे वह गुरुकुलमें रह रहा था। शास्त्रोंकी कठिन उलझनोंसे तंग आकर आश्रममें आया था। जबसे आया था तभीसे उसने गुरुकी सेवाको ही मुख्य समझा था और इस सेवाने ही उसे कुछ धीरज बँधाया था।

गुरुको स्नान कराना, कपड़े धोना, पूजा-सामग्री इकट्ठा करना, पूजाके बर्तनोंको माँजना-धोना, सन्ध्याके लिये जल लाना, आसन बिछाना, यज्ञशालाकी सफाई करना, गुरुका बिछौना बिछाना, गुरुके पैर दबाना, हवनके लिये वनसे लकड़ियाँ लाना, पूजाके लिये फूल, बेलपत्रादि लाना ही आरुणिका काम था, इसीमें वह सुखी था। गुरुके वचनोंमें उसे वेदके रहस्यका ज्ञान होता था, गुरुको वह परमात्मा समझता था। गुरुके जीवनकी प्रत्येक बात वह बड़ी सूक्ष्मतासे देखता था। गुरुकी सेवामें सर्वस्व समर्पण करनेको तैयार रहता था। गुरु-सेवा ही उसके जीवनका मुख्य उद्देश्य था, इसीमें उसे आत्मदर्शन होता था। गुरु-सेवाके सिवा उसे और कोई काम अच्छा न लगता था। गुरु-सेवासे जो समय बचता था उसमें दूसरे गुरुभाइयोंका काम कर दिया करता था, किसीकी क्यारियाँ सींच देता, किसीकी पर्णकुटी बुहार देता, किसीका दीपक जला देता, किसीका कपड़ा साफ कर देता, रोगी बालकोंको ओषधि लाकर देता, उनका बिछौना साफ करता, उन्हें ठीक समयपर भोजन कराता, उठाता, बैठाता, पानी पिलाता। आश्रममें नवीन आये हुए बालकोंके साथ प्रेमका बर्ताव करता, उन्हें अपना भाई-जैसा समझता, उनका सबसे परिचय कराता, गुरुकुलके सब नियम सिखाता, पाठशाला और यज्ञशालामें साथ-साथ जाता, और वहाँके प्रणाम आदिके ढंग बतलाता। यदि कभी कोई बालक अपने घरके लिये उद्विग्न होता तो उसे आश्रमके पशु-पक्षियोंको दिखाकर धीरज दिलाता, समझाता, यथाशक्ति उसका मनोरञ्जन करता रहता था। उसके इस सीधेपनसे कोई-कोई चालाक छात्र अनुचित लाभ उठाते थे। उसे तो किसी काममें लगा देते और स्वयं अपना पाठ याद करने लगते थे। कुछ उसे मूर्ख, गँवार कहकर हँसते थे। कुछ भले विद्यार्थी उसपर दया भी करते थे, कुछ उसकी गुरुभक्तिको देखकर उसका मान भी करते थे। प्रायः उसकी उदारतापर सभी आश्रमवासी प्रसन्न थे। यहाँतक कि नवीन आगन्तुक भी उसकी प्रशंसा करते थे।

गुरुने पूछा—'आज आरुणि नहीं दीख पड़ा।'

'सो गया होगा' मौद्गने कहा।

'बछड़ा बाँधता होगा' माण्डायनने कहा।

'खेतमें आनन्द करता होगा' सौभरिने कहा, क्या यह पढ़नेके लक्षण हैं, यदि उसे पढ़ना ही होता तो क्या यही दशा होती, दिन-दिनभर गायब रहता है, पाठशालाका दर्शन ही नहीं करता।

'तभी तो अबतक वेदकी एक शाखा भी पूरी नहीं हुई' वैमानिकने कहा।

'न मालूम यह बेचारा यहाँ कैसे आ गया, इसका क्या अपराध! जब आप वेदका रहस्य समझाते हैं तब हमारी बुद्धि चक्कर खाने लगती है, इसके लिये तो कहना ही क्या है' दयालु धर्मध्वजने कहा।

'वह बेचारा सारे दिन तो काम-काजमें लगा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रहता है, उसे पढ़नेकी छुट्टी ही कहाँ मिलती है' वामदेवने कहा।

'वह सीधा-सादा विद्यार्थी आपलोगोंका तथा आश्रमका ही तो काम करता है, उसका गुण तो कोई नहीं मानता उलटे सब उसकी निन्दा करते हैं, क्या यही मनुष्य-धर्म है' सत्यकेतुने कहा।

धौम्य ऋषिने यह सब बातें शान्तिपूर्वक सुन लीं, क्षणभरके लिये वे गम्भीरभावसे कुछ विचारने लगे, पीछे बोले, 'वह तो न जाने कब आवेगा, चलो, अपने ही ढूँढ़ लावें।'

ये बातें हो ही रही थीं कि एकाएक बादल घिर आया, काले बादलोंकी घटाने आकाशको घेर लिया, बादल गरजने लगे, बिजली चमकने लगी, चारों ओर अँधेरा छा गया। उस समय न कोई किसीको देख सकता था, न कोई किसीकी बात सुन सकता था। जंगलकी गौएँ घरकी ओर भागने लगीं। आश्रमके हरिन सचेत होकर खड़े हो गये मानों वे किसी अज्ञात विपत्तिकी प्रतीक्षा करने लगे (वे किसी छायादार पहाड़ीके पास इकट्ठे होने लगे)। हिंस्र पशु भी घबड़ाकर इधर-उधर भागने लगे। पक्षी अपने-अपने घोंसलोंमें घुस गये। वनमें सन्नाटा छा गया। छात्र लोग अपनी-अपनी चीजें उठाने लगे। किसीने दौड़कर लँगोटी उठायी। किसीने मृगचर्म उठाया। कुछने यज्ञशालाकी चीजें उठायीं। एकने अपनी पुस्तक उठायी पर जल्दीमें आसन उठाना भूल गया। कुछने हवनकी समिधाएँ छायामें रक्खीं। जिसका मुँह जिधर उठा वह उधर ही दौड़ पड़ा। इस तरह क्षणभरके लिये आश्रममें खलबली मच गयी।

गुरुके पास खड़े हुए कुछ छात्रोंमेंसे एकने कहा—'देखो, यह कैसा भयंकर बादल आ रहा है।'

दूसरेने कहा—'अपनी पीठकी ओर तो देखो, बादलोंके दल-के-दल आ रहे हैं।'

'आजके-जैसे बादल तो कभी नहीं देखे थे, एक-से-एक भयानक चले आते हैं' तीसरेने कहा।

'मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि मानों आज ही प्रलय होनेवाला है। यदि ये बरस पड़ें तो क्या दुनियामें कुछ रह भी जायगा' चौथेने कहा।

'भागो, भागो, पानी बड़े बेगसे आ रहा है' पाँचवेंने कहा। इतनेमें बड़े बेगसे पानी बरसने लगा। गुरुजी अपनी कुटीमें चले गये, उपस्थित छात्रोंको भी अपने ही साथ लेते गये।

उस दिन ऐसी वर्षा हुई जैसी कभी हुई न होगी। हवाके झकोरोंके साथ मूसलाधार वर्षा! पलभरमें सारे आश्रममें पानी-ही-पानी हो गया। कितनी ही कुटियोंमें पानी भर गया, बैठनेकी जगह न रह गयी! छात्र सिकुड़े बैठे रहे। किसीकी पुस्तक और किसीकी लँगोटी भीगी। किसीकी कुटी ही उलट गयी। गुरुपत्नीकी दशा भी बड़ी विचित्र रही। कुटियामें पानी चू रहा था। वे एक चीज उठाकर दूसरी जगह रखतीं तबतक वहाँ भी चूने लगता था। इतना ही नहीं, बौछारके कारण कहीं बैठनेको भी ठौर न था। जब हवा कुछ कम पड़ी और पानीका बेग भी कुछ कम हुआ तब आँगनका पानी कुटीमें घुस पड़ा। अब तो ऋषिपत्नी घबड़ायीं और आतुरता-से 'आरुणि आरुणि' पुकारने लगीं।

भला उनकी आवाज सुनकर कौन बैठा रह सकता था? गुरुके पास बैठे हुए सभी छात्र उठ खड़े हुए, स्वयं गुरुजी भी उठे और जाकर कुटीको सँभाला। काम थोड़ा ही था अतः दो छात्रोंने उसे क्षणभरमें ठीक कर दिया। मिट्टी लाकर मेड़ बाँध

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दी और अन्दरके पानीको उलीच डाला। इतनेमें वर्षा रुकी और सबके जीमें जी आया।

सब छात्र तो अपनी-अपनी कुटियोंमें आनन्दसे बैठे बातें बना रहे थे पर आरुणि गुरुजीकी गाय लेने वनमें गया था, वहीं पानी बरसा, बेचारा भीग गया, उसके बल्कल झाड़ियोंमें उलझकर फट गये, कितने ही काँटे चुभ गये। वर्षाके कारण बेचारा तंग था। गुरुकी गाय बिना लिये आश्रममें कैसे लौटे? पानी बन्द होनेपर, 'श्यामा श्यामा' कहकर गायको पुकारा। आरुणिका बोल सुनकर श्यामा तुरन्त रँभाती हुई उसके पास दौड़ आयी। आरुणि बहुत खुश हुआ—जैसे बच्चा माताको पाकर प्रसन्न होता है। दोनों साथ-साथ आश्रममें आये। आरुणिने उसे नियत स्थानपर बाँधा, घास डाली, दूध दुहा, बछड़ेको दूध पिलाकर बाँध दिया, तब गुरुजीको जाकर प्रणाम किया।

उस समय गुरुजी शिष्योंसे कह रहे थे कि 'अपने खेतमें जो नया मेड़ बँधाया है वह तो आज अवश्य इस पानीसे टूट जायगा और खेतका पानी बह जायगा, इसलिये सब काम छोड़कर आज उसे बाँधना है।'

'महाराज! मेरा बल्कल सूख रहा था, देख आऊँ कि कहीं उड़ तो नहीं गया' यह कहकर एक चला गया।

'गुरुजी! मेरी पर्णकुटी पुरानी थी, देख आऊँ, बची या उड़ गयी' दूसरा चला गया।

'गुरुजी! मेरी पुस्तक और आसन वृक्षके नीचे पड़े थे, न जाने किसीने उठाये या नहीं, जाकर देख तो आऊँ' तीसरा चला गया।

'गुरुजी! आज सारा दिन काम-काजमें ही बीता, पाठ याद करनेका अवकाश ही न मिला, आज्ञा हो तो जाकर अपना पाठ याद करूँ' चौथा चला गया।

इसी तरह एक-न-एक बहाना बनाकर प्रायः सभी रवाना हो गये, इसी समय आरुणिने प्रणाम किया। आरुणिको देखकर बोले—'आरुणि! तू अभी-तक कहाँ था?' 'महाराज! मैं गाय लेने वनमें गया था, वहाँ पानी बरसने लगा, इसीसे देर हो गयी। अब तो हवनकी तैयारी करने आया हूँ।' आरुणिने हाथ जोड़कर कहा।

'आरुणि! जा, खेतका मेड़ बाँध आ, देख, पानी न निकलने पावे, होमकी तैयारी तो होती रहेगी।' गुरुने आज्ञा दी।

गुरुजीकी आज्ञा सुनते ही आरुणि खेतकी ओर दौड़ा, रास्तेमें पानी-ही-पानी था, बेचारा छप-छप करता हुआ, कीचड़से लथपथ, काँटे कुचलता-कुचलता, जैसे-तैसे खेततक जा पहुँचा।

खेत पानीसे भर गया था, सब ओर पानी-ही-पानी दीख पड़ता था, खेत क्या था मानों ताल था। मेड़ टूटनेहीवाला था क्योंकि पानी छलक रहा था। हवाके झकोरोंसे पानीमें लहरें उठ रही थीं और पानीका वेग बढ़ता ही जाता था। आरुणिके देखते-देखते पानी मेड़परसे निकलने लगा।

आरुणि बड़ा परिश्रमी और साहसी था, पर ऐसी दशामें वह कभी न पड़ा था, बेचारा देखते ही सहम गया, कुछ देरतक चुपचाप खड़ा रहा, अन्तमें हिम्मत बाँधकर एक ओरसे मिट्टी निकाली और मेड़ बाँधने लगा। मिट्टी गीली थी, साथ ही पानीका वेग अधिक था इसलिये मिट्टी बह जाती थी। आरुणिने फिर भी हिम्मत न हारी और वह मिट्टी रखता ही गया। उसने सभी पानी निकलनेके स्थानोंको बाँध दिया परन्तु एक नीची जगहपर पानीकी धार बड़े वेगसे बह रही थी, वहाँ किसी तरह पानी रुकता न था, आरुणि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बेचारा बाँधते-बाँधते थक गया था, हाथ-पैर काम न देते थे, शरीर शिथिल पड़ गया था, दूसरा कोई साथी न था, अगर किसीको सहायताके लिये कहे तो किसे कहे। बेचारेको दम मारनेकी फुरसत न थी।

आरुणि मन-ही-मन विचारने लगा, 'आज गुरु-कुलमें रहते हुए मुझे बीस वर्ष हो गये, कभी कोई (गुरुकी) आज्ञा भंग न हुई, यदि आज पानी न रुका तो आजतककी की हुई सारी कमाई मिट्टीमें मिल जायगी।' उसी समय उसके हृदयमें एक बिजली चमक उठी, सारे शरीरमें नया जोश फैल गया। प्रसन्नतासे मुँह खिल उठा। 'अरे मैं बड़ा पागल हूँ, इस हाड़-मांसकी मिट्टीको क्यों नहीं लगा देता जिससे पानी न निकल सके।' बस, फिर क्या था! गुरुका ध्यान करता हुआ आरुणि मेड़ बन गया। पानी निकलना बन्द हो गया।

रात हो गयी, चारों ओर अन्धकार छा गया। पानीके कलकलके सिवा कुछ सुनायी नहीं देता। सारा संसार सुखकी नींद ले रहा है, जिसके घरमें एक बूँद भी पानी टपकता है केवल वही जाग रहा है। जंगल-के पशु-पक्षी भी सो रहे हैं। किसीको किसीकी चिन्ता नहीं। घरसे बाहर निकलनेको जी नहीं चाहता। माताएँ अपने बच्चोंको गले लगाये सो रही हैं, अँधेरे-में बच्चेका तनिक भी अलग होना उन्हें दुखदायी जान पड़ता है। रात सायँ-सायँ कर रही है मानों सभीको डरा रही है।

भूखा-प्यासा आरुणि खेतका मेड़ बना पड़ा है। आधा शरीर कीचड़में गड़ा हुआ है। कानोंमें पानी भर गया है। देहमें कंकड़ और काँटे चुभ रहे हैं। हिलने-डुलनेका अवकाश नहीं है। पानीसे सब अंग गले जा रहे हैं। आरुणि पत्थर बना पड़ा है। अधमरा हो गया है। केवल थोड़ा-सा सिर पानीसे बाहर है। जीवनकी अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा है, पर गुरुकी आज्ञाका ध्यान है। चाहे शरीर गल जाय, प्राण नष्ट हो जायँ पर गुरु-आज्ञा भंग न हो। यदि कोई चिन्ता है, विचार है तो केवल यही एक कि मेड़ न टूटे।

सबेरा हुआ। सब सोकर उठे। अपने-अपने नित्यकर्ममें लग गये। स्नान, सन्ध्या, हवनसे निवृत्त हुए। गुरुजीको प्रणाम करने सब बालक आये, पर आरुणि न आया।

गुरुजीने पूछा—'आरुणि कहाँ है?'

'कहीं घूमता होगा' एकने कहा।

'अभी तो इसी ओर आ रहा था' दूसरेने कहा।

'उसे तो कल मेड़ बाँधने आपने भेजा था, वहाँ रातको रहा होगा' तीसरेने कहा।

'मालूम होता है कि आरुणि आया नहीं इसलिये अपने सभी खेतपर चलें और ढूँढ़ लावें' गुरु बोले।

सभी खेतकी तरफ जाने लगे। आपसमें अनेक प्रकारकी बातें करने लगे।

'आज आरुणिकी खबर ली जायगी' एकने कहा।

'आज आटा-दालका भाव मालूम हो जायगा' दूसरेने कहा।

'बहुत दिन बाद आज चोर फँसा है' तीसरेने कहा।

'यह तो कई दिनोंसे रातमें बे-पते रहता था, सबेरा होनेपर कह देता कि मैं तो गुरुजीके पास था' चौथेने कहा।

'भाई! कभी-न-कभी तो चोरी अवश्य खुलती है'

'भाई बढ़े चलो, देखो गुरुजी कितने आगे निकल गये!'

गुरुजी खेतमें पहुँचे। पीछे-पीछे सभी छात्र पहुँचे। गुरुजीने पुकारा—'आरुणि, आरुणि' पर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आरुणिका कहीं पता न लगा, गुरुजीने फिर पुकारा परन्तु फिर भी कोई आवाज न आयी, न आरुणि ही दीख पड़ा। आरुणि बेचारा तो सुन ही नहीं सकता था क्योंकि उसके तो कानोंमें पानी भरा था। आरुणिका कोई चिह्न न मिलनेपर गुरुजीने कहा कि चलो अपने खेतका मेड़ तो देखते चलें। गुरुजी खेत देखते हुए आरुणिके पास पहुँचे। आरुणिको देखते ही गुरुजी सन्न रह गये, क्षणभर गुरुजी न जाने क्या सोचते रहे, धैर्य धारण करके बोले, उठो बेटा आरुणि उठो, यह आवाज आरुणिको सुन पड़ी, मेड़ बना आरुणि सहसा उठकर खड़ा हो गया और गुरुजीके चरणोंपर गिर पड़ा। गुरुजी भी प्रेममग्न हो गये थे, उनका हृदय उमड़ आया, प्रेमके आँसू बहने लगे। कीचड़से लथपथ आरुणिको झट हृदयसे लगा लिया, गुरुजीकी गोदसे छूटते ही फिर आरुणिने झुककर प्रणाम किया।

इतनी देरमें सब छात्र भी इकट्ठे हो गये। एकने आरुणिका हाथ पकड़कर धीरेसे खींचा। आरुणि एक ओर ज्यों ही तनिक मुड़ा कि एकने कहा—'क्यों! अभीतक कहाँ थे' दूसरेने कहा—'रातको कहाँ रहे थे।'

यद्यपि ये बातें बहुत धीरे कही गयी थीं पर गुरुने सब सुन लीं। गुरुजीको क्रोध आ गया, लाल-पीली आँखें करते हुए वे बोले—'दुष्टो, तुम्हें आरुणिके छूनेका क्या अधिकार! तुमने इसे अबतक नहीं पहचाना, तुमको अपनी बुद्धि और विद्याका अभिमान है। अपनी विद्याके अभिमानसे तुम अन्धे हो रहे हो। तुम्हारी वल्ली, ऋचा और मन्त्रोच्चारने तुम्हें भ्रान्त बना दिया। तुम्हारी विद्या झूठी है और आरुणिकी विद्या सत्य है, सेवा-धर्मको तो इसीने पहचाना।

तुम्हें आरुणि मूर्ख जान पड़ता है। मूर्खो! तुमने आजतक जितना रटा है उतना पहले ही रटकर आरुणि यहाँ आया है! तुम वेदके अभ्यासी हो पर तुम्हें मालूम नहीं कि सारे वेद आरुणिकी जीभपर नाच रहे हैं। अब दूसरेके बनाये शास्त्रोंको आरुणि न रटेगा लेकिन तुम लोग उन्हींमें पचते रहोगे। आरुणि तो आजसे शास्त्री बनेगा।

तुम लोग इस आश्रममें गुरुकी शरणमें आये हो लेकिन गुरुकी शरण खोजनेवाले अपने हथियारोंको छिपा रक्खा है। जब तुम किसीकी शरण लेते हो तो तुम्हारे सब हथियार उसीके हो जाते हैं और उसकी आज्ञा बिना तुम उन हथियारोंको अपने उपयोगमें नहीं ला सकते। इसी भाँति तुमने अपने सारे हथियार गुरुको सौंप दिये हैं। तुम्हारे शरीर, तुम्हारे हाथ-पैर, तुम्हारा मन, तुम्हारी बुद्धि सभीका उपयोग गुरुके लिये होना चाहिये। तुम इसके लिये कितने तैयार हो? यह सबके पीछे छिपा हुआ तुम्हारा अभिमान तुम्हें करने नहीं देता और जब-तक अभिमान न मिटे तबतक गुरुकुलमें रहनेसे कोई लाभ नहीं हो सकता।

'बेटा आरुणि! तेरे मुँहपर वेद और शास्त्रों-का तेज दीख पड़ता है, जा, तेरा कल्याण हो, तुझे आत्मज्ञान हो चुका।'

आरुणिने सिर झुका लिया, फिर गुरु-चरणोंको प्रणाम किया।

गुरुकी आज्ञासे सभी आश्रममें आये। आरुणिने स्नान किया, वल्कल पहने सन्ध्या-हवन किया। गुरुपत्नीने आरुणिको भोजन कराया। अब आरुणि पहलेवाला आरुणि न रह गया। गुरुकी कृपासे वह कुछ-का-कुछ हो गया। सभी उसकी तारीफ करते थे। जहाँ देखो वहाँ उसीकी चर्चा चल रही थी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आज आरुणिकी तपस्या सफल हुई। थोड़े ही समयमें यह समाचार दूर-दूरतक फैल गया। जो पहले आरुणिको मूर्ख समझते थे वे अब मन-ही-मन लज्जित होने लगे। कुछ छात्रोंने तो अपने पहलेके किये हुए व्यवहारोंके लिये क्षमा-याचना भी की।

वह दिन उसी आनन्दमें बीता। सवेरा हुआ। नित्य-नियमसे निवृत्त होकर आरुणिने गुरुजीको प्रणाम किया और घर जानेकी आज्ञा माँगी, साथ ही गुरुदक्षिणा ले लेनेका भी अनुरोध किया, पर गुरुजीने उसकी 'सेवा' को गुरुदक्षिणामें स्वीकार करते हुए बड़े हर्षसे उसे घर जानेकी आज्ञा दी।

आरुणिकी तैयारी सुनकर सभी आश्रमवासी मिलने आये, आरुणिने सबको प्रणाम किया, वह प्रेम-पूर्वक मिला। गुरुपत्नी एवं गुरुजीके चरणोंमें प्रणाम करके अपना रास्ता लिया। कुछ दूरतक आश्रम-वासी पहुँचाने गये पर आरुणिने उन्हें हठपूर्वक लौटा दिया।

आरुणि अपने घर आया। सारे देशमें उसकी विद्याका मान था। लोग बड़ी प्रतिष्ठा करते थे। अपने देशमें सबसे बड़ा विद्वान् माना गया। उसने बहुत-सी पुस्तकें लिखीं, विद्यार्थियोंको पढ़ाया। संसारमें ज्ञान फैलाया। इन्हीं अच्छे गुणोंके कारण आजतक लोग आरुणिका यश गाते हैं और सदा गाते रहेंगे।

मूर्ति-पूजा

(लेखक—डा० बनारसीप्रसादजी भोजपुरी)

र्तिपूजक ! लोग उसे मूर्तिपूजक कहते हैं। नहीं, अवसर पाकर खिल्ली भी उड़ाया करते हैं—तर्कोंकी तलवार लेकर दौड़ पड़ते हैं। पर वह भी कैसा पागल है ? कुछ भी चिन्ता नहीं। संसार पागल कहता है, कहने दो,—गालियाँ देता है, देने दो,—ईंटें बरसाता है, बरसाने दो !!—वह तो अजीब पागल है। बिल्कुल बहरा बन बैठा। इधर-उधर कहीं भी नहीं देखता। तर्कोंकी धुआँधार मारको बरदाश्त कर लेता है। कहता है—'ज्ञानकी कसौटीपर अबला बुद्धि ठहर नहीं सकती,'—वह किसीकी नहीं सुनता। उस पत्थरकी मूर्तिको मधुकरीमें लिये फिरता है। अवसर पाकर उस मूर्तिको धोता है, पोंछता है,—मगर प्यारसे ! उसे आरती लगाता है, प्रसाद चढ़ाता है,—बादमें, शायद मौका मिलनेपर अपने भी जूठन खा लेता है। हाँ, बेशक, यह तो पागलपन हुआ। पर नहीं, वह तो उस मूर्तिका हो चुका। संसारके किसी स्थानमें वह उसे भूल नहीं सकता। तब तो उसे उस पत्थरके लिये दीवाना बनना ही पड़ेगा !—वह पागल है, ज़रूर पागल है। ओह, उस पागल-पनमें कैसा सुख है ? 'अब तो लागी नज़रिया साँवलियासे'—कैसी सुन्दर ध्वनि निकल पड़ी ? अब उसे संसारकी क्या चिन्ता ? उसने तो अपने दिलकी मधुकरीमें उस मूर्तिको छिपाये रखा है, किस-की ताकत है जो बिलग कर दे। कौन कहता है, मूर्ति-पूजा बुरी चीज़ है ? वह नासमझ है, तहतक पहुँचनेकी कोशिश नहीं करता। वह देखो, वह तो उनके तर्कोंपर हँसने लगा। वाह, क्या कहना है। बड़ा ही सुन्दर प्रमाण निकाला, ठीक, बिल्कुल ठीक;—'भावका भूखा साँवलिया।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निष्ठा चाहिये, बस निष्ठा !—कौन जानता था, प्रह्लादके रक्षार्थ ईश्वरका अवतार खम्भसे होगा !—होगा, ज़रूर होगा, पर पवित्र निष्ठाकी आवश्यकता है, सच्ची लगनकी ज़रूरत है। नासमझ लोग उसीको पागलपनके नामसे सम्बोधित करने लगते हैं। पागल बनना आसान नहीं, उसे तो प्यारे प्राणकी बाजी लगानी पड़ती है। हाँ, पागल था मंसूर, जिसने अपना सर्वस्व हँसते-हँसते गवाँ डाला। और कौन ? पागल था प्रह्लाद, जिसने अग्नि-कुण्डमें प्रवेश करनेके पहले ज़रा भी हिचकिचाहट प्रकट नहीं की। पागल थी मीरा, जिसने प्यारे प्रभुकी रट लगाते-लगाते जीवन-यात्रा समाप्त करनेमें आनन्द समझा। संख्या असीम है। पागल था कविवर तुलसीदास, जिसने कृष्णकी वंशी दूर करा धनुष-बाण गहाकर छोड़ा,—और दूसरा पागल कौन ?—ऐसे पागल यदि अपने प्यारेकी मूर्ति ढोते फिरते हैं, उन्हें पवित्र नीरसे धोया करते हैं,—अर्घ्य चढ़ाया करते हैं,—तो क्या अनुचित है ? नहीं, कभी नहीं, उन्हें तो उसी मूर्तिके भरोसे संसारका गहन वन पार करना है। ऐसे दीवाने व्यक्तिपर कीचड़ उछालनेमें कौन-सी सिद्धि होती है, समझमें नहीं आता। तो क्या मूर्ति-पूजा अनिवार्य है ? इसका उत्तर दिल देगा। यदि वह किसी मूर्ति-विशेषपर ही रीझ जाय, उसीको अपना ले, तो उससे छेड़खानी करनेकी क्या ज़रूरत ? 'जाकर मन रम जाहि सन ताहि-ताहि सन काम।' तब तो मूर्ति-पूजाकी आवश्यकता साबित हुई ? हाँ, पर भक्ति और निष्ठाके साथ।

नराकार ईश्वर, अद्वैतवाद और भक्तिवाद

(लेखक—ठाकुर श्रीगजराजसिंहजी एम० ए०, एल-एल० बी०)

(पूर्वप्रकाशितसे आगे)

अब हम संक्षेपसे उन सज्जनोंके हितार्थ, जो वेदोंकी प्रामाणिकता तो स्वीकार करते हैं पर उनमें नराकार ईश्वरकी उपासना नहीं पाते, साथ ही उनके भी कल्याणार्थ, जो वेदोंमें नराकार ईश्वरको पाकर भी पुराणोंके आधार-पर प्रधान ईश्वरीय स्वरूपोंमें (जैसे शिव और विष्णुमें) कुछ-न-कुछ तारतम्य बतलाते रहते हैं, अपने मुख्य विषय-भाग (पञ्चदेवोपासना) में प्रवेश करते और सुभीतेके लिये विषयके दो भाग करते हैं। पहले भागमें पञ्चदेवोपासनातत्त्व और अद्वैतसिद्धान्त, पुराणोंमें पञ्चदेवविषयक परस्पर-विरोधी वाक्य और उनका समन्वय रहेगा। दूसरे भागमें रामकृष्णावतारोंकी एकता बतलाकर वैष्णवधर्मान्तर्गत भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंमें भी मेल करानेका प्रयत्न किया जायगा।

(१) पञ्चदेवोपासनातत्त्व और अद्वैतसिद्धान्त पुराणोंमें पञ्चदेवविषयक परस्पर-विरोधी वाक्य और उनका समन्वय

जैसे क्षिति, जल, नभ, पावक और पवन—इन पाँच तत्त्वोंसे जगत्की रचना हुई है वैसे ही हमारी देह-रचना भी हुई है। इन्हीं पाँचों तत्त्वोंके अधिष्ठाता देवता पञ्च-देव कहलाते हैं। जलतत्त्वके अधिष्ठाता विष्णु (नारायण) हैं, आकाशतत्त्वके शिव (रुद्र), पृथ्वीतत्त्वकी दुर्गा, वायुतत्त्वके गणेश और अग्नितत्त्वके सूर्य। इसप्रकार सनातनधर्मके पाञ्चदेव पाञ्चभौतिक जगत्का कार्य चला रहे हैं। इसी आशयसे बृहदारण्यक-उपनिषद्के 'अन्तर्यामी-ब्राह्मण' में कहा है—

यो ऽप्सु तिष्ठन्नद्भ्योऽन्तरो यमापो न विदुर्यस्याऽऽपः शरीरं
योऽपोऽन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥ (३-७-४)

अर्थात् 'जो जलोंमें रहता हुआ जलोंके अभ्यन्तर है, जिसे जल नहीं जानते, जल जिसका शरीर है और जो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जलोंके अन्दर रहकर उन्हें नियममें रखता है—ऐसा तेरा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है' इसी प्रकार शेष चार तत्त्वोंके अन्दर रहकर वह 'अन्तर्यामी' उनको नियममें रखनेवाला बतलाया गया है। अतः सबका समुच्चय दूसरी श्रुति कर देती है—

··· य इमं च लोकं परं च लोकं सर्वाणि च भूतानि योऽन्तरो यमयति ···। (बृह० ३। ७। १)

'जो इस लोक, परलोक तथा सब भूतोंको उनके अन्दर रहकर नियममें रखता है।'

इसलिये पञ्चतत्त्वोंके अन्दर रहकर उन्हें नियममें रखनेवाले एक ही परमात्माके पाँच स्वरूप उपासनाकाण्डमें विष्णु, शिवादि कहलाते हैं। नीचे लिखे हुए तीन वेदमन्त्र शिव और विष्णुमें अभेद प्रतिपादन कर उन्हें नराकार बतला रहे हैं—

(१) प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण
मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्व-
धिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा॥
(ऋ० १। १५४। २)

(२) त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥
(यजु० ३। ६०)

(३) या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि॥
(यजु० अ० १६ म० २)

(१) मृगके समान वे विष्णुभगवान् अपने बलसे स्तुतिको प्राप्त होते हैं। नरसिंहरूपसे भीम (भयङ्कर), पृथ्वीपर विचरनेसे कुचर और कैलासगिरिमें निवास करनेसे गिरिष्ठ हैं। उनके त्रिपादमें सम्पूर्ण भुवन कम्पित हो रहे हैं।

(२) हम सुगन्धयुक्त और ऐश्वर्यको बढ़ानेवाले त्रिनेत्र परमात्मा (रुद्र) का पूजन करते हैं जिनकी कृपासे (पके) खरबूजेकी नाईं हम संसारी बन्धनोंसे छूटें पर अमृतसे न (छूटें)।

(३) हे गिरिशन्त! आपका कल्याणदायक और पापनाशक शरीर है। उस शान्तिमय शरीरसे हमारी ओर अवलोकन कीजिये।

'यो वै रुद्रः स भगवान् यश्च विष्णुस्तस्मै नमो नमः'

इस श्रुतिमें भी रुद्रभगवान्को प्रणाम कर स्पष्ट कहा है कि वे (रुद्र) ही विष्णु हैं।

वेदकी इन समस्त श्रुतियोंका अनुकरण स्कन्दपुराण (काशीखण्ड, २३ वाँ अध्याय) में इसप्रकार किया गया है—

यथा शिवस्तथा विष्णुर्यथा विष्णुस्तथा शिवः।
अन्तरं शिवविष्ण्वोश्च मनागपि न विद्यते॥

'जो शिव हैं वही विष्णु हैं और जो विष्णु हैं वही शिव हैं। इनमें किञ्चित् भी भेद नहीं है।'

पुराणोंमें इसी आशयके अनेक प्रमाण मिलते हैं जिन्हें विस्तार-भयसे नहीं देते। 'तत्सवितुर्वरेण्यम्' इत्यादि गायत्री-मन्त्र और 'गणानां त्वा' इत्यादि प्रसिद्ध मन्त्र क्रमशः सूर्य और गणेशकी उपासना बतला रहे हैं। अन्तमें निम्नलिखित मन्त्रमें भगवती दुर्गा अपने श्रीमुखसे ही सूचना दे रही हैं—

अहमेव स्वयमिदं वदामि
जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि
तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्॥
(ऋ० १०। १२५। ५)

'मैं स्वयं यह बात कहती हूँ जो देवता और मनुष्योंके लिये प्यारी है कि जिसे मैं प्यार करती हूँ उसे तेजस्वी, ब्राह्मण, ऋषि और मेधावी बनाती हूँ।'

इसप्रकार श्रुति और पुराणोंसे सिद्ध हुआ कि शिव और विष्णुमें 'मनागपि' भेद न देखना चाहिये। इसी प्रकार शेष देवताओंमें भी। यह भी प्रमाणित हो गया कि वेदोंमें नराकार ईश्वरकी उपासना भी प्रतिपादित की गयी है। अतः वैदिक सनातनधर्मकी जय और पञ्चदेवैक्यकी विजय हुई।

अब जैसे पञ्चतत्त्वोंमेंसे किसी भी एक तत्त्वके बिना पिण्ड और ब्रह्माण्डका कार्य रुक जायगा, वैसे ही पञ्चदेवोंमेंसे किसी भी एक देवकी उपासना बिना हमारे धार्मिक जीवनमें रुकावट होगी। दूसरे शब्दोंमें यह कह सकते हैं कि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धार्मिक जीवनके लिये पञ्चदेवोपासना परमावश्यक है। चाहे हम अनन्यभक्तिके नातेसे किसी भी एक देवताकी उपासना क्यों न करें तो भी शेष स्वरूपोंमें भी अपने इष्टदेवकी उपासना करनी चाहिये। कम-से-कम उनके महत्त्वको न घटाना चाहिये। इसीलिये अद्वैतवाद पञ्चदेवोपासनाका सम्मान करता है। इसीलिये गोसाईंजीकी 'विनय-पत्रिका' भी शिवादि शेष स्वरूपोंसे राम-भक्ति-निमित्त विनय कर रही है, क्योंकि—

निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं विरोध।

—यही अनन्यतामें अद्वैतसिद्धान्तकी उदारता है।

स्वामी शङ्कराचार्यकृत स्तोत्रोंसे भी पता लगता है कि आचार्यने न तो शिवादि देवोंमेंसे और न रामकृष्णावतारोंमें-से किसीके महत्त्वको न्यूनाधिक बतलाया। उन्होंने ज्ञान-मार्गका समर्थन करते हुए भी भक्तिरसका वह प्रवाह बहाया जिसमें बादमें होनेवाले आचार्योंने भी गोता लगाया। यदि वे चाहते तो सनातनधर्मका उद्धार करते हुए भक्ति-मार्गमें भी भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय स्थापित करनेका प्रयत्न करते। पर सर्वथा अभेद-बुद्धिने उन्हें रोका। बल्कि ऐसा करना उनकी शक्तिके बाहर हो गया। इसका कारण पूर्वकथित श्रुतियोंने पाठकोंको बतला दिया है।

किन्तु मत-भेद स्वाभाविक होता है परन्तु तज्जनित कलह नहीं (होती)। तो भी कलिकाल कलह या विग्रह-काल ही है। अतएव मत-भेद और कलिकालके प्रतापसे उपासनामार्गमें भी कलह-मार्गकी आवश्यकता जान पड़ी। अद्वैतवादके अनुयायियोंमें भक्तिकी कमी या उपेक्षा देख कालान्तरमें प्रयोजनानुसार भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंका जन्म होने लगा। जिन पुराणोंने शङ्करस्तोत्रोंमें एकताका राग अलापा था वे ही पुराण अब अनेकताकी बोली बोलने लगे। अद्वैतवाद अनेक वादोंका साथी बन गया। 'अन्तरं शिवविष्ण्वोश्च मनागपि न विद्यते' इत्यादि पुराण-वाक्योंका अपमान होने लगा। भक्त-संग्राम ऐसा बढ़ा कि 'रामरावण-योर्युद्धं रामरावणयोरिव' के अनुसार 'शैववैष्णवयोर्युद्धं शैववैष्णवयोरिव' हो गया। इस झगड़ेका कारण यह था कि पुराणोंमें सर्वथा अभेद-सूचक वाक्योंके साथ-साथ किञ्चित् भेद-सूचक वाक्य भी पाये गये। कलिकालके प्रभावने उपासकोंके दिलोंमें भेद-सूचक वाक्योंसे शान्ति और अभेद-सूचक वाक्योंसे बेचैनी पैदा कर दी। वे इस बातकी उपेक्षा करने लगे कि जिसप्रकार उपनिषदोंकी परस्पर-विरोधी श्रुतियोंका सामञ्जस्य व्यासजीने वेदान्तदर्शनमें किया है वैसे ही पुराण-वाक्योंका भी हो सकता है। परिणाम यह हुआ कि उपासकगण पुराणोंमेंसे अपने पक्षानुकूल वाक्योंको ग्रहणकर और प्रतिकूल वाक्योंको त्यागकर अपनी-अपनी विजयका डङ्का बजाने लगे। यद्यपि वर्तमानकालमें युद्धकी तेजी बहुत कम हो गयी है किन्तु सर्वथा विनष्ट नहीं हुई। अस्तु। पुराणोंमें जो परस्पर-विरोधी वाक्य पाये जाते हैं (जिनसे वर्तमानकालमें भी कई विद्वान् शिव और विष्णुमें किञ्चित् भेद बतलाते हुए देखे, पढ़े और सुने जाते हैं) उनके कम-से-कम नीचे लिखे हुए तीन कारण हो सकते हैं—

(१) पुराणोंमें वे क्षेपक जो जाँचमें न आ सके हों।

(२) कल्पभेदजनित परस्पर-विरोधी वाक्य।

(३) देवतापक्षपात।

इन्हीं सब तथा अन्यान्य कारणोंसे कई विद्वान् पुराणोंकी अपेक्षा इतिहासोंकी प्रामाणिकता अधिक मानते हैं। महाभारतान्तर्गत गीता उदाहरणस्वरूप है। श्रुति और स्मृति-वाक्योंसे विरोध होनेपर पुराण-वाक्य नहीं माना जा सकता। जैसा कि महाभारतके निम्नलिखित प्रमाणसे ज्ञात होता है—

श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते।
तत्र श्रौतं प्रमाणं स्यात्तयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा॥

किन्तु नीचे लिखी हुई बातोंपर ध्यान रखते हुए पुराणोंमें भी वास्तविक विरोध न मिलेगा। यदि मिला भी तो उसका परिहार हो जायगा क्योंकि इतिहास-पुराणको पाँचवाँ वेद ही कहा गया है (इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदमिति छान्दोग्यश्रुतिः) और वेदोंका ही अर्थ प्रति-पादन करनेके लिये पुराण प्रवृत्त हुए हैं (इतिहासपुराणा-भ्यां वेदं समुपबृंहयेत्)। इतनी बातोंको ध्यानमें रख अब हम परस्पर-विरोधी वाक्योंका समन्वय करनेके लिये पुराणोंमें कल्पभेद और देवतापक्षपातका निरूपण करते हैं।

विष्णुशिवैक्यरूपी सिद्धान्तवाक्योंके साथ-साथ पुराणोंमें

पुराणोंमें कल्प- कल्पभेदजनित देवतापक्षपात भी विशेष-
भेद और देवता- रूपसे पाया जाता है। यह पक्षपात
पक्षपात। सिद्धान्तवत् प्रतीत होता है पर वास्तवमें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सिद्धान्त नहीं है। इस पक्षपातके तीन उदाहरण नीचे देकर ऐसे कुल वाक्योंकी एकवाक्यता करते हैं—

(१) शिवपुराणान्तर्गत सनत्कुमारसंहितामें भगवान् व्यासजी जिज्ञासुवत् सनत्कुमारजीसे प्रश्न करते हैं कि हे सनत्कुमारजी! ब्रह्मा, विष्णु और महेशमेंसे प्रधान देव कौन है? इस विषयमें मेरे सन्देहको दूर कीजिये।

इस प्रश्नका उत्तर देते हुए सनत्कुमारजीने शिवके ज्योतिर्मय लिङ्गका वर्णन किया। वह इतना बड़ा था कि ब्रह्मा और विष्णु हजारों वर्षतक उसके अन्तका पता न लगा सके। अन्तमें निराश हो वे शिवजीकी स्तुति करने लगे। आशुतोष शिवजी प्रकट हुए। ब्रह्मा और विष्णु उनके चरणोंपर गिर पड़े और शिवजीकी सर्वश्रेष्ठता स्वीकार की। विष्णुने शिवस्तुतिमें स्पष्ट कहा है—

त्वत्तो ब्रह्माहं चैव प्रसूतः पुरुषोत्तम—इत्यादि।

हे पुरुषोत्तम! मैं और ब्रह्मा आपसे उत्पन्न हुए हैं (आदि, मध्य और अन्तमें आपको कोई नहीं देख सकते। आप पुराणपुरुष महेश्वर हैं। हमें अपनी निर्मल भक्ति दीजिये)

सनत्कुमारजी बोले, हे व्यासजी! शिवजी उन्हें अपनी निर्मल भक्ति और प्रजा उत्पन्न करनेकी आज्ञा दे अन्तर्हित हो गये। इस कथासे स्पष्ट है कि शिवजी ही प्रधान देव हैं।

(२) अब पुराणोंमें माहात्म्य-कथनकी शैली देखिये। शिवपुराणमाहात्म्य इसप्रकार वर्णित है—

तावत्सर्वाणि शास्त्राणि विवदन्ति परस्परम्।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति जगत्यहो॥

'उसी समयतक सब शास्त्र परस्पर विवाद करते रहते हैं जबतक जगत्में शिवपुराणका उदय नहीं होता। यह निश्चय जानो।'

ब्रह्माण्डपुराणमें अध्यात्मरामायण-कथनके प्रसङ्गमें प्रायः वे ही शब्द रख दिये हैं—

यावज्जगति नाध्यात्मरामायणमुदेष्यति।
तावत्सर्वाणि शास्त्राणि विवदन्ते परस्परम्॥

× × ×

बहुना किमिहोक्तेन शृणु नारद तत्त्वतः।
श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासागमशतानि च।
अर्हन्ति नाध्यात्मरामायणकलामपि॥

(ब्रह्माजी कहते हैं कि) 'हे नारद! जबतक जगत्में अध्यात्मरामायणका उदय नहीं होता तबतक ही अन्यान्य शास्त्र परस्पर विवाद करते रहते हैं।'

× × ×

अधिक क्या कहूँ, तत्त्वकी बात सुनो। श्रुति, स्मृति इत्यादि अध्यात्मरामायणकी अल्प कलाके बराबर भी नहीं हैं।

(३) निम्नलिखित वाक्यमें रामनवमीके दिन उपवास न करनेवालोंकी गति देखिये—

यस्तु रामनवम्यां तु भुङ्क्ते त्वज्ञानमोहितः।
कुम्भीपाकेषु घोरेषु पच्यते नात्र संशयः॥

(विष्णुसंहिता)

'जो लोग अज्ञानसे मोहित होकर रामनवमीके दिन भोजन करते हैं वे घोर कुम्भीपाक-नरकोंमें पचे जाते हैं। इसमें सन्देह न जानो।'

उक्त तीनों दृष्टान्तोंमेंसे पहले (दृष्टान्त) से यह विदित होता है कि सनत्कुमारजीने जो ज्योतिर्मय लिङ्गकी कथाद्वारा शिवजीकी सर्वश्रेष्ठता बतलायी वह परम सिद्धान्त है। पर यदि ऐसा मान लिया जाय तो विष्णु (जो ज्योतिर्लिङ्गका पता न लगा सके) की सर्वव्यापकता नष्ट होनेसे वैष्णव-धर्मकी इमारत गिर पड़ती है। इसके सिवा पूर्वकथित श्रुति-पुराण-वाक्योंसे विरोध आता है और निम्नलिखित श्रुतियोंसे भी—

(१)...भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः॥

(अथर्व० १९। २३)

(२) ब्रह्मा नारायणः शिवश्च नारायणः।

(नारायणोपनिषद्)

(१) (ब्रह्म) सब प्राणियोंसे पहले ब्रह्मारूपसे प्रगट हुआ। उस (ब्रह्मारूप) ब्रह्मकी बराबरी कौन कर सकता है।

(२) ब्रह्मा नारायण हैं, शिव भी नारायण हैं।

उक्त दृष्टान्तमें शिवसे ब्रह्मा-विष्णुकी उत्पत्ति बतलायी है। किन्तु किन्हीं-किन्हीं पुराणोंमें विष्णुसे और किन्हींमें ब्रह्मासे शङ्करका प्रादुर्भाव बतलाया है। यह परस्पर विरोध क्यों? कारण आगे बतलाते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दूसरे दृष्टान्तमें 'तत्त्वतः' शब्दका प्रयोग कर ब्रह्माने सिद्धान्तवत् रामायणको वेदसे भी श्रेष्ठ बतलाया है। वास्तवमें श्रुति सर्वश्रेष्ठ प्रमाण प्रसिद्ध ही है।

तीसरे दृष्टान्तमें 'नात्र संशयः' शब्दोंका प्रयोगकर सिद्धान्तवत् रामनवमीके दिन उपवास न करनेवालोंका कुम्भीपाक-नरकोंमें जाना कहा है।

उक्त दृष्टान्तोंसे शिक्षा यह मिली कि पुराणोंमें हरि-शम्भुविषयक परस्पर-विरोधी वाक्य भी मिलते हैं। कहीं-कहीं तो ऐसे वाक्योंसे विष्णुशिवैक्यरूपी सिद्धान्त-निर्णयमें कठिनाई नहीं आती (जैसे, दूसरे और तीसरे दृष्टान्तोंसे नहीं आयी) पर कहीं-कहीं बड़ी कठिनाई आ जाती है क्योंकि ऐसे वाक्य भी सिद्धान्तवत् प्रतीत होते हैं।

पहले दृष्टान्तमें सिद्धान्तवत् प्रतीत होनेवाला देवता-पक्षपात कल्पभेदजनित है। इसी कारण जिस-जिस देवताका जो-जो पुराण है उस-उस पुराणमें उस-उस देवताकी प्रधानता बतलायी गयी है। भिन्न-भिन्न पुराण भिन्न-भिन्न कल्पोंमें कहे गये हैं, जिनमेंसे कुछ आवश्यक पुराणोंकी उत्पत्ति बतलाते हैं।

मत्स्यपुराणमें लिखा है कि श्वेतकल्पके वृत्तान्तको लक्ष्य-कर शिवपुराण वायुऋषिने कहा—

श्वेतकल्पप्रसङ्गेन धर्मान् वायुरिहाब्रवीत्।

इसी कारण शिवपुराण वायुपुराण भी कहलाता है। वराहकल्पके वृत्तान्तको ध्यानमें रख जिस पुराणमें वैष्णव-धर्मोंको पराशर ऋषिने कहा वह विष्णुपुराण है—

वराहकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य पराशरः।
यत्प्राह धर्मानखिलान् तदुक्तं वैष्णवं विदुः॥

ब्राह्मकल्पके प्रसंगमें ब्रह्माने जो पुराण ऋषियोंको सुनाया वह ब्रह्मपुराण है। इसी प्रकार भविष्यकल्पमें ब्रह्माण्डपुराण (जिसके अन्तर्गत अध्यात्मरामायण भी है), रथन्तरकल्पमें ब्रह्मवैवर्त (जिसमें कृष्णमाहात्म्य भी है), पद्मकल्पमें पद्मपुराण (जिसमें राम-नामका माहात्म्य भी है), सारस्वतकल्पमें देवीभागवत कहे गये। ब्रह्मकल्पके आरम्भमें विष्णुने ब्रह्मासे श्रीमद्भागवतपुराण कहा—

प्राह भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम्।
ब्रह्मणे भगवत्प्रोक्तं ब्रह्मकल्प उपागते॥
(श्रीमद्भा० २। ९)

इसप्रकार भिन्न-भिन्न पुराण भिन्न-भिन्न कल्पोंमें कहे गये हैं। वर्तमान श्वेतवाराहकल्प है। जिस-जिस कल्पमें जो-जो पुराण कहे गये उन-उन पुराणोंमें उन-उन कल्पोंका वृत्तान्त तो है ही किन्तु अन्यान्य कल्पोंका भी होता है।

श्वेतकल्पमें ईश्वर शङ्कररूपमें सबसे पहले हुए। इसलिये श्वेतकल्पके शिवपुराणमें शिवजीसे ब्रह्मा और विष्णुका प्रादुर्भाव ज्योतिर्मय लिङ्गकी कथाद्वारा बतलाया गया। वराहकल्पमें ईश्वर विष्णुरूपसे सबसे पहले हुए। इसलिये वराहकल्पके विष्णुपुराणमें विष्णुसे शङ्करका प्रादुर्भाव और विष्णुकी प्रधानता प्रतिपादित है। ब्राह्मकल्पमें ब्रह्मासे शङ्करका प्रादुर्भाव बतलाया गया है। किन्तु पुराणोंमें कल्पान्तरोंकी कथाएँ भी होनेसे एक ही पुराणमें किसी एक ही देव या अवतारविशेषके विषयमें दो या दोसे अधिक परस्पर-विरोधी वाक्य आ सकते हैं जो सिद्धान्तवत् प्रतीत होते हैं। उदाहरणार्थ, श्रीमद्भागवतके प्रथम और द्वितीय स्कन्धोंमें श्रीरामजीके विषयमें दो परस्पर-विरोधी वाक्य आये हैं जिन्हें आगे बतलायेंगे। ऐसे वाक्य सिद्धान्त-वत् प्रतीत होनेसे उपासकोंमें साम्प्रदायिक विग्रहके हेतु बन जाते हैं। पर वास्तवमें ऐसे वाक्योंसे सिद्धान्तमें हानि नहीं होती और न होनी चाहिये। सिद्धान्त यही है कि जैसे शिव और विष्णुमें 'मनागपि' अन्तर नहीं है (यद्यपि कल्पभेदजनित अन्तरसूचक वाक्य भी आते हैं जो सिद्धान्त-वत् ही प्रतीत होते हैं और सिद्धान्त-निर्णयमें कभी-कभी बड़ी कठिनाई उपस्थित कर देते हैं) वैसे ही विष्णुके राम-कृष्णावतारोंमें नहीं है।

अब यदि कल्पभेदके अतिरिक्त क्षेपकादि अन्यान्य कारणोंसे पुराणोंमें हरिहरविषयक (या रामकृष्णविषयक) किञ्चिदपि भेदसूचक प्रमाण मिलें तो उन सबका सामञ्जस्य कर लेनेके लिये पुराणोंने ही निम्नलिखित नियम बना दिया है (जिसे आगे 'प्रेमप्रकाशाय न विग्रहाय' नामक नियम कहते जायँगे) जिससे सदा काम लेना चाहिये। वह यह है—

शास्त्रेषु यः कश्चन पक्षपातः
प्रदृश्यते सोऽहृदनिश्चयाय।
अव्यक्तहृग्भिर्हरिशम्भुपक्षे
प्रेमप्रकाशाय न विग्रहाय॥
असद्गतिप्राप्तिविबोधहेतवे
कुधीकृतं श्रीशिवविष्णुहेलनम्।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रुत्वा पुराणेषु न तत्समाश्रयेत्
प्रसूरतिन्यायमिवामलो जनः ॥

'अव्यक्तदृष्टिवालोंको शास्त्रोंमें जहाँ कहीं हरिहरविषयक पक्षपात दिखायी दे तो (यह समझा जाय कि) वह दृढ़ निश्चय कराने या प्रेम-प्रकाश करनेके लिये है न कि विग्रह मचानेके लिये। शिव और विष्णुकी अवहेलना करनेवाले कुबुद्धि हैं और असद्गतिकी प्राप्तिके हेतु हैं। यदि पुराणोंमें यह बात सुनकर भी न मानें (अर्थात् शिव और विष्णुमें किञ्चिदपि भेद मानें) तो निर्मल पुरुषको भी मातृगमनके समान पाप लगता है।'

बस, उक्त श्लोकमें समस्त परस्पर-विरोधी वाक्योंका समन्वय हो जाता है। श्लोकमें 'शास्त्रेषु' शब्दका प्रयोग यही सूचित करता है कि न केवल पुराणोंमें किन्तु अन्यान्य शास्त्रोंमें भी इसी नियमसे काम लेना चाहिये। यह नियम हरिशम्भुविषयमें ही घटित नहीं होता किन्तु शक्ति, गणेशादि देव या राम-कृष्णावतारोंके विषयमें भी घटित होता है जिनके विषयमें भी परस्पर-विरोधी वाक्य मिलते हैं। इस-प्रकार पूर्वकथित श्रुतियोंके अनुसार पञ्चदेवैक्यरूपी परम-सिद्धान्तमें कहीं-कहीं पुराणोंके परस्पर-विरोधी प्रमाणोंसे बाधा नहीं आती, शङ्कर-स्तोत्रोंकी सत्यताका परिचय मिलता और साम्प्रदायिक विग्रहका अन्त हो जाता है। अब हम बहुत ही संक्षेपमें राम-कृष्णैक्यरूपी सिद्धान्तका प्रतिपादन करते हैं। (क्रमशः)

सन्तोंकी प्रेमानुभूति

(लेखक—पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए०)

उधर ब्रह्मकी 'एकोऽहं बहु स्याम्' की अमूर्त्त वासना स्फुरित हुई, इधर कोटि-कोटि विश्वका रंगमञ्च नाच उठा। अभिनय प्रारम्भ हुआ। पात्र आने-जाने लगे और नाटकमें ऐसे लय हो गये कि उन्हें अपनी स्वतन्त्र व्यक्तिगत सत्ताका भान भी मिट गया। इस विराट् अभिनयकी कोई 'इति' नहीं, कोई ओर-छोर नहीं। पात्रोंका एक-पर-एक ताँता बँधा हुआ है; एक जाता है, दूसरा प्रकट होता है; ऐसे ही अनन्त कालतक चलता रहेगा। सृष्टि और प्रलय पटाक्षेप-मात्र हैं—दृश्य-परिवर्तनमात्र हैं। यह अभिनय तो सृष्टि और प्रलयको पार करता हुआ चलता चलेगा।

इस अभिनयमें हम सभी पात्र हैं, सभी अपने-ही-अपने पार्टमें बेसुध हैं; दूसरेकी ओर देखनेकी सुध ही नहीं है। हाँ, प्रभुकी यह भी एक लीला ही समझिये कि इन व्यक्तिगत स्वतन्त्र अभिनेताओंके क्रिया-कलापमें भी एक शृंखला है, एक प्रवाह मिलता है, अन्यथा सभीके पार्ट अधूरे अथ च अर्थहीन हैं। इन अस्पष्ट क्रियाओंके भीतरसे सूत्रधार अपना लीला-कुतूहल पूरा कर रहा है।

हम सभी इस अभिनयमें इसप्रकार संलग्न हैं कि हम भूल जाते हैं कि इसका कोई सञ्चालक या सूत्रधार भी है या नहीं। यही खूबी भी है इस विश्व-रंगमञ्चकी। सभी अपनी-अपनी परिधिपर नाच रहे हैं, पागल होकर, बेखबर होकर। एककी परिधि दूसरेकी परिधिके स्पर्शमें भले ही आ जाय परन्तु व्यतिक्रम नहीं कर सकती, नाँघ नहीं सकती। इन सारी परिधियोंका एक ही केन्द्र है; वह मूल केन्द्र इन भिन्न-भिन्न परिधियोंसे समान दूरीपर है। वहीं हमारा सूत्रधार है! और वहीं इस विराट् अभिनयका दर्शक भी है। हमारा सूत्रधार ही हमारा दर्शक है और फिर भी हमारे अभिनयकी एक स्वतन्त्र गति है, स्वतन्त्र सङ्केत है, स्वतन्त्र पथ है। कठपुतली नचानेवाला जाने कि उस पुतलीको कबतक किस-किस रूपमें नाचना है—दूसरे समझनेकी चेष्टा भी करें तो व्यर्थ ही न है।

इस रहस्यकी तहमें प्रवेश कीजिये। यह जीवन एक जाग्रत स्वप्न है। स्वप्नमें ऐसा प्रतीत होता है कि जो सुख-सम्भोग, राज-पाट, धन-स्त्री, महल-अटारी, पुत्र-कलत्र आदि हम पा रहे हैं वे सब सर्वथा सत्य हैं। स्वप्न देखने-वालेके मनमें स्वप्न देखते समय यह तनिक भी नहीं भासता कि यह सब कुछ 'पानीका बुलबुला' भी नहीं है—यह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सब कुछ हवाईकिलासे भी गया-बीता है। संक्षेपमें, स्वप्न देखनेवालेको स्वप्न देखते समय स्वप्नकी असत्यता तथा भूलभूलैयाका पता भी नहीं चलता। वह बेखबर 'सपनेकी सम्पत्ति'का सुख लूटने लगता है कि·····!!! नींद टूटती है, आँखें खुलती हैं और वह देखता है उसके सामनेके महल और परियाँ पता नहीं कहाँ गायब हो गयीं। वह जागता है और देखता है कि वे सुख-भोग जिसे वह स्वप्नावस्थामें ठोस सत्य समझकर हृदयसे चिपकाये था—हवामें काफूर हो गये; बस वही टूटी खाट, वही उजड़ा हुआ छप्पर, वही फटी हुई चादर और बुझी हुई रोशनी! वह जागता है और सोचता है—अरे वे चीजें कहाँ गयीं? वे सुख कहाँ विलीन हो गये?

केशव कहि न जाय का कहिये।
देखत तव रचना बिचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिये॥
सून भीतिपर चित्र, रंग नहि, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोये मिटै न मरै भीति दुख पाइय इहि तन हेरे॥
रबिकर नीर बसै अति दारुन मकररूप तेहि माँहीं।
बदनहीन सो ग्रसै चराचर पान करत जे ताहीं॥
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम सो आपुन पहिचानै॥

ठीक इसी प्रकार यह जगत् और हमारा जीवन भी है। यह संसार भी एक ठोस पदार्थ-सा प्रतीत होता है। यह जीवन भी एक अखण्ड सत्यका स्वरूप प्रतीत होता है। आज हम चक्रवर्ती हैं—कल निर्वासित अपरिचित साधारण दरिद्र व्यक्ति! आज जो रानी है कल वही सड़कोंपर झाड़ू देते नजर आती है। करोड़पति दाने-दानेके मुहताज हो जाते हैं; कङ्गालके घर सोना बरस जाता है। आँखों हम देखते हैं कि चार मिनटके भूडोलने किसकी कैसी दयनीय करुणाजनक स्थिति ला दी। यह सब कुछ हम देखते हैं फिर भी स्वप्न-का-स्वप्न ही बना रहता है—खुमारी टूटती नहीं। कभी ऐसा नहीं हो पाता कि आँखें खोलकर एक पलके लिये भी तो इस ललचीले स्वप्नके 'उस पार' देखें। कभी ऐसा साहस नहीं होता कि स्वप्नोंके इस जालको छिन्न-भिन्न कर दें।

स्वप्नकी असत्यता तथा सपनेमें पायी हुई सुख-सम्पत्तिकी असारताको सोता हुआ व्यक्ति क्या और कैसे समझे? हम सभी इस जाग्रत स्वप्नके शिकार हैं। जाग जाना तो कठिन भी है न। परन्तु जो जाग जायगा उसके सामने यह बतलानेकी आवश्यकता ही न होगी कि जो कुछ तुमने देखा-सुना अथवा भोगा था वे सब व्यर्थ थे—कहीं उनका पता नहीं है। अपनेको होशमें ला देना ही स्वप्न और स्वप्नकी मायाकी व्यर्थता तथा असारता समझ लेना है। नींद टूटती है—वह बेचारा सोचने लगता है अरे मैं कहाँ-का-कहाँ लुभाये फिरा, मारा-मारा फिरा। मैं तो न उस महलका राजा ही हूँ, न उस परीका प्रेमी ही। मेरी सत्ता तो सर्वथा भिन्न है। ठीक इसी प्रकार इस जीवन-रूपी स्वप्नमें जगत्के वैभव व्यर्थ हैं, असार हैं—यह सब कुछ बतलानेकी आवश्यकता उस व्यक्तिके लिये नहीं है जो जाग चुका है और जो अपने वास्तविक सत्ताको समझता है।

इस जाग्रत स्वप्नको तोड़कर, आँखें खोलकर चलनेवाले सन्तोंने हमें बार-बार चेताया है—

रहना नहिं देस बिराना है।
यह संसार कागदकी पुड़िया बूँद पड़े घुल जाना है॥

और बार-बार आत्माको उद्बोधितकर उस देशका संकेत किया है जहाँ आनन्द-ही-आनन्द है—

यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

हंसा छाड़ि चलो वा देस जहाँके गये कोइ ना फिरै।

इसी सम्बन्धमें 'एक निर्गुन' भी है—

चलु मन जहाँ बसे प्रीतम हो, बैरागी मोरे यार।
लगली बजरिया अगमपुर हो, हीरा रतन बिकाय,
चतुर चतुर सौदा कइले हो, मूरख पछिताय।
साँप छोड़ैले सँपकेंचुल हो, गंगा छोड़ैली अरार।
हंसा छोड़ैले आपन गिरिहि हो, जहाँ कोई ना हमार॥चलु०॥

रे मन! यहाँ क्या रखा हुआ है जो चिपटे हुए हो, चलो उस देशको चलें जहाँसे फिर इस ऐन्द्रजालिक दुनियामें लौटना नहीं होता! अगमपुरमें हीरे-रत्नोंकी हाट लगी हुई है, जो चतुर हैं वे तो सोच-समझकर सौदा कर लेते हैं, जो मूर्ख हैं वे हाथ मलते रह जाते हैं। जिसप्रकार साँप अपनी केंचुल छोड़ देता है और गंगा अपनी अरार छोड़ देती है, ठीक उसी प्रकार 'हंस' भी इस गृहको छोड़कर चल देता है—यहाँ अपना है ही कौन? रे हंस उड़ो, चलें उस देशको जहाँ 'प्रीतम' है!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रायः सभी सन्तोंने पर्दा उठाकर सत्य सौन्दर्यको देखा था, इसीको श्रुति कहती है—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये॥

सत्यके घड़ेपर सोनेका ढकन पड़ा हुआ है। हे सूर्य-देव! इस ढकनको हटा दो जिससे सत्य धर्मको हम देख लें। और देखनेके बाद—

'शरवत्तन्मयो भवेत्'

जिसप्रकार बाण अपने लक्ष्यमें लय हो जाता है, ठीक उसी प्रकार ब्रह्ममें लय हो जायँ।

इस जाग्रत स्वप्नके रहस्यको वही बतला सकता है जो स्वयं जाग चुका हो। इन्हीं जगे हुए व्यक्तियोंमें रामानन्द, कबीर, तुलसी, सूर, मीरा, रैदास, पीपा, दादू आदि हैं। इन्होंने जीवनके 'उस पार' को देखा था। इन्होंने संसारकी असत्यताका तीव्र अनुभव किया था, तथा अपने इस सान्त जीवनमें अनन्त आनन्दकी स्थापना की थी। हम इनको भक्त या ज्ञानी न कहकर सन्त कहना ठीक समझते हैं। अब देखना यह है कि इन सन्तोंने संसारकी असारता तथा जीवनकी असत्यताका प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए अपने हृदयमें प्रभुके प्रति प्रेमकी कैसी अनुभूति प्राप्त की थी। यह भूल न जाना होगा कि साधनाका प्राण है अनुभूति। अनुभूति संवेदन-मूलक होती है और संवेदन है हृदयका धर्म। हृदय नारी है, मस्तिष्क पुरुष। इन दोनोंके पूर्ण संयोगसे ही साधनाका पथ सरल हो सकता है। मस्तिष्कका धर्म है विचार और वह है पुरुष। हृदयका धर्म है संवेदन और वह है नारी। हमें ज्ञानकी आगमें अपने कर्मोंको पवित्रकर भक्तिके हाथ सौंप देना है। भक्ति ही अपनेको श्रीकृष्णार्पण कर सकती है। ज्ञान कर्मोंमें प्रकाश भर देगा, भक्ति उसमें ताप और जीवन देकर भगवान्‌के चरणोंमें चढ़ा आयेगी। ज्ञान विश्वसे वैराग्य बढ़ाता जायगा, भक्ति भगवान्‌के चरणोंमें सम्बन्ध दृढ़ करती जायगी। न कोई कोरा ज्ञानी होता है न कोई कोरा भक्त। भक्तमें ज्ञानी और ज्ञानीमें भक्त छिपा रहता है।

द्वैत और अद्वैत, ज्ञान और भक्तिके बाह्य प्रतिबन्धको हटाकर यदि हम सन्तोंकी जीवन-धारामें प्रवेश करें तो उनके हृदयमें एक अपूर्व प्रेमकी अजस्र धारा प्रवाहित होते पायेंगे। सभीके हृदयमें 'साजनके देश'में प्रवेश करनेकी और साईंकी सेजपर पौढ़नेकी तीव्र उत्कण्ठा रही है। सभीने इस शरीरके भीतर अनन्त छविको घूँघट उठाकर भर आँख देखनेकी चेष्टा की है।

घूँघटका पट खोल रे, तोको पीव मिलेंगे।
सुन्न महलमें दियना बारि ले, आसनसों मत डोल रे।
जाग जुगुतसों रंगमहलमें पिय पायो अनमोल रे॥

घूँघटका पट खोल देनेपर 'पीव' तो मिल ही गये, अब तो प्रतिपल उनके मधुर दर्शनमें मन माता-माता फिरता है। वह एक पलकी झाँकी आँखोंका चिरन्तन व्यापार बन गयी—अब तो सदा सर्वत्र 'वही वह' दीखता है। इस सहज समाधिका रूप भी कैसा लुभावना है—

जहँ जहँ डोलौं सो परिकरमा, जो कछु करौं सो सेवा।
जब सोवौं तब करौं दंडवत, पूजौं और न देवा॥
कहौं सो नाम, सुनौं सो सुमिरन, खाऔं पियौं सो पूजा।
गिरह उजाड़ एक सम लेखौं भाव मिटावौं दूजा॥

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्॥

और—

खुले नैन पहिचानौं हँसि हँसि सुंदर रूप निहारौं॥

'जहाँ देखता हूँ वहीं तू-ही-तू है'—अब यह संसार जो सबको भुलानेका स्वप्नजाल बुनता आ रहा है सन्तके लिये प्रभुका स्वरूप हो जाता है। बीचका द्वैत मिट जाता है। रात-दिन, सोते-जागते, उठते-बैठते समाधि लगी रहती है—वह समाधि जिसमें पत्नी अपनेको पतिमें सर्वथा लय कर देती है। यही 'रसो वै सः' है। जिसप्रकार पत्नीका पतिमें प्रेम होता है ठीक उसी प्रकार हमारा प्रेम प्रभुमें हो! समस्त विश्वमें हमारे प्रभुकी रूपश्री बिखरी हुई है और हम सदा उसके बटोरनेमें लगे हैं—

प्रभुजी! तुम चंदन, हम पानी।
जाकी अँग अँग बास समानी॥
प्रभुजी! तुम घन बन, हम मोरा।
जैसे चितवत चंद चकोरा॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रभुजी ! तुम दीपक, हम बाती।
जाकी जोति बरै दिन राती॥
प्रभुजी ! तुम मोती, हम धागा।
जैसे सोनहिं मिलत सुहागा॥

कबीरने अपनेको 'हरिकी बहुरिया' कहा तथा गोसाईं-जीने भी 'कामिहि नारि पियारि जिमि' द्वारा अपनी भक्ति-भावनाको दृढ़ किया। श्रीहरिदासने 'घट घट हौं बिहरौं' की तीव्र अनुभूतिमें ही साजनके मधुर मिलनका रस पिया था।

'सुरत कलारी भइ मतवारी, मदवा पी गइ बिन तोले॥'

मीराका तो इस सम्बन्धमें कुछ कहना ही नहीं है। वह तो भक्तिमें विह्वल होकर प्रेमके समुद्रमें कूद पड़ी—

हे री मैं तो दरद दिवाणी, मेरा दरद न जाणै कोय।
सूली ऊपर सेज पियाकी, किस बिध मिलणो होय ?

फिर भी वह प्रेमसाधनामें प्रवृत्त होकर 'साईंकी सेज'का सुख पा सकी, प्रेमका अमृत पी सकी।

प्रेमकी यह धारा समस्त विश्वके सन्तोंमें मिलती है। सभीने इस जीवनको प्राणवल्लभके चरणोंमें चढ़ाकर धन्य किया है। सूफियोंमें तो 'इश्क़ हकीक़ी' की वह तीव्र धारा चली कि सारा संसार उनके साजनका प्रतिबिम्ब बन बैठा। जायसी और कुतुबनने परमात्माको प्रेमीके रूपमें प्राप्त किया था। उनके लिये भी—

सब घट मेरा साइयाँ
सूनी सेज न कोय।

इसी प्रेमानुभूतिको एक अंग्रेज भक्तिनके शब्दोंमें सुनिये—

It was a sweetness which my Soul was lost in; it seemed to be all that my feeble frame could sustain. There was but little difference whether I was asleep or awake. but if there was any difference, the sweetness was greatest while I was asleep.

× × ×

'इस माधुर्यमें मेरी आत्मा डूब जाती थी! प्रेमके इस आवेशमें हमारा सारा शरीर बेसँभार हो जाता था। मैं जानती न थी कि मैं जाग रही हूँ या सो रही हूँ। हाँ, जब मैं सोती रहती थी, उस समय प्रेमकी यह बढ़िया और भी अधिक उमड़ पड़ती थी।'

आधी रात प्रभु दरसण दीनो प्रेम नदीके तीरा।

ये वचन हैं तो मीराके परन्तु प्रेमकी इस दिव्य अनुभूतिको एक अमेरिकन भक्त महिलाके मुखसे सुनिये—

It was my practice to arise at midnight for purposes of devotion. It seemed to me that God came to me at the precise time and woke me from sleep in order that I might enjoy Him. When I was out of health or greatly fatigued, He did not awake me; but at such times I felt, even in my sleep, a singular possession of God. He loved me so much that He seemed to pervade my being, at a time when I could be only imperfectly conscious of His presence. My sleep is some times broken—a sort of half sleep; but my soul seems to be awake enough to know God when it is hardly capable of knowing anything else.

'आधी रात जागकर प्रभुकी प्रार्थना करनेकी मेरी आदत थी। मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि प्रभुजी ठीक समयपर आकर मुझे जगा देते थे जिसमें मैं उनके प्रेमका अमृत पी सकूँ! जब मैं अस्वस्थ रहती या थकी होती तो वे जगाते तो नहीं परन्तु सोये-सोये ऐसा प्रतीत होता कि मैं प्रभुकी गोदमें हूँ। मुझे जब उनके आनेका भान भी न होता तो वे आकर मेरी आत्मापर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेते थे। रातमें मेरी नींद उचट जाती है, कभी-कभी आधी सोई आधी जागी रहती हूँ, फिर भी उनकी उपस्थितिका भाव बराबर बना ही रहता है।'

संक्षेपमें, हमने देख लिया कि सर्वत्र सन्तोंने प्रभुके परम प्रेमका रसास्वादन एक अपूर्व ढङ्गसे ही किया है जिसे हम भक्तिके शब्दोंमें माधुर्य-भाव कह सकते हैं। इस माधुर्य-भावके क्रमिक विकास तथा भिन्न-भिन्न पहलुओंपर फिर कभी प्रकाश डालनेकी चेष्टा की जायगी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सन्ध्योपासनाका महत्त्व

(लेखक—पं० श्रीकलाधरजी त्रिपाठी)

सनातनधर्ममें, द्विजातियोंके लिये, सन्ध्योपासन एक प्रमुख दैनिक कर्म है। हमारे महर्षियोंने इसको बहुत बड़ा महत्त्व दिया है। यथा—

'ऋषिजन दीर्घ सन्ध्या करके आयु, प्रज्ञा, यश, कीर्ति तथा ब्रह्मवर्चसको प्राप्त करें; अतः आयु आदिका इच्छुक पुरुष दीर्घ सन्ध्योपासन अवश्य करे।'*

परन्तु शोकका विषय है कि द्विजातियोंमें सन्ध्योपासन-जैसे महत्त्वपूर्ण कृत्यकी ओर जैसा चाहिये वैसा ध्यान नहीं दिया जाता है; यहाँतक कि कहीं-कहीं तो उपनयन-संस्कार ही विवाहके साथ कर दिया जाता है, सो भी नाममात्रके लिये, शास्त्रोक्त विधिसे नहीं। सन्ध्योपासनसे जिस ब्रह्मवर्चसकी प्राप्ति होती है उससे वञ्चित रहनेका मूलकारण इस महोपयोगिनी उपासनाकी अवहेलना ही है। कइयोंकी भ्रान्तिमूलक धारणा है कि सन्ध्योपासनमें अधिक समय लगता है, परन्तु यथार्थमें ऐसा नहीं है। 'साठ घड़ी घरको तो एक घड़ी हरको' इस लोकोक्तिके अनुसार प्रत्येक द्विजको इस पुनीत कर्ममें एक-आध घड़ी अवश्य लगाना चाहिये।

'अहरहः सन्ध्यामुपासीत' विधि-वचनके अनुसार वैदिक धर्मके माननेवाले आर्यजात्यन्तर्गत द्विजातियोंके लिये नित्य सन्ध्योपासन करना परम कर्तव्य है।

वेदोंके अनुसार ऋग्वेदीय, यजुर्वेदीय, अथर्ववेदीय तथा सामवेदीय चार प्रकारकी सन्ध्या-विधि है। तान्त्रिक सन्ध्या इससे पृथक् है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको क्रमशः आठवें, ग्यारहवें और बारहवें वर्षमें उपनयन-संस्कारके साथ ही, सन्ध्योपासन विहित है। अतिकालमें इसका प्रायश्चित्त करना पड़ता है। यदि द्विज उपनयन-संस्कारके उपरान्त, सन्ध्योपासन कर्मका परित्याग करता है तो वह शूद्रवत् बहिष्कार्य है। यथा—

'जो प्रातःकाल तथा सायंकालकी सन्ध्योपासन नहीं करता, वह शूद्रके समान द्विजके समस्त कर्मोंसे बाहर करनेयोग्य है।'*

सन्ध्योपासन प्रातः, मध्याह्न तथा सायङ्कालमें करनेकी विधि है। इसके मुख्य कर्म तीन हैं।

(१) प्राणायाम।

(२) सूर्यार्घ्यसहित सूर्योपस्थान।

(३) गायत्री-जप।

इन्हींका दूसरा नाम क्रमशः तप-दान-यज्ञ है।

'प्राणायामः परं तपः', इस मनुवचनके अनुसार प्राणायाम एक परम तप है। 'पत्रं पुष्पं फलं तोयम्' के सानुकूल सूर्यार्घ्य सात्त्विक दान है। और 'यज्ञानां जप-यज्ञोऽस्मि', इस वचनके अनुसार गायत्री-जप परमोत्तम यज्ञ है।

यज्ञ, दान, तपके सम्बन्धमें भगवान् श्रीकृष्ण भगवद्गीताके १८ वें अध्यायमें आदेश करते हैं।† यथा—

'यज्ञ, दान और तपसे सम्बन्ध रखनेवाले कर्म छोड़ने-योग्य नहीं हैं; अपितु करनेयोग्य हैं। यज्ञ, दान, तप ज्ञानी पुरुषोंके मनको पवित्र करते हैं। परन्तु हे अर्जुन! ये समस्त भी अनुरक्ति और फलकी इच्छाको त्यागकर करनेयोग्य हैं; ऐसा मेरा निश्चित उत्तम मत है।'

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने जिस यज्ञ, दान, तपको नित्य करनेके लिये उत्तम निश्चित मतका आदेश किया है, उसीके परमोत्तम सारको हमारे महर्षियोंने, दूसरे नामसे

---

* ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः ।
प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च ॥

* न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥
(मनु० २ । १०३)

† यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥
एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च ।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥
(गीता १८ । ५-६)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सन्ध्योपासनमें प्राणायामादि कर्मत्रयके रूपमें, नित्य-प्रति करनेका विधान बताया है। जिसप्रकार ज्ञानके प्रकाशसे अज्ञानरूप अन्धकार नष्ट हो मुक्ति प्राप्त हो जाती है उसी प्रकार सन्ध्योपासनसे स्वतः ही पापका विनाश और इष्टदर्शन होता है अर्थात् अनर्थकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति ही इस उपासनाका मुख्य उद्देश्य है।

सन्ध्योपासनमें प्राणायामादि उपर्युक्त तीनों उत्कृष्ट कर्म प्रणव, व्याहृति तथा महाव्याहृति* सहित परम पावन गायत्री-मन्त्रसे ही किये जाते हैं। 'ओम्' शब्दके सम्बन्धमें गीतामें भी कहा है—'ॐ' का उच्चारण करके ब्रह्मवादियोंकी शास्त्रोक्त यज्ञ, दान, तप-क्रिया सदा प्रवृत्त होती है। †

(२)

यदि सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाय तो शास्त्रोंमें, परमपद-प्राप्तिके साधनमें, जो बातें बतायी हैं, उनमें तथा सन्ध्योपासनके उपर्युक्त कर्मत्रयमें अभिन्नता है। इसी प्रकार उपनिषद्में भी कहा है। यथा—

'जिस परमात्माका इस उपनिषद्में वर्णन किया है, उसे द्विज वेदके वचन तथा यज्ञ, दान और निष्काम भावसे किये गये तपके द्वारा जानना चाहते हैं। इन कथित उपायोंका अवलम्बन करनेसे, परमात्माका ज्ञान प्राप्त होनेपर मनुष्य मुनि (योगी) हो जाता है।' ‡ और इसी प्रकार ब्रह्मसूत्रमें भी इस विषयका वर्णन पाया जाता है। यथा—

'अनल, ईंधन इत्यादि समस्त सामग्रीकी आवश्यकता है; क्योंकि वेदमें यज्ञादि कर्मोंका विधान अश्वके समान है।' §

तथा—'चाहे विद्यार्थी शम, दम आदि साधनोंसे पूर्ण हो, तो भी उसके लिये यज्ञ, दान, तपका अनुष्ठान अवश्य करनेयोग्य है, क्योंकि यज्ञादिका विधान उसी विद्याका अङ्ग है।' ‖

प्रस्थानत्रयमें अर्थात् उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्र (वेदान्तदर्शन) में यज्ञ, दान, तपके कर्तव्यका जो आदेश है, वह ऊपर लिखा जा चुका है; और शास्त्रोंमें जो इस विषयका वर्णन पाया जाता है, अब हम उसीका उल्लेख करेंगे।

भगवान् पतञ्जलिने यही बात योगदर्शनके साधनपादके सूत्रोंमें इसप्रकार कही है—'तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान क्रियायोग है।' † यहाँ तपका अर्थ तप है, प्रणव, व्याहृति, गायत्री आदिका जप तथा वेदोपनिषदादिका पाठ करना स्वाध्याय है। और वेदोक्त कर्मोंको करते हुए, उनके फलको ईश्वरार्पण कर देना ही ईश्वरप्रणिधान है। इसका अर्थ तप, यज्ञ, दान अर्थात् सन्ध्योपासनके मुख्य पूर्वोक्त कर्मत्रय ही निरूपित हैं। और इस क्रियायोगके करनेसे समाधिकी प्राप्ति तथा क्लेशोंका क्षय होता है।

जैसा कि साधनपादके ही द्वितीय सूत्रमें वर्णित है। यथा—

'यह क्रियायोग समाधि लाभ तथा क्लेशोंको घटानेके लिये है।' ‡ अर्थात् प्रथम सूत्रमें वर्णित तप आदि क्रियायोग-द्वारा सब प्रकारके क्लेशोंका नाश और ईश्वरप्राप्ति होती है; और यही उद्देश्य सन्ध्योपासनसे भी सिद्ध होता है।

---

* महाव्याहृति केवल प्राणायाममें ही लगाते हैं; सूर्यार्घ्यसहित सूर्योपस्थान तथा गायत्रीजपमें व्याहृतियुक्त 'ओम्' रहता है। —लेखक

† तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम्॥
(गीता १७। २४)

‡ ···तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन···इत्यादि। (बृह० ४। ४। २२)

§ सर्वापेक्षा च यज्ञादिश्रुतेरश्ववत्।
(ब्रह्मसूत्र—शां० भा० ३। ४। ३३)

‖ शमदमाद्युपेतः स्यात्तथापि तु तद्विधेस्तदङ्गतया तेषामवश्यानुष्ठेयत्वात्॥ (ब्रह्मसूत्र ३। ४। २७)

† तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः॥ १॥

इसका व्यासभाष्य इस तरहसे है—

'नातपस्विनो योगः सिध्यति, अनादिकर्मक्लेशवासनाचित्रा प्रत्युपस्थितविषयज्वाला चाशुद्धिर्नान्तरेण तपः सम्भेदमापद्येत इति तपस उपादानं तच्च चित्तप्रसादनमवाधमानमनेनाऽऽसेव्यमिति मन्यते। स्वाध्यायः प्रणवादिपवित्राणां जपः, मोक्षशास्त्राध्ययनं वा ईश्वरप्रणिधानं सर्वक्रियाणां परमगुरावर्पणं तत्फलसंन्यासो वा॥

१ यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥
(गीता ९। २७)

‡ स हि क्रियायोगः समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च॥२॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एक बात यहाँ विशेष उल्लेखनीय है कि गीताके 'तप'-शब्द तथा योगदर्शनके तप-शब्दमें बहुत कुछ अन्तर जान पड़ता है; परन्तु वास्तवमें योगके अष्टाङ्ग-साधनसे कुछ भेद नहीं रहता। यथा—

श्रीमद्भगवद्गीतामें कायिक, वाचिक तथा मानसिक तपके जो लक्षण आये हैं, वे योगके यम-नियम-धारणाके प्रतिपादित विषयोंसे मिलते-जुलते हैं। अर्थात् 'अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये यम कहे जाते हैं।'*

'शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान ये पाँच नियम हैं।' †

'धारणाओंमें मनकी योग्यता हो जाती है।'‡

तथा—'जब इन्द्रियाँ अपने विषयोंसे रहित हो जाती हैं, और वे चित्तके स्वाभाविक स्वरूपका अनुसरण करने लगती हैं, तो उनकी ऐसी स्थितिको प्रत्याहार कहते हैं।'§ इत्यादि विषय गीताके १७ वें अध्यायमें तपके लक्षणमें आ जाते हैं। जैसा कि भगवान् कृष्ण निर्देश करते हैं। यथा—

'देवता, ब्राह्मण, गुरु तथा बुद्धिमानोंका पूजन, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य एवं अहिंसा यह शारीरिक तप है। किसीके चित्तको उद्वेग न देनेवाला, सत्य, प्रिय, हितकारी भाषण और विद्याका अभ्यास वाचिक तप कहा जाता है। मनकी प्रसन्नता, सौम्यत्व, मनन-शीलत्व, विषयोंसे मनको रोकना और निष्कपट रहना, यह मानसिक तप कहलाता है।' ×

उपनिषद्में ऐसी कथा आती है कि प्रजापतिके अभिमुख देव, मानव तथा असुर उपदेशार्थ उपस्थित हुए। उस समय दयालु प्रजापतिने 'द द द' उपदेश किया। इसका अभिप्राय दम, दान, दया था। दम, दान, दयासे भी काम, क्रोध, लोभको दूर करनेका उपदेश है। उसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये यज्ञ, दान, तप है, जैसा आगे वर्णन किया जायगा। तहाँ दमसे काम, दयासे क्रोध तथा दानसे लोभ शान्त होता है। यही सन्ध्योपासनका सिद्धान्त है; कार्य-कारणका भेदमात्र है। इसी तरह पूर्वमीमांसामें यज्ञका विशेषरूपसे वर्णन है। और सांख्य तथा न्याय-वैशेषिक-दर्शनमें 'ध्यानधारणाभ्यासवैराग्यादिभिस्तन्निरोधः,' 'सांख्य-समाधिविशेषाभ्यासात्,' 'अरण्यगुहापुलिनादिषु योगाभ्यासोपदेशः,' 'तदर्थयमनियमाभ्यामात्मसंस्कारो योगाच्चात्मविध्युपायैः,' 'आत्मन्यात्ममनसोः संयोगविशेषादात्मप्रत्यक्षम्,' इत्यादि वचनोंसे योगका मुख्यांग समाधिको स्वीकार किया है जो उपर्युक्त क्रियायोगसे सिद्ध होता है। और इसीलिये श्रीमद्भगवद्गीताके यज्ञ, दान, तप तथा सन्ध्योपासनमें कर्मत्रय, षड्दर्शनशास्त्रसम्मत हैं।

अब यह विचारना है कि योगदर्शनके साधनपादके पूर्वोद्धृत (तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः) सूत्रका अर्थ है—'तप, यज्ञ, दान' जैसा पूर्व कहा जा चुका है। यहाँ 'ईश्वरप्रणिधान' अन्तमें रक्खा है। और यजुर्वेदीय सन्ध्यामें प्राणायाम, सूर्यार्घ्य, तत्पश्चात् जप है। परन्तु ऋग्वेदीय एवं सामवेदीय (शाखाभेदसे) सन्ध्यामें योग-दर्शनके क्रमानुकूल ही है। अर्थात् सर्वप्रथम प्राणायाम (तप) है; फिर जप यानी यज्ञ (स्वाध्याय, प्रणवादि जप) है; और अन्तमें सबसे पीछे सूर्यार्घ्यसहित सूर्योपस्थान अर्थात् ईश्वरप्रणिधान है।

सन्ध्योपासनमें जो प्राणायाम है, उसमें और योग-दर्शनके प्राणायाममें थोड़ा अन्तर है। योगदर्शनके प्राणायाममें रेचक, पूरक और कुम्भक इतना ही है, इसी क्रियाका नाम प्राणायाम है। यथा—'उस आसनकी सिद्धि होनेपर (श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः) श्वास तथा प्रश्वास (यानी वायुका खींचना और निकालना) की गतिका विराम ही प्राणायाम है।'* परन्तु

---

* अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः। २। ३०

† शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः। २।३२

‡ धारणासु च योग्यता मनसः। २। ५३

§ स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः। २। ५४

× देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥
अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥
मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते॥
(गीता १७। १४—१६)

* तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।
(यो० द० सा० ४९)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सन्ध्योपासनमें महाव्याहृतिसहित गायत्रीका उच्चारण तथा त्रिदेवका ध्यान भी है। इस प्राणायामको ध्यान, धारणा और प्रत्याहार सम्मिलित करके सुन्दर बना दिया है। और इसीलिये इसे परम तप कहते हैं। प्रणवसहित गायत्रीके जपमें (तस्य वाचकः प्रणवस्तज्जपस्तदर्थभावनम्) तथा (ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च) योगदर्शनके अनुसार सन्ध्योपासनके जपसे विक्षेपादिका नाश हो जाता है अर्थात् सकल विघ्न दूर हो जाते हैं। ये विघ्न किसप्रकार दूर होते हैं, इसका वर्णन आगे होगा। इस तरह सन्ध्योपासनका मुख्य विषय उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता तथा शास्त्रोंके सानुकूल, भलीभाँति स्पष्ट हो गया है।

(३)

सन्ध्योपासना, अर्थात् यज्ञ, दान, तप नित्य क्यों करना चाहिये ?

यज्ञ, दान, तपको नित्य करनेके लिये भगवान्‌का गीताके सत्रहवें और अठारहवें अध्यायमें जो निर्देश है उसके करनेका मूल कारण श्रीमद्भगवद्गीताके सोलहवें अध्यायमें इसप्रकार बतलाया है। यथा—

'काम, क्रोध और लोभ ये तीन नरकके द्वार हैं। ये आत्माके नाशकर्त्ता हैं, अतः इन्हें छोड़ देना चाहिये। इनसे जो दूर रहता है, उसका कल्याण होता है और वह उत्तम गतिको पाता है। जो मनुष्य शास्त्रोक्त विधानका त्यागकर, अपनी इच्छानुसार कार्य करता है उसे सिद्धि-सुख-सद्गति कुछ भी प्राप्त नहीं होता।'*

गोस्वामी तुलसीदासजीके रामचरितमानसमें भी इसी प्रकारका कथन है। जैसे—

काम क्रोध अरु लोभ ये नाथ नरकके पन्थ।

भगवान् श्रीकृष्ण गीताके उपर्युक्त श्लोकोंमें काम, क्रोध और लोभकी निन्दा करते हुए, शास्त्रोक्त विधानके अनुसार कर्म करनेका उपदेश करते हैं। जैसा कथन गीताके पूर्वोद्धृत श्लोक (सत्रहवें अध्यायके चौबीसवें श्लोक) में पाया जाता है। परन्तु यह कर्म-फल तथा सङ्गको छोड़कर करना चाहिये; यही उत्तम मत विहित है। ऐसा ही गीतामें कहा है। यथा—

'जो कर्म अनुरक्ति तथा रागद्वेषको त्यागकर, फलेच्छासे रहित होकर, नित्य-नियमसे किया जाता है, वह सात्त्विक कर्म कहलाता है।'*

दूसरे शब्दोंमें कहा जा सकता है कि काम, क्रोध तथा लोभ हमारे चित्तको संसारकी तरफ राग-द्वेषात्मक वृत्तिसे आकर्षित करते हैं। यदि इन्हीं वृत्तियोंको ईश्वरमें लगा दें तो निःश्रेयस अर्थात् मुक्ति या समाधि प्राप्त होती है। यथा—

कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च।
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते॥

अथवा—

भाव कुभाव अनख आलसहू। नाम जपत मंगल दिसि दसहू॥

अथवा इन काम, क्रोध, लोभको दूर करनेका उपाय करे।

यज्ञ, तप, दानसे काम, क्रोध और लोभ किस तरह दूर होता है ?

कामको दूर करनेके लिये निष्काम यज्ञ करना ही उचित है और क्रोधको हटानेके निमित्त तप करना ही आवश्यक है।

यहाँ 'तप' शब्दसे शारीरिक, वाङ्मय और मानसिक तीनों प्रकारके तपका ग्रहण है, जैसा ऊपर उद्धृत किया जा चुका है। इसी तपका सारभूत हमारे विहित सन्ध्योपासनका प्राणायाम है। हमारी सन्ध्योपासनामें तीन विषय

---

* त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥
एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्॥
यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्त्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥
(गीता १६। २१—२४)

* नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम्।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते॥
(गीता १८। २३)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निर्धारित हैं। नासिकासे वायुके रोकनेका जो कर्तव्य है, वह शारीरिक तप है। गायत्रीका जो उच्चारण है वह वाङ्मय तप है और ब्रह्मा, विष्णु तथा महेशका ध्यान मानसिक तप है। इस प्राणायामके करनेसे क्रोधादि वृत्तियाँ क्षीण होती हैं और भगवान्‌के ध्यानसे ही मनःप्रसाद, सौम्यत्व एवं भावसंशुद्धि हो जाती है। इसके अतिरिक्त मलविक्षेपका स्थूल कारण इन्द्रियोंमें जो पाप तथा मनमें चाञ्चल्य है, वह भी प्राणायामद्वारा निर्बल हो जाता है। लोभसे वस्तुमें आसक्तिका आविर्भाव होता है, उसके (लोभके) दूर करनेके लिये दान-वृत्तिकी उत्कर्षताका अभ्यास होना चाहिये, और आसक्तिका त्याग कर देना ही दानमें तात्पर्य है। उसके अभ्यासका बढ़ाना प्रधान कर्त्तव्य है। इसी सम्बन्धमें गीताके तीसरे अध्यायमें लिखा है। यथा—

(अर्जुन प्रश्न करता है—) 'हे वार्ष्णेय, अनिच्छा होते हुए भी किस प्रेरणासे मनुष्य पाप करता है?' *

भगवान् उत्तर देते हैं—'काम और क्रोध रजोगुण†से उत्पन्न होता है। यह दोषोंका उत्पादन करता है; अतः इसे तू अपना बैरी समझ। हे अर्जुन! कामरूप शत्रु कभी तृप्त न होनेवाला है, इसने ज्ञानियोंके ज्ञानपर पर्दा डाल रक्खा है। इन्द्रिय, मन तथा बुद्धि इसके निवासस्थान हैं। अतएव पहले तू इन्द्रियोंको अपने वशमें करके इस ज्ञान-विज्ञानके नाशक पापरूपी कामका संहार कर।' ‡ और इसके अतिरिक्त भी अनेक स्थानोंपर 'कामक्रोधवियुक्तानाम्' 'वीतरागभयक्रोधः।' इत्यादि वचन पाये जाते हैं। काम, क्रोध, लोभ आसुरी सम्पत्ति हैं, जैसा गीतामें कहा है। * यज्ञ, दान, तप, दैवी सम्पदा है। यथा—'अभय, चित्तकी शुद्धि, ज्ञानप्राप्तिका उद्योग, दान, इन्द्रियोंका संयम, यज्ञ, वेदाध्ययन, तप, सरलता इत्यादि दैवी सम्पत्ति भोगनेके निमित्त जन्म धारण करनेवालेको मिलती है।'†

और दैवी सम्पत्ति मोक्षका कारण है, तथा आसुरी बन्धनका। यथा—

'पाण्डव! दैवी सम्पत्तिसे मोक्ष और आसुरीसे बन्धन होता है।' ‡

अतएव यह सिद्ध हुआ कि सन्ध्योपासनसे दैवी सम्पत्ति बढ़ती है और आसुरीका ह्रास होता है; एवं मन मलरहित होकर पवित्र होता है।

(४)

मल, विक्षेप और आवरणका निवारण

चञ्चलता § के कारण अस्थिर मनकी स्थिरता एवं अज्ञानसे आवृत बुद्धिकी विशुद्धता × के लाभहेतु यज्ञ-दान-तप कर्मत्रय पर्याप्त नहीं हैं। उसके लिये उत्कट उपासना और ज्ञानकी नितान्त आवश्यकता है। एवं इन्द्रिय, मन और बुद्धि इन तीनोंमें जो क्लेशकर्मविपाकाशययुत वृत्तिका सञ्चार ईश्वरके साक्षात्कारमें बाधक है, उसीको मल (पाप), विक्षेप (चाञ्चल्य), आवरण (अज्ञान) कहते हैं। जिनपर भगवान् कृपा करते हैं, उनका पाप

---

* अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥
(गीता ३। ३६)

† लोभ भी रजोगुणसे उत्पन्न होता है। —लेखक

‡ काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥
आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च॥
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम्॥
तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्॥
(गीता ३। ३७, ३९, ४०, ४१)

* दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्॥
(गीता १६। ४)

† अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥ इत्यादि
(गीता १६। १)

‡ दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता।
मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव॥
(गीता १६। ५)

§ चञ्चलं हि मनः कृष्ण···

× अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दूर हो जाता है । उनको बुद्धियोग मिलता है; अर्थात् विक्षेप दूर हो जाता है; तथा उन्हें भगवत्कृपासे ज्ञान प्राप्त होता है; और उनका अज्ञान हट जाता है । *

बस, भगवान्‌की इसी कृपाकी प्राप्तिके निमित्त गायत्री-जप है और इस जप† में 'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि' से भगवान्‌का जो ध्यान किया जाता है, वही उसकी (भगवान्‌की) प्रसन्नता प्राप्त करनेका एकमात्र उपाय है । यथा—

'यह ब्रह्म आँखोंसे नहीं देखा जा सकता । वाणी इत्यादि इन्द्रियोंसे, चान्द्रायणादि कृच्छ्र तपसे और शुभ कर्मोंके फलद्वारा भी प्राप्त नहीं होता । परन्तु यथार्थ ज्ञानके प्रसादसे शुद्ध अन्तःकरणवाला मनुष्य उसका ध्यान करता हुआ निरवयव ब्रह्मके दर्शन करता है ।' ‡

यही ध्यान सन्ध्याके मुख्य शब्दार्थका द्योतक है (सम्यक् प्रकारेण ध्यायतेऽनयेति सन्ध्या) इसी ध्यान-योगात्मक उपासनासे प्रसन्न होकर भगवान् ब्रह्मवर्चस प्रदान करते हैं । यही सन्ध्योपासनामें उपासनाका दूसरा अंग, कर्मत्रयमें अन्तरंगरूपसे है । और उपासनाके अनन्तर, जो ज्ञानप्राप्तिके लिये अर्थात् साक्षात्कारार्थ, गायत्रीमें—'धियो यो नः प्रचोदयात्' निरन्तर प्रार्थना की जाती है, वह ज्ञानका मुख्य अंग है । अतः सन्ध्योपासनामें, सूक्ष्मरूपसे, कर्म, उपासना ज्ञानद्वारा जो परमपद साध्य है, उसके पानेके लिये बालकसे लेकर वृद्धतकका सुलभ-सुखद-सुगम उपाय है ।

(५)

अब ज्ञानका मुख्य कारण जो घी है, उसका रहस्य यह है कि मनुष्यमात्र सुखको चाहता है, और दुःखकी अत्यन्त निवृत्तिके अर्थ उद्योग करता है; इसे आध्यात्मिक भाषामें अनर्थकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति कहते हैं । षट् शास्त्रोंका भी यही सिद्धान्त है । सांख्यदर्शन—'त्रिविध-दुःखात्यन्तनिवृत्तिः परमपुरुषार्थः' से शान्ति चाहता है । योगदर्शन अनेक विभूति तथा ऐश्वर्यकी प्राप्तिका उपाय बताता हुआ योगियोंको इन विभूतियोंके फन्देमें न फँसनेका उपदेश देकर कैवल्यपरमपदकी प्राप्तिका पथ बतलाता है । न्यायदर्शन इक्कीस दुःखोंकी निवृत्तिकी इच्छाकर समाधि-सुखका उपदेश करता है । वेदान्त-दर्शन सब सुखोंको अनित्य सुख मानकर ब्रह्मानन्दका अनुभव कराता है । और पूर्वमीमांसा भोगैश्वर्यप्रसक्त स्वर्गादि सुखका अनुभव करानेके लिये यज्ञादिका प्रस्ताव करता है ।*

यज्ञ, दान, तप करनेसे चित्त जब पायन हो जाता है और सन्ध्योपासनासे भी 'यानि कानि च पापानि जन्मान्तर-कृतानि च'—इत्यादिसे पापकी अर्थात् अनर्थकी निवृत्ति होती है, तब परमानन्दकी प्राप्तिके लिये अर्थात् ईश्वर-साक्षात्कारके निमित्त भगवद्भक्ति † की आवश्यकता रहती है; और इसी हेतु गायत्री-जपमें प्रार्थनाका उद्देश्य है ।

ऐसा ही मुण्डकोपनिषद्में कहा है—'जिस मनुष्यको वह आत्मा स्वीकार करता है यानी पसन्द करता है वही उसे पाता है । उसके लिये आत्मा (ईश्वर) अपने सूक्ष्म

---

* यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥
मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥
(गीता १० । ३, ८—११)

† तज्जपस्तदर्थभावनम्

‡ न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा
नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा ।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्व-
स्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ॥
(मुण्ड० ३ । १)

* पूर्वमीमांसकमतानुयायियोंमें स्वर्ग-सुख, दुःखनिवृत्ति-से सुख इत्यादि विवेचनामें मतभेद है ।

† नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥
(११ । ५३-५४)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शरीरका प्रकाश कर देता है* अर्थात् उसे अपने दर्शन देता है।'† अतएव सन्ध्योपासनामें कर्मत्रय करते हुए परमात्माके ध्यानका निरन्तर अभ्यास तथा उसके साक्षात्कारके लिये विशुद्ध बुद्धिके सम्पादनार्थ भगवान्‌से याचना की जाती है; क्योंकि वह ब्रह्मसुख बुद्धिद्वारा ही ग्रहण हो सकता है। जैसा कि गीताके छठे अध्यायमें कहा है। 'जिस अवस्थामें इन्द्रियोंद्वारा जाननेयोग्य नहीं है, प्रत्युत केवल बुद्धिहीसे जाननेयोग्य है, उस अनन्त आनन्दको प्राप्त करे, और जहाँ स्थित होकर मनुष्य अपने ध्येयसे गिरे नहीं।' ‡ मोह-कलिल बुद्धिके निश्चल हो जानेपर समाधिमें आत्माका साक्षात्कार होता है। तभी मनुष्य स्थितधी होता है। और इसी निर्मल बुद्धिकी प्राप्ति करके मनुष्य कर्ममें अकर्म तथा अकर्ममें कर्म देखकर बुद्धिमान् होता है। §

तथैव उपासनासे× इसी बुद्धियोगको पाकर वह संसार-सागरके दुःखोंसे पार हो जाता है। परानिष्ठा+ ज्ञानमें मनुष्यको विशुद्ध बुद्धि ही ब्रह्मभाव प्राप्त करनेयोग्य बनाती है। अतएव बुद्धि, कर्म, उपासना, ज्ञानके साधनमें नितान्त मुख्य अन्तःकरण है, जिसके द्वारा कर्म-उपासना-ज्ञानका लक्ष्य प्राप्त होता है। निष्कल ब्रह्म, सविशेष ब्रह्म, ईश्वर और हृद्देशका ईश्वर सभीका साक्षात्कार इसीसे होता है। इसीलिये गायत्रीमें बुद्धियोगके लिये प्रार्थना की जाती है।

'ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥'

यह गायत्री-मन्त्र ऋग्वेद,* यजुर्वेद† और सामवेदमें है। इसमें 'ॐ'से निर्गुण निराकार ब्रह्म (ॐ इत्येकाक्षरं ब्रह्म) 'भूर्भुवः स्वः'-भू (सत्), भुव (भावयतीति भुवः चित्), स्वः (सुख-स्वरूपम्) अर्थात् सच्चिदानन्दस्वरूप 'स्वः शब्दः सुखवाची' (सायणः) अथवा 'सुष्ठु सर्वैः त्रियमाणसुखस्वरूपम्' से सगुण निराकार, 'तत्सवितुर्वरेण्यम्' से सगुण साकार और 'धियो यो नः प्रचोदयात्' से व्यष्टिगत हृदयमें सगुण साकार, जो हमारी बुद्धि सत्कर्ममें लगाता है, ऐसा चिदात्माका अर्थ विज्ञजन करते हैं। अतः कर्म, उपासना तथा ज्ञानके अधिकारीके लिये गायत्री-मन्त्रका जप अमूल्य, आवश्यक और अमोघ साधन है।

महर्षियोंने, अपनी-अपनी सुमतिके अनुसार, इस महा-मन्त्रके अनेक अर्थ प्रकट किये हैं, और इसका माहात्म्य भी बहुत बड़ा है एतदर्थ मैं, फिर कभी किसी बड़े लेखमें परम योगी याज्ञवल्क्यके आधारपर, इसका विस्तृत वर्णन करनेका साहस करूँगा।

(६)

बहुत-से लोगोंको, मार्मिक ज्ञान न होनेके कारण, सनातनधर्मके कर्मोंमें आस्था नहीं है। बहुतोंका विश्वास तो है, परन्तु उनकी ओर उन लोगोंकी प्रवृत्ति या रुचि नहीं है। और कुछ लोग उनसे विमुख रहते हैं, इसका कारण यह है कि वे उन श्रेष्ठ कर्मोंकी उपादेयताको भली-भाँति शास्त्रद्वारा समझ नहीं पाते। परन्तु जिन लोगोंको

---

* यथा—भगवान् गीतामें कहते हैं—

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
(७।२५)

† यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्
(मुण्डक ३।२)

‡ सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः॥
(गीता ६।२१)

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च॥
(गीता २।५२)

§ कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्॥
(गीता ४।१८)

× उपासना—

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव॥
मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि॥
(गीता १८।५७-५८)

+ यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥
इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान् स्यात्कृतकृत्यश्च भारत॥
(गीता १५।१९-२०)

* ऋग्वेदके ३—६२—१० में है।

† यजुर्वेदके ३—३५ में है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपने शास्त्रोंमें, पूर्वजन्मके कुसंस्कारवश उतनी आस्था नहीं है जितना विश्वास उनका पाश्चात्य विज्ञानपर है; उनके लिये भी सन्ध्योपासन आवश्यक है।

Deep breathing. Sun bath and auto suggestion इन सिद्धान्तोंकी तुलना प्राणायाम, सूर्योपस्थान और गायत्रीके जपसे की जाय, तो इतना ही अन्तर है कि Deep breathing एक भौतिक सिद्धान्त है; और प्राणायाम भौतिक तथा आध्यात्मिक सिद्धान्तपर निर्भर है। auto suggestion में यह विचार किया जाता है कि मैं अच्छा हो रहा हूँ। इसका नित्य ध्यान करनेपर मनुष्य रोगसे छूट जाता है। इसी प्रकार गायत्रीका नित्य जप करनेसे भगवत्कृपासे केवल बुद्धि ही निर्मल नहीं होती, अपितु भगवान्‌का साक्षात्कार भी होता है, यही ऋषि-प्रणीत सन्ध्योपासनामें विशेषता है। इस लेखका कलेवर बहुत बढ़ चुका है; अतः अब हम उपसंहाररूपसे सन्ध्योपासनके सम्बन्धमें महर्षि मनुके कुछ वचन उद्धृत करके इसे समाप्त करते हैं।

भगवान् मनु ब्रह्मचारीके कर्त्तव्यका वर्णन करते हुए दूसरे अध्यायमें आदेश करते हैं—

'आचमन करके पवित्र हो, मनको एकाग्र कर, शुद्ध स्थानमें सावित्रीका जप करता हुआ विधिवत् दोनों समयकी सन्ध्योपासना करे।'*

प्रतिदिन राजकार्यमें लगे रहनेपर भी, मनुने राजाको सन्ध्योपासन करनेका आदेश किया है—

'तदुपरान्त सन्ध्योपासन करके, अन्तःपुरके एकान्त स्थानमें जाकर, शस्त्रोंको धारण किये हुए, गुप्तचरोंके कामोंको सुने।'†

रामकी कृपा

भूपति भिखारी होत, बिनै गुन गारी होत, नारी होत न्यारी लखे गति बिधि बामकी।
निपुन अनारी होत, मधुर सो खारी होत, जीतिहूमें हारी होत बड़े बलधामकी॥
पंडित पुजारी जौन भारी व्यभिचारी होत, होत है अचारी भ्रष्ट प्रीति करि कामकी।
सोनेको सुमेर सोऊ छुये लोह लाटी होत, माटी होत सबै जो न कृपा होत रामकी॥

रामकी कथा

जगत-बिचित्र-चित्र चित्तसों निकरि जात, छूटि जात आस-पास बित्त धरा-धामकी।
'सिरस' बखानै कामिनी बिमोह मोह जात, चाह ना रहति मन क्रीड़ा कला-कामकी॥
कर्म सब मिटि जात, चातुरी चवाव जात, जाने जात धर्म-मर्म बातें आठो जामकी।
बायें जौन दायें जात, त्यागे सो निबाहे जात, बाम बिधि बिधि जात, सुने कथा रामकी॥

साहित्यरत्न शिवरत्न शुक्ल सिरस

---

* आचम्य प्रयतो नित्यमुभे सन्ध्ये समाहितः। शुचौ देशे जपञ्जप्युमुपासीत यथाविधि॥ (मनु० २। २२२)

† सन्ध्यां चोपास्य शृणुयादन्तर्वेश्मनि शस्त्रभृत्। रहस्याख्यायिनां चैव प्रणिधीनां च चेष्टितम्॥ (मनु० ७। २२३)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मानस-मंगलाचरणमें सीता-राम-वन्दना

श्रीमद्भागवतके मंगलाचरणसे तुलना

(लेखक—श्रीरामदासजी गौड़ एम० ए०)

रामचरितमानसमें प्रत्येक काण्डके आरम्भमें मंगलाचरणके संस्कृत पद्य दिये हैं। यह शैली बिल्कुल अनूठी है। बालकाण्डमें ही आरम्भिक मंगलाचरण किसी पूर्व ग्रन्थकार या ग्रन्थके अनुकरणमें नहीं है। क्रमसे वाणीविनायक, भवानीशङ्कर, गुरु शङ्कर, कवीश्वर-कपीश्वरकी वन्दना करके सीता-रामकी बड़ी ही सुन्दर वन्दना है—

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥
यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुराः
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लव एक एव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्॥

यों तो श्रीरामचरितमानसकी अनेक टीकाएँ हुई हैं, सबमें इस वन्दनाकी व्याख्या है। परन्तु इन पद्योंके अक्षर-अक्षरसे जो अर्थ निकलते हैं, जो व्याख्याएँ हो सकती हैं, उनका फिर भी यथोचितरीत्या स्पष्टीकरण नहीं हो पाया है। आज 'कल्याण'के सहृदय पाठकोंके लिये अपनी मतिके अनुसार अपने पूर्वगामियोंकी अपेक्षा कुछ अधिक स्पष्टीकरणका प्रयत्न करता हूँ। यदि मानसरसिकोंको रुचा तो मैं अपना प्रयास सार्थक समझूँगा।

मानसकारने आगे चलकर भाषामें सीतारामकी जो वन्दना की है उसमें सादन्त माधुर्यभाव है और सीताराम-की एकता प्रतिपादित की है। परन्तु इस संस्कृतवाली सीताराम-वन्दनामें सादन्त ऐश्वर्यभाव है और सगुण-निर्गुणकी एकता प्रतिपादित है। पाठक इस प्रभेदको विशेषरूपसे ध्यानमें रक्खें।

पहले हम इन दोनों पद्योंका साधारण अनुवाद देते हैं। 'उत्पत्ति-पालन-संहार करनेवाली, क्लेश हरनेवाली, समस्त कल्याण करनेवाली श्रीसीताजीको, जो श्रीरामकी प्रिया हैं, मैं प्रणाम करता हूँ। (वह 'राम' कौन हैं ?) जिसकी मायाके वशमें ब्रह्मा आदि देव और असुर हैं, जिसकी सत्तासे यह सब (विश्व) अ-मृषाकी तरह लगता है, जैसे रस्सीमें साँपका भ्रम। जिसका चरण ही अकेला संसार-समुद्रसे तरनेकी इच्छावालोंके लिये नाव है, रामनामसे पुकारे जानेवाले अशेष कारणोंसे परे उसी ईशकी—उसी हरिकी मैं वन्दना करता हूँ।'

यहाँ सीता त्रिगुणात्मिका, त्रिदेवात्मिका शक्तिको त्रिदेवसे परे, और विष्णु-शिव-परात्पर-ब्रह्मकी एकता और माया-धीशता, प्रतिपन्न करते हुए सीतारामकी वन्दना है।

जन्ममें जितना क्लेश है उससे कम स्थितिमें, स्थितिसे कम संहारमें है। पूर्वका क्लेश हरनेको ही पर-घटना क्रमशः होती है। इससे उत्तरोत्तर क्लेश हरण होता है और जीवके उत्तरोत्तर विकासका यह मार्ग जब प्रशस्त रहता है तब वह अन्तमें पूर्ण विकसित होकर तथा इस चक्रसे निवृत्त होकर परमश्रेय रामपदको पहुँचता है। यह परमश्रेय कभी-न-कभी समस्त सृष्टिको इस जगल्लीलाभिनेत्री रामवल्लभाद्वारा मिलता है। इसीसे 'सर्वश्रेयस्करीम्' कहा। 'सीताम्' पद 'सि' बन्धने में 'क्त' प्रत्यय लगनेसे बनता है, 'सीता' नाम केवल हल जोतनेके समय प्रकट होनेसे ही नहीं है। यह तो राम-नामकी तरह अनादि है। निर्गुण ब्रह्ममें उसकी नित्या-उत्तमाशक्ति बँधी हुई है, इसीसे वह सगुण ब्रह्म हुआ नहीं तो ब्रह्ममें विकार कहाँ ? सृष्टि कहाँ ? जगत् कहाँ ? सीताजी ही ब्रह्मके बँधनेका कारण हुईं। वह सगुण हुआ, प्रेम-पाशमें बँधा, राम हुआ, इसीलिये आगे कहते हैं, 'राम-वल्लभाम्' फिर वह 'राम' कौन हैं इसकी विशद व्याख्या सुनिये—

वन्दनामें चतुर कवि अपने प्रतिपाद्य विषयका भी निर्देश करता है। इस वन्दनामें मानसके प्रतिपाद्य विषयका निर्देश बहुत उत्कृष्ट रीतिसे किया गया है। 'पुराणरत्न' विष्णुपुराण एवं भक्तितत्त्वप्रतिपादक श्रीमद्भागवतमें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विष्णुपरत्वका प्रतिपादन है। श्रीरामचरितमानसमें परात्पर—ब्रह्म रामका प्रतिपादन है—

उपजहिं जासु अंस ते नाना। संभु बिरंचि बिष्णु भगवाना॥

परन्तु साथ ही विष्णु, नारायण और ब्रह्ममें अभेद भी माना है। अद्वैत-वेदान्त सृष्टि-स्थिति-संहारका कर्त्ता ईश्वरको कुछ घटा हुआ पद देता है और परब्रह्मको निर्गुण एवं परे मानता है। मानसकारने वैष्णव-सिद्धान्तके वेदान्तको लेकर सगुण और निर्गुणमें अभेद माना है और ईश्वरके सभी रूपोंको और समस्त विभूतियोंको एक रामका ही अवतार माना है। श्रीमद्भागवतमें भी 'अवतारा: असंख्येया:' कहकर विष्णुके असंख्य अवतार माने हैं, परन्तु श्रीमद्भागवत विष्णुपरत्वका प्रतिपादक है। परब्रह्मको विष्णुरूपमें ही मानता है।

मानसके इस शार्दूलविक्रीडित छन्दके भाव श्रीमद्भागवतके मंगलाचरणवाले शार्दूलविक्रीडित 'जन्माद्यस्य···धीमहि' से बहुत मिलता है। हम वह मंगलाचरण यहाँ तुलनाके लिये देते हैं—

जन्माद्यस्य यतः अन्वयादितरतश्चार्थेषु — पदार्थोंमें सम्बन्ध और विच्छेदसे जिसके द्वारा इस अखिल विश्वका जन्म, पालन, संहार है,

अभिज्ञः स्वराट् — जो (पदार्थोंके विषयमें) सर्वज्ञ है और स्वतः ज्ञानसिद्ध है,

तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये — आदिकवि (ब्रह्मा) के लिये जिसने हृदयद्वारा वह वेद फैलाया,

मुह्यन्ति यत्सूरयः — जिसमें विद्वान् भी मोहित हो जाते हैं,

तेजोवारिमृदां यथा विनिमयः — जैसे तेजस्, जल और काँचादि मिट्टीका विनिमय (एकमें किसी दूसरेका भासना) है,

यत्र त्रिसर्गोऽमृषा — उसी तरह जहाँ मृषा त्रिसर्ग (त्रिगुणात्मिका सृष्टि) (अमृषाकी तरह भासता) है,

धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं — अपने प्रकाशसे त्रिकालमें (जो) मायामुक्त (है),

सत्यं परं धीमहि — (उस) सत्यका (उस) परेका हम ध्यान करते हैं।

मानसकारके दूसरे चरणमें ठीक वही बात कही गयी है जो श्रीमद्भागवतकारके तीसरे चरणमें है। 'सकलम्' में 'त्रिसर्ग'का और 'रजो यथाऽहेर्भ्रमः' में 'तेजोवारिमृदां यथा विनिमयः' का अन्तर्भाव है। काँचमें जलका और जलमें काँचका भ्रम तेज और जल वा तेज और काँचकी सत्ताको स्वीकार करता है, इस तरह यह अन्योऽन्याध्यास है, द्वैत सत्ताका परिचायक है। रज्जुमें साँपके भ्रममें एक रज्जुकी ही सत्ता माननी पड़ती है। इस तरह मानसकारका दृष्टान्त अधिक उत्कृष्ट है। रज्जु ब्रह्म है, जगत् साँप है, माया भ्रम है। भागवतकारके पहले दो चरणोंका अधिकांश अन्तर्भाव मानसकारके पहले चरणमें हो जाता है। श्रीमद्भागवतवाले मङ्गलाचरणमें सीधे उसीपर और सत्यको स्रष्टा, पालक और संहर्त्ता ठहराया है, परन्तु मानसकारने 'ब्रह्मादिदेवासुराः' अखिल विश्वको उसकी मायाके वशवर्त्ती दिखाया है अर्थात् सृष्टि-पालन-संहार-क्रियाके करनेवाले देव और असुर भी उसीकी मायाके वशीभूत हो सारे व्यापार करते हैं, और वेद, ज्ञान एवं अखिल विश्वकी बुद्धि तथा चेतना भी उसी मायाके वशवर्त्ती है, कोई बचा नहीं है, यह दर्शाया है। अन्तमें जहाँ भागवतकार ईश्वरको ही 'सत्यं परं ध्येयम्' मानते हैं वहाँ मानसकार उस 'अशेषकारणपरम्, ईशम्' को जगत्कर्त्री मायाका नाथ मानते हैं। भागवतकारके दूसरे चरणमें 'अर्थेष्वभिज्ञः' 'स्वराट्' अर्थात् उसी जन्मादिके कारणको 'सर्वज्ञ' और 'स्ववश' बताया है और 'धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकम्' अपने प्रकाशसे मायान्धकारसे मुक्त दिखाया है। भाव यह है कि जीव (चित्) अल्पज्ञ, माया-(अचित्) वश और मोहित है और ईश्वर सर्वज्ञ, स्ववश और मायामुक्त है। इस तरह भागवतकार ईश्वरका ही प्रतिपादन करके उसे 'सत्यं परम्' मानते हैं। मानसकार परात्पर ब्रह्मका प्रतिपादन करके ईश्वरत्व उसके अधीन मानते हैं और 'सत्यं परम्' की जगह 'अशेषकारणपरम्' कहकर पर-सत्यकी अधिक व्यापक और उचित व्याख्या कर देते हैं। 'ईशम्' कहकर वह उस 'अशेषकारणपरम्' को उसी मायाका स्वामी बताते हैं जिसके वशवर्त्ती ब्रह्मादि चराचर हैं। स्वामीके मायामुक्त होनेका प्रश्न ही नहीं होता, क्योंकि उसके मायाबद्ध होनेकी ही कोई कल्पना नहीं है। ब्रह्मादि तो मायावश हैं,—'सिव बिरंचि कहँ मोहइ, को है बपुरा आन', 'रमा समेत रमापति मोहे'। ईश्वर-कोटि तो मायावशवर्त्ती है। वह 'अशेषकारणपर' तो 'विष्णु-कोटि सम पालन-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कर्त्ता। रुद्र कोटि सत सम संहर्त्ता' है। जो माया ऐसी प्रबला होकर भी उस 'ईश' की दासी है उसका रूप दूसरे चरणमें दिखाया है जो भागवतकारके वर्णनके अनुरूप ही है। तात्पर्य यह कि मायाका रूप जो भाँति-भाँतिके अध्यासों-से वेदान्तमें उदाहृत किया है वह भागवतकार और मानस-कारका एक-सा है, परन्तु दृष्टान्त मानसकारका अधिक उपयुक्त है।

भागवतकारके 'अर्थेषु अभिज्ञः स्वराट्' के एवं 'धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकम्' के अर्थोंसे भी अधिक भावोंकी व्याप्ति मानसकारके 'ईशं हरिम्' में है क्योंकि ईशत्वमें न केवल सर्वज्ञता और स्वाधीनता है, वरं माया-पतित्व है; दासोंका, भक्तोंका आश्रय है, और मोह आदि क्लेश हर लेने (हरिम्) तथा उपासकोंको मायामुक्त कर देनेका भी सामर्थ्य है। साथ ही 'ईशं हरिम्' कहकर यह भी सूचित किया कि वह ईश, वह हरि क्रमशः शिव और विष्णुसे अभिन्न है, यद्यपि अंशी और अंशका, अंगी और अंगका, अवतारी और अवतारका सम्बन्ध है। यह तेहरा अभेद रामचरितमानसमें साद्यन्त प्रतिपादित है। एक बातमें श्रीमद्भागवतका मंगलाचरण अधिक उत्तम कहा जा सकता है कि उसकी भाषा द्वैत और अद्वैतवादियोंके पक्ष-पोषक अर्थोंके घटित करनेमें भी समर्थ है, परन्तु मायाको स्पष्ट-रूपसे प्रतिपन्न करके मानसकारने जहाँ द्वैतवादका निरसन किया है वहाँ अद्वैत-विशिष्टाद्वैत और शुद्धाद्वैतका पोषण भी बहुत उत्तम हुआ है। किन्तु इस परवर्त्ती दृष्टिसे तो मानसकारकी ही विधि उत्कृष्ट जान पड़ेगी, क्योंकि भागवतकार जहाँ जान-बूझकर सबके लिये गुञ्जाइश छोड़ देते हैं और 'सत्यं परम्' को व्यावहारिक अर्थमें 'निरस्त-कुहकम्' नहीं रखते—वहाँ मानसकार जिस पक्षको सत्य समझते हैं उसे असन्दिग्ध और स्पष्ट शब्दोंमें व्यक्त करते हैं, जिन्हें तोड़-मरोड़कर, किसीके लिये अर्थका अनर्थ करना सम्भव नहीं है।

भागवतकारने अपने मङ्गलाचरणको गायत्री-मन्त्रके भावोंमें ग्रथित किया है, जो श्रीमद्भागवतकी विशेषताको सूचित करता है, और 'धीमहि' में गुरु-शिष्य वा वक्ता-श्रोता उभयपक्षसूचक बहुवचन है जो ठीक गायत्री-मन्त्रमें प्रयुक्त क्रियापद है जो वैदिक व्याकरणके ही रूपमें ज्यों-का-त्यों दिया गया है। परन्तु मानसकारका यह अपना मङ्गलाचरण है, मानसके श्रोता-वक्ताका नहीं, अतः इसमें 'वन्दे' एकवचन क्रियापद है और जहाँ भागवतकारने निर्गुण रूपका ध्यान किया है वहाँ मानसकारने सगुण ब्रह्मके चरणोंकी वन्दना की है। 'परं सत्यम्' की पूरी व्याख्या 'अशेषकारणपरम्' से हो सकती है क्योंकि सबसे परे नित्य सत्य वही हो सकता है जो सबसे परे, सब कारणों-का कारण हो जहाँ जाकर कारणोंका सिलसिला खतम हो जाता हो।

परं ब्रह्म परं तत्त्वं परं ज्ञानं परं तपः।
परं बीजं परं क्षेत्रं परं कारणकारणम्॥

'रामाख्यम्' शब्द तो रामचरितमानसके सम्पूर्ण ग्रन्थका बीजमन्त्र ही है। 'राम' शब्दका अर्थ है—

जो आनंदसिंधु सुखरासी। सीकर तें त्रैलोक्य सुपासी॥
सो सुखधाम राम अस नामा।

उस 'ईशम्' की मैं वन्दना करता हूँ जिनका ऐसा राम-नाम है, जिन्होंने अखिल लोकोंको विश्राम देनेके लिये ईश होते हुए भी माया-मानुषरूप धारण किया है। 'राम-वल्लभाम्' वाले रामकी ही व्याख्या इस सम्पूर्ण छन्दमें वन्दनाके व्याजसे वर्णित है।

निदान भागवतकारके चारों चरणोंके भाव मानस-कारने अपने मङ्गलाचरणमें व्यक्त कर दिये। साथ ही इतना करके भी मानसकारने वह बात और दी है जो भागवत-कारने स्पष्टरूपसे इस छन्दमें व्यक्त नहीं कर पायी और जो दूसरे ढंगपर उसके आगेके शार्दूलविक्रीडितमें उन्होंने दी है। मानसकारने 'पादप्लवम्' कहकर सगुण रूपका ध्वन्यात्मक प्रतिपादन भी किया है और भक्तोंके भवसागर पार होनेके लिये स्तुतिके व्याजसे उपासना-मार्गका भी उपदेश किया है। ध्वनिसे पहले चरणमें कर्म और दूसरेमें ज्ञान कहकर तीसरेमें उपासनाद्वारा उद्धारकी विधि दिखायी है, और बड़ी चमत्कारिक रीतिसे तीनों विधियोंके ध्येय भगवान् रामचन्द्रकी वन्दना की है।

गोस्वामीजीने श्रीमद्भागवतकी छाया अनेक स्थलोंपर ग्रहण की है, परन्तु भावचित्रण बिल्कुल निजी ढंगपर किया है, जिससे भावापहरणका दोष उनपर नहीं लग सकता। उन्होंने 'नानापुराणनिगमागमसम्मत' लिखा ही है, परन्तु मूलस्रोत चाहे जो हो। उन्होंने अपनी अमृत-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रसविनी लेखनीसे उसमें नयी जान डाल दी है। भागवत-कारका मङ्गलाचरण जितना क्लिष्ट है, मानसकारका उतना ही प्रसाद-गुण-पूरित है जिसमें उन्होंने व्यञ्जनासामर्थ्यसे अपनी रचनाको मूलरूप और भागवतके मङ्गलाचरणको छाया बना डाला है। मङ्गलाचरणवाला यह शार्दूलविक्रीडित उनकी उन अनुपम रचनाओंमेंसे है, जिसके आशयोंकी गम्भीरतामें जितना ही डूबिये उतने ही अर्थ—गौरवके रत्न मिलते हैं।

वृद्ध-वाणी

(लेखक—भिक्षु श्रीगौरीशङ्करजी)

१—समयकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये, बिना समयके प्रारम्भ किया हुआ कार्य सिद्ध नहीं होता।

२—महान् पुरुष महान् कार्य करके भी डींग नहीं मारते, परन्तु क्षुद्रपुरुष थोड़ा-सा काम करते ही गर्वसे फूल जाते हैं।

३—पापीका छिपाया हुआ पाप पापीके सम्मुख आता है और धर्मात्माका गुप्त रखा हुआ धर्म धर्मात्माके आगे आता है।

४—यदि तुम्हारे पास पैसे नहीं हैं तो दूसरोंका धन देखकर ईर्षा मत करो और न्यायपूर्वक जितना कमा सकते हो, कमाओ, परन्तु दूसरेका हक न छीनो।

५—धनको बैङ्कोंमें या पृथिवीमें गाड़नेकी अपेक्षा सत्कार्योंमें व्यय कर देना अच्छा है। गाड़ रखनेवाले कृपणकी अपेक्षा व्यय करनेवाला पुरुष लाभमें है, क्योंकि उसे आनन्दमय सन्तोष है कि मेरा द्रव्य ईश्वरके कार्योंमें व्यय हुआ। यह प्रसन्नता दूसरेको स्वप्नमें भी प्राप्त नहीं।

६—जो मनुष्य अधिक शपथें खावे, उसका विश्वास न करो, क्योंकि यह झूठोंका लक्षण है।

७—जो मनुष्य किसी अन्य पुरुषके दोष तुम्हारे सम्मुख कहे, तो समझ लो कि वह तुम्हारी निन्दा भी किसीके पास करेगा।

८—लोग दूसरोंकी निन्दा करने और सुननेको तो तैयार हैं, परन्तु अपने ही दोषोंको नहीं देखते या अपने दोषोंको दोष ही नहीं मानते।

९—अपने सम्बन्धमें किसीसे प्रशंसा सुनकर फूल न जाओ बल्कि स्वयं अपनी दृष्टिसे देखो और अपने दोषोंको स्मरण करो।

१०—कई पदार्थोंतक बुद्धि नहीं पहुँच सकती और न प्रत्यक्ष प्रमाणसे वे ग्रहण ही होते हैं, अतः बिना किसी संशय और सङ्कोचके उनकी सत्तामें विश्वास करना ही उत्तम और श्रेयस्कर है।

मोहिनी बाँसुरी

यमुन-हिलोरको बिभोर कर कंपनमें, पिक काकलीका करती तू उपहासु री।
होते मौन मोर-मृग देते तृण छोड़ और, नव कलिकान मध्य भरती बिकासु री॥
बोधि जात तानन्निके बाननिसों प्राननिको, बिकल करति मति बिषम उसासु री।
असुरन सुरन सुरन गुन बाँधि राखे, बंसीवारे! तेरी बिस्व-मोहिनी है बाँसुरी॥

—प्रमोद त्रिपाठी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तुलसीकृत रामायणमें भेदभक्ति

(लेखक—श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी)

श्रीमद्गोस्वामीजीद्वारा रचित श्रीरामचरित-मानसके सातों सोपानोंमें 'भेदभक्ति' शब्द केवल तीन ही प्रसंगोंमें मिलता है। इन तीन स्थलोंके अतिरिक्त यह शब्द ग्रन्थभरमें और कहीं नहीं आया है। जिन तीनों प्रसंगोंमें भेदभक्तिका प्रयोग हुआ है वहाँका रहस्य बहुत गम्भीर, परम मनोहर एवं भक्तजनोंके लिये महान् लाभदायक है। उससे उपासनासम्बन्धी अनेकों शंकाओंका सर्वथा समाधान होकर अज्ञ जीवोंके भ्रमात्मक सन्देहोंका समूल निवारण हो जाता है। अतएव ऐसे मार्मिक प्रसंगोंका स्पष्टीकरण, परम आवश्यक जानकर श्रीमानसप्रेमियोंकी सेवामें पुष्पाञ्जलिरूपसे समर्पण किया जा रहा है। यद्यपि भक्तिसम्बन्धी प्रसंगोंपर विचार समर्पण करनेका साहस इस दीनके लिये ठीक 'साक-बनिक मनि-गुन-गन जैसे' का ही रूपक है, परन्तु 'सब ते सेवकधरम कठोरा' के भी मार्मिकोंके निश्चयानुसार 'आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा' को परम धर्म जानकर उसीके आधारपर यह ढिठाई हो रही है। अतः अपनी विवशताका निवेदन करते हुए दीन-भावसे प्रार्थना करता हूँ कि—

छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई। सुनिहहिं बालबचन मन लाई॥

भेदभक्ति शब्द तीन जगह कहाँ-कहाँ आया है।

१—अरण्यकाण्डान्तर्गत श्रीशरभंगजीके प्रसंगमें—

'तातें मुनि हरिलीन न भयऊ। प्रथमहि भेदभगति बर लयऊ॥'

२—लङ्काकाण्डान्तर्गत श्रीदशरथजी महाराजके प्रसंगमें—

'ताते उमा मोच्छ नहिं पावा। दसरथ भेदभगति मन छावा॥'

३—उत्तरकाण्डान्तर्गत श्रीकाकभुशुण्डिजीके प्रसंगमें—

श्रीभुशुण्डिजीने श्रीगरुड़जीसे कहा है—

'तातें नास न होइ दासकर। भेदभगति बाढ़ै बिहंगवर॥'

उपर्युक्त तीनों चौपाइयोंमें 'तातें' शब्दका प्रयोग ही पूर्वप्रसंगकी अपेक्षा निश्चित कर रहा है। अतः पूर्वापरसमन्वयसंयुक्त प्रत्येक प्रसंग स्पष्ट हो जाने-से ही भेदभक्तिका स्वरूप लक्षित होगा। इसलिये क्रमानुसार पहले श्रीशरभंगजीका प्रसंग स्पष्ट किया जा रहा है।

भगवान् श्रीरघुनाथजी महाराज वनके मार्गमें विराध असुरका वधकर उसे निजधाम भेजकर श्रीशरभंगजीके यहाँ पधारे हैं—

पुनि आये जहँ मुनि सरभंगा। सुंदर अनुज जानकी संगा॥
देखि रामपदपंकज, मुनिवर लोचन भृंग।
सादर पान करत अति, धन्य जनम सरभंग॥
कह मुनि सुनु रघुबीर कृपाला। संकर-मानस-राज-मराला॥
जात रहेउँ बिरंचिके धामा। सुनेउँ श्रवन बन अहहिं रामा॥
निरखत रहेउँ पंथ दिन-राती। अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती॥
नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्हीं कृपा जानि जन दीना॥
सो कछु देव न मोहि निहोरा। निज पन राखेहु जन-मन-चोरा॥
तबलगि रहहु दीनहित लागी।
जबलगि तुमहि मिलौं तनु त्यागी॥
जोग जग्य जप तप जत कीन्हा।
प्रभु कहँ देइ भगति बर लीन्हा॥
यहि बिधि सर रचि मुनि सरभंगा।
बैठे हृदय छाँड़ि सब संगा॥
सीता अनुज समेत प्रभु, नील जलद तनु स्याम।
मम हिय बसहु निरंतर, सगुनरूप श्रीराम॥
अस कहि जोग-अगिनि तनु जारा। रामकृपा बैकुंठ सिधारा॥
तातें मुनि हरि लीन न भयऊ। प्रथमहि भेदभगति बर लयऊ॥
रिषिनिकाय मुनिबर गति देखी।
सुखी भये निज हृदय बिसेखी॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अस्तुति करहिं सकल मुनिबृंदा।
जयति प्रनतहित करुनाकंदा॥
तब रघुनाथ चले बन आगे।
मुनिबरबृंद सकल सँग लागे॥

महर्षि शरभंगजीके अगाध प्रेमका प्रमाण उपर्युक्त दोनों दोहोंसे ही स्पष्ट है, जो उनकी भक्तिमणि (रत्न) के उपक्रम और उपसंहारमें साक्षात् प्रेमसम्पुटरूप रचे गये हैं। प्रथम दोहेमें श्रीसरकारके देखते ही उस अनुपम विग्रह-कमलमें उनके लोचन भृंग होकर जा लिपटते हैं, जिस अलौकिक छवि-मकरन्दके सादरपानसे शिव, श्रीभुशुण्डि और श्रीयाज्ञवल्क्य तथा ग्रन्थकार श्रीगोस्वामीजी इत्यादि चारों वक्ता एकमुख होकर 'धन्य जनम सरभंग' की घोषणा कर रहे हैं। दूसरे दोहेमें उन्हीं 'नील जलद तनु स्याम सगुनरूप' श्रीरामजीको निरन्तर 'हिय' में ही बसा लिया गया है। इसप्रकार 'जग जनम भये का लाभ' लेकर कृतार्थ होते हुए मुनि योगाग्निसे तनको जलाकर श्रीरामकृपासे साक्षात् नित्यविभूति (वैकुण्ठ) में नित्य कैंकर्यपदको प्राप्त होते हैं।

अब इस विलक्षण सम्पुटके अन्दरका अनुपम रत्न (भक्तिमणि) मानसी जौहरियोंके मानसचक्षु (हृदयनेत्रों) के समीप विशुद्ध बुद्धिरूपी कसौटीपर कसकर परखनेके लिये सर्वप्रथम महर्षि शरभंगजीके इस वाक्यपर ही विचार किया जा रहा है कि—

जात रहेउँ बिरंचिके धामा। सुनेउँ श्रवन बन अइहैं रामा॥

आपका कहना है कि मैं ब्रह्माजीके धाम(ब्रह्मलोक) को जा रहा था, कानोंसे सुना कि श्रीरामजी वनमें ही आवेंगे। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि महर्षि ब्रह्माके लोकको क्यों जाते थे तथा यहाँ किसलिये उसको बता रहे हैं? इसका उत्तर आपकी आगे प्रार्थना की हुई अभिलाषासे स्पष्ट हो रहा है कि—

तब लगि रहहु दीन हित लागी। जब लगि तुमहिं मिलौं तनु त्यागी॥

इस दीनके हितार्थ तबतक सरकार यहाँ ठहरे रहें जबतक कि मैं तन त्यागकर प्रभुमें लीन न हो जाऊँ। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्माके लोकमें इसी अभिप्रायसे अर्थात् श्रीभगवान्‌में लीन होनेके लिये ही आप जा रहे थे। सरकारसे बताते इसलिये हैं कि ब्रह्मधाममें होकर जिस परमात्मा-में लीन होनेके लिये मैं जा रहा हूँ वही परमात्मा (भूमिका भार उतारनेके लिये अवतार लेकर) स्वयं इस वनमें ही पधार रहे हैं। ऐसा सुना तब विचार किया कि अब मुझको लोकलोकोत्तर पार करते हुए ब्रह्मलोक पहुँचकर ब्रह्माकी आयुपर्यन्त प्रतीक्षा करके तब ब्रह्ममें लीन होनेका प्रयास करनेकी क्या आवश्यकता है? यहीं उन्हीं साक्षात् (श्रीरामजी) में क्यों न लीन हो जाऊँ, वे ही तो ये हैं और मुझे घर बैठे प्राप्त होनेवाले हैं। ऐसा निश्चयकर—

'निरखत रहेउँ पंथ दिन-राती। अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती॥'

तभीसे दिन-रात बाट जोह रहा था। अब आज प्रभुका दर्शन पाकर हृदय शीतल हो गया। हे नाथ! मैं सर्वसाधनहीन दीन हूँ। हे जनोंके मनको चुरानेवाले! आपने अपने प्रणतपाल विरदको पालन करनेके लिये ही इस जन (दास) पर कृपा की है। अब थोड़ी देर आप ठहर जावें, जिससे कि मैं आपमें लीन होकर सायुज्य-मुक्तिको प्राप्त हो जाऊँ। श्रीशरभङ्गजी ब्रह्मविद् योगिराज थे, और योगकी सिद्ध-दशाको प्राप्त होकर आप सायुज्य-मुक्ति (ब्रह्ममें लीन होने) की तैयारीमें थे। इसीसे विरञ्चिलोक (ब्रह्मधाम) जा रहे थे।

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः॥
(गीता ८। २४)

ब्रह्मवेत्ता योगियोंका यह अनावृत्तिमार्ग अग्निलोक,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सूर्यलोकादि लोकोंको पार करके ब्रह्माके लोकमें प्राप्त हो, ब्रह्माके साथ मुक्त होकर 'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम' का ही होता है। अर्थात् 'त्रिपादस्यामृतं दिवि' श्रीत्रिपादविभूतिमें, जो विरजापार नित्यलोक श्रीवैकुण्ठधाम है, वहीं मुक्त जीव चारों प्रकारकी मुक्तियोंको प्राप्त हुआ करते हैं। सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य—ये चार प्रकारकी मुक्तियाँ हैं। इन चारोंसे पुनरावृत्ति नहीं होती। 'न पुनरावर्तते' इति श्रुतिः। सालोक्य-मुक्तिसे तात्पर्य उसी दिव्यलोकको प्राप्त होनेसे है, जहाँका वर्णन—

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥
(गीता १५। ६)

—इसप्रकार गीतामें किया गया है।

सामीप्य-मुक्तिसे तात्पर्य उस परम प्रभुके नित्य-समीपताका ही है। सारूप्य-मुक्तिसे तात्पर्य उस परम धाममें भगवत्सदृश रूपकी प्राप्ति है। और सायुज्य-मुक्तिसे अभिप्राय उस परम प्रभुमें संयोगसे है। किसी भाँति मिल जाना (लीन हो जाना वा अलङ्कारादि होकर आभूषणवत् सदा दिव्य अङ्गपर रहना)। श्रीशरभङ्गजी इसी सायुज्य-मुक्तिके अधिकारी थे और इसीकी प्राप्तिके लिये भगवान् श्रीरामचन्द्रजी-को ठहराकर लीन हो जानेपर तत्पर थे। परन्तु जब उस सगुण स्वरूपकी रूपमाधुरीकी अनुपम छटाने अपना प्रभाव डालकर योगिराज, ब्रह्मज्ञानी श्रीशरभङ्गजीके हृदयमें ऐसी स्फुरणा उत्पन्न कर दी जैसा कि श्रीमद्भागवतमें भगवान् कपिलदेवने कहा है कि—

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥
(३। २९। १३)

भगवज्जनोंका सर्वस्व तो नित्यकैङ्कर्य ही है जिसके लिये आलवन्दारस्तोत्रमें स्वामी यामुनाचार्यजीके भी वचन हैं—

भवन्तमेवानुचरन्निरन्तरं
प्रशान्तनिःशेषमनोरथान्तरः।
कदाहमैकान्तिकनित्यकिङ्करः
प्रहर्षमेष्यामि सनाथजीवितम्॥

तथा जिसके सम्बन्धमें श्रीभुशुण्डिजी साक्षात् दर्शनके समय समस्त वरदानोंके मिलनेपर भी यों विचार करते हैं कि—

प्रभु कह देन सकल सुख सही। भगति आपनी देन न कही॥
भजनहीन सुख कौने काजा। अस बिचारि बोले खगराजा॥
अबिरल भगति बिसुद्ध तव, श्रुति पुरान जो गाव।
जेहि खोजत जोगीस मुनि, प्रभुप्रसाद सो पाव॥
भगतकलपतरु प्रनतहित, कृपासिंधु सुखधाम।
सोइ निज भगति देहु अब, कृपासिंधु श्रीराम॥

उसी सर्वोच्च परम लाभके विचारसे श्रीचतुर-शिरोमणि शरभङ्गजीने सायुज्य-मुक्ति (लीन होने) के बदले 'भेदभगति' के वरको प्राप्त किया। यथा—

जोग जज्ञ जप तप जत कीन्हा। प्रभु कहँ देइ भगति बर लीन्हा॥
× × ×
तातें मुनि हरिलीन न भयऊ। प्रथमहिं भेदभगति बर लयऊ॥

इसका कारण यह है कि—

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करै उपाई॥
तथा मोच्छ-सुख सुनु खगराई। रहि न सकै हरिभगति बिहाई॥
अस बिचारि जे परम सयाने। मुकति निरादरि भगति लुभाने॥

तात्पर्य यह कि इस जीवको जब नित्यलोक श्रीपादविभूति (वैकुण्ठधाम) में नित्यकैङ्कर्य प्राप्त होता है तो सायुज्य आदि चारों मुक्तियोंका सुख तो अपने-आप उसके पासंगमें ही मिलता रहता है। उस दिव्यलोकमें रहकर ही भक्ति (सेवा) प्राप्त है, अतः सालोक्यमुक्तिका सुख हुआ। सेवा समीप रह-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कर होती है अतः सामीप्यमुक्तिका सुख हुआ, भगवत्पार्षद सब चतुर्भुज भगवान्‌के ही स्वरूपानुरूप रहकर सेवा करते हैं अतः सारूप्यमुक्तिका सुख हुआ, और बिना स्पर्शके सेवा कैसे हो ? अतः सायुज्यमुक्तिका सुख मिला। इसप्रकार नित्यभक्ति-वालेको चारों मोक्षोंका सुख भी प्राप्त है एवं नित्य-धामसे पुनरावृत्तिका तो भय है ही नहीं। श्री-भगवान्‌की सेवा जो चारों प्रकारसे मुक्त जीवोंको भी दुर्लभ है, भेदभगतिवालोंको अधिक मिल रही है। ऐसा विचारकर जो 'परम सयाने' जन हैं वे मुक्तियोंको न चाह (निरादर) कर भक्तिके लिये ही लुभाते हैं। यही शरभङ्गजीने किया। नहीं तो, यह स्पष्ट बात है कि कोई भी विचारशील पुरुष बोध रहते हुए किसी बड़ी चीजके बदलेमें छोटी चीजको स्वीकार-तक न करेगा। तब फिर स्वयं बदलकर कोई अच्छी गतिसे बुरी गतिको क्यों लेगा ? इसलिये लीन होने (सायुज्यमुक्ति) से भेदभक्तिका दर्जा कम मान लेना अपना अज्ञान है।

यदि कोई यह शङ्का करे कि 'भेद' शब्द लगा है इसलिये भेदभगति कोई भेदबुद्धिकी चीज होगी तो इसके समाधानके लिये स्वयं मानसग्रन्थका ही मूल-पद प्रमाण है, जिससे सिद्ध होता है कि भेदभक्ति सगुण उपासनाको ही कहते हैं, जो आगे श्रीदशरथजीके प्रसङ्गमें आवेगा। जब सगुण उपासक मोक्ष स्वीकार नहीं करते, तब उन्हें भगवान् निज भक्ति प्रदान करते हैं। श्रीशरभङ्गजी प्रथम किसी अवतारस्वरूप (सगुण विग्रह) के उपासक न होकर निराकार ब्रह्मकी निर्गुण उपासना (अभेदभक्ति) में रत थे। अतः योग, यज्ञ, जप, तपादि करके सायुज्यमुक्तिके पूर्ण अधिकारी होकर लीन होनेके लिये ब्रह्मके परमधामको जा रहे थे, परन्तु जब श्रीरामजीके स्वयं पधारनेकी बात मालूम हुई, तब उन्होंने श्रीरामावतारमें ही उपास्य (ब्रह्म) निष्ठा करके उन्हींके सगुण विग्रहमें लीन हो जाना निश्चय किया। इससे सगुणरूप श्रीरामजीके सगुण उपासकका दर्जा आ गया। और उस सगुण प्रेमके कारण ही (सगुण उपासना) का ही सिद्ध वर लेकर उन्होंने मुक्तिका त्याग कर दिया और यही अभीष्ट स्पष्ट प्रकट भी है कि—

सीता अनुज समेत प्रभु, नील जलद तनु स्याम।
मम हिय बसहु निरंतर, सगुनरूप श्रीराम॥
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। रामकृपा बैकुंठ सिधारा॥

अब 'वैकुण्ठ' शब्दके भ्रमको भी निवृत्त करना आवश्यक है। विचार करना चाहिये कि सायुज्य (लीन होनेवाली) मुक्तिको न लेकर कौन ऐसा मूर्ख है जो जन्म-मरणवाले लोकको जाना स्वीकार करेगा। तात्पर्य यह है कि जिसको स्वतः ब्रह्ममें लीन होनेसे नित्यलोककी सायुज्यमुक्ति मिल रही है, वह अपनी इच्छासे उसके बदलेमें आवागमनवाले किसी लोकमें जाना माँगकर अपनी सारी बनी-बनायी बातको बिगाड़कर जन्म-मरणके दुःखका भागी बनेगा यह कैसे सम्भव है ? फिर जो भगवद्भक्त भगवान्‌की सेवाके लिये ही मुक्तिका भी निरादर करता हो—

बैठे हृदय छाँड़ि सब संगा।

सकृत्त्वदाकारविलोकनाशया
तृणीकृतानुत्तमभुक्तिमुक्तिभिः।
महात्मभिर्मामवलोक्यतां नय
क्षणेऽपि ते यद्विरहोऽति दुस्सहः॥
(आलवन्दारस्तोत्र)

जाहि न चाहिय कबहुँ कछु, तुमसन सहज सनेह।
बसहु निरंतर तासु मन, सो राउर निज गेह॥

ऐसे अनन्यनिष्ठ भक्तको यदि भगवान् पुनरावृत्तिवाले

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वैकुण्ठलोकमें भेज देंगे, जहाँसे उसको पुनः संसारदुःख भोगनेके लिये आना पड़े तो यह कितने परितापकी बात हो जायगी । तब तो भगवत्स्नेहकी महिमा, भगवान्‌की भक्तवत्सलता एवं निष्काम भजनकी महत्ता आदि सभी विधानोंका सत्यानाश होकर समस्त शास्त्र ही व्यर्थ हो जायँगे । जिस 'रामकृपा' का उक्त पदमें प्रयोग हुआ है कि 'रामकृपा बैकुण्ठ सिधारा' उस रामकृपाको फिर श्रीरामजीकी अकृपा (कोप) के अर्थमें बदलना पड़ेगा । अतएव यहाँ वैकुण्ठका अर्थ नित्यधाम श्रीत्रिपादविभूति न करके लीलाविभूति ब्रह्माण्डान्तर्गत वैकुण्ठ कर लेना भी अपने अज्ञानका सूचक होकर 'निज अज्ञान रामपर धरही' का ही अपचार होगा । अतः श्रीशरभंगजी भेदभक्तिके प्रतापसे साक्षात् त्रिपादविभूति विरजापार नित्यवैकुण्ठधाममें नित्यकैङ्कर्यके भागी बन चारों मुक्तियोंसे भी ऊँचे दर्जेपर गये हैं । भगवान्‌की सगुण उपासना (भेदभक्ति) की ऐसी महिमा प्रकट करनेके लिये ही शरभंगजीका प्रसंग ग्रन्थमें इसप्रकार वर्णित हुआ है ।

२—अब श्रीदशरथजीका प्रसंग लीजिये—

तेहि अवसर दसरथ तहँ आये ।
तनय बिलोकि नयनजल छाये ॥
सहित अनुज प्रनाम प्रभु कीन्हा ।
आसिरबाद पिता तब दीन्हा ॥
तात सकल तव पुन्य प्रभाऊ ।
जीत्यौ अजय निसाचर राऊ ॥
सुनि सुतबचन प्रीति अति बाढ़ी ।
नयनसलिल रोमावलि ठाढ़ी ॥
रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना ।
चितै पितहिं दीन्हें दृढ़ ग्याना ॥
ताते उमा मोच्छ नहिं पावा ।
दसरथ भेदभगति मन लावा ॥
सगुन उपासक मोच्छ न लेहीं ।
तिन कहँ राम भगति निज देहीं ॥
बार बार करि प्रभुहिं प्रनामा ।
दसरथ हरषि गये निज धामा ॥

लङ्का-विजय हो जानेपर जब ब्रह्मादि देवता श्रीरघुनाथजीकी स्तुति करनेके लिये वहाँ आये, उसी अवसरपर श्रीदशरथजी महाराजका सुरधामसे आना वर्णित है । स्वायम्भुवमनुस्वरूपमें पहले ही आपने वर ले लिया था कि—

सुतबिषयक तव पद रति होऊ । मोहिं बरु मूढ़ कहै किन कोऊ ॥

अतएव आपके हृदयमें वही पुत्रभावकी भावना सुरधाम जानेपर (शरीरान्त होनेपर) भी उक्त वरके प्रसादसे बनी रहे । अतः 'तनय बिलोकि नयन जल छाये' और उसी भावकी पुष्टि श्रीप्रभुजीकी ओरसे भी की गयी । जैसे 'सहित अनुज प्रनाम प्रभु कीन्हा ।' पिताका आशीर्वाद लेकर 'तात' सम्बोधनमें पिताके ही पुण्यप्रभावसे विजय होना कहा गया है परन्तु जब 'सुनि सुतबचन प्रीति अति बाढ़ी' नेत्र सजल हो गये, रोमाञ्च हो आया, तब श्रीरघुनाथजीने प्रथम प्रेमका अनुमान करके कि 'जैसे पहले वियोग न सह सकनेके कारण नरदेहका त्याग हो गया था इसी प्रकार पुनः यहाँसे विदा होनेमें वियोग फिर असह्य होकर इस सुरदेहका भी त्याग न हो जाय, इसलिये 'चितै पितहि दीन्हेउ दृढ़ ग्याना' पिताकी दशाको देखकर सरकारने दृढ़ ज्ञान दिया कि जिसमें देवशरीर छूटनेसे बच जाय । उस दृढ़ ज्ञानकी प्राप्तिसे यह लाभ हुआ कि पूर्ववत् अगाध प्रेम रहते हुए भी इस बार प्रेममें शरीर नहीं छूटा । अब यह प्रश्न खड़ा हो गया कि ज्ञानका फल तो मोक्ष है, केवल देव-शरीरके बचनेमें ज्ञानकी कौन-सी बड़ाई रही ? इसके समाधानमें यह कहा जाता है कि श्रीदशरथजी महाराजका मन भेदभगतिमें लगा था अर्थात् वे सगुण-उपासक थे । सगुण-उपासक मोक्ष नहीं लेते । (चाहते ही नहीं)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तब उन्हें श्रीरामजी निज भगति देते हैं। इसी कारण दशरथजी मोक्षको प्राप्त नहीं हुए। उनको नित्य-सेवामें स्वीकार किया गया और वे नित्यलोक अर्थात् त्रिपादविभूति नित्यधामको श्रीसरकारके साथ ही (जब लीलाधामसे स्वयं श्रीरघुनाथजी वैकुण्ठको पधारे तब) ले जाये गये। अतः उस दृढ़ ज्ञानने सेवक-सेव्य-भावको बोध करा देनेका काम किया जिससे पिता-पुत्र-भाव एकदम बदल गया। जैसे—

बार बार करि प्रभुहि प्रनामा। दसरथ हरषि गये सुरधामा॥

आनेके समय पुत्रभाव था, इसीलिये श्रीरामजीके प्रणाम करनेपर पितारूपसे उन्हें आशीर्वाद दिया। उन्हें तनय (पुत्र) भावसे देखा। सुतभावसे वचन सुनकर प्रीति बढ़ी, परन्तु जब दृढ़ ज्ञान प्राप्त हो गया, तब श्रीदशरथजीने सरकारमें प्रभुभाव निश्चय करके बारम्बार दासभावसे उनके चरणोंमें प्रणाम किया और प्रभु जबतक इस भू-लोकमें लीलाहेतु रहे तबतक (सदा सन्निधिका वियोग न सहन होनेके कारण ही) पुनः सुरधाममें ही लौटकर ठहरे। क्योंकि देवलोकसे भूमण्डलकी लीला देख सकनेका अवसर था। यदि ब्रह्माण्ड पार करके त्रिपाद-वैकुण्ठमें उसी समयसे चले जाते तो राजगद्दी आदिकी आनन्दलीला देखनेसे वञ्चित रह जाते, जो आपका पूर्वसे ही अभीष्ट भी था।

प्रभु भी अपने अनन्य भक्तोंकी सभी रुचि पूरा किये बिना नहीं रहते, यह भी विरद इसी बातसे बन गया। पश्चात् जब प्रजासहित रघुवंशमणिने निजधाम (पर-वैकुण्ठ) को प्रस्थान किया, तो सुर-लोकसे श्रीदशरथजी भी सेवामें साथ ही चले गये और सदा नित्यलोकमें नित्य-सेवा (निजभक्ति) की प्राप्तिमें, जो मुक्तिसे भी उच्च दर्जेकी है (जो सगुण उपासकोंको ही मुक्ति न लेनेपर प्रदान होती है) स्वीकार किये गये। 'तिन्ह कहँ राम भगति निज देहीं' का यही अर्थ ही है क्योंकि—

भज सेवायामित्याहुः या
भज इत्येष धातुर्वै सेवायां परिकीर्तितः।
तस्मात्सेवा बुधैः प्रोक्तः भक्तिशब्देन भूयसी॥

अतः जब 'भज' धातुसे बना हुआ भक्तिका सेवा अर्थ हुआ तो 'भक्ति निज दीन्ह' अर्थात् नित्य-स्वरूप भगवान्‌ने (अपनी कृपासे) नित्यरूपमें अपनी सेवा प्रदान की। जिनको इस रहस्यका बोध नहीं है वे बहुधा प्रश्न किया करते हैं कि—

राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर-बिरह, राउ गये सुरधाम॥

अन्तमें मुखसे राम-नाम उच्चारण करते हुए श्रीरामजीके प्रेममें मग्न होकर शरीर छोड़नेपर भी दशरथजी सुरधाम ही क्यों गये? मुक्त क्यों न हुए? उन्हें यह विचार करना चाहिये कि जब मरते समय अधमके मुखसे 'राम-नाम' निकल जानेमात्रसे मुक्ति मिल जाती है, यह वेदप्रमाण है—

मरतहुँ जासु नाम मुख आवा। अधमउँ मुक्त होइ श्रुति गावा॥

तब श्रीदशरथजी महाराज जो पूर्व-जन्मके स्वायम्भुवमनु थे, जिन्होंने पूर्व-जन्ममें ही नैमिषा-रण्यमें अपनी भक्तिमयी अनन्य भावनासे घोर तपके द्वारा साक्षात् परम प्रभुको प्राप्त करके सुत-विषयक पदरति (भक्ति) का वर प्राप्त कर लिया था। जिसकी पूर्तिके लिये साक्षात् परब्रह्म स्वयं आकर उनके पुत्र बने जिनके लिये कहा गया है—

अवधपुरी रघुकुल मनि राऊ। बेदबिदित तेहि दसरथ नाऊ॥
धरम धुरंधर गुननिधि ग्यानी। हृदय भगति मति सारँग पानी॥

ऐसे मुक्त आत्मा अन्त समयमें भगवत्प्रेममें 'श्रीराम, राम' कहते हुए शरीर छोड़ें और मुक्त न होकर आवागमनरूपी बन्धनमें डाले जावें ऐसा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कभी हो नहीं सकता। जो परम प्रभु मुखसे—अपना नाम निकलनेके नाते अजामिल-जैसे अधमोंको मुक्त कर देते हैं, वही परम परमात्मा भी दशरथजीको पदरति (भक्ति) का वर देकर, पिता बनाकर, अपने ही प्रेममें राम-राम कहकर प्राण त्यागते हुए शरीर छोड़नेपर संसारी दुःखके भोगनेको बन्धनमें डालेंगे, यह कैसे सम्भव है? अतएव श्रीदशरथजी महाराजने सगुणभक्तिके ही कारण स्वयं मोक्षको स्वीकार नहीं किया बल्कि मुक्तिलोकगत श्रीपरम-प्रभुकी नित्यसेवा (निजभक्ति) को सम्पादन करके नित्य कैङ्कर्यमें जा पहुँचे, जहाँ चारों मुक्तियों-का सुख अपने आप प्राप्त है। और इसी निष्ठासे श्रीसरकारके निजधाम पधारनेतक स्वर्गमें ही रुककर लीला-सुखका आनन्द लेते रहे।

कोई-कोई यह भी प्रश्न किया करते हैं कि दशरथजीके स्वर्गसे नित्यलोक वैकुण्ठमें जानेका क्या प्रमाण है? ग्रन्थमें तो सुरधाम ही जाना लिखा है 'तनु परिहरि रघुबर बिरह, राउ गये सुरधाम।' जिन महानुभावोंका यह प्रश्न है उन्हें 'राउ गये सुरधाम' के नीचेकी पंक्तियोंको अर्थात् दोहेके साथ ही रची हुई दोनों चौपाइयोंको पढ़कर कुछ विचार करना उचित है कि केवल स्वर्गप्राप्त प्राणीके लिये ऐसा क्यों कहा जा रहा है कि—

जियन मरन फल दसरथ पावा। अंड अनेक अमल जसु छावा॥
जियत राम बिधुबदन निहारा। रामबिरह करि मरन सँवारा॥

अर्थात् जीने और मरनेका जो वास्तविक लाभ है वह दशरथजीने ही प्राप्त किया। जीते समय साक्षात् परब्रह्म श्रीरघुनाथजीका मुखचन्द्र निरखते रहे और उन्हीं श्रीरामके विरहको मरणका हेतु बनाकर मरनेका भी वास्तविक फल प्राप्तकर मरणको भी सँवार लिया। मरणका सँवारना तभी सिद्ध होता है, जब जीव आवागमन (जन्म-मरण) दुःखसे रहित हो जाता है। स्वर्गलोक पुनर्जन्मका मिटानेवाला नहीं है। 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।' इसी प्रकार न मनुष्य-जीवनका फल ही स्वर्ग माना गया है। जिस ग्रन्थमें श्रीदशरथजीको जीवनफल पाना कहा जा रहा है, उसी ग्रन्थमें उत्तरकाण्डमें 'श्रीराम-गीता'में कहा गया है कि—

यहि तनुकर फल बिषय न भाई। स्वर्गहु स्वल्प अंत दुखदाई॥

जब इस मनुष्य-तनका फल स्वर्ग भी नहीं है तब स्वर्गकी प्राप्ति होनेपर ही श्रीदशरथजीके लिये उपर्युक्त चौपाइयोंका कहा जाना अनर्थ सिद्ध हो जायगा। तथा ग्रन्थभरका अनुबन्धचतुष्टय, जो नीचे लिखे वाक्योंमें अभ्यसित है, व्यर्थ हो जायगा—

जो मैं राम तो कुलसहित, कहहि दसासन आइ।

यह श्रीमुखका 'आइ' शब्द नित्यलोकका ही सूचक है।

विवेकशीला कौशल्याजीका वचन है—

जियइ मरइ भल भूपति जाना। मोर हृदय सत कुलिस समाना॥

महर्षि भारद्वाजका कथन है—

दसरथ-गुनगन-बरनि न जाहीं। अधिक कहा जेहि सम जग नाहीं

श्रीवशिष्ठजीका विचार है—

रामबिरह तजि तन छनभंगू। भूप सोचकर कौन प्रसंगू॥

श्रीभरतजीका वाक्य है—

भूपति मरन प्रेमपन राखी। जननी कुमति जगत सब साखी।

श्रीमुखवचन है—

राखेउ राउ सत्य मोहिं त्यागी। तनु परिहरेउ प्रेमपन लागी॥

श्रीजनकजीका वचन है—

रामहिं राउ कहेउ बन जाना। कीन्ह आप प्रिय प्रेम प्रमाना॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीग्रन्थकारकी ही वन्दना है—

बंदौं अवध भुआल, सत्य प्रेम जेहि रामपद ।
बिछुरत दीनदयाल, प्रियतन तृनइव परिहरेउ ॥

सत्यप्रेम एक दशरथजीके लिये कहा, पुनः ग्रन्थभरमें किसीके लिये नहीं कहा गया है ।

इसलिये इस प्रसङ्गमें भी भेदभगति श्रीत्रिपाद-विभूति नित्यवैकुण्ठमें नित्यकैङ्कर्यके ही अर्थमें है, जो मुनियोंसे भी ऊँचे दर्जेकी स्थिति है ।

३—अब श्रीकागभुशुण्डिजीके प्रसङ्गपर भी विचार किया जाता है ।

प्राकृत सिसु इव लीला, देखि भयउ मोहिं मोह ।
कौन चरित्र करत प्रभु, चिदानंद संदोह ॥

इतना मन आनत खगराया । रघुपति प्रेरित ब्यापी माया ॥
सो माया न दुखद मोहि काहीं । आन जीव इव संसृति नाही ॥
नाथ इहाँ कछु कारन आना । सुनहु सो सावधान हरि जाना ॥
ग्यान अखण्ड एक सीतावर । मायावस्य जीव सचराचर ॥
जो सबके रह ग्यान एकरस । ईस्वर जीवहि भेद कहहु कस ॥
मायावस्य जीव अभिमानी । ईस्वर बस माया गुनखानी ॥
परबस जीव स्वबस भगवंता । जीव अनेक एक श्रीकंता ॥
मुधाभेद जद्यपि कृतमाया । बिन हरि जाइ न कोटि उपाया ॥

रामचंद्रके भजन बिन, जो चह पदनिर्बान ।
ग्यानवंत अपि सो नर, पसु बिनु पुच्छ बिषान ॥
राकापति षोडस उगहिं, तारागन समुदाइ ।
सकल गिरिन्ह दव लाइये, बिनु रबि राति न जाइ ॥

ऐसेइ बिनु हरिभजन खगेसा । मिटइ न जीवनकेर कलेसा ॥
हरि सेवकहि न ब्याप अबिद्या । प्रभुप्रेरित ब्यापै तेहि बिद्या ॥
तातें नास न होइ दासकर । भेदभगति बाढ़ै बिहंगबर ॥

श्रीकागभुशुण्डिजी नीलशैल (उत्तर दिशा) से अयोध्यामें श्रीरामावतारकी बाललीलाके समय आकर कागरूपसे ही प्रभुका जूँठन-प्रसाद आँगनमें लेते हुए कृतार्थ हो रहे थे उसी समय साधारण बालकोंकी भाँति श्रीसरकारकी माधुर्य-लीला देखकर उन्हें जो मोह हुआ और जिसप्रकार श्रीरघुनाथजीकी प्रेरणासे विद्या-मायाका सञ्चार होकर उनकी सगुणा उपासना (भेदभक्ति) प्रौढ़ हुई, उसी प्रसंगमें यह भेदभक्ति शब्द तीसरी बार आया है । यह तो ग्रन्थमें ही प्रमाण है कि श्रीकागजीकी अविद्या-माया प्रथमसे ही निवृत्त थी । 'ब्यापै तहँ न अविद्या, जोजन एक प्रयंत' । जीवके लिये अविद्या-माया ही दुःखद है 'जा बस जीव परा भवकूपा' जिसका स्वरूप 'मैं अरु मोर तोर तैं (माया)' है; विद्या-माया दुःखद नहीं है । इसका स्वरूप 'गो गोचर जहँ लगि मन जाई' के साथ ही—

एक रचै बस गुनगन जाके । प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके ॥

—बतलाया गया है । यही कारण था कि भुशुण्डिजीको यह दुःखद नहीं प्रतीत हुई । 'सो माया न दुखद मोहिं काहीं' दूसरे जीवोंकी भाँति संसार बढ़ानेवाली न होकर वह विद्या-माया प्रभुकी प्रेरणासे भेदभक्तिको बढ़ानेवाली थी 'आन जीव इव संसृति नाहीं' तथा यह भी सिद्धान्त आगे निश्चित किया गया है कि—

हरि सेवकहि न ब्याप अबिद्या । प्रभु प्रेरित ब्यापै तेहि बिद्या ॥

अर्थात् भगवत्-सेवकोंको अविद्या-माया (मैं, मोर, तैं, तोर) व्यापती ही नहीं, उन्हें जब कभी उनके प्रेमकी बाधाका कोई संयोग भक्तरक्षक भगवान् देखते हैं, तो उनके हितार्थ अपनी विद्या-मायाको प्रेरित करके सब प्रकारकी कोर-कसर दूर कर शुद्ध प्रेमस्वरूपा श्रीभेदभक्ति (निज-सेवा) को दृढ़ कर देते हैं । अतएव 'तातें नास न होइ दासकर' इसीसे भक्तोंका कदापि पतन नहीं होता । 'कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति' (गीता) उनकी सगुण उपासना (भेदभक्ति) की सदा वृद्धि होती जाती है । इस प्रसंगमें भी भेदभक्तिकी महिमा—

रामचंद्रके भजन बिन, जो चह पद निर्बान ।
ग्यानवंत अपि सो नर, पसु बिनु पुच्छ बिषान ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

—आदिद्वारा ज्ञानकी अपेक्षा स्पष्टरूपसे ऊँची बतलायी गयी है। दूसरे दोहेमें भी 'राकापति षोडस' से षोडशों प्रकारकी उपासना तारागणसमुदायसे नाना प्रकारके कर्म एवं 'सकल गिरिन्ह दव लाइये' से ज्ञानाग्निको उपमेय बनाकर, कर्म, उपासना और ज्ञान तीनोंसे मायारूपी रात्रिकी निवृत्ति न होकर श्रीसरकारकी भेदभक्ति (हरिभजन) को ही रविका दर्जा देकर जीवके क्लेशकी आत्यन्तिकी निवृत्ति बतलायी गयी है। क्योंकि यद्यपि मायाकृत नानात्व भेद 'मुधा' (मृषा) है, परन्तु 'बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया' सिद्धान्त कर रहे हैं। इस वाक्यमें भी उसी भगवद्भक्ति-की ही उत्कृष्टताका लक्ष्य है। 'ज्ञान अखंड एक सीतावर' इत्यादि प्रसंगसे यह सूचित कर रहे हैं कि सगुण उपासकोंकी अपूर्णता भी भेदभक्तिके ही नाते श्रीसरकारसे विद्या-मायाके द्वारा पूर्ण की जाती है। उन्हें कदापि पतनका भय नहीं। इसप्रकार श्रीभेद-भक्तिमें 'साधन सिद्ध रामपद नेहू' का ही स्वरूप लक्षित है। अर्थात् श्रीअवतारूप सगुण विग्रहकी उपासना साधन भेदभक्ति है एवं श्रीअवतारीरूप नित्य सगुण विग्रहकी नित्य सेवा (उपासना) सिद्ध-रूपा भेदभक्ति है जो चारों मुक्तियोंसे भी उच्च श्रेणीकी स्थिति है।

भक्त-गाथा

भक्त भद्रतनु और उनके गुरु दान्त

चीन कालकी बात है। पुरुषोत्तम-पुरीमें भद्रतनु नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह देखनेमें बहुत ही सुन्दर, सदाचारी, प्रिय और मधुर बोलनेवाला था और पवित्र कुलमें उत्पन्न हुआ था। माता-पिता लड़कपनमें ही उसे छोड़कर परलोक सिधार गये थे। कोई संरक्षक और मार्गदर्शक न रहनेसे वह धीरे-धीरे कुसङ्गतिमें पड़ गया। जवानीके जोशीले खूनमें मनुष्य विवेकहीन हो जाता है; फिर यदि कोई सँभालनेवाला न रहे, पासमें पैसे हों और कुसङ्गति मिल जाय, तब तो पूरा ही उन्माद हो जाता है। भद्रतनु भी बुरे संगमें पड़कर गिर गया; सत्सङ्ग, स्वाध्याय और नित्य-कर्मके त्यागसे उसका जीवन सर्वथा विशृङ्खल हो गया। उसने ब्राह्मणाचार, सत्यभाषण, गुरु तथा अतिथिकी पूजा आदि सभी सत्कर्म छोड़ दिये। धर्म-निन्दा, पर-धन और पर-स्त्रीमें अनुराग, जुआ, चोरी और शराब आदि समस्त दोष क्रमशः उसमें आ गये। वह परलोकका और ईश्वरका भय छोड़कर पूरा पाखण्डी बन गया।

शहरसे कुछ ही दूरपर सुमध्या नामकी एक परम सुन्दरी वेश्या रहती थी; बुरे सङ्गमें पड़नेके कारण उसका पतन हो गया था और उसे घृणित वेश्यावृत्ति ग्रहण करनी पड़ी थी, परन्तु उसके मनमें अपनी इस वृत्तिपर बड़ी घृणा थी। मन-ही-मन वह अपनी पतित अवस्थापर सदा पछताया करती और उससे छूटनेका मार्ग ढूँढ़ा करती थी। वह चेष्टा करती, परन्तु परिस्थिति-वश सफल न होती। एक बार मनुष्यका पतन हो जानेपर फिर उत्थान होना बड़ा कठिन होता है। भारी भीड़में जो गिर पड़ता है, वह प्रायः भीड़में कुचला ही जाता है, उठकर खड़ा होनेतकका उसे अवकाश ही नहीं मिलता। कुछ-कुछ ऐसी ही स्थिति

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुमध्याकी थी। परन्तु उसने हिम्मत नहीं हारी, और सतत चेष्टामें लगी रही। उसके हृदयमें धर्म, परलोक और ईश्वरपर बड़ी श्रद्धा थी। वह एकान्तमें रो-रोकर सरल अन्तःकरणसे सदा भगवान्‌से अपने उद्धारके लिये प्रार्थना करती। संसारमें न मालूम ऐसे कितने मनुष्य होंगे, जो बेचारे परिस्थितिमें पड़कर बुरा कर्म कर बैठते हैं, परन्तु जिनका हृदय बहुत अच्छा होता है और जो सदा बुराईसे लड़ते हुए अपनेको उस दशासे निकालनेकी चेष्टा करते रहते हैं। समाज उन्हें बुरा समझकर घृणा करता है, परन्तु कहीं-कहींपर तो घृणा करनेवाले कितने ही मनुष्योंसे उनका हृदय कहीं ऊँचा और पवित्र होता है। अस्तु!

भद्रतनुका सुमध्यापर बड़ा अनुराग था। अवश्य ही उसके अनुरागमें विषयलम्पटताकी ही प्रधानता थी, वह उसके रूपानलका पतङ्ग बन रहा था। परन्तु सुमध्याकी ऐसी बात नहीं थी, उसने जागृत हृदयसे ही जगह-जगहसे घबराकर एक भद्रतनुको अपना तन सौंपा था और वह समय-समयपर भद्रतनुको बड़े प्रेमसे समझा-बुझाकर—जुआ, शराब आदि दोषोंके भयानक परिणाम बतलाकर उसे दोषमुक्त करनेकी चेष्टा भी किया करती थी। उसके मनमें ब्राह्मणकुमारके पतनपर बड़ा दुःख था, और यद्यपि सुमध्याके पास आनेसे पहले ही भद्रतनु व्यभिचार-परायण हो चुका था परन्तु सुमध्या उसके इस पतनमें भी अपनेको ही कारण मानकर हृदयमें जला करती थी। परन्तु पेटका सवाल था, और उसे यह भी आशा नहीं होती थी कि मेरे समझानेसे भद्रतनु मान ही लेगा और अन्यत्र कहीं भी मुँह काला करने नहीं जायगा। इसीलिये वह बार-बार मन मसोसकर रह जाती और भद्रतनुको व्यभिचार छोड़नेके लिये कुछ भी नहीं कहती!

आज भद्रतनुके पिताका श्राद्ध है। श्राद्धमें श्रद्धा-भक्ति न होनेपर भी लोकलज्जाके भयसे भद्रतनु श्राद्ध करवा रहा है, परन्तु उसका चित्त सुमध्यामें लगा है। ज्यों-ज्यों विलम्ब होता है, त्यों-ही-त्यों उसके चित्तकी चञ्चलता और अकुलाहट बढ़ती जा रही है। श्राद्धके कार्यसे किसी तरह निपटकर वह सुमध्याके घर पहुँचा। अँधेरी रात थी, पानी बरस रहा था; परन्तु उसे कामवश उस समय कुछ भी नहीं सूझा। सुमध्याके घर पहुँचकर वह कहने लगा—'प्रिये! आज मेरे पिताका श्राद्ध था, इससे मुझे कुछ देर हो गयी। परन्तु मेरा दिल ही जानता है कि मैं इतनी देर किस तरह वहाँ रहा। श्राद्धमें मेरी रत्तीभर भी श्रद्धा नहीं है, न मैं किसी देवता या तीर्थको मानता हूँ; मुँहजले गाँवके लोगोंके डरसे मुझे श्राद्धका आडम्बर करना पड़ा। मेरे तो यज्ञ, योग, जप, तप, कुल, यश, नीति सब कुछ तुम्हीं हो; मैं तुम्हारी शरण हूँ, तुम्हारा बिना मोलका गुलाम हूँ; जो कहो वही करूँगा, परन्तु तुम्हारे बिना एक क्षण भी मुझसे नहीं रहा जाता। प्यारी! तुम्हारे मुखचन्द्रके सामने चन्द्रमा बेचारा क्या चीज़ है? मुझे न तो किसी तीर्थकी जरूरत है और न किसी देवताकी आवश्यकता। मैं तो तुम्हारे ही प्रेम-तीर्थमें नहाकर स्वर्ग-सुखका उपभोग करूँगा! देवता परलोकमें फल देते हैं; परन्तु तुम्हारी कृपासे मुझे तो यहीं नन्दनवनका आनन्द प्राप्त है, मुझे ग्रहण करो।' कामियोंके प्रलापका यह एक नमूना है!

सुमध्या सुन रही थी और मन-ही-मन भद्रतनुकी मूर्खतापर तरस खा रही थी। उसने सोचा, कैसा मोह है? हाड़-मांसके थैलेपर कैसी आसक्ति है? कामकी कैसी महिमा है? कामी पुरुषोंका कितना घोर पतन है जो उन्होंने स्त्रीके दोषपूर्ण शरीरका ही वर्णन करनेमें अपनी विद्या-बुद्धिका दुरुपयोग किया!!!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कुच आमिषकी गाँठ, कनकके कलस कहत छवि ।
मुख नित कफको धाम, कहत ससिके समान कवि ॥
झरत मूत्र अरु धातु, भरी दुरगंध ठौर सब ।
ताको चंपक-बेल कहत, रस-रेल ठेल दव ॥
यह नारि निहारी निंदतनु बँहके बिषयी बावरे ।
याको बड़ाय वाको बिरद बोले बहुत उतावरे ॥
(प्रतापसिंहजी)

अब सुमध्यासे नहीं रह गया, उसने जोशमें आकर कहा—"रे ब्राह्मण ! तुझको धिक्कार है ! तुझ-जैसे पुत्रकी अपेक्षा तो तेरे पिताका पुत्रहीन रहना अच्छा था, जो तू आज उनके श्राद्धके दिन वेश्याके रूपपर मोहित होकर नरककुण्डमें कूदने आया है !! तूने शास्त्र पढ़े थे, शास्त्रोंके इन वचनोंको क्या तू भूल गया कि 'जो मनुष्य श्राद्धके दिन स्त्री-प्रसंग करता है, परलोकमें उसके पितृगणोंको और स्वयं उसको वीर्य भक्षण करना पड़ता है ।' * मेरे शरीरमें ऐसी कौन-सी सुन्दर और पवित्र वस्तु है जिसपर तू इतना पागल हो रहा है ? अरे विचार तो कर—

कामिनीको अंग अति मलिन महा अशुद्ध,
रोम रोम मलिन, मलिन सब द्वार हैं ।
हाड़-मांस-मजा-मेद-चामसों लपेटि राखै,
ठौर ठौर रकत के भरेई भंडार हैं ॥
मूत्र औ पुरीष आँत एकमेक मिलि रहीं,
ऐसे ही उदरमाहिं विविध विकार हैं ।
सुंदर कहत, नारी नखसिख निंदारूप,
ताहि जो सराहैं सो तो निपट गँवार हैं ॥
उदर नरक, अध-द्वारनमें नरक, औ—
कुचनमें नरक, नरक भरी छाती है ।
कंठमें नरक, गाल-चिबुक नरक-बिंब,
मुखमें नरक, जीभ लारहू चुवाती है ॥
नाकमें नरक, आँख कानमें नरक चुवै,
हाथ-पाँव, नखसिख, नरक दिखाती है ।
सुंदर कहत, नारी नरकको कुंड यह,
नरकमें जाइ परे सोइ नरक पाती है ॥
(सुन्दरदासजी)

इसप्रकारके घृणित शरीरमें तुझे सौन्दर्यका मिथ्या भ्रम क्यों हो रहा है ? क्या मनुष्यशरीर पाप कमानेके लिये ही मिला है ? अधोगतिको पहुँचानेवाले इस घृणित वेश्याके शरीरमें तेरी जितनी आसक्ति है उतनी यदि भगवान्‌में होती तो न मालूम अबतक तू किस ऊँची स्थितिपर पहुँच चुका होता । अब भी चेत—

यमदण्डान्तरस्थायि जीवितञ्च शरीरिणाम् ।
तथापि पातकं मूढ कुरुषे निर्भयः सदा ॥
जलबुद्बुदवन्मूढ क्षणविध्वंसि जीवनम् ।
किमर्थं शाश्वतधिया करोषि दुरितं सदा ॥
ललाटे लिखितं यस्य मृत्युरित्यक्षरद्वयम् ।
स कथं कुरुते पापं समस्तक्लेशदायकम् ॥
अहो माया महाविष्णोरेका बलवती क्षितौ ।
यतः पापमिवामित्रं सञ्चेतुं हर्षितो जनः ॥
स्थानं पापाय मा देहि निजदेहे दुराशय ।
दहत्याश्रयमेनं हि वीतिहोत्र इव ज्वलन् ॥
(पद्मपुराण)

'अरे मूर्ख ! प्राणियोंका जीवन यमराजके दण्डके अधीन है, (चाहे जब मृत्यु आ जाती है) यह जानते हुए भी तू निर्भय होकर क्यों सदा पापोंमें लिप्त हो रहा है ? जीवनका क्या ठिकाना है ? यह तो जलके बुद्बुदेके समान एक ही क्षणमें ध्वंस हो जायगा । यह जानकर भी तू नित्य ऐसे पाप क्यों कर रहा है ? 'मृत्यु' ये दो अक्षर जिसके ललाटपर लिखे हैं, वह प्राणी सब प्रकार क्लेश देनेवाले पाप न जाने क्यों करता है ? अहो, संसारमें भगवान् महाविष्णुकी माया बड़ी बलवती है, जिससे लोग पापोंमें लगे रहकर उलटे हर्षित होते हैं । रे दुराशय, तू अपने शरीरमें पापको स्थान मत दे । जैसे अग्नि अपने आश्रितको

* दुर्भगे मैथुनं यस्तु कुरुते पितृवासरे ।
रेतोभोजिन एव स्युः पितरस्तस्य सोऽपि च ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दग्ध कर डालती है, इसी प्रकार पाप भी अपने आश्रितको भस्म कर डालते हैं !'

'भाई, विचार कर, और अपने मनको मुझसे हटाकर भगवान्‌में लगा दे। जो भगवान्‌के शरण होकर भगवान्‌को भजता है, वह भगवान्‌की दुस्तर मायासे सहजहीमें तर जाता है। भगवान् बड़े दयालु हैं ! वे तुझे आश्रय देंगे।' यों कहकर सुमध्या चुप हो गयी। उसका हृदय वैराग्यसे पूर्ण हो गया !

सुमध्याके वचनोंने भद्रतनुके मनपर जादूका काम किया। उसकी आँखें खुल गयीं। वह मन-ही-मन बड़ी गम्भीरतासे अपनी स्थितिपर सोचने लगा—हाय ! मैं महामूर्ख हूँ। एक वेश्यामें जितना ज्ञान है, उतना भी मुझ दुरात्मामें नहीं है। मैंने ब्राह्मणके शुद्ध वंशमें जन्म लेकर निरन्तर आत्माको पीड़ा पहुँचानेवाले पापोंको ही बटोरा। जब मृत्यु निश्चित है, जब मृत्युके बाद पापका दण्ड भोगनेके लिये यमराजके अधीन होना निश्चित है, तब मुझे अज्ञान-वश क्यों पाप करना चाहिये ? हा ! मैंने तो जप, तप, हवन, वेदाध्ययन, ब्राह्मणाचार, अतिथिसेवन, गुरुभक्ति, द्विजार्चन, पितृयज्ञादि कर्म या भगवान् श्रीपतिकी उपासना आदि कुछ भी नहीं किया। हा ! मुझे उत्तम गति क्योंकर मिलेगी ? इसप्रकार चिन्तामें डूबा हुआ भद्रतनु अपनेको सचेत करनेवाली सुमध्याके प्रति पूज्यभावसे प्रणाम करके वहाँसे उठकर चुपचाप चल दिया। सुमध्याने भी उसी क्षणसे वेश्यावृत्ति छोड़कर सदाके लिये श्रीभगवान्‌में मनको तल्लीन कर दिया।

भद्रतनु मन-ही-मन अपनी निन्दा करता हुआ जिज्ञासु-भावसे सर्वधर्मज्ञ महात्मा मार्कण्डेयके पास गया और उनके चरणोंमें प्रणाम कर कहने लगा—'भगवन् ! मैं पापियोंका सरदार हूँ; मैंने ब्राह्मण-वंशमें जन्म लेकर भी ब्राह्मणाचारका पालन नहीं किया; सदा परहिंसा, परधन और परस्त्रीके सेवनमें ही लगा रहा। मैंने बड़े-बड़े पाप किये हैं, पुण्यकर्म तो कभी भूलकर भी नहीं किया। अब मेरा इस घोर और भीषण दुःखप्रद संसार-सागरसे कैसे निस्तार होगा ? हे ब्रह्मविद्-श्रेष्ठ ! आप कृपामय हैं। मैं आपकी शरण हूँ, मेरा उद्धार कीजिये !'

मार्कण्डेयजीने भद्रतनुकी बात सुनकर बड़े ही स्नेहसे कहा—'हे ब्राह्मण ! तुम पाप करनेवाले होकर भी बड़े पुण्यात्मा प्रतीत होते हो। पापोंकी स्मृति, पश्चात्ताप, पापोंसे घृणा, पाप छोड़नेका निश्चय और संसार-सागरसे तरनेकी जिज्ञासा बड़े पुण्य-बलसे हुआ करती है। संसारमें अधिकांश लोग तो पापको पाप ही नहीं समझते और हर्षपूर्वक दिन-रात विषय-सेवन तथा पापाचारमें ही लगे रहते हैं। तुम्हारी ऐसी पवित्र बुद्धि हुई है, इससे मालूम होता है भगवान् तुमपर बहुत प्रसन्न हैं। जो पहले पाप करके भी पुनः पापसे निवृत्त होकर भगवत्-भजनमें लग जाता है, उसे अच्युतसेवी उत्तम पुरुष ही कहना चाहिये। भगवान् अपने भक्तको पापमें पड़े हुए देखकर उसे बचानेके लिये और सद्गतिकी प्राप्ति करानेके लिये उत्तम बुद्धि दिया करते हैं। तुमने प्रत्येक जन्ममें भगवान्‌की पूजा की है। अतएव शीघ्र ही तुम्हारा कल्याण होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है। परन्तु मैं इस समय अनुष्ठानमें लगा हूँ, इसलिये तुम्हें विशेष बातें नहीं बता सकूँगा। तुम दान्त नामक द्विजराज-के पास जाओ। वे सर्वतत्त्वज्ञ हैं। वहाँ तुमको इच्छित उपदेश मिलेगा।'

मार्कण्डेयजीकी आज्ञानुसार भद्रतनु दान्त-मुनिके परम रम्य और पवित्र आश्रमको गया। दान्त-मुनि शिष्योंसे घिरे हुए आश्रममें विराजमान थे। भद्रतनुने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वहाँ जाकर दान्तके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम किया और स्तवनके बाद दान्त-मुनिके पूछनेपर सरल-निःसंकोच-भावसे उनसे कहा—'हे महाभाग! मैं जातिका ब्राह्मण हूँ, परन्तु ब्राह्मणके आचारसे सर्वथा वर्जित हूँ। मेरा नाम भद्रतनु है। मैंने जीवनभर पाप-ही-पाप किये हैं। हे ब्रह्मन्! आप सर्वतत्त्वज्ञ हैं, मुझे कृपापूर्वक बतलाइये कि मुझ पापीके लिये संसार-बन्धनसे छूटनेका क्या उपाय है?'

दयालु दान्तने स्नेहके साथ भद्रतनुसे कहा—'भाई! तुम्हारी ऐसी बुद्धि हुई, सो भगवान्‌की बड़ी कृपा है। मैं अब तुम्हें वे उपाय बतला रहा हूँ, जिनके करनेसे जीवका संसार-बन्धन सहज ही कट जाता है। उपाय ये हैं—

१—पाषण्डके संसर्गका बिल्कुल त्याग करो।

२—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, असत्य और परहिंसाका यत्नपूर्वक त्याग करो।

३—दया, शान्ति और दमयुक्त हो सर्वत्र समदर्शन करते हुए सदा भगवान् श्रीकेशवकी शरण होकर उनकी आराधना करो।

४—भक्तियुक्त होकर निरन्तर भगवान् श्रीमहाविष्णुके नामोंको स्मरण करते हुए श्रेष्ठ अहोरात्र-व्रत करो।

५—प्रतिदिन अन्नदान, जलदान और नित्य पञ्चमहा-यज्ञ करो।

६—श्रीहरिकी कथा सुनो और उनके द्वादशाक्षर-मन्त्रका श्रद्धापूर्वक जप करो। इन साधनोंके द्वारा तुम्हें सर्वोत्तम ज्ञानकी प्राप्ति होगी, जिसके द्वारा तुम मुक्त हो जाओगे।

दान्त ऋषिके इन वचनोंको सुनकर भद्रतनुने कहा, 'भगवन्! मैं अति मूढ़ हूँ, मुझे सबका विवरण स्पष्ट करके समझाइये। मैं आपकी कृपासे अवश्य ही परम गतिको प्राप्त करूँगा।' इसपर दान्तने परम प्रसन्न होकर विवरण कहना आरम्भ किया। दान्त बोले—

१—वेदशास्त्रसम्मत कर्मका परित्यागकर दूसरा कर्म करनेवाला और अपने आचारको छोड़नेवाला पाषण्डी है; एवं वेदशास्त्रसम्मत कर्म करनेवाला, अपने आचारोंका पालन करनेवाला और पापकी इच्छा न रखनेवाला मनुष्य सज्जन है।

२—कामिनी, काञ्चन आदि विषयोंके संग्रहकी इच्छा-को काम कहते हैं; अपनी निन्दा सुनकर या मनके प्रतिकूल कार्य होनेपर जो हृदयमें जलन होती है उसको क्रोध कहते हैं। क्रोध सारे धर्मोंका नाश करनेवाला है; दूसरेके धन आदिको देखकर उसे पानेकी जो इच्छा होती है उसका नाम लोभ है; मेरी माता, मेरे पिता, मेरी स्त्री, मेरा पति, मेरा घर—इसप्रकारकी ममताका नाम मोह है; मैं महात्मा हूँ, धनवान् हूँ, मेरे समान पृथिवीपर कौन है, हृदयके इसप्रकारके भावको मद कहते हैं; लोग सदा मेरी निन्दा करते हैं, इसलिये मेरे जीवनको धिक्कार है, ऐसे मनके भावको, तथा मुझसे दूसरे अधिक धनवान्, श्रेष्ठ क्यों हैं, मैं ही सबसे अधिक धनी, श्रेष्ठ क्यों न होऊँ, ऐसे भावको मत्सर कहते हैं; सब लोगोंको सुख पहुँचानेवाले हितकर और यथार्थ वचनका नाम सत्य है, जो इसके विपरीत है, वही असत्य है; और दूसरेके ऐश्वर्य, स्त्री, पुत्र, शरीर, धन आदिके नाशकी चिन्ताका नाम हिंसा है। इन सबका त्याग करना चाहिये।

३—दूसरेके कष्टको यत्नपूर्वक दूर करनेकी इच्छाको दया कहते हैं; स्वल्प या जो कुछ भी मिल जाय, उसीमें सन्तुष्ट रहनेका नाम शान्ति है; कुत्सित

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कार्योंसे चित्त हटानेका नाम दम है; सुख-दुःख तथा मित्र-शत्रु आदिमें समदृष्टि ही समदृष्टि है; और भगवान्‌का आश्रय लेकर नैवेद्य, गन्ध-धूपादिद्वारा परम श्रद्धाके साथ श्रीहरिकी पूजा करना ही आराधना है।

४—मध्याह्न और रात्रिके भोजनका त्याग अहोरात्र-व्रत है तथा भगवान्‌के साथ अपना एकीकरण करना ही विष्णुस्मरण है।

५-६—ब्रह्मयज्ञ, नरयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ और भूतयज्ञ—ये पञ्चमहायज्ञ हैं, एवं 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' यही द्वादशाक्षर-मन्त्र है।

इसके बाद दान्त-ऋषिने भगवान्‌के दुर्लभ चतुर्वर्गफलप्रद एक सौ आठ नाम बतलाकर भद्रतनु-से कहा—'तुमको मैंने सब साधन बतला दिये हैं। मेरी बतलायी हुई विधिके अनुसार भक्तिपूर्वक भगवान्‌की आराधना करनेपर तुम अवश्य ही मोक्षको प्राप्त करोगे। जाओ, तुम्हारा कल्याण हो!'

भद्रतनु एकान्त स्थानमें जाकर, मन लगाकर, दान्तकी बतलायी हुई विधिके अनुसार, अनन्यचित्त होकर, भगवान्‌की उपासना करने लगा। भगवान्‌ने गीतामें कहा है कि यदि महापापी भी सम्यक् निश्चयपूर्वक अनन्यभावसे मुझको भजता है, तो वह साधु ही है और बहुत शीघ्र धर्मात्मा होकर परम पदको प्राप्त होता है। तदनुसार करुणामय श्रीहरि उसकी अनन्यभक्तिसे शीघ्र ही प्रसन्न हो गये और करोड़ों सूर्योंके समान तेजका प्रसार करते हुए सहसा उसके सामने प्रकट हो गये—

आविर्बभूव सहसा कोटिसूर्य इवांशुमान्॥

भद्रतनु भगवान् जगदीश्वर श्रीपतिके दर्शनकर मुग्ध हो गया। उसके समस्त पाप-तापोंका सदाके लिये नाश हो गया। भद्रतनुने मस्तकद्वारा भगवान्‌के चरणकमलोंमें प्रणाम किया और भगवान्‌का स्तवन करते हुए वह कहने लगा—

'हे नाथ! आपके चित्तमें जो दया है उसका वर्णन कौन कर सकता है, जरा नामक व्याधा आपके चरणोंमें बाण मारकर भी परम पदको प्राप्त हो गया। शिशुपाल आपकी निन्दा करके भी मोक्षपद-को पा गया। फिर आपके भक्तोंकी तो बात ही क्या है? आप ही ब्रह्मारूपसे जगत्‌का सृजन करते हैं, विष्णुरूपसे पालन करते हैं और अन्तमें रुद्ररूपसे संहार करते हैं। आपके उसी महाविष्णुरूपको मेरा नमस्कार है। प्रभो! मेरा मन सदा आपमें लगा रहे। जैसे मेघकी गोदमें बिजलीकी भाँति लक्ष्मी सदा आपके श्यामाङ्गमें विराजित रहती हैं, उसी प्रकार मेरा मन आपमें निविष्ट रहे। जिनसे न तो कुछ भी छोटा है और न कुछ भी बड़ा है, जिनसे यह सारा जगत् व्याप्त है, उन आपमें मेरा मन लगा रहे। जिनकी महिमाकी सीमा बतलानेमें ब्रह्मा आदि देवगण भी असमर्थ हैं, उन आपमें मेरा मन लगा रहे। जो धर्मकी स्थापना और पापियोंके विनाशके लिये युग-युगमें प्रादुर्भूत होते हैं, उन आपमें मेरा मन संलग्न रहे। जिन्होंने समस्त जगत्‌को अपनी मायासे मोहित कर रक्खा है और जो आप ही मायाके बन्धनको काट देते हैं, उन आपमें मेरा मन लगा रहे। ब्रह्मा-रुद्रादि देवगण जिनके अंशभूत हैं, उन आपमें मेरा मन लगा रहे। जिनकी भक्ति करके जगत्‌में लोग समस्त विपत्तियोंसे छूटकर परम पदको प्राप्त हो जाते हैं, उन आपमें मेरा मन लगा रहे। जो धन, स्तुति, दान और तपस्याके बिना ही केवल एकमात्र भक्तिसे सन्तुष्ट हो जाते हैं, उन आपमें मेरा मन सदा संलग्न रहे। जो कृपापूर्वक गौ, ब्राह्मण और साधुओंका नित्य हित करते हैं, जो दीन, अनाथ, वृद्ध और रोगियोंका दुःख हरण करते हैं, जो देवता, मनुष्य, नाग और मच्छरादि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वहाँ जाकर दान्तके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम किया और स्तवनके बाद दान्त-मुनिके पूछनेपर सरल-निःसंकोच-भावसे उनसे कहा—'हे महाभाग! मैं जातिका ब्राह्मण हूँ, परन्तु ब्राह्मणके आचारसे सर्वथा वर्जित हूँ। मेरा नाम भद्रतनु है। मैंने जीवनभर पाप-ही-पाप किये हैं। हे ब्रह्मन्! आप सर्वतत्त्वज्ञ हैं, मुझे कृपापूर्वक बतलाइये कि मुझ पापीके लिये संसार-बन्धनसे छूटनेका क्या उपाय है?'

दयालु दान्तने स्नेहके साथ भद्रतनुसे कहा—'भाई! तुम्हारी ऐसी बुद्धि हुई, सो भगवान्‌की बड़ी कृपा है। मैं अब तुम्हें वे उपाय बतला रहा हूँ, जिनके करनेसे जीवका संसार-बन्धन सहज ही कट जाता है। उपाय ये हैं—

१—पाषण्डके संसर्गका बिल्कुल त्याग करो।

२—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, असत्य और परहिंसाका यत्नपूर्वक त्याग करो।

३—दया, शान्ति और दमयुक्त हो सर्वत्र समदर्शन करते हुए सदा भगवान् श्रीकेशवकी शरण होकर उनकी आराधना करो।

४—भक्तियुक्त होकर निरन्तर भगवान् श्रीमहाविष्णुके नामोंको स्मरण करते हुए श्रेष्ठ अहोरात्र-व्रत करो।

५—प्रतिदिन अन्नदान, जलदान और नित्य पञ्चमहा-यज्ञ करो।

६—श्रीहरिकी कथा सुनो और उनके द्वादशाक्षर-मन्त्रका श्रद्धापूर्वक जप करो। इन साधनोंके द्वारा तुम्हें सर्वोत्तम ज्ञानकी प्राप्ति होगी, जिसके द्वारा तुम मुक्त हो जाओगे।

दान्त ऋषिके इन वचनोंको सुनकर भद्रतनुने कहा, 'भगवन्! मैं अति मूढ़ हूँ, मुझे सबका विवरण स्पष्ट करके समझाइये। मैं आपकी कृपासे अवश्य ही परम गतिको प्राप्त करूँगा।' इसपर दान्तने परम प्रसन्न होकर विवरण कहना आरम्भ किया। दान्त बोले—

१—वेदशास्त्रसम्मत कर्मका परित्यागकर दूसरा कर्म करनेवाला और अपने आचारको छोड़नेवाला पाषण्डी है; एवं वेदशास्त्रसम्मत कर्म करनेवाला, अपने आचारोंका पालन करनेवाला और पापकी इच्छा न रखनेवाला मनुष्य सज्जन है।

२—कामिनी, काञ्चन आदि विषयोंके संग्रहकी इच्छा-को काम कहते हैं; अपनी निन्दा सुनकर या मनके प्रतिकूल कार्य होनेपर जो हृदयमें जलन होती है उसको क्रोध कहते हैं। क्रोध सारे धर्मोंका नाश करनेवाला है; दूसरेके धन आदिको देखकर उसे पानेकी जो इच्छा होती है उसका नाम लोभ है; मेरी माता, मेरे पिता, मेरी स्त्री, मेरा पति, मेरा घर—इसप्रकारकी ममताका नाम मोह है; मैं महात्मा हूँ, धनवान् हूँ, मेरे समान पृथिवीपर कौन है, हृदयके इसप्रकारके भावको मद कहते हैं; लोग सदा मेरी निन्दा करते हैं, इसलिये मेरे जीवनको धिक्कार है, ऐसे मनके भावको, तथा मुझसे दूसरे अधिक धनवान्, श्रेष्ठ क्यों हैं, मैं ही सबसे अधिक धनी, श्रेष्ठ क्यों न होऊँ, ऐसे भावको मत्सर कहते हैं; सब लोगोंको सुख पहुँचानेवाले हितकर और यथार्थ वचनका नाम सत्य है, जो इसके विपरीत है, वही असत्य है; और दूसरेके ऐश्वर्य, स्त्री, पुत्र, शरीर, धन आदिके नाशकी चिन्ताका नाम हिंसा है। इन सबका त्याग करना चाहिये।

३—दूसरेके कष्टको यत्नपूर्वक दूर करनेकी इच्छाको दया कहते हैं; स्वल्प या जो कुछ भी मिल जाय, उसीमें सन्तुष्ट रहनेका नाम शान्ति है; कुत्सित

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कार्योंसे चित्त हटानेका नाम दम है; सुख-दुःख तथा मित्र-शत्रु आदिमें समदृष्टि ही समदृष्टि है; और भगवान्‌का आश्रय लेकर नैवेद्य, गन्ध-धूपादिद्वारा परम श्रद्धाके साथ श्रीहरिकी पूजा करना ही आराधना है।

४—मध्याह्न और रात्रिके भोजनका त्याग अहोरात्र-व्रत है तथा भगवान्‌के साथ अपना एकीकरण करना ही विष्णुस्मरण है।

५-६—ब्रह्मयज्ञ, नरयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ और भूतयज्ञ—ये पञ्चमहायज्ञ हैं, एवं 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' यही द्वादशाक्षर-मन्त्र है।

इसके बाद दान्त-ऋषिने भगवान्‌के दुर्लभ चतुर्वर्गफलप्रद एक सौ आठ नाम बतलाकर भद्रतनु-से कहा—'तुमको मैंने सब साधन बतला दिये हैं। मेरी बतलायी हुई विधिके अनुसार भक्तिपूर्वक भगवान्‌की आराधना करनेपर तुम अवश्य ही मोक्षको प्राप्त करोगे। जाओ, तुम्हारा कल्याण हो!'

भद्रतनु एकान्त स्थानमें जाकर, मन लगाकर, दान्तकी बतलायी हुई विधिके अनुसार, अनन्यचित्त होकर, भगवान्‌की उपासना करने लगा। भगवान्‌ने गीतामें कहा है कि यदि महापापी भी सम्यक् निश्चयपूर्वक अनन्यभावसे मुझको भजता है, तो वह साधु ही है और बहुत शीघ्र धर्मात्मा होकर परम पदको प्राप्त होता है। तदनुसार करुणामय श्रीहरि उसकी अनन्यभक्तिसे शीघ्र ही प्रसन्न हो गये और करोड़ों सूर्योंके समान तेजका प्रसार करते हुए सहसा उसके सामने प्रकट हो गये—

आविर्बभूव सहसा कोटिसूर्य इवांशुमान्॥

भद्रतनु भगवान् जगदीश्वर श्रीपतिके दर्शनकर मुग्ध हो गया। उसके समस्त पाप-तापोंका सदाके लिये नाश हो गया। भद्रतनुने मस्तकद्वारा भगवान्‌के चरणकमलोंमें प्रणाम किया और भगवान्‌का स्तवन करते हुए वह कहने लगा—

'हे नाथ! आपके चित्तमें जो दया है उसका वर्णन कौन कर सकता है, जरा नामक व्याधा आपके चरणोंमें बाण मारकर भी परम पदको प्राप्त हो गया। शिशुपाल आपकी निन्दा करके भी मोक्षपद-को पा गया। फिर आपके भक्तोंकी तो बात ही क्या है? आप ही ब्रह्मारूपसे जगत्‌का सृजन करते हैं, विष्णुरूपसे पालन करते हैं और अन्तमें रुद्ररूपसे संहार करते हैं। आपके उसी महाविष्णुरूपको मेरा नमस्कार है। प्रभो! मेरा मन सदा आपमें लगा रहे। जैसे मेघकी गोदमें बिजलीकी भाँति लक्ष्मी सदा आपके श्यामाङ्गमें विराजित रहती हैं, उसी प्रकार मेरा मन आपमें निविष्ट रहे। जिनसे न तो कुछ भी छोटा है और न कुछ भी बड़ा है, जिनसे यह सारा जगत् व्याप्त है, उन आपमें मेरा मन लगा रहे। जिनकी महिमाकी सीमा बतलानेमें ब्रह्मा आदि देवगण भी असमर्थ हैं, उन आपमें मेरा मन लगा रहे। जो धर्मकी स्थापना और पापियोंके विनाशके लिये युग-युगमें प्रादुर्भूत होते हैं, उन आपमें मेरा मन संलग्न रहे। जिन्होंने समस्त जगत्‌को अपनी मायासे मोहित कर रक्खा है और जो आप ही मायाके बन्धनको काट देते हैं, उन आपमें मेरा मन लगा रहे। ब्रह्मा-रुद्रादि देवगण जिनके अंशभूत हैं, उन आपमें मेरा मन लगा रहे। जिनकी भक्ति करके जगत्‌में लोग समस्त विपत्तियोंसे छूटकर परम पदको प्राप्त हो जाते हैं, उन आपमें मेरा मन लगा रहे। जो धन, स्तुति, दान और तपस्याके बिना ही केवल एकमात्र भक्तिसे सन्तुष्ट हो जाते हैं, उन आपमें मेरा मन सदा संलग्न रहे। जो कृपापूर्वक गौ, ब्राह्मण और साधुओंका नित्य हित करते हैं, जो दीन, अनाथ, वृद्ध और रोगियोंका दुःख हरण करते हैं, जो देवता, मनुष्य, नाग और मच्छरादि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जीवोंमें भी समभावसे विराजमान हैं, जो पण्डित, मूर्ख, धनी और दुखी सबमें समदृष्टि हैं, जिनके लीलापूर्वक रुष्ट होनेपर पर्वत भी तिनकेके समान हो जाता है और जिनके तुष्ट होनेपर एक सामान्य तृण भी पर्वताकार हो जाता है, उन आपमें मेरा मन लगा रहे। जैसे पुण्यात्मा पुरुषोंका मन पुण्यमें, पिताका पुत्रमें और सतीका अपने स्वामीमें लगा रहता है, वैसे ही मेरा मन आपमें लगा रहे। और जैसे कामीका मन स्त्रीमें, लोभीका धनमें, भूखेका भोजनमें, प्यासेका जलमें, गर्मीसे व्याकुलका शीतल चन्द्रमाकी छायामें और जाड़ेसे ठिठुरते हुए मनुष्यका सूर्यमें रहता है, वैसे ही मेरा मन केवल आपमें लगा रहे।'

भद्रतनुकी इस स्तुतिमें भगवान्‌के महत्त्व, रहस्य और भक्तकी भावना एवं अनन्यकामनाका बड़ा अच्छा चित्र खींचा गया है। साधकोंको इसपर ध्यान देना चाहिये। अस्तु,

पश्चात् भद्रतनुने फिर कहा—'हे भगवन्! मैंने बुद्धिहीन होकर जो पर-स्त्री-गमन किया, मोहवश अवध्यका वध किया, अज्ञानमें पड़कर विश्वासघात किया, अखाद्य भक्षण और अपेय पदार्थका पान किया, लोभवश दूसरेका धन हरण किया, भ्रूणहत्या, व्यभिचार, पर-निन्दा, हिंसा आदि पाप किये, शरणागत मनुष्यका अहित किया, दूसरेकी जीविकाका छेदन किया, दूसरेको शर्मिन्दा करके नीचा दिखाया, अयोग्य दान लिया; रास्ते, देवस्थान, गोष्ठ आदिमें मल-मूत्रका त्याग किया, हरे वृक्ष काटे, स्नान और भोजनके लिये तैयार मनुष्योंको रोका, पिता-माताके प्रति अभक्ति और अश्रद्धा की, घरपर आनेवाले अतिथिकी पूजा नहीं की, जल पीनेके लिये दौड़ती हुई गायोंको रोक दिया, प्रारम्भ किये हुए व्रतको बीचमें ही छोड़ दिया, पति-पत्नीमें भेद पैदा करा दिया, भगवत्-कथाओंमें विघ्न डाले, मन लगाकर दूसरेकी निन्दा सुनी, जीविका चलानेवालेका तिरस्कार किया, दूसरेके पापोंकी बातें सुनीं, द्विज और माँगनेवालोंको गुस्सेकी नजरसे देखा;—आदि-आदि जो हजारों प्रकारके पाप जन्म-जन्मान्तरमें मैंने किये थे, वे सब आज आपके पुण्य-दर्शनमात्रसे क्षय हो गये! मैं आज निश्चय ही कृतार्थ हो गया। प्रभो! आपको बार-बार नमस्कार है! नमस्कार है!!

भद्रतनुकी इस स्तुतिमें पापोंकी बड़ी अच्छी व्याख्या हो गयी। हमलोगोंको सदा इन पापोंसे बचकर, भगवान्‌की आराधना करनी चाहिये। साथ ही यह भी निश्चय रखना चाहिये कि भगवान्‌के दर्शनका इतना महत्त्व है कि उसके होनेमात्रसे ही समस्त पाप कट जाते हैं।

भद्रतनु स्तुति करके भगवान्‌के चारु चरणकमलोंमें पड़ गया। भक्तवत्सल भगवान्‌ने उसे उठाकर हृदयसे लगाया और मनवाञ्छित वर माँगनेको कहा। भगवान्‌के दर्शनसे ही उसकी मुक्तिकी अभिलाषा मिट गयी और वह केवल भक्तिका भूखा हो गया। भद्रतनुने कहा—

परमेश्वर देवेन्द्र दयालो परमच्युत।
मया सम्प्रति यत्प्राप्तं तत्केन भुवि लभ्यते॥
तथाप्येकं वरं याचे मुरारे तव सन्निधौ।
जन्मजन्मनि मे भक्तिस्त्वय्यस्तु सुदृढा प्रभो॥
(पद्मपुराण)

हे परमेश्वर, हे देवेन्द्र, हे दयालो, हे अच्युत! आज मुझको जो कुछ प्राप्त है वह जगत्‌में और किसको प्राप्त है? आपके दर्शनसे बढ़कर और क्या है? तथापि हे मुरारे! मैं आपसे एक वर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चाहता हूँ, वह यह कि हे प्रभो ! जन्म-जन्मान्तरमें मेरी आपमें सुदृढ़ भक्ति बनी रहे ।

भक्त यही वरदान चाहा करते हैं । मुक्ति नहीं चाहिये, चाहे जितने जन्म हों, आप इस दासको चाहे जहाँ भेजें, परन्तु आपकी भक्ति बनी रहे । नाथका हाथ सदा इस गुलामके सिरपर रहे ।

नाथ एक बर माँगहुँ मोहिं कृपा करि देहु ।
जनम-जनम प्रभुपदकमल कबहुँ घटै जनि नेहु ॥
(रामचरितमानस)

भगवान्‌ने 'तथास्तु' कहकर उसे अपनी सख्यभक्ति प्रदान की और सब प्रकारसे कृतार्थ किया । अन्तमें भद्रतनुके आग्रहसे उसके गुरु दान्तको भी भगवान्‌ने दुर्लभ दर्शन दिये । तब दान्तने भी कृतार्थ होकर स्तुति करते हुए भगवान्‌से यही प्रार्थना की—

त्वद्दासदासदासानां दासत्वेनापि मां वृणु ।
(पद्मपुराण)

भगवन् ! अपने दासोंके दासके दासरूपमें मुझे ग्रहण कीजिये ।

भक्तिग्राही दयामय देवदेव भगवान्‌ने हँसकर दान्तके मस्तकपर हाथ रख उसे कृतार्थ किया और गुरु-शिष्य दोनोंको आलिङ्गन प्रदानकर वे सहसा अन्तर्द्धान हो गये ।

तदनन्तर भक्तिमय जीवन बिताकर गुरु दान्त और शिष्य भद्रतनु दोनों अन्तमें भगवान्‌के परम धामको पधारे ।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय !

जगत्स्वप्न

(लेखक—श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल)

स्वप्नमें हम क्या-क्या देखते हैं, क्या-क्या सुनते हैं, क्या-क्या करते हैं, किन्तु यह सब बाह्य कुछ भी नहीं होता । मन ही अपने भीतर यह सारी सृष्टि करता है । मनकी यह एक अद्भुत शक्ति है । स्वप्नमें देखे हुए सारे दृश्य मनोमय होते हैं । बहिर्जगत्‌के साथ उनका केवल यही सम्बन्ध होता है कि बहुधा स्वप्नमें देखे गये पदार्थ बहिर्जगत्‌के प्रतिबिम्बमात्र होते हैं । परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि सदा स्वप्न-जगत्‌में बहिर्व्यापारका ही प्रतिबिम्ब होता है । स्वप्नमें ऐसे दृश्य भी देखे जाते हैं जिनकी पहले कल्पना भी नहीं होती । वे दृश्य केवल मिथ्या कल्पनारूप नहीं होते हैं, बल्कि यथार्थ सत्यकी भाँति ही ठीक होते हैं । वस्तुतः स्वप्नका रहस्य बड़ा ही दुर्गम है; उसे 'कुछ नहीं' कहकर उड़ा नहीं दिया जा सकता । स्वप्नमें हम कितने जीव, कितनी घटनाएँ, कितने स्थान देखते हैं; परन्तु निद्रा-भङ्ग होनेपर उनमेंसे कुछ भी नहीं रह जाता । मनके भीतर मन ही उनकी सृष्टि करता है और मनमें ही वे विलीन हो जाते हैं । जैसा यह स्वप्न-जगत् है ठीक वैसा ही यह वास्तविक जगत् भी है । यदि यह जाग्रत्-स्वप्न कभी टूट जाय तो देखनेमें आयेगा कि जगत् या जगत्‌की कोई भी वस्तु नहीं है, केवल 'तुम' ही हो । जबतक स्वप्न देखा जाता है तबतक स्वप्नमें देखे गये पदार्थ मिथ्या नहीं जान पड़ते, परन्तु जागते ही जान पड़ता है कि वे सब मिथ्या हैं । ऐसे ही सूक्ष्म देहमें जागनेपर यह स्थूल देह और भौतिक पदार्थसमूह स्वप्नदृष्ट वस्तुके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समान अदृश्य हो जाते हैं, इसी प्रकार कारण-देहमें भी जागरण होता है। वह विशुद्ध ज्ञानमय होता है। इसीसे यथार्थ जागरणका आभास मिलता है। यथार्थ जागरण होनेपर तो हम एक और ही तरहके मनुष्य हो जाते हैं। तब जान नहीं पड़ता कि हम इस जगत्‌के आदमी हैं। जगत्‌के लोग भी उसे फिर दूसरे ही नेत्रोंसे देखते हैं, वह भी इस जगत्‌को एक स्वतन्त्र मूर्तिमें देखता है। उस समय, देश-काल-ज्ञानकी कोई बाधा उसके सामने नहीं आती। समस्त जगत्‌में वह एक नवीन मनुष्य हो जाता है और उसकी दृष्टिमें भी संसार मानो एक अभिनव आनन्दनिकेतन बन जाता है।

स्वप्नमें प्राप्त पदार्थको जागनेपर नहीं पानेसे जिसप्रकार हमें दुःख नहीं होता, उसी प्रकार जिसका यथार्थ 'जागरण' हो गया है उसे फिर इस जगत्‌के मान, सम्पत्ति और ख्यातिके लिये कोई खेद नहीं होता। स्वप्नको देखते समय उसे कोई स्वप्न नहीं समझ सकता। इसी प्रकार जबतक मनुष्य प्रबुद्ध नहीं हो जाता तबतक इस जगत्‌को मिथ्यारूपमें विश्वास कर लेना अवश्यमेव कठिन है। स्वप्नमें कभी-कभी जान पड़ता है मानो हम स्वप्न देखते हैं, यह जिसप्रकार और भी दुर्निमित्तका कारण और महा-मोहका लक्षण है, उसी प्रकार अप्रबुद्ध (अज्ञान) दशामें आत्मज्ञानका भान (अपनेको ज्ञानी मान लेना) भी मोहाभिभूतके चिह्नके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। स्वप्न टूट जानेपर जिसप्रकार स्वप्नदृष्ट वस्तु कुछ नहीं रहती, केवल स्वप्नद्रष्टा ही रह जाता है तथा द्रष्टामें ही स्वप्नदृष्ट समस्त पदार्थोंका अवसान हो जाता है, उसी प्रकार इस जगत्-स्वप्नके टूटनेपर एक परमात्माको छोड़कर और कुछ नहीं रह जाता। जिसप्रकार जाग्रत् होनेपर स्वप्नकी थोड़ी-सी स्मृति बनी रहती है उसी प्रकार ज्ञानीको यह जगत् एक स्मृतिमात्र जान पड़ता है, आगे चलकर, वह भी मिट जाता है।

परलोक-मीमांसा

(लेखक—श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीस्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज मण्डलेश्वर)

विश्वेश्वर नमस्तुभ्यं विश्वात्मा विश्वकर्मकृत्। विश्वभुग्विश्वमायस्त्वं विश्वक्रीडारतिप्रभुः॥

'परलोक' शब्दमें पर-शब्दका अर्थ उत्तम और अन्य है। लोकृ लोचृ 'दर्शने' धातुसे कर्ममें घञ् प्रत्यय करनेसे लोक-शब्दकी सिद्धि होती है। एवं च कर्मधारयसमास करनेसे 'परलोक' शब्दका अर्थ परमात्मा और स्वर्गादि लोक या अन्य लोक अथवा जन्मान्तर सिद्ध होता है। यदि परलोक-शब्दका मुख्यार्थ परमात्मा स्वीकार किया जाय तो समस्त ब्रह्म-मीमांसा-शास्त्र 'परलोक' का ही समर्थक होगा। वस्तुतः परलोक-शब्दका अर्थ परमात्मा ब्रह्म ही बन सकता है, क्योंकि पर-शब्द श्रेष्ठका वाचक है। और लोकपद दर्शनशानका वाचक है। 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इत्यादि श्रुति ब्रह्मको ही ज्ञानस्वरूप कहती हैं। असंकुचितपरत्व भी ब्रह्ममें ही घटता है। परब्रह्मरूप आत्माको ही यजुर्वेदके बृहदारण्यकोपनिषद्‌में लोक-शब्दसे कहा है—

अथ यो ह वा अस्माल्लोकात्स्वं लोकमदृष्ट्वा प्रैति स एनमविदितो न भुनक्ति यथा वेदो वाऽननूक्तोऽन्यद्वा कर्माकृतं यदि ह वा अप्येनमेवंविन्महत्पुण्यं कर्म करोति तद्धास्यान्ततः क्षीयते एवाऽऽत्मानमेवलोकमुपासीत स य आत्मानमेव लोकमुपास्ते न हास्य कर्म क्षीयते। अस्माद्धेवाऽऽत्मनो यद्यत्कामयते तत्तत्सृजते॥

(१।४।१५)

अर्थात् जो इस लोकसे स्वलोक (आत्मा) को साक्षात्कार न करके मरता है उसकी वह अज्ञात आत्मा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रक्षा नहीं करता। ठीक उसी प्रकार जैसे बिना अध्ययन किया हुआ वेद और बिना किया हुआ शुभ कर्म रक्षा नहीं करता। इस स्वलोकरूप आत्माको न जाननेवाला यदि महान् पुण्य कर्म भी करता है तो भी उस कर्मका फल अन्ततः क्षीण हो ही जाता है। अतः आत्मरूप लोककी उपासना करनी चाहिये। जो आत्मरूप लोककी ही उपासना करता है, उसका कर्म क्षीण नहीं होता। इस आत्मरूप परलोकके विचारसे जो-जो कामना करता है, सो सब सिद्ध होती हैं।

'अथो अयं वा आत्मा सर्वेषां भूतानां लोकः स यज्जुहोति यद्यजते तेन देवानां लोकः·····इत्यादि।' 'तस्य वा एतस्य पुरुषस्य द्वे एव स्थाने भवत इदं च परलोकस्थानञ्च।' (बृह० १।४।१६, ४।३।९)

यदि 'परलोक' शब्दका स्वर्गादि लोक, अन्य लोक या जन्मान्तर अर्थ हो तो पूर्वमीमांसा-शास्त्र भी परलोकका विचाररूप ही सिद्ध होता है। क्योंकि धर्माधर्मका विचार स्वर्गादि परलोक-सिद्धिके बिना नहीं बन सकता। वेदोंमें जन्मान्तररूप परलोकका स्पष्ट वर्णन मिलता है। जैसे बृहदारण्यकके अ० ४ ब्रा० ४ में लिखा है—

तस्य हैतस्य हृदयस्याग्रं प्रद्योतते तेन प्रद्योतेनैष आत्मा निष्क्रामति चक्षुष्टो वा मूर्ध्नो वाऽन्येभ्यो वा शरीरदेशेभ्यस्तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामति प्राणमनूत्क्रामन्तꣳ सर्वे प्राणा अनूत्क्रामन्ति स विज्ञानो भवति स विज्ञातमेवान्ववक्रामति तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते पूर्वप्रज्ञा च ॥२॥

अर्थात् जिस समय यह जीव मरणासन्न होता है, उस समय, उसके हृदयके अग्रभागमें प्रकाश होता है, उस प्रकाशके द्वारा यह आत्मा इस शरीरके चक्षुसे या मूर्धासे अथवा अन्य छिद्रोंसे निकलता है। मल-मूत्रके द्वारा निकलनेसे नरककी प्राप्ति, नाभि-छिद्रोंसे निकलनेसे प्रेतयोनि, चक्षुरादिके द्वारा निकलनेसे उत्तम लोकोंकी प्राप्ति और मूर्धा भेदनकर प्राणके निकलनेसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। मनोऽवच्छिन्न आभासरूप जीवके उत्क्रमणके अनन्तर प्राण उत्क्रमण करता है। प्राणके पीछे वागादि सम्पूर्ण इन्द्रियाँ उत्क्रमण करती हैं। अन्त समयमें वासनामय भावी शरीरविषयक विज्ञान होता है, उस विज्ञानसे उद्भासित देहमें अहं अभिमानके द्वारा यह जीव विज्ञानसहित ही परलोकको जाता है। विद्या और कर्म भी उस जीवके साथ ही जाते हैं और पूर्ववासना भी साथ ही जाती है। परलोक जानेमें दृष्टान्त भी बृहदारण्यकमें दिया है—

तद्यथा तृणजलायुका तृणस्यान्तं गत्वाऽन्यमाक्रममाक्रम्याऽऽत्मानमुपसꣳहरत्येवमेवायमात्मेदꣳ शरीरं निहत्याऽविद्यां गमयित्वाऽन्यमाक्रममाक्रम्याऽऽत्मानमुपसꣳहरति। (४।४।३)

अर्थात् जोंक (अथवा हरे तृणोंमें रहनेवाले लम्बे हरे कीड़ेका नाम तृणजलायुका है।) जैसे अगले तृणादिक आलम्बनको पहले पकड़कर पीछे पूर्वके आश्रयका त्याग करता है, वैसे ही यह आत्मा भी इस शरीरके उपभोग समाप्त होनेपर अन्य परलोकीय शरीरको पहले पकड़कर पीछे पूर्वके शरीरको छोड़ता है। अर्थात् जिस समय सर्व बाह्य इन्द्रियाँ अन्तःकरणमें लीन होती हैं, उस मरण-समयमें जीवके हृदयमें प्रकाश होता है। उस प्रकाशमें मरनेवालेको वासनामय भावी शरीर दीखता है। उस वासनामय शरीरको अहंत्वेन ग्रहण करके तब वर्तमान पूर्वदेहको त्याग करता है। स्वप्न जैसे पूर्ववासनाके अधीन परवश होता है, वैसे ही जन्मान्तरीय शरीर भी पूर्व-वासनाके अधीन है। जो वासना परिपक्व होती है, वही परलोकसम्बन्धी शरीररूपसे अन्तिम विज्ञानमें उद्भासित होती है।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

इसमें गीता भी इसी अर्थको कहती है। भरत राजाको अन्तिम समयमें मृगकी स्मृति होनेसे मृग होना पड़ा था, यह कथा भागवतमें प्रसिद्ध है। इससे यह सिद्ध होता है कि अन्तिम समयमें यदि किसी मनुष्यको पापवश कुत्तेकी स्मृति हो गयी तो वह परलोकमें कुत्ता हो जायगा, और यदि कुत्तेको पूर्व-संस्कारवश मनुष्यकी स्मृति हो गयी तो वह मनुष्य हो जायगा। मरण-समयमें मनुष्यको कुत्तेकी स्मृति होनेपर उस समय वासनामय कुत्तेका देह ही अच्छा लगता है। कुत्तेके देहमें ही मनुष्यको अहं अभिमान हो जाता है। वर्तमान मनुष्य-देह उत्तम होनेपर भी अत्यन्त दुःखके कारणसे वह द्वेषका विषय हो जाता है। इसलिये वर्तमान उत्तम देहमें अहंबुद्धि छूट जाती है और वह निकृष्ट देहको अहंत्वेन ग्रहण कर लेता है। अन्तमें स्त्रीकी स्मृति होनेसे पुरुष भी स्त्री हो जाता है और पुरुषकी स्मृति होनेसे स्त्री भी पुरुष हो जाती है। देवताको मनुष्यकी स्मृति होनेसे मनुष्य होना पड़ता है और मनुष्य-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

को अन्तमें देवताकी स्मृति होनेपर देव-भावकी प्राप्ति होती है। अन्तमें यदि भगवान्‌की स्मृति हो जाय तो भगवान्‌की ही प्राप्ति हो जाती है। भावनाके अनुसार सालोक्य-सामीप्यादि भावकी प्राप्ति होती है। यदि शुभ संस्कारवश अन्तमें भगवान्‌की निराकार या साकारमूर्तिकी स्मृति हो जाय और भगवन्मूर्तिमें अहंबुद्धि हो जाय तो यह मनुष्य साक्षात् भगवान्‌रूप ही हो सकता है। इसीलिये भगवान्‌ने कहा है—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥
अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥

इसप्रकार गीता उपासनाके द्वारा परलोकमें ईश्वर-प्राप्तिकी सुलभताको बतला रही है!

चित्तमेव हि संसारस्तत्प्रयत्नेन शोधयेत्।
यच्चित्तस्तन्मयो मर्त्यो गुह्यमेतत्सनातनम् ॥
समासक्तं यथा चित्तं जन्तोर्विषयगोचरे।
यद्येवं ब्रह्मणि स्यात्तत् को न मुच्येत बन्धनात् ॥

यह श्रुति भी परलोकको स्पष्टरूपसे प्रतिपादन करती है। जैसे प्रेमसे भगवत्प्राप्ति होती है, वैसे ही भगवत्‌के प्रति हुए क्रोधादिसे भी होती है। इसीलिये श्रीभागवतमें कहा है—

कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च।
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते ॥

मइ मति कीट भृंगकी न्याईं। जहाँ तहाँ देखौं दोउ भाई ॥

इसप्रकार, रामायण भयसे चित्तकी भगवन्मयता दिखलाती है।

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये-
ऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके ।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाऽहं
वराणामेष वरस्तृतीयः ॥
(कठ० १।१।२०)

न साम्परायः प्रतिभाति बालं
प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी
पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ॥
(कठ० १।२।६)

इत्यादिक कठवल्ली भी परलोकका ही समर्थन करती है।

तदनन्तरप्रतिपत्तौ रंहति सम्परिष्वक्तः प्रश्ननिरूपणाभ्याम्।
(३।१)

इत्यादि ब्रह्मसूत्र भी विस्तारसे परलोकका ही समर्थन करते हैं।

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः। (सा० पा० सू० १३)

इत्यादि योगशास्त्र भी परलोकके समर्थक हैं। इसी प्रकार सम्पूर्ण आस्तिक-दर्शन परलोकके ही विचारमें चरितार्थ होते हैं।

नास्तिक-दर्शनोंमेंसे बौद्ध-दर्शन और जैन-दर्शन भी परलोकके विचारमें पर्यवसित होते हैं। केवल देहात्मवादी चार्वाक परलोकको नहीं मानते; मनुष्योंके विभिन्न स्वभाव, आकृति, बुद्धि आदिको देखकर चार्वाकको भी परलोक (पुनर्जन्म) प्रकारान्तरसे मानना पड़ा है। हम देखते हैं कि एक ही समान अवस्थावाले लड़के स्कूलमें पढ़ते हैं। उनमेंसे कोई तो बहुत काल पढ़नेपर भी मूर्ख ही रह जाते हैं और कोई शीघ्र ही विद्वान् हो जाते हैं। कोई डाक्टरी लाइनको पूर्व-संस्कारवश पसन्द करता है, कोई इञ्जीनियरिङ्ग-लाइनमें जाता तो कोई वकालत अथवा व्यापारको पसन्द करता है। यह वैचित्र्य जन्मान्तरीय संस्कारोंके बिना नहीं बन सकता। कुछ वर्ष पहले काशीजीमें गान-विद्यामें निपुण, एक दक्षिणी बालक आया था। उसकी अवस्था करीब सात-आठ वर्षकी थी। वह जलतरङ्गादि सर्व प्रकारके वाद्योंको स्वरतालके सहित बहुत निपुणताके साथ बजाता था। बहुत-से सङ्गीत-विद्याके जाननेवाले विद्वान् भी उस सभामें मौजूद थे। वे लोग गाते थे, बालक बाजा बजाता था। गानेमें जब किसी समय स्वर-तालकी गलती होती थी, तब बालक तुरन्त गलतीको पकड़ लेता था और नाराज हो जाया करता था। सम्पूर्ण विद्वानों और दर्शकोंको बड़ा आश्चर्य होता था। प्रायः सबके मुखसे यही आवाज निकलती थी कि यह साक्षात् गन्धर्व कहाँसे उतर आया। जितनी विद्या बीसों वर्षके परिश्रमसे कोई बुद्धिमान् हासिल कर सकता है, उतनी उस बच्चेको स्वभावसे प्राप्त थी। विद्वान् और दर्शकोंने बालकको बहुत-से सर्टिफिकेट और पुरस्कार दिये। मैं भी उस सभामें मौजूद था। मैंने आँखोंसे यह तमाशा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

देखा था। उस उदाहरणसे पूर्व-जन्मकी सिद्धिमें सन्देह नहीं रह जाता। पूर्व-जन्मके संस्कार बिना इतनी छोटी अवस्थामें इतनी विद्या असम्भव है।

बम्बईमें एक सभ्य पुरुषके दो लड़के थे। एक लड़का अंग्रेजीके ऊँचे क्लासमें पढ़ता था, दूसरा लड़का छोटा पाँच-छः वर्षका था। एक दिन बड़े लड़केने अपनी स्लेटपर कुछ अंग्रेजी लिखी हुई देखी और दूसरे दिन एक अत्युत्तम चित्र लिखा देखा। तब बड़े लड़केने कुटुम्बके लोगोंसे पूछा कि यह चित्र किसने बनाया है। किसीने उत्तर नहीं दिया। तब बड़े लड़केने छोटे लड़केसे पूछा कि क्या कल मेरी स्लेटपर अंग्रेजी तुमने ही लिखी थी? छोटा लड़का—हाँ। बड़ा लड़का—और लिखो? छोटा०—मैं पढ़ा नहीं। बड़ा०—कल अंग्रेजी कैसे लिखी थी? तब छोटा लड़का चुप हो गया, विशेष कहनेपर रोने लगा। तब बड़े लड़केने कहा, और चित्र बनाओ। छोटे लड़केने कहा, अकेलेमें बनाऊँगा। तब बड़े लड़केने स्लेट, पेंसिल देकर कहा, बनाओ। तब छोटा लड़का एकान्तमें जाकर थोड़ी ही देरमें बहुत बढ़िया चित्र बनाकर ले आया, सब लोग देखकर दङ्ग रह गये। सबको उस समय यही निश्चय हुआ कि इस जन्ममें बिना सीखे यह चित्र-विद्या पूर्वजन्मके संस्कार बिना नहीं बन सकती। यह घटना एक प्रामाणिक सज्जनके द्वारा मुझे मालूम हुई थी। इससे भी परलोक और जन्मान्तरकी सिद्धि स्पष्ट होती है। मेरे पास वर्तमानमें एक ब्रह्मचारी मौजूद है। संस्कृत-विद्याका अभ्यास कर रहा है। थोड़े दिन हुए, ब्रह्मचारीने एक अत्यन्त सुन्दर चित्र बनाकर मुझको भेंट किया था। सैकड़ों रुपयेमें भी ऐसा चित्र मिलना कठिन है। ब्रह्मचारीसे पूछनेपर मालूम हुआ कि उसने इस जन्ममें चित्रकी कारीगरी बिल्कुल नहीं सीखी है इससे भी पूर्वजन्मका निश्चय होता है।

कई वर्ष हुए, एक घटना इसप्रकार हुई थी—एक बहुत बड़ा साहूकार रात्रिके समय अकस्मात छतपरसे गिरकर मर गया था। साहूकारके पास करोड़ोंका धन नगद था। परन्तु किसीको यह मालूम नहीं था कि कहाँ रक्खा है। यद्यपि सेठके कई लड़के थे, बड़ा कुटुम्ब था, परन्तु साहूकारने अपनी नगदीका पता किसीको नहीं बताया था। साहूकारके मर जानेपर कुटुम्बमें बड़ा शोक छा गया। लड़के होशियार थे। साहूकारकी अन्तिम क्रिया करके लड़कोंने कारबार सँभाल लिया। नगदी धनका बहुत पता लगाया गया, लेकिन कुछ पता नहीं चला। कुछ दिनके बाद एक पुरुष 'मैस्मेरिज़्म' विद्याका जाननेवाला, दैवयोगसे उस शहरमें आया। परलोकगत आत्माओंको वह बुलाकर बातचीत करा दिया करता था। उस पुरुषकी शहरमें बड़ी प्रसिद्धि फैल गयी थी। तब साहूकारके लड़कोंने इस विद्वान्के पास जाकर अपने पिताके अचानक मरने और नगदीके न मिलनेका हाल कहा। विद्वान्ने सेठकी परलोकगत आत्माको बुलाकर बातचीत करानेका आश्वासन दिया।

इसके बाद उस परलोकविद्याके विद्वान्ने उसी सेठके बगीचेके बँगलेमें प्रयोग किया। कुल सात आदमी प्रयोगमें थे। पहले कुछ भगवत्सम्बन्धी गायन किया गया, फिर सबने परलोकगत आत्माके आनेकी भावनाका ध्यान किया। जब सबकी भावना दृढ़ हुई, और वे शान्त हो गये, तब सेठका बड़ा लड़का बेहोश होता हुआ मालूम हुआ। थोड़ी ही देरमें वह बिल्कुल बेहोश हो गया और सेठकी आत्मा आकर बड़े लड़केके शरीरमें प्रविष्ट हो गयी। प्रयोगकर्त्ताको मालूम हो गया कि परलोकगत आत्मा उतर आयी। प्रयोगकर्त्ताने पूछा, आप कौन हैं? सेठ—मैं सेठ हूँ। प्रयोगकर्त्ता—आपके अचानक परलोक जानेसे आपका कुटुम्ब बड़ा दुखी है। आपके नगदी धनका कुछ भी पता नहीं है। सेठ—मुझे भी चिन्ता है, मैं चाहता हूँ कि मेरा धन मेरे बालकोंको मिले और उसका सदुपयोग हो। प्रयोगकर्त्ता—धन बतलाइये। आपकी आज्ञाके मुताबिक ही कार्य होगा। सेठ—इसी कमरेके तहखानेके नीचे कोठरीमें सब धन रक्खा है। इसको सब लड़के बराबर बाँट लें और शुभ कार्यमें लगावें, बुरे काममें न लगावें। मेरी आत्मा इससे सन्तुष्ट होगी। मैंने परिश्रमसे यह धन इकट्ठा किया है। अब मैं जाता हूँ—ऐसा कहकर सेठकी आत्मा चली गयी। सेठका लड़का थोड़ी ही देरमें होशमें आ गया। सेठके कहे-अनुसार खोज करनेपर सब धन मिल गया। आनन्द हो गया। इस घटनासे परलोकमें कुछ भी सन्देह नहीं रह सकता। इस मैस्मेरिज़्म-विद्यासे प्रभावित होकर पाश्चात्य विद्वानोंको भी अब परलोकमें सन्देह नहीं रह गया है। यह विद्या हमारे योगशास्त्रका अंशमात्र है।

तिब्बतमें लामा (साधु) गुरु होते हैं। यह बात सुनी गयी है कि उनमेंसे कोई-कोई अभ्यासी पुरुष मरनेके पहले अपने प्रिय पुस्तकादि सामान किसी विश्वस्त पुरुषके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

को अन्तमें देवताकी स्मृति होनेपर देव-भावकी प्राप्ति होती है। अन्तमें यदि भगवान्‌की स्मृति हो जाय तो भगवान्‌की ही प्राप्ति हो जाती है। भावनाके अनुसार सालोक्य-सामीप्यादि भावकी प्राप्ति होती है। यदि शुभ संस्कारवश अन्तमें भगवान्‌की निराकार या साकारमूर्तिकी स्मृति हो जाय और भगवन्मूर्तिमें अहंबुद्धि हो जाय तो यह मनुष्य साक्षात् भगवान्‌रूप ही हो सकता है। इसीलिये भगवान्‌ने कहा है—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥
अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥

इसप्रकार गीता उपासनाके द्वारा परलोकमें ईश्वर-प्राप्तिकी सुलभताको बतला रही है!

चित्तमेव हि संसारस्तत्प्रयत्नेन शोधयेत्।
यच्चित्तस्तन्मयो मर्त्यो गुह्यमेतत्सनातनम् ॥
समासक्तं यथा चित्तं जन्तोर्विषयगोचरे।
यद्येवं ब्रह्मणि स्यात्तत् को न मुच्येत बन्धनात् ॥

यह श्रुति भी परलोकको स्पष्टरूपसे प्रतिपादन करती है। जैसे प्रेमसे भगवत्प्राप्ति होती है, वैसे ही भगवत्‌के प्रति हुए क्रोधादिसे भी होती है। इसीलिये श्रीभागवतमें कहा है—

कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च।
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते ॥

मइ मति कीट भृंगकी न्याईं। जहाँ तहाँ देखौं दोउ भाई ॥

इसप्रकार, रामायण भयसे चित्तकी भगवन्मयता दिखलाती है।

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये-
अस्तीत्येके नायमस्तीति चैके ।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाऽहं
वराणामेष वरस्तृतीयः ॥
(कठ० १। १। २०)

न साम्परायः प्रतिभाति बालं
प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी
पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ॥
(कठ० १। २। ६)

इत्यादिक कठवल्ली भी परलोकका ही समर्थन करती है।

तदनन्तरप्रतिपत्तौ रंहति सम्परिष्वक्तः प्रश्ननिरूपणाभ्याम्।
(३। १)

इत्यादि ब्रह्मसूत्र भी विस्तारसे परलोकका ही समर्थन करते हैं।

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः। (सा० पा० सू० १३)

इत्यादि योगशास्त्र भी परलोकके समर्थक हैं। इसी प्रकार सम्पूर्ण आस्तिक-दर्शन परलोकके ही विचारमें चरितार्थ होते हैं।

नास्तिक-दर्शनोंमेंसे बौद्ध-दर्शन और जैन-दर्शन भी परलोकके विचारमें पर्यवसित होते हैं। केवल देहात्मवादी चार्वाक परलोकको नहीं मानते; मनुष्योंके विभिन्न स्वभाव, आकृति, बुद्धि आदिको देखकर चार्वाकको भी परलोक (पुनर्जन्म) प्रकारान्तरसे मानना पड़ा है। हम देखते हैं कि एक ही समान अवस्थावाले लड़के स्कूलमें पढ़ते हैं। उनमेंसे कोई तो बहुत काल पढ़नेपर भी मूर्ख ही रह जाते हैं और कोई शीघ्र ही विद्वान् हो जाते हैं। कोई डाक्टरी लाइनको पूर्व-संस्कारवश पसन्द करता है, कोई इञ्जीनियरिङ्ग-लाइनमें जाता तो कोई वकालत अथवा व्यापारको पसन्द करता है। यह वैचित्र्य जन्मान्तरीय संस्कारोंके बिना नहीं बन सकता। कुछ वर्ष पहले काशीजीमें गान-विद्यामें निपुण, एक दक्षिणी बालक आया था। उसकी अवस्था करीब सात-आठ वर्षकी थी। वह जलतरङ्गादि सर्व प्रकारके वाद्योंको स्वरतालके सहित बहुत निपुणताके साथ बजाता था। बहुत-से सङ्गीत-विद्याके जाननेवाले विद्वान् भी उस सभामें मौजूद थे। वे लोग गाते थे, बालक बाजा बजाता था। गानेमें जब किसी समय स्वर-तालकी गलती होती थी, तब बालक तुरन्त गलतीको पकड़ लेता था और नाराज हो जाया करता था। सम्पूर्ण विद्वानों और दर्शकोंको बड़ा आश्चर्य होता था। प्रायः सबके मुखसे यही आवाज निकलती थी कि यह साक्षात् गन्धर्व कहाँसे उतर आया। जितनी विद्या बीसों वर्षके परिश्रमसे कोई बुद्धिमान् हासिल कर सकता है, उतनी उस बच्चेको स्वभावसे प्राप्त थी। विद्वान् और दर्शकोंने बालकको बहुत-से सर्टिफिकेट और पुरस्कार दिये। मैं भी उस सभामें मौजूद था। मैंने आँखोंसे यह तमाशा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

देखा था। उस उदाहरणसे पूर्व-जन्मकी सिद्धिमें सन्देह नहीं रह जाता। पूर्व-जन्मके संस्कार विना इतनी छोटी अवस्थामें इतनी विद्या असम्भव है।

बम्बईमें एक सभ्य पुरुषके दो लड़के थे। एक लड़का अंग्रेजीके ऊँचे क्लासमें पढ़ता था, दूसरा लड़का छोटा पाँच-छः वर्षका था। एक दिन बड़े लड़केने अपनी स्लेटपर कुछ अंग्रेजी लिखी हुई देखी और दूसरे दिन एक अत्युत्तम चित्र लिखा देखा। तब बड़े लड़केने कुटुम्बके लोगोंसे पूछा कि यह चित्र किसने बनाया है। किसीने उत्तर नहीं दिया। तब बड़े लड़केने छोटे लड़केसे पूछा कि क्या कल मेरी स्लेटपर अंग्रेजी तुमने ही लिखी थी? छोटा लड़का—हाँ। बड़ा लड़का—और लिखो? छोटा०—मैं पढ़ा नहीं। बड़ा०—कल अंग्रेजी कैसे लिखी थी? तब छोटा लड़का चुप हो गया, विशेष कहनेपर रोने लगा। तब बड़े लड़केने कहा, और चित्र बनाओ। छोटे लड़केने कहा, अकेलेमें बनाऊँगा। तब बड़े लड़केने स्लेट, पेंसिल देकर कहा, बनाओ। तब छोटा लड़का एकान्तमें जाकर थोड़ी ही देरमें बहुत बढ़िया चित्र बनाकर ले आया, सब लोग देखकर दङ्ग रह गये। सबको उस समय यही निश्चय हुआ कि इस जन्ममें विना सीखे यह चित्र-विद्या पूर्वजन्मके संस्कार विना नहीं बन सकती। यह घटना एक प्रामाणिक सज्जनके द्वारा मुझे मालूम हुई थी। इससे भी परलोक और जन्मान्तरकी सिद्धि स्पष्ट होती है। मेरे पास वर्तमानमें एक ब्रह्मचारी मौजूद है। संस्कृत-विद्याका अभ्यास कर रहा है। थोड़े दिन हुए, ब्रह्मचारीने एक अत्यन्त सुन्दर चित्र बनाकर मुझको भेंट किया था। सैकड़ों रुपयेमें भी ऐसा चित्र मिलना कठिन है। ब्रह्मचारीसे पूछनेपर मालूम हुआ कि उसने इस जन्ममें चित्रकी कारीगरी बिल्कुल नहीं सीखी है इससे भी पूर्वजन्मका निश्चय होता है।

कई वर्ष हुए, एक घटना इसप्रकार हुई थी—एक बहुत बड़ा साहूकार रात्रिके समय अकस्मात छतपरसे गिरकर मर गया था। साहूकारके पास करोड़ोंका धन नगद था। परन्तु किसीको यह मालूम नहीं था कि कहाँ रक्खा है। यद्यपि सेठके कई लड़के थे, बड़ा कुटुम्ब था, परन्तु साहूकारने अपनी नगदीका पता किसीको नहीं बताया था। साहूकारके मर जानेपर कुटुम्बमें बड़ा शोक छा गया। लड़के होशियार थे। साहूकारकी अन्तिम क्रिया करके लड़कोंने कारबार सँभाल लिया। नगदी धनका बहुत पता लगाया गया, लेकिन कुछ पता नहीं चला। कुछ दिनके बाद एक पुरुष 'मैस्मेरिज़्म' विद्याका जाननेवाला, दैवयोगसे उस शहरमें आया। परलोकगत आत्माओंको यह बुलाकर बातचीत करा दिया करता था। उस पुरुषकी शहरमें बड़ी प्रसिद्धि फैल गयी थी। तब साहूकारके लड़कोंने इस विद्वान्के पास जाकर अपने पिताके अचानक मरने और नगदीके न मिलनेका हाल कहा। विद्वान्ने सेठकी परलोकगत आत्माको बुलाकर बातचीत करानेका आश्वासन दिया।

इसके बाद उस परलोकविद्याके विद्वान्ने उसी सेठके बगीचेके बँगलेमें प्रयोग किया। कुल सात आदमी प्रयोगमें थे। पहले कुछ भगवत्सम्बन्धी गायन किया गया, फिर सबने परलोकगत आत्माके आनेकी भावनाका ध्यान किया। जब सबकी भावना दृढ़ हुई, और वे शान्त हो गये, तब सेठका बड़ा लड़का बेहोश होता हुआ मालूम हुआ। थोड़ी ही देरमें वह बिल्कुल बेहोश हो गया और सेठकी आत्मा आकर बड़े लड़केके शरीरमें प्रविष्ट हो गयी। प्रयोगकर्त्ताको मालूम हो गया कि परलोकगत आत्मा उतर आयी। प्रयोगकर्त्ताने पूछा, आप कौन हैं? सेठ—मैं सेठ हूँ। प्रयोगकर्त्ता—आपके अचानक परलोक जानेसे आपका कुटुम्ब बड़ा दुखी है। आपके नगदी धनका कुछ भी पता नहीं है। सेठ—मुझे भी चिन्ता है, मैं चाहता हूँ कि मेरा धन मेरे बालकोंको मिले और उसका सदुपयोग हो। प्रयोगकर्त्ता—धन बतलाइये। आपकी आज्ञाके मुताबिक ही कार्य होगा। सेठ—इसी कमरेके तहखानेके नीचे कोठरीमें सब धन रक्खा है। इसको सब लड़के बराबर बाँट लें और शुभ कार्यमें लगावें, बुरे काममें न लगावें। मेरी आत्मा इससे सन्तुष्ट होगी। मैंने परिश्रमसे यह धन इकट्ठा किया है। अब मैं जाता हूँ—ऐसा कहकर सेठकी आत्मा चली गयी। सेठका लड़का थोड़ी ही देरमें होशमें आ गया। सेठके कहे-अनुसार खोज करनेपर सब धन मिल गया। आनन्द हो गया। इस घटनासे परलोकमें कुछ भी सन्देह नहीं रह सकता। इस मैस्मेरिज़्म-विद्यासे प्रभावित होकर पाश्चात्य विद्वानोंको भी अब परलोकमें सन्देह नहीं रह गया है। यह विद्या हमारे योगशास्त्रका अंशमात्र है।

तिब्बतमें लामा (साधु) गुरु होते हैं। यह बात सुनी गयी है कि उनमेंसे कोई-कोई अभ्यासी पुरुष मरनेके पहले अपने प्रिय पुस्तकादि सामान किसी विश्वस्त पुरुषके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पास जमा कर देते हैं और विश्वासी पुरुषको कह देते हैं कि दस-पन्द्रह वर्षके बाद आपके पास मैं दूसरे शरीरसे आऊँगा। जब मैं अपने सामानका पूरा-पूरा पता दूँ, तब मुझे मेरा सामान दे देना। ऐसा बन्दोबस्त करके वे दूसरे शरीरसे आकर पूरा पता देकर अपने सामानको ले लेते हैं। मैंने कैलास-यात्राके समय तिब्बतमें इन लामा गुरुओंसे बातें की हैं। कोई-कोई पुनः शरीर-ग्रहणकी विद्या जानते हैं। इससे भी परलोक (पुनर्जन्म) में सन्देह नहीं रहता है।

एक समय मैंने फर्रुखाबादमें पुनर्जन्मके विषयमें भाषण दिया था, तब किसी साहूकारने मुझसे कहा, महाराज, मेरे यहाँ एक क्षत्रिय है जो अपने पूर्व-जन्मका हाल जानता है। मैंने उस आदमीको अपने पास बुलवाया और पूछा कि 'क्या तुम अपने पूर्व-जन्मका हाल जानते हो।' तब वह क्षत्रिय बोला, 'हाँ महाराज।' मैंने कहा—अपने पूर्व-जन्मकी कथा कहो। क्षत्रिय—मैं पहले जन्ममें क्षत्रिय ही था। यू० पी० में ही किसानीका काम करता था। एक दिन किसानोंसे लड़ाई हो गयी। उसमें मैं मारा गया। कुछ कालके बाद थोड़ी दूरपर मेरा जन्म हुआ। जब मैं कुछ बड़ा हुआ तब मुझे अपने पूर्व-कुटुम्बकी याद रही। मेरा एक बेटा और स्त्री घरमें थे। कुछ धन गड़ा रह गया था। मेरे सिवा किसीको मालूम नहीं था। मैंने अपने पूर्व-गृहमें जाकर वह धन अपने स्त्री और बच्चेको निकालकर दे दिया। इसके बाद, वर्तमान माता-पिताने फिर अपने पूर्व-घरमें मुझे नहीं जाने दिया। पूर्वकी यादगिरीको भुलानेके लिये कई दवाइयाँ मुझे खिलायी गयीं, जिसके सबबसे अब मुझे पूर्व-जन्मकी बहुत बातें विस्मृत हो गयी हैं। अभी मेरा लड़का जीता है। उसकी करीब साठ वर्षकी अवस्था है। मेरी आयु करीब ४० वर्षकी है, इत्यादि।

इस आदमीको मैंने अपनी आँखोंसे देखा था। इसकी बात सच्ची निश्चित होती थी। यह पुरुष मुझे बहुत सीधा और सच्चा मालूम होता था। और लोग भी इसी प्रकार बतलाते थे। इस घटनासे भी परलोकमें सन्देह नहीं रहता है*। इति शिवम्।

प्रेम

प्रेमका अद्भुत है व्यापार।
प्रेममयी यह प्रकृति सुन्दरी, प्रेमरूप करतार। ध्रुव।
मनमन्दिरमें प्रेमदेवका, होता जब संचार
बज उठते, आनन्दमयी उस, हृत्तन्त्रीके तार॥१॥
मिट जाते हैं दोष दुःख सब, संसृति-विविध विकार।
प्रेमरूप यह विश्व दिखाता, होता हृदय उदार॥२॥
प्रेम स्वर्ग, अपवर्ग प्रेम है, प्रेम विश्व-आधार।
प्रेमविवश भगवान बने हैं, निराकार, साकार॥३॥

गयाप्रसाद शास्त्री 'श्रीहरि'

* परलोकमें कल्याण-प्राप्त्यर्थ काशीस्थ साधुमण्डलकी ओरसे 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्रका कोष स्थापित किया गया है। कतिपय भक्तगण निज कल्याणार्थ-शिवप्रीत्यर्थ लाल स्याहीसे कागजपर 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र लिख-लिखकर भेजते हैं। शास्त्रानुसार पाँच लाख मन्त्र लिखनेसे एक पुरश्चरण होता है। आगामी प्रयागराजकी अर्धकुम्भीके अवसरपर लिखनेवालोंके नामसे मन्त्र-प्रतिष्ठा और पूजन तथा शान्तिनिमित्त यज्ञादि कर्म कर पुनः शिवार्पण तथा गंगार्पणमस्तु किया जायगा। अतः कल्याणमुमुक्षु जनोंको 'ॐ नमः शिवाय' बैंक काशीके पतेपर 'ॐ नमः शिवाय' लिख-लिखकर भेजना चाहिये। यह महामन्त्र अति ही कल्याण-कारी है। दस महीनेमें बीस करोड़ मन्त्र जमा हो चुके हैं।

य ॐ नमः शिवायेति मन्त्रं लिखति भक्तितः। अघं दंदह्यते तस्य वह्निः काष्ठचयं यथा॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मदारी !

(लेखक—श्रीअमृतलाल जीवराज ठक्कर)

एक समयकी बात है। मैं कहीं जा रहा था। राहमें मैंने देखा कि एक मदारी खेल दिखा रहा है। लोगोंकी भीड़ जमी है। कठपुतलियाँ नाच कर रही हैं। खेलती हैं, कूदती हैं, छिप-छिप जाती हैं और पुनः सामने आकर नाचने लगती हैं। दर्शकोंको स्वप्नमें भी यह भान न होता था कि ये कठपुतलियाँ किसीकी प्रेरणापर नाच रही हैं; वे कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि कोई और इन्हें नचा रहा है। उस समय तो प्रत्यक्ष ऐसा प्रतीत होता था मानों वे पुतलियाँ स्वयं अपनी मौजपर नाच रही हैं, चल-फिर रही हैं। दर्शक मुग्ध होकर देख रहे थे और अपनी इस तन्मयतामें कभी-कभी उन पुतलियोंके नृत्यकी प्रशंसा भी करते जाते थे। नाचनेवालेको देखते-देखते 'नचानेवाले' की याद भी भूल गयी, मानों वह कोई वस्तु थी ही नहीं और न उसका कोई सम्बन्ध ही इन पुतलियोंसे है!

खेल खतम हुआ। हम सभी अपने-अपने स्थानको चले। मेरे मनमें मदारी और पुतलियोंका खेल चक्कर काट रहा था। मैं सोच रहा था—खेल कितनी सफाईसे हुआ! हम लोग मदारीको भूल-से गये और पुतलियोंकी स्वतन्त्र सत्ताको मान बैठे! क्या मदारीके बिना पुतलियाँ अपना खेल कर पातीं? मदारी सत्य है या पुतलियाँ! पुतलियोंके खेलमें मदारीको भूल जाना क्या हमारा भ्रम न था, मूर्खता न थी?

प्राणनाथ! तुम भी तो एक मदारी ही न हो? यह समस्त विश्व तुम्हारी रङ्गभूमि है, क्रीड़ा-स्थल है! हम सभी प्राणी तुम्हारे हाथकी कठपुतली हैं! चाहे जैसी नाच नचाओ, जैसी लीला रचो और उसमें हमसे जो खेल करवाओ! प्रभो! हममें अपनी शक्ति क्या है? जैसी प्रेरणा तुम करोगे वैसी क्रीड़ा हमसे होगी! मेरे प्रेरक प्रभु! तुम्हीं तो इस लीलाके मूलमें रहकर समस्त चराचरको प्रेरित कर रहे हो! तुम्हारे विना तो एक क्षण भी यह विराट् समारोह चल नहीं सकता और हम प्राणी इतने विमूढ़ हैं कि इन पुतलियोंके खेलमें मदारीको भी भूल जाते हैं। अरे! हममें क्या शक्ति है कि एक पलके लिये भी स्वतः किसी भी क्रीड़ामें प्रवृत्त हों। ओ यन्त्री! इस यन्त्रके प्रेरक तो तुम्हीं न हो! तुम्हारी लीलाका अविराम विस्तार तो हम कठपुतलियोंके द्वारा हो रहा है!!

कैसी भारी भूल है, कितनी बड़ी विडम्बना है! हम अपने कर्मोंका कर्ता अपनेको मान बैठे हैं और उस कर्तापनका अभिमान भी हमारे साथ लगा रहता है! कोई कहता है—मैंने यह किया, मैंने यज्ञ किये, धर्म कमाया, धर्मशाला बनवायी, कुएँ तैयार कराये, अन्नक्षेत्र खुलवाये, सदाव्रत चलवाये, यह किया, वह किया! हम मन्दिर, कुएँ और धर्मशाला बनवाते हैं और बन जानेपर संगमर्मरके टुकड़ेपर अपना नाम खुदवाकर जड़ देते हैं तथा यह सब देखकर फूले नहीं समाते। त्याग करते हैं और त्यागके अभिमानका डङ्का पीटते हैं। प्रेरक प्रभुकी सर्वशक्तिमत्ताको भूलकर हम अपनी शक्तिकी प्रशंसामें ही व्यस्त रहते हैं! हमारे इस अभिमान और अज्ञानपर बुद्धिमानोंको जरूर दया आती होगी। कैसी भयङ्कर भूल है, कैसा अक्षम्य अपराध है? अरे! यह तो सब कुछ प्रभुकी प्रेरणाका फल है! पुतलियाँ अपने नृत्यपर अभिमान और गर्व कर बैठें तो कैसा?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रभुकी प्रेरणा और इच्छाके बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता ! जो कुछ हो रहा है, जो कुछ चल रहा है, यह समस्त अनेकानेक ब्रह्माण्ड, वृक्ष, आकाश, पृथ्वी, नक्षत्र, नदी-नद, समुद्र—सब कुछ तुम्हारी लीला है। देव ! पता नहीं, तुम इस पुतलीसे कौन-कौन-से खेल रचोगे, कौन-कौन-से कार्य पूरे कराओगे ?

चूल्हेपर तपेली चढ़ी हुई थी। अन्दर आलू उबाल खा रहे थे। आलुओंकी उछल-कूद भी देखते बनती थी ! बालकने माँसे कहा—माँ ! देख तो आलू कैसे उछल-कूद मचा रहे हैं, कैसी मस्तीसे नाच रहे हैं। देख माँ, माँ देख—आलू ऊपर आया, देख यह नीचे डूबा ! माँ बच्चेकी सरल बुद्धिपर हँसती हुई बोली—'ना बेटा, ऐसी बात नहीं है। आलूकी क्या शक्ति है कि वह उछल-कूद मचा सके ? अरे ! यह तो आगकी लीला है जो चूल्हेके भीतर जल रही है और उसीके कारण यह सारा उबाल और आलूका नाच-कूद है।' बच्चा क्यों मानने लगा ? ना, ना, यह तो केवल आलूका खेल है, आगका इससे क्या सरोकार ? बता, तपेलीमें आग कहाँ है ? बच्चेको समझानेके लिये माताने जलती हुई लकड़ी चूल्हेमेंसे निकाल दी—और ऐं ! उसी क्षण आलूके सारे खेल-कूद गायब ! बेचारे आलू सिटपिटाकर चुपचाप पेंदीमें सिमटे बैठे थे। हाय ! हमारी बुद्धि भी तो विश्वके सम्बन्धमें ठीक उन बच्चोंकी भाँति अल्हड़ और नादान है ! हम भी तो पुतलियोंके नृत्य और आलुओंके खेल-कूदको स्वतन्त्र शक्ति और सत्ताके रूपमें माने बैठे हैं। हमने उस प्रेरक मदारी और अग्निके अस्तित्व-को ही भुला दिया है। हाय ! हमारी बुद्धि तो बार-बार समझाये जानेपर भी यह स्वीकार करना नहीं चाहती कि 'प्रेरक शक्ति' इन पुतलियों और आलुओं-को नचा रही है।

भीष्मपितामहजी शर-शय्यापर पड़े हुए थे। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी पाँचों पाण्डवोंके साथ पैदल आ पहुँचे। उन्हें देखकर दादाजीकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली ! पाण्डव यह देखकर किंकर्त्तव्य हो गये। अर्जुनकी जिज्ञासा तो बड़ी ही तीव्र थी और वे थे भी कृष्णके मुँहलगे सखा। अर्जुनने भगवान्‌से पूछा—'महाराज ! यह क्या ? आप तो कहते हैं कि ज्ञानी पुरुषोंको मोह नहीं होता। दादा भीष्मजी तो नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं, राग-द्वेषसे परे हैं, आपके प्रियभक्त हैं, आत्मदर्शी और स्थितप्रज्ञ हैं। क्या बात है कि इनके हृदयमें मोह हो आया है और आँखोंसे आँसुओंकी वर्षा हो रही है ?' भगवान् श्रीकृष्ण बोले—'मैं नहीं बताता, तू स्वयं दादाजीसे पूछ !' अर्जुनकी कुतूहलवृत्ति क्यों मानती ? झट पूछ बैठे, 'दादाजी ! रो क्यों रहे हो—मैं जाननेके लिये विकल हो रहा हूँ।' दादाजी आँसू पोंछते हुए बोले—'अर्जुन ! तुझे क्या कहूँ ? मेरी बुद्धि कुछ काम नहीं करती। क्या बताऊँ क्यों आँसू बह रहे हैं। ये श्यामसुन्दर तो तुम्हारे प्राणप्रिय सखा ही हैं—मैं बार-बार कोशिश करता हूँ परन्तु इनके कार्य कुछ समझमें नहीं आते ! पता नहीं—ये क्या करना चाहते हैं। तुमलोग इनके स्वजन हो, सखा हो, भक्त हो, साथ ही सत्यनिष्ठ और धर्मात्मा भी हो, फिर भी कभी ऐसा न हुआ कि तुमलोगोंको एक रात भी सुखकी नींद सोने देते ! वनवास, कष्ट, दुःख, त्रास, विपत्ति और संकटोंकी ही अनवरत वर्षा तुमपर सदैव रात-दिन होती रही। तुमलोग वनमें मारे-मारे फिरे और कौरव जो दुष्ट, अधर्मी, दुराचारी, पापी और घमण्डी थे मौजसे महलोंमें मजा लूट रहे थे। पुत्र ! तुमलोगोंको पैदल आते देख मैं दुःखकातर हो उठा। तुम्हारे दुःख और विपत्तियोंका जब स्मरण हो आता है तो अनायास आँखोंसे आँसू

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आने लगते हैं। पता नहीं, तुम्हारे इस मित्रकी क्या इच्छा है। पता नहीं, क्या-क्या लीलाएँ अभी इन्हें रचनी हैं। तुझे अभी पैदल आते देख मेरा मन इस विचारमें डूब गया कि धन्य कृष्ण! धन्य हो! तुम्हारी लीला अपरम्पार है, धन्य है!! मैं तुम्हारी माया क्या समझूँ?'

शर-शय्यापर सोये-सोये दादा भीष्मपितामहजी हाथ जोड़कर भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें गद्‌गद् होकर कहने लगे—'हे भक्तमनचोर, पाण्डवोंके सखा, हे देवकीनन्दन! गोपीकान्त कृष्ण! तुम्हारी लीला तुम्हीं समझो! तुम्हारी लीलाका पार पाना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव है। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि, तपस्वी, त्यागी और ज्ञानी तेरी लीला नहीं जान सके। श्रुतियाँ नेति-नेति पुकार रही हैं। मुझमें क्या शक्ति कि मैं जान सकूँ? हे जनार्दन! हे नटवर! तुम्हारा थाह पाना असम्भव है! तुम्हें बार-बार प्रणाम है। धन्य हो देव धन्य हो!' बोलते-बोलते भीष्मपितामहका कण्ठ अवरुद्ध हो गया, आँखोंसे झर-झर आँसू गिरने लगे, वाणी मूक हो गयी, आँखें बन्द हो गयीं·····!! भगवान्‌की अपार मायाका चिन्तन करते-करते भीष्मपितामह प्रेमानन्दके समुद्रमें डूब-से गये।

अर्जुन खड़े-खड़े यह सब लीला देख रहे थे। वे कुछ समझ न सके। लीलामय प्रभु तो मन-ही-मन मुसकरा रहे थे। अर्जुन दादाजीका अगाध ज्ञान और श्रीकृष्णजीकी अतुल मोहिनी शक्ति देखकर आश्चर्यचकित और प्रेम-विभोर हो रहे थे। दादाजी-जैसे तपोनिष्ठ परम ज्ञानीके लिये भी भगवान् कृष्णकी लीला अपरम्पार थी—वह कृष्ण जो रात-दिन उनके बीचमें रहते थे।

प्यारे बाजीगर! तेरी लीलाकी मोहक माया हमने भी देखी, 'मामेकं शरणं व्रज, मा शुचः' के अभय वरदान भी पाये—परन्तु प्राणवल्लभ! तुमने अपनेको परदेके भीतर छिपा क्यों लिया है? एक बार, बस एक बार हृदय-धन! बस एक बार 'घूँघटका पट' खोल दो—

'ना मैं देखूँ और को ना तोहि देखन देउँ।'

आँखें व्याकुल हैं, हृदय तड़प रहा है, प्राण बेसुध है, जीकी कसक, हियकी व्यथा—क्या बताऊँ प्राणोंपर कैसी बीतती है? जबतक तुम्हारी अभय वाणीकी मञ्जुल-मंगल ध्वनि, जबतक तुम्हारी मुरलीका मोहक स्वर इन कानोंने नहीं सुने थे तबतक तो कोई बात न थी; परदेके भीतर तुम भी छिपे थे और मायासे घिरा मैं भी अपनेहीमें भूला-भुलाया था। परन्तु मेघोंका पटल हटाकर एक बार तुमने अपनी मोहिनी चन्द-छबिका जादू अनजानमें ही मुझपर डाल दिया, अब उस आकर्षणमें बेसुध होकर जब प्राण 'हाय-हाय' कर तुमसे मिलनेके लिये, तुम्हें आलिङ्गन-पाशमें बाँधनेके लिये हृदय टूट पड़ा तब ओ नटनागर, ओ छलिया! कहाँ खिसक गये? इस समय तो बस एक ही उत्कट लालसा है—

नैननकी कर कोठरी पुतरी पलँग बिछाय।
पलकनकी चिक डारिके पियको लेहु रिझाय॥

जो कुछ मैं देख रहा हूँ सब तुम्हारी माया है, सब कुछ तुम्हारी लीला है, परन्तु नाथ! अब तो एक बार इस मायाका परदा हटाकर, लीलाका आवरण हटाकर आओ, आओ, मिल जाओ, इन तड़पते हुए प्राणोंसे! एक क्षणके लिये भी चैन नहीं, शान्ति नहीं, विश्राम नहीं। यह तो अनल-सेजपर सोनेके समान दाहक है प्यारे! प्राणोंकी तड़प, हृदयकी प्यास! लाल! तुम्हारी ही लाली तो यह सब कुछ है परन्तु हृदय तो मचल पड़ा है इस अभिनयके सूत्रधारको देखनेके लिये, प्राण तो विकल हो रहे हैं इन लीलाओंमें छिपे हुए लीललामको देखनेके लिये!!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जबतक नहीं दिखे थे, नहीं दिखे थे, परन्तु अब अपनी प्रिय वंशीकी मधुर मोहक ध्वनिसे प्राणोंको अपनी ओर आकृष्टकर क्यों निर्मोही बनते हो! तुम तो प्रेमपरायण हो, भक्तवत्सल हो, अशरणशरण हो, अन्तर्यामी हो न! तुम तो मेरे हृदयकी पीरका आनन्द लूट रहे हो और यहाँ प्रतीक्षाकी विकलतामें प्राणोंपर कैसी बीत रही है—क्या बताऊँ?

भूल? अपराध? हाय! यहाँ तो त्रुटियों, अपराधों और पापोंका ही दौरदौरा है। रात-दिन पापोंमें ही आकण्ठ डूबा हुआ हूँ। पापोंसे अनुराग कम कहाँतक होगा, बढ़ता ही जाता है परन्तु तुम तो मेरे सर्वस्व हो न? मेरी माँ हो—हाँ हाँ मेरी दयामयी जननी हो। माता पुत्रके अपराधोंपर कहाँ दृष्टि डालती है। वह तो पुत्रके अपराधोंपर प्रेम, स्नेह, दया और क्षमाकी अमृत-वर्षा कर देती है और अपराधी पुत्रको गोदमें उठा लेती है! दीनबन्धु! मेरे परम प्यारे सर्वस्व! तुम भी मुझे मेरी सभी त्रुटियों और अपराधोंके साथ शरणमें ले लो, आर्त्त होकर, प्रपन्न होकर चरणोंमें गिरा हूँ। त्राहि माम्! त्राहि माम्!!

परमार्थ-पत्रावली

(श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पत्र)

[गतांकसे आगे]

[१०]

ब्रह्म सच्चिदानन्दघन अनादि और अनन्त है। निर्मल आकाशके किसी एक अंशमें बादलकी भाँति उसी ब्रह्मके एक अंशमें प्रकृति यानी माया है, वह माया जड एवं विकारी है इसीलिये अनित्य है।

ब्रह्मके जिस अंशमें माया है उसको मायाविशिष्ट ईश्वर कहते हैं। उसीका संकेत सर्वज्ञ, सर्वेश, सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी आदि नामोंसे किया गया है। उस ईश्वरका जो अंश है उसकी जीव-संज्ञा है। ये जीव नाना और अनन्त हैं।

सच्चिदानन्दका अंश होनेपर भी मायाके साथ सम्बन्ध रहनेके कारण जीव-संज्ञा मानी जाती है। यह मायाका सम्बन्ध अनादि और सान्त है। उस मायाके अविद्या यानी अज्ञान-अंशसे जीव मोहित हो रहे हैं। उस अविद्याके अंशको ही कारण-शरीर कहते हैं। उसका बाध विद्या यानी ज्ञानसे होता है जो कि बुद्धिका कार्य है। अज्ञानके विध्वंस होनेपर बुद्धिजनित ज्ञान भी स्वतः ही शान्त हो जाता है। जैसे ईंधनको जलाकर अग्नि स्वतः शान्त हो जाती है वैसे ही ज्ञान भी अज्ञानका नाश करके स्वतः शान्त हो जाता है। फिर यह जीव मायासे रहित हुआ कैवल्य-अवस्थाको प्राप्त हो जाता है अर्थात् सच्चिदानन्द परमात्मामें तद्रूपताको प्राप्त हो जाता है। वह ज्ञान निष्काम कर्म और ईश्वरकी भक्तिसे होता है।

वह सर्वव्यापी ईश्वर इस चराचर संसारका ज्ञाता, नियन्ता और मालिक है। इस संसारकी उत्पत्ति उस चेतन ईश्वर और जड प्रकृतिके संयोगसे हुई है।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते॥
(गीता ९। १०)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थात् हे अर्जुन ! मुझ अधिष्ठाताके सकाशसे (यह मेरी) माया चराचरसहित सर्व जगत्‌को रचती है और इस (उपर्युक्त) हेतुसे ही यह संसार आवागमनरूप चक्रमें घूमता है। जडवर्ग यानी जीवोंके शरीर तो प्रकृतिका विकार है। उस शरीरमें जो चेतनता है वह ईश्वरका अंश है।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
(गीता १५। ७)

अर्थात् इस देहमें यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है।

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥

वह परमेश्वर जिसका ज्ञाता, व्यापक, स्वामी और अन्तर्यामी है उसका नाम चराचर संसार है। चर उन प्राणियोंके नाम हैं जो चल-फिर सकते हैं। जैसे मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्गादि। अचर उन प्राणियोंके नाम हैं जो स्थिर रहते हैं—वनस्पत्यादि।

[११]

मेरी अपेक्षा भी श्रीभगवान्‌में बहुत अधिक प्रेम करनेकी आवश्यकता है। उसके लिये तो प्राणपर्यन्त चेष्टा होनी चाहिये। मुझसे अधिक प्रेम न भी हो तो भी कोई हर्ज नहीं है। संसारमें बहुत-से भगवान्‌के ज्ञानी भक्त हैं, मैं तो उनके नाम भी नहीं जानता। क्या उनको परमगति नहीं मिलेगी? जरूर ही मिलेगी। कोई भी क्यों न हो, ज्ञानी भक्तको परमगति अवश्य मिलेगी ही, परन्तु जिनका श्रीनारायणदेवमें प्रेम नहीं है, उनके लिये महान् हानिकी बात है। अतएव श्रीभगवान्‌में पूर्ण प्रेम होनेके लिये प्राणपर्यन्त चेष्टा करना तुम्हारा काम है। ऐसी चेष्टा करनेपर भी प्रेम न हो, सो नहीं। पहले तुम्हारा सत्संगमें कैसा प्रेम था, उस समय तुम सत्संगके सामने रुपयेको कुछ भी नहीं समझते थे, न शरीरकी तकलीफकी ही परवा करते थे। उससे भी बहुत ज्यादा प्रेम सत्संगमें होना चाहिये, और सत्संगसे भी बहुत ज्यादा प्रेम भगवान्‌में होना चाहिये। सत्संगमें जो प्रेम है सो भी भगवान्‌के लिये ही है, इससे उसको भगवान्‌में ही समझना चाहिये। प्राण भले ही चले जायँ, परन्तु भगवान्‌के मिलनेका उपाय करनेमें देर नहीं होनी चाहिये। भगवान्‌के विछोहमें बीतनेवाला एक पल भी युगके समान लगना चाहिये। ध्रुव, प्रह्लाद और गोपियोंकी जैसी चेष्टा थी, वैसी ही हो, तब श्रीभगवान्‌के मिलनेके लिये प्राणपर्यन्त चेष्टा समझी जा सकती है।

[१२]

साधन तेज होनेके लिये अभ्यास ही प्रधान है। इसलिये ध्यानका अभ्यास खूब मन लगाकर करना चाहिये। ध्यानके समान इस संसारमें कुछ भी नहीं है। साकारका ध्यान श्रीप्रेमभक्ति-प्रकाश नामक पुस्तकमें देखना चाहिये। ध्यान तेज होनेके लिये सत्संग, भजन और अर्थसहित श्रीगीताजीका अभ्यास करना चाहिये। निष्कामभावसे लोकसेवा करनेसे भी पापोंका नाश होकर भगवान्‌में प्रेम हो सकता है। निराकारके ध्यानकी बात भी समझनी चाहिये। जहाँ-जहाँ मन जाय वहाँ-वहाँ सच्चिदानन्दघन परमात्माको परिपूर्णरूपसे व्याप्त देखना चाहिये। ऐसा समझना चाहिये कि एक नित्य-शुद्ध-बोधस्वरूप परमात्मा सर्वत्र समभावसे परिपूर्ण हैं। उस परमात्माके सिवा अन्य जो कुछ भी भासता है, वह समस्त संसार उस सच्चिदानन्दघन परमात्माके संकल्पमें स्थित है। वास्तवमें उस नित्य, चेतन, सबके अधिष्ठानरूप परमात्माके सिवा अन्य कुछ भी नहीं है। इसप्रकार सदा-सर्वदा ज्ञाननेत्रोंद्वारा एक परमात्मा वासुदेवभगवान्‌को ही, सर्वत्र समानभावसे, व्याप्त देखते रहना चाहिये। ऐसा करते-करते जब अभ्यास दृढ़ हो जाता है, तब उस साधक पुरुषकी निरन्तर सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही एकीभावसे स्थिर स्थिति हो जाती है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विवेक-वाटिका

परमात्मादेवको जाननेसे सारे बन्धनोंका नाश हो जाता है। क्लेशोंके क्षीण हो जानेसे जन्म-मृत्युका अभाव हो जाता है। उसका ध्यान करनेसे तीनों देहोंका भेदन हो जाता है और केवल आप्तकाम विश्वके ऐश्वर्यको प्राप्त होता है।

—उपनिषद्

* * *

जो पुरुष नष्ट होते हुए सब चराचर भूतोंमें नाशरहित परमेश्वरको समभावसे स्थित देखता है वही यथार्थ देखता है। क्योंकि सबमें समभावसे ईश्वरको समान देखनेवाला पुरुष अपनेद्वारा अपनेको नष्ट नहीं करता अर्थात् शरीरके नाशसे आत्माका नाश नहीं मानता, इसलिये वह परमगतिको प्राप्त होता है। —श्रीमद्भगवद्गीता

* * *

घोर संसारमें पड़े हुए जीवोंके लिये भगवान् वासुदेवकी भक्तिको छोड़कर मुक्ति पानेका और कोई भी मार्ग नहीं है।

—श्रीमद्भागवत

* * *

भगवान् गोविन्दके नामकीर्त्तनरूप अग्निसे तीनों जन्मोंके पाप जल जाते हैं। —श्रीविष्णुपुराण

* * *

जो आनन्द सन्तोषी, निरीह और आत्माराम पुरुषको प्राप्त होता है वह उन लोगोंको कभी नहीं मिलता जो कामनाओंके वशमें होकर इधर-उधर भटका करते हैं। सन्तोषी मनुष्यके लिये संसारमें सर्वत्र सुख-ही-सुख है।

—देवर्षि नारद

* * *

जो वस्तु अतिथिको न खिलावे, उसे आप भी न खाय। अतिथिकी सेवा करनेसे धन, यश, आयु और स्वर्गकी प्राप्ति होती है। —मनु महाराज

* * *

संसारमें न तो कोई किसीका मित्र है न शत्रु है। जो मनुष्य किसीको शत्रु मानकर उसपर क्रोध करते हैं वे असलमें अपना ही नुकसान करते हैं। सारा संसार हरिमय है।

—भक्त प्रह्लाद

* * *

जैसे ठोस पहाड़ वायुसे कम्पित नहीं होता, वैसे ही विद्वान् निन्दा या स्तुतिसे विचलित नहीं होते।

—बुद्ध भगवान्

* * *

भोग्य वस्तुओंमें वासनाका उदय न होना ही वैराग्यकी अवधि है, चित्तमें अहंकारका सर्वथा उदय न होना ही बोधकी अवधि है और लीन हुई वृत्तियोंका पुनः उत्पन्न न होना ही उपरामताकी सीमा है। —श्रीशङ्कराचार्य

* * *

भगवान्का नाम ही दर्पहारी है, वे अभिमानका ही आहार करते हैं। अभिमान करनेसे बड़े-बड़े लोग पतित हो जाते हैं।

—श्रीचैतन्य महाप्रभु

* * *

संसारके विषय-भोग बादलोंमें चमकनेवाली बिजलीके समान चञ्चल हैं। मनुष्योंकी आयु हवासे फटे हुए बादलोंके जलके समान क्षणभङ्गुर है। इसी प्रकार जवानीकी उमङ्ग भी अस्थिर है। अतएव हे बुद्धिमान् पुरुषो! धीरजके साथ चित्तको एकाग्र करके भगवान्के ध्यानमें लगा दो।

—भर्तृहरि

* * *

काम, क्रोध, मद, लोभ—ये सब नरकके मार्ग हैं। इन सबको छोड़कर श्रीरघुनाथजीको भजो, जिनको सन्त भजते हैं। —गो० तुलसीदास

* * *

लोटेमें नीचे छेद होनेसे सभी जल गिर पड़ता है, इसी प्रकार साधकके मनमें कामना होनेपर साधनका फल चला जाता है।

—परमहंस रामकृष्ण

* * *

सत्यता, सद्वचन, सत्कर्म, उदारता, क्षमा, लोकहित आदि कोई-न-कोई कार्य करते रहना चाहिये। ये सब बहुत बड़े सहायक हैं। —स्वामी रामतीर्थ

* * *

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

कल्याण वैशाख १९९१ की

विषय-सूची

	पृष्ठ-संख्या
१–बाँसुरी [कविता] (रसनायक)	१२२७
२–पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश	१२२८
३–परमार्थ-प्रश्नोत्तरी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	१२२९
४–भक्त-गाथा ('माधव')	१२३४
५–श्रीभगवन्नाम-जप	१२३८
६–श्रीप्रेम-शतक [कविता]	१२३९
७–परमहंस-विवेकमाला(स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी)	१२४३
८–आसिक होकर सोना क्या रे ! (पं०श्रीभुवनेश्वर-नाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए०)	१२५०
९–निराकार ईश्वर, अद्वैतवाद और भक्तिवाद (ठाकुर श्रीगजराजसिंहजी एम० ए०, एल-एल० बी०)	१२५३
१०–श्रीनर्मदाजीका महत्त्व (पं० श्रीदयाशंकरजी दुबे एम०ए०, एल-एल०बी० सम्पादक—धर्मग्रन्थावली, दारागंज, प्रयाग)	१२५७
११–ब्रह्मविद्या-रहस्य (अनु० तथा ले०–श्रीनृसिंहदासजी वर्मा)	१२६०
१२–साधन-भक्ति (परिव्राजक श्रीमद्ब्रह्मचारी गोपाल चैतन्यदेव)	१२७३
१३–हिन्दीमें धर्म-साहित्य (पं० श्रीगोविन्दनारायणजी आसोपा, बी०ए०, एम०आर०ए०एस०)	१२७६
१४–शिव-तत्त्व ही अनन्तरूप है(बहिन श्रीजयदेवीजी)	१२७९
१५–कल्याणकी ओर (श्रीयुत अनन्तशंकर कोल्हटकर बी० ए०)	१२८३
१६–अवतारसिद्धि(पं०श्रीविष्णुदत्तजी शर्मा बी०ए०)	१२८४
१७–एक तेरा ध्यान[कविता](पं०श्रीबलदेवप्रसादजी मिश्र)	१२८९
१८–शिवमें श्रद्धा (एक विष्णुभक्त)	१२९०
१९–मनको उपदेश (अनु०–कृष्णसुत)	१२९५
२०–जीव और ब्रह्म [कविता] (श्रीजगन्नाथजी मिश्र गौड़ 'कमल' विद्यालंकार)	१२९८
२१–कौन जतन विनती करिये ! (पं० श्रीभुवनेश्वर-नाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए०)	१२९९
२२–परमार्थ-पत्रावली (श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पत्र)	१३०२
२३–अनुरोध [कविता] (महात्मा जय गौरीशंकर सीतारामजी)	१३०६

दूसरा संस्करण ! **प्रकाशित हो गया !!** नवीन संस्करण !!!

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी लिखित

बिनय-पत्रिका

सरल हिन्दी-टीका-सहित

श्रीगोस्वामीजीके इस विनय, प्रेम और उपदेशपूर्ण ग्रन्थके विषयमें प्रायः सभी कुछ-न-कुछ जानते हैं। अवश्य ही सन्तोंकी वाणीमें अमिट, चिरस्थायी प्रभाव होता है तभी तो हम आजतक उनको गा-गाकर शान्ति लाभ करते हैं।

स्वामीजीके पदोंका सरल हिन्दी-भाषामें सबके समझनेयोग्य भावार्थ लिखा गया है। इस बार कठिन स्थलोंके समझनेके लिये परिशिष्ट और जोड़ दिया गया है। प्रचारके विचारसे मूल्य बहुत अनुकूल रक्खा गया है। पृष्ठ-संख्या ४७८, चित्र ३ सुनहरे, २ रंगीन, १ सादा, मूल्य १) सजिल्द १।)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कल्याण

भगवान्‌की पूजाके लिये सबसे अच्छे पुष्प हैं—श्रद्धा, भक्ति, प्रेम, दया, मैत्री, सरलता, साधुता, सत्य, क्षमा आदि दैवी गुण। स्वच्छ और पवित्र मन-मन्दिरमें मनमोहनकी स्थापना करके इन पुष्पोंसे उनकी पूजा करो।

जो इन पुष्पोंको फेंक देता है और केवल बाहरी फूलोंसे भगवान्‌को पूजना चाहता है उसके हृदयमें भगवान् आते ही नहीं, फिर वह पूजा किसकी करेगा?

× × × ×

याद रक्खो, जगत् क्षणभंगुर है, हम सब मौतके मुँहमें बैठे हैं, पता नहीं काल-देवता कब किसको अपने दाँतों-तले दबाकर पीस डालें। अतएव निरन्तर सावधान रहो, किसीको दुःख न पहुँचाओ, सबके सुखके कारण बनो, सबका मंगल चाहो, सबका हित करो, भगवान्‌में प्रेम करो और शुद्ध व्यवहारसे अपने स्वामी भगवान्‌के प्रति लोगोंमें श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न करनेका प्रयत्न करो।

× × × ×

कभी निराश मत हो। यह निश्चय रक्खो, तुम्हारी आत्मशक्ति भी उतनी ही है जितनी संसारके बहुत बड़े-बड़े महापुरुषोंमें थी। निश्चय, विश्वास और साधनसे आत्मशक्तिका विकास करो। यदि तुम्हारा निश्चय दृढ़ हो, विश्वास अटल हो और साधन नियमित और नित्य हो तो इसी जन्ममें तुम ऊँचे-से-ऊँचे ध्येयको प्राप्त कर सकते हो। अपनी शक्तिहीनताको देखकर उत्साह न छोड़ो। परमात्मा अनन्तशक्ति हैं और अपनी शक्ति तुम्हें प्रदान करनेके लिये तैयार हैं। निश्चय और विश्वासके बलपर उस शक्तिको ग्रहण करनेकी तुम्हारी स्थिति होनी चाहिये। यह स्थिति तुम अर्जन कर सकते हो।

× × × ×

शास्त्रोंकी कोई बात समझमें न आवे तो उसपर अविश्वास न करो। संसारकी सभी बातें सबके समझमें नहीं आ सकतीं। यदि दैवी सम्पत्तिके विकासमें बाधा होती हो तो उस बातको काममें न लाओ। अपनेको अनधिकारी समझो। दैवी सम्पत्ति बढ़ती हो तो न समझमें आनेपर भी उस बातको मानकर उसे काममें लाओ। तुम्हारा अकल्याण नहीं होगा।

'शिव'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

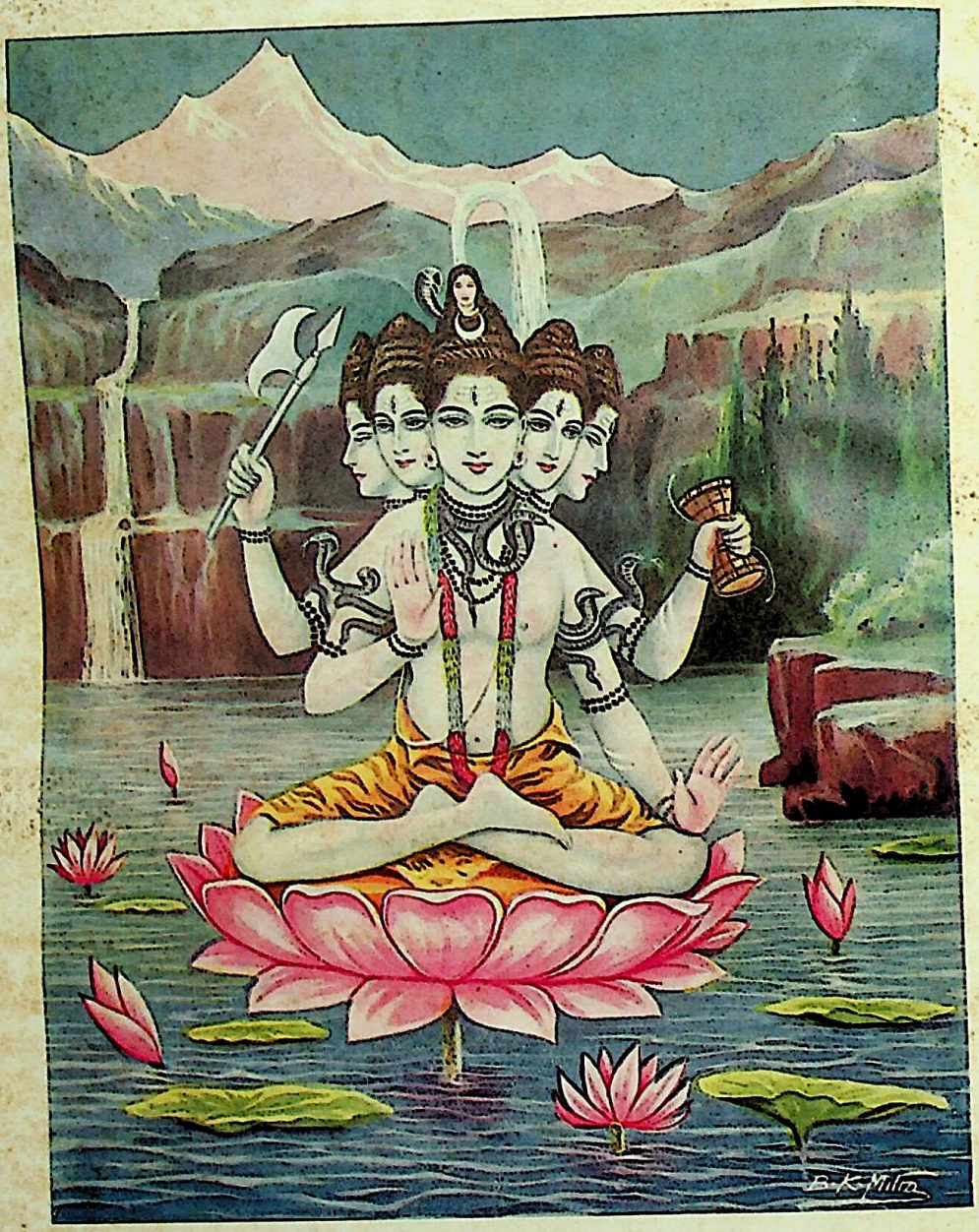

पञ्चमुख महादेव

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

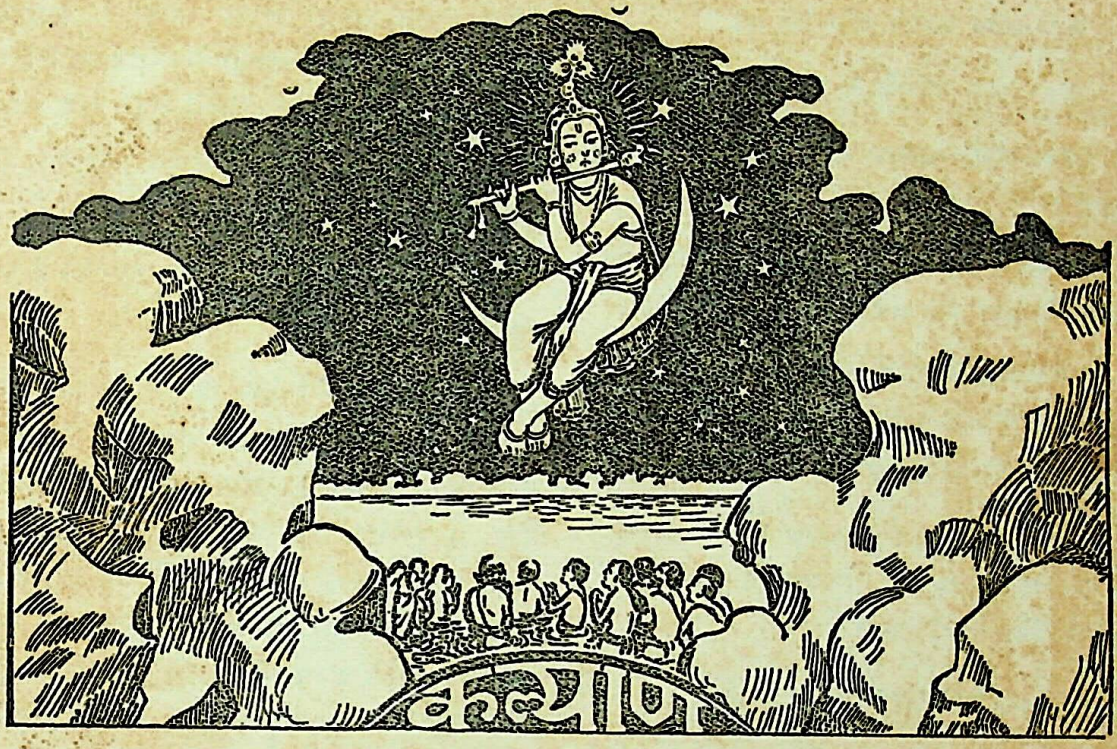

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

वर्ष ८ | गोरखपुर, वैशाख १९९१ मार्च १९३४ | संख्या १० पूर्ण संख्या ९४

बाँसुरी

जलकी न घट भरैं, मगकी न पग धरैं, धरकी न काम करैं, बैठी भरैं साँसु री।
एकै सुन लोट गईं, एकै लोट-पोट भईं, एकनके दृगन निकसि आये आँसु री॥
कहै रसनायक सो ब्रज-बनितन बिध, बधिक कहाये हाय हुई कुल-हाँसु री।
करिये उपाय बाँस डारिये कटाय, नहिं, उपजैंगे बाँस नाहिं बाजै फेरि बाँसुरी॥

—रसनायक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश

प्र०—भजन करनेमें रुचि कैसे बढ़े ?

उ०—भजन करनेसे ही भजनमें रुचि बढ़ती है।

प्र०—सत्संग करनेपर भी भजनमें रुचि क्यों नहीं होती ?

उ०—पापकी अधिकता होनेके कारण नहीं होती। सत्संगसे श्रद्धा और भजनमें रुचि बढ़ती ही है।

प्र०—कभी-कभी तो स्वाभाविक ही भजनमें रुचि हो जाती है और कभी-कभी चेष्टा करनेपर भी नहीं होती, इसमें क्या हेतु है ?

उ०—इसमें हेतु है सत्त्व, रज और तमकी प्रवृत्ति। (मन न लगनेपर भी) नियमपूर्वक भजन करनेसे उनकी निवृत्ति हो सकती है।

प्र०—भजन किसका करना चाहिये ?

उ०—जो सबसे बड़ा हो। शुद्धब्रह्म पृथिवी, शबल ब्रह्म बीज, हिरण्यगर्भ अङ्कुर, विराट् वृक्ष और अवतार फल है। जिसको फल खानेकी इच्छा हो, उसको अवतारी भगवान्‌का ही भजन करना चाहिये।

प्र०—भजन और सत्संगमें कौन श्रेष्ठ है ?

उ०—जिससे भगवदाकार-वृत्ति हो जाती है वही भजन है। सत्संग, सेवा, नामजप और ध्यानसे भगवदाकार-वृत्ति हो जाती है। अतः दोनों ही समान हैं।

प्र०—भजनमें अधिक समय लगाना चाहिये या सत्संगमें ?

उ०—वैधी, गौणी भक्तिवालेको तो सत्संगमें अधिक समय लगाना चाहिये। अनुरागात्मिका भक्तिवालेको भजनमें अधिक समय लगाना चाहिये। शास्त्रकी परम्परासे भक्ति करनेके क्रमको वैधी भक्ति कहते हैं। अनुरागात्मिका भक्ति वह है, जिसमें भजन किये बिना रहा ही न जाय, इसके बाद प्रेमलक्षणा भक्ति स्वतः ही प्राप्त हो जाती है।

प्र०—भजन करनेमें सञ्चित कर्म बाधा देते हैं या नहीं ?

उ०—भजन करनेके लिये दृढ़ताकी आवश्यकता है। दृढ़ संकल्प हुए बिना सब बाधा देते हैं और उनमें भी कुसंग-जैसी बाधा और कोई नहीं देता। सञ्चित कर्म बाधा नहीं दे सकता। भजन न करनेवालेको ही सञ्चित कर्म बाधा देता है। सत्संग, सच्छास्त्रविचार और भजनसे सञ्चित कर्म दब जाते हैं। भक्तोंके जीवन-चरित्र पढ़नेसे भजनमें जितनी रुचि बढ़ेगी, उतनी भगवान्‌के चरित्रोंसे भी नहीं होगी। भक्तने भगवान्‌को प्रकट किया है इससे भक्त भगवान्‌से भी बढ़कर है। कृष्णमृग भगवान्‌के भक्तको कहते हैं। भक्तोंके गुणगान भगवान्‌के गुणगानसे भी बढ़कर हैं। स्वल्प पुण्य करनेवालेको प्रसाद, नाम-गुण-गान, भक्त-चरित्र और भगवान्‌के विग्रहकी प्राप्ति नहीं होती, भक्तोंमें प्रेम हो गया तो वह भगवान्‌के प्रेमका अधिकारी हो गया।

भगवान्‌को निवेदन करके जो वस्तु खाते हैं उसे प्रसाद कहते हैं—

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥

व्रजवासियोंका टुकड़ा ही भगवत्प्रसाद है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परमार्थ-प्रश्नोत्तरी

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

प्र०—श्रीकृष्ण तथा अन्य अवतारोंकी भक्तिसे मुक्ति मिल सकती है या नहीं और मुक्तिके लिये ज्ञान तथा निर्गुण-निराकारकी उपासनाके अतिरिक्त अन्य क्या साधन हैं ?

उ०—हाँ, श्रीकृष्णादि अवतारोंकी भक्तिसे मुक्ति मिल सकती है। ज्ञानके अतिरिक्त मुक्ति प्राप्त करनेके दो साधन और हैं। सगुण परमात्माकी उपासना और निष्काम कर्म। इन्हींको लक्ष्य करके भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥
(३।३)

'हे निष्पाप अर्जुन! इस लोकमें दो प्रकारकी निष्ठा मेरेद्वारा पहले कही गयी है, ज्ञानियोंकी ज्ञानयोगसे और योगियोंकी निष्काम कर्मयोगसे।'

यहाँ कर्मयोगमें निष्काम कर्म और भक्ति(सगुणोपासना) दोनों ही अन्तर्गत हैं। सगुणोपासनासे प्रसन्न होकर भगवान् अपनी कृपासे भक्तोंको तत्त्वज्ञान दे देते हैं जिसके द्वारा मनुष्य भगवत्तत्त्वमें प्रवेश कर जाता है—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥
(गीता १०।१०)

'उन निरन्तर मेरे ध्यानमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ कि जिससे वे मेरेको ही प्राप्त होते हैं।' किन्तु प्रेमी भक्त प्रायः भगवान्‌के सान्निध्यको छोड़कर कैवल्य-मुक्ति भी नहीं चाहते।

यद्यपि वेद-शास्त्रोंमें ऐसा कहा गया है कि 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' अर्थात् ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं होती, तथापि भगवान्‌की कृपासे भक्तको वह ज्ञान सहजहीमें प्राप्त हो जाता है, जैसा कि ऊपर कहा गया है—

'ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।'

इसलिये भक्तिसे मुक्ति मिल सकती है, यह माननेमें कोई आपत्ति नहीं है। भक्त तो ऐसा मानते हैं कि मुक्ति भगवान्‌के अनन्य प्रेमियोंके चरणोंमें लोटती है किन्तु वे उसकी ओर भूलकर भी नहीं ताकते, उसकी इच्छा करना तो दूर रहा। मुक्तिकी स्पृहाको भक्तोंने पिशाची बताया है—

'मुक्तिमुक्तिस्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्तते।'

फिर वे उसकी इच्छा क्यों करने लगे?

स्वामी विवेकानन्दने यह कहा है कि भक्ति करनेसे भगवान् ज्ञान देते हैं तब मुक्ति होती है, यह ठीक ही है। परन्तु भक्ति करनेवालोंको भगवान् ज्ञान ही देते हैं, यह बात नहीं है। प्रेम चाहनेवालेको वे प्रेम दान देते हैं और जो उनसे कुछ भी नहीं चाहता उसके तो वे ऋणी बन जाते हैं। भगवान्‌के प्रेमी भक्त मुक्तिकी अपेक्षा भगवान्‌के समीप रहना अधिक पसन्द करते हैं।

मुक्ति दो प्रकारकी होती है-(१) धाम-मुक्ति अर्थात् साकार भगवान्‌के धामकी प्राप्ति और (२) कैवल्य-मुक्ति अर्थात् निर्गुण-निराकार ब्रह्ममें लय हो जाना अथवा भगवत्तत्त्वमें प्रवेश कर जाना। इनमेंसे दूसरे प्रकारकी मुक्ति तो ज्ञानसे ही होती है। भक्ति करनेवालोंको भी यह मुक्ति 'ददामि बुद्धियोगं तम्' इस वाक्यके अनुसार भगवत्प्रसादसे ज्ञान प्राप्त करनेपर ही होती है। 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' इत्यादि वचन इसी मुक्तिको लक्ष्यमें रखकर कहे गये हैं। पहली अर्थात् धाम-मुक्ति जिसके सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य—इस प्रकार चार भेद शास्त्रोंमें कहे गये हैं—यह भेदभावकी मुक्ति प्रेमा भक्तिसे ही मिलती है, ज्ञान अर्थात् अभेदोपासनासे नहीं मिलती। अभेदोपासनासे ब्रह्ममें लय हो जानेवाली मुक्ति ही मिलती है। भेदरूपसे भगवान्‌की भक्ति करनेवाला यदि चाहे तो उसे भगवान्‌की कृपासे कैवल्य-मुक्ति भी मिल सकती है, किन्तु अभेदोपासना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करनेवालोंको धाम-मुक्ति नहीं मिल सकती। यही भक्तिकी विशेषता है।

प्र०—श्रीकृष्णादि अवतार-विग्रह मायिक हैं अथवा अमायिक? उनका महत्त्व निर्गुण-निराकार ब्रह्मके समान ही है अथवा कुछ न्यूनाधिक?

उ०—भगवान्‌के अवतार-विग्रह मायाके शुद्ध स्वरूपसे प्रकट होनेके कारण मायिक होनेपर भी अमायिक ही हैं। इसीलिये उस मायाको योगमाया अथवा भगवान्‌की लीला इत्यादि नामोंसे निर्दिष्ट किया गया है। अब रही परमात्माके निर्गुण और सगुण स्वरूपके तारतम्यकी बात, सो निर्गुण ब्रह्मके स्वरूपका तो वर्णन ही नहीं हो सकता, वह तो मन, वाणी और बुद्धिसे अगोचर, अनिर्वचनीय है—

'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'

'न तत्र बुद्धिर्गच्छति न वाग्गच्छति···'

जो कुछ वर्णन होता है वह सगुण परमात्माका ही होता है। सगुण ब्रह्मके दो भेद हैं—साकार और निराकार। प्रभुके जितने भी विशेषण पाये जाते हैं सभी उनके आभूषणरूप हैं, सभी उनके स्वरूपको सजानेवाले हैं, उनकी ओर जीवको आकर्षण करनेवाले हैं। यद्यपि वास्तवमें उनके स्वरूपका वर्णन हो ही नहीं सकता, फिर भी जो कुछ किया जाता है सभी कल्याणकारक है। प्रभुके निराकार और साकार दोनों ही विशेषण अतिशय महत्त्ववाले हैं, किसको छोटा और किसको बड़ा कहा जाय! दोनों ही विशेषणोंसे विशिष्ट जो धर्मी है वह एक है, आवश्यकतानुसार नटकी भाँति अपनी योगमायासे स्वरूप बदलता रहता है। प्रधान वस्तु धर्मी है और वह एक ही है।

प्र०—गीताप्रेसकी टीकामें श्रीमद्भगवद्गीताके ७ वें अध्यायके २४ वें श्लोककी व्याख्यासे यह ध्वनि निकलती है कि साकार विग्रह मायिक है, असली स्वरूप नहीं है?

उ०—यहाँ मायिक शब्दका तात्पर्य क्या है—यह भलीभाँति हृदयङ्गम कर लेना चाहिये। माया कहते हैं ईश्वरकी प्रकृति अथवा शक्तिको। और वह शक्ति शक्तिमान् अर्थात् ईश्वरसे भिन्न नहीं है। जैसे अग्नि अपनी दाहिका शक्तिसे भिन्न नहीं है। ईश्वर अपनी शक्तिसे ही प्रकट होते हैं और अपनी शक्तिसे ही अन्तर्हित हो जाते हैं अर्थात् छिप जाते हैं। यही उनकी लीला है और वह अत्यन्त रहस्यमयी है। यही भगवान्‌की ज्ञानमयी विशुद्ध माया है और यह अलौकिक है, इसलिये भगवान्‌की लीलासे आविर्भूत हुए साकार विग्रहको नकली नहीं मानना चाहिये।

प्र०—'ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्' इस भगवद्वाक्यका उपर्युक्त सिद्धान्तसे विरोध पड़ता है?

उ०—यह बात ठीक नहीं है। उक्त श्लोकसे तो उलटे इस सिद्धान्तकी पुष्टि होती है। 'ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्' का यह अर्थ नहीं है कि ब्रह्म मेरे आधारपर स्थित है, अर्थात् मैं आधार हूँ और ब्रह्म आधेय है। सगुण-साकार और निर्गुण-निराकार कोई दो तत्त्व नहीं हैं कि उनमें आधाराधेयभाव अथवा व्याप्य-व्यापकभाव-सम्बन्ध घट सके। दोनों एक ही तत्त्वके दो स्वरूप हैं। स्वरूपगत भेद होते हुए भी वस्तुतः एक ही है और इसी एकतामें उपर्युक्त श्लोकका तात्पर्य है। 'ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्' का अर्थ यही है कि जिसे ब्रह्म कहते हैं वह मैं ही हूँ। मुझमें और ब्रह्ममें कोई भेद नहीं है।

शैवपुराणोंमें विष्णु और वैष्णवपुराणोंमें शिवके मोहका जो वर्णन मिलता है उसके भी रहस्यको समझना चाहिये। भगवान्‌के भिन्न-भिन्न साकार विग्रहोंकी महत्ता सिद्ध करनेके लिये ही भिन्न-भिन्न पुराणोंकी सृष्टि हुई है। भगवान्‌के सभी विग्रह महत्त्ववाले हैं और भिन्न होते हुए भी वस्तुतः एक ही हैं। सभी पुराणोंमें ग्रन्थकारका लक्ष्य तत्तद्दिष्टके रूपमें ब्रह्मकी ओर ही है। शिवपुराणके शिव, विष्णुपुराणके विष्णु और ब्रह्मवैवर्त तथा भागवतपुराणके कृष्ण एक ही हैं अर्थात् शुद्ध विज्ञानानन्द ब्रह्म ही हैं। वही ब्रह्मा, विष्णु और शिवके रूपमें प्रकट होकर संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और संहारका कार्य करते हैं। यह सब उनकी लीला है। लीलासे की हुई उनकी क्रियाओंमें दोष नहीं है, भूलसे दोष-सा प्रतीत होता है। क्योंकि ईश्वरकी लीलाओंका रहस्य प्रत्येक साधारण बुद्धिवाले मनुष्यके लिये दुर्विज्ञेय है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्र०—श्रीमद्भगवद्गीतामें जहाँ-जहाँ अहम्, माम्, मम, मे, मया, मयि इत्यादि उत्तम पुरुषके प्रयोग आये हैं वे सब आत्माके वाचक हैं, भगवान् श्रीकृष्णके नहीं।

उ०—यह युक्तिसंगत नहीं है। इसके प्रमाणमें जो 'अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः' इत्यादि श्लोक उद्धृत किया, उसका अभिप्राय यह समझना चाहिये कि सबका आत्मा मैं ही हूँ अर्थात् मैं जो श्रीकृष्णरूपसे तुम्हारे सामने खड़ा हूँ वही निराकार-रूपसे सबमें व्याप्त हूँ—सबके हृदयमें स्थित हूँ। (गीता १५। १५,१८। ६१) यहाँ आत्माकी प्रधानता नहीं अपितु परमात्मा श्रीकृष्णकी प्रधानता है। उक्त कथनानुसार आत्माकी प्रधानता हो जाती है, जो कदापि इष्ट नहीं है।

प्र०—परमात्माका सर्वोत्कृष्ट साकार विग्रह कौन-सा है?

उ०—इस सम्बन्धमें सिद्धान्त तो यह है कि भगवान्के सभी विग्रह दिव्य एवं श्रेष्ठ हैं, किन्तु आप यदि चतुर्भुजरूपको श्रेष्ठ मानें तो मान सकते हैं इसमें कोई आपत्ति नहीं है। साथ ही यह भी समझ लेना चाहिये कि भगवान् श्रीकृष्णके द्विभुज श्यामसुन्दर रूपका उपासक उसी रूपको सर्वोत्तम मान सकता है। जिसके लिये शास्त्रानुकूल जो रूप रुचिकर हो और जिसको वह सर्वश्रेष्ठ मानकर उपासना करता है उसके लिये वही सबसे बढ़कर है। शास्त्रोंमें जहाँ जिस रूपका प्रसङ्ग होता है, भक्तोंकी श्रद्धा और रुचि बढ़ानेके लिये वहाँ उसीको बड़प्पन दिया जाता है। यह नियम युक्तिसंगत है और एकाङ्गी उपासनाके लिये इसकी आवश्यकता है।

प्र०—भगवान्का चतुर्भुजरूप देखनेके लिये दिव्यचक्षुकी आवश्यकता है। द्विभुजरूपके लिये उसकी जरूरत नहीं?

उ०—भगवान्के दिव्य चतुर्भुजरूपके दर्शन उनकी दयासे इन चक्षुओंसे भी हो सकते हैं। बालक ध्रुवको इन्हीं नेत्रोंसे भगवान्के दर्शन हुए थे। चतुर्भुजरूपका ही क्यों, भगवान्के सभी दिव्य विग्रहोंके दर्शन उनकी दयासे चर्मदृष्टिसे भी हो सकते हैं। हाँ, जिस चर्मदृष्टिसे भगवान्के दर्शन होते हैं उसको भी पवित्र होनेके नाते हम दिव्य कह सकते हैं।

प्र०—अनधिकारियोंको भी दर्शन हो सकते हैं या नहीं? दर्शन होनेपर भी क्या पाप रह सकते हैं?

उ०—जिस समय भगवान् पृथिवीपर अवतार लेते हैं उस समय अधिकारी, अनधिकारी जो कोई भी उनके सम्मुख अथवा सम्पर्कमें आ जाते हैं उन सबको भगवान्के दर्शन अनायास ही हो जाते हैं; किन्तु भगवान्को बिना पहचाने, उनके तत्त्वको बिना समझे जो उनके दर्शन होते हैं वे विशेष मूल्यवान् नहीं कहे जा सकते और न वे मुक्तिदायक ही होते हैं। दर्शन हो जानेपर भी प्रभुको पहचाननेपर ही मनुष्यके पाप छूटते हैं और तभी वह परमपदका अधिकारी बनता है। गीतामें भी भगवान्ने कहा है—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥
(४। ९)

'हे अर्जुन! मेरा वह जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् अलौकिक है, इस प्रकार जो पुरुष तत्त्वसे जानता है, वह शरीरको त्यागकर फिर जन्मको नहीं प्राप्त होता है, किन्तु मुझे ही प्राप्त होता है।'

भगवान् श्रीराम-कृष्णादिरूपसे जिस समय पृथिवीपर विराजते थे उस समय जिन लोगोंको उनके दर्शन हुए वे सभी धन्य थे, किन्तु उनमेंसे सभी मुक्त हो गये हों, यह बात नहीं कही जा सकती, क्योंकि वे सभी भगवान्को भगवान्के रूपमें नहीं देखते थे।

प्र०—भगवद्दर्शनके बाद जो दशा ध्रुवकी हुई वह उन राक्षसों आदिकी क्यों नहीं होती थी जो भगवान्के सम्मुख आकर उनसे लोहा लेते थे?

उ०—वे राक्षसादि भगवान्के सम्मुख आनेपर भी उन्हें भगवान्के रूपमें पहचानते नहीं थे, इसीसे भगवद्दर्शन होनेपर भी उनकी ध्रुवकी-सी दशा नहीं होती थी। हाँ, जो लोग भगवान्के हाथसे मारे जाते थे वे उन्हें न पहचाननेपर भी मुक्त हो जाते थे। यह भगवान्की विशेष दयालुता है। पारसका दृष्टान्त इसीमें घटाना चाहिये। जैसे पारसके स्पर्शसे लोहा भी सोना हो जाता है उसी प्रकार भगवान्के हाथसे जिनकी मृत्यु होती थी वे महान्-से-महान् पापी होनेपर भी अथवा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भगवान्‌को भगवान् न जाननेपर भी मुक्त हो जाते थे। जैसे, विष देनेवाली पूतनाको भी भगवान्‌ने उत्तम गति दी। यह तो दयामय प्रभुकी अतिशय दयालुता एवं अनुपम उदारताका ही परिचायक है। मरते समय जिस किसी भावसे भी भगवान्‌का स्पर्श हो जानेपर जीवकी मुक्ति हो जाती है यह भगवान्‌का विशेष कानून है और इसके अन्दर उनकी अतिशय दया भरी हुई है। अन्त समयमें भगवान्‌के नाम-स्मरणसे ही जब मनुष्यका कल्याण हो जाता है तब उनके साक्षात् दर्शन अथवा स्पर्श हो जानेपर यदि किसीकी मुक्ति हो जाय तो इसमें आश्चर्य ही क्या है!

पापी-से-पापी भी भगवान्‌की शरण होनेपर शाश्वत सुखके अधिकारी हो जाते हैं। वास्तवमें पारसका दृष्टान्त भी भगवान्‌के महत्त्वको समझानेके लिये पर्याप्त नहीं है, क्योंकि पारसके साथ लोहेका स्पर्श होनेसे ही वह सोना बनाता है, दर्शनमात्रसे नहीं—किन्तु भगवान्‌को भगवान्‌के रूपमें देखनेसे भी मनुष्य कल्याणका भाजन हो जाता है। इसके अतिरिक्त पारस तो लोहेको सोना ही बनाता है, पारस नहीं बना सकता, किन्तु भगवान्‌को भगवान्‌के रूपमें देख लेनेपर मनुष्य भगवद्रूप ही हो जाता है। वह दूसरोंको भी भगवद्रूप बना सकता है।

भगवान्‌के सङ्ग क्रीड़ा करनेवाले गोप-बालक और गोपबालाएँ परम अधिकारी हो गयीं। गीध और शबरीको भी उन्होंने योगिदुर्लभ गति दे दी; रीछ और वानरोंको भी उन्होंने जगत्पावन बना दिया और उनके हाथसे मरे हुए असंख्य राक्षस एवं आततायी सहजहीमें मुक्त हो गये। भगवान् श्रीरामके सम्बन्धमें श्रीरामायणादि ग्रन्थोंमें लेख मिलता है कि परमधामको पधारते समय वे सारे अयोध्यावासियोंको—मनुष्योंको ही नहीं अपितु पशु, पक्षी आदि असंख्य जीवोंको भी अपने लोकमें ले गये।

प्र०—नरऋषिके अवतार दैवीसम्पदासे विभूषित भक्तश्रेष्ठ अर्जुनकी गीतोपदेशसे पूर्व भगवान्‌के साथ खाने-पीने, सोने और उठने-बैठनेपर भी क्या मुक्ति नहीं हुई?

उ०—अर्जुन तो वास्तवमें एक प्रकारसे मुक्त ही थे। उनके अन्दर जो कुछ यत्किञ्चित् कमी थी वह भी लोककल्याणकारी ही हुई, क्योंकि उसकी पूर्तिके बहाने भगवान्‌ने गीताके अनुपम ज्ञानका जगत्‌को उपदेश दिया।

प्र०—भगवान्‌के किस साकार-विग्रहकी पूजा स्वयं भगवान्‌की पूजा है?

उ०—भगवान्‌के राम, कृष्ण, विष्णु, शिव, शक्ति, गणेश, सूर्यादि सभी साकार-विग्रहोंकी पूजा साक्षात् भगवान्‌की पूजा है, आर्षग्रन्थोंमें जिन देवताओंको ईश्वरका दर्जा दिया गया है, उनकी ईश्वरभावसे की गयी पूजा स्वयं भगवान्‌की ही पूजा है। वास्तवमें ये सब नाम परब्रह्म परमात्माके ही वाचक हैं, क्योंकि पुराणोंके रचयिता महर्षि वेदव्यासने भिन्न-भिन्न पुराणोंमें इन-इन देव-विग्रहोंके द्वारा जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और लय आदिका वर्णन किया है और ये सभी धर्म सगुण ब्रह्मके हैं। यही नहीं, उन्होंने इन विग्रहोंके अन्दर ब्रह्मके और-और लक्षण भी घटाये हैं। वास्तवमें जिसके अन्दर ब्रह्मके पूर्ण लक्षण विद्यमान हों वही ब्रह्म है। अनेक नाम-रूपोंसे एक ही ब्रह्मकी लीला अनेक प्रकारसे बतलायी है। इसलिये प्रामाणिक आर्षग्रन्थोंमें जिनको ईश्वरत्व दिया गया है उनकी पूजा ईश्वरकी ही पूजा है। इनके अतिरिक्त सारे देवता अन्य देवता माने जाने चाहिये। उनकी पूजा भी भगवान्‌की पूजा है, क्योंकि उनके अन्दर भी ब्रह्मकी ही सत्ता है; परन्तु वह अविधिपूर्वक मानी गयी है।

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥
(गीता ९। २३)

'हे अर्जुन! यद्यपि श्रद्धासे युक्त हुए जो सकामी भक्त दूसरे देवताओंको पूजते हैं, वे भी मेरेको ही पूजते हैं, किन्तु उनका वह पूजना अविधिपूर्वक है, अर्थात् अज्ञानपूर्वक है।'

प्र०—स्त्रीके लिये पतिकी, शिष्यके लिये गुरुकी, पुत्रके लिये माता-पिताकी सेवा-भक्ति भी क्या मोक्षदायक हो सकती है?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उ०—अवश्य हो सकती है जब कि वह ईश्वरकी आज्ञा मानकर ईश्वरके लिये एवं ईश्वर-बुद्धिसे निष्काम भावसे की जाय। क्योंकि शास्त्र सब ईश्वरकी आज्ञा है और ईश्वरको प्रधान मानकर की हुई सेवा-भक्ति ईश्वरकी ही भक्ति समझी जाती है।

प्र०—चराचर प्राणियोंको ईश्वर मानकर उनकी सेवा करना अर्थात् विश्वरूप भगवान्‌की पूजा करना उत्तम है अथवा मूर्तिपूजा ?

उ०—चराचर विश्वको ईश्वरका स्वरूप मानकर उसकी पूजा करना और उनकी पार्थिव अथवा मानसिक मूर्तिकी भगवद्भावसे पूजा-अर्चा करना दोनों ही उत्तम हैं। श्रद्धा और भक्तिसे की जानेवाली दोनों प्रकारकी पूजा एक ही फलको देनेवाली है। जिसकी जैसी रुचि हो वह दोनोंमेंसे किसी प्रकार-की पूजा कर सकता है। यदि यह दोनों ही प्रकार-की पूजा एक साथ करे तो और भी उत्तम है।

प्र०—क्या ब्रह्महत्यादिकी अपेक्षा भी झूठ बोलनेमें अधिक पाप है ?

उ०—यह बात नहीं है। झूठकी पापोंमें गणना है और ब्रह्महत्या आदिको शास्त्रोंमें महापातक बतलाया है। इसलिये झूठको ब्रह्महत्यादिकी अपेक्षा बड़ा पाप नहीं कह सकते। हाँ, अन्य पापोंकी (महापातकों-की नहीं) अपेक्षा झूठ बोलनेमें अधिक पाप माना गया है, क्योंकि झूठ एक प्रकारसे प्रायः सब पापों-की जड़ है। झूठसे और-और पाप भी मनुष्य करने लगता है। इसीलिये झूठको और-और पापोंसे अधिक बताया गया है।

प्र०—आजकल लोग सत्यको विशेष आदर नहीं देते और कामिनी-काञ्चन तथा अभिमानके त्यागियोंमें भी असत्यका सर्वथा अभाव नहीं पाया जाता ?

उ०—इतने अंशकी उनके अन्दर कमी ही माननी चाहिये। इस प्रकारके त्यागियोंमें प्रथम तो असत्यका दोष जान-बूझकर घटना ही नहीं चाहिये। क्योंकि राग-द्वेष-के वश ही मनुष्य प्रायः झूठ बोलता है और ऐसे निरभिमानी पुरुषोंमें राग-द्वेषादि नहीं होने चाहिये; और यदि किसी अंशमें उनके अन्दर ये दोष घटते हैं तो इतने अंशमें उनके लिये लाञ्छन ही है और उनके त्यागके महत्त्वको घटानेवाले हैं। यदि वे लोग सत्यको जितना आदर देना चाहिये उतना नहीं देते तो यह उनकी भूल ही है। इसके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ? सत्य परमात्माका स्वरूप है। केवल सत्यके आश्रयसे मनुष्य मोक्षका अधिकारी बन सकता है। सत्य अमृत है, सत्य सब गुणोंकी खानि है और यही सनातन-धर्म है। अतएव—

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
अनृतं न प्रियं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥
(मनु० ४।१३८)

प्र०—क्या कायिक तपकी अपेक्षा वाचिक, मानसिक तप विशेष मूल्यवान् हैं ?

उ०—श्रीमद्भगवद्गीतामें तपके कायिक, वाचिक और मानसिक—इस प्रकार तीन विभाग किये गये हैं। वे उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं अर्थात् कायिककी अपेक्षा वाचिक श्रेष्ठ है और मानसिक वाचिकसे भी श्रेष्ठ है, क्योंकि इनके आचरणका उत्तरोत्तर अधिक महत्त्व है। किन्तु तीनों ही परस्पर सम्बद्ध एवं एक दूसरेके सहायक हैं। इसलिये किसीको भी अनावश्यक नहीं कहा जा सकता। कायिक और वाचिक तप, मानसिक तपमें सहायक हैं और मनोनिग्रह हो जानेपर शरीर और इन्द्रियोंका निग्रह अपने आप हो जाता है, क्योंकि मन इन सबका राजा है। भगवान्‌ने तीनों ही प्रकारके सात्त्विक तपको पावन करनेवाला एवं अवश्य कर्तव्य बताया है। इसलिये भगवान्‌की आज्ञा समझकर, भगवान्‌के लिये, निष्काम भावसे तीनों प्रकारके ही तपका साधन करना चाहिये।

प्र०—क्या भगवान्‌का अनन्य-चित्तसे नित्य-निरन्तर स्मरण अन्य सब साधनोंसे श्रेष्ठ है ?

उ०—इसकी श्रेष्ठता तो सर्वप्रमाणसिद्ध है ही। अपनेको नित्य-निरन्तर अनन्य-चित्त होकर स्मरण करनेवालेके लिये भगवान्‌ने अपनेको सुलभ बताया है और अर्जुनको स्पष्टरूपसे यह आज्ञा दी है कि तू मुझे सर्वकालमें स्मरण करता हुआ ही युद्ध कर, यह नहीं कि सर्वकालमें युद्ध करता हुआ मुझे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्मरण कर, क्योंकि युद्ध तो सर्वकालमें हो नहीं सकता और स्मरण सर्वकालमें—खाते, पीते, उठते, बैठते, बात करते—हो सकता है। इस प्रकार सब साधनोंमें स्मरणकी प्रधानता भगवान्‌ने बतलायी है। यज्ञ, दान तप आदि वर्णाश्रमोचित कर्तव्य कर्म भी भगवत्स्मरण करते हुए ही होने चाहिये। यदि भगवत्स्मरणके कारण इनमें किसी प्रकारकी विकलता आ जाय तो इतनी आपत्तिकी बात नहीं है, किन्तु स्मरणमें भूल नहीं होनी चाहिये। यही सबसे बड़ा साधन है और इसीमें प्रधान रूपसे सबको तत्पर हो जाना चाहिये। इस एकके सध जानेसे सब कुछ अपने आप सध जाते हैं और इस एककी कमी है तो सभी बातोंकी कमी है—

राम-नामको अंक है, सब साधन हैं सून।
अंक गये सब सून हैं, अंक रहे दस गून॥

ॐ शान्तिः।

भक्त-गाथा

भक्त सदन कसाई

प्राचीन कालमें सदन नामके एक बहुत प्रसिद्ध भक्त हो गये हैं। ये जातिके कसाई थे। बचपनसे ही इन्हें हरि-नाम-जप और कीर्त्तनमें विशेष अभिरुचि थी। रात-दिन जब कभी समय मिलता ये प्रेमपूर्वक प्रभु-गुण-गानमें और अनन्य-मनसे नाम-जपमें लग जाते। यद्यपि जातिके थे तो कसाई, परन्तु हृदयमें करुणा, प्रेम और दया इतनी अधिक थी कि ये जीव-वधके नामसे ही काँप उठते थे। निरीह मूक पशुओंके लिये भी ये अपने भीतर एक आत्मीयता और ममत्वका अनुभव करते थे परन्तु परिवारका पालन करना आवश्यक था, कसाई होनेके कारण दूसरा कोई पेशा नहीं था। वे मन-ही-मन इसके लिये बहुत ही दुखी रहते, पशुओंका वध उनको बहुत ही बुरा लगता, इससे उन्होंने अपने हाथोंसे पशुओंका वध नहीं किया, आजीविकाके निमित्त वे मन मारकर दूसरोंके यहाँसे मांस लाकर बेंचा करते थे। बीच-बीचमें जब समय मिलता 'हरि हरि कृष्ण कृष्ण' की धुनिमें वह प्रेमोन्मत्त होकर नाच उठते और उनका विह्वल-हृदय प्रभुके रूप-रस-मदिराको पीकर मतवाला हो जाता। प्रभुके नाम-गानमें उनकी इतनी लगन थी कि वे कभी-कभी कीर्त्तन और गुण-गानमें खाना-पीना भी भूल जाते और रातको रात और दिनको दिन नहीं समझते।

भक्तवत्सल भगवान् अपने भक्तकी विह्वल पुकार सुनकर अपनेको रोक नहीं सकते। वे तो सदैव अपने भक्तके लिये वैसी ही परिस्थिति ला देते हैं जिससे उसकी भक्ति प्रतिदिन दृढ़ होती जाय। हृदयमें भक्तिकी स्फुरणा भी तो प्रभुकी अनुकम्पासे ही होती है। भक्तिका क्रमशः विकास भी भगवान्‌की कृपासे ही होता है। हाँ, भक्तके हृदयमें प्रभुके लिये बेचैनी बनी रहे, विकलता बढ़ती रहे, हरिके बिना एक क्षण भी जीना अच्छा न लगे, प्रभुजीके नाम-स्मरण और गुण-गानके अतिरिक्त उसे स्वर्गकी भी कामना न रह जाय, नाम सुननेको और गुण गानेको मिले—इससे बढ़कर और है ही क्या! सदनका मन हरिके चरणोंमें रम गया, रात-दिन केवल 'हरि-ही-हरि' रह गये! प्रेमके भूखे भगवान् अपनेको सदनसे भला अलग कैसे रख सकते! गण्डकीसुत शालग्रामजी सदनके घरमें स्वयं विद्यमान थे। बेचारा भोला-भाला सदन हरिके इस रूपको पहचानता नहीं था और इसीसे मांस तौला करता था। प्रभुकी भी कैसी विचित्र लीला है! भक्तके करोंका शीतल स्पर्श होता रहे, भक्तके मनमें सदैव ध्यान बना रहे और रात-दिनके उसके व्यवहार और व्यापारका साधन बना रहे—इसीलिये भक्तके मन रखनेवाले लीलामय प्रभु सदनके घरमें शालग्रामरूपमें उसके बटखरेमेंसे झाँक रहे थे! इधर जब भक्त भगवान्‌के लिये व्याकुल हो उठता है तो 'सरकार' भी स्वयं भक्तसे मिलनेके लिये मचल उठते हैं! 'हम भगतनके भगत हमारे' की प्रतिज्ञा तो उनकी है ही!

सदन बेचारा रात-दिन शालग्रामजीसे मांस तौलता और उसे एक साधारण बटखरा समझता। परन्तु बटखरा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एक व्यापारीका प्रमुख साधन है इसी हेतु परमात्मा शालग्राम-रूपमें उसका बटखरा बनकर आये ! एक साधु सदनकी दूकानसे होकर जा रहे थे कि उनकी दृष्टि सदनके बटखरेपर पड़ी। वे तुरन्त पहचान गये कि हो-न-हो यह श्रीशालग्रामजी-की ही मूर्ति है। वे आये और सदनसे शालग्रामजीकी मनोहर मूर्ति माँग ले गये ! सदनने प्रसन्नतापूर्वक दे दिया ! साधुजी शालग्रामको पाकर फूले न समाये। कुटियामें आकर पञ्चामृत और अन्यान्य उपचार रचकर वे श्री-शालग्रामभगवान्‌के सम्मुख हाथ जोड़कर कहने लगे—

अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम्।
विष्णोः पादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥

हरि तो प्रेमके भूखे होते हैं, हरि तो अनन्यभावेन समर्पणसे ही रीझते हैं। साधुकी पूजामें सब कुछ था परन्तु सदनकी-सी अनन्य निष्ठायुक्त सर्वात्मसमर्पणका दिव्य माधुर्य कहाँ था ? साधुने स्वप्नमें सुना कि श्री-शालग्रामजी बोल रहे हैं, 'अरे ! मुझे यहाँ कहाँ ले आये ? मुझे तो सदनके ही घरमे रहने देते ! सदन जब मांस तौलनेके लिये मुझे उठाता था तो मुझे उसके शीतल कर-स्पर्शमें एक अपूर्व प्रेमालिङ्गनका आनन्द मिलता था, जब वह ग्राहकोंसे बातें करता था तो उसकी प्रेमातुर प्रार्थनाके शब्द सुनता था। मेरा नाम ले-लेकर जब वह अत्यन्त विह्वलताके साथ नाचता, तो मैं भी उसके हृदयके वृन्दावनमें नाचने लगता ! उसके प्रेमाश्रुओंमें भींगकर जो आनन्द मुझे मिला है वह तुम्हारे पञ्चामृतमे स्नानकर न मिला ! उसने विह्वल आर्द्र शब्दोंमें एक बार ही जब 'प्राणनाथ हरि !' कहकर पुकारा, उसमें जितनी वेदना और आकर्षण था, उसमें मुझे खींच लेनेकी जितनी शक्ति थी वह तुम्हारे विविध स्तोत्रोंमें नहीं मिली। उस प्रेमके पुजारी सदनके घर मुझे पहुँचा आओ, मुझे उसके बिना एक क्षण भी कल नहीं, शान्ति नहीं, सुख नहीं, चैन नहीं।' भक्तके प्रेमपूरित हृदयमें प्राणवल्लभ प्रभुकी जो मञ्जुल मूर्ति है वह तो वहीं ही श्रद्धाके सघन कुञ्जोंकी छायामें प्रेमकी यमुनाके तटपर विचरना चाहती है। प्रेमी-का हृदय ही भगवान्‌का सर्वसुन्दर मन्दिर है। साधु महाराज दौड़े-दौड़े सदनके घर गये और श्रीशालग्रामजीकी मूर्ति दे आये ! साथ ही उसको भगवत्कृपाका महत्त्व भी बता आये।

सदनको जब यह पता चला कि उसका बटखरा सचमुच श्रीशालग्रामजीकी शिला है जो साक्षात् विष्णु-भगवान्‌की मूर्ति है तो उसे अपनी करनीपर बड़ा पछतावा हुआ। हाय ! मैंने प्रभुकी इस मङ्गलमूर्तिको मांस तौलनेके काममें लाकर कितना जघन्य घोर पाप किया।

रात-दिन, खाते-पीते, सोते-जागते, उठते-बैठते हमारा 'प्रभु', हमारा प्राणाधार हमारी राह रोककर हमें अपना दर्शन दिया करता है परन्तु हाय रे हम अधम ! हम तो उसकी उपेक्षा करनेमें ही अपनी वीरता मानते हैं। जब हृदयकी आँखें खुलती हैं, जब धूँधटका पट हटता है और प्रभुकी झाँकी होती है तब अपनी भूलपर रोना-ही-रोना आता है। हाय ! हमने तब नहीं पहचाना, तब हमारी आँखें न खुलीं। किस-किस रूपमें 'वह' आता है, कब किस प्रकार वह अपनी मधुर झाँकी दे जाता है—कहा नहीं जा सकता। अर्जुनको भी कुछ ऐसा ही मोह हुआ था, परम प्रभुको कृष्ण, यादव, सखा कहकर पुकारने तथा भोजन, शय्या और विहारमें नाना प्रकारसे असत्कृत करनेमें ! 'वह' तो हमारे नित्यके जीवनमें हमारा पति, पिता, बन्धु, पुत्र, स्त्री, सेवक, सखा आदि रूपमें हमारे साथ है परन्तु हम उसको विसारकर, प्राणोंके प्राणको भुलाकर कितनी भारी भूल करते हैं। परन्तु हरिकी ही दयासे जब आँखें खुलती हैं तो हृदय आत्म-ग्लानि, लज्जा और दुःखसे भर जाता है कि हाय ! मैंने अपने जीवनसर्वस्व प्राणाधारका कितना भारी अपमान और असत्कार किया। प्रभो ! क्षमा करो, क्षमा करो !! भक्तवत्सल दीनबन्धु प्रभु तो हमारे किये हुए मान-अपमानका ध्यान न कर हमारे उद्धार और निस्तारके लिये बार-बार असत्कृत होकर भी हमारे द्वारको खटखटाया करते हैं। हम संसारसे इतने अधिक चिपके हुए हैं, मायामें इतने अधिक लिपटे हुए हैं कि उनकी ओर देखनेकी, उनकी पुकार सुननेकी और सुनकर हृदयका किवाड़ खोल देनेकी और हृदय-मन्दिरमें उन्हें बन्द कर लेनेकी ओर प्रवृत्त ही नहीं होते।

परन्तु 'वे' तो हैं बड़े ही हटी ! वे तो हमारा धूँघट उठा देनेपर ही तुले हुए हैं, हम बार-बार 'ना' 'ना' कहते जाते हैं और वे बार-बार हमारे हृदयमें आ बसनेके लिये व्याकुल हो रहे हैं। सदनने शालग्रामजीको पहले दे तो दिया था परन्तु शालग्रामजी सदनको क्यों छोड़ने चले ?

साधुसे स्वप्नका सारा वृत्तान्त सुनकर सदनकी विचित्र

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गति हो गयी! प्रभुका इतना प्रगाढ़ प्रेम, इतनी भक्तवत्सलता! प्रेमकी बहिया उमड़ पड़ी! आँखोंसे आँसुओंकी गङ्गा-यमुना बह चली! सारा शरीर रोमाञ्चित हो गया! प्राण विकल हो उठे! रोम-रोमसे 'हरि हरि' की ध्वनि आने लगी और यह वेग अब रोका कैसा जाता! प्रेममें तो बन्धन आप-ही-आप टूट जाते हैं! 'एक' का ही होकर जीने और मरनेकी लालसा होती है। सदन भी भक्तिविह्वल हृदयसे कुल-परिवारका सब काम-धन्धा छोड़कर प्रभुको हृदयमें धारणकर श्रीशालग्रामजीको लेकर पुरुषोत्तमक्षेत्र श्रीजगन्नाथपुरीकी ओर चल पड़े!

सन्ध्या हो चली थी। सदनने सोचा कि यहीं पासके गाँवमें जाकर भिक्षा माँगकर खा लूँ और रातभर विश्रामकर फिर कल चलूँ। यह सोचकर सदन एक गाँवके एक गृहस्थ-परिवारमें ठहर गये। भिक्षा करके वे रातको सोये। आधी रात हो चली थी। सदनके घुँघराले लहराते हुए बाल, बड़ी-बड़ी हिरणके समान आँखें, उन्नत दिव्य ललाट और परम सम्मोहक रूप-तेज देखकर उस घरकी स्त्री मुग्ध हो गयी थी। सदन जहाँ सोया हुआ था वहाँ आकर वासना-विगलित मोहकी अनेक चेष्टाएँ करती हुई उसने कुत्सित प्रस्ताव रक्खा। बड़े ही लुभावने, मोहमय शब्दोंमें उसने सदनसे साथ ले चलनेको प्रार्थना की। साधनाके क्षेत्रमें कञ्चन और कामिनी बहुत ही भारी बाधाएँ हैं। कहा भी है—

बाधक रघुबर भगतके क्रोध लोभ तिय काम।
सब रिपु भक्षक जीवके रक्षक केवल राम॥
काया कौड़ी कामिनी ये नाँगी तरवार।
निकसे जन हरिभजनको बीचै लीन्ही मार॥

हरि अपने भक्तोंपर सदैव अपनी कृपाकी छाँह बनाये रहते हैं। सम्पूर्ण समर्पण हो चुकनेपर भक्तके सम्पूर्ण योग-क्षेमका भार प्रभुपर चला जाता है। भारी-से-भारी विपत्ति आ जाय, घोर-से घोर प्रलोभन आ जाय भगवान् भक्तका हाथ पकड़कर उसे बचा लेते हैं। सदनपर कुत्सित कामकी एक न चली। वे भगवान्‌का स्मरण करते हुए, आदर और श्रद्धासे सिर झुकाये बोले—'माँ, मेरी परम पूजनीया माँ! अपने चरणोंकी पावन धूल मुझे दे दो! तुम मेरी माँ हो! दयामयी जननी तुम्हारे चरणोंमें मेरा कोटि-कोटि प्रणाम है!'

वस्तुतः जो सच्चे भक्त हैं वे विषयोंको विषके समान छोड़ देते हैं। संसारके साधारण जीवोंके लिये भले ही कामिनीका कामुक रूप आकर्षक प्रतीत हो परन्तु वे तो स्त्री-मात्रको माताके रूपमें देखते हैं। संसारसे दृढ़ वैराग्य हुए बिना, विषयोंसे घोर घृणा हुए बिना भक्तिके पथमें चलना महाकठिन है। सदनपर अपना जादू न चलते देख उस कामातुरा स्त्रीने समझा कि शायद यह मेरे पतिके भयसे मेरी प्रार्थना पूरी नहीं करता। वह चुपकेसे गयी और एक तीक्ष्ण तलवारसे पतिका सिर धड़से अलग कर दिया! दौड़ी-दौड़ी आकर उसने सदनसे काम-विह्वल वाणीमें कहा, 'लो अब हमलोगोंके सुख-पथका कण्टक हट गया। मैंने अपने पतिकी हत्या कर दी क्योंकि वही हमारे प्रेम-सुखका बाधक था! काम-वासना क्या नहीं करा सकती!! कामान्ध कौन-सा पाप नहीं कर सकता?!!

सदन भयसे काँप उठा! अरे, कामातुरा व्यभिचारिणीने अपनी काम-वासना पूर्ण करनेके लिये अपने पतिका वध कर दिया! 'कण्टक' को हटाकर वह दुष्टा इस साधुको पतित करने चली थी परन्तु सदनके हृदयमें संसारके प्रति इसके कारण और भी घृणा हो चली। साधारण सांसारिक पुरुषोंके लिये स्त्रीका जो रूप मोहक प्रतीत होता है वही एक वैरागी भक्तके लिये—

स्तनौ मांसग्रन्थी कनककलशावित्युपमितौ
मुखं श्लेष्मागारं तदपि च शशाङ्केन तुलितम्।
स्रवन्मूत्रक्लिन्नं करिवरकरस्पर्धिजघन-
महो निन्द्यं रूपं कविजनविशेषैर्गुरु कृतम्॥

स्त्रियोंके स्तन मांसके लोंदे हैं, पर कवियोंने उन्हें सोनेके कलशोंकी उपमा दी है। स्त्रियोंका मुँह कफका घर है पर कवि उसे चन्द्रमाके समान बताते हैं और उनकी जाँघोंको, जिनमें पेशाब प्रभृति बहते रहते हैं श्रेष्ठ हाथीकी सूँड़के समान कहते हैं। स्त्रियोंका रूप घृणाके योग्य है परन्तु कवियोंने उसकी कितनी प्रशंसा की है, ठीक यही बात पुरुषोंके शरीर-सौन्दर्यके लिये समझनी चाहिये। ईश्वरके चरणोंमें लगा हुआ भक्त तो कामको ललकारकर कहता है—

अरे काम बेकाम, धनुष टंकारत तर्जत।
तू हू कोकिल व्यर्थ बोल काहेको गर्जत॥
तैसे ही तूँ नारि, वृथाही करत कटाछै।
मोहि न उपजै मोह, छोह सब रहिगै पाछै॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चित चन्द्रचूड़के चरणको, ध्यान अमृत बरसत हिते।
आनन्द अखण्डानन्दको, ताहि अमृत सुख क्यों हिते ॥

जब हृदयमें प्रभुकी मूर्ति बस गयी तो फिर कामके लिये स्थान ही कहाँ ? कामकी उसपर क्या चले ! फिर वह पुरुष हो या स्त्री, वह तो कामविजयी है। नश्वर रूपपर वह मुग्ध क्यों होने लगा। वह तो हरिके चरणोंमें निरत है, 'साईं' के सुखका आनन्द लूट रहा है, फिर वह विषयोंकी निकृष्ट कामना क्यों करने जाय ?

जब सब प्रकारकी चेष्टा अनुनय, विनय करके वह स्त्री थक गयी और सदनको काम-वासनाके लिये उदीप्त नहीं कर सकी तो वह द्वारपर आकर छाती पीट-पीटकर रोने लगी ! गाँवके लोग जब जुटे तो उस दुष्टाने कह दिया कि यह आदमी हमारे पतिकी हत्या करके हमारे साथ काम-लिप्सा पूरी करना चाहता था। सदनने यह सुनकर कुछ भी सफाई नहीं दी अपितु वह भगवान्‌का नाम जोर-जोरसे प्रेमपूर्वक जपने लगा। लोगोंने सोचा कि यह खूब बना हुआ बदमाश और ढोंगी है कि हत्या करके व्यभिचारकी चेष्टा कर रहा था और जब हमलोग आये तो अब भक्त बनता है। सदन इन आलोचनाओंकी ओर तनिक भी ध्यान न देकर प्रेम-विह्वल हृदयसे प्रभुका नाम स्मरण करता रहा !

मामला कचहरीमें आया। न्यायाधीशके सम्मुख उस दुष्टा स्त्रीने सारी गढ़ी हुई बातें कह दीं। दृढ़ विश्वासी परमभक्त सदन चुपचाप सब सुनते रहे और अपने मंगलमय प्रभुकी लीलापर मुस्कुराते रहे। दयामय प्रभुकी लीलाकी परीक्षा लेनेके लिये नहीं अपितु अपने हृदयमें उसकी अनन्त कृपा और प्रेम-वत्सलतामें भरोसा रखते हुए सदनने चुप रहकर मानो सब कुछ स्वीकार कर लिया ! न्यायाधीशके हृदयको परमात्माने प्रेरित कर दिया और उसने प्राणदण्ड न देकर यह आज्ञा दी कि सदनके दोनों हाथ काट लिये जायँ।

हाथोंके कट जानेसे गहरी व्यथा हो रही थी। फिर भी यह सोचकर कि किसी पूर्व-जन्मके पापका यह फल है और इसमें भी हरि-कृपाका साक्षात्कारकर हँसते हुए सदन प्रसन्न चित्तसे अपने हृदयेश्वर श्रीजगन्नाथजीके दर्शनके लिये व्याकुल उसी पथकी ओर चल पड़े।

नहिं दुख यह रघुपतिके दाया। कर्म भुगाय छुटावत माया ॥

भक्तका दुःख तो स्वयं भगवान्‌का दुःख है। जहाँ-जहाँ भक्तोंपर भीर पड़ती है वहाँ-वहाँ वे पाँव-पियादे दौड़े आते हैं। भक्तोंका दुःख उनसे देखा नहीं जाता। पिघल जाते हैं, कसमसा जाते हैं भक्तकी विपत्ति देखकर और स्वयं उसको अपने ऊपर झेल लेते हैं। हाथोंसे रुधिरकी धारा बह रही है, घोर व्यथा हो रही है और भक्त सदन अपने प्रभुके पथमें उत्साह, उमङ्ग, प्रेम, उत्कण्ठाके साथ बढ़ रहे हैं। कितने भक्तोंने प्रभुके पथको पलकोंसे बुहारा है ! इसे कहते हैं निष्ठा ! सदनकी अपूर्व निष्ठा देखकर श्रीजगन्नाथजीने अपने निष्ठावान् पुजारीको स्वप्न दिया कि 'सदन' नामका एक बहुत बड़ा भक्त आ रहा है। उसे लेनेके लिये अभी सवारी भेजी जाय। पुजारीजी पालकी लेकर आये और सदनको उसमें बलात् बिठाकर ले गये।

भक्त तो अपने भगवान्‌से कभी-कभी मान भी कर लेता है। जगन्नाथजीके सम्मुख जाकर जब सदनने साष्टांग दण्डवत् किया तो उनका हृदय प्रेम और उल्लाससे पूर्ण था। प्रभुकृपासे उनके हाथ पूर्ववत् ठीक हो गये परन्तु उनके मनमें यह कुतूहल बना रहा कि पता नहीं, मेरे हाथ कैसे और क्यों कटे ? एक रातको साक्षात् श्रीभुवनमनमोहन श्रीजगन्नाथजीने साक्षात् प्रकट होकर कहा, 'प्यारे सदन ! तुम्हारे हाथ जो कटे थे—यह तुम्हारे पूर्व-जन्मके एक पापका फल है। तुम पूर्व-जन्ममें काशीमें एक सदाचारी और प्रकाण्ड विद्वान् ब्राह्मण थे। एक दिन एक गाय एक कसाईके घेरसे भागी जाती थी। पीछे कसाई दौड़कर आया। उसने तुम्हें पुकारा। तुमने कसाईको जानते हुए भी अपनी भुजाएँ गायके गलेमें डालकर उसे पकड़ लिया और कसाई उसे पकड़कर ले गया। वही गाय वह स्त्री थी और वही कसाई उसका वह पति। पूर्व-जन्मके बदलेमें ही उसने उसका गला काटा है। तुमने उस भयातुरा गायको दोनों हाथोंसे पकड़कर उस कसाईको सौंपा इसी हेतु तुम्हारे दोनों हाथ कटे। इससे तुम्हारा पाप नाश हो गया, यही एक प्रतिबन्ध था जो तुम्हें परमसिद्धि पानेसे रोके हुआ था। ये वचन कहकर और सदनको पूर्ण प्रेम दानकर श्रीभगवान् अन्तर्धान हो गये।'

सदनको आज भगवान्‌के साथ ही भगवत्कृपाके भी प्रत्यक्ष दर्शन हो गये। भगवत्प्रेममें छके हुए सदन अन्त समयतक प्रभुके नाम-कीर्त्तन, गुण-गानमें संलग्न रहे और प्रतिपल उनकी निष्ठा प्रभुमें बढ़ती ही रही। अन्तमें प्रभु श्रीजगन्नाथजीके चरणोंमें ही देह त्यागकर सदाके लिये परमात्माके परम धाममें पधार गये।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय ! **'माधव'**

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीभगवन्नाम-जप

इस बार भी नाम-जपके महायज्ञमें बहुत उत्साह रहा। भगवान्‌के नामका आश्रय लेनेपर ऐसा कौन-सा कार्य है जो सफल न हो। 'कल्याण'के भगवत्प्रेमी पाठक-पाठिका हमारी प्रार्थनापर ध्यान देकर स्वयं नाम-जप करते हैं और अन्य लोगोंसे कराते हैं, इसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं। इस बार भी हजारों माताओं, बहिनों और भाइयोंने नाम-जप किया। भारतके प्रायः सभी प्रान्तोंके सभी स्थितिके लोगोंने जपसे लाभ उठाया। सन्त-महात्माओंने भी नाम-जप करानेमें बड़ी सहायता की। एक वैकुण्ठाश्रम कन्नौजके पूज्यपाद स्वामीजी महाराजकी प्रेरणासे ही कई करोड़ मन्त्र-जप हुआ। इस कृपाके लिये हमलोग स्वामीजीके बड़े आभारी हैं। पौषसे होलीतक सोलह नामके दस करोड़ मन्त्र-जपके लिये प्रार्थना की गयी थी परन्तु २३२८३६६५० मन्त्र-जपकी सूचनाएँ आ चुकी हैं। नामकी संख्या जोड़नेसे ३७२५३३८४०० होती हैं। सूचनाएँ अभीतक आ ही रही हैं। नीचे लिखे २७६ स्थानोंसे सूचनाएँ आयी हैं। इसके सिवा कई जगह और भी नाम-जप हुआ परन्तु उन लोगोंने संख्याकी सूचना नहीं दी। बहुत-से लोगोंने प्रतिवर्षकी भाँति इस बार भी सदाके लिये नाम-जपका नियम कर लिया है। प्रतिवर्ष ऐसे कई पत्र आते हैं जिनमें नाम-जपसे सांसारिक लाभ, कष्ट-निवृत्ति आदि लाभ होनेकी बातें रहती हैं, कुछ ऐसे भी पत्र मिलते हैं जिनमें आध्यात्मिक अनुभवकी घटनाएँ भी लिखी रहती हैं। इस वर्ष भी ऐसे पत्र आये हैं। यह भगवान्‌की बड़ी कृपा है। सबसे यही प्रार्थना है कि श्रीभगवान्‌के नाम-जपमें श्रद्धा करें और यथासाध्य जीवनभरके लिये नाम-जपका नियम लेकर सहज ही लाभ उठावें।

अहमदाबाद, अनूपगढ़, अगवानपुर, अर्रुआ खास, अलवर, अल्मोड़ा, अमरवाडा, अब्दालपुरा, अम्बाजी-पटो, इन्दौर, इटावा, इगुई माधोगढ़, उज्जैन, ऋषिकेश, एकसंबा, ओबरा, कैथी, कपड़वंज, कालागूजरां, कलकत्ता, किला शेखपुरा, कारंजा, कलानौर, कराँची, काशीपुर, कानपुर, क्यारकोटी, कसगर, कौंच,कुरीचित्तरपुर,काठमाण्डू (नेपाल), कचौरा, कटक, कटनी, कहानी, कढ़ागोला, कोटा, कलिम्पोङ्ग, काकूपुर, कन्नौज, केलिया, खैर, खैरा, खम्भात, खेवरो, खजूरगावाँ, खण्डवा, खाँधली, खरियार, खम्भरा, गोरखपुर, गंगाझीरी, गाजना, गणेशवाडी, गौंटी, गोलाघाट, गरौठा, गुइल, गूढाकलां, गया, चौमूं, चनौदा, चिंचनी, चिन्ताकुण्टा, चन्दौसी, चारुवां, चालीसगाँव, छीपाबड़ोद, छिपैटी, छिपैटी हटिया, जामगाँव, जौनपुर, जबलपुर, जसराना, जीरौंन, जालना, जोधपुर, जमुई, जेडर,जैसलमेर, झुमरी तलैया, झाँसी, झाँझा, टाइगरकैम्प, टाँडा, टिकारी, ट्राल्सामाढ़, डुमरावँ, डेवढ़ी—मधुसूदननगर, डिब्राई, डंगोली, ढौंकी, तेघरा, तुरकौलिया, तिरवा, तिगरी, तलेगाँव, तलवण्डीखुर्द, थाना, देवलगाँव, दगेरू, दिल्ली, दिंडोरी, देवली (उदावतोंकी), दुद्धी, दलीपनगर, दसाड़ा, दरभंगा, दिरकोहुरबाजार, देवगढ़बरिया, दोड़ी, धारगंध्रा, धामणगाँव, नवसारी, नागपुर, नागरा, नाजरा, नवापुर, नामसू, नगीना, नीमाज, नियाजीपुर, नवगछिया, नयागाँव, नैनीताल, नडियाद, नागौर, नागलिंग, नवादा, प्रयागराज, पिपरिया, परसा, पूना, पुरानी बस्ती, पेटलाद, पटेरा, पुरलिया, पाण्डु (रेवाकाण्ठा), पोझीबाजार, पाढ़म, फर्रुखाबाद, फैजाबाद, फतेहपुर, फतुहा, फिरोजाबाद, फलधरा, बरबाराह, बम्बई, बसुआड़ा, बाँसपट्टी, बालोद, बस्ती,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बीकानेर, बनारस, बड़का राजपुर, बैहर, बाँदा, बेतूल, बेतुलगंज, बीरमगाँव, बिनेका, बुलन्दशहर, बिजनौर, बिरमा, बिल्हौरा, बदरा, बारीखेड़ा, बनखेड़ी, बड़गाँव, बिहारशरीफ, बिलासपुर, बृन्दावन, बढ़पुर, बेजवाड़ा, बुलसर, बहादुरपुर, बेलकुनी, बड़कागाँव, बिजयपुर, बीना-इटावा, बिलगा, भादरा, भडौंच, भुवाली, भैरव (नारायणगंज), मगरधा, मिंग्यान, मैनपुरी, माढ़ेरी, मालेगाँव, मण्डला, मढ़ी, मोगलापुर, मेमियो, महिसारी, मेरठ, मझगवाँ, मिरजापुर, मुज़फ्फरनगर, मथुरा, मवईकलाँ, मकसूदनगढ़, मुरादाबाद, मधापुरी, महीरपुर, मझलाइन्द्रगढ़, मेहसाना, मारवाड़जंकसन, मलिकपुर, रावलपिण्डी, रतनपुर, रतनगढ़, रावतगाँव, राजकोट, राजगांगपुर, रायपुरास्टेट, रूपावटी, रायपुर (मेवाड़), रायपुर (सी०पी०), राजनांदगाँव, रामरटवाली, रबुपुरा, रामबाग, रान्नौद, रीवाँ, रामगढ़ (सीकर), लघनाज, लाहौर, लखनऊ, लोहरदगा, लूवाछडा, लहरियासराय, लेंगरी, लतीफपुर, सयानपुर, सहावन, सान्थल, सीतलपट्टी, स्लीमनाबाद, सक्खर, सरदारशहर, सिवाना, संबलपुर, ससराम, सुखियापोखरी, सूरत, सतारा, सवाईमाधोपुर, सतना, सिंहपुर, सासाहोली, सिआणी, सहारनपुर, सातोदड़, साँडी, समी, सोनका, श्रीनगर (काश्मीर), साँगाखेड़ा खुर्द, सतशाला, सिलोंग, शरफुद्दीनपुर, शिवसागर, शाहजहाँपुर, शाहाबाद, शिकारपुर(सिन्ध), हरपालपुर, हिम्मतपुर, हाँसी, हजारीबाग, हलदौर, होशियारपुर, हाथरस, हिरदयक, हरदोई, हरसूद ।

श्रीप्रेम-शतक

प्रेमका महत्त्व

प्रेम हृदयकी वस्तु है, परम गुह्य अनमोल ।
कथनीमें आवै नहीं, सकै न कोऊ तोल ॥ १ ॥

रसमय आनँदमय विमल, दुर्लभ यह उन्माद ।
अकथनीय, पै अति मधुर, गूँगेको-सो स्वाद ॥ २ ॥

तीन लोककी संपदा, इंद्रभवनको राज ।
प्रेमी तृन-सम लखत तेहि, तजत प्रेमके काज ॥ ३ ॥

दुर्लभ झाँकी प्रेमकी, जिन झाँकी ते धन्य ।
उपजत विनसत जगतमें, जड़ पसु सम सब अन्य ॥ ४ ॥

धरा, धाम, धन, धान, धी, धीरज, धरम, विवेक ।
प्रेम-राज्य सब ही छुटे, रही एक ही टेक ॥ ५ ॥

प्रेम सदा बढ़िबौ करै, ज्यों ससिकला सुदेष ।
पै पूनौं यामें नहीं, तातें कबहुँ न सेष ॥ ६ ॥

एक नेम यह प्रेमको, नेम सबै छुटि जाहिं ।
पै जो छाँडै जानिके, तहाँ प्रेम कछु नाहिं ॥ ७ ॥

प्रेम अवसि पागल करै, हरै सकल कुलकान ।
देह धरम मेटै सकल, हिय प्रगटै भगवान ॥ ८ ॥

जगमें चार प्रसिद्ध हैं, सेव्य परम पुरुषार्थ ।
पंचम हरिको प्रेम है, परम मधुर परमार्थ ॥ ९ ॥

राग, सोक, भय, कामना, मान, मोह, मद, क्रोध ।
प्रेमराज्य प्रविसै नहीं, अरि आठों निर्बोध ॥ १० ॥

प्रेमदेवके दरसतें, सब बंधन कटि जाय ।
ममता-मान सबै नसै, उर अति आनँद छाय ॥ ११ ॥

प्रेमके साधन

प्रेम-पंथ अति ही बिकट, देखत भाजैं लोग ।
कोउक बिरले चलि सकैं, जिन त्यागे सब भोग ॥ १२ ॥

भोग-बासना सब तजै, तजै मान-सनमान ।
प्रेम-पंथपर जो चलै, सहै हृदयपर बान ॥ १३ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रेम-पंथ सोइ चलि सकैं, जिन छाँड़ी सब चाह।
जल्यो करैं बिरहागमें, मुख नहिं निकसे आह ॥१४॥
प्रेम-डगर सोई चलै, अगर मगर दे छोड़।
बिषय-राग राखै नहीं, सब सों नातो तोड़ ॥१५॥
संत-बैद्य सेवन करै, कड़वी औषध खाय।
भोग-रोग राखै नहीं, तभी प्रेम प्रकटाय ॥१६॥
जो तू चाहे प्रेमधन, बिषयनसों मुख मोड़।
श्रद्धा तत्परतासहित, चित्त भजनमें जोड़ ॥१७॥
जो प्यासे हरि-प्रेमके, तिनके निर्मल भाव।
तन मन धन अर्पन करैं, धरैं मुक्तिको दाव ॥१८॥
स्वर्ग मोक्ष चाहैं नहीं, चाहैं नंदकिसोर।
सुघड़ सलोनो साँवरो, मुरलीधर मन-चोर ॥१९॥
विद्या बुद्धि बिबेककौ, तजै सभी अभिमान।
सो पावै प्रभु-प्रेमकौ, जेहि सम तुलै न ज्ञान ॥२०॥
सप्त स्वर्गके सुख सकल, बिष सम देवै त्याग।
नहीं चाह अपबर्गकी (सो) पावै प्रभु अनुराग ॥२१॥
जो चाहै हरि-प्रेमकौं, राग-भोग दे त्याग।
निसिदिन प्रेमी सँग करै, तब बाढ़ै अनुराग ॥२२॥
प्रेम-पंथ कंटक भर्यो, चाले बिरलो कोय।
बिंधत छिदत हुलसै हियो, यहि मग आवत सोय।२३।
कूदि पड़ै जो सूरमा, प्रेमसिंधुके माँहिं।
परम अमोलक रतन हरि, पावैं संसय नाहिं ॥२४॥
प्रेम-अनल कूदै वही, जो मन बे-परवाह।
जियन मरन भावैं नहीं, नहीं सरगकी चाह ॥२५॥
प्रेमानिलके परसतें, ज्ञानानल बढ़ि जाय।
जारै कर्म-समूह सब, हरि-ही-हरि रह जाय ॥२६॥
हरि-छबि-हबि आहुति हिये, ज्यों-ज्यों लागत जात।
प्रेम-अनल त्यों त्यों अतिहि,अधिकाधिक सुलगात २७
प्रेम-अनल जेहि जिय जरत, जारत तीनहुँ ताप।
सुद्ध-स्वर्ण आसन अमल, आइ बिराजत आप ॥२८॥

प्रेमके विघ्न

प्रेम अमिय चाहै पियौ, करै बिषयसों नेह।
बिष ब्यापै जारे हियो, करै जर्जरित देह ॥२९॥
मन बिषयनमें रमि रह्यो, करत प्रेमकी बात।
सो मिथ्यावादी सदा, जगमें आवत जात ॥३०॥
भव-बारिधि तरिबो चहै, गहै बिषयकी नाव।
डूबै सो मँझधार ही, तनिक न लागै दाव ॥३१॥
प्रेम-पंथपर पग धरै, करै जगतको सोच।
तिनको मन अति मलिन है, बुद्धि निपट ही पोच।३२।
प्रेम-सिंधु कूदत डरै, करै जगतकी याद।
सो डूबै भवसिंधुमें, जीवन करि बरबाद ॥३३॥
दंभी, द्रोही, स्वारथी, वादी, मानी, पाँच।
ये खल नाँहिन सहि सकैं, प्रेम-अगिनिकी आँच ॥३४॥

प्रेमकी स्थिति

कहि न जाय मुखसों कछू, स्यामप्रेमकी बात।
नभ जल थल चर अचर सब,स्यामहिं स्याम लखात॥
ब्रह्म नहीं, माया नहीं, नहीं जीव, नहिं काल।
अपनीहू सुधि ना रही, रह्यो एक नँदलाल ॥३६॥
को, कासों,केहि बिधि,कहा,कहै हृदयकी बात।
हरि हेरत हिय हरि गयो, हरि सर्वत्र लखात ॥३७॥
प्रेम-बान बेध्यौ हियौ, घायल भयौ अचेत।
एक राममें रमि गयो, दुरयो बिषयको खेत ॥३८॥
प्रेम-पयोनिधि परत ही, पबि-सम भयो शरीर।
काम-कटक भाज्यो सबै,तजि निज तरकस तीर ॥३९॥
रँग्यौ सदा जाको हियौ, बिमल स्याम अनुराग।
दूजो रँग कबहुँन चढ़ै, भयो सहज बैराग ॥४०॥
मोहनकी मधुरी हँसी, बसी हृदयमें जाय।
माया ममता अघ अनल,तेहि हिय नाहिं समाय॥४१॥
जिनको हिय नित हँसि रह्यो,हेरि-हेरि हरिरूप।
कबहूँ ते न पलटि परैं, सोकरूप भवकूप ॥४२॥
जिनके दृग हेरत सदा हरि-मूरति चहुँओर।
तिनके चित कबहुँ न बसत,काम-मोह-मद-चोर॥४३॥
जिनके दृग हरि-रँग रँगे, हिय हरि रहे समाय।
नभ जल अवनि अनिल अनल, सबमें स्याम दिखाय४४

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जिनके मन मोहन बस्यो, फँस्यो दृगनमें आय।
घँस्यो सकल संसारमें, तिनकौं वही दिखाय ॥४५॥

जिन नैननमें परि गई, हरि-निरखनकी बान।
ते नित स्याम निहारहीं, नाहिं सुहावत आन ॥४६॥

जिनके जियमें रमि रह्यो, मोहन चतुर सुजान।
तिनके नयन बिलोकते, सब जग श्रीभगवान् ॥४७॥

चित नित चिंतनमें रम्यौ, नैन रमे छबि माँहिं।
बानी गुन-बरनन रमी, राम सदा तेहि ठाँहिं ॥४८॥

जो मतवाले ह्वै रहे, प्रेम-सुरा करि पान।
तिनकौं कछू न करि सकैं, बेद-पुरान कुरान ॥४९॥

अमर भये जे नर सुघर, प्रेमसुधा करि पान।
तिनके हिय न तपा सकै, काम-अनल बलवान ॥५०॥

ही-तल सीतल ह्वै चुक्यो, प्रेम-बारिसों पूरि।
जगकी सब ज्वाला रहै, तेहिसौं अति ही दूरि ॥५१॥

तेजपुंज जेहि हिय उग्यो, प्रबल प्रभाकर प्रेम।
मोह-निसा अघ-तम सकल, नासे तजि निज छेम ॥५२॥

प्रेम-दिवाकर उगत ही, छायो पूर्ण प्रकाश।
विषय-नखत दीखत नहीं, भयौ मोह-तम नाश ॥५३॥

प्रेम-सुधा सिंचन कियौ, अमर भयो विज्ञान।
सकल विश्व हरि ह्वै गयो, मिट्यो ज्ञान अज्ञान ॥५४॥

प्रेम-अनल लागत जर्‌यो, जगको जाहिर रूप।
भये तिरोहित रूप त्रै, रह्यो एक हरि-रूप ॥५५॥

भुक्ति-मुक्ति दोऊ तजी, तजे लोक-परलोक।
बूड़्यो प्रेम-पयोधिमें, नहीं हर्ष नहिं शोक ॥५६॥

जिन चाख्यो हरि-रस मधुर, अमर भये तेहि पीय।
सब रस नीरस ह्वै गये, जिनके जीहा जीय ॥५७॥

जिनके हिय हरिने लियौ, प्रेमरूप अवतार।
तिनके पातक जरि मरे, भये करम सब छार ॥५८॥

हरि-रस पीयत ही छक्यो, झूमत गिरत अचेत।
उठत चलत रोवत हँसत, नाचत भूलि निकेत ॥५९॥

डूब्यो प्रेम-पयोधिमें, भयो प्रेमको रूप।
रसाद्वैत यहिको कहत, रहत न भिन्न सरूप ॥६०॥

प्रेम हरी, हरि प्रेम है, प्रेमी प्रेमिक आप।
जहाँ प्रेमको बास तहँ, रहे न जगको ताप ॥६१॥

जे पगले हरि-प्रेमके तिनके हिय भगवान।
पाप-ताप कछु ना रहै, नसै भरमकी खान ॥६२॥

मोहनकी मुसुकानको, जिन निरखी निज नैन।
ते प्रेमी बड़भाग जन, छके रहें दिन-रैन ॥६३॥

प्रेम-रसायन पियत ही, बाढ़ी शक्ति अपार।
काम, क्रोध, मद, लोभ रिपु भागे, सीमा पार ॥६४॥

प्रेम-उदधिमें परत ही, ज्यों पहुँच्यो तल सेष।
उछरत फेरि न कबहुँ सो, जनम-मरनके देस ॥६५॥

जेहि मन मनमोहन बस्यो सब अँग रह्यो समाय।
तेहि मन ठौर न औरको, आइ देखि फिरि जाय ॥६६॥

स्याम रह्यो मन नैनमें सुन्दरताकी खान।
सबमें सो दीखत तिन्हें, ब्रज-जुवतिनको प्रान ॥६७॥

सब जग मोह्यो मोहनैं, सबको रह्यो नचाय।
सो मोह्यो, ह्वै प्रेमबस, ब्रजमें नाच्यो आय ॥६८॥

प्रेमांजन आँजत दृगन, बाढ़ी जोति अपार।
तम-भ्रम नास्यौ, स्याम छबि, छाई सब संसार ॥६९॥

प्रेम प्रगट जब होत है, रहन न पावत आन।
'तू' 'तू' ही रहि जाय फिर, 'मैं' को मिटे निसान ॥७०॥

प्रेम-धाम प्रीतम बसै, प्रीतममें रह प्रेम।
दोनों एक सरूप हैं, तहाँ न कोऊ नेम ॥७१॥

ज्ञान और प्रेम

ज्ञान प्रेम दोउ पूज्य अति, दोउ बिमल बरनीय।
पै प्रेमीके मन सदा, प्रेम-रूप कमनीय ॥७२॥

ज्ञानी बोध सरूप ह्वै, होहि ब्रह्ममें लीन।
निरखत, पै लीला मधुर, प्रेमी प्रेम-प्रवीन ॥७३॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ज्ञानी ढिग गंभीर हरि, सचित-ब्रह्मानंद।
प्रेमी-सँग खेलत सदा, चंचल प्रेमानंद ॥७४॥
ज्ञानी ब्रह्मानंदसों, रहै सदा भरपूर।
पै, प्रेमी निरखै सुखद, दुर्लभ हरिको नूर ॥७५॥
प्रेमी-सँग कबहुँ न तजत, रहत निरंतर पास।
हँसत हँसावत आप हरि, करत अनेक बिलास ॥७६॥
ब्रह्म ज्ञान विज्ञानको अमृतको आधार।
भेंट्यो हृदय लगाय हरि, स्रवै नैन जलधार ॥७७॥
प्रेमी भाग्य सराहि मुनि, ज्ञानी विमल विवेक।
चहें सुदुर्लभ प्रेम-पद, तजि निज पदकी टेक ॥७८॥

प्रेमी

प्रेमी जन मुक्ति न लहै, प्रेमरूप हरि त्याग।
स्याम बदन देखैं सदा, परम सुखी बड़भाग ॥७९॥
सनमुख मारै मोरचा, सिरपर बरछी लेय।
प्रेमी पन छाँड़ै नहीं, हरि-हित जीवन देय ॥८०॥
जिये तो हरि-हित ही जिये, मरे तो हरि-हित लागि।
दह्यो करै बिरहागमें, सरबस देवै त्यागि ॥८१॥
प्रेमी पहचानत नहीं, एक स्याम बिनु और।
सोवत जागत जगतमें, स्याम सदा सब ठौर ॥८२॥
लोक बेद सब ही तजै, भजै रैन-दिन स्याम।
सीस समर्पै मुदित मन, एक प्रेमके नाम ॥८३॥
तनु काटै, टुकड़ा करै, खुसी खवावै काग।
जो रुचि देखै पीयकी, कौन बड़ो यह त्याग ॥८४॥
प्रेम कहै, प्रेमहि सुनै, प्रेम निहारै नैन।
प्रेम चखै, प्रेमहिं भखै, प्रेम लखै दिन-रैन ॥८५॥
बड़भागी जिनके हिये, बिंध्यौ प्रेमको बान।
तिनकौं तनिक न सुधि रही, बिसरि गये सब ज्ञान।८६।
तन मन धन सबमें तुम्हीं, सभी तुम्हारे काज।
भावैं ज्यों बरतौ इन्हैं, प्रेम-सिंधु ब्रजराज ॥८७॥
भोग-मोक्षसों रति नहीं, सबसों सदा बिराग।
पै, प्रीतम-छबिमें सतत, बढ़त जात अनुराग ॥८८॥
ब्रह्मलोकतकके सभी, भोग निपट निस्सार।
जानत, पै, प्रिय-प्रीति-हित, करत सदा श्रृंगार ॥८९॥
जो रुचि देखै रामकी, बिलग होइ तत्काल।
नरक परै, दुख सहै, पै, सुखी रहै सब काल ॥९०॥
पच्यो करै नरकाग्नि, पै, पल-पल बाढ़ै प्रेम।
प्रीतमके सुख-सों सुखी, यही प्रेमको नेम ॥९१॥
प्रेम-अनल जो जरि मरै, अपनो आपो खोय।
ते ही जीये जगतमें, शेष रहे मृत होय ॥९२॥
जिहिं नित चित चातक कियो, नेम प्रेमको लीन्हि।
निरखै नित घनस्याम छवि, अन्य सबै तज दीन्हि।९३।
बिपति सहै, प्यासो मरै, जरै बिरहकी आग।
दूसरि दिसि चितवैं नहीं, सो प्रेमी बड़भाग ॥९४॥
स्याम सुधाकरमें लग्यो, जेहिको चित्त चकोर।
सो प्रेमी दृढ़निश्चयी, तकै न दूसरि ओर ॥९५॥
मोह मिट्यो संसारको, बिनस्यो सब अज्ञान।
पै, प्रिय-ममता बढ़त नित, यही प्रेम-पहचान ॥९६॥
'अहं' देहको सब दह्यो, रह्यो न बिषय-ममत्व।
पै, प्रिय-सुख-लगि तजत नहिं, बपु यह प्रेम-ममत्व ९७
दोउ दृढ़ आलिंगन करत, करत सदा सुख भोग।
एकरूप नित ह्वै रहैं, तदपि न अँग-संयोग ॥९८॥
सदा रहत संयोग ध्रुव, तदपि बियोग लखात।
योग बियोग सरूप धरि, नित्य जरावत गात ॥९९॥
पै, राखत यह जरनि जिय, प्रिय सम हियसौं लाय।
नहिं कुछ यहि सम सांतिकर, सीतल, सुखद, सुभाय ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परमहंस-विवेकमाला

(लेखक—स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी)

(गतांकसे आगे)

[मणि १०]

याज्ञवल्क्य तथा भुज्युका संवाद

भुज्यु-हे याज्ञवल्क्य ! पूर्व ब्रह्मचर्यावस्थामें मैं ब्रह्मविद्याका अध्ययन करनेके लिये भद्र नामक देशमें गया। वहाँ कपिगोत्रमें उत्पन्न हुए पतञ्जल नामके ब्राह्मणके घरमें हम विद्यार्थियोंने एक आश्चर्य देखा। पतञ्जल ऋषिकी कन्याके शरीरमें भूतके समान अग्निदेवने प्रवेश किया। पश्चात् हम सब विद्यार्थियोंने उसके पास जाकर पूछा कि तुम्हारा नाम और गोत्र क्या है ? तब अग्निदेवने हमसे कहा कि सुधन्वा मेरा नाम है और आङ्गिरस मेरा गोत्र है। जब हम सब ब्राह्मणोंने अग्निदेवसे कर्मके फलका अन्त पूछा तो अग्निदेव इसप्रकार कहने लगे कि जिस स्थानमें पारिक्षित पुरुष है, वह स्थान ही कर्मके फलका अन्तरूप है, इससे अधिक कर्मका फल नहीं है। जब अग्निदेवने इसप्रकार कहा तो हम सबने फिर उनसे पूछा कि पारिक्षित पुरुष किस स्थानमें है ? इसप्रकार पूछनेपर अग्निदेवने पारिक्षित पुरुषका स्थान हमको बताया। जो प्रश्न हमने अग्निदेवसे किये थे, वे ही प्रश्न मैं तुमसे करता हूँ—(१) जिस स्थानमें पारिक्षित पुरुष होता है, वह स्थान कौन-सा है ? (२) उस स्थानके अवान्तर लोकोंका परिमाण कितना है ? और (३) पारिक्षित पुरुषका स्वरूप क्या है ?

भुज्युके इसप्रकार कहनेपर याज्ञवल्क्य उसके प्रश्नोंका उत्तर इसप्रकार देने लगे—

याज्ञवल्क्य-हे भुज्यु ! इस प्रश्नका उत्तर अग्निदेवने तुझसे कहा ही था, फिर उस अर्थको भलीप्रकार जानकर भी सभामें वेदके गुह्य अर्थको किसलिये पूछता है। एक बार जाने हुए वेदके गुह्य अर्थको सभामें फिर पूछना उचित नहीं है। और मेरे लिये उत्तर देना भी योग्य नहीं है। तो भी विश्वास दिलानेके लिये और वेदके गुह्यताकी रक्षाके लिये मैं तेरे प्रश्नोंका संक्षेपसे उत्तर देता हूँ—सुन। उपासनासहित अश्वमेध-यज्ञ करनेवाले पुरुष जिस स्थानमें उपासनासहित अश्वमेध-यज्ञका फल भोगते हैं, उस स्थानमें पारिक्षित पुरुष जाता है। यहाँ उपासनासहित अश्वमेध-यज्ञ करनेवाला पुरुष ही पारिक्षित रूप है।

जब याज्ञवल्क्यने वेदके अर्थकी गुह्यताके रक्षणार्थ यह अर्थ प्रकाशित नहीं किया किन्तु संक्षेपसे भुज्युके प्रश्नोंका उत्तर दिया तो भुज्यु याज्ञवल्क्यकी सर्वज्ञतामें अविश्वास करके फिर कहने लगा—

भुज्यु-हे याज्ञवल्क्य ! उपासनासहित अश्वमेधका करनेवाला जिस स्थानको जाता है, उस स्थानका विस्तारसे मुझसे वर्णन करो।

जब भुज्युने इसप्रकार बारम्बार कहा तो याज्ञवल्क्य विचारने लगे—

याज्ञवल्क्य-(मनमें) सभामें वेदके रहस्यके अर्थको प्रकाश करनेकी यद्यपि मेरी इच्छा नहीं है तो भी यह भुज्यु बारम्बार मुझसे पूछता है। इसलिये सभामें वेदके गुह्य अर्थका प्रकाश करनेसे यदि पापकी उत्पत्ति होगी तो भुज्युको ही पापकी प्राप्ति होगी, मुझे नहीं होगी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इसप्रकार विचारकर मुनि विस्तारसे प्रश्नोंका उत्तर कहने लगे—

याज्ञवल्क्य—हे मुज्यु ! समुद्रपर्यन्त धनसे पूर्ण पृथिवी जिसके वशमें है, ऐसे अश्वमेध-यज्ञकर्ता पुरुषका नाम परिक्षिति है, इस परिक्षिति पुरुषको 'पारिक्षित' कहते हैं।

सात द्वीपोंका वर्णन

यह सम्पूर्ण जम्बूद्वीप एक लक्ष योजनके परिमाण-वाला है। इस जम्बूद्वीपको चारों दिशाओंसे मेखलाके समान घेरे हुए क्षार-समुद्र है। यह क्षार-समुद्र भी एक लक्ष योजन परिमाणवाला है। इसके आगे प्लक्षद्वीप दो लाख योजन परिमाणवाला है। इस प्लक्ष-द्वीपको चारों ओरसे घेरे हुए इक्षुरसोदक नामका समुद्र है। यह समुद्र भी दो लक्ष योजन परिमाणवाला है। इससे आगे शाल्मलीद्वीप है। यह शाल्मलीद्वीप चार लाख योजन परिमाणवाला है। उस शाल्मली-द्वीपको चारों तरफसे घेरे हुए सुरोद नामका समुद्र है, यह समुद्र भी चार लाख योजन परिमाणवाला है। इससे आगे कुशद्वीप है। यह कुशद्वीप आठ लाख योजन परिमाणवाला है। इस कुशद्वीपको चारों तरफसे घेरे हुए घृतोद नामका समुद्र है। यह समुद्र भी आठ लाख योजन परिमाणवाला है। इससे आगे क्रौञ्चद्वीप है। यह क्रौञ्चद्वीप सोलह लाख योजन परिमाणवाला है। इस क्रौञ्चद्वीपको चारों तरफसे घेरे हुए क्षीरोद नामका समुद्र है, यह भी सोलह लाख योजन परिमाणवाला है। इससे आगे शाकद्वीप है, यह शाकद्वीप बत्तीस लाख योजन परिमाणवाला है। इस शाकद्वीपको चारों तरफसे घेरे हुए दधिमण्डोद नामका समुद्र है। यह समुद्र भी बत्तीस लाख योजन परिमाणवाला है, उसके आगे पुष्करद्वीप है। यह पुष्करद्वीप चौंसठ योजन परिमाणवाला है। इस पुष्करद्वीपके चारों ओर शुद्धोद नामका समुद्र है। यह समुद्र भी चौंसठ योजन परिमाणवाला है, ये सात द्वीप और सात समुद्र मिलकर दो करोड़ चौवन लाख योजन परिमाणवाले हैं। सात द्वीप तथा सात समुद्र मिलकर जितने योजन परिमाणवाले हैं, उतने ही योजन शुद्धोद नामके समुद्रसे आगे भूमिका परिमाण है। इस भूमिसे आगे आठ करोड़ उन्तालीस लाख योजन परिमाणवाली सुवर्णकी भूमि है। इस भूमिको छोड़कर आगे लोकालोक-पर्वतके मध्य देशको शास्त्रमें मानसोत्तर मूर्द्धस्थान कहते हैं। इस मध्यदेशमें सूर्य-भगवान् रात-दिन सर्वदा भ्रमण करते हैं। मानसोत्तर परिमण्डलका परिमाण साढ़े नौ करोड़ योजन शास्त्रमें कहा है। इतने योजन परिमाण रात-दिन सूर्य भगवान् चलते हैं। रात-दिनमें जितने योजन परिमाण सूर्यभगवान् चलते हैं, उतने योजन-को बत्तीस गुणा करनेसे जितने योजनकी संख्या होती है, उतने योजनपर्यन्तका देश सूर्य भगवान्के किरणोंसे व्याप्त है। इस लोकको बुद्धिमान् भूलोक कहते हैं। यह भूलोक विराट्भगवान्का शरीररूप है। भूलोकमें ही सब कर्मोंका फल भोगा जाता है।

उपासकको प्राप्य प्रदेश

हे मुज्यु ! इस भूलोकसे आगे भूलोकके परिमाण-से दूने परिमाणवाली भूमि है। यह भूमि चारों तरफसे भूलोकको आवरण किये हुए रहती है, इस आवरण-रूप भूमिके आगेकी भूमिको चारों तरफसे घेरे हुए तथा भूमिसे दुगुने अधिक योजन परिमाणवाला धनोद नामका समुद्र है। इस धनोद नामके समुद्रके आगे ब्रह्माण्ड है। इस ब्रह्माण्डका एक कपाल रौप्यमय है और दूसरा कपाल सुवर्णमय है। इन दोनों कपालोंकी सन्धि अस्तुरेकी धारके समान अत्यन्त तीक्ष्ण है अथवा मक्खीके पङ्खके समान अत्यन्त सूक्ष्म है, इसप्रकारकी सन्धि ब्रह्माण्डमेंसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बाहर निकलनेके मार्गमें है। हे भुज्यु ! उपासना-सहित अश्वमेधयज्ञ करनेवाला पारिक्षित पुरुष जब शरीरका त्याग करता है, तब उसको अनेक प्रकारके देव तथा उपासनारूप फल धनोद नामके समुद्रतक ले जाते हैं, इससे आगे जानेकी किसी देवमें सामर्थ्य नहीं है। जैसे उपासनासहित अश्वमेधयज्ञ करने-वाला पुरुष पारिक्षित है, इसी प्रकार अश्वमेधयज्ञ बिना केवल हिरण्यगर्भकी उपासना करनेवाला पुरुष भी पारिक्षित है, क्योंकि जिसके सब पाप-कर्मोंका क्षय हो जाता है वही पारिक्षित कहलाता है, जैसे अश्वमेधसे पाप-कर्मका क्षय होता है, उसी प्रकार हिरण्यगर्भकी उपासनासे पाप-कर्मका क्षय हो जाता है, इसलिये उपासना और अश्वमेध परिक्षित-का अर्थ है। परिक्षितके अर्थको जाननेवाला पारिक्षित कहलाता है, इसलिये केवल उपासक पुरुषमें भी 'पारिक्षित' शब्दकी प्रवृत्ति है। ब्रह्माण्डरूप कढ़ाईकी सन्धिमें होकर जानेवाले सूक्ष्म मार्गमें सर्व देवोंका अधिपति इन्द्र भी जानेको समर्थ नहीं है। जब इन्द्र ही इस मार्गमें जानेको समर्थ नहीं है तब धनोद नामके समुद्रके पार जानेमें असमर्थ अन्य देव इस सूक्ष्म मार्गमें कैसे जा सकते हैं? अन्य देव इस समुद्रके इस किनारेपर ही रह जाते हैं।

भुज्यु—हे याज्ञवल्क्य ! जब इन्द्रादि देव भी इस मार्गमें जानेको समर्थ नहीं हैं तो फिर पारिक्षित पुरुष किसप्रकार ब्रह्माण्डमेंसे बाहर निकलता है?

याज्ञवल्क्य—हे भुज्यु ! विराट्रूप इन्द्रदेव पक्षीका रूप धारण करके पारिक्षित पुरुषको धनोद नामके समुद्रके पार ले जाते हैं। इस समुद्रके उस किनारेपर हिरण्यगर्भरूप वायुदेव आकाशमें रहते हैं। इन्द्रदेव पारिक्षित पुरुषको वायुको सौंपकर लौट आते हैं। पीछे हिरण्यगर्भरूप वायुदेव पारिक्षित पुरुषको सूक्ष्मरूप करके, अपने शरीरके साथ अभिन्न करके, सन्धिरूप मार्गद्वारा ब्रह्माण्डमेंसे बाहर ले जाते हैं। जिस स्थानपर पूर्व-पूर्वके उपासक पुरुष गये हुए होते हैं, उस स्थानपर पारिक्षित पुरुष पहुँचता है। इससे सिद्ध होता है कि पारिक्षित हिरण्यगर्भरूपसे ब्रह्माण्डके अन्दर तथा बाहर व्याप्त होकर रहता है। इसलिये सर्व कर्मके फलका अन्त हिरण्यगर्भलोक है। हिरण्यगर्भलोकसे आगे किसी कर्मका फल नहीं है।

हे डोरूशंकर ! पूर्वमें अग्निदेवने जैसा उत्तर भुज्युको दिया था, वैसा ही उत्तर जब याज्ञवल्क्यने दिया तो भुज्यु याज्ञवल्क्यके जीतनेकी इच्छाको त्याग-कर उषस्त ब्राह्मणके मुखकी ओर देखकर प्रश्न करनेसे निवृत्त हो गया। पश्चात् उषस्त इसप्रकार प्रश्न करने लगा।

उषस्त तथा याज्ञवल्क्यका संवाद

उषस्त—हे याज्ञवल्क्य ! जैसे प्रकाशरहित लोहा अग्निके सम्बन्धसे प्रकाशमान हो जाता है इसी प्रकार वृत्ति अवच्छिन्न साक्षी चैतन्यके सम्बन्धसे घट-पटादि जड़ पदार्थ प्रतीत होते हैं। इसलिये घट-पटादि जड़ पदार्थोंमें मुख्य अपरोक्षपना नहीं है, गौण अपरोक्षपना है और ब्रह्म स्वप्रकाश चैतन्यस्वरूप है इसलिये ब्रह्ममें मुख्य अपरोक्षपना है। ब्रह्म सबके अन्दर तथा बाहर व्यापक है इसलिये सबका आत्मा है। ऐसा सब शास्त्रोंमें कहा है, किन्तु ऐसा हो नहीं सकता; क्योंकि शास्त्रने आत्मामें ब्रह्मरूपता और अद्वितीयरूपता दो धर्म कहे हैं। इस सम्बन्धमें मैं विवाद नहीं करता किन्तु ब्रह्मरूपता और अद्वितीयरूपता—ये दो धर्म जिस आत्मारूप धर्मीमें रहते हैं, वह आत्मा हमको इस संघातसे भिन्न प्रतीत नहीं होता इसलिये हे याज्ञवल्क्य ! जो आत्मा इस संघातसे विलक्षण है, उस आत्माको मुझसे कहो तब मैं तुमको बुद्धिमान् जानूँगा।

याज्ञवल्क्य—हे उषस्त ! यह आत्मा अद्वितीय

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इसप्रकार विचारकर मुनि विस्तारसे प्रश्नोंका उत्तर कहने लगे—

याज्ञवल्क्य—हे भुज्यु ! समुद्रपर्यन्त धनसे पूर्ण पृथिवी जिसके वशमें है, ऐसे अश्वमेध-यज्ञकर्ता पुरुषका नाम परिक्षिति है, इस परिक्षिति पुरुषको 'पारिक्षित' कहते हैं।

सात द्वीपोंका वर्णन

यह सम्पूर्ण जम्बूद्वीप एक लक्ष योजनके परिमाण-वाला है। इस जम्बूद्वीपको चारों दिशाओंसे मेखलाके समान घेरे हुए क्षार-समुद्र है। यह क्षार-समुद्र भी एक लक्ष योजन परिमाणवाला है। इसके आगे प्लक्षद्वीप दो लाख योजन परिमाणवाला है। इस प्लक्ष-द्वीपको चारों ओरसे घेरे हुए इक्षुरसोदक नामका समुद्र है। यह समुद्र भी दो लक्ष योजन परिमाणवाला है। इससे आगे शाल्मलीद्वीप है। यह शाल्मलीद्वीप चार लाख योजन परिमाणवाला है। उस शाल्मली-द्वीपको चारों तरफसे घेरे हुए सुरोद नामका समुद्र है, यह समुद्र भी चार लाख योजन परिमाणवाला है। इससे आगे कुशद्वीप है। यह कुशद्वीप आठ लाख योजन परिमाणवाला है। इस कुशद्वीपको चारों तरफसे घेरे हुए घृतोद नामका समुद्र है। यह समुद्र भी आठ लाख योजन परिमाणवाला है। इससे आगे क्रौञ्चद्वीप है। यह क्रौञ्चद्वीप सोलह लाख योजन परिमाणवाला है। इस क्रौञ्चद्वीपको चारों तरफसे घेरे हुए क्षीरोद नामका समुद्र है, यह भी सोलह लाख योजन परिमाणवाला है। इससे आगे शाकद्वीप है, यह शाकद्वीप बत्तीस लाख योजन परिमाणवाला है। इस शाकद्वीपको चारों तरफसे घेरे हुए दधिमण्डोद नामका समुद्र है। यह समुद्र भी बत्तीस लाख योजन परिमाणवाला है, उसके आगे पुष्करद्वीप है। यह पुष्करद्वीप चौंसठ योजन परिमाणवाला है। इस पुष्करद्वीपके चारों ओर शुद्धोद नामका समुद्र है। यह समुद्र भी चौंसठ योजन परिमाणवाला है, ये सात द्वीप और सात समुद्र मिलकर दो करोड़ चौवन लाख योजन परिमाणवाले हैं। सात द्वीप तथा सात समुद्र मिलकर जितने योजन परिमाणवाले हैं, उतने ही योजन शुद्धोद नामके समुद्रसे आगे भूमिका परिमाण है। इस भूमिसे आगे आठ करोड़ उन्तालीस लाख योजन परिमाणवाली सुवर्णकी भूमि है। इस भूमिको छोड़कर आगे लोकालोक-पर्वतके मध्य देशको शास्त्रमें मानसोत्तर मूर्द्धस्थान कहते हैं। इस मध्यदेशमें सूर्य-भगवान् रात-दिन सर्वदा भ्रमण करते हैं। मानसोत्तर परिमण्डलका परिमाण साढ़े नौ करोड़ योजन शास्त्रमें कहा है। इतने योजन परिमाण रात-दिन सूर्य भगवान् चलते हैं। रात-दिनमें जितने योजन परिमाण सूर्यभगवान् चलते हैं, उतने योजन-को बत्तीस गुणा करनेसे जितने योजनकी संख्या होती है, उतने योजनपर्यन्तका देश सूर्य भगवान्‌के किरणोंसे व्याप्त है। इस लोकको बुद्धिमान् भूलोक कहते हैं। यह भूलोक विराट्‌भगवान्‌का शरीररूप है। भूलोकमें ही सब कर्मोंका फल भोगा जाता है।

उपासकको प्राप्य प्रदेश

हे भुज्यु ! इस भूलोकसे आगे भूलोकके परिमाण-से दूने परिमाणवाली भूमि है। यह भूमि चारों तरफसे भूलोकको आवरण किये हुए रहती है, इस आवरण-रूप भूमिके आगेकी भूमिको चारों तरफसे घेरे हुए तथा भूमिसे दुगुने अधिक योजन परिमाणवाला धनोद नामका समुद्र है। इस धनोद नामके समुद्रके आगे ब्रह्माण्ड है। इस ब्रह्माण्डका एक कपाल रौप्यमय है और दूसरा कपाल सुवर्णमय है। इन दोनों कपालोंकी सन्धि अस्तुरेकी धारके समान अत्यन्त तीक्ष्ण है अथवा मक्खीके पङ्खके समान अत्यन्त सूक्ष्म है, इसप्रकारकी सन्धि ब्रह्माण्डमेंसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बाहर निकलनेके मार्गमें है। हे भुज्यु ! उपासना-सहित अश्वमेधयज्ञ करनेवाला पारिक्षित पुरुष जब शरीरका त्याग करता है, तब उसको अनेक प्रकारके देव तथा उपासनारूप फल धनोद नामके समुद्रतक ले जाते हैं, इससे आगे जानेकी किसी देवमें सामर्थ्य नहीं है। जैसे उपासनासहित अश्वमेधयज्ञ करने-वाला पुरुष पारिक्षित है, इसी प्रकार अश्वमेधयज्ञ विना केवल हिरण्यगर्भकी उपासना करनेवाला पुरुष भी पारिक्षित है, क्योंकि जिसके सब पाप-कर्मोंका क्षय हो जाता है वही पारिक्षित कहलाता है, जैसे अश्वमेधसे पाप-कर्मका क्षय होता है, उसी प्रकार हिरण्यगर्भकी उपासनासे पाप-कर्मका क्षय हो जाता है, इसलिये उपासना और अश्वमेध परिक्षित-का अर्थ है। परिक्षितके अर्थको जाननेवाला पारिक्षित कहलाता है, इसलिये केवल उपासक पुरुषमें भी 'पारिक्षित' शब्दकी प्रवृत्ति है। ब्रह्माण्डरूप कढ़ाईकी सन्धिमें होकर जानेवाले सूक्ष्म मार्गमें सर्व देवोंका अधिपति इन्द्र भी जानेको समर्थ नहीं है। जब इन्द्र ही इस मार्गमें जानेको समर्थ नहीं है तब धनोद नामके समुद्रके पार जानेमें असमर्थ अन्य देव इस सूक्ष्म मार्गमें कैसे जा सकते हैं? अन्य देव इस समुद्रके इस किनारेपर ही रह जाते हैं।

भुज्यु—हे याज्ञवल्क्य ! जब इन्द्रादि देव भी इस मार्गमें जानेको समर्थ नहीं हैं तो फिर पारिक्षित पुरुष किसप्रकार ब्रह्माण्डमेंसे बाहर निकलता है?

याज्ञवल्क्य—हे भुज्यु ! विराट्रूप इन्द्रदेव पक्षीका रूप धारण करके पारिक्षित पुरुषको धनोद नामके समुद्रके पार ले जाते हैं। इस समुद्रके उस किनारेपर हिरण्यगर्भरूप वायुदेव आकाशमें रहते हैं। इन्द्रदेव पारिक्षित पुरुषको वायुको सौंपकर लौट आते हैं। पीछे हिरण्यगर्भरूप वायुदेव पारिक्षित पुरुषको सूक्ष्मरूप करके, अपने शरीरके साथ अभिन्न करके, सन्धिरूप मार्गद्वारा ब्रह्माण्डमेंसे बाहर ले जाते हैं। जिस स्थानपर पूर्व-पूर्वके उपासक पुरुष गये हुए होते हैं, उस स्थानपर पारिक्षित पुरुष पहुँचता है। इससे सिद्ध होता है कि पारिक्षित हिरण्यगर्भरूपसे ब्रह्माण्डके अन्दर तथा बाहर व्याप्त होकर रहता है। इसलिये सर्व कर्मके फलका अन्त हिरण्यगर्भलोक है। हिरण्यगर्भलोकसे आगे किसी कर्मका फल नहीं है।

हे डोरूशंकर ! पूर्वमें अग्निदेवने जैसा उत्तर भुज्युको दिया था, वैसा ही उत्तर जब याज्ञवल्क्यने दिया तो भुज्यु याज्ञवल्क्यके जीतनेकी इच्छाको त्याग-कर उषस्त ब्राह्मणके मुखकी ओर देखकर प्रश्न करनेसे निवृत्त हो गया। पश्चात् उषस्त इसप्रकार प्रश्न करने लगा।

उषस्त तथा याज्ञवल्क्यका संवाद

उषस्त—हे याज्ञवल्क्य ! जैसे प्रकाशरहित लोहा अग्निके सम्बन्धसे प्रकाशमान हो जाता है इसी प्रकार वृत्ति अवच्छिन्न साक्षी चैतन्यके सम्बन्धसे घट-पटादि जड़ पदार्थ प्रतीत होते हैं। इसलिये घट-पटादि जड़ पदार्थोंमें मुख्य अपरोक्षपना नहीं है, गौण अपरोक्षपना है और ब्रह्म स्वप्रकाश चैतन्यस्वरूप है इसलिये ब्रह्ममें मुख्य अपरोक्षपना है। ब्रह्म सबके अन्दर तथा बाहर व्यापक है इसलिये सबका आत्मा है। ऐसा सब शास्त्रोंमें कहा है, किन्तु ऐसा हो नहीं सकता; क्योंकि शास्त्रने आत्मामें ब्रह्मरूपता और अद्वितीयरूपता दो धर्म कहे हैं। इस सम्बन्धमें मैं विवाद नहीं करता किन्तु ब्रह्मरूपता और अद्वितीयरूपता—ये दो धर्म जिस आत्मारूप धर्मीमें रहते हैं, वह आत्मा हमको इस संघातसे भिन्न प्रतीत नहीं होता इसलिये हे याज्ञवल्क्य ! जो आत्मा इस संघातसे विलक्षण है, उस आत्माको मुझसे कहो तब मैं तुमको बुद्धिमान् जानूँगा।

याज्ञवल्क्य—हे उषस्त ! यह आत्मा अद्वितीय

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्मरूप है इसलिये अत्यन्त समीप आत्मामें तुझे असम्भावना करना उचित नहीं है।

हे वत्स ! इस कथनसे याज्ञवल्क्यका यह तात्पर्य था कि 'आत्मा है' इतना कहनेसे ही यदि उषस्त अन्तर्मुख होगा तो आत्माके स्वरूपको जानकर सन्तुष्ट हो जायगा। परन्तु उषस्त अन्तर्मुख था नहीं, वह बहिर्मुख था, इसलिये 'आत्मा है' इतने कहनेसे वह सन्तुष्ट न हुआ। वह उलटा संशययुक्त होकर पूछने लगा।

उषस्त–हे याज्ञवल्क्य ! यह आत्मा कैसा है ? भाव यह है कि आत्मा स्थूल शरीररूप है अथवा सूक्ष्म शरीररूप है अथवा इन दोनोंका साक्षीरूप है? इन तीनों पक्षोंमेंसे आत्मा स्थूल शरीररूप तथा सूक्ष्म शरीररूप है, ये दो पक्ष सम्भव नहीं हैं क्योंकि स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों शरीर परिच्छिन्न हैं, इसलिये वे सर्वव्यापक नहीं हो सकते। शास्त्रमें आत्माको सर्वान्तर्यामी कहा है। जो सर्वव्यापी न हो, वह सर्वान्तर्यामी नहीं हो सकता, इसलिये स्थूल-सूक्ष्म शरीर आत्मा नहीं है और आत्मा बुद्धि आदिका साक्षी है, यह तीसरा पक्ष भी नहीं बनता क्योंकि साक्षी आत्मामें कोई भी प्रमाण नहीं है।

याज्ञवल्क्य–हे उषस्त ! जैसे बालक सूत्रसे बन्दरको अनेक प्रकार नचाता है, इसी प्रकार तुम्हारे शरीरमें रहे हुए तुम्हारे प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान तथा बुद्धि आदि संघातको उनके व्यापारमें जो प्रवृत्त करता है, वही तुम्हारा आत्मा है।

ऐसा कहनेसे मुनिने अनुमान-प्रमाणका उपदेश किया। प्राण आदिका प्रवर्तक जो आत्मा है, वह प्राण आदिसे भिन्न है क्योंकि वह प्राणादिका प्रवर्तक है। जो-जो पदार्थ जिस-जिस पदार्थका प्रवर्तक होता है, वह-वह पदार्थ उस-उस पदार्थसे भिन्न होता है। जैसे बन्दरको प्रेरणा करनेवाला बालक बन्दरसे भिन्न है, इसी प्रकार सबका अन्तर्यामी आत्मा भी प्राण आदि सर्व पदार्थोंका प्रवर्तक है, इसलिये प्राणादि सर्व पदार्थोंसे आत्मा भिन्न है। उषस्तकी मन्द बुद्धि देखकर मुनिने अनुमान-प्रमाणसे आत्माके स्वरूपका निरूपण किया तो भी उषस्त मुनिके अभिप्रायको न समझ सका और उपहासपूर्वक फिर पूछने लगा।

उषस्त–हे याज्ञवल्क्य ! पहले मैंने आत्माका स्पष्ट रूप जाननेके लिये तुमसे प्रश्न किया किन्तु तुमने आत्माका स्पष्ट रूप नहीं बताया इसलिये यदि तुम संघातसे विलक्षण आत्माका स्वरूप जानते हो तो जैसे गायका सींग पकड़कर गायको बता देते हैं, इसी प्रकार स्पष्ट करके मुझे आत्माका स्वरूप दिखा दो, मैंने तुमसे संघातसे विलक्षण आत्माका स्वरूप पूछा और तुमने 'आत्मा प्राणादिका प्रवर्तक है' ऐसा उत्तर दिया। यह तुम्हारा उत्तर संघातसे विलक्षण आत्माको सिद्ध नहीं करता, क्योंकि लोकमें व्यापार-वाला पुरुष ही अन्य बन्दर आदिका प्रवर्तक होता है, व्यापारसे रहित कोई प्रवर्तक नहीं होता। यह संघात व्यापारवाला होनेसे प्राणादिका प्रवर्तकरूप है। 'प्राणादिको उनके व्यापारमें जो प्रवृत्त करता है, वह आत्मा है,' ऐसा कहनेसे संघातमें ही आत्मापना सिद्ध होता है। इसलिये जैसे कोई पुरुष किसीसे गायका स्वरूप पूछे और वह उसे घोड़ा दिखला दे, इसी प्रकार मैंने संघातसे विलक्षण आत्माका स्वरूप पूछा और तुमने संघातको ही आत्मा बता दिया। इसलिये यह तुम्हारा उत्तर अत्यन्त विरुद्ध है। अतएव संघातसे विलक्षण हस्तामलकके समान आत्माका स्वरूप मुझसे कहो।

जब इसप्रकार उपहासयुक्त वचन उषस्तने कहे तो भी मुनिको तनिक भी क्रोध नहीं आया। वे गम्भीरतापूर्वक मन्द-मन्द मुसकराते हुए कहने लगे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

याज्ञवल्क्य–हे उषस्त ! 'संघातसे विलक्षण आत्मा-का स्वरूप मुझसे कहो' ऐसा जो तू प्रश्न करता है, यह ठीक नहीं है क्योंकि तेरा आत्मा तो अत्यन्त अपरोक्ष है। 'मैं हूँ' इसप्रकारकी अन्तःकरणकी वृत्तिसे तू आत्माको जानता ही है। इसलिये अपरोक्ष आत्मा-में असम्भावना सम्भव नहीं।

उषस्त–हे याज्ञवल्क्य ! तुम अहंबुद्धिका विषयरूप आत्मा कहते हो, इससे आत्माका निर्णय नहीं होता क्योंकि अहंबुद्धि तो अनेक पदार्थोंमें होती है। मैं स्थूल हूँ, इसप्रकारकी अहंबुद्धि स्थूल शरीरको विषय करती है; मैं काना हूँ, मैं बहिरा हूँ, इसप्रकारकी अहंबुद्धि इन्द्रियोंको विषय करती है; मैं भूखा हूँ, मैं प्यासा हूँ, इसप्रकारकी अहंबुद्धि प्राणको विषय करती है, मैं निश्चयवाला हूँ, ऐसी अहंबुद्धि बुद्धि-को विषय करती है; मैं अज्ञानी हूँ, ऐसी अहंबुद्धि अज्ञानको विषय करती है। इसलिये स्थूल शरीरसे लेकर अज्ञानपर्यन्त सर्व संघातमें अहंबुद्धिकी विषयता प्रतीत होती है। इन सबमें आत्मा कौन है ? यह मैं जानना चाहता हूँ, इसलिये हे याज्ञवल्क्य ! यदि तुम आत्माको जानते हो तो बुद्धि आदि जड़ पदार्थोंसे भिन्न करके आत्माका स्वरूप मुझसे कहो।

याज्ञवल्क्य–हे उषस्त ! विद्वान् पुरुषके अनुभव-से सिद्ध आत्माकी अपरोक्षतारूपसे आत्माका निरूपण करनेमें तेरा आग्रह है अथवा जैसे घटमें इन्द्रियजन्य ज्ञानकी विषयतारूप अपरोक्षता है, इसी प्रकार अपरोक्षतारूपसे आत्माके निरूपण करनेमें तेरा आग्रह है ? इन दोनोंमें यदि तू प्रथम पक्ष माने तो जैसे विद्वान् आत्माके स्वरूपका निरूपण करते हैं, इसी प्रकार मैं तुझसे आत्माके स्वरूपका निरूपण करता हूँ किन्तु तू बहिर्मुख है इसलिये विद्वान्के समान तू आत्माका लक्ष नहीं कर सकता। यदि तू दूसरे पक्षको माने, तो वह भी सम्भव नहीं है क्योंकि नित्य अपरोक्षरूप आत्मा चिदाभासयुक्त बुद्धिसे घट-पटादि पदार्थोंको जानता है। आत्मा अपने स्वप्रकाशसे बुद्धिको प्रकाशता है, इसलिये बुद्धि आदि-के द्रष्टारूप ऐसे आत्माको तू किसप्रकार विषय कर सकेगा ? बुद्धिसहित सर्व इन्द्रियाँ आत्माको विषय नहीं कर सकतीं। जैसे घटादि पदार्थोंके प्रकाशकरूप चक्षु-इन्द्रियको घटादि पदार्थ प्रकाश नहीं कर सकते, इसी प्रकार विषय-इन्द्रियके सम्बन्धसे उत्पन्न हुई अन्तःकरणकी वृत्तियोंको आनन्द-स्वरूप आत्मा प्रकाशता है, इसलिये प्रकाशकरूप आत्माको वृत्तियाँ नहीं प्रकाशतीं। बुद्धि आदि जड़ पदार्थोंका प्रकाशकरूप, सर्वके अन्तर व्यापकरूप तथा उत्पत्ति-नाशसे रहित जो वस्तु है, वही संघातसे विलक्षण तेरा आत्मा है।

उषस्त–हे याज्ञवल्क्य ! आत्मासे भिन्न बुद्धि आदि जड़ सत्य हैं या असत्य हैं ? यदि बुद्धि आदि जड़ पदार्थोंको सत्य कहो, तो घट-पटादि जैसे आन्तररूप नहीं हैं। इसी प्रकार आत्मामें सर्वान्तरपना नहीं होगा। यदि आत्मासे भिन्न बुद्धि आदि जड़ पदार्थोंको अनित्य कहो, तो भी आत्मामें सर्वान्तरपना सम्भव नहीं है क्योंकि आत्मा सर्वके अन्तर व्यापकरूप है, इस वचनमें सर्व शब्दसे बुद्धि आदि ग्रहण करनी पड़ेंगी और तुम्हारे मतमें बुद्धि आदि पदार्थ अत्यन्त असत्य हैं, इसलिये बुद्धि आदिका अभाव होनेसे आत्मामें सर्वान्तरपना सम्भव नहीं है।

याज्ञवल्क्य–हे उषस्त ! आनन्दस्वरूप आत्मा-से भिन्न जितने बुद्धि आदि पदार्थ हैं, वे सब जड़ हैं, इसलिये घटादिके समान वे जन्म-मरणवाले हैं, इसलिये कल्पित हैं। इन कल्पित बुद्धि आदिमें अधिष्ठान आत्माकी व्यापकता सम्भव है। जैसे रज्जु-रूप अधिष्ठानमें कल्पित सर्प, दण्ड आदिमें रज्जुरूप अधिष्ठान व्यापकरूप है, इसी प्रकार कल्पित बुद्धि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आदिमें अधिष्ठान आत्मा व्यापकरूप है, इसलिये आत्मामें सर्वान्तरपना सम्भव है।

इसप्रकार मुनिने जब संघातसे विलक्षण आत्माका स्वरूप निरूपण किया तो उषस्तको निश्चय हो गया कि याज्ञवल्क्य अत्यन्त बुद्धिमान् है, इसलिये मैं इसको नहीं जीत सकता, ऐसा निश्चय करके कहोल ब्राह्मणकी ओर देखकर उषस्त चुप हो गया, पश्चात् कहोल याज्ञवल्क्यसे प्रश्न करने लगा।

कहोल तथा याज्ञवल्क्यका संवाद

कहोल—हे याज्ञवल्क्य! प्रथम उषस्त ब्राह्मणके प्रसंगमें तुमने आत्माको जो ब्रह्मरूप कहा, वह सम्भव नहीं है क्योंकि समान धर्मवाले पदार्थोंका ही परस्पर अभेद होता है, विरुद्ध धर्मवाले पदार्थोंका अभेद सम्भव नहीं है। जैसे उष्ण स्पर्शवाले अग्निका और शीत स्पर्शवाले बरफका परस्पर अभेद नहीं होता, इसी प्रकार संघातका प्रकाशक आत्मा क्षुधा, पिपासा, शोक, मोह, जरा तथा मरण—इन छः ऊर्मिरूपी संसारवाला प्रतीत होता है और ब्रह्म तो क्षुधा, पिपासा आदि छः ऊर्मिरूप संसारसे रहित है, ऐसा शास्त्रसे प्रतीत होता है, इसलिये संसारी आत्मा और असंसारी ब्रह्मका अभेद कहना अत्यन्त विरुद्ध है।

याज्ञवल्क्य—हे कहोल! 'विरुद्ध धर्मवाले पदार्थोंका अभेद नहीं होता'—यह जो तू कहता है, वह सत्य है, किन्तु क्षुधादि धर्म आत्मामें नहीं हैं। क्षुधा-पिपासा प्राणके धर्म हैं, शोक-मोह मनके धर्म हैं और जरा-मरण शरीरके धर्म हैं। आत्माका इनमेंसे कोई भी धर्म नहीं है। तात्पर्य यह कि जैसे घटादि पदार्थोंके प्रकाशक सूर्य भगवान्‌को घटादिके धर्म स्पर्श नहीं करते इसी प्रकार प्राणादिके प्रकाशक आत्माको प्राणादिके धर्म स्पर्श नहीं करते, इसलिये जैसे ब्रह्म जन्मादि संसारसे रहित है, इसी प्रकार आत्मा भी जन्मादि संसारसे रहित है, इसलिये वेदवेत्ता महात्मा आत्माको ब्रह्मरूप कहते हैं। जिस पुरुषको संशय-रहित आत्माका ज्ञान हो जाता है, उसका भी जब जन्म-मरणादि संसार निवृत्त हो जाता है, तब साक्षात् ब्रह्मरूप आत्मामें जन्म-मरणादि संसार न रहता हो, इसमें संशय ही क्या है? हे कहोल! जन्मादि संसारसे रहित, अज्ञानसे रहित तथा सर्व बुद्धियोंके साक्षीरूप ब्रह्मरूपी आत्माका साक्षात्कार विक्षेपवान् पुरुषको नहीं होता किन्तु विक्षेपसे रहित विरक्त महात्मा पुरुषको ही आत्माका साक्षात्कार होता है। इसलिये पूर्वमें वामदेव आदि महात्मा पुरुष आत्म-साक्षात्कारकी प्राप्तिके लिये सर्व एषणाओंका त्याग करके संन्यास-आश्रमका ग्रहण कर चुके हैं। ऐसा कहनेसे यह सिद्ध होता है कि जैसे विवेक, वैराग्यादि आत्मसाक्षात्कारके साधन हैं, इसी प्रकार 'उपरति' शब्दका अर्थ संन्यास भी विक्षेपकी निवृत्ति-द्वारा आत्मसाक्षात्कारका साधनरूप है। यहाँ 'संन्यास' शब्दका अर्थ विविदिषा संन्यास ग्रहण करना चाहिये।

एषणाका स्वरूप

हे कहोल! तीन प्रकारकी एषणा होती है। एक पुत्र-एषणा, दूसरी वित्त-एषणा और तीसरी लोक-एषणा। 'मुझको पुत्र प्राप्त हो'—इसप्रकारकी इच्छाको पुत्र-एषणा कहते हैं। पुत्र-एषणाके कारण मनुष्य स्त्री आदिके संग्रहमें प्रवृत्त होता है। 'मेरे धन हो तो अच्छा'—इसप्रकारकी इच्छाको वित्त-एषणा कहते हैं। धन दो प्रकारका होता है—एक दैव-धन और दूसरा मनुष्य-धन। देवलोकके जयके साधनरूप कर्म-उपासनाको दैव-धन कहते हैं। मनुष्यलोकके साधनरूप पशु, सुवर्णादिरूप धनको मनुष्य-धन कहते हैं। इन दोनों प्रकारके धनकी इच्छा वित्त-एषणा कहलाती है। 'मुझे सुख हो'—इसप्रकारकी इच्छाको

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लोक-एषणा कहते हैं। सुख भी दो प्रकारका होता है—एक मनुष्यलोकमें होनेवाला सुख और दूसरा देवलोकमें होनेवाला सुख। इन दोनों प्रकारके सुखोंकी इच्छाका नाम लोक-एषणा है। यद्यपि इच्छाके विषय-रूप पदार्थ अनन्त हैं, इसलिये इच्छाएँ अनन्त हो सकती हैं। तो भी तीन इच्छाओंके भीतर सब इच्छाओंका समावेश होता है। सम्यक् विचार करनेसे तो वित्त-एषणा और लोक-एषणा—ये दो प्रकारकी एषणाएँ ही सिद्ध होती हैं। क्योंकि जैसे पशु, क्षेत्र तथा सुवर्णादि धन पिताके सुखके साधनरूप हैं, इसी प्रकार पुत्र भी पिताके सुखका साधन है। इसलिये इस लोक और परलोकके सुखका साधन वित्त है, वित्त-एषणासे सम्पूर्ण सुखके साधनोंकी एषणाका ग्रहण होता है। लोक-एषणासे इस लोक और परलोकके सुखरूप फलकी एषणाका ग्रहण होता है। इसलिये साधन-एषणा और फल-एषणा—ये दो प्रकारकी एषणाएँ ही सर्वत्र हैं। सब जीव प्रथम सुखरूप फलकी इच्छा करते हैं किन्तु वह सुख साधन बिना सिद्ध नहीं होता, इसलिये सुखके साधनकी इच्छा होती है, लोकके व्यवहारसे भी दो प्रकारकी एषणा सिद्ध होती है।

अनात्म-पदार्थोंमें दुःख

कहोल—हे याज्ञवल्क्य! जन्म-मरणादि संसारसे रहित, स्वप्रकाश, आनन्दस्वरूप आत्मामें ही सुख है। आत्माके सिवा सर्व अनात्म-पदार्थ परिणाममें दुःख देनेवाले हैं, इसलिये अनात्म पदार्थोंमें किञ्चित् भी सुख नहीं है। फिर एषणाओंका लोग त्याग क्यों नहीं करते?

याज्ञवल्क्य—हे कहोल! इसका कारण अविचार है। विचार बिना न तो अनात्म-पदार्थोंमें दुःख प्रतीत होता है और न आत्मामें सुखका अनुभव होता है। विद्वान् पुरुष विचार करके सब एषणाओंका परित्याग करता है। यही विचार यहाँ दिखलाता हूँ, सुन—

हे कहोल! इस लोकमें जितने सुखकारी पदार्थ हैं, उन सबमें माता पुत्रकी सबसे अधिक सुखकारिणी है क्योंकि बाल्यावस्थामें माता पुत्रको दूध पिलाती है, अनेक प्रकारके उपायोंसे जल, अग्नि आदिसे पुत्रकी रक्षा करती है, अपने हाथसे पुत्रके विष्ठा-मूत्रादि फेंकती है और पुत्रसे अनेक प्रकारका स्नेह करती है। इसप्रकार अनेक उपायोंसे माता पुत्रका पालन करती है, इसलिये माताके समान कोई पदार्थ सुखकारी नहीं है। किन्तु क्रोधयुक्त होकर माता ताड़न करके पुत्रको दुःख भी देती है अथवा जब माता मर जाती है तो बालकको परम दुःखकी प्राप्ति होती है। बाल्यावस्थामें माताके मरणसे जैसा बालकको दुःख होता है, अथवा यौवन-अवस्थामें स्त्रीके मरणसे जैसा दुःख पुरुषको होता है, वृद्धावस्थामें पुत्रके मरणसे जैसा दुःख पिताको होता है, वैसा दुःख वज्रके पड़नेसे, अग्निमें प्रवेश करनेसे, शरीरको काटनेसे, शूलीपर चढ़ानेसे अथवा पर्वतपरसे नीचे गिरनेसे भी नहीं होता, इसलिये अत्यन्त सुखकारिणी माता भी वियोगकालमें जीवके परम दुःखका कारण होती है। जैसे माताका वियोग जीवको दुःखका कारण है, इसी प्रकार पितासे लेकर जितने सुखकारी बान्धव हैं, उनका भी जब वियोग होता है, तब जीवको परम दुःखकी प्राप्ति होती है। तात्पर्य यह है कि जितने पदार्थोंका परस्पर सम्बन्ध होता है, उन पदार्थोंका, देश-कालादि-निमित्तसे वियोग भी अवश्य होता है। इस वियोगके निवारण करनेको कोई भी समर्थ नहीं है। इसलिये माता-पितादि सर्व प्रिय पदार्थ वियोग-कालमें जीवके दुःखके कारण हैं। विचारकर देखा जाय तो प्राप्तिसे प्रथम- प्राप्ति और वियोग—इन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तीनों अवस्थाओंमें पदार्थ दुःखके कारण हैं क्योंकि जबतक पुत्रादि प्रिय पदार्थोंकी प्राप्ति नहीं होती तबतक उनकी इच्छासे दुःख होता है, जब पुत्रादि प्रिय पदार्थोंकी प्राप्ति होती है, तब उनके रक्षणमें दुःख होता है और जब उन प्रिय पदार्थोंका नाश हो जाता है तब उनके वियोगसे जीवको दुःख होता है। इससे सिद्ध हुआ कि आत्माके सिवा सभी प्रिय पदार्थ जीवके दुःखके कारण हैं।

आसिक होकर सोना क्या रे !

(लेखक—पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए०)

ॐ

चे, बहुत ऊँचे पर्वत-शिखरपर प्रीतमकी अटारी है; ऊँची गैल है, राह रपटीली है, पैरोंमें जंजीर बँधी हुई है! बीचमें यह संसार अपना भयावना रूप लेकर खड़ा है! निर्जन अँधेरी रात है, सूना पथ है। तारोंका गजरा पहने यामिनी 'प्रीतम' की मधुभरी छविका स्मरण दिला रही है! हमारे-तुम्हारे बीचमें यह 'संसार' आ पड़ा है, मिलना हो भी तो कैसे ?

प्रीतम बसे पहाड़पर, मैं जमनाके तीर।
अब तो मिलना कठिन है, पाँव पड़ी जंजीर॥

अपने 'सर्वस्व'से मिलनेके लिये प्राण तड़प रहे हैं, हृदय विकल है! और बीचकी यह दूरी ? हाय! यह तो मिटाये नहीं मिटती; बीचका संसार तो प्रतिदिन अपने विस्तारको असीम बनाता जा रहा है और इसका थाह पाना कठिन ही नहीं, असम्भव प्रतीत होता है! जहाँ एक पल भी कोटि-कोटि युगके समान बीत रहे हों, जहाँ बीचका हार भी असह्य हो रहा है—वहाँ यह अनन्त विरह और अमर प्रतीक्षा !!

Ornaments would mar our Union: they would come between Thee and me; their jingling would drown Thy whispers.

'आभूषण हमारे-तुम्हारे मिलनमें बाधक सिद्ध होंगे। वे तुम्हारे और मेरे बीच आ जायँगे—उनकी झुनझुनाहटसे तुम्हारे धीमे शब्द सुन न पड़ेंगे।' इस स्थितिमें जब हार भी मिलनका बहुत असह्य अवरोधक दीखता है, और देखे बिना प्राणोंके लाले पड़े हैं—पता नहीं चलता, क्या किया जाय, क्या नहीं ?

यह तो तय है कि संसारको मिटाये बिना, जगत्‌को मारे बिना 'प्रीतम' के दर्शन नहीं हो सकते। जबतक आँखें खुलनेपर सामने संसार ही दीख पड़ता है तबतक तो समझ लेना चाहिये कि अभी हमारा 'प्रेम' सच्चा नहीं है। प्रेम तो हमारा तभी सच्चा और खरा समझा जायगा जब जहाँ भी, जिस समय भी आँखें खुलें या बन्द रहें सामने 'साजन' का ही मधुर रूप झलक उठे! हमारा यह मिलन अविच्छिन्न और अनवरत हो तभी हमारी लगन लगन है। मजनूँ हर जगह अपनी प्राणप्यारी लैलाको ही देखा करता था—उसके लिये लैलाके सिवा संसारमें कोई वस्तु थी ही नहीं। ठीक इसी प्रकार भक्त साधकके लिये भी 'प्राणनाथ' के अतिरिक्त कोई भी वस्तु है ही नहीं! वह तो जो कुछ जब कभी देखता है वह सब कुछ प्रभुमय होता है!

प्रेम-प्रीतिकी चुनरि हमारी जब चाहौं तब नाचौं सहरवा।
ताला-कुंजी हमैं गुरु दीनी जब चाहौं तब खोलौं किवरवा॥

अब तो जब आँखें बन्द होती हैं तो हृदयके 'रंगमहल' में और जब आँखें खुलती हैं तो समस्त संसारके वृन्दावनमें बस 'प्राणवल्लभ-ही-प्राणवल्लभ' दीखते

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हैं ! जब जीमें आया गर्दन झुकाकर दिलके आईनेमें दिलबर यारकी तस्वीर देख ली ! परन्तु उसके पहलेकी स्थिति तो बड़ी ही असह्य और कठोर प्रतीत होती है; न प्राण ही निकलते हैं, न 'प्रीतम' के दर्शन ही होते हैं। इस असमञ्जसकी स्थितिके एक बहुत ही सुन्दर चित्रको देखिये—

अजहुँ न निकसै प्राण कठोर !
दरसन बिना बहुत दिन बीते, सुंदर प्रीतम मोर ॥
चारि पहर चारौं युग बीते, रैनि गँवाई भोर।
अवधि गई अजहूँ नहिं आये, कतहुँ रहे चितचोर ॥
कबहूँ नैन निरखि नहि देखे, मारग चितवत चोर।
'दादू' ऐसे आतुर बिरहिणी, जैसे चंद चकोर ॥

जन्म-जन्मसे, युग-युगसे मैं तुम्हें ढूँढ़ता आया हूँ परन्तु हाय ! बीचका पर्दा न मिटा पाया और इसीलिये तुम्हारे दर्शन भी न हो सके ! एक बार भी तो ऐसा नहीं हुआ कि भर-आँख अपने 'प्राणनाथ' को देख लेता; एक क्षणके लिये भी घूँघट उठाकर 'सैयाँ' की सलोनी सूरत-को देख न पाया ! जिसमें मिटनेके लिये प्राण तड़प रहे हैं उसे काश एक बार देख पाता !! बड़ी विचित्र पहेली है। देखे बिना रहा जाता नहीं और देखनेमें आता नहीं—इसी असमञ्जसमें प्राण अँटके हैं। 'वह' तो 'शीशमहल' में बैठा-बैठा मेरी ओर देख रहा है परन्तु मेरी इन अभागिन आँखोंके लिये तो 'वह' 'पर्दानशीं' ही बना हुआ है—

तू मोहिं देखै, तोहिं न देखूँ यह मति सब बुधि खोई।
सब घट अंतर रमसि निरंतर, मैं देखन नहिं जाना।
गुन सब तोर, मोर सब अवगुन कृत उपकार न माना ॥
मैं तैं तोरि मोरि असमझि सों, कैसे करि निस्तारा।
कह रैदास कृष्ण करुनामय, जै जै जगत-अधारा ॥

यह गुत्थी भी तो 'उसे' ही सुलझाना है। मैं-मोर, तू-तोरका पर्दा तो उसके ही हटाये हटेगा भी। और जब यह गुत्थी सुलझ गयी तो फिर 'वही वह' भीतर-बाहर एकरूपमें दीख पड़ेगा ! सब कुछ उसीमें और वही सब कुछमें। उस स्थितिको 'सब घट हौं बिहरौं' द्वारा प्रकट किया गया है। परन्तु वस्तुतः वह स्थिति व्यक्त की नहीं जा सकती ! नमकका पुतला समुद्रका थाह लेने चला था स्वयं उसीमें हिरा गया—

हेरत-हेरत हे सखी मैं ही गई हिराय।

तथा—

लाली मेरे लालकी जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गइ लाल ॥

और साईंकी लालीमें स्वयं लाल हो चुकनेपर तो कोई भी साधक वही कहेगा जो गुरु नानकने कहा है—

काहे रे बन खोजन जाई।
सर्व-निवासी सदा अलेपा, तोही संग समाई ॥
पुष्प-मध्य ज्यों बास बसत है, मुकुरमाँहिं जस छाई।
तैसे ही हरि बसैं निरंतर, घट ही खोजो भाई ॥
बाहर भीतर एकै जानौ, यह गुरु ज्ञान बताई।
जन 'नानक' बिन आपा चीन्हे, मिटै न भ्रमकी काई ॥

उस समय तो यह समस्त संसार एक स्वच्छ निर्मल दर्पणकी भाँति दीखेगा जिसमें प्रभुजीकी मधुर परिछाहीं सर्वत्र दीखेगी—उस समय तो समस्त विश्व एक सुगन्धित पुष्पके समान प्रतीत होगा जिसकी खुशबूसे समस्त चराचर मँह-मँह करता दृष्टिगोचर होगा ! समस्त विश्व एक 'शीशमहल' के समान है, बीचमें एक दिव्य प्रकाश है जिसके कारण समस्त विश्व जगमग-जगमग कर रहा है !

कन्याका गुड़ियोंका खेल तभीतक चलता है जबतक 'प्रीतम' के दर्शन नहीं हुए होते। विवाह होते ही वह गुड़ियोंके लिये और गुड़िया उसके लिये अपरिचित हो जाती है ! जबतक असली पतिसे मिलना नहीं होता तभीतक नकली 'बेटा-बेटी' का खेल चलता है। माँगमें सिन्दूर पड़ा और 'ग्रन्थि-बन्धन' हुआ कि गुड़ियोंका खेल बिसर जाता है। वह खेल जो सारे जीवनको अपने रसमें डुबो देता है; यह 'ग्रन्थि-बन्धन' ही जीवनकी सब पहेलियों, जीवनके समस्त व्यापारोंकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एकमात्र प्रक्रिया है ! इसके बाद तो नौका अपना रास्ता पकड़ लेती है !

ठीक इसी प्रकार जब हमारा 'ग्रन्थि-बन्धन' हमारे प्रीतमके साथ हो जाता है तो संसारके अन्य व्यापार गुड़ियेके खेलकी भाँति नीरस प्रतीत होने लगते हैं। साईंका जब दर्शन हो जाता है तो फिर इन खेलोंमें आनन्द या आसक्ति कौन कहे, इनकी स्मृति भी नहीं रहती और उस समय तो बस—

प्रीतम छवि नैनन बसी, औ छवि कहाँ समाय।
रहिमन भरी सराय लखि आप पथिक फिर जाय॥

आँखोंमें, हृदयमें, प्राणमें, रोम-रोममें बस प्रीतम की ही छवि, प्रीतमकी ही धुन छाई रहती है। उस समय संसार बस अपने साजन 'हरि' की परिछाहीं-के रूपमें ही रह जाता है—संसारका संसारत्व मिट जाता है, अपने 'राम' के नाते सभी कुछ सुहावना प्रतीत होने लगता है। सतीके समान प्रभुमें अचल प्रेम हो जाता है और सब कुछ बस 'सियाराममय' हो जाता है। संसारको मारने, जगत्‌को मिटानेका सबसे यही सुन्दर तरीका है कि सब कुछ भगवान्‌में समर्पित कर दिया जाय, सबका सम्बन्ध 'हरि' से जोड़ दिया जाय! उस समय संसार नहीं रहता, केवल 'हरि' रह जाते हैं!

यह न द्वैत है न अद्वैत! पत्नीके सम्मुख पति द्वैत और अद्वैतसे परेका आनन्द लेकर आता है। उसमें द्वैतका आनन्द और अद्वैतकी विरति धूपछाँहकी भाँति घुली-मिली रहती है। पत्नीका कोई निजी व्यक्तित्व नहीं होता, वह पतिकी अर्द्धाङ्गिनी बन जाती है, उसीमें विलय हो जाती है; इस अर्थमें तो वह अद्वैत है। परन्तु पत्नीका धर्म पतिको सुख पहुँचाना, उसके सुख-सम्भोगको पूरा करना भी तो है, इस अर्थमें वह द्वैत है। इसे द्वैतकी अद्वैतता और अद्वैतकी द्वैतता कह सकते हैं!

प्राणनाथसे जब हम इसप्रकार जुड़ गये, जब उनके चरणोंमें सर्वभावेन अपनेको समर्पित कर दिया तो फिर अपने सुख-दुःखकी, अपने सुख-भोगकी, अपने आपकी चिन्ता ही क्यों रह जाय? उस समय तो बस 'प्रीतमकी अटारी' पर पौढ़नेकी ही एकमात्र कामना रहती है। उस समय बस जीवनधनके नाते ही संसारका चरखा भी खुशी-खुशी चलाना होता है। पत्नी करती तो है सब कुछ, खाती-पीती है, सोती-जागती है, वस्त्राभूषण पहनती है, शृंगार करती है परन्तु सब कुछ 'जीवन-धन' के लिये। उसे संसारके सभी नाते इसलिये प्रिय हैं कि उनसे उसके 'हृदयेश्वर'का सम्बन्ध है। वह पतिमें इतना अधिक रम जाती है कि उसे अपने मायकेका खयाल भी नहीं रहता और जब पति-गृहसे मायकेकी बुलाहट भी आती है तो हृदय-पर पत्थर रखकर जाती है; इसलिये कि संसार उसे न हँसे। उसकी आसक्ति तो समर्पणकी महावह्निमें तपकर पवित्र और मधुर हो ही जाती है क्योंकि ऐसी आसक्तिका आधार भी तो वही है जो उसके लोक-परलोक, जन्म-जन्मान्तरका साथी है, 'प्राण' है, सर्वस्व है!!

जबतक हम अपने 'देवता'को सर्वतोभावेन प्राप्त नहीं कर लेते तबतक एक-एक पल एक-एक युगके समान बीतता है! एक क्षणका भी वियोग सहा नहीं जाता और बीचमें यह संसार अपना प्रतिरोधका ज्वालामुखी लिये खड़ा है। संसार मिटाये भी तो मिटता नहीं। मिटानेका तो बस, एक ही साधन है और वह है सर्वत्र अनन्यभावसे अपने 'हरि' का ही अधिरोप हो जाय! उसमें संसारका नानात्व मिट जाता है और जीवनके प्रत्येक पल और प्रत्येक स्थानमें ही 'मिलन-मन्दिर' का द्वार खुला हुआ मिलता है। ऐसे ही साधकोंके लिये कबीरसाहबने कहा है—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नराकार ईश्वर, अद्वैतवाद और भक्तिवाद

(लेखक—ठाकुर श्रीगजराजसिंहजी एम० ए०, एल-एल० बी०)

(गतांकसे आगे)

रामकृष्णावतार-विषयक सिद्धान्त—अवतारोंमें कल्प-भेद।

वास्तवमें भगवत्तत्त्वकी दृष्टिसे सभी अवतार समान और पूर्ण शक्तिमान् हैं। किन्तु युगके प्रयोजनानुसार किसी अवतारमें अधिक शक्तिको प्रकट करनेकी आवश्यकता पड़ती है, किसीमें कम। बस शक्तिकी न्यूनाधिक अभिव्यक्तिके कारण ही अवतारोंमें अंशकलादि अनेक अवतार-भेद हो गये हैं। किन्तु अज्ञानी लोग भगवत्प्रकाशके तारतम्य (शक्तिकी न्यूनाधिक अभिव्यक्ति) से भगवत्तत्त्वमें भी तारतम्य मान घोर अपराध किया करते हैं।

अवतार अनेक प्रकारके होते हैं। जैसे पुरुषावतार, लीलावतारादि। लीलावतारोंमें भी आवेश, वैभव, प्राभव और परावस्थ—ये चार भेद हैं। इन चार भेदोंमेंसे परावस्थ-लीलावतार सर्वश्रेष्ठ हैं, जैसा कि 'परावस्थ' शब्दका अर्थ ही सूचित करता है। नरसिंह, राम और कृष्ण—ये परावस्थ-लीलावतार हैं जैसा कि पद्मोत्तरखण्ड (२२८ अध्याय) में स्पष्ट कह दिया है—

नृसिंहरामकृष्णेषु षाड्गुण्यं परिपूरितम्।
परावस्था तु देवस्य दीपादुत्पन्नदीपवत्॥

शास्त्रीय भाषामें यह कह सकते हैं कि उक्त तीनों अवतार ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, वैराग्य और मोक्ष—इन गुणोंसे परिपूर्ण स्वयं भगवान् हैं। किन्तु विवेकानन्दजीके पूर्व-कथनानुसार साधारण मनुष्य ईश्वरको नररूपमें ही देखेगा। इसलिये नरसिंह भगवान् पूर्णतया नराकार न होनेसे पद्मोत्तरखण्डके २४१ वें अध्यायमें छोड़ दिये गये हैं। यथा—

रामकृष्णावतारौ तु परिपूर्णौ हि सद्गुणैः।
उपास्यमानावृषिभिरपवर्गप्रदौ नृणाम्॥

प्रकरणमें आशय यह है कि अंश-कलादि अन्य अवतारोंकी उपासना प्रायः नहीं की जाती (क्योंकि उनमें शक्तिकी पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं हुई)। किन्तु रामकृष्णावतार निश्चयेन सद्गुणोंसे परिपूर्ण हैं। इसलिये ऋषिगण इन दोनोंकी उपासना करते हैं जो मनुष्योंको मोक्षप्रद है।

उक्त दोनों श्लोकोंमें क्रमशः 'परिपूरितम्' और 'परिपूर्णौ' शब्दोंके प्रयोगसे यह सूचित किया है कि दोनों अवतार भगवत्तत्त्व और प्रकाशकी दृष्टिसे एक हैं और हरिहरसमान 'मनागपि' अन्तर नहीं है। 'तु' शब्दके प्रयोगसे अंश-कलादि अन्यान्य अवतारोंकी अपेक्षा इन दो अवतारोंमें विशेषता बतलायी है। 'हि' शब्दके प्रयोगसे निश्चयरूपसे यह निर्विवाद सिद्धान्त माना गया है। अतः इन दोनों अवतारोंमें न्यूनाधिक तारतम्य बतलाना ऐसा ही अपराध-जनक है जैसा हरिहरपक्षमें प्रमाणित हो चुका है।

प्रत्यक्ष प्रमाण।

प्रत्यक्षको प्रमाणोंकी आवश्यकता नहीं है बल्कि विपरीत प्रमाण भी असिद्ध नहीं कर सकते। प्रत्यक्षमें यही देखा जाता है कि अधिकांशमें लोग प्रायः इन्हीं दो अवतारोंके उपासक होते हैं। यदि ये दोनों अवतार एक दूसरेके अंशकला होते तो अन्य अंशकलादि अवतारोंके समान अनुपास्य होते। शास्त्रोंमें भिन्न-भिन्न ऋषियोंमें भी मत-भेद पाया जाता है पर प्रत्यक्षमें कोई मत-भेद नहीं है और न होना ही चाहिये। प्रत्यक्षमें मत-भेद होना ऐसा ही है जैसे सूर्यके प्रकाशको अन्धकार बतलाना अथवा आँखोंमें धूल डालना। सारांश, प्रत्यक्षमें राम-कृष्ण नाम सत्य हैं—जीवनकालमें सत्य हैं और मरण-कालमें भी। नाम-नामीकी एकता होनेसे इस विषयमें साम्प्रदायिक मत-भेद नहीं है और न होना चाहिये। किन्तु तो भी कई सम्प्रदाय-प्रेमी जन अभेद-वाक्योंमें बेचैनी और भेद-वाक्योंमें परम शान्तिका अनुभव करते हुए देखे, सुने और पढ़े जाते हैं। कारण यह है कि कल्पभेदके कारण पुराणोंमें इन अवतारोंके विषयमें भी तारतम्यसूचक प्रमाण मिलते हैं। 'एते चांशकलाः पुंसः रामस्तु भगवान् स्वयम्' अथवा 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'—ऐसे अथवा इसी आशयवाले अनेक प्रमाण मिलते हैं। विस्तारभयसे हम इन सब प्रमाणोंको यहाँ उद्धृत नहीं कर सकते, पर इतना अवश्य लिख देते हैं कि ऐसे कुल प्रमाणोंका समन्वय कल्पभेद और 'प्रेमप्रकाशाय न विग्रहाय' के नियमानुसार हो सकता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एकमात्र प्रक्रिया है ! इसके बाद तो नौका अपना रास्ता पकड़ लेती है !

ठीक इसी प्रकार जब हमारा 'ग्रन्थि-बन्धन' हमारे प्रीतमके साथ हो जाता है तो संसारके अन्य व्यापार गुड़ियेके खेलकी भाँति नीरस प्रतीत होने लगते हैं। साईंका जब दर्शन हो जाता है तो फिर इन खेलोंमें आनन्द या आसक्ति कौन कहे, इनकी स्मृति भी नहीं रहती और उस समय तो बस—

प्रीतम छवि नैनन बसी, औ छवि कहाँ समाय।
रहिमन भरी सराय लखि आप पथिक फिर जाय॥

आँखोंमें, हृदयमें, प्राणमें, रोम-रोममें बस प्रीतम की ही छवि, प्रीतमकी ही धुन छाई रहती है। उस समय संसार बस अपने साजन 'हरि' की परिछाहीं-के रूपमें ही रह जाता है—संसारका संसारत्व मिट जाता है, अपने 'राम' के नाते सभी कुछ सुहावना प्रतीत होने लगता है। सतीके समान प्रभुमें अचल प्रेम हो जाता है और सब कुछ बस 'सियाराममय' हो जाता है। संसारको मारने, जगत्‌को मिटानेका सबसे यही सुन्दर तरीका है कि सब कुछ भगवान्‌में समर्पित कर दिया जाय, सबका सम्बन्ध 'हरि' से जोड़ दिया जाय! उस समय संसार नहीं रहता, केवल 'हरि' रह जाते हैं!

यह न द्वैत है न अद्वैत! पत्नीके सम्मुख पति द्वैत और अद्वैतसे परेका आनन्द लेकर आता है। उसमें द्वैतका आनन्द और अद्वैतकी विरति धूपछाँहकी भाँति घुली-मिली रहती है। पत्नीका कोई निजी व्यक्तित्व नहीं होता, वह पतिकी अर्द्धाङ्गिनी बन जाती है, उसीमें विलय हो जाती है; इस अर्थमें तो वह अद्वैत है। परन्तु पत्नीका धर्म पतिको सुख पहुँचाना, उसके सुख-सम्भोगको पूरा करना भी तो है, इस अर्थमें वह द्वैत है। इसे द्वैतकी अद्वैतता और अद्वैतकी द्वैतता कह सकते हैं!

प्राणनाथसे जब हम इसप्रकार जुड़ गये, जब उनके चरणोंमें सर्वभावेन अपनेको समर्पित कर दिया तो फिर अपने सुख-दुःखकी, अपने सुख-भोगकी, अपने आपकी चिन्ता ही क्यों रह जाय? उस समय तो बस 'प्रीतमकी अटारी' पर पौढ़नेकी ही एकमात्र कामना रहती है। उस समय बस जीवनधनके नाते ही संसारका चरखा भी खुशी-खुशी चलाना होता है। पत्नी करती तो है सब कुछ, खाती-पीती है, सोती-जागती है, वस्त्राभूषण पहनती है, शृंगार करती है परन्तु सब कुछ 'जीवन-धन' के लिये। उसे संसारके सभी नाते इसलिये प्रिय हैं कि उनसे उसके 'हृदयेश्वर'का सम्बन्ध है। वह पतिमें इतना अधिक रम जाती है कि उसे अपने मायकेका खयाल भी नहीं रहता और जब पति-गृहसे मायकेकी बुलाहट भी आती है तो हृदय-पर पत्थर रखकर जाती है; इसलिये कि संसार उसे न हँसे। उसकी आसक्ति तो समर्पणकी महावह्निमें तपकर पवित्र और मधुर हो ही जाती है क्योंकि ऐसी आसक्तिका आधार भी तो वही है जो उसके लोक-परलोक, जन्म-जन्मान्तरका साथी है, 'प्राण' है, सर्वस्व है!!

जबतक हम अपने 'देवता'को सर्वतोभावेन प्राप्त नहीं कर लेते तबतक एक-एक पल एक-एक युगके समान बीतता है! एक क्षणका भी वियोग सहा नहीं जाता और बीचमें यह संसार अपना प्रतिरोधका ज्वालामुखी लिये खड़ा है। संसार मिटाये भी तो मिटता नहीं। मिटानेका तो बस, एक ही साधन है और वह है सर्वत्र अनन्यभावसे अपने 'हरि' का ही अधिरोप हो जाय! उसमें संसारका नानात्व मिट जाता है और जीवनके प्रत्येक पल और प्रत्येक स्थानमें ही 'मिलन-मन्दिर' का द्वार खुला हुआ मिलता है। ऐसे ही साधकोंके लिये कबीरसाहबने कहा है—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नराकार ईश्वर, अद्वैतवाद और भक्तिवाद

(लेखक—ठाकुर श्रीगजराजसिंहजी एम० ए०, एल-एल० बी०)

(गतांकसे आगे)

रामकृष्णावतार-विषयक सिद्धान्त—अवतारोंमें कल्प-भेद।

वास्तवमें भगवत्तत्त्वकी दृष्टिसे सभी अवतार समान और पूर्ण शक्तिमान् हैं। किन्तु युगके प्रयोजनानुसार किसी अवतारमें अधिक शक्तिको प्रकट करनेकी आवश्यकता पड़ती है, किसीमें कम। बस शक्तिकी न्यूनाधिक अभिव्यक्तिके कारण ही अवतारोंमें अंशकलादि अनेक अवतार-भेद हो गये हैं। किन्तु अज्ञानी लोग भगवत्प्रकाशके तारतम्य (शक्तिकी न्यूनाधिक अभिव्यक्ति) से भगवत्तत्त्वमें भी तारतम्य मान घोर अपराध किया करते हैं।

अवतार अनेक प्रकारके होते हैं। जैसे पुरुषावतार, लीलावतारादि। लीलावतारोंमें भी आवेश, वैभव, प्राभव और परावस्थ—ये चार भेद हैं। इन चार भेदोंमेंसे परावस्थ-लीलावतार सर्वश्रेष्ठ हैं, जैसा कि 'परावस्थ' शब्दका अर्थ ही सूचित करता है। नरसिंह, राम और कृष्ण—ये परावस्थ-लीलावतार हैं जैसा कि पद्मोत्तरखण्ड (२२८ अध्याय) में स्पष्ट कह दिया है—

नृसिंहरामकृष्णेषु षाड्गुण्यं परिपूरितम्।
परावस्था तु देवस्य दीपादुत्पन्नदीपवत्॥

शास्त्रीय भाषामें यह कह सकते हैं कि उक्त तीनों अवतार ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, वैराग्य और मोक्ष—इन गुणोंसे परिपूर्ण स्वयं भगवान् हैं। किन्तु विवेकानन्दजीके पूर्व-कथनानुसार साधारण मनुष्य ईश्वरको नररूपमें ही देखेगा। इसलिये नरसिंह भगवान् पूर्णतया नराकार न होनेसे पद्मोत्तरखण्डके २४१ वें अध्यायमें छोड़ दिये गये हैं। यथा—

रामकृष्णावतारौ तु परिपूर्णौ हि सद्गुणैः।
उपास्यमानावृषिभिरपवर्गप्रदौ नृणाम्॥

प्रकरणमें आशय यह है कि अंश-कलादि अन्य अवतारोंकी उपासना प्रायः नहीं की जाती (क्योंकि उनमें शक्तिकी पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं हुई)। किन्तु रामकृष्णावतार निश्चयेन सद्गुणोंसे परिपूर्ण हैं। इसलिये ऋषिगण इन दोनोंकी उपासना करते हैं जो मनुष्योंको मोक्षप्रद है।

प्रत्यक्ष प्रमाण।

उक्त दोनों श्लोकोंमें क्रमशः 'परिपूरितम्' और 'परिपूर्णौ' शब्दोंके प्रयोगसे यह सूचित किया है कि दोनों अवतार भगवत्तत्त्व और प्रकाशकी दृष्टिसे एक हैं और हरिहरसमान 'मनागपि' अन्तर नहीं है। 'तु' शब्दके प्रयोगसे अंश-कलादि अन्यान्य अवतारोंकी अपेक्षा इन दो अवतारोंमें विशेषता बतलायी है। 'हि' शब्दके प्रयोगसे निश्चयरूपसे यह निर्विवाद सिद्धान्त माना गया है। अतः इन दोनों अवतारोंमें न्यूनाधिक तारतम्य बतलाना ऐसा ही अपराध-जनक है जैसा हरिहरपक्षमें प्रमाणित हो चुका है।

प्रमाण भी असिद्ध नहीं कर सकते।

प्रत्यक्षको प्रमाणोंकी आवश्यकता नहीं है बल्कि विपरीत प्रत्यक्षमें यही देखा जाता है कि अधिकांशमें लोग प्रायः इन्हीं दो अवतारोंके उपासक होते हैं। यदि ये दोनों अवतार एक दूसरेके अंशकला होते तो अन्य अंशकलादि अवतारोंके समान अनुपास्य होते। शास्त्रोंमें भिन्न-भिन्न ऋषियोंमें भी मत-भेद पाया जाता है पर प्रत्यक्षमें कोई मत-भेद नहीं है और न होना ही चाहिये। प्रत्यक्षमें मत-भेद होना ऐसा ही है जैसे सूर्यके प्रकाशको अन्धकार बतलाना अथवा आँखोंमें धूल डालना। सारांश, प्रत्यक्षमें राम-कृष्ण नाम सत्य हैं—जीवनकालमें सत्य हैं और मरण-कालमें भी। नाम-नामीकी एकता होनेसे इस विषयमें साम्प्रदायिक मत-भेद नहीं है और न होना चाहिये। किन्तु तो भी कई सम्प्रदाय-प्रेमी जन अभेद-वाक्योंमें बेचैनी और भेद-वाक्योंमें परम शान्तिका अनुभव करते हुए देखे, सुने और पढ़े जाते हैं। कारण यह है कि कल्पभेदके कारण पुराणोंमें इन अवतारोंके विषयमें भी तारतम्यसूचक प्रमाण मिलते हैं। 'एते चांशकलाः पुंसः रामस्तु भगवान् स्वयम्' अथवा 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'—ऐसे अथवा इसी आशयवाले अनेक प्रमाण मिलते हैं। विस्तारभयसे हम इन सब प्रमाणोंको यहाँ उद्धृत नहीं कर सकते, पर इतना अवश्य लिख देते हैं कि ऐसे कुल प्रमाणोंका समन्वय कल्पभेद और 'प्रेमप्रकाशाय न विग्रहाय' के नियमानुसार हो सकता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सनातनधर्मके सुप्रसिद्ध धुरन्धर विद्वान्, वेद और पुराणोंके भाष्यकार स्वर्गीय पण्डित ज्वालाप्रसादजी मिश्रने गोपालसहस्रनामके १२ वें श्लोकपर भाष्य करते हुए गर्ग-संहिताके आधारपर बतलाया है कि कृष्ण 'परिपूर्णतम' स्वयं ईश्वर थे। इसी प्रकार अपनी 'वाल्मीकीय रामायण-पीयूष-धारा भाष्य' नामक पुस्तकके पूर्व खण्डकी भूमिकामें ब्रह्मवैवर्त (कृष्णजन्म-खण्ड) के आधारपर रामजीको भी 'परिपूर्णतम' (जिनमें सब तेज विलीन हो जायँ) प्रमाणित कर यह लिखा है कि 'शास्त्रसमूहके मथनेसे जाना जाता है कि श्रीरामचन्द्रजी ब्रह्मपदार्थ स्वयं ही ईश्वर हैं।' इसप्रकार सनातन-धर्मके धुरन्धर विद्वान् पुरुषके मतानुसार भी उक्त पद्मपुराण-वाक्योंकी सत्यताका समर्थन हो गया।

इसी सम्बन्धमें उक्त भाष्यकार लिखते हैं--

(श्रीकृष्णजीके विषयमें) 'किन्हीं पुराणोंमें अंशादि विकल्प कल्पभेदके अनुसार लिखा है वह वहाँ वैसा ही जानना।'

यही कथन रामजीके विषयमें घटित होता है। उदाहरणार्थ, श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धमें सूतजीने सनत्कुमारादिसे लेकर कल्कि अवतारतक नाना अवतारोंका वर्णनकर अध्याय ३ श्लोकार्द्ध २८ में यह कह दिया है कि नरसिंह, रामादि सब अवतार पुरुषरूप नारायणके अंशकला हैं पर श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं। यहाँ श्रीरामजीके विषयमें अंशादि विकल्प कल्पभेदके अनुसार लिखा है।

किन्तु श्रीमद्भागवतके द्वितीय स्कन्धके ७ वें अध्यायमें पुराणपिता स्वयं ब्रह्माजीने भी सनत्कुमारादिसे लेकर कल्कि अवतारतक उन्हीं सब अवतारोंका वर्णनकर २३ वें श्लोकमें स्पष्ट कह दिया है कि रामजी स्वयं भगवान् थे। सारांश, पहले स्कन्धमें रामजीके विषयमें 'अंशकला' शब्दोंका प्रयोग हुआ है। पर दूसरे स्कन्धमें 'कलेशः' शब्दका प्रयोग हुआ है। यह परस्पर-विरोध वैसा ही कल्पभेदजनित है जैसा कि श्रीकृष्णजीके विषयमें अन्यान्य पुराणोंमें है। बल्कि यह लिख देना अत्युक्ति न होगी कि यद्यपि द्वितीय स्कन्धके ७ वें अध्यायमें ब्रह्माजीने भी समस्त अवतारोंका वर्णन किया है, तो भी 'कलेशः' शब्द स्पष्टरीतिसे केवल श्रीरामजीके ही विषयमें आया है जिसका आशय श्रीधर-स्वामीने श्रीकृष्णमें भी घटित किया है। यह बात सातवें अध्यायके २३ वें और २६ वें श्लोकोंपर श्रीधरभाष्यसे प्रकट हो जायगी। दोनों श्लोकोंमें 'कलया' शब्द भी आया है किन्तु उसका अर्थ भाष्यकारने क्रमशः भरत और बलराममें घटित किया है क्योंकि राम-कृष्ण स्वयं कलानिधि या कलेश थे। तुलना करनेके लिये हम नीचे दोनों स्कन्धोंसे आवश्यक श्लोक उद्धृत करते हैं—

(१) एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्।
(श्रीमद्भा० १। ३। २८)

(२) अस्मद्प्रसादसुमुखः कलया कलेश
इक्ष्वाकुवंश अवतीर्य··· ···। इत्यादि।
(श्रीमद्भा० २। ७। २३)

(३) भूमेः सुरेतरवरूथविमर्दिताया:
क्लेशव्ययाय कलया सितकृष्णकेशः।
जातः·····। इत्यादि।
(श्रीमद्भा० २। ७। २६)

तीसरे श्लोकमें 'सितकृष्णकेशः' शब्दसे कृष्णके अंशावतारकी सूचना होती है पर टीकाकारने पूर्वापर-विरोध होनेके कारण 'कलेशः' का ही आशय लिया है। (न केशमात्रावताराभिप्रायम् अन्यथा तत्रैव पूर्वापरविरोधापत्तेः)।

इसप्रकार श्रीमद्भागवतके द्वितीय स्कन्धसे स्पष्ट सिद्ध हो गया कि राम स्वयं भगवान् थे। अब प्रथम स्कन्धके विपरीत और द्वितीय स्कन्धके अनुसार वाल्मीकीय रामायण (यु० कां० ११७ सर्ग) में भी यह कहा है कि रामजी 'त्रयाणामपि लोकानामादिकर्ता स्वयं प्रभुः' थे। 'स्वयं प्रभुः' का अर्थ भी 'सबको नियममें रख स्वयं किसीसे नियमित न होनेवाले भगवान्' होता है (त्रिकालदर्शी श्रीवाल्मीकिजीने भी वामन, परशुराम, कृष्णादि अवतारोंका वर्णन किया है)। अतः वाल्मीकिके रामजीके विषयमें 'एते चांशकलाः पुंसः रामस्तु भगवान् स्वयम्' उसी प्रकार कहा जा सकता है जैसे श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धमें श्रीकृष्णजीके विषयमें कहा है। यह परस्पर-विरोध कल्पभेदजनित है। क्योंकि भागवतमें दो कल्पके रामावतारोंका वर्णन है। पर एक ही कल्पके श्रीमद्भागवतके श्रीकृष्ण और रामायण या श्रीमद्भागवतके द्वितीय स्कन्धके श्रीरामजी सब प्रकारसे (भगवत्तत्त्व और प्रकाशमें) एक हैं।

यदि कल्पभेद न माना जाय तो प्रथम स्कन्धके सूतजी (जो श्रीरामको अंशकला बतला रहे हैं) और द्वितीय स्कन्धके स्वयं पुराणपिता ब्रह्मा (जो श्रीरामको 'कलेश'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बतला रहे हैं) में परस्पर मत-भेद हो जाता है। ऐसी स्थितिमें किसके मतकी प्रधानता होगी ? पाठक स्वयं विचार कर लें।

किसी भी दृष्टिसे देखिये, श्रीमद्भागवतमें श्रीरामजीका माहात्म्य कृष्णसमान ही वर्णित है। किन्तु कई सम्प्रदाय-प्रेमी उपासक पहले स्कन्धसे न तो दूसरे स्कन्धमें प्रवेश करते, न वाल्मीकीय रामायणमें। श्रीराम-माहात्म्यको घटाकर श्रीमद्भागवतका प्रचार करना मानों भागवतको ही साम्प्रदायिक ग्रन्थ बना डालना है और यदि कल्पभेद न माना जाय तो ऐसा ही है जैसे कोई अदालत-मातहतके फैसलेको तो प्रकाशित करता रहे पर अदालत-अपीलके विपरीत फैसलेको छिपाता रहे। पुराणपिता ब्रह्माजी अदालत-अपील हैं ! इसमें सन्देह ही क्या है ? विस्तार-भयसे हम यहाँ केवल इतना ही लिख सके। सबका सार यही निकला कि पद्मोत्तरखण्डके पूर्वकथित श्लोकोंकी पुष्टि श्रीमद्भागवत (द्वितीय स्कन्ध), वाल्मीकीय रामायण, प्रसिद्ध विद्वान्की सम्मति और प्रत्यक्ष अनुभवसे भी हो गयी। रामकृष्णैक्य भी प्रमाणित हो गया।

अवतारी श्रीमन्नारायण-राम-कृष्णैक्य और परस्पर विरोधी वाक्योंका सामञ्जस्य

वैष्णव-धर्ममें भी अनेक सम्प्रदाय हैं। नारायणोपासक नारायणको ही अवतारी मानते हैं अर्थात् यह मानते हैं कि सब अवतार नारायणसे ही होते हैं। इसी प्रकार जो रामोपासक हैं वे रामसे और कृष्णोपासक कृष्णसे सब अवतारोंका प्रादुर्भाव बतलाते हैं। किन्तु पक्षपातरहित दृष्टिसे देखनेपर ऐसा माननेमें कोई वास्तविक विरोध उपस्थित नहीं होता। शास्त्रोंने इन सब भिन्न-भिन्न उपासकोंकी रुचियोंको पूर्ण किया है। नीचे लिखे प्रमाणोंसे केवल नारायण ही अवतारी सिद्ध होते हैं—

(१) येऽन्यं देवं परत्वेन वदन्त्यज्ञानमोहिताः।
नारायणाज्जगन्नाथात्ते वै पाखण्डिनः स्मृताः॥
(पद्मोत्तरखण्ड अ० २३४)

(२) एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम्।
यस्यांशांशेन सृज्यन्ते देवतिर्यङ्नरादयः॥
(श्रीमद्भा० १। ३)

'जो लोग अज्ञानवश जगदीश्वर नारायणको छोड़कर अन्य देवका परत्व मानते हैं वे पाखण्डी हैं—ऐसा निश्चय जानो।'

'नारायण ही नाना अवतारोंके अविनाशी कारण और निधान हैं जिनके अंशांशसे देव, पक्षी और मनुष्यादि योनियोंकी उत्पत्ति हुआ करती है।'

नीचे लिखे हुए प्रमाणोंसे केवल श्रीकृष्ण ही अवतारी सिद्ध होते हैं और श्रीनारायण भी कृष्णांश प्रमाणित होते हैं—

(१) गत्वा नारायणो देवो विलीनः कृष्णविग्रहे।
दृष्ट्वा च परमाश्चर्यं ते सर्वे विस्मयं ययुः॥
(ब्रह्मवै० कृष्ण० खण्ड अध्याय ६)

(२) एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्।
(श्रीमद्भा० १। ३)

'जिस समय श्रीकृष्णके अवतारका आयोजन आरम्भ हुआ उस समय नारायण आकर श्रीकृष्णमें लीन हो गये। यह देखकर सब (देवताओं) को बड़ा विस्मय हुआ। इसप्रकार नारायण भी श्रीकृष्णके अंश हुए।'

'सब अवतार नारायणके अंशकला हैं पर कृष्ण स्वयं भगवान् हैं।'

अद्वैतवादी सुप्रसिद्ध टीकाकार श्रीधर स्वामीने 'कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्' का अर्थ 'कृष्णस्तु साक्षान्नारायण एव' लिया है, किन्तु कृष्णोपासक श्रीमद्वल्लभाचार्यादि टीकाकारोंने ब्रह्मवैवर्त्तके आधारपर श्रीकृष्णको स्वयं अवतारी मान नारायणको भी उनका अंश माना है। अतः यह सिद्ध हुआ कि अवतारी श्रीकृष्ण ही सबसे परे हैं। उनसे परे कोई नहीं है।

अब नीचे लिखे हुए प्रमाणोंसे केवल राम ही अवतारी सिद्ध होते हैं और परात्पर नारायण और कृष्ण भी रामजी-के अंशमात्र रह जाते हैं—

(१) परान्नारायणाच्चैव कृष्णात्परतरादपि।
उभयपरमात्मा श्रीमान्रामो दाशरथिः स्वराट्॥
(ना० पं० आ० सं०)

(२) सर्वेषां वेदसाराणां रहस्यं ते प्रकाशितम्।
एको देवो रामचन्द्रो व्रतमन्यन्न तत्समम्॥
× × × ×
रामान्नास्ति परो देवो रामान्नास्ति परं व्रतम्॥
(पद्मपुराण)
तमादिदेवं श्रीरामं विशुद्धं परमं भजे॥
(स्क० पु०)

(३) (अ) विराट् स्थूलशरीरं ते सूत्रं सूक्ष्ममुदाहृतम्।
विराजः सम्भवन्त्येते अवताराः सहस्रशः।
कायान्ते प्रविशन्त्येते विराजं रघुनन्दन॥
(अध्या० रा० सु० कां०)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(ब) अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव।
(वाल्मी० रा० यु० का०)

(स) यथा ह्यादिप्रदीपेन सर्वदीपप्रबोधनम्।
तथा सर्वावताराणामवतारी रघूत्तमः।
(अगस्त्यसंहिता)

'परात्पर श्रीमन्नारायण और श्रीकृष्णसे भी परे दोनोंके परमात्मा श्रीमान् दशरथनन्दन राम हैं।'

'वेदोंका साररूप रहस्य जो तुम्हें प्रकाशित किया गया वह यही है कि रामजी ही एक देव (आदिदेव) हैं उनके व्रत-सदृश अन्य व्रत नहीं हैं।'

× × × ×

'रामजीसे परे कोई देव नहीं है। उनके व्रतसे बढ़कर दूसरा व्रत नहीं है। उन परम विशुद्ध आदिदेव रामका भजन करता हूँ।'

'हे राम! विराट् (नारायण) आपके स्थूल शरीर हैं और विराट्से ही सब अवतारोंकी उत्पत्ति होती है और अन्तमें उन्हींमें लय होता है (नारायण भी आपके अंश हैं) आप सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म हैं।'

'हे राम! आप मध्य और अन्तमें सत्यरूप अक्षर ब्रह्म ही हैं।'

'जिसप्रकार एक दीपकसे अनेक दीपक लग जाते हैं उसी प्रकार रामजी सब (पुरुषावतार नारायणसहित) अवतारोंके कारण हैं।

हमने रामजीके विषयमें अनेक प्रमाण दिये क्योंकि राम-कृष्णके विषयमें श्रीमद्भागवतके आधारपर प्रायः साम्प्रदायिक दुराग्रह देखा जाता है। उक्त चार प्रमाणोंमेंसे 'नारदपञ्चरात्र' की महिमा अधिक है। पञ्चरात्रकी भारद्वाज-संहितामें कहा गया है कि 'पञ्चरात्र महान् और श्रुतिके अर्थका प्रकाशक दिव्य शास्त्र है जिसका विशेषरूपसे पठन करना चाहिये' क्योंकि स्वयं भगवान्ने कहा है।

पञ्चरात्रं महद्दिव्यं शास्त्रं श्रुतिविभावनम्।
विशेषेणाधिगन्तव्यं गीतं भगवता स्वयम्॥

पञ्चरात्रकी प्रशंसा महाभारतके शान्तिपर्वमें विस्तारसे मिलेगी। इसके सिवा श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धके तृतीय अध्यायमें नाना अवतारोंका वर्णन करते हुए सूतजी कहते हैं—

तृतीयसृष्टिसर्गञ्च देवर्षित्वमुपेत्य सः।
तन्त्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः॥

'तृतीय ऋषिसर्गमें नारदरूप धारण करके भगवान्ने सात्वततन्त्र (सात्वतं वैष्णवं तन्त्रं पञ्चरात्रागममाचष्टोक्तवानिति श्रीधरः) नारदपञ्चरात्रका उपदेश दिया जिसके अनुसार किये हुए कर्म भक्ति-अङ्ग होनेसे अन्तःकरण-शुद्धि-द्वारा ज्ञानोत्पत्तिपूर्वक मुक्तिके साधन बन जाते हैं।'

अस्तु! नारदावतारका वर्णन कर आगे सूतजीने कहा है 'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्।' इन्हीं नारदके उपदेशसे वाल्मीकिजीने रामायण और व्यासजीने भागवत कथन की, जिसमें सूतजीके उक्त वचन आये, जिनके आशयको न समझ सम्प्रदाय-प्रेमीजन राम-माहात्म्य घटाकर प्रचार करने लगे।

पञ्चरात्रके उक्त वाक्यकी पुष्टि वशिष्ठसंहितामें भी हुई है। यथा—

यस्यानन्तावताराश्च कलाअंशविभूतयः।
× × × ×
स एव सच्चिदानन्दो विभूतिद्वयनायकः॥
(वशिष्ठसंहिता)

'विभूतिद्वय' से तात्पर्य नारायण और कृष्णसे है। कूर्मादि पुराणोंमें भी ऐसे वाक्य आये हैं जिन्हें विस्तारभय-से नहीं देते। अतएव यह सिद्ध हो गया कि रामजी सबसे परे अवतारी हैं।

इस भाँति अवतारी नारायण, राम और कृष्णके विषय-में परस्पर-विरोधी वाक्य मिलते हैं जिनका समन्वय कल्पभेद और 'प्रेमप्रकाशाय न विग्रहाय' के नियमानुसार हो सकता है। जैसा कि हरि-शम्भु-पक्षमें किया गया था। स्पष्ट हो गया कि शास्त्रोंने उपासकोंकी रुचि-अनुसार तीनों स्वरूपोंका परत्व बतला दिया है। ऐसे वाक्योंसे विग्रह न मचाना चाहिये। इसलिये यह लिख देना अनुचित न होगा कि त्रेता और द्वापरके पूर्ण चन्द्र-तत्त्व और प्रकाशमें सृष्टिके आदिकालीन पूर्ण चन्द्र ही हैं। यहीं द्वैतजनित अन्धकार-का विनाश है और अद्वैतरूप पूर्ण चन्द्रोदयका प्रकाश है। अन्तमें विचार करनेकी बात है कि जब सुयोग्य संसारी सरकार अपने राज्यमें भक्त-प्रजा-सम्बन्धी विग्रह नहीं होने देती या होनेपर रोक देती है तब फिर सुयोग्य विश्वकी सरकार क्यों होने देगी या होनेपर क्यों न रोकेगी? अतएव शिव और विष्णुके उपासकोंमें या श्रीमन्नारायण, श्रीराम और श्रीकृष्णके उपासकोंमें साम्प्रदायिक आग्रह-विग्रह होना मानों सुयोग्य विश्वकी सरकारको अयोग्य संसारी सरकार बना देना है। आग्रह-विग्रह-प्रिय भक्त-प्रजा हमारे इन वचनोंपर हमेशा विचारकर नराकार ईश्वरके भिन्न-भिन्न स्वरूपोंसे उचित शिक्षा ग्रहण करती रहे। ऐसा करनेसे एकताका विकास होगा और अनेकताका सर्वनाश। (क्रमशः)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीनर्मदाजीका महत्त्व

(लेखक—पं० श्रीदयाशङ्करजी दुबे, एम० ए०, एल-एल० बी० सम्पादक—धर्मग्रन्थावली, दारागंज, प्रयाग)

गंगा कनखले पुण्या कुरुक्षेत्रे सरस्वती । ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा ॥

(स्कं० रेवा० अ० १०३)

हिन्दू-धर्मशास्त्रोंके अनुसार भारतमें गंगा, यमुना, गोदावरी, सरखती, नर्मदा, सिन्धु और कावेरी—ये सात नदियाँ बहुत पवित्र मानी गयी हैं । इनमें अब कलियुगमें सरखती नदीका लोप हो गया है । हरिद्वारके पास श्रीगंगाजीका प्रवाह नहर-विभागद्वारा इसप्रकार रोक दिया गया है कि यदि इस विभागके अफसर चाहें तो गंगाजीका प्रायः सब जल नहरमें ही चला जाय और असली धारामें कुछ भी जल न आने पावे । आजकल गर्मीके दिनोंमें गंगाजीका अधिकांश भाग, करीब ९० प्रतिशत भाग, नहरमें ले लिया जाता है । इस कारण गंगाजीकी धारा हरिद्वारके आगे गर्मीके दिनोंमें बहुत छोटी और उथली हो जाती है । हरिद्वारके बाद गंगाजीके किनारे कानपुर, प्रयाग, काशी, पटना, कलकत्ता इत्यादि बड़े-बड़े शहर हैं । इन सब शहरोंका गन्दा पानी भी श्रीगंगाजीमें छोड़ दिया जाता है । कानपुरमें तो चमड़ेके कारखानोंका भी दुर्गन्ध-युक्त पानी गंगाजीमें पहुँच जाता है । इसलिये इस अर्थ-प्रधान युगमें बरसातके अतिरिक्त अन्य आठ महीनोंमें हरिद्वारके आगे श्रीगंगाजीकी धारा छोटी होनेके साथ-ही-साथ उसमें गंदे जलके बहुत अधिक परिमाणमें मिल जानेके कारण उसकी पवित्रतामें भी कुछ कमी हो जाती है । ये बातें रेवापुराणके इस कथनका समर्थन करती हैं कि कलियुगके ५००० वर्ष बीत जानेपर, अर्थात् सन् १८९५ के लगभग, श्रीगंगाजीका महत्त्व कम हो जायगा । श्रीगंगाजीका यह हाल हरिद्वारके नीचे ही हुआ है । श्रीगंगाजीके उद्गम-स्थान गंगोत्रीसे लेकर हरिद्वारतक श्रीगंगाजीके जलकी पवित्रतामें किसी प्रकारकी कमी नहीं हुई है, न उसके प्रवाहमें ही किसी प्रकारकी रोक-टोक की गयी है ।

इस युगमें श्रीयमुनाजीका भी प्रायः वही हाल हुआ है । इस नदीसे भी नहर निकाले जानेके कारण आगरा-नगरमें ही इसकी धारा बहुत धीमी हो गयी है और गर्मीके दिनोंमें वहाँ किसी घाटपर स्नानके लिये कमरतक जल नहीं मिल पाता । दिल्ली, आगरा, इटावा इत्यादि बड़े-बड़े शहरोंका गन्दा जल भी उसमें मिलता है । इसप्रकार यमुनाजीके जलकी पवित्रतामें भी कुछ कमी हो गयी है ।

गोदावरीका उद्गम-स्थान त्र्यम्बक-क्षेत्रके पास है । यह स्थान नासिक-नगरसे करीब १४ मील पश्चिममें है । नासिकमें गोदावरीकी धारा बहुत छोटी है । नासिक-शहरका गन्दा पानी उसमें आकर मिलता है । गर्मीके दिनोंमें इस गन्दे पानीका परिमाण गोदावरीके जलके परिमाणसे अधिक रहता है । इसप्रकार गोदावरीका जल तो उद्गम-स्थानसे कुछ ही दूरीपर अपवित्र कर दिया जाता है । कावेरीका जल रोककर उससे बिजली उत्पन्न की जा रही है और उसका जल आबपाशीके उपयोगमें भी लिया जा रहा है । सिन्धु-नदी भी इसप्रकारकी दुर्दशासे नहीं बचने पायी है ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भारतमें केवल नर्मदा-नदी ही ऐसी है जिससे न तो कोई नहर ही निकाली गयी है और न किसी बड़े नगरका गन्दा पानी जिसमें छोड़ा जाता है। श्रीनर्मदाजीके किनारे दिल्ली, आगरा, प्रयाग, बनारस, पटना, कलकत्ता तथा नासिकके समान कोई बड़ा नगर भी नहीं है। गन्दा पानी न मिलनेके कारण इस अर्थ-प्रधान युगमें भी श्रीनर्मदाजीके जलकी पवित्रतामें किसी प्रकारकी कमी नहीं आने पायी है। दोनों तरफ पहाड़ होनेके कारण अभीतक श्रीनर्मदाजीसे नहर नहीं निकाली जा सकी है और न उसके भविष्यमें निकाले जानेकी सम्भावना है। इस कारण अन्य नदियोंके समान गर्मीके दिनोंमें उसकी धारामें कमी नहीं होने पायी है। असंख्य वर्षोंके पहले जैसी धारा नर्मदाजीकी थी, वैसी ही अब भी है और वैसी ही भविष्यमें बनी रहेगी। पुराणोंमें तो लिखा है कि श्रीनर्मदाजी सात कल्पतक बनी रहेंगी—प्रलयमें भी उनमें परिवर्तन न होगा।

पुराणोंमें श्रीनर्मदाजीका माहात्म्य

पुराणोंमें श्रीनर्मदाजीके माहात्म्यका अच्छा वर्णन है। श्रीगंगाजीमें स्नान करनेका जो फल प्राप्त होता है वह श्रीनर्मदाजीके केवल दर्शनसे ही प्राप्त हो जाता है। एक जगह लिखा है—

स्मरणाज्जन्मजं पापं दर्शनेन त्रिजन्मजम्।
स्नानाज्जन्म सहस्राख्यं हन्ति रेवा कलौ युगे॥

'कलियुगमें श्रीनर्मदाजीके स्मरणमात्रसे इस जन्मका पाप, दर्शन करनेसे तीन जन्मोंका पाप और स्नान करनेसे हजारों जन्मोंका पाप नष्ट हो जाता है।'

नर्मदाजी सब स्थानोंमें पवित्र मानी गयी हैं, जैसा कि इस लेखके आरम्भमें दिये हुए श्लोकमें लिखा है। उस श्लोकसे मालूम होता है कि श्रीगंगाजी कनखल-तीर्थमें और सरस्वती कुरुक्षेत्रमें पुण्यको देनेवाली हैं। परन्तु नर्मदा चाहे ग्राम हो या अरण्य हो सर्वत्र ही पुण्य देनेवाली है।

श्रीशंकरजीको नर्मदा बहुत प्रिय हैं। तपस्या करनेके बाद नर्मदाजी भगवान् शंकरके शरीरसे निकली हैं इसलिये ये 'शांकरी' भी कहलाती हैं। नर्मदाजीका प्रत्येक कंकड़-पत्थर शिवजीका रूप ही माना जाता है, जैसे कि कहावत है—'नर्मदाके कंकर, वे ही शिव-शंकर।' भारतके अधिकांश शिव-मन्दिरोंकी मूर्तियाँ श्रीनर्मदाजीसे ही प्राप्त हुई हैं।

मत्स्यपुराणके १८५ वें अध्यायमें एक स्थानपर यह वर्णन है कि कलिंग-देशके अमरकण्टक-वनमें नर्मदा नामकी एक मनोहर और रमणीय नदी है। वह भगवान् शंकरके तेजोअंशसे आविर्भूत हुई है। इस पवित्र नदीमें स्नानकर जो शंकरजीका पूजन करता है, वह स्वर्गलोकको जाता है। कूर्मपुराणके अन्तर्गत ब्राह्मीसंहिता है। उसके उत्तरार्धके ३८ वें अध्यायमें वर्णन किया गया है कि नर्मदा नदी रुद्रकी देहसे निकली है। शिवपुराणके ८ वें खण्डमें वर्णन है कि नर्मदा नदी शिवका रूप है, इसके तटपर असंख्य शिव-लिङ्ग हैं। श्रीनर्मदाजीके माहात्म्यसे प्रभावित होकर प्राचीन ऋषियोंने एक स्वतन्त्र नर्मदा-पुराणकी रचना की है जिसमें इस नदीका विस्तृत एवं मनोहारी वर्णन है। श्रीनर्मदाजीके विषयमें स्कन्दपुराणान्तर्गत तथा वायुपुराणान्तर्गत जो स्वतन्त्र रेवाखण्ड हैं, उनमें श्रीनर्मदाजीकी अपूर्व महिमाका वर्णन है।

श्रीनर्मदाजीके किनारेके दृश्य

श्रीनर्मदाजी पहाड़ों और जंगलोंके बीचसे बही हैं इसलिये उनके दोनों तरफ कई बहुत सुन्दर प्राकृतिक दृश्य हैं। कपिलधारा, धुआँधार और धापड़ी-कुण्डके जलप्रपात, भेड़ाघाटके पास संगमरमरकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चट्टानें, सहस्रधारा, ओङ्कारेश्वर और शूलपाणिकी झाड़ीके प्राकृतिक दृश्य बहुत ही सुन्दर हैं। कई स्थानोंपर सुन्दर घाट और मन्दिर भी बनवा दिये गये हैं। मण्डला, होशंगाबाद, ओङ्कारेश्वर और महेश्वरके सुन्दर घाट और मन्दिर दर्शनीय हैं। इतने सुन्दर दृश्य इतनी अधिक संख्यामें शायद ही अन्य किसी नदीके किनारे मिल सकें। कई स्थान तपस्या और योग-साधनाके लिये बहुत ही उपयुक्त हैं। पुराणोंसे मालूम होता है कि प्राचीन कालमें अनेक ऋषियोंने श्रीनर्मदाजीके किनारे तप अथवा योग-साधना करके जीवन्मुक्ति पायी थी। उनकी तपस्या और साधनासे वे स्थान पवित्र हो गये हैं। इन स्थानोंपर पहुँचनेसे सन्त-महात्माओंकी प्राचीन कालमें की हुई तपस्याके प्रभावसे आजकल भी श्रद्धालु मनुष्योंको विशेष आनन्द प्राप्त होता है, मनमें उत्तम सात्त्विक विचार आने लगते हैं और भगवद्भजनकी स्वाभाविक प्रेरणा होती है।

श्रीनर्मदाजीके किनारेके यज्ञ

श्रीनर्मदाजीके किनारे चार-पाँच स्थान ऐसे हैं जहाँ छोटे टीलों या पहाड़ियोंपर सुगन्धित भस्म मिलती है। इससे यह अनुमान किया जाता है कि प्राचीन कालमें श्रीनर्मदाजीके किनारे बड़े-बड़े यज्ञ किये गये थे। इन यज्ञोंका वर्णन भी पुराणोंमें मिलता है। आजकल तो यज्ञ बहुत ही कम होते हैं और यदि एक-आध हो भी जाते हैं तो उन यज्ञोंकी भस्म उस स्थानके निवासियोंको एक वर्षके लिये भी पर्याप्त नहीं होती। परन्तु सैकड़ों वर्षोंसे असंख्य मनुष्य नर्मदाजीके किनारेके भस्मके इन टीलोंसे भस्म ले जाकर उपयोग कर रहे हैं। इसपर भी उनकी भस्मका अभीतक अन्त नहीं हुआ है। इससे यह सिद्ध होता है कि प्राचीन समयमें जो यज्ञ यहाँ किये गये वे इतने बड़े परिमाणमें थे और इतने अधिक समयतक हुए थे कि उनके कुण्डोंकी भस्मकी पहाड़ियाँ ही बन गयी थीं।

श्रीनर्मदाजीकी परिक्रमा

संसारमें एक ऐसी नदी श्रीनर्मदाजी ही हैं जिनकी करीब १७०० मीलकी परिक्रमा यात्रीगण बड़ी श्रद्धापूर्वक करते हैं। परिक्रमावासियोंको ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन करना होता है। वे अपने पास द्रव्य नहीं रख सकते। किनारेपर सब स्थानोंमें सदावर्त मिलते हैं, इसलिये परिक्रमावासियोंको अन्न और वस्त्रका कष्ट कभी नहीं होता। सात्त्विक जीवनकी झलक इन परिक्रमावासियोंमें प्रायः देखनेमें आती है। आजकलके समयमें भी श्रीनर्मदाजीके किनारे कितने ही सन्त-महात्मा निवास करते हैं। परिक्रमावासियोंको प्रायः उनके दर्शन हो जाया करते हैं और कभी-कभी उनके सत्संगसे परिक्रमावासियोंको लाभ भी बहुत होता है। सौभाग्यसे अन्य सज्जनोंको भी कभी-कभी उनके सत्संगका लाभ हो जाता है।

श्रीनर्मदाजीके सम्बन्धमें स्तोत्र और कविताएँ

कितने ही साहित्य-प्रेमी सज्जनों और महात्माओंने श्रीनर्मदाजीके सम्बन्धमें संस्कृतमें स्तोत्र और हिन्दीमें कविताएँ रचकर उनके प्रति अपनी श्रद्धा और भक्तिका परिचय दिया है। जगद्गुरु शङ्कराचार्यजीने नर्मदाष्टक और नर्मदालहरी संस्कृतमें रची हैं। श्रीदिवाकर शर्माने रेवालहरीका संस्कृतमें निर्माण किया है। गुजरातके श्रीमान् कुँवर खेतसिंह नारायण भाई गढ़वीकी कृपासे कविराज रविराजकृत नर्मदालहरी नामक प्राचीन ग्रन्थ प्राप्त हुआ है। यह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नर्मदालहरी श्रीपद्माकरकी गङ्गालहरीके समान उत्तम है। आजकलके कवियोंने भी श्रीनर्मदाजीके सम्बन्धमें कविताओंकी रचना की है।

श्रीनर्मदाजीका आर्थिक महत्त्व

श्रीनर्मदाजीका आर्थिक महत्त्व भी कुछ कम नहीं है। नावोंद्वारा थोड़ा-बहुत सामान एक स्थानसे दूसरे स्थानको प्रायः भेजा जाता है। कार्तिककी पूर्णिमापर, सोमवती अमावास्या तथा अन्य तिथियोंपर श्रीनर्मदाजीके किनारे शुक्लतीर्थ, चानोद, शूलपाणीश्वर, ओङ्कारेश्वर, सिद्धनाथ, बान्द्राभान, ब्रह्माण, भेड़ाघाट, मण्डला, अमरकण्टक आदि स्थानोंपर मेले लगते हैं, जिनमें हजारों रुपयोंका माल बिकता है। श्रीनर्मदाजीके किनारे रहनेवाले असंख्य मल्लाहों और किनारेके घाटोंपर बैठनेवाले सैकड़ों ब्राह्मणोंकी जीविकाका एकमात्र साधन श्रीनर्मदाजी हैं। सब दृष्टियोंसे श्रीनर्मदाजीका महत्त्व इतना अधिक है कि इन थोड़े-से पृष्ठोंमें उसको बतलाना बहुत कठिन है।*

ब्रह्मविद्या-रहस्य

[अर्थात् ईशावास्योपनिषद्के द्वितीय मन्त्रका शांकरभाष्यसहित अक्षरशः अनुवाद तथा विस्तारपूर्वक भाष्यरहस्यनिरूपण]

(द्वितीय पुष्प)

(अनुवादक तथा लेखक—श्रीनृसिंहदासजी वर्मा)

[कल्याण भाग ७ सं० ८ से आगे]

स्वं बालं रोदमानं चिरतरसमयं शान्तिमानेतुमग्रे
द्राक्षं खार्जूरमात्रं सुकदलमथवा योजयस्यग्निकास्य।
तद्वच्चेतोऽतिमूढं बहुजननवशान्मौढ्यसंस्कारयोगा-
द्बोधोपायैरनेकैरवशमुपनिषद्बोधयामास सम्यक्॥

(वेदान्तकेसरी ८)

जैसे अनन्तगुणशाली, असीममहिम, परिच्छेदत्रयशून्य श्रीपरमात्मदेवका स्वरूप निर्विकार, निरुपम और पूर्णतम है, वैसे ही उनका ज्ञान भी पूर्णतम, एकरस और अतुलनीय है। श्रीवेदभगवान् भी उसी जगन्नियन्ता अन्तर्यामी देवके नित्यसिद्ध संवित्स्वरूप ज्ञानकी ही एक छटा हैं। इसी कारण उन्हें शास्त्रकारोंने अपौरुषेय तथा ईश्वरकृत माना है। छहों दर्शनोंके कर्ता महर्षियों तथा अटारह पुराणों और भारतादि वृहत् ग्रन्थोंके निर्माता श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासजीने वेद-प्रमाणको सर्वोपरि, सर्वशास्त्रोंका शिरःस्थानीय एवं अनुल्लङ्घनीय माना है। उपरोक्त ग्रन्थकारों तथा अन्य समस्त आस्तिक महर्षि महानुभावोंका यह मत है कि 'यदि श्रुति और स्मृतिमें कहीं परस्पर विरोध प्रतीत हो तो श्रुतिकी आज्ञा स्मृतिकी अपेक्षा अधिक बलवती होती है—

श्रुतिस्मृतिविरोधे तु श्रुतिरेव गरीयसी।

सारांश, सर्वऋषिसम्मत मत यही है कि न तो संसारकी कोई धर्म-पुस्तक वैदिक प्रमाणके विरोधमें खड़ी हो सकती है और न प्रत्यक्षानुमानादि किसी दूसरे प्रमाणसे ही किसी वेदानुशासनका बाध हो सकता है, तथा वेद ही संसारमें पाये जानेवाले समस्त ग्रन्थों और अन्यान्य प्रमाणोंका मूलाधार, आदिस्रोत एवं जननी हैं। पश्चिमी विद्वानोंने भी सारे संसारके पुस्तकालयमें वेदोंका ही संसारभरके ग्रन्थोंसे प्राचीन होना मुक्तस्वरसे उद्घोषित किया है, जैसा कि मैक्समूलर साहबके निम्नलिखित शब्दोंसे पता चलता है—

* यह लेख मेरी 'नर्मदा-रहस्य' नामक पुस्तकके प्रथम अध्यायके आधारपर लिखा गया है। 'नर्मदा-रहस्य' पुस्तक दारागंज, प्रयागकी धर्म-ग्रन्थावलीद्वारा शीघ्र प्रकाशित होगी। इस पुस्तकमें 'कल्याण' साइजके करीब २५० पृष्ठ, १५ नकशे और ८० चित्र रहेंगे। —लेखक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

The *Veda* has a two-fold interest: it belongs to the history of the world, and to the history of India. In the history of the world, the *Veda* fills a gap which no literary work in any other language could fill. It carries us back to times of which we have no records anywhere, and gives us the very words of a generation of men, of whom otherwise we could form but the vaguest estimate by means of conjectures and inferences. As long as man continues to take an interest in the history of his race, and as long as we collect in libraries and museums the relics of former ages, the first place in that long row of books which contains the records of the Aryan branch of mankind belongs forever to the *Rigveda*, the most ancient of books in the library of mankind, which is more ancient than the Zendavesta and Homer (940—850 B. C.)

—Prof. Max Muller's History of Ancient Sanskrit Literature, p. 63.

इसी प्रकार अन्य धर्मावलम्बियोंने भी किसी-न-किसी रूपमें श्रीवेदभगवान्‌को श्रद्धाञ्जलि समर्पित की है। अतः प्राणिमात्रके लिये श्रीवेदभगवान्‌की आज्ञा शिरोधार्य एवं माननीय है। अस्तु, उसी वेदभगवान्‌ने सब लोगोंके कल्याणार्थ दो श्रेयस्कर मार्गोंका विधान किया है—एक निवृत्तिमार्ग और दूसरा प्रवृत्तिमार्ग।

निवृत्तिपथको श्रेयोमार्ग समझनेवाले, एषणात्रयत्यागी, विरक्त, परिव्राजक यति महानुभाव ही ज्ञानवीथीके पथिक बननेका अधिकार रखते हैं। एषणात्रयग्रस्त, विषयलम्पट संसारी पुरुष ज्ञानके अधिकारी नहीं हो सकते। इस बातकी पुष्टि नीचे लिखी श्रुतिसे भी होती है जो स्वामी श्रीशंकराचार्यजीने विद्याधिकार-निरूपण करते हुए अपने 'उपदेशसाहस्री' नामक ग्रन्थके आदिमें ही दी है।

तदिदं मोक्षसाधनं ज्ञानं साधनं साध्यादनित्यात्सर्वस्माद्विरक्ताय, त्यक्तपुत्रवित्तलोकैषणाय, प्रतिपन्नपरमहंसपारिव्राज्याय, शमदमदयादियुक्ताय, शास्त्रप्रसिद्धशिष्यगुणसम्पन्नाय, शुचये, ब्राह्मणाय, विधिवदुपसन्नाय शिष्याय, जातिकर्मवृत्तविद्याभिजनैः परीक्षिताय ब्रूयात् पुनः पुनर्यावद् ग्रहणं दृढीभवति। (उपदेशसाहस्री १-२)

श्रुतियोंके अवलोकन, वेदान्तके मर्ममें प्रवेश करने तथा सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेपर यही प्रतीत होता है कि पूर्वकालमें प्रायः अरण्यनिवासी, जनसमुदायभीरु, निरन्तर एकान्तसेवी, विचारशील, विरक्त-संन्यासी महात्मा ही इस श्रेयोमार्गके परायण होकर ज्ञानसोपानद्वारा जीवितावस्थामें ही निरतिशय आनन्दका आस्वादन कर देहत्यागके अनन्तर मुक्तिरूप अभीष्ट पदको प्राप्त किया करते थे। किसीने ठीक ही कहा है—

न सुखं देवराजस्य न सुखं चक्रवर्तिनः।
यत्सुखं वीतरागस्य मुनेरेकान्तसेविनः॥

यही कारण है कि उपनिषद्‌रूप वेदके ज्ञानकाण्डको 'आरण्यक' भी कहते हैं। वस्तुतः यह आरण्यक-भाग अरण्य अथवा वैसे ही किसी निर्जन स्थानमें श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन करनेयोग्य है।

यद्यपि जनक आदि कुछ राजा लोग राजकाज करते और सांसारिक भोगोंको भोगते हुए भी ज्ञानी हो गये हैं तथापि उनका दृष्टान्त देना तो जलनिधि समुद्रकी एक क्षुद्र जलसीकरसे तुलना करना है। यह समयकी विपरीतता, हमारी बुद्धिकी मन्दता तथा 'अघटितघटनापटीयसी' मायाका चमत्कार है कि हम मध्याह्नके प्रचण्ड भास्करको खद्योतके सामने उपस्थित करनेकी भाँति उन अत्युच्च, कारककोटिके महानुभावोंकी अपने-जैसे अति तुच्छ, मनुष्यकोटिके जीवोंसे तुलना करनेकी धृष्टतापूर्ण चेष्टा करते हैं। यही कारण है कि वर्तमान समयमें ढेरों पुस्तकें पढ़ तथा सुन लेनेपर भी हमें यथार्थ स्वरूपका बोध नहीं होता। भला, कारककोटिवालोंकी साधारण मनुष्योंसे तुलना ही क्या? वाह रे समय! तू क्या नहीं कर दिखाता!

वेदान्त निःसन्देह परम पुनीत और भवसन्तारक शास्त्र है, और यह बात भी पूर्णतया सत्य है कि इससे अधिक कल्याणकारी दूसरा कोई मार्ग या शास्त्र नहीं है। परन्तु यह हम कलिकालमें उत्पन्न जीवोंका दुर्भाग्य है कि हम ऐसे उच्च और पवित्र शास्त्रका दुरुपयोग करते हैं। शुष्क, वाचाल और दिखलावेके ब्रह्मज्ञानी बनकर, अखण्ड ब्रह्माकारवृत्तिसे हीन होनेपर भी 'अहं ब्रह्मास्मि' की डींग

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हाँकते हुए मुक्तिके उच्च शिखरपर आरूढ़ होनेकी कामना करते हैं। क्या ऐसा कभी हो सकता है कि रात-दिन तो मनमाना विषय-सेवन करें और मनमें संसारसे मुक्त होनेकी आशा रक्खें, स्वयं परम रागी होकर भी दूसरोंके निकट अपने-आपको विरक्त सिद्ध करनेका दुःसाहस करें! हमारे-जैसे दूषित अन्तःकरणवालोंको 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्यादि वाक्योंके उच्चारण करनेका कोई अधिकार नहीं है, और न अधिकार प्राप्त किये बिना ऐसे निःसार कथनसे कोई लाभ ही हो सकता है। जैसा कि भगवान् शङ्कराचार्यने कहा है—

कुशला ब्रह्मवार्तायां वृत्तिहीनाः सुरागिणः।
तेऽप्यज्ञानतया नूनं पुनरायान्ति यान्ति च॥
(अपरोक्षानुभूति)

अर्थात् 'जो मनुष्य अद्वैतसम्बन्धी वार्तालाप करनेमें तो बड़े प्रगल्भ हैं और ब्रह्माकारवृत्तिसे सर्वथा हीन और संसारमें रागवान् तथा कर्म-पथ-भ्रष्ट हैं, वे निश्चय अज्ञानी हैं और जन्म-मरणके चक्करमें घूमते रहते हैं।' और भी ऐसे अनेकों प्रमाण हैं, जैसे—

अहं ब्रह्मास्मि कर्ता च भोक्ता चास्मीति ये विदुः।
ते नष्टा ज्ञानकर्मभ्यां नास्तिकाः स्युर्न संशयः॥
वाङ्मात्रशब्दैः कुतो मुक्तिरुक्तिमात्रफलैर्नृणाम्।
.....ब्रह्मशब्दैर्न मुच्यते॥
(शंकराचार्य)

—इत्यादि प्रमाणोंसे यह बात सिद्ध होती है कि जबतक मन सदाके लिये उस परम पावन ब्रह्ममें लीन नहीं हो जाता तबतक 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्यादि वाक्योंका उच्चारण करना उनका अपमान करना है।

मुसल्मान फक़ीर मौलाना रूमने भी अपनी 'मसनवी' में कहा है—

हम ख़ुदाख़्वाही व हम दुनियाये दूँ।
ईं ख़यालस्तो मुहालस्तो जनूँ॥

अर्थात् ईश्वर तथा इस लोक एवं परलोकके भोगोंको एक साथ चाहना पागलका-सा प्रलाप है, क्योंकि दोनोंका एक साथ प्राप्त होना बिल्कुल असम्भव है।

जिसे स्वरूप-साक्षात्कारकी इच्छा होगी उसे अवश्य ज्ञानकी वेदीपर विषय-वासनाओंकी बलि देनी होगी और जिसे भोगोंकी लालसा है उसने तो निस्सन्देह विषय-वासनारूपी काँचपर अपने आत्मदेवरूपी चिन्तामणिको न्योछावर कर दिया है। उस बेचारेकी दशा तो बड़ी शोचनीय एवं दयनीय है। भगवती श्रुति कहती है—

किं तेन न कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा।
योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते॥

सारांश यह कि जिसने सुखस्वरूप आत्माको भुलाकर विषयाग्निमें अपने-आपको स्वाहा कर दिया है, यानी विषयोंमें चित्तको फँसा दिया है उस आत्महत्यारे चोरने क्या-क्या पाप नहीं किया!

पिछले समयमें जिज्ञासुओंको गुरुमुखसे श्रवण करते ही आत्मसाक्षात्कार हो जानेका एकमात्र कारण यही था कि वे लोग अधिकारी, शुद्धचित्त तथा तपोबलसम्पन्न होते थे। आज सारा-का-सारा मामला उलटा हो गया है। बहिर्मुखता प्रायः सर्वत्र बढ़ रही है। ऐसी दशामें भजनकी सिद्धि किसप्रकार प्राप्त हो सकती है? कहा भी है—

जिह्वा दग्धा परान्नेन हस्तौ दग्धौ प्रतिग्रहात्।
परस्त्रीभिर्मनो दग्धं कथं सिद्धिर्वरानने॥

श्रीशङ्कर पार्वतीजीसे कहते हैं—'हे सुमुखि! पराये अन्नसे जिह्वा दग्ध हो रही है, दान लेनेसे हाथ अपवित्र हो रहे हैं और पर-स्त्री-चिन्तनसे मन कलुषित हो रहा है। ऐसी दशामें जीवोंको स्वरूप-सिद्धि कैसे प्राप्त हो सकती है?' श्रीमद्भागवत-माहात्म्यमें भी लिखा है—

पण्डितास्तु कलत्रेण रमन्ते महिषा इव।
पुत्रस्योत्पादने दक्षा अदक्षा मुक्तिसाधने॥

इसके अतिरिक्त यदि मान भी लिया जाय कि पिछले समयमें भोगोंको भोगते और राजकाज करते हुए भी कुछ राजा लोग ज्ञानी हो चुके हैं तो भी कोई आपत्ति नहीं, क्योंकि उनके अन्तःकरण अत्यन्त स्वच्छ होते थे और वे लोगोंको भोग भोगते प्रतीत होनेपर भी वस्तुतः चित्तसे परम विरक्त, साधु-सेवी, भजनानन्दी, देहाभिमानरहित और शास्त्रविहित मार्गमें चलनेवाले होते थे, आजकलकी भाँति नास्तिक नहीं होते थे। परन्तु उन गुणोंका हमलोगोंमें प्रायः अभाव ही देखनेमें आता है। ऐसी अवस्थामें उन तत्त्वदर्शी महानुभावोंका दृष्टान्त

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हम-जैसोंमें घटाना काककी कोयलसे और भिखारीकी चक्रवर्ती राजासे तुलना करना है।

तथापि यदि कोई गृहस्थ अधिकार प्राप्त करके अद्वैत-तत्त्वको उपलब्ध कर सके तो उसकी महिमा कौन कह सकता है ? क्योंकि—

'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति।' 'तरति शोकमात्मवित्।'
'ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः।'

अर्थात् ब्रह्मको जाननेवाला ब्रह्म ही हो जाता है, तत्त्ववेत्ता मनुष्य शोकको तर जाता है, उस आत्मदेवका साक्षात्कार हो जानेपर जन्म-मरण आदि सारे फन्दे कट जाते हैं। इत्यादि श्रुतियोंकी घोषणाके अनुसार यह जिस किसी आश्रममें रहता हुआ भी परम पूज्य और आदरणीय है और उसके आगे सबको नतमस्तक होना पड़ता है।

हम इस बातका आग्रह नहीं करते कि गृहस्थको ज्ञान हो ही नहीं सकता; परन्तु शास्त्रका सिद्धान्त ऐसा ही है कि अधिकांश तत्त्ववेत्ता एषणात्रयत्यागी, वीतराग परिव्राजकोंमें ही हुए हैं और वे ही इस ज्ञानमार्गपर निरवच्छिन्न एवं निर्विघ्न-रूपसे चलकर असम्प्रज्ञात समाधिरूप योगारूढ़ स्थितिको प्राप्त कर सकते हैं। गृहस्थोंको तो इस श्रेयोमार्गसे च्युत करनेके लिये सैकड़ों विघ्न हर समय बाधा डालते रहते हैं। 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि।' यही नहीं, वासनायुक्त मनवाले मनुष्योंके लिये यह ज्ञानमार्ग है भी अत्यन्त कठिन; जैसे कहा है—

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया।
ज्ञानको पंथ कृपानकी धारा। इत्यादि

गत वर्षके फाल्गुनके अङ्कमें ईशोपनिषद्के प्रथम मन्त्रके भाष्यका अर्थ निरूपण किया गया था। उसमें वेदभगवान्ने केवल निवृत्ति-पथके पथिकोंको ही अनुशासन दिया है, किन्तु वेदभगवान् तो हर समय प्राणिमात्रके कल्याणमें तत्पर हैं और त्रिकालज्ञ हैं। उन्हें संसारमें फँसे हुए मनुष्योंका उद्धार भी वैसा ही अभीष्ट है जैसा निवृत्ति-पथसेवियोंका। अतः उन्होंने उपरोक्त ज्ञान सम्पादन करनेमें अशक्त तथा एषणात्रयका त्याग न कर सकनेवाले पुरुषोंके लिये एक दूसरे मार्गका विधान किया है, जिसे कर्म-मार्ग या प्रवृत्ति-मार्ग कहते हैं। यह मार्ग जनसाधारणके लिये परम कल्याणका एकमात्र साधन है।

शास्त्रोक्त कर्म करनेसे मनुष्य निश्चय ही बड़े-से-बड़े अभिलषित पदको प्राप्त कर सकता है, ऐसा श्रीगीताजीमें भगवान्ने पुनः-पुनः अर्जुनसे कहा है—

'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः'
'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः'
'कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्'
'कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः'
इत्यादि।

अर्थात् शास्त्रोक्त स्वकर्मोंद्वारा भगवान्की अर्चना करता हुआ मनुष्य अन्तःकरणकी शुद्धिरूप सिद्धि प्राप्त करनेके अनन्तर ईश्वर-प्राप्ति कर सकता है, अर्थात् मुक्त हो सकता है। कर्मोंद्वारा ही जनकादि सिद्धि अर्थात् अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा ज्ञान प्राप्तकर मोक्षरूप सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। इसप्रकार कर्मपथ भी महिमामें कम नहीं है। कर्मके प्रभावसे ही इन्द्रने देवराज-पद प्राप्त किया था। यह कर्मकी ही महिमा है कि ब्रह्मा संसारके स्रष्टा बने। कर्मके प्रतापसे ही सूर्य, चन्द्र, महेन्द्र, उपेन्द्र, वरुण, कुबेर, यम आदि देव तथा शुक्र और बृहस्पति आदि महान् विद्वान् तथा प्रतिभा एवं ऐश्वर्यशाली, शक्तिसम्पन्न देव तथा देशिकगण अपने-अपने वर्तमान पदपर नियुक्त हुए हैं; जैसा कि भर्तृहरिके नीचे लिखे श्लोकसे सिद्ध होता है।

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे
विष्णुर्येन दशावतारग्रहणे क्षिप्तो महासङ्कटे।
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे॥

सारांश यह कि जिस कर्मने ब्रह्माको कुम्हारकी तरह संसाररूपी बर्तनके बनानेमें नियुक्त कर दिया और भगवान् विष्णुको दशावतार लेनेके सङ्कटमें डाल दिया और भगवान् शिवके हाथमें खप्पर देकर भिक्षाटन करनेवाला बना दिया, और जो सूर्यको नित्यप्रति आकाशमें भ्रमाता है उस 'कर्म' को नमस्कार है। यद्यपि विष्णु, शिवादि देव कर्म-बन्धनसे सर्वदा मुक्त हैं तथापि यह प्रदर्शन करनेके लिये कि कर्मका फल अनिवार्य है, कविने कुतूहलवश रुद्रादि जगदीश्वरोंमें भी लोक-शिक्षाके लिये कर्म-फलका आरोप कर दिया।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अस्तु, ऐसी उच्च गति प्रदान करनेवाले शास्त्र-विहित कर्मोंके करनेमें कौन कल्याणाभिलाषी प्रवृत्त न होगा।

अधिकांश देहधारी प्रायः संसारासक्त ही होंगे, अतएव उनको कर्मरूप प्रवृत्ति-मार्गका ही अधिकार होगा, यह जानकर ही श्रीवेदभगवान्‌ने कर्ममार्गका विधान किया है, जिसे प्रवृत्ति-मार्ग भी कहते हैं।

इसप्रकार वेदभगवान्‌ने मनुष्योंके लिये उनके अधिकारके अनुसार, प्रवृत्ति और निवृत्ति केवल दो ही कल्याणमार्ग निरूपण किये हैं, जिनमें निवृत्तिमार्गावलम्बी, एषणात्रयत्यागी मनुष्य ही इस ब्रह्मात्मैक्य-ज्ञानके आनन्दका पूर्ण आस्वादन कर सकते हैं। इस निवृत्तिमार्ग-का विधान इस उपनिषद्‌के प्रथम मन्त्रमें स्वयं वेद-भगवान् कर चुके हैं, और अब इस दूसरे मन्त्रमें उस निवृत्तिमार्गपर चलनेमें असमर्थ साधारण जनताके लिये कर्मरूप प्रवृत्तिमार्गका प्रदर्शन आरम्भ करते हैं।

प्रथम मन्त्रकी भाँति इस द्वितीय मन्त्रका भी भाष्या-नुवाद तथा विस्तृत भाष्यरहस्यादि पाठकोंके विनोदार्थ नीचे उपस्थित करते हैं। आशा है कि शेष मन्त्रोंकी भाष्य-व्याख्या भी इसी प्रकार 'कल्याण'के आगामी अङ्कोंमें पाठक महानुभावोंके दृष्टिगोचर होती रहेगी। अब हम दूसरे मन्त्रके शाङ्करभाष्यकी भाषा-व्याख्या प्रारम्भ करते हैं—

कुर्वन्नेवेह[1] कर्माणि[2] जिजीविषेच्छतं[3] समाः[4]।
एवं त्वयि[5] नान्यथेतोऽस्ति[6] न कर्म लिप्यते[7] नरे[8] ॥२॥

अन्वय और पदार्थ

(इह) इस संसारमें (कर्माणि) अग्निहोत्रादि विहित कर्मोंको (कुर्वन् एव) करता हुआ ही (शतं) सौ (समाः) वर्ष (जिजीविषेत्) जीते रहनेकी इच्छा करे (एवं) इसप्रकार (त्वयि) तुम (नरे) मनुष्यमें (इतः) निष्काम कर्माचरणसे (अन्यथा) और दूसरी प्रकार [का मार्ग] (न अस्ति) नहीं है [जिसपर चलनेसे कि] (कर्म) निषिद्ध कर्म (न) नहीं (लिप्यते) लिपायमान अर्थात् लागू होता।

शाङ्करभाष्यम्

एवमात्मविदः[11] पुत्राद्येषणात्रयसंन्यासेनात्मज्ञाननिष्ठ-[12]तयात्मा रक्षितव्य[13] इत्येष वेदार्थः[14]।

अथेतरस्यानात्मज्ञतयात्मग्रहणायाशक्तस्येदमुपदि-शति मन्त्रः—

भाष्यार्थ

इसप्रकार आत्मवेत्ताको पुत्रादि एषणात्रयका परित्याग करके स्वरूपज्ञाननिष्ठ होकर आत्मरक्षा करनी चाहिये (अर्थात् सर्वदा ब्रह्माकार-वृत्ति रखनेका प्रयत्न करना चाहिये)। यही वेद (ईशोपनिषद्‌के प्रथम मन्त्र) का अर्थ है।

आत्मवेत्ताके अतिरिक्त अन्य मनुष्योंके लिये, जो अतत्त्वज्ञ होनेके कारण आत्मग्रहण (अर्थात् आत्मसाक्षात्कार) करनेमें असमर्थ हैं, (इस उपनिषद्‌का दूसरा) मन्त्र कर्मका उपदेश करता है।

१–'कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्', (गीता १८।४७), 'कुरु कर्मैव तस्मात्त्वम्' (गीता ४।१५)। २–'कर्मणैव हि संसिद्धिम्'…१ (गीता ३।२०)।३–'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः','स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य'(गीता १८।४५-४६),'न कर्मणामनारम्भात्'(गीता ३।४)','कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः', (गीता ३।८), 'कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि'(गीता ३।१५)। ४–'यदि भवान् जीवितुमिच्छेत्' जिजीविषेज्जिजीविषेः—पुरुषव्यत्ययश्छान्दसः। ५–आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितम् (भर्तृहरि० वै० १०७), 'जीवेम शरदः शतम्', 'भूयश्च शरदः शतात्' (शु० यजुर्वेद सं० ३६।२४)। ६–तव–विभक्तिव्यत्ययश्छान्दसः। ७–इतोऽस्माच्चोक्तनिष्कामकर्माचरणप्रकारादन्यथा प्रकारान्तरं नास्ति—एको ज्ञानमार्गो द्वितीयः कर्ममार्ग एवं प्रकारद्वयादन्यत् प्रकारान्तरं नास्ति, देवतामक्तिरप्युभयात्मकैव। अतो न विरोधः। ८-९–'लिप्यते न स पापेन।' (गीता५।१०)। १०–यथोक्त कर्मानुष्ठानवति त्रैवर्णिकेऽधिकारिणि त्वयि। ११–'तरति शोकमात्मवित्' (श्रुतिः), 'यस्त्वात्मरतिरेव स्यात्।' (गीता ३।१७)। १२–'ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद् गृहाद्वा वनाद्वा' (जाबाल उ० ४), 'मनो मोक्षे निवेशयेत्' (मनु०), 'काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः'। (गीता १८।२) १३–'न हि ज्ञानेन सदृशम्' (गीता ४।३८), 'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्' (गीता ७।१८)। १४–निदिध्यासितव्यः। 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः इत्यादि।' (श्रुतिः)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कुर्वन्नेवेति । कुर्वन्नेवेह निर्वर्तयन्नेव कर्माण्यग्निहोत्रादीनि[१५] जिजीविषेज्जीवितुमिच्छेच्छतं शतसंख्याकाः समाः संवत्सरान् ।

संसारमें अग्निहोत्र आदि कर्मोंको करता हुआ ही (मनुष्य) सौ वर्षतक जीनेकी इच्छा करे ।

तावद्धि पुरुषस्य परमायुर्निरूपितम् ।

क्योंकि मनुष्यकी परम आयु (शास्त्रमें) इतनी ही निरूपण की गयी है ।

तथा च प्राप्तानुवादेन यज्जिजीविषेच्छतं वर्षाणि तत्कुर्वन्नेव कर्माणीत्येतद्विधीयते ।

यहाँ 'जिजीविषेच्छतꣳ समाः' इस वाक्यांशको उद्देश्य तथा 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि' इसको विधेय मानकर इस वाक्यका अर्थ यह करना चाहिये कि यदि (मनुष्य) सौ वर्षतक जीना चाहे तो कर्म करते हुए ही जीना चाहे (अन्यथा नहीं) ।

एवमेवंप्रकारेण त्वयि जिजीविषति नरे नरमात्राभिमानिनीत एतस्मादग्निहोत्रादीनि कर्माणि कुर्वतो वर्तमानात्प्रकारादन्यथा प्रकारान्तरं नास्ति येन प्रकारेणाशुभं कर्म न लिप्यते कर्मणा न लिप्यत इत्यर्थः ।

इसप्रकार तेरे-जैसे सौ वर्ष जीनेकी इच्छावाले देहात्मदर्शी पुरुषके लिये इन अग्निहोत्रादि कर्मोंको करते हुए बर्तते रहनेके प्रकारसे भिन्न कोई दूसरा प्रकार नहीं है, जिसप्रकारसे (अर्थात् जिस पथपर चलनेसे) पापकर्मका लेप न हो । यह श्रुतिका अर्थ है ।

अतः शास्त्रविहितानि कर्माण्यग्निहोत्रादीनि कुर्वन्नेव जिजीविषेत् ।

इसलिये मनुष्यको चाहिये कि शास्त्रविहित अग्निहोत्रादि कर्मोंको करता हुआ ही जीनेकी इच्छा करे ।

कथं पुनरिदमवगम्यते ? पूर्वेण मन्त्रेण संन्यासिनो ज्ञाननिष्ठोक्ता, द्वितीयेन तदशक्तस्य कर्मनिष्ठेति ।

(इसपर एकदेशी वेदान्ती अर्थात् वेदान्तके एक अंशको माननेवाले प्राचीन वृत्तिकार भर्तृप्रपञ्चका अनुयायी समुच्चयवादी शङ्का करता है कि) 'प्रथम मन्त्रने संन्यासीके लिये ज्ञाननिष्ठाका और दूसरे मन्त्रने ज्ञान-ग्रहणमें अशक्तके लिये कर्मनिष्ठाका विधान किया है' यह कैसे जाना ?

उच्यते ।

अब इस शङ्काका समाधान करते हैं ।

ज्ञानकर्मणोर्विरोधं पर्वतवदकम्प्यं यथोक्तं न स्मरसि किम् ?

ज्ञान और कर्मके पहाड़की भाँति जो अचल विरोध पहले वर्णन किया जा चुका है वह क्या तुझे स्मरण नहीं है?

इहाप्युक्तं यो हि जिजीविषेत्स कर्म कुर्वन् ।

यहाँ (अर्थात् पहले और दूसरे मन्त्रोंमें) भी यही बात कही गयी है कि जो जीते रहनेकी इच्छा करे वह कर्म करता हुआ ही करे ।

ईशावास्यमिदꣳ सर्वम्, तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनमिति च ।

यह सर्व प्रपञ्च ईश्वरके द्वारा आच्छादित अथवा व्याप्त है, इसलिये (अज्ञानकालीन, अहंता-ममता तथा नाम-रूपात्मक प्रपञ्चमें सत्य बुद्धिको हटाकर) एषणात्रयसे मुक्त हुआ तू आत्मानन्दका आस्वादन (अनुभव) कर । अपने और पराये धन (अर्थात् प्रलोभन देनेवाले किसी भी संसारी विषय) की आकांक्षा मत कर ।

१५—'यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति इत्यादि ।' (श्रुतिः)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न जीविते मरणे वा गृधिं कुर्वीत ।

जीने और मरनेकी भी लालसा न करे (अर्थात् जीनेसे राग और मृत्युसे द्वेष न करे)।

अरण्यमियादिति[16] च पदम्[17] ।

(स्त्रीजनशून्य) वनको चला जाय, यह वैदिक मर्यादा (अर्थात् शास्त्रकी आज्ञा) है ।

ततो न पुनरियादिति संन्यासशासनात् ।

और फिर वनसे वापिस न आवे, क्योंकि संन्यासके विषयमें शास्त्रकी यही आज्ञा है । (इसलिये ज्ञान और कर्मका समुच्चय नहीं बन सकता ।) *

उभयोः फलभेदं च वक्ष्यति ।

ज्ञान और कर्म दोनोंके फलका भेद आगे (इसी उपनिषद्में) वर्णन करेंगे ।

'इमौ द्वावेव[18] पन्थानावनुनिष्क्राम्ततरौ भवतः क्रियापथश्चैव पुरस्तात्संन्यासश्चोत्तरेण' निवृत्तिमार्गेणैषणात्रयस्य त्यागः ।

(इस अधिकारभेदमें निम्नलिखित नारायणोपनिषद्का मन्त्र भी प्रमाण है—) क्रियापथ अर्थात् कर्ममार्ग तथा तीनों एषणाओंका त्यागरूप संन्यास—ये दोनों मार्ग (भिन्न-भिन्न अधिकारियोंके लिये) भूतसृष्टिनिर्माणानन्तर अर्थात् आदिकालसे ही प्रचलित (यानी ईश्वरीय संकल्पद्वारा प्रवृत्त) किये गये हैं ।

तयोः संन्यासपथ एवातिरेचयति[19] । न्यास एवातिरेचयदिति च तैत्तिरीयके ।

इन दोनोंमें संन्यास ही श्रेष्ठ है । तैत्तिरीय आरण्यकमें भी कहा है कि संन्यास ही श्रेष्ठ है (क्योंकि यह परम पुरुषार्थरूप आत्मोपलब्धिका अन्तरायरहित साधन है)

द्वाविमावथ पन्थानौ यत्र वेदाः प्रतिष्ठिताः ।
प्रवृत्तिलक्षणो धर्मो निवृत्तिश्च विभावितः ॥

प्रवृत्ति-लक्षणवाला धर्म (अर्थात् कर्ममार्ग) और निवृत्ति-लक्षणवाला संन्यास, वेदने ये दो ही मार्ग प्रतिपादित किये हैं ।

इत्यादि पुत्राय विचार्य निश्चितमुक्तं व्यासेन वेदाचार्येण भगवता ।

यह बात वेदाचार्य भगवान् श्रीव्यासदेवजीने भली प्रकार विचारकर निश्चयरूपसे अपने पुत्र शुकदेवजीसे कही है।

विभागं चानयोर्दर्शयिष्यामः ।

आगे (कर्म और संन्यास) इन दोनों मार्गोंका विभाग दिखलायेंगे ।

भाष्य-रहस्य

भावार्थ—इस उपनिषद्के प्रथम मन्त्रके पूर्वार्धद्वारा तो श्रीवेदभगवान्ने तत्त्वका उपदेश किया है और फिर तृतीय पादद्वारा अपरिपक्व ज्ञानवाले मनुष्यके लिये संन्यासकी विधि और चतुर्थ पादद्वारा संन्यासीके लिये नियम-विधिका वर्णन किया है ।

भगवान् शङ्कराचार्यने प्रथम मन्त्रकी पदशः व्याख्या

१६—गच्छेत् । १७—वेदशास्त्रस्थितिः । १८ 'लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा ।' (गीता ३ । ३) १९—'त्यजतैव हि तज्ज्ञेयं त्यक्तुः प्रत्यक्परं पदम् ।' (श्रुतिः)

* भावार्थ यह है कि जीवन-मरण-सम्बन्धी चिन्ता करनारूप द्रव्यसाध्य कर्ममार्गका तथा सर्व कामनापरित्यागपूर्वक संन्यस्त होकर वनमें जानेके अनन्तर फिर वहाँसे न लौटनारूप इस संन्यासमार्गका ऋतुगमन और त्रिदण्डधारणवत् परस्पर विरोध है । ऐसी दशामें यह कल्पना करना कि ये दोनों मन्त्र समुच्चयरूपसे एक ही मनुष्यके आचरणके लिये हैं—निरी भूल है । इनमेंसे प्रथम मन्त्र तो उस मनुष्यके लिये है जिसने विद्वत् अथवा विविदिषा संन्यास ग्रहण कर लिया है और दूसरा मन्त्र जिसे आत्मसाक्षात्कार नहीं हुआ है ऐसे अज्ञानी मनुष्यके लिये है । इसप्रकार एक ही अधिकारीद्वारा ज्ञान और कर्मके समुच्चयका अनुष्ठान सिद्ध नहीं हो सकता ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करनेके अनन्तर प्रथम और द्वितीय श्रुतिका परस्पर पूर्वापररूप घनिष्ठ सम्बन्ध दिखलानेके लिये दूसरे मन्त्रकी व्याख्या प्रारम्भ करनेसे पूर्व पुनः प्रथमं मन्त्रका 'एवमात्मविदः पुत्राद्येषणात्रयसंन्यासेनात्मज्ञाननिष्ठतयात्मा रक्षितव्य इत्येष वेदार्थः ।' इस पंक्तिद्वारा संक्षिप्त अर्थ निरूपण किया है । अतः आवश्यक होनेके कारण प्रसङ्गवश पहले इतनी पंक्तिका ही विवरण करते हैं । यह बात ऊपर सिद्ध हो चुकी है कि इस उपनिषद्के प्रथम मन्त्रने 'त्यक्तेन' शब्दके द्वारा संन्यास ग्रहण करनेके अनन्तर ही ज्ञान-वीथीमें प्रवेश करनेकी आज्ञा दी है । यह संन्यास शास्त्रकारोंने दो प्रकारका माना है—एक 'विविदिषा' और दूसरा 'विद्वत्' । गृहस्थाश्रममें विघ्नोंकी बहुलताके कारण ज्ञानकी व्यवधान-रहित प्राप्ति प्रायः नहीं होती । इस बातको चित्तमें धारणकर ज्ञान-प्राप्तिके लिये जो संन्यास ग्रहण किया जाता है उसे 'विविदिषा-संन्यास' कहते हैं । वह विविदिषा-संन्यास कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस-भेदसे चार प्रकारका है; जिनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है । अर्थात् कुटीचककी अपेक्षा बहूदक, बहूदककी अपेक्षा हंस और हंसकी अपेक्षा भी परमहंस श्रेष्ठ है; कहा भी है—

चतुर्विधा भिक्षुकाः स्युः कुटीचकबहूदकौ ।
हंसः परमहंसश्च पश्चाद्यो यः स उत्तमः ॥
(विष्णुस्मृति २ । ११)

पाराशर-संहितामें इनके भिन्न-भिन्न लक्षण इसप्रकार दिखाये हैं—

कुटीचक-लक्षण

पुत्रस्य भ्रातृपुत्रस्य भ्रातृदौहित्रयोरपि ।
तदुपान्तकुटीस्थो यः स भिक्षावृत्तिभुग् द्विजः ॥
कन्थात्रिदण्डभृच्छान्त आत्मज्ञः स कुटीचकः ॥

जो (शिखा और यज्ञोपवीत धारण किये) अपने पुत्र, भाईके पुत्र, भाई अथवा दौहित्र (नवासे) के समीप कुटी बनाकर रहता हो और उन्हींके यहाँसे भिक्षा लेता हो तथा गुदड़ी और त्रिदण्ड धारण करता हो वह शान्तस्वभाव और आत्मज्ञ पुरुष 'कुटीचक' कहलाता है ।

बहूदक-लक्षण

बहूदकस्त्वयं ज्ञेयो यः परिव्राट् त्रिदण्डभृत् ।
शिखासनोपवीतानि धातुकाषायवस्त्रभृत् ॥

जो त्रिदण्ड धारण करे, शिखा और यज्ञोपवीतसे युक्त हो, गेरुआ वस्त्र पहनता हो तथा एक जगह न रहता हो उसे बहूदक कहते हैं ।

हंस-लक्षण

एकदण्डधरा हंसाः शिखोपवीतधारिणः ।
वार्य्याचारकराः शान्ता भूतानामभयप्रदाः ॥

जो एक दण्ड, शिखा और यज्ञोपवीत धारण करे, जलाचारसे युक्त हो और प्राणिमात्रको अभय प्रदान करनेवाला हो वह 'हंस' कहलाता है ।

परमहंस-लक्षण

एकदण्डधरा मुण्डाः कन्थाकौपीनवाससः ।
अव्यक्तलिङ्गिनो व्यक्ताः सर्वदैव च मौनिनः ॥
शिखादिरहिताः शान्ता उन्मत्तवेषधारिणः ।
एते परमहंसा वै नैष्ठिका ब्रह्मभिक्षवः ॥

एक दण्ड धारण करनेवाले, मुण्डित, कन्था-कौपीन रखनेवाले, अप्रकट चिह्न और सदैव मौन रखनेवाले, शिखा-सूत्र-रहित, शान्त, उन्मत्त-वेषधारी, नैष्ठिक भिक्षु 'परमहंस' कहलाते हैं । उपरोक्त चारों प्रकारका संन्यास ज्ञान-प्राप्तिकी इच्छासे किया जाता है । अतः यह 'विविदिषा-संन्यास' कहलाता है ।

अब 'विद्वत्' संन्यासका निरूपण करते हैं ।

विद्वत्-संन्यास-लक्षण

यदा तु विदितं तत्त्वं परं ब्रह्म सनातनम् ।
तदैकदण्डं संगृह्य सोपवीतां शिखां त्यजेत् ॥
ज्ञात्वा सम्यक् परं ब्रह्म सर्वं त्यक्त्वा परिव्रजेत् ।
(विद्यारण्यस्वामिकृत 'जीवन्मुक्तिविवेक')

सनातन परब्रह्मरूप तत्त्वका ज्ञान हो जानेपर, परब्रह्मको पूर्णतया जान लेनेपर जो शिखा-सूत्रके परित्यागपूर्वक एक दण्ड धारण करते हैं वे 'विद्वत्-संन्यासी' कहलाते हैं, ऐसा शास्त्रका संकेत है । परन्तु इन दोनों प्रकारके संन्यासका अधिकार केवल अग्रजन्मा ब्राह्मणको ही है, इतर जातिके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मनुष्यको नहीं; जैसा कि निम्नलिखित प्रमाणोंसे सिद्ध होता है—

आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात्।
(मनुस्मृति ६। २५)

एष वोऽभिहितो धर्मो ब्राह्मणस्य चतुर्विधः।
(मनुस्मृति ६। ९७)

इति उपक्रमोपसंहाराभ्यां मनुना ब्राह्मणस्याधिकार-प्रतिपादनात् ब्राह्मणाः प्रव्रजन्ति इति श्रुतेश्चाग्रजन्मन एवाधिकारो न द्विजातिमात्रस्य।
(याज्ञवल्क्यस्मृति-मिताक्षरा ३। ४। ५७)

गतिस्तुर्याश्रमे नास्ति बाहुजातोरुजातयोः।
चत्वारो ब्राह्मणस्योक्ता आश्रमाः श्रुतिचोदिताः॥
क्षत्रियस्य त्रयः प्रोक्ता द्वावेको वैश्यशूद्रयोः॥
(योगयाज्ञवल्क्यसंहिता १। २९)

याचनं खलु विप्राणां क्षत्रियाणां न विद्यते।
परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायात्॥
(मुण्ड० १। २। १२)

एतं वै तमात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति।
(बृह० ३। ५। १)

चतुर्थमाश्रमं गच्छेद् ब्राह्मणः प्रव्रजन् गृहात्॥
(विष्णुस्मृति ४। ३)

आश्रमास्तु त्रयः प्रोक्ता वैश्यराजन्ययोस्तथा।
परिव्राज्याश्रमप्राप्तिर्ब्राह्मणस्यैव चोदिता॥
(विष्णुस्मृति ५। १३)

इसप्रकार अनेक श्रुतियाँ और स्मृतियाँ केवल ब्राह्मणको ही संन्यासका अधिकार बतलाती हैं, अन्य जातिके मनुष्यको नहीं। और न क्षत्रिय आदिको भिक्षा माँगनेका ही अधिकार है। यदि जनक आदिका दृष्टान्त उपस्थित किया जाय तो वह यहाँ घट नहीं सकता, क्योंकि वे कारककोटिके थे, इसलिये मनुष्यकोटिसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं। इसलिये संन्यासमें ब्राह्मणका ही अधिकार सिद्ध होता है। ब्राह्मणके समान इतर जातिके मनुष्य तपकी पराकाष्ठा कर भी नहीं सकते। शास्त्रने भी ब्राह्मणके शरीरमें सत्त्वगुण और क्षत्रिय आदिके शरीरमें रज-तम आदिकी प्रधानता बतलायी है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि इस समय पहले-जैसे कर्मनिष्ठ और तपोधन ब्राह्मण तो देखनेमें आते नहीं, फिर क्या वर्तमान-दशामें किसीको भी संन्यास लेनेका अधिकार नहीं है? इसका पाराशरस्मृतिके निम्नलिखित श्लोकोंसे सन्तोषजनक उत्तर मिल जाता है—

युगे युगे च ये धर्मास्तत्र तत्र च ये द्विजाः।
तेषां निन्दा न कर्तव्या युगरूपा हि ते द्विजाः॥
(१। ३३)

दुःशीलोऽपि द्विजः पूज्यो न तु शूद्रो जितेन्द्रियः।
कः परित्यज्य गां दुष्टां दुहेच्छीलवतीं खरीम्॥
(८। ३३)

मनुजी भी कहते हैं—

अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणो दैवतं महत्।
प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतं महत्॥
(९। १७)

एवं यद्यप्यनिष्टेषु वर्तन्ते सर्वकर्मसु।
सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्या परमं दैवतं हि तत्॥
(९। १९)

इसप्रकार शास्त्रमें सब प्रकार ब्राह्मणकी श्रेष्ठता प्रसिद्ध है। ऊपरके श्लोकोंमें 'द्विज' शब्दका अर्थ ब्राह्मण ही है, क्योंकि दूसरे श्लोकमें 'पूज्य' शब्द पड़ा है जो ब्राह्मण-जातिका ही बोधक है। ब्राह्मणसे अतिरिक्त अन्य जातिवाले-की पूजा हो नहीं सकती। अतः इन श्लोकोंमें 'द्विज' का अर्थ ब्राह्मण ही समझना चाहिये।

तात्पर्य यह कि युगानुसार जैसे भी ब्राह्मण हों वे ही पूज्य हैं और वे ही संन्यासके अधिकारी हैं। यदि कोई हमारे इन पाराशर और मनुस्मृतिके श्लोकोंको देखकर यह कह दे कि पाराशरस्मृतिमें तो कलिकालमें संन्यास लेनेका ही निषेध किया गया है, क्योंकि वहाँ लिखा है—

अश्वालम्भं गवालम्भं संन्यासं पलपैत्रिकम्।
देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पञ्च विवर्जयेत्॥

इसका उत्तर यह है कि पराशरजीकी यह आज्ञा विषयलम्पट, शास्त्रमार्गका उल्लङ्घन करनेवाले, अविवाहित, परस्त्रीरत, संसारलिप्सु मनुष्योंके लिये है, न कि तीव्रतर वैराग्ययुक्त, वैदिक मार्गानुवर्ती, सदाचारी, श्रद्धालु और परम उपराम पुरुषोंके लिये। यदि ऐसा होता तो शास्त्रमें निम्नलिखित प्रबल प्रमाण न पाया जाता—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यावद्वर्णविभागोऽस्ति यावद्वेदः प्रवर्तते ।
संन्यासं चाग्निहोत्रञ्च तावत् कुर्यात् कलौ युगे ॥

इसप्रकार संन्यास-ग्रहणके सर्वथा निषेधका भी खण्डन हो जाता है और यह बात सिद्ध होती है कि ब्राह्मणको ही संन्यास-ग्रहणका अधिकार है। अब देखना यह है कि संन्यासमार्ग सुगम है या दुर्गम ! शास्त्रपर दृष्टि डालनेसे पता लगता है कि यह मार्ग बड़ा कठिन, बड़ा विकट और बड़ा ही दुर्गम है। इस मार्गपर चलना छुरेकी तीक्ष्ण धारपर चलना ही नहीं वरं जीते-जी शरीरको अग्निकी प्रज्वलित ज्वालामें झोंक देना है। संन्यासधर्मको शास्त्रने सब आश्रमोंके धर्मोंसे कठिन बताया है । भगवत्कृपाका परम अधिकारी होनेपर ही कोई धीर-वीर माईका लाल इसे आयुभर एकरस निभाकर इस संसाररूपी दुर्गम मार्गसे पार हो सकता है । पाठक महानुभावोंको इस मार्गकी कठिनताका प्रमाणोंद्वारा कुछ दिग्दर्शन कराते हैं। इससे पता चल जायगा कि संन्यासमार्ग कितना विकट है। कोई विरला भाग्यशाली मनुष्य ही इस पथपर आरूढ़ होकर इस चतुर्थाश्रमके धर्मोंका यथावत् पालन कर ब्रह्मज्ञानका अधिकारी बन सकता है।

न संभाषेत्स्त्रियं काञ्चित्पूर्वदृष्टां न च स्मरेत् ।
कथां च वर्जयेत्तासां न पश्येल्लिखितामपि ॥
(मेधातिथि)

स्त्रीणां तत्सङ्गिनां सङ्गं त्यक्त्वा दूरत आत्मवान् ।
क्षेमे विविक्ते आसीनश्चिन्तयेन्मामतन्द्रितः ॥
(श्रीमद्भागवत)

पतत्यसौ ध्रुवं भिक्षुर्यस्य भिक्षोर्द्वयं भवेत् ।
धीपूर्वं रेत उत्सर्गो द्रव्यसंग्रह एव च ॥
यस्तु प्रव्रजितो भूत्वा पुनः सेवेत मैथुनम् ।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥
(वायुपुराण)

अनावृते विशेद् द्वारि गृहे नैवावृते व्रजेत् ।
न वीक्षेद् द्वाररन्ध्रेण भिक्षालिप्सुः क्वचिद्यतिः ॥
(यमस्मृति)

एककालं चरेद् भैक्ष्यं न प्रसज्जेत विस्तरे ।
भैक्ष्यप्रसक्तो हि यतिर्विषयेष्वपि सज्जते ॥
भैक्ष्येण वर्तयेन्नित्यं नैकान्नादी भवेद्व्रती ।
भैक्ष्येण वर्तिनो वृत्तिरुपवाससमा स्मृता ॥
(मनुस्मृति)

ब्राह्मणक्षत्रियविशां मध्यानां भैक्ष्यमाचरेत् ।
तन्नाप्यसम्भवे पूर्वादादृतोत्तरोत्तरात् ॥
(मेधातिथि)

एकस्यान्नं त्र्यहं भुक्त्वा निरन्तरमनापदि ।
प्राणायामशतं कुर्याच्छुद्ध्यर्थं यतिरात्मवान् ॥
(विश्वामित्रस्मृति)

छेदने भेदने पाके यतिर्यस्तु प्रवर्तते ।
तादृशं कल्मषं दृष्ट्वा प्रेतशौचं विधीयते ॥
(हारीतस्मृति)

विधवां कञ्चुकोपेतां सधवां कञ्चुकं विना ।
यतिं तु कञ्चुकोपेतं दृष्ट्वा चक्षुर्निमीलयेत् ॥
(अंगिरःस्मृति)

अन्नदानपरो भिक्षुश्चत्वारि हन्ति दानतः ।
दातारमन्नमात्मानं यस्मै चान्नं प्रयच्छति ॥
(जाबालस्मृति)

कौपीनयुगलं कन्था दण्डमेकं परिग्रहः ।
यतेः परमहंसस्य नाधिकं तु विधीयते ॥
यदि वा कुरुते रागादधिकस्य परिग्रहम् ।
नरकं रौरवं गत्वा तिर्यग्योनिषु जायते ॥
(अत्रिस्मृति)

नग्नो दिगम्बरो मुण्डः संन्यासी भैक्ष्यमाचरेत् ।
इत्यादि-इत्यादि

शास्त्रने यतिको स्त्री एवं जनसमुदायसे रहित वनमें एकाकी रहनेकी ही आज्ञा दी है। जैसे कि कहा है—

एको भिक्षुर्यथोक्तस्तु द्वौ चैव मिथुनं स्मृतम् ।
त्रयो ग्रामस्तथाख्यात ऊर्ध्वं तु न हि गण्यते ॥
नगरं हि न कर्त्तव्यं ग्रामो वा मिथुनं तथा ।
एतत्त्रयं प्रकुर्वाणः स्वधर्माच्च्यवते यतिः ॥

सद्ग्रन्थोंमें ऐसे तथा अन्य प्रकारके अनेकों यति-धर्म-निरूपक प्रमाण पाये जाते हैं, जिनसे पूर्णतया सिद्ध होता है कि यति-धर्मसे बढ़कर और किसी भी आश्रमका व्रत कठिन नहीं है। इस त्यागपुञ्ज संन्यासमें, और तो और, त्याग-अभिमानका भी परित्याग करना होता है, क्योंकि—

अभिमानं सुरापानं गौरवं घोररौरवम् ।
प्रतिष्ठा शूकरीविष्ठा त्रीणि त्यक्त्वा सुखी भवेत् ॥

ऐसे संन्यासव्रतको धारणकर जो लोग मठधारी बन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जाते हैं उनका वह आचरण भी हमें शास्त्र-प्रतिकूल ही प्रतीत होता है, क्योंकि विष्णुशर्माने पञ्चतन्त्रमें किसी धर्म-शास्त्रसे उद्धृत करके इस प्रमाणका उल्लेख किया है—

नरकाय मतिस्ते चेत्पौरोहित्यं समाचर ।
वर्षं यावत् किमन्येन मठचिन्तां दिनत्रयम् ॥

इतने कठिन व्रतको धारण करना क्या किसी साधारण पुरुषका कार्य है ? इस खड्गधारापर तो सचमुच कोई धीर-वीर ही चलनेका साहस कर सकता है ।

इसप्रकार अकाट्य और प्रबल प्रमाणोंसे संन्यासमें ब्राह्मणका ही अधिकार सिद्ध होता है और शास्त्रानुमोदित युक्तिसे भी ऐसा ही प्रतीत होता है । क्योंकि 'यतिकी देववत् पूजा करनी चाहिये' ऐसे प्रमाण शास्त्रमें पाये जाते हैं और वैसी पूजा और चरणसेवा शास्त्रानुसार ब्राह्मणकी ही की जा सकती है, इतर जातिकी नहीं । शास्त्रमें लिखा है—'वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ।' इससे यही सिद्ध होता है कि ब्राह्मण ही संन्यास ले सकता है । यही नहीं, संन्यासीको ईश्वरवत् समझना चाहिये, ऐसी शास्त्रोंकी जगह-जगहपर आज्ञा मिलती है । यथा—

द्वे रूपे वासुदेवस्य चलं चाचलमेव च ।
चलं संन्यासिनां रूपमचलं प्रतिमादिकम् ॥

ऐसा समझकर उपरोक्त आत्मनिष्ठ यतिमें सदा ईश्वर-बुद्धि रखकर उसकी पूजा-अर्चा आदि करना उचित है, क्योंकि—

ब्रह्मचारिसहस्रं च वानप्रस्थशतानि च ।
ब्राह्मणानान्तु कोट्यस्तु यतिरेको विशिष्यते ॥

यदि कोई उद्धत पुरुष ऐसे दण्डधारी यतिको देखकर अभ्युत्थान तथा नमस्कार आदिसे उसका स्वागत नहीं करता तो वह नरकगामी होता है । तथा जो पुरुष नमनादिसे उस महात्माको प्रसन्न कर लेता है वह साक्षात् श्रीहरिको सन्तुष्ट कर लेता है । शास्त्रका आदेश है—

दण्डग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत् ।

इस बातसे भी ब्राह्मणका ही संन्यासमें अधिकार जान पड़ता है कि शङ्करावतार भगवान् शङ्कराचार्यजीने, जो स्वयं त्रिकालज्ञ और इस बातसे भलीभाँति परिचित थे कि कलियुगमें सम्पूर्ण जातियाँ कापायवस्त्र धारणकर संन्यास-ग्रहणमें प्रवृत्त हो जायँगी, शास्त्रमर्यादाको सुरक्षित रखनेके लिये परशुमुद्रासहित दण्डसंन्यास ब्राह्मणको ही प्रदान किया, अन्यको नहीं; जैसा कि आचार्य-परम्परासे भी भली प्रकार सिद्ध है । इन सब शास्त्रीय विचारोंसे ब्राह्मण ही संन्यासका अधिकारी प्रतीत होता है ।

इस समय जो कुछ महानुभावोंकी त्रैवर्णिक संन्यासके पक्षमें सम्मति है वह साम्प्रदायिक प्रतीत होती है । यदि यह मत भी शास्त्रानुकूल हो तो हमें इस बातमें भी कोई आग्रह नहीं है; हमारे लिये तो काषायमात्र पूज्य और आदरणीय है, जैसा कि कहा भी है—

एकदण्डी त्रिदण्डी वा शिखी मुण्डित एव च ।
काषायमात्रसारोऽपि यतिः पूज्यो युधिष्ठिर ॥

परन्तु ईशोपनिषद्के प्रथम मन्त्रकी आज्ञाको दृष्टिके सामने रखते हुए यह अवश्य कहना पड़ता है कि एषणा-त्रयत्यागी द्विज ही संन्यास-ग्रहणके अनन्तर अव्यवहित ज्ञान-चक्षुके खुल जानेपर ही ब्रह्मानन्दके आस्वादनका अधिकारी बन सकता है, अन्य नहीं; तथा सर्वसाधारणके लिये इस मार्गकी कठिनता एवं दुरारोहता देदीप्यमान भास्करके समान प्रत्यक्ष सिद्ध है । इसीसे श्रीवेदभगवान्ने सर्वसाधारणके लिये एक दूसरे सुखसाध्य मार्गका विधान किया है, जिसे कर्म या प्रवृत्तिमार्ग कहते हैं । अब आगे हम उसीका वर्णन करते हैं । संन्यासमार्गके विवरणको अब अधिक विस्तार न देकर नीचे केवल तीन श्लोक उपस्थितकर 'त्यागेन' पदका अर्थ तथा 'एवमात्मविदः' इत्यादि द्वितीय मन्त्रके भाष्यकी प्रथम पंक्तिका रहस्य समाप्त करते हैं । इससे आगे द्वितीय मन्त्रकी 'कुर्वन्नेवेति' इस द्वितीय पंक्तिके भाष्यका तात्पर्य निरूपण करना प्रारम्भ करेंगे । संन्यासमार्गके संक्षिप्त विवरणका निम्नलिखित श्लोकोंसे उपसंहार करते हैं—

समाप्य क्रियाः सर्वा दाराग्न्याधानपूर्विकाः ।
ब्रह्मविद्यामथेदानीं वक्तुं वेदः प्रचक्रमे ॥

(उपदेशसाहस्री उत्तरार्द्ध १)

त्याग एव हि सर्वेषां मोक्षसाधनमुत्तमम् ।
त्यजतैव हि विज्ञेयं त्यक्तुः प्रत्यक् परं पदम् ॥

(श्रुति)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नात्यक्त्वा सुखमाप्नोति नात्यक्त्वा विन्दते परम् ।
नात्यक्त्वा चाभयं शेते सर्वं त्यक्त्वा सुखी भवेत् ॥
(ब्रह्मवाक्य)

यहाँतक इस द्वितीय मन्त्रके भाष्यकी प्रथम पंक्ति 'एवमात्मविदः' इत्यादिके 'संन्यासेन' शब्दका रहस्य कहा गया। अब आगे भगवान् शङ्कराचार्यने अतत्त्वज्ञके लिये द्वितीय पंक्तिमें जो 'कुर्वन्नेव' शब्दद्वारा मन्त्रोत्थान करके कर्मपरक भाष्य किया है उसका तात्पर्य निरूपण करते हैं।

यद्यपि कर्म-जैसे सूक्ष्म, गहन और गम्भीर विषयपर लेखनी उठाना मेरे-जैसे अल्पज्ञ मनुष्यके अधिकारसे सर्वथा परेकी बात है। 'गहना कर्मणो गतिः' तथा 'कवयोऽप्यत्र मोहिताः' इत्यादि भगवदुक्ति इसमें प्रमाण है। तथापि अब इस अनधिकारचेष्टाको आरम्भ कर चुकनेके कारण मैं भाष्यके इस विषय-पर भी यथामति शास्त्रानुसार तात्पर्यरूपसे कुछ निवेदन करनेका साहस करता हूँ और विज्ञ पाठक महानुभावोंसे सविनय प्रार्थना करता हूँ कि इसमें जो त्रुटि देखें उसे स्वयं सुधारकर मुझ अपठितप्राय अनुचरको क्षमा करनेकी कृपा करें। क्योंकि राजहंस दूध और पानीमेंसे केवल दूध ही लिया करते हैं तथा काँचमेंसे भी केवल मोती ही चुगना उनका स्वभाव होता है।

अस्तु, 'लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः' इस न्यायको दृष्टिगोचर रखकर प्रथम हम इस बातका विचार करते हैं कि 'कर्म' किसे कहते हैं—

कर्मके लक्षण—'क्रियते देहेन्द्रियैरेव निर्वर्त्यत इति कर्म, लौकिकं वैदिकञ्च', 'श्रुतिस्मृतिभ्यां यद्विहितं तत्कर्म', 'वैदिकं श्रौतं स्मार्तं च यत्तत्सर्वं कर्म', 'चलनात्मकं कर्म' अथवा 'प्रकृतिपरिणामरूपशरीरोद्भवं कर्मेत्युक्तं भवति' इत्यादि।

अर्थात् 'देह और इन्द्रियोंद्वारा जो किया जाता है उसे कर्म कहते हैं और वह लौकिक एवं वैदिक-भेदसे दो प्रकार-का है,' 'श्रुति-स्मृतिने जिसका विधान किया है वह कर्म कहलाता है,' 'समस्त श्रौत और स्मार्त-विधानको कर्म कहते हैं,' 'जिसमें चलन-क्रिया पायी जाय उसे कर्म कहते हैं,' अथवा 'प्रकृतिके परिणामरूप जो स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण-शरीर हैं उनसे की जानेवाली क्रियाविशेषका नाम कर्म है।' इसप्रकार भाँति-भाँतिकी व्युत्पत्ति करके 'कर्म' शब्दके अर्थ किये जा सकते हैं।

वैदिक और लौकिक कर्मोंमेंसे पहले वैदिक कर्मोंका विचार करते हैं। तदनन्तर संक्षेपसे लौकिक कर्मोंपर भी दृष्टि डालेंगे।

कर्म-विभाग—'पुण्यपापमिश्रकर्माणि कर्मत्रयम्' अर्थात् पुण्य, पाप और मिश्र-भेदसे कर्म तीन प्रकारका है और इन तीनोंमेंसे प्रत्येक उत्कृष्ट, मध्यम और सामान्य-भेदसे तीन-तीन प्रकारका है। उनमें उत्कृष्ट पुण्यकर्मका फल हिरण्यगर्भ-शरीरकी प्राप्ति है, मध्यम पुण्यकर्मका फल इन्द्रपदका मिलना है और सामान्य पुण्यकर्मका फल यक्ष-राक्षसादि शरीरकी प्राप्ति है। ये पुण्यकर्मके तीन भेदोंका फल हुआ।

पापकर्मत्रय—उत्कृष्ट पापका फल दूसरेको कष्ट देनेवाले थोहरादि गुल्म (झाड़ी) अथवा भिड़, बिच्छू, जूँ या मधुमक्खी आदि योनियोंकी प्राप्ति है। मध्यम पापका फल आम या नारियल आदि वृक्षों अथवा भैंस, घोड़ा या गधा आदि योनियोंकी प्राप्ति है, तथा सामान्य पापका फल गाय, हाथी अथवा पीपल या तुलसी आदिके शरीरकी प्राप्ति है।

मिश्रकर्मत्रय—उत्कृष्ट मिश्रकर्मका फल कर्मानुष्ठानसे लेकर समाधि-साधनतककी योग्यतावाले मानवदेहकी प्राप्ति बतलायी गयी है; मध्यम मिश्रकर्मका फल अपने आश्रमोचित काम्य कर्म करनेयोग्य शरीरकी प्राप्ति है तथा सामान्य मिश्रका फल अन्त्यज एवं व्याध आदिके शरीरकी प्राप्ति है।

फिर उपरोक्त नौ प्रकारके कर्म मन, वाणी और शरीरादि भेदसे और भी अनेक प्रकारके हो जाते हैं एवं तदनुसार ही उनका फल उपभोग करना पड़ता है। यहाँ विस्तारभयसे उनकी अन्यान्य शाखाएँ नहीं दिखलायी जातीं और न उन्हें दिखानेका कुछ उपयोग ही है। यहाँ कर्म-सम्बन्धी केवल उपयोगी बातें ही लिखनी हैं।

पुण्यकर्म-विभाग—शास्त्रकारोंने वैदिक पुण्यकर्म पुनः तीन प्रकारका माना है—नित्य, नैमित्तिक और प्राय-श्चित्त।

नित्यकर्म—'नित्यानि अकरणे प्रत्यवायसाधनानि, सन्ध्यावन्दनादीनि', अर्थात् जिन्हें न करनेसे द्विजाति-वर्णों-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

को पाप लगता है वे सन्ध्यावन्दनादि वेदविहित षट्कर्म नित्यकर्म कहलाते हैं। षट्कर्म ये हैं—'स्नानसन्ध्याजपहोम-देवतार्चनातिथ्यवैश्वदेवाः षट्कर्माणि' अथवा पञ्चसूनाजनित पापकी निवृत्तिके लिये शास्त्रविहित पञ्चयज्ञोंका प्रतिदिन करना ही नित्यकर्म कहलाता है। क्योंकि—

पञ्चसूना गृहस्थस्य चुल्लीपेषण्युपस्करः।
कण्डनी चोदकुम्भश्च..... ॥

इस उक्तिके अनुसार गृहस्थको पाँच प्रकारकी हिंसाका मार्जन करनेके लिये पञ्चयज्ञ करना परमावश्यक है। अथवा देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋण—इन तीन ऋणोंसे उऋण होनेके लिये जो शास्त्रविहित कर्म किये जाते हैं और जिनके न करनेसे द्विज पापका भागी होता है वे ही नित्य-कर्म कहलाते हैं। श्रुतिका आदेश भी है—

जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवान्जायते। ब्रह्म-चर्येणर्षिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः ॥

अर्थात् ब्राह्मणादि वर्णत्रयसे सम्बन्ध रखनेवाला मनुष्य उपनयनान्तर देवता, ऋषि और पितरोंका ऋणी हो जाता है; परन्तु वह ब्रह्मचर्य-पालनद्वारा ऋषियों, यज्ञादिद्वारा देवताओं और प्रजा उत्पन्न करके पितरोंके ऋणसे मुक्त हो जाता है। इसप्रकार ऋणत्रयसे उऋण होना द्विजाति-मात्रका परमधर्म है।

अब प्रसङ्गवश इस बातका विचार करना भी उपयुक्त प्रतीत होता है कि उपरोक्त षट्कर्म तथा पञ्चयज्ञ करनेका एवं ऋणत्रयकी निवृत्ति करनेका अधिकारी कौन है? यह बात श्रुति-स्मृतिमें जगह-जगह पायी जाती है कि शिखा-सूत्रधारी द्विज ही वैदिक कर्मका अधिकारी है। इस विषयमें बहुत-से प्रमाण न देकर केवल एक ही प्रमाण गोभिल-गृह्यसूत्रसे उद्धृत करके यहाँ उपस्थित करते हैं—

यज्ञोपवीतिनाऽऽचान्तोदकेन कृत्यम् (१।२)

अर्थात् आगे हम जिस कर्मका विधान करेंगे उसका अधिकार आचमन करनेके अनन्तर यज्ञोपवीतधारीको ही है, अन्यको नहीं। यज्ञोपवीत धारण करनेका अधिकार केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीन वर्णोंको ही है, शूद्रको नहीं। अतः द्विजको उचित है कि कर्मकाण्डका अधिकार प्राप्त करनेसे पूर्व यज्ञोपवीत, जो कर्मका मुख्य अङ्ग है, शास्त्रविधि-अनुसार अवश्य धारण करे। शास्त्रने यज्ञोपवीत-का समय इसप्रकार बतलाया है—

गर्भाष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयेत्। गर्भैकादशेषु क्षत्रियम्। गर्भद्वादशेषु वैश्यम्। आषोडशाद्वर्षाद् ब्राह्मणस्यानतीतः कालो भवत्याद्वाविंशात् क्षत्रियस्याचतुर्विंशाद्वैश्यस्य। अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति। नैनानुपनयेयुर्नाध्या-पयेयुर्न याजयेयुर्नैभिर्विवहेयुः ॥

(गोभिलगृह्यसूत्र २।१०।१–६)

अर्थात् गर्भसे आठवें वर्ष ब्राह्मण-बालकका, ग्यारहवें वर्ष क्षत्रियका और बारहवें वर्ष वैश्यका यज्ञोपवीत हो जाना चाहिये। यदि किसी कारणसे यह समय व्यतीत हो जाय तो अधिक-से-अधिक सोलहवें वर्षकी आयुतक ब्राह्मण-बालकका और बाईस वर्षतक क्षत्रियका तथा चौबीस वर्ष-तक वैश्यका यज्ञोपवीत अवश्य हो जाना चाहिये। इसके अनन्तर द्विज पतित हो जाता है और सावित्री यानी ब्रह्मगायत्रीका अधिकारी नहीं रहता। इस उपरोक्त अवधिके बीत जानेपर फिर उनका संस्कार कदापि नहीं किया जाना चाहिये और न उन्हें पढ़ाना, उनसे यज्ञ कराना अथवा विवाह आदि सम्बन्ध करना ही उचित है। वे पतित और पंक्तिसे बाहर किये जानेके योग्य हो जाते हैं, ऐसा शास्त्रका आदेश है, जिसका पालन करना हरेक आस्तिकका मुख्य धर्म है।

(क्रमशः)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

साधन-भक्ति

(लेखक—परिव्राजक श्रीमद्ब्रह्मचारी गोपाल चैतन्यदेव)

ह बात मैं पहले ही कह चुका हूँ* कि प्रेमा भक्ति प्रत्येक जीवका स्वाभाविक धर्म है। ईश्वरकी माया-शक्तिके द्वारा अपने नित्य शुद्ध आत्मस्वरूप तथा उसके विशुद्ध धर्मके आवृत होनेके कारण जीव भूत-प्रेतादि-ग्रस्त मनुष्यकी भाँति राह भूलकर भटक रहा है। साधुजन तथा शास्त्रोंकी कृपासे अपनी भूली हुई नित्य-सम्पदाका सन्धान पानेपर वह भगवान्‌की ओर प्रवृत्त होकर इन्द्रियोंकी प्रेरणाके द्वारा अपने हृदयमें प्रेमा भक्तिके उदय करनेका जो प्रयत्न करता है उसे ही साधन-भक्ति कहते हैं। यथा—

कृतिसाध्या भवेत्साध्यभावा सा साधनाभिधा।
नित्यसिद्धस्य भावस्य प्राकट्यं हृदि साध्यता॥
(भक्तिरसामृतसिन्धु)

इन्द्रियोंकी प्रेरणा अर्थात् श्रवण, कीर्तन तथा दर्शन आदिद्वारा साधनीय साधारण भक्तिको ही साधन-भक्ति कहते हैं। इसीके द्वारा भाव और प्रेम साध्य होते हैं। 'भाव और प्रेम' साध्य कहनेसे कोई सज्जन इन्हें भ्रमवश कृत्रिम न समझें। वास्तवमें भाव और प्रेम नित्यसिद्ध वस्तुएँ हैं। इनका कोई भी साधन नहीं है; सुतरां जीवके हृदयस्थ प्रेमा भक्तिको चैतन्य करना ही साधन-भक्तिके नामसे अभिहित किया जाता है।

वैधी और रागानुगाके भेदसे साधन-भक्तिके दो प्रकार कहे गये हैं। यथा—

यत्र रागानवाप्तत्वात् प्रवृत्तिरुपजायते।
शासनेनैव शास्त्रस्य सा वैधी भक्तिरुच्यते॥
(भक्तिरसामृतसिन्धु)

रागकी अप्राप्तिमें अर्थात् अनुरागके उत्पन्न हुए बिना ही केवल शास्त्रके आदेशसे जिस प्रवृत्तिका उदय होता है उसे 'वैधी भक्ति' कहते हैं।

भगवत्प्राप्तिके लिये रागहीन व्यक्तिके मनमें उत्कट लालसा नहीं होती। केवल नरकके भयसे ही वह भगवान्‌की आराधना करता है। सुतरां प्रारम्भिक दशामें वह कभी वर्णाश्रम-धर्मका त्याग नहीं कर सकता। अपने-अपने आश्रम-धर्मके अनुष्ठानकी भाँति भगवान्‌का भजन करना भी कर्तव्य है, भगवान्‌का स्मरण न करनेपर शास्त्र-विधिका उल्लङ्घन होनेसे पाप लगेगा—यह सोचकर वैधी भक्ति करनेवाला मनुष्य अपने आश्रमधर्मके साथ श्रवण-कीर्तनादि भक्तिका भी अनुष्ठान करता है। अतएव वैधी भक्ति सात्त्विकी भक्तिका ही दूसरा नाम है। इस भक्तिमें भगवान्‌के ऐश्वर्यका ज्ञान विद्यमान रहता है। सुतरां वैधी भक्तिके उपासक व्रजवासी भक्तकी भाँति भगवान्‌के साथ विशुद्ध प्रेमका आचरण नहीं कर सकते।

वैधी भक्तिके आठ भेद हैं। वर्णाश्रम-धर्मका पालन करनेवाले भाग्यवान् व्यक्ति जब पहले-पहल श्रद्धायुक्त चित्तसे दीक्षागुरुके द्वारा नाम-मन्त्रादि ग्रहण करते हैं, तब वे कर्ममिश्रा भक्तिकी साधनामें उपदिष्ट होते हैं। इस सात्त्विकी भक्तिके अनुष्ठानसे क्रमशः उनकी श्रद्धा बढ़ती हुई निष्ठा, रुचि आदिमें परिणत होती रहती है। निष्काम कर्मयोगके साथ

* कल्याण मार्गशीर्ष १९९०।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रवण-कीर्तनादि भक्तिके अङ्गोंका ठीक-ठीक अनुष्ठान करनेपर भक्त ज्ञानका अधिकारी बनता है और उसके चित्तके सारे विकार दूर हो जाते हैं। ज्ञान सात्त्विकी भक्तिका ही फल है। ज्ञानका उदय होते ही कर्म आप-से-आप लोप हो जाता है। सुतरां भक्त ज्ञान-मिश्रा भक्तिका अधिकारी बन 'ब्रह्मभूत' तथा 'प्रसन्नात्मा' हो जाता है। ऐसे वैधी भक्तिके उपासक सिद्धि-दशामें शान्तरति लाभकर आत्माराम भक्तोंमें परिणत हो जाते हैं। ऐसे भक्तोंकी निर्गुण भक्ति सर्वश्रेष्ठ कहलाती है। क्योंकि वे निर्वाणकी भी इच्छा नहीं रखते, अतः चतुर्विधा मुक्तिको प्राप्तकर वैकुण्ठ, कैलासादि भगवत्-लोकोंमें पधार जाते हैं।

ऐसे शान्त, आत्माराम भक्तकी कर्म-ज्ञान आदिसे शून्य भक्ति-श्रद्धा भी 'निर्गुणा' है, यह बात सही है, परन्तु वह 'केवला' नहीं है। साधनाकी अवस्थामें ऐसे भक्तकी भक्तिमें ऐश्वर्य-ज्ञानकी प्रबलताके कारण सिद्धि-दशामें भी उनके वे संस्कार नष्ट नहीं होते हैं। सुतरां उनकी ऐसी भक्तिको केवला भक्ति नहीं कहा जा सकता। अब रागानुगा भक्ति किसे कहते हैं, इसे जानना चाहिये।

इष्टे स्वारसिकी रागः परमाविष्टता भवेत्।
तन्मयी या भवेद्भक्तिः सात्र रागात्मिकोदिता॥
(भक्तिरसामृतसिन्धु)

अभिलषित वस्तुमें जो स्वाभाविकी परम प्रेममय तृष्णा होती है, उसे 'राग' कहते हैं और रागमयी भक्ति ही रागात्मिका भक्ति कहलाती है। ऐसी रागात्मिका भक्तिके पीछे चलनेवाली भक्तिका नाम रागानुगा-भक्ति है। यथा—

रागात्मिकामनुसृता या सा रागानुगोच्यते॥
(भक्तिरसामृतसिन्धु)

अभिलषित प्रियजनके प्रति चित्तकी जो प्रेममय तृष्णा है वही रागका स्वरूप-लक्षण है, एवं इस राग-की प्रेरणासे उस अभीष्ट प्रियजनका जो अनुध्यान (सतत चिन्तन) है वही इसका तटस्थ लक्षण है। रागस्वरूपा भक्तिको ही रागात्मिका भक्ति कहते हैं। रागात्मिका भक्तिका स्पष्ट उदाहरण व्रजवासी भक्तोंमें मिलता है। ऐसी भक्तिका अनुसरण ही रागानुगा भक्तिके नामसे पुकारा जाता है। अतएव व्रजवासी भक्तोंके प्रेमाचरण-अनुसार भगवान्‌की आराधनाको रागानुगा भक्ति कहते हैं।

रागानुगा भक्ति रागात्मिका भक्तिका अनुकरणमात्र है। पहली साधना है और दूसरी साध्य। रागानुगा भक्ति ही परिपक्व दशामें रागात्मिका भक्तिके नामसे अभिहित होती है। अतएव रागानुगा भक्तिको रागात्मिका भक्तिरूपी लताका प्रथम उद्भूत सुकोमल स्कन्धस्वरूप माना जा सकता है। पहली भक्तिका विषय है भक्त-स्वरूप व्रजवासी, भक्त-स्वरूप गुरु एवं उनके आश्रित अनुगत शिष्य; दूसरी भक्तिका विषय है व्रजविहारी श्रीकृष्ण एवं उनके आश्रित व्रजवासी भक्त। पहली भक्तिके विषयका आश्रय है, इस प्रपञ्चमय जगत्‌के अन्तर्गत प्राकृत देहधारी होकर भी अप्राकृत भावसे अन्तर्देहमें भूषित होना अर्थात् सांसारिक जीवका इस संसारके प्रपञ्चमें रहकर भी अप्राकृत भावसे अपने-को उसमें लय कर देना। और दूसरी भक्तिके विषयका आश्रय है इस प्रपञ्चमय जगत्‌से अतीत, आनन्द-चिन्मय प्रेमरसमें अधिष्ठित होना। जब रागानुगा भक्ति परिपुष्ट होकर रागात्मिका भक्तिमें परिणत हो जाती है तब रागानुगा भक्ति सिद्धि लाभकर अपने विषयके आश्रयरूपमें आत्म-प्रकाश करती है।

रागानुगा भक्तिके प्रधानतः दो भाग हैं—एक सम्बन्धानुगा और दूसरी कामानुगा। जो भक्त श्रीनन्द, यशोदा आदि गुरुवर्ग, अथवा श्रीबलराम, सुबल आदि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वयस्य (सखा) वर्गकी भाँति श्रीकृष्णके वाह्य लीला-रसकी अभिलाषा रखते हैं उन लोगोंकी तत्तत् सम्बन्धानुयायी जो भक्ति है उसे सम्बन्धानुगा भक्ति कहते हैं। तथा जो भक्त गोपी, महिषी अर्थात् कान्ताकी भाँति श्रीकृष्णके साथ शृङ्गार-रसके आस्वादनके अभिप्रायसे तदनुरूप भावका अनुकरण करते हैं उनकी इस कामात्मिका भक्तिको कामानुगा भक्ति कहते हैं। कामानुगा भक्तिके भी दो भेद हैं—एक सम्भोगेच्छामयी, दूसरी तद्भावेच्छामयी। जो भक्त महिषी अर्थात् कान्ता-भावका अनुकरण करते हैं उनकी भक्तिको सम्भोगेच्छामयी भक्ति कहते हैं। इस भक्तिमें कान्ताकी भाँति न्यूनाधिकरूपसे अपने सुख-की इच्छा, ऐश्वर्य-ज्ञान तथा लोक-धर्म आदि भक्ति-रोधक भाव विद्यमान रहते हैं। जो भक्त लोक-धर्म, वेद-धर्म आदि सारे धर्मोंका परित्याग कर वर्तमान तथा भविष्यके सब प्रकारके सुखोंके साधनोंको तिलाञ्जलि देकर गोपियोंके निष्काम भाव तथा परम प्रेममय स्वभावका अनुकरण करते हैं उनकी भक्तिको तद्भावेच्छामयी भक्ति कहते हैं।

वैधी भक्तिकी भाँति रागानुगा भक्तिके भी आठ भेद हैं। साधुजनोंके श्रीमुखारविन्दसे तथा शास्त्र-श्रवणसे भगवान्‌के सौन्दर्य, माधुर्य तथा भगवद्भक्तोंके श्रेष्ठ भावोंके माधुर्यका श्रवण कर किसी-किसी सौभाग्य-शाली व्यक्तिके अन्तःकरणमें उन्हें प्राप्त करनेके लिये लोभका उदय होता है, तब फिर उनकी बुद्धि शास्त्रयुक्तिकी अपेक्षा नहीं करती और उन्हें लोभ-नीय व्रजभावकी ही अभिलाषा होती है। रागात्मिका भक्तिमें निष्ठावान् व्रजवासी भक्तोंके भावको प्राप्त करनेके लिये लोभके उदय होते ही मनुष्य रागानुगा भक्तिके साधनका अधिकारी बनता है। ऐसे व्रजभाव-लुब्ध भक्त अपनी अभीष्ट-सिद्धिके लिये यथासाध्य उपायका अन्वेषण करते हैं—साधुजन एवं शास्त्रज्ञोंसे इसके तत्त्वकी जिज्ञासा करते हैं, जिनकी कृपासे शीघ्र ही यह उनकी समझमें आ जाता है कि दीक्षागुरुद्वारा उपदिष्ट गुणमयी भक्ति व्रजभावकी प्राप्तिका उपाय नहीं है, व्रजवासी भक्तके अनुग्रह करनेपर, शुद्ध प्रेमकी डोरीसे उसके हृदयाकर्षण करनेपर ही व्रजभाव तथा व्रजके ईश्वरको प्राप्त करना सुलभ हो जाता है। इसीलिये ऐसे भक्त केवल लोभके वशवर्त्ती होकर व्रजवासी भक्तकी कृपाकी ओर टकटकी लगाये करुण-भावसे समय अतिवाहित करते हैं, और विधि-निषेधरूप सारे धर्मों, एवं श्रुत और श्रोतव्य आदि सारे विषयोंका परित्यागकर उनके श्रीश्रीकमलचरणोंमें आत्म-समर्पण करते हैं। इसप्रकार सर्व धर्मका परित्यागकर भगवत्स्वरूप श्रीश्रीगुरुदेवके श्रीचरणोंमें आत्म-समर्पण करना ही केवला भक्तिकी पहली सीढ़ी है।

वैधी भक्तिमें श्रवण-कीर्तन आदि जितने प्रकारके साधनाके अङ्ग कहे गये हैं, रागानुगा भक्तिमें भी वैसे ही श्रवण, कीर्तन आदिकी आवश्यकता देखनेमें आती है। भक्त इसी प्रकार भजन-क्रियाके द्वारा धीरे-धीरे निष्ठा, रुचि आदि लाभ करते हुए भावके अधिकारी बनते हैं। जबतक भावका आविर्भाव नहीं होता तभीतक वैधी भक्तिका अधिकार है। यथा—

वैधभक्त्यधिकारी तु भावाविर्भवनावधिः।

(भक्तिरसामृतसिन्धु)

वैधी भक्ति और रागानुगा भक्तिमें भेद इतना ही है कि भयभीत होकर शास्त्रकी विधिके अनुसार जो भगवद्भजन किया जाता है उसका नाम वैधी भक्ति है, और लोभके वश होकर विधिमार्गसे जो भजन होता है उसका नाम रागानुगा भक्ति है। वैधी भक्ति नवोदित

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चन्द्रमाकी सुकोमल मृदु रश्मि है, और रागानुगा भक्ति त्रिजगत्‌के मनको हरनेवाले बालसूर्यकी उज्ज्वल प्रभा है।

पहली भक्ति जैसे धीरे-धीरे भक्तको निर्गुणावस्थामें ले जाती है, दूसरीकी क्रिया वैसी नहीं है, वह तो शीघ्र ही भक्तको निर्गुण-भाव प्रदान करती है। जैसे पारसके छूते ही लोहा सोना बन जाता है इसी प्रकार इस विशुद्ध भक्तिके प्रभावसे गुणमय भक्तका हृदय भी अति शीघ्र मायासे अतीत होकर भाव-भक्तिका अधिकारी बन जाता है। भाव-भक्तिके ऊपर आगे विचार किया जायगा।

हिन्दीमें धर्म-साहित्य

(लेखक—पं० श्रीगोविन्दनारायणजी आसोपा, बी० ए०, एम० आर० ए० एस०)

धर्म बहुत व्यापक शब्द है। धर्मका निरुक्त-गत अर्थ 'नियम' है और धातु-गत अर्थ 'धारण करना' है। इन दोनोंके मेलसे धर्म शब्दका यही अर्थ निकलता है कि जिस नियमने इस संसारको धारण कर रक्खा है वही धर्म है। अतः शास्त्रकारोंने—

धर्मेणैव जगत् सुरक्षितमिदं धर्मो धराधारको
धर्माद्वस्तु न किञ्चिदस्ति भुवने धर्माय तस्मै नमः।

अर्थात् यह संसार धर्मसे ही सुरक्षित है, धर्म ही धरा (पृथिवी) का धारण करनेवाला है, (चौदह) भुवनों (लोकों) में धर्मसे व्यतिरिक्त अन्य कुछ भी पदार्थ नहीं है; उस धर्मको नमस्कार है।

—कहकर धर्मको नमस्कार किया है।

मनुमहाराजकी आज्ञानुसार 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' अर्थात् सम्पूर्ण वेद (ऋग्, यजुः, साम और अथर्वण) धर्मके मूल हैं। श्रीमद्भागवतमें स्पष्ट लिखा है—

वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः।

'वेदमें कहा हुआ धर्म है और उसके विपरीत सब अधर्म है।'

मनुकथित धर्मका लक्षण इसप्रकार है—

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥

'वेद, स्मृति, सदाचार और अपनी आत्मा (अन्तःकरण) का सन्तोष, ये चार धर्मके लक्षण अर्थात् प्रमाण हैं।'

दक्षप्रजापतिके कथनानुसार भी यही बात सिद्ध होती है, यथा—

श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितं यत् स धर्मः प्रकीर्तितः।

'जिसे श्रुति और स्मृति दोनोंने कहा हो वह धर्म कहलाता है।' श्रुति और स्मृतिके विषयमें भगवान् मनु लिखते हैं—

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ॥

'वेदको श्रुति जानना चाहिये और धर्मशास्त्रको स्मृति। सभी विषयोंपर इन दोनोंके सिद्धान्त तर्क करनेयोग्य नहीं हैं (क्योंकि) इन दोनोंसे ही धर्म निकला है।'

श्रुतिर्विभिन्ना स्मृतयो विभिन्ना
नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां
महाजनो येन गतः स पन्थाः॥

'श्रुति अर्थात् वेद भिन्न-भिन्न प्रकारके अर्थात् कर्म, ज्ञान आदि भिन्न-भिन्न सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करनेवाले हैं, (वैसे ही) स्मृतियाँ भी भिन्न-भिन्न प्रकारकी हैं, एक भी ऐसा मुनि नहीं जिसका वचन (अन्य सबकी अपेक्षा) प्रमाण न माना जाय, धर्म (वास्तवमें) एक बहुत गहन विषय है जिसका तत्त्व (अन्तःकरणरूपी) गुहामें छिपा हुआ है; (अतः) सदाचारी पुरुष जिस प्रथासे चलें वही धर्म है।'

इस महाभारतकी उक्तिके अनुसार सब बात सदाचारपर आकर ठहरती है। सदाचारका पालन ही धर्म है। कहा भी है—

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'श्रुति और स्मृतिमें कहा हुआ आचार ही परम धर्म है।'

सदाचारके विषयमें मनुमहाराजने लिखा है—

तस्मिन् देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः।
वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते॥

'उस (ब्रह्मावर्त) देशमें परम्परासे वर्ण और आश्रमोंका जो आचार चला आया है, वह सदाचार कहा जाता है।'

इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि जिन ग्रन्थोंमें सदाचारका वर्णन हो वे ही धर्म-ग्रन्थ हैं।

संस्कृत-भाषामें धर्म-ग्रन्थ अनेक हैं जो स्थूलतया निम्न विभागोंमें विभक्त किये जा सकते हैं—

१–वेद

२–स्मृति

३–दर्शनशास्त्र

४–इतिहास–रामायण एवं महाभारत

५–पुराण तथा उपपुराण

६–तान्त्रिक ग्रन्थ—नारदपाञ्चरात्र आदि

७–कर्मकाण्ड—धर्मसिन्धु, निर्णयसिन्धु आदि

८–सम्प्रदाय-ग्रन्थ—वल्लभ, रामानुज, निम्बार्क आदि सम्प्रदायोंके प्रामाणिक ग्रन्थ

संस्कृतमें जितना धर्म-साहित्य उपलभ्य है उसका शतांश भी इस समय हिन्दीमें नहीं मिलता। यद्यपि संस्कृतका प्रचार देशमें अभी है तथापि जनसाधारण और विशेषकर कॉलेजों और स्कूलोंकी पढ़ाईमें संस्कृतका प्रचार दिनों-दिन न्यून होता जा रहा है, जिससे धर्म-प्रचारमें बड़ी हानि हो रही है।

हिन्दीमें धर्म-साहित्यकी वृद्धिकी आवश्यकता क्यों है? इस प्रश्नपर विचार करनेके लिये भारतवर्षकी आधुनिक अवस्थापर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है, अतः इस विषयपर अपने विचार नीचे लिखता हूँ—

यह तो मानी हुई बात है कि आजकल संस्कृत-भाषाका प्रचार कम हो रहा है; इसीलिये इस भाषाको विदेशी भाषाके प्रचारकी तुलनामें मृत भाषा (dead language) कहा जाता है। वेदके पठन-पाठनकी प्रथा लुप्तप्राय-सी हो रही है। वेदका शुद्ध उच्चारण करनेवालोंकी संख्या बिल्कुल परिमित है। पद, क्रम, जटा, घनके साथ वेदाध्ययन करनेवालोंकी संख्या विरल ही है। यहाँतक कि इन बातोंके समझनेवाले भी बहुत ही कम दृष्टिगोचर होते हैं। वेदका अर्थ जाननेवाला सहस्रोंमें नहीं लाखोंमें एक कठिनतासे मिलता है। दर्शन-शास्त्रोंके गूढ़ तत्त्वोंको जाननेवालों और समझनेवालोंकी गणना भी उसी प्रकार अँगुलियोंपर निर्दिष्ट की जा सकती है। वेदके छहों अङ्गोंका ज्ञाता कहीं ढूँढ़नेपर भी आज कठिनतासे मिलेगा। कर्मकाण्डपरसे लोगोंकी श्रद्धा ही हट गयी। इसको आजकल ढकोसलामात्र समझते हैं। वेदादि शास्त्रोंको न पढ़नेसे जनता धर्मसे विमुख हो चली है और विदेशी शिक्षाके प्रसारके साथ भारतवर्षकी भावी सन्तानकी इन शास्त्रोंसे पराङ्मुखता और भी अधिक होनेकी सम्भावना है। कारण, विदेशी भाषाके विद्यार्थी अपनी बाह्य सुन्दरतासे चकाचौंध कर देनेवाली पश्चिमी सभ्यतासे मोहित होकर सिनेमा, नाटक आदि दृश्योंके प्रभावसे विलासिताके गहरे गढ्ढेमें गिर रहे हैं और इस विलासितामें आसक्त होनेके कारण इन छात्रोंका आहार-विहार, भाषा-भेष आदिमें परिवर्तन इतनी तेजीसे हो रहा है कि वह थोड़े ही समयमें भारतीयता और उसके साथ धार्मिकताके विनाशका हेतु प्रमाणित होगा। जब लॉर्ड मैकॉले (Lord Macaulay ने भारतवर्षमें विदेशी शिक्षाकी नींव डाली थी तब उनका यह स्पष्ट उद्देश्य था कि अंगरेजी शिक्षासे भारतवासी भारतीय भेषमें पूरे अंगरेज बन जायँ। उन महाशयके शब्द नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

"English education will train up a class of persons Indian in colour and blood but English in tastes, opinions, morals and intellects."

अर्थात् अंगरेजी शिक्षासे एक ऐसी जाति तैयार होगी जो रंग और रक्तमें भारतीय होगी किन्तु भाव, विचार, धर्म और बुद्धिमें अंगरेज होगी।

इस पाश्चात्य शिक्षाप्रणालीका इस अल्प समयमें भी इतना प्रभाव पड़ गया है कि नवीन युगके सुधारपन्थी लोगोंके मन भारतीयतासे ऐसे फिर गये हैं कि उन्हें अपना घरतक अच्छा नहीं लगता, अपने बाप-दादों-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

की बातें, अपनी चाल-ढाल, रहन-सहन, अपनी विचार-प्रणाली, अपना इतिहास, अपनी परम्परा, अपनी मर्यादा आदि कोई बात नहीं सुहाती। धार्मिक ग्रन्थोंका परिज्ञान न होनेके कारण भारतीय धार्मिक सिद्धान्त उनकी समझमें नहीं आते और जो बात धर्मशास्त्रके विरुद्ध नयी निकाली जाती है वे बिना सोचे-विचारे उसके पक्षपाती बन जाते हैं। धार्मिक आचार-विचार उनको अच्छा नहीं लगता और वे स्वतन्त्रताके पूरे पुजारी बने जाते हैं। उन्हें जाति-पाँतिके बन्धन कष्टप्रद प्रतीत होते हैं। होटलोंका खाना और सबका जूठा सोडा-लेमन पीना उन्हें सुहाता है। वर्तमानके प्रचलित उत्सव, टी-पार्टी, ऐट-होम, प्रीति-भोज आदिके समय सब जातिवाले एक साथ बैठ, बूट पहिने, एक टेबलपर स्वच्छन्दतासे भोजन करनेमें अपना अहोभाग्य समझते हैं। आजकल कालेजोंके होस्टलोंमें भी उनकी कौम एक ही बरतनमें भोजन करती दिखायी देती है जिससे संसर्ग-सम्बन्धसे स्वास्थ्यमें भी हानि होती जा रही है। प्रतिदिन सिनेमा, नाटक, क्लब, लाइब्रेरी आदिमें जाना और कुचेष्टाओंमें पड़ना, विलासितामें भ्रष्ट होना चारों ओर दृष्टिगोचर होता है, जिसका परिणाम भविष्यमें भयंकर प्रतीत होता है। आजकल साम्यवादकी भी नयी लहर चमकने लग गयी है जिससे भी धर्मकी और अधिक हानि होनेकी सम्भावना है। धर्मध्वंसी नये-नये कानून बनवानेकी भी भरमार है।

इसके निवारणके लिये वेदादि धार्मिक शास्त्रोंके सिद्धान्तोंका प्रचार करनेवाले आधुनिक साहित्यके प्रसारकी आवश्यकता जान पड़ती है। वह हिन्दीमें धर्म-साहित्यकी वृद्धिपर अवलम्बित है। ऊपर कहा जा चुका है कि हिन्दीमें धर्म-साहित्यकी अभी न्यूनता है; उसे पूरी करनेके लिये प्रयत्न करना नितान्त आवश्यक है। इसके साथ-साथ धार्मिक शिक्षा-प्रणालीकी आयोजना भी आवश्यक है। पाठ्य-क्रममें परिवर्तन होना भी जरूरी है। धर्मोपदेशके लिये भी कुछ समय स्कूल और कालेजोंमें नियत करानेका उद्योग करना चाहिये और धर्म-प्रचारक छोटी-छोटी पुस्तकें हिन्दीमें निर्माण कराकर पाठ्य पुस्तकोंमें नियत करानेका प्रयत्न होना चाहिये। यदि हो सकता हो तो धार्मिक शिक्षा अनिवार्य बनानेकी भी चेष्टा की जानी चाहिये, जिससे भावी सन्तान भ्रष्टाचारी होनेसे बचें। धर्मानुकूल शिक्षाके प्रसारके लिये गाँव-गाँवमें व्यवस्था हो सकती हो तो और भी अधिक उपयोगी होगा। 'कल्याण' के समान धार्मिक विचारोंके प्रचारक पत्रोंकी परिवृद्धिका प्रयत्न करना भी लाभदायक होगा। सारांश यह है कि भावी सन्तानोंके लिये नैतिक शिक्षाके साथ-साथ धार्मिक शिक्षाका भी प्रबन्ध होना अत्यावश्यक है।

इस कार्यमें सफलता-प्राप्तिके लिये हिन्दीमें धर्म-साहित्यकी श्रीवृद्धिकी नितान्त आवश्यकता है। वह नीचे लिखे उपायोंसे हो सकती है—

१—वेद, उपनिषद्, दर्शन, स्मृति आदि धार्मिक शास्त्रोंके सिद्धान्तोंके प्रचारके लिये पुस्तकें बनवाना और प्रकाशित करना।

२—जहाँतक हो सके, मौलिक ग्रन्थ निर्माण करवाना और उनका भाषानुवाद प्रकाशित करना लाभप्रद प्रतीत हो तो वैसा करना।

३—अच्छे धर्मोपदेशकोंके व्याख्यानोंको संगृहीत कर प्रकाशित करना और यदि वे विदेशी भाषामें हों तो उनका हिन्दी-अनुवाद कराकर प्रकाशित करना।

४—नित्य-कर्मविषयक पुस्तकोंका प्रकाशन एवं प्रचार।

५—संस्कार-सम्बन्धी पुस्तकोंका प्रकाशन एवं प्रचार।

६—पुराणोंसे उद्धृत धार्मिक आख्यानोंका प्रकाशन एवं प्रचार।

७—ऐतिहासिक धार्मिक कथाओंका संग्रह तथा प्रकाशन।

८—पाठ्योपयोगी छोटी-छोटी धार्मिक पुस्तकोंकी रचना एवं प्रकाशन।

९—अप्रकाशित धार्मिक कविताओंका संग्रह तथा प्रकाशन।

१०—साम्प्रदायिक तत्त्वोंकी विवेचना करनेवाली पुस्तकें बनवाना और प्रकाशित करना।

११—धार्मिक सिद्धान्तोंपर किये गये आक्षेपोंके युक्तिपूर्ण उत्तर देनेवाली पुस्तकोंका निर्माण एवं प्रकाशन।

१२—धार्मिक सिद्धान्तोंके प्रचारके लिये पत्र, पत्रिका आदिका अधिक संख्यामें प्रकाशन।

१३—सिनेमा, नाटक आदिमें धार्मिक सिद्धान्तोंके विरुद्ध

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दृश्योंका प्रदर्शन बन्द करनेका प्रयत्न करनेके लिये धार्मिक सिद्धान्तोंके अनुकूल दृश्योंका तैयार कराकर प्रचार करना।

१४–आचार-विचार, आहार-शुद्धि, द्रव्य-शुद्धि आदि धार्मिक व्यवहारोंपर सयुक्तिक एवं सप्रमाण पुस्तकोंकी रचना एवं प्रकाशन।

१५–सदाचारके प्रसारके लिये इसके तत्त्वोंको समझानेवाली पुस्तकोंका प्रकाशन।

१६–ज्ञान, उपासना, भक्ति-मार्ग-विषयक पुस्तकोंका निर्माण एवं प्रकाशन।

इनके अतिरिक्त और भी कोई उपयोगी उपाय सूझ पड़े तो उनका अवलम्बन कर हिन्दीमें धर्म-साहित्यकी वृद्धिका प्रयत्न करना आवश्यक जान पड़ता है।

शिव-तत्त्व ही अनन्तरूप है

(लेखिका–बहिन श्रीजयदेवीजी)

श्यामा–अरी सुनयना बहिन! मैं शास्त्रज्ञ तत्त्ववेत्ताओंसे सुनती हूँ कि शिव ही कल्याण करनेवाले हैं, आशुतोष हैं अर्थात् बहुत शीघ्र प्रसन्न होनेवाले, अपने भक्तोंको धनदान, मोक्षदानसे सन्तुष्ट करनेवाले और इच्छित वर देनेवाले हैं। वे अत्यन्त दयालु, कृपालु, अपनेमें निरीह, अपरिग्रह और अक्रिय हैं, न उनको धनकी इच्छा है न धामकी। वे चाहे जहाँ विचरते रहते हैं, किसीसे कुछ लेते नहीं, क्योंकि उनको किसी वस्तुकी आवश्यकता ही नहीं। ऐसे परम उपकारी शिव-भगवान्‌की कुछ लोग स्त्रियोंको पूजा करनेका निषेध करते हैं। कहते हैं कि स्त्रियोंको शिवका पूजन नहीं करना चाहिये। क्या स्त्री-जाति उस जगत्कर्ताकी सृष्टिमें नहीं है? क्या उनका कल्याण नहीं होना चाहिये? क्या स्त्री-जाति यों ही भव-कूपमें पड़ी टक्करें खाती रहेंगी? भगवान् तो कहते हैं और बार-बार यही कहते हैं कि मनुष्य-शरीर कल्याण करने या होनेके लिये ही मिला है। क्योंकि मनुष्य-शरीर ईश्वरको बहुत प्यारा है।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि व्रज मुझे वैकुण्ठके समान प्रिय है; ऐसे ही श्रीराम अपने सखा सुग्रीवादिसे कहते हैं कि हे सखाओ! यद्यपि सब वैकुण्ठकी प्रशंसा करते हैं परन्तु मुझे तो यह अयोध्या ही सबसे अधिक प्यारी है। अयोध्यासे प्रयोजन इस मनुष्य-शरीरसे ही है। जब ऐसा कल्याणकारी यह मनुष्य-शरीर है तब आप ही कहिये, क्या यह स्त्री-जाति मनुष्य नहीं है? यदि है तो फिर उसको कल्याण-मार्गसे क्यों वञ्चित रक्खा जाय? यह मुझको बड़ा संशय है, आप ही मेरे इस संशयको दूर करेंगी।

कोकिला–अरी बहिन! तेरा संशय यथार्थ है। जैसा तू कहती है शिव ऐसे ही हैं। जो बुद्धिहीन शास्त्रके मर्मको नहीं जानते वे ही कहते हैं कि स्त्रियोंको शिवका पूजन नहीं करना चाहिये। अभीतक उनको यही ज्ञात नहीं है कि पुरुष किसको कहते हैं और स्त्री किसको कहते हैं। जिनको वे पुरुष माने हुए हैं, वे वास्तवमें पुरुष नहीं हैं, वे तो नाममात्रके अर्थात् वाणीके विलासमात्रके पुरुष हैं। वेदवेत्ताओंका तो यह कथन है कि सब स्त्री हैं। एक पुरुषके सिवा दूसरा कोई पुरुष ही नहीं। पुरुष तो वह एक है जो सबकी पुरियोंमें शयन करता है, और सब स्त्री हैं। मायासे ही, जो कि स्वयं स्त्री है, सबकी उत्पत्ति है। हाँ, जो पुरुषको भजे वही पुरुष हो सकता है। जो अपनेको पुरुष माने हुए हैं, परन्तु ईश्वर–पुरुषका भजन नहीं करते, वे सब स्त्री हैं। लोग यह कहते हैं कि स्त्रियोंको शिवका भजन नहीं करना चाहिये

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तब फिर क्या शवका भजन करना चाहिये? नहीं, नहीं। अनात्मा शवके भजनसे क्या फल होगा? अनात्मा शवकी ही प्राप्ति होगी। जिसका भजन-ध्यान किया जाता है, उसीकी प्राप्ति होती है। गीतामें भगवान्‌के वचन हैं कि देवताओंके पूजनेवाले देवताओंको प्राप्त होते हैं, भूतोंके पूजनेवाले भूतोंको प्राप्त होते हैं और मुझको पूजनेवाले मुझको प्राप्त होते हैं। शिव ही आत्मा है; शिव ही परमात्मा है; शिव ही ब्रह्मा, शिव ही विष्णु और शिव ही शिव हैं। पञ्चभूत—आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी सब शिव हैं। परा-अपरा सब शिव हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, भूत, भौतिक जो कुछ भी दृश्य है, सब शिव हैं। तीनों अवस्था जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति शिव हैं। परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी चार प्रकारकी वाणी शिव है। ऋक्, यजुः, साम तीनों वेद शिव है। जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज चारों खानि शिव हैं। भूः, भुवः, स्वः तीनों व्याहृतियाँ शिव हैं। ऊपर शिव, नीचे शिव, दायें शिव, बायें शिव, उत्तर शिव, दक्षिण शिव, पश्चिम शिव, पूर्व शिव। सब दिशा-विदिशा शिवात्मक हैं। शिव ही पृथिवीमें अन्नरूप होकर सबको वीर्य प्रदान करते हैं, जलमें रस होकर पुष्टि देते हैं, अग्निमें तेज होकर प्रकाश तथा उष्णता देते हैं, वायुमें स्पर्श होकर शीत-उष्ण, कोमल-कठिनका बोध कराते हैं और आकाशमें अवकाशरूप होकर सबको अवकाश देते हैं।

हे बहिन! शिव एक हैं, अद्वितीय हैं, सर्व कल्पनाओंसे रहित शुद्ध संविद्‌रूप हैं, अजर हैं, अमर हैं, केवल हैं, निष्कल हैं, निरामय हैं, निरवयव हैं। अनामय, निरामय, अचल हैं, अकाम हैं, पूर्ण हैं। गुणातीत हैं, गुणखानि हैं, अज हैं। सर्वज्ञ, विभु, व्यापक और अक्रिय हैं। फिर भी अपनी माया-शक्तिसे विश्व-रूप धारण करके अनेकरूप हो जाते हैं। सृष्टिकी रचना करनेके लिये शिव ब्रह्मा हो जाते हैं, विष्णु होकर शिव जगत्‌का पालन करते हैं, और रुद्ररूप होकर जगत्‌का संहार करते हैं। सूर्यरूप होकर शिव ब्रह्माण्डभरको प्रकाश करते हैं। अग्नि-रूप होकर अन्नको पचाते हैं। इन्द्र होकर शिव वर्षा करते हैं। धर्मराज होकर धर्मात्माओंको सुगति देते हैं। यमराज होकर पापियोंको दण्ड देते हैं। नैर्ऋति होकर दैत्योंकी रक्षा करते हैं। वरुण होकर जलचरों-पर शासन करते हैं। वायु होकर सर्वत्र वहन करते हैं। कुबेर होकर धनाभिलाषियोंको धन प्रदान करते हैं। चन्द्र होकर सब ओषधियोंमें रस उत्पन्न करते हैं। ईश्वररूपसे सबको नियममें रखते हैं। शेषनाग होकर पृथिवीको धारण करते हैं। ध्रुवरूप होकर नक्षत्रादिको अपने-अपने स्थानोंपर नियत रखते हैं। ब्रह्माकी शक्ति ब्रह्माणी, विष्णुकी शक्ति श्री और शिवकी शक्ति भवानी ये सब शिवरूप हैं। शिवमेंसे निकलती हैं, शिवमें स्थित रहती हैं और अन्तमें शिवमें समा जाती हैं। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी ये सब शिवमें व्याप्त हैं। इस कारण सब शिवरूप ही हैं। एक शिव सत् हैं। शिवके सिवा सब असत् है। जैसे रज्जुमें सर्प कल्पित है, सीपीमें चाँदी कल्पित है, इसी प्रकार अधिष्ठानरूप शिवमें समस्त विश्व कल्पित है, अध्यस्त है। रुद्रहृदयोपनिषद्‌में व्यासभगवान्‌के चरणकमलोंको सिरसे प्रणाम करके श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

'हे भगवन्! सब वेदोंमें कौन देवता है? और सब देवता किसमें हैं? किसकी नित्य सेवा करनेसे मुझपर देवता प्रसन्न होंगे? अर्थात् मुझे किस देवता-की उपासना करनी चाहिये?'

शुकदेवजीके इसप्रकार कहनेपर व्यासभगवान् कहने लगे!

'हे शुक! सर्वदेवमय रुद्रभगवान् हैं और सब देवता रुद्ररूप हैं। रुद्रके दक्षिण ओर सूर्य, ब्रह्मा,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अग्नि तीन देवता हैं। बाईं ओर उमादेवी, विष्णु और चन्द्रमा ये तीन विराजमान हैं। जो उमा है, वही स्वयं विष्णु है। जो विष्णु है, सो चन्द्रमा है। जो गोविन्दको नमस्कार करते हैं, वे ही शङ्करको नमस्कार करते हैं। जो भक्तिसे हरिकी पूजा करते हैं वे ही शिवकी पूजा करते हैं। जो शिवजीसे द्वेष करते हैं वे जनार्दनसे द्वेष करते हैं। जो रुद्रभगवान्‌को नहीं जानते वे केशवको भी नहीं जानते। रुद्रभगवान्‌से बीज प्रवृत्त होता है। बीजके कारण जनार्दनभगवान् हैं। जो रुद्र हैं वही स्वयं ब्रह्मा हैं। और जो ब्रह्मा हैं वही हुताशन (अग्नि) हैं। ब्रह्मा और विष्णुस्वरूप रुद्रभगवान् हैं। अग्नि और चन्द्रमास्वरूप जगत् है। पुँल्लिङ्ग जितने नाम-रूप हैं सर्व शिवरूप हैं और स्त्रीलिङ्ग जितने नाम-रूप हैं, सो सब भगवती उमादेवी हैं। स्थावर-जंगम जितनी प्रजा है, सो सब उमा और रुद्ररूप है। जितने नामरूप प्रकट हैं, सब उमादेवी हैं, अप्रकट सब शिवात्मक हैं।

उमा-शङ्करका जो योग है वही विष्णु कहलाता है। उनके लिये भक्तिसे युक्त नमस्कार करते हैं। आत्मा, परमात्मा और अन्तरात्मा तीनों आत्माओंको जानकर परमात्माको प्राप्त करता है। अन्तरात्मा ही ब्रह्मा है, परमात्मा महेश्वर हैं और सब भूतोंका आत्मा सनातन विष्णु हैं।

हे शुक! इस त्रिलोकी-वृक्षकी भूमिमें, विटप-शाखाओंमें, अग्रभागमें, मध्यभागमें और जड़में ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर है। इस त्रिलोकीका अग्रभाग ब्रह्मा हैं, मध्यभाग विष्णु हैं और सबका मूल रुद्रभगवान् हैं। कार्य विष्णु हैं, क्रिया ब्रह्मा हैं, सबका कारण महेश्वर हैं। प्रयोजनके लिये रुद्रभगवान्‌की एक मूर्ति तीन प्रकारसे स्थित है। धर्म रुद्रभगवान् हैं। जगत् विष्णु-भगवान् हैं। सबका ज्ञान ब्रह्माजी हैं। जो चतुर, बुद्धिमान् मनुष्य तीन बार 'श्रीरुद्र रुद्र रुद्र' ऐसा उच्चारण करता है उसके सब पाप छूट जाते हैं। रुद्रभगवान् नर हैं, उमा नारी; उनके लिये नमस्कार है, नमस्कार है। रुद्र ब्रह्मा, उमा वाणी हैं; उनके लिये नमो नमः। रुद्र विष्णु हैं, उमा लक्ष्मी हैं; रुद्रके लिये नमस्कार है। लक्ष्मीके लिये नमस्कार है। रुद्र सूर्यके लिये नमस्कार है, उमा छायाके लिये नमस्कार है। सोमरूप रुद्रके लिये नमस्कार है, तारारूप उमाके लिये नमस्कार है। दिनरूप रुद्रके लिये नमस्कार है, रात्रिरूप उमाके लिये नमस्कार है। यज्ञरूप रुद्रको नमस्कार है, वेदीरूप उमाको नमस्कार है। वह्निरूप शिवको नमस्कार है, स्वाहारूप उमाको नमस्कार है। वेदरूप शिवको नमस्कार है, शास्त्ररूप उमाको नमस्कार है। वृक्षरूप शिवको नमस्कार है, वल्लीरूप उमाको नमस्कार है। अर्थरूप शिवको नमस्कार है, अक्षररूप उमाको नमस्कार है। गन्धरूप शिवको नमस्कार है, पुष्परूप उमाको नमस्कार है। लिङ्गरूप शिवको नमस्कार है, पीठरूप उमाको नमस्कार है। सर्व देवात्मरूप शिवको नमस्कार है। इन मन्त्र और पदोंसे मैं शिव-पार्वतीको नमस्कार करता हूँ।

हे बहिन! जैसे यह समष्टिरूप सर्व शिव ही हैं, इसी प्रकार व्यष्टिरूप भी सब शिव हैं। जैसे समष्टिका व्यापार साक्षात् शिव चला रहे हैं, उसी प्रकार व्यष्टिका व्यापार भी शिवके आधीन है। श्रोत्ररूप हो शिव शब्दोंको सुनते हैं। त्वचारूप हो शिव ही कोमल-कठिनका स्पर्श करते हैं। नेत्ररूप हो नील-पीतादि रूपोंको देखते हैं। जिह्वासे शिव षट्‌रसका स्वाद लेते हैं। नासिकारूप हो शिव सुगन्ध, दुर्गन्ध दोनों प्रकारके गन्ध सूँघते हैं, और वाणीसे शिव ही बोलते हैं। सबके हाथसे शिव ग्रहण करते हैं। सबके पदोंसे शिव चलते हैं। उपस्थसे शिव ही आनन्द लेते हैं और वायुसे विसर्जन करते हैं। प्राण होकर शिव ऊपरको जाते हैं, अपान होकर शिव नीचेको जाते हैं। व्यान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

होकर शिव ही भारी वस्तुओंको उठाते हैं। समान होकर शिवदेव ही अन्नरसको सब अङ्गोंमें पहुँचाते हैं। और उदान हो शरीरको पृथिवीपर गिरने नहीं देते। मन होकर शिव मनन करते हैं, चित्त होकर शिव ही चिन्तन करते हैं, बुद्धि होकर निश्चय करते हैं और अहङ्कार होकर शिव ही अभिमान करते हैं। इसलिये कर्ता, भोक्ता, मन्ता, प्रमाता, विज्ञाता, अहंकर्ता शिव ही हो जाते हैं। यों सब क्रिया शिव करते हैं, और परमार्थसे कुछ भी नहीं करते हैं। यह उनकी माया-शक्तिका प्रभाव है कि जो वास्तवमें अकर्ता होनेपर भी करते हुए-से दिखायी देते हैं। शिवके भक्त ही शिवके इस रहस्यको जानते हैं।

अरी बहिन ! जब तू शिव-भजनसे स्वच्छ हो जायगी, तब तेरे प्रश्नोंका उत्तर आप ही तेरी बुद्धि-में आ जायगा कि स्त्रियोंको शिवका भजन करना चाहिये या नहीं। जब सब शिव-ही-शिव हैं तब ऐसे शिवको छोड़ और किसका भजन स्त्री-जाति करेगी ? यह सब भेददर्शियोंका भ्रम है कि शिवका भजन नहीं करना चाहिये। जब सब शिव हैं तब भजन भी और किसका हो ? जिस किसीका भी भजन करोगी, सब शिवका ही तो भजन होगा। भेददर्शियोंको सब भिन्न-भिन्न दिखायी देता है। अभेददर्शियोंको तो सब शिव-ही-शिव दिखायी देता है। कर्ता, भोक्ता, प्रमाता और विज्ञाता ही शिव हों ऐसा नहीं ! किन्तु कर्म, भोग्य, प्रमेय और विज्ञेय भी शिव ही हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके विषय शिव ही हैं। पाँचों प्राणोंकी क्रिया भी शिव ही है। मन्तव्य, चिन्तितव्य, बोद्धव्य और अहंकर्तव्य शिव हैं। सब कुछ शिव हैं, और कुछ भी नहीं। शिव निर्विकार हैं, निराकार हैं, निर्मल हैं, शुद्ध हैं, बुद्ध हैं, अक्रिय हैं, असंग हैं, अनंग हैं, सर्व प्रपञ्चसे रहित निष्कल हैं, निरवद्य हैं, निरञ्जन हैं, एक हैं, भेदसे वर्जित हैं। वे न कहीं आते हैं, न कहीं जाते हैं। न जन्मते हैं, न मरते हैं। न घटते हैं, न बढ़ते हैं। सर्वदा एक रस, पूर्ण ज्योति आनन्दघन हैं। ऐसे प्रभुमें कल्पनाका होना सम्भव ही नहीं है। फिर भी मायाने, निर्विकल्प-में भी कल्पना दिखायी है। आश्चर्य है ! महान् आश्चर्य है !! कुछ आश्चर्य भी नहीं है। मायामें सर्व सामर्थ्य है। तभी वेदवेत्ता मायाको अघटघटनापटीयसी कहते हैं। विशेष पाप हों तो देर भले ही लगे, परन्तु शिवके नाम लेनेसे माया दूर भाग जाती है। देर-सबेर शिव-का भजन करनेसे माया भाग अवश्य जाती है इसमें किञ्चित् भी सन्देह नहीं है। इस कारण मुमुक्षुओंको, चाहे स्त्री हो या पुरुष, सबको शिवका भजन करना चाहिये, शिवका ही ध्यान और पूजन करना चाहिये।

हे श्रेयसाधिका ! शिव एक हैं। गुण-क्रिया-सम्बन्ध उनमें कोई नहीं, इस कारण उनका नाम कोई नहीं है। क्योंकि गुण-क्रियासे सम्बन्धवाली वस्तुका नाम होता है। जैसे कृष्णदत्त, कृष्ण या श्वेत रंगवाला होनेसे काला अथवा गोरा कहलाता है। पढ़ा हुआ होनेसे विद्वान् कहलाता है। रसोई बनानेवाला होनेसे पाचक कहलाता है। पुत्रके सम्बन्धसे पिता और पौत्रके सम्बन्धसे पितामह कहाता है। भतीजेके सम्बन्धसे काका और दौहित्रके सम्बन्धसे नाना इत्यादि कहाता है। इसी प्रकार शिवमें वास्तवमें नाम-रूप कोई नहीं, फिर भी ऋषि-मुनियोंने उनके अनेक नाम-रूप माने हैं। शिव ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—इन छः ऐश्वर्यवाले होनेसे भगवान् कहलाते हैं। सबको आकर्षण करनेसे, अर्थात् सबको अपनी ओरको खींचते हैं इसलिये शिव कृष्ण कहाते हैं। कृषि नाम सत्ताका है और ण आनन्दका नाम है। शिव सत् और आनन्दस्वरूप हैं, इसलिये भक्त उनको कृष्ण कहते हैं। शिव सबके मनकी जाननेवाले हैं। भक्तों-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के साथ, प्रकृतिके साथ और ब्रह्माण्डके साथ रमण करते हैं, इस कारण शिव राम कहलाते हैं। अथवा रा का अर्थ विश्व है, और म का अर्थ ईश्वर है, इसलिये शिव राम कहलाते हैं। शिव कल्याणकी राशि हैं, इस कारण शिव, शिवा कहाते हैं। अथवा शिव नाम मोक्षका है और आ, देनेवालेका नाम है, शिव मोक्षदाता हैं, इसलिये शिवा कहलाते हैं। शिव सबके आत्मा हैं इसलिये शिव परमात्मा कहाते हैं। शिव सर्व भूतोंमें प्रवेश किये हुए हैं, इसलिये शिव विष्णु कहाते हैं अथवा भक्तोंको मायासे वियुक्त करते हैं, इसलिये शिव विष्णु कहाते हैं। अपरिच्छिन्न वस्तुका नाम ब्रह्म है, शिव अपरिच्छिन्न हैं, इस कारण शिव ब्रह्म कहलाते हैं। श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठका नाम परात्पर है। शिव सबसे श्रेष्ठ हैं इसलिये शिव परात्पर कहाते हैं। शुद्ध संवित् ज्ञानका नाम परासंवित् है। शिव शुद्ध ज्ञानस्वरूप हैं, इसलिये परासंवित् हैं। शिव नाम कल्याणका है, शिव कल्याण करनेवाले हैं, इसलिये परमशिव हैं। पापोंको हरनेवाले होनेसे शिवका नाम हरि है। इसप्रकार भगवान्, परमेश्वर, कृष्ण, राम, शिवा, दुर्गा, नारायण, हर, हरि, परब्रह्म, परात्पर, परासंवित्, परमशिव इत्यादि सब नाम शिवके हैं। वस्तुतः उनका कोई भी नाम नहीं है। शिव-शिव जपनेसे सब भेद-भ्रम मिट जायगा। यह पता लग जायगा कि सब रूप शिव ही हैं, शिवसे अन्य कोई वस्तु ही नहीं है। तब भजन, पूजन और ध्यान किसका होगा? जिस किसीका भजन-ध्यान करोगी, वह शिवका ही ध्यान, भजन, पूजन होगा। शिव विना जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय नहीं हो सकता। क्योंकि सब जगत्के कर्ता, धर्ता और पालन करनेवाले शिव ही हैं। सब जगत्के मूल शिवको छोड़ और किसका भजन करना योग्य है? किसीका नहीं। जैसे पत्ते-पत्तेके सींचनेसे वृक्षको कुछ लाभ नहीं होता, वैसे ही अन्यान्य देवोंके पृथक्-पृथक् पूजनसे अपनेको इतना लाभ नहीं होता, जैसा कि मूलरूप एक शिवके पूजनेसे। क्योंकि देवता सब शिवके बनाये होनेसे उनके शासनसे बाहर नहीं हैं। इसलिये जो बहिन-भाई अक्षय सुख चाहें, उनको किसी भी नाम-रूपसे एक शिवका ही भजन-पूजन करना योग्य है। जो जन्म-मरणके चक्रमें घूमना चाहे वे चाहे औरका भजन करे।

सबका सार यह है—

कुं०—बाला बहिना होइ जो, करे नित्य शिव जाप।
शिव शिव जपनेसे सदा, भस्म होय सब पाप॥
भस्म होय सब पाप, जन्म कारागृह छूटे।
होय अचल स्वाराज्य, नित्य अक्षय सुख लूटे॥
जयदेवी मुख मोड़, खोल ले अक्षय ताला।
क्या नर हो क्या नारि, सबहि शिव हैं री बाला॥

कल्याणकी ओर

(लेखक—श्रीयुत अनन्तशंकर कोल्हटकर बी० ए०)

आजका दिन

कलका दिन कालका था, वह चला गया। उसके लिये रोओ मत। यदि कुछ बुरा किया हो, तो पछताओ जरूर। दृढ़ निश्चय करो, आगे वैसा कभी नहीं करूँगा।

और आनेवाला कल? कौन जाने वह किसका है! तुम्हारा भी है या नहीं? क्या भरोसा है? पलक मारते बिहार उजड़ गया!

रहा आजका दिन। यही तुम्हारा हो सकता है। विश्वमंगल परमात्माको याद करते हुए, सत्कार्यमें लगे रहो। उसका फल भी उसीको समर्पण करो। आजका दिन सार्थक होगा। प्रतिदिनको सार्थक करनेपर जीवन भी व्यर्थ न होगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अवतारसिद्धि

(लेखक—पं० श्रीविष्णुदत्तजी शर्मा बी० ए०)

हमारा अनुभव है कि—

अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्।

यह उपदेश सभी आध्यात्मिक अथवा धार्मिक विषयोंमें नहीं लग सकता, किन्तु प्रायः—

वक्तुरेव हि तज्जाड्यं श्रोता यत्र न बुद्धयते।

—यही हाल देखा जाता है। बहुत-सी आध्यात्मिक वा धार्मिक शङ्काएँ, शास्त्रके बिना भी, तर्कसे और किसी-किसी अंशमें अनुभवकी सहायतासे, निवृत्त हो सकती हैं। अवतारोंके विषयमें जो अश्रद्धा रहा करती है उसको भी हम इस लेखमें इसी उपायसे दूर करना चाहते हैं।

इस सृष्टिको किसी-न-किसीने रचा अवश्य है, क्योंकि कर्ताके बिना कोई कार्य नहीं होता। इसका रचयिता भी कोई ऐसा होना चाहिये जिसके ज्ञान और सामर्थ्यकी कोई अवधि न हो, क्योंकि सर्वज्ञ और परमेश्वर रचयिता बिना, ऐसी सुन्दर और नियमबद्ध सृष्टि बन नहीं सकती। मनुष्यादि सृष्ट जीव ही जब अपने प्रत्येक कार्यमें सुन्दरता और नियम चाहते हैं तो उनमें यह स्वभाव और बुद्धि रखनेवाले प्रभुको सुन्दरता और नियमका विचार न हो, यह अनहोनी बात है। यदि सृष्टिको सर्वज्ञ परमेश्वरने बनाया है, तो अन्धाधुन्ध चलनेके लिये भी नहीं बनाया। यदि अन्धाधुन्ध चलनेके लिये ही बनाया होता, तो सृष्टि कभीकी नष्ट भी हो गयी होती, क्योंकि जो वस्तु अन्धाधुन्ध चलती है वह टिकाऊ नहीं हो सकती। मनुष्यादि सृष्ट जीव ही जब अपनी बनायी वस्तुमें टिकाऊ रहनेका विचार और उपाय पहले करते हैं तो यह बुद्धि उनमें रखनेवाले परमेश्वरको अपनी सृष्टिके सम्बन्धमें यह विचार न हो, यह भी अनहोनी बात है। अथवा ऐसा स्रष्टा सर्वज्ञ भी नहीं हो सकता। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि टिकाऊ होनेके लिये किसी नियमका पालन भी आवश्यक है। जिस नियमपर यह सृष्टि सदा चल सकती है उसीका नाम (धारणात्=) धर्म है और जो इसमें विघातक है उसीका नाम अधर्म अथवा पाप है। इससे यह सरलतासे समझमें आ सकता है कि अपनी सृष्टिको धर्मपर चलाने और अधर्मसे रोकनेके सम्बन्धमें—जिसके बिना यह टिक नहीं सकती—परमात्मा कभी निश्चिन्त और निश्चेष्ट नहीं हो सकता। इसीलिये उसका नाम जगन्नियन्ता है।

राज्यकार्यकी भाँति सृष्टिकार्य भी दो साधनों बिना नहीं चल सकता। एक ज्ञान और सुख-सामग्री है और दूसरा प्रबन्ध है जिसके अन्तर्गत शासन अथवा दण्ड भी है। जीवमात्र सुख चाहते हैं, क्योंकि जीवनका और कोई प्रयोजन ही नहीं हो सकता। यदि सुख न होता तो संसार ही नहीं चलता। इसलिये परमेश्वरने इस लोक और परलोकके सभी पदार्थ जीवोंके लिये सुख वा भोग-सामग्रीके रूपमें उत्पन्न किये हैं। परन्तु केवल भोग-सामग्रीसे ही काम नहीं चल सकता। ज्ञान बिना यह सुख-सामग्री व्यर्थ ही नहीं, किन्तु हानिकारक हो सकती है। सामग्रीका सदुपयोग जाने बिना यह सुख नहीं दे सकती और इसका दुरुपयोग जाने बिना यह हानि कर सकती है। एक ही अग्नि स्वादिष्ट पदार्थ पका सकती है और शीतसे रक्षा कर सकती है, परन्तु जीवन और सर्वस्वको भस्म भी कर सकती है। एक ही जल गर्मी और प्यासमें अमृतकी भाँति शान्ति

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कर सकता है, परन्तु डुबोकर अथवा बहाकर, जीवन और सर्वस्वको नष्ट भी कर सकता है। इस ज्ञानके साधन पदार्थविद्या (Science), आयुर्वेदादि लौकिक शास्त्र हैं जिनको परमेश्वरने उत्पन्न किया। परन्तु सृष्टि यह लोकमात्र नहीं है और यह लोक ही जीवका आदिम और अन्तिम घर नहीं है। ऊपर और नीचे और भी लोक हैं जहाँ जीवको जाना पड़ता है और सुख-दुःख भोगने होते हैं। जीवमें वह शक्ति है जिससे वह बढ़ते-बढ़ते परब्रह्मतक हो सकता है और स्वयं ब्रह्म होनेसे, ज्ञान-पिपासा उसकी ऐसी बढ़ी हुई है कि समग्र सृष्टि और उसके कर्ताका पूरा-पूरा रहस्य जाने बिना उसका सन्तोष नहीं हो सकता। इन विषयोंका ज्ञान भी आवश्यक है जिसके साधन परमात्माने वेदादि शास्त्र उत्पन्न किये हैं।

यह तो कोई भी नहीं मानता कि सृष्टिके जड पदार्थोंको मनुष्यने रचा है, किन्तु प्रकृतिको इनका कर्ता मानते हैं, यद्यपि यह नहीं बतलाते कि जड प्रकृति स्वयं कैसे उत्पन्न हो गयी। परन्तु पश्चिमीय विद्वानों और उनके अनुयायी भारतीयोंको यह भ्रम अवश्य है कि लौकिक और वैदिक शास्त्रोंको समय-परम्पराके अनुभवसे मनुष्योंने ही रचा है। परन्तु ज्ञानविशेषका मूल मिल जानेपर तो मनुष्य चाहे उसकी शाखा-प्रशाखा निकाल भी ले और जन्मान्तरीय एक संस्कारसे संस्कारान्तर उत्पन्न भी हो जायँ, पर सृष्टिके आदिमें जब कि न जन्म था और न संस्कार था, पारलौकिक वा पारमार्थिक विषयोंका ज्ञान तो उसको हो ही कैसे सकता था? इस लोकके पदार्थोंका ज्ञान भी उसको कैसे हुआ? आदिमें मनुष्यने पृथिवीके पदार्थ देखे अवश्य, पर उनके गुण और उपयोग किसने बतलाये, जिसके बिना वे पदार्थ उसके भोगमें ही नहीं आ सकते थे? यही कारण है कि वेदोंको अपौरुषेय (Revealed) कहते हैं और उनके कहनेवालोंको 'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः' (God-inspired) कहते हैं। हमारा अनुभव है कि आदिमें लौकिक शास्त्रमात्र भी वेद ही थे जिसके कि 'आयुर्वेद', 'धनुर्वेद', 'गान्धर्ववेद' आदि नाम प्रमाण हैं। पीछे जब वे भाष्य, टीकादि ग्रन्थोंमें ले लिये गये तो प्रयोजन न रहनेसे लुप्त वा नष्ट हो गये, अथवा अब भी कदाचित् हस्तलिखित पुस्तकोंके रूपमें विद्यमान हों। इससे सिद्ध है कि लोक और परलोक, आत्मा और अनात्मा-सम्बन्धी सब ज्ञान और शास्त्रमात्र परमेश्वरके दिये हुए हैं और विधि-निषेधमात्र उसीके बतलाये हुए हैं। और यह सृष्टिके आदिकी ही बात नहीं है, किन्तु सदा-सर्वदा समय-समयपर देश-देश और जाति-जातिमें जिस-जिस नवीन ज्ञान वा उपायको, अथवा भूले हुए विद्यमान ज्ञान वा उपायको स्मरण दिलानेकी आवश्यकता होती है, तब-तब वहाँ-वहाँ परमेश्वर ही उस-उसको प्रकट करता है, चाहे वह इस कार्यको मनुष्यविशेषोंकी बुद्धिको प्रेरण करके करे अथवा स्वतः (अवतार लेकर) करे। औरोंके द्वारा कार्य होते हुए, स्वयं तो वह उसको करने भी क्यों लगा? राजाको प्रजामें अपना अभिप्राय प्रकट करना होता है तो वह स्वयं एक-एक व्यक्तिके घरमें भटकता नहीं फिरता है, किन्तु बड़े अधिकारी; छोटे कर्मचारी, डुग्गी, विज्ञापनोंके द्वारा ही प्रकट करता है। दो आधुनिक ज्ञानविशेषोंके उदाहरणोंके द्वारा यह विषय स्पष्ट हो जायगा—

१—पश्चिमीय देशोंकी शासक जातियाँ, चाहे विद्या और बुद्धि बढ़ी-चढ़ी होनेसे और जातीयता और देशानुरागका भाव प्रबल होनेसे चरित्र और व्यवहारमें श्रेष्ठ हैं, तथापि इसका कारण प्रायः धर्मश्रद्धा वा पाप-पुण्यका विचार नहीं है, क्योंकि व्यवहारमें वे प्रायः निरीश्वरवादी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हैं और प्रत्यक्ष और तर्कको ही प्रमाण मानते हैं। उनका ईसाई-धर्म भी आवागमनको नहीं मानता। परन्तु आत्माकी अमरता, परलोक और आवागमन त्रिकाल और सृष्टिके जीवमात्र-में सत्य है और आध्यात्मिक वा ईश्वरीय ज्ञानका मूल है। यह ज्ञान उनको कराना आवश्यक हुआ। परन्तु यह कैसे हो जब कि उनको प्रत्यक्षके सिवा और किसी प्रमाणमें श्रद्धा ही नहीं हो सकती। यही कारण है कि वहाँ इस ज्ञानका प्रत्यक्ष ही उपाय निकला। अर्थात् वहाँ Swedenborg, आदि व्यक्तिविशेषोंमें एक आध्यात्मिक शक्तिविशेष प्रकट होने लगी जिससे उनके द्वारा मृतात्माओंसे ऊपर लिखे विषयोंमें प्रत्यक्ष बातचीत होने लगी। ऐसे व्यक्ति Medium कहलाते हैं और यह विद्या Spiritualism कहलाती है। इस विद्याका प्रचार Psychical Research Societies के द्वारा Myers, Wallace, Crookes, Doyle, Lodge, Hill आदि कट्टर प्रत्यक्षवादी विज्ञानाचार्यादिके द्वारा ही पश्चिमीय देशोंमें होने लगा जिससे वहाँ इन विषयोंमें बहुत कुछ श्रद्धा हो चली है। इस उदाहरणमें विचारणीय अंश यह है कि ऐसा सरल उपाय भारतके आर्योंमें क्यों नहीं निकला जिनमें श्रद्धा और आध्यात्मिक योग्यता और सब जातियोंसे अधिक है और जिनमें प्राचीन कालमें मृतात्माओंसे बातचीत कर लेना सहज और साधारण था जिसके उदाहरण शास्त्रोंमें राजा चित्रकेतुके पुत्रादि (भागवत ६। १६) अनेक हैं। इस शङ्काका समाधान यही है कि ऐसे उपायकी आवश्यकता नास्तिकप्राय और अश्रद्धालु देशोंमें ही थी। दूसरे भारतादि देशोंके पठितलोग भी बात-बातमें अपने शास्त्रों-की अपेक्षा पश्चिमीय विद्वानोंको ही प्रमाण मानकर, अश्रद्धालु हो गये हैं, इसलिये इन लोगोंका सन्तोष भी पश्चिमीय विद्वानोंके द्वारा ही हो सकता था।

२—इसी प्रकार आर्यशास्त्र और आर्यलोग सदासे वृक्षोंको जीव मानते आये हैं, जैसा कि लिखा है—

तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना।
अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः॥
(मनुस्मृति १।४९)

परन्तु पश्चिमीय विद्वान् उनको जड और निर्जीव मानते आये हैं। उनके ज्ञानके लिये इस भ्रमको एक भारतीय आर्य डाक्टर जे० सी० बोसको निमित्त बनाकर, ईश्वरने प्रत्यक्ष प्रमाणोंसे ही दूर कर दिया।

देश-देश और जाति-जातिमें ये जो पैगम्बर, आचार्य, उपदेशक, साधु, सन्त, लोकनायक (leaders), आविष्कारक (discoverers and inventors,) आदि उत्पन्न हुए हैं और होते हैं, जिनके उपदेशों अथवा सिद्धान्तोंका प्रचार लोगोंमें हुआ है वा होता है उनकी बुद्धियोंका प्रेरक परमेश्वर ही है।

अब रही सृष्टिके प्रबन्धकी बात। सो सृष्टिके मूलमें कर्म और कर्मफलको रखना; समयको कल्प, युग, मन्वन्तरादिमें और सृष्टिकी अवस्थाको सृष्टि, स्थिति, प्रलयमें बाँटना; जगत्को कई लोकोंमें बाँटकर उनके शासनके लिये इन्द्रादि देवतादि नियत करना; सृजनकार्यके लिये तप, ब्रह्मा, मरीच्यादि नौ ऋषि और दक्षादि प्रजापति; स्थितिकार्यके लिये धर्म, विष्णु, मनुगण, देवता, राजा; और संहारकार्यके लिये अधर्म, रुद्र, सर्प, असुर, भूत, प्रेत, पिशाचादि उत्पन्न करना (भागवत २।७।३९); जीवलोकके सुखके लिये पञ्चतत्त्व और उनसे बननेवाले अगणित पदार्थ और जीव पुण्यात्माओंके पारितोषिकरूप पर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्वर्गादि लोक और वहाँके भोग; दुष्टात्माओंके दण्डके लिये इस लोकमें रोग, मृत्यु, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, बाढ़, तूफान, भूचाल, सर्पादि हिंस्र जन्तु; और परलोकमें नरकादि लोक और वहाँकी यातनाएँ बनाना—ये सब प्रबन्धहीके तो रूप हैं। ब्रह्मसूत्रके ३। ३। ३२ वें सूत्र—

यावदधिकारमवस्थितिराधिकारिकाणाम्

—के भाष्यमें श्रीशङ्कराचार्यने अवान्तरतया (कृष्ण-द्वैपायनके पूर्वजन्मका नाम), वसिष्ठ, सनत्कुमार, दक्षप्रजापति, नारदादिको 'आधिकारिक' अर्थात् लोक-स्थितिके कार्यके लिये ईश्वरसे नियुक्त अधिकारी (Divine officers or agents) लिखा है। पश्चिमीय विद्वानोंकी इतनी दूर तो पहुँच नहीं है, परन्तु उन्होंने देवता और देवदूतों (फरिश्तों) के सम्बन्धमें जो कुछ लिखा है उसको भी यदि 'परप्रत्ययनेय बुद्धि' भारतीय नवशिक्षित पढ़ लेंगे तो उनको परमेश्वरके प्रबन्ध और उसके आधिकारिकोंके विषयमें थोड़ी बहुत श्रद्धा हो जायगी—

Looking at the matter from the most rigidly scientific point of view, the assumption that amidst the myriads of worlds scattered through endless space, there can be no intelligence as much greater than man's as his is greater than a black-buck's—no being endowed with powers of influencing the course of nature as much greater than his as his is greater than a snail's, seems to be not merely baseless, but impertinent.—*Huxley*

अर्थात् 'कई लोग यह माने हुए हैं कि जगत्के अनन्त देशमें फैले हुए अगणित लोकोंमें, मनुष्यसे इतने भी अधिक ज्ञानवान् भूत (देवादि) नहीं हैं जितना मनुष्य एक सामान्य गुबरीलेसे अधिक ज्ञानवान् है अथवा प्रकृतिके कार्यपर मनुष्यसे इतना भी अधिक प्रभाव डालनेकी शक्ति रखनेवाले भूत नहीं हैं जितनी मनुष्य एक घोंघेसे अधिक शक्ति रखता है। परन्तु यदि जड पदार्थोंपर केवल सूक्ष्म वैज्ञानिक दृष्टिसे भी विचार किया जाय तो यह कल्पना निर्मूल ही नहीं, किन्तु ढिठाईभरी मालूम होती है।' —हक्सले

The idea of angels is usually treated as fanciful. Imaginative it is, but not altogether fanciful; and, though the physical appearance and attributes of such imaginary beings may have been over-emphasised or misconceived, yet facts known to me indicate that we are not really lonely in our struggle, that our destiny is not left to haphazard, that there is no such thing as *laissez faire* in a highly organised Universe. Help may be rejected, but help is available; a ministry of benevolence surrounds us—a cloud of witnesses—not witnesses only but helpers, agents like ourselves of the immanent God.

—*Sir Oliver Lodge in "Reason and Belief" Page 43.*

'फरिश्तों (देवदूतों) का होना सामान्यतः मनगढ़न्त माना जाता है। यद्यपि यह विषय मनोगोचर ही हो सकता है तथापि निर्मूल मनगढ़न्त नहीं है। यद्यपि इन (फरिश्तों) के भौतिक रूप और गुणोंके सम्बन्धमें और उनको प्रधानता देनेके अंशमें भ्रम हो, तथापि मेरे जाननेमें जो प्रामाणिक वृत्तान्त आये हैं उनसे प्रकट होता है कि संसार-यात्रामें हम यथार्थतः निस्सहाय नहीं हैं, हमारा भावी आकस्मिक संयोगके भरोसेपर नहीं है और इस जगत्में, जिसका प्रबन्ध बड़ी सूक्ष्मता और पूर्णताके साथ हो रहा है, अन्धेर नहीं है। चाहे कोई (इन फरिश्तोंसे) सहायता न ले तथापि ये सहायता देनेको तैयार रहते हैं हमारे चारों ओर इन दैवी उपकारकोंका समूह सदा बना रहता है, जो हमारे केवल साक्षी ही नहीं हैं, किन्तु

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हमारी तरह सर्वव्यापी परमात्माके नियत किये हुए सहायक हैं।' —सर ऑलिवर लाज

अब जहाँ यह सिद्ध हो गया कि ईश्वर सृष्टिके कार्यमें सदा सचिन्त और सचेष्ट रहता है, तो यह सिद्ध कर देना कठिन न रहा कि वह सृष्टिके कार्यके लिये ही अवतार भी लेता है और इतना लेख—जो इस अंशतक भिन्नविषयक और पूर्ण भी माना जा सकता है—शेष मुख्य विषयका आवश्यक उपोद्घात (भूमिका) है।

अवतार भिन्न-भिन्न प्रयोजनोंसे हुआ करते हैं। कोई ज्ञान और विद्याविशेषके प्रचारके लिये—जैसे नारद (पाञ्चरात्र आगम), कपिल (सांख्य), दत्तात्रेय (आत्मविद्या), धन्वन्तरि (आयुर्वेद)। कोई परिमित, चाहे भारी, कार्यविशेषके लिये—जैसे वराह (महार्णवमेंसे पृथिवीको निकालना), पृथु (पृथिवीको दोहना), कूर्म (मन्दराचलको उठाना), वामन (बलिसे स्वर्गलोक लेना)। ये सब सृष्टिकार्यसे ही सम्बन्ध रखते हैं। कोई अवतार भक्तविशेषकी इच्छा पूर्ण करने अथवा उसका कष्ट निवारण करनेके लिये होते हैं—जैसे हरि (गजेन्द्रमोक्ष), पृश्निगर्भ (ध्रुवकी इच्छा पूर्ण करना), नृसिंह (प्रह्लादकी रक्षा)। यदि ऐसे प्रसङ्गोंपर अवतार न हों तो ईश्वरविहित तप और भक्ति निष्फल हो जायँ और इनपर किसीकी श्रद्धा न रहे। आर्यशास्त्रोंके अनुसार, जिस किसी व्यक्तिमें कोई शक्ति विलक्षण रूपपर बढ़ी हुई हो वही परमेश्वरका अंश माना जाता है, जैसा कि कहा है—

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥
(गीता १०। ४१)

फिर अवतार तो बड़ी चीज होती है। परन्तु अवतारोंमें भी भेद है। कभी-कभी जीवविशेषोंमें ही अपनी शक्तिविशेष रखकर, परमेश्वर सृष्टिकार्य कर देता है, जिनको 'अनुप्रवेशावतार' कहते हैं, शेष 'स्वरूपावतार' कहलाते हैं जिनमें स्वयं परमेश्वर शरीर धारण करता है। अब हम अश्रद्धालुओंके विचारके लिये, एक ऐसी स्थिति दृष्टान्तके रूपपर देते हैं जिससे ईश्वरके अवतारकी परमावश्यकता स्पष्ट हृदयङ्गम हो जाय।

श्रुति कहती है—

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयम्भू-
स्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्।
(कठ० २। १। १)।

परमात्माने जीवोंकी इन्द्रियोंको बहिर्मुख बनाया है, इसलिये वे बाहर ही देखते हैं भीतर नहीं, अर्थात् उनकी प्रवृत्ति बाह्य विषयभोगोंकी ओर ही रहती है, पारमार्थिक विषयोंकी ओर नहीं, ऐसा न होता तो संसार चलता ही नहीं, यद्यपि परमात्माने विधि-निषेधोंके द्वारा उस बहिर्मुखताकी भी मर्यादा नियत कर दी है, परन्तु मनुष्य उस मर्यादाके भीतर नहीं रहते और केवल भोगलोलुप हो जाते हैं। मर्यादाधिक भोग हिंसा बिना नहीं मिल सकते, जैसा कि कहा है—

'नानुपहत्य भूतान्युपभोगः सम्भवति।'
(व्यासभाष्य)

इसप्रकार पाप बढ़ने लगते हैं और धर्म घटने लगता है। होते-होते स्थिति ऐसी हो जाती है कि पापके बिना कोई निर्वाह ही नहीं कर सकता, जिससे पापियोंकी संख्या अमर्याद बढ़ जाती है, धर्म निभाना ऐसा कठिन हो जाता है कि धर्मात्माओंकी दशा 'जिमि दसनन महँ जीभ बिचारी' ऐसी हो जाती है। फिर तो चारों ओर पाप-ही-पाप और कष्ट-ही-कष्ट छा जाता है। जबतक उपाय हाथमें रहता है तबतक तो मनुष्य ही उसका प्रतीकार कर लेते हैं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और कभी-कभी दुष्ट लोग ही परस्पर लड़ मरते हैं जिससे उनको दण्ड और औरोंको आँख हो जाती है। परन्तु कभी-कभी दुष्ट लोग ऐसे प्रबल और एक हो जाते हैं कि धर्मात्मा और पीड़ितोंके हाथमें उपाय भी नहीं रहता। ऐसी स्थितिमें ईश्वर अवतार न ले तो क्या करे और अन्य क्या उपाय हो सकता है? परशुराम, श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्णके अवतार तभी हुए थे, जब सहस्रार्जुनादि क्षत्रिय, रावणादि राक्षस और कौरव-यादवादि क्षत्रियोंने इसीसे मिलती-जुलती स्थिति उत्पन्न कर दी थी जिससे उनको नष्ट ही करना पड़ा। भगवान् डङ्केकी चोट कहते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥
(गीता ४।७-८)

श्रद्धाके साथ विचार किया जाय तो अब भी परमेश्वर भिन्न-भिन्न प्रसङ्गोंपर साक्षात् और रूपमें अथवा लुके-छिपे ही अवतारका चमत्कार दिखा जाते हैं जिसके कुछ दृष्टान्त 'कल्याण' के 'ईश्वराङ्क' आदिमें मिल सकते हैं। इसीलिये शास्त्र कहते हैं—

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।
यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः॥
(श्रीमद्भा० १।३।२६)

'जैसे अटूट पानीके सरोवरसे हजारों नहरें निकलती रहती हैं वैसे ही अनन्त सत्त्वगुणके निधान भगवान्‌से असंख्य अवतार निकलते रहते हैं।'

परन्तु इस सम्बन्धमें एक तो युगधर्मका विचार रखना आवश्यक है। अर्थात् प्रत्येक युगमें धर्माधर्म-स्थितिका भिन्न-भिन्न परिमाण नियत है जिससे न्यूनाधिक होनेहीपर अवतार हो सकता है। इसलिये जहाँ पहले-पहले युगोंमें छोटे-छोटे प्रसङ्गों वा साधारण स्थितियोंमें भी अवतार हो सकता है, वहाँ अगले-अगले युगोंमें वैसे प्रसङ्गों वा स्थितियोंमें नहीं, किन्तु अधिक दुःस्थितियोंमें ही अवतार हो सकता है। दूसरे अवतार भी व्यष्टि और समष्टि जीवोंके कर्मोंके अनुसार ही होता है, अन्यथा ईश्वरपर विषमता और निर्दयताका दोष और कृतहानि अर्थात् किये कर्मोंका निष्फल जाना और अकृताभ्यागम अर्थात् बिना किये कर्मोंका फल हो जाना—ये प्रसङ्ग आते हैं।

एक तेरा ध्यान

तू ही हियमाहिं बैठि मतिको घुमावै चक्र तेरी अंगुरीनपर डोलत सबै जहान।
कवि राजहंस हियरेके अधिनाथ स्याम! तोहीपै निछावरि सकल तन मन प्रान॥
जैसो है निदेश तेरो तैसो आचरन मेरो सुख दुख तेरो दियो तेरो मान अपमान।
लोक परलोक निरबान ध्यान कोऊ धरै मोहिं तो अकेलो एक तेरो एक तेरो ध्यान॥

—बलदेवप्रसाद मिश्र

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिवमें श्रद्धा

(लेखक—एक विष्णुभक्त)

वैष्णव-भाई ! विष्णुभगवान् सत्त्वगुणी हैं, मंगलस्वरूप हैं, पवित्र वैकुण्ठमें निवास करते हैं, लक्ष्मीके पति हैं, ऐसे सर्वथा शोभनस्वरूप विष्णुको छोड़कर आप तमोगुणी, अमंगलस्वरूप, भस्मलिप्त, श्मशानवासी, रुण्डमालाधारी और भीख माँगकर खानेवाले शिवका क्यों आराधन करते हैं ? शिवके गण भूत-पिशाचादि भयङ्कर मूर्ति हैं और विष्णुके पार्षद नन्द-सुनन्द आदि दिव्य मूर्ति हैं । शिवके उपासक शिवके गण और विष्णुके उपासक विष्णुके पार्षद होते हैं, फिर आप भूत-पिशाच होनेके लिये शिवकी उपासना क्यों करते हैं ?

शैव-(प्रसन्न होकर) मित्र ! मैंने तो आजतक यह सुन रक्खा था कि शिव अच्युत, अविनाशी, निष्कल, निरञ्जन, निरामय, शाश्वत, शुद्ध, बुद्ध, नित्यमुक्त शान्तस्वरूप हैं, विश्वनाथ हैं, जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेके लिये ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र—तीन रूप धारण कर लेते हैं और पञ्चभूतोंसे अनेक ब्रह्माण्डोंकी रचना करते हैं, रक्षा करते हैं और अन्तमें सबको अपनेमें समेट लेते हैं । एकमात्र शिव ही चराचर जगत्के अधिष्ठान, आधार और अवधि हैं, मन-वाणीके अविषय हैं, श्रुति 'नेति-नेति' कहकर समस्त विश्वका निरास करके शिवका बोध कराती है, वह साक्षात् शिवका निरूपण नहीं कर सकती । ऐसा शिवका स्वरूप मैंने सुना तो था, परन्तु 'शिव कैसे हैं' यह बात मेरी समझमें अभीतक नहीं आयी थी !

हे सन्मित्र ! आज आपके मुखसे शिवका स्वरूप सुनकर मेरी समझमें कुछ-कुछ शिवका स्वरूप आता है, इससे मैं आपका कृतज्ञ हूँ । आप कहते हैं कि शिव तमोगुणी हैं । मैं भी तमोगुणी हूँ, मुझे नींद बहुत आती है, नींदमें मुझे सुखका अनुभव भी होता है, वहाँ किसी प्रकारका विक्षेप नहीं होता, न तो बाल-बच्चोंकी चिन्ता रहती है, न धन कमानेका परिश्रम करना पड़ता है, किसीका जन्म-मरण भी सुननेमें नहीं आता । मैं धनहीन हूँ, वहाँ जाकर मैं धनहीन नहीं रहता, रोगी होता हूँ, तो अरोगी हो जाता हूँ, किसी प्रकारका मुझे वहाँ खटका नहीं होता, बेखटके सोता हूँ, उठकर भी बड़ी देरतक नींदके सुखका अनुसन्धान करता हुआ चुप बैठा रहता हूँ, कुछ देर बाद उस सुखको भूल जाता हूँ और संसारकी झंझटोंमें फँस जाता हूँ, दिनभरका थका हुआ, रातको अनेक प्रकारके यत्न करके निद्रा-देवीको बुलाता हूँ, जबतक निद्रा नहीं आती तबतक पूर्ण सुखी नहीं होता, जब निद्रामें डूब जाता हूँ, तभी सुखी होता हूँ, इसलिये नींद मुझे बहुत प्यारी है, आजसे मैं अबतककी अपेक्षा अधिक प्रेमसे शिव-की पूजा किया करूँगा, जिससे मीठी नींद लिया करूँ और निद्रा भी जल्दी आ जाया करे, अधिक बाट न देखनी पड़े, मेरी समझमें जाग्रत्की झंझटोंसे तो निद्रा लाख गुणा अच्छी है, क्योंकि वहाँ किसी प्रकारका खटका ही नहीं है ! मैं ही नहीं, नींदको सभी प्राणी प्यार करते हैं, निद्रा स्वस्थताका लक्षण है, जिसको नींद नहीं आती, वह रोगी हो जाता है, सुनता हूँ कि पागलको नींद नहीं आती । यदि किसी ओषधि या अन्य उपायसे पागलको नींद आने लगे, तो वह पागल ही न रहे । नींदमें अमीर-गरीब सब बराबर हो जाते हैं, इससे महेश्वरका सब प्राणियोंपर समभाव सिद्ध होता है । प्रायः देखनेमें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आता है कि निर्धनको धनीकी अपेक्षा मीठी नींद आती है। श्रुति कहती है कि सुषुप्तिमें जीव ब्रह्मसे मिलकर ब्रह्मरूप ही हो जाता है, इसलिये सुषुप्तिके देवता महादेवकी आजसे मैं विशेष प्रेमसे पूजा किया करूँगा।

वेदवेत्ताओंसे मैंने सुना है कि एक ही सत्य, ज्ञान, अनन्तरूप शिव जब मायाके साथ क्रीड़ा करते हैं, तब कारण, सूक्ष्म और स्थूल—तीन शरीर धारण कर लेते हैं, कारण-शरीरमें अभिमान करनेसे वे ईश्वर कहलाते हैं, सूक्ष्म-शरीरमें अभिमान करनेसे हिरण्य-गर्भ कहे जाते हैं और स्थूल-शरीरमें अभिमान करनेसे वेदवेत्ता उनको विराट् कहते हैं। पश्चात् शिव एकसे अनेक होनेका संकल्प करके अनेक शरीर धारण करते हैं। ये अनेक शरीर भी कारण, सूक्ष्म और स्थूल-भेदसे तीन प्रकारके होते हैं और इनके अभिमानी क्रमसे प्राज्ञ, तैजस और विश्व कहलाते हैं। प्राज्ञकी ईश्वरसे, तैजसकी हिरण्यगर्भसे और विश्वकी विराट्से एकता है। इसप्रकार एक ही शिव सृष्टिकालमें अपनी मायासे अनेक हो जाते हैं और प्रलयकालमें सबका संहार करके फिर एक ही रह जाते हैं। जैसे प्रलयमें शिव एक हो जाते हैं, इसी प्रकार सुषुप्तिमें भी एक ही होते हैं, यह वेदवेत्ताओंका कथन आज आपके कहनेसे मेरी समझमें आया है, इसलिये आजसे मेरा मन शिवका पूजन करनेके लिये बहुत ही उत्सुक होता है, क्योंकि सुषुप्ति और प्रलयमें तो शिवके साथ एक आवरण ही होता है और स्वप्न और जाग्रत्में तथा उत्पत्ति और स्थितिमें तो विक्षेप और मल दो आवरण अधिक हो जाते हैं। आवरण शिवमें तो है नहीं, मेरे अज्ञानसे उनमें आवरण भासता है, शिवकी आराधना करनेसे आशा करता हूँ कि आवरण भी शीघ्र ही दूर हो जायगा, क्योंकि शिवका नाम आशुतोष है, ऐसा मैंने वृद्ध पुरुषोंसे सुना है। सुषुप्तिमें आवरण और स्वप्नमें विक्षेप सबके अनुभवसे सिद्ध है और चिकित्साशास्त्रके जाननेवालोंका कथन है कि जबतक शरीरमें मल है, तभीतक प्राणी जीता है, मल निकलते ही मर जाता है, इससे जाग्रत्में मल है, यह सिद्ध होता है।

सुषुप्ति कारण-शरीरमें होती है, कारण-शरीरको श्रुतिमें आनन्दमय कोश कहा है। आनन्दमय कोश प्रिय, मोद, प्रमोद, आनन्द और ब्रह्मरूप, ऐसा भी कहा है। अन्तके आनन्दमय कोशके आनन्दसे पूर्वके विज्ञानमय, मनोमय, प्राणमय और अन्नमय कोश पूर्ण हैं यानी आनन्दमय कोशका ही आनन्द पूर्वके विज्ञानमय आदि कोशोंमें है। श्रुति कहती है कि आनन्दसे सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, आनन्दसे ही उत्पन्न हुए जीते रहते हैं और आनन्दमें ही अन्तमें लीन हो जाते हैं। शुद्ध आनन्दमेंसे तो प्राणियोंकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है, तब आनन्दमय-मेंसे ही सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, आनन्दमयसे ही उत्पन्न हुए जीते हैं और आनन्दमयमें ही अन्तमें लय हो जाते हैं। जब आनन्दमयमेंसे ही सबकी उत्पत्ति, स्थिति और लय है और आनन्दमयके अभिमानी शिव हैं, तब आनन्दमय शिवका पूजन मुझे अवश्य ही करना चाहिये। इसलिये 'तमोगुणी शिव हैं' ऐसा आपके मुख-से सुनकर मुझे शिवमें अतिशय प्रेम होता है, आजसे मैं मनसे, वाणीसे और कायासे शिवके भजनमें ही तत्पर होऊँगा, ऐसी मेरी हार्दिक तीव्र इच्छा है।

तमोगुण नाम अज्ञानका है, वृद्ध पुरुषोंसे मैंने सुना है कि अज्ञान रुद्रभगवान्की ढाल है। पूर्व-जन्मोंमें मैंने आशुतोष महेश्वरका आराधन किया है, ऐसा अनुमान होता है, तभी तो भगवान्ने मुझे काम-क्रोधादि शत्रुओंसे अपनी रक्षा करनेके लिये यह तमो-गुणरूप ढाल दी है। जाग्रत्में और स्वप्नमें काम-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

क्रोधादि शत्रुओंसे मैं युद्ध करता रहता हूँ, जब हारने लगता हूँ, तो भक्तरक्षक शंकरकी दी हुई ढालसे अपनेको सुरक्षित करके सो जाता हूँ और जागकर फिर युद्ध करनेके लिये तैयार हो जाता हूँ। मुझे आशा है कि जब मैं इन शत्रुओंको जीत लूँगा, तब भवानीपति शिवभगवान् अपनी दी हुई ढाल लौटा लेंगे, अथवा मैं ही लौटा दूँगा, क्योंकि फिर उसका प्रयोजन नहीं रहेगा! इस तमोगुणरूप ढालके प्रदान करनेवाले मेरे इष्ट गिरिजापतिका मुझे प्रेमपूर्वक भजन क्यों न करना चाहिये? सिर-आँखोंसे मुझे महादेवका भजन करना चाहिये! आजसे मैं शिवके चरणकमल ऐसे पकड़ूँगा कि कभी भी नहीं छोड़ूँगा।

भाई! मैंने तो पशु-पक्षी सर्पादि तमोगुणी देखे हैं, मनुष्य विशेष करके रजोगुणी देखनेमें आते हैं, कोई-कोई सत्त्वगुणी भी देखनेमें आते हैं। सुनता हूँ कि देवता तो सब सत्त्वगुणी ही हैं, और देवोंके देव शिव, विष्णु और ब्रह्मा शुद्ध सत्त्ववाले हैं। शुद्ध सत्त्व-मूर्ति होनेसे तीनों देव एक हैं और स्वरूपसे तो तीनों एक हैं ही, इस बातके वेद, पुराण और सन्त-महात्मा सभी साक्षी हैं और लोकोक्ति भी है कि 'तीनों देवा, एक ही सेवा' विष्णुभगवान्ने रामावतारमें शिव-लिङ्गका पूजन किया था, यह बात रामेश्वरसे सिद्ध है। पुराणोंमें स्थल-स्थलपर विष्णुने शिवकी स्तुति और शिवने विष्णुकी स्तुति की है और दोनोंने परस्पर एकता दिखायी है और भेद माननेवालोंकी निन्दा भी की है, फिर दोनोंमें भेद कैसा? श्रुति कहती है कि एक ही देव सब भूतोंमें गूढ़ है, इस श्रुतिसे सब भूतोंकी एकता सिद्ध होती है, तब शिव, विष्णु, ब्रह्मादिमें तो भेद आता ही कहाँसे? नाम-रूपका भेद है, नाम-रूप कल्पित हैं, क्योंकि वे सदा एक-से नहीं रहते। नाम-रूप-उपाधियोंसे एकरस शिवमें भेद नहीं हो सकता, क्योंकि जैसे तरंगोंसे जलमें भेद नहीं हो सकता, इसी प्रकार उपाधियोंसे अधिष्ठान शिवमें भेद नहीं हो सकता, इसलिये न तो शिव तमोगुणी हैं, न ब्रह्मा रजोगुणी हैं और न विष्णु सत्त्वगुणी हैं, किन्तु तीनों देव गुणातीत, मायातीत, सर्वातीत, सत्य, ज्ञान, अनन्त, ब्रह्मरूप हैं, ऐसा वेदवेत्ताओंका कथन सम्यक् सत्य है। इसमें संशय नहीं है। ऐसा मेरा निश्चय है।

भाई! यदि आज मैं आपके मुखसे शिव तमोगुणी हैं, ऐसा सुनकर शिवमें अश्रद्धा कर लूँ, तब तो कोई विष्णुभक्त नृसिंहभगवान्का पूजन ही न करेगा, क्योंकि वे तो स्वभावसे और शरीरसे दोनोंसे क्रोधकी साक्षात् मूर्ति ही हैं। यदि आप कहें कि नृसिंहने तो दैत्यको मारनेके लिये भयंकर क्रोधमय मूर्ति धारण कर ली थी, तो शिव भी अभक्तोंका ही प्रलयमें रुद्रमूर्ति धारण करके वध करते हैं, भक्तोंके लिये तो वे सदा सौम्यमूर्ति ही हैं।

आप शिवको अमंगल मूर्ति और विष्णुको मंगल मूर्ति बताते हैं, यह बात भी मेरी समझमें नहीं आती, क्योंकि शिव और विष्णु दोनों सखा हैं, यह बात पुराणोंमें और इतिहासोंमें प्रसिद्ध है। स्वरूपसे तो शिव अमंगलस्वरूप हैं नहीं, यह बात ऊपर कह ही आया हूँ और देवोंके देव महादेव अमंगल हों, इस बातको छोटा-बड़ा कोई नहीं मान सकता। यदि आप कहें कि शिव चिताका भस्म लगाते हैं, इसलिये अमंगलस्वरूप हैं, तो जैसा प्राणी होता है, वैसे ही उसके अलङ्कार होते हैं। यह समस्त ब्रह्माण्ड चिताकी भस्मरूप है, इसीको शिवने शरीरमें लपेट रक्खा है। भस्मरूप ब्रह्माण्ड भी शिवके धारण करनेसे मंगलरूप भासता है तो फिर अमंगलरूप ब्रह्माण्डभस्मको मंगल बनानेवाले शिव अमंगल कैसे हो सकते हैं? मान लिया कि शिव अमंगल ही सही, फिर भी जबानसे बेटी परायी हो जाती है, शिष्ट पुरुष प्राणतक त्याग देते हैं और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपना वचन पूरा करते हैं, मैंने अपनी बुद्धि शिवको अर्पण कर दी है, अब दूसरेको कैसे दे सकता हूँ? शूर्पणखाकी कथा मैंने पढ़ी है, वह कभी रामके पास जाती थी, कभी लक्ष्मणके पास जाकर प्रार्थना करती थी, फल यह हुआ कि उसने अपनी नाक कटवायी और अपने भाई रावणका कुलसहित नाश करवाया। हिमाचल-कन्याकी प्रतिज्ञा भी मैंने सुनी है—

जनम कोटि लगि रगर हमारी। बरौं संभु न तु रहौं कुमारी॥

इसलिये मैं तो जबतक जन्मता रहूँगा, तबतक शम्भुकी ही आराधना करूँगा। अमंगलका अर्थ मंगलका अभाव नहीं है किन्तु जैसे जिसके समान कोई भद्र न हो, उसका नाम अभद्र है और जिसके समान अन्य उत्तम न हो, उसका नाम अनुत्तम है, इसी प्रकार जिसके समान अन्य मंगल न हो, उसका नाम अमंगल है, ऐसा मैंने वेदवेत्ताओंसे सुना है, इसलिये सर्वोत्तम मंगलस्वरूप शान्त शिव मेरे ध्येय और ज्ञेय हैं। संसाररूप श्मशानको शिवने व्याप्त कर रक्खा है और अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंकी रुण्डमाला शिवके गलेमें है, इसलिये शिव श्मशानवासी कहलाते हैं। भस्मका मर्म ऊपर बता ही आया हूँ, इसप्रकार भस्मलिप्त, श्मशानवासी, रुण्डमालाधारी अमंगलस्वरूप शिव मेरे परम प्यारे इष्टदेव हैं।

अन्नपूर्णा देवीके पति भिखारी हों, यह आश्चर्य ही है। फिर भी भक्तोंके कल्याणार्थ भक्तोंकी प्रेमपरीक्षा लेनेके लिये उमापति शंकर भक्तोंसे प्रेमकी भिक्षा माँगते हैं, जो सच्चा शिवभक्त धूर्जटि भगवान्‌को प्रेमकी भिक्षा दे देता है, वह भाग्यवान् अधिकारी अन्नपूर्णाके समान सबके मनोरथ पूर्ण करनेवाला हो जाता है, क्योंकि अन्नपूर्णा देवी अपने पतिके भक्तोंके सर्वदा, सर्वथा, सर्वत्र अनुकूल रहती है। जैसे विश्वनाथ विश्वभरके नाथ होकर भी क्रीडार्थ प्रेमकी भिक्षा माँगनेसे अलौकिक भिखारी हैं, इसी प्रकार उनके भक्त भी अलौकिक भूत-प्रेत हैं, विषयासक्त पुरुष उनको भूत-प्रेत कहें, तो ठीक ही है, क्योंकि 'जो सर्वभूतोंकी रात्रि है, उसमें संयमी पुरुष जागता है और जिसमें भूत जागते हैं, वह ज्ञानी मुनिकी रात्रि है' इस भगवान्‌के वचनानुसार सत्यासत्यके न जाननेवाले संसारी पुरुष असंसारी, जीवन्मुक्त शिवभक्तोंको भूत-प्रेत बतावें, तो आश्चर्य ही क्या है, क्योंकि जैसे कौआ दूध-पानीके विवेकी हंसको नहीं पहचान सकता, इसी प्रकार विषयासक्त पुरुष विरक्त जीवन्मुक्तोंको पहचान नहीं सकता। जैसे शाक बेचनेवाला रत्नके मूल्यको नहीं जान सकता, इसी प्रकार भोगोंमें रचे-पचे संसारी असंसारी जीवन्मुक्तोंको नहीं जान सकते, तब वे जो कुछ कहें, थोड़ा ही है, विद्वान् उनके कथनसे शिवकी भक्ति करनेमें शिथिल नहीं होते, प्रत्युत दिन-दूना, रात-चौगुना शिवमें प्रेम बढ़ाते हैं। क्या कोई सच्चा विष्णुभक्त वामनभगवान् और बलिका संवाद पढ़कर विष्णुभक्तिसे विमुख हो सकता है? तब शिवभक्त शिवको भीख माँगनेवाला सुनकर शिवभक्तिसे क्यों मुख मोड़ेगा? ईश्वरोंके चरित्र अगाध हैं, सत्पुरुषोंकी चरणसेवा बिना उनके चरित्र समझमें नहीं आते, भीख माँगना और राज्य करना ईश्वरोंकी क्रीडा भक्तोंके हितके लिये है, भीख माँगनेसे ईश्वरोंका कुछ घट नहीं जाता और राज्य करनेसे उनका कुछ बढ़ नहीं जाता। वे तो सर्वदा शुद्ध, बुद्ध, नित्यमुक्त और असंग ही रहते हैं। जैसे ईश्वरोंके चरित्र दुर्विज्ञेय हैं, इसी प्रकार ईश्वरभक्तोंके चरित्र भी दुर्विग्राह्य हैं, वेष-कुवेषसे उनका कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है। जैसे कुवेषधारी हनूमान् और जाम्बवान् विष्णुभक्तोंको प्यारे हैं, इसी प्रकार शिवके भक्त भूत-प्रेत भी शिवभक्तोंको परम प्यारे होते हैं। हे मित्र! आप सत्त्वगुणी, मंगलस्वरूप, वैकुण्ठवासी, लक्ष्मीपति, शोभनमूर्ति विष्णुका प्रेमसे आराधन कीजिये, मेरे तो तमोगुणी,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अमंगलस्वरूप, श्मशानवासी, उमापति, अशोभनमूर्ति शंकर ही प्राणाधार हैं। आप भले ही नन्द-सुनन्द आदि विष्णुपार्षदोंका सहवास कीजिये, मेरे तो क्षेत्रपाल नन्दि, भृङ्गि, महाकाल, स्कन्द, गणेश आदि आनन्द-कण, शिवके गण ही सखा हैं, सच्चे सखा हैं, उन्हीं-में मेरा प्रेम सर्वदा रहे, उन्हींका संग हो, ऐसी मेरी अभिलाषा है, क्योंकि इन्हींके द्वारा नीलकण्ठ, भुजंग-भूषण, मृत्युञ्जय, हर, स्मरहर, गङ्गाधर, चन्द्रशेखर, उमापति, कैलासवासी शिवकी प्राप्ति होना सम्भव है, ऐसा मेरा निश्चय है।

इतना कहकर शिवभक्त नीचेके पदोंसे चन्द्रशेखर शंकरका जयजयकार इसप्रकार करने लगा—

(१)

जय बम भोला! जय बम भोला! शिव शंकर मदनारी।
जय गिरिजापति जय गंगाधर! चन्द्रचूड त्रिपुरारी॥
नन्दि आदिगण सेव्य महेश्वर, गिरि कैलासविहारी।
पंचवक्त्र सर्वज्ञ त्रिलोचन, विश्वनाथ भयहारी॥

(२)

जय कपालभृत् शंभु पिनाकी, नीलकंठ, भूतेश्वर।
जय मृत्युंजय, शर्व, दिगम्बर, व्याघ्राम्बर, कालेश्वर॥
महादेव, मृड, पशुपति, शूली, वामदेव योगेश्वर।
अंधकरिपु, भव, भीम, वृषध्वज, व्योमकेश अखिलेश्वर॥

(३)

प्रभो! स्वच्छ करि हृदय हमारा, निज कैलास बनाओ।
गणोंसहित तहँ खेल मचाओ, डम् डम् डमरु बजाओ॥
तांडव नृत्य दिखाओ भोले! सुध बुध सभी भुलाओ।
रहे न 'मेरा' लेश, न 'मैं' ही, स्वयं शेष रह जाओ॥

उपर्युक्त पदको शिवभक्त ऐसी रसभरी मधुर वाणीमें गाता हुआ नाचने लगा कि शिवप्रेमियोंको ऐसा अनुमान हुआ कि शिवके नन्दि और भृंगिगण दोनों शिवभक्तके शरीरमें प्रवेश करके दोसे एक होकर शिवभक्तोंके अद्भुत प्रेमका परिचय दे रहे हैं और विष्णुभक्तोंके हृदयके प्रेमकी परीक्षा ले रहे हैं। विष्णु-भक्तका हृदय एक साथ पिघल गया और वह दौड़कर शिवभक्तकी छातीसे चिपट गया! दोनोंने प्रेमाश्रुओं-से एक दूसरेको ऐसा तर कर दिया, जैसे कि श्रावण-की भिगोई हुई भूमिको भाद्रपद गीला कर देता है। एक ब्रह्मनिष्ठ विरक्त अवधूत इन दोनोंका तमाशा देख रहा था, उसका हृदय एकदम प्रेमसे भर आया, ज्ञान-बलसे बहुतेरा रोकनेपर भी प्रेम उसके हृदयमें नहीं रुका, हृदयको फोड़कर कण्ठमें ठोकर देकर अश्रु-रूपसे आँखोंमेंसे निकलकर गालोंको गीला करता हुआ, वक्षःस्थलको भिगोता हुआ, पेटपर बहता हुआ घुटनोंके ऊपरसे पैरोंके तलवेतक जा पहुँचा! सच है, प्रेमकी ऐसी ही महिमा है कि वह पत्थरको भी पिघला देता है। अवधूत तो स्वभावसे ही कोमलचित्त, विश्वप्रेमी और प्रेमरसका सागर ही होता है, तब उसका हृदय प्रेमसे विह्वल हो जाय और वह प्रेमको न रोक सके, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? जैसे पूर्ण चन्द्रको देखकर समुद्र उछले बिना नहीं रह सकता, इसी प्रकार ईश्वरभक्तोंको देखकर अवधूतका हृदय उमड़े बिना नहीं रह सकता। इसमें इतिहास, पुराण और विद्वानोंका अनुभव प्रमाण है। भला! अपने कुल-कीर्तिवर्धक पुत्रको देखकर कौन-सा ऐसा पिता है, जो प्रेमसे पूर्ण न हो जाय। सुपुत्रको देखकर सभी पिता प्रसन्न होते हैं, ऐसा सनातन नियम है। अवधूत दोनों भक्तोंको धन्यवाद देता हुआ विचरने लगा, दोनों भक्त प्रेमसे गले मिलकर अपने-अपने घर चले गये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मनको उपदेश

(श्रीसमर्थ रामदास स्वामीजीके 'मनाचे श्लोक' का अनुवाद)

(अनुवादक—कृष्णसुत)

१—जो शिवगणोंके अधिपति, परा, श्री, औदार्य, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य आदि गुणोंके स्वामी और निर्गुण परब्रह्मके मूल हैं उनको, तथा परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी—इन चार वाणियोंकी आदिजननी श्रीशारदादेवीको नमस्कार करके आत्माराम श्रीरामचन्द्रजीके अनादि और अनन्त भक्ति-मार्गका सेवन कर।

२—हे सत् मन! भक्ति-मार्गका सेवन कर, करेगा तो तुझे सहज ही ईश्वर-प्राप्ति होगी, साधु पुरुष जिन बातोंका निषेध करते हैं उन सब बातोंको छोड़कर, वे जिन बातोंका समर्थन करते हैं उन्हें अंगीकार कर।

३—प्रभात समय श्रीरामचन्द्रका चिन्तन कर, फिर हर-एक काम करते वक्त राम-नाम ले। सदाचारका महत्त्व विशेष है, उसको कभी मत छोड़। जगत्में सदाचारी ही धन्य कहलाता है।

४—दुष्कर्ममें प्रवृत्त करनेवाली वासना तथा पापबुद्धि-को पास भी मत आने दे। सर्वदा नीतिमार्गपर चल। इसी प्रकार अन्तःकरणमें सार बातें कौन-सी हैं, इसपर सदा विचार कर।

५—हे मन! पापी सङ्कल्पोंको त्याग, और सत्य सङ्कल्पोंका ग्रहण कर। विषय-सुखोंकी कल्पना ही छोड़ दे क्योंकि उनसे जगत्में धिक्कार मिलता है।

६—खिन्नताको उत्पन्न करनेवाले क्रोध, तथा नाना विकारोंको पैदा करनेवाली कामनाको छोड़ दे। मत्सर, दम्भ और लोभको स्वीकार मत कर।

७—हे मन! श्रेष्ठ धैर्यको धारण कर। प्रसंगवश सुने जानेवाले अपमानकारक वचनोंको सहन कर। स्वयं नम्रतासे बोल और सब लोगोंको सन्तोष प्रदान कर।

८—हे सत् मन! ऐसे ही काम कर, जिनसे देह छूटनेके बाद तेरी कीर्ति फैले। चन्दनकी भाँति घिसता-घिसता क्षीण होता चला जा किन्तु अन्तःकरणसे सज्जनोंको सन्तुष्ट कर।

९—हे मन! पर-द्रव्य-हरण करनेकी अभिलाषा छोड़ दे। अति स्वार्थपरतासे पाप-सञ्चय होता है, बुरे कर्म पापसञ्चय कराते हैं और फिर उसका कुपरिणाम भोगना ही पड़ता है। मनके अनुसार बातें न हुईं तो बहुत दुःख होता है।

१०—श्रीरामचन्द्रजीमें अखण्ड प्रेम रख और दुःखको स्वयं ही छोड़ दे। शारीरिक कष्टमें, जो प्रारब्ध-कर्मानुसार होते हैं, सुख मान, और विवेकसे सदा सत्स्वरूपमें लीन रह।

११—हे मन! तू ही विचार करके देख कि क्या जगत्में कोई भी सब दृष्टियोंसे सुखी है? तूने जैसा पूर्व-सञ्चय किया होगा, वैसा ही फल आज तुझे भोगना पड़ेगा।

१२—हे मन! अन्तःकरणमें दुःख न कर। शोक और चिन्ताका त्याग कर दे। विवेकसे देह-बुद्धि छोड़ और विदेहावस्थाके मुक्ति-सुखका अनुभव कर।

१३—हे मन! बतला, रावणको ऐसा क्या हो गया कि जिससे अकस्मात् उसका राज्य जाता रहा? दुर्वासना। इसलिये अन्दरसे बुरी वासनाओंको निकाल दे। काल मानवके पीछे पड़ा हुआ है।

१४—कर्म-गतिसे जगत्में जन्म हुआ है। पर आखिर कालके मुखमें प्रवेश करना है। असंख्य लोगोंने जन्म लिया और मर गये। छोटे-बड़े सभीने इसी मार्गका अनुसरण किया।

१५—हे मन! देख, यह सचमुच मृत्यु-भूमि है। किन्तु जीवनकालमें सब लोग 'मैं, मैं' कहते हैं और अपनेको अमर मानते हैं पर अकस्मात् यहाँसे चल बसते हैं।

१६—एक मरता है, दूसरा उसका शोक मनाता है, फिर वह भी उसी रास्ते जाता है। लोभका इस जगत्में अन्त नहीं है। उसीसे प्रक्षुब्ध होकर मनुष्य जगत्में फिर जन्म लेता है।

१७—मनुष्य व्यर्थ चिन्ता करता है, क्योंकि होनेवाली बातें तो अकस्मात् हो ही जाती हैं। कर्मानुसार सब भोगना पड़ता है पर मूढ़ लोक वियोगसे खेद मानते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

१८–हे मन ! श्रीरामचन्द्रके अतिरिक्त और किसीसे आशा मत कर। मानवोंकी कीर्ति न गा। जिसका वर्णन वेद, शास्त्र और पुराण करते हैं, उसीकी कीर्ति गानेवाला बन। इससे सब कुछ मिल जाता है।

१९–हे मन ! सत्यका त्याग और असत्यका समर्थन कभी न कर। जो सत्य हो वही वाणीसे बोल और असत्यको छोड़ दे।

२०–माताके पेटमें गर्भवासके समय बालकको बहुत यातनाएँ सहन करनी पड़ती हैं। नीचे मुख रहता है, सभी ओरसे जकड़े हुए बालकको गर्भकी उष्णता आदि दुःखोंको सहना पड़ता है।

२१–वासनासे उत्पन्न होनेवाली जन्म-मरणकी पुनरावृत्तिसे मुझको निवृत्त कर। कामिनी और काञ्चनकी अभिलाषा छोड़ दे। गर्भवासकी यातना बड़ी कड़ी है। हे मन ! श्रीरामचन्द्रजीसे भेंट करवा दे।

२२–हे सत् मन ! त्रिलोकीनाथ, मानवोंके उद्धारक, हनूमान्‌जीके स्वामी श्रीरामचन्द्रको हृदयमें स्थापित कर। इतना तो मेरा हित कर।

२३–श्रीराम-गुणानुवादके अतिरिक्त और कोई भी चर्चा न कर। इसीमें सुख है और बातें करनेमें नहीं। काल क्षण-क्षणमें आयुको हर रहा है। देहान्तके समय तुझे कौन छुड़ाने आवेगा ?

२४–श्रीरामजीकी भक्तिको छोड़कर बाकी सब व्यर्थ है। और बातोंमें कुछ भी सार नहीं। श्रीरामजीका नाम सदा वाणीपर बना रहे। पापी अहङ्कारको हटा दे।

२५–हे मन ! मेरे इस कथनसे बुरा मत मान। बुरा मानेगा तो नाम-स्मरण करके श्रीरामचन्द्रजीका अनुभव कैसे प्राप्त करेगा ? सुखमें सब अच्छा मालूम होता है, किन्तु उसके बाद दुःख है। और सब जगत् नश्वर है, कुछ भी रहनेवाला नहीं है।

२६–देहकी रक्षाके लिये कितना परिश्रम किया जाता है, फिर भी काल मनुष्यको ले ही जाता है। श्रीरामचन्द्रजी-की भक्ति कर, फिर और किसी बातकी भी चिन्ता करनेकी तुझे आवश्यकता नहीं।

२७–हे मन ! संसार-भयसे ऐसा क्या डरता है ? डर छोड़ दे और धैर्य धारण कर। श्रीरघुनाथजीके समान हमारे रक्षक स्वामी हैं। यमराज चाहे जितना क्रोध क्यों न करे, श्रीरामजी कभी उपेक्षा नहीं करेंगे।

२८–अनाथोंके नाथ, धनुर्धारी श्रीरामचन्द्रजीको सामने देखते ही काल काँपने लगता है। यह सत्य है। भक्ताभिमानी श्रीरामचन्द्रजी कभी अपने भक्तोंकी उपेक्षा नहीं करते।

२९–श्रीरामजीके चरणोंकी पैजनीकी ध्वनि भक्तरक्षण-की सूचना देती है। भक्तोंके शत्रुके सिरपर उनके धनुषकी टङ्कार होती है। जो विमानमें बैठाकर सारी अयोध्यापुरीको वैकुण्ठधाम लिवा ले गये, वे भक्ताभिमानी भगवान् कभी अपने भक्तोंकी उपेक्षा नहीं करते।

३०–समर्थके सेवकको वक्रदृष्टिसे देखनेवाला इस जगत्‌में कौन है ! तीनों लोकोंमें जिनकी लीला गायी जाती है वे भक्ताभिमानी श्रीरामचन्द्र कभी अपने भक्तोंकी उपेक्षा नहीं करते।

३१–जिन्होंने देवताओंको महा सङ्कटसे मुक्त किया, जो अतुल प्रतापी और सर्वगुणसम्पन्न हैं, जिनका ध्यान श्रीशङ्कर-पार्वती करते हैं, वे भक्ताभिमानी श्रीरामचन्द्र कभी अपने भक्तोंकी उपेक्षा नहीं करते।

३२–जिनके चरणस्पर्शमात्रसे शिलारूपी अहल्या मुक्त होकर दिव्यरूप धारणकर चली गयी। जिनका वर्णन करते-करते वेदवाणी थक गयी, वे भक्ताभिमानी श्रीरामचन्द्र कभी अपने भक्तोंकी उपेक्षा नहीं करते।

३३–जबतक सूर्य, चन्द्र, तारागण, मेघमाला, मेरु, मन्दार आदि पर्वत रहेंगे, तबतक जिन्होंने अपने दो भक्तोंको चिरञ्जीवी किया है, वे भक्ताभिमानी श्रीरामचन्द्र कभी अपने भक्तोंकी उपेक्षा नहीं करते।

३४–श्रीरामचन्द्रजीमें तो उपेक्षाके लिये जगह ही नहीं है, किन्तु मनुष्योंको विश्वास नहीं होता। 'भक्तोंके योग-क्षेमका सारा भार मैं उठाऊँगा' पुराणोंमें ऐसा कहनेवाले भक्ताभिमानी श्रीरामचन्द्र कभी अपने भक्तोंकी उपेक्षा नहीं करते।

३५–जिसके अन्तःकरणमें जो भावना होती है, उसीको वे पूरी करते हैं। अनन्य भक्तोंकी रक्षा धनुर्धारी श्रीरामचन्द्र करते हैं। वे कभी अपने भक्तोंकी उपेक्षा नहीं करते।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

३६–परमेश्वर सदा-सर्वदा हमारे अत्यन्त निकट हैं। वे कृपालुतावश कुछ परीक्षा किया करते हैं। वे सुखानन्द-स्वरूप और मुक्तिदाता हैं। ऐसे भक्ताभिमानी श्रीरामचन्द्र कभी अपने भक्तोंकी उपेक्षा नहीं करते।

३७–जैसे सूर्य चकवे-चकवीको सदा विरह-दुःखसे छुड़ाता है, ठीक वैसे ही श्रीरामजी एकदम दौड़कर भक्तोंको सङ्कटसे छुड़ाते हैं। जो हरिभक्तिका डङ्का बजाते हैं, उन भक्तोंकी श्रीरामचन्द्र कभी उपेक्षा नहीं करते।

३८–हे मन! तुझसे एक प्रार्थना है, श्रीरघुराजके गुणानुवादसे आश्चर्यचकित हो उन्हींका ध्यान कर। और किसी प्रकार मेरी प्रार्थनाकी अवज्ञा न कर। तू श्रीरामचन्द्र-जीमें ही लीन हो जा।

३९–वेद, शास्त्र और पुराण जिसका वर्णन करते हैं, जिसके मिलनेसे परम सन्तोषकी प्राप्ति होती है, अपनी सब चञ्चलता उसीके अर्पण कर तथा उसीमें अखण्डरूपसे लीन हो जा।

४०–जहाँ तुझे सर्वश्रेष्ठ सुख मिलेगा वहीं अति आदरपूर्वक तेरी दृष्टि लगी रहे। विवेकसे मनोवासनाका त्याग कर। सदा-सर्वदा श्रीराम-स्मरणमें ही लगा रह।

४१–व्यर्थ भटकनेसे कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। व्यर्थ श्रममात्र होगा। विचारपूर्वक अन्तःकरणको समझा कर श्रीराम-स्मरणमें ही लीन रह।

४२–बहुत बातोंमें भी कुछ सार नहीं है। श्रीरामजीको ही अपना। श्रीरामजीका दीनानाथ होनेका व्रत है, उन्हींके स्मरणमें रत हो जा।

४३–हे मन! मैं तुझे एक अपनी हितकी बात कहता हूँ, उसे अच्छी तरहसे ध्यानमें रख। श्रीरामनामको छोड़कर व्यर्थ एक भी शब्दका उच्चारण न कर और मन-में सर्वदा उसीका ध्यान रख।

४४–व्यर्थ बातोंके सम्बन्धमें मौन धारण करके आदरपूर्वक श्रीराम-गुण-कीर्तन कर। जिस घरमें राम-नाम नहीं लिया जाता, उससे तो वन ही सुखदायक है।

४५–जिस संगतिसे सन्तोष भंग होता है, अहंकार पीछा नहीं छोड़ता और रामनामसे वियोग होता है, उसका क्या मूल्य है?

४६–जो घड़ी श्रीरामनामके बिना गयी वही तेरी सबसे बड़ी हानि है। श्रीरामनामको छोड़कर शेष सब श्रम व्यर्थ है। विचारवान् पुरुष ऐसा कहते हैं।

४७–जो सब ओर रामस्वरूप ही देखता है, ज्ञानी होकर भक्तका-सा आचरण करता है, भगवान्‌के गुण-कीर्तनमें उत्कट प्रेम रखता है, और साधन-मार्गपर स्थिर रहता है, ऐसा परमेश्वरका भक्त जगत्‌में धन्य है।

४८–जिसकी देह सदा भगवान्‌के कार्यमें क्षीण होती है, जिसकी वाणी सर्वदा श्रीरामनामोच्चारण करती है, जो स्वधर्म-पालनमें सर्वदा दक्ष रहता है, ऐसा भक्त जगत्‌में धन्य है।

४९–जैसी कथनी वैसी ही करनी। अनेकों देव-देवताओंमें एक ही आत्मभाव देखना, सन्देहरहित होकर सगुणोपासना करना, इन रीतियोंसे चलनेवाला परमेश्वर-का भक्त धन्य है।

५०–जिसके मनमें नाना विकारी काम नहीं, जो ब्रह्मचारी, तपस्वी और उदासीन वृत्तिशाला है, तमोगुणका नाश होनेसे जिसका चित्त शान्त है ऐसा परमेश्वरका भक्त धन्य है।

५१–जिसने मद, मत्सर और स्वार्थ-बुद्धि छोड़ दी है, जिसने प्रपञ्च नहीं किया, जो सर्वदा नम्र और मधुर वाणी बोलता है, वह सर्वोत्तम भक्त धन्य है।

५२–जो अपना समय श्रुतिवाक्योंके चिन्तन और कीर्तनमें व्यतीत करता है, दाम्भिक वाद-विवादसे अलिप्त रहता है, ब्रह्मविषयक हितकारी संवाद ही करता है, वह सर्वोत्तम दास धन्य है।

५३–जो सदा सरल है और लोगोंको प्रिय है, विवेकी और सत्य-भाषी है, कभी मिथ्या भाषण नहीं करता वह सर्वोत्तम भक्त जगत्‌में धन्य है।

५४–जो जवानीमें ही अरण्य-सेवन करता है, विषयोंकी कल्पनाओंमें नहीं फँसता, अपने निश्चयसे कभी डिगता नहीं वह सर्वोत्तम भक्त जगत्‌में धन्य है।

५५–जिसके मनसे दुष्ट आशा नष्ट हो गयी है, जिसको भगवत्-प्रेमकी प्यास लगी रहती है, परमेश्वर जिसका ऋणी है, ऐसा भक्त धन्य है।

५६–दीनोंपर दया करनेवाले, अति कोमल मनवाले, स्नेह करनेवाले, कृपालु और भक्तरक्षक—ऐसे रामजीके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भक्तके मनमें कहाँ क्रोध और कहाँ सन्ताप ! जगत्‌में ऐसा सर्वोत्तम भक्त धन्य है ।

५७–निष्काम कर्म, भक्ति, उपासना, नित्यनियम और रामनामका जप करके जगत्‌में धन्य हो जा । उदासीनता ही सबका सार है । इससे वृत्ति सर्वदा अलिप्त रहती है ।

५८–पूर्वजन्मकर्मानुरूप उत्पन्न हुई विषयवासना मनुष्यको पदार्थोंमें लिप्त करती है, उसे छोड़ दे । निष्कामवृत्तिसे सदा श्रीरामजीका चिन्तन कर । मनमें लेशमात्र भी कल्पना मत रहने दे ।

५९–कल्पना असंख्य कोटि हैं । इनके रहते कभी रामदर्शन नहीं होगा । जिसके मनमें विषयकामना है और उसके प्रति आदर है, उसकी प्रीति श्रीरामचरणोंमें कभी नहीं हो सकती ।

६०–हे मन ! श्रीरामचन्द्र कल्पतरु, कामधेनु, निधि, सार और चिन्तामणि हैं जिनकी सत्तासे जगत्‌में सब कुछ होता है उनकी बराबरी कौन कर सकेगा ?

६१–कल्पवृक्षके नीचे खड़ा होकर जो दुःख करता है उसको दुःख ही मिलता है । ऐसे ही सत्संगतिमें वाद बढ़ानेसे अन्तमें शोक ही करना पड़ेगा ।

६२–निदिध्यास छूटनेसे अन्तःकरणमें शोक और सन्ताप आ घुसता है । भेदबुद्धिसे आनन्दका नाश होता है और खिन्नतासे निश्चय टल जाता है ।

६३–हरिबोधको छोड़कर जो विवाद करता है, उसकी दशा उसी पुरुषकी-जैसी है जो अपने घरमें कामधेनु रहते हुए भी पराये घर छाछ माँगने जाता है या हाथमें चिन्तामणि होते हुए भी काँचके टुकड़े ले लेता है ।

६४–मतिमन्द मानव दृढ़निश्चयी नहीं होता और विषयवासनामें मग्न रहता हुआ चित्तमें रामचिन्तन नहीं कर सकता । अति लोभीको दुःख अवश्य होगा और अति विषयासक्त मनुष्य सर्वदा दीन रहेगा ।

६५–भक्तिरहित दीन-अवस्थामें जीना व्यर्थ है । अति मूढ़को सदा दुगुना दुःख होता है । स्वर्ण, गृह आदिमें वासना न रखते हुए केवल श्रीरामचन्द्रमें ही प्रेम रख ।

जीव और ब्रह्म

तुम्हें हृदयमें ही मैं खोजूँ, और खोजने चलूँ कहाँ ?
देख रहा हूँ भटक रहे हैं पथिक अनेकों जहाँ-तहाँ ॥
प्रेम-भाव अन्तर्हित होंगे यदि मेरे अन्वेषणमें—
तुम समेट लोगे भ्रम उपजानेवाली माया क्षणमें ॥

× × ×

आत्म-विस्मृति है प्रमाद रखता जीवनको बन्धनमें ।
ब्रह्म परे इस जीव-जगतसे कैसे बास करे मनमें ॥
बाह्य-जगतका चित्र भूलकर सार-जगतमें करूँ प्रवेश ।
वहीं जीवसे तुम मिलते हो, ब्रह्मरूपमें हे विश्वेश ॥

× × ×

सार जगत है हृदय प्रेमके दीपक उसमें सज दूँ ।
करूँ वहींपर ध्यान ब्रह्मका, अहंभावको तज दूँ ॥

—श्रीजगन्नाथ मिश्र गौड़ 'कमल' विद्यालङ्कार

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कौन जतन बिनती करिये ?

(लेखक—पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए०)

हृदय बैठ जाता है, निराशा घिर आती है और प्राण सूखने लगते हैं जब अपनी करनीपर कभी दृष्टि जाती है। दुनियाके वाह-वाहमें फूला-फूला फिरता हूँ। ऊपरी वेशको देखकर भोले-भाले लोग ठगे जाते हैं। किसीको ठीक-ठीक दूसरेको पहचाननेके लिये समय ही कहाँ है; बस ऊपरी तड़क-भड़क अथवा सादगीसे ही हम दूसरोंके चरित्रका अनुमान कर सन्तोष कर लेते हैं। मेरे सम्बन्धमें भी लोग धोखेमें हैं। भीतरका घृणित लोक और उसकी दारुण पापवासना, उफ़! घोर नरकसे भी भयङ्कर है। उसपर आडम्बर, सादगी और साधुताकी चादर डाले संसारकी दृष्टिमें, लोगोंकी नज़रमें 'भला' कहलाकर कितना प्रसन्न होता हूँ। कितना सन्तुष्ट होता हूँ! हूँ चाहे जैसा भी, परन्तु लोग भला समझते रहें, नेक कहते रहें, साधु मानते रहें—बस, इसीमें बाग-बाग हो जाता हूँ। परन्तु एक बार, एक क्षणके लिये भी चादरका पट हटाकर जब हृदयकी नग्न तस्वीरको देखता हूँ, अपनी त्रुटियों, पापों, अपराधों और दुराचारोंको देखता हूँ तो ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसे नारकीय जीवनसे तो जीवनका न रहना ही श्रेयस्कर है। परन्तु इस जीवका मोह भी तो बहुत प्रगाढ़ है और इसी मोहमें ही इस जीवनकी लहर चल रही है!

जबतक वृत्ति बहिर्मुखी रहती है, मन संसारकी प्रशंसापर अपनेको तौलता है, तबतक तो सुख-ही-सुख है; परन्तु हाय! जब अपने भीतरके संसारको देखता हूँ, जब अपनी पतनशील वृत्तियोंपर दृष्टि डालता हूँ तो लज्जा और ग्लानिमें गड़ जाता हूँ। दुनियाको भले ही धोखा दे सकूँ परन्तु अपने अन्तर्यामी प्रभुकी आँखोंमें कैसे धूल झोंक सकूँगा! देखता हूँ, प्रभुजीके देखते-देखते घोर-से-घोर जघन्य पाप करते सकुचाता नहीं। पापका भूत जब सिरपर सवार हो जाता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह ईश्वरको ही निगल गया, परमात्माको ही पचा गया। पापके अन्धकारमें प्रभुका प्रकाश कहाँ विलीन हो जाता है! लीलामय! पापके हाथ सौंपकर कहाँ छिप जाते हो? छिप जानेपर भी हृदयमें यह दृढ़ निश्चय क्यों नहीं करा जाते कि तुम छिपकर हमारी सारी करतूत देख रहे हो। प्रभो! पाप करते समय तो तुम्हारे अस्तित्वतकका भान नहीं। पापोंके नरकमें छोड़कर तुम कहाँ चले जाते हो? कलंकका टीका सिरपर लगाकर अब तो तुम्हारे सम्मुख आनेमें भी लज्जा लगती है! जो कुछ चोरी-चुप्पे लुक-छिपकर मैंने किया है वह सब तुम्हारी आँखोंके सामने हुआ, तुम्हारे देखते हुए ही हुआ—जब यह स्मरण होता है तो कट जाता हूँ, ग्लानिमें डूब जाता। क्षमा भी कैसे माँगूँ, कौन-सा मुँह लेकर तुम्हारे सम्मुख आऊँ!

का मुख लै बिनती करौं, लाज लगत है मोहि।
तोहि देखत औगुन करौं, कैसे भावौं तोहि॥

जिस दिन तुम्हारी सत्तामें विश्वास हो जायगा, जिस क्षण तुम्हारी सर्वान्तर्यामी शक्तिमें हृदय जम जायगा—उसी क्षण पापोंसे पिण्ड छूट जायगा, यह मैं जानता हूँ और इसीलिये तो आत्मामें कोटि-कोटि वृश्चिक-दंशनकी पीड़ा होती है कि मैंने विषयोंकी सेवामें परमात्माका ही विस्मरण कर दिया। हृदयकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भक्तके मनमें कहाँ क्रोध और कहाँ सन्ताप ! जगत्‌में ऐसा सर्वोत्तम भक्त धन्य है।

५७–निष्काम कर्म, भक्ति, उपासना, नित्यनियम और रामनामका जप करके जगत्‌में धन्य हो जा। उदासीनता ही सबका सार है। इससे वृत्ति सर्वदा अलिप्त रहती है।

५८–पूर्वजन्मकर्मानुरूप उत्पन्न हुई विषयवासना मनुष्यको पदार्थोंमें लिप्त करती है, उसे छोड़ दे। निष्कामवृत्तिसे सदा श्रीरामजीका चिन्तन कर। मनमें लेशमात्र भी कल्पना मत रहने दे।

५९–कल्पना असंख्य कोटि हैं। इनके रहते कभी रामदर्शन नहीं होगा। जिसके मनमें विषयकामना है और उसके प्रति आदर है, उसकी प्रीति श्रीरामचरणोंमें कभी नहीं हो सकती।

६०–हे मन ! श्रीरामचन्द्र कल्पतरु, कामधेनु, निधि, सार और चिन्तामणि हैं जिनकी सत्तासे जगत्‌में सब कुछ होता है उनकी बराबरी कौन कर सकेगा ?

६१–कल्पवृक्षके नीचे खड़ा होकर जो दुःख करता है उसको दुःख ही मिलता है। ऐसे ही सत्संगतिमें वाद बढ़ानेसे अन्तमें शोक ही करना पड़ेगा।

६२–निदिध्यास छूटनेसे अन्तःकरणमें शोक और सन्ताप आ घुसता है। भेदबुद्धिसे आनन्दका नाश होता है और खिन्नतासे निश्चय टल जाता है।

६३–हरिबोधको छोड़कर जो विवाद करता है, उसकी दशा उसी पुरुषकी-जैसी है जो अपने घरमें कामधेनु रहते हुए भी पराये घर छाछ माँगने जाता है या हाथमें चिन्तामणि होते हुए भी काँचके टुकड़े ले लेता है।

६४–मतिमन्द मानव दृढ़निश्चयी नहीं होता और विषयवासनामें मग्न रहता हुआ चित्तमें रामचिन्तन नहीं कर सकता। अति लोभीको दुःख अवश्य होगा और अति विषयासक्त मनुष्य सर्वदा दीन रहेगा।

६५–भक्तिरहित दीन-अवस्थामें जीना व्यर्थ है। अति मूढ़को सदा दुगुना दुःख होता है। स्वर्ण, गृह आदिमें वासना न रखते हुए केवल श्रीरामचन्द्रमें ही प्रेम रख।

जीव और ब्रह्म

तुम्हें हृदयमें ही मैं खोजूँ, और खोजने चलूँ कहाँ ?
देख रहा हूँ भटक रहे हैं पथिक अनेकों जहाँ-तहाँ ॥
प्रेम-भाव अन्तर्हित होंगे यदि मेरे अन्वेषणमें—
तुम समेट लोगे भ्रम उपजानेवाली माया क्षणमें ॥

× × ×

आत्म-विस्मृति है प्रमाद रखता जीवनको बन्धनमें।
ब्रह्म परे इस जीव-जगतसे कैसे वास करे मनमें ॥
बाह्य-जगतका चित्र भूलकर सार-जगतमें करूँ प्रवेश।
वहीं जीवसे तुम मिलते हो, ब्रह्मरूपमें हे विश्वेश ॥

× × ×

सार जगत है हृदय प्रेमके दीपक उसमें सज दूँ।
करूँ वहींपर ध्यान ब्रह्मका, अहंभावको तज दूँ ॥

—श्रीजगन्नाथ मिश्र गौड़ 'कमल' विद्यालङ्कार

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कौन जतन बिनती करिये ?

(लेखक—पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम० ए०)

हृदय बैठ जाता है, निराशा घिर आती है और प्राण सूखने लगते हैं जब अपनी करनीपर कभी दृष्टि जाती है। दुनियाके वाह-वाहमें फूला-फूला फिरता हूँ। ऊपरी वेशको देखकर भोले-भाले लोग ठगे जाते हैं। किसीको ठीक-ठीक दूसरेको पहचाननेके लिये समय ही कहाँ है; बस ऊपरी तड़क-भड़क अथवा सादगीसे ही हम दूसरोंके चरित्रका अनुमान कर सन्तोष कर लेते हैं। मेरे सम्बन्धमें भी लोग धोखेमें हैं। भीतरका घृणित लोक और उसकी दारुण पापवासना, उफ्! घोर नरकसे भी भयङ्कर है। उसपर आडम्बर, सादगी और साधुताकी चादर डाले संसारकी दृष्टिमें, लोगोंकी नजरमें 'भला' कहलाकर कितना प्रसन्न होता हूँ। कितना सन्तुष्ट होता हूँ! हूँ चाहे जैसा भी, परन्तु लोग भला समझते रहें, नेक कहते रहें, साधु मानते रहें—बस, इसीमें बाग-बाग हो जाता हूँ। परन्तु एक बार, एक क्षणके लिये भी चादरका पट हटाकर जब हृदयकी नग्न तसवीरको देखता हूँ, अपनी त्रुटियों, पापों, अपराधों और दुराचारोंको देखता हूँ तो ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसे नारकीय जीवनसे तो जीवनका न रहना ही श्रेयस्कर है। परन्तु इस जीवका मोह भी तो बहुत प्रगाढ़ है और इसी मोहमें ही इस जीवनकी लहर चल रही है!

जबतक वृत्ति बहिर्मुखी रहती है, मन संसारकी प्रशंसापर अपनेको तौलता है, तबतक तो सुख-ही-सुख है; परन्तु हाय! जब अपने भीतरके संसारको देखता हूँ, जब अपनी पतनशील वृत्तियोंपर दृष्टि डालता हूँ तो लज्जा और ग्लानिमें गड़ जाता हूँ। दुनियाको भले ही धोखा दे सकूँ परन्तु अपने अन्तर्यामी प्रभुकी आँखोंमें कैसे धूल झोंक सकूँगा! देखता हूँ, प्रभुजीके देखते-देखते घोर-से-घोर जघन्य पाप करते सकुचाता नहीं। पापका भूत जब सिरपर सवार हो जाता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह ईश्वरको ही निगल गया, परमात्माको ही पचा गया। पापके अन्धकारमें प्रभुका प्रकाश कहाँ विलीन हो जाता है! लीलामय! पापके हाथ सौंपकर कहाँ छिप जाते हो? छिप जानेपर भी हृदयमें यह दृढ़ निश्चय क्यों नहीं करा जाते कि तुम छिपकर हमारी सारी करतूत देख रहे हो। प्रभो! पाप करते समय तो तुम्हारे अस्तित्वतकका भान नहीं। पापोंके नरकमें छोड़कर तुम कहाँ चले जाते हो? कलंकका टीका सिरपर लगाकर अब तो तुम्हारे सम्मुख आनेमें भी लज्जा लगती है! जो कुछ चोरी-चुप्पे लुक-छिपकर मैंने किया है वह सब तुम्हारी आँखोंके सामने हुआ, तुम्हारे देखते हुए ही हुआ—जब यह स्मरण होता है तो कट जाता हूँ, ग्लानिमें डूब जाता। क्षमा भी कैसे माँगूँ, कौन-सा मुँह लेकर तुम्हारे सम्मुख आऊँ?

का मुख लै बिनती करौं, लाज लगत है मोहि।
तोहि देखत औगुन करौं, कैसे भावौं तोहि॥

जिस दिन तुम्हारी सत्तामें विश्वास हो जायगा, जिस क्षण तुम्हारी सर्वान्तर्यामी शक्तिमें हृदय जम जायगा—उसी क्षण पापोंसे पिण्ड छूट जायगा, यह मैं जानता हूँ और इसीलिये तो आत्मामें कोटि-कोटि वृश्चिक-दंशनकी पीड़ा होती है कि मैंने विषयोंकी सेवामें परमात्माका ही विस्मरण कर दिया। हृदयकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्वाभाविक गति, मनकी वास्तविक दौड़ विषयोंकी ओर है। विषयोंके सेवनमें ही अमृत-रस मिलता है। तुम्हारी ओर तो मुँह मोड़नेकी भी इच्छा नहीं होती। घड़ी-आध-घड़ी संसारको झमेलेमें डालनेके लिये, जब आँख मूँदकर तुम्हारे चिन्तन-ध्यानमें लगता हूँ तो उसी समय—मानो पहलेहीसे कोई षड्यन्त्र रचा गया हो—संसारके सारे झमेले, सारे विषय और विकार एक साथ ही सामने खड़े हो जाते हैं। हाथ जोड़ता हूँ, अनुनय-विनय करता हूँ, निहोरा करता हूँ कि मुझे कम-से-कम घड़ी-आध-घड़ीके लिये छोड़ दो, फिर तो तुम्हारी सेवा-शुश्रूषा है ही, परन्तु कौन मानता है और वे धर दबोचते हैं मेरे इस विषयानुरक्त हृदयको। मन भी इस विषय-सुखमें माता-माता फिरता है। कभी तृप्ति नहीं होती, विषयोंसे कभी जी नहीं भरता; ऐसे और वैसे बराबर लगा ही रहता है। एक-न-एक इच्छा रह ही जाती है। भला घीसे कहीं अग्निकी तृप्ति हो जायगी और वह कह देगी कि अब नहीं चाहिये—

तुलसी न काम-अगिन 'तुलसी' कहुँ विषय-भोग बहु घीते।

धुएँका घोरहर यह विश्व हमारे विश्वास और भरोसेका आधार बन गया है। नादान मन मृग-मरीचिकासे प्यास बुझाना चाहता है। सोचता है खूब संसारको भोग लूँ परन्तु वह संसारको क्या भोगेगा, संसार ही उसको भोग रहा है। संसार हमारे भोगकी वस्तु नहीं है, हम ही संसारके भोगकी वस्तु हैं। स्त्री है तो धन नहीं, धन है तो पुत्र नहीं, पुत्र है तो स्वास्थ्य नहीं, यह है तो वह नहीं—चारों खूँट बराबर कोई नहीं मिला। कभी भी ऐसा नहीं हुआ कि बिछावन बिछाकर निश्चिन्त एक घड़ी भी सो लें—रातभर बिछावन डासनेमें ही बीता, कभी सुखसे नींदभर सोनेको नहीं मिला, कभी हाय-हाय बन्द नहीं हुआ—

डासत ही सब निसा सिरानी कबहुँ न नाथ नींद भरि सोयो।

इस असार संसारके इस दुःखपूर्ण अनित्य रूप-को देखता हूँ फिर भी इसकी ओरसे ललक मिटती नहीं। 'कुछ और' की कामना बनी ही रहती है। दुःख भोगता रहता हूँ, विषयोंमें आकण्ठ डूबा हुआ हूँ, पापोंमें सर्वथा निरत हूँ। बस, इसी आशामें कि भविष्यके गर्भमें सुखका उदय होगा और मैं छककर उसे भोगूँगा। वह सुनहला भविष्य, वह लुभावना सम्मोहन भोग, पता नहीं, कहाँ छिपा हुआ है जिसके प्रतीक्षा-पथमें हृदय बिछा दिया है। मृत्यु, जरा, रोग, अभाव, आपदा, विद्वेष, कलह, अशान्तिके इस लीला-स्थलमें कितने आये—सुखकी खोजमें जमीन-आसमाँ एक करके भी न पा सके और हाय-हाय करके हाथ मलते हुए चले गये। जीवनके अन्तिम क्षणमें पुत्र-कलत्र, महल-अटारियोंसे घिरे होनेपर भी जब उनकी आँखें सदाके लिये बन्द होनेके पूर्व एक बार खुलीं तो उसमें हाहाकार और चीत्कारके ही भीषण दृश्य दिखलायी दिये। संसारमें सर्वत्र निराशा, उपेक्षा और विश्वासघातके ही चित्र दिखे। मृत्युकी देहरीपर पैर रखते समय मनुष्य जब जीवनके घोर कोलाहलमय श्मशानको देखता है तो उसे पता चलता है कि सारा जीवन व्यर्थ ही गँवाया, वस्तुतः न कोई सच्चा साथी है न संगी। उस समय मनमें अपने कियेपर बड़ा ही पछतावा होता है—

मनकी मनही माँहि रही।
ना हरि भजे न तीरथ सेये चोटी काल गही॥

यह सब देखता हूँ, फिर भी आँखें खुलती ही नहीं,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हृदयका कपाट कभी खुलता ही नहीं। विषयोंसे ऐसा चिपटा हुआ हूँ कि कभी दूसरी ओर देखनेका न अवकाश ही है न चिन्ता ही—बस, रात-दिन एक ही धुन ! एक ही व्रत !!

हृदयका दर्पण निर्मल हो और वह प्रभुकी ओर मुँह किये हो, तभी तो प्रभुजीकी छवि उसमें उतर सकती है, तभी तो 'जीवन-धन' की झाँकी हृदयके मन्दिरमें मिल सकती है। सो तो तुम सब कुछ जानते ही हो कि यहाँ हृदयकी कैसी कुटिल गति है। ऐसा भी तो नहीं होता कि अपने पापोंकी पोटको लेकर तुम्हारे चरणोंमें गिरूँ—अपने सारे कलङ्क-दोषको लिये-दिये आतुर-विह्वल होकर तुम्हारे पाद-पद्मोंपर आर्त्त होकर पड़ जाऊँ। एक क्षणके लिये भी तो तुम्हारी ओर मुँह न कर पाया। एक पलके लिये भी छल छोड़कर, निष्कपटभावसे अपने स्वामी, अपने प्राणाधारकी शरण-में नहीं गया। तुम तो बार-बार मेरे पथमें मुझे उबारने-के लिये आ जाते हो, परन्तु मैं राह काटकर मुख फेर लेता हूँ। बार-बार मनको समझाता हूँ, ढाढ़स देता हूँ—रे मन ! प्रभुजीके चरणोंकी शरणमें चल, रात-दिन संसारके हाहाकारको देखता रहता है फिर भी इससे इतना चिपटा है कि एक क्षण भी छोड़ना नहीं चाहता। उस समय तो ऐसा प्रतीत होता है कि मन मान गया, और अब विषयोंकी ओर नहीं जायगा—परन्तु जहाँ मौका लगा कि चट····

मेरो मन हरिजू हठ न तजै।
निसदिन नाथ देउँ सिख बहु बिधि करत सुभाव निजै॥

और अब संसार-सागरमें—

नीर अति गंभीर माया लोभ लहर तिरंग।
लिये जात अगाध जलमें गहे ग्राह अनंग॥
मीन इंद्रिय अतिहि काटति मोट अघ सिर भार।
पग न इत-उत धरन पावत उरझि मोह सिवार॥
काम क्रोध समेत तृस्ना पवन अति झकझोर।
नाहिं चितवन देत तिय सुत नाम नौका ओर॥
थक्यो बीच बिहाल बिह्वल सुनो करुनामूल।
स्याम ! भुज गहि काढ़ि लीजै 'सूर' ब्रजके कूल॥

अथाह जल है, माया, लोभ, मोहकी तिहरी लहरें आकाशको चूम रही हैं—कामरूपी ग्राह पकड़े, खींचे लिये जा रहा है। इन्द्रियाँरूपी मछलियाँ जोरसे काट रही हैं और सिरपर पापकी भारी गठरी है। मोहका सिवार पैरमें उलझकर मुझे आगे बढ़ने नहीं देता ! काम, क्रोध और तृष्णाकी भयङ्कर आँधी झकझोर रही है। पुत्र-कलत्र प्रभुके नामरूपी नौकाकी ओर देखनेका अवसर ही नहीं देते। हे प्रभो ! मैं इस अथाह सागरके बीचमें ही बिहाल-विह्वल हूँ। अब डूबा, तब डूबा। तुम करुणाके मूल हो, हाथ बढ़ाकर इस अथाह सागरमें डूबनेसे मुझे बचा लो !

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परमार्थ-पत्रावली

(श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पत्र)

[गतांकसे आगे]

[१२]

[एक सज्जनने दो प्रश्न किये थे, जिनका उत्तर 'सर्वोच्च ध्येय' शीर्षक लेखमें इसी वर्षकी संख्या ५ पृष्ठ ८३० में दिया गया था। उसीपर उक्त सज्जनने कुछ शंकाएँ फिर लिखीं। उनकी शङ्काओंका उत्तर इस पत्रमें दिया गया है।—सम्पादक]

आपका तारीख १८-१-३४ का कृपापत्र मिला था; कई प्रकारके कार्योंकी भीड़ एवं अस्वस्थता आदि कारणोंसे पत्र लिखनेमें विलम्ब हो गया, इसके लिये क्षमा करें। आपने प्रश्नोंके सम्बन्धमें कुछ बातें पूछीं सो बड़े आनन्दकी बात है, इसके लिये क्षमा नहीं माँगनी चाहिये, और न उत्तरके लिये टिकट ही भेजना चाहिये। आपका शङ्कानिवारणार्थ पूछना उचित ही है, इसमें नास्तिक माननेकी कौन-सी बात है। किसीको भी नास्तिक समझ लेना समझदार मनुष्यके लिये उचित नहीं है। आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमशः निम्नलिखित है—

१—नामजप और ध्यानके सम्बन्धमें पूछा सो मेरी समझसे नामजप और ध्यानसे अवश्य ही उत्थान होता है। मनुष्य जिसका नाम उच्चारण करता है, उसीका स्वरूप उसे याद आता है, और वह जैसी वस्तु होती है, वैसा ही उसका असर पड़ता है। जब कामी पुरुष स्त्रीको याद करता है, तो उसके मनमें कामका विकार प्रत्यक्ष उत्पन्न होता देखा जाता है, तब विज्ञानानन्दघन परमात्माके चिन्तनसे ज्ञान और आनन्दकी वृद्धि होनेमें क्यों शङ्का करनी चाहिये? भगवान्‌के नामजप और ध्यानसे समस्त पापोंका नाश होकर परमपदकी प्राप्ति होती है ऐसा विश्वास करना ही चाहिये। प्रत्यक्षमें भी ध्यान और नामजप करते समय स्फुरणाका अभाव और आनन्दकी प्राप्ति होती है। स्फुरणाका अभाव ही पापनाशका द्योतक है। शास्त्रप्रमाण तो बहुत हैं। पातञ्जलयोगदर्शनमें सूत्र हैं—

'तस्य वाचकः प्रणवः।'

'तज्जपस्तदर्थभावनम्।'

उस परमात्माका वाचक अर्थात् नाम ॐ है, उस ॐ का जप और उसके अर्थकी भावना अर्थात् परमात्माके स्वरूपका चिन्तन करना।

'ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च'

इससे विघ्नोंका अभाव और परमात्माकी प्राप्ति भी हो जाती है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् कहते हैं—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

जो पुरुष 'ॐ' इस एक अक्षररूप ब्रह्मका उच्चारण करता हुआ और उसके (अर्थस्वरूप) मुझको चिन्तन करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है वह परमगतिको प्राप्त होता है।

गोस्वामी तुलसीदास, ज्ञानदेव, समर्थ रामदास आदि अनुभवी सन्त भी अपने अनुभवसे नाममहिमाकी घोषणा करते हैं। आधुनिक कालके भी अच्छे-अच्छे पुरुषोंने नामसे लाभ होना अपने अनुभवसे बतलाया है। मैं अपने अनुभवके सम्बन्धमें क्या लिखूँ, इतना ही काफी है कि मुझको तो इससे शान्ति मिली है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२—सगुण परमात्माके दो भेद हैं, एक सगुण निराकार और दूसरा सगुण साकार। सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणोंका कार्य यह दृश्यप्रपञ्च जब कारणमें लय हो जाता है और प्रकृति जिस समय साम्यावस्थामें स्थित रहती है, तब वह गुणमयी प्रकृति विज्ञानानन्दघन परमात्माके जिस अंशमें स्थित रहती है वही निराकार सगुण ब्रह्म है। इस निराकार सगुण ब्रह्मका संसारके नाश होनेपर भी नाश नहीं होता। इसीको गीतामें सनातन अव्यक्त कहा है—

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति॥

यह कोई नियमकी बात नहीं है कि सगुण वस्तु साकार ही हो। आकाश निराकार है और सर्वत्र व्याप्त है परन्तु उसमें शब्द-गुण वर्तमान है। आकाशमें स्थित जल निराकार रहता है, वही बादलके रूपमें आता है और वही जल, बर्फ इत्यादिके रूपमें आ जाता है। निराकार रूपमें भी जलके गुण रहते हैं, परन्तु उसका आकार नहीं दीखता। तथापि वहाँ जलका अस्तित्व मानना ही होता है। अतएव सगुण अव्यक्तको सर्वत्र व्याप्त कहनेमें और समस्त संसार उसमें लीन होता है यह कहनेमें कोई 'वदतो व्याघात' दोष नहीं आता।

३—भगवान् व्यक्तिविशेषरूपमें भी हैं, पर वे अल्प नहीं हैं। योगदर्शनमें कहा है—

'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः' (१।२४)

क्लेश, (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और मरणभय), कर्म (शुभ, अशुभ और मिश्रित), विपाक (सुख-दुःख) और आशय (वासना) के संसर्गसे रहित पुरुषविशेष (पुरुषोत्तम) का नाम ईश्वर है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें स्वयं भगवान् कहते हैं—

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥
यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥
(१५।१८-१९)

मैं नाशवान् जड़वर्गसे तो सर्वथा अतीत हूँ और (मायामें स्थित) अविनाशी जीवात्मासे भी उत्तम हूँ। इसलिये लोकमें और वेदमें पुरुषोत्तम (नामसे) प्रसिद्ध हूँ। हे भारत! इसप्रकार तत्त्वसे जो ज्ञानी पुरुष मुझको पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे निरन्तर मुझको ही भजता है।

४—भगवान्‌को कोई उत्पन्न नहीं करता, वे स्वयं प्रकट होते हैं। यद्यपि लोकदृष्टिसे मनुष्याकारमें भगवान् श्रीराम एवं श्रीकृष्ण माता-पितासे प्रकट होते-से दीखते हैं परन्तु वास्तवमें वे अपने आप ही अवतीर्ण होते हैं। गीतामें कहा है—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥
(४।६)

मैं अविनाशीस्वरूप अजन्मा होनेपर भी तथा सब भूतप्राणियोंका ईश्वर होनेपर भी अपनी प्रकृतिको अधीन करके योगमायासे प्रकट होता हूँ।

५—समस्त संसार उस सगुण अव्यक्त परमेश्वरसे ही प्रकट होता है, प्रकृतिका कार्यरूप शरीर अपने कारण प्रकृतिमें लीन हो जाता है और प्रकृति परमेश्वरमें स्थित रहती है।

६—आपने लिखा कि परमेश्वर यदि अवतीर्ण हो गया तो फिर प्रकृतिके कार्यको कौन सँभालता है। सो, प्रकृतिका कार्य सदा सँभालनेवाले प्रभु ही सँभालते हैं। वे समस्त भूतोंके ईश्वर रहते हुए ही

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परमार्थ-पत्रावली

(श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पत्र)

[गतांकसे आगे]

[१३]

[एक सज्जनने दो प्रश्न किये थे, जिनका उत्तर 'सर्वोच्च ध्येय' शीर्षक लेखमें इसी वर्षकी संख्या ५ पृष्ठ ८३० में दिया गया था। उसीपर उक्त सज्जनने कुछ शंकाएँ फिर लिखीं। उनकी शङ्काओंका उत्तर इस पत्रमें दिया गया है।—सम्पादक]

आपका तारीख १८-१-३४ का कृपापत्र मिला था; कई प्रकारके कार्योंकी भीड़ एवं अस्वस्थता आदि कारणोंसे पत्र लिखनेमें विलम्ब हो गया, इसके लिये क्षमा करें। आपने प्रश्नोंके सम्बन्धमें कुछ बातें पूछीं सो बड़े आनन्दकी बात है, इसके लिये क्षमा नहीं माँगनी चाहिये, और न उत्तरके लिये टिकट ही भेजना चाहिये। आपका शङ्कानिवारणार्थ पूछना उचित ही है, इसमें नास्तिक माननेकी कौन-सी बात है। किसीको भी नास्तिक समझ लेना समझदार मनुष्यके लिये उचित नहीं है। आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमशः निम्नलिखित है—

१—नामजप और ध्यानके सम्बन्धमें पूछा सो मेरी समझसे नामजप और ध्यानसे अवश्य ही उत्थान होता है। मनुष्य जिसका नाम उच्चारण करता है, उसीका स्वरूप उसे याद आता है, और वह जैसी वस्तु होती है, वैसा ही उसका असर पड़ता है। जब कामी पुरुष स्त्रीको याद करता है, तो उसके मनमें कामका विकार प्रत्यक्ष उत्पन्न होता देखा जाता है, तब विज्ञानानन्दघन परमात्माके चिन्तनसे ज्ञान और आनन्दकी वृद्धि होनेमें क्यों शङ्का करनी चाहिये? भगवान्‌के नामजप और ध्यानसे समस्त पापोंका नाश होकर परमपदकी प्राप्ति होती है ऐसा विश्वास करना ही चाहिये। प्रत्यक्षमें भी ध्यान और नामजप करते समय स्फुरणाका अभाव और आनन्दकी प्राप्ति होती है। स्फुरणाका अभाव ही पापनाशका द्योतक है। शास्त्रप्रमाण तो बहुत हैं। पातञ्जलयोगदर्शनमें सूत्र हैं—

'तस्य वाचकः प्रणवः।'

'तज्जपस्तदर्थभावनम्।'

उस परमात्माका वाचक अर्थात् नाम ॐ है, उस ॐ का जप और उसके अर्थकी भावना अर्थात् परमात्माके स्वरूपका चिन्तन करना।

'ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च'

इससे विघ्नोंका अभाव और परमात्माकी प्राप्ति भी हो जाती है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् कहते हैं—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

जो पुरुष 'ॐ' इस एक अक्षररूप ब्रह्मका उच्चारण करता हुआ और उसके (अर्थस्वरूप) मुझको चिन्तन करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है वह परमगतिको प्राप्त होता है।

गोस्वामी तुलसीदास, ज्ञानदेव, समर्थ रामदास आदि अनुभवी सन्त भी अपने अनुभवसे नाममहिमाकी घोषणा करते हैं। आधुनिक कालके भी अच्छे-अच्छे पुरुषोंने नामसे लाभ होना अपने अनुभवसे बतलाया है। मैं अपने अनुभवके सम्बन्धमें क्या लिखूँ, इतना ही काफी है कि मुझको तो इससे शान्ति मिली है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२—सगुण परमात्माके दो भेद हैं, एक सगुण निराकार और दूसरा सगुण साकार। सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणोंका कार्य यह दृश्यप्रपञ्च जब कारणमें लय हो जाता है और प्रकृति जिस समय साम्यावस्थामें स्थित रहती है, तब वह गुणमयी प्रकृति विज्ञानानन्दघन परमात्माके जिस अंशमें स्थित रहती है वही निराकार सगुण ब्रह्म है। इस निराकार सगुण ब्रह्मका संसारके नाश होनेपर भी नाश नहीं होता। इसीको गीतामें सनातन अव्यक्त कहा है—

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति॥

यह कोई नियमकी बात नहीं है कि सगुण वस्तु साकार ही हो। आकाश निराकार है और सर्वत्र व्याप्त है परन्तु उसमें शब्द-गुण वर्तमान है। आकाशमें स्थित जल निराकार रहता है, वही बादलके रूपमें आता है और वही जल, बर्फ इत्यादिके रूपमें आ जाता है। निराकार रूपमें भी जलके गुण रहते हैं, परन्तु उसका आकार नहीं दीखता। तथापि वहाँ जलका अस्तित्व मानना ही होता है। अतएव सगुण अव्यक्तको सर्वत्र व्याप्त कहनेमें और समस्त संसार उसमें लीन होता है यह कहनेमें कोई 'वदतो व्याघात' दोष नहीं आता।

३—भगवान् व्यक्तिविशेषरूपमें भी हैं, पर वे अल्प नहीं हैं। योगदर्शनमें कहा है—

'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः' (१।२४)

क्लेश, (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और मरणभय), कर्म (शुभ, अशुभ और मिश्रित), विपाक (सुख-दुःख) और आशय (वासना) के संसर्गसे रहित पुरुषविशेष (पुरुषोत्तम) का नाम ईश्वर है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें स्वयं भगवान् कहते हैं—

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥
यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥
(१५।१८-१९)

मैं नाशवान् जड़वर्गसे तो सर्वथा अतीत हूँ और (मायामें स्थित) अविनाशी जीवात्मासे भी उत्तम हूँ। इसलिये लोकमें और वेदमें पुरुषोत्तम (नामसे) प्रसिद्ध हूँ। हे भारत! इसप्रकार तत्त्वसे जो ज्ञानी पुरुष मुझको पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे निरन्तर मुझको ही भजता है।

४—भगवान्‌को कोई उत्पन्न नहीं करता, वे स्वयं प्रकट होते हैं। यद्यपि लोकदृष्टिसे मनुष्याकारमें भगवान् श्रीराम एवं श्रीकृष्ण माता-पितासे प्रकट होते-से दीखते हैं परन्तु वास्तवमें वे अपने आप ही अवतीर्ण होते हैं। गीतामें कहा है—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥
(४।६)

मैं अविनाशीस्वरूप अजन्मा होनेपर भी तथा सब भूतप्राणियोंका ईश्वर होनेपर भी अपनी प्रकृतिको अधीन करके योगमायासे प्रकट होता हूँ।

५—समस्त संसार उस सगुण अव्यक्त परमेश्वरसे ही प्रकट होता है, प्रकृतिका कार्यरूप शरीर अपने कारण प्रकृतिमें लीन हो जाता है और प्रकृति परमेश्वरमें स्थित रहती है।

६—आपने लिखा कि परमेश्वर यदि अवतीर्ण हो गया तो फिर प्रकृतिके कार्यको कौन सँभालता है। सो, प्रकृतिका कार्य सदा सँभालनेवाले प्रभु ही सँभालते हैं। वे समस्त भूतोंके ईश्वर रहते हुए ही

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्थानविशेषमें अवतीर्ण होते हैं और साकार-निराकार दोनों रूपोंमें स्थित रहते हुए ही सब कार्य सँभालते हैं। एक देशमें प्रकट होनेपर अन्य देशोंमें उनका अभाव नहीं होता। जैसे अग्नि अव्यक्तरूपसे सभी जगह व्याप्त है परन्तु वही व्यक्तरूपसे एक जगह या एक ही साथ अनेक जगह प्रकट हो सकता है। इससे न तो उसकी व्यापकतामें कोई बाधा आती है न शक्तिहीमें न्यूनाधिकता होती है। जब प्राकृत अग्निके लिये ही ऐसा सम्भव है, तब सर्वत्र व्यापक, सर्वशक्तिमान् परमात्माके लिये तो शंकाकी बात ही कौन-सी है?

७—भगवान्‌के अवतारका एक उद्देश्य, 'दुष्टोंका विनाश' 'विनाशाय च दुष्कृताम्' भी है। इसीलिये भगवान्‌ने जरासन्धको पहली ही बारमें न मारकर उसे बार-बार आक्रमण करनेका मौका दिया, जिससे बार-बार अधिक सेनाका नाश हो। इसमें और भी अनेक हेतु हो सकते हैं। ईश्वरकी क्रियाका सम्पूर्ण उद्देश्य साधारण मनुष्योंकी समझमें नहीं आ सकता।

८—श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास आदिकी बातें श्रद्धापूर्वक माननी चाहिये। इनमें जहाँ परस्पर मतभेद दीख पड़े, वहाँ इतिहास, पुराण आदिकी अपेक्षा स्मृतिको और स्मृतिकी अपेक्षा श्रुतिको अधिक बलवान् समझना चाहिये। जहाँ श्रुतियोंमें भी विरोध हो, वहाँ दोनोंको ही प्रमाण मानना उचित है। हाँ, रहस्य समझनेके लिये विचारपूर्वक विरोधका निराकरण करके दोनोंका समन्वय करना चाहिये। नहीं तो, जितनी बात समझमें आवे उतनी ही काममें लानी चाहिये। सभी बातें प्रत्यक्ष प्रमाण-द्वारा सिद्ध नहीं हो सकतीं। विज्ञानमें भी अनुमान और आप्तवाक्योंको स्थान है। शास्त्रोंके न माननेसे हम महापुरुषोंद्वारा उपदेश किये गये ज्ञानसे वञ्चित रह जाते हैं, और मानकर तदनुसार आचरण करनेसे परमपदकी प्राप्ति होती है।

९—मैं नहीं कह सकता कि मैंने परमेश्वरको देखा है, परन्तु मेरा पूर्ण और दृढ़ विश्वास है कि परम श्रद्धा और अनन्य प्रेमसे परमेश्वरकी उपासना करनेपर उनके प्रत्यक्ष दर्शन हो सकते हैं। गीतामें भगवान्‌ने कहा है—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥
(११।५४)

हे श्रेष्ठ तपवाले अर्जुन! अनन्यभक्तिके द्वारा इस-प्रकार प्रत्यक्ष देखनेके लिये, तत्त्वसे जाननेके लिये तथा प्रवेश करनेके लिये भी शक्य हूँ।

१०—परमेश्वरका साक्षात् होनेपर श्रुति-स्मृतियोंमें जो द्रष्टाके लक्षण बतलाये हैं, वे उसमें हो जाते हैं। यथा—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥

जिनके दर्शनसे हमारे अन्दर ये उपर्युक्त लक्षण घट जायँ, उन्हींको परमेश्वर मानना चाहिये। यही परमेश्वरकी पहचान है। भगवान्‌का निराकार स्वरूप तो अनुभवसे ही समझमें आता है, वह एक ही है। परन्तु साकार स्वरूप भक्तकी इच्छाके अनुसार प्रकट हो सकता है। भक्त जिस रूपमें भगवान्‌का दर्शन करना चाहता है, भगवान् उसी रूपमें प्रकट होकर उसे दर्शन देते हैं। इसलिये नेत्रोंसे दीखनेवाले भगवान्‌के रूप अनेक हो सकते हैं।

११—भगवान्‌के नाम-जपका अभ्यास और परहितमें रत रहकर निष्काम सेवा करना—ये दोनों ही परमात्माकी प्राप्तिके साधन हैं, इसलिये दोनों ही

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करने चाहिये । भगवान्‌के नामजप और ध्यानको तोतेकी रटन्तके समान समझनेमें तो भगवान्‌के नाम-जप और स्वरूपचिन्तनके रहस्यको न समझना ही हेतु है ।

१२—जिसके पालनसे इस लोक और परलोकमें परमहित हो, उसीका नाम परमहित है, उसीका नाम परमधर्म है, वही शास्त्रका विधिवाक्य है और वही ईश्वरकी इच्छा है । ईश्वरकी इच्छा जाननेके तीन साधन हैं—

१—श्रुति-स्मृतिके विधिवाक्य, २—महापुरुषोंके वचन और आचरण और ३—शुद्ध हृदयकी स्फुरणा ।

सबसे पहले मनुष्यको शास्त्रोंके विधिवचनोंको ईश्वरकी इच्छा समझकर तदनुकूल आचरण करना चाहिये । शास्त्रोंमें विरोधाभास प्रतीत हो और उनका रहस्य समझमें न आवे तो महापुरुषोंसे पूछकर शंकाओं-का समाधान करना चाहिये, और उनकी आज्ञानुसार चलना चाहिये । महापुरुष वे ही हैं, जिनमें दैवी सम्पदाके (गीता अ० १६ श्लो० १ से ३) और गुणातीत पुरुषोंके (गीता अ० १४ श्लो० २२ से २५) तकके लक्षण मिलते हों । महापुरुषोंके वचनों-में भी शंका होनेपर या ऐसे महापुरुषोंके न मिलनेपर एकान्तमें बैठकर पक्षपातरहित हो, शुद्ध, श्रद्धामय हृदयसे भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये और उन्हीं-से मार्ग पूछना चाहिये । इसप्रकार हृदयस्थ ईश्वरसे प्रश्न करनेपर हृदयमें जिस निरपेक्ष भावका उदय हो, उसीको ईश्वरकी इच्छा समझकर तदनुसार आच-रण करना चाहिये ।

१३—परमात्मा परमदयालु होनेके साथ ही परम-कठोर भी हैं । परन्तु उनकी कठोरतामें भी दया भरी है । जैसे दयालु न्यायकारी राजा अपनी प्रजाके हितके लिये दण्डका विधान करता है, इसी प्रकार परमेश्वर भी जीवोंको पापके फलस्वरूप दण्ड देते हैं । इसमें ऊपरसे निष्ठुरता प्रतीत होती है परन्तु वास्तवमें परमहित भरा है । अथवा जैसे स्नेहमयी माता अपने प्यारे बच्चेको बुरे आचरणसे हटानेके लिये मारती है, इसी प्रकार भगवान् भी जीवोंके साथ दयापूर्ण कठोर बर्ताव करते हैं । राजा और माताके द्वारा तो असावधानी, बुद्धिकी मन्दता एवं स्वार्थसे कहीं भूल भी हो सकती है, परन्तु परमदयालु, न्यायकारी, सर्वज्ञ भगवान्‌के द्वारा तो जो कुछ होता है सो सब हमारे हितके लिये ही होता है । शास्त्र भी इसमें प्रमाण हैं । शास्त्रोंमें जगह-जगह भगवान्‌को परमदयालु और सर्वशक्तिमान् बतलाया है । युक्ति-से भी यही सिद्ध होता है ।

१४—'परमोच्चशिखर' मनगढ़न्त बात नहीं है । सर्वोच्च स्थिति या सर्वोत्तम परमधामका नाम ही 'परमोच्चशिखर' है । जिसको मनुष्य सबसे उच्च ध्येय समझते हैं, जिसको मोक्ष या कल्याण कहते हैं, वही परमोच्चशिखर है । गीतामें भगवान्‌ने कहा है—

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥
(८ । २१)

जो अव्यक्त अक्षर ऐसे कहा गया है, उसी अक्षर नामक अव्यक्तभावको परमगति कहते हैं तथा जिस सनातन अव्यक्तभावको प्राप्त होकर मनुष्य वापस नहीं लौटते हैं वह मेरा परमधाम है । साधन करने-पर ही इसका प्रत्यक्ष होता है इसमें कोई सन्देह नहीं है ।

१५—सम्पूर्ण मनुष्योंके करने योग्य कर्तव्य आपके दोनों प्रश्नोंके उत्तरमें बतलाये ही गये थे, जो 'कल्याण' भाग ८ पृष्ठ ८३० में प्रकाशित हो चुके हैं ।

१६—'देव' शब्दसे शास्त्रोक्त ८ वसु, ११ रुद्र,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

१२ आदित्य, प्रजापति और इन्द्र ये ३३ देवता प्रधान माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य भी अनेकों देवता हैं। इनकी पूजा या होम आदि करना चाहिये। भगवान्‌ने देवयज्ञकी आज्ञा देते हुए कहा है—

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥
(गीता ३। ११)

तुमलोग इस यज्ञद्वारा देवताओंकी उन्नति करो, और वे देवतालोग तुमलोगोंकी उन्नति करें। इसप्रकार आपसमें उन्नति करते हुए परमकल्याणको प्राप्त होओगे।

१७—'पितृ' शब्दसे जीवित या परलोकगत, पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही, प्रपितामही आदि हैं, जीवित पितरोंकी सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिये। और परलोकगत पितरोंके हितार्थ उनकी आत्माकी शान्तिके लिये ब्राह्मण-भोजन, श्राद्ध, तर्पण, व्रत, जप, दान, होम, ईश्वरप्रार्थना आदि करनी चाहिये।

१८—परमेश्वरके सर्वव्यापी, निराकार, विज्ञानानन्दघन स्वरूपको ही आदि बतलाया गया है। इसका विस्तारसे वर्णन देखना हो तो गीताप्रेससे प्रकाशित 'भगवान् क्या हैं' नामक पुस्तिकामें देख सकते हैं। प्रेम-श्रद्धासे होनेवाले मनोवाञ्छित शास्त्रानुकूल साकारदर्शन भी अवास्तविक नहीं हैं।

आपने लिखा कि मेरे लिखनेसे बुरा नहीं मानना चाहिये। सो इसमें बुरा माननेकी कोई भी बात नहीं है। जँचे जैसी बात अवश्य पूछनी ही चाहिये। आपके प्रश्नोंके उत्तर अपनी साधारण बुद्धिके अनुसार संक्षेपमें दिये गये हैं। आपके 'अनुभवसार' ग्रन्थमें इसका प्रकाशित करना या टीका करना आपकी इच्छापर निर्भर है।

अन्धश्रद्धाके सम्बन्धमें मेरा यह निवेदन है कि यद्यपि विवेकयुक्त श्रद्धा ही उत्तम है, परन्तु कितना ही विवेक हो आखिर जहाँ श्रद्धा होती है वहाँ विश्वास करना ही पड़ता है। विश्वास किये बिना न तो संसारमें आजतक काम चला, और न आगे चल ही सकता है।

आपने लिखा कि 'जो प्रत्यक्ष प्रमाणद्वारा—विज्ञानद्वारा सिद्ध नहीं वह असत्य है—ऐसा हमारा सिद्धान्त है।' मेरी साधारण समझके अनुसार ऐसा मानना युक्तियुक्त नहीं है। प्रत्यक्षके अतिरिक्त युक्ति और शास्त्रप्रमाण भी अच्छे पुरुषोंद्वारा माने गये हैं। और उन्हें मानना ही चाहिये। पूर्वमें होनेवाले प्रायः सभी महात्माओंने प्रत्यक्ष, अनुमान और आगमादि प्रमाणोंको माना है।

अनुरोध

प्रबल जलन विरहानलकी, जब सह न सकी प्राणेश!
बस, तब यों ही अंत हुआ, है यही लालसा शेष,
कभी भूलकर यदि आना, तो क्षणभरको हे नाथ!
रुक जाना इस ठौर, बनाना चिता एक निज हाथ,

× × ×

नत मस्तक है मेरा हे प्रभु, तव पद रज लेनेको,
संचित है यह नयन नीर घन, नाथ चरण धोनेको॥

—महात्मा जय गौरीशंकर सीताराम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीहरिः

कल्याणके ग्राहक बनानेवाले सज्जनोंसे

'कल्याण' पर आपकी जो इतनी कृपा है, 'कल्याण' को विशाल ईश्वरीय धर्मके ऊँचे और पवित्र भावोंका प्रचार करनेवाली, अपनी ही प्रिय वस्तु समझकर इसके प्रचारमें आप जो प्रेमपूर्वक निःस्वार्थ सेवा कर रहे हैं, इसके लिये हम आपके हृदयसे कृतज्ञ हैं। यह भगवान्‌की निष्काम सेवा है। भगवान्‌की प्रेरणासे होनेवाली आप-सदृश महानुभावोंकी निष्काम सहायतासे ही 'कल्याण' की उत्तरोत्तर उन्नति हो रही है और इसका प्रचार दिनों दिन बढ़ रहा है। धर्मप्रेमी सज्जन इसका और भी अधिक प्रचार चाहते हैं और विशेष लगनके साथ चेष्टा भी कर रहे हैं। प्रचारकी वृद्धिके लिये तो विशाल क्षेत्र पड़ा है। अतएव प्रेमी महानुभावोंसे निवेदन है कि वे विशेष उत्साहपूर्वक इस बार ग्राहक बनानेकी चेष्टा करें।

निवेदक—व्यवस्थापक

विषय-सूची

	पृष्ठ-संख्या
१–अनन्यता [कविता] (श्रीतुलसीदासजी)	१३०७
२–पूज्य० श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश ...	१३०८
३–पूज्य० श्रीनागबाबाजी महाराज (बाँधगुफा, प्रयाग) के उपदेश	१३०९
४–समयका सदुपयोग (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	१३१०
५–भक्तके लक्षण (हनुमानप्रसाद पोद्दारके एक व्याख्यानके आधारपर—'संकीर्तन'से) ...	१३१९
६–परमहंस-विवेकमाला (स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी)	१३२३
७–अभिलाषा [कविता] (श्रीनृपतिसिंहजी भदौरिया 'चकोर')	१३२६
८–प्रार्थनाका प्रवाह (पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव', एम० ए०) ...	१३२७
९–व्रजराजको रूप [कविता] (श्रीमतिरामजी)	१३३०
१०–ब्रह्मविद्या-रहस्य (अनुवादक तथा लेखक—श्रीनृसिंहदासजी वर्मा) ...	१३३१
११–भाव-भक्ति (श्रीयुत ब्रह्मचारी गोपालचैतन्यदेवजी)	१३४०
१२–नराकार ईश्वर, अद्वैतवाद और भक्तिवाद (ठाकुर श्रीगजराजसिंहजी एम० ए०, एल-एल० बी०)	१३४३
१३–अवतार-सूची (पं० श्रीविष्णुदत्तजी शर्मा बी० ए०)	१३४७
१४–मेरा भ्रम [कविता] (श्रीआदित्यजी शर्मा एम० ए०, बी० काम०, ए० टी० सी०)	१३५३
१५–पण्ढरपुर-यात्रा (श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी एम० ए०, डिप्टी कलेक्टर) ...	१३५४
१६–घृणा तथा द्वेष (श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा)	१३५९
१७–वेदना-निवेदन [कविता] (पं० श्रीमहावीरप्रसादजी जोशी काव्यतीर्थ) ...	१३६३
१८–मनको उपदेश (अनु०—कृष्णसुत) ...	१३६४
१९–राम-राज्यका आदर्श (श्रीरामदासजी गौड़ एम० ए०)	१३६८
२०–मोक्षार्थिनीका विलाप (बहिन श्रीजयदेवीजी)	१३७६
२१–मानस-शङ्का-समाधान (श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी)	१३७९
२२–परमार्थ-पत्रावली (श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पत्र)	१३८१
२३–भक्त-गाथा (म० श्रीबालकराम विनायक)	१३८३
२४–राम-नाम-महिमा [कविता] (साह मोहनराज)	१३८५
२५–विवेक-वाटिका	१३८६

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

पुराने और नये ग्राहकोंको सूचना

(१) यह आठवें वर्षका ११ वाँ अंक है। आगामी आषाढ़के बारहवें अंकमें इस सालका मूल्य समाप्त हो जायगा। नवें वर्षका पहला अंक श्रीशक्ति-अंक होगा। विवरण अलग दूसरे सूचनापत्रमें पढ़िये।

(२) जो सज्जन वार्षिक मूल्य भेजकर सालभरके लिये ग्राहक बनेंगे, उन्हें ३) का 'श्रीशक्ति-अंक सपरिशिष्टांक' नवें वर्षके पहले-दूसरे अंकके रूपमें यों ही मिल जायगा। बाकी १≡) में ही १० महीनोंतक हर महीने ८० पृष्ठका सचित्र कल्याण मिलता रहेगा।

(३) स्थायी ग्राहकोंको और आगामी वर्षके नये ग्राहकोंको चन्देके रुपये ४≡) (चार रुपये तीन आने) मनीआर्डरद्वारा बहुत जल्दी भेज देने चाहिये। मनीआर्डर भेजने और वी० पी० मँगानेमें खर्च तो बराबर ही लगेगा। परन्तु मनीआर्डर भेजनेवालोंको श्रीशक्ति-अंक रजिष्ट्रीसे बहुत जल्दी मिल जायगा, लेकिन वी० पी० मँगानेवालोंको महीने-डेढ़-महीनेतक राह देखनी होगी। सब प्रतियाँ पहले बिक गयीं तो शायद निराश होना पड़े।

(४) जिन प्रेमी सज्जनोंने निःस्वार्थभावसे कल्याणके ग्राहक बनाये और बना रहे हैं, उनके हम हृदयसे कृतज्ञ हैं, इस समय उन सबको विशेष चेष्टा करके पुराने ग्राहकोंके रुपये भिजवाने चाहिये। तथा नये ग्राहक बनाने चाहिये।

(५) इस बारका श्रीशक्ति-अंक बहुत ही उपादेय, सर्वाङ्गसुन्दर, शिक्षाप्रद और संग्रहमें रखनेयोग्य होगा। अतः ग्राहक बननेवालोंको बहुत जल्दी रुपये भेजने चाहिये।

(६) ग्राहकोंको चाहिये कि वे मनीआर्डरके कूपनमें अपने ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखें। नये ग्राहक हों तो नया ग्राहक शब्द लिखें। नहीं तो श्रीशक्ति-अङ्क देरसे पहुँचना सम्भव है। ऐसी दशामें हम जिम्मेवार न होंगे।

(७) ध्यान रखना चाहिये कि कल्याणका नया वर्ष श्रावणसे आरम्भ होता है।

(८) जिन सज्जनोंको ग्राहक न रहना हो वे कृपापूर्वक पहलेसे कार्ड लिखकर हमें सूचना दे दें ताकि हमें व्यर्थ वी० पी० भेजकर नुकसान न उठाना पड़े।

मैनेजर, 'कल्याण' गोरखपुर।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

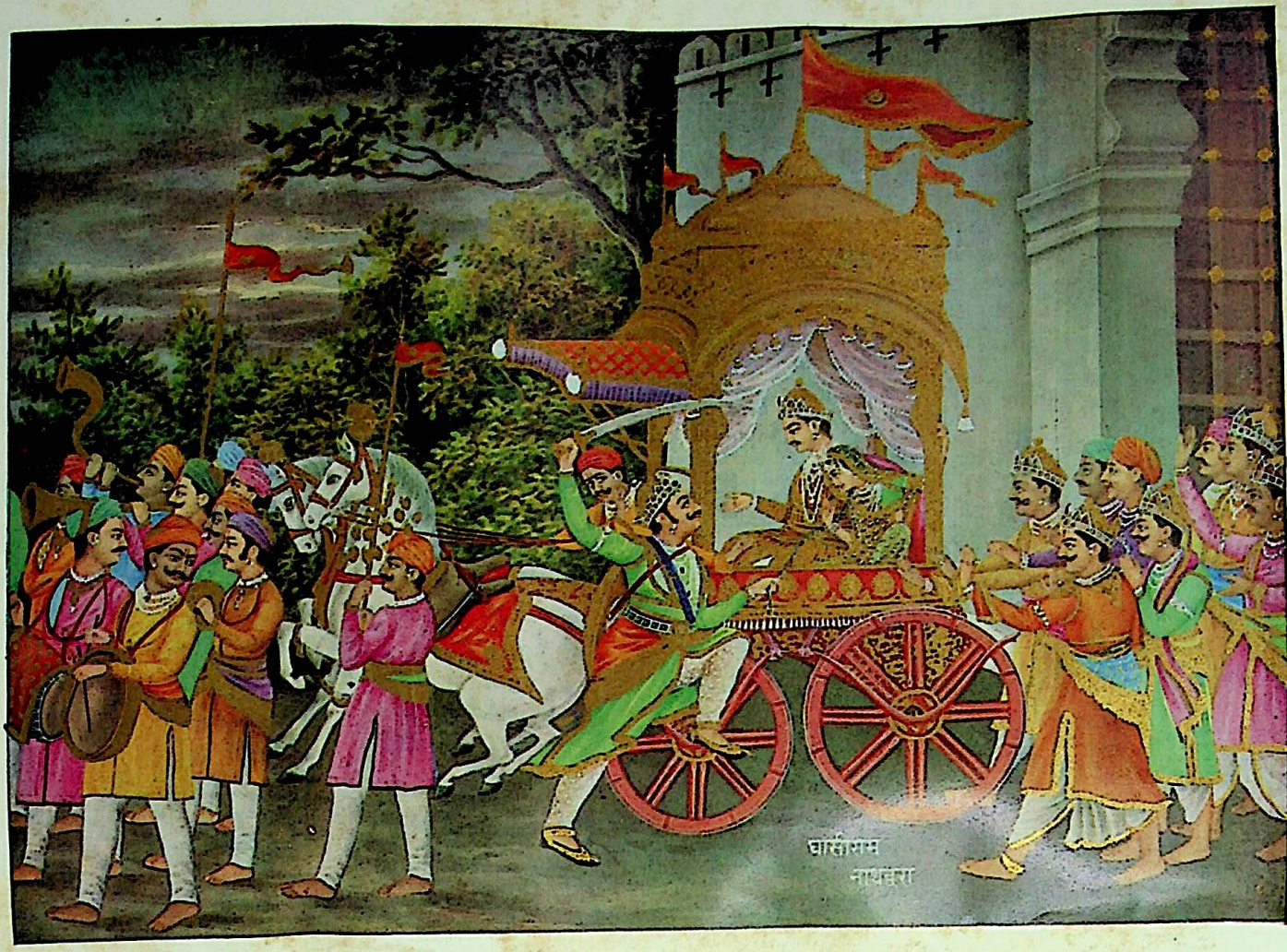

कंसका कोप

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

वर्ष ८ | गोरखपुर, ज्येष्ठ १९९१ जून १९३४ | संख्या ११ पूर्ण संख्या ९५

अनन्यता

राम मातु पितु बंधु सुजन गुरु पूज्य परम हित।
साहब सखा सहाय नेह नातो पुनीत चित॥
देस कोस कुल धर्म कर्म धन धाम धरनि गति।
जाति पाँति सब भाँति लागि रामहि हमारि पति॥
परमारथ स्वारथ सुजस सुलभ रामतें सकल फल।
कह तुलसिदास अब जब कबहुँ एक रामते मोर भल॥

—तुलसीदास

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पूज्य० श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश

प्र०—वेदान्तचर्चा विशेष लाभप्रद है या भगवच्चर्चा ?

उ०—अत्यन्त वैराग्ययुक्त तर्कप्रधान पुरुषोंके लिये वेदान्त-विचार विशेष लाभप्रद है। हृदयप्रधान पुरुषोंके लिये भगवच्चर्चा विशेष लाभप्रद है। भक्तोंके लिये वेदान्तचर्चा विघ्नरूप है। वेदान्तियोंके लिये भगवच्चर्चा विघ्नरूप नहीं है। जिस स्थानमें वेदान्तकी चर्चा होती हो, भक्त वहाँसे उठकर चला जाय। मुझे ऐसा अनुभव हो चुका है इसलिये मैं ऐसा कहता हूँ। शास्त्रमें इस सम्बन्धमें क्या लिखा है, उसका मुझे पता नहीं है।

भक्तोंके लिये प्रारब्ध कर्म रहता ही नहीं, वह तो ज्ञानियोंके लिये है; जिनका भगवान्‌से सम्बन्ध हो गया, उनके लिये प्रारब्ध नहीं रहता।

प्र०—तत्त्वज्ञान और भगवद्दर्शन—इन दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है ?

उ०—तत्त्वज्ञानमें केवल शुद्ध ब्रह्म रहता है, उसमें भक्त और भगवान्‌का अत्यन्त अभाव रहता है, इसलिये मुमुक्षुके लिये तत्त्वज्ञान श्रेष्ठ है, क्योंकि वह निर्वाणपद है। और भक्तके लिये भगवद्दर्शन श्रेष्ठ है, क्योंकि उसमें भक्त और भगवान् दोनों रहते हैं—यह प्रेमपथ है, इन दोनोंमें भगवद्दर्शन ही अधिक उपादेय और विशेष हितकर है।

प्र०—तत्त्वज्ञान होनेके बाद भगवद्दर्शन हो सकते हैं या नहीं ?

उ०—हो सकते हैं। जबतक प्रारब्ध रहता है तबतक प्रारब्धजन्य इच्छा भी रहती है। ज्ञानीको जो भगवद्दर्शनकी इच्छा होगी वह उसके लिये प्रारब्धजन्य इच्छा मानी जायगी। निष्काम कर्म या निष्काम भक्तिके बिना तो ज्ञानप्राप्ति हो नहीं सकती, यह शास्त्रोंका सिद्धान्त है और निष्काम भक्तिमें जो भगवद्ध्यानादि किया जाता है वह सकाम न होनेपर भी उसमें भगवद्दर्शनकी कामना छिपी रहती है, उसकी इच्छा निर्वाणपद या मोक्षप्राप्तिकी होनेसे उसे पहले ज्ञान हो जाता है और ज्ञान होनेके बाद जो भगवद्दर्शनकी इच्छा है उस इच्छाको तो प्रारब्धजन्य ही मानना पड़ेगा, नहीं तो ज्ञान होनेमें शङ्का होगी।

प्र०—भगवद्दर्शन होते ही तत्त्वज्ञान हो जाता है या कालान्तरसे ? और भगवद्दर्शनप्राप्त पुरुषको उसके जीवित कालमें ही तत्त्वज्ञान होता है या मृत्युके समय ? अथवा उसको तत्त्वज्ञान होता ही नहीं है ?

उ०—भगवद्दर्शनसे तत्त्वज्ञान नहीं होता। दर्शनके बाद यदि ज्ञानकी इच्छा करे तो ज्ञान हो सकता है, परन्तु जो भगवत्-प्रेममें मस्त है वह तो ज्ञान चाहता नहीं और बिना चाहके ज्ञान कैसे होगा ? दर्शन होनेके बाद तत्त्वज्ञानके अनुसार काम-क्रोधका लेश भी नहीं रहता, क्योंकि उसे तो सब भगवद्रूप या भगवल्लीला ही दीखेगी। फिर वह किससे, कैसे और क्यों द्वेष करेगा ? जैसे किसी मित्रका पत्र मिलनेपर उस पत्रसे, मित्रके वस्त्रसे, उसके कुत्तेसे भी प्रेम रहता है तब जो भगवत्प्रेमी है, उसका भगवान्‌में कैसा प्रेम होगा, इसका अनुमान सहज ही हो सकता है।

प्र०—सत्सङ्ग किसे कहते हैं ?

उ०—सत्पुरुष या सत्—परमात्माके सङ्गको सत्सङ्ग कहते हैं। सत्—परमात्माका सङ्ग होनेके लिये हमें उसका सङ्ग करनेकी आवश्यकता है कि जो परमात्माके मार्गमें तत्पर है—तत्परायण है, जिसने परमात्मप्राप्ति कर ली है या जो उसकी प्राप्तिके लिये प्रयत्नशील है। ऐसे सिद्ध या साधकोंके सङ्गको सत्सङ्ग कहते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पूज्य० श्रीनागबाबाजी महाराज (बाँधगुफा, प्रयाग) के उपदेश

श्रीराम-नामको ऊँचे स्वरसे उच्चारण करनेमें लाभ

निज अनुभव अब कहउँ खगेसा।

१–प्रथम तो श्रीराम-नामका जोरसे उच्चारण करके भजन करनेसे भगवत्‌में प्रेम उत्पन्न होता है—यह तजुर्बेकी बात है। क्योंकि नाम-कीर्तनका प्रभाव ही ऐसा है, और कलियुगके लिये ऐसा लिखा भी है कि 'कलौ केशवकीर्तनात्' कीर्तन दो प्रकारका है (क) नाम-कीर्तन (ख) यश-कीर्तन।

यदि नाम जोरसे उच्चारण नहीं होगा तो वह कीर्तनमें शुमार ही नहीं हो सकता।

वर्तमान समयके लिये गोस्वामी तुलसीदासजीका भी यही सिद्धान्त है—

राम राम रटु, राम राम रटु, राम राम रटु जीहा।
राम नाम नवनेह मेहको मन हठि होहि पपीहा॥
(विनयपत्रिका)

सूचित हो कि 'रटु' शब्द ऊँचे स्वरका बोध कराता है।

२–दूसरा लाभ यह है कि राम-नामका ऊँचे स्वरसे भजन करनेसे मन सङ्कल्प-विकल्प करनेसे रुक जाता है। यह भी तजुर्बेकी बात है और इसके प्रमाणमें महर्षि वाल्मीकिजी हैं।

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम्॥

३–तीसरा लाभ यह है कि राम-नाम ऊँचे स्वरसे रटनेसे अपने कानोंमें केवल राम ही शब्द पड़ता है। दूसरा शब्द कानोंमें जानेसे रुक जाता है। जब दूसरा शब्द ही कानमें नहीं गया तब केवल राम-शब्द श्रवणका विषय हो जाता है और उसीके सुननेका अभ्यास भी पड़ जाता है। दूसरा शब्द श्रवणमें पड़नेसे व्याकुलता हो जाती है, अतः एकाकी रहना अच्छा लगता है—इसका अनुभव भी हो चुका है।

४–चौथा लाभ यह है कि राम-नामका ऊँचे स्वरसे भजन करनेसे 'राम' शब्द दिमाग़में गूँजता रहता है। अठारह घण्टेमें इतना गूँज जाता है कि सोनेपर छः घण्टे नींदमें भी वही दिमाग़में रहता है। दिमाग़ धुनिसे खाली होते ही वह जाग उठा और पुनः राम-नामकी धुनि लगा दी, फिर दिमाग़में धुनि पहुँच गयी—इस तरह दिमाग़में धुनि सतत बनी रहती है।

जैसे घड़ा बनानेवाला कुम्हार जब चाकपरसे डण्डा उतार लेता है तब भी चाक घूमता रहता है और जब वह ठहरने लगता है तब फिर उसे डण्डासे घुमा देता है, इस तरह चाक सतत घूमता रहता है। इसी प्रकार दिमाग़में धुनि सतत बनी रहती है, कुछ कालमें तीव्र वैराग्य अपने-आप उत्पन्न हो जाता है जिससे ब्रह्मलोकपर्यन्त तृणवत् हो जाता है—यह भी अनुभवकी बात है और इसका प्रमाण भी है—

'राग राम नामसे विराग जोग जागिते'
(विनयपत्रिका)

५–पाँचवाँ लाभ यह है कि राम-नाम रटते-रटते ऐसा अभ्यास पड़ जाता है कि मन कहीं रहे, वाणीसे अपने-आप उच्चारण होता रहता है। यही सिद्धान्त शिवजीका भी है। यथा—

रसनहूँ संभु सिखवन देत नित राम नामहिं घोखु।
(विनयपत्रिका)

सूचित हो कि 'घोखु' शब्द जोरसे उच्चारणको सूचित करता है।

ये पाँच प्रकारके पाँचों लाभ ऊँचे स्वरसे राम-नाम रटें तभी प्राप्त हो सकते हैं, अतः राम-नामका ऊँचे स्वरसे उच्चारण करना उचित है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समयका सदुपयोग

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

समयकी अमूल्यताके रहस्यको समझकर मनुष्यको चाहिये कि वह अपना सारा समय भगवान्‌के प्रभाव और रहस्यको समझते हुए श्रद्धा एवं प्रेमपूर्वक निरन्तर केवल ईश्वरके चिन्तनमें ही लगावे। यदि मनुष्य भगवच्चिन्तनका ऐसा अभ्यास करे तो उसको बहुत अल्प समयमें ही परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। इस प्रकारके अभ्याससे सम्पूर्ण दुर्गुणों, दुराचारों एवं दुःखोंका अत्यन्त अभाव हो जाता है और मनुष्य अनायास ही सदाचार और सद्‌गुणोंसे सम्पन्न होकर परम शान्ति और परम आनन्दको प्राप्त करता है।

संसारमें चौरासी लाख जातिके अनन्त जीव शास्त्रोंमें बतलाये गये हैं। इन सबमें परमात्माकी प्राप्तिका अधिकार केवल मनुष्यको ही माना गया है। परमात्माकी असीम दयाके प्रभावसे अनधिकारी पशु-पक्षी तिर्यक् योनिके जीवोंको भी परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। इस प्रकारकी बातें इतिहासोंमें मिलती हैं। परन्तु वह अपवादरूप है, नियम नहीं। सारी सृष्टिके जीवोंकी संख्याका अनुमान करना तो वस्तुतः लड़कपन है परन्तु मनुष्यकी साधारण बुद्धिसे इतना कहा जा सकता है कि समस्त सृष्टिके अनन्त कोटि जीवोंमें मनुष्यकी संख्या अपार समुद्रमें एक क्षुद्र तरंगके समान ही है। यदि प्रत्येक योनिको भोगते हुए ठीक क्रमसे जीवको मनुष्य-शरीर मिले तब तो अनेकों युगोंके बाद उसका मिलना सम्भव है। आचरणोंकी ओर देखनेपर भी निराशा ही होती है, आचरण तो ऐसे हैं कि उनसे शीघ्र मनुष्य-शरीर मिलनेकी आशा ही नहीं की जा सकती। जिसको मनुष्य-शरीर मिलता है उसपर ईश्वरकी महान् दया समझनी चाहिये। इसीसे श्रीरामचरितमानसमें कहा गया है—

आकर चारि लाख चौरासी। योनिन भ्रमत जीव अविनाशी॥
फिरत सदा मायाके प्रेरे। काल कर्म स्वभाव गुण घेरे॥
कबहुँक करि करुणा नरदेही। देत ईश बिनु हेतु सनेही॥

अतएव बुद्धिमान् पुरुषोंको यह समझ रखना चाहिये कि अनन्त युगोंसे भटकते हुए अनन्त कोटि जीवोंमें जो अत्यन्त ही भाग्यशाली और मुक्तिके अधिकारी समझे जाने योग्य जीव होते हैं उन्हींको ईश्वर यह दुर्लभ मुक्तिदायक मनुष्य-शरीर प्रदान करते हैं। ऐसे दुर्लभ और क्षणभंगुर अनित्य मनुष्य-शरीरको पाकर जो जीव शीघ्र-से-शीघ्र अपने आत्माके कल्याणके लिये तत्पर नहीं होता, उसके समान मूर्ख और कोई भी नहीं है। जब मनुष्यका शरीर मिल गया, तब यह समझ लेना चाहिये कि सामान्यभावसे मुक्तिके अधिकारी तो हम हैं ही। ऐसा न होता तो मनुष्य-शरीर ही हमें क्यों दिया जाता। दयामयकी अपार दया है जिसने हमें मुक्तिका अधिकारी बनाया। इस अधिकारको पाकर भी यदि हम उस दयामयकी दयाकी अवहेलना कर अपने समयको व्यर्थ भोग, प्रमाद और आलस्यमें बितावें तो उसे मूढ़ताके अतिरिक्त और क्या कहा जाय? आहार, निद्रा और मैथुनादि तो प्रायः सभी योनियोंमें प्राप्त होते ही रहते हैं, फिर मनुष्यके शरीरको पाकर भी यदि जीव उन्हीं विषयोंमें अपना जीवन बिताता रहे तो फिर उस मनुष्यमें और पशुमें अन्तर ही क्या रह जाता है। कुतियाके साथ कुत्तेको जो सुख प्राप्त होता है, वही राजाको रानीके साथ और इन्द्रको इन्द्राणीके साथ प्राप्त होता है। पुष्पोंकी सुकोमल शय्यापर सोनेमें जो सुख विलासी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मनुष्यको मिलता है, वही सुख गदहेको घूरेकी राखपर लोटनेमें मिलता है। नाना प्रकारके मेवा-मिष्टान्न खानेमें मनुष्यको जो आनन्द मिलता है, वही आनन्द कुत्ते, कौवे आदि पशु-पक्षियोंको अपने-अपने आहारमें मिलता है। ईश्वरकी दयाके फलस्वरूप दुर्लभ मनुष्य-शरीरको और ऐसी मानवीबुद्धिको पाकर भी यदि हम इन पशु-पक्षियोंकी भाँति आहार, निद्रा और मैथुनादिको ही सर्वोत्तम सुख समझकर इन्हींमें अपना समय बितावें तो वास्तवमें हमारा दर्जा इन पशु-पक्षियोंसे भी बहुत नीचा हो जाता है। क्योंकि उन बेचारोंमें तो इस प्रकार समझने और विचार करनेकी बुद्धि नहीं है। इसीलिये वे इतने दोषी नहीं हैं परन्तु मनुष्यत्व-के अभिमानको रखनेवाला प्राणी यदि उन्हींकी भाँति आचरण करता है तो उसके लिये यह अत्यन्त ही लज्जाकी बात है।

याद रखना चाहिये कि मनुष्यकी आयु परिमित है और वह बहुत ही कम है। अधिक-से-अधिक वर्तमान समयमें सौ वर्षकी आयु मानी गयी है। वह भी आजकल सौ पीछे लगभग पाँचको भी प्राप्त नहीं होती। इस आयुका कितना अंश तो लड़कपनमें ही बीत जाता है। वृद्धावस्थामें साधन प्रायः बन ही नहीं पड़ता। जो लोग यह मानते हैं कि हम वृद्धावस्थामें साधन कर लेंगे, वे बहुत भूल करते हैं। बचा हुआ समय भी अनेक प्रकारके विघ्न-बाधाओंसे पूर्ण है। हमारे पूर्वसञ्चित पाप, वर्तमानकी कुसंगति और विषयासक्तिके कारण विघ्न-बाधाएँ आती ही रहती हैं। शरीर भी सदा नीरोग नहीं रहता। मनुष्यकी बुद्धि और उसके विचार भी सदा एक-से नहीं रहते। कुसङ्गमें बुद्धि बिगड़ ही जाती है और जगत्‌में प्रायः कुसङ्ग ही अधिक होता है। आलसी, भोगी, प्रमादी, दुराचारी, अहङ्कारी और नास्तिक मनुष्योंका सङ्ग ही कुसङ्ग है। फिर पता नहीं, मौत किस क्षणमें आ जाय। ऐसे घोर विघ्नोंसे बचकर इतने अल्पकालमें अपने ध्येयकी सिद्धि वही बुद्धिमान् पुरुष कर सकता है जो सब ओरसे मन हटाकर अत्यन्त तत्परताके साथ सम्पूर्णरूपसे ध्येयकी सिद्धिके प्रयत्नमें ही लग जाय। वास्तविक बुद्धिमान् वही है जो ऐसे अमूल्य समयका एक भी क्षण आलस्य और प्रमादमें न बिताकर प्रति-क्षण अपने लक्ष्यपर लगा रहता है। मनुष्यको अपनी इस आयुका एक-एक क्षण बड़ी सावधानीके साथ उसी प्रकार परम आवश्यक साधनमें लगाना चाहिये जिस प्रकार कोई अत्यन्त गरीब और आजीविकासे रहित कंजूस मनुष्य अपने थोड़े-से परिमित पैसोंको अत्यावश्यक कार्यमें ही व्यय करता है। समयकी अमूल्यता-के रहस्यको जाननेवाले पुरुष कदापि समयका व्यर्थ व्यय नहीं कर सकते। अतएव हमलोगोंको चाहिये कि मृत्युके समीप पहुँचने और वृद्धावस्थाको प्राप्त होनेके पहले-पहले ही तत्परतासे प्रयत्न करके अपने ध्येयकी सिद्धि कर लें। नहीं तो, पीछे बड़ा भारी पश्चात्ताप करना पड़ेगा।

सो परत्र दुख पावई, सिर धुनि-धुनि पछिताय।
कालहि करमहि ईश्वरहि, मिथ्या दोष लगाय॥

अभी बहुत अच्छा मौका है। क्योंकि इस घोर कलिकालमें निष्काम-भावसे किया हुआ थोड़ा-सा भी भगवद्भजनरूप साधन कल्याणकारी माना गया है। तिसपर ईश्वरकी दयाका तो पार ही नहीं है। इतने-पर भी यदि हम उसकी दया, प्रेम और प्रभावके रहस्य-को समझकर उसका भजन करनेके लिये कटिबद्ध न हों तो फिर कर्मोंके और समयके मत्थे दोष मढ़ना सर्वथा असङ्गत है। अतएव उठो, सावधान होओ, और महर्षियोंद्वारा बतलाये हुए अपने परम ध्येयकी सिद्धिके लिये कमर कसकर प्रयत्नमें लग जाओ।

आजसे कल और कलसे परसों यों उत्तरोत्तर जो आत्मोन्नतिके पथपर आगे बढ़ते हैं, वे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बुद्धिमान् हैं। श्रुति, स्मृति, इतिहास और पुराणादि शास्त्रोंमें बतलायी हुई बातोंमें जो सर्वोत्तम प्रतीत हों उन्हींके आचरणमें अपना समय लगाना चाहिये। साथ ही अपनी दृष्टिमें जो शास्त्रानुमोदित लक्षणोंवाले महापुरुष हों, उनके बतलाये हुए पथपर चलना चाहिये। ऐसे महापुरुषोंके उत्तम गुण और उत्तम आचरणोंका अनुकरण करना चाहिये। यदि उत्तम पुरुषोंका समागम न मिले तो पूर्वमें होनेवाले श्रेष्ठ पुरुषोंके जीवन-चरित्र पढ़कर उनके गुण और आचरणोंको आदर्श मानकर तदनुसार अपने जीवनको उत्तरोत्तर सर्वोत्कृष्ट बनाते रहना चाहिये। जबतक जीवन रहे तबतक आगे बढ़ता ही रहे। कहींपर यह न मान बैठे कि मेरी सर्वोपरि उन्नति हो गयी, इसके आगे और कोई गुञ्जाइश नहीं है। ऐसा मानना उन्नतिके मार्गको रोक देना है। रोक देना ही नहीं, इस प्रकार मान बैठनेवाले अनेकों मनुष्य तो अपनी स्थितिसे गिर जाते हैं।

मानवीबुद्धिरूपी गजसे वास्तविक उन्नतिका माप हो ही नहीं सकता। वह गज उसकी सीमातक नहीं पहुँच सकता। जहाँ सीमा शेष हो जाती है, देहाभिमानका सर्वथा नाश हो जाता है वहाँ तो इस बातको माननेवाला या कहनेवाला कोई धर्मी रह नहीं जाता कि मुझको अब कोई कर्त्तव्य नहीं है। और जबतक देहाभिमान है अर्थात् जबतक देहको आत्मा माननेवाला या देहका स्वामी बना हुआ कोई धर्मी है तबतक कर्त्तव्यका अन्त मान लेना बड़ी भारी भूल है। जबतक देहमें किसी भी रूपमें अपनी व्यवस्था करनेवाला, अपनी स्थिति समझनेवाला कोई धर्मी है तबतक उसको उत्तरोत्तर उन्नतिके प्रयत्नमें लगे रहना चाहिये। जो पुरुष परमात्माको तत्त्वसे जानकर उसे प्राप्त हो जाता है, यद्यपि उसके लिये कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रहता, तथापि लोक-उद्धारके लिये उसके द्वारा भी कर्म होते रहते हैं। अवश्य ही उसके कर्म अकर्म ही बतलाये गये हैं।

उन्नति चाहनेवाले पुरुषके लिये कर्त्तव्यकी समाप्ति कभी होती ही नहीं। संसारमें निषिद्ध कर्म करनेवालोंकी अपेक्षा निषिद्ध कर्म न करनेवाले उत्तम हैं, उनसे उत्तम वे हैं जो धन, पुत्र, स्त्री, मान, बड़ाई या स्वर्गादिकी कामनासे उत्तम आचरण और ईश्वरकी भक्ति करते हैं। उनसे श्रेष्ठ वे हैं जो सदाचार-पालन और ईश्वरकी भक्ति करते समय तो भगवान्‌से कुछ भी नहीं माँगते, परन्तु पीछे किसी सङ्कटमें पड़नेपर उस सङ्कटकी निवृत्तिके लिये ईश्वरसे याचना करते हैं। उनसे भी वे श्रेष्ठ हैं जो आत्मोद्धारके अतिरिक्त अन्य किसी भी बातके लिये कभी इच्छा नहीं रखते, वे तो अति श्रेष्ठ हैं जो ईश्वरके तत्त्वको जानकर बिना ही किसी हेतुके स्वाभाविक ही ईश्वरकी भक्ति और सदाचारका प्रेमपूर्वक पालन करते हैं। और उन महापुरुषोंके लिये तो कुछ कहना ही नहीं बनता जो ईश्वरको प्राप्त हो चुके हैं। ईश्वरप्राप्त पुरुषोंमें भी वे सर्वोत्तम हैं जिनको ईश्वरकी ओरसे संसारमें सदाचार और भक्तिके प्रचारके लिये आदेश या अधिकार प्राप्त है। ईश्वरके यहाँसे जो इस बातका अधिकार लेकर आते हैं उन्हींको कारक पुरुष और अंशावतार भी कहते हैं। और दयामय भगवान् तो सबसे उत्तम और समस्त उत्तमताके आधार ही हैं जो जीवोंके उद्धारके लिये स्वयं समय-समयपर अवतीर्ण होकर शाश्वत धर्म और परमपावनी भक्तिका प्रचार करते हैं जैसे मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम! अतएव मनुष्यको चाहिये कि वह सर्वोत्तम पुरुषको अपना आदर्श और ध्येय मानकर उनके आचरण और गुणोंका अनुकरण तथा उनकी आज्ञाका पालन करते हुए अपने जीवनको उत्तरोत्तर उन्नत बनानेमें ही अपना समय लगावे। इसीमें मनुष्यकी बुद्धिमत्ता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस प्रकारकी सर्वोच्च उन्नतिके लिये अर्थात् श्रीपरमात्माकी प्राप्तिके लिये श्रद्धा और प्रेमकी सबसे बढ़कर आवश्यकता है। श्रद्धा पहले होती है, तभी प्रेम होता है। सबसे उत्तम श्रद्धाके पात्र तो परमेश्वर ही हैं। दूसरे वे भी श्रद्धाके पात्र हैं, जिनके संगसे हमारी परमेश्वरमें श्रद्धा होती है, जिनको परमेश्वरकी प्राप्ति हो चुकी है अथवा जो परमेश्वरकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न कर रहे हैं। परमेश्वर, साधु-महात्मा और उनके वचन, आचरण तथा गुणोंमें जो प्रत्यक्षवत् विश्वास और उच्चभाव है, उसीका नाम श्रद्धा है। जैसे एक पत्थर है और किसी महापुरुषने उसे पारस बतला दिया, तो ऐसी अवस्थामें महापुरुषमें श्रद्धालु मनुष्यको वह पत्थर उसी क्षण पारस ही दीखने लगता है। यानी हमने एक चीजको देखा है, सुना है और समझा है, उसी चीजको यदि महापुरुष दूसरी चीज (हमारे प्रत्यक्ष अनुभवसे विपरीत) बतावें, और उनके बतलाते ही हमारे मनमें और हमारी दृष्टिमें हमारी समझी हुई चीज न रहकर महापुरुषकी बतलायी हुई चीज ही प्रत्यक्ष हो जाय। यह सर्वोत्तम श्रद्धा है। चीज वैसी दीखे तो नहीं परन्तु श्रद्धाके कारण विश्वास कर लिया जाय, यह मध्यम श्रद्धा है, और महापुरुषके द्वारा बतलायी हुई बातमें विश्वास करनेकी कोशिश करना कनिष्ठ श्रद्धा है। हमें महापुरुषोंमें श्रद्धा करनी चाहिये। परन्तु आजकल प्रथम तो संसारमें परमेश्वरकी प्राप्तिवाले महापुरुष हैं ही बहुत कम। यदि कोई हैं तो उनका मिलना कठिन है और मिल भी जायँ तो उनको पहचानना अति दुस्तर है। यदि दैवयोगसे हमें महापुरुष मिल जायँ तो ईश्वरकी बड़ी कृपा समझनी चाहिये। न मिलें तो, उनके दिये हुए सदुपदेश और उनके जीवनके शुद्ध आचरणोंको आदर्श मानकर उनमें श्रद्धा करनी चाहिये। इस मार्गमें चलनेवाले साधकोंका संग भी बहुत सहायक होता है। उनमें भी यथायोग्य श्रद्धा रखनी चाहिये।

श्रद्धासे प्रेम तो आप ही हो जाता है। ईश्वरके प्रति किया हुआ प्रेम तो ईश्वरमें है ही, परन्तु ईश्वरकी प्राप्तिके उद्देश्यसे, ईश्वरप्राप्त पुरुषोंमें, साधकोंमें और शास्त्रोंमें जो प्रेम किया जाता है वह भी प्रकारान्तरसे ईश्वरमें ही है। अवश्य ही प्रेम स्वार्थरहित होना चाहिये। स्वार्थरहित प्रेमसे ही परमात्माकी शीघ्र प्राप्ति होती है। अपने प्रेमास्पदके गुण, स्वभाव, आचरण और नामका श्रवण, पठन और चिन्तन होते ही शरीरमें रोमाञ्च, अश्रुपात, कम्प, कण्ठावरोध, प्रफुल्लता आदि लक्षणोंका प्रकट हो जाना प्रेमके बाहरी चिह्न हैं। संयोगमें परम प्रसन्नता, परम शान्ति और आत्मविस्मृति आदिका होना तथा वियोगमें परम व्याकुलता, अत्यन्त असहनशीलता और निरन्तर चिन्तन आदि होना प्रेमके भीतरी चिह्न हैं। प्रेमास्पदके ध्यानमें परम आनन्द, उसके नाम, रूप, गुण और आचरणोंका सतत स्मरण और उसके अनुकूल आचरण आदि प्रेमको बढ़ानेवाले हैं। इन सबके मूलमें श्रद्धा रहती है। ये श्रद्धा और प्रेम परमेश्वरके तत्त्व, रहस्य, प्रभाव और गुणोंको समझनेसे होते हैं। अतएव अब हमें तत्त्व, रहस्य, प्रभाव और गुणके सम्बन्धमें कुछ विचार करना चाहिये। परमात्माके तत्त्व, रहस्य, प्रभाव और गुणोंका विस्तार अनन्त है और यह बड़ा ही निगूढ़ विषय है। इसपर मुझ-जैसा व्यक्ति क्या लिखे, परन्तु अपनी वाणी पवित्र करनेके लिये यत्किञ्चित् विचार किया जा रहा है।

तत्त्व

जैसे जलके परमाणु, बादल, जल और बरफ यह सब तत्त्वसे एक जल ही है, वैसे ही अनिर्वचनीय, ज्ञानस्वरूप, प्रकाशस्वरूप और मनोहर साकार विग्रह सब एक भगवान् ही है। आकाश शुद्ध निर्मल है, उसमें परमाणुरूपसे जल है, परन्तु वह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न तो नेत्रोंद्वारा दीखता है और न किसी यन्त्रद्वारा ही दिखायी देता है। तथापि उसका होना विज्ञानसिद्ध है। वही जल जब बादलके रूपमें आता है तब भी जल तो नहीं दीखता परन्तु विचार करनेसे यह बात समझमें आ जाती है कि बादलमें जल है। फिर हवाके संसर्गसे वह जल बनकर बरसने लगता है। और वही जल सर्दी पाकर बरफके रूपमें आ जाता है। ऐसे ही ब्रह्म अनिर्वचनीय, अलक्ष्य, अचिन्त्य और गुणातीत है, उसके किसी एक अंशमें गुणका सम्बन्ध-सा प्रतीत होता है। अर्थात् अनन्त ब्रह्मके किसी एक अंशमें सत्त्व-रज-तम त्रिगुणमयी प्रकृति (अव्याकृत माया) स्थित है। उसी ब्रह्मके अंशको सगुण ब्रह्म कहा जाता है। इस मायाविशिष्ट ब्रह्मको ही सगुण-निराकार ब्रह्म समझना चाहिये। अव्याकृत माया निराकार है परन्तु वह है गुणमयी, इसीलिये उससे सम्बन्ध रखनेवाला ब्रह्म सगुण-निराकार माना गया है। सत्-चित्-आनन्दस्वरूपसे इसी निराकार ब्रह्मकी उपासना की जाती है। गुणातीतकी उपासना नहीं बन सकती। क्योंकि गुणोंसे अतीत वस्तु किसीका विषय नहीं हो सकती। परन्तु गुणातीतके भावको लक्ष्यमें रखकर सगुण-निराकारकी उपासना की जाती है। उसीका फल गुणातीत शुद्ध ब्रह्मकी प्राप्ति बतलाया गया है। वह विज्ञानानन्दघन सर्वव्यापी निराकार ब्रह्म ही अपनी इच्छासे तेजोमय प्रकाशस्वरूपमें आता है। उसको ज्योतिर्मय भी कहते हैं। सूर्य, चन्द्र आदि सम्पूर्ण ज्योतियोंका प्रकाशक होनेके कारण उसे ज्योतियोंका ज्योति कहा गया है। वही ज्योतिर्मय ब्रह्म चतुर्भुज-रूपसे महाविष्णुके आकारमें दिव्य विग्रह धारण करता है। उसी चतुर्भुज महाविष्णुको सगुण-साकार ब्रह्म कहते हैं। वही महाविष्णु ब्रह्मा, विष्णु और महेश-रूपसे उत्पत्ति, पालन और संहारका कार्य करता है। जैसे परमाणु, बादल, जल और बर्फ तत्त्वसे विचार करनेपर एक जल ही है। इन सबको लेकर ही जलका एक समग्र रूप है। इसी प्रकार, गुणातीत, सगुण-निराकार, ज्योतिर्मय और सगुण-साकार सब मिलकर ही एक समग्र ब्रह्म है। इस समग्रको उपर्युक्तरूपसे जानना ही भगवान्‌को तत्त्वसे जानना है। परन्तु यह बात ध्यानमें रहे कि जल जैसे जड है, वैसे भगवान् जड नहीं है। संसारमें दूसरा कोई उसकी तुलनामें उदाहरण नहीं है, इसीलिये जड जलका उदाहरण समझानेके लिये दिया गया है। वस्तुतः एक परमेश्वर ही सर्वत्र व्याप्त है। उसके सिवा और कुछ भी नहीं है। जैसे मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग आदिके शरीर, वृक्ष, पहाड़, वनस्पति, एवं सोना, चाँदी आदि धातुएँ और घट-पटादि सम्पूर्ण पार्थिव पदार्थ एक पृथ्वीके ही रूपान्तर हैं, इन सबकी उत्पत्ति मिट्टीसे होती है और अन्तमें ये सब मिट्टीमें ही जाकर समाप्त हो जाते हैं। विज्ञानके द्वारा विचार करके देखनेसे वर्तमान कालमें भी सब मिट्टी ही सिद्ध होते हैं। इस समग्रका नाम जैसे पृथ्वी है इसी प्रकार निर्गुण, सगुण, साकार आदि समग्रका नाम ही परमेश्वर है। जो साकार-सगुण ब्रह्मकी उपासना करनेवाले ब्रह्मको एकदेश-मात्रमें मानकर निर्गुण-निराकार और सगुण-निराकार-की निन्दा करते हैं वे ब्रह्मकी ही निन्दा करते हैं। इसी प्रकार जो निर्गुण-निराकारके उपासक निर्गुणके अतिरिक्त निराकार और साकाररूप सगुण ब्रह्मको उससे भिन्न समझकर निन्दा करते हैं वे भी उसी ब्रह्मकी निन्दा करते हैं। अतएव वे दोनों ही ब्रह्मके तत्त्वको नहीं जानते। भगवान् तो कहते हैं कि सब कुछ वासुदेव ही है 'वासुदेवः सर्वमिति' (गीता ७। १९) भगवान्‌की शरण लेकर किसी भी रूपकी उपासना करनेवाले श्रद्धालु पुरुष उस समग्र ब्रह्मको जानकर उसे प्राप्त हो जाते हैं। भगवान् कहते हैं—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥
साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥
(गीता ७ । २९-३०)

'जो मेरे शरण होकर जरा और मरणसे छूटनेके लिये यत्न करते हैं, वे पुरुष उस ब्रह्मको तथा सम्पूर्ण अध्यात्मको और सम्पूर्ण कर्मको जानते हैं। जो पुरुष अधिभूत और अधिदैवके सहित तथा अधियज्ञके सहित (सबका आत्मरूप) मुझको जानते हैं वे युक्तचित्तवाले पुरुष अन्तकालमें भी मुझको ही जानते हैं अर्थात् प्राप्त होते हैं।

रहस्य

ईश्वरका रहस्य अद्भुत और अलौकिक है। वह ईश्वर-कृपासे ही यत्किञ्चित् जाना जा सकता है। 'रहस्य' छिपे हुए तत्त्वको कहते हैं। रहस्य हर किसीको नहीं बतलाया जाता। कोई भी मनुष्य अपनी पूँजीका रहस्य पूछनेपर भी अपने परम विश्वासी और अन्तरङ्ग प्रेमीके सिवा और किसीको नहीं बतलाता। साधु-महात्मागण भी अपनी स्थितिका हाल बिना अधिकारीके नहीं कहते। भगवान् भी अपने अधिकारी प्रिय भक्तसे ही अपना रहस्य बतलाते हैं। भगवान्ने गीतामें जहाँ-जहाँपर ऐसा कहा है कि 'यह रहस्यका विषय है,' 'यह गोपनीय है,' 'यह गुह्यतम' या 'सर्वगुह्यतम' है, वहाँ-वहाँपर यही तत्त्व बतलाया है कि 'मैं ही परमात्मा हूँ, मैं ही सर्वश्रेष्ठ हूँ, तू मेरी ही भक्ति कर, मेरी ही शरण हो' आदि। इस प्रकार अपनी वास्तविक स्थिति अपने प्रिय प्रेमीको बतला देना ही असली रहस्यका खोल देना है। जैसे गीता अध्याय ४ श्लोक १ से १४ तकमें भगवान्ने यह रहस्य समझाया है कि 'मैं साक्षात् परमात्मा पृथ्वीका भार हरण करने, साधुओंका परित्राण करने और धर्मकी संस्थापना करनेके लिये लीलासे प्रकट हुआ हूँ।' गीता अ० १८। ६४ में 'मैं तुझे सर्वगुह्यतम रहस्य कहता हूँ' ऐसा कहकर अगले श्लोक ६५-६६में स्पष्ट कह दिया है कि 'मैं ही ईश्वर हूँ, तू एकमात्र मेरी शरण आ जा।'

इसी प्रकार उत्तंक मुनिने जब भगवान् श्रीकृष्णको शाप देना चाहा तब आपने उनको अपना रहस्य बतलाकर शान्त किया। वहाँ यह स्पष्ट कहा कि 'मत्स्य-कच्छपादि अवताररूपसे मैं ही प्रकट होता हूँ। मैं ही साक्षात् परमात्मा इस समय मनुष्यरूपमें श्रीकृष्ण-नामसे प्रकट हूँ। आप मुझको नहीं जानते, इसीलिये शाप देनेकी बात कहते हैं। आप मुझे शाप न दें। मुझपर आपके शापका कोई असर नहीं होगा, आप तपोभ्रष्ट हो जायँगे।' फिर उत्तंकके प्रार्थना करनेपर उन्हें अपना विश्वरूप दिखलाकर आश्वासन दिया। (महाभारत अश्वमेधपर्व)

इसी तरह अन्यान्य भक्तोंको भी भगवान्ने समय-समयपर अपना रहस्य बतलाया है। जो मनुष्य गुरु, शास्त्र, सन्त या सत्सङ्ग आदि किसी भी साधनसे ईश्वरके रहस्यको यानी छिपे हुए परम तत्त्वको समझ जाता है वह फिर एक क्षणके लिये भी ईश्वरको नहीं भूल सकता। वह नित्य-निरन्तर ईश्वरको ही भजता है। वह जान लेता है कि ईश्वर ही सर्वोत्कृष्ट तत्त्व है। सर्वोत्कृष्टको छोड़कर निकृष्टको कौन बुद्धिमान् भजेगा ? एक खानि है, उसमें सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, पत्थर, कोयला आदि कई चीजें हैं। जिसको जिस चीजकी इच्छा हो, वह उससे वही चीज निकाल ले सकता है। खोदने आदिका परिश्रम एक-सा ही है और समय भी समान ही लगता है। ऐसी अवस्थामें कोई मूढ़ व्यक्ति भले ही सोने-चाँदीको छोड़कर पत्थर और कोयला आदि निकालने लगे। सोनेके तत्त्वको जाननेवाला बुद्धिमान् पुरुष तो एक मिनटके लिये भी दूसरी चेष्टा न करके सोना निकालनेमें ही लग

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जायगा। इसी प्रकार ईश्वरके तत्त्व—रहस्यको जाननेवाला पुरुष यह समझ जाता है कि ईश्वरसे बढ़कर और कोई भी वस्तु नहीं है। इसलिये वह सबसे मुँह मोड़कर केवल ईश्वरको भजनेमें ही लग जाता है। भगवान् स्वयं कहते हैं—

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥

(गीता १५। १९)

हे अर्जुन! इस प्रकार तत्त्वसे जो ज्ञानी पुरुष मुझको पुरुषोत्तम जानता है वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वरको ही भजता है।

वास्तवमें सारा विश्व परमेश्वरका ही स्वरूप है। किन्तु इस रहस्यको लोग जानते नहीं, इसीसे संसारके विविध रूपोंको देख-देखकर सुखी-दुखी होते हैं। एक बहुरूपिया था, वह किसी बड़े अफसरका स्वाँग धरकर बाजारमें पहुँचा। एक दूकानदारका माल सड़कपर पड़ा था, बहुरूपियेने वहाँ जाकर दूकानदारको धमकाना शुरू किया कि तुमने सड़क रोक रक्खी है अतएव तुमपर मुकद्दमा चलाया जायगा। दूकानदार डरकर काँपता हुआ खुशामदें करने लगा। बहुरूपियेका स्वाँग सफल हो गया। तब उसने अपना यथार्थ परिचय देकर दूकानदारसे इनाम माँगा। बस, बहुरूपियेका परिचय मिलते ही दूकानदार निर्भय होकर हँसने लगा। उसकी सारी विकलता क्षणभरमें हँसीके रूपमें बदल गयी। बहुरूपिया अब भी अफसरके वेषमें ही है, वही रूप दूकानदारको दीख रहा है परन्तु रहस्य खुल जानेसे भावमें महान् अन्तर पड़ गया। इसी प्रकार परमेश्वर अपनी योगमायासे विश्वरूप बने हुए क्षण-क्षणमें स्वाँग बदल रहे हैं। और लोग उनका रहस्य न जाननेके कारण डरते और व्याकुल होते हैं। यदि हम प्रत्येक रूपमें भगवान्‌को पहचान लें, भगवान्‌का यह रहस्य हमारे लिये खुल जाय तो फिर कोई भी भय या व्याकुलता नहीं रह सकती। जैसे बहुरूपिया अपना भेद खोल देता है, वैसे ही भगवान् भी जब दया करके अपना रहस्य खोल देते हैं, तब भक्त उसी क्षण निर्भय और सुखमय बन जाता है, क्योंकि वह फिर सर्वत्र, सब समय, केवल एक आनन्दरूप भगवान्‌को ही देखता है।

प्रभाव

सामर्थ्य, शक्तिविशेष या तेजको प्रभाव कहते हैं। ईश्वरका प्रभाव अपरिमेय है। इसीलिये कहा जाता है कि ईश्वर असम्भवको सम्भव कर सकते हैं। समस्त संसारका उद्धार होना असम्भव-सा है परन्तु ईश्वर चाहें तो एक ही क्षणमें कर सकते हैं। क्योंकि वे अपरिमित प्रभावशाली और सर्वशक्तिमान् हैं। उनके पूर्ण प्रभावको देव, दानव और महर्षिगण भी नहीं जानते। वे स्वयं ही अपने आपको जानते हैं। एक क्षणमें वे समस्त संसारका सृजन और संहार कर सकते हैं। श्रुति, स्मृति, गीता आदि ग्रन्थोंमें उनके प्रभावका वर्णन भरा पड़ा है। सारी शक्तियाँ उन्हींकी शक्तिकी एक अंश हैं। जो मूढ़तासे किसी भी शक्तिविशेषको अपनी मान बैठता है, वह गिर जाता है। एक बार इन्द्र, अग्नि और वायु देवताओंने असुरोंपर विजय प्राप्तकर अपनी शक्तिका गर्व किया था, इसीलिये उन्हें यक्षरूप ब्रह्मके सामने नीचा देखना पड़ा। यह कथा केन उपनिषद्‌में है। गीतामें भी भगवान् कहते हैं—

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥
अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥

(१०। ४१-४२)

जो-जो भी विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और शक्तियुक्त वस्तु है उस-उसको तू मेरे तेजके अंशसे ही उत्पन्न हुई जान। अथवा हे अर्जुन! इस बहुत जाननेसे तेरा क्या प्रयोजन है। मैं इस सम्पूर्ण जगत्को (अपनी योगमायाके) एक अंशमात्रसे धारण करके स्थित हूँ।

भगवान्का वास्तविक प्रभाव भगवान्की शरण लेनेपर भगवान्की कृपासे ही जाना जा सकता है। अतएव हम सबको भगवान्की शरण होना चाहिये।

गुण

परमेश्वर गुणातीत हैं और सर्व सद्गुणोंसे पूर्ण हैं। उनके गुण अनन्त हैं, असीम हैं, शेष-शारदा आदि भी उनके गुणोंका वर्णन करनेमें असमर्थ हैं। मुझ-सरीखा साधारण मनुष्य क्या वर्णन करे। उनके गुणोंका वाणीसे वर्णन करना वैसा ही है जैसे अनन्त धनराशिके स्वामीको लखपती कहना अथवा जुगनूके समुदायके साथ सूर्यकी उपमा देना। उस अनन्त गुणसागर प्रभुके एक गुणका भी भलीभाँति समझना और समझाना अत्यन्त ही कठिन है, फिर सब गुणोंका वर्णन तो कैसे हो सकता है। पाठकोंके मनोरञ्जन और अपने लाभके लिये कुछ लिखा जाता है।

भगवान् परम प्रेममय हैं। सारे संसारका प्रेम एक जगह इकट्ठा किया जाय तो वह भी प्रेममय प्रभुके प्रेमसागरकी एक बूँदके समान भी शायद ही हो।

भगवान्का प्रकाश अलौकिक है। करोड़ों सूर्योंके इकट्ठे होनेपर भी शायद ही उनके प्रकाशके सदृश प्रकाश हो। समस्त संसारको एक सूर्य प्रकाशित करता है। ऐसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंके अनन्त कोटि सूर्योंको प्रकाश देनेवाले परमेश्वरके प्रकाशको समझाने-का प्रयास करना खद्योतमण्डलीके प्रकाशसे सूर्यको प्रकाशित करनेकी चेष्टाके समान ही है।

सर्वज्ञ परमात्माके ज्ञानकी तो बात ही विलक्षण है। वह ज्ञानरूप ही है। सारे संसारके जीवोंका ज्ञान एकत्र करनेपर भी उसे परमात्माके ज्ञानके एक क्षुद्र परमाणुका आभास बतलाना भी अत्युक्ति न होगा।

भगवान्की उदारताका तो कहना ही क्या है। विष देनेवाली पूतनाको भी जिसने परमगति दी उसकी उदारताका अन्दाजा कैसे लगाया जाय?

अभय तो भगवान्का स्वरूप ही है। जिस प्रभुके रहस्य और प्रभावको जान लेनेमात्रसे अथवा जिसके नाम-स्मरणसे ही मनुष्य सदाके लिये अभय हो जाता है। उस अभयरूप भगवान्के अभय-गुणको कैसे समझाया जाय?

दयाके तो भगवान् भण्डार ही हैं। पापी-से-पापी जीव भी यदि उनके शरण चला जाता है तो उसे सदाके लिये पापमुक्त कर अपना अभयपद दे देते हैं। जिसको कोई नहीं अपनाता, उसे भी शरणागत होने-पर प्रभु अपनालेते हैं।

भगवान्की पवित्रताका अनुमान कौन करे? जिसके नाम-जप, गुण-गान और स्वरूप-चिन्तनसे महापापी मनुष्य भी परम पवित्र बन जाता है। इसीलिये पितामह भीष्मने 'पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानां च मङ्गलम्' कहा था। उस भगवान्की पवित्रताका स्वरूप कैसे बतलाया जाय?

भगवान् महान् ब्रह्मचारी हैं। कामदेव तो उनके चिन्तन करनेवाले भक्तोंके पास भी नहीं आ सकता। भगवान्ने श्रीकृष्णरूपमें प्रकट होकर गोप-बालाओंके साथ निर्दोष काम-गन्ध-शून्य रासक्रीड़ा करते हुए गोप-बालाओंके द्वारा कामका मद चूर्ण करवाया था। जिसके ध्यान और चिन्तनसे ही मनुष्य ब्रह्मचारी बन जाता है। उस महान् ब्रह्मचारीके ब्रह्मचर्यकी महिमा कौन गा सकता है?

भगवान् क्षमाकी तो मूर्ति ही हैं। बिना ही कारण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भृगुजीने आपके वक्षःस्थलपर लात मार दी, उसकी ओर कुछ भी ध्यान न देते हुए आपने उनके पैर पलोटते हुए उलटे यह कहा कि 'मेरी छाती कठोर है, कहीं आपको चोट तो नहीं लग गयी' और उस लातके चिह्नको सदाके लिये भूषणरूपसे आपने धारण कर लिया। भरी सभामें गाली देनेवाले शिशुपालके सैकड़ों अपराधोंको क्षमा करके उसे आपने मुक्ति दे दी।

अद्वेष्टा तो आपका स्वभाव ही है। द्वेषकी आपमें गन्ध ही नहीं है। द्वेष करनेवालोंको भी आप दण्ड देकर उद्धार करते हैं। भगवान्‌की तो बात ही क्या है। भगवान्‌के भक्तोंका भी स्वाभाविक धर्म अपकार करनेवालोंका उपकार करना होता है।

सत्य तो भगवान्‌का स्वरूप ही है। समस्त संसारमें जो सत्ता प्रतीत होती है उसके वही अधिष्ठान हैं। सूर्य, चन्द्र, समुद्र, पृथ्वी आदि सब जिस सत्यके आधारपर स्थित हैं, वह सत्य उन भगवान्‌का ही स्वरूप है। समस्त संसार उन सत्यस्वरूप परमात्माके सत्यके आधारपर ही स्थित है।

भगवान् परम वैराग्यवान् हैं। गुणमय समस्त संसारको धारण करके भी आप गुणोंसे सर्वथा अतीत हैं। सारा संसार जिनका कुटुम्ब है ऐसे सबका भरण-पोषण करनेवाले बहुकुटुम्बी होनेपर भी आप किसीमें आसक्त नहीं हैं। सदा सबसे निर्लेप रहते हैं।

भगवान् बड़े अमानी हैं। सम्पूर्ण लोकोंके परम माननीय होनेपर भी स्वयं सर्वथा अमानी हैं और सबको मान देते हैं। इसीसे आपके नाम हैं—'अमानी मानदः।'

दानशीलता तो आपकी अनोखी ही है। कल्पवृक्षसे भी उसकी उपमा नहीं दी जा सकती। क्योंकि कल्पवृक्ष तो मुँहमाँगा बुरा-भला दे देता है, वह हिताहित नहीं देखता। परन्तु आप तो ऐसे हैं कि बुरी चीज तो माँगनेपर भी नहीं देते। नारदजीको विवाह नहीं करने दिया। और उचित समझनेपर, थोड़ा माँगनेवालोंको भी बहुत दे देते हैं। जैसे ध्रुवको राज्य माँगनेपर आपने मुक्ति भी दे दी।

शान्ति और आनन्द तो भगवान्‌का स्वरूप ही है, जिसकी शरण होनेसे मनुष्य परमशान्ति और परम-आनन्दको प्राप्त हो जाता है, उसके शान्ति और आनन्दकी उपमा किसके साथ दी जाय?

भगवान्‌के अनन्त और अपरिमेय गुण हैं, श्रीपुष्पदन्ताचार्य कहते हैं—

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखालेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥

'हे परमेश्वर! समुद्रकी दावात बनाकर उसमें कज्जलगिरिकी स्याही बनायी जाय और कल्पवृक्षकी कलमसे पृथ्वीरूपी कागजपर स्वयं सरस्वतीदेवी सदा-सर्वदा आपके गुणोंको लिखती रहें तब भी आपके गुणोंका पार नहीं पाया जाता।'

उपर्युक्त सब बातोंको समझकर मनुष्यको उचित है कि नित्य-निरन्तर सब प्रकारसे श्रीपरमात्माकी शरण होनेमें ही अपना अमूल्य समय लगावे। जीवनका एक क्षण भी व्यर्थ न बितावे। बस, यही समयका सदुपयोग है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भक्तके लक्षण

भगवान्‌के भक्तोंका बड़ा महत्त्व है। वे जगत्‌के लिये आदर्श होते हैं। क्योंकि भगवद्भक्तिके प्रतापसे उनमें दुर्लभ दैवी गुण अनिवार्यरूपसे प्रकट हो जाते हैं जो उनके स्वाभाविक लक्षण होते हैं। भक्तका स्वरूप जाननेके लिये उन लक्षणोंका जानना आवश्यक है। उनमेंसे कुछ ये हैं—

१—भक्त अज्ञानी नहीं होता, वह भगवान्‌के प्रभाव, गुण और रहस्यको तत्त्वसे जाननेवाला होता है। प्रेमके लिये ज्ञानकी बड़ी आवश्यकता है। किसीको किसी अंशमें भी जाने बिना उससे प्रेम नहीं हो सकता, और प्रेम होनेपर ही उसका गुह्यतम यथार्थ रहस्य जाना जाता है। भक्त भगवान्‌के गुह्यतम रहस्यको जानता है, इसीलिये भगवान्‌के प्रति उसका प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता ही रहता है। भगवान् रस-सार हैं। उपनिषद् भगवान्‌को 'रसो वै सः' कहते हैं। इस प्रेममें भी द्वैत नहीं भासता। प्रेमकी प्रबलतासे ही राधाजी श्रीकृष्ण बन जाती हैं और कृष्ण श्रीराधाजी। कबीर साहब कहते हैं—

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नायँ।
प्रेम-गली अति साँकरी, यामें दो न समायँ॥

वस्तुतः ज्ञानी और भक्तकी स्थितिमें कोई अन्तर नहीं होता। भेद इतना ही है, ज्ञानी 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' कहता है और भक्त 'वासुदेवः सर्वमिति' अथवा गोसाईंजी-की भाषामें वह कहता है—

सीयराममय सब जग जानी। करौं प्रनाम जोरि जुग पानी॥

२—भगवान्‌का भक्त निर्भय होता है। वह जानता है कि समस्त विश्वके स्वामी, यमराजका भी शासन करनेवाले भगवान् श्यामसुन्दर हर घड़ी मेरे साथ हैं, मेरे रक्षक हैं। फिर उसे डर किस बातका हो? भगवान्‌की शरण जिसने ले ली, वही निर्भय हो गया। लङ्कामें रावणके द्वारा अपमानित होकर जब विभीषण नाना प्रकारके मनोरथ करते हुए भगवान्‌की शरणमें आये तब उन्हें द्वारपर खड़े रखकर सुग्रीव इस बातकी सूचना देने भगवान् श्रीरामके पास गये। श्रीरामने सेनापति सुग्रीवसे पूछा, क्या करना चाहिये? राजनीतिकुशल सुग्रीवने उत्तर दिया—

जानि न जाइ निसाचरि माया। कामरूप केहि कारन आया॥
भेद हमार लेन सठ आवा। राखिय बाँधि मोहि अस भावा॥

समीप ही बैठे हुए भक्तराज हनूमान्‌ने मन-ही-मन सोचा, 'सुग्रीव क्या कह गये। अरे, जिसका नाम भूलसे निकल जानेपर मनुष्य संसारके बन्धनसे छूट जाता है, उस मेरे रामके चरणोंमें आनेवालेके लिये बन्धनकी बात कैसी? परन्तु स्वामी और सेनापतिके बीचमें बोलना अनुचित समझ-कर हनूमान् चुप रहे।

शरणागत-वत्सल भगवान् श्रीरामने सुग्रीवकी प्रशंसा करते हुए अपना व्रत बतलाया—

सखा नीति तुम नीकि बिचारी। मम प्रन सरनागत-भय-हारी॥

हनूमान्‌का मन खिल उठा। वाल्मीकि-रामायणमें भी भगवान् श्रीरामने ऐसी ही बात कही है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥

'जो एक बार भी मेरी शरण होकर यह कह देता है कि मैं तेरा हूँ, मैं उसको सम्पूर्ण भूतोंसे अभय कर देता हूँ, यह मेरा व्रत है।' भला ऐसी हालतमें भगवान्‌का सच्चा भक्त निर्भय क्यों न होगा?

३—भक्तका किसी विषयमें ममत्व नहीं होता। उसका सारा ममत्व एकमात्र अपने प्राणाराध्य भगवान्‌में हो जाता है। फिर जगत्‌के पदार्थोंमें कहीं उसका ममत्व यदि रहता है तो उनको भगवान्‌के पूजनकी सामग्री या भगवान्‌की वस्तु समझकर ही रहता है। अपने या अपने भोगके सम्बन्ध-से नहीं। रामचरितमानसमें भगवान्‌ने कहा है—

जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धन भवन सुहृद परिवारा॥
सब कर ममता-ताग बटोरी। मम पद मनहिं बाँधु बर डोरी॥
सो सज्जन मम उर बस कैसे। लोभी हृदय बसत धन जैसे॥

संसारमें मनुष्य चारों ओर ममताके बन्धनसे जकड़ा हुआ है। उसका एक-एक रोम ममत्वके धागेसे बँधा है। भगवान् कहते हैं 'मनुष्य माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री, शरीर, धन, मकान, सुहृद् और परिवार आदि सबमेंसे ममता-के सूत्रोंको अलग करके उनकी एक ही मज़बूत डोरी बट ले और उस डोरीके द्वारा अपने मनको मेरे चरणोंसे बाँध दे, तो वह सज्जन मेरे मन-मन्दिरमें उसी प्रकार निवास करता है जिस प्रकार लोभीके मनमें धन!' यह ममताका बन्धन इसीलिये कच्चे धागेका बतलाया गया है कि इसके टूटते देर नहीं लगती। जहाँ कहीं स्वार्थमें बाधा आयी कि ममताका धागा टूटा, विषयजनित सारा प्रेम अपने लिये होता है न कि प्रेमास्पदके लिये। इसीलिये वह टूटता भी बहुत शीघ्र है। परन्तु जैसे धागोंकी बड़ी मज़बूत रस्सी बट लेनेपर वह नहीं टूटती इसी प्रकार जगत्‌की सारी ममता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सब जगहसे बटोरकर एक भगवान्‌के चरणोंमें लगा दी जाय तो फिर उसके नष्ट होनेकी कोई सम्भावना नहीं। इसीलिये यह कहा गया है कि भगवान्‌के प्रति होनेवाला सच्चा प्रेम सदा बढ़ता ही रहता है, कभी घटता नहीं।

संसारमें दुःखोंका एक प्रधान कारण ममता है। न मालूम कितने लोग रोज़ मरते हैं और कितने लोगोंके धन-का रोज़ नाश होता है, पर हम किसीके लिये नहीं रोते। लेकिन यदि हमारे घरका कोई आदमी मर जाय या अपना कुछ धन नष्ट हो जाय तो शोक होता है। इसका कारण ममता ही है। मान लीजिये, हमारा एक मकान है, अगर कोई आदमी उसकी एक ईंट निकाल देता है तो हमें बहुत बुरा मालूम होता है। हमने उस मकानको बेच दिया और उसकी कीमतका चेक ले लिया। अब उस मकानकी एक-एक ईंटसे सारी ममता निकलकर हमारी जेबमें रक्खे हुए कागजके टुकड़े चेकमें आ गयी। अब चाहे मकानमें आग लग जाय, हमें कोई चिन्ता नहीं। चिन्ता है उस कागजके चेककी। बैंकमें गये, चेकके रुपये हमारे खातेमें जमा हो गये। अब भले ही बैंकका क्लर्क उस कागजके टुकड़ेको फाड़ डाले, हमें कोई चिन्ता नहीं। अब उस बैंककी चिन्ता है कि वह कहीं फेल न हो जाय क्योंकि उसमें हमारे रुपये जमा हैं। इस प्रकार जहाँ ममता है, वहीं शोक है; यदि हमारी सारी ममता भगवान्‌में अर्पित हो जाय, फिर शोकका जरा-सा भी कारण न रहे। भक्त तो सर्वस्व अपने प्रभुके अर्पणकर उनको अपना बना लेता है और आप उनका बन जाता है। उसमें कहीं दूसरेके लिये ममता रहती ही नहीं, इसी-लिये वह शोकरहित हुआ सर्वदा आनन्दमें मग्न रहता है।

४–भक्तमें अभिमान नहीं होता, वह तो सारे जगत्‌में अपने स्वामीको व्याप्त देखता है और अपनेको उनका सेवक समझता है। सेवकके लिये अभिमानको स्थान कहाँ? उसके द्वारा जो कुछ होता है सो सब उसके भगवान्‌की शक्ति और प्रेरणासे होता है। ऐसा विनम्र भक्त सदा सावधानीसे इस बातको देखता रहता है कि कहीं मेरे किसी कार्यद्वारा या मेरी किसी चेष्टाद्वारा विश्वव्याप्त मेरे स्वामीका तिरस्कार न हो जाय। मेरे द्वारा सदा-सर्वदा उनकी आज्ञाका पालन होता रहे, मैं सदा उनकी रुचिके अनुकूल चलता रहूँ। वह अपनेको उस सूत्रधारके हाथकी कठपुतली समझता है, सूत्रधार जैसे नचाता है, पुतली वैसे ही नाचती है, वह इसमें अभिमान क्या करे? अथवा यों समझिये कि यह सारा संसार स्वामीका नाट्यमञ्च है, इसमें हम सभी लोग नट हैं, जिसको स्वामीने जो स्वाँग दिया है, उसीके अनुसार सांगोपांग खेल खेलना, अपना पार्ट करना हमारा कर्त्तव्य है। जो आदमी मालिककी रुचिके अनुसार उसका काम नहीं करता, वह नमकहराम है और जो मालिककी सम्पत्ति-को अपनी मान लेता है वह बेईमान है। नट पार्ट करता है, स्टेजपर किसीके साथ पुत्रका-सा, किसीके साथ पिताका-सा, किसीके साथ मित्रका-सा यथायोग्य बर्ताव करता है, परन्तु वस्तुतः किसी भी वस्तुको—अपनी पोशाक तकको भी वह अपनी नहीं समझता। इसी प्रकार भगवान्‌का भक्त उनकी नाट्यशाला इस दुनियामें उनके सङ्केतानुसार उन्हींके दिये हुए स्वाँगको लेकर आलस्यरहित हो उन्हींकी शक्तिसे कर्म किया करता है। इसमें वह अभिमान किस बातका करे? वह मालिकका विधान किया हुआ—बताया हुआ अभिनय करता है, न कि अपनी ओरसे कुछ। पार्ट करनेमें कभी चूकता नहीं, क्योंकि इसमें मालिकका खेल बिगड़ता है; और अपना कुछ मानता नहीं क्योंकि वह जानता है कि सब मालिकका है, मेरा कुछ भी नहीं, वह मालिकको ही सबका नियन्त्रण करनेवाला और सर्वत्र व्याप्त देखता है; और अपनेको उनका अनन्य सेवक समझता है।

सो अनन्य जाके असि, मति न टरै हनुमन्त।
मैं सेवक सचराचर, रूपरासि भगवन्त॥

५–भक्त किसीसे द्वेष नहीं करता या किसीपर क्रोध नहीं करता। किससे करे? किसपर करे? सारा जगत् तो उसे स्वामीका स्वरूप दीखता है। शिवजी महाराज कहते हैं—

उमा जे राम-चरन-रत, बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत, का सन करहिं बिरोध॥

भक्त विनय, नम्रता और प्रेमकी मूर्ति होता है।

६–भक्त किसी वस्तुकी कामना नहीं करता। उसे वह वस्तु प्राप्त है, जिसके सामने सब कुछ तुच्छ है, तब वह किसकी कामना करे और क्यों करे? वस्तुतः प्रेममें कोई कामना रहती ही नहीं। प्रेममें देना है, वहाँ लेनेका तो नाम ही नहीं है। यही काम और प्रेमका बड़ा भारी भेद है। काममें प्रेमास्पदके द्वारा अपने सुखकी चाह है और प्रेममें अपने द्वारा प्रेमास्पदको सुखी बनानेकी उत्कट इच्छा है। उसके लिये वही सबसे बड़ा सुख है, जिससे उसके प्रेमा-स्पदको सुख मिले, चाहे वह अपने लिये कितने ही भयानक कष्टका कारण हो। प्रेमास्पदके सुखको देखकर प्रेमीकी भयानक पीड़ा तुरन्त दिव्य सुखके रूपमें परिणत हो जाती

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है। अतएव भगवान्‌का प्रेमी कभी कामी नहीं होता, वह तो चातककी भाँति मेघरूप भगवान्‌की ओर सदा एकटक दृष्टिसे निहारा करता है। बादल यदि न बरसे या जलके बदले ओले बरसावे, तो भी वह प्रेमके नेमका पक्का पपीहा उधरसे मुँह नहीं मोड़ता।

रटत रटत रसना लटी, तृषा सूखि गये अंग।
'तुलसी' चातक प्रेमको, नित नूतन रुचि रंग॥
बरषि परुष पाहन पयद, पंख करै टुक टूक।
'तुलसी' परी न चाहिये चतुर चातकहि चूक॥

यही दशा भक्तकी है।

फिर वह चाहे भी क्या! जगत्‌का सारा ऐश्वर्य जिसके ऐश्वर्यका एक कण भी नहीं है, वह सर्वलोकमहेश्वर श्याम-सुन्दर उसका प्रियतम स्वामी है, उसकी सेवाको छोड़कर वह क्या चाहे? इसीलिये ललितकिशोरीजीने गाया है—

अष्टसिद्धि नवनिद्धि हमारी मुट्ठीमें हरदम रहतीं।
नहीं जवाहिर सोना चाँदी त्रिभुवनकी संपति चहतीं॥
भावैं ना दुनियाकी बातें दिलबरकी चरचा सहती।
'ललितकिसोरी' पार लगावें मायाकी सरिता बहती॥

भक्त तो केवल अपने प्रियतम स्वामीकी सेवामें ही रहना चाहता है, वह सेवाको छोड़कर मुक्ति भी नहीं ग्रहण करता। करे भी कैसे? भगवान्‌के उस अनन्य सेवकके लिये मायाका बन्धन तो है नहीं जिससे वह मुक्त होना चाहे। अब तो केवल भगवत्-सेवाका बन्धन है, भक्त इस प्यारे बन्धनसे मुक्ति क्यों चाहेगा? श्रीमद्भागवतमें भगवान् कहते हैं—

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥

मेरी सेवाको छोड़कर मेरे भक्त सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और एकत्व मुक्तियोंको देनेपर भी नहीं लेते हैं।

भक्त जानता है, मेरे प्रभु समस्त ब्रह्माण्डोंके एकमात्र स्वामी हैं, मुक्ति उनके चरणोंकी दासी है। वह कहता है—

अब तो बंध-मोक्षकी इच्छा व्याकुल कभी न करती है।
मुखड़ा ही नित नव बंधन है मुक्ति चरणसे झरती है॥

मुक्तिदायिनी गङ्गाजी श्रीभगवान्‌के चरणोंका ही तो जल है।

एक समय ब्रह्माजी भगवान्‌के द्वारपर पहुँचे, भगवान्‌ने द्वारपालके द्वारा उनसे पुछवाया कि 'आप कौन-से ब्रह्मा हैं?' ब्रह्माको इस बातपर बड़ा आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे कि 'कहीं ब्रह्मा भी दस-बीस थोड़े ही हैं।' उन्होंने कहा 'जाओ, कह दो, चतुर्मुख ब्रह्मा आये हैं' भगवान्‌ने उनको अन्दर बुलाया। ब्रह्माजीका कौतूहल शान्त नहीं हुआ, उन्होंने पूछा 'भगवन्! आपने यह कैसे पूछा कि कौन-से ब्रह्मा हैं! क्या मेरे अतिरिक्त और भी कोई ब्रह्मा है?' भगवान् हँसे, उन्होंने विभिन्न ब्रह्माण्डोंके ब्रह्माओंका आवाहन किया। तत्काल वहाँ चारसे लेकर हजार मुँह-तकके अनेकों ब्रह्मा आ पहुँचे। भगवान्‌ने कहा, 'देखो, ये सभी ब्रह्मा हैं। अपने-अपने ब्रह्माण्डके ब्रह्मा हैं।' तब ब्रह्माजीका सन्देह दूर हुआ। ऐसे ब्रह्माओंके एकमात्र स्वामी जिसके प्राणप्रिय हों वह भक्त किस वस्तुकी कामना करे।

पाँच सखियाँ थीं, पाँचों भगवान् श्रीकृष्णकी भक्त थीं। एक समय वे वनमें बैठी फूलोंकी माला गूँथ रही थीं। उधरसे एक साधु आ निकले। साधुको रोककर बालाओं-ने कहा 'महात्मन्! हमारे प्राणनाथ श्रीकृष्ण वनमें कहीं खो गये हैं उन्हें आपने देखा हो तो बतलाइये।' इसपर साधुने कहा 'अरी पगलियो! कहीं कृष्ण यों मिलते हैं। उनके लिये घोर तप करना चाहिये। वे राजराजेश्वर हैं, नाराज़ होते हैं तो दण्ड देते हैं और प्रसन्न होते हैं तो पुरस्कार।' सखियोंने कहा 'महात्मन्! आपके वे श्रीकृष्ण दूसरे होंगे, हमारे श्रीकृष्ण तो राजराजेश्वर नहीं हैं, वे तो हमारे प्राणपति हैं, वे हमें पुरस्कार क्या देते? उनके खज़ानेकी कुञ्जी तो हमारे ही पास रहती है। दण्ड तो वे कभी देते ही नहीं, यदि हम कभी कुपथ्य कर लें और वे हमें कड़वी दवा पिलावें तो यह तो दण्ड नहीं है, प्रेम है।' साधू उनकी बात सुनकर मस्त हो गये। वे अपने श्रीकृष्णको याद करके नाचने लगीं और साथ ही साधू भी तन्मय होकर नाचने लगे। यह कथा बहुत लम्बी है, मैंने बहुत संक्षेपमें कही है। सारांश यह है कि ऐसा भक्त प्रभुसे क्या माँगे? ऐसा भक्त तो निष्कामभावसे नित्य-निरन्तर अति प्रेमके साथ उनका चिन्तन ही करता रहता है, तुलसीदासजीने कहा है—

कामिहिं नारि पियारि जिमि, लोभिहिं प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहि राम॥

भक्त निरन्तर अपने भगवान्‌के लिये कामी और लोभीकी इस दशाको प्राप्त रहता है। यह कैसे उनको भुलावे? और कैसे दूसरे विषयके लिये कामना या लोभ करे?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अतएव भक्त सदा-सर्वदा भगवान्‌के चिन्तनमें ही चित्तको लगाये रखता है। भगवान्‌ने भी गीतामें स्थान-स्थानपर नित्य-निरन्तर चिन्तन करनेकी आज्ञा दी है। आठवें अध्यायमें कहा है—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥५॥

जो मनुष्य मृत्युके समय मुझको स्मरण करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूपको ही प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं। इसपर लोग सोच सकते हैं कि फिर जीवनभर भगवान्‌का स्मरण करनेकी क्या ज़रूरत है। मरनेके समय भगवान्‌को याद कर लेंगे। याद करके मरनेपर भगवत्प्राप्तिका वचन भगवान्‌ने दे ही दिया। इसी भ्रान्त धारणाको दूर करनेके लिये भगवान्‌ने फिर कहा—

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥६॥

यह नियम है कि मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भावको स्मरण करता हुआ शरीर छोड़कर जाता है, उसी-उसीको प्राप्त होता है। परन्तु अन्तकालमें भाव वही याद आता है, जिसका जीवनभर चिन्तन किया गया हो।

यह नहीं कि जीवनभर तो मनसे धन और मानकी रटन लगाते रहे और अन्तकालमें भगवान्‌की स्मृति अपने आप ही हो जाय। इसीलिये श्रीभगवान्‌ने फिर आज्ञा की—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥७॥

'अतएव हे अर्जुन! तू सब समय (निरन्तर) मेरा स्मरण करता हुआ ही युद्ध कर। इस प्रकार मुझमें अर्पित-मन-बुद्धि होनेसे तू निःसन्देह मुझको ही प्राप्त होगा।'

निरन्तर स्मरणका महत्त्व तो देखिये, भगवान्‌ने यही कहकर सन्तोष नहीं कर लिया कि 'मुझको प्राप्त होगा।' 'निःसन्देह' (असंशयम्) और 'ही' (एव) ये दो निश्चय दृढ़ करानेवाले शब्द और जोड़े इतनेपर भी हम भगवान्‌का स्मरण न करें तो हमारे समान मूर्ख और कौन होगा? अन्तमें भगवान् सर्वगुह्यतम आज्ञा देते हैं, तू चिन्ता न कर, मेरी शरण आ जा, मैं तुझे सारे पापोंसे बचा लूँगा।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥
(गीता १८। ६५-६६)

'तू मुझमें मन लगा, मेरा भक्त बन, मेरी पूजा कर मुझे नमस्कार कर, तू मेरा प्रिय है, इससे मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि ऐसा करनेसे तू मुझको ही प्राप्त होगा। सारे आश्रयोंको छोड़कर तू केवल एक मेरी ही शरणमें आ जा। मैं तुझको सब पापोंसे छुड़ा दूँगा। तू चिन्ता न कर।' इसलिये हमलोगोंको नित्य-निरन्तर श्रीभगवान्‌का चिन्तन करना चाहिये। भक्तोंके और भी अनेकों गुण हैं, कहाँतक बखाने जायँ।

अन्तमें दो-एक बातें कीर्तनके सम्बन्धमें निवेदन करता हूँ। याद रखें, कीर्तन बाजारी वस्तु नहीं है। यह परम आदरणीय, भक्तकी प्राण-प्रिय वस्तु है। इसलिये कीर्तन करनेवाले इतना ध्यान रखें कि यह कहीं बाजारू लोकरञ्जनकी चीज़ न बन जाय। इसमें कहीं दिखलानेका भाव न आ जाय, कीर्तन करनेवाला भक्त यह समझे कि 'बस मैं केवल अपने भगवान्‌के सामने ही कीर्तन कर रहा हूँ' यहाँ और कोई नहीं है, इस बातकी स्मृति उसे न रहे। दो बातें कभी नहीं भूलनी चाहियें। मनमें भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान, और प्रेमभरी वाणीके द्वारा मुखसे अपने प्रभुके पवित्र नामकी ध्वनि, ऐसा करते-करते वास्तविक प्रेमकी दशाएँ प्रकट होंगी और भगवान् कहते हैं कि फिर मेरा वह भक्त त्रिभुवनको तार देगा।

वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥
(श्रीमद्भा० ११। १४। २४)

प्रेमसे उसकी वाणी गद्गद् हो जाती है, चित्त द्रवीभूत हो जाता है, वह कभी जोर-जोरसे रोता है, कभी हँसता है, कभी लाज छोड़कर गाता है, कभी नाचने लगता है, ऐसा मेरा परम भक्त त्रिभुवनको पवित्र कर देता है।

हनुमानप्रसाद पोद्दारके एक व्याख्यानके आधारपर —'संकीर्तन' से।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परमहंस-विवेकमाला

(लेखक—स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी)

(गताङ्कसे आगे)

[मणि १०]

अप्रियमें दुःखकी कारणता

कहोल ! जैसे अग्निका जिस-जिस पदार्थके साथ सम्बन्ध होता है उस-उस पदार्थको अग्नि जला देती है, इसी प्रकार सिंह, सर्पादि अप्रिय पदार्थोंका जिस-जिस जीवके साथ सम्बन्ध होता है उस-उस जीवका सिंह, सर्पादि नाश करते हैं, यह बात सबके अनुभवसिद्ध है । इससे सिद्ध होता है कि जैसे माता-पितादि प्रिय पदार्थ वियोगकालमें जीवके दुःखके कारण होते हैं उसी प्रकार सिंह, सर्प तथा शत्रु आदि अप्रिय पदार्थ संयोगकालमें जीवके दुःखके कारण होते हैं ।

जड़ पदार्थोंमें दुःखकी कारणता

हे कहोल ! जैसे चैतन्यरूप प्रिय, अप्रिय पदार्थ वियोगकाल और संयोगकालमें जीवके दुःखके कारण होते हैं, उसी प्रकार सुवर्णादि जड़ पदार्थ भी जिस-जिस जीवको प्रिय होते हैं उस-उस जीवको वियोगकालमें वे परमदुःखकी प्राप्ति कराते हैं और जिस-जिस जीवको वे सुवर्णादि जड़ पदार्थ अप्रिय होते हैं उस-उस जीवको वे अप्राप्तिमें परम दुःखकी प्राप्ति कराते हैं । जैसे अग्नि पतंगोंको जला देती है, इसी प्रकार वैराग्यहीन जीवोंको प्रिय, अप्रिय पदार्थ सर्वदा दुःखकी प्राप्ति कराते हैं । जो पुरुष रागसे अन्धा हो जाता है उस पुरुषको यद्यपि संसार दुःखरूप प्रतीत नहीं होता, तो भी राग-द्वेषसे रहित विवेकी पुरुषको पुत्र, धन, लोक, शरीर तथा बान्धव आदि सर्व संसार दुःखका कारणरूप प्रतीत होता है । यद्यपि सर्व अनात्म-पदार्थ जीवके दुःखके कारण हैं तो भी विचारकर देखा जाय तो पदार्थोंकी इच्छा ही जीवके दुःखका कारणरूप सिद्ध होती है । क्योंकि धनादि पदार्थोंकी प्राप्तिकी तथा शत्रुको मारनेकी इच्छावाला जीव धनादि पदार्थोंकी प्राप्ति और शत्रुको मारनेके लिये अनेक प्रकारके यत्न करता है; किन्तु धनकी प्राप्ति और शत्रुके मारनेमें जब वह जीव समर्थ नहीं होता तो अपनेको असमर्थ जानकर दुखी होता है—जिस-जिस पदार्थकी प्राप्तिमें जीव समर्थ नहीं होता उस-उस पदार्थसे वह परम दुःखको प्राप्त होता है ।

कहोल—हे याज्ञवल्क्य ! जिस पदार्थकी प्राप्तिमें मनुष्यका सामर्थ्य नहीं होता उस पदार्थकी जीवको क्यों इच्छा होती है ?

याज्ञवल्क्य—हे कहोल ! शरीर-इन्द्रियादिमें 'अहम्' अभिमानरूप विपरीत ज्ञानसे और पुत्र-धनादिमें 'मम' अभिमानरूप विपरीत ज्ञानसे जीव नहीं प्राप्त होनेयोग्य पदार्थोंकी इच्छा करता है; किन्तु जब पदार्थकी प्राप्ति नहीं होती तब जीवको परम दुःख होता है, इसलिये फलसे रहित इच्छा ही जीवके दुःखका कारण है । और मनुष्यलोकसे लेकर हिरण्यगर्भलोकतक सर्व देहधारी जीवोंके शरीर, इन्द्रिय तथा पुत्रादि पदार्थ अनुकूल नहीं होते । इसलिये प्रतिकूल होनेसे शरीर तथा पुत्रादि पदार्थ भी जीवके दुःखका कारण होते हैं ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अनात्म-पदार्थोंमें सुखका अभाव

हे कहोल ! आत्माके सिवा किसी भी अनात्म-पदार्थमें सुखरूपता नहीं है, क्योंकि जो पदार्थ जिस जीवके सुखका कारण होता है वही पदार्थ कालान्तरमें उस जीवके दुःखका कारण हो जाता है और जो पदार्थ जिस जीवके दुःखका कारण होता है, वही पदार्थ कालान्तरमें उस जीवके सुखका कारण हो जाता है। जैसे ज्वर-व्याधिसे रहित पुरुषको घृतादि पदार्थ सुखके कारण होते हैं और वे ही घृतादि पदार्थ कालान्तरमें ज्वर-व्याधिवाले उसी पुरुषको दुःखका कारण हो जाते हैं। जो घृतादि पदार्थ ज्वर-व्याधिवालेको दुःखका कारण होते हैं, वे ही घृतादि पदार्थ कालान्तरमें ज्वर-व्याधि-रहित उसी पुरुषको सुखका कारण होते हैं। इसी प्रकार सर्व अनात्म-पदार्थोंमें सुखकी साधनताका व्यभिचार जान लेना चाहिये। यदि अनात्म-पदार्थ नियमसे सुख ही उत्पन्न करते हों तो सब समय उनसे सुखकी उत्पत्ति होनी चाहिये; किन्तु सर्व कालमें उनसे सुखकी उत्पत्ति नहीं होती, इसलिये अनात्म-पदार्थोंमें सुखकी कारणता नहीं है।

कहोल-हे याज्ञवल्क्य ! यदि अनात्म-पदार्थोंमें सुखकी कारणता नहीं है तो सुखकी प्राप्तिके लिये सब जीव शब्द-स्पर्शादि विषयोंकी क्यों इच्छा करते हैं ?

याज्ञवल्क्य-हे कहोल ! 'शब्द-स्पर्शादि विषय मेरे सुखके साधनरूप हैं' ऐसा लोगोंको अनुभव होता है, इसलिये वे शब्द-स्पर्शादि विषयोंकी इच्छा करते हैं। यह उनका अनुभव भ्रान्तिरूप है, यथार्थ नहीं है। क्योंकि 'ब्रह्म आनन्दरूप है', इस प्रकार श्रुतिमें ब्रह्मको ही आनन्दरूप कहा है। और ब्रह्म नित्य है, इसलिये आनन्द भी नित्य है। नित्य आनन्दकी शब्दादि विषयोंसे उत्पत्ति कहना भ्रान्ति बिना सम्भव नहीं है। यदि शब्द-स्पर्शादि विषयोंसे सुख उत्पन्न होगा तो सुख नित्य आत्मासे भिन्न होगा। जो आत्मासे भिन्न होता है वह दुःखरूप ही होता है। जैसे आत्मासे भिन्न जाना हुआ जो वैरी पुरुष है उस वैरी पुरुषका सुख भी जीवको दुःखरूप प्रतीत होता है, इसी प्रकार जो सुख आत्मासे भिन्न होगा वह दुःखरूप ही होगा। और सुखको दुःखरूपता सम्भव नहीं है, इसलिये सुख आत्मासे भिन्न नहीं है। और 'शब्दादि विषय मेरे सुखके साधन हैं' ऐसा जो लोगोंका अनुभव है उसमें यह कारण है कि जैसे अग्नि रात्रिमें सर्व-व्यापक आकाशकी अभिव्यक्ति नहीं कर सकती, किन्तु व्यापक आकाशके किसी एक देशकी अभिव्यक्ति करती है; उसी प्रकार शब्द-स्पर्शादि विषय भी सर्व आत्मारूप सुखकी अभिव्यक्ति नहीं करते, किन्तु व्यापक सुखके किसी एक अंशकी अभिव्यक्ति करते हैं। तात्पर्य यह कि शब्द-स्पर्शादि विषयोंके साथ जब श्रोत्रादि इन्द्रियोंका सम्बन्ध होता है तब आनन्दस्वरूप आत्माके प्रतिबिम्बको ग्रहण करनेवाली अन्तःकरणकी वृत्ति उत्पन्न होती है। यह अन्तःकरणकी वृत्ति जितने परिमाणवाली होती है उतने परिमाणतक आत्मा-रूप सुखकी अभिव्यक्ति करती है, इसलिये अन्तःकरणकी वृत्तिमें स्थित शब्द-स्पर्शादि विषयकी उत्पत्तिका आत्मारूपी सुखमें आरोपण करके मूढ़ पुरुष सुखको विषयजन्य मानते हैं, इसलिये 'सुख विषयजन्य है' ऐसा लोगोंका अनुभव केवल भ्रमरूप है। आत्मासे भिन्न सब जगत्‌को दुःखरूप जानकर वामदेवादि विद्वान् पुरुष आत्मरूप सुखकी प्राप्तिके लिये पूर्वमें सर्व एषणाओंका त्याग करके संन्यास-आश्रमको ग्रहण कर चुके हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रवणादिका स्वरूप

हे कहोल ! स्वप्रकाश सुखरूप ब्रह्मकी प्राप्तिकी जिसको इच्छा होती है और शास्त्रके पदार्थोंका तथा वाक्यके अर्थका जिसको ज्ञान होता है ऐसा साधन-चतुष्टयसम्पन्न पुरुष मुमुक्षु होता है। प्रथम गुरु-मुखसे वेदान्त-वाक्योंका श्रवण करना और उन वेदान्त-वाक्योंका अद्वितीय ब्रह्ममें तात्पर्य है—ऐसा निश्चय करना, इसका नाम श्रवण है। श्रवणके बाद मुमुक्षुको जानना चाहिये कि शरीर जन्म-मरणादि विकारवाला है और आसक्तिद्वारा सर्व एषणाओंका उत्पन्न करनेवाला है। यह शरीर ही अन्वय-व्यतिरेकसे दुःखका कारण है। ऐसा जानकर मुमुक्षुको सर्व-एषणाओंको त्यागकर बालकके समान राग-द्वेषसे रहित होना चाहिये। भाव यह है कि राग-द्वेषपूर्वक विषयोंमें इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति जीवके दुःखका कारण है। इसी कारण राग-द्वेषसे रहित बालक इन्द्रियोंकी प्रवृत्तिसे दुःख नहीं पाता, इसलिये मुमुक्षुको बालकके समान राग-द्वेषपूर्वक इन्द्रियोंकी प्रवृत्तिसे रहित होकर वेदान्तके अर्थका मनन करना चाहिये। अनेक प्रकारकी युक्तियोंसे विरोधकी निवृत्तिपूर्वक वेदान्तके अर्थके चिन्तनको शास्त्रवेत्ता मनन कहते हैं, यह मनन राग-द्वेषवाले बहिर्मुख पुरुषसे नहीं हो सकता। इसलिये राग-द्वेषसे रहित होकर मुमुक्षुओंको वेदान्तके अर्थका मनन करना चाहिये। श्रवण तथा मननकी सिद्धि होनेपर मुमुक्षुओंको अनात्माकार विजातीय वृत्तियोंका त्याग करके आत्माकार सजातीय वृत्तियोंका प्रवाहरूप निदिध्यासन निरन्तर करना चाहिये। तात्पर्य यह कि मन-वाणीका विषयरूप जो दृश्य प्रपञ्च है उस दृश्य प्रपञ्चसे मैं विलक्षण, आनन्द-स्वरूप, स्वप्रकाश तथा सजातीय, विजातीय स्वगत-भेदसे रहित अद्वितीय ब्रह्म हूँ, इस प्रकारकी वृत्तियोंके निरन्तर प्रवाहरूप निदिध्यासनमें निष्ठावाला तथा पूर्वोक्त श्रवण, मननको दीर्घ कालतक, श्रद्धापूर्वक नियमसे सेवन करनेवाला मुमुक्षु ब्रह्मविद्याको प्राप्त होता है। ब्रह्मविद्यावाले पुरुषको ही श्रुतिमें ब्राह्मण कहा है।

कहोल-हे याज्ञवल्क्य ! पूर्वोक्त श्रवण, मनन तथा निदिध्यासनको त्यागकर मुमुक्षु किसी अन्य उपायसे भी ब्रह्मज्ञानरूप ब्रह्मभावको प्राप्त हो सकता है या नहीं ? यदि श्रवणादि बिना अन्य किसी उपायसे ब्राह्मणभावकी प्राप्ति होती हो तो वह उपाय मुझसे कहिये ?

याज्ञवल्क्य-हे कहोल ! पूर्वोक्त श्रवण, मनन तथा निदिध्यासनको त्यागकर अन्य किसी उपायसे मुमुक्षु ब्राह्मणभावको प्राप्त नहीं होता, श्रवणादिसे ही ब्राह्मणभावको प्राप्त होता है। इसलिये हे कहोल ! नाम, रूप तथा क्रियासे रहित, स्वप्रकाश, सुखरूप ब्रह्म मैं हूँ, इस प्रकार निर्विकल्पज्ञानवाले ब्रह्मवेत्ताको श्रुति ब्राह्मण कहती है। इस प्रकारका ब्राह्मणपन श्रवण, मनन, निदिध्यासन बिना अन्य किसी उपायसे प्राप्त नहीं होता, इसलिये ब्रह्मभावकी प्राप्तिके लिये मुमुक्षुको श्रवणादि साधन अवश्य सम्पादन करने चाहिये। हे कहोल ! इस प्रकारका ब्राह्मणपन यदि अन्य किसी उपायसे प्राप्त होता हो तो उसके सम्बन्धमें मेरा कुछ भी आग्रह नहीं है। क्योंकि जैसे नदीके पार जानारूप फल नावसे अथवा डोंगी आदिसे होता है—यदि डोंगी आदि साधनोंसे नदी-पार जानारूप फल सिद्ध हो सकता हो तो नौकासे पार जानेको कोई बुद्धिमान् आग्रह नहीं करता, किन्तु अत्यन्त वेगवाली, अत्यन्त विस्तारवाली तथा अगाध जलवाली नदीके पार जानेमें केवल नौका ही साधन है, नौकाके सिवा डोंगी आदि साधनोंसे पार जाना सम्भव नहीं है, इसी प्रकार पूर्वोक्त ब्राह्मणपनमें श्रवणादि साधनोंके सिवा अन्य किसी उपायसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ब्राह्मणपन प्राप्त नहीं होता। भाव यह है कि श्रवणादिसे भिन्न उपाय हिरण्यगर्भकी उपासना होगी अथवा अश्वमेधादि उत्कृष्ट कर्म होंगे। ये सब उपासना तथा कर्म श्रवणादि बिना आत्मज्ञानकी उत्पत्ति नहीं करते किन्तु उपासना तथा कर्मसे चित्तकी शुद्धि होती है; पश्चात् विवेक, वैराग्य, शमादि षट्सम्पत् तथा मुमुक्षुता—इन चार साधनोंकी प्राप्ति होती है। पश्चात् गुरुमुखद्वारा वेदान्तके श्रवण, मनन तथा निदिध्यासनसे मुमुक्षुको आत्माका साक्षात्कार होता है। इसलिये चित्तकी शुद्धिमें कर्म-उपासनाका उपयोग है। साक्षात् आत्मज्ञानमें कर्म तथा उपासनाकी कारणता नहीं है। श्रवणादिसे ही आत्मसाक्षात्कार होता है। इनमेंसे वेदान्त-शास्त्र जीव, ईश्वरके अभेदका बोध कराता है अथवा उन दोनोंके भेदका बोध कराता है, इस प्रकारकी प्रमेयगत असम्भावनाकी निवृत्ति वेदान्त-शास्त्रके श्रवणसे होती है। और आत्मा नित्य, व्यापक तथा सुखरूप है अथवा अनित्य, परिच्छिन्न तथा दुःखरूप है, इस प्रकारकी प्रमेयगत असम्भावना वेदान्त-शास्त्रके मननसे निवृत्त होती है। अशुचि तथा दुःखरूप शरीरादिमें नित्य, शुचि तथा सुखरूप बुद्धिको विपरीत-भावना कहते हैं। यह विपरीत-भावना निदिध्यासनसे निवृत्त होती है। इस प्रकार असम्भावना तथा विपरीत-भावनाकी निवृत्तिद्वारा श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन आत्मज्ञानके साधनरूप हैं इसलिये श्रवणादिसे ही ब्राह्मणभावकी प्राप्ति होती है। हे कहोल! जिसने गुरुमुखसे वेदान्त-शास्त्रका श्रवण नहीं किया, मनन तथा निदिध्यासन भी नहीं किया तथा वित्त-एषणा, पुत्र-एषणा तथा लोक-एषणा—इन तीन प्रकारकी एषणाओंका त्याग नहीं किया, केवल विषय-भोगमें आसक्त रहा, ऐसे साधनहीन पुरुषको किसी लोक अथवा कालमें ब्राह्मणपन प्राप्त नहीं होता। इसलिये हे कहोल! जैसे अन्नका भक्षण तृप्तिका उपाय है, अन्नके भक्षण बिना अन्य किसी उपायसे पुरुषकी तृप्ति नहीं होती, उसी प्रकार श्रवणादि ही ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिरूप ब्राह्मणपनमें नियमसे साधन हैं। हिरण्यगर्भको भी क्षणमात्रके वेदान्त-वाक्यके विचारसे आत्मज्ञानकी प्राप्ति कही है। इसी प्रकार योगी पुरुष भी प्रणवके अर्थके विचारद्वारा ही आत्मसाक्षात्कारको प्राप्त होते हैं। श्रवणादि बिना कोई भी पुरुष आत्मज्ञानको प्राप्त नहीं होता।

हे वत्स! इस प्रकार जब याज्ञवल्क्यने कहोलके प्रश्नोंका उत्तर दिया तो कहोल याज्ञवल्क्यको बुद्धिमान् जानकर उनके जीतनेकी इच्छा छोड़कर गार्गीके मुखकी तरफ देखकर प्रश्न करनेसे उपरामको प्राप्त हुआ। पश्चात् तर्कमें कुशल वचक्नु ऋषिकी पुत्री गार्गी अनुमान-प्रमाण अङ्गीकार करके याज्ञवल्क्यसे इस प्रकार प्रश्न करने लगी— (क्रमशः)

अभिलाषा

बर बुद्धि सुहीतलमें बिकसैं रसना रस राघवमें दरसै।
पर-प्रेम-प्रसून-पराग प्रभो! मम मानस-मन्दिरमें बरसै॥
कविता सविता सम जोति करै समता-सुखदा-सरिता सरसै।
मरु-यौवनमें मृदु मूर्ति रमै कबहूँ न मनोमृग ह्वाँ तरसै॥

नृपतिसिंह भदौरिया 'चकोर'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रार्थनाका प्रवाह

(लेखक—पं०श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव', एम०ए०)

सन्ध्याका समय था। भगवान् सूर्यदेव अपनी लाल किरणें वसुन्धरापर स्मृतिके रूपमें बिखेर रहे थे या बटोर रहे थे—कुछ कहा नहीं जा सकता। मैं काशीमें दशाश्वमेध-घाटके नीचे एक नावपर विश्व-विश्रुत तपस्वी साधक पं० भवानीशङ्करजीके साथ जा रहा था। काशी सेण्ट्रल हिन्दू स्कूलके अन्यतम अध्यापक परेश बाबू डाँड़ चला रहे थे। नाव दूर निकल चुकी थी। बीचोबीच गंगाजीमें हमलोग हरिश्चन्द्र-घाटकी ओर बढ़े जा रहे थे। दूरसे घण्टों, घड़ियालों और शङ्खोंकी तुमुल ध्वनि आ रही थी। स्थान-स्थानपर गंगाजीकी आरती उतारी जा रही थी। आरतीका यह दृश्य इतना आह्लादकारी था, इतना महान् और पावन था कि हृदय उसपर बार-बार निछावर हो जाता था! काशीकी वह शोभा, वह महामहिम तेज हृदयमें सहसा भक्ति-श्रद्धाके भाव उद्बोधित कर रहा था! आँखोंमें, हृदयमें भगवान् शङ्करकी त्रिभुवनमोहिनी छबि नाच रही थी—गंगाका वह पावन 'अमृत' अनन्त प्रवाह सूर्यकी अरुणिमामें कुछ और ही रूप धारण किये हुए था। लगातार दस वर्षोंमें मैंने बहुधा काशीके गङ्गातटका प्रभात और सन्ध्या देखी है। प्रायः दोनों बेला गंगा मैयाके तटपर जाकर मैंने हृदयको प्रेममें खूब नहलाया है। प्रभातकी अरुणिमामें हमने एक romance चपलता, एक प्रखरता, एक अपूर्व आकर्षण और जादूका अनुभव किया है। प्रभातकी अरुणिमा गुलाबकी लाली-सी मनोमोहक और मीठी-मीठी सुगन्धसे भिनी-भिनी होती है; उसमें एक खींच लेनेकी, आकृष्ट कर लेनेकी प्रबल अजेय शक्ति भरी होती है। कभी भी ऐसा न हुआ होगा जब प्रभातकी अरुणिमा देखकर हमारा हृदय आनन्द और प्रेममें नाच न उठा हो! ऊपरसे मधुकी वर्षा होती रहती है, सामने गङ्गा मैयाका पावन प्रवाह है, और दाहिने-बायेंसे मन्दिरोंकी तुमुल जयजयकार।

सन्ध्याकालकी अरुणिमामें एक गम्भीर पवित्रता होती है, विषादकी एक अस्पष्ट झलक होती है। उषाकी लाली romantic है, सन्ध्याकी लाली solemn है, ऐसा ही बराबर मेरे हृदयने अनुभव किया है। हाँ, ठीक इसी प्रकारकी गम्भीर पवित्रताके वातावरणमें हमलोग नावमें चले जा रहे थे। पं० भवानीशङ्करजीने कोमल और धीमे शब्दोंमें छेड़ा—

संसारका घोर-से-घोर नास्तिक भी आकर काशीमें इस शोभाको देखे—हमारा ध्रुव विश्वास है कि परमात्माकी अपार सत्ताके सम्मुख उसका हृदय नत हुए बिना न रहेगा। वर्तमान बुद्धिवाद और आधिभौतिकवादकी सबसे सांहारिक शक्ति तोप-बन्दूकोंमें ही सीमित न रही अपितु तर्कके बलपर लोगोंने ईश्वरकी सत्ताको भी अस्वीकार कर दिया, ये शब्द जब पूज्य पण्डितजी कह रहे थे उस समय वे बहुत ही भावपूर्ण हो गये थे। उनकी आँखोंसे एक अपूर्व तेज निकल रहा था जो तीरकी तरह सीधे हमारे हृदयमें जाकर अन्धकारको छिन्न-भिन्न कर रहा था। उस सन्ध्याको पूज्य पण्डितजीके चरणोंमें जब मैं बैठा था बार-बार हृदयसे एक प्रार्थना निकल रही थी—

अबलौं नसानी अब ना नसैहौं।
रामकृपा भव निसा सिरानी जागे फिर न डसैहौं॥

विज्ञानकी चकाचौंधमें हमने आत्माको रौंद दिया है, हृदयको कुचल दिया है। अब लोगोंमें 'क्या ईश्वर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है ?'—ऐसा प्रश्न बहुधा पूछा जा रहा है। लोग समझने लगे हैं कि ईश्वर एक पुरानी खोपड़ीकी उपज है। आज तो 'नवीनता' का परम लक्षण ईश्वरकी सत्ता-को मिटाकर 'नास्ति नास्ति' में विश्वास जमा देना ही समझा जाता है। यह है बाह्य, बनावटी (Superficial) जीवनका परिणाम। हम जीवनकी तहमें प्रवेश करने-से डरते हैं, घबड़ाते हैं। हमारी वृत्ति बहिर्मुखी हो गयी है—'खाओ, पीओ, मौज करो' ही परम लक्ष्य हो गया है।

ईश्वरके अस्तित्वको प्रमाणित करना व्यर्थ है। वह है क्योंकि वह है। जो कुछ हम देखते-सुनते, चलते-फिरते, खाते-पीते सभी परमात्मासे ही प्रेरित हो रहा है। वह है, ईश्वर है—इसके लिये प्रमाणकी आवश्यकता ही नहीं है। आँखें खोलकर अखिल विश्व-को देखें या आँखें बन्द कर अपने हृदयके भीतर देखें सर्वत्र परमात्मा है और तर्कसे उसे जानना कठिन है। सभी बातोंमें 'क्यों' और 'कैसे' पूछनेकी आँधी पश्चिमसे आयी है और सम्भवतः भारतवर्षमें अपना प्रभाव भी बढ़ा रही है।

भारतवर्षमें अनादि कालसे ही ईश्वरकी अपार सत्तामें अखण्ड विश्वासका वातावरण रहा है। ऋषियोंने बहुत प्राचीन कालमें प्रभुकी परम सत्ताको घूँघटका पट हटाकर देखा था। वह अनादि सनातन-प्रवाह चलता चलेगा और इसे शङ्कर, रामानुज, वल्लभ, माध्व, रामा-नन्द, कबीर, नरसी मेहता, मीराबाई, रामकृष्ण परमहंस, रामतीर्थ आदिने अपने प्राण देकर प्रवाहित रक्खा है। आस्तिकताका यह अमृत-प्रवाह किस वेग और उमंगके साथ भारतमें चलता रहा है।

आस्तिकताका प्राण है प्रार्थना। प्रार्थनामें अमोघ शक्ति है, अतुल बल है। भारतवर्षमें तो प्रार्थना-के महत्त्वको हम सभी स्वीकार करते हैं, पश्चिममें भी अब इसकी शक्तिकी अपरिमेयतामें लोगोंका विश्वास बढ़ रहा है। लोग यह अब समझने लगे हैं कि प्रार्थना करना प्रत्येक व्यक्तिका मूल कर्तव्य है। प्रार्थनाका यह अर्थ कदापि नहीं है कि देवतासे हम किसी बातकी याचना करते हैं। उसका एकमात्र अभिप्राय यह है कि हम अपनी विराट् सत्ताके प्रवाहमें अपने तुच्छ अहंको लय कर रहे हैं। प्रभुकी इच्छाके सम्मुख हृदयको समर्पित कर रहे हैं। हम अपने भीतरके प्रकाशको विश्वमें, चराचरमें बिखरे हुए प्रकाशमें मिला देते हैं और अपनी अनन्त, अमर सत्ताकी अनुभूतिमें, अपने 'प्राण' के पावन मधुर स्पर्शमें अपनी तुच्छ व्यक्तिगत सत्ताका लोप कर देते हैं। प्रार्थनाका सारतत्त्व यही है।

आज हम विदेशी महापुरुषोंके कुछ विचार प्रार्थनाके सम्बन्धमें उद्धृतकर यह दिखलाना चाहते हैं कि जिस पश्चिमकी भद्दी नकल कर हमने अपनी सभ्यता, अपना आचार, अपने विचार और अपनी संस्कृति नष्ट कर दी और जहाँके अन्धानुकरणमें भारतीयता एक प्रकारसे लुप्तप्राय हो गयी वहाँ लोग प्रार्थनाको कितना महत्त्वपूर्ण मानते हैं। हमारे यहाँ तो सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते, चलते-फिरते हर समय प्रार्थनाकी प्रथा है और लोगोंका यह दृढ़ विश्वास है कि परमात्माके सङ्केतपर ही यह समस्त चराचर अपना अस्तित्व बनाये हुए है।

पूर्व और पश्चिममें समानरूपसे मनुष्य परमात्माके चरणोंमें आत्म-निवेदन करनेके लिये निम्नलिखित भावनाओंसे प्रेरित हुआ है।

(१) यह दृश्य जगत् उस अनन्त आध्यात्मिक ब्रह्माण्डका एक परमाणुमात्र है जहाँसे इसे समस्त शक्ति, प्रकाश और जीवनकी स्फुरणा मिलती है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(२) उस अनन्त परमात्मशक्तिमें अपनेको लय कर देना, पूरी तरह मिला देना ही हमारे जीवनका एकमात्र और परम उत्कृष्ट उद्देश्य है।

(३) प्रार्थनाद्वारा ही हमारा उस अनन्त शक्तिसे, जिसे ईश्वर कहें या 'विधान', सम्मिलन होता है। प्रार्थनाके समय ही वह अचिन्त्य सत्ता अपने प्रवाहको हमारी ओर मोड़ देती है और हमारा उससे मिलनेकी मधुर क्रियाका उपन्यास यहींसे प्रारम्भ होता है। वह आध्यात्मिक शक्ति पिघलकर, ढलकर हमारी अन्तरात्माको अपनेमें एकाकार कर लेती है। इस प्रकार इस दृश्य जगत्में स्थूल, मानसिक अथवा आध्यात्मिक प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं।

(४) इस शक्तिके सम्यक् आविर्भूत हो जानेसे और हमारे जीवनकी अन्तर्धारामें एकरस हो जानेसे हम अपूर्व स्फूर्ति, उत्साह, आनन्दकी प्रेरणा अनुभव करते हैं; क्योंकि ब्रह्माण्डकी सञ्चालिका शक्ति अपनी स्फुरणा हममें भर देती है। कहना न होगा कि इसे ही हमारे यहाँ 'सिद्धि' कहते हैं।

हाँ, तो यह भूल न जाना होगा कि पूर्वमें या पश्चिममें प्रार्थनाकी प्रेरक भावना समानरूपसे यही है। प्रार्थना ही धर्मकी मूल आत्मा है। एक फ्रेंच महात्माने प्रार्थनाकी बड़ी सुन्दर परिभाषा लिखी है—'धर्मकी आत्मा तभी जागृत होती है जब हमारे अन्तःकरणसे एक करुण चीख अपने प्राणवल्लभ प्रभुसे मिलनेके लिये उठती है। परमात्माके साथ हमारा यह महामिलन (Intercourse) ही सच्ची प्रार्थना है। प्रार्थना ही धर्मका वास्तविक क्रियात्मक स्वरूप है, प्रार्थना ही सच्चा धर्म है! जहाँ इस आन्तरिक प्रार्थनाका अभाव है वहाँ धर्म भी मिट जाता है। जब प्रार्थना आत्माको आन्दोलित कर दे, जब यह अन्तस्तलके एक-एक तन्तुको हिला दे, जगा दे तभी हम धर्मके सत्यस्वरूपके स्पर्शमें आ जाते हैं!'

प्रार्थनाके समय तो ऐसा प्रतीत होता है मानो मिलनेकी भूख-प्यास इधर भी थी, उधर भी। प्रार्थनामें जीवनका एक-एक परमाणु सञ्चालित और आन्दोलित हो जाता है। धर्मका व्यावहारिक स्वरूप तो प्रार्थनाहीमें उत्फुल्ल हो उठता है। प्रार्थनाके समय हम प्रभुमें मिल जाते हैं अतः हमारी शक्ति और सत्ताका विस्तार अनन्त, शाश्वत एवं परम विराट् हो जाता है।

ब्रिस्टलमें जार्ज मूलर नामका एक प्रसिद्ध दानी और परोपकारी महापुरुष हो चुका है। १८९८ में उसकी मृत्यु हुई। जीवनके प्रारम्भिक कालमें उसने बाइबिलसे कुछ प्रतिज्ञाएँ लीं और उन्हें कार्यरूपमें परिणत करने लगा। उसने भिन्न-भिन्न भाषाओंमें दो करोड़ बाइबिलकी प्रतियाँ मुफ्त बाँटीं। वह पाँच अनाथालय चलाता रहा, जिनमें हजारों अनाथोंकी शिक्षा-दीक्षा, भोजन-वस्त्रकी सुन्दर व्यवस्था थी। स्कूल खुलवाये जिनमें बारह हजार विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। ६८ वर्षतक वह राज्यका महामन्त्री रहा, परन्तु अपने पास उसके साधारण कपड़े और सामानके सिवा कोई सम्पत्ति न थी। मूलर एक प्रकारसे ब्रिस्टलका मालवीय ही था।

उस परम दानी मूलरका यह नियम था कि अपनी साधारण बातोंको तो किसीपर प्रकट नहीं होने देता था, परन्तु अपनी महत्त्वाकांक्षाओंको सभीको जना देता था। उसकी जब एक कुञ्जी खो जाती, कोई कठिन बात समझमें न आती तो बैठकर बड़े ही करुण शब्दोंमें ईश्वरसे प्रार्थना करता! मूलर किसी भी मनुष्यका अहसान नहीं लेना चाहता था। उसका नियम ही था 'Owe no man anything.' जब उसके अनाथालयों या

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्कूलोंके लिये रुपयेकी आवश्यकता होती तो बैठकर बड़े ही आतुर शब्दोंमें भगवान्‌से प्रार्थना करता! एक समयकी बात है कि सन्ध्या हो चुकी थी। अनाथालयमें जलावन न था। यों तो कोई भी व्यापारी लाखों रुपयेकी वस्तु उसे उधार दे सकता था, परन्तु मूलरका एक यह भी सिद्धान्त था कि कोई भी वस्तु ऐसी न खरीदो जिसका मूल्य उसी समय चुकता न कर दो। अब जलावन आवे तो कहाँसे—इसी चिन्तामें वह डूब रहा था। वह अपने कमरेको बन्द कर प्रार्थना करने लगा—आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली—'प्रभो! इन अनाथालयोंका भार मैंने तुम्हारे ही बलपर लिया है। इन अनाथोंकी चिन्ता तुम्हारे ऊपर है। इन्हें रोटी पहुँचाना तुम्हारा काम है····प्रार्थना पूरी भी न हुई थी कि दरवाजेपर खटखटाहटकी आवाज आयी और ज्यों ही कमरा खोला, उसने देखा, अनाथालयके सहायता-खातेमें दो हजार पचास पौण्ड किसीने भेजे थे! वह बराबर कहा करता था, 'I believe that God hears me.' 'मेरा यह विश्वास है कि प्रभु हमारी प्रार्थना सुनते हैं।'

प्रार्थनाके समय चित्तके अहंकार, दम्भ, पाप, पाखण्ड आदि धुल जाते हैं। हृदयका वातायन खुल जाता है और परमात्माका शुभ्र प्रकाश हमारे हृदयके अन्तस्तलमें आ जाता है। समस्त अन्तर्जगत् प्रकाशमय, तेजोमय हो जाता है। महात्मा एपिक्टेटस कहता है, 'वह प्रभु जिसने घाससे दूध, दूधसे पनीर और मक्खन और खालसे ऊन बनाया, क्या हमारा कर्त्तव्य नहीं है कि हम उसके चरणोंमें उसकी अनन्त कृपाओंके लिये माथा टेकें?' उसका कथन है "We are actually killed with God's kindness.' तात्पर्य यह है कि प्रार्थनाके समय हमारी आन्तरिक आध्यात्मिक शक्ति जो यों व्यर्थ ही सोयी रहती है, जागृत हो जाती है और हमारे जीवनका आध्यात्मिक प्रकाश बल उठता है, हृदयका कोना-कोना जगमग-जगमग करने लगता है।

प्रार्थनामें माँगनेकी प्रवृत्ति, रोग, विपत्ति, ऋण, आपदा आदिसे बचनेकी कामना और इन कामनाओंकी पूर्तिके लिये परमात्मासे प्रार्थना करना मनुष्यकी आदिम वृत्ति है। अन्तमें चलकर तो माँगनेकी प्रवृत्ति स्वयं मिट जाती है। क्या माँगा जाय? समस्त विश्वके अधिपति, समस्त चराचरके अधिनायक प्रभुकी सारी सम्पत्ति ही तो हमारी है। फिर माँगना क्या! सब कुछ तो, हम भी तो 'उसी' देवताकी सम्पत्ति हैं जिसके चरणोंमें हम आत्म-समर्पण कर रहे हैं। प्रार्थनाकी सरिता आत्मसमर्पणके महासमुद्रमें जाकर लय हो जाती है। वहाँ कुछ न इच्छा है न कामना। बस, वहाँ एक ही ध्वनि है—एक ही तान है—

मालिक तेरी रजा रहे औ तू ही तू रहे।
बाकी न मैं रहूँ, न मेरी आरजू रहे॥

व्रजराजको रूप

गुच्छनिके अवतंस लसै सिखिपच्छनि अच्छ किरीट बनायो।
पल्लव लाल समेत छरी कर-पल्लवमें 'मतिराम' सुहायो॥
गुंजनिके उर मंजुल हार निकुंजनि ते कढ़ि बाहिर आयो।
आजको रूप लखे व्रजराजको आजही आँखिनको फल पायो॥

—मतिराम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्मविद्या-रहस्य

(अनुवादक तथा लेखक—श्रीनृसिंहदासजी वर्मा)

(गताङ्कसे आगे)

महर्षि याज्ञवल्क्यका मत है कि शूद्रसे भिक्षा लेकर यज्ञ करनेवाला द्विज चाण्डालयोनिमें जाता है। फिर शूद्रसे यज्ञ करानेका या स्वयं शूद्रको करनेका अधिकार कैसे हो सकता है?

चाण्डालो जायते यज्ञकरणाच्छूद्रभिक्षितात्।

(याज्ञवल्क्यस्मृति १। ५। १२७)

इस प्रकार, शूद्रके लिये वैदिक कर्मका निषेध है यह सिद्ध होता है; अतः उसे वैदिक कर्म करना उचित नहीं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्णोंकी यज्ञोपवीत ग्रहण करनेके अनन्तर द्विज संज्ञा हो जाती है। याज्ञवल्क्य-धर्मशास्त्रमें कहा है—

मातुर्यदग्रे जायन्ते द्वितीयं मौञ्जिबन्धनात्।
ब्राह्मणक्षत्रियविशस्तस्मादेते द्विजाः स्मृताः॥

(१। २। ३९)

इस प्रकार यज्ञोपवीत धारण कर गुरुसे विद्याध्ययन आरम्भ करे। याज्ञवल्क्यस्मृतिमें उसी जगह गुरुके लक्षण भी इस प्रकार लिखे हैं—

स गुरुर्यः क्रियाः कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति।
उपनीय ददद्वेदमाचार्यः स उदाहृतः॥

(१। २। ३४)

अर्थात् जो गर्भाधानसे लेकर उपनयनपर्यन्त समस्त संस्कार करके वेदविद्या प्रदान करता है वह गुरु और जो केवल उपनयन करके वेद पढ़ाता एवं स्वयं आचरण करके शिष्यसे सदाचरण कराता है वह आचार्य कहलाता है। उस आचार्य या गुरुसे यथाविधि ब्रह्मचर्य-व्रत ग्रहण कर गृहस्थमें प्रवेश करनेके समयतक यथावत् विद्याध्ययन करे। इस स्थानपर ब्रह्मचर्यआश्रमके धर्मोंका विस्तारपूर्वक उल्लेख इसलिये नहीं किया कि अब न तो दुर्भाग्यवश प्राचीन आचार्यशैली ही रही है और न कोई उस पुरानी पद्धतिका अनुसरण ही करता है। ऐसी दशामें उस विषयपर, जो मृतप्राय हो चुका है, विशेष लिखना अरण्यरोदनवत् वृथा ही है। अतः ब्रह्मचर्य-समाप्तिके अनन्तर गृहस्थ बन जानेपर मनुष्यको चाहिये कि उक्त षट्कर्मोंका, विशेषतः सन्ध्या और बलिवैश्वदेवका कदापि परित्याग न करे। क्योंकि 'अहरहः सन्ध्यामुपासीत'—प्रतिदिन प्रातः, मध्याह्न और सायङ्कालमें सन्ध्योपासन करे—ऐसी वेदकी आज्ञा है। जो पुरुष इस आज्ञाका उल्लङ्घन करता है वह मनु-महाराजके नीचे लिखे वाक्यके अनुसार जातिसे बहिष्कृत किये जाने योग्य है—

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः॥

(मनु० २। १०३)

ऐसा ही अग्निहोत्रके विषयमें जानना चाहिये; यथा—'यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति', 'सायं जुहोति', 'प्रातर्जुहोति', 'उदिते जुहोति', 'अनुदिते जुहोति' इत्यादि। तात्पर्य यह कि नित्य अग्निहोत्र करता रहे, कर्मका लोप न होने दे। और भी कहा है—

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥
पञ्चैतान्यो महायज्ञान्न हापयति शक्तितः।
स गृहेऽपि वसन्नित्यं सूनादोषैर्न लिप्यते॥

(मनु० ३। ७०-७१)

इस प्रकार प्रतिदिन पाँचों यज्ञ तथा त्रिकाल सन्ध्या करे और विधिवत् पाणिग्रहण की हुई अपने ही वर्णकी स्त्रीके साथ ऋतुकालाभिगामी होकर सन्तान उत्पन्न करे तथा वैदिक कर्मोंका यथावत् आचरण करता एवं मनुमहाराजके कहे हुए दस साधारण धर्मोंको पालता हुआ कालक्षेप करे। इसीसे अन्तःकरणके मलरूप दोषकी निवृत्ति होकर ज्ञान-प्राप्तिके अनन्तर अभीष्ट पदकी प्राप्ति हो जायगी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नैमित्तिक कर्म–'निमित्तमात्रमासाद्य अवश्यकर्तव्यतया विहितानि नैमित्तिकानि, जातेष्ट्यादीनि' किसी निमित्त-विशेषके प्राप्त होनेपर जो अवश्यकर्त्तव्यरूपसे विहित कर्म हैं उन्हें नैमित्तिक-कर्म कहते हैं, जैसे पुत्रोत्पन्न होनेपर जातेष्ट्यादि कर्म किये जाते हैं, क्योंकि इनका करना भी शास्त्राज्ञा होनेके कारण परम आवश्यक है। अतः इनको भी यथासमय अवश्य पूर्ण करना चाहिये।

प्रायश्चित्त–'विहिताकरणप्रतिषिद्धसेवारूपनिमित्तविशेषानुबन्धीनि प्रायश्चित्तानि', 'पापक्षयमात्रोद्देशेन विहितानि इति वा कृच्छ्रचान्द्रायणादीनि' अर्थात् विहित कर्मके न हो सकनेपर तथा निषिद्धाचरण हो जानेपर जो कर्म पापक्षयके निमित्त किये जाते हैं उन्हें प्रायश्चित्त कर्म कहते हैं। इनका भी समयानुसार यथावत् आचरण करना द्विजमात्रका मुख्य धर्म है। मिश्र-कर्मकी एक दूसरी शाखा काम्य-कर्म भी है, जिसके लक्षण ये हैं—'फलोद्देशेन विधीयमानानि कर्माणि काम्यानि ज्योतिष्टोमादीनि' फलोद्देशसे जो कर्म शास्त्रने विधान किया है उसे काम्य-कर्म कहते हैं, जैसे—ज्योतिष्टोमादि यज्ञ। जिज्ञासुको जहाँतक सम्भव हो काम्य-कर्मोंसे भी बचनेका ही उद्योग करना चाहिये क्योंकि काम्य-कर्म भी निषिद्ध कर्मकी भाँति जन्म-मरणके ही चक्करमें डालनेवाले हैं।

निषिद्ध कर्म–'निषिद्धानि नरकाद्यनिष्टसाधनानि ब्रह्महत्यादीनि' अर्थात् जो कर्म नरकादि अनिष्टके साधन हैं, उन्हें निषिद्ध कर्म कहते हैं, जैसे ब्रह्महत्या या मद्यपानादि। इन निषिद्ध कर्मोंसे तो मनुष्यको सदा ही अवश्य बचना चाहिये; इनका आचरण कभी भूलकर करना भी उचित नहीं, क्योंकि मल-कृमि तथा पशु-पक्षी आदि योनियों-में ले जानेके ये ही एकमात्र साधन हैं। इससे यह बात सिद्ध हुई कि सद्गृहस्थको सर्वदा नित्य-नैमित्तिक और प्रायश्चित्त–इन तीन प्रकारके कर्मोंका तथा ब्रह्मचारी और वानप्रस्थको नित्य एवं प्रायश्चित्त–इन दोका ही यथाविधि अनुष्ठान करना चाहिये। इनके सिवा काम्य और निषिद्ध कर्मोंसे तो उपरोक्त तीनों आश्रमोंको ही पथ्यसेवी रोगीके समान सदा बचते रहना चाहिये।

उपरोक्त पुण्य, पाप और मिश्र कर्मोंमेंसे प्रत्येकके फिर तीन-तीन भेद हैं—सञ्चित, आगामी और प्रारब्ध।

सञ्चित कर्म–'जन्महेतुभूतं स्थितं पूर्वजन्मकृतं कर्म सञ्चितमित्युच्यते' अर्थात् जन्मका हेतुभूत पूर्वजन्मोंमें किया हुआ स्थित कर्म 'सञ्चित' कहलाता है।

आगामी या क्रियमाण कर्म–'प्रारब्धकर्मफलभोक्त्रा सता मरणपर्यन्तं कृतं पुण्यपापरूपं कर्म आगामीत्युच्यते' अर्थात् जो कर्म इस जन्ममें प्रारब्ध-कर्म भोगते हुए मरण-पर्यन्त किया जाता है उसे आगामी या क्रियमाण कहते हैं।

प्रारब्ध कर्म–शरीरारम्भक कर्मको प्रारब्ध कहते हैं। इनमेंसे पूर्वोक्त दो कर्म तो ज्ञानीके नष्ट हो जाते हैं किन्तु तीसरा (प्रारब्ध) कर्म भोग चुकनेपर ही नष्ट होता है।

सञ्चित कर्म अज्ञानके आश्रय रहता है और आगामी अहङ्कारके। ज्ञानवान्‌के अज्ञान और अहङ्कार दोनों ही नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार अज्ञान और अहङ्काररूप आधारके नष्ट हो जानेपर आधेयरूप सञ्चित एवं आगामी कर्मोंके टिकनेके लिये कोई स्थान न रहनेके कारण वे स्वयं भी नष्ट हो जाते हैं; केवल प्रारब्ध शेष रह जाता है। उसका आधार यह शरीर ही है; अतः वह इसके आश्रय वर्तमान रहता है। इसका पतन होनेपर वह भी समाप्त हो जाता है तथा उसके साथ ही समस्त दुःखोंकी भी इतिश्री हो जाती है। फिर वह सदाके लिये विदेहमुक्त हो जाता है। उस समय 'क्षीयन्ते चास्य कर्माणि' इस श्रुतिका अर्थ भी चरितार्थ हो जाता है।

हमलोग सञ्चित और प्रारब्ध-कर्ममें तो किसी प्रकार न्यूनाधिक कर ही नहीं सकते; वे तो जैसे होने थे हो ही चुके, अब उनमें कोई फेर-फार करना हमारी शक्तिसे बाहर है; परन्तु आगामी कर्मोंके लिये तो मनुष्यको चाहिये कि जबतक ज्ञान प्राप्त न हो और शरीर स्थित रहे तबतक यथाशक्ति शास्त्रविहित पुण्योत्कर्ष कर्म करनेका ही प्रयत्न करे और पाप-कर्मसे सर्वथा बचकर रहे।

इनके सिवा श्रीगीताजीके अनुसार कर्म तीन प्रकारके हैं—(१) कर्म, (२) विकर्म और (३) अकर्म। कर्मके तरह-तरहके लक्षण ऊपर लिख चुके हैं, अब अकर्मके लक्षण दिखलाते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अकर्म-लक्षण—'श्रुतिस्मृतिभ्यां यदविहितं तदकर्म'; 'वैदिकं श्रौतं स्मार्तं च यत्तत्सर्वं कर्म, तत्संन्यासोऽकर्मेत्यपरे'; अथवा 'अचलनं तूष्णीमासनमकर्मेत्यन्ये।' अर्थात् वेदविहित और अविहित उभयविध कर्मका न करना अकर्म कहलाता है।

विकर्म-लक्षण—वेदकी आज्ञाके विरुद्ध कर्म करनेका नाम विकर्म है। पूर्ण ज्ञान प्राप्त होनेसे पूर्व अकर्मावस्थामें रहना केवल आलस्य एवं प्रमाद ही है। इससे विहित-कर्माकरणरूप प्रत्यवाय तो अवश्य लगता है किन्तु त्यागका कोई फल प्राप्त नहीं होता; इसमें भगवदुक्ति ही प्रमाण है—'नैव त्यागफलं लभेत्'। ऐसी अवस्थामें यदि मनुष्य दुर्भाग्यवश विकर्ममें प्रवृत्त हो जाय तो महान् हानि और अनर्थकी प्राप्ति होती है, क्योंकि विकर्मकारी मनुष्य सर्वदा नाना प्रकारकी दुःखमयी योनियोंमें ही भटकता रहता है; जैसा कि भगवान् स्वयं श्रीमुखसे आदेश देते हैं—

तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥
(गीता १६। १९)

इसलिये मनुष्यको चाहिये कि विकर्म छोड़कर और आलस्यरूप अकर्मके स्वभावको परित्याग कर वेदविहित कर्मोंका मरणपर्यन्त यथावत् आचरण करता रहे।

प्रारब्ध-कर्म—इस शरीरका आरम्भक प्रारब्ध-कर्म भी तीन प्रकारका है—स्वेच्छा, परेच्छा और अनिच्छा। भिक्षा आदिके लिये गृहस्थोंके यहाँ जाना स्वेच्छा-प्रारब्ध कहलाता है। समाधिकालमें जो शिष्यादिद्वारा अन्न-जलादि दिया जाता है उसे परेच्छा-प्रारब्ध कहते हैं तथा समाधि-अवस्थामें अथवा व्युत्थानकालमें आकाशसे फल गिरनेकी भाँति किसी कङ्कर आदिका मस्तकमें आ लगना या काँटा आदि चुभ जाना अनिच्छा-प्रारब्ध कहलाता है। यह प्रारब्ध-कर्म सबपर अपना काम करके ही रहता है। परन्तु अज्ञानीको तो सञ्चित, आगामी तथा प्रारब्ध तीनों ही प्रकारके कर्म अनन्त जन्मोंतक अपना क्रीडा-मृग बनाये रहते हैं। इसलिये अज्ञाननिवृत्तिके मुख्य कारण और ज्ञान प्राप्तिके परम्परा-कारण, अन्तःकरणशोधक वेदविहित कर्मोंका सर्वदा आचरण करते रहना चाहिये।

अब इस कर्म-विषयपर ही नव्य न्याय और वैशेषिककी[20] रीतिसे कुछ आलोचना करते हैं। इन दोनों मतोंमें कर्म पाँच प्रकारका माना गया है—(१) उत्क्षेपण[21], (२) अपक्षेपण[22], (३) आकुञ्चन[23], (४) प्रसारण[24] और (५) गमन[25]। यदि हम उक्त सिद्धान्तवालोंके मन्तव्यकी गहराईमें प्रवेश करनेकी चेष्टा करेंगे तो हमारा यह विषय बहुत विस्तृत और दुरूह हो जायगा। इस स्थानपर उनके विस्तृत सिद्धान्तके उद्-घाटनकी कुछ आवश्यकता भी नहीं है, क्योंकि हमारे इस विषयका घनिष्ठ सम्बन्ध तो पूर्वमीमांसासे है। अतः हम नैयायिकोंके सिद्धान्तको यहाँ विशेषरूपसे न लिखते हुए इन न्यायोक्त पाँच प्रकारके कर्मोंको भी अपने वर्तमान प्रतिपाद्य विषयकी ओर ही लगाते हैं। परन्तु इस भयसे कि पाठक महोदय यह न कह उठें कि इन कर्मोंके लक्षण तो दूसरे प्रकार हैं, हमने उक्त सिद्धान्तके अनुसार भी उनके अर्थ टिप्पणीमें दे दिये हैं।

उत्क्षेपण—ऊपर फेंकनेको 'उत्क्षेपण' कहते हैं। यह ऊपर फेंकना भी एक प्रकारका कर्म है। इस कर्मसे यह निष्कर्ष निकालना चाहिये कि मनुष्यको यह शुभ अवसर पाकर ऐसे शुभ कर्म करने चाहिये जिनसे उसकी ऊर्ध्वगति हो और उसे नीच गतियोंमें न गिरना पड़े। यही अपना ऊर्ध्वक्षेपण अर्थात् उत्क्षेपण है। यह तभी हो सकता है जब द्विज अपने वेद-शास्त्र-विहित कर्मोंको निरालस्य होकर यथावत् पालन करे। भगवान् इस बातकी पुष्टि स्वयं अपने श्रीमुखसे करते हैं—

'ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्थाः' (गीता १४। १८)

अर्थात् सत्त्वगुणमें स्थित लोग ऊर्ध्वलोकोंको जाते हैं।

अपक्षेपण—इस शब्दका अर्थ नीचे फेंकना है। मनुष्यको उचित है कि पहले इस जन्म-मरणके चक्रमें डालनेवाले,

---

२०—चलनात्मकं कर्म। अथवा संयोगभिन्नत्वे सति संयोगासमवायिकारणं कर्म। (अन्नंभट्ट) २१—ऊर्ध्वदेशसंयोगहेतुरुत्क्षेपणम्। (अन्नंभट्ट) २२—अधोदेशसंयोगहेतुरपक्षेपणम्। (अन्नंभट्ट) २३—शरीरस्य संनिकृष्टसंयोगहेतुराकुञ्चनम्। (अन्नंभट्ट) २४—विप्रकृष्टसंयोगहेतुः प्रसारणम्। (अन्नंभट्ट) २५—अन्यत्सर्वगमनम्। (अन्नंभट्ट)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दुष्टाचारकी प्रेरणा करनेवाले तथा भगवान्‌से विमुख रखनेवाले अपने अनादि शत्रु, बहिर्मुख एवं सवासनिक मनको उपरामताके तीक्ष्ण खड्गसे भयभीत करके निर्वासनिक कर दे और फिर इसे अन्तर्मुख करके निरन्तर भगवत्सेवा करनेके लिये भगवान्‌के चरणोंमें समर्पण कर दे जिससे उसका सदाके लिये कल्याण हो जाय। मनकी इसी अवस्थाका नाम मनोनाश और वासनाक्षय है; नहीं तो, मन कोई मांसका टुकड़ा तो है नहीं जिसे काटकर दो कर दिया जाय। यही सच्चा अपक्षेपण है, दूसरा तो केवल कल्पनामात्र है। कहा भी है—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम्॥

अथवा—

आत्मैव रिपुरात्मनः। (गीता ६। ५)

किसी उर्दू-कविने भी कहा है—

ज़िश्तिये ख़स्लतसे दिल नापाकको तू पाक कर।
नफ्सके सर मार तू पापोश पे मर्दे ख़ुदा॥

आकुञ्चन—इकट्ठा करने या सिमेटनेको आकुञ्चन कहते हैं। यदि किसी वस्तुका सिमेटना लाभकारी हो सकता है तो वह ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियोंको उनके शास्त्र-निषिद्ध बाह्य विषयोंके फैलावसे सिमेटना ही हो सकता है, क्योंकि प्रमादवश इनका बाह्य हानिकारक विषयोंमें फैलना ही मनुष्यके संसरणका एकमात्र कारण है। भगवान् व्यासदेवने कहा है—

कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्ग-
मीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च।
एकः प्रमादी स कथं न हन्यते
यः सेवते पञ्चभिरिन्द्रियैश्च॥

अतः 'कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः'—श्रीभगवान्‌के इस कथनानुसार इन इन्द्रियोंका ही सर्वथा आकुञ्चन करना चाहिये।

प्रसारण—फैलावको कहते हैं। असल फैलाव यही है कि मनुष्यने इस साढ़े तीन हाथके देहको ही अपना स्वरूप समझकर अपने-आपको सीमाबद्ध कर रक्खा है। उस देहसे चित्तको हटाकर उसे परिच्छेदत्रयशून्य आत्मामें, जो कीड़ेसे लेकर इन्द्रपर्यन्त व्याप्त है, स्थित करे—यही मुख्य प्रसारण है, शेष सब प्रसारण गौण हैं। इस विषयमें यह आर्षोक्ति भी है—

देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि।
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः॥

अथवा आत्म-दृष्टिका विस्तार यह भी है कि अपनी आर्थिक, मानसिक एवं शारीरिक सेवा अपने शरीर और परिवारतक ही परिमित न रख उसे यथाशक्ति सम्पूर्ण अर्थियोंका अर्थ पूरा करनेमें लगानेका प्रयत्न करे, क्योंकि—

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

(हितोपदेश)

गमन—जाना या चलना गमन है, अतः यदि मन कहीं जाय तो भगवच्चरणारविन्दकी ओर ही जाय क्योंकि उपनिषद् भी कहती है—'मनसैवानुद्रष्टव्यः' अर्थात् आत्माको मनहीसे देखा जा सकता है। अथवा यह भगवान्‌की निर्माण की हुई सृष्टिके हितचिन्तनकी ओर ही जाय; 'सर्वे भद्राणि पश्यन्तु' इसे हर समय यही सङ्कल्प रखना चाहिये। इसी प्रकार नेत्र भगवान्‌की अति सुन्दर मनमोहिनी माधुरी मूर्तिमें, श्रोत्र उनका गुणानुवाद श्रवण करनेमें तथा वाणी प्रभुका गुणगान करनेमें ही लगनी चाहिये। ऐसे ही कर्मेन्द्रियोंके पृथक्-पृथक् व्यापार भी भगवत्-सेवाके निमित्त ही होने चाहिये।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।

यही गमनक्रियाका रहस्य है और इन्द्रियोंसे ऐसे कर्म करना ही उनकी सफलता है। यही गमनरूप कर्म-का भीतरी मर्म है। इसके सिवा न्याय-वैशेषिकविहित साधारण अर्थ टिप्पणीमें देखे जा सकते हैं।

हम ऊपर कह आये हैं कि कर्मकी गति बड़ी सूक्ष्म है और उसको लेखबद्ध करना सागरको गागरमें भरनेकी चेष्टा करना है। परन्तु अब प्रसङ्गवश अपनी बुद्धिके अनुसार उसका निरूपण करना जरूरी है। अतः अब हम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एक और प्रकारसे अर्थात् केवल पूर्व-मीमांसाकी शैलीसे इस कर्म-विषयका कुछ दिग्दर्शन कराते हैं।

महर्षि जैमिनिने अपने द्वादश लक्षणयुक्त पूर्व-मीमांसा-शास्त्रमें केवल धर्म और अधर्म इन दोका ही विशेषतया विचार किया है, क्योंकि इन्हींका अनुष्ठान किया जा सकता है। यहाँ उन्होंने धर्म और अधर्मके लक्षण इस प्रकार किये हैं—

'वेदबोधितेष्टसाधनताको धर्मः, यथा यागादि' तथा 'वेदबोधितानिष्टसाधनताकोऽधर्मः, यथा कलञ्जभक्षणादि'।

अर्थात् वेदविहित सन्ध्या आदि कर्मोंका करना धर्म है और मद्यपान एवं पर-स्त्री-गमनादि विकर्मोंका करना अधर्म है। फिर धर्मादिके समझनेके लिये उन्होंने वेद, स्मृति और आचारको प्रमाण माना है तथा उनमें भी वेद-को स्वतःप्रमाण और अन्य दोको वेदमूलक होनेपर ही प्रमाण माना है। वेदको मन्त्र और ब्राह्मण-भेदसे दो प्रकार-का बतलाया है। प्रयोगके समय अर्थस्मारक होनेके कारण मन्त्रोंका अर्थात् मन्त्र-भागका उपयोग किया जाता है तथा उपनिषदादिविधायक वाक्य ब्राह्मण कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त और सब अर्थवाद है। वेद जिस कर्मको अवश्य करनेकी आज्ञा देता है वह विधि और जिन वाक्योंद्वारा उन कर्मोंके करनेकी आज्ञा देता है वे विधायक वाक्य कहलाते हैं, जो अनेक प्रकारके हैं। उनमेंसे कुछ यहाँ भी दिखलाते हैं।

(१) कर्मोत्पत्ति[२६]-वाक्य, (२) गुण[२७]-वाक्य, (३) फल[२८]-वाक्य, (४) फलाय[२९] गुण-वाक्य और (५) सगुण[३०] कर्मोत्पत्ति-वाक्य इत्यादि।

उपरोक्त विधिमें अर्थात् वेदविहित कार्यके करनेमें यह विचार करना होता है कि अमुक विहित कार्यमें वेदने कौन विधि नियुक्त की है। यद्यपि विधियाँ भी अनेक हैं; परन्तु प्रधानतया मीमांसकोंने तीन ही मानी हैं, क्योंकि शेष सारी विधियाँ इन तीनके भीतर ही आ जाती हैं। वे तीन विधियाँ ये हैं—

अपूर्व-विधि, नियम-विधि और परिसंख्या-विधि।

अपूर्व-विधि—यो विधिरत्यन्ताप्राप्तमर्थं प्रापयति सोऽपूर्वविधिः यथा व्रीहीन् प्रोक्षति।

अर्थात् जो अत्यन्त अप्राप्त अर्थको प्राप्त कराती है वह अपूर्व-विधि कहलाती है। इस विधिके अभावमें दर्श-पूर्णमास-प्रकरणमें तत्सम्बन्धी व्रीहियोंका प्रोक्षण किसी प्रकार प्राप्त नहीं होता था, परन्तु इस विधिके होनेपर उनका प्रोक्षण प्रमाणद्वारा प्राप्त हो गया। अतः अत्यन्त अप्राप्त प्रोक्षणका प्रापक होनेके कारण यह विधि अपूर्व-विधि कहलाती है।

नियम-विधि—यश्च पक्षे प्राप्तमर्थं नियमयति स नियमविधिः—यथा तत्रैव व्रीहीनवहन्ति।

जो पक्षमें प्राप्त अर्थको नियमबद्ध कर दे उसे नियम-विधि कहते हैं। यदि यह विधि स्थापन न की जाती तो दर्श-पूर्णमासमें यज्ञकर्ता व्रीहियोंका तुष नखोंद्वारा भी उतार सकता था, और ऐसा करनेसे पूर्वमीमांसाकारके मतानुसार अपूर्व अदृष्टकी उत्पत्ति नहीं होती। इसलिये नखविदलन-की एक पाक्षिक प्राप्तिको हटानेके लिये इस नियम-विधिका वेदभगवान्ने विधान कर दिया। इससे उक्त यागमें व्रीहियोंका नखविदलन सर्वथा निवृत्त हो गया।

२६—येन वाक्येन 'इदं कर्म कर्तव्यम्' इति बोध्यते तत् कर्मोत्पत्तिवाक्यम्। यथा 'अग्निहोत्रं जुहोति'—अत्र अग्निहोत्रहोमः कर्तव्यतया विधीयते इति कर्मोत्पत्तिवाक्यमिदम्। २७—विहिते कर्मणि तदङ्गतया द्रव्यदेवतादिविधायकं वाक्यं गुणवाक्यम्। यथा 'दध्ना जुहुयात्।' अत्र होममुद्दिश्य अङ्गतया दधि विधीयते इति गुणवाक्यमिदम्। कर्माङ्गतया विहितत्वमेव दध्यादेर्गुणत्वम्। (मीमांसापरिभाषा) २८—उत्पन्नस्य कर्मणः फलाकाङ्क्षायां फलसम्बन्धविधायकं वाक्यं फलवाक्यम्। यथा—'अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः' इति। (मीमांसापरिभाषा) २९—प्राप्तं कर्माश्रित्य फलाय गुणविधौ फलाय गुणवाक्यम्। यथा—'दध्नेन्द्रियकामस्य जुहुयात्' ३०—द्रव्य-देवतादिगुणविशिष्टकर्मविधायकं वाक्यं सगुणकर्मोत्पत्तिवाक्यम्। यथा 'सोमेन यजेत्' इति अत्र सोमलताविशिष्टो यागो विधीयते। (मीमांसापरिभाषा)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परिसंख्या-विधि—द्वयोः समुच्चित्य प्राप्तावितर-निवृत्तिफलको विधिः परिसंख्याविधिः, यथा चयनप्रकरणे इमाम् गृभ्णन् रशनामृतस्य।

अर्थात् दोके समुच्चयरूपसे प्राप्त होनेपर एककी निवृत्ति करनेवाली विधिका नाम परिसंख्या-विधि है। जैसे कि चयनप्रकरणमें अश्वरशनाग्रहण ही मौन भावसे करना अभीष्ट है, गर्दभरशनाग्रहण नहीं। यदि इस विधिका अभाव होता तो रशनाग्रहणप्रकाशक मन्त्रसे रशनाग्रहणपूर्वक गर्दभानयनकी भी पक्षमें प्राप्ति हो सकती थी, परन्तु इस विधिके होनेपर इस मन्त्रसे अश्वरशनाग्रहणकी ही विधि प्राप्त होती है, गर्दभरशनाग्रहणकी नहीं। तथा गर्दभरशनामें मन्त्रकी निवृत्ति होती है। इस प्रकार दोके समुच्चयरूपसे प्राप्त होनेपर एककी निवृत्तिफलक होनेके कारण यह विधि परिसंख्या-विधि कहलाती है।

इन विधियोंके अनुसार ही यज्ञादि वेदविहित कर्म करने होते हैं—ऐसा मीमांसकोंका मत है। कर्म-प्रकरणमें इन विधियोंका दिखलाना आवश्यक था इसलिये प्रसंगवश इनका भी प्रदर्शन कर दिया गया।

सामान्यतया पूर्वमीमांसावालोंने कर्म दो प्रकारके माने हैं—(१) अर्थकर्म और (२) गुणकर्म। गुणकर्म भी दो प्रकारके कहे हैं—उपयुक्त संस्कारक और उपयोक्ष्यमाण संस्कारक। इनमें उपयुक्त संस्कारक प्रपत्ति-कर्मोंको कहते हैं। और यह प्रपत्ति भी (१) प्रधानोत्तरकाला (२) प्रधानसमकाला तथा (३) प्रधानपूर्वकाला—रूपसे तीन प्रकारकी है। इसी प्रकार उपयोक्ष्यमाण संस्कारक भी अनेक प्रकारके हैं, परन्तु उनमें साक्षाद्विनियुक्त संस्कार और विनियोक्ष्यमाण संस्कार—ये दो प्रधान माने गये हैं।

इसके अतिरिक्त गुणकर्मोंको पुनः चार भागोंमें विभक्त किया गया है—(१) उत्पत्ति, (२) विकृति, (३) प्राप्ति और (४) संस्कृति। इन चारोंका हम प्रथम मन्त्रकी व्याख्यामें यथोचित निरूपण कर चुके हैं। उपरोक्त सामान्यतया निरूपित दो प्रकारके कर्मोंमेंसे गुणकर्मका विभाग तो दिखला दिया गया, अब दूसरे अर्थकर्मका विभाग दिखलाते हैं।

अर्थकर्म—ये नित्य, नैमित्तिक और काम्य-भेदसे तीन प्रकारके हैं, जिनका हम ऊपर विस्तारपूर्वक वर्णन कर आये हैं। इनमें काम्यकर्म भी स्वयं तीन प्रकारके हैं—

१—केवल ऐहिकफलक—वे कर्म जो वृष्टि आदिकी कामनासे किये जाते हैं।

२—आमुष्मिकफलक—वे कर्म जो स्वर्गप्राप्तिकी कामनासे किये जाते हैं।

३—ऐहिकामुष्मिकफलक—वे कर्म जो ऐहिक और पारलौकिक दोनों प्रकारके फलोंकी प्राप्तिके लिये किये जाते हैं, जैसे कुछ मनुष्य केवल सद्गति प्राप्त करनेके लिये ही गङ्गास्नान नहीं करते वरं सद्गति-प्राप्तिकी इच्छाके साथ ग्रीष्मऋतुके घामजनित तापकी निवृत्तिके लिये भी करते हैं।

ऊपर जिस अर्थवादका उल्लेख किया है उसे भी मीमांसकोंने निन्दा, प्रशंसा, परकृति और पुराकल्पादि-भेदसे चार प्रकारका माना है। इनके अतिरिक्त उन्होंने इस कर्म-विषयको और भी कई शाखाओंमें विभक्त किया है, जो अनुपयोगी होनेके कारण तथा विस्तारभयसे यहाँ नहीं दिखलाया गया—जितना उपयोगी था उतना ही पाठक-वृन्दके समक्ष उपस्थित किया है। यह विषय ऐसा है कि यदि इसकी एक-एक शाखापर विचार करने लगें तो एक-एक शाखाकी ही बहुत बड़ी पुस्तक बन सकती है। यही कारण है कि विद्वानोंने इसे समस्त शास्त्रोंसे क्लिष्ट और दुरवगाह्य माना है। अस्तु, हमारी समझमें कर्म-विभागके सम्बन्धमें जितना ऊपर लिखा गया है वही पर्याप्त है। अब हम कर्मकी अवश्यकर्तव्यता और उसके अधिकारपर दृष्टि डालते हैं।

यहाँतक हमने जो शास्त्रविहित कर्मका इतना विस्तार दिखलाया है वह, तथा उससे भी असंख्य गुना अधिक विस्तार निष्प्रयोजन नहीं है, प्रत्युत इससे पूर्वमीमांसाकार ऋषियोंके कथनानुसार ऐसे अपूर्व अदृष्टकी उत्पत्ति होती है जिससे किसी बड़ी-से-बड़ी कामनाकी पूर्ति भी दुःसाध्य नहीं रह जाती, यहाँतक कि इन वेदविहित कर्मोंके यथावत् पालन करते रहनेसे जीवितावस्थामें ही सुर-नर-मुनि-सेवित-चरण, आनन्दाम्बुधि, मन्मथमदापहारी, कोटिब्रह्माण्ड-नायक, जगन्नियन्ता, मुकुन्द, गोपीजनवल्लभ भगवान्

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीकृष्णचन्द्रके साक्षात् दर्शन हो जाना भी असम्भव नहीं रहता। इससे बढ़कर और क्या बात हो सकती है?

थोड़े शब्दोंमें इस मन्त्रका सारांश यह है कि द्विजाति-को सर्वदा वेदविहित कर्मोंको निष्कामभावसे करते हुए ही अपनी आयु व्यतीत करनी चाहिये। वह यथासम्भव कर्ममार्गका कभी उल्लङ्घन न करे, इसीमें उसका श्रेय है।

परन्तु शास्त्रने द्विजेतरोंको इन वैदिक कर्मोंके आचरणका अधिकार नहीं दिया है। यह बात हम प्रमाणोंद्वारा ऊपर सिद्ध कर आये हैं। यद्यपि इस विषयमें हमने मनु, याज्ञवल्क्यादि महर्षियोंके जिन वाक्यों-का प्रमाण दिया है वही पर्याप्त है, तथापि श्रीआचार्यपादोंके मुखकमलनिःसृत पवित्र शब्दोंको भी इस सम्बन्धमें प्रमाण-रूपसे उद्धृत करना यहाँ उपयुक्त ही नहीं प्रत्युत सोनेमें सुगन्धके समान और भी शोभावर्धक होगा। भगवान् श्रीशङ्कराचार्य ब्रह्मसूत्रोंके 'शुगस्य तदनादरश्रवणात्तदाद्रवणा-त्सूच्यते हि' इस सूत्रपर भाष्य करते हुए लिखते हैं—

न शूद्रस्याधिकारः, वेदाध्ययनाभावात्। अधीतवेदो हि विदितवेदार्थो वेदेष्वधिक्रियते। न च शूद्रस्य वेदा-ध्ययनमस्ति, उपनयनपूर्वकत्वाद्वेदाध्ययनस्य। उपनयनस्य च वर्णत्रयविषयत्वात्। (ब्रह्मसूत्र १।३।३४)

फिर इससे अगले सूत्र 'संस्कारपरामर्शात्तदभावा-भिलापाच्च' पर इस प्रकार भाष्य प्रारम्भ करते हैं—

इतश्च न शूद्रस्याधिकारः, यद्विद्याप्रदेशेषूपनयनादयः संस्काराः परामृश्यन्ते—शूद्रश्चतुर्थो वर्ण एकजातिः इत्ये-कजातित्वस्मरणात्। न शूद्रे पातकं किञ्चिन्न च संस्कार-महति। (ब्रह्मसूत्र १।३।३६)

फिर आगे चलकर 'श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात्स्मृतेश्च' (ब्रह्मसूत्र १।३।३८) इस सूत्रके भाष्यमें लिखते हैं—

वेदश्रवणप्रतिषेधो वेदाध्ययनप्रतिषेधस्तदर्थज्ञाना-नुष्ठानयोश्च प्रतिषेधः शूद्रस्य स्मर्यते। श्रवणप्रतिषेधस्तावत् 'अथ हास्य वेदमुपशृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रप्रतिपूरणम्' इति। 'पशु ह वा एतच्छूमशानं यच्छूद्रस्तस्माच्छूद्रसमीपे नाध्ये-तव्यम्' यस्य हि समीपेऽपि नाध्येतव्यं भवति स कथमश्रुतमधीयीत। भवति च वेदोच्चारणे जिह्वाच्छेदो धारणे शरीरभेद इति। 'न शूद्राय मतिं दद्यात्' इति। वेदपूर्वकस्तु नास्त्यधिकारः शूद्राणामिति स्थितम्।

समस्त भाष्यका तात्पर्य यह है कि जब शूद्रको वेद श्रवणतक करनेका अधिकार नहीं और यदि वह सुन ले तो शास्त्रानुसार दण्डार्ह हो जाता है तो उसे वेदोक्त कर्मोंके अनुष्ठानमें अथवा ब्रह्मविद्या प्राप्त करनेमें कैसे अधिकार हो सकता है! इत्यादि

अब इसीपर श्रीस्वामी रामानुजाचार्यकी सम्मति दिखलाते हैं। 'श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात्' (१।३।३८) पर भाष्य करते हुए आप लिखते हैं—

शूद्रस्य वेदश्रवणतदध्ययनतदनुष्ठानानि प्रतिषिद्धयन्ते। 'पशु ह वा एतच्छूमशानं यच्छूद्रस्तस्माच्छूद्रसमीपे नाध्ये-तव्यम्'। तस्माच्छूद्रो बहुपशुरयज्ञीय इति बहुपशुः पशु सदृश इत्यर्थः। अनुपशृण्वतोऽध्ययनतदर्थज्ञानतदनुष्ठा-नानि न सम्भवन्ति, अतस्तान्यपि प्रतिषिद्धान्येव॥

फिर आगे चलकर आप 'स्मृतेश्च' (ब्रह्मसूत्र १।३।३९) इस सूत्रके भाष्यमें लिखते हैं—

स्मर्यते च श्रवणादिनिषेधः। अथ हास्य वेदमुपशृण्व-तस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रप्रतिपूरणमुदाहरणे जिह्वाच्छेदो धारणे शरीरभेद इति। 'न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत्' इति च। शूद्रस्यानधिकार इति सिद्धम्।

रहस्य वही है जो ऊपर शङ्कर स्वामीके शब्दोंका बतलाया गया है। अब इस विषयमें भगवान् श्रीनिम्बार्का-चार्यकी सम्मति भी दिखलाते हैं—संस्कारपरामर्शात्त-दभावाभिलापाच्च' (१।३।३६) इस सूत्रके भाष्यमें आप लिखते हैं—

विद्याप्रदेशे 'तं होपनिन्ये' इत्यादिनोपनयनसंस्कार-परामर्शात् 'शूद्रश्चतुर्थो वर्ण एकजातिर्न च संस्कारमर्हति,' इति तदभावाभिलापाच्च विद्यायां शूद्रो नाधिक्रियते॥

फिर—'श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात्' (१।३।३८) तथा स्मृतेश्च (१।३।३९) इन सूत्रोंपर लिखते हैं—

शूद्रो नाधिक्रियते। शूद्रसमीपे नाध्येतव्यमित्यादिना तदस्य वेदश्रवणादिप्रतिषेधात्। न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत् इत्यादि स्मृतेश्च॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तात्पर्य वही है जो ऊपरके दो भाष्योंका है। इन सूत्रोंपर ऐसा ही भाष्य भगवान् श्रीवल्लभाचार्य और परमपूज्य श्रीमध्वाचार्यजीका भी है। अब इसे स्वीकार करनेमें यदि कोई सज्जन ननु-नच करें तो उनकी तुष्टि करनेका हमारे पास इससे बढ़कर और कोई उपाय हो भी क्या सकता है! हमने इस विषयमें श्रुतिके प्रमाण दे दिये, स्मृतियोंके वाक्य दिखलाये और फिर पूज्य महर्षियों एवं श्रुतिप्रमाणके सामने आचार्योंके शब्द रख दिये। वे सब-के-सब ही एकमत हैं। आजकलका क्रान्तिकारी समाज भले ही कुछ कहा करे, परन्तु वेद-शास्त्रको माननेवाले आस्तिक पुरुषोंके लिये तो ये वाक्य पत्थरकी लकीरके समान दृढ़, सत्य और सर्वथा मान्य हैं।

अस्तु, यह बात पूर्णतया सिद्ध हो गयी कि शिखा-सूत्रधारी द्विज ही वेदश्रवण, अध्ययन और तज्जनित कर्माचरणका अधिकारी है, अन्य नहीं। ऐसी दशामें द्विजातिका मुख्य धर्म है कि वह इस सुर-वाञ्छित दुर्लभ मनुष्य-देहको पाकर अपने वर्णाश्रमोचित वेदविहित कर्मोंका यथावत् पालन करनेमें कभी आलस्य न करे।

शूद्रको भी यह न समझना चाहिये कि यदि वह वैदिक कर्मका अधिकार नहीं रखता तो सर्वथा ईश्वर-शुश्रूषा-सम्बन्धी कार्योंसे ही वञ्चित है। उसके लिये पुराण-प्रतिपादित अनेक कर्म हैं जिनके करनेसे वह भी परमगति प्राप्त कर सकता है। वे कर्म भी अपनी फलदातृत्वरूप शक्ति और महिमामें उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं जितने द्विजके लिये वेदविहित कर्म। अतः उसे किसी प्रकार निराश न होना चाहिये। वेदमें अनधिकारसूचक शास्त्राज्ञाको भी वैद्यके बतलाये हुए पथ्यसेवनके समान अपने हितके लिये ही समझना चाहिये, क्योंकि जिस बातको हम नहीं जान सकते उसे, ईश्वरीय आदेश होनेके कारण, शास्त्र भली-भाँति जानता है। इसके अतिरिक्त यदि हम अपने शरीर-की ओर ही देखें तो पता चलता है कि इस शरीरमें नेत्रादि इन्द्रियाँ भी केवल अपना-अपना ही काम कर सकती हैं, एक इन्द्रिय दूसरी इन्द्रियका काम नहीं कर सकती। इसीसे उनका काम निर्विवाद, आनन्दपूर्वक चल रहा है। यदि वे आपसमें एक दूसरेके काममें हस्तक्षेप करने लगें तो इस शरीरकी कार्यवाहितामें, जिसके कि वे अङ्ग हैं, अन्तर आ जायगा, जिससे फिर सृष्टि-नियमका स्थित रहना ही कठिन हो जायगा। जिस प्रकार इस शरीरमें भिन्न-भिन्न इन्द्रियाँ हैं वैसे ही उस विराट्रूप परमेश्वरका ब्राह्मण मुख, क्षत्रिय भुजा, वैश्य जंघा और शूद्र चरण हैं—'ब्राह्मणो-ऽस्यमुखमासीत्' इत्यादि। इन्द्रियोंमें भी जो रसनाको अधिकार है वह भुजा और जंघादिको नहीं तथा जो पैरोंको है वह भुजा और मुखादिको नहीं है। ऐसे ही जो अधि-कार ब्राह्मणको है वह क्षत्रिय आदिको नहीं और जो शूद्रको है वह ब्राह्मणादिको नहीं। यद्यपि सब-के-सब अङ्ग आव-श्यकतामें समान हैं वरं पैरोंके ऊपर तो सारा शरीर ही खड़ा है, तथापि संसारकी कार्यवाहिताके निमित्त आदि-कालमें जो कार्य जिस अङ्गको सौंपा गया है वह उसीको पूरा करनेमें मस्त है। इसी प्रकार यद्यपि वर्णचतुष्टय एक दूसरेके अङ्ग हैं और आवश्यकतामें भी सब-के-सब तुल्य हैं, तथापि शरीरके अङ्गोंकी भाँति कार्य सबको वही करना चाहिये जो जिसके लिये शास्त्रकारोंने नियत किया है। यदि न्यायाधीशके अतिरिक्त, जो राज्यकी ओरसे नियुक्त है, कोई दूसरा मनुष्य एक चोरको कारागारमें डालना चाहे तो यह उसकी अनधिकार-चेष्टा है, वैसे ही जिस वर्णके लिये जो काम शास्त्रने नियत किया है उसकी उपेक्षा करके यदि एक वर्णवाला दूसरे वर्णवालेके कर्ममें हस्तक्षेप करता है तो उसकी भूल है और वह पापका भागी होता है। अतः सबको अपने-अपने नियत कार्य करने ही उचित हैं। यों परमार्थ-दृष्टिसे तो सारे-का-सारा संसार विश्वम्भरका रूप ही है, कोई भी छोटा-बड़ा नहीं; क्योंकि—

हरिरेव जगज्जगदेव हरि-
हरितो जगतो नहि भिन्नतनुः।
इति यस्य मतिः परमार्थगतिः
स नरो भवसागरमुत्तरति॥

तथा—

ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति।
दण्डवत् प्रणमेद्भूमौ आश्वचाण्डालगोखरम्॥

परन्तु ऐसा होनेपर भी कार्य सबको वही करने चाहिये जो जिसके लिये शास्त्रकारोंने नियत किये हैं। यद्यपि एक मजदूरका कार्य उतना ही आवश्यक है जितना एक शस्त्रधारी क्षत्रियका, तथापि संसारकी मर्यादा तभी रह सकती है जब प्रत्येक मनुष्य अपने-अपने नियत कार्यमें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ही तत्पर होगा। अपने नियत कार्यका परित्याग कदापि नहीं करना चाहिये। भगवान्‌ने भी कहा है—

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।
(गीता १८। ४८)

इसके अतिरिक्त शूद्र भी दो प्रकारके हैं—एक निर्वासित और दूसरे अनिर्वासित। यद्यपि वैदिक कर्म करनेमें तो दोनोंका ही अधिकार नहीं है तथापि अनिर्वासित शूद्र यदि यज्ञादिमें जलादि पहुँचानेकी सेवा करते हुए मन्त्र सुन ले तो कोई विशेष हानि नहीं, बल्कि इन्हें तो किसी-किसी कर्मका भी अधिकार है। परन्तु निर्वासित शूद्रोंको तो किसी प्रकार भी वेदमन्त्रोंको सुनने या तदनुसार कार्य करनेका अधिकार नहीं है। भगवन्नाम-स्मरणमें तो क्या निर्वासित या अनिर्वासित शूद्र और क्या द्विज, सबका समान अधिकार है। अतएव शूद्रको चाहिये कि अपना व्यवहार-सम्बन्धी कार्य कुशलतापूर्वक निभाता हुआ और श्रीराम-कृष्णादि भगवन्नामोंका निरन्तर जप करता हुआ अपना समय व्यतीत करे। 'सर्वे पदा हस्तिपदे निमग्नाः' इस न्यायानुसार इसीमें सारा कर्मकाण्ड आ जाता है और इसीसे वह परम-पद प्राप्त कर सकता है। भगवान्‌ने भी कहा है—

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥
(गीता ९। ३२)

भगवान्‌के नामके समान संसारसागरसे पार होनेके लिये और कोई उपाय नहीं। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' (गीता १०। २५)। अतः शूद्रको उचित है कि अपने वर्णधर्मका ही पालन करे। अर्थात् 'परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्'—इसीमें उसका कल्याण है क्योंकि—

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
(गीता १८। ४५)

इसी प्रकार ब्राह्मण आदि द्विजोंको भी गीतामें लिखे अनुसार अपने-अपने कर्मोंका ही यथावत् पालन करना उचित है; इसीमें उनका कल्याण है—

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥
कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्॥
(गीता १८। ४२–४४)

यहाँतक वैदिक कर्मोंका विधान किया। अब थोड़ा-सा लौकिक कर्मोंका विवेचन करते हैं। हर एक मनुष्यको चाहिये कि अपने लौकिक व्यवहार-सम्बन्धी कार्योंमें भी धर्मको न छोड़े। सत्य और सरल व्यवहारसे कमाया करे। असत्यभाषण तथा परजनवञ्चनरूप गर्हित कार्य कदापि न करे, दूसरेका हक न दबावे, दूसरेके भागको अपने लिये बुरी वस्तु समझे, किसीसे विवाद न करे, सदा मधुर भाषण करे, सरल स्वभाव रक्खे, परायी स्त्रीको अपनी जननीके समान समझे, सर्वदा इन्द्रिय-दमन और मनोनिग्रहमें तत्पर रहे, सहनशील बने, चींटीको भी कष्ट न दे, मन, वाणी और शरीरद्वारा सबका हित करे इत्यादि ये नित्य पालन करनेके साधारण लौकिक कर्म हैं; इन्हें भी अपने धर्मका अङ्ग समझकर सदा कुशलतापूर्वक पालन करता रहे। इस प्रकार लौकिक और वैदिक कर्मोंको पालते हुए आयु व्यतीत करनेसे मनुष्यको कदापि कोई आध्यात्मिकादि ताप कष्ट नहीं पहुँचा सकता, ऐसा मनुष्य सदा प्रफुल्लित और आनन्दित ही रहता है।

यह कर्ममार्ग भी बड़े महत्त्वका है, शास्त्रोक्त कर्मोंको निरन्तर करते-करते अन्तःकरणके मलरूप दोषकी निवृत्ति हो जाती है और फिर स्वयं ही मानसिक कर्मरूप उपासनामें मन लगने लगता है जिससे अन्तःकरणका विक्षेप अर्थात् चञ्चलतारूप दोष भी हट जाता है। फिर भगवान् अनुकम्पा करके श्रोत्रिय तथा ब्रह्मनिष्ठ गुरुसे उसकी भेंट करा देते हैं, क्योंकि 'आचार्यवान् पुरुषो वेद', 'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्', 'आचार्यो ह्येव विद्यायिता' तथा 'यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ' ऐसी वेदोंकी घोषणा है। उस गुरुके उपदेशसे अन्तःकरणका आवरण-नामक तीसरा दोष भी भङ्ग हो जाता है और करामलकवत् आत्मसाक्षात्कार हो जानेपर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। परन्तु जबतक पूर्ण बोध न हो जाय मनुष्यको विहित कर्मका परित्याग कदापि न करना चाहिये। बोध हो जानेपर जबतक देहाध्यास रहे तबतक निरन्तर कर्म करते रहना ही उचित है।

आजकल दुर्भाग्यवश प्रायः विद्वानोंमें भी वेदान्तका दुरुपयोग होने लगा है। केवल पुस्तकें पढ़कर और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वेदान्तकी प्रक्रियामात्र समझकर वे विहित कर्मोंका परित्याग कर बैठते हैं; यही नहीं, बल्कि निषिद्ध कर्मोंसे भी उनका भय उठ जाता है। मुझे स्वयं ऐसे बहुत-से विद्वान् महानुभावोंसे मिलनेका अवसर प्राप्त हुआ है जो प्रायः यही कहते मिले हैं कि 'ज्ञानी चाहे कितने ही कुकर्म क्यों न करे, उसे पाप-कर्मका लेप कदापि नहीं हो सकता।' वे लोग यह भी कहते सुने गये हैं कि 'हम ज्ञानी हैं, अतः हमें विहित कर्म करनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं है।' परन्तु शास्त्रदृष्टिसे भलीभाँति विचार करनेपर ऐसा कहना और मानना सर्वथा शास्त्रविरुद्ध और अनुचित सिद्ध होता है। हमारी समझमें ऐसा माननेवाले पुरुष लक्ष्यच्युत होकर स्वयं मृत्युरूप ग्राहके मुखमें जानेकी चेष्टा करते हैं और अपने अनुयायियोंको भी कर्मपथ-भ्रष्ट करके महान् हानि पहुँचाते हैं। उन्हें तो उनको भी कुमार्गमें डालनेके कारण उनके पापका भी भागी बनना पड़ता है। ऐसे मनुष्योंपर यह श्रुति पूर्णतया चरितार्थ होती है—

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः
स्वयं धीराः पण्डितंमन्यमानाः।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा
अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥

(क० उ० १।२।५)

इस प्रकार श्रुति और स्मृतिद्वारा यह सिद्ध है कि मनुष्यको विहित कर्म करनेसे पुण्यकी प्राप्ति होती है और न करनेसे प्रत्यवाय होता है। इसलिये मनुष्य वेद-विहित कर्मोंको करता हुआ ही सौ वर्ष, अर्थात् जितनी आयु भगवान् प्रदान करें, व्यतीत करे। इस प्रकार हम शुष्क वेदान्तियोंके निरङ्कुशतापूर्ण आक्षेपोंका उत्तर दे चुके। अब हम आचारप्रमाणपर विचार करते हैं। (क्रमशः)

भाव-भक्ति

(लेखक—श्रीयुत ब्रह्मचारी गोपाल चैतन्यदेवजी)

श्रद्धाके साथ साधन-भक्तिको उन्नत करते रहनेसे धीरे-धीरे निष्ठा, रुचि आदिकी प्राप्ति होती है और उसकी परिपक्वावस्थामें जो भाव प्राप्त होता है उसीको भाव-भक्तिके नामसे पुकारते हैं। व्रज-भावमें लोभित होकर रागानुगा भक्तिकी साधनामें रत साधक इसकी परिपक्व दशामें भाव-भक्तिके अधिकारी बनते हैं। भक्तियोगके एक श्रेष्ठ महापुरुषने कहा है—

शुद्धसत्त्वविशेषाद्वा प्रेमसूर्यांशुसाम्यभाक्।
रुचिभिश्चित्तमासृण्यकृदसौ भाव उच्यते॥

(भावरसामृतसिन्धु)

विशेष शुद्ध सत्त्वस्वरूप, प्रेमरूप सूर्यकी किरणोंके समान दीप्ति तथा रुचि अर्थात् भगवत्प्राप्तिकी अभिलाषा, उनकी अनुकूलताकी अभिलाषा, अथवा उनसे सुहृद्भावकी इच्छा—इनके द्वारा चित्तको स्नेहमय करनेवाली भक्तिको ही 'भाव' कहते हैं।

सूर्यका उदय होते समय जैसे किरणें सौम्य प्रकाशके रूपमें होती हैं, उसी प्रकार प्रेमकी सौम्य प्रथमावस्थाको भाव कहा जा सकता है; क्योंकि यही भाव धीरे-धीरे प्रेम-दशाको प्राप्त होता है। जैसे—

प्रेम्णस्तु प्रथमावस्था भाव इत्यभिधीयते।
सात्त्विकाः स्वल्पमात्राः स्युरत्राश्रुपुलकादयः॥

प्रेमकी पहली अवस्थाको ही भाव कहा जाता है—इसमें अश्रु-पुलकादि सात्त्विक भावोंका स्वल्प मात्रामें उदय होता रहता है। जिनको महान् पुरुषोंके संगका सौभाग्य प्राप्त है उनके लिये इस भावके दो भेद होते हैं—पहला, साधनमें अभिनिवेश और दूसरा भगवान् तथा भगवद्भक्तका अनुग्रह। इनमेंसे साधनाभिनिवेशज-भाव (साधनकी प्रबलाकांक्षा) प्रायः सबमें रहता है, परन्तु दूसरा भाव बिरले ही भाग्यवान्को प्राप्त होता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पुनः, वैधी और रागानुगा—मार्गभेदसे साधनाभिनिवेशज-भाव भी दो प्रकारका होता है। इनमें वैधी साधनाभिनिवेशज-भाव साधकके अन्दर रुचि उत्पन्न करता है और भगवदासक्ति उत्पन्न कर रतिका आविर्भाव करता है। यहाँ रतिको भाव ही मानना चाहिये, क्योंकि वह कदापि प्रेमजनक नहीं है। साधारण अर्थके लिये भक्तिशास्त्रमें रति और भावको एकार्थक माना गया है। रागानुगा साधनाभिनिवेशज-भाव पहलेसे ही रति-लक्षणा होता है, सुतरां वह क्रमशः परिपुष्ट होकर अन्तमें प्रेमाभक्तिमें परिणत होता है।

साधनके बिना अकस्मात् जो भावोत्पत्ति होती है, उसे ही भगवान् या भगवद्भक्तोंकी कृपासे उत्पन्न भावके नामसे उल्लेख किया जाता है। जिसके हृदयमें अभी भाव अङ्कुरित ही हुआ है, उसमें क्षान्ति, समयकी सदुपयोगिता, विराग, मानशून्यता, आशावादिता, समुत्कण्ठा, अटूट लगन, नाम-गानमें नित्य रुचि, भगवद्गुण-कीर्तनमें आसक्ति तथा भगवान्के निवासस्थानमें प्रीति आदि अनुभाव प्रकटित होते हैं। अन्तःकरणका स्नेहमय होना ही भावका लक्षण है।

भक्तोंके भेदके कारण यह भाव पाँच भागोंमें विभक्त है—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा कान्ता। भगवान्का अवलम्बन भावके विषयके रूपमें तथा भक्तोंका अवलम्बन भावके आधारके रूपमें करना चाहिये। जो साधक भगवान्के साथ नन्द-यशोदा आदि गुरुजनोंकी भाँति अथवा श्रीदामा, सुदामा आदि वयस्य वर्ग (सखावर्ग) की भाँति या व्रजवनिताओंकी भाँति भावानुकरण करते हैं, वे भावभक्तिके अधिकारी हैं। पहले-पहल साधु तथा शास्त्रके मुखसे व्रजभावके असाधारण माधुर्यको सुनकर उपर्युक्त पाँचों भावोंमेंसे किसी एक भावकी प्राप्तिके लिये हृदय लुभायमान हो जाता है।

रागात्मिकैकनिष्ठा ये व्रजवासिजनादयः।
तेषां भावाप्तये लुब्धो भवेदत्राधिकारवान्॥
(भक्तिरसामृतसिन्धु)

रागात्मिकैकनिष्ठ व्रजवासी भक्तोंका भाव प्राप्त करनेके लिये जब मनमें लोभका उदय होता है, तब मनुष्य भाव-भक्तिका अधिकारी बनता है। भक्त लोग भावके सहारे पहले साधनभक्तिके द्वारा वैधी मार्गके अनुसार श्रवण-कीर्तनादि करते रहते हैं। तत्पश्चात् क्रमशः भावकी पुष्टिके साथ-साथ भक्त समझने लगता है कि भगवान् यथार्थ ही मेरे प्रभु, पिता, सखा, पुत्र अथवा स्वामी हैं। अपने-अपने भावके अनुसार भगवान्को अपने भावके विषय-रूपमें प्राप्त कर पूर्ण निष्ठावान् होनेपर उसकी बुद्धि फिर शास्त्र-युक्तियोंकी अपेक्षा नहीं करती। वह मनमें समझता है कि 'प्रभु मेरे प्राणके भी प्राण हैं, उन्हें प्राप्त करनेके लिये अब कठोर नियम, संयम, व्रत-उपवास, या स्तुति-प्रार्थनाकी आवश्यकता ही क्या है? मुझे कष्ट होनेपर क्या वे सुखी हो सकते हैं? भगवान् अथवा भक्तकी कृपाके बिना भगवान्के श्रीश्रीचरणकमलोंको प्राप्त करनेका दूसरा कोई उपाय नहीं है।'

तब भक्त विधि-अविधि सारे धर्म तथा श्रुत-श्रोतव्य आदि सारे विषयोंका परित्याग कर प्रभुके ही श्रीश्रीचरणसरोजोंमें आत्मसमर्पण करता है। प्रेम-भक्तिके श्रेष्ठ महात्मा कविराज गोस्वामीजीने कहा है—

सेइ गोपीभावामृते जार लोभ हय।
वेदधर्म त्यजि से कृष्णके भजय॥
(श्रीचैतन्यचरितामृत)

अर्थात् 'गोपियोंके उस भावामृतपर जो लोभित

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

होते हैं, वे वेदधर्मको त्याग कर श्रीकृष्णका भजन करते हैं।'

गोपियोंके भक्तियोगद्वारा भगवान् उनके वश होते हैं। श्रीमद्भागवतमें भगवान्‌की सर्वश्रेष्ठ लीला तथा उनकी साधुताका परमोत्तम वर्णन कर केवल गोपियोंद्वारा अनुष्ठित भाव-भक्तिमें ही जीवनको परिवर्तन करनेका उपदेश दिया गया है—

तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रतिचोदनाम्।
प्रवृत्तञ्च निवृत्तञ्च श्रोतव्यं श्रुतमेव च॥
मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनाम्।
याहि सर्वात्मभावेन मया स्या ह्यकुतोभयः॥
(श्रीमद्भा० ११। १२। १४-१५)

'हे उद्धव! तुम विधि तथा निषेध कर्म, गार्हस्थ्य वा संन्यास-धर्म, एवं श्रुत और श्रोतव्यादि धर्मोंका परित्याग कर दास, सख्य आदि किसी भी भावमें विभोर होकर मुझमें आत्मसमर्पण करो। इससे तुममें कर्माधिकार तथा ज्ञानाधिकार नहीं रहेगा तथा तुम मेरे द्वारा ही निर्भय हो जाओगे।'

प्रेमिकशिरोमणि रागमार्गके सिद्धिदाता गुरु भगवान् भी भक्तकी उपर्युक्त भक्ति-दृढ़ता तथा भावकी अनन्यताको देखकर उसे भजन-साधनकी क्रिया प्रदान करते हैं। यह निगूढ़ भजन-क्रिया कर्म-ज्ञान आदिसे रहित है और विशुद्ध व्रजवासी भक्तकी निष्कामता तथा प्रेममय स्वभावकी प्राप्तिके लिये अत्यन्त ही उपयोगी है। यह क्रिया भी दो प्रकारकी है—पहली प्रातिकूल्यका परित्याग, अर्थात् प्रतिकूल अवस्थाका त्याग करना; और दूसरी आनुकूल्यका ग्रहण, अर्थात् अनुकूल अवस्थाको अपनाना।

अविद्या तथा तत्कृत इन्द्रियादिकी प्रतिकूल अवस्थासे आत्मरक्षा कर धीरे-धीरे उन्हें वशीभूत करना साधनका प्रथम अंग है; तथा अनुकूल इन्द्रियादिकी सहायतासे नित्यसिद्धा ह्लादिनी शक्तिको प्रकट कर मनोमय सिद्धदेहको परिपुष्ट करना साधनका शेष अंग है। इस प्रकारकी भजन-क्रियाके द्वारा भक्त बहुत शीघ्र अनर्थके हाथसे छुटकारा पाकर धीरे-धीरे प्रेमभक्तिके अधिकारी हो सकते हैं।

भावका आश्रयण करनेवाले भक्त भक्तिमें रुकावट डालनेवाले ज्ञान-कर्म आदि विषयोंका परित्याग करते हैं, परन्तु ज्ञान-कर्म आदिका फल उनके समीप स्वयं आ पहुँचता है, यहाँतक कि भक्तिदेवीकी दासी-स्वरूपा सर्व सिद्धियाँ भी उनकी सेवा करनेके लिये आ उपस्थित होती हैं। परन्तु शुद्ध भक्त उनके प्रति आदर प्रदर्शित नहीं करता; यहाँतक कि यदि पञ्च-विध मुक्ति भी आकर उसे लोभमें फँसानेकी चेष्टा करे, तो उसका रागात्मिकैकनिष्ठ चित्त उसके (मुक्तिके) प्रति आसक्त नहीं होता। रागमार्गके भावाश्रित भक्त सदा ही भगवान्‌के माधुर्य-सागरमें डूबे रहते हैं। इस माधुर्य-स्वादकी सुगन्ध सब प्रकारके मुक्तिसुखसे भी कोटिगुणा श्रेष्ठ है। इस कारण उनके हृदय क्षण-भरके लिये भी विषयान्तरमें आकृष्ट नहीं होते। वे सदा ही भगवान्‌के अनिर्वचनीय प्रेमरसार्णवमें परमानन्दसे तैरते रहते हैं। भगवान्‌ने कहा है—

ज्ञात्वा ज्ञात्वाथ ये वै मां यावान्यश्चास्मि यादृशः।
भजन्त्यनन्यभावेन ते मे भक्ततमा मताः॥
(श्रीमद्भा० ११। ११। ३३)

जो भक्त अनन्यभावमें निमग्न हो भगवान्‌की आराधना कर परम प्रेमके बलसे सदा ही उनके अपूर्व माधुर्यका आस्वादन कर रहे हैं वे ही भाव-भक्तिमें सिद्ध भक्त हैं—यह मेरा मत है।

भाव-भक्तिकी साधनासे क्रमशः भक्तके चित्तमें रतिका उदय होता है, भावमय देहकी स्वतः ही स्फूर्ति होती है। जब रति गाढ़ होकर प्रेममय भक्तिमें परिणत होती है तब भक्त अपने कर्मानुसार भावमय देह प्राप्त कर उस नित्यदेहमें नित्य ही भगवत्संग प्राप्त करते हैं।

आगे प्रेम-भक्तिके सम्बन्धमें विचार किया जायगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नराकार ईश्वर, अद्वैतवाद और भक्तिवाद

(लेखक—ठाकुर श्रीगजराजसिंहजी, एम० ए०, एल-एल बी०)

(गतांकसे आगे)

अब हम अवतारी—अवतारविषयक एक वेदमन्त्रसे भी स्वामी विवेकानन्दके पूर्वकथित वचनोंकी पुष्टि कर अद्वैतवादकी दृढ़ता बतलाते हैं। तत्पश्चात् कैवल्यमुक्ति और उसकी प्राप्तिके साधन (निर्गुण या ज्ञानलक्षणा भक्ति अथवा ज्ञानयोग) का दिग्दर्शन करवाकर भक्तिके वास्तविक पूर्ण स्वरूपको बतलावेंगे। अन्तमें अद्वैतवादकी विशालता और उदारताका चित्र खींच प्रेमपूर्वक वैष्णवमतसे भेंट करावेंगे। पश्चात् हम भी विदा माँगेंगे।

ऋग्वेदका निम्नलिखित मन्त्र अवतारवाद सिद्ध करता हुआ यह घोषणा कर रहा है—

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव
तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते
युक्ता ह्यस्य हरयः शतादश॥

'परमेश्वर अपनी अनन्त शक्तियोंसे अनेक देहोंके रूपवाला होता है। अपने रूपको (भक्तोंपर) विख्यात करनेके लिये जैसे-जैसे रूपकी इच्छा हुई वैसे-वैसे रूपवाला हुआ। उस परमेश्वरके अनेक रूप हैं, दश मुख्य हैं।'

मन्त्रमें 'प्रतिचक्षणाय' शब्द वही बतलाता है जो स्वामी विवेकानन्द कह चुके हैं कि मनुष्य ईश्वरको मनुष्याकार देखेगा। इसलिये परमेश्वर अपने स्वरूपको (भक्तोंपर) 'प्रतिचक्षणाय' विख्यात करनेके लिये अनेक नररूप धारण करते हैं ताकि भिन्न-भिन्न प्रकृतिवाले अनेक पुरुष अपनी रुचिके अनुसार उपासना कर सकें।

मन्त्रमें 'मायाभिः' शब्द यह बतलाता है कि परमेश्वरके भिन्न-भिन्न रूप मायासंयुक्त हैं। इसलिये शुद्ध स्वरूप निराकार, निर्गुण और निर्विशेष (मायाके विशेषणोंसे रहित) होना ही चाहिये। अतएव जहाँतक नानात्व या अनेकता है वहाँतक कालकृत भय होगा ही (यावन्नानात्वं तावत्कालकृतं भयम्)। इसलिये अनानात्व या एकता ही अभयपद है। इस प्रकार वेदमन्त्रसे भी अद्वैतवाद और अवतारवादकी सिद्धि हो गयी।

अब बुद्धिमान् पाठक अद्वैतदृष्टिसे नराकार नारायण, श्रीराम और श्रीकृष्णके रूपविशेषोंका रहस्य स्वयं समझ सकते हैं। इसी प्रकार पुराणोंके वैकुण्ठादि लोकोंका या उपनिषदोंके ब्रह्मलोकोंका। सगुण ब्रह्मके उपासक देवयान मार्गद्वारा ब्रह्मलोकमें जाते हैं। किन्तु निर्गुण ब्रह्मके उपासकोंको (ज्ञानीजनोंको) यहीं सिद्धि हो जानेपर कोई मार्ग पार करना नहीं पड़ता जैसा कि बृहदारण्यककी श्रुति कथन करती है—

न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति।
(बृह० ४।४।६)

उस (ज्ञानी) के प्राण उत्क्रमण नहीं करते हैं क्योंकि वह ब्रह्म ही हुआ ब्रह्मत्वको पहुँचता है। यही कैवल्यमुक्ति है।

'सदाशिवोऽहमिति भावितात्मा गुरुः शिवः'
'द्वैतं न सहते क्वचित्'

—इत्यादि पुराण-वाक्योंसे भी यही पता लगता है कि पहले भी यह ब्रह्मरूप था।

'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्'

—के आधारपर पुराणोंसे भी श्रुतिकी पुष्टि हो गयी।

कैवल्यमुक्तिका स्वरूप और उसकी प्राप्तिका साधन (निर्गुणभक्ति या ज्ञानयोग)

प्रेमलक्षणा भक्तिका महत्त्व बतलाते समय हम शुद्ध ज्ञानका लक्षण बतला चुके हैं। वही कैवल्यमुक्ति है। अनेक अवस्थाओंमेंसे होता हुआ जीवात्मा इस अवस्थाविशेषका भी अन्तमें अनुभव करता है जिसे वेदोंने 'नेति-नेति' कहा है क्योंकि सर्वथा अभेद हो जानेसे उसे शब्द वर्णन नहीं कर सकते। स्वामी रामदासने अपने 'दासबोध'में कैवल्यमुक्तिको उन्मनी अवस्था भी कहा है। उन्होंने जीवात्माकी पाँच अवस्थाएँ बतलायी हैं—(१) जागृति (२) स्वप्न (३) सुषुप्ति (४) तुर्या (५) उन्मनी। जागृतावस्थामें जीव बाहरी व्यवहार करता है। स्वप्नमें केवल मन ही व्यवहारकुशल रहता है। सुषुप्तिमें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मन भी अज्ञानमें लीन हो जाता है। जीव मूढावस्थामें पड़ा रहता है। तुर्यामें जीवको यह अनुभव होने लगता है कि 'मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ।' पर यह अनुभव भी सोपाधि होनेसे शुद्धज्ञानका स्वरूप नहीं है। अन्तिम उन्मनी अवस्थामें ज्ञानकी यह वृत्ति कि 'मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ' निवृत्त हो जाती है। इस प्रकार ज्ञान-अज्ञानकी निवृत्ति होते ही विज्ञानवृत्ति भी परब्रह्ममें लीन हो जाती है। लीन होते ही 'केवलब्रह्म' रह जाता है जिसे नारदपञ्चरात्रमें 'अमूर्त्त आनन्द' और सूतजीने 'कैवल्यैकप्रयोजन' कहा है। यही कैवल्यमुक्ति है। ज्ञानियोंका विश्राम भी यही है। इसी अवस्थाजनित ब्रह्मानन्दको त्याग कर शुक-सनकादि महर्षिगण जगत्के कल्याणार्थ राम-कृष्णावतारोंके शरणागत हो भक्तिका स्रोत बहाते रहे हैं।

यह कैवल्यपद महावाक्यके श्रवण, मनन और निदिध्यासनरूपी ज्ञानयोगसे प्राप्य है जैसा कि भगवान् श्रीराम अपने श्रीमुखसे कह चुके हैं। (देखिये पुराणोंमें अद्वैतवाद)।

ज्ञानयोगका अधिकारी तपस्वी और भक्त पुरुष होता है जैसा कि गीतामें श्रीमुख-वाक्य है—

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति॥

इसी ज्ञानयोगको श्रीमद्भागवतान्तर्गत कपिलगीतामें भगवान्ने 'निर्गुणभक्ति' कहा है—

ज्ञानयोगश्च मन्निष्ठो नैर्गुण्यो भक्तिलक्षणः।
द्वयोरप्येक एवार्थो भगवच्छब्दलक्षणः॥

'मुझमें निष्ठा कर ज्ञानयोग करना और 'निर्गुण भक्ति'—इन दोनोंका अर्थ एक है। 'भगवत्' शब्द केवल लक्षणरूप है।'

इसी कारण 'भक्ति' शब्दका अर्थ स्वामी शंकराचार्यने 'निर्गुण भक्ति' ही लिया है, जैसे विवेकचूडामणिमें—

मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी।
स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते॥

'मोक्षसाधनकी सामग्रीमें भक्ति ही श्रेष्ठ है। आत्मस्वरूप-चिन्तनको 'भक्ति' कहते हैं।'

गीताने भी भक्तोंके चार भेद किये हैं—आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी। इसलिये कपिलगीताका निर्गुण भक्त, भगवद्गीताका ज्ञानी भक्त या पराभक्त होना ही चाहिये। इन्हीं सब अर्थोंको लेकर गीतामें 'भक्ति' शब्दका प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ प्रसंगानुसार लेना होगा। नीचे लिखे हुए वाक्यमें स्वामी शंकराचार्यने 'पराभक्ति' को 'परापूजा' भी कहा है, यथा—

एवमेव परा पूजा सर्वावस्थासु सर्वदा।
एकबुद्ध्या तु देवेशे विधेया ब्रह्मसत्तमैः॥

'ब्रह्मवेत्ताओंको एकबुद्धि अर्थात् अभेदबुद्धिसे देवेश परमात्माकी 'परा पूजा' सब अवस्थाओंमें हमेशा करनी चाहिये।'

निस्सन्देह जब ईश्वरमें परमप्रेमको भक्ति कहा है (परानुरक्तिरीश्वरे भक्तिः) तब विशेषणरहित केवल 'भक्ति' शब्द ही ईश्वरमें परमप्रेमलक्षणा भक्तिका द्योतक होनेसे विशेषणसहित 'पराभक्ति' शब्द निर्गुणभक्ति-सूचक होना ही चाहिये। किन्तु भेदभक्तिके पक्षपाती सज्जन 'पराभक्ति' शब्दको भी प्रेमलक्षणा भक्तिके अर्थमें समझते हैं। चाहे जिस अर्थमें समझा जाय परन्तु सिद्धान्तमें भेद नहीं पड़ता क्योंकि निर्गुण निराकार ईश्वरकी ही 'ब्रह्म' संज्ञा है।

अस्तु, उक्त विवेचनसे यह सिद्ध हुआ कि ज्ञानयोग ही भक्तिकी भाषामें 'निर्गुण भक्ति' कहा गया है। इसे ही अहंग्रहोपासना, अभेद या अनन्यभक्ति भी कहा है। यही आत्मसमर्पण भक्ति भी है। साधनावस्थामें द्वैत होनेसे 'भक्ति' संज्ञा दी है। किन्तु अद्वैत-ब्रह्म साध्य होनेके कारण तथा प्रेमलक्षणा भेदभक्तिसे परे बतलाते हुए 'निर्गुण' या 'अभेद' आदि विशेषणोंका प्रयोग किया गया है। पर यह सब शाब्दिक विलास ही है। सार वस्तु यही है कि सगुणोपासनासे सगुण और निर्गुणोपासनासे निर्गुण ब्रह्म या कैवल्यपदकी प्राप्ति होती है (तं यथा यथोपासते तदेव भवति इति श्रुतिः)।

यह भी ध्यान रहे कि अभेदभक्ति (निर्गुणोपासना) के अनन्यभक्त और भेदभक्ति (सगुणोपासना) के अनन्यभक्त में कुछ अन्तर है। वह यही है कि अभेदभक्तिका अनन्यभक्त जीव-ब्रह्मकी तात्त्विक एकता मान 'नेह नानास्ति

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

किञ्चन' मानता है। किन्तु भेदभक्तिका अनन्यभक्त अपने उपास्य देवको ही सर्वस्व मानता है, यद्यपि अन्य देवकी निन्दा भी नहीं करता। यहीं भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंकी एकता हो जाती है या हो जानी चाहिये। धीरे-धीरे भेदभक्तिकी अनन्यतासे अधिकारी अभेदभक्तिकी अनन्यतापर जा पहुँचता है। जहाँ यह पहुँच हुई वहाँ 'कैवल्यैकप्रयोजन-रूपी' एकता या अनन्यता रह जाती है। इसलिये अभेद-भक्तिकी अनन्यता ही वास्तविक अनन्यता है। इसी अनन्यता-को लक्ष्य कर स्वामी रामदासने क्या ही अच्छा कहा है—

'स्वतः अपनेको भक्त कहना और विभक्त रहकर भजन करना—यह बात विलक्षण है। भक्त वही है जो विभक्त न हो और विभक्त वही है जो भक्त न हो।'

अस्तु, धैर्यशील पाठक अद्वैतवादकी अन्तिम अवस्था-का अवलोकन कर चुके। उसकी प्राप्तिके साधन (ज्ञानयोग या अभेदभक्ति) पर भी दृष्टिपात कर चुके। अब अद्वैतवाद-की महिमा और उदारताका संक्षिप्त निरूपण कर उस (अद्वैतवाद) की वैष्णवमतसे प्रेमपूर्वक भेंट करा और युगधर्मसम्बन्धी अन्तिम निवेदन कर हम अपनी यात्राको समाप्त करेंगे।

अद्वैतवादकी महिमा, उदारता और वैष्णवधर्मसे भेंट। युगधर्म-सम्बन्धी अन्तिम निवेदन।

जब अद्वैतवाद नानात्वमें ही कालकृत भय मानता है तो फिर तत्त्वदृष्टिसे 'अमुक रूप बड़ा है, अमुक मँझला है, अमुक सँझला और अमुक छोटा'—ऐसे एकतानाशक विचारोंको कैसे अपना सकता है? यहाँ तो तात्त्विक एकताका अथाह और अनन्त महासागर लहरा रहा है जिसकी हम और आप लहरमात्र हैं जो माया-रूपी वायुसे प्रेरित हो अनन्तमेंसे उठतीं और अन्तमें अनन्तमें ही विलीन होती रहती हैं। पर ज्यों ही हवा शान्त हुई त्यों ही अनन्त तो प्रशान्त है ही।

यह अद्वैतवाद कैसा गम्भीर और उदार प्रेम-सागर भी है जिसमेंसे अनेक दिशाओंसे बहनेवाली बुद्धिरूपी पवनसे प्रेरित हो नाना यादरूपी लहरें भी उठतीं और अन्तमें उसीमें विलीन भी होती रहती हैं। यही इस सागरका वीचि-विलास (लहरोंकी क्रीड़ा) है।

दयालु पाठक! यह आप-सदृश दयालु भी है। जब यह पाँचों देवोंको अपने हृदयमें समानभावसे स्थान देता है तो फिर वैष्णव-मतसे घृणा कैसे कर सकता है? यह तो उसे भी 'प्रेमप्रकाशाय न विग्रहाय' पुचकारकर अपने हृदयसे लगाता है। मिलते समय केवल यही कहता है कि हे मेरे प्यारे भाई! मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। जो कुछ तुम कहते हो सो सब ठीक है, मुझे भी किसी स्थितिमें माननीय है। जिस अवस्थाविशेषको तुम सबसे परे बतलाते हो वह भी 'प्रेमप्रकाशाय' ठीक है। पर उससे भी परे एक अवस्था है जिसे मैं मानता हूँ, मेरे बच्चोंने माना, चाहे तुम या तुम्हारे बच्चे मानें, न मानें, जड़ समझें या घृणा करें। मेरी उसी अन्तिम अवस्थाका वर्णन मेरा या तुम्हारा तो सबसे प्रिय ग्रन्थ श्रीमद्भागवत संयोगवश अपने अन्तिम स्कन्धके अन्तिम अध्यायमें इस प्रकार कर रहा है—

सर्ववेदान्तसारं यद्ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम्।
वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैकप्रयोजनम्॥

बस, दोनों भाइयोंकी इस प्रकार प्रेमपूर्वक भेंट करा, हम भी अपने प्यारे भाई (प्रेमप्रकाशाय न विग्रहाय) को हृदयसे लगा निम्नलिखित अन्तिम निवेदन करते हैं—

निवेदन यही है कि यह कलियुग भयङ्कर देहाभिमानका युग है। इस युगमें ज्ञानयोगकी कठिनता बतलाते हुए स्वामी रामकृष्ण परमहंस अपनी 'वाक्सुधा' में लिखते हैं—

'कलियुगमें ज्ञानयोगकी कठिनताका पहला कारण यह है कि अपना प्राण केवल अन्नगत है। दूसरे मनुष्यकी आयु भी बहुत कम है। तीसरे इस युगमें अहंकार छूटना बड़ा कठिन है और जबतक अहंकार अस्त नहीं होता तबतक ज्ञानका उदय भी नहीं होता। अतएव जबतक आपका व्यक्तित्व लय नहीं हुआ तबतक सगुणके सिवा ईश्वरके किसी भी दूसरे रूपकी कल्पना नहीं हो सकती। अहंकारकी कुछ ऐसी ही शृंखला है कि अधिकांश लोग सहज ही इस जन्ममें या जन्मान्तरोंमें उसे नहीं तोड़ सकते। अतएव जबतक आप समाधितक न पहुँच जावें तबतक सगुण ईश्वरका ही अनन्य भजन और चिन्तन करना चाहिये क्योंकि सत्पुरुष, शास्त्र और साक्षात्कार (महात्माओं-का अनुभव) एकमत हो कह रहे हैं कि निर्गुण ब्रह्म ही सगुण होकर मनुष्यके भीतर-बाहर प्रतीत होता है। इसलिये ज्ञानी पुरुष सगुण ईश्वरकी आवश्यकता बतलाते हैं।

ईश्वरका साकार रूप ज्यों ही देखनेको मिला, ज्यों ही

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उस परमात्मासे खुले मनसे बोलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ त्यों ही भक्तके चित्तका समाधान हो जाता है।

बिल्लीका बच्चा अपनी माँको 'म्याऊँ-म्याऊँ' पुकारना ही जानता है, और कुछ नहीं जानता। अब जितनी तेजीसे उस बच्चेको भूख लगेगी उतनी ही तेजी और विह्वलतासे वह अपनी माँको पुकारेगा। पुकार सुनते ही माँ भी उतनी ही तेजीसे उसके पास दौड़ी आवेगी और उसे दूध पिलाकर तृप्त कर देगी। इसी प्रकार आप भी अपनी माँ (भगवती या परमात्मा) को पुकारना आरम्भ कर दें। फिर जितनी तेजीसे भूख लगेगी उतनी ही तेजी और विह्वलता आपकी पुकारमें होगी और उतनी ही शीघ्रतासे आपकी माँ (भगवती) भी 'म्याऊँ-म्याऊँ' करते हुए (अर्थात् यह कहते हुए कि हे बच्चा! मैं ही आती हूँ, मैं ही आती हूँ, तुम न आओ, तुम न आओ) आपके पास दौड़ आयेगी और (ज्ञानरूपी) दूध पिलाकर कृतार्थ कर देगी—

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।

जरूरत है केवल पुकार करनेकी, न कि और अधिक ज्ञानकी।

यदि आप पुकार करना आरम्भ कर दें तो कालान्तरमें आपके अन्दर सत्सङ्गतिकी भूख उठेगी। भूख लगते ही ईश्वरमें श्रद्धा होगी। श्रद्धा होते ही आप निरन्तर भगवान्‌की सेवा करना चाहेंगे। सेवासे निष्ठा होगी। निष्ठाके परिपक्व होते ही 'भाव' की अवस्था आवेगी जिसमें पहुँच ईश्वरनामस्मरण करते ही आप निःशब्द या स्तब्ध हो जाया करेंगे। सामान्य लोगोंकी अवस्था इससे आगे नहीं जाती। किन्तु यदि ईश्वर-कृपा हो गयी तो आप 'महाभाव'की अवस्थामें पहुँच जायँगे। इस अवस्थामें आप पागलके समान रहने लगेंगे—कभी हँसेंगे, कभी रोवेंगे। जगत् या शरीरका भान जाता रहेगा। प्रायः यह अवस्था उन अवतारी पुरुषोंको प्राप्त होती है जो जगत्‌का कल्याण करनेके लिये आते हैं, जो कहते हैं कि—

अर्थ न धर्म न काम रुचि, गति न चहौं निर्वान।

इसके बाद जब परमप्रेम या भक्तिकी अवस्था आवेगी तब माता आकर दूध पिला देगी और तुलसीके निम्नलिखित वचन सत्य कर देगी—

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। सन्त पुरान निगम आगम बद॥
राम भजत सोइ मुकति गुसाईं। अन-इच्छित आवति बरिआईं॥

यह अच्छी तरह ध्यान रहे कि गृहस्थीसे पानीकी और मनसे दूधकी उपमा दी जा सकती है। अच्छा दूध एक बार जब पानीमें मिला दिया जाता है तब फिर वह शुद्ध दशामें दुबारा नहीं लाया जा सकता। पर यदि उसका रूपान्तर कर दिया जाय अर्थात् मक्खन बना लिया जाय तो वह पानीमें रहकर भी लिप्त न होगा अर्थात् पानीपर उतराता रहेगा। इसी प्रकार अपने मनरूपी दूधका भक्तिरूपी मक्खन बना लो। फिर गृहस्थाश्रमरूपी पानीपर उतराते रहो, उस (पानी) में कदापि न मिलोगे। इतना सब करनेके लिये ज़रूरत है केवल पुकार करनेकी, अन्तःकरणसे आर्त होकर, बिल्कुल आतुर होकर प्रभुके लिये पुकार करनेकी। जैसे सूर्योदयके पहले प्रभातकालकी लालिमा दीख पड़ने लगती है वैसे ही अन्तःकरणकी सच्ची आतुरता ही भावी ईश्वर-दर्शनका पूर्वचिह्न है (इस पुकारकी कीमत केवल बुद्धिवादसे न जान सकोगे पर श्रद्धासे परख लोगे) बिल्लीका बच्चा केवल इतना ही जानता है कि 'म्याऊँ-म्याऊँ' करके अपनी माँको किस प्रकार पुकारना चाहिये। फिर आगे क्या करना है सो सब बिल्लीको मालूम रहता है। चाहे वह उस बच्चेको दूध पिलावे या जहाँ उसे अच्छा लगे ले जावे—चाहे रसोई-घरमें, चाहे मालिकके गुदगुदे बिछौनेपर। भावार्थ यह है कि बिल्ली ही उसके योगक्षेमको देखती है। बच्चेको पुकार करनेके सिवा और कुछ नहीं देखना है, पर पुकार अवश्य करना है और करते रहना है।'

बस, कलिकालको देखते हुए पाठकोंसे इतना ही हमारा अन्तिम निवेदन था सो कर चुके। 'कल्याण' के इस कल्याणमार्गमें सबका कल्याण हो। बस, यही कल्याण-सागरसे अन्तिम प्रार्थना है और कल्याणप्रेमी पाठकोंसे अन्तिम विदा। कल्याणार्णवार्पणमस्तु।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अवतार-सूची

(लेखक—पं० श्रीविष्णुदत्तजी शर्मा बी० ए०)

अवतारोंकी १० अथवा २४ संख्या होना और उनमेंसे अत्यन्त प्रसिद्ध राम-कृष्णादि अवतारोंके नाम और चरित्र तो प्रायः सभी जानते हैं । परन्तु विद्वानोंको छोड़कर विरले ही प्रामाणिक रूपमें जानते होंगे कि ये अवतार कब, किससे और किस कार्यके लिये हुए हैं और अवतार २४ से भी अधिक हैं, जो कि प्रत्येक आर्य भाईको जानना चाहिये । इसलिये श्रीमद्भागवतके भिन्न-भिन्न स्थलोंसे जितने अवतारोंके नाम और वृत्तान्त मिल सकते थे उनको प्रामाणिक रूपसे संग्रहकर हम संक्षेपसे नीचे लिखते हैं, जिससे कि इस सम्बन्धका सभी ज्ञातव्य वृत्तान्त और सिद्धान्त एक ही ठौर मिल जाय ।

(१) प्रसिद्ध अवतार

पहले २८ प्रसिद्ध अवतार लिखे जाते हैं, जिनमें १९ तो युगावतार हैं और ९ मन्वन्तरावतार हैं जिनके साथ मन्वन्तरोंके नाम भी लिख दिये गये हैं । हमने ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिके क्रमसे नाम दिये हैं और थोड़ा-बहुत उनके तारतम्य और समयका भी क्रम रक्खा है, परन्तु मुख्यतया नहीं—

१ पुरुष—

स एष आद्यः पुरुषः कल्पे कल्पे सृजत्यजः ।
आत्मात्मन्यात्मनात्मानं संयच्छति च पाति च ॥
(भागवत २ । ६ । ३८)

इनका जन्म किसीसे नहीं, और किसी अन्य उपादान कारणके बिना, अपने-आपसे उत्पन्न किये हुए २४ तत्त्वोंसे ब्रह्माण्ड (विराट्) नामक शरीर बनाकर उसमें अन्तर्यामीरूपसे प्रविष्ट हो जाते हैं और अपनेको ही जगत्-रूपसे प्रकट करते हैं । ये ही प्रत्येक कल्पमें जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लय करते हैं । इन्हींकी मायाशक्तिसे सत्त्व, रजस्, तमस्—इन गुणोंके द्वारा ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि प्रकट होते हैं और चिच्छक्तिसे मत्स्य, कूर्मादि अवतार होते हैं और इन्हींमें वे समयपर लय हो जाते हैं । 'पुरुषसूक्त' में इन्हींका वर्णन है ।

२ कुमार—हिरण्यगर्भ अर्थात् ब्रह्माके मानसपुत्र (१) सनत्कुमार, (२) सनक, (३) सनन्दन, (४) सनातन । इन्होंने अखण्डित ब्रह्मचर्य पालन और आत्मतत्त्वका उपदेश किया ।

३ नारद—इन्होंने 'पाञ्चरात्र' आगम निकाला । ये 'महती' नामकी वीणा बजाते हुए, देवकार्य-और जनहितके लिये, ठौर-ठौर घूमकर एक दूसरेका सिर फुड़ानेमें प्रसिद्ध हैं ।

४ नर-नारायण—ये ऋषि 'धर्म' नामक पितासे दक्ष-प्रजापतिकी 'मूर्त्ति' नाम्नी लड़कीमें दो रूपसे उत्पन्न हुए और इन्होंने ऐसा दुष्कर तप किया कि उर्वशी आदि अप्सराएँ भी इनका तप भङ्ग करनेमें हार मान गयीं । इन्होंने नारदादिको नैष्कर्म्य अर्थात् निवृत्तिमार्ग-का ज्ञान दिया और उसमें लोककी प्रवृत्ति करनेके लिये स्वयं उसका आचरण किया ।

५ कपिल—पहले 'स्वायम्भुव' मन्वन्तरमें प्रजापति

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कर्दमसे स्वायम्भुव और शतरूपाकी लड़की देवहूतिमें उत्पन्न हुए और माताको आत्म-ज्ञान दिया। इन्होंने ही लुप्त सांख्यशास्त्रका ब्राह्मण शिष्य आसुरिको उपदेश दिया।

६ दत्तात्रेय—'अत्रि' ऋषिके तप करनेपर, उनकी स्त्री अनसूयाके गर्भमें अपनेको पुत्ररूपसे दिया जिससे इनका यह नाम है। इन्होंने अलर्क, प्रह्लाद, यदु, सहस्रार्जुन आदि-को आत्मविद्या दी। प्रसिद्ध है कि इन्होंने पञ्चतत्त्व, पशु-पक्ष्यादि २४ गुरु बनाकर उनसे २४ तत्त्व सीखे। भागवत ११।७-९ में इन्होंने अवधूतके रूपमें यदुको उन्हीं तत्त्वोंका उपदेश किया है।

७ ऋषभ—'नाभि' नामके मनुसे सुदेवी अथवा मेरुदेवी-में उत्पन्न हुए और परमहंसयोगका औरोंको उपदेश और स्वयं आचरण किया।

८ धन्वन्तरि—छठे 'चाक्षुष' मन्वन्तरमें समुद्र-मथनके अवसरपर अमृतका घड़ा लेकर निकले। ये ही आयुर्वेदके प्रवर्त्तक हैं।

९ वेदव्यास—द्वापर और कलियुगकी सन्धिमें परा-शरसे सत्यवतीमें उत्पन्न हुए। ये मनुष्योंको मन्दबुद्धि और अल्पायु देखकर वेदका शाखा-भेदसे विस्तार कर, और ब्रह्मसूत्र, १८ पुराण और महाभारतके रूपमें अटूट, अमूल्य खजाना छोड़कर आर्य-जातिका ऐसा हित कर गये हैं कि वह इस ऋणसे कभी उऋण नहीं हो सकती।

पाराशर्यवचः सत्यम्।
प्रत्यक्षदर्शी भगवान्भूतभव्यभविष्यवित्॥
(म० भा० भी० प० २।२)

कृष्णद्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणं प्रभुम्।
को ह्यन्यः पुण्डरीकाक्षान्महाभारतकृद्भवेत्॥
(विष्णुपु० ३।४।५)

ऐसे भगवान् व्यासदेवकी महिमाका कौन बखान कर सकता है?

१० हंस—नीर-क्षीर-विवेककी भाँति आत्मानात्मविवेचन करनेके कारण यह नाम पड़ा। इन्होंने नारदको भक्तियोग दिया। भागवत ११।१३।१५ में सनकादिको आत्मयोगका उपदेश देना लिखा है, इसलिये कोई कहते हैं कि एक नामके ये दोनों अवतार भिन्न-भिन्न हैं।

११ बुद्ध—अजन अथवा जिन नामक पितासे गया-प्रदेशमें उत्पन्न हुए। कलियुग लग जानेपर सुरद्वेष्टा लोग, यज्ञके अनधिकारी होकर भी, यज्ञ करने लगे जिससे वे प्रबल हो उठे। परन्तु उनको गिराना आवश्यक था, इसलिये इन्होंने उनकी बुद्धिको फेरने-के लिये उनमें वेद-विरुद्ध तर्क फैलाकर, उनको यज्ञविमुख कर दिया। यही कारण है कि बौद्ध-मत निरीश्वरवादी, वेद (कर्म-काण्ड) विरोधी और कर्मवादी माना जाता है। आजकलके असुरोंसे प्राचीन असुरोंमें यह विलक्षणता ध्यान देने योग्य है कि वे अजेय होनेके लिये सेना, धन और सङ्घकी पाशविक शक्तिके अतिरिक्त, तप, योग, यज्ञ आदिसे आध्यात्मिक शक्ति भी सम्पादन किया करते थे, यद्यपि अन्तमें वे भी दण्ड और नाशसे नहीं बचे, जिसके उदाहरण रावण, वृत्रासुरादि सैकड़ों हैं। पौराणिक बौद्धकाल आधुनिक इतिहासोंके बौद्ध-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कालसे प्राचीन मालूम होता है और कदाचित् इसी कारणसे दोनोंके प्रयोजन और वृत्तान्तमें अन्तर है।

१२ वराह—इन्होंने महार्णवमें जाकर, रसातलमें गयी हुई पृथिवीको निकाला और दैत्य हिरण्याक्षको मारा।

१३ यज्ञ—पहले 'स्वायम्भुव' मन्वन्तरमें रुचि प्रजापतिसे आकूति (स्वायम्भुवकी लड़की) में उत्पन्न हुए। इनका दूसरा नाम सुयज्ञ भी है। इन्होंने दक्षिणा नाम्नी भार्यामें 'याम' आदि देवगण पुत्र उत्पन्न किये और स्वायम्भुवके पीछे, स्वयं इन्द्र बनकर और दैत्योंको मारकर, त्रिलोकीकी रक्षा की।

१४ पृथु—जब दुराचारी राजा वेनको ऋषियोंने हुङ्कारसे मार डाला, तब उन्हींकी प्रार्थनापर, वेनकी दाहिनी बाँहको मथनेसे, ये उत्पन्न हुए। इन्होंने लोकके हितके लिये, पृथ्वीमेंसे सब अन्नादि पदार्थ निकाले।

१५ मत्स्य—यह अवतार दो बार हुआ १—ब्रह्मा जब सो रहे थे तो उनके मुखसे वेद निकल रहे थे। उनको दैत्य हयग्रीव योग-बलसे ले गया। उसको मारकर इन्होंने ब्रह्माको वेद लौटा दिये। २—उसी कल्पके छठे 'चाक्षुष' मन्वन्तरमें जब प्रलयके समय पृथ्वी समुद्रमें डूब गयी तब इन्होंने सत्यव्रतकी, (वैवस्वतमनुके पूर्व-जन्मका नाम) एक नावमें बिठाकर और उसको अपने सींगसे बँधाकर, रक्षा की। मन्वन्तरमें प्रलय नहीं होता, इसलिये श्रीधर स्वामीके मतसे, सत्यव्रतको यह मायामात्र दिखलायी गयी। विष्णुधर्मोत्तर और भागवतामृतमें मन्वन्तरके अन्तमें भी प्रलय माना है। किसीका मत है कि मन्वन्तरोंमें क्रमका नियम नहीं है, इसलिये उस कल्पके अन्तमें चाक्षुष ही मनु हुआ, जिससे उस समय प्रलय होना योग्य ही है और वैवस्वत अगले कल्पके पहले मनुका नाम है।

१६ कूर्म—इन्होंने छठे 'चाक्षुष' मन्वन्तरमें देवता और दैत्योंके समुद्र-मथनके समय मन्दराचलको पीठपर उठाया।

१७ मोहिनी—छठे 'चाक्षुष' मन्वन्तरमें समुद्र-मथनके अवसरपर, जब अमृतके लिये देवता और दैत्योंमें झगड़ा होने लगा तो इन्होंने प्रकट होकर अपने रूपसे दैत्योंको ऐसा उल्लू बनाया कि अमृत तो सब देवता पी गये और दैत्य कोरे रह गये। इनके रूपमें ऐसा जादू था कि पीछे महादेवके आग्रहसे जब इन्होंने वही रूप उनको दिखाया तो कामदेवको भस्म कर देनेवाले भोलानाथके धैर्यके भी छक्के छूट गये।

१८ नृसिंह—इन्होंने भक्त प्रह्लादकी रक्षाके लिये, खम्भेमेंसे निकलकर, हिरण्यकशिपुको मारा। यह कथा प्रसिद्ध ही है।

१९ वामन—वर्तमान सातवें 'श्राद्धदेव' (वैवस्वत) मन्वन्तरमें कश्यप ऋषिसे अदितिमें उत्पन्न हुए। बारह भाइयों (आदित्यों) में सबसे छोटे, पर गुणोंमें ऐसे खोटे कि तीन पैंड पृथ्वी माँगनेके बहाने, उस समयके 'इन्द्र' पदधारी और भक्त प्रह्लादके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पोते बलिसे स्वर्गलोक मूस लिया और उसे 'पुरन्दर' नामक इन्द्रको सौंपकर अपना 'उपेन्द्र' नाम सच्चा कर दिखाया। सदाचारी बलिको सुतल-लोकका अधिपति कर, गदा उठाये उसके द्वारपर पहरा देते रहे। आगे आठवें मन्वन्तरके 'सार्वभौम' अवतारमें 'पुरन्दर' से स्वर्ग छीनकर ये पुनः बलिको इन्द्र करेंगे।

२० हयग्रीव—ब्रह्माके यज्ञमेंसे निकले। इन्होंने मधु दैत्यको मार, उससे वेद छीने। कर्मकाण्ड और देवकाण्ड-सम्बन्धी वेद नाकमेंसे निकाले।

२१ हरि—चौथे 'तामस' मन्वन्तरमें 'हरिमेधा' से 'हरिणी' में उत्पन्न हुए। गजेन्द्रमोक्षके कर्त्ता यही हैं जिनकी कथा प्रसिद्ध है। देखो—आश्विन १९९० का 'कल्याण'।

२२ पृश्निगर्भ—त्रेतायुगके 'स्वायम्भुव' मन्वन्तरमें सुतपा प्रजापतिसे 'पृश्नि' मातामें उत्पन्न हुए। राजा उत्तानपाद और महारानी सुनीतिके पुत्र और सौतेली माता सुरुचिके तानेसे व्याकुल हो नारदके उपदेशसे उग्र तपस्या करनेवाले बालक भक्त ध्रुवपर कृपा करनेवाले यही हैं।

२३ परशुराम—त्रेतायुगके आदिमें जमदग्नि ऋषिसे रेणुकामें उत्पन्न हुए। ऐसे खरे कि पिताकी आज्ञासे माताहीका सिर काट लिया। ब्राह्मण-द्रोही सहस्रार्जुनादि क्षत्रियोंका २१ बार संहार किया। जब श्रीरामचन्द्रका अवतार हो गया तो इनका प्रयोजन नहीं रहा। तब इन्होंने हथियार रख दिये। ये चिरञ्जीव हैं और अब भी महेन्द्र-पर्वतपर तप करते हैं।

२४ श्रीरामचन्द्र—त्रेतायुगके अन्तमें इक्ष्वाकु-वंशमें राजा दशरथसे महारानी कौशल्यामें प्रकट हुए।

स्नेहं दयाञ्च सौख्यञ्च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥

जिन्होंने यह प्रमाण कर दिखलाया ऐसे मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रके चरित्रको कौन नहीं जानता है?

२५ बलदेव—वसुदेवजीसे रोहिणीमें
२६ श्रीकृष्ण—वसुदेवजीसे देवकीमें
द्वापरके अन्तमें वृष्णिकुलमें उत्पन्न हुए और पृथिवीका भार उतारा। इनके चरित्रको कौन नहीं जानता, विशेषकर मुनिजनमनोमोहन मोहन यदि न होते तो आर्यजातिके तीन चौथाई विशेषताका चिह्न भी नहीं मिलता? जहाँ देखो वहाँ इन्हींकी तूती बोलती है।

२७ कल्कि—आप कलियुगके अन्तमें सम्भल गाँवके ब्राह्मणोत्तम विष्णुयशाके घरमें उत्पन्न होंगे। जब शासक लोग लुटेरे हो जायँगे और म्लेच्छोंका उपद्रव बढ़ जायगा तब देवदत्त नामक घोड़ेपर चढ़कर, तलवारसे करोड़ों ही म्लेच्छादि दुष्टोंका संहार करेंगे और कृतयुग स्थापित करेंगे। पाप और कष्टोंके मारे तो आर्यजातिकी अभी ही कमर टूटी जा रही है और कोई उपाय हाथमें नहीं रहा है। फिर भी कलियुगके अन्ततक बाट देखेंगे तो किसका उद्धार करेंगे? आर्यजातिका तो तबतक नाम भी रहना कठिन दिखायी देता है।

२८ मनु—अवतारोंके संग्रहश्लोकमें इनका भी नाम मिलता है। अनुमानसे, पहले स्वायम्भुव

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथवा (मनु) स्मृतिकार आदि किसी मनुको अवतार मान लेना तो दूसरी बात है, परन्तु स्पष्ट अवतारके रूपमें किसीका उल्लेख हमारे देखनेमें नहीं आया। इसलिये हमने अन्तमें इनका नाममात्र दे दिया है।

(२) अप्रसिद्ध (भूत) मन्वन्तरावतार

१ विभु—दूसरे 'स्वारोचिष' मन्वन्तरमें वेदशिरा ऋषिसे तुषिता मातामें उत्पन्न हुए। ये बालब्रह्मचारी थे और इनके व्रत (आचार) को ८८००० मुनियोंने सीखा।

२सत्यसेन—तीसरे 'उत्तम' मन्वन्तरमें 'धर्म'से 'सूनृता'में सत्यव्रतादि देवविशेषोंके साथ उत्पन्न हुए। इन्होंने सत्यजित् नामक इन्द्रका सहायक होकर, दुष्ट भूत-द्रोही यक्ष, राक्षस, भूतगणोंको मारा।

३ वैकुण्ठ—पाँचवें 'रैवत' मन्वन्तरमें 'शुभ्र'से 'विकुण्ठा'में वैकुण्ठ नामके और देवताओंके साथ उत्पन्न हुए। लक्ष्मीकी प्रार्थनासे वैकुण्ठ-लोक बनाया। मूल-वैकुण्ठ तो पहलेहीसे था। सनकादिके शापसे जो इनके पार्षद जय और विजय तीन जन्मके लिये हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु आदि नामोंसे दैत्य हो गये थे, उनको वराह-नृसिंहादिरूपसे इन्होंने ही मारा।

४ अजित—छठे 'चाक्षुष' मन्वन्तरमें 'वैराज'से 'सम्भूति'में उत्पन्न हुए। इन्हींने क्षीरसागरको मथकर देवताओंके लिये अमृत उत्पन्न किया और कूर्मावतार लेकर मन्दराचल उठाया।

(३) भविष्यत्-मन्वन्तरावतार

१ सार्वभौम—आठवें 'सावर्णि' मन्वन्तरमें पिता 'देवगुह्य' से माता 'सरस्वती' में उत्पन्न होकर, पुरन्दर नामक इन्द्रसे स्वर्ग छीनकर बलिको उसका इन्द्र करेंगे।

२ ऋषभ—नवें 'दक्षसावर्णि' मन्वन्तरमें पिता 'आयुष्मान्' से माता 'अम्बुधारा' में उत्पन्न होकर और त्रिलोकीको वशमें कर, 'अद्भुत' नामक इन्द्रको भोगनेके लिये देंगे।

३ विष्वक्सेन—दसवें 'ब्रह्मसावर्णि' मन्वन्तरमें पिता 'विश्वसृट्'से 'विषूची' मातामें उत्पन्न होकर, 'शम्भु' नामक इन्द्रकी सहायता करेंगे।

४ धर्मसेतु—ग्यारहवें 'धर्मसावर्णि' मन्वन्तरमें पिता 'आर्यक' से माता 'वैधृता' में उत्पन्न होकर त्रिलोकीका पालन करेंगे।

५ स्वधामा—बारहवें 'रुद्रसावर्णि' मन्वन्तरमें पिता 'सत्यसहा' से माता 'सूनृता'में उत्पन्न होकर मन्वादिका पालन करेंगे।

६ योगेश्वर—तेरहवें 'देवसावर्णि' मन्वन्तरमें पिता 'देवहोत्र' से माता बृहतीमें उत्पन्न होकर 'दिवस्पति' नामक इन्द्रको त्रिलोकीका राज्य दिलायेंगे।

७ बृहद्भानु—चौदहवें 'इन्द्रसावर्णि' मन्वन्तरमें पिता 'सत्रायण'से माता 'विताना'में उत्पन्न होकर कर्मकाण्डका विस्तार करेंगे।

(४)

अवतार भिन्न-भिन्न समय और प्रसङ्गोंपर और-और भी हुए हैं, पर उनके नाम नहीं मिलते, जैसे—

१—बालखिल्य ऋषि, जिनकी संख्या ६०००० है

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और जो ब्रह्मासे उत्पन्न हुए हैं, अँगूठेके बराबर हैं, और सूर्यके रथके आगे रहा करते हैं। ये एक बार गुरु कश्यपके लिये समिध लेने गये। मार्गमें गो-खुर जितने पानीके खड्डेमें गिरकर ऐसे डूबने लगे जैसे समुद्रमें डूबा करते हैं। यह देख इन्द्र हँसने लगा। उन्होंने भगवान्‌की स्तुति की जिन्होंने अवतार-विशेषसे उनको इस आपत्तिसे छुड़ाया।

२—वृत्रासुरकी हत्यासे जो इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी उससे उसको छुड़ानेवाले भी अवतार-विशेष ही थे।

३—जब दैत्योंसे डरकर देवता भग जाते थे तो उनकी स्त्रियोंको दैत्य अपने यहाँ बन्द कर दिया करते थे। उनको भगवान्‌के अवतार ही छुड़ाया करते थे।

४—जब-जब देवासुर-संग्राम होता, तब-तब भगवान्‌के अवतार ही दैत्योंको मार, भुवनोंकी रक्षा किया करते थे।

अब हम अवतार-सम्बन्धी सभी सिद्धान्त एकत्रित करते हैं—

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।
यथा विदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः॥
ऋषयो मनवो देवा मनुपुत्रा महौजसः।
कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा॥
एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे॥
(भागवत १। ३। २६-२८)

जैसे अटूट पानीके सरोवरसे, हजारों नहरें निकलती रहती हैं उसी प्रकार अनन्त सत्त्वगुणके निधान भगवान्‌से असंख्य अवतार निकलते रहते हैं। प्रजापति, ऋषि, मनु, देव, मनुपुत्र और महासामर्थ्य-वाले—सभी भगवान्‌की ही विभूति हैं। ये कहे हुए और बिना कहे हुए अवतार और विभूति—सभी पूर्वोक्त 'पुरुष' के अंश और कला हैं। परन्तु श्रीकृष्ण तो साक्षात् नारायण ही हैं। ये सब जब-जब दैत्यलोग लोकको सताते हैं तब-तब उनका संहार कर लोकको सुखी करते हैं।

इनमेंसे कोई तो 'पुरुष' के अंश हैं, जैसे मत्स्य, कूर्म, वराहादि। कोई कला हैं, जैसे कुमार, नारदादि। इनको आवेश भी कहते हैं। कुमार-नारदादिमें ज्ञानशक्ति और भक्तिशक्तिके अंशका आवेश है। पृथु आदिमें क्रियाशक्तिके अंशका आवेश है। इन आवेशोंके भी महाशक्ति और अल्पशक्तिसे दो भेद हैं। कुमार-नारदादिमें महाशक्ति है, इसलिये अवतार कहलाते हैं। मरीचि, मनु आदिमें अल्प-शक्ति है, इसलिये विभूति कहलाते हैं। मत्स्यादि अवतार हैं, इसलिये सर्वज्ञ और सर्वशक्ति हैं, तथापि कार्यके अनुसार ही उनमें ज्ञानशक्ति और क्रिया-शक्तिका आविष्कार हुआ है। कुमार-नारदादिमें भी जो 'आधिकारिक' (लोकस्थितिकार्यके लिये ईश्वरसे नियुक्त अधिकारी) कहलाते हैं, कार्यके अनुसार ही अंश और कलाका आवेश है।

भगवान्‌के अवतार दो प्रकारके होते हैं। कर्म-जन्य न होनेसे दोनों ही अवतार कहलाते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'अनुप्रवेशावतार' वे होते हैं जो जीवोंमें प्रवेश होकर अपनी ज्ञान-शक्ति आदि प्रकट करते हैं। इन्हींको 'अंशावतार' भी कहते हैं, जैसे पृथु, परशुराम आदि। नृसिंह, राम, कृष्णादि तो 'स्वरूपावतार' ही हैं।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
वैराग्यस्याथ मोक्षस्य (ज्ञानवैराग्ययोश्चैव)
षण्णां भग इतीरणा॥
(विष्णु० ६।५।७४)

पुरुष, नृसिंह, परशुराम और कल्किमें ऐश्वर्यका प्राकट्य है। नारद, व्यास, वराह और बुद्धमें धर्मका प्राकट्य है। राम, धन्वन्तरि, यज्ञ और पृथुमें यशका प्राकट्य है। बलि, मोहिनी और वामनमें श्रीका प्राकट्य है। दत्तात्रेय, मत्स्य, कुमार और कपिलमें ज्ञानका प्राकट्य है। नर-नारायण, कूर्म और ऋषभमें वैराग्यका प्राकट्य है। श्रीकृष्णमें तो छहोंका प्राकट्य है। इसीलिये कहा है कि 'कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्।'

यादवोंके कुल-पुरोहित गर्गाचार्यने राम-कृष्णके नामकरण-संस्कारके समय कहा है—

आसन्वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः॥
(श्रीमद्भा० १०।८।१३)

और आगे (११।५।२१–३२ में) उन वर्णोंको प्रति युग गिनाया भी गया है। इनका तात्पर्य यह है कि कृतयुगके अवतार श्वेतवर्णके, त्रेताके रक्तवर्णके, द्वापरके श्याम (अलसीके फूलके रंगके) वर्णके होते हैं और श्रीकृष्ण कृष्ण (इन्द्र नीलमणिके) वर्णके हैं। पीतवर्णका कहीं लेख नहीं मिलता। परन्तु विष्णुसहस्रनामादिमें 'सुवर्णवर्णो हेमाङ्गः' यह लेख मिलता है और अवतार अनन्त हैं। इसलिये कदाचित् कोई अवतार पीतवर्णका भी हो गया होगा।

पृथिवीका भार हरनेके लिये जब विष्णुसे प्रार्थना की गयी तो उन्होंने अपने दो श्वेत और काले बाल (सितकृष्णकेशौ) उखाड़े जिसका अर्थ यह लिया जाता है कि इनसे राम-कृष्ण बने। यथार्थमें विष्णुका तात्पर्य इतना ही था कि यह कितना-सा काम है, इसको तो मेरे दो बाल ही कर सकते हैं। ॥ इति शम्॥

मेरा भ्रम

कौन लोल छवि युग लोचन-हिंडोरे चढ़ि,
झूम झूलती है चख-पुतली मदीयामैं।
संग-संग किसके विहरता हूँ स्वप्न-देश,
कल्पनाटवीमैं सुकुटीर सरणीयामैं॥
मेरे सुप्त भाग्यको जगाता रहता है कौन,
करके अचेत निज कान्ति कमनीयामैं।
किसकी लगनमैं मगन रहता हूँ नित्य,
जागृतिमैं स्वप्नमैं सुषुप्तिमैं तुरीयामैं॥

—आदित्य शर्मा एम० ए०, बी० काम०, ए० टी० सी०

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पण्ढरपुर-यात्रा

(लेखक—श्रीभगवतीप्रसाद सिंहजी एम० ए०, डिप्टी कलेक्टर)

स उच्च कोटिके तीर्थ भारतके सुप्रसिद्ध चारों धाम (जगन्नाथपुरी, रामेश्वर, द्वारका तथा बदरिकाश्रम) हैं उसी महत्त्वका तीर्थ सुदूर महाराष्ट्र-देशमें स्थित श्रीक्षेत्र पण्ढरपुर है। इस स्थानको भक्त लोग भूवैकुण्ठ अथवा दक्षिण-द्वारावती भी कहते हैं। और इस कथनमें किसी प्रकारकी अत्युक्ति नहीं प्रतीत होती क्योंकि महाराष्ट्र-देशमें व्याप्त भागवत धर्मका यह केन्द्रस्थान है और यहाँ विराजमान श्रीविट्ठलभगवान्‌के दर्शनोंके लिये प्रति वर्ष लाखों यात्री महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, तामिल तथा तेलगु-प्रान्तसे आते हैं।

महाराष्ट्र-देशमें प्रचलित भागवत सम्प्रदायके प्रवर्तक पुण्डलीक ऋषि माने जाते हैं। लोगोंकी धारणा है कि यह महात्मा वही पुण्डरीक हैं जिनका स्मरण पाण्डवगीताके प्रारम्भमें परमभागवतोंमें होता है। यथा—

प्रह्लादनारदपराशरपुण्डरीक-
व्यासाम्बरीषशुकशौनकभीष्मदाल्भ्यान् ।
रुक्माङ्गदार्जुनवसिष्ठविभीषणादीन्
पुण्यानिमान् परमभागवतान् नमामि ॥

इस विचारकी पुष्टि अबतक प्रचलित 'पुंडलीक वरदे हरी विट्ठल' जयजयकारसे होती है जिससे लाखों यात्री भगवान्‌को स्मरण करते हैं।

ऐसी कथा प्रचलित है कि आरम्भमें पुण्डलीक सांसारिक विषयोंमें इतने लिप्त थे कि सिवा अपनी स्त्रीकी सेवाके उन्हें कोई काम ही न था। एक समय उनका विचार तीर्थयात्रा करनेको हुआ तो उन्होंने अपनी स्त्रीको तो अपने कन्धोंपर बिठला लिया और सब सामान अपनी माता तथा पिताके सिरपर रख दिया। इस प्रकार यात्रा करते हुए मार्गमें पुण्डलीकको एक महात्माका समागम प्राप्त हुआ। महात्माके सदुपदेशसे पुण्डलीककी आँखें खुल गयीं। उन्होंने अपने माता-पिताको श्रवणकुमारकी तरह बँहगीमें बिठलाकर अपने कन्धोंपर उठाया और गृहस्थीका सामान स्त्रीके सिरपर रक्खा। उस दिनसे माता-पिताकी निरन्तर सेवा ही उनका एकमात्र कर्तव्य रह गया। पुण्डलीककी प्रगाढ़ पितृ-मातृ-भक्तिसे प्रसन्न होकर साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पुण्डलीकके स्थान पण्ढरपुरमें प्रकट हुए। उस समय पुण्डलीकके माता-पिता उनकी दोनों जाँघोंपर सिर टेके सो रहे थे। पुण्डलीकने उठकर माता-पिताको जगाना उचित नहीं समझा और उनके समीप एक ईंट पड़ी हुई थी, उसीको उन्होंने भगवान्‌के सम्मुख आसन-रूपमें रख दिया। भगवान् तो केवल प्रेमके प्यासे हैं। इसी कारण आजपर्यन्त भगवान्‌की विट्ठल-मूर्ति एक ईंट-पर खड़ी है।

पुण्डलीक ऋषिके अनन्तर ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम इत्यादि सन्त-महात्माओंने इस भागवत धर्मका बड़ा प्रचार किया। इस सम्प्रदायको वारकरी-सम्प्रदाय कहते हैं। इस सम्प्रदायके अनुयायियोंका यह नियम है कि आषाढ़ी तथा कार्तिकी एकादशियोंको (हरिशयनी और प्रबोधिनीपर) अवश्य पण्ढरपुरकी यात्रा करें। इन यात्राओं-को वारी कहते हैं और इसीसे सम्प्रदायका नाम वारकरी पड़ गया। पण्ढरपुरके श्रीविट्ठलभगवान् ही इस सम्प्रदायके मुख्य उपास्य देव हैं। इन्हींको विठोवा, विट्ठू, पाण्डुरंग, पण्ढरी-नाथ भी कहते हैं। ये सब नाम विष्णुहीके रूपान्तर प्रतीत होते हैं। श्रीमद्भागवत तथा श्रीमद्भगवद्गीता इस मतके भक्तोंके प्रधान ग्रन्थ हैं। इस सम्प्रदायकी एक बड़ी सराहनीय बात यह है कि इसमें विष्णु तथा शिवको एक ही माना है। 'पाण्डुरंग' नाम भगवान् भूतभावनका वाचक है पर यहाँ उसी नामसे भगवान् विष्णु पुकारे जाते हैं। कहा जाता है कि भगवान् विट्ठलके मस्तकपर शिवजी लिङ्गरूपमें विराजमान हैं।

प्रसंगवश पण्ढरपुरके सुप्रसिद्ध भगवद्भक्तोंके विषयमें कुछ कहना अनुपयुक्त न होगा, बल्कि उससे आगेका विवरण अधिक स्पष्ट हो जायगा।

श्रीज्ञानेश्वर महाराज (संवत् १३३२—१३५३) महाराष्ट्र-देशमें साक्षात् विष्णुके अवतार माने जाते हैं। इनके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पिता विट्ठल पन्त देशस्थ महाराष्ट्र ब्राह्मण थे और सुप्रसिद्ध रामानन्दी सम्प्रदायके प्रवर्तक महात्मा रामानन्दके शिष्य थे। इन्हीं महात्मा रामानन्दके अनुयायी उत्तर भारतके कबीरदास तथा गोस्वामी तुलसीदासजी भी थे। विट्ठल पन्तके ज्येष्ठ पुत्र निवृत्तिनाथ (संवत् १३३०—१३५४) ने मत्स्येन्द्र-गोरक्षनाथ-सम्प्रदायके गहिनीनाथसे दीक्षा ली थी। अतः रामानन्दी तथा नाथ-सम्प्रदायका फलस्वरूप 'ज्ञानेश्वरी गीता' पण्ढरपुरके भागवत धर्मको विशेष रूपसे सहिष्णु बनानेमें सफल हुई।

विक्रमकी चौदहवीं शताब्दी पण्ढरपुरके लिये सत्ययुग-का काल था। श्रीज्ञानेश्वर महाराजके अवसान (समाधि) के कुछ ही पूर्व दक्षिण भारतमें मुसलमानोंके हमले प्रारम्भ हो गये थे, अतः इस आपत्तिकालमें भगवान्‌को गीताकी प्रतिज्ञाके अनुसार अवतीर्ण होना ही पड़ा। उनके साथ एक प्रकारसे भक्तोंकी भीड़-सी हो गयी। इस मण्डलीके नेता नामदेव छीपी थे, उनके साथी त्रिसोया खेचर, गोरा कुम्हार, सांवता माली, नरहरि सोनार, बंका महार, चोखा-मेला, जनमित्र, कूर्मदास, जनाबाई तथा चांगदेव थे। श्रीज्ञानेश्वरकी यह भक्तमण्डली लगभग पचास वर्षतक पण्ढरपुरमें अमृतकी वर्षा करती रही। सैकड़ों दैवी चमत्कार हुए।

श्रीज्ञानदेवने भैंसेसे एक प्रहरतक वेदपाठ करवाया तथा योगमदसे मत्त चांगदेवके गर्वको चूर्ण करनेके लिये जड़ दीवारको जीवित वाहनकी नाईं चलाया। नामदेवके हाथसे श्रीविष्णुभगवान्‌ने मनुष्यरूपेण भोग ग्रहण किया। गोरा कुम्हार भगवत्प्रेममें लीन अवस्थामें अपने अबोध बालकको मिट्टीके घोखे चूर्ण कर गया पर भगवान्‌की कृपासे बालक पुनर्जीवित हो गया। चोखामेलाके दीवारसे दबकर मर जानेके बाद भी उसकी अस्थियोंसे 'श्रीविट्ठल' नाम ही उच्चारित होता रहा। भक्त जनाबाईके घर साक्षात् विट्ठलभगवान् पधारे और वहीं मन्दिरमें चढ़ी हुई शृंगार-की माला भूल आये। सोलहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें दामाजी पन्तने अकालके समय शाही अन्नागार लुटा दिया। दामाजीके कैद हो जानेपर भगवान्‌ने विठू महार नामक व्यक्तिके रूपमें कुल लुटाये गये अन्नका रुपया जमा कर दामाजीको मुक्त कराया।

श्रीज्ञानेश्वरसे डेढ़ सौ वर्ष बाद महाराज एकनाथ * (संवत् १५९०—१६५६) का प्रादुर्भाव हुआ। इन्होंने अनेक चमत्कार दिखलाये। इनकी 'एकनाथी भागवत' श्रीज्ञानेश्वर-कृत 'ज्ञानेश्वरी गीता' की तरह भागवत धर्मके प्रचारमें अत्यन्त सहायक हुई।

महात्मा तुकाराम (संवत् १६५५—१७०७) ने तो अपनी अनन्य भक्तिसे इस धर्मको चरमोन्नतिपर पहुँचा दिया। उनके पद तथा अभङ्ग अबतक महाराष्ट्रमें गली-गली गाये जाते हैं। लोगोंकी धारणा है कि तुकाराम सशरीर स्वर्गको गये।

इसके बाद महाराज शिवाजीके गुरु तथा उनके राज्यका सञ्चालन करनेवाले समर्थ गुरु रामदास (संवत् १६६५—१७३८) ने देशकी व्याकुल स्थिति तथा यवनोंके घोर अत्याचारके कारण शासनशक्तिपटु वारकरी-सम्प्रदायकी रचना की जिसका परिणाम यह हुआ कि यवनोंके राज्यकी इतिश्री हो गयी। पर महाराष्ट्रका प्रेम-भक्तिमय भागवत धर्म अब भी उसी प्रकार चला जा रहा है और पण्ढरपुरमें प्रतिदिन आनेवाले भगवा झण्डा लिये हुए वारकरी यात्री-समुदाय उसी प्रेमस्रोतकी याद दिलाते हैं और हृदयको 'पुंडलीक वरदे हरी विट्ठल' की ध्वनिसे आनन्दसागरमें निमग्न कर देते हैं।

श्रीक्षेत्र पण्ढरपुर बम्बईसे २६७ मील दक्षिण स्थित है। वहाँ जानेके लिये पहले बम्बई जाना चाहिये। बम्बई-से पण्ढरपुरका सीधा टिकट मिलता है। तीसरे दर्जेका किराया डाकगाड़ीसे ५॥=) है। डाकगाड़ीके टिकटसे जानेके लिये सबसे आरामकी Madras Mail है जो बम्बई (Victoria Terminus) से १० बजे रातको छूटती है। बम्बईसे पूनातक ११९ मील यह रेल ट्रामवेकी तरह बिजलीसे चलती है। आगवाला एञ्जिन नहीं लगता। ट्रेन बड़े वेगसे ६०—७० मील प्रति घण्टेके हिसाबसे जाती है। पूनातक दोनों ओर अत्यन्त रमणीय तथा हृदयग्राही पर्वतीय दृश्य मिलते हैं। अनेक स्थानोंपर रेल सुरंगोंमेंसे होकर जाती है। भोरघाटवाली सुरंग तो लगभग १ मील लम्बी है। यही पार्वत्य प्रदेश छत्रपति शिवाजीकी वीर-

* श्रीज्ञानेश्वर और एकनाथके जीवन-चरित्र गीताप्रेससे मँगाकर पढ़िये। तुकारामका जीवन-चरित्र भी शीघ्र छपनेवाला है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लीलाओंका केन्द्र रहा है। पूना महाराष्ट्र-संस्कृतिका हृदय है, अवकाश हो तो उसे अवश्य देखना चाहिये।

पूनासे मामूली एञ्जिन लग जाता है और गाड़ीकी गति भी मन्द हो जाती है। इस प्रदेशमें चायका दुर्व्यसन बुरी तरह फैला हुआ है और छुआछूत तथा जूठेका विचार भी नगण्य ही है। यह बड़े खेदका विषय है क्योंकि प्राचीन शुद्धताके नियम अत्यन्त गम्भीर तथा दूरपरिणामव्यापी हैं। उनके उल्लंघनके कारण ही क्षयी इत्यादि भयंकर रोगोंका ज़ोरोंसे प्रचार हो रहा है। बिना धुले अथवा नाम-मात्रको धुले जूठे चायके प्यालोंद्वारा भयंकर रोग फैल रहे हैं।

पूनासे आगे मालूम पड़ता है कि किसी अन्य देशमें आ गये। यहाँसे आगे हिन्दी भाषा अच्छी तरह काम नहीं देती। इधर कुलीको हमाल कहते हैं। ५॥ बजे प्रातःकाल मद्रासमेल कुर्डूवाडी नामक स्टेशनपर पहुँचती है। यहाँ उतरना पड़ता है और यहाँसे छोटी लाइनद्वारा पण्ढरपुर जाना होता है। इस छोटी लाइनके तीसरे दर्जेमें शौचालय नहीं होता। यात्री इतस्ततः प्लेटफार्मपर अथवा आसपास ही मलमूत्र त्याग करते हैं। शिक्षित महानुभावोंका कर्तव्य है कि इस असुविधाको लेकर आन्दोलन करें, जिसमें अगणित यात्री (विशेषकर नारियाँ) आनन्दसे यात्रा कर सकें। अस्तु, कुर्डूवाडीसे ६ बजे प्रातःकाल चलकर गाड़ी ८॥ बजे पण्ढरपुर पहुँचती है। स्टेशनसे २-३ मील पूर्वहीसे चन्द्रभागा तथा उसके तटपर बसे हुए इस क्षेत्रकी शोभा देखते ही बनती है। स्टेशनसे क्षेत्र मील-डेढ़-मील दूर है। ताँगे इत्यादि सुगमतासे मिलते हैं।

यह नगरी भीमा-नदीके तटपर बसी है। भीमाको यहाँ चन्द्रभागा कहते हैं। शहरमें म्युनिसिपेलिटीका प्रबन्ध है। बिजलीकी रोशनी तथा जलकलसे यात्रियोंको बहुत आराम मिलता है। नगरके अधिकांश मकान दुर्गवत् और बड़े सुदृढ़ बने हुए हैं। इमारतोंमें पत्थर अधिक लगे हैं। यहाँकी जन-संख्या पचास हजार बतलायी जाती है। इनमें लगभग सात-आठ हजार देशस्थ महाराष्ट्र ब्राह्मण हैं। इन ब्राह्मणोंमें दो-तीन हजार पण्डे या तीर्थ-पुरोहित हैं। लोग शान्त हैं और उत्तरी भारतकी तरह नोच-खसोट नहीं करते।

प्राचीन प्रणालीके अनुसार तीर्थ-पुरोहितके घर सामान रखकर सबसे प्रथम कृत्य नंगे पैर जाकर श्रीविट्ठल-भगवान्‌के दरबारमें हाजिरी देना है। चाहिये तो ऐसा कि पूरी यात्राभर जूता न पहने। भगवान्‌के प्रथम दर्शनसे यात्राका सारा कष्ट भूल जाता है और हठात् श्रीवल्लभाचार्यकृत मधुराष्टकका स्मरण हो आता है—

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम्।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥

तथा साथ-ही-साथ श्रीमद्भागवतके गोपी-विरह-गीतकी भी सुधि आ जाती है—

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः
श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावका-
स्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते॥

भगवान्‌के सम्मुखसे हटनेको जी नहीं चाहता पर सांसारिक कृत्योंका स्मरण कर वहाँसे श्रीचन्द्रभागाकी ओर स्नानादिके लिये चलना पड़ता है।

चन्द्रभागाके मुख्य घाटका नाम महाद्वार है। कोई पक्का घाट नहीं—केवल रेती है। हाँ, उस पार श्रीमहाप्रभुजीकी बैठकके नीचे पक्का घाट बना है। नायें हर समय मिलती हैं। हमलोग एकान्तके विचारसे उसी पार चले गये। स्नान करके बड़ा सुख पाया। यहाँ श्रीचन्द्रभागाकी पूजा वेदमन्त्रोंद्वारा की जाती है। इसे अवश्य करना चाहिये।

स्नान-सन्ध्या इत्यादिसे निवृत्त होकर फिर नावसे इस पार आ जाइये और घाटके मन्दिरोंमें दर्शनको चलिये। इन महाद्वार-घाटके मन्दिरोंमें पुण्डलीक तथा तुकारामके मन्दिर विशेष रूपसे द्रष्टव्य हैं। महर्षि पुण्डलीकका स्मारक एक शिवलिङ्ग है। कैसी उदारता इस महाराष्ट्र-देशीय भागवत धर्ममें झलकती है! धन्य हैं वे महात्मा जिन्होंने ऐसी उदार प्रणाली प्रचलित की। तुकारामके मन्दिरसे अनुमान किया जाता है कि यहींसे वे सशरीर स्वर्गधामको पधारे थे। पुण्डलीकने भी सम्भव है यहीं समाधि ग्रहण की हो।

घाटके ऊपरसे भगवान्‌के मन्दिरतक एक फर्लाङ्गके विस्तारमें एक बाजार बसा है, जहाँ भोगके लिये पेड़े, मिश्री, भेंटके लिये नारियल तथा अर्चनाके लिये माला इत्यादि मिलते हैं। तुलसीकी घनी वन-मालाएँ बड़ी अच्छी लगती हैं और वे ही श्रीविट्ठलको परम प्रिय हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीविट्ठलका मन्दिर कब बना सो तो नहीं ज्ञात है, किन्तु मन्दिरके एक विस्तृत शिला-लेखसे स्पष्ट है कि वर्तमान मन्दिरकी मरम्मत विक्रम संवत् १३३० में चन्देसे हुई थी। इस प्रकार यह मन्दिर नवीन रूपमें कम-से-कम साढ़े छः सौ वर्ष पुराना है। मन्दिरकी सुदृढ़ बनावट उस समयकी शिल्पकलाका जीता-जागता नमूना है। मन्दिर मैसूरराज्यके मन्दिरोंके नमूनेका बना हुआ है। उस ढङ्गका कोई मन्दिर उत्तर भारतमें नहीं है जिससे उपमा दी जा सके। मन्दिरका मुख्य द्वार पूर्वाभिमुख है और मन्दिरमें आठों दिशाओंमें एक-एक द्वार है। चन्द्रभागासे मुख्य द्वारको मार्ग गया है।

मन्दिरके बाहर जो प्रथम सीढ़ी है उसे 'नामदेव पाहिरी' कहते हैं। श्रीनामदेव निरन्तर भगवान्‌के सम्मुख मन्दिरके द्वारपर ही रहते थे अतः यहीं उनकी समाधि बनी है। पूजनके लिये एक बड़ा-सा पीतलका मुख रक्खा रहता है। इसी स्थानपर चोखामेलाकी भी समाधि है। चोखामेला शूद्र थे इस कारण मन्दिरके भीतर नहीं जा सकते थे। जब दीवारसे दबकर कई अन्य लोगोंके साथ उनका यह नश्वर शरीर छूट गया तो लोगोंने कहा कि उनकी हड्डियाँ पण्ढरपुर लाकर यहीं द्वारपर गाड़ी जायँ। अब प्रश्न उठा कि कई मृतक शरीरोंमेंसे चोखामेलाकी हड्डियाँ कैसे अलग की जावें। इसपर भक्तराज नामदेवने कहा कि जिन हड्डियोंसे 'श्रीविट्ठल'की ध्वनि निकले वही चोखामेलाकी समझी जावें। हुआ भी ऐसा ही। तभीसे यहाँ चोखामेलाकी भी समाधि बनी है।

मन्दिरके भीतर प्रवेश करते ही एक ओर एक पेड़के नीचे एक देवस्थान है जिसे कान्होपात्राकी समाधि कहते हैं। कान्होपात्रा एक परम सुन्दरी वेश्या-कन्या थी। उसका प्रण था कि मैं सबसे सुन्दर पुरुषके साथ विवाह करूँगी। उसे सिवा श्रीविट्ठलके और किसीकी शोभा न जची। सो वह यहीं पड़ी-पड़ी कीर्तन किया करती थी। एक समय किसी राजाने उसे बलात् बुलवा भेजा। श्रीविट्ठलके वियोगको वह सह न सकी। तुरन्त उसका शरीर छूट गया। जहाँ कान्होपात्राका शरीर छूटा वहींसे यह पेड़ निकल आया जो अद्यावधि विद्यमान है।

इसके आगे भगवान्‌का मन्दिर है। गर्भगृहके सामने जगमोहनमें १६ स्तम्भ हैं जिनसे इस मण्डपको सोलखाम्बी कहते हैं। इस मण्डपसे होकर जो द्वार मुख्य मन्दिरको जाता है उसके दोनों ओर प्राचीन आकृतिके द्वारपाल बने हैं। मुख्य मन्दिरमें घुसते ही सबसे पहले एक बड़ी-सी कोठरी मिलती है जिसके बीचमें चार बड़े-बड़े खम्भे हैं। इन खम्भोंके ठीक ऊपरवाली छतमें बड़े-बड़े रोशनदान बने हैं। खम्भोंके बीचमें जो स्थान है उसमें गोल आकृतिकी दो अङ्गुल ऊँची एक संगमर्मरकी वेदी-सी बनी है। ऐसी वेदी प्रत्येक मन्दिरमें बनी है और इसे कासव कहते हैं। इसपर मस्तक रखकर भगवान्‌को दण्डवत् करना होता है। इस कोठरीमेंसे होकर भीतर एक और कोठरी गयी है। इसी दूसरी कोठरीमें पूर्वाभिमुख श्रीविट्ठलभगवान् विराजमान हैं। बाहरकी कोठरीमें कासवके सामनेवाले जँगलेसे लेकर भीतरकी कोठरीके मध्यभागतक लम्बी-सी मोटी जञ्जीर बँधी है। इस प्रबन्धसे यात्रीगण एक ओरसे भीतर जाते हैं और दूसरी ओरसे बाहर आते हैं।

भीतरी कोठरी बड़ी ही सुदृढ़ बनी हुई है पर उसमें प्रकाश आनेके लिये कोई स्थान नहीं (यह बनावट दक्षिण भारतके शिवमन्दिरोंकी है)। इस कारण दिनरात सात बड़े-बड़े दीपक जलते रहते हैं। भगवान्‌की मूर्ति सिंहासनकी नाईं छतरीदार २ हाथ ऊँचे चबूतरेपर स्थित है। मूर्ति श्यामवर्ण है और लगभग ढाई-तीन हाथ ऊँची है। भगवान् कटिपर हाथ रक्खे हुए पुण्डलीकद्वारा अर्पित ईंटपर खड़े हुए हैं। उनके सिरपर भगवान् शङ्करजी लिङ्गरूपमें विराजमान हैं। भगवान्‌का वेष-भूषा महाराष्ट्र-ढङ्गका है। सिरपर दक्षिणी पगड़ी बँधी है और शरीरपर धोती तथा दुपट्टा शोभा दे रहे हैं। मस्तकपर सुन्दर चन्दनका खौर लगा हुआ है।

यात्री सोलखाम्बी मण्डपमें घुसते ही गम्भीर स्वरसे सामूहिक रूपमें 'पुण्डलीक वरदे हरी विट्ठल' कहकर भगवान्‌को पुकारते हैं और भीतर बराबर थोड़ी-थोड़ी देरपर यही जय-जयकार करते रहते हैं। इसका आनन्द वर्णनातीत है। हृदय पुलकित हो उठता है और मालूम होने लगता है कि चारों ओर गम्भीर प्रणवनाद व्याप्त हो रहा है। काशीवासियोंके 'हर हर महादेव शम्भो। काशी विश्वनाथ गङ्गा' तथा श्रीविन्ध्यवासिनी जानेवाले भक्तोंकी 'बोलैगा सो निहाल होगा। बोल साँचे दर्बारकी जय। हे दर्बारावाली तेरी सदा जय। फिर बोल लौंकड़े वीरकी जय। हे वीर साहब तेरी सदा जय। जङ्गलमें मङ्गल करनेवाली तेरी सदा जय' जय-जयकारोंसे भी यही आनन्द-स्रोत बहता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भगवान्‌के समीप यात्री पहले चरणोंपर मस्तक रखते हैं और इसके अनन्तर भगवान्‌के चरणोंसे भेंटते हैं। धन्य हैं वे प्राणी जिन्हें प्रभु यह पुण्य अवसर दिखलाते हैं। जितनी दक्षिणा भगवान्‌के चरणोंपर रक्खी जाती है उतनी ही दुबारा ली जाती है। इसका कारण आगे स्पष्ट होगा।

भगवान्‌के मन्दिरके पीछे रुक्मिणी, सत्यभामा, राधिका तथा महालक्ष्मीके मन्दिर हैं, और भगवान्‌की दाहिनी ओर श्रीबलरामजीका मन्दिर है। ये सब मन्दिर भगवान्‌के अहातेके भीतर ही हैं। रुक्मिणी महारानीको लोग 'रखुमाई' कहते हैं और इस नामान्तरसे बड़ा स्नेह टपकता है। माताकी डेढ़ हाथकी मूर्ति बड़ी ही भव्य तथा भावोत्पादक है। रुक्मिणी माताके मन्दिरवाले जगमोहनमें तुलजा भवानीकी मूर्ति है। इन तुलजा देवीके विषयमें काशीमें एक किंवदन्ती सुनी जाती है। कहा जाता है कि नैपालसे निर्वासित राणा रणबहादुरको तुलजा भवानी दर्शन देती थीं और उनके साथ द्यूतक्रीडामें सम्मिलित होती थीं। निर्वासनके उपरान्त रणबहादुर काशीमें श्रीविश्वेश्वरके समीप एक महल बनवाकर रहने लगे। यह स्थान अब नेपाली खपड़ा नामसे विख्यात है और यहीं इस लेखकके पूर्वजोंका स्थान है। तुलजा भवानीके नूपुरोंकी झनकार तथा ठठाकर हँसनेको अनेक वृद्धोंने अपने कानोंसे सुना है।

श्रीविट्ठलके मन्दिरका प्रबन्ध बरवेट्रस्ट नामक संस्था-द्वारा होता है। यह बरवेकुल बहुत पुराना है और पीढ़ियोंसे यह काम कर रहा है। भगवान्‌के चरणोंपर जो दूसरी दक्षिणा चढ़ती है वह इस ट्रस्टवालोंको प्रबन्धके लिये दी जाती है। पहली दक्षिणाके अधिकारी भगवान्‌के सात सेवाधारी हैं जो पीढ़ियोंसे इस कामको करते आये हैं। उनके नाम ये हैं—

(१) **पुजारी**—ये भगवान्‌को स्नान कराते तथा वस्त्राभूषण पहनाते हैं।

(२) **बेनारे**—ये पूजाके अवसरपर वेदमन्त्र पढ़ते हैं।

(३) **परिचारक**—ये भगवान्‌के लिये जल लाते हैं।

(४) **डिंगरे**—ये भगवान्‌को दर्पण दिखलाते हैं।

(५) **हरदास**—ये भगवान्‌के सम्मुख मजीरा बजाकर अभङ्ग तथा पद इत्यादिका कीर्तन करते हैं।

(६) **देउटे**—ये मशाल लेकर खड़े रहते हैं।

(७) **डाँगे**—ये भगवान्‌के मन्दिरमें आसा लेकर चपरासीकी तरह खड़े रहते हैं।

भगवान्‌का मन्दिर प्रातःकाल तीन बजे खुलता है और तबसे सात बजेतक जो सेवा होती है उसे काँकड़ा आरती कहते हैं। वस्तुतः यह मङ्गला आरती साढ़े तीन बजे होती है। इसे ब्राह्मणेतर लोग नहीं देख सकते।

मध्याह्नमें भगवान्‌को भोग लगाया जाता है, भोगके लिये भण्डारसे पक्वान्न आता है। भोगकी वस्तुओंमें बड़ी शुद्धता बरती जाती है। मेरे एक परिचित महाशय कहा करते थे कि पण्ढरपुरमें भोगका कोई विचार नहीं। दाल-भात इत्यादि भी उसी प्रकार लाया जाता है जैसे अन्य वस्तुएँ। मैंने पण्ढरपुरमें इसके विपरीत स्थिति पायी। एक और आनन्दका विषय यह है कि यहाँ भारतके अन्य स्थानोंकी तरह भगवान्‌का प्रसाद बाजारमें बिकता नहीं।

अपराह्नमें तीन बजे भगवान्‌की पोशाक बदली जाती है और सन्ध्याको साढ़े छः बजे धूप-आरती होती है जिसे दूरसे यात्री लोग देख सकते हैं।

रात्रिको १०॥ बजेसे शयनार्चा प्रारम्भ होती है और १२ बजे भगवान् विश्राम लेते हैं।

यह तो हुई नित्य-पूजा। उत्सवोंपर जो विशेष शृङ्गार होता है उसका तो कहना ही क्या है? कहा जाता है कि भगवान्‌के आभूषण दस-पन्द्रह लाखसे कमके न होंगे। इसके अतिरिक्त भक्तोंद्वारा भगवान्‌की विशेष पूजा भी होती है। इस पूजाके लिये दो आनेका टिकट लगाकर सरकारी मामलतदार (तहसीलदार) से आज्ञा लेनी होती है। यह पूजा षोडशोपचारसे वेदमन्त्रोंद्वारा होती है और इसमें दो घण्टे लगते हैं। इस पूजाके समय मन्दिर बन्द कर दिया जाता है। पूजामें कम-से-कम पचास-साठ रुपये व्यय होते हैं। द्विजातियोंको अपने हाथसे भगवान्‌की पूजा करनेका अधिकार है। उनके द्वारा किया हुआ अभिषेक 'नमस्ते रुद्रमन्यवे'—इत्यादि मन्त्रोंसे होता है और पूजा पुरुषसूक्तसे होती है। शूद्रोंकी पूजा ब्राह्मणोंद्वारा होती है और महिम्नःस्तोत्रसे भगवान्‌का अभिषेक होता है।

भगवान्‌का विशेष शृङ्गार दशहरा, दिवाली, मकर-संक्रान्ति और रङ्गपञ्चमीको होता है। और देवशयनी तथा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रबोधिनी एकादशियोंको वारकरी लोग विशेषरूपसे यात्रा करते हैं। इन अवसरोंपर अपार भीड़ होती है।

पण्ढरपुरमें श्रीज्ञानेश्वर, एकनाथ, भानुदास इत्यादि भगवद्भक्तोंकी समाधियाँ प्रतिमूर्तिरूपसे विद्यमान हैं। असली समाधियोंके स्थानोंसे प्रति वर्ष निश्चित अवसरोंपर इन महात्माओंकी पालकियाँ आती हैं और उनके साथ कीर्तनमण्डलियाँ अमृत-वर्षा करती हुई देशको कृतार्थ करती हैं।

श्रीपण्ढरीनाथकी असीम कृपासे तथा पूर्वजोंके पुण्यसे यह लेखक ता० २८ नवम्बर सन् १९३३ को पण्ढरपुरमें था। साथमें चिरञ्जीव वैकुण्टनाथ तथा त्रिलोकीनाथ भी थे। हमलोगोंको भगवत्कृपासे पण्ढरपुरमें तथा इस यात्रामें अनेक चमत्कार दिखलायी पड़े जिनका स्मरण कर हृदय पुलकित हो उठता है। विषय गोप्य होनेसे इन चमत्कारोंके विवरण देनेमें असमर्थ हूँ। केवल इतना ही कहूँगा कि पण्ढरपुरमें भगवान्‌के साकार दर्शन अत्यन्त सुलभ हैं। आन्तरिक ज्योतिका तो कहना ही क्या है!

पण्ढरपुरसे बम्बई लौटकर हमलोगोंने अपनी नयी मोटर ली जिसका नाम इस यात्राका स्मारक रूप 'रुक्मिणी' रक्खा। इन रुक्मिणी माताकी गोदमें बैठे हुए हमलोग बड़े आनन्दसे करीब तीन दिनमें नौ सौ मीलका सफर तय करके घर पहुँचे।

घृणा तथा द्वेष

(लेखक—श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा)

सभ्यताके इस युगमें यदि कोई ऐसी वस्तु है जो पग-पगपर हमारा जीवन नियन्त्रित करती है तथा जिसके द्वारा हम बड़ी प्रसन्नतापूर्वक शासित होते हैं—तो वह है घृणा तथा द्वेषकी अभिन्न जोड़ी। परायेका वैभव देखकर ईर्ष्या करना और अपना पतन देखकर हरेकका पतन चाहना तथा परायेका गुण देखकर अपनेमें उसका अभाव पाकर, परायेसे घृणा करना। किन्तु घृणा तथा द्वेष इतने ही तक सीमित नहीं हैं। बुज़दिल, हताश, आलसी तथा कामचोर तो इसी जोड़ीके सहारे जी रहा है, पर इसके साथ ही क्रियाशीलपर अभागे इतने अधिक द्वेषी और घृणाशील हो जाते हैं कि संसारमें किसी कामके लायक नहीं रहते।

किन्तु, इन सब बातोंका भीतरी कारण क्या हो सकता है! यह तो विदित ही है कि यह आत्मा, यह चेतना उस समयकी कल्पना भी नहीं कर सकती जब वह 'नहीं' थी। इसी अनन्त सत्ताके भावके आधारपर उसकी वृत्ति निर्भर करती है—'संविदो व्यभिचारश्च नानुभूतोऽस्ति कर्हिचित्' इसीलिये जीव जो कुछ करता है, अनन्त समझकर करता है। हम कहते हैं कि 'आजके सौ वर्ष पहले अमुक घटना हुई' और यह कहते ही अपनी आत्माके सामने सौ वर्ष पूर्वका चित्र खींच लेते हैं। इसी प्रकारकी अनन्त सत्ताकी चेतना सदैव हमारे हृदयमें छिपी है।

घृणाके अतिरेकमें एक व्यक्ति किसीकी हत्या क्यों करता है! केवल इसीलिये कि वह तत्क्षण उस व्यक्तिको मारकर, उसका अन्त कर, अपनी घृणाका अन्तिम बदला—चरम—सीमा वा बदला ले लेना चाहता है! नहीं, किन्तु हत्यारा सदैव यह समझता और सोचता है कि अपनी घृणाकी वस्तुका संहार कर वह उसे स्थायी दुःख और वेदना दे रहा है तथा हत्या करनेके बाद उसकी घृणाका अन्त नहीं हो जाता। फाँसीके तख्तेपर झूलते हुए भी उसे यह सोचकर सन्तोष होता है कि उसने किसीकी जान ली, और अपनी जान देकर भी सदैव जान लेनेका सुख भोगेगा।

प्रेमके अतिरेक, रागकी अतिमें भी अपना जीवन अर्पण कर देनेवाला व्यक्ति यदि यह समझे कि जीवन-दानके बाद उसे अपने रागका सुख न मिलेगा तो वह जान क्यों दे! मरनेके बाद भी फरहाद और शीरींको अपने प्रेमकी सार्थकताकी आशा थी। मजनूँ यह समझता है कि मरकर वह लैलाके अधिक निकट जा रहा है। देशकी रक्षाके लिये अपना प्राण हवन कर देनेवाला सिपाही यह सोचता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है कि उसकी मृत्युसे देशका जो उद्धार होगा उसका सुख उसे मिलेगा। घोर-से-घोर भौतिकवादीके मनके भीतर भी यही बात छिपी रहती है, चाहे वे उसका अर्थ समझें या नहीं।

लोग आमका पेड़ लगा देते हैं—ताकि दूसरोंको छाया-का तथा फलका सुख मिले। उद्यान—बाग, तड़ाग, कुआँ खुदवा देते हैं—ताकि दूसरे उससे लाभ उठावें। ऐसा करते समय उनके हृदयके भीतर यह स्वार्थ छिपा रहता है कि वे अन्य लोगोंके सुखसे अनन्तकालतक सन्तोष प्राप्त करें—उनकी आत्मा सुखी हो। इसके विपरीत कि जिस स्थानपर शत्रुकी सेनाका सबसे अधिक संहार किया जाता है, जहाँ घृणा और द्वेष नङ्गा नाचते हैं, वहीं एक स्मृति-स्तम्भ बनवा दिया जाता है, ताकि मानव-हृदयके भीतर छिपी हुई घृणाको सदैव घृणित सन्तोष प्राप्त होता रहे। या किसी देश-भक्तके बलिदान होनेवाले स्थानपर उसकी यादगार बनाकर उसकी स्मृतिको अमर कर दिया जाता है। सारांश यह कि हम कहें या नहीं, आत्माकी अनन्त सत्ताका भाव सर्वोपरि व्याप्त है और इसी भावसे प्रेरित होकर राग-द्वेषका चरम प्रयोग होता है—यानी रागके अतिरेकमें जीवन दे डालना या घृणाकी अतिमें जीवन हरण कर लेना, हत्या कर डालना!

जान लेना या जान देना

इस विषयकी विस्तृत मीमांसा ज़रूरी है। हम रोज़ रोचक अदालती समाचार पढ़ते हैं। अमुकने अमुककी हत्या की और फाँसी या कालेपानीकी सज़ा पाकर भी प्रसन्न है। रोज़ फाँसीकी सज़ा होती है, पर रोज़ वैसे ही अपराध होते हैं। यह मनोविज्ञानका प्रश्न है कि ऐसा क्यों होता है। क्या प्रेम और रागकी अतिमें अपनी जानतक दी जाती है? क्या घृणा और द्वेषकी हद हो जानेपर दूसरेकी जानतक ली जा सकती है?

कल्पनामें वह सम्भव प्रतीत होता है कि बड़ा छोटेके प्रति अपार प्रेम होनेके कारण अपना सर्वस्व छोटेपर निछावर कर दे, ताकि छोटेका छुटपन जाता रहे। या छोटा अपना सर्वस्व बड़ेको अर्पित कर दे, ताकि उसीमें तल्लीन हो जावे! पर, व्यावहारिक दृष्टिसे, क्या यह सम्भव है? क्या 'महान्' 'लघु' से, बड़ा छोटेसे सब कुछ लेकर उसे और भी छोटा कर सकता है? पति अपनी स्त्रीका प्रेम लेगा, सेवा लेगा, पर स्त्रीका स्त्रीत्व, उसकी पृथक् सत्ता बनी रहेगी। सम्पूर्ण ऐक्य तो सम्भव ही नहीं है। सम्पूर्ण ऐक्य मुक्तिका नाम है—जिस दशामें 'भाव-क्रीड़ा' बाल-क्रीड़ा होती है। मुक्तिकी दशामें भावोंका दीपक निर्वाण प्राप्त करता है।

हाँ, तो दोनों एक-दूसरेमें एकदम तन्मय नहीं हो सकते। यह सम्भव नहीं है। एक 'अपनापन' दूसरेमें तन्मय कर सकता है। इसलिये, फल यह होगा कि बड़ा ही अपनेको 'छोटे' के लिये समर्पित कर सकता है। जो महान् है, वह छोटे, दुर्बलके लिये, उसकी सेवाके लिये, उसके प्रति अनुरागके कारण, अपना सब कुछ अर्पण कर देगा। छोटा बड़ेको कुछ दे नहीं सकता। बड़ा छोटे-को सब कुछ दे सकता है। इसी 'सब कुछ दे सकनेको' 'कृपा' या 'उदारता' कहते हैं। 'ध्यानबिन्दु उपनिषद्'ने मनुष्यके हृदयके भीतर एक ओर चरम सीमाके रागमें 'कृपा' की सत्ता, दूसरी ओर चरम सीमाकी घृणामें 'हिंसा' की स्थिति बतलाया है। डा० भगवानदासजीने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'साइन्स आफ इमोशन्स' में इसी कृपाको 'बेनेवोलेंस' (Benevolence) कहा है और इसी कृपाकी वह इस प्रकार प्रशंसा करते हैं—'संसारमें मनुष्यके लिये इससे बढ़कर और कोई प्रेम नहीं कि वह अपने मित्रोंके लिये अपना जीवन उत्सर्ग कर दे।'

इस प्रकार, देशकी रक्षाके लिये, देशकी दुर्बल जनता-को कष्टसे बचानेके लिये देश-भक्त प्राण दे देता है; नदीमें डूबते हुएकी रक्षाके लिये बलवान् पानीमें कूद पड़ता है और या तो एक जान बचा लेता है या स्वयं अपनी जान दे देता है। किसी युवतीके सतीत्वको सङ्कटमें देखकर कोई साहसी तथा सदाचारी वीर आततायीसे लड़कर अपनी जान दे डालता है। अपने दुराचारी पतिकी सेवामें (आचरण-में महान् होनेके कारण उससे उच्च आत्मा) उसकी स्त्री भयङ्कर रोगोंकी शिकार बनती है, पर अपने पतिकी सेवासे मुख नहीं मोड़ती! अपने बालकपर अत्यन्त स्नेह होनेके कारण कितने पिता-माता उसकी रक्षाके लिये जान दे देते हैं! कोई माता अपनी कन्याको एक दुष्ट पतिसे बचाने-के लिये कुएँमें क्यों कूद पड़ती है?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'कृपा' एक ऐसा शब्द है, जिसका प्रयोग ठीक न होनेपर भी हमें विवश होकर करना पड़ा है। उसका उलटा है 'हिंसा'। 'उदारता' की चरम विपरीत वस्तु है—'मद'। 'मद' का भाव कब आता है? बराबरवाला बराबरवालेकी हानि नहीं कर सकता। छोटा बड़ेकी हानि नहीं कर सकता। इस दशामें भी बड़ा ही अपराधी और आततायी होता है। बड़ा ही अपनेसे दुर्बलको मार सकता है। दुर्बलके प्रति बड़ेकी घृणाको ही 'मद' कहते हैं। 'मद' शब्दसे पूरा काम नहीं चलता। पर, इससे अधिक अर्थपूर्ण और कोई शब्द नहीं है। 'मद' के भीतर 'क्रूरता' भी समझ लेना चाहिये। बड़ेसे हमारा तात्पर्य है जीवन ले सकने या दे सकनेकी क्षमता रखनेवाली 'आत्मा', पाठक 'बड़े' शब्दका अन्य कोई अर्थ न लगावें!

द्वेषसे हिंसाकी अधिकता

अब, प्रश्न यह होता है कि अधिकांश दशामें कम-से-कम आजकल प्रेम-रागके कारण जीवन बलिदान करनेकी तुलनामें द्वेषके वशीभूत होकर, घृणाके अतिरेकमें हिंसाकी अधिकता क्यों है? इसका क्या कारण है? 'राग' की अधिकतामें प्राण हवन कर देना कम सुना जाता है। आत्म-रक्षाके लिये अपनी जान बचानेके लिये जान दे देना और बात है। पर हमारे सामने अनेकों उदाहरण ऐसे हैं जब दूसरेकी दीनता—दुर्बलतासे द्रवीभूत होकर प्राण दे दिया गया है। भगवान् बुद्धने ब्राह्मणके घरमें, अपने एक पूर्व-जन्ममें, भूखसे मरनेवाली एक सिंहिनीकी रक्षाके लिये जान दी थी। कितनी सती स्त्रियाँ अपने पतिके विषैले घावको अच्छा करनेके लिये, उसे चूसकर जान दे देती हैं। जहाज डूब जानेपर, समुद्रमें एक लकड़ीके तख्तेपर शरण लेने-वाले मल्लाह तख्तेको बोझके कारण डूब जानेसे बचानेके लिये 'लाटरी' निकालकर, जिसका नम्बर आता है, पानीमें कूदकर जान दे देते हैं। कभी-कभी बिना जीवन-दानकी इच्छा किये ही जान चली जाती है—आगमें जलते हुए घरमें किसीकी जान बचानेके लिये घुस जानेवाला साहसी जान देने नहीं जाता—पर जान चली जानेकी परवा भी नहीं करता। देश-रक्षा या पराये देशको जीतनेकी कामना करनेवाला सिपाही अपनी जान देनेसे अधिक दूसरेकी जान लेना चाहता है और ऐसी दशामें यदि उसकी जान चली भी जावे तो उसे चिन्ता नहीं होती। पर इतना सब होते हुए भी संसारमें दयालुता—कृपालुताकी तुलनामें क्रूरता, आततायीपन, अत्याचारके उदाहरण भरे पड़े हैं। डा० भगवानदासजीके शब्दोंमें—'मनुष्यताके लिये यह दुर्भाग्य-की बात है कि मानवी सभ्यताके विकासकी वर्तमान युगकी गुँथी हुई परिस्थितिमें, पहलेसे ही सोचकर, परोक्षरूपसे दूसरे जीवनके अपहरणका कार्य बहुत अधिक होता रहता है।'

इसका कारण बड़ी आसानीसे समझमें आ जावेगा। राग अथवा प्रेमका उद्देश्य या लक्ष्य होता है—एकता प्राप्त करना, प्रेमीके साथ एक हो जाना। इसलिये, राग-पक्षमें, कृपा या उदारताका भाव जाग्रत होनेपर, क्रमशः महान् अपना सर्वस्व दान देता जाता है, ताकि वह अपने कृपापात्रको अपने बराबर कर उसे अपनेमें मिला ले। कृपालु आत्माकी कृपा या उदारताका क्रम धीरे-धीरे चलता है तथा दुर्बल आत्माकी आवश्यकता ही पूरी करना उसके आत्म-त्यागका लक्ष्य होता है। ऐसी दशामें यकायक या एकदम जान दे देना, जीवन बलिदान कर देना आवश्यक नहीं होता। इसकी जरूरत बिरले ही पड़ती है। पर घृणाके भावमें प्रारम्भसे ही पृथक्त्व—अलग हो जानेकी, अलग कर देनेकी, घृणित वस्तुकी सत्ता ही नष्ट कर देनेकी इच्छा जन्म लेती है। अतएव घृणाका कार्य ही है संहार करना! जिस समाजमें जितनी ही सभ्यता, शिक्षा तथा धार्मिकता होगी, वहाँ लोगोंके मनपर उतना ही अच्छा संस्कार प्रभाव रखता होगा और उस समाजके लोग अपने मनकी घृणापर उतना ही काबू रखते होंगे। फलतः उस समाजमें हत्या तथा हिंसाका उतना ही अभाव होगा। जङ्गली जातियोंमें किसीकी जान लेना मामूली बात है। ज़रा-सी लड़ाईपर जान ले लेना एक साधारण घटना है। पढ़े-लिखे समझदार आदमी किसी शत्रुकी जान लेकर, उसे दुनियाँसे मिटा देना भयङ्कर पाप समझते हैं। उनका कहना है कि जब हम किसी मुर्देमें जान डालनेकी ताक़त नहीं रखते तो किसी जानवालेको मुर्दा कैसे बना सकते हैं!!! पढ़ा-लिखा आदमी अपने घृणित पदार्थ (व्यक्ति) पर साधारण प्रहार कर उसकी साधारण हानि कर सन्तुष्ट हो जायगा; जो साधु-सन्त होंगे, वे जिससे द्वेष या घृणा करेंगे उसे—

बड़की मार कबीरकी, चितसे दिया उतार।

डकैतीके लिये किसीकी जान लेना या वासनाके द्वेषके कारण हत्या करना—अपनी स्त्रीकी बेवफ़ाईपर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उसकी जान लेना—ये अप्रत्यक्ष द्वेष या घृणाके उदाहरण हैं। इस दशामें जो हत्या होती है उसका उद्देश्य होता है आत्म-सुख, आत्म-कल्याण। अपनी समृद्धिके लिये डाका डाला जा रहा है, जिसके लिये किसीकी जान लेना जरूरी है। अपनी स्त्री अपने सुखके लिये है—इसलिये परायेका प्राण लेना चाहिये—इन्हीं भावोंके कारण रोज हत्याएँ होती हैं। आत्म-सुखकी कामना रागी या प्रेमीकी भी होती है। पर उसे आत्म-सुख तभी मिलेगा जब उसका प्रेमी भी उसीके समान सुखी हो जावे। पर, उपरिलिखित दशामें तो हत्यारा केवल अपना सुख देख रहा है। जिसकी जान ले रहा है उसका सुख नहीं। यदि किसी स्त्रीको किसी अन्यसे प्रेम है तो उसका पति उसकी जान क्यों लेता है? क्या स्त्री अपने हृदयका सौदा स्वयं नहीं कर सकती! ऐसी दशामें दो आत्माओंके स्वार्थमें संघर्ष होगा और इसी संघर्षसे घृणा उत्पन्न होगी। अत्यधिक स्वार्थी पतिकी स्त्री यदि अपने आचरणसे पतिके हृदयकी द्वेषाग्निको प्रज्वलित न होने देगी तो उसके पतिके हृदयकी घृणा भी छिपी रहेगी, उसकी स्वार्थपरता दबी रहेगी और वह अपनी पत्नीको 'प्यार' करेगा। कहते हैं कि नर-मांसाहारी जीव अपने भोज्य पदार्थको बड़े यत्नसे, प्रेमसे पालते-पोसते हैं। पर, यदि वह पदार्थ ज़रा भी भागनेका यत्न करे तो—फिर देखिये उसकी दुर्दशा। बिल्ली चूहेको खिला-खिलाकर मारती है। चूहेसे उसे सुख मिलेगा, इसलिये वह उसके साथ खेलती है। कसाईखानेमें गाय, बकरीको खूब खिलाकर मोटा किया जा रहा है—पर इस खिलानेके भीतर कितना गहरा स्वार्थ है! जब काटे जानेके समय बकरी भागना चाहती है, वही हाथ जो उसे प्रेमसे खिलाता था, क्रोधपूर्वक काट डालता है। अतएव इच्छाओंके संघर्षसे ही, स्वार्थोंके वैपरीत्यसे ही घृणाका, घृणासे मदका, मदसे क्रूरताका भाव पैदा होता है और तुरन्त 'हिंसा' की जाती है। यदि दोनों जीवके स्वार्थ एक हों तो घृणा रह ही नहीं सकती।

घृणाका व्यापक क्षेत्र

इस संसारमें घृणाका, द्वेषका क्षेत्र बड़ा व्यापक है। ज़रा-से अपमानसे कितने आदमी कट्टर दुश्मन बन जाते हैं। किसीके बड़प्पनमें ज़रा-सा दाग़ लगा नहीं कि वह जान लेनेको उतारू हो जावेगा। कुछ लोग चाहते हैं कि सभी उनका बड़प्पन स्वीकार कर लें—यदि न करें तो दण्ड भोगें। कुछ ऐसे हैं जो दूसरेकी उन्नति नहीं देख सकते। 'किरातार्जुनीय' का वाक्य है—

'प्रकृतिः खलु सा महीयसां सहते नान्यसमुन्नतिं यया।'

यानी, मदवान् पुरुष स्वभावतः दूसरेकी उन्नति नहीं देख सकते। ऐसी दशामें उन्नतिशील आत्माकी हत्यातक कर दी जाती है।

कुछ ऐसी दशाएँ भी हैं जब राग तथा द्वेष दोनों कारणोंसे मृत्यु होती है। विगत महासमरमें मित्र-राष्ट्रकी सेना यदि यह समझकर लड़ रही थी कि वह 'स्वाधीनता' तथा 'समानता' की रक्षाके लिये लड़ रही है तो वह राग-पक्षमें है। पर, यदि वह इसलिये लड़ रही है कि एक राष्ट्रको नष्ट कर दे तो वह द्वेष-पक्षमें है।

द्वेष या घृणाका प्रारम्भ क्रोधसे होता है। जब दो जीवोंमें आपसमें अपकर्षण (आकर्षणका उलटा) हो जावेगा, वे एक दूसरेसे अधिकतम पृथक् होना चाहेंगे। इसलिये एक चाहेगा कि दूसरेका इतना अधिक अपहरण कर लिया जावे कि उसकी सत्ता ही दुर्बल हो जाय और वह उससे छोटा—हेय हो जाय। पर, दूसरा पहलेके इस प्रयत्नमें बाधक होता है, फलतः आपसमें 'हाथापाई' होती है। बलवान् जीव दुर्बलको हरा देगा और उसे यह सोचकर अभिमान या 'मद' होगा कि उसने अपने शत्रुकी 'आत्मा कुचल दी।' दुर्बलका क्रोध भीतर ही सुलगता रहेगा और वह उसीमें जलता-भुनता रहेगा। सम्भव है, मौक़ा पाकर दुर्बल सबलकी जान ले बैठे, या मदान्ध सबल दुर्बलको समाप्त कर दे। पर, जबतक दोनोंमेंसे एक भी जीवित रहेगा, चाहे वह शत्रुकी जान ही क्यों न ले ले, उसके हृदयके भीतर घृणाकी यादगार बनी रहेगी। चेतनतामें घृणा वर्त्तमान रहेगी। इसी घृणाके वर्त्तमान रहनेका फल है कि केवल लड़ाईमें विजय पाने या करोड़ोंकी जान लेनेसे ही विजेता देश सन्तुष्ट नहीं होता। विजयके उपलक्ष्यमें छुट्टियाँ मनायी जाती हैं। हर साल एक नया राष्ट्रीय पर्व लगता है। कीर्त्तिस्तम्भ बनते हैं। पर, ये कीर्त्ति-स्तम्भ नहीं, घृणा-स्तम्भ होते हैं। पश्चिमीय सभ्यतामें इसका पूर्ण उदाहरण मिल सकता है।

पश्चात्ताप

जब घृणासे पेट भर जाता है, जब मदान्धकी द्वेष-वृत्ति खुलकर खेल चुकती है, उस समय मानवी स्वभावके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नियमानुसार 'पश्चात्ताप' का भाव पैदा होता है। पर, पश्चात्तापके समय भी 'दोनों जीवों' का सम्बन्ध वर्त्तमान रहता है। चेतनामें दोनों ही परस्पर निकट हैं—यद्यपि उनका सम्बन्ध इस समय बदल गया है। इसी प्रकार जिस जीवके हितमें कोई जीव आत्म-बलिदान कर देता है, वह मर जानेपर भी अपने कृपाभाजनके मनमें जीवित रहता है। वह सदैव अपने रक्षकको ध्यानमें रखता है। इस प्रकार चेतनामें बुराई-भलाई दोनों ही अङ्कित रहती हैं। और जो जितनी ही बुराई लेकर मरेगा उसकी चेतना उतनी ही कलुषित होगी और वह उतना ही कष्ट भोगेगा यानी 'पश्चात्ताप' करेगा और जो जितना ही उच्चात्मा होगा, वह उतना ही सुख करेगा। पुराणोंमें, अतिरञ्जित भाषामें, जिस कर्म-सिद्धान्तका वर्णन है, वह उपरिलिखित मनोवैज्ञानिक सत्यसे सिद्ध हो जाता है। चेतनाका चित्रपट जितना ही कलुषित होगा, कर्म भी वैसे ही होंगे। इसके विपरीत, कर्म सुन्दर होगा। इसीको महाभारतके आश्रमवासिकपर्वमें इस प्रकार समझाया है—

अविप्रणाशः सर्वेषां कर्मणामितिनिश्चया।
कर्मजानि शरीराणि शरीराकृतयस्तथा॥
महाभूतानि नित्यानि भूताधिपतिसंश्रयात्।
तेषां च नित्यसंवासो न विनाशो वियुज्यताम्॥

अन्तमें शङ्का यह होती है कि क्या निर्जीव पदार्थोंके प्रति भी 'भाव' नहीं उठते? उनके प्रति जो भावना होती है, वह 'भाव' है या नहीं? हम तूफ़ानसे डरते हैं। सूर्यकी धूपसे चिढ़ जाते हैं। बच्चा उस पत्थरको मार देता है, जिससे उसे चोट लगती है। हमें अपना घर प्यारा मालूम होता है। पर्वतका दृश्य रमणीक मालूम होता है। क्यों? इसका अर्थ केवल यही है कि इस अवस्थामें भाव शब्दका उपयोग केवल आनुषङ्गिक है। तूफ़ान, पत्थर, पर्वत, घर, सभीकी हम मनमें व्यक्तिके रूपमें कल्पना कर लेते हैं। हम उनको जीवित पदार्थ समझकर उनके प्रति अपनी रुचि-कुरुचिको 'भाव' कहने लगते हैं। फिर भी हम उन्हें स्वतन्त्र रूपसे सुख या दुःख देनेवाला पदार्थ मानते हैं जिनकी सत्ता हम नष्ट नहीं कर सकते; यदि हम उनको ऐसी वस्तु मानें जिसके प्रति अत्यधिक राग होनेपर हम उन्हें अपनेमें तन्मय कर सकें या नष्ट कर सकें तो उनके प्रति प्रीति-अप्रीतिका भाव विशेष बलवान् होगा। भोजनके प्रति प्रीति-अप्रीतिका भाव प्राकृतिक दृश्योंकी तुलनामें अधिक बलवान् होता है।

अस्तु, सारांशमें संसारके सभी जीव संस्मरण तथा चेतनाकी ग्रन्थिसे ग्रथित होकर, परस्परमें राग-द्वेषसे तबतक सम्बन्धित रहते हैं जबतक 'ज्ञान' इन ग्रन्थियोंका बन्धन ढीला नहीं कर देता !!!

वेदना-निवेदन

(लेखक—पं० श्रीमहावीरप्रसादजी जोशी काव्यतीर्थ)

नाथ, पड़ा हूँ भव-वारिधि-वासना-भँवरमें फँसा हुआ।
विपद-वाड़वानलमें जलता पाप-पङ्कमें धँसा हुआ॥
गौरव-ग्राह-ग्रस्त हो व्यस्त हुआ तृष्णा-तूफानोंमें।
पल-पल लिपटा ललित-लालसा-लहरी-कल-कल गानोंमें॥
भोग-भोगने डसा किया है विषय-महाविषने पागल।
करुणाकर! करुणा-तरणी आवश्यक है अब तो प्रतिपल॥
यदि न मुक्त मुझको कर सकते तो भी इतना तो करना।
हरकर सुख-संसक्ति हृदयमें अपनी भव्य भक्ति भरना॥
फूल बनाना मुझे न चाहे पर न भूल इसमें करना।
धूल बनाकर मुझपर प्रभु! अपने भव-भरण चरण धरना॥
गङ्गाकूल न करना चाहे तूल[2] परन्तु बना देना।
अपने एक दीपमें मुझको वर्त्ती बना जला देना॥

१—साँपका फन। २—रुई।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मनको उपदेश

(श्रीसमर्थ रामदास स्वामीजीके 'मनाचे श्लोक' का अनुवाद)

(अनुवादक—कृष्णप्रसूत)

(गतांकसे आगे)

६६–हे मन, संसार साररहित और घोर दुःखमय है। अच्छी तरहसे विचारपूर्वक सत्यकी खोज कर, विषय-रूपी विष सेवन करनेके बाद भविष्यमें सुख कहाँ है? अतः श्रीराघवका ध्यान कर।

६७–मेघवर्ण श्रीराम सुन्दर, धैर्यशील, गम्भीर और पूर्ण प्रतापी हैं, संकटके समय भक्तोंकी रक्षा करते हैं, अतएव प्रातःकाल श्रीरामजीका चिन्तन कर।

६८–धनुर्धारी श्रीराम श्रेष्ठ बलवान् हैं। जब यमराज भी उनके सामने काँप उठता है तब मनुष्योंकी तो बात ही क्या? अतः प्रातःकाल श्रीरामका चिन्तन कर।

६९–जो सुख और आनन्द देनेवाला है, तथा दुःखोंका निवारण करनेवाला है उसीका जगत्‌में भक्ति-भावसे भजन कर, अनाचार-वृत्तिका और मत्सरका त्याग कर एवं प्रातःकाल श्रीरामका चिन्तन कर।

७०–पूर्णकामप्रद श्रीरामका नाम सदा मुखसे लेता रह। नित्य-नियमपूर्वक श्रीराम-नाम लेनेसे आपदाएँ पीड़ा नहीं पहुँचातीं। मद और आलस्यका त्याग कर, और प्रभात-कालमें श्रीरामका चिन्तन कर।

७१–जिनके नामसे बड़े-से-बड़े दोष दूर हो जाते हैं, उत्तम गति मिलती है, पुण्यका पुञ्ज हाथ लगता है, उन रामजीका प्रभातकालमें चिन्तन कर।

७२–ग्रन्थोंमें क्या है यह देखनेकी आवश्यकता नहीं। मुखसे श्रीराम-नाम लेनेमें कुछ भी नहीं लगता। महा घोर संसाररूपी शत्रुको जीतना हो तो प्रभात-समय श्रीराम-का चिन्तन कर।

७३–देह-दण्डनादि साधन दुःखमय हैं। नाम-स्मरणसे महान् दुःख भी भाग जाता है। भगवान् शङ्कर इन सर्वोत्तम देवका ही चिन्तन करते हैं। अतः प्रभातसमय मनसे श्रीरामनामका ही चिन्तन कर।

७४–दूसरे बहुत-से साधनोंमें विघ्नोंका भय है। व्रत, दान, उपासनादिके निमित्त द्रव्यकी आवश्यकता पड़ती है। अतः प्रातःसमय दीनोंपर दया करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी-का चिन्तन कर।

७५–नामस्मरण ही सब साधनोंका सार है। न समझा हो तो विचारपूर्वक खोज कर। संशयका छेदन करके प्रातःकाल श्रीराम-नामका स्मरण कर।

७६–कर्म, धर्म, योग, भोग, त्याग शास्त्रविहित नहीं होता, अतः नाम-स्मरणमें दृढ़ श्रद्धा रखकर प्रातःकाल राम-स्मरण कर।

७७–श्रीरामचन्द्र-सम्बन्धी इच्छा सब कर्मोंको निष्काम बना देती है। सब भूतोंमें श्रीरामरूप प्रतीत होने लगता है। हरि-कीर्तनमें विशेषतया विश्वासयुक्त बुद्धिसे भगवान्‌का गुणानुवर्णन किया जाय तो उससे मनुष्य द्वन्द्वातीत होता है।

७८–जिसका श्रीराममें विश्वास नहीं, उस पामरपर सभी ओरसे कष्ट आते हैं। महाराज श्रीरामचन्द्र मुक्ति देनेवाले हैं। देह और संसारकी चिन्ता करना व्यर्थ है।

७९–संसारकी चिन्ता छोड़कर श्रीरामचन्द्रजीमें पवित्र भावना रख। जीवको संसारका भ्रम हो गया है। इससे सत्य वस्तुकी धारणा नष्ट होती है।

८०–शङ्कर-हृदय-निवासी लक्ष्मीपति श्रीरामको अन्तः-करणमें स्थापन करके दुस्तर सागरसे पार हो जा। कभी तृप्ति न पानेवाले इस पेटकी चिन्ता छोड़ और दुष्ट मत्सरका नाश कर डाल।

८१–हे मन! मत्सरग्रस्त होकर नाम-स्मरण मत छोड़। आदरबुद्धिसे नाम-स्मरणका ही अवलम्बन रख। नाम-स्मरण सब साधनोंका सार है। इसकी दूसरी उपमा ही नहीं, यह अनुपमेय है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

८२–दूसरे अनेकों मन्त्रोंकी राममन्त्रसे तुलना नहीं हो सकती, यह बात अभागे मनुष्यकी समझमें नहीं आती। शङ्करभगवान्‌ने हलाहल विषपान करके इसी ओषधिका सेवन किया था, फिर दूसरे पामर जीवोंकी तो बात ही क्या ?

८३–कामको भस्म करनेवाले श्रीशङ्करभगवान् श्रीरामचन्द्रका ही ध्यान करते हैं और बड़े भारी आदरके साथ श्रीपार्वतीजीके समीप राम-गुणानुवाद गाया करते हैं। जिनमें इतना ज्ञान, वैराग्य और सामर्थ्य है, उनका भी राम-नाममें इतना विश्वास है।

८४–जिन भगवान् शङ्करको स्वयं विठ्ठलदेवने अपने सिरपर उठाया, उन शङ्करके अन्तःकरणमें भी राम-नामका ध्यान होता है, यह तू जान ले। हलाहल पानसे उत्पन्न हुई शङ्करकी जलन इसीसे शान्त हुई, अन्तकालमें उन्हीं रामचन्द्रका स्मरण करनेसे उद्धार होगा।

८५–जो श्रीरामचन्द्र योगेश्वरोंके विश्राम-स्थान हैं, जिनके नाम-जपका शङ्करभगवान्‌ने व्रत लिया और स्वयं शान्त हुए, वही श्रीराम अन्तकालमें तुमको छुड़ावेंगे।

८६–जिसके मुखमें रामनाम है वही शान्ति और आनन्दका लाभ उठाता है, उसीका आस्वादन करते हुए जीवन व्यतीत कर। इसके अतिरिक्त सब कुछ निरर्थक भ्रममात्र है और सन्देहमें डालनेवाला है। रामनाम ही शोकापहारी है।

८७–जिसके मुखमें रामनाम है उसको कामकी बाधा नहीं होती। गुणानुवादसे उसका धैर्य सदा बना रहता है, ऐसा हरिभक्त मारुतात्मज हनूमान् कामका नाश कर जगत्‌में धन्य हुआ है।

८८–श्रीरामनाम स्वल्प, सरल और मूल्यहीन होकर भी भवसागरकी जड़ काटनेवाला है, इसलिये मनुष्योंको मुक्ति देनेवाला है।

८९–भोजनके समय उच्च स्वरसे आग्रहके साथ श्रीरामचन्द्रजीके नामकी घोषणा कर और नाम-स्मरण करते हुए ही अन्नसेवन कर। इससे सहज ही श्रीहरिकी प्राप्ति हो जायगी।

९०–जिसके मुखसे रामनाम नहीं निकलता, उसकी बड़ी हानि होती है। जो रामनामको तुच्छ समझता है उसका जीवन व्यर्थ है। वेद-शास्त्रोंमें तथा व्यास महाराजने पुराणोंमें नामकी महिमा खूब गायी है।

९१–राम-नामसे घृणा मत कर, अति आदरपूर्वक रामनाम ले। इसमें तेरा कुछ भी खर्च नहीं होता। सीताराम-नामकी ध्वनि कर।

९२–अति आदरपूर्वक रामनाम लेनेवालोंके समस्त दोष गिरिकन्दराओंमें जाकर छिप जाते हैं। जहाँ रामनामकी ध्वनि होती है वहीं श्रीरामचन्द्र निवास करते हैं। श्रीशङ्करभगवान्‌को रामनामकी धुन लगी रहती है।

९३–जगत्‌में सब प्राणियोंका योगक्षेम चलानेकी चिन्ता तो तत्त्वतः परमेश्वर ही कर रहा है; फिर हे मन, केवल मुखसे उसका नाम लेनेमें तेरा क्या खर्च होता है ?

९४–जो अपने कोपसे त्रिभुवनको जलानेमें समर्थ हैं, ऐसे श्रीशङ्करजीको भी राम-नाममें ही शान्ति मिली। जगन्माता पार्वतीजी भी रामनामका ही जप करती हैं। तू भी वही राम-नाम ले।

९५–पातकी अजामिल पुत्रके हेतु नारायण-नामका उच्चारण करनेमात्रसे मुक्ति पा गया। तोतेको 'विठ्ठल, विठ्ठल' सिखानेवाली वेश्या भी मुक्ति पाकर पुराणोंमें प्रसिद्ध हो गयी।

९६–दैत्य-कुलमें उत्पन्न हुआ प्रह्लाद सर्वदा राम-नामका जप करता था। पापोंका मूर्तिमान् पुतला उसका बाप हिरण्यकशिपु यह नहीं देख सका। फिर मुखसे नाम लेना तो दूर रहा।

९७–जो मुखसे नाम नहीं लेता, उसको मुक्ति कहाँ ? मनुष्य अहंकारसे वृथा यातना भोगता है। मृत्यु टल नहीं सकती, अतएव रामनामका भजन कर।

९८–हरिनामसे पाषाण भी तर गये। अनेकों मनुष्य-प्राणी भवसागरसे पार हो गये। उसी रामनाममें अविश्वास करके जो मुखसे नाम नहीं लेता वह पापकी मूर्ति ही है।

९९–जगत्‌में काशीक्षेत्र पुण्यदायक और धन्य है, वहाँ जानेसे पूर्वजोंका उद्धार होता है। रामनामका अखण्ड जप करना जीवोंके हितकी बात है, श्रीकाशीविश्वेश्वरने भी यही कहा है।

१००–शास्त्ररीतिसे हाथसे कर्म नहीं होता, हुआ तो उसका फल मिलना कठिन है। प्राणिमात्रके लिये अन्तः-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करणमें दया भी नहीं और मुखसे नाम भी नहीं लिया जाता, इसमें कुछ भी खर्च नहीं।

१०१–जिसका नाममें अविश्वास है और जिसको नामकी चाह नहीं है, उसको यमयातना भोगनी पड़ती है। इसलिये आदरपूर्वक मुखसे नाम ले। नाम लेनेसे मनुष्य सहज ही पापमुक्त हो जाता है।

१०२–अन्तःकरणपूर्वक नम्रतासे समस्त मनुष्योंको और विशेषतः सज्जनोंको सन्तुष्ट करना चाहिये। परोपकारमें शरीरको क्षीण कर दे, और अत्यन्त आदरसे परमेश्वरके सगुणरूपका भजन कर।

१०३–हे मन, श्रीरामचन्द्रजीके गुणानुवाद गा। गुणानुवाद गानेमें देहको भी भूल जा। परद्रव्य और परस्त्रीका अभिलाष मत कर।

१०४–बातें तो ब्रह्मज्ञानकी करना और आचरण उसके विरुद्ध रखना तथा चित्तको विषयोंमें एवं दुर्वासनाओंमें लगाये रखना, इससे मनुष्यको लज्जित होना पड़ता है, ऐसे मनुष्यको ईश्वर-प्राप्ति कैसे हो?

१०५–विवेकसे असत् आचरणको छोड़ दे और शुद्ध आचरणको ग्रहण कर। जैसा कहे वैसा ही कर और काल्पनिक संसार-दुःखसे मुक्त हो।

१०६–नित्य विधिपूर्वक एकनिष्ठासे स्नान-सन्ध्यादि कर। आत्मस्वरूपसे भ्रष्ट करनेवाले सङ्कल्प-विकल्पोंका निग्रह कर। जो मनुष्य सब मनुष्योंके साथ प्रेम करता है और दयासे व्यवहार करता है उसीको शान्ति मिलती है।

१०७–हे मन, क्रोधकी उत्पत्ति मत होने दे। सत्सङ्गमें बुद्धिको सदा लगाये रख। पतनके कारण दुष्ट-सङ्गको छोड़ दे, और मुक्तिका अधिकारी बन जा।

१०८–हे मन, सन्तोंकी सङ्गतिमें रह। उससे आचरण शुद्ध होकर भक्ति-भावनाको उत्तेजना मिलती है। बिना कुछ किये केवल लम्बी-चौड़ी बातें करना व्यर्थ है। जिससे कुछ हित हो वही वाद ठीक है।

१०९–व्यर्थके वाद-विवादको छोड़ दे। सुख उपजानेवाला संवाद कर। वही संवाद कर जो हितकारी हो और शोक-सन्तापको हटानेवाला हो।

११०–तत्त्वबोध करानेवाला वाद ही उचित संवाद है। अहङ्कारसे मनुष्य मिथ्यावाद करते हैं। अतः विवेकद्वारा अहङ्कारको हटाकर जो हितकारी हो, वही वाद कर।

१११–हे मन! तेरे हितके लिये यह सच्ची सुनानी पड़ती है। सच है या नहीं विचारकर देख। अपने हितके लिये ही मिथ्यावाद छोड़ और जो परिणाममें हितकर और सुखप्रद हो, वही वाद कर।

११२–कहने और सुननेवाले मनुष्य जगत्में बहुत हो गये, किन्तु मिथ्यावाद अभी वैसा ही है! दम्भसे किया हुआ वाद-विवाद संशय उत्पन्न करता है, अतएव हितकारी वाद-विवाद ही कर।

११३–बड़े-बड़े पण्डितोंने स्वयं अपना अहित किया है इससे उनमेंसे कोई तो ब्रह्मराक्षस हो गये। परमेश्वरसे अधिक विद्वान् कौन है? विचारकर देख।

११४–ब्रह्मज्ञानकी कोरी बातें करनेमें क्या है? अन्तःकरणमें तो गर्व बढ़ रहा है। बिना आचरण ब्रह्मज्ञानकी बातें व्यर्थ हैं। हे मन! तू ही विचारकर देख।

११५–जहाँ मिथ्यावाद न हो, वहीं संवाद कर। विवेकसे अहङ्कारको दबा दे। दिनोंदिन विशुद्ध आचरण रखकर भक्तिमार्गका सेवन कर।

११६–दुर्वासा ऋषिके शापसे त्रस्त अम्बरीष राजाको श्रीहरिने छुड़ाया और उसके यहाँ जन्म लिया। उपमन्युको क्षीरसागर ही दे दिया। भक्ताभिमानी परमेश्वर अपने भक्तोंकी कभी उपेक्षा नहीं करते।

११७–पाँच सालके छोटे-से ध्रुव बालकके कृपाकी भीख माँगते ही नारायण स्वयं उपस्थित हो गये और उसको नक्षत्र-पुञ्जमें अचल पद दिया। भक्ताभिमानी परमेश्वर अपने भक्तोंकी कभी उपेक्षा नहीं करते।

११८–महान् संकटमें फँसे हुए गजेन्द्रके आर्त होकर पुकारते ही श्रीहरि दौड़कर आये और डुबकी लगाकर उसको छुड़ाया। भक्ताभिमानी परमेश्वर अपने भक्तोंकी कभी उपेक्षा नहीं करते।

११९–पापी अजामिलके अन्तसमय नारायण-नाम लेते ही परमेश्वरने उसको मुक्ति दी। अनाथोंके नाथ भक्ताभिमानी चक्रपाणि अपने भक्तोंकी कभी उपेक्षा नहीं करते।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

१२०–ब्रह्माके कारण मत्स्यावतार लिया। कूर्मरूप धारण कर मेरु पर्वतको अपनी पीठपर उठाया। लोकका रक्षण करनेके लिये वाराह अवतार लिया। भक्ताभिमानी परमेश्वर अपने भक्तोंकी कभी उपेक्षा नहीं करते।

१२१–अपने महाभक्त प्रह्लादके बहुत सताये जानेपर भगवान्‌ने नृसिंहरूप धारण किया। मुखसे विशाल ज्वाला निकलनेके कारण उनके पास कोई भी नहीं आता था। भक्ताभिमानी परमेश्वर अपने भक्तोंकी कभी उपेक्षा नहीं करते।

१२२–इन्द्रके कृपाकी भीख माँगनेपर ईश्वरने वामन अवतार लिया, ब्राह्मणोंके रक्षणार्थ परशुराम अवतार लिया। भक्ताभिमानी परमेश्वर अपने भक्तोंकी कभी उपेक्षा नहीं करते।

१२३–वनमें जाते समय अहल्याका उद्धार किया और जिन्होंने रावणके हाथसे सब देवताओंको छुड़ाया, वे भक्ताभिमानी दाशरथी राम अपने भक्तोंकी कभी उपेक्षा नहीं करते।

१२४–वस्त्रहरणके समय द्रौपदीके स्मरण करते ही जो अपने सब काम छोड़कर दौड़ पड़े और कलियुगमें जो बौद्धरूपी मौनी हुए वे भक्ताभिमानी श्रीराम अपने भक्तोंकी कभी उपेक्षा नहीं करते।

१२५–अनाथ और दीनजनोंके उद्धारार्थ जो भविष्यमें कल्किरूपसे अवतीर्ण होंगे और जिनका वर्णन करते-करते वेद भी थक गये, वे भक्ताभिमानी परमेश्वर अपने भक्तोंकी कभी उपेक्षा नहीं करते।

१२६–भक्तोंकी रक्षाके लिये परमेश्वर लीलासे अवतार लेते हैं और प्रसंगवश अनेक वेश धारण करते हैं। उनको जो नहीं जानता वह बड़ा ही दुरात्मा, दुष्ट और चाण्डाल पापी है।

१२७–जिसने श्रीरामचन्द्रजीके ध्यान-सुखकी प्राप्ति की हो, उनके गुणानुवाद सुनते ही जो तल्लीन हो जाता हो, सर्वत्र राम-ही-राम है ऐसी भावनासे जिसका अहङ्कार नष्ट हो गया हो, जिसकी मनोवासनाएँ रामरूपमें डूब गयी हों वह जीव धन्य है!

१२८–हे मन, वासुदेव-प्राप्तिकी ही इच्छा कर। कामादि विषयोंमें आसक्ति मत रख, अनिष्ट कल्पनाओंको त्याग दे और सन्तचरणोंमें लीन हो जा।

१२९–सद्गतिकी प्राप्तिके लिये सन्तोंकी संगति कर। सत्संगसे दुर्मति सुमतिमें परिणत हो जाती है। काम नाशका कारण है अतएव कामसे अलिप्त रह।

१३०–जरा-सा अनिष्ट संकल्प भी छोड़ दे। सत्य संकल्प ही रख। वृथा बोलना छोड़ दे और एकान्त स्थानमें सीतापति श्रीरामचन्द्रजीका भजन कर।

१३१–भजनके लिये श्रीराम एक ही हैं। वे एक-वचनी हैं और उनका चरित्र सब लोगोंका उद्धार करनेवाला है। इसलिये विवेकसे उन्हींका भजन कर।

१३२–विचार करके बोल और विवेकसे चल। ऐसे आचरणसे क्रोधी भी शान्त हो जाते हैं। अच्छी तरहसे सोच-विचारकर बोलना चाहिये। जगत्‌में आचरण शुद्ध और युक्त रखना चाहिये।

१३३–जिस विरक्त और विज्ञानराशि हरिभक्तने आत्मस्वरूपका निश्चयात्मक अनुभव किया हो उसका दर्शन अत्यन्त पुण्यप्रद है और उसके वाक्योंसे सन्देह नष्ट हो जाते हैं।

१३४–गर्वरहित, विरक्त, क्षमाशील, दयावान्, निर्लोभी, क्षोभशून्य, दैन्यरहित और शान्त—इन लक्षणोंसे योगी पहचाने जाते हैं। (क्रमशः)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

राम-राज्यका आदर्श

(लेखक—श्रीरामदासजी गौड़ एम० ए०)

१—उपक्रम

काश्मीरसे कुमारीतक और कटकसे अटकतक, बल्कि ब्रह्मदेश, चम्पा, श्याम, यवद्वीपपुञ्ज आदि दूर देशोंमें भी जहाँतक हिन्दू-संस्कृतिका प्रभाव और विस्तार है, सर्वत्र 'राम-राज्य' शब्द प्रचलित है और यद्यपि उसके वास्तविक भाव और आदर्श-को कोई नहीं समझता तथापि इस शब्दसे सार्वजनिक सुखी और धार्मिक जीवनकी पराकाष्ठा तो समझी ही जाती है। इसीके समकक्ष एक शब्द 'सतजुग' भी है। सतजुग भी इसी अर्थमें प्रयुक्त होता है। फिर भी दोनोंमें थोड़ा-सा अन्तर है। सत्ययुग कहनेसे सार्वजनिक धार्मिक और सुखी जीवनवाले कालका बोध होता है, उससे परम कारण काल ही समझा जाता है। परन्तु रामराज्य कहनेसे साथ-ही-साथ उस सार्वजनिक धार्मिक और सुखी जीवनका परम प्रवर्त्तक शासक या राजा समझा जाता है। सत्ययुगमें तो जनता स्वयं धर्ममें प्रवृत्त थी, धर्मके चारों चरण इस धरतीपर दृढ़तासे स्थापित थे, ब्रह्माकी सृष्टि ही ऐसी थी। जब स्वभावसे ही 'कृतजुग सब जोगी बिग्यानी' थे तो इसमें प्रवर्त्तककी क्या बड़ाई थी। परन्तु 'राजा कालस्य कारणम्' राजा युगप्रवर्त्तक होता है, अपने सुशासन वा कुशासनसे अच्छे या बुरे युगका बलात् प्रवर्त्तन कर देता है। 'राम-राज्य' शब्दका भाव यह है कि भगवान् रामचन्द्रजीके शासनमें हठात् और बलात् सत्ययुगसे भी अच्छे और आदर्श कालकी प्रवृत्ति हो गयी थी। इसमें युगके प्रवर्त्तककी बड़ाई विशेष रूपसे सम्मिलित है।

सत्ययुगमें जनताकी क्या व्यवस्था थी, इसका विस्तारसे वर्णन नहीं मिलता। जो कुछ पता चलता है वह यही है कि जनतामात्र उस समय धार्मिक थी। सत्य और अहिंसाका राज्य था। जब सभी यही विचार रखते थे कि हमारे चारों ओर सब सुखी रहें 'सर्वे भद्राणि पश्यन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः' तो कोई व्यक्ति दुःखी कैसे रह सकता था? जब सभी सच्चे थे तब छल, कपट, धूर्त्तता आदि दुर्गुण तो हो ही नहीं सकते थे। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर—ये छहों विकार यद्यपि निर्मूल नहीं हो गये थे, तथापि सत्य और अहिंसाकी प्रबलतासे ये जनताको दुखी करनेका कारण नहीं होते थे। इन विकारोंका वहींतक उपयोग था जहाँ-तक सृष्टिकी प्रवृत्तिमें इनकी नितान्त आवश्यकता थी। प्रत्येक समाज अपनेको एक शरीर समझता था और व्यक्ति उसी समाज-शरीरके संघटक अङ्ग थे। यही बात थी कि सबसे मुख्य प्रार्थना, वेदोंकी प्राण गायत्री सार्वजनिक प्रार्थना है और यद्यपि व्यक्ति वह प्रार्थना करता है तथापि समाजकी ओरसे ही प्रार्थना करता है। प्रार्थीके बहुवचनका प्रयोग इसी रहस्यका द्योतक है। निदान, सत्ययुगमें समाजमें सर्वांगैक चेतना थी और वह सर्वांगैकता ऐसी व्यापक थी कि व्यक्ति और समाजमें किसी विकारके कारण भी संघर्ष नहीं होता था। यही बात थी कि सत्ययुगमें मोह और शोक न था। 'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।' महा-भारतमें सत्ययुगके सम्बन्धमें कहा है—

न च राज्यं न राजासीन्न च दण्डो न दाण्डिकः।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वाः रक्षन्ति स्म परस्परम्॥
(शा० प०, राजधर्म ५९। १४)

कृतयुगमें पहले न राज्य था न राजा था, न दण्ड था, न दण्डवाला था। धर्मसे ही सारी प्रजा एक दूसरेकी रक्षा करती थी। भाव यह कि धर्म ही रक्षा करता था। पाप, अपराध, हिंसाके अभावमें दण्डका भी अभाव था। फिर दण्ड देने और पानेकी क्या चर्चा। दण्डकी तो उत्पत्ति ही नहीं हुई थी। बहुत कालतक यही व्यवस्था चली। इस तरहकी परस्पर रक्षाका काम करते हुए बहुत काल बीतनेपर थकान आ गया, जिससे लोकात्मबुद्धि बदलकर देहात्मबुद्धि हो गयी, स्वार्थपरता आ गयी। इससे धर्मका ह्रास हो गया। अब लोभने घर दबाया। इसपर काम भी प्रबल हो गया। इस तरह विकारोंकी प्रबलतासे प्रजामें भाँति-भाँतिके पाप बढ़े। सत्ययुगका इसी प्रकार ह्रास हुआ। महाभारतमें राजधर्मपर्वमें विस्तारसे वर्णित है कि इसपर किस प्रकार थोड़े-से धर्मात्माओंने पापग्रस्त दुरात्माओंसे पहले असहयोग किया, फिर जब इससे सफलता न हुई तो प्रजापतिसे फरियाद की, ब्रह्माने एक लाख अध्यायोंकी 'दण्डनीति'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बनायी, उसे भगवान् शंकरने छोटा करके 'वैशालाक्ष' नामक शास्त्र रचा। इन्द्रने पाँच सहस्र अध्यायोंमें उसीसे 'बाहुदन्तक' रचा, फिर गुरुने 'बार्हस्पत्य' और बार्हस्पत्यसे शुक्राचार्यने 'औशनस' और इसी प्रकार उत्तरोत्तर संक्षेप करके ऋषियोंने दण्डनीति बनायी, फिर 'विरजावतार' लेकर भगवान् विष्णु स्वयं राजा बने। होते-होते इसी परम्परामें राजा पृथु हुए जिन्होंने सत्ययुगी राज्यका आदर्श स्थापित किया। पृथुने वस्तुतः इस वसुन्धराका उपयोग करना प्रजाको सिखाया और उन्हींके नामसे यह धरती पृथिवी कहलायी। सत्ययुगके लिये इतना बहुत था क्योंकि फिर भी सारी प्रजा धर्मप्रवण थी। आरम्भमें जो कठिनाई हुई वह तो एक ही अवस्थामें रहते-रहते थकानके कारण उत्पन्न हुई थी। राजाकी व्यवस्थामें वह थकानकी अवस्था फिर न आयी। अब शासन और पालन दोनों कार्य सारे समाजके लिये एक ही व्यक्ति करने लगा। समाजके प्रत्येक व्यक्तिके ऊपर जिम्मेदारी न रही। पहले यह जिम्मेदारी बँटी हुई थी, एककी भूलका परिणाम थोड़ेसे ही व्यक्तियोंपर बीतता था। सारा समाज पीड़ा नहीं पाता था। अब सारे समाजकी जिम्मेदारी जब एक व्यक्तिपर आयी तो उसकी भूलसे सारा समाज पीड़ित होने लगा। वेन, रावण, कंस आदिके कुराज्यमें प्रजा-पीड़नका उदाहरण प्रकट है [महाभारत शान्तिपर्वके राजधर्मके ५९ वें अध्यायसे लेकर नौ अध्यायोंका यहाँ सार दिया है]।

राज्यपद्धतिकी स्थापनाके बाद कुराज्यका पहला उदाहरण वेनका है। उसको ऋषियोंने समाप्त कर दिया और उसके बुरे प्रभावको मिटानेके लिये पृथुकी उत्पत्ति की। यह कथा सत्ययुगकी ही है। उसके पीछे बहुत कालतक साधारणतया कुराज्यकी शिकायत नहीं सुन पड़ती। त्रेताके आरम्भसे ही रावणके अत्याचारोंने युगपरिवर्त्तनका रूप खड़ा कर दिया। रावणका कुराज्य दिन-पर-दिन बढ़ता ही गया। विश्वविराट्के उरसूमें यह कठिन राजरोग इतना बढ़ा कि उसका इलाज ऋषियोंके बूतेके बाहरकी बात हो गयी। रावणराज्य कुराज्यका आदर्श था। उसके अत्याचार बहुत बड़े पैमानेपर हुआ करते थे। उसकी अनीतिके पीछे ज्ञान-विज्ञानका असीम बल था। भगवान् रामचन्द्रजीका अवतार इस कुराज्यके विनाश और रामराज्यकी स्थापनाके लिये हुआ।

रामायणोंमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके चरित तो कुल चार-पाँच वर्षोंके ही कुछ थोड़े-से दिनोंके दिये हुए हैं। जन्मादि, विवाह, चित्रकूट-लीला, सीताहरणसे राज्यपर्यन्त ये चार वर्षोंकी ही कथामें सारी रामायण लिखी गयी है। जन्मके वर्षके पीछे किशोरावस्थातकके १४-१५ बरस, चित्रकूट-निवासके बारह बरस और राज्यके ग्यारह हजार बरसोंकी कथा तो प्रायः कुछ भी नहीं है। भवभूतिने उत्तररामचरितमें भी केवल अन्तिम दिनोंके थोड़े-से चरित दिये हैं। रामायणोंमें भी उत्तर-चरितके अन्तर्गत न्यायके दो-एक उदाहरणमात्र बताये हैं। राज्यका वर्णन किसीने यथेष्ट विस्तारसे नहीं किया है। जैसे योगवाशिष्ठ महा रामायणमें वेदान्तका वर्णन है वैसे ही यदि राम-राज्य-पद्धतिका कुछ विस्तारसे वर्णन होता तो राज-धर्मका एक अपूर्व संग्रह मौजूद होता। ऐसे संग्रहके अभावमें हमें उपलब्ध सामग्रीकी व्याख्यापर ही निर्भर करना पड़ेगा।

२—राम-राज्यकी तैयारी

ग्यारह हजार बरसतक रहनेवाले राज्यकी तैयारी बड़ी अपूर्व रीतिसे हुई। जैसा आदर्श राम-राज्य होनेवाला था वैसा ही आदर्श कुराज्य रावणराज्यका होना उसकी पहली और अनिवार्य सामग्री थी। क्रियाका उत्तर प्रतिक्रियाका होना स्वाभाविक है और प्रतिक्रिया भी क्रियाके ही अनुरूप होती है। रावण-राज्य कुराज्यका जैसे नमूना था वैसे ही रावण स्वयं राक्षसोत्तम था। आत्यन्तिक बल, आत्यन्तिक अनीति और भीमरूपताका अपूर्व संयोग ही राक्षसोत्तमता थी। विश्रवा-जैसे तपोधनकी सन्तानकी ऐसी उलटी दशा थी। उसके राज्यमें अत्याचार और हिंसाका परमोग्र रूप विद्यमान था। तीनों लोकोंमें उसका आतंक छाया हुआ था। चराचर पीड़ित थे। बड़े भाईको निकालकर उसका धन-अधिकार सब कुछ हरण कर तीनों लोकोंको सताकर अपने वशमें कर रखा था। अनेक स्त्रियोंका, अनेक राज्योंका अपहरण किया था। जिनका पालन करना राजाका कर्त्तव्य था रावण-राज्यमें उन्हींका संहार होता था। यज्ञभाग न पानेसे देवता क्षुधाक्षीण बलहीन हो रहे थे। ऋषियोंसे उनके रक्तके रूपमें कर लिया करता था। उससे सभी प्राणी दुखी थे। राक्षस भी उससे भयभीत ही रहते थे। फिर अच्छे प्राणियोंके भयके क्या कहने हैं। नौबत यहाँतक पहुँची थी कि देव-सभामें भी कोई रावणके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कुराज्यकी चर्चा डरके मारे न कर सकता था, ब्रह्माजी भगवान्‌की स्तुतिमें भी उसका नाम नहीं ले सके और आकाशवाणी भी सांकेतिक भाषामें ही हुई। यह सब वह क्रिया थी जिसकी प्रतिक्रियामें रामावतार हुआ और रावणके कुराज्यका नाश और रामराज्यकी स्थापना हुई।

प्रतिक्रियाकी तैयारी उग्र रूपमें नहीं हुई। राजा दशरथ साठ हजार बरसके हो चुके थे। सात सौसे ऊपर रानियाँ थीं। शायद विषयोपभोगातिशयसे उनके सन्तान नहीं होती थी। यज्ञके प्रसादसे चार पुत्र हुए। चारों 'शील-रूप-गुणधाम' थे। यदि बाल्यावस्थासे सब तरहकी उपयुक्त शिक्षा न होती तो रामराज्यका अनुपम आदर्श देखनेमें न आता। गुरु वसिष्ठकी शिक्षा चौमुखी थी। रूप-यौवन दोनोंकी रक्षाके लिये शरीरके व्यायामसम्बन्धी साधन, ब्रह्मचर्य-व्रत, शम, दम, यम, नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान आदिकी शिक्षा भी विद्याके साथ-ही-साथ बड़ी उपयुक्त रीतिसे चारों भाइयोंको समान रूपसे मिली थी। इसके सिवा धनुर्वेदकी विशेष शिक्षा दोनों भाइयोंको विश्वामित्रजीसे मिली थी। इन राजकुमारोंने ब्रह्मचर्यकी गृहीत शिक्षाका जैसा उपयोग किया, विश्वके इतिहासमें उसका जोड़ नहीं मिलता। पुराणोंमें और महाभारतमें भी इस कठिन सुव्यावहारिक ब्रह्मचर्यकी चर्चा और प्रशंसा है। महाभारतमें तो कहा है कि भगवान् रामचन्द्रजी-की प्रजा पूर्णायु भोग करती थी जो एक हजार बरस थी। परन्तु स्वयं भगवान् रामचन्द्रने अपने अनुपम ब्रह्मचर्यके बलसे दस हजार बरससे भी अधिक आयुका उपभोग किया। इस कठिन व्रतके पालनके सामर्थ्यने ही उनसे सभी अद्‌भुत कर्म कराये। चौदह बरसका ब्रह्मचर्य, वानरोंका संगठन और रावण-जैसे महापराक्रमी राक्षसेश्वरका संहार उनके खेदरहित दस हजार वर्षके धर्म-शासनके सामने किसी गिनतीमें नहीं आता। फिर भी चौदह बरसतक सपत्नीक वनवास और अखण्ड ब्रह्मचर्यपूर्वक तपस्या आगेके राज्य-शासनके लिये आरम्भिक अभ्यास था। जो काम चौदह बरसतक आनन्दपूर्वक बिना थके तपस्याके साथ सम्भव हुआ, आगे चलकर दस हजार बरसतक उसका होना सम्भव हो गया। इस 'ब्रह्मचर्येण तपसा' चारों भाइयोंका रूप, यौवन, शील, गुण इतने सुदीर्घ कालतक अक्षुण्ण बना रहा।

ब्रह्मचर्यके इस अनुपम आदर्शके साथ-ही-साथ बल, विक्रम और शारीरिक सौन्दर्य भी चारों भाइयोंका बे-जोड़ था। चारों जैसे एक ही समयमें जन्मे थे वैसे ही एक ही रङ्ग-रूप और आचरणके भी थे। इनका त्याग तो सर्वोपरि था, वह संसारके इतिहासमें अनुपम है। छोटी-मोटी जायदादके लिये भाई भाईकी जानका गाहक हो जाता है, परन्तु यहाँ बड़ा भाई बड़ी खुशीसे छोटेके लिये चक्रवर्ती राज्य छोड़ देता है और तुरन्त जङ्गलकी राह लेता है। बादको भीष्मका त्याग भी इसी कोटिका दीख पड़ता है, परन्तु भरत जो उसी राज्यको ठुकरा देते हैं, उसकी उपमा महाभारतमें तो क्या, कहीं इतिहासमें नहीं मिलती। लक्ष्मण और शत्रुघ्न भी इस त्यागमें सोलहो आने अपने भाईके अनुगामी हैं। इन भाइयोंके निकट इतना बड़ा राज्य खेलनेके गेंदसे अधिक प्रतिष्ठा नहीं रखता था। हर एक समझता था कि राज्य भोगनेकी चीज़ नहीं है। हर एक जानता था कि राज्य बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। राज-नीतिके इस महत्त्वपूर्ण ज्ञानका श्रेय वसिष्ठजीको है। वसिष्ठजी कोरे पुरोहित न थे। वह दण्डनीतिके उद्‌भट विद्वान् थे, एक ही आचार्य थे। वसिष्ठस्मृति उनकी इस विषयमें विशेषज्ञताका प्रमाण है। जो हो, इन राज-कुमारोंने राज्यकी जो कीमत समझी थी उसीका फल आगे चलकर भगवान् रामचन्द्रजीका अनुपम रामराज्य था।

व्यक्ति-राज्य होनेसे प्रजापर व्यक्ति-राजाका बड़ा प्रभाव पड़ता है। 'यथा राजा तथा प्रजाः' राजा जैसा होता है वैसी ही प्रजा भी होती है। व्यक्ति-राज्यमें उस व्यक्तिके चरित्रकी महत्ता इसीलिये है। सारा समाज जब धर्मात्मा था, तब कुछ व्यक्तियोंके पापी होनेसे समाजका दबाव कुछ कालतक उन्हें उभरने नहीं देता था, परन्तु कालके प्रभावसे धीरे-धीरे धर्मका ह्रास हो जाता है। ऐसी दशामें उसका उद्धार करनेके लिये भगवदवतार ही एक उपाय है जिसके द्वारा धर्मका संस्थापन होता है। उस समय व्यक्तिके द्वारा ही समष्टिके लिये उदाहरण और आदर्शकी उद्भावना होती है।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

साधारण श्रेष्ठोंका जब जन-समुदायपर यह प्रभाव पड़ता ही है तब उस व्यक्तिका जो इस विश्वका स्रष्टा, भर्त्ता और संहर्त्ता वा परात्पर है, कितना पड़ेगा, यह कल्पना-की बात नहीं है, बल्कि भगवान् रामचन्द्रजीके राज्यसे ही

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्पष्ट है। प्रजाका एक-एक आदमी उनके चरितको देख-कर उसका अनुकरण करता था। जिस निषादको भगवान्‌ने गले लगाया उसे आते जानकर भरतजी रथका त्याग करके पैदल चलकर मिलते हैं और उसे दण्डवत् करते देख वशिष्ठजी उठाकर छातीसे लगा लेते हैं। धोबी-जैसे अन्त्यजको भी अपने धर्माचरणका ऐसा गर्व होता है कि वह साम्राज्ञीतकको अपने वाग्बाणका लक्ष्य बना देता है, और सम्राट् अपनी नीचातिनीच प्रजाका इतना आदर करता है कि महारानीका परित्याग कर देता है। जब दुराचारी सजातीयको कोड़े मरवानेका दण्ड देनेके कारण आजकलका सम्राट् एक राजाको गद्दीसे उतार देता है, तो महारानीको दुर्वाद कहनेवाले धोबीका जीभ खिंचवा लेना कौन-सी बात थी! अपने पास आनेवाले शत्रुको भी अभयदानकी नीतिका वानरोंपर कैसा प्रभाव पड़ता है! राम और भरतादिकी पारस्परिक गाढ़ प्रीति और एक-दूसरेके लिये राजत्यागतक देखकर विभीषण और सुग्रीव कट-कट जाते हैं और कुटिला कैकेयी अपने कियेपर जीवनभर पछताती है परन्तु अपने पुत्रोंका चरित देख-देख उसकी छाती गज-गजभरकी हो जाती है। राजाका ही व्यक्तित्व ऐसा है, ऐसी बात नहीं है। महारानीका चरित्र भी प्रजाके लिये अनुत्तम है। दासियों-के होते भी—

'निज कर गृह परिचरजा करई। रामचंद्र आयेसु अनुसरई॥'

इतना ही नहीं, सासुओंकी सेवा भी अपने हाथोंसे करती थीं, फिर प्रजाजनमें सास-पतोहूका झगड़ा कैसे सुननेमें आ सकता था! प्रजाने देखा था कि आपसमें सदा प्रेमसे रहनेवाली राज-माताओंमें भी कभी सवतिया डाह ऐसा पैदा हो सकता है कि घरको बरबाद कर डाले और यह भी देखा था कि चारों राजकुमार बड़े निष्ठावान् ब्रह्मचारी और एकपत्नीव्रती हैं। प्रजाके ऊपर इनके कुल-चरित्र-का प्रभाव बिना पड़े नहीं रहा। सभी प्रजाजन देखादेखी एकनारिव्रती और ब्रह्मचर्यपरायण हो गये। इन चारों भाइयोंने आगे चलकर राज्योपभोग करते हुए भी न केवल एकपत्नीव्रतका निर्वाह किया, बल्कि पत्नीके रहते भी तभी सन्तानोत्पत्तिमें प्रवृत्त हुए जब लगभग दस हजार बरस बीत चुके थे। पुत्र भी दो-ही-दो उत्पन्न किये जैसी कि स्मृतियोंकी आज्ञा है। इनकी पत्नियाँ भी उसी तरह पूर्णतया पतिकी अनुगामिनी रहीं। यह राजकुल एड़ीसे चोटीतक आदर्श चरित था और प्रजाके लिये सर्वथा अनुकरणीय। साथ ही औरोंकी निगाहोंमें इस कुलमेंसे एक भी जहाँ गिरा भगवान् रामचन्द्रने अविलम्ब ही उसे अलग किया। कोमलता इस दरजेकी कि व्याध, निषाद, वानर, पशु, धोबीतकके भी मनको दुखी नहीं करते थे और कठोरता वज्रसे भी अधिक—और वह अपने ही साथ—कि साम्राज्यकी एकमात्र अधीश्वरीतक उससे बच न सकीं। अपने साथ उन्होंने ऐसी कड़ाई बरती और इसीलिये कि प्रजाके साथ कड़ाईकी जरूरत न पड़े, बिना कठोरताके ही वह नीति-मार्गपर दृढ़ारूढ़ रहे।

हमने व्यक्ति-चरित्रका यहाँ जरा-सा दिग्दर्शन इसलिये करना चाहा कि व्यक्ति-राज्यमें प्रजापर चरितका अमिट प्रभाव पड़ता है। गोस्वामीजीने विनयके सौवें पदमें बहुत थोड़ेमें भगवान्‌के शील-स्वभावका परिचय दिया है—

सुनि सीतापति सील सुभाउ।
मोद न मन तनु पुलक नयन जल सो नर खेहर खाउ॥
सिसुपनतें पितु मातु बंधु गुरु सेवक सचिव सखाउ।
कहत राम बिधु बदन रिसौंहें सपनेहु लखेउ न काउ॥
खेलत संग अनुज बालक नित जोगवत अनट अपाउ।
जीति हारि चुचुकारि दुलारत देत दिवावत दाउ॥
सिला साप संताप बिगत भई परसत पावन पाउ।
दई सुगति सो न हेरि हरष हिय चरन छुएको पछिताउ॥
भव-धनु-भंजि निदरि भूपति भृगुनाथ खाइ गये ताउ।
छमि अपराध छमाइ पायँ परि, इतौ न अनत समाउ॥
कह्यो राज, बन दियो नारि बस, गरि गलान गे राउ।
ता कुमातुको मन जोगवत ज्यों निज तनु मरमु कुघाउ॥
कपि सेवा बस भये कनौड़े, कहेउ पवनसुत आउ।
देवेको न कछू रिनियाँ हौं, धनिक तु पत्र लिखाउ॥
अपनाये सुग्रीव बिभीषन, तिन न तजेउ छलु छाउ।
भरत सभा सनमानि सराहत, होत न हृदय अघाउ॥
निज करुना करतूति भगतपर चपत चलत चरचाउ।
सकृत प्रनाम प्रनत जसु बरनत सुनत कहत फिरि गाउ॥
समुझि-समुझि गुन ग्राम रामके उर अनुराग बढ़ाउ।
तुलसिदास अनयास रामपद पइहै प्रेम पसाउ॥

३—राज्यारोहण

साधारणतया राज्यारोहणपर ही अनेक उपद्रव होते हैं। वह राज्यारोहणका ही अवसर था जब कैकेयीने बाधा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

डालकर अवधपर विपत्तिका पहाड़ गिरा दिया और रावणके साम्राज्यके संहारकी बुनियाद डाल दी। निर्बल प्रबन्ध पाकर आस-पासके ही राजा अपनी नीयत खोटी कर लेते हैं और अवसर मिलते ही छापा मारते हैं! परन्तु एक ओर एक भारी सम्राट्का श्रीरामचन्द्रजीने सर्वनाश कर डाला था, दूसरी ओर भरतजीके धर्म और तपश्चर्याके शासनसे अयोध्या वास्तविक अयोध्या हो रही थी। भगवान्की नीति ऐसी थी कि कोई शत्रु हो नहीं सकता था। सुग्रीव और विभीषणके लिये स्वयं शत्रुको पराजित करके बड़े-बड़े साम्राज्योंका दान किये आ रहे थे। 'लोलुप भूप भोगके भूखे।' जो राजा स्वयं भोगका भूखा नहीं, जिसने मिलते या मिले हुए राज्यका त्याग किया हो उसके होते कोई उसके ही राज्यकी ओर खोटी नीयतसे निहार कैसे सकता था। इसके सिवा त्रैलोक्य तो रावणके उत्पीड़नसे ऐसा सन्तप्त था कि अभी-अभी उसके दम लेनेका अवसर, शान्तिका अवकाश, मिला। सबको अपनी-अपनी सँवार-सँभालकी पड़ी थी। उसके सिवा जिसने रावणका संहार किया उसके राज्यारोहणपर तो त्रैलोक्यको दरबारमें आकर अपना-अपना मुजरा अर्ज करना था, बन्दगी बजानी थी, अधीनता स्वीकार करनी थी। रावणके उत्तराधिकारी विभीषण हुए अवश्य, परन्तु विभीषणका उत्तराधिकार केवल लंकातक और राक्षस-जातितक सीमित था। रावणने अपने पराक्रमसे तीनों लोकोंपर अधिकार कर रखा था, परन्तु अब वह अधिकार तो उसके विजेता रामचन्द्रजीके हाथोंमें चला गया। पुष्पक विमानतक तो लौटा दिया गया। विभीषण तो विजेताके ही बनाये हुए राजा थे और भगवान्के ही अधीन थे, अतः राज्यारोहण होते ही त्रैलोक्यमें दुहाई फिर गयी।

बयरु न कर काहूसन कोई। रामप्रताप बिषमता खोई॥

वैरमें हिंसा प्रत्यक्ष है। पूर्ण अहिंसाकी प्रतिष्ठापनासे वैर-भावका लोप हो गया। राग-द्वेषके निर्मूलनसे असत्य विचार, असत्य उच्चार और असत्य आचार मिट गये। सत्यकी प्रतिष्ठापना हो गयी। अहिंसा और सत्यने तीनों लोकोंको अभय कर दिया। इसीलिये—

रामराज बैठे त्रय लोका। हरषित भए गए सब सोका॥

भगवान्के चरितका पूरा अनुकरण करनेवाली प्रजा संयम, नियम और सदाचारका तपोमय जीवन बिताने लगी।

४—समाजकी व्यवस्था

आजकल संसारमें न्यूयार्ककी आबादी सबसे अधिक बढ़ी हुई है। साठ लाखके लगभग बतायी जाती है। अयोध्यापुरीका विस्तार जैसा वर्णित है न्यूयार्कके वर्तमान विस्तारसे कहीं अधिक था। अनुमानसे आबादी भी जितनी थी उतनी अभी न्यूयार्ककी नहीं हो पायी है। देश-काल दोनों आज बहुत संकुचित हो गये हैं। विमानोंद्वारा महीनोंका मार्ग घण्टोंमें तय होने लगा है परन्तु उस समय देश-काल आजसे भी कहीं अधिक संकुचित थे। सौ योजन सागर हनुमान्जीके लिये अधिक-से-अधिक कुछ घण्टोंमें तय हुआ था। सजीवन-बूटी लानेको हनुमान्जीने दो हजार कोसकी यात्रा की, कालनेमि और भरतजीके कारण राह भी खोटी हुई, परन्तु कुल छः-सात घण्टे लगे। भगवान् रामचन्द्रजी पुष्पक-विमानपर सवार हुए, किष्किन्धामें आकर उतरे। वहाँ और सवारियाँ लेकर बीच-बीचमें मुनियों, ऋषियोंसे मिलते अयोध्यातक आये, फिर भरद्वाजाश्रम लौटकर हनुमान्जीको भेजा, उन्होंने लौटकर भरतजीका हाल कहा। फिर शामके पहले ही सारी मण्डली अयोध्याजीमें पहुँच गयी। इस यात्रामें आरामके साथ तीन पहरसे अधिक नहीं लगे। कहना चाहिये कि महीनोंका मार्ग मिनटोंमें तय होता था। और ऐसी सुविधा न होती तो अनेक लोक-लोकान्तरोंका भ्रमण करते हुए नित्य नारदजी कैसे आया करते? इस विज्ञान-युगमें तो मंगल ग्रहसे बातचीत करनेकी अभी बातचीत ही चल रही है। देश-कालके अत्यन्त संकुचित हुए बिना आवागमनके साधनोंके अत्यन्त सुगम और सुलभ हुए बिना, त्रेतायुगमें ऐसी व्यवस्था नहीं हो सकती थी। विज्ञानकी सतत-वर्धमाना प्रगतिको आज देखते हुए रामायणकी इन बातोंको काल्पनिक कहनेका दुःसाहस कोई समझदार वैज्ञानिक नहीं कर सकता।

रेल, तार, डाक, हवाई जहाज, मोटर आदिके कारण आज संसारमें पारस्परिक सम्बन्धका ऐसा ताना-बाना-सा लग गया है कि अमेरिकामें—हमारे पाँवोंके नीचे ठीक पातालमें—डालरका भाव गिरा और यहाँ तुरन्त रुईका भाव घट गया। यह उसी तरहकी चेतनावाली बात है कि हमारे पाँवोंमें मच्छरने डंक चुभोया नहीं कि हमारे दिमागको खुजली मालूम हुई और हाथको हुक्म हुआ और वह तुरन्त उसी जगह पहुँच गया। एक ही चेतना सारी देहमें व्याप रही है इसीसे शरीरका देश-काल संकुचित है, शरीररूपी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

देशपर चेतनाका राम-राज्य है, मजाल क्या कि कुमककी जरूरत हो और उसके पहुँचनेमें पलक मारनेकी भी देर लगे। आज जिस विश्वव्यापी चेतनाके आरम्भिक लक्षण देखे जाते हैं वह आसुरी मायाकी महाप्रबलताका परिचायक है। राम-राज्यके समयमें प्रकृतिके अधीश्वर विश्वात्मा स्वयं शासन कर रहे थे। समस्त भूमण्डलमें एक चेतना व्याप रही थी। इसीलिये संसारके एक कोनेमें जो घटना होती थी उसका प्रभाव तुरन्त दूसरे कोनेतक जाकर पड़ता था। आज बिजली जो काम परवश होकर यन्त्रके सहारे करती है और भूमण्डलसे बाहर उसकी गतिके सम्बन्धमें विज्ञानका बस नहीं चलता, वही स्ववश होकर लोकान्तरोंसे भी सम्बन्ध स्थापित करे, तो कौन-से आश्चर्यकी बात है। अभीतक प्रकाशकी गति जो सेकण्डमें एक लाख छियासी हजार मील है, सबसे अधिक वेगवाली समझी जाती है। परन्तु कौन कह सकता है कि कल ही विज्ञान ऐसे सर्गाणुओंका पता लगा ले जिसके सामने प्रकाश और बिजलीकी गति भी अत्यन्त मन्द पड़ जाय और इस महान् और विशाल विश्वमें बड़े-बड़े ब्रह्माण्ड मुहल्लोंकी तरह सुगम हो जायँ ? और ऐसी दशामें अन्तर्राष्ट्रीयताकी तो कौन कहे, अन्तर्लोकता भी एक साधारण-सी बात हो जाय। आज तो तार, डाक, रेल, विमान और मोटरकारोंके बलपर राष्ट्रीयताका आदर्श अत्यन्त संकुचित समझा जाने लगा है और अनेक देशोंमें अन्तर्राष्ट्रीय दल बन गये हैं। अभी विमानोंमें इतनी द्रुत गति नहीं आयी है, तो भी लोग अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धोंके सपने देख रहे हैं, सर्वोगैक चेतनताकी संसारमें प्रवृत्ति पा रहे हैं, साम्यवादका प्रचार हो रहा है।

राम-राज्यमें तो देश-काल कल्पनातीत रीतिसे संकुचित हो गये थे। सर्वोगैक चेतनताकी पूर्णता थी अर्थात् विश्वात्मा विभुका ही राज्य था फिर 'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः' सर्वत्र एक विश्वात्माका भाव होनेसे ईर्षा-द्वेषका अभाव था। कोई ऊँच न था और न कोई नीच। अपने-अपने कर्त्तव्योंका पालन करना ही सबका परम उद्देश्य था। स्त्रियों, वैश्यों, शूद्रोंको कोई नीच नहीं समझता था और न इनमें ही योनिगत वा समाजगत कोई नीचता थी। 'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः' का अनुत्तम आदर्श समाजकी एड़ीसे चोटीतक वर्त्तमान था। शरीरके विविध अंगोंमें जैसे परस्पर सहकारिता और प्रेम है उसी तरह समाजके अंगोंमें सहयोग और स्नेहका भाव भरा हुआ था। जिस तरह पाँव और जंघे कभी हाथों और आँखोंका काम नहीं कर सकते और करनेकी कोशिश भी करें तो शरीरकी सारी व्यवस्था बिगड़ जाय, उसी तरह विविध वर्णों और आश्रमोंके लोग भी अपने-अपने कर्त्तव्योंको छोड़ किसी औरके कर्त्तव्योंमें हस्तक्षेप नहीं करते थे। न केवल प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने अधिकारोंकी सीमाके भीतर काम करता था बल्कि जहाँ जरूरत होती थी वहाँ औरोंके साथ पूरा और इष्ट सहयोग करता था। हमारे शरीरके भीतर संख्यातीत जीवित सेल हैं, जिनके कर्त्तव्यपालन और पारस्परिक सहयोगसे ही सौ-सौ बरसतक निरन्तर शरीरकी व्यवस्था बनी रहती है, और जहाँ इन सेलोंमें विशृङ्खलता आयी, शरीर-देश रुग्ण हुआ और यदि उचित उपचारोंद्वारा पुनः सुव्यवस्थाकी स्थापना न हुई तो शरीरका अन्त ही हो जाता है। इसीलिये जहाँ एक भी सेलमें कर्त्तव्यच्युत होनेका भाव आया वहाँ उस सेलको शरीरके कुशलके लिये समाप्त कर देना ही उपाय होता है। घड़ीके सभी पुरजे मिल-जुलकर काम करते हैं। यदि एक भी अपनी जगह और ड्यूटी छोड़ दे तो घड़ी रुक जाती है। ठीक यही बात समाजमें भी भगवान्‌के राज्यमें थी। समाजको जितना तेल रोज खर्चको चाहिये उतना तेल रोज़ पेला भी जाना चाहिये। यदि एक भी तेली अपना काम छोड़ दे तो शायद बहुत लोगोंको तेल न मिले। मान लो, कि वह बीमार ही हो गया, तब भी वही अव्यवस्था हो गयी। अल्प मृत्यु हुई तो भी बड़ी कमी आ गयी, क्योंकि एक तो मरा और अनेक उसकी मृत्युसे शोकग्रस्त हुए, काम बन्द हो गया। यदि मृत्यु न भी हुई और रोगीके प्राणोंका भय हुआ तो भी उसके अनेक स्नेही और स्वजन भयवश दौड़-धूपमें लगे और तेलका पेलना रुका। अकाल, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, राज्याक्रमण, प्राणियों और रोगोंका सांघातिक, वैयक्तिक और व्यापक आक्रमण इत्यादि आपदाओंका भय भी समाजको अपने कर्तव्योंसे विरत रख देता। राम-राज्यमें किसी प्रकारका भय न था। समाजकी सारी आवश्यकताएँ समाजके व्यक्तियोंकी कर्त्तव्यपरायणतासे पूरी रहती थीं। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी नीति अद्भुत थी, कुसुमसे अधिक कोमल। अन्त्यजों और ब्राह्मणोंमें भी परस्पर अत्यन्त प्रेमभाव था। निषादकी शालीनता और विनय हद दरजेकी थी और वसिष्ठकी उसके प्रति उदाराशयता और प्रेमभाव दोनों

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जातियोंके साम्यभावके उदाहरण हैं। राम-राज्यमें विषमता न थी परन्तु साथ ही वज्रसे भी अधिक कठोरता थी दण्डमें। शम्बूक शूद्र था। उसका काम था परिचर्या और गार्हस्थ्य जीवन। उसने अपने वर्णाश्रम-धर्मको छोड़ दिया और तपस्या और वनवासमें लग गया। अशास्त्रविहित घोर तपस्यामें लगे हुए शम्बूकने समाजके नियमोंको तोड़ डाला, एक पेंच ढीला हो जानेसे समाजका यन्त्र विचलित हो गया। उसकी परिचर्या और गार्हस्थ्य-धर्मसे सहयोगका एक अधिकारी ब्राह्मण और ब्रह्मचारीकी अल्पमृत्यु हो गयी। पिताको शोक हुआ। वर्णाश्रम-व्यतिक्रमका फल यहाँतक हुआ। यह बात साधारण बुद्धिमें उसी तरह नहीं आती जैसे अमेरिकामें डालरका भाव गिर जानेसे भारतमें रुईके भावका गिर जाना। शम्बूक उधर तप करता है कहीं और ब्रह्मचारी बालक मरता है कहाँ, यह अद्भुत बात है न! यह बात भी समझनेकी है कि अमेरिकासे हमसे लेन-देन है, आर्थिक सम्बन्ध है। इसीसे वहाँकी आर्थिक नीतिका प्रभाव भारतमें आकर पड़ता है। समाजका भी उस समय ऐसा अविरल सम्बन्ध था कि संसारके किसी कोनेमें भी कोई गड़बड़ होता तो उसका प्रभाव किसी सुदूर कोनेतक उसी तरह जा पड़ता जिस तरह तालाबके जलमें एक कङ्कड़ी डालनेसे उससे उठती हुई तरङ्गमाला सारे तालाबमें फैल जाती है। भगवान्‌ने रोते हुए पिताके पुत्र-शोकपर विचार किया तो पता लगा कि विश्वकी इस नियमसे चलती हुई घड़ीका एक पेंच शम्बूककी तपस्याके रूपमें ढीला हुआ है। देह-विद्रोही सेलकी तरह उन्होंने इस समाज-विद्रोही शम्बूकका वध कर डाला। तपस्वी शूद्रको परम गति भी दी और समाजकी दुर्दशा भी निवारण की। आजकलके 'कर्मणा वर्णः' माननेवाले सुधारक तो इसे घोर अत्याचार और बर्बरता कहेंगे और व्यक्ति-स्वातन्त्र्यवादके साथ घोर अन्याय बतलावेंगे। परन्तु आज भी साम्यवादी, समाज-सत्तावादी और व्यक्ति-स्वातन्त्र्यवादी आपसमें जिन विषयों-को लेकर भिड़ते रहते हैं उन सबका सुलझाव राम-राज्य-पद्धतिके अतिरिक्त और कहीं नहीं है।

यदि उस समय 'कर्मणा वर्णः' वर्णकी कसौटी होती तो सवेरेसे शामतकमें एक ही आदमी ब्राह्मणसे शूद्रतक बन सकता था, शूद्रसे ब्राह्मणतक हो सकता था। फिर तो समाजकी विचित्र दशा हो जाती। इस समय समाजकी जैसी अव्यवस्था है उससे भी अधिक अव्यवस्था बर्तती। फिर शम्बूककी तपस्यामें क्या बाधा थी? विश्वामित्रको ब्राह्मण बननेके लिये हजारों बरसकी तपस्या क्यों करनी पड़ती? क्यों न वह अपने कर्मोंको बदलकर एक ही क्षण-में ब्राह्मण बन जाते? बात यह थी कि सृष्टिके आरम्भसे ही चारों वर्णोंकी पूरी व्यवस्था प्रजापतिने की थी अथवा सत्ययुगमें ही धीरे-धीरे वर्ण-व्यवस्थाका समाजमें प्रकृतिसे ही विकास हुआ और वह सत्ययुगके सत्रह लाख अट्ठाईस हजार बरसोंतक बराबर चल चुका था। भगवान् रामचन्द्र-जीके समयमें कोई नयी व्यवस्था नहीं करनी थी, समाजमें यदि विशृङ्खलता आती थी और लोग अपने-अपने कर्त्तव्यसे विमुख हो जाते थे और राजा अपने शासनसे धर्मकी पुनः स्थापनामें समर्थ नहीं होता था तो प्रकृति दण्डके बलसे समाजको ठीक करती थी। जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिके महायन्त्रोंके सञ्चालनसे समाज-संशोधन होने लगता था। कुराज्यके कारण भी समाजकी प्रकृति बिगड़ जाती थी, और रोग स्वयं प्रकृतिके बूतेसे बाहरका हो जाता था तो 'पुरुष' अवतरित होकर दूर करता था। राम-राज्यकी यही अन्तिम स्थिति थी।

राम-राज्यमें समाज सर्वाङ्गपूर्ण था। उसके अङ्ग-अङ्ग सुडौल और विकसित थे। समाज-पुरुष रोगी न था। प्रत्येक वर्ण और प्रत्येक आश्रमकी आबादी ठीक उतनी ही थी, जितनेकी आवश्यकता थी। कोई जाति इतनी कम न थी कि उसके कर्त्तव्योंमें कमी आनेसे समाजके और अङ्गों-को कष्ट हो। कोई जाति इतनी अधिक भी न थी कि समाजके और अङ्गोंको उसके अनुचित भारके नीचे दबना पड़े। आबादी बढ़ती भी थी, परन्तु जैसे बढ़ते हुए बालकके सभी अङ्ग अपने-अपने अनुपातसे बढ़ते हैं उसी तरह समाजके विविध अङ्गोंकी आबादी भी अनुपाततः बढ़ती जाती थी।

जैसे शरीरमें सिर छोटा भाग परन्तु अत्यन्त महत्त्वका भाग है, बाहु भी कुछ बड़े परन्तु आवश्यक भाग हैं और टाँगें उससे बड़ी और सबसे अधिक सेवा करनेवाली अंग हैं और पेट सबसे बड़ा और सबसे अधिक उपयोगी है, उसी तरह समाजमें वैश्यवर्ग सबसे अधिक संख्यामें, शूद्र उससे कम, फिर क्षत्रिय शूद्रोंसे भी कम और ब्राह्मण सबसे कम संख्यामें होने चाहिये। वैश्यका काम चारों वर्णों-के लिये भोजनोपार्जन है—सम्पत्तिका उत्पादन और विभाजन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है। इसीलिये, यदि मान लिया जाय कि एक वैश्य दो मनुष्योंके लिये उत्पादन कर सकता है तो उसकी संख्या शेष तीनों वर्णोंकी सम्मिलित संख्याके बराबर होनी चाहिये। परन्तु स्त्रियोंका कर्तव्य सम्पत्तिका उपार्जन नहीं है, अतः वैश्योंकी संख्या शेष आबादीकी दूनी होनी चाहिये। परन्तु वैश्योंमें भी बच्चों, बूढ़ों और असमर्थोंका काम सम्पत्तिका उपार्जन उसी हदतक नहीं हो सकता जिस हदतक प्रौढ़ समर्थ वैश्य कर सकते हैं। अतः शेष सभी वर्णोंको मिलाकर भी जो संख्या आबादीकी होगी उससे कई गुनी अधिक संख्या वैश्योंकी होनी चाहिये। समाजमें जहाँ 'जन्मना वर्णः' नियम है, वहाँ इस तरह जन-बलका सामञ्जस्य होना आवश्यक है। 'जन्मना वर्णः' विधाताका विधान है।* 'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।' गुणकी हम यहाँ चर्चा करें तो लेखका कलेवर बढ़ जायगा। 'कर्म-विभाग' तो समाजमें आवश्यक नियम है। 'स्वे स्वे कर्मण्य-भिरतः संसिद्धिं लभते नरः,' 'परधर्मो भयावहः' आदि वचन इसी बातकी चेतावनी हैं। आदर्श समाजमें व्यक्तियोंके हस्तक्षेपके बिना ही कर्म-विभागके अनुसार काम होता है। आवश्यकताभर उपज और आवश्यकताभर उपजानेवाले होते हैं। परन्तु मनुष्य अपने कर्मोंके लिये स्वच्छन्द भी है। अतः उसकी उच्छृंखलताओंसे समाजका सामञ्जस्य बिगड़ता रहता है। फिर इसका संशोधन कैसे हो? प्रकृति इस संशोधनमें तत्पर रहती है। संक्रामक रोगमें लाखों-करोड़ोंको समाप्त कर देती है। युद्धमें लाखों मर मिटते हैं। दुर्भिक्ष, बाढ़, अग्निप्रकोप आदिके द्वारा भी वह अपने काम निकालती है। अल्पमृत्युका बाजार गर्म कर देती है। दरिद्रता अपने कर वसूल कर लेती है। जीवनके शत्रुओंमें प्रबलता आ जाती है। संघर्ष अधिक बढ़ जाता है।

राम-राज्यमें समाजकी व्यवस्था प्रकृतिकी माँगके अनुसार थी। शासनके प्रभावसे कोई अपने मार्गसे विचलित नहीं होता था। इसीलिये प्रकृतिको अपना विनाशकारी यन्त्र चलानेकी आवश्यकता नहीं पड़ती थी। इसीलिये रोग, शोक, भय सुननेमें भी नहीं आते थे। (क्रमशः)

* यहाँ यह शंका उठायी जा सकती है कि यदि 'जन्मना वर्णः' विधाताका विधान है तो उसे जगद्व्यापी होना चाहिये। परन्तु वह केवल भारतकी ही सीमाओंके भीतर क्यों है? तो इसका समाधान यह है कि चातुर्वर्ण्यकी व्यवस्था विविध रूपों और नामोंसे विश्वव्यापी है। इस व्यवस्थाके बिना समाज कभी रह ही नहीं सकता। कर्म-विभागको ही आज सम्पत्तिशास्त्री 'श्रम-विभाग' कहते हैं और यह समाजकी सभी जगह नींव है। 'कर्मणा वर्णः' माननेवालोंका विचार है कि मनुष्य चाहे जो पेशा अख्तियार कर सकता है और एक ही आदमी चाहे तो दिनभरमें अपना वर्ण अनेक बार बदल सकता है। 'जन्मना वर्णः' माननेवाले ऐसा समझते हैं कि मनुष्यके कर्मोंके शुभाशुभ फल देनेवाले पारलौकिक शासनको ही यह अधिकार है कि कर्मानुसार किसीको किसी विशेष वर्णमें, और तदर्थ किसी विशेष परिस्थितिमें जन्मावे। 'कर्मणा वर्णः' वालेको जन्मान्तरका कर्मसे अनिवार्य सम्बन्ध माननेकी आवश्यकता नहीं है। 'जन्मना वर्णः' वालेके तर्ककी नींव जन्मान्तरसे कर्मका सम्बन्ध ही है। 'जन्मना वर्णः' किसी-न-किसी रूपमें जगत्में सभी रूढ़िवादी जातियोंमें माना जाता है। फिर भी व्यक्तियोंको संसारमें दोनों पक्षके लोगोंमें अपने-अपने रोजगारके बदलनेकी स्वतन्त्रता थोड़ी-बहुत मर्यादाके साथ सभी जगह है। अपने यहाँ स्मृतियोंमें इस मर्यादाका निर्धारण है। जिन देशोंमें वर्णविभाग अमर्यादित है और शुद्ध 'कर्मणा वर्णः' चल रहा है, जहाँ स्वार्थमात्र सामाजिक योगक्षेमका प्रवर्त्तक है, वहाँ समाज बड़ी उच्छृंखल दशामें है। संसारमें वर्त्तमान कालमें ऊँच-नीच, धनी-दरिद्रकी जो भयानक विषमता और पारस्परिक कलह, संघर्ष, नोचा-चोथी और भीषण सामाजिक विप्लव है वह व्यक्तियोंके अति स्वार्थ, अति स्वातन्त्र्य, उच्छृंखलता एवं समाजकी विधान-हीनताद्वारा प्रवर्त्तित है और साम्यवाद, समष्टिवाद वा समाजसत्तावाद आदि कहलाने-वाले आन्दोलन प्रकृतिकी ओरसे संशोधन और सुधारके उपाय हैं जिनकी असफलताकी दशामें भयानक संग्राम, संक्रामक रोग, दुर्भिक्षपीड़ा आदि होते रहते हैं। यही कलियुगका प्रभाव है। —लेखक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मोक्षार्थिनीका विलाप

(लेखिका—बहिन श्रीजयदेवीजी)

'हे आर्तबन्धो ! त्राहि माम्, त्राहि माम् ! हे ईश्वर ! हे दीन-दुःखहारी ! रक्षा करो ! रक्षा करो !! मुझ अज्ञानी जीवको संसार-समुद्रसे उबारकर अपना दर्शन दो, अपने अङ्कमें ले लो। हा ! कबतक यों ही भटकाते रहोगे, कबतक इस अथाह समुद्रमें गोते खिलाते रहोगे, कबतक नीच-ऊँच योनियोंमें भटकाते रहोगे। क्या मैं दुखिया अभी आपकी कृपापात्र नहीं हुई ?

हे परमप्रभो ! अब मुझ दीनापर कृपा करो, आपका नाम दयालु है उसे सार्थक करो। हे प्रभो ! अब मुझसे इस अवस्थामें नहीं रहा जाता, मैं बहुत तंग आ गयी हूँ। इस संसारसे मैं ऊब गयी हूँ। चारों ओर घोर अन्धकार-ही-अन्धकार है, पग-पगपर ठोकरें खा रही हूँ, प्रकाशका कहीं नाम-निशान नहीं है। इस संसार-समुद्रमें बड़े-बड़े भयङ्कर नक्र, ग्राह आदि जन्तु नोच-नोचकर मुझे खा रहे हैं।

हे भगवन् ! शीघ्र सुधि लो। मल्लाह बन शीघ्र मेरा डूबता बेड़ा पार लगा दो। जैसे डूबते गजराजकी सुधि ले उसकी विपत्ति निवारण की। द्रौपदीकी दुष्ट दुःशासनसे रक्षा की। प्रह्लादको प्रत्यक्ष दर्शन दे दुष्ट राक्षससे बचाया, वैसे ही हे भगवन् ! मेरी रक्षा करो। आपके यहाँ दण्डकी कोई सीमा भी है ? अब बहुत दण्ड हो चुका। बस करो, भगवन्, बस करो मुझ दीनाकी विनतीपर ध्यान दो। संसारी जनोंकी विनती करते-करते बहुत दिन बीत गये। परन्तु आजतक शान्ति प्राप्त न हुई, न हुई ! अब सब ओरसे निराश हो आपकी शरण आयी हूँ, चाहे दया करो या न करो दासी तो शरण ले चुकी है। मेरे लिये और कोई शान्तिका मार्ग नहीं है, आपको ही तत्त्ववेत्ताओं-से शान्ति-सुखका भण्डार सुनती आ रही हूँ। बिना आपके जब और कोई सुखका ही स्थान नहीं, तब मैं और किसकी शरणमें जाऊँ ?

हे प्रभो ! अब देरी मत करो, दासीकी प्रार्थना-पर शीघ्र ध्यान दो। अपनाओ, हे भगवन् ! अपनाओ, मुझे एक-एक पल युग-युग-समान बीत रहा है। हाय ! क्या करूँ ? हृदय टूक-टूक हुआ जाता है। सँभालो भगवन् ! सँभालो ! क्यों देर कर रहे हो ?' इस प्रकार विलापकर आठ-आठ आँसू रोती एक मोक्षार्थिनी बेसुध होती जा रही थी। एक ब्रह्मनिष्ठा बहिन उसकी इस प्रकारकी दशा देखकर उसके पास आकर कहने लगी।

ब्रह्मनिष्ठा—बहिन ! क्यों व्याकुल हो रही हो, क्यों इतनी अधीर, इतनी बेसुध, इतनी बेचैन हो रही हो ? क्यों अश्रुधाराओंसे अपने कपोलोंको तर कर रही हो ? तुमपर ऐसा कौन दुःख आ पड़ा है। क्या कहीं किसी सम्बन्धीसे वियोग हो गया है ? अथवा तुम घरसे, धनसे हीन हो गयी हो ? या किसी शारीरिक व्याधिने तुम्हें सताया है अथवा किसी मनकी आधिने तुम्हें तपाया है ? इन चारोंमेंसे तुम्हें कौन-सा दुःख है सो शीघ्र कहो। मुझे तुम्हारा यह अति दुःसह दुख देख करुणा आती है। बतलाओ, जहाँतक होगा, मैं तुम्हारा दुःख मिटानेका यत्न करूँगी, तुम सावधान हो, घबड़ाओ मत, धैर्य धारणकर मुझसे सारा वृत्तान्त कह सुनाओ।

मोक्षार्थिनी—अरी बहिन ! मुझे इन चारों दुःखोंमेंसे कोई दुःख नहीं है, सम्बन्धीका वियोग जो तुमने पूछा है सो वह संयोग-वियोग तो अपने-अपने कर्माधीन होता ही रहता है। जो ईश्वर करता है, वह सब ठीक ही करता है, अपने पुण्योंके फलसे सम्बन्धियोंका संयोग होता है और अपने पापोंके फलसे उनका वियोग हो जाता है। संयोग-वियोगमें हर्ष-शोक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

माननेसे क्या लाभ है ? कुछ नहीं । जैसा किया है वैसा अवश्य भोगना है, मुझे इसकी कोई चिन्ता नहीं । दूसरे, घर-धनसे वियोगकी भी मुझे कोई चिन्ता नहीं है, क्योंकि घर और जङ्गल मेरे लिये समान हैं, सुवर्ण और लोहा मेरे लिये समान हैं । संसारकी सभी वस्तु अनित्य, असुख और क्षणभङ्गुर हैं, तब उनके लिये क्या चिन्ता ? प्रारब्धानुसार न्यूनाधिकता होती रहती है । तीसरे यह शरीर तो व्याधिका मन्दिर प्रसिद्ध ही है, जब यह स्वाभाविक ही व्याधिका मन्दिर है, तब इसकी चिन्ता ही क्या ? हाँ चौथी, मनकी आधिने मुझे अवश्य सताया है । और वह क्या है ? वह है, परम प्यारे प्रभुके दर्शनोंकी इच्छा । बस, उसीके लिये मैं तड़प रही हूँ । कोई द्वारका, रामेश्वर, जगन्नाथ, बद्रीनाथ उनके मिलनेका स्थान बताते हैं परन्तु मैं तो सब जगह, सब स्थानोंमें उन्हें ढूँढ़ आयी । कहीं प्रभु नहीं मिले, नहीं मिले । अब सब ओरसे निराश हो यहाँ गङ्गा-तटपर आकर अपने प्यारे प्रभुको पुकार रही हूँ । सुनती हूँ कि दीनोंकी पुकार करुणानिधि बहुत शीघ्र सुन लेते हैं । अतः मुझे विश्वास है कि सुनेंगे और अवश्य सुनेंगे । अब यहाँसे कभी कहीं न जाऊँगी । इसी स्थानपर बैठी रहूँगी ।

ब्रह्मनिष्ठा—अरी बहिन ! ईश्वरके कानोंमें तेरी पुकार पहुँच गयी है और उन्हीं प्रभुने तेरी सहायता करनेके लिये मुझे भेजा है, देख ! ईश्वर कहीं दूर नहीं है, तेरे पास तेरे मनमें ही विराजमान है । परन्तु मन शुद्ध हुए बिना वह दिखायी नहीं देता । शुद्ध मनसे ही उसका दर्शन-स्पर्शन होता है । जैसे दर्पण शुद्ध हुए बिना अपने मुखका प्रतिबिम्ब उसमें स्पष्ट नहीं दीखता, उसी प्रकार मनरूपी दर्पण यदि मैला होगा, तो ईश्वरका दर्शन कैसे होगा ? नहीं हो सकता । जबतक करनी ठीक नहीं है, तबतक साध्य कैसे सिद्ध हो, तेरे मनके अन्दर ही प्यारेकी तस्वीर विराज रही है परन्तु अन्तर्मुख हुए बिना नहीं दीख सकती ।

हे बहिन ! मनका शान्त रहना, प्रसन्न रहना ही ईश्वरका दर्शन है, शुद्ध मनमें साक्षात् ईश्वरका दर्शन होता है, मलिन मन या अन्तःकरणमें ईश्वरका दर्शन होना असम्भव है । ब्रह्मरूप सुख आकाशके समान सर्वत्र व्यापक है, और सबका आत्मा यानी अपना आप है । इसीलिये वह सबको सर्वदा, सर्वत्र, सर्वथा प्राप्त ही है, अतः ईश्वरका मिलना कोई असम्भव नहीं है, परन्तु असम्भव हो गया है । क्योंकि सर्वदा सबके मनकी वृत्ति बाह्यविषयोंकी ओर दौड़ती रहती है । हमारे मनकी वृत्ति सदा चञ्चल और बाह्यमुखी रहती है । यदि यह मनकी वृत्ति अपना स्वभाव छोड़कर अन्तर्मुखी होकर अपनी चञ्चलताको छोड़ दे, यानी निश्चिन्त होकर बैठ जाय तो उस शान्ति-सुखके भण्डार ईश्वरके दर्शनमें कोई विलम्ब न होगा । क्योंकि ईश्वरका मनके साथ सदा संयोग है । मनसे कभी ईश्वरका व्यतिरेक नहीं होता । जैसे आकाशका घटके साथ सदा संयोग रहता है, और अन्न आदिका सम्बन्ध कभी व्यतिरेक होता रहता है । यानी जब घटमें अन्न भर दिया जाता है, तब घटसे उसका संयोग, यानी सम्बन्ध रहता है और जब घटमेंसे अन्न निकाल लिया जाता है तब घटसे उसका व्यतिरेक हो जाता है । परन्तु आकाशका सर्वदा अन्वय यानी सम्बन्ध-संयोग रहता है । इसी प्रकार ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा यह सब शब्द पर्यायवाची हैं, इनका मनसे यानी अन्तःकरणसे सर्वदा सम्बन्ध रहता है । परन्तु विषयोंसे मनका कभी-कभी सम्बन्ध होता है अर्थात् जब मन विषयाकार होता है तभी उसका विषयोंसे सम्बन्ध होता है, नहीं तो नहीं होता । आत्माका तो हमेशा सम्बन्ध ही है, कभी मनसे व्यतिरेक नहीं होता । फिर भी जो ब्रह्म-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रूप सुखका अनुभव नहीं होता और विषयोंका होता है इसका कारण अन्तःकरणकी मलिनता प्रत्यक्ष है। जिनका अन्तःकरण मलिन होता है, उनको ब्रह्मरूप सुखका दर्शन नहीं होता। और जिनका अन्तःकरण कुछ मलिन और कुछ शुद्ध होता है, उनको श्रवण, मनन, निदिध्यासन और तत्त्व-पदार्थोंका शोधन इत्यादि अनेक उपायोंद्वारा कठिनाईसे ब्रह्मरूप सुखका दर्शन होता है। और जिनका मन स्फटिकके समान निर्मल है, उनको ब्रह्मरूप सुखका दर्शन हस्तामलकके समान सर्वदा होता है।

मोक्षार्थिनी—ब्रह्मका स्वरूप क्या है, कृपया समझाइये?

ब्रह्मनिष्ठा—गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण महाराजने इस प्रकार कहा है—

कविं पुराणमनुशासितार-
मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥

हे अर्जुन! मोक्षकी इच्छावाले अधिकारी पुरुषोंद्वारा चिन्तन अर्थात् यथायोग्य प्राप्त करनेयोग्य परम दिव्य पुरुष है। वही परमात्मदेव कवि है, अर्थात् भूत, भविष्य, वर्तमान सर्व वस्तुओंका द्रष्टा होनेसे सर्वज्ञ है। वही परमात्मदेव सर्व जगत्का कारण होनेसे पुराण यानी सनातन है। वही परमात्मदेव अनुशासिता है, अर्थात् सूर्य, चन्द्रमादि सर्व जगत्को नियममें चलानेवाला है, अथवा सब प्राणियोंको कर्मानुसार शुभ-अशुभ कार्योंमें अन्तर्यामीरूपसे हृदयमें रहकर प्रवृत्त करनेवाला है। अथवा जहाँ-जहाँ मन जाता है वहाँ-वहाँ वह परमात्मदेव पहलेसे ही विराजमान हैं। वही परमात्मदेव आकाशादि सर्व प्रपञ्चका उपादानकारण होनेसे आकाशादि सूक्ष्म पदार्थोंसे भी अत्यन्त सूक्ष्म हैं। वही परमात्मदेव सबको धारण करनेसे धाता हैं। वही परमात्मदेव अचिन्त्यरूप हैं अर्थात् अपरिमित महिमावाले होनेसे उनका रूप चिन्तन नहीं किया जा सकता। वही परमात्मदेव ज्ञानरूप प्रकाशवाले हैं, इसलिये सूर्य-जैसे वर्णवाले हैं। और वही परमात्मदेव अज्ञानरूप अन्धकारसे परे होनेके कारण तमसे परे यानी मोहरूप अन्धकारसे परे कहे जाते हैं। इस प्रकारके रूपका जो अधिकारी पुरुष चिन्तन करते हैं, वह अभ्यासकी दृढ़ताद्वारा परम दिव्य पुरुषको प्राप्त करते हैं। फिर उनको इस दुःखोंके घर संसारमें नहीं आना पड़ता। और वे सर्वदाके लिये सुखी हो जाते हैं। परन्तु इस प्रकार ईश्वरके रूपको जानना मनके सावधान हुए बिना नहीं हो सकता। इस कारण पहले मनको एकाग्र तथा सावधान करना चाहिये। क्योंकि इस मनने ही तुम्हारे प्यारे प्रभुको ढाँक रक्खा है, ब्रह्म तो पाससे भी पास है वह तो अपना आत्मा ही है। कहींसे ब्रह्मको लाना नहीं है, मनको ही ब्रह्म बनाना है। जब मन संसरण करता है तब मन कहलाता है और जब मन संसरण करना छोड़ देता है, तब वही ब्रह्म हो जाता है। अथवा चलनेवाले मनका नाम संसार है, और अचल मनका नाम ब्रह्म है। अब तुम्हें पद्यद्वारा सबका सार सुनाती हूँ, ध्यान देकर सुनो—

सुरक्षित मन करो अपना, तभी सुखधाम पाओगी।
बिना रक्षा किये इसकी, अमोलक धन गँवाओगी॥
बड़ी ही सावधानीसे, सुसँग सुन्दर विचारोंसे।
यदि रक्षा करोगी तुम, तभी धन यह बचाओगी॥
कुभावों और व्यसनोंके, इसे हैं लूटते डाकू।
उसी क्षण भाग जावेंगे, दुहाई जब मचाओगी॥
सबल मन हो तुम्हारा जब, उजाला मनमें आवेगा।
परम भक्तीसे श्रद्धासे, हरी-कीर्तनको गाओगी॥
तभी उद्देश जीवनका, सभी पूरण मनोरथ हो।
सुसंगति सद्विचारोंसे, जो निज शक्ती बढ़ाओगी॥
जलाती है सदा मनको, महा अज्ञानकी ज्वाला।
तभी यह शान्त होवेगी, भजनसे जब बुझाओगी॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मानस-शङ्का-समाधान

(लेखक—श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी)

नृप हरषेउ पहिचान गुरु भ्रमबस रहा न चेत।
बरे तुरत सत सहस बर बिप्र कुटुंब समेत॥

उपरोहित जेवनार बनाई। छ रस चारि बिधि जस स्रुति गाई॥
मायामय तेहि कीन्ह रसोई। बिंजन बहु गनि सकै न कोई॥
बिबिध मृगन कर आमिष राँधा। तेहिमहँ बिप्रमांस खल साँधा॥
भोजनकहँ सब बिप्र बुलाये। पद पखारि सादर बैठाये॥
परसन जबहिं लाग महिपाला। भइ अकासबानी तेहि काला॥
बिप्रबृंद उठि-उठि गृह जाहू। है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू॥
भयउ रसोई भूसुर-मासू। सब द्विज उठे मानि बिस्वासू॥
भूप बिकल मति मोह भुलानी। भावीबस मुख आउ न बानी॥

बोले बिप्र सकोपि तब नहिं कछु कीन्ह बिचार।
जाइ निसाचर होउ नृप मूढ़ सहित परिवार॥

'श्रीबालकाण्डके इस भानुप्रताप-प्रसंगके अन्तर्गत जो मृग-मांसके राँधनेकी बात लिखी है, उससे कुछ लोग शङ्का करते हैं कि प्राचीन कालमें ब्राह्मण मांसाहारी होते थे। आकाशवाणीमें 'भयउ रसोई भूसुर-मासू' कहकर केवल ब्राह्मणके मांसका ही निषेध किया गया है, इससे भी अनुमान होता है कि ('बिबिध मृगन कर आमिष राँधा') उस समय ब्राह्मणोंमें मांसाहारकी प्रथा थी।' इस शङ्काका समाधान 'कल्याण' में प्रकाशित करनेके लिये मिरजापुर (दुद्धी) निवासी पण्डित हरिशङ्कर उपाध्यायजीने 'दीन'के बाँधगुफाके पतेसे एक पत्र लिखा था। उस समय यह 'दीन' वहाँ उपस्थित न था। जब बाँधगुफामें श्रीगुरुदेवके चरणोंमें आया तो आज्ञा हुई कि इस शङ्काका समाधान जल्द लिखकर भेज दो। अतएव उस आज्ञाको शिरोधार्य कर निज तुच्छ मत्यनुसार श्रीमानसके मूल शब्दोंके आधारपर कुछ विचार उपस्थित किया जाता है।

इस प्रसंगमें सर्वप्रथम दो शब्दोंके अर्थपर ही विचार करनेसे उपर्युक्त शङ्का सर्वथा निर्मूल हो जाती है। पहला—'मायामय तेहि कीन्ह रसोई' में 'मायामय' शब्द है, और दूसरा—'है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू' में 'अन्न' शब्द। रसोई 'मायामय' हुई थी। यहाँ 'मायामय' से क्या तात्पर्य है? यदि 'मायामय' शब्दसे यह भाव लिया जाय कि वहाँ सब झूठा खेल था, वस्तुतः कुछ भी नहीं बना था—(जैसा राजाको शापके पश्चात् वहाँ जानेपर मालूम हुआ था कि 'तहँ न असन नहिं बिप्र सुआरा') तो इससे—'बिबिध मृगन कर आमिष राँधा। तेहिमहँ बिप्रमांस खल साँधा॥' अर्थात् अनेक प्रकारके जानवरोंका मांस पकाया गया और उसमें ब्राह्मणका मांस भी मिलाया गया था—यह बात मिथ्या हो जाती है। और इसके मिथ्या होनेसे 'भयउ रसोई भूसुर-मासू'—यह आकाशवाणी भी झूठी हो जायगी। तब 'मायामय' शब्दसे यहाँ क्या भाव लक्ष्य कराया गया है? इसका पता 'है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू' इस आकाशवाणीके 'अन्न' शब्दसे मिल रहा है। अर्थात् 'मायामय' से यह तात्पर्य है कि रसोई बनायी गयी तो मांसकी ही थी, परन्तु उसमें ऐसी माया रच दी गयी थी कि वह देखनेमें 'अन्न' की रसोई प्रतीत होती थी। ऐसा कपटमय कार्य हुआ था कि रसोई मांसकी बनी और परसनेवाले राजा तथा भोजन करनेवाले ब्राह्मणोंको साफ अन्नके ही पदार्थ दीखते थे। इसी कारण धर्म-धुरन्धर राजा भानुप्रतापको भी उसके परसनेमें कोई शङ्का नहीं हुई, तथा विप्रोंको भी अन्नके पदार्थ देखकर कोई संकोच या व्यतिरेक भाव उत्पन्न न हुआ। बल्कि अन्नके पदार्थ जानकर वे सब उसे खानेके लिये तैयार थे। क्योंकि उस 'मायामय' कार्यके प्रभावसे वे ऐसे व्यामोहित हुए थे कि किसीकी समझमें इस कपटका भेद नहीं खुल सका। परन्तु सर्वदर्शी सर्वान्तर्यामी भगवान्‌के सामने माया क्या कर सकती है? भला उनसे क्या छिप सकता है? जब भगवान्‌ने देखा कि इस प्रकार धोखेमें ही इन विप्रोंका धर्म नष्ट हुआ चाहता है, (क्योंकि ये बेचारे इसे अन्न देख रहे हैं और यह वास्तवमें मांस है) तब—

परसन जबहिं लाग महिपाला। भइ अकासबानी तेहि काला॥
बिप्रबृंद उठि-उठि गृह जाहू। है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू॥
भयउ रसोई भूसुर-मासू। × × × × ×॥

—इस प्रकार उस मायामय कपटसे बचानेके लिये आकाशवाणी हुई।

अब 'अन्न' शब्दसे यह सिद्ध होता है कि ब्राह्मण उसे अन्नकी रसोई ही जानकर खानेको तैयार हुए थे, न कि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मांसकी रसोई। इसी कारण आकाशवाणीमें 'अन्न' शब्द आया है। यदि ब्राह्मण मृग-मांस खाते होते और केवल भूसुर-मांसका ही निषेध होता तो आकाशवाणी इस प्रकार होती कि, 'है बड़ि हानि 'मांस' जनि खाहू।' 'भयउ रसोई भूसुर-मासू' इत्यादि। परन्तु उस रसोईको आकाशवाणीमें 'मांस' न कहकर स्पष्टरूपसे 'अन्न' कहा गया है। इससे सिद्ध होता है कि ब्राह्मणोंको यदि मृग-मांसकी प्रतीति होती तो वे रुष्ट होकर अवश्य शाप दे देते। राक्षसकी तो स्कीम ही और थी, उसने सोचा था कि 'रसोई परसनेके बाद जब ब्राह्मण भोजन आरम्भ करेंगे तब हम अपनी माया समेट लेंगे और उनको अपने सामने मांस स्पष्ट दीखने लगेगा और वह कोपकर राजाको शाप दे देंगे। इस प्रकार ब्राह्मण भी भ्रष्ट हो जायँगे और राजाको भी शाप लग जायगा।' परन्तु भगवान्‌ने आकाशवाणीद्वारा ब्राह्मणोंको धर्मभ्रष्ट होनेसे बचा लिया।

राक्षसने भूसुरका मांस मृग-मांसमें इसलिये मिला दिया था कि निषेधकी पराकाष्ठा हो जाय, क्योंकि जब केवल मांसका ही निषेध है तो फिर विप्र-मांसका तो कहना ही क्या है? विविध मृगमें गो भी शामिल है। इसलिये उसने गौ और ब्राह्मणका मांस सम्मिलित करके निषेधका अन्त कर डाला था! और इसी निषेधकी पराकाष्ठाको सूचित करनेके लिये आकाशवाणीमें भूसुर-मांसकी सूचना दी गयी है—'भयउ रसोई भूसुर-मासू।' यद्यपि रसोईमें विविध मृगोंका ही विशेष मांस था और उसमें भूसुर-मांस स्वल्प परिमाणमें मिलाया गया था तथापि आकाशवाणीमें केवल भूसुर-मांसकी ही चर्चा हुई थी, इसका कारण यह है कि भूसुर-मांसका भोजन सबसे अधिक जघन्य है, इसीलिये मुख्यका ही जिक्र किया गया। मुख्यके सामने गौणकी चर्चा भी क्यों की जाती? इसीलिये आकाशवाणीमें 'भूसुर-मासू' शब्द कहकर और मांसोंको गौण सूचित किया गया है।

अब रही यह बात कि उस राक्षसने सीधे अन्नकी रसोई बना उसमें किञ्चित् मांस मिलाकर अपना कार्य सिद्ध करनेके बजाय सारी रसोई मृग-मांसकी ही क्यों तैयार की? इसके दो मुख्य कारण हैं; एक तो यह कि यदि अन्नकी रसोईमें अधिकता होती और उसमें अल्प अंशमें मांसका मिश्रण होता तो माया हटानेपर भी मांसका स्पष्टरूपसे शीघ्र प्रत्यक्षीकरण नहीं होता, और ब्राह्मण रुष्ट होकर शीघ्र शाप नहीं दे पाते। दूसरी बात यह है कि लाखों ब्राह्मणोंको कुटुम्बसहित भोजन देनेके लिये हजारों मन अन्नकी आवश्यकता होती और वह उस जङ्गलमें छिपकर रहनेवाले राक्षसके लिये दुष्प्राप्य ही था। यदि किसी नगरकी अनाजमण्डीसे वह अनाज प्राप्त करता तो इस बातका भय था कि हुल्लड़ मच जानेसे गुप्त भेद खुल जायगा। इसीलिये उसने सुगम समझकर वन्य पशुओंको मारकर मांसकी ही सामग्रीसे रसोई तैयार की थी और उसे अधिक निषिद्ध बनानेके लिये विप्रतकका मांस उसमें मिला दिया था।

सारांश यह है कि राक्षसने अपनी मायासे मांसको अन्नके रूपमें ब्राह्मणोंके सामने रक्खा था और वह चाहता था कि ब्राह्मण जब भोजन करने लगेंगे तो मैं माया हटा लूँगा और वे मांसको देखकर क्रोधित हो राजाको शाप दे देंगे। राक्षसने एक ही ढेलेसे दो पक्षी मारनेका सङ्कल्प किया था, अर्थात् ब्राह्मणोंको धर्मभ्रष्ट और राजाको शाप। परन्तु धर्मरक्षक परमात्माने आकाशवाणीद्वारा ब्राह्मणोंका धर्म बचा लिया! अतएव इस प्रसङ्गसे ब्राह्मणोंका मांसाहारी होना किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं होता। न तो ग्रन्थकारका कोई ऐसा लक्ष्य यहाँ है, और न प्रसङ्ग ही ऐसा है, जिससे ब्राह्मणोंके ऊपर मांसाहारका आरोप किया जा सके। यहाँ तो प्रसङ्ग साफ है कि ब्राह्मण अन्नके भोजनके लिये ही निमन्त्रित थे और उन्हें अन्नकी प्रतीति हो, इसीलिये राक्षसने मायासे मांसको अन्नरूपमें प्रकट किया था, तथा भगवान्‌ने भी आकाशवाणीद्वारा ब्राह्मणोंको मायाके कपट-जालको तोड़ते हुए कहा था कि—'है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू॥' इसलिये ब्राह्मणोंके ऊपर मांसाहारके आरोपकी शङ्का निर्मूल और अनुचित है। भला, जब कलियुगके धर्मनिष्ठ ब्राह्मण भी मांस-स्पर्शसे घृणा करते और उसे महानिषिद्ध समझते हैं तो त्रेतायुगके ब्राह्मण जो 'निज निज धरम निरत श्रुति रीती' के अनुसार वर्णाश्रम-धर्मके पालनमें ही अपना जीवन बिताते थे, इस प्रकारके कलुषित कर्म कैसे कर सकते थे? उस समयके ब्राह्मणोंमें—

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥

—यथार्थरूपसे वर्तमान था। उस समयके ब्राह्मणोंके लिये स्वप्नमें भी मांसाहारका अनुमान करना कुचेष्टामात्र है। उपर्युक्त प्रसंगमें कोई भी शब्द ब्राह्मणोंको मांसाहारी नहीं सिद्ध करता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परमार्थ-पत्रावली

(श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पत्र)

[गतांकसे आगे]

[१४]

आप सरकारी नौकरी छोड़कर व्यापारक्षेत्रमें आ गये हैं सो बहुत उत्तम है। आपने स्वामीजी श्रीयोगानन्दजी-से शिव-मन्त्रकी दीक्षा ली सो बहुत अच्छा किया। उनकी बङ्गभाषा होनेके कारण उनके उपदेशोंसे आप विशेष लाभ नहीं उठा सके एवं उनकी आज्ञाका समीचीनरूपसे पालन नहीं कर सके, इसमें प्रधानतया श्रद्धा और प्रेमकी कमी ही कारण है। इसलिये उनको असन्तुष्ट रहना उचित ही है। अब उनका शरीर शान्त हो गया यह शोककी बात है, किन्तु कोई उपाय नहीं। उनके बताये हुए उपदेशको काममें लानेकी कोशिश करनी चाहिये।

आपने लिखा कि गुरु-मन्त्र, इष्ट-मन्त्र तथा गायत्री-मन्त्रका जप करता रहता हूँ किन्तु श्रद्धा-भक्ति एवं प्रेमकी कमी होनेके कारण काम-क्रोधादि षड्रिपु चित्तको चञ्चल करते रहते हैं। इनकी निवृत्ति और श्रद्धा, भक्ति एवं प्रेमकी उत्पत्तिके लिये उपाय पूछा सो ठीक है। वास्तवमें तो भगवान्‌का सच्चा भक्त ही इनका उपाय बतला सकता है। मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ तथापि आपके प्रेमके कारण अपनी साधारण बुद्धिके अनुसार कुछ लिखता हूँ, त्रुटियोंके लिये क्षमा करेंगे।

भगवान्‌के गुण, प्रेम, रहस्य और प्रभावकी बातें भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंसे सुनकर मनन करनेसे भगवान्‌का प्रभाव जाननेसे भगवान्‌में श्रद्धा उत्पन्न होती है। और उस श्रद्धासे प्रेम और भक्तिकी वृद्धि होती है।

भगवान्‌के नामका जप और स्वरूपका ध्यान एवं स्वार्थको त्यागकर दुखी जीवोंकी सेवा करनेसे एवं न्यायोपार्जित द्रव्यसे संगृहीत आहार करनेसे अन्तःकरण पवित्र होता है, तब श्रद्धा, भक्ति एवं प्रेमकी वृद्धि होती है। प्रेमकी वृद्धि होनेसे विषयासक्तिका नाश हो जाता है और विषयासक्तिके नाश हो जानेपर काम-क्रोधादि कभी उत्पन्न नहीं होते।

बसहिं भक्तिमणि जिहि उरमाहीं। खल कामादि निकट नहिं जाहीं॥
राम भक्तिमणि उर बस जाके। दुख लवलेश न सपनेहु ताके॥
गरल सुधा सम अरि हित होई। तेहि मणि बिनु सुख पाव न कोई॥

नवद्वीप जाकर श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके मन्दिरमें भजन-कीर्तन करनेकी इच्छा प्रकट की सो उत्तम बात है। भगवान्‌के प्रेमी भक्त जहाँ हों, वहीं सब तीर्थ वास करते हैं और जहाँ उनके प्रेमी भक्त भगवान्‌के गुणोंका कीर्तन करते हैं वहाँ तो स्वयं भगवान् विराजमान रहते हैं। भगवान्‌ने कहा है—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

इसलिये सत्पुरुषोंका संग अवश्यमेव करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। सत्पुरुषोंकी महिमा महाभारत, रामायण, श्रीमद्भागवतादि ग्रन्थोंमें जगह-जगह गायी है।

भवद्विधा भागवतास्तीर्थीभूताः स्वयं विभो।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता॥
(श्रीमद्भा० १। १३। १०)

हे स्वामिन्! आप-सरीखे भगवद्भक्त स्वयं तीर्थरूप हैं। (पापियोंके द्वारा कलुषित हुए) तीर्थोंको आपलोग अपने हृदयमें स्थित भगवान् श्रीगदाधरके प्रभावसे पुनः तीर्थत्व प्राप्त करा देते हैं।

बिनु सतसंग न हरि कथा, तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गये बिनु राम-पद, होइ न दृढ़ अनुराग॥
तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अंग।
तुलै न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग॥

आपने लिखा कि प्रेममें मग्न होकर अश्रुपात करते

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हुए भक्तोंको देखकर भी प्रेम एवं अश्रुपात नहीं होते इसके लिये भगवान्‌से प्रार्थना भी की गयी परन्तु कुछ नहीं हुआ सो ठीक है। आपको अपने दोष और अपराधोंका खयाल करके भगवान्‌के शरण होकर करुणा-भाव-युक्त गद्गद् वाणीसे पुनः-पुनः भगवान्‌की स्तुति और प्रार्थना वैसे ही करनी चाहिये जैसे विरहके समय भरतजीने की थी—

जो करनी समुझै प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कल्प शत कोरी॥
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीनबंधु अति मृदुल सुभाऊ॥
मोरे मन भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम शकुन शुभ होई॥
बीते अवधि रहै जो प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥

इस घोर कलिकालमें सबसे उत्तम भगवान्‌के भजन-की महिमा शास्त्रोंमें गायी गयी है इसलिये ध्यानसहित भगवान्‌के नामका श्रद्धा और प्रेमपूर्वक निष्कामभावसे नित्य-निरन्तर जप करनेकी कटिबद्ध होकर प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये।

कलियुग केवल नाम अधारा। सुमरि सुमरि भव उतरहु पारा॥
कलियुग सम युग आन नहिं जो नर कर विश्वास।
गाइ राम गुणगण विमल, भव तर बिनहि प्रयास॥

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

दो बातनको भूल मत, जो चाहत कल्यान।
'नारायन' एक मौतको, दूजे श्रीभगवान॥
'कबीर' सूते क्या करे, जागिकै जपौ मुरारि।
एक दिन ऐसे सोवना, लम्बे पैर पसारि॥
'कबीर' नौबत आपनी, दिन दस लेहु बजाय।
यह पुरपट्टन यह गली, बहुरि न देखो आय॥
जबहि नाम हिरदै धरा, भया पापका नास।
जैसी चिनगी अगिनिकी, परी पुराने घास॥
राम नाम मणि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
'तुलसी' भीतर बाहिरौ, जो चाहसि उजियार॥

भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥
(८।१४)

'हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्तसे स्थित हुआ सदा ही निरन्तर मुझको स्मरण करता है, उस निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ अर्थात् सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।'

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥
(१२।२)

'मुझमें मनको एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन-ध्यानमें लगे हुए जो भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धासे युक्त हुए मुझ सगुणरूप परमेश्वरको भजते हैं, वे मुझको योगियोंमें भी अति उत्तम योगी मान्य हैं। अर्थात् उनको मैं अति श्रेष्ठ मानता हूँ।'

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
(९।३०)

'यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भक्त हुआ मुझको निरन्तर भजता है वह साधु ही मानने योग्य है क्योंकि वह यथार्थ निश्चय-वाला है।'

सुन्दरदासजी कहते हैं—

सन्त सदा उपदेश बतावत, केश सभी शिर श्वेत भये हैं।
तू ममता अजहूँ नहिं छाँड़त, मौतहु आय सँदेश दये हैं॥
आज कि काल चलै उठ मूरख, तेरे ही देखत केते गये हैं।
'सुन्दर' क्यों नहिं राम सँभारत, या जगमें कह कौन रहे हैं॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भक्त-गाथा

श्रीभगवान्‌दासजी

(लेखक—म० श्रीबालकराम विनायकजी)

त्र-विचित्र सृष्टि रचनेवाली प्रकृति-जननी कभी-कभी अपनी गोदको 'सन्त-शिशु' से भूषित करती है जिनके दर्शनसे पाप-तापका नाश हो जाता है, यह दुःखपूर्ण संसार सुखका क्षेत्र बन जाता है, असंख्य जीवोंका कल्याण होता है और भगवान्‌में स्वतः विश्वास हो जाता है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें भक्तिमान् पुरुषके लक्षण दिये हुए हैं उन्हें 'कल्याण' के प्रेमी अच्छी तरह जानते हैं। वर्तमान मनुष्य-सृष्टिमें उन्हीं लक्षणोंसे युक्त किसी व्यक्तिका उत्पन्न होना कितना कठिन है इस बातको विज्ञ और सुधीलोग भलीभाँति समझते हैं, एक प्रकारसे असम्भव ही मानते हैं। परन्तु असम्भवको भी सम्भव करनेवाली दिव्य प्रकृति महापुरुषोंकी भी इस संसारमें अवतारणा करती ही रहती है। इस बातका साक्षी मनुष्य-जातिका इतिहास है।

बिहार-प्रान्त मुँगेर-जिलेमें किउल नामक एक नदी बहती है, इस नामसे प्रसिद्ध एक रेलवे स्टेशन भी है। उसी किउल-तटवर्ती ग्राममें एक सन्तने जन्म लेकर माता-पिताको, कुल-परिवारको और चराचर विश्वको कृतार्थ कर दिया। कहते हैं कि आजसे साठ वर्ष पहले उस ग्राममें नैपालसे दो योगी आये थे और दो-तीन दिन टिके थे। उनमेंसे एकका वहीं देहान्त हो गया था। दूसरा योगी उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया करके जब जाने लगा, तब उसने कहा कि स्वर्गीय योगी फिर इसी ग्राममें जन्म लेगा, तब मैं फिर आऊँगा। कुछ वर्षोंके बाद वह फिर उस ग्राममें आया तब हमारे चरित्रनायकका जन्म हो चुका था। उसने पता लगाकर शिशुको पहचानकर बच्चेको प्यार किया था और व्याघ्रका नख दे गया था जिसे पिताने चाँदीकी मञ्जूषामें मढ़वाकर बच्चेके गलेमें पहना दिया था।

शिशुपनमें ही एकाग्रवृत्तिका परिचय पाकर माताको विश्वास हो गया था कि यह वही योगी है जिसके विषयमें ग्रामवासी चर्चा करते हैं। अस्तु, उसने पवित्रभावसे शिशुका लालन-पालन किया था और सयाने होनेपर वह रामायणीकथा उसको सुनाया करती थी। उस ग्राममें सीधे-सादे एक वृद्ध ब्राह्मण रहते थे जो बड़े प्रेमसे ठाकुरजी-की पूजा किया करते थे। उन्हींके पास सयाने होनेपर हमारे चरित्रनायक जा-जाकर बैठने लगे। शुद्धहृदय बालकके अन्तःपटलपर उनकी अर्चा-पूजा, भावना-निष्ठा आदिकी सरल और सूक्ष्म रेखाएँ अङ्कित हो गयीं। द्विजदेवके यहाँ प्रति मङ्गलवारको श्रीरामचरितमानसका गान हुआ करता था। एक बार भौमवारको एक महात्मा आ गये और मानसगानके अनन्तर उन्होंने कुछ चौपाइयों-की व्याख्या भी की जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव श्रोताओंपर पड़ा। उसका कारण यही था कि उक्त महात्मा थे तो संस्कृतके विद्वान् परन्तु उनकी निजी आस्था मानसहीपर थी। इसका वह नित्य पाठ करते थे और इसीकी कथा कहते थे जिसमें वह अपने सम्पूर्ण शास्त्रीय ज्ञानका उपयोग करते थे। लोगोंके आग्रहसे उनकी कथा आरम्भ हुई। एक दिन उन्होंने 'भजिय राम सब काम बिहाई' की ऐसी व्याख्या की, ऐसा भाव दर्शाया कि चरित्रनायक बालकके हृदयमें तीरके समान लगा। देर नहीं लगी, दूसरे ही दिन वह घरसे निकल पड़ा। किउल स्टेशनपर जाकर रेलपर सवार हो गया, बाँकीपुरमें बिना टिकट होनेके कारण उतार दिया गया। वहाँ बाकरगञ्जमें बाबा भीष्मदासजीके स्थानमें आश्रय पाकर कुछ दिन रह गया। वहाँसे सोनपुर होते हुए सीधे अयोध्याजी पहुँच गया।

यहाँ श्रीलक्ष्मणजीके मन्दिरमें बाबा श्रीरामशरणदासजी, स्थान परसा जिला सारनवाले रहते थे। उन्हींकी शरणमें प्राप्त होकर हमारे चरित्रनायक वैष्णव-पञ्च-संस्कारसे भूषित हुए। भगवान्‌दासजी नाम पड़ा और गुरु महाराजकी सेवामें तत्पर हुए।

* * * *

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सेवासे प्रसन्न होकर गुरु महाराजने अपने शिष्यको रसात्मिका भक्तिकी ओर प्रवृत्त किया और शृङ्गार-रसका उपदेश दिया। महली उपासनाके केन्द्र श्रीअवधमें 'कनक-भवन' है जहाँके ठाकुरजी स्वयं व्यक्त विग्रह युगल सरकार साक्षात् विराजमान माने जाते हैं और जहाँ सैकड़ों सन्त नित्य-नियम-पूर्वक दर्शनार्थ आते हैं। श्रीभगवान्दासजी अपने गुरु महाराजके साथ कनकभवनमें आये। सकल शोभाधाम श्रीविहारीजीपर ज्यों ही दृष्टि गयी कि शरीरमें बिजली दौड़ गयी, टकटकी बँध गयी।

जिस प्रकार बालपनमें मीराबाईको श्रीगिरिधर गोपालजी दीखे थे उसी तरह श्रीभगवान्दासजीको विहारीजी।

हुस्न आईनए-इश्क हो, इश्क आईनए-हुस्न।
मैं तुमको नज़र आऊँ, मुझे तू नज़र आए॥

—दारा

उसी दिनसे सन्ध्या-आरतीके समय श्रीविहारीजीके दर्शनार्थ श्रीकनकभवनमें आना नित्यका नियम हो गया। महल-यात्राके लिये तुलसीके आभूषण और रंगीन वस्त्र अलग रहते थे। भूलकर भी उनका उपयोग किसी दूसरे समय नहीं होता था। महलसे लौटकर जानेपर उन्हें उतार-कर रख दिया जाता था और साधारण वस्त्र धारण कर लिया जाता था। महलका प्रसाद साफीके खूँटमें सदा बँधा रहता था और राह चलते हुए भी श्रद्धालु-प्रेमियोंको अवश्य मिलता था। यह भक्ति-निष्ठा, नियम-निष्ठा एवं समय-निष्ठा आजन्म बनी रही। सदा एकरस बनी रही, बिन्दु-विसर्गका अन्तर नहीं पड़ने पाया। शारीरिक बाधाएँ, परिस्थितिकी बाधाएँ एवं अनेक प्रतिकूलताएँ कोई भी उस निष्ठासे विचलित न कर सकीं। जिस विषयको ग्रहण करके अनेक विघ्न उपस्थित होनेपर भी उसे त्यागनेकी सामर्थ्य न हो उसीको निष्ठा कहते हैं। एक बार किसी कारण कुछ दिनोंके लिये महलमें जाना सब सन्तोंने एकबारगी बन्द कर दिया था। उस समय श्रीभगवान्दासजीसे भी ऐसा ही करनेके लिये आग्रहपूर्वक कहा गया। यहाँतक कि लोगोंने उनके गुरु महाराजसे कहलाकर उनकी महल-यात्रा रोकवा देनेकी चेष्टा की थी। क्योंकि सबको विश्वास था कि वे गुरु-आज्ञाका उल्लङ्घन कभी न करेंगे। परन्तु जब वे गुरु महाराजके सम्मुख उपस्थित हुए तब उनकी कातर दशा देखकर—उनमें अपनी प्रिय निष्ठाके त्यागनेकी सामर्थ्य न पाकर गुरुजी अवाक् रह गये। उन्हें स्पष्टरूपसे सबके सामने कहना पड़ा कि भगवान्दासको महलमें जाने दो, रोक देनेसे महा अनर्थ हो जायगा।

जो घरे सो नहिं तजे, तजे देह अरु गेह।
'तुलसी' सीता-राम सों तिनको निबहत नेह॥

गुरुकी अनुकूलता पाकर वे पुलकित और प्रफुल्लित हुए एवं महलमें जाकर प्यारे रिझवारसे किसी उर्दू कविके शब्दोंमें व्यङ्गपूर्वक गर्वीले वचन बोले—

महलका बन्द दरवाज़ा किए ख़िलवतमें बैठे हैं।
और हरदम डयोढ़ीवानोंसे यही तकरार आता है॥
'कोई कितना पुकारे खोलना हरगिज़ न कुंडीको।
भला देखें यहाँपर कौन-सा मक्कार आता है॥'
कहा मैंने यह धमकी दीजिए ज़ाहिर-परस्तोंको।
जो आशिक़ है वह साहब फाँदकर दीवार आता है॥

एक बार श्रीजानकी-जन्मोत्सवपर सन्तोंका बड़ा समारोह रहा। सभा-भवन पूर्णरूपसे भर गया था। भगवान्दासजी प्रसाद बाँट रहे थे। भूलसे एक तपस्वी साधुको प्रसाद नहीं मिला। इसपर वे साधु बहुत बिगड़े, आपेसे बाहर हो गये। दुर्वचन कहने लगे। भगवान्दासजीने सब सुन लिया, सहन किया, उनके अनुचित क्रोधपर मुसकराते रहे परन्तु उनके वदनपर क्रोधकी एक भी रेखा नहीं उदित हुई। गोस्वामीजीने बहुत ही ठीक कहा है—

भौंह कमान सँधान सुठान जे नारि बिलोकनि बानते बाँचे।
क्रोध कृसानु गुमान अँवाघर त्यों जेहिके मन आँच न आँचे॥
लोभ सबै नटके बस ह्वै कपि-ज्यों जगमें बहु नाँच न नाँचे।
नीके हैं साधु सबै 'तुलसी' पै तेई रघुबीरके सेवक साँचे॥

श्रीभगवान्दासजी नित्य-नियमपूर्वक सन्ध्या-आरतीके पश्चात् चार पद गाकर साधारण प्रेम-नृत्यके साथ सुनाते थे—(१) सदा चिरजीवो, रंगभरी जोरी, (२) जय श्रीजानकीवल्लभलाल, (३) लली लालनकी जोरी मुबारक रहै, (४) मैं वारी, युगलपर वारी। इन पदोंको ऐसे प्रेमसे गाते थे कि श्रोताओंके ऊपर उनका इतना प्रभाव पड़ता था कि लोग खड़े होकर उन्हींके साथ स्वरमें स्वर मिलाकर गाने लगते थे। बाहरके बहुत-से प्रेमी उन्हें लिख ले जाते थे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और बड़े प्रेमसे गाया करते थे। महारानी बिजावर, सेठ फूलचन्द टीकमानी, महारानी अमावाँ (टिकारी) आदिके नाम उल्लेखनीय हैं, जो इन पद्योंको छपवाकर वितरित करनेके अभिप्रायसे लिखवाकर ले गये थे, मालूम नहीं कि उन्होंने ऐसा किया या नहीं, परन्तु अवधवासी गृहस्थ और विरक्त इन पदोंको सखीजीकी यादगारमें अब भी नित्य उसी नियमसे उस समय गाकर कृतार्थ होते हैं।

इस प्रकार भगवत्-उत्सवके आमोद-प्रमोदमें ही श्री-भगवान्दासजीके अहोरात्र एक निमिषके समान कट जाते थे। श्रीहनुमन्निवासके स्वामी श्रीगोमतीदासजी महाराज (जिनकी छत्र-छायामें भगवान्दासजी रहते थे) संवत् १९८७ में साकेतवासी हुए। उनका विमान बड़ी धूमसे निकला। जब वह विमान महल (श्रीकनकभवन) के निकट पहुँचा तो किसी प्रेमीने दूरसे एक सुन्दर हार विमानपर फेंका। वह हार विमानको स्पर्श करके भगवान्दासजीके सिरपर गिरा। उन्होंने प्रसाद समझकर उसे गलेमें पहन लिया और लगातार महीनोंतक उसे महल-यात्राके समय धारण करते रहे। लोगोंके बहुत निषेध करनेपर भी नहीं मानते थे। हँसकर कहते थे—कुछ होनेवाला है। उस समय लोग इस वाक्यका तात्पर्य नहीं समझते थे। होते-होते श्रीहनुमन्निवासके महाराजजीकी वर्षी आ पहुँची। भगवान्दासजी ज्वर-ग्रस्त हुए। किसी भी उपचारसे वह ज्वर उतरा नहीं। ठीक वार्षिक श्राद्धके दिन भण्डारा हो जानेपर उन्होंने शरीर त्यागकर नित्यनिकुञ्जविहारमें प्रवेश किया। चैत्र कृ०१४ सं० १९८८ सोमवारके रात्रिको यह घटना घटित हुई। सन्तोंने बड़े समारोहसे विमान निकाला और श्रीसद्गुरुसदन, हनुमद्भवन और श्रीकनकभवनमें भण्डारे हुए।

सन्त भगवान्दासजीकी अपूर्व वृत्तिका अनुभव निम्नस्थ पद्यके ठीक-ठीक समझनेसे स्वतः हो जाता है—

दरजा दूर इश्क़वालोंका हरदम बेपरवाही है।
लोक समस्त शोक सम जाने मस्त दुरुस्त सिपाही है॥
फिक़िर फक़त दिलदार दरशका ज़िकिर नाम चितचाही है।
'श्रीयुगल-अनन्यशरण' बैठे घर आई शाहंशाही है॥

राम-नाम-महिमा

(१)

राम-नामके जापसों, पाप-ताप बहि जात।
हरिसों भी हरि-नामकी, महिमा अति अधिकात॥

(२)

मरा-मराके रटत ही, हुए राममें लीन।
राम-नाम जो रटत हैं, वे का रहिहैं दीन॥

(३)

'मोहन' या कलिकालमें, और न साधन कोय।
राम-नाम केवल सुन्यौ, जाहि जपै हित होय॥

(४)

भाग्यहीनको भाग्य है, भूखेको माँ-बाप।
दानी जगमें दीनको, राम-नामको जाप॥

(५)

आँधेहू की आँखि हैं, पंगुरके पग-हाथ।
राम-नाम सुमिरन किएँ, सकल पदारथ हाथ॥

(६)

असहायनको मित्र है, भूलेको विसराम।
निर्धनको धन जगतमें, एक रामको नाम॥

(७)

निराधारको एक है, राम-नाम आधार।
जो लावे विस्वास उर, सो पावै फल चार॥

(८)

भव-सागरकी नाव है, कष्ट-निवारन-हार।
राम-नामके जापतें, सुगम होत निस्तार॥

(९)

राम-नामकी आंषधी, हित-चितसों पी जाइ।
का अचरज तन-रोगको, भव-रोगहु मिटि जाइ॥

(१०)

कल्पवृक्ष कलिकालमें, राम-नाम सुख-धाम।
प्रेम-नेमसों जो जपै, मन-वांछित है काम॥

(११)

राम-नाम मंगलकरन, हरन सकल कलि-दोस।
'मोहन' गाओ प्रेमसों, मनमें राखि भरोस॥ —साह मोहनराज

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विवेक-वाटिका

एकान्त-देशमें पवित्र-मन होकर सुखासनसे बैठकर सिर और शरीरको सीधा रखकर योगी सब इन्द्रियोंको रोककर और भक्तिपूर्वक गुरुको नमस्कार करके रजोगुण-रहित विशुद्ध हृदयकमलमें निर्मल, शोकरहित, अचिन्त्य, अव्यक्त, अनन्तरूप, शान्त, अमृत और जगत्के कारण-रूप शिवका ध्यान करे। —उपनिषद्

❀ ❀ ❀ ❀

अपने-आप ही अपना उद्धार करे, अपनेको अधोगतिमें न पहुँचावे, क्योंकि यह आप ही अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है। जिसके द्वारा मन, इन्द्रियाँ और शरीर जीते हुए हैं, वह अपना मित्र है और जिसके द्वारा ये नहीं जीते गये हैं, वह आप ही अपने लिये शत्रुके सदृश है। —श्रीमद्भगवद्गीता

❀ ❀ ❀ ❀

कृपण लोगोंको धनसे प्रायः कोई भी सुख नहीं मिलता। इस लोकमें तो उसके संग्रह और रक्षाकी चिन्ता लगी रहती है और मरनेपर वह (पापसे कमाया हुआ धन) नरकका कारण होता है। जिस प्रकार जरा-सा भी कोढ़ सर्वांगसुन्दर रूपको बिगाड़ देता है, इसी प्रकार तनिक-सा भी लोभ यशस्वियोंके निर्मल यशको और गुणियोंके प्रशंसनीय गुणोंको कलङ्कित कर देता है।

—श्रीमद्भागवत

❀ ❀ ❀ ❀

भगवान्की कथामें श्रद्धा करे, भगवान्के गुण-कर्मोंका कीर्तन करे, भगवान्के चरणकमलोंका ध्यान करे, भगवान्-की प्रतिमाका पूजन करे, उन्हींका स्मरण करे, उन्हींके चरणकमलोंमें सिर झुकावे, उन्हींको संसार-यात्राका सबसे बड़ा साथी माने, उन्हींकी दासता स्वीकार करे और उन्हींके चरणकमलोंमें आत्म-समर्पण कर दे।

—देवर्षि नारद

❀ ❀ ❀ ❀

जिन भगवान् विष्णुके स्मरणसे ही संसारके जन्म-जरा आदिसे उत्पन्न हुए भय भाग जाते हैं, उन भयहारी भगवान्के मेरे मनमें रहते मेरे लिये भय कहाँ है?

—प्रह्लाद

❀ ❀ ❀ ❀

उपशान्त और यथार्थ ज्ञानद्वारा मुक्त हुए पुरुषका मन शान्त होता है। उसके वाणी और कर्म शान्त होते हैं।

—भगवान् बुद्धदेव

❀ ❀ ❀ ❀

गौ अपने गलेमें पड़ी हुई मालाके रहने अथवा गिरने-की ओर जैसे कुछ भी ध्यान नहीं देती, इसी प्रकार प्रारब्ध-की डोरीमें पिरोया हुआ यह शरीर रहे या जाय, जिसकी वृत्ति आनन्दस्वरूप ब्रह्ममें लीन हो गयी है, वह तत्त्ववेत्ता पुरुष फिर इसकी ओर ध्यान नहीं देता। —श्रीशंकराचार्य

❀ ❀ ❀ ❀

सच्चा विरक्त उसीको कहना चाहिये जो मानके स्थान-से ही सदा दूर रहता है। वह सत्संगमें स्थिर रहता है। मानके लिये कदापि नहीं तरसता। और अपना कोई नया सम्प्रदाय नहीं चलाता। —एकनाथ

❀ ❀ ❀ ❀

अपनी पूज्यता अपनी आँखोंसे न देखे, अपनी कीर्ति अपने कानोंसे न सुने। ऐसा न करे जिससे लोग यह पहचान सकें कि यह अमुक है। बृहस्पतिके समान सर्वज्ञता मिली हुई हो तो भी महिमाके डरसे अज्ञानियोंके साथ ही रहे। अपने बुद्धिगौरवको छिपावे, अपना महत्त्व बिसार दे। इस प्रकार अमानी होकर रहे। —ज्ञानदेव

❀ ❀ ❀ ❀

जिसके मनमें भगवान्के प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया, उसे संसारका और कोई-सा भी सुख अच्छा नहीं लगता। जो एक बार बढ़िया मिश्रीका स्वाद पा चुका, वह क्या कभी राब खाना चाहेगा? —रामकृष्ण परमहंस

❀ ❀ ❀ ❀

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीहरिः ॥

कल्याण आषाढ़ १९९१ की

विषय-सूची

	पृष्ठ-संख्या
१–भजनहीन जीवन [कविता] (गोसाईं श्रीतुलसीदासजी)	१३८७
२–पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश	१३८८
३–प्रेम और शरणागति (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	१३८९
४–गीत [कविता] (श्रीमती महादेवीजी वर्मा एम० ए०)	१३९४
५–अनुरोध [कविता] (श्री 'चकोरी')	१३९४
६–प्रेम-दर्शन (देवर्षि नारदरचित भक्तिसूत्र)	१३९५
७–ब्रह्मविद्या-रहस्य (अनु० तथा ले०—श्रीनृसिंहदासजी वर्मा)	१४०३
८–प्रेमभक्ति (ब्रह्मचारी श्रीगोपाल चैतन्यदेवजी)	१४०९
९–शिव-सम्प्रदाय (म० श्रीबालकरामजी विनायक)	१४११
१०–राम-राज्यका आदर्श (श्रीरामदासजी गौड़, एम० ए०)	१४१५
११–रज-कण (श्री 'माधव')	१४२२
१२–मनको उपदेश (अनुवादक—कृष्णसुत)	१४२५
१३–आदर्श सरकारी नौकर (श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी एम० ए०, डिप्टी-कलेक्टर)	१४२९
१४–मनके रहस्य और उसका नियन्त्रण (स्वामीजी श्रीशिवानन्दजी)	१४३३
१५–पतित-पावन ! (पं० श्रीगौरीशंकरजी द्विवेदी 'साहित्यरत्न')	१४३५
१६–भंगभोगी भगवान्‌की भ्रान्ति (पं० श्रीद्वारकाप्रसादजी शुक्ल 'शङ्कर')	१४३७
१७–प्रार्थना [कविता] (श्रीलक्ष्मीनारायणजी शर्मा)	१४३८
१८–श्रीराधाकृष्णाय नमः [कविता] (श्री 'छैल')	१४३९
१९–श्रीयमकरामायण [कविता] (श्रीअमृतलालजी माथुर)	१४४०
२०–हिन्दुओंके त्यौहार और पन्द्रह तिथियाँ (पं० श्रीछजूरामजी शास्त्री, कविरत्न, विद्यासागर)	१४४३
२१–भगवान्‌की अद्भुत कृपा (एक सज्जन)	१४४६
२२–मायाके प्रति जीव [कविता] (श्रीदेवीप्रसादजी गुप्त 'कुसुमाकर' बी० ए०, एल-एल० बी०)	१४४७
२३–अनन्तकी ओर (ब्रह्मचारी पं० श्रीअक्षयवटजी त्रिपाठी शास्त्री)	१४४८
२४–पूजा (पं० श्रीविष्णुदत्तजी शुक्ल)	१४५२
२५–परमार्थ-पत्रावली (श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पत्र)	१४५७
२६–भक्त-गाथा (श्रीगुरांदित्ताजी खन्ना)	१४६३

सूचना

जो ब्राह्मण महानुभाव दस हजार गायत्री-मन्त्र जप करेंगे, उन्हें पाँच पैसेके टिकट भेजनेपर 'श्रीगायत्रीसहस्रनामावली' नामक पुस्तक दी जायगी।

पता—लक्ष्मीशङ्कर सोमेश्वर कोटाडीया, ऑडीटर, ८, लक्ष्मीदास-स्ट्रीट, मद्रास।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीहरिः

पुराने और नये ग्राहकोंकी सेवामें निवेदन

(१) यह आठवें वर्षकी १२ वीं यानी अन्तिम संख्या है, इस अंकमें सभी पुराने ग्राहकोंका सालाना चन्दा पूरा हो गया है।

(२) नवें वर्षका पहला अंक शक्ति-अंक होगा। शक्ति-अंक परिशिष्ट भाद्रपदके अंकसहित एक प्रतिका मूल्य ३) होगा, परन्तु पुराने और नये ग्राहकोंको अधिक कीमत नहीं देनी पड़ेगी, उन्हें सहजमें न मिलनेवाली बड़ी सुन्दर चीज सालाना चन्दा ४॥) देनेपर यों ही मिल जायगी।

(३) पुराने और नये ग्राहकोंको चन्देके रुपये ४॥) मनीआर्डरद्वारा जल्दी भेज देने चाहिये। नहीं तो वी० पी० जानेमें बहुत देर हो जायगी। मनीआर्डर-फार्म गत मास भेजा जा चुका है।

(४) जिन महानुभावोंने कल्याणके ग्राहक बनाये हैं और बना रहे हैं, उनके हम हृदयसे कृतज्ञ हैं। कल्याणके प्रचारद्वारा भगवान्‌के कार्यमें सहायता देकर वे सज्जन बड़ा ही उपकार कर रहे हैं। इस बार उन सबको विशेष चेष्टा करके नये सालके लिये ग्राहक बनाने चाहिये।

(५) इस बार शक्ति-अंक बहुत ही शिक्षाप्रद, मनोहर, संग्रहणीय और दुर्लभ सामग्रियोंसे भरा हुआ होगा। ग्राहक बननेवालोंको बहुत जल्दी करनी चाहिये।

(६) ग्राहकोंको चाहिये कि अपने मनीआर्डरके कूपनमें पूरा नाम, पता, गाँव, डाकघर और जिलेका नाम साफ अक्षरोंमें लिखें। पुराने ग्राहक अपने ग्राहक-नम्बर जरूर लिखें। नये ग्राहक 'नया' शब्द लिखें, नहीं तो कल्याण देरसे पहुँचेगा।

(७) कल्याणके साथ पुस्तकों और चित्रोंकी माँग न लिखें और न कल्याणके मूल्यके साथ पैसे ही भेजें। 'कल्याण' के साथ डाकके नियमानुसार और चीजें नहीं भेजी जा सकतीं। पुस्तक और चित्रोंके लिये मैनेजर गीताप्रेसको लिखें।

(८) सभी प्रेमी ग्राहक-अनुग्राहकोंसे प्रार्थना है कि प्रत्येक सज्जन और प्रत्येक बहिन कम-से-कम दो-दो नये ग्राहक बना देनेकी चेष्टा अवश्य करें।

(९) 'कल्याण' का नया वर्ष श्रावण कृष्ण ११ से शुरू होता है। पूरे सालके ही ग्राहक बनाये जाते हैं। बीचसे ग्राहक नहीं बनाये जाते।

(१०) सजिल्द शक्ति-अंक लगभग प्रकाशित होनेके एक महीने बाद भेजा जा सकेगा, अतएव सजिल्द लेनेवाले ग्राहक धैर्य रक्खें।

(११) जिन सज्जनोंको ग्राहक नहीं रहना हो वे कृपापूर्वक पहलेसे एक कार्ड लिखकर हमें जरूर सूचना दे दें ताकि व्यर्थ वी० पी० भेजकर नुकसान नहीं उठाना पड़े। आपके तीन पैसेके खर्चसे कल्याण-कार्यालयके कम-से-कम छः आने पैसे बच जायँगे।

व्यवस्थापक— कल्याण, गोरखपुर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीश्रीसीताराम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु । मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

वर्ष ८ | गोरखपुर, आषाढ़ १९९१ जुलाई १९३४ | संख्या १२ पूर्ण संख्या ९६

भजनहीन जीवन

जो पै रहनि रामसों नाहीं ।
तौ नर खर कूकर सूकर सम वृथा जियत जग माहीं ॥
काम क्रोध मद लोभ नींद भय भूख प्यास सबहीके ।
मनुज-देह सुर-साधु सराहत सो सनेह सिय-पीके ॥
सूर सुजान सुपूत सुलच्छन गनियत गुन गरुआई ।
बिनु हरिभजन इँदारुनके फल तजत नहीं करुआई ॥
कीरति कुल करतूति भूति भलि सील सरूप सलोने ।
तुलसी प्रभु-अनुराग-रहित जस सालन साग अलोने ॥

—गो० तुलसीदासजी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश

प्र०—सत्संग क्यों करना चाहिये ?

उ०—सत्संग करनेसे भगवत्प्राप्तिका मार्ग दिखलायी पड़ता है। जिस मार्गसे सत्पुरुष गये हैं, उनका सङ्ग किये बिना भगवत्प्राप्तिका मार्ग हमें नहीं मिल सकता। जो भगवान्‌के पास गये हैं, उनके पास रहे हैं वे ही मार्ग बता सकते हैं। जिनको प्राप्ति हो गयी है, ऐसे सिद्ध पुरुषोंको भी सत्संग करना चाहिये। साधकको तो प्राप्तिका मार्ग देखनेके लिये और भगवान्‌का स्वरूप जाननेके लिये सत्संग करना चाहिये। सिद्ध पुरुषोंको सत्संगमें अपने प्यारेका चिन्तन होता है इसलिये उन्हें भी सत्संग करना चाहिये।

प्र०—सत्संग करनेसे क्या लाभ है ?

उ०—सत्संग करनेसे दिनों-दिन हमारी भगवान्‌में आसक्ति बढ़ती है, जिस चीजका निरन्तर चिन्तन होगा, उसमें आसक्ति बढ़ेगी इसलिये सत्संग करना चाहिये।

प्र०—सत्संग न करनेसे क्या हानि है ?

उ०—भजन तो एकान्तमें भी कर सकते हैं परन्तु काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दोष सत्संग किये बिना दूर नहीं हो सकते। सत्संगमें इन्हींके नाशके सम्बन्धकी बातें होती हैं। इसलिये सत्संगमें जानेसे अवगुण छोड़नेकी इच्छा होती है, फिर चेष्टा करनेसे अवगुण छूटते हैं। बिना सत्संग किये बहुत भजन करनेवालोंके भी दोष प्रायः नहीं छूटते और जो सत्संग करेगा वह भजन अवश्य करेगा। सत्संग करेगा उसके पाप नहीं छूटेंगे, यह असम्भव है ? सत्संगमें एक बिजली है, उस वायुमण्डलमें बैठजाने मात्रसे ही अन्तःकरण पवित्र हो जाता है क्योंकि वहाँका वायुमण्डल ही पवित्र है, इसलिये सत्संगकी निन्दा करनेवाले भी वहाँ जाने लगनेपर पवित्र हो जाते हैं और धीरे-धीरे वे भी भगवत्परायण होते हैं। सत्संगकी महिमाका कोई वर्णन ही नहीं कर सकता। सत्संगसे महापुरुषोंमें प्रीति होगी। कुछ भी न करके केवल सत्संगमें जाकर बैठ ही जाय तो उसको भी लाभ होता है।

प्र०—सत्संग करनेका कौन अधिकारी है ?

उ०—मनुष्य ही नहीं, जीवमात्र इसके अधिकारी हैं। मुसलमान, ईसाई, यहूदी, चाण्डाल आदि सभी सत्संग कर सकते हैं क्योंकि इसके सभी अधिकारी हैं। जब चूहे, बिल्ली, कुत्ते, तोता, पक्षी आदि भी पवित्र हो जाते हैं, तब मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ?

प्र०—सत्संग करनेवालोंसे पाप-कर्म क्यों नहीं छूटते ?

उ०—यह बात वे ही लोग कह सकते हैं जो सत्संगमें नहीं जाते। क्योंकि पापका कितना भण्डार भरा पड़ा है, उसमें कितना कम हुआ है—यह सत्संग करनेवाला ही जान सकता है। सत्संगमें प्रतिदिन अनन्त पाप क्षीण होते हैं—यह जो लोग सत्संगमें नित्यप्रति जाते हैं उनका अनुभव है। हम चाहते हैं, जल्दी पाप नाश हो जाय, पर पापकी कमी क्रमशः होती है। इसीसे पापोंका पूरा नाश नहीं प्रतीत होता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रेम और शरणागति

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

मका वास्तविक वर्णन हो नहीं सकता । प्रेम जीवनको प्रेममय बना देता है । प्रेम गूँगेका गुड़ है । प्रेमका आनन्द अवर्णनीय होता है। रोमाञ्च, अश्रुपात, प्रकम्प आदि तो उसके बाह्य लक्षण हैं, भीतरके रसप्रवाहको कोई कहे भी तो कैसे ? वह धारा तो उमड़ी हुई आती है और हृदयको आप्लावित कर डालती है । पुस्तकोंमें प्रेमियोंकी कथा पढ़ते हैं किन्तु सच्चे प्रेमीका दर्शन तो आज दुर्लभ ही है । परमात्माका सच्चा प्रेमी एक ही व्यक्ति करोड़ों जीवोंको पवित्र कर सकता है !

प्रेमी जिस मार्गसे निकल जाता है, प्रेमका प्रवाह बहा देता है, बरसते हुए मेघ जिधरसे निकलते हैं उधरकी ही धराको तर कर देते हैं । इसी प्रकार प्रेमी भी प्रेमकी वर्षासे यावत् चराचरको तर कर देता है । प्रेमीके दर्शनमात्रसे ही हृदय तर हो जाता है और लहलहा उठता है । तुलसीदासजी महाराजने कहा है—

मोरे मन प्रभु अस बिसवासा । रामते अधिक रामकर दासा ॥
रामसिंधु घन सज्जन धीरा । चंदन तरु हरि संत समीरा ॥

समुद्रसे जल लेकर मेघ उसे बरसाते हैं और वह बड़ा ही उपकारी होता है । भगवान् समुद्र हैं और सन्त मेघ । भगवान्‌से ही प्रेम लेकर सन्त संसारपर प्रेम बरसाते हैं और जिस प्रकार मेघका जल नदियों, नालोंसे होकर पृथ्वीको उर्वरा बनाते हुए समुद्रमें प्रवेश कर जाता है, ठीक उसी प्रकार सन्त भी प्रेमकी वर्षा कर अन्तमें प्रभुके प्रेमको प्रभुमें ही समर्पित कर देते हैं ।

प्रभु चन्दनके वृक्ष हैं और सन्त बयार । जिस प्रकार हवा चन्दनकी सुगन्धिको दिग्दिगन्तमें फैला देती है उसी प्रकार सन्त भी प्रभुकी दिव्य गन्धको प्रवाहित करते रहते हैं । सन्तको देखकर प्रभुकी स्मृति आती है । अतएव सन्त प्रभुके स्वरूप हैं । जैसे पपीहा और किसान तो केवल मेघके ही आश्रित हैं इसी प्रकार श्रद्धालु पुरुष भी केवल सन्तोंके ही आश्रय रहते हैं ।

प्रेमीकी वाणी, नेत्र आदिसे प्रेमकी वर्षा होती रहती है । उसका मार्ग प्रेमसे पूर्ण होता है । वह जहाँ जाता है वहाँके कण-कणमें, हवामें, धूलिमें उसके स्पर्शके कारण प्रेम-ही-प्रेम दृष्टिगोचर होता है । उसका स्पर्श ही प्रेममय होता है, स्नेहसे ओत-प्रोत होता है। जिस प्रकार कपूरकी सुगन्ध विस्तार करती हुई चलती है उसी प्रकार भक्त भी !!

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यह प्रेम कैसे प्राप्त हो ? इस सम्बन्धमें गोस्वामीजीने कहा है—

बिनु सतसंग न हरिकथा, तेहि बिनु मोह न भाग ।
मोह गये बिनु रामपद, होहि न दृढ़ अनुराग ॥

हमारा प्रेम तो काञ्चन-कामिनी, मान-प्रतिष्ठामें हो रहा है । हम तो सच्चे प्रेमके लिये हृदयमें कभी कामना ही नहीं करते । जबतक प्रेमके लिये हृदय तरस नहीं जाता, व्याकुल नहीं होता तबतक प्रेमकी प्राप्ति हो भी कैसे सकती है ? अभी तो हमारा कामी मन नारी-प्रेममें ही आनन्दकी उपलब्धि कर रहा है, अभी तो हमारा लोभी चित्त काञ्चनकी प्राप्तिमें ही पागल है । अभी तो हमारा चञ्चल चित्त मान-बड़ाईके पीछे मारा-मारा फिरता है । जबतक हमारा यह काम और लोभ सब ओरसे सिमटकर एकमात्र प्रभुके प्रति नहीं हो जाता, तबतक हम प्रभुके प्रेमको प्राप्त भी कैसे कर सकते हैं ?

प्रेमी मूक रहते हुए भी भाषण देता है । मानो उसका अङ्ग-अङ्ग बोलता है । उसके सभी अवयवोंसे मानो एक शुद्ध सङ्केत एक निर्मल ध्वनि निकलती है । प्रेमी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उपदेश देने नहीं जाता, वह क्या बोले, कैसे बोले? गोपियोंने प्रेमकी शिक्षा किसे और कब दी थी? भरतजीने भक्तिका उपदेश कब और किसे दिया? उनके चरित्र उपदेश देते रहे और देते रहेंगे। प्रेममें जिस अनन्यता और आत्मसमर्पणकी सराहना की गयी है उसकी सजीव मूर्ति गोपियाँ हैं। इसी प्रकार रामायणमें उसके प्राणस्वरूप प्रेम-मूर्ति श्रीभरतजी हैं।

यह हमारा शरीर ही क्षेत्र है। इस खेतमें कर्म-रूप जैसा बीज बोया जायगा वैसा ही फल उपजेगा। बीज तो परमात्माका प्रेमपूर्वक ध्यानसहित जप है। परन्तु जलके बिना यह बीज उग नहीं सकता। वह जल है हरि-कथा और हरि-कृपा। खेतमें गेहूँ बोनेसे गेहूँ, आम बोनेसे आम और राम बोनेसे राम ही निपजेगा। हम प्रेमपूर्वक भगवान्‌के ध्यान और जपका बीज बोवेंगे तो फलरूपमें हमें प्रेममय भगवान् ही मिलेंगे। प्रेममय भगवान्‌का साक्षात्कार ही इस बीजका फल है। साधारण बीज तो धूलिमें पड़कर नष्ट भी हो जाता है परन्तु निष्काम रामनामका वह अमर बीज कभी नष्ट नहीं होता। जल है हरि-कथा और हरि-कृपा, जो सन्तोंके सङ्गसे ही प्राप्त होती है। उस हरि-कथा और हरि-कृपासे ही हरिमें विशुद्ध प्रेम होता है। अतएव प्रेमकी प्राप्तिका उपाय सत्सङ्ग ही है।

प्रभुमें हमारा प्रेम कैसा हो? श्रीरामका उदाहरण लीजिये। भगवान् श्रीराम लता-पतासे पूछते हैं—'तुमने मेरी सीताको देखा है?' गोपियोंको देखिये, वे वन-वन 'कृष्ण' 'कृष्ण' पुकार-पुकारकर अपने हृदय-धनको खोज रही हैं; जितनी ही अधिक तीव्र उत्कण्ठा प्रेममें होती है उतना ही शीघ्र प्रेममय ईश्वर मिलते हैं।

भगवान् जल्दी-से-जल्दी कैसे मिलें—यह भाव जाग्रत् रहनेपर ही भगवान् मिलते हैं। यह लालसा उत्तरोत्तर बढ़ती चले। ऐसी उत्कट इच्छा ही प्रेम-मयके मिलनेका कारण है और प्रेमसे ही प्रभु मिलते हैं। प्रभुका रहस्य और प्रभाव जाननेसे ही प्रेम होता है। थोड़ा-सा भी प्रभुका रहस्य जाननेपर हम उसके बिना एक क्षणभर भी नहीं रह सकते।

पपीहा मेघको देखकर आतुर होकर विह्वल हो उठता है। ठीक उसी प्रकार हमें प्रभुके लिये पागल हो जाना चाहिये। हमें एक-एक पल उसके बिना असह्य हो जाना चाहिये।

मछलीका जलमें, पपीहेका मेघमें, चकोरका चन्द्रमामें जैसा प्रेम है वैसा ही हमारा प्रेम प्रभुमें हो। एक पल भी उसके बिना चैन न मिले, शान्ति न मिले। ऐसा प्रेम प्रेममय सन्तोंकी कृपासे ही प्राप्त होता है। चन्दनके वृक्षकी गन्धको लेकर वायु समस्त वृक्षोंको चन्दनमय बना देता है। बनानेवाली तो गन्ध ही है परन्तु वायुके बिना उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती। इसी प्रकार सन्तलोग आनन्द-मयके आनन्दकी वर्षाकर विश्वको आनन्दमय कर देते हैं, प्रेम और आनन्दके समुद्रको उमड़ा देते हैं। गौराङ्ग महाप्रभु जिस पथसे निकलते थे प्रेमका प्रवाह बहा देते थे। गोस्वामीजीकी लेखनीमें कितना अमृत भरा पड़ा है। पर ऐसे प्रेमी सन्तोंके दर्शन भी प्रभुकी पूर्ण कृपासे ही होते हैं। प्रभुकी कृपा तो सब पर पूर्ण है ही, किन्तु पात्र बिना वह कृपा फलवती नहीं होती। शरणागत भक्त ही प्रभुकी ऐसी कृपाके पात्र हैं अतएव हमें सर्वतोभावसे भगवान्‌के शरण होना चाहिये। सर्वथा उसका आश्रित बनकर रहना चाहिये। सर्व प्रकारसे उसके चरणोंमें अपनेको सौंप देना चाहिये। भगवान्‌ने कहा भी है—

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥
(गीता १८। ६२)

हे भारत! सब प्रकारसे उस परमेश्वरकी ही अनन्य शरणको प्राप्त हो। उसकी कृपासे ही परम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शान्तिको और परम सनातन परम धामको प्राप्त होगा।

मनसे, वाणीसे और कर्मसे शरण होना चाहिये। तभी सम्पूर्ण समर्पण होता है यानी उस परमेश्वरको मनसे भी पकड़ना चाहिये, वाणीसे भी पकड़ना चाहिये और कर्मसे भी पकड़ना चाहिये।

उनके किये हुए विधानोंमें प्रसन्न रहना, उनके नाम, रूप, गुण और लीलाओंका चिन्तन करना मनसे पकड़ना है। नामोच्चारण करना, गुणगान करना वाणीसे पकड़ना है। और उनकी आज्ञानुसार चलना कर्मसे यानी क्रियाओंसे पकड़ना है।

मनसे प्रभुको पकड़ना

(१) सच्चा भक्त प्रभुके प्रत्येक विधानमें दयाका दर्शन करता रहता है, प्रभु तो दया और न्यायके समुद्र हैं। परम प्रेमी और सच्चे सुहृद् तो केवल वही हैं। उनकी दयामें न्याय और न्यायमें दया ओतप्रोत है। सब कुछ प्रभुका पुरस्कार ही है। मृत्यु भी उनकी दयाका ही चिह्न है। मयूरध्वजका पुत्र कितना प्रसन्न हुआ जब उसने यह जाना कि उसको चीरकर उसका मांस श्रीकृष्णके सिंहको परसा जायगा। भक्त तो मृत्युको भी प्रभुका प्रसाद मानकर प्रेमसे गले लगाता है। वह उसे ईश्वरका भेजा हुआ पुरस्कार समझकर उसीमें आनन्द और कल्याण मानता है। प्रभु तो बहुरूपियेके रूपमें सर्वत्र सर्वदा हमारे आसपास भीतर-बाहर विचरते हैं। बहुरूपियेकी भाँति जो प्रभुके तत्त्वको जान जाता है वह सर्वत्र प्रभुकी दया-ही-दयाका दर्शन करता है।

कपड़ेकी चादरको जिस प्रकार मालिक चाहे ओढ़े, चाहे बिछावे, चाहे फाड़ दे, चाहे जला दे, चादर हर प्रकारसे तैयार है। ठीक उसी प्रकार भक्तको भी होना चाहिये। चाहे प्रभु भक्तको तारे चाहे मारे; वह जिस प्रकार चाहे रक्खे। फाड़ डाले, चाहे जला डाले—जैसे चाहे वैसे रक्खे, भक्तको तो हर क्रियामें मालिकका प्यारा हाथ देखकर सदा हर्षपूर्ण ही रहना चाहिये।

हम तो प्रभुके हाथकी केवल कठपुतली हों। वह चाहे जैसा नाच नचावे। मालिककी इच्छामें ही प्रसन्न रहना हमारा परम धर्म है।

इस प्रकार शरण चले जानेपर सभी विधानोंमें आनन्द-ही-आनन्द मिलने लगता है। प्राणाधारकी लात खानेमें एक अपूर्व मिठास है। उसमें प्यारसे भी अधिक मिठास है, दिलबरकी जूतियोंमें भी एक अपूर्व रस है।

(२) दीवालपर या हृदयपर या प्रभुकी मूर्तिपर मनसे प्रभुके नामको लिखकर चिन्तन करना या मनसे जप करना प्रभुके नामका चिन्तन है।

(३) सच्चिदानन्दरूपसे परमेश्वरका सर्वत्र आकाशकी भाँति नित्य-निरन्तर चिन्तन करना, निराकार स्वरूपका चिन्तन करना है। वह विज्ञानानन्दघन परमात्मा ही अपनी योगमायासे तेजोमय दिव्य विग्रहको देवता, मनुष्य आदिकी आकृतिमें धारण करते हैं—ऐसा समझकर उनकी दिव्य माधुरी मूर्तिका चिन्तन करना प्रभुके साकार स्वरूपका चिन्तन करना है। जैसे निर्मल आकाशमें परमाणुरूपसे एवं बादल, बूँद और ओलोंके रूपमें रहनेवाले जलको जो जल समझता है वही जलके सारे तत्त्वको जाननेवाला है। वैसे ही निराकार और साकार मिलकर ही प्रभुका समग्र रूप होता है। इसी तत्त्वको भगवान्‌ने गीताके ७ वें अध्यायमें विस्तारसे बतलाया है। इस रहस्यको समझकर ही प्रभुका चिन्तन करना असली चिन्तन करना है।

(४) प्रभु सारे सात्त्विक गुणोंके समुद्र हैं। उनमें क्षमा, दया, शान्ति, समता, सरलता, उदारता, पवित्रता अपरिमित हैं। वे ज्ञान, वैराग्य, तेज और ऐश्वर्यसे पूर्ण हैं। सारे संसारके जीवोंमें जो दया

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दीखती है वह सब मिलकर दयासागरकी दयाके एक बूँदके समान नहीं है।

सारे संसारका तेज और ज्ञान इकट्ठा किया जाय तो भी उस तेजोमय ज्ञानस्वरूप परमात्माके तेजके एक अंशके बराबर भी नहीं हो सकता। इसी प्रकार उनके सारे गुणोंकी आलोचना करना उनके गुणोंका चिन्तन करना है।

(५) प्रभुने दशरथके यहाँ मनुष्य-आकृतिमें प्रकट होकर भाइयोंके साथ नीति और प्रेमका व्यवहार करके नीति और प्रेमकी शिक्षा दी। माता-पिताकी आज्ञाका पालन करके सेवाभाव सिखलाया। दुष्टोंको दण्ड देकर ऋषि, मुनि और साधुओंका उद्धार किया। बड़े त्याग और सुहृदताके साथ प्रजाका पालन किया। यज्ञ, दान, तप, सेवा, व्रत, सत्य, ब्रह्मचर्यादि सदाचारोंको चरितार्थ करके हमलोगोंको दिखलाया। इस प्रकार उनके पवित्र चरित्रोंका अवलोकन करना उनकी लीलाओंका चिन्तन करना है।

वाणीसे प्रभुको पकड़ना

प्रभुके नाम एवं मन्त्रका जाप, प्रभुके गुण और स्तोत्रोंका पठन-पाठन, उनके नाम और गुणोंका कीर्तन, प्रभुके नाम, रूप, गुण, प्रेम और प्रभावका विस्तारपूर्वक उनके भक्तोंमें वर्णन करना, परस्पर भगवत्-विषयक ही चर्चा करना, विनयपूर्वक सत्य और प्रिय वचन बोलना इत्यादि जो प्रभुके अनुकूल वाणीका व्यवहार करना है वह वाणीद्वारा प्रभुको पकड़ना है।

कर्मसे प्रभुको पकड़ना

प्रभुकी इच्छा एवं आज्ञानुसार निःस्वार्थभावसे केवल प्रभुके ही लिये कर्तव्यकर्मोंका आचरण करना। जैसे पतिव्रता स्त्री पतिके लिये ही पतिकी आज्ञानुसार ही काम करती है वैसे ही प्रभुकी आज्ञाके अनुसार चलना।

बन्दर अपने प्रभुको प्रसन्न करनेके लिये जैसा नाच वह नचावे वैसा ही नाचता है। बाजीगरको खुश करनेके लिये ही बन्दर नाचता है, कूदता है, खेलता है और कुतूहल करता है। हम भी तो अपने 'बाजीगर' के हाथके बन्दर ही हैं, फिर वह जिस प्रकार प्रसन्न हो वही नाच हमें प्रिय होना चाहिये। फूल तो वही जो चतुर-चिन्तामणिके चरणोंपर चढ़े, जीवन तो वही जो प्रभुके चरणोंमें चढ़ जाय!

सर्वत्र ईश्वरका दर्शन करते हुए यज्ञ, दान, तप, ब्रह्मचर्य आदि उत्तम कर्मोंका आचरण करना एवं सब भूतोंके हितमें रत होकर सबके साथ विनय और प्रेमपूर्वक व्यवहार करना कर्मोंके द्वारा प्रभुको पकड़ना है।

याद रखिये, उसकी शरणमें चले जानेपर अहित भी 'हित' बन जाता है—

गरल सुधासम अरि हित होई।

शरणमें जाकर यदि मर जाय तो वह मरण भी मुक्तिसे बढ़कर है। प्रभु कहते हैं—

जे करे आमार आस, ताँर करि सर्वनाश।
तबु जे छाँड़े ना आस, ताँरे हई दासेर दास॥

अर्थात् 'जो मेरी आशा करता है मैं उसका सर्वनाश कर देता हूँ, इसपर भी जो आशा नहीं छोड़ता उसका मैं दासानुदास बन जाता हूँ।'

उपर्युक्त प्रकारसे शरण होनेपर वह प्रभुकी कृपाका सच्चा पात्र बन जाता है और प्रभुकी कृपासे ही उसे विशुद्ध प्रेमकी प्राप्ति हो जाती है तथा उसको परमात्माका साक्षात् दर्शन होकर परमानन्द एवं परम शान्तिकी प्राप्ति हो जाती है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अतएव हमलोगोंको संसारके सारे पदार्थोंको लात मारकर प्रभुकी शरणमें जाना चाहिये। ऋद्धि-सिद्धि, मान-प्रतिष्ठा तथा देवताओंकी प्रशंसा आदिसे भी वृत्तियाँ हटा लेनी चाहिये। यह अपार संसार एक अथाह सागर है। इसके पार जानेके दो ही साधन हैं—नावसे जाना अथवा तैरकर जाना। नाव प्रभुका प्रेम है और तैरना है सांख्ययोग यानी ज्ञान। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि तैरनेकी अपेक्षा नावमें जाना सुगम, निश्चित और सुरक्षित है।

प्रेमरूपी नौकाकी प्राप्तिके लिये प्रभुकी शरण जाना चाहिये। तैरनेके लिये तो हिम्मत और त्यागकी आवश्यकता है। तैरनेमें हाथ और पैरसे लहरें चीरते हुए आगे बढ़ा जाता है। संसार-सागरमें विषयरूपी जलको हाथ और पैरसे फेंकते हुए हम तैर जा सकते हैं—उस पार जानेका लक्ष्य न भूलें और लहरोंमें हाथ-पैर न लिपटें। तैरनेके समय शरीरपर कुछ भी बोझ न होना चाहिये। इसी प्रकार विषयोंकी लहरोंको चीरकर आगे बढ़नेके लिये हमारे भीतर तीव्र और दृढ़ वैराग्यरूपी उत्साहका होना अपरिहार्य है। इसके बिना तो एक हाथ भी बढ़ना असम्भव है। हाथोंसे लहरें चीरता जाय, पैरोंसे जल फेंकता जाय।

सच्चे आत्मसमर्पणमें तो विषयासक्तिका त्याग अनिवार्य है ही। विषयोंमें प्रेम भी हो और समर्पण भी हो यह सम्भव नहीं।

काञ्चन-कामिनीसे भी अधिक मीठी छुरी मान-बड़ाई है। इसने तो बहुत ही बड़े-बड़े साधकोंको फँसा दिया, रोक दिया और अन्ततोगत्वा डुबा दिया। इससे सदा बचे रहना चाहिये।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि ज्ञानसे तैरनेकी अपेक्षा प्रेममयी नित्य-नवीन नौकामें जाना सुखप्रद, सहज और आनन्ददायक है।

वह विशुद्ध प्रेम प्रभुकी अनन्य शरण होनेसे ही प्राप्त होता है, अतएव अनन्य शरण होकर जाना ही नौकासे जाना है। संसार-सागरको तो हर दशामें लाँघना ही पड़ेगा। 'उस पार' गये बिना तो प्राण-वल्लभकी झाँकी होनेकी नहीं। फिर क्यों न उसीकी शरणमें जाकर उसीके हाथका सहारा बनकर चले चलें। भगवान्‌ने स्वयं प्रतिज्ञा भी की है—

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते॥
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥
(गीता १२। ६-७)

'हे अर्जुन! जो मेरे परायण हुए भक्तजन, सम्पूर्ण कर्मोंको मेरेमें अर्पण करके, मुझ सगुणरूप परमेश्वरको ही तैलधाराके सदृश अनन्य ध्यानयोगसे निरन्तर चिन्तन करते हुए भजते हैं, उन मेरेमें चित्तको लगानेवाले प्रेमी भक्तोंका, मैं शीघ्र ही मृत्युरूप संसार-समुद्रसे उद्धार करनेवाला होता हूँ। यह संसार-समुद्र बड़ा ही दुस्तर है, इससे तरनेका सहज उपाय भगवान्‌की शरण ही है। भगवान्‌ने कहा भी है कि—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥
(गीता ७। १४)

'यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी योगमाया बड़ी दुस्तर है। परन्तु जो पुरुष मुझको ही निरन्तर भजते हैं वे इस मायाको उल्लंघन कर जाते हैं अर्थात् संसारसे तर जाते हैं।'

अतएव हमलोगोंको मनसा, वाचा, कर्मणा सब प्रकार भगवान्‌की अनन्य शरण* होना चाहिये।

---

* अनन्ययोगसे उपासना, अव्यभिचारिणी भक्ति एवं अनन्यशरण—यह तीनों एक ही हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गीत

(लेखिका—श्रीमती महादेवीजी वर्मा एम० ए०)

बताता जा रे अभिमानी !
कन कन उर्वर करते लोचन ;
स्पंदन भर देता सूनापन ;
जगका धन मेरा दुख निर्धन ;
तेरे वैभवकी भिक्षुक या
कहलाऊँ रानी !
बताता जा रे अभिमानी !

दीपक-सा जलता अन्तस्तल ;
संचितकर आँसूके बादल ;
लिपटा है इससे प्रलयानिल ;
क्या यह दीप जलेगा तुझसे
भर हिमका पानी !
बताता जा रे अभिमानी !

चाहा था तुझमें मिटना भर ;
दे डाला बनना मिट-मिट कर ;
यह अभिशाप दिया है या वर ;
पहली मिलन-कथा हूँ या मैं—
चिर विरह कहानी !
बताता जा रे अभिमानी !

अनुरोध !

(लेखिका—'चकोरी')

तुम खेल खेलते हो अनेक
बन कभी कृष्ण, बन कभी राम,
उन श्याम अगोचर चरणोंमें
है बार-बार मेरा प्रणाम।

कहते हैं सब हे परमपुरुष !
ब्रह्मांड तुम्हारी माया है
यह किस स्वरूपकी हे अदृश्य !
उत्पन्न अलौकिक छाया है।

उन उमड़ी श्याम घटाओंमें
विद्युत बनकर आ जाते हो,
उन विकसित सुमनावलियोंमें
सौरभ बनकर छा जाते हो !

हो यद्यपि तुम जलमें थलमें
पर इतनेसे संतोष नहीं,
यदि एक बार दर्शन दे दो
तो इतनेमें है दोष नहीं।

हे सर्वव्याप्त ! क्यों छिपते हो, आओ श्रद्धांजलि तो ले लो !
इन अपने रचे खिलौनोंसे तुम आँखमिचौनी मत खेलो !!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रेम-दर्शन

(देवर्षि नारदरचित भक्तिसूत्र)

[भक्तराजशिरोमणि देवर्षि नारदजीके भक्तिसूत्र प्रसिद्ध हैं। छः दर्शनोंकी भाँति यह प्रेम-दर्शन है। इसमें भगवत्प्रेमका स्वरूप, उसकी महत्ता, प्राप्तिपथके विघ्न, विघ्ननाशके उपाय, साधन, प्रेमियोंके मधुर भाव आदिका बड़ा ही सुन्दर उपदेश है। कल्याणके पाठकोंकी सेवामें व्याख्यासहित यह अनुपम रत्न क्रमशः समर्पण किया जाता है। —सम्पादक]

प्रेमका स्वरूप

अथातो भक्तिं व्याख्यास्यामः ॥१॥

१–अब हम भक्तिकी व्याख्या करेंगे।

इस सूत्रके 'अथ' और 'अतः' शब्दसे यह प्रतीत होता है कि भक्तिमार्गके आचार्य परम भक्तशिरोमणि, सर्वभूतहितमें रत, दयानिधि देवर्षि नारदजी अन्यान्य सिद्धान्तोंकी व्याख्या तो कर चुके, अब जीवोंके कल्याणार्थ परम कल्याणमयी भक्तिके स्वरूप और साधनोंकी व्याख्या आरम्भ करते हैं। नारदजी कहते हैं—

सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा ॥२॥

२–वह (भक्ति) ईश्वरके प्रति परम प्रेमरूपा है।

भक्तिके अनेक प्रकार बतलाये गये हैं, परन्तु नारदजी जिस भक्तिकी व्याख्या करते हैं वह प्रेमस्वरूपा है। भगवान्‌में अनन्य प्रेम हो जाना ही भक्ति है। ज्ञान, कर्म आदि साधनोंके आश्रयसे रहित सब ओरसे स्पृहाशून्य होकर जब केवल भगवान्‌में ही चित्तवृत्ति अनन्य भावसे लग जाती है, जगत्‌के समस्त पदार्थोंसे तथा परलोककी समस्त सुख-सामग्रियोंसे यहाँतक कि मोक्ष-सुखसे भी चित्त हटकर एकमात्र अपने परम प्रेमास्पद भगवान्‌में लगा रहता है, सारी ममता और आसक्ति सब पदार्थोंसे सर्वथा निकलकर एकमात्र प्रियतम भगवान्‌के प्रति हो जाती है, तब उस स्थितिको अनन्य प्रेम कहते हैं।

अमृतस्वरूपा च ॥३॥

३–और अमृतस्वरूपा (भी) है।

भगवान्‌में अनन्य प्रेम ही वास्तवमें अमृत है; वह सबसे अधिक मधुर है और जिसको यह प्रेमामृत मिल जाता है वह उसे पानकर अमर हो जाता है। लौकिक वासना ही मृत्यु है। अनन्य प्रेमी भक्तके हृदयमें भगवत्प्रेमकी एक नित्य नवीन, पवित्र वासनाके अतिरिक्त दूसरी कोई वासना रह ही नहीं जाती। इसी परम दुर्लभ वासनाके कारण वह भगवान्‌की मुनिमनहारिणी लीलाका एक साधन बनकर कर्मबन्धनयुक्त जन्म-मृत्युके चक्करसे सर्वथा छूट जाता है। वह सदा भगवान्‌के समीप निवास करता है और भगवान् उसके समीप! प्रेमी भक्त और प्रेमास्पद भगवान्‌का यह नित्य अटल संयोग ही वास्तविक अमरत्व है। इसीसे भक्तजन मुक्ति न चाहकर भक्ति चाहते हैं।

अस बिचारि हरि भगत सयाने।
मुकुति निरादरि भगति लुभाने॥

यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति ॥४॥

४–जिसको (परम प्रेमरूपा और अमृतरूपा भक्तिको) पाकर मनुष्य सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है (और) तृप्त हो जाता है।

जिसने भगवत्-प्रेमामृतका पान कर लिया, वही सिद्ध है। 'सिद्ध' शब्दसे यहाँ अणिमादि सिद्धियोंसे अभिप्राय नहीं है। प्रेमी भक्त इन सिद्धियोंकी तो बात

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ही क्या है, मोक्षरूप सिद्धि भी नहीं चाहता। ये सिद्धियाँ तो ऐसे प्रेमी भक्तकी सेवाके लिये अवसर ढूँढ़ा करती हैं परन्तु वह भगवत्प्रेमके सामने अत्यन्त तुच्छ समझकर इनको स्वीकार ही नहीं करता। स्वयं भगवान् कहते हैं—

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत्॥
(श्रीमद्भा० ११।१४।१४)

मुझमें चित्त लगाये रखनेवाले मेरे प्रेमी भक्त मुझको छोड़कर ब्रह्माका पद, इन्द्रका पद, चक्रवर्ती राज्य, लोकान्तरोंका आधिपत्य, योगकी सब सिद्धियाँ और सायुज्य मोक्ष आदि कुछ भी नहीं चाहते।

एक भक्त कहते हैं—

रोमाञ्चेनचमत्कृता तनुरियं भक्त्या मनो नन्दितं
प्रेमाश्रूणि विभूषयन्ति वदनं कण्ठं गिरो गद्गदाः।
नास्माकं क्षणमात्रमध्यवसरः कृष्णार्चनं कुर्वतां
मुक्तिर्द्वारि चतुर्विधापि किमियं दास्याय लोलायते॥
(बोधसार)

प्रियतम श्रीकृष्णकी पूजा करते समय शरीर पुलकित हो गया, भक्तिसे मन प्रफुल्लित हो गया। प्रेमके आँसुओंने मुखको और गद्गद वाणीने कण्ठको सुशोभित कर दिया। अब तो हमें एक क्षणके लिये भी समय नहीं है कि हम किसी दूसरे विषयको स्वीकार करें। इतनेपर सायुज्य आदि चारों प्रकारकी मुक्ति हमारे दरवाजेपर खड़ी हमारी दासी बननेके लिये आतुर हो रही हैं।

भक्त यदि मुक्ति और मुक्तिको स्वीकार कर लें तो वे अपना परम सौभाग्य मानती हैं परन्तु भक्त ऐसा नहीं करते।

हरिभक्तिमहादेव्याः सर्वा मुक्त्यादिसिद्धयः।
भुक्त्यश्चाद्भुतास्तास्त्याश्चेटिकावदनुव्रताः॥
(नारदपाञ्चरात्र)

मुक्ति और भुक्ति आदि विलक्षण सिद्धियाँ दासीकी भाँति हरिभक्ति महादेवीकी सेवामें लगी रहती हैं।

कागभुशुण्डिजी महाराज कहते हैं—

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई।
कोटि भाँति कोउ करय उपाई॥
तथा मोच्छ-सुख सुनु खगराई।
रहि न सकइ हरिभगति बिहाई॥

इसलिये यहाँ सिद्धिका अर्थ 'कृतकृत्यता' लेना चाहिये। भक्तको किसी वस्तुके अभावका बोध नहीं रहता। वह प्रियतम भगवान्‌के प्रेमको पाकर सर्वथा पूर्णकाम हो जाता है। यह पूर्ण कामना ही उसका अमर होना है। जबतक मनुष्य कृतकृत्य या पूर्णकाम नहीं होता, तबतक उसे बारम्बार आना-जाना पड़ता है। पूर्णकाम भक्त सृष्टि और संहार दोनोंमें भगवान्‌की लीलाका प्रत्यक्ष अनुभव कर मृत्युको खेल समझता है। वास्तवमें उसके लिये मृत्युकी ही मृत्यु हो जाती है। प्रभु-लीलाके सिवा मृत्युसंज्ञक कोई भयावनी वस्तु उसके ज्ञानमें रह ही नहीं जाती और इसलिये वह तृप्त होता है। जबतक जगत्‌के पदार्थोंकी ईश्वर-लीलासे अलग कोई सत्ता रहती है तभीतक उनको सुख या दुःखप्रद समझकर मनुष्य निरन्तर नये-नये सुखप्रद पदार्थोंकी इच्छा करता हुआ अतृप्त रहता है। जब सबका मूल स्रोत, सबका यथार्थ पूर्ण स्वरूप उसे मिल जाता है तब उन खण्ड और अपूर्ण पदार्थोंकी ओर उसका मन ही नहीं जाता। वह पूर्णको पाकर तृप्त हो जाता है।

यत्प्राप्य न किञ्चिद्वाञ्छति न शोचति न द्वेष्टि न रमते नोत्साही भवति॥५॥

५—जिसके (प्रेमस्वरूपा भक्तिके) प्राप्त होनेपर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मनुष्य न किसी भी वस्तुकी इच्छा करता है, न शोक करता है, न द्वेष करता है और न किसी वस्तुमें आसक्त होता है, और न उसे उत्साह होता है।

वह प्रेमी भक्त उस परम वस्तुको पा लेता है, जिसके पानेपर सारी इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं। जगत्‌के प्रेम, ऐश्वर्य, सौन्दर्य, बल, यश, ज्ञान, वैराग्य आदि समस्त पदार्थ, जिनके लिये भोगी और त्यागी सभी मनुष्य अपनी-अपनी रुचिके अनुसार सदा ललचाते रहते हैं, भगवत्प्रेमरूपी दुर्लभ पदार्थके सामने अत्यन्त तुच्छ हैं। विश्वभरमें फैले हुए उपर्युक्त समस्त पदार्थोंको एक स्थानपर एकत्रित किया जाय तो भी वे सब मिलकर जिस भगवान्‌रूपी समुद्रके एक जलकण-के समान ही होते हैं वे भगवान् स्वयं जिस प्रेमके आकर्षणसे सदा खिंचे रहते हैं उस प्रेमके सामने संसारके पदार्थ किस गिनतीमें हैं।

श्रीशुकदेव मुनि कहते हैं—

यस्य भक्तिर्भगवति हरौ निःश्रेयसेश्वरे।
विक्रीडतोऽमृताम्भोधौ किं क्षुद्रैः खातकोदकैः॥
(श्रीमद्भा० ६।१२।२२)

प्रेमामृतसमुद्रमें डूबा हुआ भक्त क्यों अन्य पदार्थोंकी इच्छा करने लगा?

जैसे भक्त भोग, मोक्ष आदिकी इच्छा नहीं करता, वैसे ही इनके नष्ट हो जानेका शोक भी नहीं करता। भोगोंके नाशको तो वह परमात्माकी लीला समझता है, इससे सदा आनन्दमें ही रहता है। परन्तु भगवत्प्रेमके सेवनमें यदि सायुज्य मोक्षके साधनमें कमी आती है तो वह उसके लिये भी शोक नहीं करता, वरं सदा यही चाहता है कि मेरा भगवत्प्रेम बढ़ता रहे, चाहे जन्म कितने ही क्यों न धारण करने पड़ें।

चहौं न सुगति सुमति संपति कछु
रिधि-सिधि बिपुल बड़ाई।
हेतुरहित अनुराग रामपद
बढ़ु अनुदिन अधिकाई॥

इसी प्रकार वह किसी जीवसे या लौकिक दृष्टिसे प्रतिकूल माने जानेवाले पदार्थ या स्थितिसे कभी द्वेष नहीं करता। वह सब जीवोंमें अपने प्रभुको और सब पदार्थों और स्थितिमें प्रभुकी लीलाको देख-देखकर क्षण-क्षणमें आनन्दित होता है।

निज प्रभुमय देखहिं जगत का सन करहिं बिरोध॥

भक्तका मन सदा प्रभु-प्रेममें ऐसा तल्लीन हो जाता है, कि आधे क्षणभरके लिये भी अन्य किसी पदार्थमें नहीं रमता। गोपियाँ उद्धवजीसे कहती हैं—

ऊधो मन न भये दस बीस।
एक हुतौ सो गयो स्याम सँग, को आराधै ईस॥

मन अपने पास रहता ही नहीं, तब वह दूसरेमें कैसे रमे? इसीलिये तो प्रेमियोंके भगवान्‌का नाम 'मनचोर' है—

मधुकर स्याम हमारे चोर।
मन हर लियो माधुरी मूरति, निरख नयनकी कोर॥

वे प्रेमी भक्तके चित्तको ऐसी चातुरीसे चुराकर अपनी सम्पत्ति बना लेते हैं कि उसपर दूसरेकी कभी नजर भी नहीं पड़ सकती। दूसरा कोई दीखे तब न कहीं उसमें आसक्ति या प्रीति हो, परन्तु जहाँ मनमें दूसरेकी कल्पनातकको स्थान नहीं मिलता वहाँ किसमें कैसे आसक्ति या रति हो। प्रेममयी गोपियोंने कहा है—

स्याम तन स्याम मन स्याम है हमारो धन,
आठौं जाम ऊधो हमें स्याम ही सों काम है।
स्याम हिये स्याम जिये स्याम बिनु नाहिं तिये,
आँधेकी-सी लाकरी अधार स्याम नाम है॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्याम गति स्याम मति स्याम ही है प्रानपति,
स्याम सुखदाईसों भलाई सोभाधाम है।
ऊधो तुम भये बौरे पाती लैके आए दौरे,
जोग कहाँ राखैं यहाँ रोम-रोम स्याम है॥

जब एक प्रियतम श्रीकृष्णको छोड़कर दूसरेका मनमें प्रवेश ही निषिद्ध है तब दूसरे किसीकी प्राप्तिके लिये उत्साह तो हो ही कैसे? कोई किसीको देखे, सुने, उसके लिये मनमें इच्छा उत्पन्न हो तब न उसके लिये प्रयत्न किया जाय? मन किसीमें रमे, तब न उसे पानेके लिये उत्साह हो। मन तो पहलेसे ही किसी एकका हो गया; उसने मनपर अपना पूरा अधिकार जमा लिया, और स्वयं उसमें आकर सदाके लिये बस गया। दूसरे किसीके लिये कोई गुंजाइश ही नहीं रह गयी; यदि कोई आता भी है तो उसे दूरसे ही लौट जाना पड़ता है! क्या करे, जगह ही नहीं रही।

रोम रोम हरि रमि रहे, रही न तनिकौ ठौर।

नेत्र बेचारे मनकी अनुमति बिना किसको देखें? जब कोई कहीं दीखता ही नहीं, तब उसको पानेके लिये उत्साहकी बात ही नहीं रह जाती।

दूसरी बात यह है कि उत्साह होता है मनुष्यको किसी सुखकी इच्छासे। जब समस्त सुखोंका खजाना ही अपने पास है तब क्षुद्र सुखके लिये उत्साह कैसे हो? इसलिये प्रेमोत्साहके पुतले भगवत्प्रेमी पुरुषोंमें लौकिक कार्योंके प्रति—विषयोंके प्रति कोई भी उत्साह नहीं देखा जाता।

भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः॥
(श्रीमद्भगवद्गीता १२। १७)

'जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ, अशुभ सबका त्यागी है वह भक्तिमान् पुरुष मुझको प्रिय है।'

यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति स्तब्धो भवति आत्मारामो भवति॥६॥

६—जिसको (परम प्रेमरूपा भक्तिको) जान (प्राप्त) कर मनुष्य उन्मत्त हो जाता है, स्तब्ध (शान्त) हो जाता है, (और) आत्माराम बन जाता है।

भगवत्-प्रेम प्रकट होते ही मनुष्यको पागल कर देता है, अतः प्रेमी भक्त सदा प्रेमके नशेमें चूर हुआ दिन-रात प्रभुके ही गुण गाता, सुनता और चिन्तन करता रहता है। बाहरकी दूसरी बातोंका उसे होश ही नहीं रहता। जैसे पागल मनमानी बकता और करता है, इसी प्रकार वह प्रेमोन्मत्त भी प्रभुकी चर्चामें ही तल्लीन रहता है, क्योंकि उसके मनको यही अच्छा लगता है। भागवतमें कहा है—

शृण्वन् सुभद्राणि रथाङ्गपाणे-
र्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके।
गीतानि नामानि तदर्थकानि
गायन्विलज्जो विचरेदसङ्गः॥
एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥
(११। २। ३९-४०)

भक्त चक्रपाणि भगवान्‌के लोकप्रसिद्ध जन्म, कर्म और गुणोंको सुनता हुआ, उनकी विचित्र लीलाओंके अनुसार रक्खे गये नामोंको लज्जा छोड़कर गान करता हुआ संसारमें अनासक्त हुआ विचरता है। इस प्रकारका व्रत धारणकर वह अपने प्रियतम प्रभुके नाम-संकीर्तनमें प्रेम हो जानेके कारण उन्मत्तके समान कभी अलौकिक भावसे खिलखिलाकर हँसता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है, कभी रोता है, कभी चिल्लाता है, कभी ऊँचे स्वरसे गाने लगता है और कभी नाच उठता है।

यों उन्मत्तकी तरह आचरण करता हुआ प्रेमी आनन्दमें भरकर कभी चुप हो जाता है। शान्त होकर बैठ जाता है। यह स्तब्धता उसकी पूर्णकामताका परिचय देती है। प्रभुकी मूर्ति हृदयमें प्रकट हो गयी, रूपमाधुरीमें आनन्दमत्त होकर भक्त ध्यानमग्न हो गया।

सुतीक्ष्णकी दशा बताते हुए गोसाईंजी कहते हैं—

मुनि मगमाँहि अचल ह्वै बैसा। पुलक शरीर पनसफल जैसा॥

नृत्य करते-करते प्रभुमय बन जानेपर ऐसी ही अवस्था हुआ करती है। उसका चित्त और शरीर सर्वथा स्तब्ध—शान्त हो जाता है। आत्मा आनन्दमय बन जाता है। इसीको आत्माराम कहते हैं। इस आत्मारामस्थितिमें विषयतृष्णा तो कहीं रह ही नहीं जाती।—

नहि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति॥

अन्य किसीका भी ज्ञान नहीं रहता। यही प्रेमाद्वैत या रसाद्वैत है। प्रियतमके साथ मिलकर प्रेमीका पृथक् अस्तित्व ही लोप हो जाता है।

प्रेममें अनन्यता

सा न कामयमाना निरोधरूपत्वात् ॥७॥

७—वह (प्रेमाभक्ति) कामनायुक्त नहीं है क्योंकि वह निरोधस्वरूपा है।

यह प्रेमाभक्ति सर्वथा त्यागरूप है, इसमें धन, सन्तान, कीर्ति, स्वर्ग आदिकी तो बात ही क्या है, मोक्षकी भी कामना नहीं रह सकती। जिस भक्तिके बदलेमें कुछ माँगा जाता है या कुछ प्राप्त होनेकी आशा या आकांक्षा है वह भक्ति कामनायुक्त है, वह स्वार्थका व्यापार है। प्रेमाभक्तिमें तो भक्त अपने प्रियतम भगवान् और उनकी सेवाको छोड़कर और कुछ चाहता ही नहीं। श्रीमद्भागवतमें भगवान् कपिलदेव कहते हैं कि 'मेरे प्रेमी भक्तगण मेरी सेवा छोड़कर सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य (इन पाँच प्रकारकी *) मुक्तियोंको देनेपर भी नहीं लेते।' यथार्थ भक्तिके उदय होनेपर कामनाएँ नष्ट हो ही जाती हैं। क्योंकि वह भक्ति निरोधस्वरूपा यानी त्यागमयी है। वह निरोध क्या है?

निरोधस्तु लोकवेदव्यापारन्यासः ॥८॥

८—लौकिक और वैदिक (समस्त) कर्मोंके त्यागको निरोध कहते हैं।

प्रेमाभक्तिमें यह कर्मत्याग अपने आप ही हो जाता है, प्रेममें मतवाला भक्त अपने प्रियतम भगवान्को छोड़कर अन्य किसी बातको जानता नहीं, उसका मन सदा श्रीकृष्णाकार बना रहता है, उसकी आँखोंके सामने सदा सर्वत्र प्रियतम भगवान्की छवि ही रहती है। दूसरी वस्तुमें उसका मन ही नहीं जाता। श्रीगोपियोंने भगवान्से कहा था—

चित्तं सुखेन भवताऽपहृतं गृहेषु
यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये।
पादौ पदं न चलतस्तव पादमूला-
द्यामः कथं व्रजमथो करवाम किं वा॥
(श्रीमद्भा० १०।२९।३४)

'हे प्रियतम! हमारा चित्त आनन्दसे घरके कामोंमें आसक्त हो रहा था, उसे तुमने चुरा लिया। हमारे

* पाँच प्रकारकी मुक्तियाँ ये हैं—
सालोक्य—भगवान्के समान लोकप्राप्ति।
सार्ष्टि—भगवान्के समान ऐश्वर्यप्राप्ति।
सामीप्य—भगवान्के समीप स्थानप्राप्ति।
सारूप्य—भगवान्के समान स्वरूपप्राप्ति।
सायुज्य—भगवान्में लयप्राप्ति।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हाथ घरके कामोंमें लगे थे, वे भी चेष्टाहीन हो गये और हमारे पैर भी तुम्हारे पादपद्मोंको छोड़कर एक पग भी हटना नहीं चाहते। अब हम घर कैसे जायँ और जाकर करें भी क्या ?'

जगत्का चित्र चित्तसे मिट जानेके कारण वह भक्त किसी भी लौकिक (स्मार्त) और वैदिक (श्रौत) कार्यके करने लायक नहीं होता। इससे वे सब स्वयमेव छूट जाते हैं। सुन्दरदासजी ऐसे प्रेमी भक्तकी दशाका वर्णन करते हुए कहते हैं—

न लाज तीन लोककी, न वेदको कह्यौ करै।
न संक भूत-प्रेतकी, न देव जच्छते डरै॥
सुने न कान और की द्रसै न और इच्छना।
कहै न बात और की सु-भक्ति प्रेम लच्छना॥
कबहुँक हँसि उठि नृत्य करै रोवन फिर लागे।
कबहुँक गद-गद कंठ, सबद निकसैं नहिं आगे॥
कबहुँक हृदै उमंग बहुत ऊँचे सुर गावै।
कबहुँक ह्वै मुख मौन, गगन जैसो रहि जावै॥
चित्त बित्त हरिसों लग्यो सावधान कैसे रहै।
यह प्रेमलच्छना भक्ति है शिष्य सुनो 'सुन्दर' कहै॥

तस्मिन्ननन्यता तद्विरोधिषूदासीनता च ।९।

९–उस प्रियतम भगवान्में अनन्यता और उसके प्रतिकूल विषयमें उदासीनताको भी निरोध कहते हैं।

बाहरी ज्ञान बना रहनेकी स्थितिमें भी प्रेमी भक्त अपने प्रियतमके प्रति अनन्य भाव रखता हुआ उसके प्रतिकूल कार्योंसे सर्वथा उदासीन रहता है। इस प्रकार सावधानीसे होनेवाले कर्म भी निरोध कहलाते हैं। प्रेमी भक्तके द्वारा होनेवाली प्रत्येक चेष्टा अपने प्रियतमके अनुकूल होती है और अनन्य भावसे उसीकी सेवाके लिये होती है। प्रतिकूल चेष्टा तो उसके द्वारा वैसे ही नहीं होती जैसे सूर्यके द्वारा कहीं अँधेरा नहीं होता या अमृतके द्वारा मृत्यु नहीं हो सकती।

अन्याश्रयाणां त्यागोऽनन्यता ॥१०॥

१०–(अपने प्रियतम भगवान्को छोड़कर) दूसरे आश्रयोंके त्यागका नाम अनन्यता है।

प्रेमी भक्तके मनमें अपने प्रियतम भगवान्के सिवा अन्य किसीके होनेकी ही कल्पना नहीं होती, तब वह दूसरेका भजन कैसे करे ? वह तो चराचर विश्वको अपने प्रियतमका शरीर जानता है, उसे कहीं दूसरा दीखता ही नहीं—

उत्तमके अस बस मन माहीं। सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं॥

रहीम कहते हैं कि आँखोंमें प्यारेकी मधुर छवि ऐसी समा रही है कि दूसरी किसी छविके लिये स्थान ही नहीं रह गया।

प्रीतम-छबि नैनन बसी, पर छबि कहाँ समाय।
भरी सराय 'रहीम' लखि, आप पथिक फिरि जाय॥

गोपियोंकी सर्वत्र श्याममयी चित्तवृत्तिका वर्णन करते हुए श्रीदेवकविने कहा है—

औचक अगाध सिंधु स्याहीको उमड़ि आयो,
तामें तीनौं लोक बूड़ि गये एक संगमें।
कारे-कारे आखर लिखे जु कारे कागद सु-
न्यारे करि बाँचै कौन जाँचै चितभंगमें॥
आँखिनमें तिमिर अमावसकी रैन जिमि,
जंबूनद बुंद जमुना-जल-तरंगमें।
यों ही मन मेरो मेरे कामको न रह्यो माई,
स्याम रँग ह्वै करि समानो स्याम रंगमें॥

यदि कोई उससे दूसरेकी बात कहता है तो वह उसे सुनना ही नहीं चाहता या उसे सुनायी ही नहीं पड़ती। यदि कहीं जबरदस्ती सुननी पड़ती भी है तो उसका मन उधर आकर्षित होता ही नहीं। शिवजीकी अनन्योपासिका पार्वतीजीको सप्तर्षियोंने महादेवजीके अनेक दोष बतलाकर उनसे मन हटाने और सर्वसद्गुणसम्पन्न भगवान् विष्णुमें मन लगानेको कहा, तब शिवप्रेमकी मूर्ति भगवतीने उत्तर दिया—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जनम कोटि लगि रगर हमारी। बरौं संभु न तु रहौं कुँआरी॥
महादेव औगुनभवन, बिस्नु सकल गुनधाम।
जेहिकर मन रम जाहिसन, तेहि तेहीसन काम॥

इसी तरह गोपियोंने भी उद्धवजीसे कहा था—

ऊधो! मन मानेकी बात।
दाख छोहारा छाँड़ि अमृत फल बिषकीरा बिष खात॥
जो चकोरको दे कपूर कोउ तजि, अंगार अघात।
मधुप करत घर कोरे काठमें बँधत कमलके पात॥
ज्यों पतंग हित जानि आपनो, दीपकसों लपटात।
'सूरदास' जाको मन जासों ताको सोइ सुहात॥

इस प्रकार प्रेमी भक्त एकमात्र अपने प्रियतम भगवान्‌को ही जानकर, उसीको सर्वस्व मानकर, जैसे मछलीको केवल जलका आश्रय होता है वैसे ही केवल भगवान्‌का ही आश्रय लेकर, सारी चेष्टाएँ उसीके लिये करता है।

एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास।
एक राम रघुनाथ हित, चातक 'तुलसीदास'॥

वह चातककी टेककी भाँति केवल भगवान्‌में ही चित्त लगाये, सम्पूर्णरूपसे उसीपर निर्भर करता हुआ, उसीके लिये शरीर धारण करता है। उसका खाना-पीना, सोना-बैठना, चलना-फिरना, देना-लेना, दान-पुण्य करना, सब कुछ उसीके लिये होता है। अतएव उसके समस्त कर्म भगवान्‌के प्रति अनन्य प्रेमभावसे सम्पन्न होनेके कारण स्वाभाविक ही कल्याणमय होते हैं।

लोके वेदेषु तदनुकूलाचरणं तद्विरोधिषूदासीनता॥११॥

११—लौकिक और वैदिक कर्मोंमें भगवान्‌के अनुकूल कर्म करना ही उसके प्रतिकूल विषयमें उदासीनता है।

अनन्य भावसे भगवदर्थ कर्म करनेवालेके लिये भगवान्‌के प्रतिकूल कर्मोंका अपने आप ही त्याग हो जाता है। वैदिक या लौकिक (श्रौत या स्मार्त) कोई भी कर्म वह ऐसा नहीं कर सकता जो भगवान्‌के अनुकूल न हो यानी जिससे प्रेमभक्तिकी वृद्धिमें सहायता न पहुँचती हो।

पुत्रके लिये मातापिताकी, स्त्रीके लिये स्वामीकी और शिष्यके लिये गुरुकी आज्ञा मानना वेद और लोक-धर्मके अनुसार सर्वथा कर्त्तव्य है परन्तु उनकी आज्ञा भी यदि भगवत्-प्रेमसे विरुद्ध है तो प्रेमी भक्त कष्ट सहकर भी उसका त्याग कर देता है, क्योंकि उसके लिये अपने प्यारेसे प्रतिकूलाचरण होना असम्भव है।

गोस्वामीजी महाराजने उदाहरण देते हुए कहा है—

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरीसम यद्यपि परम सनेही॥
पिता तज्यो प्रहलाद, बिभीषण बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रजबनितनि, भये जग मंगलकारी॥

प्रह्लादने भगवान्‌के प्रतिकूल पिताकी आज्ञा नहीं मानी, विभीषणने भाईका साथ छोड़ दिया, भरतजी माताकी आज्ञाको टाल गये, राजा बलिने गुरु शुक्राचार्यकी बात नहीं सुनी और ब्रजवनिताओंने पतियोंकी आज्ञापर ध्यान नहीं दिया और ये सभी जगत्‌के लिये कल्याणकारी हुए।

कर्म चार प्रकारके होते हैं—नित्य, नैमित्तिक, काम्य और निषिद्ध। इनमें मद्य-मांस-सेवन, चोरी, व्यभिचार आदि निषिद्ध कर्म तो सभीके लिये त्याज्य हैं। शास्त्रीय काम्य (सकाम) कर्म बन्धनकारक तथा जन्म-मृत्युके चक्रमें डालनेवाले होनेके कारण 'काम्यानां कर्मणां न्यासम्' इस भगवत्-वचनानुसार त्याज्य हैं। रहे नित्य और नैमित्तिक कर्म, इनको लौकिक और वैदिक विधिके अनुसार फलासक्ति छोड़कर केवल भगवान्‌की आज्ञानुसार भगवत्प्रीत्यर्थ करना चाहिये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भगवत्-प्रीत्यर्थ वही कर्म होते हैं जो भगवान्‌के प्रति प्रेम बढ़ानेवाले हों। गीताके अनुसार आसक्ति और फलाशा छोड़कर मन, वाणी और शरीरसे भगवान्‌के अनुकूल कर्म करना और प्रतिकूल कर्मोंका त्याग करना ही विरोधी कर्मोंमें उदासीनता है। प्रेमाभक्तिकी उन्मादमयी स्थिति प्राप्त न होनेतक ऐसे भगवदनुकूल कर्म प्रेमी भक्तके द्वारा स्वाभाविक हुआ ही करते हैं।

भवतु निश्चयदार्ढ्यादूर्ध्वं शास्त्ररक्षणम् १२

१२–(लौकिक और वैदिक कर्म भगवान्‌के सर्वथा अनुकूल करनेका मनमें) निश्चय हो जानेके बाद भी शास्त्रकी रक्षा करनी चाहिये।

प्रेमकी बाह्यज्ञानशून्य प्रमत्तावस्थामें लौकिक और वैदिक कर्मोंका त्याग अपने आप ही हो जाता है, जान-बूझकर किया नहीं जाता।

इसलिये जबतक प्रेमकी, वैसी सब कुछ भुला देने-वाली स्थिति प्राप्त न हो जाय, तबतक प्रेमके नामपर शास्त्रविहित कर्मोंका त्याग कभी नहीं करना चाहिये। शास्त्रके अनुसार भगवान्‌के अर्पणबुद्धिसे भगवदनु-कूल नित्य-नैमित्तिक कर्म और श्रवण-कीर्तनादिरूप भजन करते-करते ही भगवान्‌का वह परमोच्च प्रेम प्राप्त होता है। भगवान् स्वयं आज्ञा करते हैं—

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥
(गीता १६। २४)

अतः तुम्हारे लिये क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये इसकी व्यवस्थामें शास्त्र ही प्रमाण है, यह जानकर तुम्हें शास्त्रविधिके अनुसार ही कर्म करना चाहिये।

अन्यथा पातित्याशङ्क्या॥१३॥

१३–नहीं तो गिर जानेकी सम्भावना है।

जो मनुष्य जान-बूझकर शास्त्रोंकी आज्ञाका पालन न करके शास्त्रके प्रतिकूल अमर्यादित कार्य करता है और उसे प्रेमका नाम देकर दोषमुक्त होना चाहता है, वह अवश्य ही गिर जाता है। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥
(गीता १६। २३)

जो मनुष्य शास्त्रकी विधिको छोड़कर मनमाना स्वेच्छाचार करता है वह न सिद्धि पाता है, न परम गति पाता है और न उसे सुखकी ही प्राप्ति होती है। जान-बूझकर शास्त्रविहित कर्मोंका त्याग करना प्रेमका आदर्श नहीं है, मोह है, उच्छृङ्खलता और स्वेच्छाचार है। ऐसा करनेवाला परिणाममें आसुरी योनि, नरक और दुःखोंको ही प्राप्त होता है।

लोकोऽपि तावदेव किन्तु भोजनादि-व्यापारस्त्वाशरीरधारणावधि॥१४॥

१४–लौकिक कर्मोंको भी (बाह्यज्ञान रहने-तक विधिपूर्वक करना चाहिये।) पर भोजनादि कार्य जबतक शरीर रहेगा तबतक होते रहेंगे।

वैदिक कर्मके साथ ही लौकिक जीविका, गृहस्थ-पालन आदिके कार्य भी सावधानीके साथ भगवदनुकूल विधिके अनुसार करने चाहिये। अवश्य ही एक ऐसी स्थिति होती है जिसमें वैदिक, लौकिक कार्य अनायास ही छूट जाते हैं, परन्तु उस स्थितिके प्राप्त होनेतक दोनों प्रकारके कर्म विधिवत् अवश्य करने चाहिये। फिर तो आप ही छूट जायँगे। परन्तु आहारादि कर्म उस अवस्थामें भी रहेंगे। कारण, वे शरीरके लिये आवश्यक हैं। यद्यपि प्रेमके नशेमें चूर भक्त आहारादिके लिये न तो कोई इच्छा करता है और न चेष्टा ही करता है परन्तु आहारादि प्राप्त होनेपर अभ्यासवश अनायास ही उसके द्वारा आहार कर लिया जाता है। अवश्य ही वह भी भगवत्प्रसाद ही होता है। (क्रमशः)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्मविद्या-रहस्य

(अनुवादक तथा लेखक—श्रीनृसिंहदासजी वर्मा)

(गताङ्कसे आगे)

यह बात विद्वानोंको विदित ही है कि यह विषय पूर्वमीमांसाका है। मीमांसकोंने, जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, वेद, स्मृति और आचारको प्रमाण माना है। यहाँतक वेद और स्मृतियोंके सम्बन्धमें तो हम कुछ लिख चुके। अब आगे कुछ आचार-प्रमाण भी उपस्थित करते हैं।

जिन वेदान्त-प्रेमियोंने श्रीयोगवासिष्ठका स्वाध्याय किया है उनको भलीभाँति विदित होगा कि जिस समय सायङ्काल हो जाता था श्रीवसिष्ठजी भगवान् रामचन्द्रजीसे कह देते थे—'हे रामजी! आजका प्रकरण यहीं छोड़ते हैं क्योंकि सायङ्काल हो गया है। अब सन्ध्याका समय है; आओ, सन्ध्या करें।' इससे क्या यह बात सिद्ध नहीं होती कि वेदान्तके वास्तविक तत्त्वको जाननेवाले ही नहीं, वरं वेदान्तके अधिष्ठाता, उत्तर-रामायणके वक्ता वसिष्ठ-जैसे ब्रह्मनिष्ठ महर्षिश्रेष्ठ भी वेदविहित कर्मोंका पूर्ण श्रद्धासे पालन करते थे। तभी उन्हें वेदके सारभूत आत्मतत्त्वकी उपलब्धि होती थी। कहा भी है—'श्रद्धामयोऽयं पुरुषः' क्या आजकलके केवल ग्रन्थ पढ़कर प्रक्रियामात्र जाननेवाले हम-जैसे वाचिक वेदान्ती उन ब्रह्मर्षि आचार्योंसे भी बढ़े हैं जो तुरन्त ही मर्यादाका अतिक्रमण कर कर्म और उपासनाको तिलाञ्जलि दे बैठते हैं। यदि इस बहिर्मुखता, कर्मत्याग, सन्मार्गोल्लङ्घन और शास्त्राज्ञातिवर्तनका नाम ही ज्ञान है तो ऐसा ज्ञान पशु-पक्षियोंको तो स्वभावसे ही प्राप्त है, फिर हममें और उनमें अन्तर ही क्या हुआ!

आहारनिद्राभयमैथुनञ्च
सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
(हितोपदेश)

श्रीविद्यारण्यस्वामीने अपनी पञ्चदशीमें श्रीसुरेश्वराचार्यकृत नैष्कर्म्यसिद्धिका एक बड़ा सुन्दर श्लोक उद्धृत किया है—

बुद्धाद्वैतसतत्त्वस्य यथेष्टाचरणं यदि।
शुनां तत्त्वदृशां चैव को भेदोऽशुचिभक्षणे॥

इस प्रकार पूर्व और उत्तर दोनों रामायणोंमें मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका वेदविहित कर्मोंको नियत समयपर करते रहनेका विधान पाया जाता है। इससे बढ़कर और क्या आचार-प्रमाण हो सकता है कि जगन्नाट्य-सूत्रधर भगवान् स्वयं भी अवतार लेकर लोक-संग्रहके लिये कर्म करते रहे हैं। इस सदाचारके विषयमें वसिष्ठजीने अपनी स्मृतिमें भी लिखा है—

आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः
यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः।
छन्दांस्येनं मृत्युकाले त्यजन्ति
नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाः॥

इसी प्रकार अद्वैत-सिद्धान्तके प्रवर्तक श्रीयाज्ञवल्क्यजीने भी कभी इस कर्म-मार्गका उल्लङ्घन नहीं किया। इसमें उनकी स्मृतिके अतिरिक्त एक दूसरा छोटा-सा ग्रन्थ योगि-याज्ञवल्क्य-संहिता भी प्रमाण है। यहाँ उससे कुछ प्रमाण उद्धृत करते हैं—

वर्णाश्रमोक्तं सर्वत्र विध्युक्तं कामवर्जितम्।
विधिवत्कुर्वतस्तस्य मुक्तिर्गार्गि करे स्थिता॥
(१।२४)

संसारभीरुभिस्तस्माद्विध्युक्तं कामवर्जितम्।
विधिवत्कर्म कर्त्तव्यं सह ज्ञानेन सर्वशः॥
(१।२६)

शङ्कर, रामानुज और निम्बार्कादि आचार्योंके सम्बन्धमें तो यह कहनेकी आवश्यकता ही नहीं कि वे कर्म और उपासना-मार्गके कितने पक्षपाती थे, क्योंकि उनका तो अवतार ही केवल वेदोक्त कर्म और उपासना-मार्गके स्थापन करनेके लिये हुआ था। जिस समय बौद्धोंने वैदिक मतावलम्बियोंको वैदिक पथसे विचलित करनेके लिये एँड़ीसे चोटीतक जोर लगाना आरम्भ कर दिया और वे 'त्रयो वेदस्य कर्तारः धूर्तभण्डनिशाचराः' कह-कहकर वेदोंका अपमान करने लगे, तब वैदिक पद्धतिकी रक्षाके लिये साक्षात् श्रीमहादेवजी शङ्कराचार्यरूपसे अवतीर्ण हुए। फिर जिस समय मनुष्य बहुधा नास्तिक, भक्तिहीन, सकाम-कर्मपरायण, भूत-पिशाच, डाकिनी-शाकिनी आदिकी सिद्धि-में प्रवृत्त और उत्पथगामी हो गये तथा यह कहने लगे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कि 'भस्मीभूतशरीरस्य पुनरागमनं कुतः', 'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्', उस समय शेषावतार श्रीरामानुजस्वामी तथा सुदर्शनावतार श्रीनिम्बार्कादि चार आचार्योंका आविर्भाव हुआ। ये आचार्य महानुभाव तो शास्त्रोक्त कर्ममर्यादाकी स्थापनाके लिये ही अवतीर्ण हुए थे। अतः इनके विषयमें आचार-प्रमाण-सम्बन्धी विचार करना केवल पिष्टपेषणमात्र है। अद्वैत-मत-प्रवर्तक भगवान् शङ्करस्वामी अपने सारे वेदान्त-ग्रन्थोंमें पहले अपने-अपने वर्णाश्रमोचित वेद-विहित कर्मोंको स्थान देकर ही आगे चलते हैं—यह बात सभीको विदित है। इसके सिवा वेदान्तका कर्मसे इसलिये भी घनिष्ठ सम्बन्ध है कि यह कर्मका फल अर्थात् उसकी परिपाकावस्थाका रूपान्तर ही है। इसीलिये कर्म-सम्बन्धी शास्त्रको पूर्व-मीमांसा और वेदान्तको उत्तर-मीमांसा भी कहते हैं। इसपर भी यदि कोई ज्ञानाभिमानी कर्मका विरोध करे तो उसका शासन यमराजके सिवा और कौन कर सकता है?

श्रीगीताजीमें तो कर्मका वर्णन ऐसी सुन्दरता और विलक्षणतासे किया गया है कि उसकी तुलनाका मिलना ही असम्भव है। श्रीगीताजी कहती हैं—

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥
(५।१०)

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
(५।१२)

कर्मण्येवाधिकारस्ते
(२।४७)

कर्मणैव हि संसिद्धिम्
(३।२०)

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
(१८।५)

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि
(३।१५)

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥
(३।१९)

स्वधर्मे निधनं श्रेयः
श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः
(३।३५)

मत्कर्मकृन्मत्परमः
(११।५५)

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
(३।५)

वर्त एव च कर्मणि
(३।२२)

ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥
(१६।२४)

कर्मकी सिद्धिके लिये इससे अधिक प्रबल प्रमाण और क्या दिये जा सकते हैं। इसलिये साधारण लोगोंकी तो बात ही क्या है, आत्मवेत्ता पुरुष भी देहानुसन्धान रहनेतक अपने लिये नहीं, वरं लोक-संग्रहके लिये ही वेदविहित कर्म किया करते हैं। क्योंकि—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
(गीता ३।२१)

इस प्रकार पूर्वमीमांसामें कहे हुए वेद, स्मृति और आचार तीनों प्रमाणोंसे द्विजके लिये आयुपर्यन्त विहित कर्माचरणकी अवश्यकर्तव्यता सिद्ध होती है। इसपर भी यदि कोई मनमानी करनेवाला द्विज इस कल्याण-मार्गमें अरुचि ही प्रकट करे तो इसके सिवा कि उसका प्रारब्ध मन्द है और क्या कहा जा सकता है? भगवान् मनुने कहा है—

अकुर्वन् विहितं कर्म निन्दितं च समाचरन्।
प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्तीयते नरः॥
(मनु० ११।४४)

तैत्तिरीय भाष्यवार्तिकमें भी श्रीसुरेश्वराचार्यजीने कहा है—

नित्यानामक्रिया यस्माल्लक्षयित्वैव सत्वरा।
प्रत्यवायक्रिया तस्माल्लक्षणार्थे शता भवेत्॥

इससे यही बात सिद्ध हुई कि जबतक देहाध्यास रहे, (चाहे सारी आयु बीत जाय) तबतक द्विजको वेदविहित वर्णाश्रम-धर्ममें तत्पर रहकर ही यथावत् कर्म करते हुए कालक्षेप करना चाहिये। जीवनाभिलाषी मनुष्यके लिये यही युक्त और कल्याणकारी मार्ग है।

यहाँतक कल्याण-कामियोंके हितके लिये दूसरे मन्त्रके प्रथम पाद 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि' इत्यादिके भाष्यरहस्यरूप महासागरके तात्पर्यका निरूपण किया गया। अब इसके द्वितीय पादका संक्षिप्तार्थ लिखकर हम इसका भाष्यानुवाद समाप्त करते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥

वेदभगवान् आज्ञा करते हैं कि कल्याण चाहनेवालों-के लिये केवल दो ही मार्ग हितकर हैं। एक निवृत्ति यानी संन्यास और दूसरा प्रवृत्ति यानी कर्म-मार्ग। अथवा यों कहिये कि इनमें पहलेका नाम श्रेय-मार्ग है और दूसरेका सात्त्विक प्रेय-मार्ग। कोई अत्यन्त भाग्यशाली महानुभाव ही जिन्होंने अपने अनेकों पूर्वजन्मोंमें उच्चकोटिकी उपासना और विहित कर्म किये होते हैं वे ही इस श्रुत्युक्त संन्यास-मार्गपर अग्रसर हो सकते हैं। परन्तु जिनके मनमें पुत्र, कलत्र, द्रव्य और जीवनेच्छा आदि तरह-तरहकी वासनाएँ बनी हुई हैं उनके लिये तो कर्म-मार्ग ही अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा परम कल्याणका देनेवाला होता है। इन दो मार्गोंके अतिरिक्त तीसरा और कोई मार्ग नहीं है।

यदि एकदेशी पूर्वपक्षी यह शङ्का करे कि पूर्व मन्त्रने जिसके लिये ज्ञानका विधान किया है उसीके लिये दूसरे मन्त्रने कर्मकी आज्ञा दी है, अतः दोनों मन्त्रोंका तात्पर्य एक ही मनुष्यद्वारा समुच्चयरूपसे कर्म और ज्ञानका अनुष्ठान कराना है, तो इसका उत्तर यह है कि इन मन्त्रोंमें विशिष्टका भेद होनेसे अधिकारियोंका भी भेद है। ज्ञानमें त्यक्तैषणात्रयत्वरूप विशेषण है; अर्थात् जो मनुष्य एषणात्रयके पूर्ण त्यागरूप अन्तःकरणकी वृत्तिसे विशिष्ट है वही ज्ञानका अधिकारी है और जो पुत्र, कलत्र, धन, धाम एवं जीवनेच्छा आदि अन्तःकरणकी सकाम वृत्तिसे विशिष्ट है वह कर्मका अधिकारी है। विशेषण भिन्न होनेके कारण विशिष्टमें भी भेद है। ज्ञानीका विशेषण पूर्ण त्याग है और अज्ञानीका सांसारिक विषयोंमें राग एवं जीवनेच्छा आदि। इस प्रकार निवृत्ति-मार्गरूप ज्ञानका अधिकारी अत्यन्त विरक्त पुरुष-ही हो सकता है; जो पुरुष रागी, जीवनेच्छु एवं अपक्वकषाय है उसे तो कर्म-मार्गका ही अधिकार है, इन दोनों पक्षोंका इस प्रकार सर्वथा विरोध होते हुए इनका समुच्चयरूपसे एक ही पुरुषको किस प्रकार अधिकार हो सकता है? इससे एकदेशीके पक्षका खण्डन हो जाता है। इसके सिवा कर्तृत्वादि अध्यासके आश्रय रहनेवाले कर्मका शुद्धत्व-अकर्तृत्व-ज्ञानद्वारा उपमर्दन हो जाता है। अतः कर्म और ज्ञानका समुच्चय नहीं हो सकता।

यतिको यज्ञादि कर्मोंका अनधिकार इसलिये भी है कि कर्म द्रव्यसाध्य होते हैं और उसे शास्त्रने सर्वथा निष्किञ्चन रहनेकी आज्ञा दी है। वह कर्मानुष्ठानके लिये द्रव्य कहाँसे लायगा? क्योंकि उसे तो मधुकरीके अतिरिक्त और भिक्षा करनेका भी अधिकार नहीं है। वह केवल उदरपूर्तिके लिये पाँच प्रकारकी भिक्षा ही कर सकता है। ऐसा करनेसे ही उसे प्रतिग्रह नहीं लगता। उन पाँच प्रकारकी भिक्षाओंका विवरण इस प्रकार है—

माधुकर्यमसंक्लृप्तं प्राक्प्रणीतमयाचितम्।
तात्कालिकं चोपपन्नं भैक्ष्यं पञ्चविधं स्मृतम्॥
मनःसङ्कल्परहितान् गृहांस्त्रीन् पञ्च सप्त वा।
मधुवद्धरणं यत्तन्माधुकर्यमिति स्मृतम्॥
शयनोत्थापनात्प्राग्यत्प्रार्थितं भक्तिसंयुतैः।
तत्प्राक्प्रणीतमित्याह भगवानुशना मुनिः॥
भिक्षाटनसमुद्योगात्प्राक्केनापि निमन्त्रितम्।
अयाचितं तु तद्भैक्ष्यं भोक्तव्यं मनुरब्रवीत्॥
उपस्थानेन यत्प्रोक्तं भिक्षार्थं ब्राह्मणेन हि।
तात्कालिकमिति ख्यातं तदत्तव्यं मुमुक्षुणा॥
सिद्धमन्नं भक्तजनैरानीतं यन्मठं प्रति।
उपपन्नं तदित्याहुर्मुनयो मोक्षकाङ्क्षिणः॥
भिक्षाः पञ्चविधा ह्येताः सोमपानसमाः स्मृताः।
तासामेकतमा यापि वर्तयन्सिद्धिमाप्नुयात्॥

(उशना)

इसीलिये वेदने यतिका कर्ममें अधिकार नहीं रक्खा और उसे आज्ञा दी कि निर्जन वनमें चला जाय तथा फिर लौटकर न आवे।

यतिके वनमें जाकर फिर न लौटनेका दूसरा कारण यह भी है कि उसे वेद-शास्त्रके निष्कर्ष अर्थात् 'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः' इस गीताके कथनानुसार वेद्यरूप परब्रह्ममें स्थिति-लाभ करना चाहिये और फिर उस ब्रह्मस्थितिसे चित्तकी वृत्तिका पुनरुत्थान नहीं होने देना चाहिये। इसीका नाम स्त्रीजनासङ्कीर्ण वनमें जाकर न लौटना है, कहा भी है—

आदावन्ते च मध्ये च जनो यस्मिन्न विद्यते।
येनेदं सततं व्याप्तं स देशो विजनः स्मृतः॥

(अपरोक्षानुभूति ११०)

परन्तु यह संन्यास-मार्ग जिजीविषारहित ज्ञानवान्के ही लिये है। इससे समुच्चयवादका पूर्णतया खण्डन हो जाता है और यह बात भी सिद्ध हो जाती है कि कर्म-त्यागका अधिकार केवल संन्यासीको ही है, न कि शुष्काद्वैत

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

छाँटनेवाले सर्वसामग्रीसम्पन्न गृहस्थको भी। जिसे अच्छा खाना, अच्छा पहनना और शरीरको आराम देनेवाले पदार्थ रुचिकर प्रतीत होते हैं, उसके लिये विहित कर्म ही कैसे त्याज्य हो सकते हैं? हाँ, यदि देहसे उसकी ममत्व-बुद्धि उठकर अहमाकार-वृत्ति ही नष्ट हो जाय तब तो उसके लिये न कोई शास्त्रका ही सङ्केत है और न बन्धन ही। उसीके लिये भगवान्‌ने कहा है कि 'तस्य कार्यं न विद्यते', 'नैव तस्य कृतेनार्थः' (गीता ३। १७-१८) इत्यादि। ज्ञानकी पूर्णावस्थामें ही भगवान्‌ने 'सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते' ऐसा कहकर ज्ञानीके लिये सर्व कर्मोंकी परिसमाप्तिका विधान किया है और उसी अवस्थामें विचरनेवाले महात्माके लिये ही भगवान् शुकदेवजीने भी कहा है—

निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को निषेधः।

(शुकाष्टक)

यदि कोई कहे कि शास्त्रका गृहस्थोंके लिये भी निष्काम कर्मका निरूपण करना ठीक नहीं, क्योंकि फल, ज्ञान और प्रयोजनके बिना मनुष्यकी किसी कार्यमें प्रवृत्ति ही नहीं हो सकती और यदि किसी प्रकार प्रवृत्ति हो जाय तो कर्म अवश्य फल देकर ही रहेगा; जैसे यदि कोई पुरुष तटस्थ होकर भी किसीको गाली देता या अपशब्द कहता है तो बदलेमें अवश्य वैसा ही प्रत्युत्तर पाता है। इसका उत्तर यह है कि कर्म निःसन्देह अपना फल देता है; परन्तु इतना भेद है कि यदि कामनाविशिष्ट पुरुष किसी काम्य-कर्मका शास्त्र-विधिसे अनुष्ठान करते हैं तो वह कर्म उन्हें शास्त्रप्रतिपादित फल देकर क्षीण होनेपर जन्म-मरणरूप बन्धनका कारण बन जाता है, और निष्कामभावसे करनेवालोंको वहींपर उनके अन्तःकरणकी मलिनताको दूर करके उसे शुद्ध बनाकर तत्त्वज्ञानका पात्र बना देता है, जिससे वह ज्ञानसम्पन्न हो जन्म-मरणसे मुक्त हो जाता है। इस प्रकार परम्परासे विहित कर्म ही मुक्तिका परम साधन है, यही शास्त्रका गुह्य रहस्य है। सिक्खोंके गुरु श्रीनानकदेवजीने कैसा सुन्दर कहा है—

कर्म करत होवे नेहकर्म। तिस वैष्णवका निर्मल धर्म॥

देव-भक्ति भी, चाहे वह साकारकी प्रतीकोपासनारूप हो और चाहे निराकारकी अहंग्रह-उपासनारूप, इस निष्काम कर्मके अन्तर्गत ही आ जाती है। अतः सद्गृहस्थ द्विजको कर्मका परित्याग कदापि नहीं करना चाहिये। अस्तु, जो मनुष्य त्यागमें असमर्थ है और निष्काम कर्म भी नहीं करता वह सकाम कर्म या केवल द्रव्यादिके उपार्जनमें ही प्रवृत्त होकर बार-बार जनमता-मरता रहता है तथा अपने शुभाशुभ कर्मोंके परिणाममें कभी स्वर्ग-सुख और कभी नरककी यातनाएँ भोगता है। अतः श्रेयस्कामी पुरुषको अपने चित्तकी स्थितिके अनुसार कर्म-त्यागरूप संन्यास अथवा निष्काम कर्म—इनमेंसे कोई भी एक मार्ग अवश्य स्वीकार कर लेना चाहिये। यदि इन दोनों मार्गोंसे च्युत होकर वह स्वेच्छाचारमें प्रवृत्त हो जायगा तो—

अधर्माज्जायतेऽज्ञानं यथेष्टाचरणं ततः।
धर्मकार्यं कथं तस्याच्चन्न धर्मो विनश्यति॥

(नैष्कर्म्यसिद्धि ४। ६३)

शास्त्रकी इस उक्तिके अनुसार इस लोकमें नाना प्रकारके आधिदैविक एवं आध्यात्मिक दुःखोंका अनुभव कर देहपातके अनन्तर यम-यातना भोगता हुआ कुम्भीपाकादि नरकोंके असह्य कष्ट भोगेगा और फिर पशु-पक्षी आदि चौरासी लक्ष योनियोंके चक्रमें पड़कर जबतक इस देवप्रार्थित मनुष्य-देहको पुनः प्राप्त न करेगा तबतक नाना प्रकारके दुःख भोगेगा। अतः इस सुअवसरको हाथसे न खोकर भूत-भविष्यत्‌की कुछ भी चिन्ता न कर अपने कल्याणके लिये जो कुछ बन सके इस वर्तमान जन्ममें ही कर लेना चाहिये। यही इस द्वितीय मन्त्रका अर्थ है और यही भाष्य-रहस्य महाम्बुधिके तात्पर्यकी दूसरी बिन्दु है जो कल्याणके सुज्ञ पाठकोंके समक्ष उपस्थित किया गया है। इसमें जो त्रुटियाँ रह गयी हैं उनको दयालु विद्वज्जन स्वयं सुधार लें और मुझे इस शास्त्रीय पथका अनजान बालक समझकर क्षमा करनेकी कृपा करें।

दूसरे प्रकारकी भक्तमनोरञ्जनी भाष्य-व्याख्या

ऊपर अद्वैत-मत-प्रवर्तक आचार्यचरण श्रीशङ्करस्वामीके द्वितीय मन्त्र-भाष्य तथा भाष्य-रहस्यका किञ्चिन्मात्र दिग्दर्शन कराया गया है। अब हम दूसरे प्रकारकी भक्त-मनोरञ्जनी व्याख्या दिखाते हैं।

कई महात्माओं तथा आचार्योंका मत है कि जबतक ज्ञान उत्पन्न न हो तबतक भवसन्तारिणी सर्वदुःखापहारिणी सकलकलुषनाशिनी कृष्णप्रिया श्रीभक्तिदेवीका प्रादुर्भाव नहीं हो सकता, क्योंकि 'बिन परतीति होइ नहिं प्रीती' और उसीके प्रादुर्भावके लिये श्रीमद्भागवतमें कहा है—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तावत्कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता ॥

तथा अध्यात्मरामायणमें श्रीरामगीतामें भी कहा है—

आदौ स्ववर्णाश्रमवर्णिताः क्रियाः
कृत्वा समासादितशुद्धमानसः ।

तात्पर्य यह है कि जितने भी स्ववर्णाश्रमोचित कर्म हैं उन सबका चरम लक्ष्य भक्तिकी प्राप्ति ही है और जब इस पतितपावनी भगवत्प्रिया भक्तिका आविर्भाव हो जाता है तब इन कर्मादिकी इतनी आवश्यकता नहीं रहती । वैष्णव आचार्योंका कथन है कि भक्तिकी प्राप्ति ज्ञानके अनन्तर ही हो सकती है, क्योंकि जबतक हमें किसीके सौन्दर्य, विभूति, ऐश्वर्य, गुण और स्वभाव आदिका परिचय नहीं होगा तबतक हम उसे प्राप्त करनेके लिये व्याकुल, उत्सुक, और प्रयत्नशील भी नहीं हो सकते । अतः भगवान्‌की भक्ति प्राप्त होनेसे पूर्व हमें उनके स्वरूपको अवश्य समझना होगा । और उनका स्वरूप समझनेमें रुचि उत्पन्न करनेसे पहले अन्तःकरणको अन्य विषयोंसे खाली करना भी अत्यन्त आवश्यक है । अन्तःकरण अन्य विषयोंसे तभी खाली हो सकता है जब उसमें परम प्रियतम, भक्त-मन-चोर श्रीश्यामसुन्दरकी अनूठी छवि निरन्तर विराजमान रहने लगे । और वह तभी बसेगी जब इस मनोमन्दिरको कर्म और उपासनाकी बुहारीसे परिमार्जित एवं शुद्ध कर दिया जायगा । इसीलिये भगवती श्रुतिने कहा है कि जबतक परमा भक्तिरूप चरम स्थितिकी प्राप्ति न हो तबतक आयु-पर्यन्त विहित कर्मोंको करता हुआ ही कालक्षेप करे, क्योंकि परमा भक्तिके उत्पन्न हो जानेपर संसारके सभी विषय नीरस हो जाते हैं और वान्त अन्नके समान स्वयं ही छूट जाते हैं । जिस समय चित्त परमा भक्तिमें निमग्न होकर संसारसे उपराम हो जाता है उस समय भगवच्चिन्तनके सिवा और कोई कार्य शेष नहीं रहता । उसी अवस्थामें कर्म-परित्यागरूप संन्यासका अधिकार है; उससे पूर्व नहीं । बस, कर्म करनारूप प्रवृत्ति तथा परमा भक्तिरूप निवृत्ति—ये ही दो वेदविहित मार्ग हैं । वेदभगवान् कहते हैं—'हे नर ! इन दोनों मार्गोंके अतिरिक्त और कोई मार्ग ऐसा नहीं है जिसपर चलनेसे कर्मका लेप न हो' क्योंकि कुछ-न-कुछ करते रहना यह मनका स्वभाव ही है। अतः यदि तू इसे विहित कर्म तथा उपासनाकी ओर नहीं लगायगा और निवृत्तिरूप भक्तिमें ही प्रवृत्त करेगा तो इसका उच्छृङ्खलतापूर्वक कोई तीसरा मार्ग पकड़ना अनिवार्य ही है । इस प्रकार उत्पथमें प्रवृत्त होकर तुझे जन्म-मरणरूप फल अवश्य भोगना पड़ेगा । ऐसा जानकर तू अपने मनको कर्म या भगवच्चिन्तनरूप भक्तिमें क्यों अग्रसर नहीं करता ?

तीसरे प्रकारसे मन्त्रका यह अर्थ भी किया जा सकता है कि जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, देह-इन्द्रियादिद्वारा की जानेवाली क्रियाका नाम ही कर्म है । इन्द्रियोंका स्वभाव है कि अपने सञ्चालक साभास मनसे प्रेरित होकर अपने-अपने काममें प्रवृत्त होती ही रहती हैं । कोई लाख उपाय करे, परन्तु नेत्र-इन्द्रिय यदि खुली रहेगी तो अवश्य देखनेका काम करेगी । इसी प्रकार अन्य इन्द्रियाँ भी अवश्य अपना-अपना कार्य करेंगी क्योंकि सृष्टिके आदिमें ऐसा ही ईश्वरीय सङ्कल्प हो चुका है । अतः वेदभगवान् कहते हैं कि जब इस इन्द्रिय-प्रवृत्तिको रोकना तेरी शक्तिसे बाहर है तो यही अच्छा है कि जिस इन्द्रियका जो अच्छे-से-अच्छा और बड़े-से-बड़ा कार्य हो वही उससे लिया जाय अर्थात् आँखका काम देखना है । अतः तू इससे भगवान्‌की प्रतिमाओं तथा उनके भक्तोंका दर्शन कर अथवा जहाँ भी तेरी दृष्टि जाय वहीं अपने प्यारे इष्टदेवका ही रूप देख । श्रोत्र कुछ-न-कुछ ज़रूर सुनेगा अतः इससे भगवद्गुणानुवाद सुननेका काम कर । रसनासे उस प्रियतमके गुण-गायनका ही काम ले और त्वचाको ऐसा स्वभाव डाल कि उसमें भगवन्नाम सुनते ही रोमाञ्च और पुलकावली होने लगे । इसी प्रकार हाथोंसे भगवान्‌को स्नान कराने और उन्हें तुलसीदल एवं पुष्प आदि समर्पण करनेका तथा हर समय सच्चे और आज्ञाकारी सेवकके समान प्रभुके सामने करबद्ध खड़े रहने और उनके भक्तोंकी सब प्रकार सेवा-शुश्रूषा करनेका काम ले । और चरणोंसे भगवान्‌के मन्दिरोंमें जाने तथा तीर्थाटनका काम ले । इन कामोंसे बढ़कर और कोई कार्य नहीं है । अतः श्रुति कहती है 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि'—अर्थात् इस संसारमें उपर्युक्त रीतिसे मन और नेत्रादि इन्द्रियों-द्वारा काम करता हुआ ही सौ वर्ष जीनेकी इच्छा करे । कर्मसे श्रुतिका तात्पर्य उसीसे हो सकता है कि जो उत्तमोत्तम हो और कर्म केवल ज्ञानेन्द्रिय या कर्मेन्द्रियसे ही हो सकता है । अतः श्रुति यही चाहती है कि मनुष्य अपनी इन्द्रियोंसे उपर्युक्त उत्तमोत्तम कार्य लेनेका ही प्रयत्न करे । इन उत्तम कार्योंमें तत्पर रहनेके अतिरिक्त 'नान्यथेतोऽस्ति' और कोई मार्ग नहीं है कि जिसपर चलने-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

से 'न कर्म लिप्यते नरे', मनुष्यको अकर्म-विकर्मादिका लेप न हो। यदि मनुष्य इन्द्रियोंसे ऐसे श्रेष्ठ कार्य न लेगा तो यह जरूरी है कि उनकी प्रवृत्ति दुष्कर्मोंमें हो जायगी, और वे उसके अधःपातका कारण बन जायँगी, जैसा कि श्रुति स्वयं कहती है—

पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भू-
स्तस्मात् पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्ष-
दावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥

(कठ० २। १। १)

अतः कर्म करता हुआ ही 'जिजीविषेत् शतं समाः' सौ वर्ष अर्थात् पूर्ण आयुपर्यन्त जीनेकी इच्छा करे। तात्पर्य यह है कि मनुष्य भगवद्भक्तिसम्पादनरूप जीवनकी इच्छा करे न कि बाह्य वृत्तिसे इन्द्रियोंका भृत्य बनकर भगवद्भक्ति-त्यागरूप मरणकी, क्योंकि भगवद्भक्तिका रसास्वाद ही जीवन है और इसका त्याग ही मृत्यु। इसलिये ऐसा जिये कि फिर जीनेकी इच्छा न रहे और ऐसा न मरे कि पुनः-पुनः जन्म-मरणके चक्रमें गिरना पड़े। इस प्रकार इन्द्रियोंका उपर्युक्त रीतिसे सदुपयोग करना ही विहित कर्म करते हुए सौ वर्ष जीनेकी इच्छा करना है। यही कल्याणका मार्ग है। श्रीमद्भागवतमें कहा है—

स वै मनः कृष्णपदारविन्दयो-
र्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने।
करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु
श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये ॥

(नवमे श्रीशुकवाक्यम्)

सा वाग्यया तस्य गुणान् गृणीते
करौ च तत्कर्मकरौ मनश्च।
स्मरेद्वसन्तं स्थिरजङ्गमेषु
शृणोति तत्पुण्यकथाः स कर्णः ॥
शिरस्तु तस्योभयलिङ्गमान-
मेतत्तदेव यत्पश्यति तद्धि चक्षुः।
अङ्गानि विष्णोरथ तज्जनानां
पादोदकं यानि भजन्ति नित्यम् ॥

(दशमे शौनकवाक्यम्)

इस प्रकार कई तरहसे इस श्रुतिका अर्थ निरूपण करके कर्मका विस्तार दिखलाया, जिज्ञासुको चाहिये कि उपर्युक्त कर्म-मार्गोंमेंसे जिसको जो रुचिकर हो उसीपर अग्रसर होनेकी चेष्टा करे। वृथा वाद-विवादमें आयु क्षय न करे। क्योंकि कर्म ही अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा मोक्षका परम्परा-साधन है। कर्मके बिना कुछ नहीं बन सकता। यह द्वैतका ही नहीं, अद्वैत-निष्ठाका भी सर्वोच्च सिद्धान्त है, जैसा कि अद्वैतके आदि-अधिष्ठाता श्रीवसिष्ठ-जीने योगवासिष्ठमें श्रीरामचन्द्रजीसे कहा है—

उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः।
तथैव ज्ञानकर्मभ्यां जायते परमं पदम् ॥
केवलात्कर्मणो ज्ञानान्न हि मोक्षोऽभिजायते।
किन्तूभाभ्यां भवेन्मोक्षः साधनं तूभयं विदुः ॥

(१। १। ७-८)

यहाँ कर्मको मोक्षका परम्परा-कारण और ज्ञानको मुख्य अर्थात् साक्षात् कारण समझना चाहिये। इससे ज्ञानकर्मसमुच्चयवादकी भ्रान्तिमें पड़नेसे भी बचत हो जायगी, नहीं तो इसमें भी समुच्चय-अनुष्ठानकी वृथा शङ्काकी सम्भावना हो सकती है।

इस विस्तृत शास्त्रार्थसे गृहस्थ, ब्रह्मचारी और वानप्रस्थ तीन आश्रमोंके लिये यह बात सिद्ध होती है कि वे आयु-पर्यन्त अपने वेदविहित कर्मोंका पालन करते हुए ही कालक्षेप करें। इसीमें उनका कल्याण है और यह श्रुत्युक्त मार्ग ही उनके लिये श्रेयस्कर है। उनकी जन्म-मरणरूपी फाँसी भी इसीसे कट सकती है।

यही इस मन्त्रका अभिप्राय है, यही व्यवस्था पूज्य वैष्णव आचार्यपादोंने अपने ग्रन्थोंमें दी है और यही भगवान् कृष्णचन्द्रका आदेश है—

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥
न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।

(गीता ३। ३-४)

पण्डित रामचन्द्रने अपनी संस्कृत ईशोपनिषद्विवृतिमें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस मन्त्रका एक ही श्लोकमें बड़ा सुन्दर चित्र खींचा है—

निष्कामकर्माणि तु यावदायु-
स्त्वमिच्छ कर्तुं खलु यन्मुमुक्षुः ।
एवं तव स्यान्न फले न लेपो
न चित्तशुद्धावितरः प्रकारः ॥

अब मैं श्रीराधिकासहित देवाधिदेव भगवान् कृष्णचन्द्रको साष्टाङ्ग नमस्कार कर इस द्वितीय मन्त्रकी व्याख्या समाप्त करता हूँ और आशा करता हूँ कि भगवान् मुझे शेष मन्त्रोंकी व्याख्या भी इसी प्रकार आपकी सेवामें उपस्थित करनेकी शक्ति प्रदान करेंगे। ॐ शम् ।

प्रेम-भक्ति

(लेखक—ब्रह्मचारी श्रीगोपाल चैतन्यदेवजी)

प्रेम-भक्ति गगनमण्डलमें स्थित सूर्यकी भाँति स्वयं प्रकाशित है। जन्म-जन्मान्तरके सुसंस्कारके फलस्वरूप किसी भाग्यवान् पुरुषके हृदय-कमलमें भगवान्का गुण सुनते ही अपने-आप इस प्रेम-भक्तिका विकास हो जाता है। ज्ञान, योग, निष्काम-कर्म आदि किसी भी साधनाकी सहायतासे प्रेम-भक्तिकी उत्पत्ति नहीं होती। जिस भगवत्-भक्तिको शास्त्रोंने अहैतुकी बतलाया है, वह किसी भी प्रकारके हेतुसे उत्पन्न नहीं होती । यथा—

स वै पुंसां परो धर्मः यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सम्प्रसीदति ॥

(श्रीमद्भा० १ । २ । ६)

साधन-भक्तिको जो प्रेम-भक्तिका कारण बतलाया गया है, वह तो केवलमात्र कोमल हृदयवाले कनिष्ठ भक्तोंको भक्तिका तारतम्य समझानेके लिये ही है। जैसे कच्चा आम समयपर पक्के आमके रूपमें परिणत हो जाता है, जैसे सुकुमार शिशु ही समयपर परिणत-वयस्क युवक बन जाता है, वैसे ही अपक्व साधन-भक्ति भी परिपक्व दशामें प्रेम-भक्तिके नामसे विख्यात होती है। जैसे एक ही इक्षुरस (गन्नेका रस) स्वादके भेदसे गुड़, शर्करा, मिश्री, ओला आदि भिन्न-भिन्न नामोंसे प्रसिद्ध होता है, वैसे ही एक ही निर्गुण-भक्ति श्रद्धा, रुचि, आसक्ति आदि अनेक नामोंसे वर्णित होती है। अतः इसका सम्पूर्ण अंश सर्वावस्थामें ही आनन्द-चिन्मय भगवान्की भाँति स्वतः ही प्रकाशमान है। भगवद्भक्त सज्जनोंके हृदय-कमलमें निवास करनेवाली भक्तिदेवीकी कृपासे ही इसका उदय होता है। इसके सिवा इस विशुद्ध प्रेम-भक्तिको प्राप्त करनेका दूसरा और कोई उपाय ही नहीं है।

सम्यङ्मसृणितस्वान्तो ममत्वातिशयाङ्कितः ।
भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते ॥

(भक्तिरसामृतसिन्धु)

जिससे चित्त सर्वतोभावेन कोमल हो जाता है एवं जो अतिशय ममता और स्नेहसे युक्त है, इसी गाढ़ भावको बुद्धिमान् पुरुष प्रेम कहा करते हैं।

साधन-भक्तिकी साधना करते-करते रतिका उदय होता है, वही रति गाढ़ होनेपर प्रेम कहाती है। कविराज गोस्वामीजीने लिखा है—

साधन भक्ति हइते हय रतिर उदय ।
रति गाढ़ हइले तारे प्रेम नामे कय ॥

(चैतन्यचरितामृत)

अर्थात् साधन-भक्तिकी साधना करते-करते ही रतिका उदय होता है एवं रतिके गाढ़ होनेपर उसीको प्रेम कहते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इसी प्रेमका प्रह्लाद, उद्धव, भीष्म, नारद आदि भक्तोंने भक्तिके रूपमें वर्णन किया है। सबके ऊपरसे स्नेह, ममता एवं लालसाको हटाकर एकमात्र भगवान्‌के प्रति जो स्नेह, ममता तथा लालसा होती है, उसीको प्रेम कहते हैं। यथा—

अनन्यममता विष्णौ ममता प्रेमसङ्गता ॥
(नारदपाञ्चरात्र)

यह प्रेम-भक्ति दो भागोंमें विभक्त है:—(१) भावोत्थ, (२) भगवान्‌के अतिप्रसादोत्थ। भगवान्‌के विशेष प्यारे भक्तोंको अन्तरङ्ग भक्त कहते हैं। उन्हीं अन्तरङ्ग भक्तोंके अङ्ग (शरीर) की निरन्तर सेवा करनेसे भावका उदय होता है, इस भावका परम उत्कर्ष प्राप्त होनेपर उसे भावोत्थ प्रेम कहा जाता है। दूसरे, भगवान् श्रीहरिको अपना सङ्ग-दान करने आदिको अतिप्रसादोत्थ प्रेम कहते हैं। यह प्रेम (१) माहात्म्य-ज्ञानयुक्त तथा (२) केवल अर्थात् माधुर्य-मात्रज्ञानयुक्त—इन दो श्रेणियोंमें विभक्त है। विधि-मार्गमें चलनेवाले भक्तगणोंका जो अतिप्रसादोत्थ प्रेम है, वह महिमज्ञानयुक्त है और रागानुगा भक्तिके आश्रित भक्तगणोंका प्रेम केवल अर्थात् माधुर्य-ज्ञान-युक्त होता है। इसमें महिमाकी विस्मृति हो जाती है।

भक्तिकी साधना करते-करते पहले श्रद्धा, उसके बाद साधु-सङ्ग, तत्पश्चात् भजन-क्रिया, तदनन्तर अनर्थ-निवृत्ति, फिर निष्ठा, तब रुचि, फिर आसक्ति, तदनन्तर भाव और तत्पश्चात् प्रेमका उदय होता है। प्रेमका उदय होते ही स्तम्भ (स्थिरता), स्वेद (पसीना), रोमाञ्च, स्वरभेद (आवाज बदलना), कम्प (काँपना), वैवर्ण्य (रङ्ग पलट जाना), अश्रु तथा प्रलय—इन आठ प्रकारके सात्त्विक भावोंका विकास होता है।

रागानुगा केवला भक्तिके दास्यादि चारों प्रकारके भावोंमें शृङ्गार-रसात्मक भाव सर्वश्रेष्ठ है। मधुर-रसात्मक साधन-भक्तिसे मधुरा रतिका उदय होता है। इसी रतिसे भगवान्‌के साथ भक्तका विलास (आनन्द-जनक खेल आदि) आरम्भ होता है। क्योंकि मधुरा रति ही श्रीकृष्ण एवं तत्प्रेयसियों (स्त्रियों) का आदि-कारण है।

किञ्चिद्विशेषमायान्त्या सम्भोगेच्छा यया भितः।
रत्या तादात्म्यमापन्ना सा समर्थेति भण्यते ॥
(उज्ज्वलनीलमणि)

यदि सम्भोगकी वासना (इच्छा) श्रीकृष्णके सम्भोगकी वासनाके साथ मिल जाती है तो उसे समर्था भक्ति कहते हैं। यह गोपिकानिष्ठ समर्था रति जब गाढ़ हो जाती है तब इसे पर-प्रेम कहते हैं।

स्याद् दृढेयं रतिः प्रेम्णा प्रोद्यन् स्नेहः क्रमादयम्।
स्यान्मानं प्रणयो रागोऽनुरागो भाव इत्यपि ॥
बीजमिक्षुः स च रसः स गुणः खण्ड एव सः।
सा शर्करा सिता सा च सा पुनः स्यात् सितोपला ॥
अतः प्रेमविलासाः स्युर्भावाः स्नेहादयस्तु षट्।
प्रायो व्यवह्रियन्तेऽमी प्रेमशब्देन सूरिभिः ॥
(उज्ज्वलनीलमणि)

जैसे बीजसे धीरे-धीरे ऊख क्रमशः रस, गुड़, खाँड़, शक्कर, मिश्री तथा ओला (उत्तम मिश्री) में परिणत हो क्रमशः निर्मल तथा सुस्वादु होती है, वैसे ही समर्था रति भी प्रेमके विलाससे क्रमशः परिपक्व होकर स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग तथा भावके रूपमें परिणत होती है।

स्नेहसे भावतकके इन छः प्रेम-विलासोंको भी विद्वान् प्रायः प्रेम ही कहते हैं।

भाव जितना ही गाढ़से गाढ़तर बनकर प्रेममें परिणत होता रहता है, उतनी अधिकतासे भक्तके नृत्य, विलुण्ठन, गीत, क्रोशन (उच्च शब्द), तनु-मोटन (देहको घुमाना), हुङ्कार, जृम्भन, दीर्घ श्वास, लोकापेक्षात्याग, लालास्राव (लार टपकना), अट्टहास

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(जोरसे हँसना), घूर्णा (घूमना), हिक्का (हिचकी) आदि विकारोंद्वारा चित्तस्थ सारे भावोंका अनुभव होता रहता है। भाव धीरे-धीरे विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव, व्यभिचारी भाव और स्थायी भावादि सामग्रीद्वारा परिपुष्ट होकर परमरसके रूपको प्राप्त होता है। साधनाके द्वारा सात्त्विक आदि भावनाएँ क्रमशः धूमायिता, ज्वलिता, दीप्ता तथा उद्दीप्ता हो उठती हैं। इसके बाद भाव और भी उत्कृष्ट अवस्थामें पहुँचकर महाभावके नामसे प्रसिद्धि प्राप्त करता है। यही गोपिकानिष्ठ समर्था रतिका चरम विकास है।

रतिके जहाँतक बढ़नेकी आवश्यकता है, वहाँतक बढ़कर उस अवस्थाको प्राप्त करते ही वह प्रेम-भक्तिके रूपमें परिणत हो जाती है। इसीसे गोपिका-निष्ठ समर्था रतिके प्रौढ़-महाभाव-दशाको प्राप्त होते ही उसे प्रेमा-भक्ति कहते हैं। यथा—

इयमेव रतिः प्रौढा महाभावदशां व्रजेत्।
या मृग्या स्याद्विमुक्तानां भक्तानां च वरीयसाम्॥

(उज्ज्वलनीलमणि)

ऐसे ही महाभावकी किसी भी विचित्र-दशामें भक्त चिद्घनानन्द भगवान्‌के अनन्त नित्य-लीला-समुद्रमें निमग्न हो जाते हैं।

शिव-सम्प्रदाय*

(तत्त्वपूर्ण कहानी)

(लेखक—म० श्रीबालकरामजी विनायक)

'बेटी! तू इतना कष्ट क्यों उठा रही है, ऐसा कठिन तप क्यों, किसलिये कर रही है?'

नीलदेवीने कुछ स्पष्ट उत्तर तो नहीं दिया, परन्तु अपना दक्षिण भुज-प्रलम्ब ऊँचा उठाकर सङ्केत कर दिया।

शुनम (विधाता) ने फिर कहा—'स्पष्ट क्यों नहीं बताती कि क्या चाहती है?'

नीलदेवी काँपते हुए स्वरसे बोली—'अन्तर्यामी-से बताना क्या? आप स्वतः मेरी बीती जानते हैं। आपकी बनायी हुई यह पुतली आपसे क्या छिपा सकती है? हाँ, मर्यादा-पालनके हेतुसे आप स्पष्टतया कहनेकी आज्ञा दे रहे हैं, तो सुनिये—मैं चाहती हूँ कि जब यह प्राण श्रीप्राणनाथकी सेवामें प्रस्थान करे, तब इस भौतिक शरीरका पृथ्वी-अंश ऐसे अद्रिके रूपमें परिणत हो, जिसपर भगवान् विष्णुका वास हो, जलीय अंश एक सुविशाल नदीके रूपमें परिणत हो जाय और अग्नि-तत्त्व शिव-पदको प्राप्त हो। इहलोकमें ऐसी घटनाएँ घटित होकर चिरस्मरणीय हो जायँ और दिव्य लोकमें पवन-तत्त्व उस न्यग्रोध (वट) के शीतल अनिलमें प्रविष्ट हो जाय जिसकी छायामें बैठकर सदाशिव पार्वतीको श्रीराम-कथा सुनाते हैं, और आकाश-तत्त्व उस महाशून्यमें लय हो जहाँ निर्वाण-पथके पथिक योगयुक्त प्राणी आसन जमाते हैं।'

शुनमने 'एवमस्तु' कहते हुए यह भी वर दिया कि तेरे शरीरके षट्चक्रोंसे दिव्य अनुभूति उत्पन्न होगी जिससे लोकमें षट्-विध शिव-सम्प्रदाय प्रचलित होगा।

पाँच हजार वर्षसे पहले पञ्चनद-प्रदेशमें हर-अम्बा (हरप्पा) पुर बड़ा ही समृद्धिशाली नगर

* यह लेख शिवाङ्कके लिये लिखा गया था परन्तु उसमें नहीं भेजा जा सका।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

था। सभी श्रेणीके लोग वहाँ बसते थे। पुहनम नामक एक धनी शिल्पी वहाँ रहता था जो उड़न-खटोला बनानेके लिये प्रसिद्ध था। वह पाँच दरहमसे लेकर एक सौ पाँच दरहमतकके मूल्य-का लघु विमान बनाता था। उस समयके लोगोंमें व्योम-विहारकी लालसा बहुत बढ़ी हुई थी। इस कारण इस व्यवसायसे पुहनम करोड़पति हो गया था और समाजमें उसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। वह इस कलाको सिखानेमें भी उदार था। मिश्र, यवनान आदि विदेशोंसे आये हुए शिल्पकारोंको विना संकोच सिखलाता था, परन्तु उनमेंसे बहुत ही कम इस कलाको सफलतापूर्वक सीख पाते थे। भारतीय, पारद और पारसीक शीघ्र इस कलामें निपुण हो जाते थे। आजन्म ब्रह्मचारी रहनेकी प्रतिज्ञा ही इस कला-शिक्षणमें प्रवेश करनेकी विशेष योग्यता थी। पुहनम भी बाल-ब्रह्मचारी था। वह सदा पृथ्वीकी ओर सिर झुकाए देखा करता था। वह कभी आँख उठाकर किसी-को नहीं देखता था। इसलिये कहा नहीं जा सकता कि उसने भूलकर भी किसी विधु-वदनीका मुख देखा हो। अस्तु, पुहनम बड़ा ही चरित्रवान् शिल्पी था। वह उदार, नम्र-स्वभावी एवं आस्तिक भी था। वह अनाथोंका बड़ा हितैषी था और बहुत-से अनाथ उसके 'आगार' (अनाथालय) में परवरिश पाते थे। उनमें एक ब्राह्मण-कन्या नील-देवी थी, जिसके तपकी चर्चा ऊपर हो चुकी है। जब वह कुमारी भी नहीं हुई थी, तभी उसके माता-पिता स्वर्गवासी हो गये थे। कुटुम्बमें कोई था नहीं। अस्तु, वह 'आगार' में भरती की गयी। वह थी बड़ी सुन्दरी और उसमें दैवी गुण थे। उसने अपने धर्मपिता पुहनमसे उड़न-खटोला बनाना जल्द सीख लिया और अपनी विमल बुद्धिसे उसने एक ऐसी कील उपयुक्त स्थानपर ठोंक दी, जिससे वह आकाशमें चार योजन ऊपर उड़ने लगा और झञ्झावातसे भी उसे दूसरी किंजिस लगाकर सुरक्षित कर दिया। इस आविष्कारसे पुहनम उसपर बहुत प्रसन्न हुआ। उसको बहुत प्यार करने लगा। इस कलामें निपुण वही एकमात्र स्त्री थी, जिसने नियमानुसार आजन्म ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा की थी। युवती होते ही गुणके साथ उसके रूप-यौवनकी प्रशंसा चारों ओर फैल गयी। बहुत-से राजकुमार उसपर मुग्ध होकर उसकी प्राप्तिके लिये पुहनमसे प्रार्थी हुए। परन्तु उसकी भयङ्कर प्रतिज्ञाकी बात सुनकर काँप उठे। अपने मन्द भाग्य और विधाताकी इस त्रुटिपर खेद प्रकट करते थे कि उसने ऐसा अद्भुत रूप-यौवन उसे देकर उसका उपभोग करनेका अधिकारी किसीको नहीं पैदा किया।

सिन्धुकी घाटीमें महेन्द्रजाद्रि (मोहेनजादारो) पुर भी सुविस्तृत और जन-धनसे पूर्ण नगर था। यहाँका राजा ब्राह्मण था और उसका नाम शशाद था। तिनेमलि नामक उसका युवराज नीलदेवी-पर मोहित था। वह स्वयं पुहनमके पास आया और उस प्रतिज्ञाको विसर्जन करनेकी अनुमति नीलदेवीको दिये जानेकी साग्रह प्रार्थना करने लगा। पुहनमने कहा—'राजकुमार ! प्रतिज्ञा-भङ्गकी चर्चा आप नीलदेवीहीसे चलाइये। वही ऐसा कर सकती है। मैं इस विषयमें कुछ न कहूँगा।'

राजकुमारने नीलदेवीसे बातचीत की। उसने कहा—'एक बार प्रतिज्ञा करके फिर उसे भङ्ग करना ओछे एवं तुच्छ मनुष्यका काम है, और वह भी क्षणभङ्गुर विषय-सुखके लिये। 'चार दिनकी चाँदनी और फिर अँधेरी रात।' मनुष्य-जन्मका लक्ष्य सदाशिवकी प्राप्ति है, विषय-सुख नहीं। आप धोखेमें मत पड़िये। मेरी तरह आप भी आजन्म ब्रह्मचारी रहनेकी प्रतिज्ञा कीजिये।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

राजकुमार उसके कहनेमें आ गया। आजन्म ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा करते हुए उसने कहा—'पुरुष होकर मेरे लिये लज्जाकी बात होगी यदि मैं तुम्हारा अनुसरण न करूँ। तुम्हारे प्रणयकी वेदीपर सदाशिवके चरणोंमें विषय-सुखका बलिदान करना ही उचित समझता हूँ। अपना प्यारा शुक, जिसमें मेरा प्राण बसता है, उपहारस्वरूप तुम्हें दिये जाता हूँ। यह 'शिवोऽहम्' का दिव्य निनाद तुम्हें सुनाया करेगा। यह ध्वनि इसे स्वतः-सिद्ध है, किसीने सिखलाया नहीं है।'

राजकुमार विदा होकर अपनी राजधानीको लौट गया। नीलदेवी तोतेको पाकर बहुत प्रसन्न हुई। सोते-जागते जहाँ वह रहती थी, वहीं सुग्गे-के पिंजड़ेको अपने पास बड़ी ही सावधानीसे रखता था। एक दिन पिछली रातमें शुकने नीलदेवीको आत्मचरित सुनाया। उसने कहा—'देवि, तुम मुझको नहीं पहचानती, परन्तु मैं तुझे अच्छी तरह जानता हूँ। मैं शिव नामक ब्राह्मण तेरा पति हूँ और तू मेरी भार्या है। तेरा और मेरा स्वर्गीय सम्बन्ध है। भूतलपर तीन जन्मोंसे तू मेरे लिये तप कर रही है, परन्तु दैवयोग-से कभी भी तुझे संयोग-सुख प्राप्त नहीं हुआ। कल पिंजड़ा खोल देना, मैं उड़कर कश्यप-सागरपर चला जाऊँगा। तू फिर कठिन तप करके मेरे पास पहुँचनेकी चेष्टा करना। जब तू तपस्याके अनन्तर मेरे पास पहुँचेगी, तब हम दोनों भौतिक शरीर त्यागकर कैलाशवासी होंगे और वहीं सनातन संयोग प्राप्त होगा।'

दूसरे दिन शुक तो उड़कर चला गया और नीलदेवी तप करने लगी। उसकी तपस्या पूरी हुई और उसने मनोभिलषित वर प्राप्त किया।

अब नीलदेवीके उत्सर्गका समय आया। उसके अभिभावक, हित-मित्र एवं सगे-सनेही सब उपस्थित हुए। उनमें महेन्द्रजादिके राजकुमार भी थे, जिसने उसके प्रेमके कारण विषय-भोग और युवराजत्वको तृणवत् समझकर त्याग दिया था। सबको सम्बोधित करके उसने कहा—'मेरी संसार-यात्रा समाप्तिपर है। अब मैं शीघ्र कश्यप-सागर (Caspean Sea) पर जाकर अपने प्राणनाथसे मिलूँगी। यदि मैं अब उनके अङ्ग-योग्य मानी जाऊँगी तो उनके साथ ही कैलाशको प्रस्थान करूँगी और वहाँ दिव्य सम्भोग-सुख प्राप्त करूँगी। आप आशीर्वाद दें कि ऐसा ही हो।' इस प्रार्थनाको सुनकर लोग फूट-फूटकर रोने लगे और साथ जानेके लिये आग्रह करने लगे। विशेष अनुरोध पुहनम और तिनेमलीका था। अस्तु, एक सुन्दर विमानपर तीनों आरूढ़ हुए और शेष लोगोंके अश्रुजलद्वारा दिये गये अर्घ्य-पादको स्वीकार करके कश्यप-सागरको प्रस्थित हुए। वियोगके कारण नगरनिवासी कातर दृष्टिसे बहुत देरतक विमानकी ओर देखते रहे, यहाँतक कि वह विमान उनकी दृष्टिसे ओझल हो गया।

विमान कश्यप-सागरके पश्चिमी तटपर उतरा। महर्षि कश्यपका आश्रम वहीं था। नीलदेवीका पति शिव नामक शुक वहीं था। और वरुण, मित्र, अश्विनीकुमार, वसु आदि देवगण एवं देवियाँ भी वहाँ उपस्थित थीं।

उसी समय देवदेवने अर्द्धनारीश्वररूपसे दर्शन दिया। उस अद्भुत रूपको देखकर देवता और मुनि मोहित हो गये। शुकने चोला बदल दिया और दिव्य रूप धारणकर कैलाशपतिकी स्तुति करने लगा। नीलदेवीने अपना चोला अपूर्व रीतिसे बदला। पहले तो उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गसे स्वेदके रूपमें इतना जल निकला कि वह बढ़ते-बढ़ते एक नदीके रूपमें परिणत हो गया। उसी नदीको नीलनदी (Nile River) कहते हैं। शरीरकी अस्थियाँ आकाशमें उड़ चलीं और ऊपर उठते ही बढ़ने लगीं। बढ़ते-बढ़ते एक पर्वत-खण्ड होकर लवण-सागरमें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गिरीं और नीलाचलके नामसे प्रसिद्ध हुईं। श्रीहरिने उसपर वास किया और नीलाचल-नाथ कहलाये। उसके शरीरका पवन-तत्त्व-प्राण कैलाशपर उस वटके पवनमें मिल गया जहाँ भूतनाथकी राम-कथा होती है। इस प्रकार कुछ ही क्षण पहले कैलाशको प्रस्थान किये हुए पतिसे मिलकर वह कृतार्थ हो गयी। उसका आकाश-तत्त्व मोक्ष-मार्गके महाशून्यमें प्रविष्ट हो गया। और अग्नि-तत्त्व? वह तो निकलते ही 'अर्द्धनारीश्वर' के सम्मुख ज्योतिःस्वरूपसे माहेश्वर तत्त्वका उपदेश करने लगा—एक अद्वितीय ब्रह्म सच्चिदानन्दस्वरूप ही शिव-तत्त्व है। और 'स्थल' कहलाता है। शिव-तत्त्वमें 'महत्' और अन्य तत्त्व स्थित हैं और उसीमें विलीन हो जाते हैं। प्रथमतः इसमें विश्व स्थित है जो प्रकृति-विकृतिसे उत्पन्न है और अन्तमें उसीमें लीन हो जाता है। इसीलिये शिव-तत्त्वको स्थल कहते हैं। प्रथमांश 'स्थ' स्थानबोधक है और द्वितीयांश 'ल' लयका प्रतिपादक है। इसलिये भी इसको 'स्थल' कहते हैं कि यही सम्पूर्ण चराचर जगत्का आधार है और सम्पूर्ण शक्तियों, सब ज्योतियों और समस्त जीवोंको धारण करता है। यह सब जीवोंका विश्राम-स्थल है। यह वह सर्वोच्च पद है जिसको मोक्षार्थी बड़ी खोज और अनुसन्धानसे प्राप्त करते हैं। इसलिये इसको 'अद्वैत' भी कहते हैं। सन्निहित शक्तियोंके सञ्चालनसे 'स्थल' दो भागोंमें विभक्त हो जाता है—(१) लिङ्ग-स्थल और (२) अङ्ग-स्थल। लिङ्ग-स्थल तो साक्षात् शिवजी हैं, जो उपास्य हैं, आराधनीय हैं, और अङ्ग-स्थल जीव है, उपासक और आराधक है। इसी प्रकार शक्तिके भी दो विभाग हैं। एक अंश तो शिवके वामभागमें प्रतिष्ठित हो जाता है और 'कला' कहलाता है और दूसरा अंश या भाग जीवकी ओर प्रवृत्त होता है और उसे 'भक्ति' कहते हैं। शक्तिमें कुछ ऐसी विकृतियाँ हैं, जो कर्ममें प्रवृत्त करके संसारमें फँसा देती हैं और भक्ति सब बन्धनोंसे स्वतन्त्र है और कर्म एवं संसारसे दूर मुक्तिकी ओर ले जाती है। शक्ति तो उपास्य बनाती है और भक्ति उपासक। इसलिये शक्तिका वास लिङ्ग अथवा शिवमें है और भक्तिका आवास जीवमें है। अन्तमें इसी भक्तिके द्वारा जीव और शिवका सम्मिलन हो जाता है।

'लिङ्ग-स्थल' तीन भागोंमें विभक्त है। (१) भाव-लिङ्ग (२) प्राण-लिङ्ग और (३) इष्ट-लिङ्ग। पहला तो कलाहीन है और विश्वासगम्य है, केवल सत् है, देश-कालसे परे है और सर्वोच्च है। दूसरा बुद्धिगम्य है, कलासहित और कलारहित दोनों है। तीसरा कलायुक्त है और दृष्टिगोचर है। प्राण-लिङ्ग परमात्माका चित् है। और इष्ट-लिङ्ग आनन्दस्वरूप है। पहला परम तत्त्व है, दूसरा सूक्ष्म तत्त्व है और तीसरा स्थूल तत्त्व है। ये तीनों लिङ्ग क्रमशः जीव, जीवन और स्थूलविग्रह हैं, प्रयोग, मन्त्र और क्रिया हैं, और कला, नाद एवं बिन्दु हैं। इन तीनोंमेंसे प्रत्येक दो-दो भागोंमें विभक्त हैं। प्रथम महालिङ्ग और प्रसाद-लिङ्गमें, द्वितीय चर-लिङ्ग और शिव-लिङ्गमें और तृतीय गुरु-लिङ्ग और आचार-लिङ्गमें। ये षट् वर्ग छः प्रकारकी शक्तियोंके द्वारा परिसाधित होकर निम्नस्थ छः प्रकारके विग्रह उत्पन्न करते हैं। (१) जब शिव-तत्त्व चित्-शक्तिसे परिसाधित होता है, तब महालिङ्ग प्रादुर्भूत होता है, जिसके सहजगुण जन्म-मरणसे रहित होना, दोषसे मुक्त होना, विश्वास-प्रेम-गम्य होना, चैतन्यस्वरूप आदि हैं। (२) जब शिव-तत्त्व पराशक्तिद्वारा परिसाधित होता है, तब जो तत्त्व प्रकट होता है उसे 'सदाख्य' कहते हैं। [सदाख्य पाँच हैं—(१) शिव-सदाख्य जो सदाशिवमें परिणत होता है, (२) अमृत, असीम, जो ईश है, (३) समृत या ससीम है, जो ब्रह्मांश है, (४) कर्तृ जो ईश्वर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है और (५) कर्म, जो ईशानमें परिणत है।] और वही प्रसाद-लिङ्ग है। (३) जब शिव-तत्त्व आदिशक्तिसे परिसाधित होता है तब चरलिङ्ग उत्पन्न होता है जो जगत्के बाह्यान्तरमें व्याप्त है, प्रधानसे ऊँचा है, पुरुष है, केवल बुद्धिगम्य है। (४) जब शिव-तत्त्व इच्छा-शक्तिसे परिसाधित होता है, तब शिव-लिङ्गकी उत्पत्ति होती है, जो ससीम है और स्वाभिमानी है। (५) जब शिव-तत्त्व ज्ञान-शक्तिसे परिसाधित होता है, तब गुरु-लिङ्गकी उत्पत्ति होती है जो प्रत्येक प्रकारके ज्ञानका भाण्डार है, आनन्दसागर है और उसका निवास मानवी चित्तमें है। (६) जब शिव-तत्त्व क्रिया-शक्तिसे परिसाधित होता है तब आचार्य-लिङ्गकी अनुभूति होती है जो सब वस्तुओंका आधार है और त्याग-विरागका स्रोत है।

उपर्युक्त उपदेश देकर वह अग्निज्योति 'अर्द्धनारीश्वर' में विलीन हो गयी। देवताओं और ऋषियोंने उन उपदेशोंको धारण किया और कालान्तरमें छः प्रकारके उपर्युक्त सिद्धान्तोंको लेकर छः शिव-सम्प्रदाय लोक-कल्याणार्थ जगत्में प्रसिद्ध हुए। पुहनम और तिनेमली उड़न-खटोलेपर आरूढ़ होकर अपने देशको लौट गये।

राम-राज्यका आदर्श

(लेखक—श्रीरामदासजी गौड़, एम० ए०)

[गतांकसे आगे]

जैसे वर्णोंमें वैश्योंकी संख्या सबसे अधिक थी वैसे ही आश्रमोंमें गृहस्थोंकी संख्या सबसे अधिक होती थी। निदान गृहस्थ ही जनसाधारणमें सबसे अधिक थे। ब्राह्मण और क्षत्रिय ही वानप्रस्थ और संन्यास दोनों आश्रमके अधिकारी थे। शूद्रको केवल गृहस्थाश्रम विहित था। अतः गृहस्थाश्रमी चारों वर्णोंमें होनेसे समाजमें गृहस्थोंकी ही सबसे बड़ी संख्या थी। गृहस्थ ही अन्य आश्रमोंका पालक था। चतुर्थाश्रमी ही भिक्षुक था। परन्तु राम-राज्यमें ब्रह्मचारी हो या संन्यासी हो, किसीको सदावर्त्त या धर्मशालाको खदेड़नेका काम न था। प्रत्येक गृहस्थका यह कर्तव्य था कि वह कम-से-कम एक अतिथिका नित्य सत्कार करे। अतिथि जानेको उत्सुक रहता था और गृहस्थ उसे रोकनेको। गृहस्थको अतिथियोंकी खोज रहती थी। पञ्चमहायज्ञमें अतिथिको भोजन कराना एक परमावश्यक कर्तव्य था। वनवास करनेवाले भी गृहाश्रमियोंसे सहायता पाते थे। आजकलके बावन लाख भिक्षुक देशपर भारी बोझ समझे जाते हैं; परन्तु, सच पूछो तो इनकी संख्या हमारी आबादीके हिसाबसे बहुत कम ही है और यदि हमारी दरिद्रता हमें धर्म और कर्तव्यसे जी न चोरवाती और स्वार्थपरायण न बनाती तो ये भिक्षुक हमारे लिये बोझ होनेके बदले 'अतिथि-प्राणप्रिय' होते। राम-राज्यमें इनकी संख्या बहुत थी। परन्तु हर एक गृहस्थ सम्पन्न था, और उसे सम्पन्न होना ही था। हर एक गृहस्थ सुखी था और हर्ष और उत्साहका तो उसका चोलीदामनका साथ है। उत्साह और उमङ्गसे भरी प्रजा सदा अतिथियोंकी खोजमें रहती थी। जब सभी सुखी थे और सम्पन्न थे, तब किसे किसकी ईर्षा होती? दैहिक, दैविक, भौतिक किसी तरहके तापकी पीड़ा न थी, तब दुःख क्या होता? सब लोगोंमें परस्पर प्रीति थी। द्वेष तो तब होता जब कोई किसीके स्वत्वका लालच करता और उसे नसीब न होता। किसी कामनाकी पूर्ति न होती तो मनमें ग्लानि उपजती, क्रोध आता, सम्मोह होता और नाशका मार्ग बन जाता। परन्तु प्रजा तो आप्तकाम थी। उसे क्या अप्राप्य था? ऐसी दशामें सब-के-सब सुखपूर्वक वेदानुकूल आचरण करते थे। गृह्यसूत्रोंमें जो धर्म बताये गये उनपर आरूढ़ थे। नीतिके अनुकूल बर्ताव करते थे, अपने-अपने धर्मोंका पूरा पालन करते थे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस प्रकारके जीवनमें पापमें प्रवृत्त होनेका कोई कारण नहीं था। अपने कर्तव्य-पालनके साथ-ही-साथ बहुत समय बचता था। इन समयोंमें प्रजा जहाँ-तहाँ एकत्र हो भगवान् रामचन्द्रजीके गुण गाती थी। उसे जो आनन्द मिल रहा था उसके लिये प्रजा कृतज्ञतापूर्वक अपने राजा भगवान् रामचन्द्रजीकी भक्ति करती थी। इस राज्यमें राज्य-भक्ति और राम-भक्ति दो बातें न थीं।

धर्म-राज्यका वर्तमान प्रजापर ऐसा आचरण सुधारने-वाला प्रभाव पड़ा कि आगेकी होनेवाली सन्तानें और भी अच्छी हुईं। विकासकी गति भी ऐसी ही है कि माता-पिता अच्छे हों तो सन्तान उनसे भी अच्छी और अधिक योग्य निकलती है। विकलाङ्ग, विकृताङ्ग, दुर्बुद्धि, कुलक्षण बालक तो होते ही न थे। सब सुलक्षण, सब बुद्धि और बलसे युक्त होते थे। विनयशीलता सबमें थी, इसीलिये दम्भका कोई काम न था। सभी अपने-अपने धर्ममें निरत थे; परन्तु साथ ही जो किसी दुर्बलताके कारण किसीकी बराबरी नहीं कर सकता था तो उसपर अधिक बलवान्, अधिक धर्मवान् करुणा और दयाकी दृष्टि रखता था। सभी गुणी थे और साथ ही गुणका आदर भी करते थे। कोई किसीसे रत्तीभर अच्छा सलूक करता तो उसके साथ उसका सौगुना एहसान मानना और प्रत्युपकार करना जनताका साधारण व्यवहार था। कपट, चतुराई, धूर्तता, ठगी आदि सुननेमें नहीं आती थी। ये बातें केवल मानव-समाजमें न थीं। पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग सभी प्राणियोंके समाजमें व्यक्तिगत सुधार हो गया था। राम-राज्य केवल मनुष्योंके समाजके लिये न था। मर्यादापुरुषोत्तमका राज्य प्राणिमात्रके लिये हितकर था। शेर और बकरी एक घाट पानी पीते थे। स्वाभाविक वैर भी नष्ट हो गया था। यही बात थी कि विचारके लिये प्रभुके सम्मुख पशु-पक्षियोंकी नालिशें भी आती थीं, कुत्ते और गीधका भी न्याय होता था। आपसमें लड़कर झगड़ा चुकानेकी रीति उठ गयी थी। पाश्चात्य पुराणोंमें हजरत सुलेमानका राज्य भी ऐसा ही बतलाया जाता है। परन्तु हमको पता नहीं कि हजरत सुलेमानके समयमें न्याय-विभाग-के अतिरिक्त धर्म और नीति और अर्थ और समाजकी क्या व्यवस्था थी। जो हो, पाश्चात्य राज्यादर्श भी राम-राज्यके आदर्शके विपरीत न था।

सुराज्यका प्रभाव चराचर प्रकृतिपर पड़ता है। देश-कालके अनुकूल बरसात, गरमी, जाड़ेका होना, समयपर वृक्ष, लता, गुल्मादिका फलना-फूलना, लता और विटपका माँगनेपर फल-मधु आदि देना, गायोंका यथेष्ट दूध देना, खेतोंका यथेष्ट अन्न उपजाना, सागरों, पहाड़ों और खानियोंका अनायास ही रत्न दे देना यह एक साधारण-सी बात हो गयी थी। पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु अपनी-अपनी मर्यादाकी रक्षा करते थे। आग, बाढ़, आँधी, तूफान, भूकम्प आदि विपत्तियाँ कभी सुननेमें नहीं आती थीं। सूर्य उतना ही तपता था जितने तपनेकी धरतीको आवश्यकता थी और चन्द्रमा धरतीको अमृतसे आप्यायित करता रहता था। प्राणी-प्राणीमें ही मैत्री और सहकारिता-का भाव न था। प्रेम और सहयोग जड़ और चेतन, चर और अचरमें व्याप्त था। इच्छा होते ही बादल जल देते थे, पेड़ मधु और फल देते थे। मधुके लिये मक्खियोंके महलमें डाका डालने और चोरी करनेकी जरूरत नहीं पड़ती थी।

वेदानुकूल आचरणका प्रचार करनेके लिये भगवान् स्वयं वेदानुकूल आचरण करते थे और वर्णाश्रम-धर्मकी मर्यादाकी रक्षा करते थे। परात्पर ब्रह्म स्वयं होते हुए भी माया-मानुषरूपी अयोध्याधिपतिका-सा ही बर्ताव करते थे। छोटे-से-छोटेकी भी पूजा, आदर, मान, सत्कार नियम था। राजाओंका धर्म-पालन करके राजाओंको, व्यक्ति-धर्म पालन करके व्यक्तियोंको शिक्षा देते रहते थे, क्योंकि—

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥
(गीता ३। २३)

और 'धर्मसंस्थापनार्थ' तो प्रभु अवतरे ही थे। साधुओंका परित्राण और दुष्कृतोंका विनाश तो थोड़े कालकी बात थी। धर्मसंस्थापन ही स्थायी और ठोस काम था। भगवान्‌के इस काममें जगज्जननी सीताजीका पूरा सहयोग था; सब भाई, सारा परिवार सम्मिलित था। प्रभुके समस्त सेवक और सखा भगवान्‌के रुखको देखकर तदनुकूल आचरण करते थे।

५—जन-विभूति

हम अन्यत्र कह चुके हैं कि अयोध्या-नगरीका बहुत बड़ा विस्तार था, बहुत बड़ी आबादी थी। परन्तु इसके साथ-ही-साथ नगरी सुन्दर भी थी, समृद्ध भी थी और नगरकी सारी प्रजा सुखी भी थी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नारदादि सनकादि मुनीसा । दरसन लागि कोसलाधीसा ॥
दिन प्रति सकल अयोध्या आवहिं । देखि नगर बिराग बिसरावहिं ॥

उस समय ये ऋषि नित्य आकर भगवान्‌के दर्शन करते थे, परन्तु साथ ही नगरीकी शोभा देखकर मोहित हो जाते थे, ललचाकर फिर वहाँसे जाना नहीं चाहते थे। अटारियाँ सोनेकी थीं। मणिमाणिक्य जड़े हुए थे। रंग-विरंगकी सुन्दर चमकदार गच, सोने और मणिसे ढली हुई बनी हैं। नगरके चारों ओर सुन्दर परकोटा है जिसपर जगह-जगह रंग-विरंगे सुन्दर कँगूरे बने हुए हैं। साधारण-से-साधारण जगहोंकी धरती रंग-विरंगे काँचकी गचसे सँवारी हुई है। इतनी चिकनाई और सौन्दर्य है जितनी कि बहुमूल्य नृत्यशालाओंमें हो सकती है। देखकर मुनियोंका मन उनपर थिरकने लगता है। सफेद सुन्दर सँवारे संगमरमरके आकाशसे बातें करनेवाले महल हैं जिनके कलश चाँदी और सोनेके बने हुए हैं, जो चन्द्रमा और सूर्यकी तरह चमकते हैं। हर एकमें अनगिनत खिड़कियाँ थीं जो मणियोंकी बनी हुई चमकती थीं और उनकी राहसे मणिके दीपक चमकते थे। ये दीपक घरके हर कमरेमें हैं। आजकलकी बिजलीकी बत्तियोंके लिये शक्तिका आगार (पावरहौस) बनानेकी आवश्यकता पड़ती है। परन्तु राम-राज्यमें शक्त्यागारकी जरूरत न थी। प्रत्येक मणि स्वयं शक्त्यागार थी। बिजलीवाली जानकी जोखिम न थी। मणिकी बत्तियाँ बुझनेवाली न थीं। इनसे घर चमकता रहता था। देहरी मूँगोंकी बनी होती थी, खम्भे और दीवारें सोनेकी थीं और मणियोंसे जड़ी हुई थीं। मकान और कमरे बड़े-बड़े और ऊँचे और सुशोभित बने हुए थे। आँगनोंकी जमीन स्फटिकसे पटी हुई थी। घरोंके किवाड़ सोनेके और मणिजटित थे। घर-घरमें सुन्दर चित्रशालाएँ थीं जिनमें भाँति-भाँतिसे श्रीरघुनाथजीके चरित चित्रित थे। इन चित्रोंपर मुनियोंका बैरागी मन भी मोह जाता था। घर-घरके हातेके भीतर फूलोंके बगीचे भी लगे थे। उनकी बड़ी सेवा होती थी। भाँति-भाँतिके लता-वृक्ष, गुल्म फूलते-फलते हरे-भरे रहते थे। भौंरे और तरह-तरहके पक्षी गुंजार भरते चहचहाते रहते थे। बालकोंने पक्षियोंको परचा रखा था, खिलाते-पिलाते थे। ये मधुर वाणी बोलते, डोलते और उड़ते और कल्लोल करते-रहते थे। मोर, हंस, सारस, कबूतर मकानोंपर बैठे सुन्दर लगते थे। जहाँ-तहाँ मणियोंमें अपने रूप देख-देखकर सुखी होते और नाचते थे। बालक तोता-मैनाको पढ़ाते थे, राम-नाम और सुन्दर सुभाषित कहलाते थे। राजद्वार, गली, चौहट्टा बाजार सभी सुन्दर बने हुए थे। लेन-देनमें धर्म और ईमानका पूरा राज्य था। चारों वर्ण और चारों आश्रमके मनुष्य सच्चरित और उदार थे। भगवान्‌के और राजाके पूरे भक्त थे। कोई काम नीतिके विपरीत नहीं करते थे। बाजार और बस्ती जैसे सुन्दर हैं वैसे वहाँके नर-नारी, बाल-वृद्ध सच्चरित थे। सरयूमें निर्मल पवित्र जल बहता था, किनारोंपर कीचड़-कर्दमका नाम न था। बस्ती, बाहर, सर्वत्र सफाई थी। वह घाट जहाँ घोड़े-हाथी आदिके झुण्ड-के-झुण्ड पानी पीते थे दूर था, सबसे अलग था, बड़ा लम्बा-चौड़ा था। पानी भरनेके घाट अनेक थे, बड़े सुन्दर बँधे थे। वहाँ स्त्रियाँ ही आती थीं। पुरुष वहाँ स्नान नहीं करते थे। राज-घाट अत्यन्त सुन्दर और सुभीतेका बना हुआ था, वहाँ चारों वर्णके मनुष्य स्नान करते थे। शूद्रोंके लिये कोई अलग घाट न था। और होता क्यों ?

जिस सम्राट्‌ने निषादको गले लगाया, विराध और गीधकी प्रेत-क्रिया की, शबरीके फल खाये; वानर, भालुओं और राक्षसोंको अपनी बराबरीका पद दिया, धोबीतकके दुर्वादको शिक्षाके पवित्र भावसे ग्रहण किया, उसके राज्यमें वर्ण-भेदके कारण अपने-अपने कर्तव्यभावके साथ-ही-साथ परस्पर सहकारिता और प्रेमभावके सिवा ईर्षा, घृणा और द्वेषके भाव कैसे हो सकते थे ? वहीं सरयूके तीर-ही-तीर देवताओंके मन्दिर थे और मन्दिरोंके चारों ओर सुन्दर उपवन थे। कहीं-कहीं नदीके किनारे उदासी, मुनि और संन्यासी वास करते थे जो स्वाध्याय और तपमें लगे हुए थे। उन्होंने तुलसीके वन लगा रखे हैं। नगर और बाहर सभी जगह मनोहरता और सजावटकी बहार थी। बाग-बगीचे, बावड़ी, कुएँ, तालाब लम्बे-चौड़े और सुन्दर बने हुए हैं। सभी जगह सीढ़ियाँ सुन्दर-सुन्दर थीं और निर्मल जल भरा रहता था। सुन्दर पखेरुओंका कलरव आने-वालोंका स्वागत करता रहता था।

अयोध्या-नगरीकी जो शोभा वर्णन की गयी वही गाँव आदि छोटी बस्तियोंकी भी थी। राम-राज्यमें नगरीके सिवा गाँव और खेत सारे देशमें, सारे भूमण्डलपर उद्यान-सा दीखता था। खेतोंकी सिंचाईके लिये नहर और कुओंकी जरूरत न थी। समयपर किसानकी आवश्यकताके अनुसार बादल बरसते थे। उपज इतनी होती थी कि जानवरोंके खाकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तृप्त हो लेनेपर भी गल्ला जरूरतसे ज्यादा हो जाता था। फिर भी गल्लेको ढो-ढोकर एक देशसे दूसरेमें ले जानेकी जरूरत न थी। नगर, ग्राम और बस्तीके उन लोगोंमें वह बँट जाता था जो खेती नहीं करते थे। खेती तो वैश्य गृहस्थ ही करते थे। तीनों वर्ण और तीनों आश्रम तो उसी अधिक उपजपर निर्भर करते थे। भू-कर या लगान भी धर्मशास्त्रके अनुकूल उपजके अंशोंमें ही दिया जाता था। नकदका व्यवहार न था। वह अंश भी सीधे सम्राट्के पास न जाता था। गाँव-गाँवके राजा जमींदार वह अंश लेकर ग्रामकी भलाई और रक्षामें लगाते थे। और कुछ अंश सम्राट्के पास पहुँचता था। नगरके आस-पासकी खेती नागरिकोंकी आवश्यकताके अनुसार होती थी। उपजका उबरा हुआ अंश इतना अधिक भी नहीं होता था कि उसे नष्ट करना पड़े। वर्षा आदि ऋतुओंका ऐसा सामञ्जस्य और ऐसी अनुकूलता थी कि राम-राज्यके ग्यारह हजार वर्षोंमें किसीने दुर्भिक्ष या अकाल-मृत्यु जाना ही नहीं। पाला, बाढ़, हिम-वर्षा, आँधी, अग्नि, भूकम्प आदि उपद्रव इतने दीर्घकालतक सुननेमें नहीं आये। टिड्डियोंका दल कभी देखनेमें नहीं आया। ऋतुकी उग्रतासे, लू या शीतसे प्रजाको कभी पीड़ा नहीं पहुँची। किसी शत्रुने दूसरेपर चढ़ाई न की और प्रजाको न सताया। जङ्गलोंमें पशु और वनवासी और बस्तियोंमें रहनेवाले प्राणी सभी सुखी और समृद्ध थे। उस कालमें धनकी परख सिक्कोंकी गिनतीसे नहीं होती थी। अन्न, गाय-बैल, हाथी-घोड़े, कपड़े-लत्ते, जेवर, घर-द्वार, खेत-खलिहान ये ही धन थे। आज भी सच्चे धन ये ही हैं। किसीके पास काफी अन्न, चारा और एक हजार गौएँ हैं तो उसके धनत्वमें हानि होनेकी उतनी सम्भावना नहीं है जितनी कि उस लखपतीके धनत्वमें है जिसके पास एक लाख रुपये हैं, जिनका मूल्य चाँदीके साथ किसी क्षण पचास हजार या पचीस हजार हो जा सकता है। राम-राज्यमें सिक्केवाले झूठे धनको लोग धन नहीं समझते थे, पैसेकी मायाकी आजकी-सी दुहाई नहीं फिरी थी।

६—राम-राज्यकी अर्थ-व्यवस्था

तो क्या सिक्का न था? ऐसी बात न थी। सोने-चाँदीका प्रयोग जहाँ जैसा चाहिये था वैसा ही होता था। लेन-देनमें सिक्केका व्यवहार भी जैसा चाहिये वैसा था। किसान तो अपनी उपज राजा या जमींदारको देता ही था, सम्राट्का राजस्व भी उसी उपजका अंश होता था। नगरोंके आस-पाससे यह अंश जिसमें ही भेजा जाता था। नगरमें यही अन्न-वस्त्रादि नागरिकोंके काम आते थे। परन्तु राम-राज्यका तो सार्वभौम विस्तार था। हजारों कोससे या जल या स्थल किसी मार्गसे भी अन्न आदि भारी चीजें भेजनेकी न तो आवश्यकता थी, न प्रथा। उनके बदले थोड़ा स्थान लेनेवाले सिक्के, मोती, हीरे, जवाहिर, मणि-माणिक्य आदि भेजे जाते थे। यह सभी सिक्केकी तरह चलते थे। दूर-दूरसे विनिमयका सुभीता स्पष्टरूपसे इसी विधिमें था। अपने स्थानीय बाजारोंमें इन सिक्कोंकी बिल्कुल जरूरत न थी। सिक्के सचमुच सम्पत्तिके विनिमयके सुभीतेके लिये हैं। मुझे वस्त्र चाहिये, बजाजको अन्न चाहिये। मैं उसे वस्त्रके बदले अन्न दे दूँ तो दोनोंको सिक्केकी जरूरत नहीं रह जाती। देशके भीतर आपसके स्थानीय व्यवहारमें सिक्केकी आवश्यकता पड़नी ही न चाहिये। फिर सोने-चाँदी, मोती-मूँगा, हीरा-जवाहिर, किस काम आवेंगे? सोना-चाँदी तो बरतनोंके बनानेमें काम आते थे, किवाड़, खम्भे, दीवार आदिके ऊपर शोभाके अनुसार चढ़ानेके काम आते थे। मणि-माणिक्य, रत्न आदि सजावटके कामोंमें लगते थे। जेवरोंके बनानेमें भी लगते थे। मूल्यके अनुसार एक निश्चित वज़नके टुकड़े ठप्पोंद्वारा बना लिये जाते थे। यह ऊपर बताये सब कामोंसे बचा सोना था जो सिक्कोंके रूपमें राजस्व-कोषमें रक्खा जाता था और दूरस्थ देशोंसे लेन-देन या सम्पत्ति-विनिमयके काममें आता था। अथवा परिव्राजक, ऋषियों, मुनियोंको दान या भेटमें मिलता था। स्थानीय प्रजामेंसे भी उन्हींको इसकी आवश्यकता पड़ती थी जिन्हें इस तरहका दान या भेट देना अथवा कहीं भेजना आवश्यक होता था। कोई व्यापारी चीनसे रेशमी वस्त्र लाया और उससे किसीने खरीदा तो उसे सोनेका सिक्का या कोई रत्न दाममें देगा। अथवा बाहरी व्यापारी अपना बहुमूल्य माल लाकर व्यापार-मन्त्रीको देता है और उसे रत्नों या अशर्फियोंमें दाम मिल जाते हैं। उसे बाजार तलाश करनेकी जरूरत नहीं है।

तो फिर आपसमें विनिमयकी विधि क्या थी? क्या बजाजके पास लोग अनाज ले जाते थे? चमारसे जूता लेना हुआ तो क्या लोग उसे एक-एक बोरा अनाज

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

देते थे ? या बजाजको जूतेकी जरूरत हुई, मगर चमारको कपड़ा नहीं चाहिये, अन्न भी नहीं चाहिये, चाहियें उसे मसाले तो क्या बजाजको कपड़ा चाहनेवाले मसालेवालेको खोजना पड़ेगा ? इस तरहका विनिमय-प्रबन्ध तो बड़ा ही जटिल होगा ?

राम-राज्यमें ऐसी जटिलता कहाँ ? बाजारमें बजाज, सर्राफ, बनिये, परचूनवाले, शाक-भाजीवाले सभी तरहके दूकानदार अपने-अपने निश्चित समयपर कर्तव्य-पालनमें निष्ठावान् बैठे हुए हैं। जिसको जिस चीजकी जरूरत होती है, वह आकर ले जाता है। न तो मोल-भाव करनेकी जरूरत है और न दाम चुकानेकी।

बाजार रुचिर न बनइ बरनत बस्तु बिनु गथ पाइये।
जहँ भूप रमानिवास तहँकी संपदा किमि गाइये॥
बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते।
सब सुखी सब सच्चरित सुंदर नारि-नर सिसु जरठ जे॥

जब दाम नहीं मिलता था, तब दूकानवाले दूकानपर क्यों बैठते थे ? उन्हें किस बातका लोभ था ? लोभकी चर्चा कैसी ? वह तो अपना कर्तव्य पालन करते थे। वैश्यका काम कृषि, पालनद्वारा प्राणियोंकी रक्षा और वाणिज्य अर्थात् उपजका विनिमय। आजकलकी सम्पत्ति-शास्त्रकी परिभाषामें उसे (Production) उपज या कृषि, (distribution) वितरण या गौ-रक्ष्य, और (exchange) विनिमय या वाणिज्य कह सकते हैं। आधुनिक अर्थशास्त्रके यही तीन अंग हैं, इन्हींको प्राचीन जीती-जागती अमर भाषामें 'कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्' बतलाया है। उस समय सभी लोग 'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः' अपने-अपने कर्तव्य-पालनमें निष्ठावान् थे। वैश्य अपने तीनों कर्तव्योंके पालनमें दूकानपर आकर बैठता था और 'गो' (समस्त सेन्द्रिय प्राणियों) की रक्षा या पालन करता था। उसके पास माल कहाँसे आता था ? उपजानेवाले वैश्य बिना दामके दे जाते थे, जुलाहा बजाजको कपड़े दे जाता था, किसान नाजवालोंको नाज, मसालेवालोंको मसाला, शाक-फलवालोंको शाकफल, हलवाइयोंको घी-मैदा-शकर, इस प्रकार जिस दूकानदारको जो चाहिये दे जाता था। अहीर दूध, दही, मलाई; चमार जूते; नोनिये नमक; बँसफोर टोकरियाँ पहुँचा जाते थे। दाम नहीं पाते थे, फिर किस लोभसे पहुँचाते थे ? कर्तव्यनिष्ठा। वह कर्तव्यनिष्ठा भी किसी व्यक्तिपर जोर-जबरदस्तीके कारण न थी। कोई प्राणी बिना काम किये एक क्षण भी नहीं रह सकता, यह तो स्वाभाविक बात थी और है। अपनी रोटीके लिये उस समय किसीको चिन्ता न थी, क्योंकि बिना दामके रोटी क्या सभी चीजें मिलती थीं। परन्तु बिना काम किये प्राणी जीता नहीं रह सकता था, बैठे-ठाले रहना स्वभावविरुद्ध है और था। आज तमोगुण-की प्रबलतासे आलसी और मुफ्तखोरोंकी कमी नहीं है। परन्तु उस समय सभी भले-चंगे, शुद्ध, स्वस्थ, सुखी थे। सत्त्व और रजस्‌की प्रबलता थी। हर एक व्यक्ति अपने-अपने शौकसे, उत्साहसे अपना-अपना कर्त्तव्य पालता था। इससे सभी कामोंमें कला थी, सौन्दर्य था। कोई विचार, कोई उच्चार और कोई आचार 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' से खाली न था। यही बात थी कि चर्मकार अपना काम सुन्दर बनाता था। जिस मनोयोगसे वह सुन्दर वस्तु तैयार करता था उसका मूल्य कैसे आँका जाता ? इसीलिये कला अपनी पराकाष्ठाको पहुँची हुई थी। जुलाहा मन लगाकर सुन्दर-से-सुन्दर, बारीक-से-बारीक, भाँति-भाँतिकी मनोहरता लाकर थान तैयार करता। दामके लिये नहीं, अपने अन्तःकरणको सुख देनेके लिये। गवैया भाँति-भाँतिके उत्तम स्वर निकालता, पैसे पैदा करनेके लिये नहीं, स्वान्तःसुखाय। कारीगर बड़े उत्तम महल बनानेमें लगा है और विचित्र ढंगसे मन लगाकर सँवार रहा है। उसपर मेट और सरदार बैठानेकी जरूरत नहीं है। वह देरमें सुचित्त होकर बनाता है। किसीको शिकायत नहीं है कि यह जल्दी हाथ क्यों नहीं चलाता, क्योंकि उसे मजदूरी नहीं लेनी है, उसे तो जरूरी चीजें बिना दाम दिये मिल जाती हैं। वह धीरे-धीरे इसलिये काम करता है, कि जल्दबाजीसे सौन्दर्यमें फरक आ जायगा, चीज 'उसके मनकी' न बनेगी। इस विधिसे सारा काम स्वान्तःसुखाय होता था और राम-राज्यके आरम्भके ही थोड़ेसे वर्षोंमें कला अपनी पराकाष्ठाको पहुँच चुकी थी।

तो क्या उस समय बड़ी-बड़ी या छोटी-मोटी मशीनें न थीं ? आजकलके कूपमण्डूक-बुद्धिवाले समझते हैं कि हमने प्रकृतिपर प्रभुत्व जमा लिया, यन्त्र-विद्याके शिखर-पर पहुँच गये हैं, विज्ञानके द्वारा प्रकृतिके रहस्य जान लिये हैं और विद्युत्‌को काबूमें करके शक्तिके आगारपर हमने चढ़ी जमा ली है। इस अहमेयपर धरतीके जरा-से

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करवट बदलनेपर पानी फिर जाता है और अपनी लाचारी-की याद आ जाती है। सेतुबन्धके अवसरपर वाल्मीकिमें बड़े-बड़े यन्त्रोंद्वारा चट्टानोंका लाया जाना वर्णित है और आज भी सेतुबन्धरामेश्वरमें एक ही पत्थरमेंसे काढ़े हुए महाकाय नन्दीश्वर पर्वतोंसे सैकड़ों मीलकी दूरीपर स्थित इस बातके साक्षी हैं कि बिना महायन्त्रके इतने विशाल चट्टानका आना असम्भव है। बड़े, छोटे सभी तरहके यन्त्र उस समय भी थे। परन्तु यन्त्रोंसे वे ही काम लिये जाते थे जो मनुष्यके हाथोंसे सम्भव न था। महायन्त्रोंका स्थापन मनुस्मृतिमें उपपातकोंमें ठहराया है। ये यन्त्र मानवी कामोंके लिये न थे, दानवी कामोंके लिये थे। आजकलकी यन्त्रपद्धति मनुष्यको इन्द्रियविहीन, विलासी पशु बना देती है। रामराज्यमें इस पद्धतिकी कल्पना भी न थी। पुष्पक विमानका प्रयोग विशेष अवसरपर होता था। योगसिद्धिसे लोग स्वतः आत्यन्तिक वेगसे उड़ते थे। शतयोजन-विस्तारके सागरको हनुमान्‌जीने उड़कर पार किया था और ढाई हजार मील सजीवनबूटी लानेको चार-पाँच घण्टोंमें ही आये-गये। वियान-विमानकी आवश्यकता न पड़ी। इससे यह सिद्ध होता है कि जहाँ आजकल अपने शरीरके साधनोंको भी बेकार करके उसे निकम्मा किया जा रहा है,राम-राज्यमें शरीरोंके अङ्ग-प्रत्यङ्गकी शक्तियोंका पूर्ण विकास करके उसे सर्वतोभावेन उपयोगी बनाया जाता था। जीव, मन, वचन और कायाका सम्पूर्ण विकास होता था। भीतरी शक्तियाँ काममें आती थीं। इसीसे एक ओरसे किसी दोषका प्रवेश नहीं होता था और दूसरी ओरसे प्रसुप्त गुणोंका उज्जागरण होता था। आज दोषोंका निरन्तर उज्जागरण होता रहता है जिनके दमनके लिये डाक्टरका इलाज, पुलिस और राज्यका अङ्कुश और शिक्षण-पद्धतिका दण्ड निरन्तर काम करता रहता है।

राम-राज्यमें काम-क्रोध-लोभसे प्रेरित होकर मनुष्यकी वृत्तियाँ उस समयकी राज्यपद्धतिके विरुद्ध नहीं जाती थीं। जब देवदत्तको जीवनकी सभी आवश्यक वस्तुएँ बिना मोलके यथेच्छा सभी देशों और कालोंमें प्राप्य हैं तो वह लोभ किस बातके लिये करेगा। वह अपने घरमें महीनेभर या सालभर खानेके लिये अनाजका संग्रह क्यों करेगा और अपने घरमें खत्ती या कोठा बनाकर अन्नरक्षा करनेके उपायमें समय क्यों लगावेगा? एक कोठरी क्यों फँसावेगा? जभी जरूरत पड़ती है, जैसी इच्छा होती है तभी वैसा ही उत्तम-से-उत्तम अन्न उसे मिल जाता है। धराऊँ कपड़े रखने और रक्षा करनेका क्या काम है? बजाज और दरजी उसके लिये यह काम करते रहते हैं। देवदत्त ब्राह्मणको पठन-पाठन, यजन-याजन, दान-प्रतिग्रह यही काम रहे। यह कहो कि प्रतिग्रह क्यों करता है, उसकी आवश्यक सम्पत्ति तो वैश्योंके पास है ही? तो प्रतिग्रह करता है, तो दान भी कर देता है। यह लेन-देन उसका धर्म है, कर्त्तव्य है। उसे इन छः कर्त्तव्योंके पालनमें आनन्द आता है।

बलवन्त क्षत्रिय भी पढ़ने, यज्ञ करने और दान देनेमें अपने अन्तःकरणको सुखी मानता है और चारों वर्णोंकी रक्षा करनेमें लगा रहता है। स्वभावसे ही उसे यह काम रुचता है। राम-राज्यमें वैसे तो कोई विपत्ति आती ही नहीं, चोर-बटपार लगते ही नहीं, घरमें ताला लगानेकी जरूरत ही नहीं, क्योंकि सभी भरेपूरे रँजे-पुँजे सन्तुष्ट हैं। फिर भी उसका तो कर्त्तव्य है रक्षा करना। वह रक्षा करने-की कलाके विकासमें लगा हुआ है। रोगोंसे, हिंस्र-प्राणियों-से, दैवी तापोंसे किस-किस विधिसे रक्षा सम्भव है, इसके आविष्कारमें, खोजमें ही वह व्यस्त रहता है। इसीमें उसका सामर्थ्य है, ईश्वरभाव है। देव, गुरु, विद्वान्‌की पूजा, शौच, आर्जव तो उसके लिये स्वाभाविक है। उसके लिये भी अपने घरमें अन्न-वस्त्रके संग्रहकी आवश्यकता नहीं है। उसकी जरूरतकी चीजोंका भण्डार तो बाजार है, वैश्य भाई हैं।

वैश्योंको भी किसी तरहके परिग्रह या संग्रहकी आवश्यकता नहीं है। जो नाजवाले अपने भण्डारोंमें अन्न-संग्रह रखते हैं वे तो लोक-हितार्थ रखते हैं। अपने खानेको भी उसमेंसे ही लेते हैं सही, परन्तु वह तो एक गौण बात है। नाजवाला अपने यहाँ और वस्तुओंका संग्रह नहीं रखता। जो उपजानेवाले वैश्य हैं वह तो माल उपजाकर संग्रहार्थियोंको दे आते हैं। अपनी जरूरतें तो वह उसी तरह पूरी करते हैं जैसे और वर्णोंके लोग। गार्हस्थ्य-धर्मकी पूर्त्तिमें वैश्य भी दान, पठन और यजन विधिवत् करता रहता है; देव, गुरु, विद्वान्‌की पूजा करता रहता है। शौच, आर्जव आदि गुण तो उसके लिये स्वाभाविक हैं।

जब बिना दाम दिये खाना-कपड़ा और दूसरी जरूरी चीजें मिल ही जाती हैं, तब हरवाह क्यों हर जोतने, हेंगा चलाने, पुर हाँकनेका कठिन काम करने लगा? आजकल-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के जमानेमें यह शङ्का स्वाभाविक लगती है। परन्तु राम-राज्यमें सभी अपने-अपने कामोंमें लगे रहते थे। जिस तरह व्यायाम करनेवाले अपने शौकसे मेहनत करते हैं, अखाड़ेमें घोर परिश्रम करनेके लिये उन्हें कोई मजूरी नहीं देता और न उन्हें मजूरीके लालच या आवश्यकताके कारण ही कसरत करनेकी जरूरत होती है, ठीक उसी तरह-से हरवाहेको अपने मनबहलावके लिये, व्यायामके शौकसे, हल, हेंगा चलानेकी जरूरत होती थी। उसे किसी प्रकारका लोभ प्रवर्त्तक न था। श्रमी या मजूरा परिचर्या वा सेवाका काम अपने शौकसे करता था, उसे परिचर्यामें रस आता था, वह खोज-खोजकर परिचर्यामें लगता था, किसीको मजूरा खोजनेकी जरूरत न थी। कोई मजूरेको मजूरी देता था तो वह लेनेको तैयार न था। क्यों ले, उसे जरूरत ही क्या थी? यह विचित्र पद्धति चारों वर्णोंमें वर्त्त रही थी। इसी तरह भोजनका प्रबन्ध करना गृहस्थका काम था। ब्रह्मचारी, वनवासी और संन्यासी सभी अपना-अपना भोजन गृहस्थसे पाते थे। गृहस्थके यहाँ रसोई उसके या उसके परिवारके लिये ही नहीं बनती थी। हर गृहस्थका कर्त्तव्य था और उसे इस बातका बेहद शौक था कि वह अपनी रसोईमें अतिथियों, ब्राह्मणों, बटुओं और यतियोंको खिलावे और उदासीनोंके आश्रमोंमें उनके लिये आवश्यक सामग्री पहुँचावे। अपने पशुओं, पक्षियों, प्रेतों, पितरों और देवादि सभी आश्रितोंको सब तरहसे आप्यायित करे। उसके पास उत्साह-पूर्तिके सभी साधन उपलब्ध थे, किसी तरहकी कमी न थी। इस उत्साहके काममें आज भी जो कठिनाइयाँ हैं उनके बड़े कारण स्वार्थ और दारिद्र्य हैं। परन्तु उस समय प्राचुर्य था, उत्साह था, जीवन था, सामर्थ्य था, शील था, प्रेम था और सबसे बड़ी बात थी अनासक्त कर्त्तव्य-बुद्धि।

आज संसारमें घोर विच्छृङ्खलताका राज्य है। मनुष्यताका घोर पतन हो गया है। नीच स्वार्थ-बुद्धि इन दिनों प्रबल हो गयी। भाई भाईका खून चूस रहा, धन दुह रहा है, अपना हितू कोई नहीं है, सब स्वार्थपरायण हो रहे हैं। इसी एक स्वार्थके संघर्षके अनेक नाम बन गये हैं, साम्राज्यवाद, समाजवाद, व्यष्टिवाद, समष्टिवाद, प्रजा-तन्त्रवाद, वर्गवाद, श्रमिकवाद, सामाजिक लोकतन्त्रवाद, शक्तिवाद इत्यादि इतने वाद हैं कि सूची पूरी नहीं हो सकती। एक कहता है कि व्यक्तिकी स्वतन्त्रता अविच्छिन्न होनी चाहिये। दूसरा कहता है कि व्यक्तिके अपने अधिकार कुछ नहीं हैं, समाजतन्त्रमें शासनयन्त्र ही समस्त सम्पत्ति-का स्वामी है। परन्तु राम-राज्यमें एक ही व्यक्ति सविवेक अखिल विश्वका स्वामी था। सब सम्पत्ति समाजकी थी। स्वामीका काम नियमन था। समाज विवेकके साथ उपजाता, बाँटता और विनिमय करता था। स्वार्थका कहीं काम न था। प्रेम और परार्थका राज्य था। व्यक्ति-स्वातन्त्र्यका कोई प्रश्न न था क्योंकि समाजरूपी महायन्त्रका प्रत्येक व्यक्ति एक पुरजा था, समाज-पुरुषकी देहका प्रत्येक व्यक्ति अविच्छिन्न जीवाणु था, अनिवार्य कण था। सम्राट् आत्मा था, एकमात्र चेतन था, समस्त विश्व उसका शरीर था। शरीरके कणोंकी अलग-अलग न तो कोई सत्ता थी, न हो सकती थी। इस विश्वराज्यका मुखिया ही विश्व-शरीरका मुख था—

मुखिया मुख सों चाहिये, खानपानको एक।
पालै पोषै सकल अँग, 'तुलसी' सहित विवेक॥
राजधर्म सर्बस इतनोई। जिमि मन माहिं मनोरथ गोई॥

आजका साम्यवाद राम-राज्यके ढँगोंका अनुकरण करना तो चाहता है परन्तु व्यक्तियोंके सम्मुख आदर्श रखने-वाले और पालन करानेवाले किसी पुरुषोत्तमको वह अभी-तक जन्मा न पाया, इसीलिये साम्यवादसे ऊपरी ढँग-ढाँचा तो बनता है परन्तु भीतरसे व्यक्तियोंका विकास होनेकी किसी वादमें सम्भावना नहीं है। वह मूर्त्ति बना सकता है परन्तु उसकी प्राण-प्रतिष्ठा नहीं कर सकता, उसमें जान नहीं डाल सकता।

राम-राज्य विराट् पुरुष था, चारों वर्ण, चारों आश्रम उसके अङ्ग-अङ्ग थे। अङ्गोंमें परस्पर सहकारिता थी, सबमें एक ही चेतना थी। परस्पर प्रेमका भाव विकास पाकर एकता और सर्वाङ्गैक चेतनामें परिणत हो गया था। यह केवल मानव-समुदायमें न था। मानवेतर प्राणियोंमें कीट-पतङ्गसे लेकर ब्रह्मातक यही एकताका भाव व्यापक था। सारी प्रकृति पुरुषसे मिलकर एक हो गयी थी। प्रकृतिमात्र देह थी। भगवान् उसकी आत्मा थे। अखिल विश्वकी विभूतिके रूपमें प्रकृतिने दुलहिनका रूप सँवारा था, और मानुषरूपधारी साक्षात् स्वयं परमात्मा उसका मन-चीता वर था। ग्यारह हजार वर्षका अखण्ड अनुपम आदर्श राज्य दोनोंकी आदर्श रासलीला थी। इस रङ्गभूमिमें प्राणिमात्र भाँति-भाँतिके अभिनयमें तल्लीन थे। और मुख्य अभिनेता मानवसमुदाय था। मनुष्य सब प्राणियोंमें श्रेष्ठ हो गया था क्योंकि मर्यादापुरुषोत्तम भगवान्ने विश्वके सर्वोच्च आदर्शकी अभिव्यक्तिके लिये इसी मनुष्यदेहको अपनाया था।

सब तें अधिक मनुज मोहिं भाये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रज-कण

(लेखक—श्री 'माधव')

एक दिन भी, एक क्षणके लिये भी यह स्वप्न टूट जाता ! एक पलके लिये भी यह समझ पाता कि यह सब-कुछ सपनेकी सम्पत्ति है—एक बार हृदयकी काई धुल जाती, पापोंके दाग मिट जाते ! एक बार भी हृदयकी निर्मल निर्झरिणीमें तुम्हारा प्रतिबिम्ब देख पाता ! पर मनकी चञ्चल लहरें हृदयके वास्तविक सौन्दर्यको नष्ट कर देती हैं और हृदयपर उतरी हुई तुम्हारी तस्वीरको बिगाड़ देती हैं। मैंने कई बार साहस बाँधा, कई बार पूरी शक्ति लगाकर मनकी लहरोंको बाँधा परन्तु·····अचानक जोरोंकी बाढ़ उमड़ आती है; विश्वका कोलाहल प्रतिध्वनित हो उठता है—मन तो स्वतः डवाँडोल है ही, हृदयकी पवित्रतापर भी कालिख पोत देता है। लाचार होकर अपनी हार अपनी आँखों देखनी पड़ती है ! यह है नित्यका आन्तरिक द्वन्द्व। कैसे पहुँचूँ तुम्हारे चरणोंकी छायामें ?

× × × ×

फिर भी तुम्हारे पथमें चलनेका प्रलोभन रोका नहीं जाता। त्रुटियों, अपराधों और पापोंका यह दुर्बल पुतला तुम्हारे दिव्य तेजःपुञ्जकी ओर आकृष्ट तो हो ही गया है और साधन-हीन होते हुए भी तुम्हें पानेकी अभिलाषा हृदयमें प्रतिपल बढ़ती जाती है ! हृदयकी इस प्यासको मिटानेके लिये विश्वकी विविध विभूतियाँ आयीं, संसारके अनेक प्रलोभन आये—परन्तु जीकी कचट न मिटी, हृदयकी ज्वाला शान्त न हुई, अब तो कुछ ऐसा हो गया है कि इस उफानमें ही जीवनका सत्व प्रविष्ट हो गया है। संसारके इस बाह्य-फेनिस रूपपर आँखें टिकती ही नहीं—तुम्हें ही देखनेके लिये व्याकुल आँखें तुम्हारी प्यासमें ही तड़फड़ा रही हैं।

× × × ×

ये सब-कुछ भुलावेमें डालनेके लिये हैं ! ऐसा प्रतीत होता है मानो हमें पथ-भ्रष्ट करनेके लिये ही प्रकृतिने इतने लुभावने रूप धारण किये हैं—ये नाना प्रकारके इन्द्रजाल रच डाले हैं। प्रातःकाल उषा आती है, लाल रेशमी साड़ी पहनकर जिसकी किनारीपर सोनेकी झिलमिल-झिलमिल आभा छिटकी रहती है, वह आकर्षण और मधुका प्याला हाथमें लिये आती है, उसके अधरोंपर अरुणिमाका साम्राज्य है, आँखोंमें बेहोश कर देनेवाला जादू !! अपने समस्त वैभव और आकर्षणको बिखेरकर जब गङ्गाकी लहरोंपर खेलने लगती है—जब समस्त विश्व उसकी प्रेम-मदिरामें बेसुध होने लगता है, उस समय मेरी ये ललचायी आँखें भी प्रेमके इस विराट् समारोहको देखकर, सौन्दर्यकी इस स्वर्गीय क्रीड़ाको देखकर कुछ अलसायी-सी, कुछ जगी-सी ऊपर उठती हैं और हृदयसे सहज ही एक प्रश्न उठता है—सखि ! यह शृङ्गार, यह रूप-सम्भार किसके लिये ? किसकी खोजमें बावरी-सी आकाश-पाताल एक किये जा रही हो; सारे संसारमें अपने प्रेमकी खुमारी बिखेरकर कहाँ किसकी खोजमें अनन्तकालसे पागल हो ? न पाकर लजाकर गुपचुप भाग जाती हो—फिर खोजकी खोज ?

× × × ×

चन्द्रमा और तारोंका दीप जलाकर नीली चादर ओढ़े रजनी वन-पर्वत-समुद्र सर्वत्र तुम्हारी खोजमें है। सूर्यकी प्रखर ज्योतिमें दिन तुम्हें खोज रहा है। सूर्य, चन्द्रमा और ग्रह-नक्षत्रोंकी बत्ती लेकर समय अपने जन्मसे ही तुम्हारी खोजमें विह्वल-सा लड़खड़ा रहा है। यह हवा भी उस 'रूप-हीन' की खोजमें स्वयं अरूप होकर पता नहीं कहाँ-कहाँ टकराया करती है ! समुद्र

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपनी सारी गम्भीरता, सारा ऐश्वर्य भुलाकर पूनोकी रातमें एक बार ऊपर उठता है, अपनी सारी लहरों, उद्वेगों, कामनाओंको लेकर ऊपर उठता है पर अपने प्राणवल्लभको छू न सकनेके कारण उसका हृदय बैठ जाता है! चन्द्रमाकी कोमल किरणोंके सहारे ऊपर चढ़कर 'साजन' की मूर्ति देखनेके लिये इस नादान सागरका तुच्छ प्रयत्न ? जो सहस्र-सहस्र नदियोंके मिलनेपर भी अपना गौरव क्षुब्ध नहीं होने देता, जो एक क्षणके लिये भी यों चञ्चल नहीं होता·····वही आतुर समुद्र प्रेममें पागल होकर किसके चरणोंको चूमनेके लिये ऊपर उठता है ?

× × × ×

खोजकी कोई 'इति' नहीं। खोज 'समर्पण' के महासागरमें प्रवेशकर अपने आराध्य देवमें लय हो जाती है। उस समय 'मैं' 'तुम'में मिल जाता है, मिट जाता है। उस समय 'तुम-ही-तुम' रह जाता है। 'मैं'-जैसी कोई वस्तु रह नहीं जाती। बर्फ गलकर पानी ही हो जाता है—पानीसे ही निकला था पानीमें ही मिट जाता है। नदियाँ समुद्रमें जाकर अपना नाम और रूप गँवा देती हैं।

'मैं' भी तुमसे ही निकला हूँ और प्रतिपल तुममें प्रवेश कर रहा हूँ। विश्वकी अतुल शोभा और मादकता मुझे सतत तुम्हारे ही पथमें चलते रहनेको प्रोत्साहित करती है। खोजना ही पाना है। पानेका ही दूसरा नाम खोज है। खोजमें ही तुम्हारी मधुर छवि चहकती रहती है। तुम्हें 'अपना' कहकर तुम्हारे पथमें चलना—पहाड़ोंसे टकराना, कँटीले जङ्गलोंसे लड़खड़ाना ही साधना है—गिरना, गिरकर उठना और फिर शान्तरूपमें तुम्हारे पथमें चलना—बस, यही मनुष्यके हिस्से पड़ा है।

× × × ×

बस चलना-ही-चलना है—खोजना-ही-खोजना है! खोजमें मिटा देना ही उत्कृष्ट साधना है। जीवनकी मन्दाकिनी बहती चले, भावनाकी गङ्गा बहती रहे—साधनाका प्रवाह चलता चले—उसके तटपर हरिद्वार आवे, प्रयाग आवे, काशी आवे तो भी अच्छा, श्मशान आवे, विस्तृत मरु-भूमि आवे, मनोहर वनस्थली आवे अथवा उजड़ा हुआ लोक आवे—सब ही अच्छा !! एक झलक लेकर आगे बढ़ना है। कहीं तो 'हर हर महादेव शम्भो काशी विश्वनाथ गङ्गा' की तुमुल आह्लादकारी ध्वनि सुन पड़ेगी और कहीं 'राम नाम सत्य है' की कोमल करुण आर्त्त चीत्कार। जीवन-गङ्गाके लिये तो दोनों समान ही हैं न। शवकी राख या पूजाके पुष्पमें भेद ही क्या है ? सब कुछ तो 'समर्पण' ही है!

× × × ×

हाँ जीवनकी गङ्गाकी गति न रुके, न रुके, न रुके। पहाड़ोंको काटकर, मरु-भूमिको चीरकर, वनस्थली और तीर्थ-स्थानोंमें बिना विरमे हुए यह बहती चले। तीरपरकी वस्तुएँ धाराको भी कैसे लुभा सकती हैं ? तीर तीर ही है, धारा धारा ही। तटकी शोभा भी तो धाराके कारण है। बालू कुरेदकर जल देनेसे ही फल्गू फल्गू बनी हुई है, नहीं तो वह बस स्मृतिकी वस्तु रह जाती! गङ्गा भी चिताकी राख और पूजाके पुष्प-दीपसे अन्यमनस्क होकर, निर्विकाररूपमें बहती चली जाती है। वह लेकर क्या करेगी ? उसका तो व्रत ही देना, बस देना और फिर भी देना ही है। यमुना और सरयूको भी वह साथ लेकर उलीचनेके लिये ही आगे बढ़ती है—अपनेको सम्पूर्ण वायु-मण्डल, समस्त हित-नातके साथ समर्पित करनेके लिये ही आगे बढ़ती है! वह बढ़ती है—और जब—अह! वह भी एक दृश्य ही है—जब गङ्गा शत-शत धाराओंमें विह्वल होकर पागलकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भाँति समुद्रकी ओर टूटती है ! समर्पणकी तीव्र ज्वाला जो अपने भीतर हिमालयसे छिपाये आ रही थी—फूट पड़ी—कोटि-कोटि धाराओंमें हृदयसे फूट बही—और वहाँ सागरके गर्भमें समाकर गङ्गा अपना नाम और रूप खो देती है, समर्पित कर देती है ! उसके बाद कहाँ है गङ्गा और कहाँ है सागर ?

× × × ×

कहाँ जाऊँ, कैसे खोजूँ ? किन-किन रूपोंमें, किस-किस वेशमें, कहाँ-कहाँ खोजूँ ! खोजका अभिमान भी प्राणोंके संस्कारके साथ लिपटा चला आता है। 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' तो कोरी कथकड़ी है। कहाँकी खोज, और किसे पाना ? सबमें रमता हुआ, सर्वत्र ओत-प्रोत भला खोजका विषय है ? यह खोज-की धुन भी तो अहङ्कारका ही विकार है। आज मैंने इस खोजके अभिमानको भी दूरकर, निरावरण होकर, सर्वशून्य होकर आँखे बन्द कर ली हैं—आज यहीं और अभी, बिना खोजके और बिना एक पलके विलम्बके तुम्हें आलिङ्गनके पाशमें बाँध लेना है। आज समुद्र ही स्वयं सरिताको अपनी अनन्ततामें मिलानेके लिये खोजका लम्बा रेतीला पथ पारकर आयेगा—आज स्वयं तुम्हें ही अपने पैरों चलकर मेरी भुज-लताओंमें बँध जाना पड़ेगा—बस, इसी हठमें मैंने खोजना छोड़कर आँखें बन्द कर ली हैं !

× × × ×

ये शब्द-ही-शब्द हैं। मैं इन शब्दोंमें वैसे ही उलझ गया हूँ जैसे मकड़ी अपने बुने हुए जालमें। स्वप्नके बाद स्वप्न। प्रवाह टूटता ही नहीं—गति रुकती ही नहीं। इच्छाओंकी कहीं 'इति' भी है ? एक पूरी हुई नहीं कि दूसरी शुरू हो जाती है और तीसरीकी धुँधली छाया दीखने लगती है। इच्छाओंके इस ड्योढ़े-दुहरे प्रवाहमें जीवनका वास्तविक ध्येय पता नहीं कहाँ लुप्त हो गया है। भूले-भटके जो कभी तुम्हारी याद आ भी जाती थी—वह भी अब न रही। कभी तुम इस हृदयके वृन्दावनमें भी आये थे—कभी रास छिड़ी थी, कभी मुरली बजी थी—ऐसा विश्वास नहीं होता। अब तो सूनी निर्जन मरुभूमि है और उसमें इच्छाओंकी मृग-मरीचिका। आँख मूँदकर इन किरणोंमें, इस उत्तप्त लूमें जलकी आशासे दौड़ा जा रहा हूँ। कहाँका जल, कहाँकी तृप्ति ? आज आँखोंपरकी पट्टी खोल दो ! आज हृदयका तिमिर अपनी किरण-मालासे मिटा दो जिसमें सर्वत्र ज्योति-ज्योति, सर्वत्र तुम्हारा रूप-ही-रूप, सर्वत्र तुम्हीं-तुम दिखो। इसके आगे चाहना ही क्या है ?

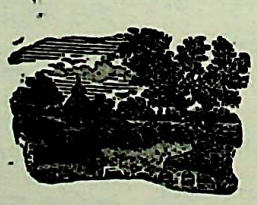

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मनको उपदेश

(श्रीसमर्थ रामदासजीके 'मनाचे श्लोक' का अनुवाद)

(अनुवादक—कृष्णसुत)

[गताङ्कसे आगे]

१३५–हे मन, सत्सङ्ग कर, इससे दुर्जनकी मति भी बदल जाती है। इसके प्रभावसे बुद्धि और भावनाएँ दोनों सन्मार्गगामिनी होती हैं। यह महाक्रूर विकराल कालका भी उन्मीलन कर देती है।

१३६–भयसे सब ब्रह्माण्ड व्याप्त है; जो उसके परे है और जिसके दर्शनसे भयका नाश और द्वैतका अभाव होता है, उसका आनन्द सन्त ही लूटते हैं।

१३७–श्रेष्ठ साधु-सन्त जीवोंके उद्धारार्थ स्पष्ट सत्य कह चुके हैं, फिर भी जीव अज्ञानी ही रहा। मिथ्या देह-बुद्धिसे जबतक असत्य कर्मोंका नाश नहीं होता तबतक ज्ञानरूपी सनातन भण्डार हाथ नहीं लगता।

१३८–गड़ा हुआ धन पास होनेपर भी विस्मृतिके कारण प्राप्त न होनेसे जैसे निर्धनताका कारण होता है। वैसे ही जिसको अहंकारसे आत्मस्वरूपका निश्चय नहीं होता, उसको ज्ञानरूपी सनातन भण्डार हाथ नहीं लगता।

१३९–आगे देखो तो आत्मरूपी धन सब ओर भरा है, किन्तु अभागेको सब पत्थर ही दिखायी देते हैं। अश्रद्धासे किसी पुण्यकी प्राप्ति नहीं होती और सनातन भण्डार भी हाथ नहीं लगता।

१४०–आत्मधन अपने पास होते हुए भी अप्राप्त है। त्रिगुणमयी मायाके बन्धनसे देह-दुःख भुगतना पड़ता है। मनोवृत्तियाँ भी मायाके बाहर नहीं जातीं। और अहंकारके कारण आत्मधन प्राप्त नहीं होता।

१४१–श्रीसमर्थ रामदास कहते हैं कि अहंकारके कारण अप्राप्त रहनेवाला यह आत्मधन सद्गुरुके कृपारूपी अञ्जनके बिना नहीं मिलता। अतएव ऐसे ज्ञानी सद्गुरुकी शरण जा, तब वह सहज ही प्राप्त हो जायगा।

१४२–जबतक अहंकार और संशय इन दोनोंका नाश नहीं होता, तबतक हठ करनेसे इसकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

१४३–अविद्याके कारण लोगोंको इसका भान नहीं होता। भ्रमवश हित भी नहीं समझते। बिना परीक्षा किये ही मनुष्य मिथ्याको सत्य मानकर चलता है। किन्तु सत्यको मिथ्या कौन कह सकता है?

१४४–जगत्में सत्य क्या है इसकी आदरपूर्वक खोज कर, ऐसा करते-करते भगवान्के दर्शन हो जायँगे। फिर अज्ञानादि भ्रमोंका नाश हो जायगा।

१४५–जन्मान्तरसे प्राणी विषय-चिन्तन करता चला आ रहा है। अज्ञान और अहंभावमें इसका जन्म हुआ। विवेकसे आत्मस्वरूपमें लीन हो जा, क्योंकि ब्रह्मभूत होनेके बाद जीवका पुनर्जन्म नहीं है।

१४६–हे मन! आँखोंको दीखनेवाला तथा अदृश्य जगत् कोटि कल्पतक रहनेवाला नहीं। जिसके आकार है वह सभी काल-वश होगा। भविष्यमें कुछ भी रहनेवाला नहीं है। अतएव जो अनन्त और शाश्वत है, उसीकी खोज कर।

१४७–जो फूटता नहीं, टूटता नहीं, चलता नहीं, हिलता नहीं, जो सब ओर भरा हुआ है पर समझमें नहीं आता, और जो अद्वितीय है उस एकरूप ब्रह्मको ढूँढ़ और उसका दर्शन प्राप्त कर।

१४८–हे मन! जो निराकार है, जो ब्रह्मादिका आधार है, जिसका वर्णन करते-करते वेद भी थक गये, उसको ढूँढ़कर उसके साथ विवेकसे तद्रूप हो जा।

१४९–हे मन! जो चर्मचक्षुसे नहीं दीखता, जहाँ ज्ञान-चक्षु भी काम नहीं देते, देखते ही द्रष्टा, दृश्य और दर्शन एक हो जाता है उस अनन्त और शाश्वतकी खोज कर।

१५०–जो पीला, सफेद, श्याम या नीला नहीं है, जो न व्यक्त है, न अव्यक्त है किन्तु जिसपर विश्वास रखनेसे मानव मुक्ति पाता है उस अनन्त शाश्वत परब्रह्मकी खोज कर।

१५१–प्रेमपूर्वक साधु-सन्तोंकी शरण लेनेसे, सर्वदा निश्चयपूर्वक सत्यकी खोज करनेसे और मनको बोध करनेसे ज्ञान-प्राप्ति होती है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

१५२–हे मन, कोरे शब्द-ज्ञान तथा कौशलसे काम नहीं चलता। अन्तरमें उसका निश्चय होना चाहिये। सबमें व्याप्त रहनेवाले सारका संकलन कर।

१५३–शरीर-ज्ञान, तत्त्व-ज्ञान, गायनवादनादि-ज्ञान, अष्टाङ्गयोगसाधन, यज्ञ-याग, भोगोंका त्याग आदि साधनोंसे सच्चा समाधान नहीं होता। वह तो सत्समागममें ही होता है।

१५४–सन्त-समागम करके सन्तोंके मुखसे महावाक्य, तत्त्व-ज्ञान, सृष्टि-ज्ञान आदिका श्रवण करना चाहिये। द्वितीयाका चन्द्रमा न दीखता हो तो उसको कुछ सङ्केतसे ही बतलाया जाता है।

१५५–जगत्में जो दिखायी नहीं देता, उसीको ढूँढ़-कर देख। अच्छी तरहसे देखनेपर वह गुह्य-तत्त्व व्यक्त हो जाता है। हाथसे पकड़ने जायँ तो नहीं मिलता और जगत्में व्याप्त होता हुआ भी ध्यानमें नहीं आता।

१५६–'उसको मैं जानता हूँ' ऐसा कहनेवालेको मूर्ख समझो। जो तर्कके परे है उसको तर्कसे कोई कैसे जान सकता है? देखनेसे अहङ्कारके कारण वह दिखायी नहीं देता। उसके दर्शनके बाद मनुष्य उससे भिन्न नहीं रह सकता।

१५७–खोजके निमित्त शास्त्र बहुत-से हैं, किन्तु उनमें एकवाक्यता नहीं पायी जाती। परस्परविरोधी शास्त्र-ज्ञानसे मताभिमानी लोग झगड़ते हैं किन्तु सच्चे ज्ञानका अनुभव होते ही मनकी गति कुण्ठित हो जाती है।

१५८–हे मन! अहङ्कार छोड़ दे। उपनिषद्, न्यायशास्त्र, तर्कशास्त्र, स्मृति, वेद-वेदान्त आदिके वचन परस्परविरोधी हैं, शेषने भी मौन धारण किया है।

१५९–जिसने अहङ्कारकी मक्षिका भक्षण कर ली है, उसको भोजनकी रुचि कहाँसे हो? जबतक चित्तका अहंभाव नष्ट नहीं होता, तबतक ज्ञान अन्तःकरणमें स्थिर नहीं हो सकता।

१६०–हे मन! खेद उत्पन्न करनेवाले वाद-विवादको छोड़; उनके भेद चित्तको विचलित करते हैं, उन्हें छोड़। तेरे पास जो अहंभाव है उसकी शिक्षा भविष्यमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंको मत दे।

१६१–अहङ्कारसे सब ओर दुःख ही होता है, ज्ञानोपदेश भी व्यर्थ जाता है। सुखी रहनेसे सब सुखमय है।

१६२–अहङ्कारसे ज्ञानी भी नीति-भ्रष्ट हो जाते हैं। अनीतिसे अपकीर्ति होती है, ज्ञानके कारण वह मनमें खूब समझता है कि अपना व्यवहार अप्रामाणिक है।

१६३–स्वयं देह है यह निश्चय दृढ़ हो गया, देहातीत आत्माके हितकारक ज्ञानसे वञ्चित रहा। देहके स्थानमें अपना आत्मा है यह निश्चय होना चाहिये, सर्वदा सज्जनोंकी सङ्गति रख।

१६४–मन जिन विषयोंका चिन्तन करता है उन्हें त्याग दे। मनमें उठते ही कल्पनाका त्याग कर मनसे निर्गुण परब्रह्मको जान। सर्वदा सज्जनोंका सङ्ग रख।

१६५–देह-पुत्रादिके चिन्तनसे मनमें लोभ दृढ़तर होता है। हरि-चिन्तनसे मुक्तिरूपी स्त्रीका पाणिग्रहण कर। सर्वदा सन्त-समागम कर।

१६६–देहके अहङ्कारसे स्त्री-पुत्र-मित्रादिका मोह वृद्धि पाता है, बलात् उसका त्याग कर जन्म-मरणकी चिन्तासे मुक्त हो। सर्वदा सन्त-समागम कर।

१६७–अज्ञानजन्य 'मैं देह हूँ' इस सन्देहको निवृत्त कर, 'अहं ब्रह्मास्मि' का निश्चयात्मक अनुभव कर। जीवनकी हर एक घड़ीको सार्थक कर। सर्वदा सन्त-समागम कर।

१६८–अपनी मनोवृत्तिको जो सत्स्वरूपमें स्थिर करता है, तथा आशा-पाशसे मुक्त होनेके कारण जो दीन नहीं है, वही सच्चा सन्त है। उपाधि देहात्म-बुद्धिको बढ़ाती है किन्तु वह सज्जनोंको कैसे बाधा पहुँचायगी?

१६९–अनन्त शुद्धस्वरूप ब्रह्मका ज्ञान सन्तोंसे ले। अहङ्कारके प्रापञ्चिक विस्तारका निराकरण कर। देहात्म-बुद्धि न रखते हुए निर्गुण परब्रह्मका चिन्तन करना चाहिये।

१७०–देह-बुद्धिका ज्ञानसे त्याग कर। विवेकसे परब्रह्मकी प्राप्ति कर। वृत्ति सदा तदाकार नहीं रहती अतएव उसीका चिन्तन करता रह।

१७१–सारभूत सत्य ब्रह्म गुह्य है, चर्म-चक्षुसे दृश्याभास-मात्र होता है आभाससहित निर्गुण ब्रह्मका इससे आकलन नहीं होता। अहङ्कार रहते कभी उसकी कल्पना नहीं हो सकती।

१७२–विषयानुगामी कल्पना अविद्या है। ब्रह्मानुगामी कल्पना सुविद्या माया है। मूलमें एक ही दो रूपमें प्रकट है। विवेकसे एक दूसरीमें विलीन हो जाती है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

१७३–ब्रह्मरूप आकाशमें राहुरूपी अहङ्कारने उत्पन्न होकर सर्व आकाशको व्याप्त कर लिया। दिशाएँ देखें तो सभी ओर अन्धकार-ही-अन्धकार है। विवेकसे परब्रह्मकी प्राप्ति कर ले।

१७४–चर्म-चक्षुसे दिखायी नहीं देता। काल संसारका भक्षक है उससे इसकी रक्षा कदापि नहीं हो सकती। जो अक्षय है वह शाश्वत मोक्षकी प्राप्ति कराता है। दयाशील भगवान् स्वयं सहायता करता है।

१७५–ब्रह्मा सृष्टिकी रचना करता है और मानवोंके भाल-प्रदेशपर उनका भविष्य लिखता है, किन्तु ब्रह्माके भाल-प्रदेशपर कौन लिखता है ? संहारकालमें शङ्कर भगवान् सबका नाश करते हैं किन्तु शङ्कर भगवान्को अन्तर्धान करनेवाला कौन है ?

१७६–जगत्में बारह आदित्य, ग्यारह रुद्र और इन्द्र तो अगणित हैं। इन सबका जो स्वामी है वह बहुत ढूँढ़नेपर भी नहीं मिलता।

१७७–ईश्वर कभी टूटता नहीं, फूटता नहीं, हिलता नहीं, चलता नहीं, कभी दीन नहीं होता, आँखोंसे दीखता नहीं और अहङ्कारसे तो कभी दीखेगा ही नहीं।

१७८–जिसको ईश्वरका जो स्वरूप रुचिकर मालूम होता है, वह उसीका पद-पूजनार्चनादि करता है किन्तु सत्यदेवको कोई भी कभी नहीं ढूँढ़ता। जगत्में अनेक कोटि देवता हैं। जिसको देवताका जो स्वरूप जँचता है वह उसीकी भक्तिको श्रेष्ठ मानता है।

१७९–जिससे त्रिलोकीकी उत्पत्ति हुई उसको कोई नहीं जानता। सर्वश्रेष्ठ भगवान् अदृश्य है, वह बिना गुरु-कृपाके नहीं दीखता।

१८०–बड़े शक्तिशाली और मन्त्र देनेवाले बहुश्रुत गुरु चाहिये जितने मिलेंगे, मनमें द्रव्यका लोभ रखकर बहुत-से मन्त्र-तन्त्र बतलानेवाले ही मिलेंगे, इनमेंसे कोई भी मुक्ति-मार्ग बतलानेवाला नहीं होता।

१८१–मान्त्रिक, फँसानेवाला, द्रव्याभिलाषी, निन्दा और मत्सर करनेवाला, भक्तिहीन, उन्मत्त, व्यसनी और जिसकी सङ्गतिसे अहित होता है ये सब झूठे हैं। जो सच्चा ज्ञानी है वही साधु है।

१८२–वृथा बात करनेवाला, मनमें इच्छा रखनेवाला, कर्महीन, वाचाल वास्तविक गुरु नहीं है। जैसा कहता है वैसा ही आचरण करनेवाला साधु सच्चा है। हे मन! इसे विचारकर देख।

१८३–भक्ति-ज्ञान-वैराग्ययुक्त, दयाशील, जितेन्द्रिय, क्षमावन्त, योगी, सर्वश्रेष्ठ, दक्ष, कुशल गुरुके सान्निध्यसे समाधान प्राप्त होता है।

१८४–साधु-मुखसे असत्यका सारस्वरूप सत्य तथा अज्ञानका सारस्वरूप ज्ञान प्राप्त होता है, अनिर्वचनीय होते हुए भी उसकी चर्चा करनेकी इच्छा होती है। हे मन! ऐसे परब्रह्मकी तू खोज कर।

१८५–भयातीत और चिन्तारहित आत्मरूप रामरूपमें लीन हो। जगत्में वह दिखायी नहीं देता है, क्योंकि जहाँ द्वैत भाव नहीं है वहाँ वही है।

१८६–हे मन! खोज करनेसे ज्ञान होगा कि राम सदा ही साथ है। रामकी और तेरी अखण्ड एकरूपता है किन्तु अहङ्कार छोड़नेसे इसका भान होगा।

१८७–पञ्चमहाभूत और पाञ्चभौतिक देहकी एकरूपता है किन्तु सत्स्वरूप इन सबसे अतीत है। इस दृश्यभूत संसारको देखो, किन्तु इसमें आसक्तिरहित जीवन व्यतीत कर सुखसे रहो।

१८८–ज्ञान-खड्गसे 'मैं देह हूँ' इस कल्पनाका छेदन कर और विदेहस्थितिमें भक्ति-मार्गका सेवन कर। जो कुछ निन्द्य है उसका विरक्तिके बलसे त्याग कर और आसक्तिरहित सुखमें जीवन व्यतीत कर।

१८९–स्रष्टा उत्पन्न करनेवाले परमेश्वरको जान ले। उसके दर्शनमात्रसे मुक्ति प्राप्त होती है। उसी परब्रह्मरूपको सगुणरूपमें देख और सर्वसङ्गरहित स्थितिमें रह।

१९०–परब्रह्म न स्रष्टा है न भर्ता है, वह परा वाणीके परे और मायासे रहित है। उसी निर्विकारका विचार कर और सर्वसङ्गरहित स्थितिमें रह।

१९१–जिसकी देह-बुद्धि नहीं छूटती उसको कल्पके अन्ततक भी ज्ञानकी प्राप्ति दुर्लभ है। अहङ्कारसे परब्रह्मका ज्ञान नहीं होता और मनमें भरा हुआ अज्ञान नष्ट नहीं होता।

१९२–जिसके अचल स्वरूपका मन आकलन नहीं कर सकता उसका ध्यान तद्रूप होकर ही करना चाहिये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उसके लिये सभी उपमाएँ अनुपयुक्त हैं। उसमें अहङ्कार तथा सङ्गकी सम्भावना नहीं।

१९३–परब्रह्मको जानते हैं या नहीं जानते, ये दोनों ही बातें कहते नहीं बनतीं। वेद, शास्त्र और पुराण उसका वर्णन नहीं कर सकते। वह दृश्यादृश्यातीत है, श्रुति भी उसका अन्त नहीं जानती।

१९४–साधक अपने गुरुसे पूछता है 'हृदयमें वास करनेवाला देव कौन है और कैसा है? देहपातके पश्चात् वह कहाँ रहता है और फिर क्या वह देह धारण करता है?'

१९५–हृदयमें वास करनेवाला देव आकाशकी नाईं व्यापक है, वह सदा-सर्वत्र है, गतिरहित है, किन्तु उससे कोई स्थान रिक्त नहीं।

१९६–आकाशमें विचरनेवाले परमाणुसे भी सूक्ष्म है किन्तु उसमें भी व्याप्त है, ध्यान करते-करते उससे तद्रूपता होती है।

१९७–श्रीरामचन्द्रजीका स्वरूप आकाशवत् व्यापक है। उसका चिन्तन करनेसे जन्म-मरणके मूलका छेदन हो जाता है। उसके दर्शन होते ही देह-बुद्धि नष्ट हो जाती है। उसके साक्षात्कारसे कभी तृप्ति नहीं होती।

१९८–आकाशके सदृश व्यापक होते हुए भी श्रीरामजीको यह उपमा उचित नहीं। व्याप्य वस्तु बिना व्यापकत्व नहीं और वह तो एक ही हैं अतएव वह उपमा भी व्यर्थ है।

१९९–यह सनातन स्वरूप सर्वत्र भरा हुआ है। उसके विषयमें तर्क नहीं हो सकता। वह अत्यन्त गूढ़ है फिर भी श्रीगुरु-कृपासे सुलभ है एवं अन्तरमें उसका अनुभव हो सकता है।

२००–ज्ञान-प्राप्तिके पश्चात् उसका अनुभव होता है। वहाँ सर्वसाक्षी जो तुर्यावस्था है, उसका लय होता है। इतना ही नहीं, उन्मनावस्थाका भी वहाँ लय होता है और जगत् राममय दिखायी देने लगता है।

२०१–सत्स्वरूपके अनुभवके अनन्तर द्वैत नहीं रहता। चिरकालके पश्चात् आपकी भेंट हुई है, इससे विदेहावस्था प्राप्त होकर मनसहित सर्व शरीर शीतल होता है।

२०२–हे मन! तुझे परमेश्वरका अनुभव हो गया है किन्तु श्रवण, मनन, निदिध्यासन और सत्सङ्गतिसे उसको दृढ़ करनेके लिये तुझे प्रयत्न करना चाहिये। ऐसा करनेसे जगत्में तू धन्य कहलायेगा।

२०३–हे मन! प्रपञ्चका सङ्ग छोड़ दे और आदरपूर्वक सत्सङ्गति कर। इससे महादुःखका निराकरण होकर अनायास सन्मार्ग प्राप्त होता है।

२०४–हे मन! यह सत्सङ्ग प्रापञ्चिक सङ्गसे मुक्त करनेवाला तथा मोक्ष देनेवाला है। भव-सागरसे साधकोंको छुड़ानेवाला और द्वैत भावनाका समूल नाश करनेवाला है।

२०५–इस 'मनोबोध' को श्रद्धायुक्त सुननेसे दोष भाग जायँगे, मूढ़ जीव साधनाके योग्य होंगे, ज्ञान, वैराग्य और सामर्थ्यकी वृद्धि होगी एवं सब मोक्षसुखका अनुभव करेंगे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आदर्श सरकारी नौकर

(लेखक—श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी डिप्टी कलक्टर)

यह विशाल विश्व नाटकके एक रङ्गमञ्चके समान है और हम सभी नर-नारी इसमें अभिनेता हैं। कविका यह कथन अक्षरशः सत्य है। कर्तव्य हमारा यह है कि हम इस सत्यका अनुभव करें और सदैव इसका ध्यान रक्खें। यदि हमने इतना कर लिया तो हमारी अनेक आपदाएँ अपने-आप विलीन हो जायँगी। हमारे कर्मके अनुसार ही हमारी शारीरिक आकृति, जीवनकी स्थिति तथा वातावरण हमें मिला है। अस्तु, हमारा यह परमधर्म हो जाता है कि इस जगन्नाटकमें हम अपने अभिनय-को, अपने कर्तव्यको इस खूबीसे सँभालें कि संसारके इस कोलाहलपूर्ण वायु-मण्डल तथा बनते-मिटते मनोभावोंके बीच भी हम अपने अनन्त अमर-तत्त्व तथा जीवनके वास्तविक उद्देश्यको कभी भूल न बैठें। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि हमारे सुकर्मोंका फल भी सुन्दर ही होता है, हाँ, भले ही वह आज हो अथवा वर्षों बाद। कारलाइलने ठीक ही कहा है कि जब हम किसी व्यक्तिको स्पर्श करते हैं तो स्वर्गका ही स्पर्श करते हैं। यह समस्त चेतन-सृष्टि प्रभुका साकार स्वरूप है। उसकी सेवा करके हम प्रभुकी ही सेवा करते हैं। जीवनकी स्थितिद्वारा प्रभुने जनता-जनार्दनकी सेवाका जो अमूल्य अवसर हमें प्रदान किया है उसके लिये हमें उसका कृतज्ञ होना चाहिये। मेरे विचारसे, सरकारी नौकरी परमात्माकी सेवाके लिये एक परम विशाल क्षेत्र है। हमारे लिये सेवाका तथा दायित्वका क्षेत्र उन्हीं विविध अज्ञेय उपकरणोंद्वारा निश्चित होता है जो विश्वके मूलमें है, जिससे विश्वका सञ्चालन एवं शासन होता है। हममेंसे कुछ तो अपने शरीरकी ममतामें ही जकड़े हैं, कुछ परिवारकी चिन्तामें व्यस्त हैं, कुछ अपनी जातिकी सेवामें संलग्न हैं, कुछ अपने देशकी भलाईमें लगे हैं और कुछ समस्त मानवजातिके कल्याण-साधनमें तत्पर हैं। इतना ही पर्याप्त नहीं है कि हम अपने कर्तव्यका अच्छी तरह पालन करें अपितु हम अपने जीवनको आदर्श बना दें जिसमें दूसरे उसका अनुसरण करें। समूचे राष्ट्रके भाग्यको पलट देनेके लिये एक ही सच्चा सेवक पर्याप्त है।

'सरकारी नौकर'—शब्द ही ठीक नहीं है। किसी प्रकारकी भ्रान्ति न उठ खड़ी हो, इसी हेतु मैंने इसका प्रयोग किया है। वस्तुतः इसका पूरा-पूरा भाव 'जन-सेवक' (public servant) शब्दमें ही आता है और यही शब्द कानूनकी पुस्तकों और अन्य सरकारी कागजोंमें व्यवहृत हुआ है। 'जन-सेवा' के सच्चे अर्थमें सुखोपभोग तथा शक्ति-प्रदर्शन और उत्पीड़नके लिये कोई गुंजाइश ही नहीं है।

इसके लिये तो 'राजर्षि' शब्द बहुत उपयुक्त और सुन्दर प्रतीत होता है—अर्थात् एक राजा जो वस्तुतः सन्त है। ठीक इसी भावकी अभिव्यक्ति प्लेटोने भी की थी—जब उसने कहा था कि सच्चे आदर्श लोकतन्त्रवादमें तो दार्शनिक और सन्तका ही शासन होगा। नीचेकी कुछ पंक्तियोंमें मैं 'जन-सेवकों' के कुछ आवश्यक कर्तव्य और धर्मपर कुछ निवेदन करूँगा। पहले तो मैं जन-सेवकोंका दो विभाग कर लेना चाहता हूँ—पहली श्रेणीमें वे हैं जो ऊँचे पदपर हैं और अच्छा वेतन पा रहे हैं—जो 'अफसर' कहलाते हैं। दूसरे साधारण वेतन-के क्लर्क अथवा सहकारी नौकर हैं। यह विभाजन इसलिये आवश्यक है कि इन दो वर्गोंकी कार्य-शैली स्वभावतः भिन्न है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सरकारी नौकरी अर्थात् 'जन-सेवा' के कई विभाग (departments) हैं अतएव यह सम्भव नहीं कि अलग-अलग सबके आचरण और दायित्व-का विश्लेषण किया जा सके। अतः यहाँ मैं न्याय-विभागको पहले लूँगा और इसके सम्बन्धमें मेरे जो विचार होंगे, आवश्यकीय परिवर्तनके साथ दूसरे विभागमें भी लागू होंगे। न्याय-विभागमें वे अफसर आते हैं जिनका काम दीवानी, फौजदारी तथा राजकर-सम्बन्धी मामले-मुकदमेका देखना तथा फैसला करना होता है।

पहली बात जो ऐसे अफसरोंके लिये नितान्त आवश्यक है—वह है ईमानदारी। जो कमज़ोर दिलके होते हैं वे प्रलोभनोंमें फँस जाते हैं और घूस लेने लगते हैं। कुछ समयके लिये वे भले ही सुखी हो जायँ, परन्तु आगे चलकर उनका यह अन्यायद्वारा अर्जित द्रव्य अवश्य ही उनकी कल्पनातीत हानिका कारण बन जाता है। यह सच ही कहा है कि—

अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दशवर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे समूलं च विनश्यति॥

अर्थात् अन्यायसे कमाया हुआ धन दस वर्ष-तक तो ठहरता है परन्तु सोलहवाँ वर्ष आते ही उसका समूल नाश हो जाता है।

हम सभी ऐसे उदाहरणोंसे भलीभाँति परिचित हैं जहाँ घूसखोरोंका अन्तमें अचानक सत्यानाश हो गया। कभी-कभी तो उनके परिवारमें बहुत दिनतक घुला-घुलाकर मारनेवाली बीमारी घर कर लेती है, कभी रुपयेका स्वाहा करनेके लिये मुकदमे खड़े हो जाते हैं, कभी चोरी हो जाती है, कभी और कुछ। कभी-कभी तो ऐसी दुर्घटनाएँ होती हैं कि देखनेवाले भी भीत-चकित हो जाते हैं। ऐसा भी बहुधा देखनेमें आया है कि ऐसे व्यक्तिकी सन्तान दुराचारी, व्यभिचारी, आवारा, धनको पानीकी तरह बहानेवाली और ऐसे ही अन्य दुष्कर्म करनेवाली निकलती है। अभिप्राय यह कि पापार्जित द्रव्यका परिणाम बहुत ही घातक होता है; ऐसा धन कभी फूलते-फलते नहीं देखा गया।

अफसरोंको जनताकी सुविधाके लिये, जिनका इनसे सम्पर्क है, समयकी पावन्दीका भी पूरा-पूरा ध्यान होना चाहिये। उन्हें ठीक समयपर आना चाहिये। एक स्थूल उदाहरण लेकर देखें। एक ऐसे डिप्टी कलक्टरका उदाहरण लीजिये जो मुकदमोंकी तहकीकात और फैसलेके लिये दौरेपर गये हुए हैं। कम-से-कम, संयुक्तप्रान्तमें तो यह सर्वविदित सत्य है कि ऐसे अफसर अपनी कचहरी बहुत देर करके तीसरे पहर प्रारम्भ करते हैं। बहुधा ऐसे दौरे जाड़ेके दिनोंमें ही होते हैं और इन चलती-फिरती कचहरियोंमें आनेवाले व्यक्ति प्रायः दरिद्र देहाती किसान होते हैं जिनके शरीरपर नाममात्रके वस्त्र होते हैं। यदि अफसर अपना कार्य बहुत देरसे तीसरे पहर प्रारम्भ करता है तो स्वभावतः वह सूर्यास्त हो चुकनेपर अथवा उसके लगभग समाप्त करेगा। कचहरीसे लौटते समय लोग जाड़ेसे बेतरह सताये जायँगे और हो सकता है कि इन बेचारे गरीबोंमें कुछको भयानक प्राण-घातक रोग भी हो जाय। परन्तु यदि अफसरने दोपहरके एक घण्टा पूर्व ही कार्य प्रारम्भ किया, जिसमें कचहरीका कार्य वह ऐसे समयमें समाप्त कर सके कि वे बेचारे देहाती जो उसकी कचहरीमें आये थे—सूर्यास्तके पूर्व ही घर लौट सकें—तो मेरी समझमें वह जनताकी अवर्णनीय भलाई और सेवा कर रहा है और इसके द्वारा परमात्माकी भी। हेडक्वार्टरोंमें भी प्रायः नित्य ऐसी ही बातें होती हैं। अपनी जेबसे एक पैसा खर्च किये बिना ही ऐसे अफसर जनता-की अपार सेवा करनेका अवसर पाते हैं। लेखके कलेवरका खयाल रखकर मैं अधिक विस्तारमें जाना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नहीं चाहता। परन्तु जो सहृदय व्यक्ति हैं वे मेरा अभिप्राय समझ गये होंगे।

यदि हाकिम लोग प्रसन्नतापूर्वक थोड़ा-सा कष्ट उठा लें तो सहज ही बहुतोंका बहुत अधिक भला हो जाय। बहुधा ऐसा होता है कि दरिद्र और कङ्गाल किसानके पास वकील रखनेके लिये पैसे नहीं होते। प्रायः व्यर्थ और महत्त्व-शून्य समझकर ऐसे लोगोंके मामलेपर पूरा-पूरा ध्यान भी नहीं दिया जाता। यदि इन गरीबोंपर कुछ दया करके हाकिम लोग सहानुभूतिपूर्वक उनके मुकदमोंको देखें और फैसला करें तो मेरा ध्रुव विश्वास है कि इन निरीह मूक व्यक्तियोंके निश्छल हृदयसे जो आशीर्वाद निकलेगा उससे उन अफसरों तथा उनके परिवारका समय पड़नेपर इतना अधिक कल्याण होगा कि जितना उनके मित्र कहे जानेवाले व्यक्तियोंसे तथा सोनेकी थैलियोंसे कदापि नहीं हो सकता।

जजकी जिम्मेवारी बहुत अधिक है। फैसला देते समय उसके हृदय, उसके मनमें व्यक्तिगत आवेश अथवा उत्तेजनाका लेश भी नहीं होना चाहिये। प्रायः यह देखनेमें आता है कि बेचारे कचहरी आनेवाले गरीब देहाती कचहरीकी तहजीबसे परिचित नहीं होते, वे वहाँके नियम-कानून नहीं जानते, न वहाँकी व्यवहृत भाषा ही जानते हैं। तथा भय, आतङ्क या और कुछ कारणोंसे वे घबड़ा जाते हैं। ऐसे अवसरोंपर न्यायाधीशको अप्रसन्न करनेवाली बातें भी उपस्थित हो जाती हैं। ऐसे ही अवसर, सच पूछा जाय तो, उस हाकिमकी परीक्षाके भी हैं कि वह मुकदमेके तथ्यातथ्यका निर्णय करते समय अपने समस्त व्यक्तिगत भावोंको सर्वथा हटा दे। ऐसा करना कुछ कठिन नहीं है। ऐसा करनेके लिये प्रभुसे प्रार्थना करनी चाहिये, प्रार्थना तो अवश्य 'वह' सुनेगा ही। इतना स्मरण रहे कि 'तुम स्वयं ईश्वरके साथ व्यवहार कर रहे हो', फिर कभी भी भूल न होगी। हृदयके निर्मल रहते हुए भी यदि निर्णय ठीक नहीं हुआ तो यह हाकिमका दोष नहीं है। यदि नीयत खराब हुई तो पाप अवश्य लगेगा।

मीठे वचनकी तो आवश्यकता है ही, विशेषतः जब वह एक अप्रिय कार्य कर्त्तव्यके रूपमें करता है। कैदकी सजा उत्तेजनापूर्वक, आवेशमय भाषामें सुनायी जानेपर वह अभियुक्तके हृदयमें सहज ही प्रतिहिंसाकी भावना जाग्रत कर देती है। हारा हुआ व्यक्ति यदि यह जान जाय कि उसकी हारमें जजका कोई व्यक्तिगत रोष नहीं है तो वह उसके प्रति कोई भी विरोधी भाव न लायेगा, नहीं तो सारा दोष जजके सिरपर आ पड़ेगा। और भी बहुत-से ऐसे अवसर आते हैं जब लोगोंकी प्रार्थनाओंको अस्वीकार करना पड़ता है। यह भी नम्रता और कोमलताके साथ किया जायगा तो लोग उसे समझनेमें गलती नहीं करेंगे।

अवश्य ही अपने मातहत कर्मचारियोंके साथ अफसरको मर्यादा (discipline) की पूर्ण रक्षा करनी चाहिये। परन्तु उनके साथ उसका व्यवहार दयाका होना चाहिये। अपने मातहतोंको अपना शत्रु न मान बैठे प्रत्युत उन्हें अपना बालक समझकर व्यवहार करे। बुराईसे घृणा करो न कि बुरेसे, यह बात अनेकों सन्तोंने कही है। सजा देते समय बदला लेनेका भाव आना कदापि उचित नहीं है। कभी-कभी ऐसा होता है कि एक गरीब क्लर्कके बर्खास्त कर देनेपर उसका सारा परिवार सङ्कटमें पड़कर तबाह हो जाता है। उस एकके दण्डका भोग सारे परिवारके गरीब, दरिद्र प्राणियोंको भोगना पड़ता है।

जजमें नाममात्रका भी साम्प्रदायिक राग-द्वेष नहीं होना चाहिये। ऐसे विचारोंको मनमें लाना ही बहुत भारी पाप है। जिस प्रकार कोई भी दो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

व्यक्ति आकार-प्रकारमें एक-सा नहीं होते, ठीक वैसे ही सब प्रकारसे किन्हीं भी दो व्यक्तियोंका धार्मिक विश्वास और मत एक नहीं हो सकता। जिसकी जैसी व्यक्तिगत आध्यात्मिक और शारीरिक रचना होती है, ठीक उसके अनुरूप ही उसका धार्मिक विश्वास भी होता है। सभी मनुष्य समान हैं और ईश्वरकी प्रतिमूर्ति हैं। केवल रूप-रङ्गमें ही भिन्नता है, मूलतत्त्व एक है। साम्प्रदायिक पक्षपात किसी भी जातिका स्थायी कल्याण नहीं कर सकता। किसी भी राष्ट्रके जीवनपर उदारभावसे दृष्टि-पात करनेपर ही साम्प्रदायिक पक्षपातकी भूल समझमें आ जायगी।

सारांश यह कि हाकिमको अपने निजी स्वार्थोंमें पूरी सचाई और ईमानदारीसे काम लेना चाहिये। जनताके प्रति, जो उसकी मालिक और अन्नदाता है, सेवाका भाव होना चाहिये। अपने कर्त्तव्य-पालनके साथ-साथ उनकी जितनी भलाई वह कर सके उतनी करनी चाहिये। अपने व्यवहारमें उसे नम्र, मधुर, सहानुभूतिपूर्ण और संयमशील होना चाहिये। अपने निर्णयमें (Judgment) निष्पक्ष, समाहित और स्थितधी रहना चाहिये, अपनी मातहतीमें कार्य करनेवालोंके साथ उसका व्यवहार वैसा ही होना चाहिये जैसा उसका अपने परिवारवालोंके साथ होता है और उसे यह स्मरण रखना चाहिये कि उसके इस व्यवहारमें बदलेकी भावनाको कोई गुंजाइश ही नहीं है। किसी भाँति भी उसे साम्प्रदायिक प्रवाहमें बह न जाना चाहिये। उसे न कभी लड़ना चाहिये, न डरना चाहिये और न पक्षपात ही करना चाहिये। यदि वह इन सिद्धान्तोंके अनुकूल आचरण करेगा, तो इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि परमात्मा उसकी हर विपदासे रक्षा करेंगे, उसका बाल भी बाँका न होने पायेगा और अपनी थोड़ी आयपर भी, जिसे वह ईमानदारी और धर्मसे उपार्जन करता है, वह फूलेगा-फलेगा, उन्नति-पथपर अग्रसर होगा।

ऊपरकी ये बातें मध्य श्रेणीके अफसरोंके लिये भी समानरूपसे कही गयी हैं। इससे भी बढ़कर सौभाग्यकी बात उनके लिये यह है कि उन्हें जनताके द्वारा जनार्दनकी सेवा करनेका अधिक अवसर प्राप्त है, क्योंकि वे अपने नित्यके कार्यमें जनताके अधिक निकट स्पर्शमें रहते हैं। उन्हें जनताके साथ अपने व्यवहारमें विशेषरूपसे मधुर होनेकी आवश्यकता है। जिस मनुष्यका काम उन्हें करना है जितना शीघ्र सम्भव हो उसे पूरा कर देना चाहिये। इसे तो वे सहज ही कर लेंगे यदि वे सेवा-भावसे कार्य करें न कि किसी व्यक्तिगत अनुचित लाभ या स्वार्थके लिये। अनुचित ढङ्गसे रुपये कमानेकी कुत्सित मनोवृत्ति ही कार्यमें अनावश्यक विलम्ब करा देती है। उन्हें मानव-जातिकी सेवामें विशेष आनन्द लाभ करना चाहिये। खासकर निर्बल, वृद्ध, निराश्रित, निरीह, अपाहिज, स्त्री और बच्चोंकी सेवाद्वारा।

मेरे विचारमें, एक ईमानदार 'जन-सेवक' जो सच्चे सेवा-भावसे अपना कर्त्तव्य करता जाता है, एक साधारण सन्त-महात्मासे अधिक आदर-श्रद्धाका पात्र समझा जाता है। वह सच्चा कर्मयोगी है। किसी प्रकार भी बुराइयोंके साथ समझौता न करना, वैसा करनेके लिये प्रलोभनों और आकर्षणोंके आते रहनेपर भी उनके साथ वीरतापूर्वक संघर्ष करते जाना, किसी भाँति भी एक बड़े महात्माकी कठोर-से-कठोर तपस्यासे निम्न श्रेणीका नहीं है। जनताका एक भी ऐसा सच्चा सेवक अपने जीवनके प्रत्यक्ष उदाहरणद्वारा संसारका इतना अधिक कल्याण कर सकता है जितना कि दूसरा कर नहीं सकता। वह प्रभुकी कीर्त्तिपताका है। भगवान् आजके इस श्रान्त संसारमें सच्चे जन-सेवकोंको भेजकर लोक-कल्याण करें।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मनके रहस्य और उसका नियन्त्रण

(लेखक—स्वामीजी श्रीशिवानन्दजी)

[पूर्वप्रकाशितसे आगे]

५७—जो लोग यथालाभ सन्तुष्ट नहीं होते हैं उनमें मानसिक दुर्बलता होती है । सन्तोष परम धर्म है । सन्तोषात्परमं लाभम्—सन्तोषसे तुम्हें परम लाभ होगा । मोक्षके विस्तृत राज्यके चार सन्तरियोंमेंसे यह भी एक है । यदि तुम्हारे भीतर एक यही धर्म हो तो इससे तुम्हें सत्संग, विचार और शान्तिकी प्राप्ति होगी ।

५८—वाणी, मुखाकृति और नेत्रोंके द्वारा दोषरहित मनकी जाँच होती है । इन चेष्टाओंके द्वारा निर्दोष मन-वाले मनुष्यके विषयमें सम्मति दी जा सकती है ।

५९—सुखद और दुःखद अनुभवोंके द्वारा मनुष्य सामग्री इकट्ठी कर उनसे मानसिक और नैतिक गुणोंका निर्माण करता है ।

६०—मनकी चैतन्यताका नाम चित्त है । चित्त अधिकांशमें विगत अनुभवों तथा उन स्मृतियोंसे पूर्ण होता है जो विस्मृतिमें डाल दी गयी हैं, और जिनका पुनरुद्धार हो सकता है ।

६१—जैसे एक महाजन जब सालके प्रारम्भमें अपनी बही बदलता है तो गत वर्षका सारा हिसाब विस्तारपूर्वक अपनी नयी बहीमें नहीं लिखता, बल्कि केवल बाकी रोकड़ ही उतारता है, उसी प्रकार आत्मा नये मस्तिष्कमें गत जीवनके अनुभवोंका सारांश तथा अन्तिम परिणाम और निर्णय प्रदान करता है । यही स्टाक है जो नये जीवनके हाथोंमें दिया जाता है । नये मकानके यही मानसिक उपकरण हैं ।

६२—सङ्कल्प-विकल्पसे रहित होनेपर केवल मनके द्वारा ही ब्रह्मानुभव होता है । मनके सङ्कल्पों और विकल्पोंके पूर्ण उदय और अस्तके साथ ही इस जगत्का, जो केवल एक प्रकारकी चेतना है, उदय और अस्त होता है । सङ्कल्प ही इस जगत्को उसके चराचर जीवोंके साथ क्रियारूपमें उपस्थित करता है ।

६३—मन जो अपनी अभिलाषाओंके उत्थान-पतनके साथ उठता और गिरता है, अपने अज्ञानसे इस मायात्मक जगत्को सत्य कल्पना कर लेता है । परन्तु इसे जगत्के वास्तविक स्वरूपको बतलाना होगा, तब वह इसे स्वयं ब्रह्मरूप समझेगा ।

६४—मन ही मनुष्यके बन्धन और मोक्षका कारण है । मन ही मनुष्यको इस जगत्से बाँधता है, जहाँ मन नहीं है वहाँ बन्धन भी नहीं है । अविवेक और अज्ञानके द्वारा मन कल्पना करता है कि आत्मा इस शरीरमें कैद होकर रहता है, और इस प्रकार आत्माको वह समझता है कि बन्धनमें है । मन अपनेको जीवात्माके साथ अभिन्न समझता है और अपनेको 'अहम्' मानता है और इस प्रकार मानता है कि 'मैं बन्धनमें हूँ ।' अहङ्कारयुक्त मन बन्धनका मूल कारण है । अहङ्कारहीन मन मोक्षका कारण है । मन अपने अविवेक और अज्ञानके द्वारा अपनी मिथ्या स्थिति-को सत्य समझता है और अपने आपको सब कर्मोंका कर्ता समझता है, इस प्रकार अहङ्कारी बन जाता है । यह मान लेता है कि मैं बन्धनमें हूँ । यह जीवात्माके साथ तादात्म्य स्थापित कर स्वयं जीवात्मा बन जाता है, और अच्छे और बुरे कर्मोंके करने तथा उनके परिणामसे सुख-दुःखको भोगनेका उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लेता है ।

६५—मन जीवसे कर्म कराता है इसलिये वही कर्मोंका कर्त्ता है और कर्मोंका उत्तरदायित्व इसीके ऊपर अवलम्बित है ।

६६—मन और जीवात्मा सदा एक साथ रहते हैं । वे एक-दूसरेसे अलग नहीं किये जा सकते । मन जीवात्माको विषयोंमें घसीटता है । जीवात्मा मनमें आभास-चैतन्य है ।

६७—तुम केवल विषयको देख सकते हो, परन्तु साक्षी या कूटस्थ ब्रह्म मनको, उसके विकारोंको, जीवात्माको और जगत्के विभिन्न विषयोंको देखता है ।

६८—मनुष्य जैसा सोचता है वैसा ही बनता है । इस प्रकार वह स्वयं ही अपने आचारका निर्माता बनता है । दूसरोंके ऊपर अपने कर्मोंका प्रभाव डालकर वह अपनी भावी परिस्थितिका निर्माण करता है । यदि तुम सद्विचार रखते हो तो क्रमशः अपने सदाचारका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निर्माण करते हो, परन्तु यदि तुम दुर्विचार रखते हो तो उससे दुराचारका निर्माण करते हो! मनुष्य विचारोंके द्वारा निर्मित होता है, एक जन्ममें जैसा वह विचार करता है दूसरे जन्ममें वैसा ही वह बन जाता है।

६९–यदि मन एक प्रकारके विचारोंमें लगातार बना रहता है तो उससे एक संस्कार बनता है, जिसमें विचार-शक्ति स्वयमेव दौड़ा करती है, और इस प्रकारके विचारके अभ्यासमें मृत्यु हो जाय तो, क्योंकि विचारका अहङ्कारसे सम्बन्ध है इसलिये, वह विचारप्रवणता तथा शक्तिशालीनता-के रूपमें आनेवाले दूसरे जन्ममें चला जायगा।

७०–मन आत्माका नाश करनेवाला है। यह चोर है। आत्माको मारनेवाले मनको विचार, मनन और निदिध्यासनके द्वारा मार डालो।

७१–सृष्टि-कर्ता ब्रह्मके बिना मनकी अद्भुत शक्तिको आसानीसे और ठीक-ठीक कौन समझ सकता है?

७२–शरीर अपनी इन्द्रियोंके साथ मनके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मन शरीरका चिन्तन करते-करते स्वयं शरीर बन जाता है और तब इसमें बँधकर इससे कष्ट पाता है।

७३–मानसिक कर्म ही यथार्थ कर्म है, पर शारीरिक कर्म वैसा नहीं है।

७४–जब मन किसी वस्तुका अत्यन्त अभिलाषी हो जाता है तो शरीरके नाशका अवसर भी यदि आ जाय तो उसमें कष्टका अनुभव नहीं होता। जब मन पूर्णतः किसी विषयमें डूब जाता है तो शारीरिक चेष्टाओंसे कौन दूसरा देख या सुन सकता है।

७५–सारे शरीरका आश्रय मन ही होता है। क्या जलके बिना कोई वन टिक सकता है? मन ही सारा कारोबार चलाता है और यह शरीरोंमें सर्वश्रेष्ठ है। यहाँतक कि यदि यह भौतिक शरीर नष्ट हो जाय तो मन अपनी चाहके अनुसार शीघ्र ही दूसरा शरीर धारण कर लेगा। यदि मन अवसन्न हो जाय तो शरीर हमारी चेतनाको प्रकाशित न करेगा।

७६–सूक्ष्म विषयोंका निरन्तर अध्ययन करनेसे दूसरे जीवनमें सूक्ष्म चिन्तनके लिये समुन्नत शक्ति प्राप्त होगी तथा निःसार और क्षणिक चिन्तन, एक विषयसे दूसरे विषयपर सदा उड़ते रहना, इनसे दूसरे जन्ममें एक चञ्चल और अव्यवस्थित मनकी प्राप्ति होगी।

७७–दूसरेके स्वत्वके हड़पनेकी इच्छा यदि वर्तमान जीवनमें धूर्ततावश पूरी न हुई तो इससे मनुष्य दूसरे जन्ममें चोर बन जाता है, तथा राग और द्वेष यदि छिपेरूपसे हृदयमें स्थान जमाते हैं तो इससे हत्याकी चेष्टाका बीज वपन होता है। इसी प्रकार निष्काम प्रेमसे विश्वप्रेमके पुजारी और सन्त पुरुषकी उत्पत्ति होती है। प्रत्येक करुणाजनक विचार ऐसे कोमल और दयापूर्ण आचारके निर्माता होते हैं जो बहुधा सर्व जीवोंके हिताकांक्षी पुरुषोंमें पाये जाते हैं।

७८–इस मनका फैलना ही सङ्कल्प कहलाता है और सङ्कल्प अपने भेद-भावनाकी शक्तिके द्वारा इस जगत्की सृष्टि करता है। सब सङ्कल्पोंसे निर्लेप होकर निर्विकल्प बन जाओ तब तुम्हें पूर्ण आनन्द और शान्ति मिलेगी।

७९–प्रत्येक कर्मका कुछ सञ्चित होता है, जो उसका कारण होता है। प्रत्येक कर्मका कुछ आगामी होता है जो उससे उत्पन्न होता है। प्रत्येक कर्मके लिये एक इच्छाकी आवश्यकता होती है जिससे वह प्रवर्तित होता है, और एक विचारकी आवश्यकता होती है जो उसके रूपका निर्माण करता है। प्रत्येक कर्ममें कार्य-कारणकी एक अनन्त शृङ्खला होती है, प्रत्येक कारण कार्यका रूप धारण करते हैं और प्रत्येक कार्य कारणके उत्पादक होते हैं। इस अनन्त शृङ्खलाकी प्रत्येक कड़ी तीन भागोंसे संयुक्त होती है—इच्छा, विचार और क्रिया। इच्छा विचारको उत्तेजन करती है और विचार स्वयं ही क्रियाका रूप धारण करता है।

(क्रमशः)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पतित-पावन !

(लेखक—पं० श्रीगौरीशंकरजी द्विवेदी 'साहित्यरत्न')

'पतित' शब्द संस्कृत-भाषाका है, इसका अर्थ है गिरा हुआ। इसलिये जो गिरे हुएको पवित्र करता है उसीका नाम पतित-पावन है। पतितोद्धारक शब्दका भी यही अभिप्राय है, क्योंकि बिना पवित्र बने किसीका उद्धार नहीं हो सकता, और पतित-पावनके बिना कोई पवित्र नहीं हो सकता। यहाँ यह शङ्का की जा सकती है कि पतित-पावन तो केवल पतितोंके पवित्र करनेवाले ही हैं, अतः उपर्युक्त 'कोई' शब्दका व्यवहार उपयुक्त नहीं मालूम होता। आगे इस शङ्काका समाधान स्वयं ही हो जायगा।

अब सबसे पहले यह विचारना है कि पतित कौन है, गिरा हुआ किसको कहेंगे ? मनुष्यसमाजकी गति-विधिपर दृष्टिपात करनेसे यह बात सहज ही ध्यानमें आ जाती है कि प्रत्येक मनुष्यके जीवनका लक्ष्य सुख और प्रतिष्ठा है। उसकी प्राप्तिके लिये उसने विभिन्न आदर्शोंका निर्माण किया है और उन आदर्शोंके लिये जगत्में विविध मार्ग प्रचलित हैं तथा नित-नये मार्गोंका अन्वेषण होता जा रहा है। इन आदर्शोंमें सदाचार, देश-भक्ति, धर्माचरण तथा भगवत्प्राप्ति-की प्रधानता पायी जाती है।

सदाचारको ही सर्वश्रेष्ठ ध्येय माननेवाला पुरुष समझता है कि जगत्में जो दुःख-क्लेश, राग-द्वेष तथा नाना प्रकारकी विपत्तियाँ मनुष्य झेलता है उसका एकमात्र कारण सदाचारकी अवहेलना ही है। जगत्को सुखमय स्वर्गके रूपमें लानेके लिये सदाचारकी ही एकमात्र आवश्यकता है। सदाचारशील पुरुष मनुष्य नहीं है, देवता है; और सदाचारसम्पन्न भूलोक देवलोकसे भी श्रेष्ठ है। ऐसा समझकर वह सदाचारको अपना जीवन-व्रत बना लेता है और उसके पालनमें जी-जानसे लग जाता है। परन्तु 'मनुष्याः स्खलनशीलाः'—भूल करना मनुष्यका स्वभाव है, इस नीतिके अनुसार जब वह दुर्भाग्यवश किसी दुर्गुणका शिकार बन अपने मार्गसे च्युत हो जाता है—गिर जाता है तो वह पतित-कोटिके मनुष्योंमें परिगणित होता है। फिर तो उसको चारों ओरसे नाना प्रकारके प्रलोभन आ घेरते हैं और वह लाचार हो जाता है—यही सदाचार-पथ-पथिक-की पतनावस्था है।

देशको उन्नत करना, देशकी प्रतिष्ठाकी रक्षा करना, देशको सुखी बनाना आदि विचारोंसे प्रभावित हो देश-भक्त पुरुष देश-सेवाको अपने जीवनका चरम लक्ष्य बनाता है। परोपकार उसका एकमात्र व्रत बनता है और परोपकारमें, दीन-दुखी देश-वासियोंकी विपत्तिको दूर करनेमें वह अपने शारीरिक सुखको तिलाञ्जलि दे देता है; धनहीन, गृहहीन होकर नाना प्रकारकी विपत्तियोंको झेलता है। परन्तु स्खलनशील स्वभावके कारण जब पद-प्रतिष्ठा या ख्यातिकी कामना उसे आकर्षित करती है तो वह अपने व्रतसे गिर जाता है और पक्षपात, दुराग्रह आदिके फन्देमें फँस पथ-भ्रष्ट हो उठता है—यही देश-भक्तका पतन है।

इध तप्पति पेच्च तप्पति पापकारी उभयत्थ तप्पति।
पापं मे कतन्ति तप्पति भियो तप्पति दुग्गतिं गतो॥

'पाप करनेवाले इहलोक, परलोक—उभय लोकमें दुःख पाते हैं, जब-जब वे स्मरण करते हैं कि मैंने पाप किया है तब-तब उनको दुःख होता है और फिर नरकमें जानेपर तो उनको बहुत ही अधिक दुःख होता है।'

(भगवान् बुद्ध)

पाप और अधर्म एकार्थक शब्द हैं। जो धर्मका पालन करते हैं, धर्मको ही जीवनका सार, संसारका आधार तथा पुरुषार्थका आगार समझते हैं वे धर्माचारी कहलाते हैं। देश, काल और पात्रके अनुसार धर्मके विभिन्न रूप जगत्में प्रचलित हैं। और धर्मके अनुयायी पुरुषोंका यह दृढ़ मत है कि यदि सब पुरुष धर्माचरण करें तो संसारमें सुख-शान्तिका प्रसार होगा और मरनेके बाद स्वर्ग-सुख प्राप्त होगा। बहुतेरे पुरुष इस उद्देश्यको सामने रख धर्म-पथमें पैर रखते हैं, परन्तु धर्माचरण कष्टसाध्य होनेके कारण बहुतेरे अपने पथसे च्युत होकर अधर्म करने लगते हैं, ऐसे ही लोगोंकी दशाका चित्रण ऊपर भगवान् बुद्धकी वाणीमें किया गया है। धर्मको ही लक्ष्य बनानेवाले जब धर्माचरणसे दूर होते हैं, पतित हो जाते हैं—गिर जाते हैं।

संसार दुःखमय, पापमय है, माया है, अनित्य है; एक भगवान् ही आनन्दमय, सत्यस्वरूप और नित्य हैं; इसलिये संसारकी मृग-मरीचिकामें सुखके लिये दौड़ना भ्रम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है, अज्ञान है। आनन्दमय भगवान्‌को ही पाकर मानव-जीवन धन्य हो सकता है, पुरुष कृतार्थ हो सकता है; इसलिये संसारमें अनासक्त होकर प्रभुको प्राप्त करनेके लिये उसकी निष्काम भक्ति करनी चाहिये। इस प्रकारका जीवनोद्देश्य रखकर भक्तजन अपने जीवनको भगवद्भक्तिके व्रतका व्रती बनाते हैं। जगत्‌को छोड़कर वह जगन्नायकसे प्रेम लगानेकी निरन्तर चेष्टा करते हैं। परन्तु संसार एक बड़ी ही विलक्षण वस्तु है; इसे मनुष्य जितना ही छोड़नेकी चेष्टा करता है, उतना ही यह अधिक प्रबल रूपसे उसको पकड़नेके लिये अपने लुभावने मायाजालको फेंकता है, अभागे भक्त अपने भक्ति-साधनका अनादर कर उस मायाजालमें फँस जाते हैं। यह साधनभ्रष्ट होना ही भक्तकी पतनावस्था है—गिर जाना है।

इसी प्रकार योगी योगभ्रष्ट होनेसे, तपस्वी तपश्च्युतिसे—सारांश यह है कि जिस मनुष्यने अपने जीवनका जो सुन्दर आदर्श बना लिया है, उससे हटनेसे ही वह पतित—गिरा हुआ समझा जायगा। परन्तु क्या पतन होनेपर, गिर जानेपर मनुष्यको हताश होना चाहिये? क्या पतित मनुष्य फिर अपने आदर्शकी ओर उठ नहीं सकता? ऊपर विभिन्न दृष्टिकोणसे पतनावस्थाका जो चित्र खींचा गया है, उसको देखनेसे तो आपाततः यही जान पड़ता है कि मार्गच्युत, पथभ्रष्ट पतित पुरुषके जीवनको धिक्कार है, उसको पतित होनेकी—निन्दित होनेकी अपेक्षा मर जाना ही कहीं अधिक अच्छा है। भगवान्‌ने भी गीतामें कहा है—

सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते॥

भाव यह है कि प्रतिष्ठित पुरुषके लिये निन्दित होना मृत्युसे भी बढ़कर है। परन्तु इसके साथ एक प्रश्न यह उठता है कि उपर्युक्त उदाहरणोंमें जिस पतित-भावका दिग्दर्शन कराया गया है उसका मूल कारण क्या है? तथा उसका निवारण किया जा सकता है या नहीं? विचार करनेपर जान पड़ता है कि अपने अन्तःकरणके दोषों—मलोंके बढ़नेके कारण मनुष्य सत्पथसे—परमपथसे पतित होता है। अतः यदि कोई इन दोषोंका—मलोंका प्रक्षालन करनेवाला हो अथवा कोई पावन जलका सरोवर मिल जाय तो मनुष्य स्वयं उसमें डुबकी लगाकर अपने दोषको—मैलको दूर कर सकता है और पुनः अपने ध्येयकी ओर अग्रसर हो सकता है। इन दोनोंमेंसे पहले उपायको सद्‌गुरु कहते हैं और दूसरेको परम प्रभु—दोनों ही पतितपावन हैं! दोनों ही अभिन्न हैं!!

अतएव पथभ्रष्ट मनुष्यके लिये, अपने आदर्शसे गिरे हुए पुरुषके लिये निराश होनेकी, अनुत्साहित होनेकी आवश्यकता नहीं है; वह सद्‌गुरुके चरणोंके आश्रयसे अपने दोषोंका निवारण कर, अथवा करुणा-वरुणालयके स्मरण-द्वारा निष्पाप होकर अपने ध्येयको प्राप्त कर सकता है, जीवनको सफल और कृतकृत्य बना सकता है—आवश्यकता है केवल पतितपावनसे नाता जोड़नेकी, फिर तो बेड़ा पार है।

यह तो हुई स्थूल दृष्टिकी बात। सूक्ष्म दृष्टिसे विचार किया जाय तो संसारके सभी प्राणी जन्मसे ही पतित हैं—गिरे हुए हैं। महर्षि गौतम जन्म लेनेका—प्रवृत्तिका कारण बतलाते हुए कहते हैं—'प्रवर्तनालक्षणा दोषाः।'

भाव यह है कि दोषोंके—मलोंके कारण ही मनुष्यकी जीवनमें प्रवृत्ति होती है। सच है, यदि दोषयुक्त संस्कार न होते तो जीवको जन्म लेनेकी आवश्यकता ही क्यों पड़ती? ऐसी दशामें प्रत्येक मनुष्यके दो मौलिक कर्म हो जाते हैं—एक तो पूर्व-जन्मके दोषोंका परिमार्जन करना और दूसरे इहजन्मके आगन्तुक दोषोंसे अपनेको बचाना। भला, इस डबल व्याधिसे बिना पतित-पावनका पल्ला पकड़े बेचारे जीवका कल्याण कैसे हो सकता है। इसलिये सभी मनुष्योंका पहला कर्तव्य हो जाता है पतित-पावनसे नाता जोड़ना। इसीलिये भक्त-शिरोमणि गोसाईंजी कहते हैं—

मैं हरि पतित-पावन सुने।
मैं पतित तुम पतितपावन, दोउ बानक बने॥

हे प्रभु! मैंने सुना है कि तुम पतित-पावन हो। तब तो क्या ही अच्छी जोड़ी लग गयी! मैं पतित और तुम पतित-पावन—मुझको तुम्हारे-जैसे पतित-पावनकी जरूरत है, और तुम्हें तो पतितोंको पावन करना ही है; पतितोंको पवित्र करना, गिरे हुओंको उठाना, यह तो करुणामय! तुम्हारा काम ही है। हे पतित-पावन! तुम तो अन्तर्यामी भी हो, मुझे भीतर-बाहरसे अच्छी तरह देखते हो; मैं कितना बड़ा पतित हूँ। प्रभु! मुझे तो मालूम ही नहीं होता कि मैं कितना बड़ा पतित हूँ। परन्तु अब मैं तुम्हारे सामने आ गया; मुझे पावन करो, मुझ गिरे हुएको उठाओ, पथभ्रष्टको पथपर आरूढ़ करो, धर्मच्युतको धर्म-मार्गमें लगाओ, कलुषित जीवनसे त्राण करो, 'शरणागतोऽस्मि'।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भंगभोगी भगवान्‌की भ्रान्ति

(लेखक—पं० श्रीद्वारकाप्रसादजी शुक्ल 'शङ्कर')

त्युञ्जय विष-पान तो कर गये किन्तु वह गले अटका ! इसके अतिरिक्त मनोहर कम्बु-कण्ठ काला हो गया। यही नहीं, अब विषधर भुजङ्गोंसे कभी पीछा नहीं छूटता। वे कभी हटते ही नहीं। कारण कि भंगभोगी बाबा सब-का-सब ही 'जुहोमि स्वाहा' कर गये। इधर-उधर छलककर गिरे हुए कुछ ही अंश-को वासुकिके भाई-बन्धु चख पाये। उनको वह अति ही रुचिकर और प्रिय लगा। अतएव अपने आदिवंश-प्रवर्तककी पसुलियाँ पिस जानेसे जो पदार्थ पहले-पहल प्राप्त हुआ, उसपर वे अपना पूर्ण प्रभुत्व जानकर उसको छीननेके लिये प्रस्तुत हो गये और निरन्तर उन-पर आक्रमण कर जिह्वा-कृपाणोंकी लपालप करते रहते हैं। मालूम होता है कि भयावने सर्पोंके भयहीसे आप निर्मीलितनयन रहते हैं। इस विषपानसे केवल 'ससर्पे च गृहे' क्या, शरीरे वास ही नहीं हुआ किन्तु इसकी गर्मीके शमन करनेको घोर उपचार करने पड़े। घड़े-दो-घड़े नहीं, किन्तु अनेक 'सहस्र घट' की धारा-से गर्मी शान्त होते न देखकर एक अति शीतल और वेगवती नदीकी धारा शिरपर सहनी पड़ी। न मालूम कौन-सी मिठाई विषमें धरी थी जिसके लिये उसे आप भङ्गकी तरङ्गमें सड़प कर गये, और उमाको व्यङ्ग परिहासका अवसर दे अपनी हँसी करायी।

उमा कहने लगीं—

जाके पिये भई कालिमा कंठमें कौन सी यामें भई चतुराई।
घेरे रहैं विषधारी सदा जेहि ते उनकी निधि लीन दुराई॥
केते किये उपचार न ता लगि चंद औ गंग धरयो पछुराई।
पूछैं उमा हँसि संकरतें विष-पानमें कौन मिली मधुराई॥

और देखिये, जिन-जिन विभूतियों और शक्तियों-के कारण कोई उनकी आस करते हैं, उन सबको एक-एक करके यार लोगोंने उनको बेखबर पाकर झटक लिया। पासमें कुछ भी न रह गया, यहाँतक कि केवल शरीरमात्र ही उनके पास रहा सो वह भी पार्वतीजीका 'क्रीतस्तपोभिः' हो गया। हद है भूल और भ्रान्तिकी। भाई, ऐसेसे कोई क्या आशा करे? त्रिलोकेश्वर होकर भङ्गकी तरङ्गमें सब गँवाकर क्रीतदास बन रहे हैं। देखिये न—

ज्ञान अगार समर्पि गनेसहिं, कीन्ह कुबेरहिं माल खजाने।
सेन लियो अगुवाय कुमारने पाप प्रनासन जह्नु सुताने॥
नाचि रिझाय जिआवत पेट लखै जग आपको अन्नदा थाने।
का लखि आस करै कोऊ संकर आपहू सैलजा हाथ बिकाने॥

इसपर एक बला और भी पाले हुए हैं। न मालूम कहाँकी एक परम उद्दण्ड दया उनके मन-मन्दिरमें रहती है। किसीकी कोई परवा नहीं करती। जो मन भाया वही करती है, उसको तो 'षटहू ऋतुमाँहि हरेरोई सूझै' की तरह बारहों मास फाग खेलनेकी बान पड़ी है। उसीमें मस्त रहती है। क्या यह भङ्गभोगी-जी नहीं जानते ! जानते क्यों न होंगे। क्योंकि वे तो सर्वज्ञ हैं। परन्तु आजकलकी नवीन सभ्यतासे कदाचित् वे भी प्रभावित हो गये हैं। इसीसे उसके इन स्वतन्त्रतासूचक कार्योंकी रोक-थाम और उनमें हस्तक्षेप करना सभ्य-समाजकी बंक भृकुटीके भयसे न करके स्वयं आँखें बन्द करके भङ्गभवानीकी तरङ्गों-में तैरा करते हैं। क्योंकि यह जानते तो अवश्य ही हैं कि यह भ्रान्ति जरूर है, किन्तु इसके निवारण-में असमर्थ होनेसे मन समझा लेते होंगे कि 'यह भूल सही पै भई सो भई।'

देखिये इसकी उद्दण्डताकी ओर, कैसे उनको सजग

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

किया गया है परन्तु कौन सुनता है। उन्होंने तो मालूम होता है कि 'मूँदहु आँखि कतहुँ कोउ नाहीं' की पॉलिसीका विवश होकर अनुसरण किया है—

शंकरजी कैसी ये उदंड बसे आप हिय
दया, जो न नेकहू सकोच उर धारती।
सामुहे परै जो ताको झपटि लगावै गरे,
तुरत उमंग रंग माँहि रँगि डारती॥
करती बहाली मुख लाली लाय ऐसी, जाके
धोइबेमें चिंताकी जमाति थकि हारती।
खेलती रहै है नित यही फाग, नर नारि
अनघी अघी औ ऊँच नीच न विचारती॥

अब विचारणीय यह रह जाता है कि क्या ये 'मूँदहु आँखि कतहुँ कोउ नाहीं' के अवलम्बनसे आँख बन्द किये रहते हैं कि इसका और कोई दूसरा कारण है। जरा विचारिये तो—

देखि त्रयलोचनको बैठे नेत्र बंद किये,
विविध प्रकार भाव उदय उर होते हैं।
श्रांत अंग भंग विष वेग गंगधार धोते
भीषन भुजंग भय भीतरमें गोते हैं॥
सो रहे हैं बैठे या कि जगते आँख बंद किये,
आनँद अमंद चंद सुधासे सँजोते हैं।
सदा मग्न रहते संसार हित साधनमें,
अलख जगाते हैं न जागते, न सोते हैं॥

परन्तु यह आँख बन्द करना चाहे संसार-हित-साधनमें 'अलख जगाने' के लिये ही क्यों न हो, इसका फल तो इनकी नगरीके प्रबन्धमें प्रबन्धकोंकी धींगा-धींगीकी 'चश्मपोशी' हीका प्रभाव रखता है। कोई अपनी-आप बीती इस प्रकार कहता है। या यों कहिये कि उनको सजग करता है, देखिये, कैसा गदर मचा है—

शंकरजी सुनो यही होता अनुमान मुझे,
नगरीमें आपकी न कोई कभी जायेंगे।
दिनहीमें गली गली पड़ते हैं डाँके यहाँ,
जन्मकी कमाई कौन आकर गँवायेंगे॥
गंगासे बचीको झट भैरव झपेट लेत,
उनसे बचीको ढुंढिराज अपनायेंगे।
पढ़ इस झमेलेमें मनमें ठनी है यह,
काशी कहै कौन हम जगमें न आयेंगे॥

प्रार्थना

बुद्धिबल हीन हौं अनाथ आधीन अम्ब,
बालक अज्ञान जानि दया दृष्टि धारिये॥
प्रेम-कृपा-सिन्धु प्रणतपाल है स्वभाव तेरो,
दीनन दुखहरण शरण संकट निवारिये॥
अधम उधारण प्रण धरो पतितपावन तुम,
अशरण अवलम्ब अम्ब विरद ना बिसारिये॥
करहू ना अवार शरणवत्सलता प्यारि धारि,
अपनो जन जानि जननि गोद ले सँभारिये॥

—लक्ष्मीनारायण शर्मा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीराधाकृष्णाय नमः

कीर्तन

ॐ जय श्रीराधा, जय श्रीकृष्ण, श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

१-चंद्रमुखी चंचल चितचोरी। (राधा)
सुघर साँवरा सूरत भोरी॥ (कृष्ण)
श्यामा श्याम एक-सी जोरी। (राधा कृष्ण)
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

ॐ जय श्रीराधा, जय श्रीकृष्ण, श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

२-पचरँग चूनर केसर क्यारी। (राधा)
पट पीतांवर कामर कारी॥ (कृष्ण)
एक रूप अनुपम छवि प्यारी। (राधा कृष्ण)
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

ॐ जय श्रीराधा, जय श्रीकृष्ण, श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

३-चंद्र-चंद्रिका चमचम चमके। (राधा)
मोर मुकुट सिर दमदम दमके॥ (कृष्ण)
युगल प्रेम-रस झमझम झमके। (राधा कृष्ण)
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

ॐ जय श्रीराधा, जय श्रीकृष्ण, श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

४-कस्तूरी कुंकुमयुत बिंदा। (राधा)
चंदन चारु तिलक व्रज-चंदा॥ (कृष्ण)
सुहृद लाड़ली लाल सुनंदा। (राधा कृष्ण)
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

ॐ जय श्रीराधा, जय श्रीकृष्ण, श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

५-घूम घुमारो घाँघर सोहे। (राधा)
कटि कछनी कमलापति सोहे॥ (कृष्ण)
कमलासन सुर-मुनि-मन मोहे। (राधा कृष्ण)
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

ॐ जय श्रीराधा, जय श्रीकृष्ण, श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

६-रत्नजड़ित आभूषण सुंदर। (राधा)
कौस्तुभमणि कमलांकित नटवर॥ (कृष्ण)
रणत्कणत् मुरली-ध्वनि मनहर। (राधा कृष्ण)
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

ॐ जय श्रीराधा, जय श्रीकृष्ण, श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

७-मंद हँसन मतवारे नैना। (राधा)
मनमोहन मन हारे सैना॥ (कृष्ण)
मृदु मुसकावनि मीठे वैना। (राधा कृष्ण)
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

ॐ जय श्रीराधा, जय श्रीकृष्ण, श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

८-श्रीराधा भव-बाधा हारी। (राधा)
संकटमोचन कृष्ण मुरारी॥ (कृष्ण)
एक शक्ति, एकहि आधारी। (राधा कृष्ण)
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

ॐ जय श्रीराधा, जय श्रीकृष्ण, श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

९-जगज्ज्योति, जगजननी माता। (राधा)
जगजीवन, जग-पितु, जग-दाता॥ (कृष्ण)
जगदाधार, जगद्विख्याता। (राधा कृष्ण)
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

ॐ जय श्रीराधा, जय श्रीकृष्ण, श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

१०-राधा राधा कृष्ण कन्हैया। (राधा)
भव-भय-सागर पार लगैया॥ (कृष्ण)
मंगल-मूरति, मोक्ष करैया। (राधा कृष्ण)
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

ॐ जय श्रीराधा, जय श्रीकृष्ण, श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

११-सर्वेश्वरी, सर्व दुख दाहन। (राधा)
त्रिभुवनपति, तिरताप-नसावन॥ (कृष्ण)
परम देवि, परमेश्वर पावन। (राधा कृष्ण)
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

ॐ जय श्रीराधा, जय श्रीकृष्ण, श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

१२-त्रिसमय युगल चरण चित धावे।
सो नर जगत परमपद पावे॥
राधा कृष्ण 'छैल' मन भावे।
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

ॐ जै श्रीराधा, जै श्रीकृष्ण, श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीयमकरामायण

(लेखक—श्रीअमृतलालजी माथुर)

[पूर्वप्रकाशितसे आगे]

सुन्दरकाण्ड

रहनि जा हरिके मनु मानही
धन सु बीर महा हनुमान ही।
अस बलीमुख और न दीसते
पलकमें गत पार नदीस ते ॥७३॥

छवि पतिव्रतकी मनुजानकी
बन असोक लखी मनु जानकी।
दृगनिसों बहती रहि बारि ही
गनति पी-गुन बारहि बारि ही ॥७४॥

चरन-पंकज चारु चितारती
बिरह-तापनि कीन चिता-रती।
दृग-झरी बरसावन-सी लगी
रितु-बिना झर सावन-सी लगी ॥७५॥

'नहिं निहारत हा ! रत हो कितै ?
मग निहारत हारत नैन हैं'।
हरि महातम ता सुभ गाइयो
दुख महा तम तासु भगाइयो ॥७६॥

मुद-करी मुदरी कर है दई
सिय लखी सुखिया करहै दई।
नगर जारेउ अच्छ सँहारि के
लखि रहे सब रच्छस हारिके ॥७७॥

उन कियो हरि-दास-कलंक को
जतन भो सु बिनासक लंकको।
चहुँ दिसानि हुतो जल तीर ही
तदपि सोन-पुरी जलती रही ॥७८॥

इक बिभीखनको घर छारकै
कनकको सुदयो पुर छार कै।
मति लई प्रभुपै जब जान की
बहु असीस दई तब जानकी ॥७९॥

उर कियो कपि चिंतन आपको
सुगम भो अति लंघन आपको।
प्रभु भजे भवते मुकती कहै
जलधि-लंघन बात कतीक है ? ॥८०॥

जलधिमें निज गात बुझायके
सकल संगिन बात बुझायके।
प्रभु-पदंबुज माथ सु नाइयो
बिरहिनी सिय-गाथ सुनाइयो ॥८१॥

हरि चले दल लै बनरानके
महि चले दल ज्यौं बिरुआनके।
प्रभु टिके जब सागर-तीर ही
डगमगाति तबै धरती रही ॥८२॥

(इति सुन्दरकाण्डम्)

लङ्काकाण्ड

'महिप जो पर-नार निहारही
लहत सो निसचै रन-हार हीं'।
जदपि बंधु-सिखावन नेक ही
'मुख दुरावन' रावनने कही ॥८३॥

सरन आन बभीखन जो गही
नहिं कह्यो सब राखन-जोग ही।
भरत-से रत सेवक साथ हैं
अभय-दायक नायक नाथ हैं ॥८४॥

नम तरे जिन नाम पयोधिपै—
न गत रे जिय ! तोहि तिन्हैं बिना।
नम रहै जगदीस-पदानमें
न मरहै जग दीन-दसा लिये ॥८५॥

चरन चूमि रहे सुर जासुके
तुम सु पूजि महेसु रजा लई।
हिम-सुता-पति ताप तिलोकके
हरत हैं रत हैं हरि-नेहमें ॥८६॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समरमें मर मेघ-रवादि गे
जग-डरावन रावन वादि गे।
सिव विरंचिहुके सरनागते
नहिं बचैं प्रभुके सर-नाग ते ॥८७॥

प्रबल भो महि पै महिपै महा
नतकपाल किये दिकपाल जो।
अघनि भावि परी विपरीत है
हत दसा न दसानन-सी भई ॥८८॥

जिहि विभीखन भीखनसों गह्यौ
बल लरावन रावनहू लह्यौ।
प्रभु विना भुवि, नाकहुँ देत को?
सरनको, रनको फल हारिखो ॥८९॥

अनलसों लखि लालित जानकी
परम प्रेम-मई सत जान की।
लसति सो सुखसों तुम-अंकमें
मनु सुधा-रस-रासि मयंकमें ॥९०॥

जिहि प्रभा, रति भारति-भावती
छबि-छकी गिरिजा गिरि जावती।
सुरति जास रमा सरमावती
वह सिया अवधेस रमावती ॥९१॥

प्रभु, सिया सह लक्खन, राज हीं
अभय लीन बिभीखन राज हीं।
भरत-भाव हिये बिच लायके
चलत पुष्पक यान चलायके ॥९२॥

भरत राह निहारत रावरी
भरत राजिव-नैन तरावरी।
जब सुनी हरि-आवन-बात है
मगन भे मुख आव न बात है ॥९३॥

(इति लङ्काकाण्डम्)

उत्तरकाण्ड

सुमनकी झर देव लगावहीं
मुद भये सब मंगल गावहीं।
सकल लोक सजे वर बेस हैं
पुर भयो जब तो परवेस है ॥९४॥

नव छवी सरसा दरसानि है
हरसकी बरसा बरसानि है।
नृप सिंहासन सूरज-भा बनी
नुति भनैं भव, नाभि-ज भावनी ॥९५॥

कमल-कोमल स्यामल गात हैं
हर हिये नित ध्यान लगात हैं।
कहि न आवत नैननि हाल है
निरखि होवत नैन निहाल है ॥९६॥

अति मनोहर आनन ओप है
सम कहे कछु आन न ओपहै।
नलिन से कर, नीरज पाय है
सिल तरी जिनकी रज पाय है ॥९७॥

मुकुट सीस, हिये बन माल है
जननिके हरि जीवन, माल हैं।
धनुस बान धरे स-निसंग हैं
लसि रहीं महि-नंदिनि संग हैं ॥९८॥

चरन चापि रहे हनुमंत हैं
सुरनकेर समूह नमंत हैं।
अनुज सेवत हैं अति भावसों
जन हिये प्रभुकी प्रति-भा वसो ॥९९॥

मुद-मये सुख-वास वसे सबै
विभव-नायक वासव-से सबै।
सुख-मई सब विस्व वसाहिवी
जयति सो जगमें तव साहिवी ॥१००॥

कुमति ना कलुसौ न कलेस है
बिपतिको नहिं थानक लेस है।
कलह आप कृपा करिके हरी
मिलि रमें बनमें करि केहरी ॥१०१॥

सुरगके सुख मानव भू लहै
समयसो न धरा तव भूल है।
सुर-सरी जबलों नग मेर है
तव कथा तबलों जगमें रहै ॥१०२॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तुम भजे जग, जीवन-भा रहै
तुम बिना जग जीवन भार है।
किनहु तो जग पाय न पार है
भजत सो जग पायन पारहै॥१०३॥

जगतमें बढ़ि तो रति-भावते
कतहुँ ना कछु है अति भावते!
जिन लियो तुमसों मन सान है
मुकतिपैं तिनकी मनसा न है॥१०४॥

तुम भजे सब सोगनि हारते
जन किते सब लोग निहारते।
तुम रखैं मन लेसहु दीन है
तिन लखे अमरेसहु दीन है॥१०५॥

नहिं भजे तुमकों भव आयके
विफल वे दिन गे सब आयके।
तव सनेह-सुधा सरियाँ वहैं
सफल जानत हौं घरियाँ वहैं॥१०६॥

मधुर गायकके सुर, तान है
विफल जो तुममें सुरता न है।
अतिहि चारु अनूप सु-रूप है
तुम भजे बिनु तो पसु-रूप है॥१०७॥

मगन ही तुममें हित जानके
मग नहीं तिनके चित जानके।
जब लगै मनवा तव ओर है
लखि परै न कछू तव और है॥१०८॥

न तपते, जपते, जग, जोग ते
व्रतनते तनते किनहूँ लह्यौ।
दरस को रसको पर-लाभ जो
करत हैं रत हैं तव रंग जे॥१०९॥

सुव पुरान परै नर कानमें
कबहुँ सो न परै नरकानमें
भजत जो कहँ जातन नासहै
जगतकी वह जातन ना सहै॥११०॥

सुरत हेरत हैं तव रूप ही
अनतकैं न तकैं चित रंचहूँ।
सुध न है तनकै तनकै जिहीं
सु धन है धन है नर-लोकमें॥१११॥

कबहु कै बहुकै करुना मया
जगत-जीवन! जीवनके हितू!
दरसकी रसकी बरसात लै
विरह-वेदिन वे दिन फेरिहौ?॥११२॥

मम महा अघ, हा! अघ-हा हरे!
तुम नहीं मनहीं धरि राखियो।
निज दया जदया खलपै करो
विरदते रद ते करि डारियो॥११३॥

सकल ओर न और निगाहसों
निज गती जगती-तलपै लखूँ।
पकरके करके अपनो विभो!
हित-निबाहन! बाँह न छाँड़िये॥११४॥

जुगल पायन पाय नयो करूँ
हर समै रसमै विनयो करूँ
दुरित-हार-निहारन होय है
रस-मयो समयो कब सोय है?॥११५॥

उर खरो सु भरोस भरो सदा—
कर मया तन-यातन टारिहो।
इहि कुमानस-मानस-हंस ह्वै
विहरि हौ हरिहौ भव-वेदना॥११६॥

अमृतकों मृतकों जग जो तजै
अघ विसार, विसारवि सार ना।
बिनु अधारन-धारन हे विभो!
निबलके बल केवल आप हो॥११७॥

मारवार मधि गाम 'कुचेरो'
नाम ही 'अमिय' राम-कु-चेरो।
'राम-गीत' रघुनंद निभायो
देखि भक्त-कवि-वृंदनि भायो॥११८॥

नेह-संजुत पढ़ै जद याको
पात्र होत रघुराज-दयाको।
ताहि तीन नहिं ताप तपावै
लोकमें सुजस, संपत पावै॥११९॥

शिव-विरंचि-निवेदित-वन्दनम्
निखिल-कल्मष-संघ-निकन्दनम्।
सकल-सज्जन-चेतसि-चन्दनम्
भजत भो रसिका रघुनन्दनम्॥१२०॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हिन्दुओंके त्यौहार और पन्द्रह तिथियाँ

(लेखक—पं० श्रीछज्जूरामजी शास्त्री, कविरत्न, विद्यासागर)

हिन्दुओंका प्रत्येक त्यौहार हमारी देशोन्नति और धर्मोन्नतिपर गहरा प्रकाश डालता है। किसी प्राचीन व्यक्ति या घटनाके स्मारकमें जो उत्सव किया जाता है वही त्यौहार कहलाता है। प्रत्येक मासमें दो पक्ष होते हैं—कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष। दोनोंमें पन्द्रह-पन्द्रह तिथियाँ होती हैं। उन पन्द्रह तिथियोंमें एक भी ऐसी तिथि नहीं है, जिसमें कोई-न-कोई त्यौहार न हो। क्रमसे देखिये—

१ प्रतिपदा—इस तिथिमें ब्रह्माजीने समस्त संसारको उत्पन्न किया था। जैसा कि ब्रह्मपुराणमें लिखा है—

चैत्रे मासि जगद्ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि।

अर्थात् 'चैत्र-शुक्ल-पक्षके प्रथम दिन (प्रतिपदा) को ब्रह्माजीने जगत्को रचा;' यह 'संवत्सरप्रतिपदा' कहलाती है, इसे बड़ा त्यौहार माना है—

संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वा रात्र्युपास्महे।
सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण संसृजः॥
(अथर्ववेद ३।२।१०)

कार्तिक-शुक्ला प्रतिपदाको अन्नकूटका महोत्सव किया जाता है। यह त्यौहार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके समयसे चला है। श्रीमद्भागवतमें और सनत्कुमारसंहितामें लिखा है कि—

कार्तिकस्य सिते पक्षे अन्नकूटं समाचरेत्।
गोवर्द्धनोत्सवं चैव श्रीकृष्णः प्रीयतामिति॥

२ यमद्वितीया (भाई-दूज)—कार्तिक-शुक्ला द्वितीयाको प्रातः स्नान करके भगवती यमुनाका पूजन करे और अपराह्नमें यमराजका पूजन करे। आजके दिन सूर्यपुत्री भगवती यमुनाने अपने भाई यमराजको निमन्त्रण देकर अपने घरपर भोजन कराया था। इसी तरह हमको भी उस दिन अपनी बहिनके घर जाकर वस्त्र और अलङ्कारसे उसका सत्कार करना चाहिये। ऐसा करनेसे भगवान् यम अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और यमयातना नहीं भोगनी पड़ती। इसका माहात्म्य सनत्कुमारसंहितामें खूब लिखा है।

३ तृतीया—यह त्यौहार वैशाख-शुक्ला अक्षयतृतीया नामसे प्रसिद्ध है। इस तृतीयाको जो दान-पुण्य किया जाता है वह अक्षय होता है। इसी दिन भगवान् 'परशुरामकी जयन्ती' मनायी जाती है।

४ गणेशचतुर्थी—भाद्रपद-शुक्ला चतुर्थीको मनाया जाता है। भगवान् श्रीगणेशजीका वर्णन सब पुराणोंमें और वेदोंकी मूलसंहिताओंमें आया है। सीताजीकी खोजके लिये हनूमान्जीने इसी व्रतको किया था, इस व्रतके करनेसे सब मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं।

५ वसन्तपञ्चमी—

माघे मासे सिते पक्षे पञ्चम्यां पूजयेद्धरिम्।

इस दिन सब मन्दिरोंमें भगवान्को गुलालसे पूजते हैं और वसन्ती वस्त्र धारण करवाते हैं। भाद्र-शुक्ला पञ्चमी 'ऋषि-पञ्चमी' भी बड़ा त्यौहार माना जाता है। इसकी कथा भविष्योत्तरपुराणमें है।

६ चम्पाषष्ठी—मार्गशीर्ष-शुक्ला षष्ठी चम्पाषष्ठी कहलाती है। इसी षष्ठीका व्रत करके युधिष्ठिरने गये हुए राज्यको पुनः प्राप्त किया था। दक्षिण-देशमें इसका बहुत प्रचार है।

७ सूर्यसप्तमी—माघ-शुक्ला सप्तमी सूर्यग्रहणके तुल्य

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मानी गयी है। इस व्रतके करनेसे महारोगी भी रोग-मुक्त हो जाता है। इसका प्रचार महाराष्ट्र-देशमें अधिक है।

यच्चजन्मकृतं पापं मया सप्तसु जन्मसु।
तन्मे रोगञ्च शोकं च माकरी हन्तु सप्तमी॥

शीतला-सप्तमी और पुत्रदा-सप्तमी प्रसिद्ध हैं।

८ चैत्र तथा आश्विन-शुक्ला दुर्गाष्टमी—यह भगवती देवीका प्रसिद्ध त्यौहार है। भाद्र-कृष्णाष्टमीके दिन पूर्णावतार भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हुए थे। यह त्यौहार जन्माष्टमीके नामसे समस्त भारतमें आबाल-वृद्ध प्रसिद्ध है। दुष्टोंका दलन और सज्जनोंका रक्षण प्रत्येक अवतारका सामान्य लक्षण है। सब अवतारोंमें श्रीकृष्णावतार पूर्ण है—यह बात गीता और भागवतसे स्पष्ट हो जाती है। भगवान् श्रीकृष्णका चरित्र बड़ा ही अद्भुत और विस्मयजनक है। जितने कार्य आपने किये, सभी आपकी अलौकिकताके ज्वलन्त दृष्टान्त हैं। साधारण पुरुष आपके रहस्योंके समझनेमें असमर्थ हैं। जो श्रद्धापूर्वक श्रीकृष्ण-भक्ति करते हैं, उनको आपके चरित्रोंमें कोई सन्देह नहीं होता।

९ रामनवमी—चैत्र-शुक्ला नवमीको भगवान् श्रीरामचन्द्रजी प्रकट हुए हैं। इस दिन अयोध्या और रामेश्वर आदि स्थानोंमें बड़ा भारी मेला लगता है। भगवान् श्रीरामका अवतार विशेषकर लोकमर्यादा बाँधनेके लिये था। अतएव आप मर्यादापुरुषोत्तम कहलाते हैं। जितना महत्त्व श्रीराम-चरित्रोंका है उतना ही सती सीता, सत्यवक्ता दशरथ, भ्रातृभक्त भरतजी और लक्ष्मणजीके चरित्रोंका है। स्त्रियोंका परमधर्म पतिसेवा है। इसका पालन श्रीसीताजीने पूर्णरूपसे किया है। वन-गमनादि घटनाएँ प्रसिद्ध हैं। उसपर उच्च कुलकी महिलाओंको ध्यान देना चाहिये।

प्राननाथ करुनायतन, सुंदर सुखद सुजान।
तुम बिन रघुकुल कुमुद बिधु, सुरपुर नरक समान॥

महाराज दशरथका जन्म जिस कुलमें हुआ था उसका असाधारण धर्म यही था कि—

रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहिं बरु बचन न जाई॥

महाराज दशरथने यह पूरा कर दिखाया। किसी पुरुषको भाई कह देना तो अति सरल है परन्तु भाईपनेका निर्वाह करना बहुत कठिन है। पूर्ण विपत्ति पड़नेपर जो साथ न छोड़े, वही सच्चा भाई होता है। इसके ज्वलन्त दृष्टान्त लक्ष्मण हैं। बड़े भाईका भी भाईके साथ कितना प्रेम होना चाहिये—यह उदाहरण लक्ष्मणको शक्ति लगनेपर राम-विलापमें देखिये।

देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः।
तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः॥

भरतजीके अनिर्वचनीय भ्रातृप्रेमको श्रीरामचन्द्रजी ही जानते थे। यहाँतक कि लक्ष्मण भी नहीं।

भरतेन समो भ्राता न भूतो न भविष्यति।

यह श्रीरामचन्द्रजीका वचन है। सर्व स्वार्थोंमें राज्य-लक्ष्मी प्रबल स्वार्थ है। परन्तु चक्रवर्तीराज्यको गेंद बनाकर भरतजीने कैसे ठुकरा दिया, यह आप देखें। आज एक दमड़ीके निमित्त भी भाई भाईको मारनेके लिये तैयार है। इसी कारण भारतका अधःपतन हो गया है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सर्वशक्तिमान् होते हुए भी लोकमर्यादासे बाहर न हुए। आपका राज्य धर्मराज्य कहलाता था। अबतक भी जो राजा धर्मानुकूल राज्य करता है उसका शासन 'रामराज्य' कहा जाता है। भगवान् श्रीरामके राज्यमें प्रजा सब प्रकारसे धर्ममयी, सुखमयी और धनधान्यसम्पन्न थी। माता-पितादि गुरुजनोंका रामराज्यमें यथोचित सम्मान होता था। अकालमृत्युसे कोई भी स्त्री-पुरुष राम-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

राज्यमें नहीं मरता था। बापके जीते पुत्रकी मृत्यु नहीं होती थी। न कोई चोरी करता था, न कोई जारी।

१० ज्येष्ठ-शुक्ला दशमी—गंगादशहरा प्रसिद्ध त्यौहार है—

दशमीशुक्लपक्षे तु ज्येष्ठमासे बुधेऽहनि।
अवतीर्णा यतः स्वर्गात् हस्तर्क्षे च सरिद्वरा॥
हरते दश पापानि तस्माद्दशहरा स्मृता॥

इस दिन गङ्गास्नानका सर्वोत्तम माहात्म्य है। आश्विन-शुक्ला दशमीको भी दशहरा होता है। इस दिन भगवान् श्रीरामने दशाननको मारकर विजय प्राप्त की थी, अतएव क्षत्रियोंका यह सर्वोच्च त्यौहार है।

११ आषाढ़-शुक्ला एकादशी—इस दिन भगवान् विष्णु क्षीरसागरमें शयन करते हैं और कार्तिक-शुक्ला-को फिर उठते हैं। इसी दिन तुलसी-विवाह किया जाता है। महाभारतमें इसका वर्णन आया है।

१२ वामनद्वादशी—भाद्रपद-मासकी शुक्ला द्वादशी-को भगवान् वामनने अवतार ग्रहण किया था। वामनावतारका वर्णन पुराणोंमें और वेदकी मूल-संहिताओंमें मिलता है।

१३ धनतेरस—यह प्रसिद्ध त्यौहार है। इस दिन आयुर्वेदावतार भगवान् धन्वन्तरिका जन्म हुआ था।

१४ शिवचतुर्दशी—यह फाल्गुन-कृष्णा चतुर्दशी महाशिवरात्रि-नामसे प्रसिद्ध है। इस दिन रात्रिमें भगवान् शङ्करका चार बार पूजन होता है। यह व्रत वैदिक है। क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु, महेश—ये तीनों देवता वैदिक हैं। शिवस्तुतिके मन्त्र चारों वेदोंकी संहिताओं-में और सब ब्राह्मणोंमें मिलते हैं। शिवपुराण, लिङ्ग-पुराण और स्कन्दपुराण तथा ईशानसंहितामें इस व्रतका विस्तारसे वर्णन किया गया है। यजुर्वेदकी रुद्राष्टाध्यायीके आठों ही अध्यायोंमें भगवान् शङ्करका वर्णन है। भगवान् विष्णुने शिवपूजन करके सुदर्शन-चक्र प्राप्त किया, सत्ययुगमें हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको शिवपूजनकी अनुमति दी थी। त्रेतायुगमें रावण और बाणासुरने शिवलिङ्ग-पूजा की और रामने सेतुबन्ध-रामेश्वर शिवलिङ्गकी स्थापना की। द्वापरमें व्यासजीने शिवपुराणकी रचना की। अब भी जहाँ देखो वहीं प्राचीन शिव-मन्दिर मिलते हैं। वैशाख-शुक्ला नृसिंह-चतुर्दशी और भाद्रपद-शुक्ला अनन्तचतुर्दशी भी त्यौहार माने जाते हैं।

१५ अमावस्या और पूर्णिमा—ये दोनों सदैव महापर्व हैं तथापि कार्तिक-अमावस्याको दीपावली होती है, जो वैश्योंका सबसे बड़ा त्यौहार है। श्रीरामचन्द्रजी रावणको मारकर सीता और लक्ष्मणादिके सहित अयोध्यामें आकर इसी दिन राजगद्दीपर बैठे थे। रात्रिमें खूब धूम-धामसे श्रीलक्ष्मीजीका पूजन होता है और विष्णुसहस्रनामका और गोपालसहस्रनामका पाठ किया जाता है। पूर्णिमाको श्रावणी (उपाकर्म) ब्राह्मणोंका सबसे बड़ा त्यौहार है। फाल्गुनमें होली प्रसिद्ध त्यौहार है। इस दिन सर्वप्रथम भक्त प्रह्लादने सत्यधर्मका विजय प्राप्त किया था। यह त्यौहार विशेष-कर शूद्रोंका माना गया है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भगवान्‌की अद्भुत कृपा

[सत्य घटना]

(लेखक—एक सज्जन)

उस दिन कासगंजके श्रीगंगाजीके मन्दिरमें कुछ मनुष्य बैठे हुए थे; मैं भी उस समय वहाँ था। सन्ध्याके साढ़े चार-पाँचका समय था। भक्ति, योग और ज्योतिष विषय-पर चर्चा चल रही थी। कोई भक्तिको बड़ा बतला रहा था, तो कोई योगको और कोई ज्योतिषकी महिमाका ही बखान कर रहा था। बखान करनेवाले और बड़ा बतलानेवाले अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार तर्क तथा दृष्टान्त दे-देकर अपनी बातकी पुष्टि करना चाहते थे। अपने-अपने अनुभवकी सुनी और देखी घटनाओंका वर्णन भी कर रहे थे।

एटा-जिलाके परगना मोहनपुरके समीपस्थ नैनसुखनगलाके एक पण्डित ज्वालाप्रसाद भी वहाँ उस समय उपस्थित थे, जो गङ्गा-मन्दिरमें रहनेवाले स्वामीजीके पास प्रायः आया-जाया करते हैं। उन्होंने अपने अनुभवकी और नातिप्राचीन दो घटनाओंका वर्णन किया। जिसमें एक ज्योतिषसे सम्बन्ध रखती थी और दूसरी भक्तिसे। भक्तिकी घटनाका जो वर्णन उन्होंने किया उससे भक्तके लिये भगवान्‌की अपूर्व दयाका पूर्ण परिचय प्राप्त होता है। 'कल्याण'के पाठकोंकी जानकारीके लिये उनकी वर्णन की हुई उसी घटनाका उल्लेख यहाँ किया जाता है। घटना कोई तीस वर्ष पुरानी है। उन्होंने कहा कि—

जिला एटाके बामबारा ग्राममें उनके एक सम्बन्धी पण्डित रामसहायजी निवास करते थे। उनके बिहारी नामके एक पुत्र थे। पण्डित रामसहायजीकी एक बहिन—बिहारीकी बुआ भी उनके यहाँ रहती थीं। पण्डित रामसहायजी एक निष्ठावान् भगवद्भक्त ब्राह्मण थे। और बिहारी? उनकी तो बात ही दूसरी थी। वे इतने भगवत्प्रेमी और भक्त थे कि लोग उनकी दशा देखकर कभी-कभी उन्हें पागल कह उठते थे। उनके काम भी बहुधा अटपटे और बालकों-जैसे हुआ करते थे। बिहारीको बहुधा ही भगवान्‌के बालरूपके दर्शन हुआ करते थे। एक दिन रातको बिहारी खेतपर ही रहे। नाजकी राशि लगी हुई थी और उसकी रक्षाका भार उस दिन उनके पिताने उन्हींको सौंप दिया था। बिहारी तो उधर खेतपर थे और इधर गृहपर उनकी चारपाईपर उनके स्थानमें उस दिन उनकी बुआ लेटी हुई थीं। रात्रि अधिक व्यतीत न हो पायी थी कि इतनेमें ही बालकरूप भगवान्‌ने मानों अनजान-से बनकर बिहारीकी चारपाईके पास आकर पुकारा—'बिहारी!' पुकार सुनकर बिहारीके स्थानपर चारपाईपर लेटी हुई बुआने कहा—'कौन है?'—और तनिक उचककर देखा तो एक अति स्वरूपवान् सुन्दर बालकको खड़े देखा। जो तुरन्त ही उनकी आवाज़ सुनकर—'अरे! बिहारी नहीं है?'—कहकर उनके देखते-देखते वहाँसे चला गया और फिर खेतपर जाकर बिहारीसे भेंट की।

सवेरे बिहारी जब खेतसे घर आये, तो उन्होंने आते ही बुआसे कहा—'बुआ! रातको तो मेरे भगवान्‌के दर्शन तुम्हें भी हो गये। वे मेरे लिये घरपर आये थे और मेरी खाटपर मेरे स्थानमें तुम्हें पाकर लौट गये और जाकर फिर मुझसे खेतपर मिले।'

इतनी बात सुनाकर फिर पण्डित ज्वालाप्रसादने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वर्णन किया कि किस प्रकार भगवान्‌ने एक बार अपने इस भक्तकी प्राण-रक्षा की। उन्होंने कहा कि—

'बिहारीके पिता पण्डित रामसहायजीके पास एक सफेद गाय थी, जिसे उन्होंने सवत्स कुछ दिन पूर्व एक ब्राह्मणको दान कर दिया था। पण्डित रामसहायजीने अपने घरके समीप ही एक कुँआ खुदवाया था, जो अभी अधबना था, उसके गोलेकी चुनायी हो रही थी। बिहारी एक दिन उस गोलेपर बैठे हुए थे कि यकायक गोला ढह गया और बिहारी कुँएमें जा गिरे; सारा गोला और आसपासकी रेत-मिट्टी उनके ऊपर गिर पड़ी। यह देखकर सभीको विश्वास हो गया कि बिहारी अब जीवित नहीं हैं। परन्तु भगवान् जिसके सहायक हैं और जिसे बालरूपमें आकर दर्शन देते और जिसके साथ खेला करते हैं, भला वह कैसे मर सकता है? लोगोंने विचार किया कि बिहारी मर तो गये ही होंगे, तथापि उन्हें निकालकर विधिविहित उनकी क्रिया और संस्कार करना चाहिये। बस, मिट्टी हटानी आरम्भ हुई और तीसरे दिन मिट्टी और ईंटे हटाते-हटाते खुदाई इतनी गहरी पहुँची कि लोगोंको मिट्टीसे बाहर ऊपरको उठे हुए बिहारीके हाथकी अँगुलियाँ हिलती हुई दीख पड़ीं। लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। हिलती हुई अँगुलियोंको देखकर लोगोंने फावड़ा धीरे-धीरे और सावधानीसे चलाया कि कहीं बिहारीको चोट न आ जावे। थोड़ी देरमें जब बिहारी तीसरे दिन कुँएसे जीवित निकले, तो उन्होंने लोगोंसे कहा कि—'वे कुँएके भीतर उन सबके वार्तालापका स्वर बड़ी स्पष्ट ध्वनिसे सुन रहे थे और लौटकर उत्तर दे रहे थे, सम्भव है जिसे उन्होंने न सुना हो!' फिर उन्होंने पिताजीसे कहा—'जानते हैं पिताजी! कुँएके भीतर उनकी प्राणरक्षा कैसे हुई?' पण्डित रामसहायजी तथा अन्य सभी जिज्ञासा-दृष्टिसे उनकी ओर देखने लगे। तब बिहारीने कहा कि 'उस दिन जो श्वेत गाय उन्होंने पुण्य की थी, उसीके द्वारा उनकी रक्षा हुई थी। वे कुँएके भीतर थे और उनके चारों ओर पैर किये खड़ी थी वह गाय और जिसके थन उनके मुँहमें थे। उसके दूधको पीकर ही वे तीन दिनतक कुँएके भीतर रहे और उनको लेशमात्र भी चोट नहीं आयी।'

सच है भगवान् अपने भक्तकी रक्षा अवश्य करते हैं। प्राण-संकट आ पड़नेपर भी वे किसी-न-किसी मिस भक्तको बचाते ही हैं। गजकी प्राणरक्षा करनेवाले भगवान्‌ने अपने प्यारे भक्त बिहारीकी भी इस प्रकारसे प्राण-रक्षा की तो आश्चर्य क्या? सच्चे हृदयसे भक्ति करना सीखो तो भगवान् तुम्हारे हैं।

मायाके प्रति जीव

(लेखक—श्रीदेवीप्रसादजी गुप्त 'कुसुमाकर' बी० ए०, एल-एल० बी०)

मुझे क्यों तूने भरमाया!
जीवन सद्‌उपयोग हेतु मैं, लेकर था आया।
मुझको तू मिल गई यहाँ क्यों?
रची परिस्थिति नई यहाँ क्यों?
मोह जाल क्यों अपना तूने, मुझपर फैलाया?
मैं था बिलकुल भोलाभाला,
तूने फन्देमें जब डाला,
समझ न सका मुझे क्यों तूने, मोहा-अपनाया।
प्रभुसे पाया था जीवनको,
तूने लूट लिया उस धनको,
मुझे लूटने सुन्दर बन कर, क्यों आई माया॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अनन्तकी ओर

(लेखक—ब्रह्मचारी पं० श्रीअक्षयवटजी त्रिपाठी, शास्त्री)

यदि प्लेटो-जैसे महान् पाश्चात्य दार्शनिककी चिरकालीन अनुभूतियाँ इस विशाल विश्वको—जिसमें मेरे-जैसे अगणित प्राणधारियोंका न जाने कबसे बसेरा है और कह नहीं सकता, कबतक रहेगा—अँधेरी रजनीके समान देखते रहनेमें लगी रहती हैं तो मेरे विस्तृत विश्व-परिवारमें ऐसे गम्भीर विचारकोंकी (अथवा विचारक कहनेकी अपेक्षा 'द्रष्टा' के नामसे उनको आहूत करना मुझे उचित जँचता है)—भी एक श्रेणी है, जो इसे किसी ऐसे प्रकाश-पुञ्जकी, जिसे मैं अबतक नहीं समझ सका हूँ—'मेरे लिये यह परिचित है या अपरिचित'—दिव्यज्योतिसे अहर्निश, प्रतिपल जगमगाते हुए देखा करते हैं, जिसकी तुलना संसारकी छलनामें पटीयसी सौन्दर्यमयी-की कृत्रिमतासे कभी हो नहीं सकती। अस्तु। विधाताकी सृष्टिके सर्वश्रेष्ठ प्राणी मनुष्यके भी हृदयके अन्तस्तलमें अहर्निश निवास करनेवाली दुर्बलताएँ यदि इस समय मुझे भ्रममें नहीं झोंक रही हैं तो मैं यह कहनेका साहस करते हुए भी, अपने पूर्वोक्त परिवारके सदस्योंके ऊपर कोई भारी बोझ नहीं लाद रहा हूँ कि, कोई भी मनुष्य जिसे अपनी विद्या तथा बुद्धिके द्वारा इस विश्वमें सफलता मिली हो, युक्तिपन्थी (Rationalist) हो सकता है और सांसारिक प्रमाणोंके द्वारा ही, हाँ, किसी भी दार्शनिक विवेचनाओंका आश्रयीभूत हुए बिना भी, यह सिद्ध कर सकता है कि यह विश्व-परिधि अँधेरी रजनीमें सोनेके लिये बनायी गयी काली कोठरी है, या वह रङ्गभूमि है जिसपर पात्रगण आ-आकर अपनेअभिनय करनेके पश्चात् पर्देकी आड़में छिप जाते हैं और दर्शकगण पात्रोंके अभिनयचातुर्यके कारण बार-बार हँसते और अनेक बार रोते हैं परन्तु यवनिका-पतनके पश्चात् आपसमें वार्तालाप करते हुए, हँसते-हँसते, अभिनेताओंकी अनेक दृष्टियोंसे विवेचनाएँ करते हुए अपने गृहकी ओर पदार्पण करते हैं। परन्तु मैं तो यही समझता हूँ कि विश्वको अँधेरी कोठरी सिद्ध करने अथवा नक्षत्रके समान जगमगाते हुए कहते रहनेसे ही न किसीके हृदयमें इससे विराग उत्पन्न करनेवाली असीम वेदनाएँ ही उत्पन्न हो सकती हैं, न प्रकाशयुत कहकर किसी तार्किकशिरोमणिके मुखमण्डलपर उस मन्द हास्यकी मधुर रेखा ही अविच्छिन्न रीतिसे अहर्निश निवास कर सकती है जो विकारशून्य तपस्वियोंके ओजःपुञ्ज मुखड़ेपर ही वास करती हुई देखी तथा सुनी जाती है, जिसकी सत्ताको सांसारिक परिवर्तन कभी मिटा नहीं सकते, जिसकी पवित्रतामय ज्योति पूर्णिमाकी चन्द्रप्रभाके समान सांसारिकोंको सदैव दृष्टि-पथ-गामिनी होकर प्रमुदित करती रहती है! अतः यदि आप चाहते हैं कि मैं भी लोक-कल्याणको अपने निजी कार्य समझनेवाली उदात्तात्माओं-की पंक्तियोंमें बैठकर यह समझ सकूँ कि वस्तुतः इस विश्वके मूलमें क्या है—वेदना या विनोद, रोना या हँसना, दुःख या सुख, तो इसके लिये केवल एक ही उपाय अधिक उपयुक्त हो सकता है जिसे अधिकांश सज्जन 'साधना' के नामसे आहूत करते हैं। आपको भवसागरके गर्भमें निवास करने-वाली बड़वाग्निकी विषम ज्वालाएँ कभी झुलसा नहीं सकतीं, संसारमें क्या है और क्या नहीं है—इस प्रश्नके उत्तरको प्राप्त करनेके लिये माथापच्चियाँ न करनी पड़ेंगी, और मानवीय दुर्बलताएँ आपको षड्विकारोंके गड्ढोंमें कभी झोंक नहीं सकतीं! इतना ही क्यों, आप नरसे नारायण हो सकते हैं और इसी शरीरसे। हाँ, इसके लिये आपकी सेवामें यह निवेदन कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि आप तार्किक होनेकी अपेक्षा 'साधक' होनेका प्रयत्न करें। इतनी बातोंका उल्लेख करनेके पश्चात् अब यह कह देना उचित प्रतीत होता है कि एक 'साधक' का पथ जिसे आप साधना-पथ कह सकते हैं, उस 'अनन्तकी ओर' है. जिसे पाकर प्राणी अनन्त हो जाता है और उसमें यह कहनेकी शक्ति नहीं रह जाती कि मैं क्या हूँ और क्या नहीं हूँ। हाँ, दुःख कितना है और सुख उससे कितना अधिक या न्यून है—वह यह भी नहीं बतला सकता, क्योंकि मैं नहीं जानता कि उसके लोचन किस अनजान क्षितिजकी ओर टकटकी लगाये रहा करते हैं।

जबतक प्राणी विषयाग्निको प्रज्वलित करती रहनेवाली भौतिक भोग-विलासकी सामग्रियोंको सञ्चित करते रहनेमें अपना जीवन-सर्वस्व लगाये रहता है, तबतक वह क्षणिक आवेशमें आकर संसारकी असारता एवं उसकी असीम वेदनाओंकी ओर दृष्टिपात करके जीभर रो सकता है तथा इसके सूर्य-चन्द्रके प्रकाशसे प्रतिदिन और प्रत्येक रात्रिके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अधिकांश भागके विभिन्न प्रकारसे प्रकाशित होते रहनेकी बातोंको सोच-सोचकर बिराट्की विचित्र लीलाओंके ऊपर बार-बार मुग्ध हो सकता है और एक नहीं, अनेकों बार खिलखिलाकर हँस भी सकता है; परन्तु न तो इन सब क्रिया-कलापोंसे किसी प्राणीके हृदयमें विरागका ही अङ्कुर लहलहा सकता है और न विश्वजनीन अनुराग ही उसके अन्तस्तलमें क्रीडा कर सकता है। यदि आप चाहते हैं कि मेरा भी पदार्पण अनन्तकी ओर हो तो आपके लिये यह उचित है कि आप विश्वदेवके दरबारको इसका प्रमाण दें कि मैं संसारकी वह्नि-तप्त चिनगारियोंसे भलीभाँति तपाया गया सुवर्ण हूँ। आप सर्वज्ञ प्रभुके ऊपर विश्वास करें और विश्वास करनेका अभ्यास करें उस अपने प्रभुके करोड़ों बन्दोंके ऊपर जिनकी रग-रगमें वह समाया हुआ है। हाँ, आप उसी प्रियङ्कर प्रभुके लिये विषय-वासनाओंको बढ़ानेवाले क्षणिक सुखोंका परित्याग करें। संसार आपका है, आप उसके हैं। उसकी बिभीषिकोत्पादिनी वेदनाएँ आपकी हैं और आपकी केवल वेदनाएँ ही नहीं अपितु सर्वस्व उस विश्वदेव हरिका है जिसकी उपासनाएँ कोई 'नमोस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये···' कहकर किया करते हैं और कोई 'अल्लाहो अकबर' की रट लगाकर किया करते हैं। आप उसके लिये पूर्वकी ओर प्रस्थान करें या मग़रबी कूचहको आबाद करें, बात एक ही है। अनन्त अनन्त है, उसमें न कहीं मायाकी छलनाका प्रवेश है, न अपूर्णताका नामोनिशान। फिर दुःखदायिनी वेदनाएँ कहाँ रहती हैं? 'अनन्तकी ओर' और भवनिशाकी निराशाएँ—इन दोनोंका सामञ्जस्य कभी हो नहीं सकता। हाँ, यूनानके महान् तत्त्ववेत्ता प्लेटोका विश्व—जिसकी पुष्टि अनन्त पथके पथिक तुलसीकी इन निम्नाङ्कित पंक्तियोंसे भी होतीहै—

अबलौं नसानी, अब न नसैहौं।
राम-कृपा भव-निसा सिरानी, जागे फिरि न डसैहौं॥
पायउँ नाम चारु चिंतामनि, उर कर तें न खसैहौं।
स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहि कसैहौं॥
परबस जानि हँस्यो इन इंद्रिन निज-बस ह्वै न हँसैहौं।
मन मधुकर पन कै 'तुलसी' रघुपति पद-कमल बसैहौं॥

(विनय-पत्रिका)

—तभीतक है जबतक आप विषय-वस्तु-सञ्चयमें निमग्न हैं और तुलसीकी इस सूक्ति 'हरि अनंत, हरि कथा अनंता' का जीवनमें अनेकों बार पाठ करते हैं किन्तु उन अनन्त प्रभुकी 'उपासना' भी साधन-पथकी पूर्णताके लिये नहीं किन्तु भुवन-विमोहिनी वासनाओंकी आराधनोपयोगिनी सामग्रियोंकी प्राप्तिके लिये ही किया करते हैं, नहीं तो इसके बादका विश्व सर्वदा प्रकाशमय है और सदा सच्चिदानन्द-स्वरूप आत्मदेवका यहाँ मनोहर नृत्य हुआ करता है, जिसमें न कहीं अशान्ति है, न विकारोंका नग्न-ताण्डव। हाँ, 'अनन्तकी ओर' मुड़नेके पश्चात् प्राणी उस क्षितिजपर पहुँच जाता है जहाँ सदैव सुख-शान्ति विराज रही है और उसमें कोई पराया तथा अज्ञात रहता ही नहीं। परन्तु आज यहाँ कितने ऐसे प्राणी हैं जो इस विश्वमें प्रवेश करनेका प्रयत्न करना चाहते हैं? यदि मैं भ्रममें नहीं हूँ तो बहुत कम हैं—यही कह सकता हूँ; किन्तु यदि मनुष्यका स्वभाव एकमात्र स्वार्थपरायण तथा तमोगुणी नहीं है, जैसा कि हॉब्स तथा हेल्वेशियन-जैसे पाश्चात्य ग्रन्थकार व्यक्त करते हैं—अपितु प्रकृत्या परमार्थपरायण सात्त्विक वृत्तियाँ भी जन्मसे ही उसके हृदयमें निवास करती हैं और यही बात आत्माके परमात्माका ही अंश होनेके कारण प्रत्येक शरीरीके विषयमें चरितार्थ होती है तो किसीके सहसा यह मानकर बैठ रहनेके लिये कोई आधार नहीं है कि आजके सबसे अधिक स्वार्थी संसारमें कोई भी प्राणी ऐसे हो ही नहीं सकते जो विशुद्ध एवं स्वार्थहीन हों, जिसकी 'साधक' बननेके लिये अत्यन्त आवश्यकता है। और जब कि आज ऐसे प्राणी भी देखे जाते हैं जो पवित्र तथा अपने विचारानुसार विश्वजनीन होनेके कारण हृदयानन्ददायक महान् आदर्शोंके लिये अपने सम्पूर्ण भौतिक सुखोंका त्यागकर हँसते-हँसते मृत्युके मुखमें प्रवेश करते हैं तो कौन कह सकता है कि उनकी चित्तवृत्तियाँ धर्मके नियन्ता अनन्तकी प्रेरणाओंसे अनुप्राणित नहीं रहा करतीं।

अस्तु, अनन्तका पथ अथवा चिर-कल्याण-साधन-पथ असाध्य नहीं है, इसे सभी साहससम्पन्न (Adventurous) प्राणी जानते हैं, किन्तु यह कहनेकी भी आवश्यकता नहीं है कि वह अत्यन्त दुरूह है। क्योंकि यदि वह एकदम राजमार्गके समान सुगम होता तो वैभवकी गोदमें पले हुए तथा उसीके क्रोडमें जन्मसे लेकर अन्तिम क्रियापर्यन्त क्रीडा करते रहनेवाले विषयोपासक प्राणियों तथा अपनी धुनके पक्के होनेके कारण आतप, वर्षा, शिशिरादिके द्वारा दी गयी प्रकृतिकी सर्वसाधारणसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

असह्य प्रतारणाओंको भी मालतीपुष्पकी मालिकाके समान प्रभुकी कृपासे प्राप्त हुई सुगन्धित वस्तु समझनेवाले नर-रत्नों-में एवं विषयाराधन तथा वैराग्योपासनामें कोई अन्तर ही न रह जाता। संसारमें प्रवेश करनेके पश्चात् दो मार्ग सभी प्राणियोंके दृष्टिगोचर होते हैं। पहला प्रवृत्ति-मार्ग और दूसरा मार्ग निवृत्तिका है। पहलेमें आकर्षण है, प्रलोभन है, वञ्चना है और हैं अनिश्चित कालतकके लिये बाँध रखने-वाली लोहेकी नहीं सोनेकी जञ्जीरें लेकर आमने-सामने, चारों ओर खड़ी रहनेवाली नर्तकियाँ; परन्तु दूसरी ओर ऐसी बात नहीं है। हाँ, न इधर कोई आकर्षण है, न आडम्बर; न हैं कोई बाँधकर कैदीके समान सीमाबद्ध करके रखनेवाले अधिकारीवृन्द। इस ओर न कामका कोई काम है न क्रोधादि अन्य विकारोंके लिये ही कोई चारा है। फिर बन्धन भी कहाँ टिक सकते हैं। अब इस विषयमें अन्य प्राण-धारियोंकी अपेक्षा बुद्धिमान् तथा धार्मिक होनेके कारण कोई भी मनुष्य स्वयं सोच सकता है कि मुझे किस मार्ग-की ओर जाना चाहिये—प्रलोभनोंसे भरे हुए पथकी ओर अथवा दूसरी ओर। आवश्यकताओंको बढ़ाये रहनेसे शान्ति मिल सकती है या विषय-वैराग्यके द्वारा अनन्तकी ओर चलनेसे, यह बात उसके लिये विचारणीय है। उपर्युक्त बातोंसे यह सुस्पष्ट हो गया होगा कि अनन्तके पथमें 'यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्'—श्री-मद्भगवद्गीताकी यह उक्तिका चरितार्थ होती है अथवा यह कहनेकी अपेक्षा यह स्वीकार कर लेना ही उचित जँचता है कि इस सूक्तिके दृष्टान्तके लिये इससे बढ़कर जगन्मात्रमें किसी अन्य स्थलका मिल सकना ही असम्भव प्रतीत होता है। यही क्या, आप उन साधकोंकी जीवनियों-पर दृष्टिपात करें, एक बार नहीं अनेकों बार उनकी ओर मुड़-मुड़कर दृष्टि फेरें, तो यदि आपकी चित्त-प्रवृत्तियाँ सात्त्विक होंगी तो बार-बार प्रयत्न करनेपर भी अश्रु-धाराओंकी लड़ियोंको आपके नेत्र कदापि न रोक सकेंगे। आप विह्वल हो उठेंगे और यह सोचते-सोचते आपकी नींदें आँखोंसे ओझल हो जायँगी कि, अपनेको बन्धनमें फँसानेवाली चित्त-वृत्तियोंके दास बने हुए वे असंख्य नर-नारी सुखी हैं, जो बात-बातमें क्षणिक तथा मानसकल्पित सुखोंके लिये, प्रभुके बंदोंसे लड़ाई-झगड़े मोल लेकर उनके आढ़तिये बने रहते हैं या वे जो सांसारिकोंसे अकर्मण्य कहकर पुकारे जाते हैं और समझे जाते हैं तथा इस प्रगतिशील विश्वके विस्तृत पथके कण्टक बने हुए क्षुधाग्निकी ज्वालाओंमें अपनेको तपाते रहते हैं और बार-बार उन प्राकृतिक विघ्न-बाधाओंको बिना किसी आलस्यके विश्वके सम्मुख खड़े होकर अपनी अभिलाषासे प्रसन्नतापूर्वक अङ्गीकार करते हैं, जिनके नाम सुनकर भी विषयलोलुप प्राणी तिलमिला उठते हैं। मैं यदि इन दोनों प्रकारके प्राणियोंके विषयमें कुछ कह सकता तो केवल यही कहता कि 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी'—परम साधक तुलसीकी यह उक्ति अक्षरशः सत्य है; किन्तु एक विषयासक्त होकर, शरीरी होकर भी अपनेको शरीर समझता हुआ उसीके शृङ्गारमें संलग्न होकर हाय-हाय कर रहा है और दूसरा कल्पित सुख-दुःखके खोखलेपनको देखनेके पश्चात् शून्य आकाशमें, उजड़े गृहमें और 'हममें तुममें खड्ग खंभमें सबमें व्यापे राम' यह समझता हुआ किसी अलौकिक और सर्वाङ्गपरिपूर्ण प्रकाशके सौन्दर्यको देख-देखकर बार-बार; अनन्त बार अपने मन्द हासके प्रकाशसे जड़ोंको भी आनन्दान्दोलित कर रहा है। हाँ, सांसारिकोंका कोई मित्र है और कोई शत्रु, परन्तु वहाँ तो न कोई मित्र है न शत्रु। न किसीसे राग, न किसीसे द्वेष। अनन्तके प्रसादसे सर्वत्र एकरस है। यहाँ तो न द्वैत है, न अद्वैत और न द्वैताद्वैत; जो कुछ है, बस, वही उसे जान सकता है। औरोंकी बात तो और है परन्तु उसे छोड़कर वह कहीं जाना भी तो नहीं चाहता, न यह जनानेका प्रयत्न करके भी किसीको भलीभाँति जना ही सकता है कि मैं द्वैत हूँ या अद्वैत या द्वैताद्वैत, मैं कहाँ हूँ और किस पदार्थको देख रहा हूँ। इसके प्रमाणके लिये तुलसीकी निम्नाङ्कित दोनों सूक्तियोंको पढ़िये तथा अनेकों बार गा-गाकर झूमते रहिये और एक 'अनन्तकी ओर' के दीवानेके विचारोंमें अवगाहन कर सदैव अपने तार्किक-प्रधान मनको सान्त्वना देते रहिये—

जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।
काको नाम पतितपावन जग, केहि अति दीन पियारे॥
कौने देव बराइ बिरद हित, हठि हठि अधम उधारे।
खग मृग ब्याध पषान बिटप जड, जवन कवन सुर तारे॥
देव दनुज मुनि नाग मनुज सब, माया बिवस बिचारे।
तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु, कहा अपनपौ हारे॥

× × ×

केसव! कहि न जाइ का कहिये।
देखत तव रचना बिचित्र अति, समुझि मनहि मन रहिये॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सून्य भीतिपर चित्र रंग नहि, बिनु तनु लिखा चितेरे ।
धोये मिटइ न मरइ भीति, दुख पाइय यहि तनु हेरे ॥
रविकरनीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं ।
बदन-हीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं ॥
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै ।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै ॥
(विनयपत्रिका १०१, १११)

इसी प्रकार यद्यपि कोई प्रभुकी अनन्त लीलाको देख-देखकर निहाल होते रहनेवाला पुरुष न निराकारकी सीमासे बद्ध है न साकारसे; परन्तु जिस निर्विकार नित्य ज्ञानस्वरूप मूर्तिको वह देखा करता है, जिसका ज्ञान सर्व-साधारणको भी साधक सन्तोंकी सूक्तियोंसे ही होता रहता है, उसे निर्विकार, निराकार कहकर ही उसके पास पहुँच सकते हैं अथवा साकार, जगद्व्याप्त और मनुष्योंके साथ नाचता हुआ समझकर ही उसके स्वरूपको एक बार देखकर उसके लिये बाहर दरवाजेपर खड़े होकर प्रतीक्षा कर सकते ही नहीं अपितु करते रहते हैं। इसके प्रमाणके लिये निम्नाङ्कित उद्धरणोंमें प्रविष्ट हुई सूर तथा इमर्सन (Emerson) की आत्माओंके सन्देशोंको ग्रहण करें ।

अँखियाँ हरि-दरसनकी भूखी ।
कैसे रहैं रूपरस-राती, ए बातें सुनि रूखी ॥
अवधि गनत एकटक मग जोवत, तव इतों नहि झूखी ।
इते मान इहि जोग सँदेसन ऊधो, सुनि अकुलानी, दूखी ॥
'सूर' सकत हठ नाव चलावत ए सरिता हैं सूखी ॥
बारक वह मुख आनि दिखावहु, दुहि पै पिवत पतूखी ।
(सूरदास)

My heart crieth out for God, yea, for the living God.(Emerson)

और दोनोंकी उक्तियोंका साकार और निराकार, पूर्व और पश्चिम दोनों दृष्टियोंसे विचार करके देख लें, युक्तिवाद-का समर्थन होनेकी अपेक्षा, अथवा यह कहिये कि अपनी बातको चाहे जिस प्रकार हो सके तर्कके बलसे सत्य सिद्ध करनेकी अपेक्षा दर्पणके समान आत्माकी अनुभूतिकी ही प्रधानता दोनोंमें मिलेगी; और श्रीभगवद्गीताके—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥

—इस उक्तिमें उत्तरोत्तर, तर्कप्रधान बुद्धिका भी विश्वास स्थिर हुए बिना न रह सकेगा । अस्तु । यदि अनन्तकी ओर अभेद है तो यह कहनेकी तो कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती कि कहीं कोई भेद है । वहाँ तो—

एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः
सत्यः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः ।
नित्योऽक्षरोऽजस्रसुखो निरञ्जनः
पूर्णोऽद्वयो मुक्त उपाधितोऽमृतः ॥

—बस, यही बात रह जाती है और यही समझकर इसके ऊपर साधक तन, मन, धन—सब कुछ निसार कर देता है, किन्तु किसीसे कुछ कहने नहीं जाता । तुलसीके सुरमें सुर मिलाकर यह अवश्य गाता रहता है—

ऐसो को उदार जग माहीं ।
बिनु सेवा जो द्रवै दीनपर, राम सरिस कोउ नाहीं ॥
जो गति जोग बिराग जतन करि नहि पावत मुनि ग्यानी ।
सो गति देत गीध सबरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानी ॥
जो संपति दस सीस अरप करि रावन सिवहँ दीन्ही ।
सो संपदा बिभीषनकहँ अति सकुच सहित हरि दीन्ही ॥
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो ।
तौ भजु राम, काम सब पूरन करैं कृपानिधि तेरो ॥
(विनयपत्रिका १६२)

राम ही इस पदमें क्या, सकल वसुधातलमें, हाँ इससे भी आगे अनन्त हैं । 'अक्षरं ब्रह्म परमम्' इस भगवदुक्तिका स्मरण करते हुए सर्वत्र अनन्तहीकी विरदावली विराजित हो रही है । किसीके हृदयमें यदि उनके प्रति ऐसा प्रगाढ़ प्रेम हो तो इस बातकी सत्यतामें तो कोई सन्देह है ही नहीं । वाल्मीकि साधक बनना चाहते थे । उन्हें विश्वके विषयोंसे वैराग्य हो गया था । अतः 'मरा' 'मरा' जपते-जपते उन्होंने केवल 'अनन्तकी ओर' पदार्पण ही नहीं किया, बल्कि अनन्तके समान हो गये । यह सुन लेनेके बाद अब किसीको सन्देह नहीं रह सकता और इससे एक यह युक्ति भी स्वयं प्रकट हो जाती है कि 'हरि-नामोच्चारण' मनुष्यके कल्याणका पाथेय है । इसीसे महाकवि तुलसीकी प्रतिभा नामका गुणगान करते-करते नहीं अघाती और वह तो यहाँतक कह देनेमें अपना सौभाग्य समझती है कि 'पायो नाम चारु चिंतामनि उर कर तें न खसैहौं'—और इसके साथ ही रामायणमें वह यहाँतक कह डालते हैं कि—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम् ।

खेद है कि बार-बार इसकी ओर आकर्षित होते हुए भी हम सब 'मूरखको पोथी दई, बाचनको गुनगाथ'—इस उक्तिको चरितार्थ कर रहे हैं । कोई भी प्राणी अपने कर्मानुसार देवता, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, भूत-प्रेत-पिशाचादिक चौरासी लक्ष योनियोंमें एक नहीं असंख्य बार घूम सकता है, जन्म लेता और मरता रहता है । परन्तु बड़े भाग्यसे मनुष्यका शरीर पाता है । इसकी पुष्टि 'बड़े भाग मानुष तन पावा'—तुलसीदासजीकी उक्तिसे भी होती है, और जहाँतक सन्तोंकी वाणियोंसे ज्ञात होता है, यही जाना जाता है कि हमारा यह विश्व कर्मभूमि है और मनुष्य कर्मफल भोगनेके साथ-साथ कर्म करनेके लिये इसमें अवतीर्ण होता है । इसीसे यह महान् है, जिसमें मनुष्य होकर विचरनेके लिये देवादिक भी तरसते रहते हैं । इससे बाहर मोक्षके पूर्व सर्वत्र भोग्य भोगोंको भोगनेके लिये ही प्राणी शरीर धारण करके जन्म-मरणकी दुःसह वेदनाओंको सहन करते रहते हैं और माताकी जठरमें होनेवाली असीम वेदनाओंको सहा करते हैं । अस्तु, अब भी क्या यह कहनेकी आवश्यकता रह गयी है कि मनुष्यका जीवन अनन्तकी प्राप्तिके लिये है, जिसे प्राप्त करके और कुछ पाना शेष नहीं रह जाता । किन्तु कोई उसे तभी प्राप्त कर सकता है जब कि वह इस तीनरोजे संसारके ऊपर लट्टू न हो, अनन्त-की ओर पदार्पण करनेके लिये भौतिक सुखोंको भवके लिये छोड़ दे ।

पूजा

(लेखक—पं० श्रीविष्णुदत्तजी शुक्ल)

कुछ समय पहलेकी बात है । मेरे एक प्रतिष्ठित मित्र विलायतसे डाक्टर होकर लौटे थे । डाक्टर चिकित्सा-शास्त्रके नहीं विज्ञान और दर्शनके । उन्होंने मुझे भी दर्शन देनेकी कृपा की । मैं शायद उस समय पूजा कर रहा था और उन्हें थोड़ी देर प्रतीक्षा करनी पड़ी थी अथवा कोई और बात थी,—याद नहीं । परन्तु बातचीतमें जो प्रसङ्ग छिड़ा वह पूजा-विषयक ही था । अंग्रेजीके जानकार, वर्तमान सभ्यताके उपासक तिसपर भी ताजे ही विलायतसे लौटे थे और प्रसङ्ग यह कि उन्हें कुछ समय प्रतीक्षा करनी पड़ी थी । सब परिस्थितियाँ ही विचित्र हो गयी थीं । उन्होंने छूटते ही कहा 'क्यों तिलक-मुन्दरा लगाकर समय नष्ट किया करते हो, इतने समयमें कोई उपयोगी काम कर लिया करो जिससे तुम्हारा भी लाभ हो और साथ ही देश और राष्ट्रका भी हित हो ।' बात मेरे लिये नयी न थी । वंशपरम्पराके संस्कारोंके कारण पूजा-पाठका अभ्यास बराबर रहा है और दुर्भाग्य कहिये या सौभाग्य, इस अवस्थामें शुरूसे ही रहना पड़ा पाश्चात्य सभ्यताके माननेवालोंके साथ । जबतक पढ़ता रहा स्कूलों और कालेजोंके छात्रोंके बीचमें और उसके बाद अपने मित्र उपर्युक्त डाक्टर साहब-जैसे सज्जनोंके बीचमें । इसलिये इससे पहले भी कई बार यह बात सुननेके अवसर पड़ चुके थे । अपने स्वभावके अनुसार मैं इस बार भी बातको हँसीमें ही टाल देना चाहता था । परन्तु मित्र महाशय बहस कर ही लेना चाहते थे । अन्ततः और कोई प्रसङ्ग न छेड़ इसी विषयपर कुछ बातें करनी पड़ीं । बातें क्या हुईं, कैसे-कैसे सवाल-जवाब हुए और अन्त क्या हुआ आदि बातोंके लिखनेकी आवश्यकता नहीं है और वे याद भी नहीं हैं । परन्तु उस समय पूजाके सम्बन्धमें कुछ बड़ी मजेदार बातें सुनने और कहनेको मिलीं । आज एकाएक उन्हींका स्मरण हो आया है ।

यह तो बहुत दिनोंसे मेरी धारणा है कि लोग जितना अधिक शिक्षित होते जाते हैं (मेरा मतलब पाश्चात्य ढंगकी उस शिक्षासे है जो सामान्यतः आजकल हमें मिल रही है ।) उनमें धर्मकी भावना उतनी ही कम होती जाती है । (धर्मसे मेरा इशारा केवल जप-यागादिकी ओर ही नहीं है नैतिक आचार-विचारकी ओर भी है) धर्म और ईश्वर ढोंग है । ईश्वर कायरों और बुज़दिलोंके मस्तिष्ककी निकम्मी उपजके सिवा और कुछ नहीं है आदि बातोंका प्रचार हमारे उपर्युक्त कथनका प्रमाण है । परन्तु इसमें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

किसीका कोई दोष नहीं है। यह युग ही श्रद्धा और भक्ति-का युग नहीं है। संसारमें विशेष-विशेष युगोंमें विशेष-विशेष मनोभावोंका आधिक्य और उन्हींका अधिकार रहता है। श्रद्धा मनुष्यका स्वाभाविक गुण है। बालक जब अपने बाल्यकालमें होता है उस समय उसे जो कुछ बता दिया जाता है, बिना तर्क-वितर्क और वाद-प्रतिवादके वह उसको उसी रूपमें स्वीकार कर लेता है। उससे कह दीजिये 'अमुक स्थानपर न थूको' वह न थूकेगा, 'अमुक स्थानपर न जाओ' वह न जायेगा। यही श्रद्धा है। इसके बाद बालक जब सयाना होने लगता है, उसकी बुद्धिका जब विकास होने लगता है तब वह प्रत्येक बातका कारण जानना चाहता है। उस समय केवल 'थूको मत' या 'जाओ मत' कह देना पर्याप्त नहीं होता। वह जानना चाहता है कि न थूकने या न जानेका आदेश क्यों दिया जा रहा है। उसके चित्तमें जिज्ञासा उत्पन्न होती है। वह उस आदेशके कारणकी खोज करता है। परन्तु बुद्धिका पूर्ण विकास न होनेके कारण उसको यदि इतना ही समझा दिया जाय कि इससे बीमारी फैलती है या अमुक खतरा है तो उसे सन्तोष हो जाता है। अपेक्षा वह एक कारणकी करता है, कारण सही है या गलत यह पहचाननेकी योग्यता उसमें नहीं होती। फिर जब बुद्धिका पूर्ण परिपाक हो जाता है तब उसे पूरे तर्क-वितर्क, युक्ति-प्रत्युक्तिके साथ सब कारण बताना पड़ता है, तभी उसे सन्तोष होता है। ठीक यही अवस्था हमारे समाजकी भी है। प्रारम्भिक अवस्थामें आप्त वचनोंपर श्रद्धा अधिक होती है। उसे हम श्रद्धाका युग कह सकते हैं। उसके बाद लोगोंमें तर्कका भाव जाग्रत होता है। वे सब बातोंको उपर्युक्त बालककी भाँति युक्ति-प्रत्युक्तियों-द्वारा सिद्ध कराना चाहते हैं। यह स्वाभाविक भी है। शताब्दियोंसे चली आनेवाली बातोंकी सत्यतापर अनेक कारणोंसे धीरे-धीरे असत्यताका थोड़ा-थोड़ा आवरण भी चढ़ जाता है। उस समय समाजके लोग आप्त वचनोंकी पुष्टि तर्कों और युक्तियोंद्वारा चाहते हैं, इसे तर्कका युग कहा जा सकता है। इस युगमें यदि आप्त-वचनोंपर श्रद्धा रखनेवाले आचार्यगण तर्क-वितर्कद्वारा अपनी बातकी पुष्टि नहीं कर सकते तो उनके सिद्धान्तोंपर स्वभावतः लोग अविश्वास करने लगते हैं। हमारे समाजकी इस समय कुछ ऐसी ही अवस्था है। परन्तु इस अवस्थाके बाद फिर परिवर्तन-का युग आता है। आप्त-वचनोंकी पुष्टिके प्रमाण मिलने लगते हैं। जो सत्य है वह अज्ञानान्धकारसे अधिक देरतक घिरा नहीं रह सकता। उसका प्रकाश कालान्तरमें फैलने लगता है और लोगोंको सत्यके स्पष्ट दर्शन होने लगते हैं। इस अवस्थामें, श्रद्धातिरेकके कारण सत्यतापर छा जानेवाला असत्यताका आवरण नष्ट हो जाता है और सत्य अपने शिव और सुन्दर रूपमें निखर पड़ता है। इस सत्यपर लोगोंकी श्रद्धा फिर होने लगती है। इसके बाद भी कुछ दिनोंतक तो तर्क-वितर्ककी बात रहती है परन्तु फिर वह सत्य इतना स्पष्ट हो जाता है कि फिर उसके प्रमाणके लिये तर्क-वितर्ककी आवश्यकता नहीं पड़ती। बात कही गयी और हेतु और कारणकी सब बातें तुरन्त सामने आ गयी। यह अवस्था श्रद्धा और तर्कके बीचकी अवस्था होती है। कुछ दिन यह धर्म-सम्मत कथन-परिपाटी चली कि फिर श्रद्धाका युग आ गया। लोगोंने एक बात कही और उसपर विश्वास किया जाने लगा। पहले तो यह विश्वास इस-लिये होता है कि लोगोंको पता रहता है कि यह युक्तियों और तर्क-वितर्कद्वारा सिद्ध किया हुआ है, उसके बाद पीछे की बात तो भूल जाती है, कहनेपर स्वतः ही विश्वास होने लगता है। इस विषयको थोड़ा और स्पष्ट करनेकी आवश्यकता है। जैसे किसीने कहा थूको मत, क्योंकि थूकमें विषैले कीटाणु होते हैं जो वायुके सहारे सर्वत्र फैलकर रोग पैदा करते हैं। यह बात समझा दी गयी। परन्तु बार-बार विषैले कीटाणु वायुका सहारा और रोगका फैलना कहते रहना मनुष्य-स्वभावके विपरीत है। मनुष्य बात कहनेमें शीघ्रता चाहता है। थूकनेकी बुराई पहले कई बार कही जा ही चुकी है। अतः आगे चलकर स्वभावतः बात केवल इतनी ही रह जाती है—'थूको मत।' जब यह अवस्था आ जाती है तभी श्रद्धाका युग आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार श्रद्धा और तर्कका समय-विनिमय निरन्तर होता रहता है। हमारे समाजमें इस समय तर्ककी प्रधानता है। अतः सब वस्तुएँ इसी कसौटीपर कसकर देखी जाती हैं।

हाँ, तो मैं पूजाकी चर्चा कर रहा था। अधिकांशमें बात यह है कि लोग कहनेको तो कहते हैं कि पूजा करते हैं परन्तु वास्तवमें इस बहाने वे माँगने बैठते हैं—पुत्र, कलत्र, यश, वैभव, विद्या, बल आदि। यह अवस्था वस्तुतः उत्तम नहीं होती। जो लोग इस उद्देश्यसे पूजा करते हैं कि उनको हाथ-पैर भी न

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हिलाना पड़े, और त्याग और तपस्याहीन ईश्वरकी पूजाके प्रहसनमात्रसे उनके घर कुबेरका कोष, इन्द्रकी प्रभुता, भीमका पराक्रम और श्रीकृष्णका यश टूट पड़े; वे पूजाके वास्तविक उद्देश्यसे बहुत दूर हैं और ईश्वरको ठगनेकी मूर्ख-चेष्टा करते हैं, और ईश्वर इतना भकुआ भी नहीं है जो इनके कहनेमात्रसे योग्यायोग्यका विचार छोड़कर इनके घर सब कुछ भर देगा। अस्तु, यह परिपाटी तो अनुचित है ही। परन्तु जो लोग अपनी उन्नतिके लिये सचेष्ट रहते हुए इसलिये ईश्वरोपासना करते हैं कि देव और लोक दोनोंकी अनुकूलता प्राप्त हो जाय, वे बेजा नहीं करते, यह सत्य है। फिर भी किसी कारण और किसी अवस्थामें क्यों न हो स्वार्थभावमिश्रित पूजाकी यह प्रणाली वास्तविक ईश्वर-पूजासे बहुत दूरकी वस्तु है। और अगर इसे पूजा मान भी लिया जाय तो यह निम्न कोटिकी पूजा होगी। वर माँगना तो पूजाका लक्ष्य होना ही न चाहिये। हाँ, वर-प्राप्ति पूजाका अयाचित फल अवश्य हो जाता है। ईश्वरके उस प्रसादका ग्रहण सर्वथा कल्याणकर और सुखकर होता है। वास्तविक पूजा तो ईश्वरका गुणानुवाद करना, उनके पुनीत चरणोंमें आत्म-सर्वस्व निवेदन कर देना, अपनापन खोकर सोलहो आना उनकी पवित्र शरणमें चले जाना है। यह बात वर माँगनेमें नहीं रहती। उससे तो यह व्यक्त होता है कि हमारी दृष्टिसे ईश्वरको यह ज्ञान नहीं है कि वह हमारे लिये क्या करे, हम उसे बताते हैं कि तू ऐसा कर। यह अवस्था भक्तिके अनुकूल नहीं है। यह तो परमात्माकी सर्वज्ञता, उसकी योग्यता और उसकी दयालुताका उपहास करना हुआ। इसके अतिरिक्त अल्पातिअल्प-बुद्धि रखनेवाले तुच्छ प्राणी हम जान ही क्या सकते हैं कि कौन-सी बात हमारे हितकी होगी कौन-सी नहीं, और बिना जाने यदि हम कुछ माँग बैठते हैं तो कौन जाने यह वरदान हमारे लिये हितकर होगा या कुम्भकर्णकी निद्राकी भाँति अहितकर। अतः अन्ततः विचार करनेपर मालूम होगा कि यह प्रणाली अपने स्वार्थके लिये भी हानिकारक ही है। हमारा कर्तव्य तो केवल भक्ति और श्रद्धापूर्वक ईश्वरका गुणानुवादमात्र होना चाहिये। उसके बाद जो अयाचित या ईश्वरप्रेरित वर मिलेगा वही वास्तवमें हमारे हितका वर होगा। ईश्वर हमारी भलाईकी बात हमसे कहीं अधिक योग्यताके साथ सोच सकता है, क्योंकि वह सर्वज्ञ है, सर्वशक्तिमान् है और हमारा ज्ञान बहुत ही परिमित एवं शक्तियाँ अत्यन्त अल्प हैं। इस बातपर सदा विश्वास रखना चाहिये कि ईश्वर जो कुछ करता है भलाईके लिये करता है। परन्तु भलाईकी कामना मनमें रखकर न माँगते हुए जो पूजा होती है, उसमें भी छिपी कामना तो रहती ही है, इसलिये यह पूजा भी निम्न-कोटिकी ही है। सर्वोच्च पूजा तो वह है, जो सर्वथा निष्काम और अनन्य प्रेमभावसे स्वाभाविक ही हो, जिसमें कुछ भी पानेकी कभी कल्पना ही न रहे।

उपर्युक्त पूजा-प्रणालीको लक्ष्य करके नहीं वरं पूजाद्वारा फल-प्राप्तिको ध्यानमें रखकर कुछ समालोचक बड़े मजेकी बात कहा करते हैं। उनका अभियोग है कि पूजा करना ईश्वरकी चापलूसी करना और उसको रिश्वत देना है। चन्दन, फूल, धूप, दीप और फिर नैवेद्य उससे भी आगे बढ़कर दक्षिणा आदि रिश्वत-खोरी ही तो है। भला ऐसे भले आदमियोंसे क्या कहा जाय। आर्यसभ्यता और हमारी प्राचीन संस्कृति तो हमें इस पूजा-प्रणालीको केवल प्रेम और सम्मान-प्रदर्शनकी एक विधिमात्र बताती है। परन्तु अब वह रिश्वत कही जाय तो उसका क्या उपाय है। भ्रातृद्वितीयाके दिन हमारी बहिनें हमें रोचना-अक्षत चढ़ाकर मिठाइयाँ और उपहार दे जाती हैं, राखीके साथ रक्षाबन्धनके दिन ऐसे ही उपहार आते हैं, विवाहादि अवसरोंपर अपने मान्य सम्बन्धियोंके आगमनपर प्रायः इसी विधिसे हम उनका सम्पादन करते हैं। अपने माता-पिता तथा अपने अन्य गुरुजनोंका सम्मान भी हम प्रायः इसी रूपमें करते हैं। आर्यसभ्यताके अनुसार सम्मान प्रदर्शित करनेकी विधि ही यह है तो क्या हम इन सब अवसरोंपर सबको रिश्वत ही दिया करते हैं? हाँ, हम प्रार्थनाके अवसरपर 'पापोऽहं पापकर्माहम्' आदि कहकर ईश्वरसे यह प्रार्थना अवश्य करते हैं कि वह हमारे अपराधों और पापोंको क्षमा कर दे। सम्भवतः इसी कारणसे रिश्वतका अभियोग लगाया जाता है परन्तु इस अवस्थामें भी वह रिश्वत नहीं है। वह तो अपने अपराधों और पापोंके लिये प्रायश्चित्त या पश्चात्तापस्वरूप की गयी क्षमा-याचनामात्र है। हम रिश्वत देकर दण्डसे मुक्ति नहीं चाहते। यह स्मरण रखना चाहिये कि किसी अपराधके लिये क्षमा मिल जाना भी दण्ड ही है, यह हो सकता है कि वह किये हुए

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपराधकी सबसे कम सजा हो । अपराध प्रमाणित हो जानेपर जैसे एक पाईका जुर्माना भी दण्ड ही है, उसी प्रकार उससे भी कम अर्थात् क्षमाका दण्ड भी दण्ड ही है । क्षमा देनेका अर्थ यह है कि अपराधीका अपराध प्रमाणित अवश्य हो गया परन्तु उसके किन्हीं विशेष गुणोंके कारण उसे क्षमा दे दी गयी—कम-से-कम सजा दी गयी । क्षमा और दण्ड दोनोंका फल एक ही है । दण्ड पानेसे मनुष्य सतर्क होकर भविष्यमें अपराध करनेसे बचनेकी चेष्टा करता है । उसे अपने कियेपर पछतावा होता है । क्षमा पानेपर भी ये सब बातें होती हैं, नहीं, इतना ही नहीं, क्षमा पानेवाले व्यक्तिको तो क्षमा मिलनेके पहले ही पछतावा हो जाता है और उसके बादतक बना रहता है । याद रखना चाहिये कि क्षमा उन्हींको मिलती है जो साधु-प्रकृतिके हैं, जिनमें सद्भावनाएँ होती हैं और जो मनोयोग-पूर्वक भविष्यमें पाप-कर्मसे अलग रहना चाहते हैं ।

अब आलोचनाका दूसरा विषय लीजिये । कहते हैं चन्दन-भस्म, तिलक-त्रिपुण्ड्र, माला-छाप सब व्यर्थके आडम्बर किये जाते हैं । यदि पूजामें कोई महत्त्व मान भी लिया जाय तो ये सब तो निस्सार हैं ही । आलोचनाका यह विषय किसी हदतक थोड़े-बहुत ढंगका विषय है । ये कोई अनिवार्य आवश्यक वस्तुएँ नहीं हैं । पूजा इनके बिना भी हो सकती है और अच्छी तरह हो सकती है । फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि इनका कोई महत्त्व ही नहीं है । पुलिसका एक सिपाही अथवा फौजका एक अफसर बिना वर्दीके भी अपना काम अच्छी तरह कर सकता है, फिर भी वह पहनी अवश्य जाती है । उसमें जो व्यय किया जाता है, उसके परिधानमें जो समय लगता है, उसकी हिफाजतमें जो चिन्ता उठानी पड़ती है उसपर कोई एतराज नहीं होता । सभा-सोसाइटियोंके अवसरपर खद्दर आदिकी विशेष वेश-भूषा—राष्ट्रीय पोशाकसे सज्जित होनेमें भी एतराज नहीं है, परन्तु पूजाकी विशेष वेश-भूषा आपत्ति-जनक है ! क्यों ? अगर पूजाके तिलक-माला, त्रिपुण्ड्र, छाप आदिमें जो समय और जो शक्ति व्यय की जाती है वह व्यर्थ अनावश्यक और हानिकारक है तो इनमें तो वह और भी अधिक हानिकारक होनी चाहिये क्योंकि इनमें समय, शक्तिकी मात्रा कहीं अधिक लगती है । परन्तु ऐसा नहीं माना जाता । इनकी महत्ता स्वीकार कर ली जाती है, फिर भी पूजाके समयकी विशेष वेश-भूषाकी महत्ता स्वीकार करनेमें एतराज है । इसी प्रकार हम प्रायः देखते हैं कि जब भक्तजनोंका कोई समुदाय गंगा-स्नानादिके लिये जाता हुआ रास्तेमें 'गंगामैयाकी जय' 'महादेवबाबाकी जय' 'हरे राम हरे कृष्ण' आदि पुण्य-घोष करता हुआ चलता है तब प्रायः यह आलोचना होती है कि ये लोग कितने मूर्ख हैं, रास्तेमें चिल्लाते हुए चलते हैं, मानों इसीमें सब पुण्य घुसा हुआ है । परन्तु वे ही समालोचक महात्मा गाँधीके स्वागत-जलूसके समय, दासबाबूके स्मृति-दिवसके समय, अथवा साइमन-कमीशनके बहिष्कारके समय 'महात्मा गाँधीकी जय' 'भारतमाताकी जय' 'वन्दे मातरम्' 'साइमन गो बैक' आदिके नारे लगानेमें अपना गौरव समझते हैं ! क्यों ? क्या दोनों अवस्थाएँ समान नहीं हैं ? एक राष्ट्रीय महत्त्व रखती है, उसमें राष्ट्रीय जय-ध्वनि की जाती है, दूसरी धार्मिक महत्त्व रखती है, उसमें धार्मिक जयघोष किये जाते हैं । परन्तु विरोध होता है केवल धार्मिक जय-घोषोंका ! क्या इसका एकमात्र कारण यह नहीं है कि हममें धार्मिक भावका या तो अभाव हो गया है या उसमें खेदजनक न्यूनता आ गयी है । धार्मिक उत्साह हममें रह ही नहीं गया । इसीलिये हम उसकी आलोचना करते हैं । अन्यथा दोनों अवस्थाएँ समान हैं और जैसे एकमें उन परिधानों और जयघोषोंकी महत्ता है वैसे ही दूसरेमें भी ।

पूजाके सम्बन्धमें एक शिकायत और है । अब झाँझ, करताल, घण्टा, शङ्ख आदिके नादके साथ पूजा करनेपर लोगोंको एतराज होने लगा है । इससे पास-पड़ोसके आदमियोंको व्यर्थ ही तकलीफ होती है । उनके कानोंको कष्ट उठाना पड़ता है, निद्रामें व्याघात होता है और शान्ति भंग होती है । सुना है कहीं-कहींपर लोगोंने इसके लिये पुजारियोंपर मामले भी चलाये हैं । जो हो । विचारना यह है कि इस वाद्य-प्रणालीमें औचित्य कहाँतक है ? आश्चर्य तो यह है कि लोग युद्ध-समयकी रणभेरियोंकी अवस्था समझ लेते हैं, जलूसोंके अवसरपर बजनेवाले बाजोंकी महत्ता भी उनकी समझमें आ जाती है, पर पूजाके समयके बाजोंकी महत्ता वे बेचारे नहीं समझ पाते । पहले तो यह समझ लेना चाहिये कि पूजामें शान्ति और वाद्य दोनों प्रणालियोंका प्रयोग होता है । या यों कहिये कि पूजाके दो विभाग हैं जिनमेंसे एकमें शान्तिके साथ देवोपासना की जाती है और दूसरेमें वाद्यके साथ । वाद्यका अभिप्राय केवल यह होता है कि उससे पूजा-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सम्बन्धी सात्त्विक उत्साह आता है और चित्त अन्यान्य स्थानोंसे हटकर पूजाकी ओर एकाग्र होता है। इस ऐकान्तिक मनोयोगके लिये ही पूजामें वाद्य-प्रणालीका विधान किया गया है। वाद्यका यह प्रभाव सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। परन्तु जो लोग उस प्रभावको देखना नहीं चाहते उनकी बात ही दूसरी है।

पूजाके सम्बन्धमें एक बात और भी प्रचार पा रही है। मुसलमानोंके यहाँ नमाज पढ़ते समय अनेक व्यक्तियोंका समूह एक साथ जमा हो जाता है और उनकी पूजा एक साथ ही होती है। इससे जाति-संगठन होता है और पारस्परिक सद्भाव फैलता है। हिन्दुओंमें एकान्त बैठकर पूजा करनेकी विधि है। इससे वे लाभ सम्भव नहीं होते। समालोचकोंकी दृष्टिसे पूजाका इस्लामी तरीका अधिक अच्छा है। इस आलोचना और इस सम्मतिसे यह तो स्पष्ट मालूम हो जाता है कि समालोचक महानुभाव पूजाका वास्तविक तात्पर्य ही नहीं समझे। वर्तमान राजनीतिक और साम्प्रदायिक वातावरणमें वे इस प्रकार सन गये हैं कि प्रत्येक बातमें उन्हींके स्वप्न देखा करते हैं। पूजा राजनीतिक प्रश्नोंके समाधानका साधन नहीं है। उससे राजनीतिक उद्देश्यके सिद्धिकी कल्पना अयोग्य है। पूजाका सम्बन्ध आध्यात्मिकता—धार्मिकतासे है और जातीय सङ्गठन आदिकी भावना राजनीतिसे सम्बन्ध रखती है। बंशीसे लाठीका काम नहीं लिया जा सकता। आलोचकोंकी यह दलील ही व्यर्थ है। धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टिसे एकान्तमें पूजा करनेके बराबर समूहमें पूजा करनेकी प्रणाली हो ही नहीं सकती। चित्तकी एकाग्रता, शान्ति, आत्मनिवेदनकी भावनाका उद्रेक, अपनी दीनताका प्रदर्शन, तन्मयता आदि जो अकेलेमें होती है वह समूहमें सम्भव ही नहीं। एक प्रेमी अपने प्रेमपात्रसे एकान्तमें ही मिलनेकी इच्छा क्यों किया करता है? क्या उसका केवल यह कारण नहीं है कि वह उस अवस्थामें अपनी तन्मयता, अपनी दीनता आदिका परिचय अधिक स्वतन्त्रता और अधिक अच्छाईके साथ दे सकता है? भक्ति प्रेमका ही एक परिष्कृत रूप है। इसलिये स्वभावतः अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिये वहाँ ही ऐकान्तिक पूजाका महत्त्व अधिक होना ही चाहिये।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न तर्कों और युक्तियोंसे समालोचकगण पूजाकी आलोचना और टीका-टिप्पणी करते हैं। परन्तु प्रायः सभी एक प्रकारसे निस्सार-सी मालूम होती हैं। अधिकांशमें ये समालोचक प्रभावित हुए हैं वर्तमान राजनीतिक और धर्मविरोधी वातावरणसे। इसीलिये नाना प्रकारके तर्क और कुतर्क ढूँढ़कर उसकी आलोचना करने बैठ जाते हैं। पूजाका वास्तविक रूप क्या है, उसका उद्देश्य क्या है, उसका फल क्या होता है आदि बातोंपर सहानुभूतिपूर्वक विचार करनेकी उन्होंने कभी उदारता ही नहीं दिखायी। यदि शान्त और सरल चित्तसे वे इस विषयपर विचार करते या अब भी करेंगे तो निश्चय ही देखेंगे कि पूजा आत्मशुद्धि और आत्मप्रक्षालनका एक प्रभावशाली और सरल उपाय है। इसके द्वारा हमें अपने मनोभावोंको सांसारिक कलुषसे परिमार्जित करनेका शुभ अवसर प्राप्त होता है, आत्मा विकास पाती है, चरित्र उन्नत होता है और आत्मबल बढ़ता है। परमपिताका पुण्यप्रसार पानेकी यह योजना हममें उस सर्वशक्तिमान् जगन्नियन्ताकी वह अनन्त और अमोघशक्ति भरती है जो हमारी जीवन-यात्रामें साहस और सफलतापूर्वक अग्रसर करनेके लिये प्रतिपल अनुप्राणित और उत्साहित करती रहती है और समस्त विकारोंको अलग रख हमको सत्, चित्, आनन्दकी ओर अग्रसर करती रहती है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परमार्थ-पत्रावली

(श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पत्र)

[गताङ्कसे आगे]

[१५]

१—'कल्याण' पृष्ठ ७५२ में देखकर आपने 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' मन्त्रका जप आरम्भ किया, दैनिक चार-पाँच हजारतक करने लग गये थे और अब दस हजार करते हैं सो अच्छी बात है। जहाँतक हो सके संख्या बढ़ानेकी कोशिश करनी चाहिये। आजतक पचीस लाख मन्त्र-जप आप कर चुके सो बहुत आनन्दकी बात है।

साथमें श्रीविष्णुभगवान्‌का ध्यान करनेकी कोशिश आप करते हैं, किन्तु ध्यान न लगकर विषयोंका ही चिन्तन होता है। विषयोंका चिन्तन न होकर भगवान्‌का ध्यान होनेका उपाय पूछा सो ठीक है। भगवान्‌के ध्यानको सर्वोत्तम समझकर निष्काम-भाव-से विशेष तत्पर होकर करनेसे विषयोंका चिन्तन छूट सकता है। विषयोंमें दोष, दुःख एवं घृणा-दृष्टि करनेसे और वैराग्यवान् पुरुषोंका सङ्ग करनेसे भी विषयोंका चिन्तन छूट सकता है। उपर्युक्त अभ्यास करनेसे ही सब पापोंका एवं क्लेशोंका नाश होकर परमानन्द और परमशान्तिकी प्राप्ति हो सकती है। मुझे श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु न समझकर अपना एक साधारण मित्र समझना चाहिये।

२—भगवान्‌की प्राप्तिके लिये भजनका ठेका करने-वाला सच्चा भक्त इसलिये नहीं है कि वह भगवत्-प्रेम और भजनके रहस्यको नहीं समझता। जो समझता है उसे ठेका करनेकी क्या आवश्यकता है? भजन तो केवल भगवान्‌में अनन्य-प्रेम होनेके लिये ही करना चाहिये। अनन्य-प्रेम हो जानेपर भगवान् स्वयं ही मिले बिना नहीं रह सकते। इसीसे अनन्य-प्रेम भगवान्‌के मिलापसे भी बढ़कर है। इस रहस्यको समझनेवालेका भजन, साधन, श्रद्धा, प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता रहता है।

३—विषयोंकी अभिलाषा एवं मोह और अन्तः-करणकी अशुद्धिमें वृद्धिको, मन्त्र-जपका परिणाम समझना बहुत ही अनुचित एवं भूल है। उपर्युक्त दोष तो मनमें सदा ही रहते हैं। कभी छिपे हुए रहते हैं और कभी प्रकट होकर उग्र रूप धारण कर लेते हैं। यदि उस समय आप भजन न करते तो सम्भव है उनका प्रकोप और भी अधिक होता।

४—ईश्वरके भजन बिना जो समय गया उसके लिये पश्चात्ताप करना और व्यर्थ गया समझना तो उचित ही है। किन्तु उसके लिये प्राणत्याग करना उचित नहीं, ऐसी भावना भी नहीं होनी चाहिये। भविष्यमें व्यर्थ समय न बिताना ही सच्चा पश्चात्ताप है। समयको अमूल्य समझकर कटिबद्ध होकर भजन-ध्यान करनेसे मूलसहित विषयासक्तिका नाश हो जाता है।

५—भगवान्‌के भक्तोंमें प्रेम होनेका और सांसारिक लोगोंसे प्रेम हटानेका उपाय पूछा सो इसके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये।

६—पुस्तक पढ़ते समय मन दूसरी तरफ जाता हो तो पुस्तकमें लिखी हुई बातको समझनेमें मन लगाना चाहिये। जिस विषयकी पुस्तक हो यदि उसको समझनेकी लगन हो तो मन उसमें जरूर लग जाना चाहिये। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि अवगुण, अन्तःकरण जैसे-जैसे शुद्ध होगा, वैसे-वैसे हटते जायँगे; इसके लिये भी भगवान्‌से प्रार्थना करते रहना चाहिये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

७—जपका महत्त्व नहीं समझनेके कारण और साधनमें शान्ति और आनन्दका अनुभव नहीं होनेके कारण एवं पापोंकी अधिकताके कारण भजन करनेमें आलस्य और भजनमें अरुचि उत्पन्न होती है, अतः अच्छे पुरुषोंका सङ्ग करके जपका महत्त्व समझना चाहिये। श्वासके साथ जप करनेका अभ्यास करनेसे चित्तको शान्ति मिल सकती है। जपका अभ्यास करते-करते अन्तःकरण शुद्ध होनेसे जपमें रुचि बढ़ सकती है। जबतक रुचि न हो तबतक विश्वास करके जप करते जाना चाहिये।

८—आसन लगाकर ईश्वरका ध्यान करनेकी चेष्टा करें, उस समय जप नहीं छोड़ना चाहिये। जप करते-करते ही ध्यान करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। जप होता रहनेसे मनमें दूसरी फुरना कम होगी। फिर भी अगर मन दूसरी जगह जाय तो बार-बार वहींसे हटाकर भगवान्‌में लगानेका अभ्यास करना चाहिये।

९—भगवान्‌के भजन-ध्यानके रहस्यको समझनेका उपाय पूछा सो रहस्य जाननेवाले सज्जन पुरुषोंका सङ्ग करना चाहिये और इस विषयकी पुस्तकोंको पढ़नेका अभ्यास करना चाहिये, फिर अभ्यास करते-करते अन्तःकरण शुद्ध होनेसे रहस्य समझमें आ सकता है।

१०—कर्मोंका अनुष्ठान करते समय भगवान्‌को याद रखनेका उपाय पूछा सो हरेक कार्य करते समय भगवान्‌को अपने साथ समझकर उनकी आज्ञाका पालन करनेके लिये कर्म करनेका अभ्यास करनेसे ऐसा हो सकता है। ऐसा अभ्यास करना बहुत ही अच्छा है। अभ्यास करते-करते भगवान्‌की कृपासे ऐसा स्वभाव बन सकता है कि फिर अनायास भगवान्‌का स्मरण रह सके।

११—मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाको कलङ्कके समान समझनेका उपाय पूछा सो इनसे होनेवाली हानिका विचार करनेसे, भगवान्‌के भजन-साधनमें इनको बाधक समझनेसे और बार-बार इस तरहका विचार रखनेसे ऐसा हो सकता है।

१२—जो बात प्रकाशित की जाती है, उसका नाश हो जाता है। इस तत्त्वको समझ लेनेसे अच्छे कामोंको प्रकाशित करनेकी प्रवृत्ति हट सकती है और बुरे कामोंको प्रकट करनेकी इच्छा हो सकती है।

१३—संसारी नाच-गानमें प्रेम होनेके कारण उनमें नींद नहीं आती परन्तु उससे स्वास्थ्यमें बहुत हानि होती है और भजन-सत्सङ्गमें प्रेम होनेपर उनमें भी नींद नहीं सताती और स्वास्थ्यमें हानि भी नहीं होती। भगवान्‌के प्रेमी पुरुषोंका सङ्ग करनेसे, अन्तःकरण शुद्ध होनेसे और भगवान्‌की शरण लेकर भजनका अभ्यास करनेसे भगवान्‌में प्रेम हो सकता है।

१४—अपना बिगाड़ करनेवालेपर भी क्रोध नहीं करना चाहिये। मनको समझाना चाहिये कि बुरा या बिगाड़ दूसरेके करनेसे नहीं होता। यह तो प्रारब्धसे होता है, फिर किसीका क्या दोष है? भगवान् सब जगह हैं, फिर मैं क्रोध किसपर करूँ? अपना अहित करनेवालेसे बदला लेनेकी इच्छासे उसका बुरा करनेकी चेष्टामें अपना ही नुकसान होता है, उसका बुरा करना अपने हाथकी बात भी नहीं है। मनमें बुरी भावना करनेसे अन्तःकरण मैला होता है, इसलिये ऐसा नहीं करना चाहिये।

१५—जुआ खेलना बहुत बुरा है; इससे भजनमें बाधा पड़ती है, पाप बढ़ता है, इज्जत चली जाती है, कोई विश्वास नहीं करता, भगवान् भी नाराज होते हैं। जुआ खेलकर नल और युधिष्ठिर-जैसे बड़े-बड़े राजालोगोंको भी पश्चात्ताप करना पड़ा है। अतः अपने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मनमें दृढ़ नियम करना चाहिये कि जुआ कभी भूल-कर भी नहीं खेलूँगा।

१६—सत्य बोलनेका नियम एक दफे टूट गया तो फिर वैसा ही नियम लेना चाहिये और भगवान्‌से उसको सुरक्षित रखनेके लिये प्रार्थना करनी चाहिये। मनमें ऐसा दृढ़ विश्वास करना चाहिये कि भगवान्‌की कृपासे अब मैं इस नियमका ठीक-ठीक पालन कर सकूँगा।

१७—जुएमें जीतकर उस धनको धर्मके काममें लगानेकी इच्छा करना वैसा ही है जैसे पहले शरीर-में कीचड़ लगाना और फिर उसको धो डालनेकी इच्छा करना। ऐसे धनसे कभी धर्म नहीं हुआ करता, वह तो पापको ही बढ़ानेवाला होता है।

१८—समयका विभाग पूछा सो दिन-रात चौबीस घण्टेमें रात्रिमें छः घण्टे सोना चाहिये। सबेरे और सन्ध्या शौच, स्नान, भोजनादि शरीर-निर्वाहकी क्रियामें छः घण्टे लगाने चाहिये। जीविका चलानेके लिये द्रव्योपार्जनमें छः घण्टे लगाने चाहिये और एकान्त भजन-ध्यानमें छः घण्टे—ऐसा करना ठीक है। दूसरे काम करते समय भी भजन-ध्यान करनेकी कोशिश रहनी चाहिये। सात्त्विक पदार्थ खानेका अभ्यास करना चाहिये और राजस, तामस पदार्थोंका त्याग करना चाहिये। इसका विस्तार शास्त्रोंमें लिखा है।

१९—ईश्वरसे प्रार्थना करनेसे भगवान् स्वयं ही सद्‌गुरुकी प्राप्ति करा सकते हैं। यही विश्वास करके प्रार्थना करते रहना चाहिये।

२०—सोलह नामवाले मन्त्रके साढ़े तीन करोड़ मन्त्रका जप करनेसे भगवान् निःसन्देह मिल जाते हैं—ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है और विश्वासपूर्वक करनेसे ऐसा होना सम्भव भी है, पर मैंने करके नहीं देखा है।

२१—माता-पिताके आज्ञाकी बाबत पूछा सो और सब कामोंमें तो माता-पिताका हुक्म पूरा-पूरा मानना चाहिये; परन्तु वे यदि भजन-ध्यानके लिये मना करते हों तो यह बात नहीं माननी चाहिये। क्योंकि यह माननेमें उनका भी नुकसान है। उनको शान्तिपूर्वक समझाना चाहिये, सेवा करके प्रसन्न करना चाहिये। उनका सामना नहीं करना चाहिये और कड़ा जवाब नहीं देना चाहिये। उनका भी भजन-ध्यानमें प्रेम हो, ऐसी कोशिश करनी चाहिये। स्वयं जो भजन-ध्यान करे वह उनसे छिपाकर गुप्त-भावसे करनेका अभ्यास डालना चाहिये, परन्तु भजन-ध्यान नहीं छोड़ना चाहिये। यदि वे इसके लिये गाली दें या शाप दें तो उसे शान्तिसे सुन लेना चाहिये। उससे कुछ भी हानि नहीं हो सकती। इसमें प्रह्लादका उदाहरण याद कर लेना चाहिये। परन्तु खयाल रहे कहीं अभिमानमें आकर उनका अपमान न कर बैठें। माता-पिताका अपमान करना और उनको कड़ी जबान कहना बहुत बुरा है। बहुत संकट पड़नेपर भी भजन-ध्यान नहीं छोड़ना चाहिये। यही तो परीक्षाका मौका है, अगर इसमें फेल हो गये तो फिर क्या है?

२२—शास्त्र-ग्रन्थ देखते समय माताके पूछनेपर झूठ नहीं बोलना चाहिये, बल्कि चुप रह सकते हैं या किसी दूसरे समय पुस्तक देख सकते हैं। झूठ बोलनेकी कोई जरूरत नहीं। झूठ बोलनेसे पाप जरूर होता है और कोई फायदा भी नहीं होता। बात तो सच्ची ही कहनी चाहिये। उसके लिये गाली सुननी पड़े या नुकसान सहना पड़े तो कुछ हर्ज नहीं। आपने मांस-भक्षण छोड़ दिया, यह बहुत ही अच्छा काम किया। इस नियमका दृढ़तापूर्वक पालन करना चाहिये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२३—कभी भूलकर या दूसरेकी आज्ञासे भी मांसके कार्यमें सहायता किसी प्रकारसे भी नहीं देनेका ही खयाल रखना चाहिये।

२४—आपके मनमें जो शंका उठे आप खुशीसे पूछ सकते हैं, परन्तु अधिक विस्तार नहीं करना चाहिये क्योंकि मुझे समय बहुत कम मिलता है। इसलिये, उत्तर देनेमें विलम्ब हो सकता है। जवाब बहुत जल्दीमें लिखा गया है।

[१६]

गीता-शास्त्र बड़ा ही गहन है, बड़े रहस्यका विषय है। इसका अभ्यास करते-करते नये-नये भाव पैदा होते रहते हैं, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं। ऐसा होना इस ग्रन्थके अनुरूप ही है। आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमसे लिखा जाता है।

१—भगवदर्पण-बुद्धिमें मोहयुक्त कर्तापनका अभिमान नहीं रहता, अभिमानशून्य निर्दोष कर्त्तापनमात्र रहता है; वह भी साधन करते-करते समाप्त हो जाता है। 'अहंकारविमूढात्मा' में जो कर्तापनका अभिमान बताया गया है यह मोहयुक्त है और वहाँ विषय भी अज्ञानका ही है। अर्पण अपनी वस्तु की जाती है। यही क्यों, भूलसे अपनी मानी हुई दूसरेकी वस्तुको, जिसकी है उसे दे देना क्या अर्पण नहीं है? क्या भरतजीकी भाँति स्वामीकी आज्ञासे स्वीकार किया हुआ राज्य समयपर स्वामीके चरणोंमें सौंप देना समर्पण नहीं है? जिस प्रकार भरतजी समस्त राज-कार्यका भार श्रीरामपादुकाके सहारे चलाते थे, उसमें अपनी सामर्थ्य कुछ भी नहीं समझते थे, केवल अपनेको निमित्तमात्र ही मानते थे, उसी प्रकार समस्त कार्य करनेवालेका कर्तापन भी क्या दोषी हो सकता है? कभी नहीं। जो साधक सब वस्तुओंको ईश्वरकी ही समझता है और समस्त संसारका सञ्चालन उसीकी शक्तिसे होता हुआ देखता है उसके मनमें अर्पण करनेका कुछ अभिमान थोड़े ही होता है, वह तो अपनेको केवल निमित्तमात्र समझता है।

२—'वासुदेवः सर्वम्' माननेवाले महात्मा पहले असंख्य हो चुके हैं। उनके नाम कहाँतक लिखे जायँ। सनकादिको जय-विजयपर क्रोधका भाव हुआ—यह बात कहनेसे शास्त्रकारका क्या प्रयोजन है, इसका पता नहीं है। वास्तवमें महात्माओंको क्रोध हो नहीं सकता—कथा ऐसी बहुत मिल जाती है, उनमें कुछ रहस्य होगा। अपनेको तो सिद्धान्त यही समझ लेना चाहिये कि वास्तवमें महात्मामें काम-क्रोधादि दोष नहीं रह सकते। विश्वामित्र और अगस्त्य आदिका राक्षस-वधके लिये चेष्टा करना जगत्-हितकी दृष्टिसे था, अतः उसमें कुछ शंकाकी बात नहीं है। वैसे तो खुद वासुदेवने ही बहुतोंका वध किया-कराया है, फिर सबको वासुदेव समझनेवाले वैसी चेष्टा करें, इसमें क्या अनुचित है? सब महापुरुषोंका स्वभाव एक-सा नहीं होता। सब अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार ही जगत्-हितकी चेष्टा किया करते हैं। आपने एकनाथजी, गौराङ्ग-महाप्रभु और रामदासजीका उदाहरण दिया सो यह भी बहुत अच्छा है, पर जगत्-हितके लिये न्याययुक्त राक्षस-वधकी चेष्टा भी बुरी नहीं है। उसमें स्वार्थकी मात्रा नहीं होनी चाहिये। क्या माता-पिता अपने बालकको और डाक्टर रोगीको उसके और जगत्के हितके लिये ताड़ना नहीं दिया करते? और क्या उनका वैसा करना दया नहीं है?

३—'प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति' या 'प्रकृतिं यान्ति भूतानि' इत्यादि वाक्योंमें जो 'प्रकृति' शब्द आया है उसका अर्थ भलीभाँति समझना चाहिये। अगर राग-द्वेष आदि या काम-क्रोधादि अवगुण भी उस प्रकृतिके साथ ही होते तो उनको छोड़नेके लिये या

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उनका नाश करनेके लिये भगवान् कैसे कह सकते ? सुतरां यह स्पष्ट हो जाता है कि राग-द्वेष, काम-क्रोध, लोभ-मोहसे युक्त जो स्वभाव है, उसका नाम यहाँ 'प्रकृति' नहीं है; किन्तु प्रारब्धानुसार उसको जैसे शरीर, इन्द्रिय और मन आदि मिले हैं, उनकी जैसी शक्ति और आदत है उसके अनुसार उनका क्रियामें प्रवृत्त होना अनिवार्य है। अतः उनकी क्रियाको रोकनेकी व्यर्थ चेष्टा न करके उन क्रियाओंमें आनेवाले दोषोंको हटानेकी चेष्टा करनी चाहिये। यही भगवान्का अभिप्राय है। अतः काम-क्रोधको जीतनेकी, पापोंका त्याग करनेकी चेष्टा अवश्य करनी चाहिये। ब्रह्मचारी अवश्य बनना चाहिये। प्रकृतिसे डरनेकी इसमें कुछ भी बात नहीं है।

४—मेरी समझमें तो यही मानना उचित है कि 'मामनुस्मर युध्य च,' इस उपदेशको अर्जुन पूर्णरूपसे कार्यमें ला सके थे। स्मरण रहते हुए जो उनको शोक और क्रोध होनेका प्रसङ्ग आता है उसके विषयमें ऐसा समझना चाहिये कि वह लोकसंग्रहके लिये स्वाँगकी तौरपर था, वास्तवमें नहीं। आजकलके लोग जो कार्य करते हुए स्मरण रखनेका भाव व्यक्त किया करते हैं उनकी कैसी स्थिति है—इसका हाल तो वे ही जान सकते हैं, मैं इस विषयमें क्या लिख सकता हूँ। हाँ, यह मैं अवश्य कह सकता हूँ कि ऐसा साधन हो सकता है, इसमें कोई शङ्का नहीं। क्योंकि यदि इस प्रकार कार्य करते हुए स्मरण हो ही नहीं सकता होता तो भगवान् ऐसा उपदेश ही कैसे देते ? यह बात अवश्य है कि सबकी प्रकृति एक-सी नहीं होती, अतः हर एक साधक निरन्तर स्मरण रखते हुए कार्य नहीं कर सकता।

मैं और भगवान् दोनों नहीं रह सकते। प्रेमकी गली बहुत छोटी है, यह तो ठीक है, 'परन्तु मैं नहीं रहकर भी शरीर आदिसे कर्म हो सकते हैं,' इसे गीता स्वीकार करती है।

भगवान्के स्मरणमें रोमाञ्च अधिक साधकोंको हुआ करता है; परन्तु अश्रुपात सबके नहीं होता, इसमें स्वभावका भेद है। सभी साधकोंके शरीरमें ऊपरी चिह्न होवें ही, यह कोई खास नियम नहीं है। आपके लिये आँसुओंका रोकना असाध्य हो जाता है, यह आपके स्वभावकी विशेषता है। बाहरी चिह्नोंद्वारा यदि भगवत्-प्रेमका प्रकट हो जाना बुरा मालूम होता हो तो ऐसा न होनेके लिये भगवान्से प्रार्थना करनी चाहिये। प्रेमको गुप्त रखना तो अच्छा ही है। चेष्टा अवश्य करनी चाहिये; इसपर भी प्रकट हो जाय तो भगवान्की मर्जी, उसका उपाय भी क्या और चिन्ता भी क्यों ?

५—ज्ञानीको मायाकृत विकार होना सम्भव नहीं है। गीतोपदेश सुननेके बाद भी जो अर्जुनमें मोहादि विकारोंके होनेकी कथा आती है, इसमें यही समझना ठीक मालूम होता है कि वह सब बातें लीलामात्र स्वाँगकी तरह थीं। ब्राह्मणवाले प्रसङ्गमें सम्भवतः उनको यह दिखाना था कि अभिमान—घमण्ड करना बहुत बुरा है, भगवान्के सामने अर्जुनजैसोंका भी अभिमान नष्ट हो गया तो फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या है ? बाहरी चरित्रोंसे यह पता लगाना कि अमुक व्यक्तिको ज्ञान हुआ था या नहीं, असम्भव है। गीताका उपदेश सुननेके बाद भी अर्जुनको ज्ञान नहीं हुआ था, ऐसा मानना मेरी समझमें ठीक नहीं है।

६—श्रीव्यासजी महाराज तो स्वयं आनन्दकी मूर्ति ही थे, उनको क्या अशान्ति हो सकती है ? फिर गीता-जैसे ज्ञानमय ग्रन्थकी रचना करनेके बादका तो प्रश्न ही क्या ? रही भागवतकी बात, सो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीमद्भागवत भक्तिप्रधान ग्रन्थ है ही, अपने विषयमें वह भी स्तुतिके योग्य ही है। ग्रन्थके माहात्म्यमें ऐसी बातोंका रूपक ग्रन्थका महत्त्व समझानेके लिये लिखा जाया करता है। कथाका अभिप्राय लेना चाहिये। केवल अक्षरार्थको लेकर आलोचना करनेसे तर्ककी सीमा नहीं है। यदि आप पुराणोंमें गीतामाहात्म्यको पढ़ना आरम्भ करें तो उसकी तुलनामें भागवतका माहात्म्य अधिक नहीं रहेगा।

७—गीता अ० ६ श्लोक ९ से १४ तक एवं २४ से २६ तकमें बताया हुआ साधन संसारी झंझट छोड़कर लगातार कई दिनोंतक करना अयुक्ति-संगत या अशास्त्रसम्भव तो नहीं है परन्तु साधकसे ऐसा होना सहज बात नहीं है। यदि किसीका स्वभाव ही ऐसा बन जाय और किसी प्रकारके विघ्न बिना ही ऐसा साधन कोई कर सके तो बहुत आनन्दकी बात है; परन्तु कोई हठसे ऐसा करनेकी चेष्टा करे तो हो नहीं सकता, क्योंकि कभी नींद सतावेगी, कभी शरीर अकड़ने लगेगा और कभी मन चक्कर लगाना आरम्भ कर देगा और यदि ऐसा हुआ तो फिर वह साधन कहाँ रहा? भगवान्‌ने जो युक्ताहारविहारकी बात कही है, वह बहुत ही ठीक है। साधारण नियम तो ऐसा ही होना चाहिये; फिर यदि किसीका स्वभाव ऐसा बन जाय कि दस-पन्द्रह दिनोंतक लगातार एक आसनसे बैठ सके, बिना भोजन और जलपानके रह सके, निद्राकी आवश्यकता ही न हो तो उसके लिये वही युक्त है, क्योंकि युक्त शब्दका अर्थ भी तो कम व्यापक नहीं है; जिसकी प्रकृतिके जो उपयुक्त हो, उसके लिये वही युक्त हो जायगा।

८—नाम-जापकोंसे भी जो मिथ्या-भाषणादि दोष होते हुए देखनेमें आते हैं, इसका कारण भगवान् और उनके नामका प्रभाव न जानना और विश्वासका न होना तो मुख्य ही है परन्तु सकाम भाव भी उन्नतिमें रुकावट डालनेवाला ही है। विश्वासकी जाँचके लिये जान-बूझकर प्राणोंको सङ्कटमें डालनेकी आवश्यकता नहीं। विश्वासकी जाँच तो मनुष्य पद-पदपर कर सकता है, जिस मनुष्यको भगवान्‌के नाम-स्मरणके साथ-साथ यह दृढ़ विश्वास होगा कि भगवान् सर्वज्ञ हैं, सर्वशक्तिमान् हैं, सर्वव्यापी हैं, परम न्यायकारी हैं, वह कोई भी ऐसा कार्य कैसे कर सकता है जो भगवान्‌की आज्ञाके विरुद्ध हो?

९—मेरी समझमें पवित्र तीर्थ-स्थानोंमें जाकर वहाँ रहकर अपना समय भगवान्‌के भजन-स्मरणमें लगाना तो बहुत ही उत्तम है, परन्तु हठसे 'अनशन-व्रत' आदि करनेमें विशेष लाभ नहीं दीखता, क्योंकि भगवान् हठ नहीं चाहते, सच्चा प्रेम और विश्वास चाहते हैं। भगवान्‌के प्रेमकी भिक्षा तो कहीं भी करनेमें हानि नहीं है, फिर तीर्थोंमें तो जाना ही इसीलिये होना चाहिये। वृन्दावन-सेवाकुञ्जके विषयमें मेरा कोई अनुभव नहीं है; मैं इसका जानकार ही नहीं, तब अपनी धारणा क्या बतलाऊँ? यदि किसीका सच्चा विश्वास हो तो ऐसा होना मेरी समझमें असम्भव नहीं है।

१०—तीव्र साधनकी महिमा तो सभी शास्त्र कहते हैं। जहाँतक हो सके साधकको अपना साधन तीव्रसे भी तीव्र बनाना चाहिये। पर तीव्र साधनका अर्थ क्या है, इसे भलीभाँति समझनेकी आवश्यकता है। बिल्वमङ्गलकी भाँति आँखोंको फोड़ लेना या किसी प्रकारका निमित्त बनाकर प्राणोंका त्याग कर देना तीव्र साधनका उदाहरण नहीं है। तीव्र साधनमें उदाहरण लेना चाहिये भक्त प्रह्लादका या भक्त

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ध्रुवका। भगवत्-शरणागतिमें प्राणोंकी ममताको तो स्थान ही नहीं है, फिर भक्तको भय हो ही कैसे सकता है? प्रह्लादमें आपको सब-के-सब उदाहरण एक ही जगह मिल जायँगे। जान-बूझकर आत्महत्या करनेका प्रयत्न करना निर्भयता या प्राणोंके मोहका अभाव नहीं है। इसकी परीक्षा तो अपने आप न्याययुक्त प्राप्त हुए प्राणसङ्कटके समय ही हो सकती है। गीता-रहस्यकारने आत्मज्ञानके लिये जल्दी करनेके लिये किस उद्देश्यसे कहा है, यह तो मुझे मालूम नहीं; पर मेरी समझमें तो मनुष्यको अपना साधन तीव्र-से-तीव्र बनाना चाहिये। इसमें शिथिलता करना किसी तरह भी लाभप्रद नहीं होता। हाँ, यह बात अवश्य है कि साधनका फल मिलनेमें देर होती देखकर ऊबना कभी नहीं चाहिये। फलके लिये जल्दबाजी करनेवाला साधक भूल कर सकता है। प्रश्न ७ में बताया हुआ ध्यानसहित निरन्तर जप तीव्र साधन कहा जा सकता है, इसमें कोई विरोध नहीं है।

आपने प्रश्न ७ और ९ का उत्तर शीघ्र लिखनेके लिये अनुरोध किया था, पर स्वर्गाश्रममें समय कम मिलनेके कारण वैसा नहीं हो सका।

भक्त-गाथा

रसिक भक्त चतुर्भुजदासजी

(लेखक—श्रीगुरांदित्ताजी खन्ना)

कुम्भनदासजी श्रीनाथजीके साथ खेलते थे। एक दिन कुम्भनदासजीको श्रीगोवर्धननाथजीने चार भुजा धारण करके दर्शन दिया। उसी दिन कुम्भन-दासजीके घरमें पुत्र पैदा हो गया, इसलिये उन्होंने उसका नाम चतुर्भुजदास रक्खा। यह बात कुम्भन-दासजीकी वार्तामें लिखी है।

जब चतुर्भुजदास ग्यारह दिनके हुए तो कुम्भनदास-जी उन्हें श्रीगोसाईंजीके पास ले गये और नाम-स्मरण करवाया। जब चतुर्भुजदास ४१ दिनके हुए तो उन्हें श्रीगोसाईंजीसे निवेदन करवाया। इस दिनसे श्रीनाथजीने चतुर्भुजदासमें इतनी सामर्थ्य दे दी कि जब इच्छा हो तो मुग्ध बालक बन जायँ और जब इच्छा हो तो बोलने-चालने एवं सब अलौकिक बातें करने लग जायँ। जब कुम्भनदासजी एकान्तमें बैठते तो चतुर्भुजदास उनसे भगवद्वार्ता करते, पूछते और पद गाने लगते। जब कोई लौकिक पुरुष आ जाता तो वह मुग्ध बालक बन जाते। जब श्रीनाथजी इच्छा करते, चतुर्भुजदास-को खेलनेके लिये साथ ले जाते। चतुर्भुजदास, जिस-जिस लीलाके दर्शन करते, उस-उसके पद गाते।

ऐसे चतुर्भुजदासजी भगवत्-कृपापात्र थे।

(२)

एक दिन श्रीनाथजी एक व्रजवासीके घर माखन-चोर बनकर पधारे। साथमें चतुर्भुजदासको भी लेते गये। वहाँ एक व्रजवासीकी कन्याने चतुर्भुजदासजीको तो देख लिया, पर श्रीनाथजी भाग गये। व्रजवासीकी कन्याने चतुर्भुजदासजीको पकड़ लिया और पीटा। चतुर्भुजदासजी श्रीनाथजीके पास गये और कहने लगे—'महाराज! मुझे तो खूब पिटवाया।' श्री-नाथजी बोले—'तुझमें सामर्थ्य अच्छी न थी। तू क्यों न भाग आया।'

ऐसे चतुर्भुजदासजी, जो श्रीनाथजीकी अन्तरङ्ग लीलामें भाग लेते थे, उनकी वार्ता क्या कहें?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(३)

जिस दिनसे चतुर्भुजदासजीको प्रथम लीलाका अनुभव हुआ, उसी दिनसे सर्वव्यापी वैकुण्ठ-सम्बन्धी लीला सर्वत्र दीखने लगी। यह सामर्थ्य श्रीगोवर्धन-नाथजीने कृपा करके उनको दे रक्खी थी। जब कुम्भनदासजीको श्रीनाथजीके पोढवेके दर्शन हुए तो वह यह कीर्तन गाने लगे—

वे देखो बरत झरोखन दीपक
हरि पोढ़े ऊँची चित्रसारी।

सुनते ही चतुर्भुजदासजी बोले—

सुंदर बदन निहारन कारन
बहुत जतन राखे कर प्यारी।

कुम्भनदासजीने निश्चय किया कि इन्हें श्रीगोसाईं-जीकी कृपासे सम्पूर्ण अनुभव हो गया है, इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने श्रीगोसाईंजीकी बहुत [illegible]ा जानी।

इस दिनसे चतुर्भुजदास कहीं जायँ, अथवा न जायँ; जल्दी आयें अथवा देरसे आयें, कुम्भनदासजी उन्हें कुछ न कहते। जान लेते कि श्रीनाथजीके संग कहीं खेलते होंगे।

चतुर्भुजदासजी ऐसे भगवत्-कृपापात्र भगवदीय थे।

(४)

एक दिन चतुर्भुजदासजीने श्रीगोवर्धननाथजीके शृङ्गारके दर्शन किये। उस समय श्रीगोसाईंजी आरती दिखा रहे थे। चतुर्भुजदासजीने निम्नाङ्कित पद गाया—

सुभग सिँगार निरख मोहनको,
के दरपन कर पियहि दिखावे।
आपन नेक निहारिये बलि जाऊँ,
आजकी छबि कछु कहत न आवे॥

तदनन्तर श्रीगोसाईंजी गोविन्दकुण्डपर पधारे। वहाँ एक वैष्णवने पूछा—'महाराज! आज चतुर्भुज-दासने जो यह गाया कि 'आजकी छबि कछु कहत न आवे'—यह क्या बात है? आप तो नित्य ही शृङ्गार करते हैं और आरती दिखाते हैं। आजके पदका रहस्य मैं बिल्कुल नहीं समझ सका।

श्रीगोसाईंजी बोले—'चतुर्भुजदासने जो दूसरा पद गाया था, वह यह था—

माई री आज और काल और छिन-छिन प्रति और-और···

पद सुनकर वैष्णवने निवेदन किया—'महाराज! भगवल्लीला तो नित्य है और सर्वत्र है, अतः चतुर्भुज-दासने 'और-और' क्यों कहा? श्रीगोसाईंजीने आज्ञा की—'भगवत्-लीलामें यही विलक्षणता है कि वह नित्य है और क्षण-क्षणमें नयी-से-नयी दिखायी देती है। लीलास्थ जीवोंको और लीलाके दर्शन करनेवालोंको वह क्षण-क्षणमें नयी लगती है एवं नयी रुचि पैदा करती है।

गोपालदासजीने वल्लभाख्यानके चौथे 'कड़वा' की पाँचवीं टुकमें गाया है—

एक रसना केम कहूँ गुन प्रगट विविध विहार।
नित्य लीला नित्य नौतम, श्रुति न पामें पार॥

ऐसी भगवल्लीला है, सुनकर वैष्णव बहुत प्रसन्न हुआ।

चतुर्भुजदास ऐसे कृपापात्र थे, उन्हें नित्यकी लीलाका सारा अनुभव होता था।

(५)

एक दिन श्रीगोसाईंजी श्रीगोकुलजीमें विराज रहे थे और श्रीगिरिधरजी आदि सब बालक श्रीजीद्वारमें विराज रहे थे। उस समय वहाँ रासधारी आ गये। तब श्रीगोकुलनाथजीने श्रीगिरिधरजीसे आज्ञा लेकर पारसोली-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में रास शुरू करवा दी, रासमें खूब गायन हुआ। फिर श्रीगोकुलनाथजीने चतुर्भुजदासजीको आज्ञा की कि 'आप भी कुछ गाइये।' चतुर्भुजदासजी बोले—'हमारा गायन सुननेवाले श्रीनाथजी पधारे नहीं हैं, अतः हम किस प्रकार गावें।' श्रीगोकुलनाथजी बोले—'अभी पधारते हैं।' श्रीगोकुलनाथजीकी इस बातको सत्य करनेके लिये श्रीनाथजी जागकर और श्रीगिरिधरजीको जगाकर पारसोली पधारे। श्रीनाथजी और श्रीगिरिधरजीके दर्शन केवल श्रीचतुर्भुजदास और श्रीगोकुलनाथजीको हुए, अन्य किसीको नहीं। श्रीनाथजीके दर्शन करके चतुर्भुजदासजी गाने लगे। जब बहुत ही अधिक सुख हुआ, रात बहुत बीत गयी, उस समय चतुर्भुजदासजीने गाया—

पहला पद—

अद्भुत नट-भेस धरे जमुनातट स्याम सुंदर
गुननिधान गिरिवरधर रास-रंग-राचे।

दूसरा पद—

प्यारी ग्रीवा भुज मेली, नृत्यत प्रिया सुजान

ऐसे-ऐसे चतुर्भुजदासने बहुत पद गाये, फिर रास हुआ और उसमें खूब आनन्द आया।

श्रीगिरिधरजीने श्रीनाथजीको रात्रिमें जागते रहनेके कारण प्रातःकाल न जगाया। इतनेमें श्रीगोसाईंजी श्रीगोकुलजीसे आ गये और पूछने लगे—'कौन समय है?' श्रीगिरिधरजी बोले—'श्रीनाथजी जागे नहीं। रात्रि-समय रासमें जागते रहे थे।' श्रीगोसाईंजी बोले—'श्रीनाथजी तो सदा ही रास करते हैं और सदा ही जागते रहते हैं। शङ्खनाद करवाइये।' श्रीगिरिधरजीने शङ्खनाद करवाया। तब श्रीनाथजी जाग उठे। फिर श्रीगोसाईंजीने श्रीगोकुलनाथजीको आज्ञा की कि 'इस प्रकार आग्रह करके श्रीनाथजीको नहीं पधरवाना चाहिये। वह तो सदा अपनी इच्छासे रास करते हैं। विनय करके पधरवाना ठीक नहीं है।'

चतुर्भुजदास, ऐसे कृपापात्र थे कि श्रीनाथजीके सिवा और किसीके आगे गाते ही न थे।

(६)

एक दिन श्रीगोसाईंजीने चतुर्भुजदासजीको आज्ञा की कि 'अप्सराकुण्डपर जाकर रामदास भीतरियाको बुला लाओ और फूल लेते आओ। चतुर्भुजदासजीने रामदास भीतरियाको भेज दिया और आप फूल चुनने लग गये। फूल चुनकर जब आ रहे थे तो उसी समय श्रीगोवर्धन-पर्वतकी कन्दरासे श्रीनाथजी स्वामिनीजीसहित पधारे और स्वामिनीजीने मनमें यह विचार किया कि यह लीला कोई नहीं जानता। इतनेमें चतुर्भुजदासजीने उनका दर्शन कर लिया और यह पद गाया—

पहला पद—

गोवरधन गिरि सघन कंदरा
रैन निवास कियो पिय प्यारी।

दूसरा पद—

रजनी राज कियो निकुंज नगरकी रानी।

पद सुनकर श्रीस्वामिनीजी बहुत प्रसन्न हुईं। चतुर्भुजदासजी फूल लेकर श्रीगोसाईंजीके पास गये। चतुर्भुजदासजी ऐसे कृपापात्र थे कि श्रीनाथजी तथा श्रीस्वामिनीजीके मनकी बात भी जान लेते थे।

(७)

एक बार श्रीगोसाईंजी परदेस पधारे हुए थे। तब श्रीगिरिधरजीकी यह इच्छा हुई कि यदि श्रीनाथजीको अपने घर मथुरामें पधरावें तो ठीक है। इससे उन्होंने श्रीनाथजीकी आज्ञा लेकर फाल्गुन कृष्ण ६ को

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शयनके बाद श्रीनाथजीको मथुरामें पधरवाया, और फाल्गुन कृष्ण ७ को बड़ा भारी उत्सव किया, घरमें जो कुछ भी था सब अर्पण कर दिया, परन्तु श्रीकमला बेटीने एक नथ घरमें रख ली। वह बेटी बच्ची थी, इससे कुछ समझती न थी। श्रीनाथजीने वह नथ भी माँग ली, कारण कि श्रीगिरिधरजीने सर्वस्व अर्पण करनेकी प्रतिज्ञा की थी। उस प्रतिज्ञाको सत्य करनेके लिये ही श्रीनाथजीने ऐसा किया। चतुर्भुजदासजी नित्य श्रीगिरिराजपर बैठकर विरह और हिलगके पद गाते। श्रीनाथजी सदा सन्ध्या-समय गौवोंके साथ पधारते और दर्शन देते। वैशाख शुदी १३ की सन्ध्याको उन्होंने यह पद गाया—

श्रीगोवरधनवासी साँवरे लाल ! तुम बिनु रह्यो न जाय हो।

पदकी अन्तिम तुक श्रीनाथजीने पधारते हुए सुनी। करुणासे व्याकुल हो गये और मनमें कहने लगे—'सदा यहाँ पधारेंगे।' भक्तका दुःख देखकर श्रीनाथजीसे रहा न गया।

जब रात्रि एक पहर रही तो श्रीनाथजीने वैशाख शुक्ल १४ के दिन श्रीगिरिधरजीको आज्ञा की कि 'आज गोवर्धन-पर्वतपर राजभोग आरोगेंगे। जब श्रीगिरिधरजीने मंगला करवाकर श्रीनाथजीको पधरवाया तो पहले मनुष्य भेजकर मन्दिर साफ करवाया, इससे श्रीनाथजीको देर हो गयी। फलतः राजभोग और शयन-भोग एक ही समयमें करने पड़े। उस दिनसे आज-तक नरसिंह-चतुर्दशीके दिन श्रीनाथजी दो समय राजभोग आरोगते हैं। एक नित्यके समय और दूसरा शयन-भोगके समय।

चतुर्भुजदासजी श्रीनाथजीके ऐसे कृपापात्र थे कि उनके बिना श्रीनाथजी रह नहीं सकते थे।

(८)

एक दिन श्रीचतुर्भुजदासजी श्रीगोसाईंजीके साथ श्रीगोकुलजीमें गये और श्रीनवनीतप्रियाजीके दर्शन किये। बाललीलाके तथा पालनाके कीर्तन किये एवं दर्शन करके गोपालपुर आ गये। वहाँ कुम्भनदासजी-ने पूछा—'तुम कहाँ गये थे ?' आप बोले—'श्रीगोकुल-जीमें गया था ?' कुम्भनदासजी बोले—'प्रमाणमें क्यों चले गये।' तब चतुर्भुजदासजीने श्रीगोसाईंजीसे पूछा कि प्रमाण-प्रकरण-लीला और प्रमेय-प्रकरण-लीलामें क्या भेद है ? श्रीगोसाईंजी बोले—'भगवल्लीला सब एक समान है। कुम्भनदासजीकी किशोरलीलामें बहुत आसक्ति है। भगवल्लीलामें भेद समझते नहीं। श्रीठाकुरजी विरुद्धधर्माश्रय हैं। एककालावच्छिन्न श्री-प्रभु सर्वत्र सब लीला करते हैं। यह सुनकर चतुर्भुज-दासजी बहुत प्रसन्न हुए।

यह चतुर्भुजदास श्रीगोसाईंजीके बहुत कृपापात्र थे। इनसे श्रीगोसाईंजी कुछ भी गुप्त नहीं रखते थे।

(९)

चतुर्भुजदासजीके बाद उनके पुत्र राघवदास थे। जब राघवदासको भगवल्लीलाका अनुभव हुआ तो उन्होंने एक धमार गायी—

ए चल जायें जहाँ हरि क्रीड़त गोपिन संगा।

जब इस धमारकी दस तुकें पूरी हो गयीं तो राघवदासजीकी देह छूटी और भगवल्लीलामें प्रवेश हुआ।

राघवदासजीके बाद राघवदासजीकी पुत्रीने डेढ़ तुक बनायी और धमार पूरी की।

ऐसे चतुर्भुजदासजी थे कि जिनके पुत्र और पौत्री भी भगवदीय थे। उनकी वार्ता कहाँतक लिखें ?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

* श्रीहरिः *

भगवत्-प्रार्थना

हालके भयानक भूकम्पसे जिन हजारों नर-नारियोंकी करुणापूर्ण स्थितिमें मृत्यु हो गयी, जिनका अन्त्येष्टि संस्कार भी न हो पाया, उनकी परलोकगत आत्माको शान्ति मिले, पुनः इस प्रकारकी दैवी दुर्घटना न हो और बचे हुए विपत्तिग्रस्त नर-नारी शीघ्र दुःखसे छूटकर सुखको प्राप्त करें, इसके लिये हमलोग संसारकी सम्पूर्ण जनतासे आग्रहपूर्वक अपील करते हैं कि सब लोग आगामी महाशिवरात्रि सोमवार ता० १२ फरवरीके दिन अपने-अपने धार्मिक विश्वास और विधिके अनुसार सामूहिक या व्यक्तिगत रूपसे श्रीभगवान्‌से प्रार्थना करें। सच्चे हृदयसे भगवान्‌के सम्मुख पुकार करना और उनकी शरण होना ही हम असहाय मनुष्योंके लिये इस प्रकारकी महान् दैवी विपत्तिसे बचने और सब प्रकारसे कल्याण लाभ करनेका सहज उपाय है। अतएव हमें आशा है कि सब लोग हमारी अपीलको स्वीकारकर उस दिन भगवत्-प्रार्थना करेंगे।

साथ ही हमारी यह भी अपील है कि सभी लोग हमारे उन गृहहीन और अकिञ्चन भूकम्प-पीड़ित भाइयोंकी जाति, धर्म और समाजका भेद छोड़कर पूर्णरूपसे सहायता करें। हमारी समझसे श्रीभगवान्‌की सेवाका यह बहुत ही उत्तम साधन है।

(जगद्गुरु) श्रीशङ्कराचार्य, पुरी
मदन मोहन मालवीय, काशी
रा० ब० रामशरणदास, सी० आई० ई०, लाहौर
(सर) आगा खाँ, दिल्ली
(सर) मनमोहनदास रामजी, बम्बई
आनन्दस्वरूप (साहेबजी महाराज, दयालबाग) आगरा
(महात्मा) नारायण स्वामी (आर्य सार्वदेशिक सभा) दिल्ली
प्रमथनाथ तर्कभूषण, बंगाल
देवनायकाचार्य (वर्णाश्रम स्वराजसंघ) काशी
एन० सी० केलकर, पूना
(रायबहादुर) रामदेव चोखानी, कलकत्ता
श्रीनिवासदास पोद्दार, कलकत्ता
(जगद्गुरु) स्वामी अनन्ताचार्य, श्रीकांची
स्वामी ज्ञानानन्द (भारतधर्ममहामण्डल) काशी
(राजा) नरेन्द्रनाथ, लाहौर
(सर) सुन्दरसिंह मजीठिया, अमृतसर
(महात्मा) हंसराज, लाहौर
(साधु) टी० एल० वास्वानी, हैदराबाद
(डा०) भगवानदास, काशी
(गोस्वामी) गणेशदत्त (सनातनधर्म प्रतिनिधि सभा) लाहौर
जयेन्द्रराय भगवानलाल दूरकाल, अहमदाबाद
आई० जे० तारापोरवाला, बम्बई
(सर) बद्रीदास गोयनका, कलकत्ता
राजेन्द्रप्रसाद, पटना
लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर, नासिक

भारतवर्षके प्रत्येक गाँवमें भगवत्प्रार्थना होनी चाहिये। जो लोग शिवरात्रिको न कर सकें, वे होलीके दिन श्रीचैतन्य महाप्रभुकी जन्मतिथिके अवसरपर भगवत्-प्रार्थना करें। इसके लिये श्रीभगवन्नाम-संकीर्तन बहुत अच्छा उपाय है।

—सम्पादक—कल्याण।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीहरिः

श्रीगीता-परीक्षा फल संवत् १९९० वि०

प्रथमा

क्रम-संख्या	नाम उत्तीर्ण परीक्षार्थी	केन्द्र	पुरस्कार
	प्रथम श्रेणी		
*४८६	जयदेव झा ...	रहीमपुर (मुंगेर)	११)
२५२	वासुदेवसिंह ...	पलिया (आजमगढ़)	६)
४०५	शान्तिदत्त पाण्डेय ...	अन्धना (कानपुर)	४)
८५२	जयराम राय ...	अजमतगढ़ ... (आजमगढ़)	३)
५	गोवर्धनदास ...	लक्ष्मणझूला ... (देहरादून)	३)
६	रामकृष्ण मिश्र ...	,, ...	३)
२३	ब्रजनाथ द्विवेदी ...	बिगही (बलिया)	३)
२७	जगेश्वरराम ...	,, ,, ...	३)
४०१	कपिलदेव पाण्डेय	संवरा ,,	३)
६००	इन्द्रचन्द्र पैंगोरिया	आगरा ...	३)
७१६	देवशरण पाण्डेय ...	बलिया ...	३)
८५०	नारायणदत्त द्विवेदी	अयोध्या (फैजाबाद)	३)
९२७	यमुनाप्रसाद ठाकुर	सागर ...	३)
५२६	गोदावरीबाई ...	सावित्री-विद्यालय, कलकत्ता	३)
५४१	परमेश्वरी देवी ...	,, ...	३)
३४	गंगाप्रसाद ...	बिगही (बलिया)	२)
३६	सहदेवराम ...	,, ,,	२)
४२	रामप्रसाद हटवाल	शान्तिसदन कर्ण-प्रयाग (गढ़वाल)	२)
५३	लालचन्द्र गणेशका	गणेशबाडी (आसाम)	२)
६५	लीलाबाला चांगमाई	,, ,,	२)
६६	गोविन्दीबाई ...	,, ,,	२)
६८	ज्ञानेश्वरीबाई ...	,, ,,	२)
१३४	बिहारीलाल शर्मा	शेगाँव (बुलढ़ाणा)	२)
१६६	शिवाकान्तोपाध्याय	मंझरिया (चम्पारण)	२)
१७०	धनुर्धारी शर्मा ...	,, ,,	२)
२२७	अनन्तश्रीनिवास नाडकर्णी	अंकोला (उत्तर कनाडा)	२)
२३३	गोपालकृष्ण पै ...	अंकोला (उत्तर कनाडा)	२)
२३७	नारायणपांडुरंग कामत	,,	२)
२५१	कल्पनाथसिंह ...	पलिया (आजमगढ़)	२)
३७३	रामबालकलाल ...	हिराजपट्टी ,,	२)
४२३	वागीश्वर वाजपेयी	बिठूर (कानपुर)	२)
४४७	श्रीकृष्ण द्विवेदी ...	बड़काराजपुर(आरा)	२)
४६०	मुंशी दयालसिंह ...	बादी (पटना) ...	२)
४८२	महन्थ देवीकान्तदास	रहीमपुर (मुंगेर)	२)
५५४	महेशानन्द शर्मा	मुनिकी रेती (देहरादून)	२)
५६३	ब्रजनाथप्रसाद ...	बिजयराघवगढ़ (जबलपुर)	२)
६३९	शिवचरण शर्मा ...	दर्शनविद्यालय काशी	२)
६४७	सूर्यनारायण मिश्र	झंझारपुर(दरभंगा)	२)
६५०	कन्तलाल वर्मा ...	,, ,,	२)
६५१	सीताराम झा ...	,, ,,	२)
६७२	कर्मदेव मिश्र ...	पकरडीहा(गोरखपुर)	२)
६९१	राजकुमारी देवी ...	खगडिया (मुंगेर)	२)
६९५	हरदेव शर्मा उपाध्याय	सिकन्दराराऊ (अलीगढ़)	२)
७३७	लक्ष्मणप्रसादजी निगम (हाईकोर्ट वकील)	सतना (रीवाँ)	२)
७४१	कुमारिका निर्मला	बम्बई	२)
७५४	रामलाल बड़ौनियाँ	सागर	२)
८२१	सूर्यनारायण तिवारी	देवघर (दुमका)	२)
८३१	घनानन्द जोशी ...	दर्शनविद्यालय,काशी	२)
८७६	ब्रह्मदत्त द्विवेदी ...	पकरडीहा(गोरखपुर)	२)
८८२	रामनारायण ...	राऊ (मालवा)	२)

* रजतपदक भी दिया जायगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मध्यमा

क्रम-संख्या	नाम उत्तीर्ण परीक्षार्थी	केन्द्र	पुरस्कार
	प्रथम श्रेणी		
*४९	रामप्रसाद शुक्ल ···	बिठूर ···	१५)
८५	जानकीवल्लभ शर्मा	द० वि० काशी	८)
६	अभयजित द्विवेदी	उ० प्र० काशी ···	५)
५	जलेश्वरसिंह ···	,, ···	४)
२८	बैजनाथ पाण्डेय ···	हिराजपट्टी ···	४)
४७	श्यामदेव द्विवेदी ···	बरहज ···	४)
५३	रामचन्द्र द्विवेदी ···	बिठूर ···	४)
५८	रामसेवक पाण्डेय	सिहोरा ···	४)
६८	रमाकान्त झा ···	रहीमपुर ···	४)
७०	नारायणाचार्य ···	मुनिकी रेती ···	४)
७६	रामसुन्दर श्याम ···	विजयराघवगढ़ ···	४)
९९	शुभङ्कर मिश्र ···	खगडिया ···	४)
११८	शान्तिलाल व्यास	बम्बई ···	४)
१२२	वीरेन्द्रनाथ वर्मा	अजमतगढ़ ···	४)
	द्वितीय श्रेणी		
४	दमरा पाण्डेय ···	रेवती ···	३)
१३	महेशप्रतापसिंह ···	उ० प्र० काशी	३)
१७	रामअधारसिंह ···	,, ···	३)
४५	सूरजलाल शर्मा ···	राजगढ़ (ब्यावरा)	३)
४८	रामयतन त्रिपाठी	बरहज ···	३)
६०	नागेन्द्रनाथ त्रिपाठी	बड़काराजपुर ···	३)
७१	वेङ्कटेशाचार्य ···	मुनिकी रेती ···	३)
७२	पुण्डरीकाक्षाचार्य	,, ···	३)
७७	राजपाल ब्रह्मचारी	वृन्दावन ···	३)
१०१	गजराज वर्मा ···	सिकन्दराराऊ	३)
१०३	सन्तबलीप्रसाद	गोरखपुर ···	३)
११२	देवीचरण त्रिपाठी	मन्वना ···	३)
११३	देवनारायण चौबे ···	जनाडी ···	३)
११९	मदनमोहन व्यास	बम्बई ···	३)
१२४	दरबारीलाल अग्निहोत्री	अयोध्या ···	३)
१३०	नलिनीकान्त 'विशारद'	खोपापार ···	३)

उत्तमा (प्रथम खण्ड)

क्रम-संख्या	नाम उत्तीर्ण परीक्षार्थी	केन्द्र	पुरस्कार
	उत्तीर्ण श्रेणी		
६	शुकदेव पाण्डेय ···	हिराजपट्टी (आजमगढ़)	
७	शम्भूनारायण त्रिपाठी	,,	
८	गिरिजाशरण त्रिपाठी	बड़काराजपुर (आरा)	
९	रामहर्ष त्रिपाठी ···	गोरखपुर	

उत्तमा (द्वितीय खण्ड)

१	हीरालालसिंह ···	उदयप्रताप क्षत्रिय कालेज, काशी ···	द्वितीय श्रेणी ···	२१)

पुरस्कार अप्राप्त

प्रथमा

प्रथम श्रेणी—२, ३, ४, ७, १७, १८, २०, २१, २५, ३०, ३९, ४८, ५०, ५१, ५५, ६३, ६७, ६८, ९१, ९९, १०७, १२९, १४२, १४३, १४४, १४८, १५१, १५२, १५३, १५४, १५५, १६७, १६८, १६९, १७१,

* रजतपदक भी दिया जायगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

१६१, १६६, १६७, २०२, २१६, २२६, २२८, २२६, २३२, २३५, २४४, २४८, २४९, २५०, २७६, २९८, २६९, ३४८, ३६५, ३६८, ३७०, ३७४, ३७९, ३८०, ३८१, ३८४, ३८५, ३८६, ३८७, ३८६, ३६०, ३६१, ३६४, ३९६, ३६८, ३९९, ४०३, ४०७, ४०६, ४०७, ४१४, ४१६, ४२०, ४२२, ४२४, ४२६, ४२७, ४२८, ४२६, ४३६, ४४५, ४८१, ४८३, ४८४, ४८५, ४८७, ४८८, ५१४, ५४८, ५४६, ५५०, ५५१, ५५५, ५५६, ५५७, ५५८, ५५६, ५६५, ५६७, ५६८, ५६६, ५९६, ५९९, ६०२, ६०४, ६२२, ६३१, ६३३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४८, ६४६, ६७३, ६७७, ६८१, ६८४, ६८५, ६९०, ७०६, ७०७, ७०८, ७०६, ७१०, ७११, ७१२, ७१३, ७१४, ७१५, ७३८, ७४४, ७४५, ७५५, ८०७, ८०८, ८१९, ८२०, ८२४, ८२५, ८३०, ८४३, ८५३, ८५४, ८५५, ८५६, ८५७, ८५८, ८६०, ८७६, ८८०, ८८३, ८६५, ९०१, ९०५, ६११।

द्वितीय श्रेणी—१, ८, ११, १२, १९, ४१, ४४, ४६, ४७, ४९, ५२, ५४, ७२, ७४, ७५, ९३, ९६, १२७, १२०, १३१, १३३, १३५, १३६, १४०, १४१, १४५, १४९, १५०, १५७, १५६, १७२, १७३, १७४, १७८, १८२, १८६, १८८, १९०, १९२, १६३, १६५, १९८, २००, २०१, २०४, २०५, २०६, २०७, २०९, २१०, २१७, २२०, २२१, २२२, २२३, २२४, २२५, २४५, २७७, २८१, २८६, २९०, ३००, ३१३, ३१६, ३३८, ३३९, ३४६, ३४७, ३५१, ३५३, ३५४, ३५५, ३६६, ३६७, ३७१, ३७२, ३७६, ३७७, ३७८, ३८२, ४१३, ४१५, ४१६, ४१७, ४२१, ४४१, ४४३, ४४६, ४५४, ४७३, ४७८, ४८०, ५१६, ५२०, ५२२, ५२३, ५२७, ५३५, ५३७, ५५३, ६१७, ६२१, ६२४, ६५२, ६५३, ६५४, ६८३, ६८७, ६८६, ७०३, ७०४, ७१८, ७१९, ७२१, ७२९, ७३२, ७४०, ७५६, ७६९, ७७२, ७७३, ७७४, ७७५, ७८७, ८०६, ८१६, ८१८, ८२३, ८२६, ८२८, ८२६, ८३३, ८४०, ८७४, ८७५, ८९६, ८९७, ८९९, ६०६, ९०८ और ९१२।

तृतीय श्रेणी—६७, १२८, १५८, २११, ३५२, ३५९, ४३७, ४४४, ४७२, ५२४, ५२८, ५३१, ५३४, ५३६, ६०६, ६१३, ६८२, ७७६ और ८२२।

उत्तीर्ण—२२, २८, ३५, ३७, ३८, ४५, ५६, ७१, ७७, ९४, १०१, १०३, १०८, ११०, १११, ११४, १२२, १२३, १६३, १७५, १७६, १६६, २१२, २१४, २१८, २३४, २३८, २४०, २४१, २५७, २६०, २७३, २८२, २६३, २६५, २६७, ३०८, ३४०, ३४३, ३४५, ३८३, ४०५, ४०८, ४३१, ४३५, ४४०, ४६४, ४६७, ४६८, ४७०, ४७१, ४८९, ५०९, ५३०, ५४०, ५४४, ५५२, ५७२, ६१६, ६२३, ६३२, ६३४, ६३५, ६३६, ६४२, ६४३, ६५५, ६५६, ६५७, ६५८, ७२४, ७३३, ७३५, ७७१, ७७७, ७७६, ७८०, ७८२, ८०३, ८०४, ८१३, ८१४, ८१५, ८३२, ८३४, ८३९, ८४५, ८५९, ८६१, ८६७, ८६८, ६००, ६०३, ६०४, ६०७, ६०६, ६१०, ६१३ और ६२०।

मध्यमा

प्रथम श्रेणी—२७, ३०, ६५, ६६ और ६७।

द्वितीय श्रेणी—१०, १६, ३१, ३२, ५०, ५२, ५७, ७३, ८४, १००, १०४, ११५, ११६, १२६ और १३३।

तृतीय श्रेणी—५५ और १३२।

उत्तीर्ण—३, ७, ८, ११, १४, १५, २३, २५, २६, ५६, ५९, ६१, ६३, ६४, ८०, ८८, १०२, १०५, १०६, १०७, १०८, १०६, ११०, १२० और १२१।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परीक्षकोंके नाम—

प्रिंसिपल पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज एम० ए०, पं० श्रीश्रीधराचार्यजी वेदान्तभूषण, पं० श्रीहाराणचन्द्रजी शास्त्री, प्रो० श्रीलौटूसिंहजी गौतम एम० ए० एल० टी० एम० आर० ए० एस० काव्यतीर्थ, श्रीजयदयालजी गोयन्दका, श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया, श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी एम० ए०, स्वामी श्रीसहजानन्दजी सरस्वती, श्रीप्रिंसिपल बिड़लाकालेज पिलानी, पं० श्रीलीलाधरजी शर्मा, श्रीईश्वरदासजी डागा, पं० श्रीसत्यव्रतजी ब्रह्मचारी, श्रीगोविन्दनारायणजी हार्डीकर वकील, श्रीबद्रीप्रसादजी आचार्य, पं० श्रीगौरीशङ्करजी द्विवेदी साहित्यरत्न, प्रो० श्रीरामबहोरीजी शुक्ल एम० ए० साहित्यरत्न, पं० श्रीगोपालजी शास्त्री दर्शनकेशरी, श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारी, पं० श्रीनन्दकिशोरजी वैद्य, पं० श्रीयतीन्द्रनाथजी झा व्याकरणतीर्थ, श्री 'देव' जी स्वाध्यायी, श्रीसूरजकरणजी व्यास, पं० श्रीगोवर्द्धनजी पुरोहित, पं० श्रीमुनिवरजी मिश्र व्याकरणाचार्य, श्रीयमुनासिंहजी रावत विशारद, पं० श्रीभगवतीप्रसादजी त्रिपाठी एम० ए० एल-एल० बी० विशारद, पं० श्रीसत्यनारायणजी पाण्डेय व्याकरणाचार्य, पं० श्रीरामेश्वरजी शास्त्री विद्यालङ्कार, श्रीरामनरसिंहजी हरलालका, पं० श्रीछेदीलालजी झा 'विशारद', बा० श्रीहरिनारायणसिंहजी वकील, श्रीत्र्यम्बक महादेवजी जोग बी० ए०, पं० श्रीरामनारायणदत्तजी पाण्डेय शास्त्री, श्रीमोहनलालजी गुप्त।

फाल्गुन वदी ११ सं० १९९०

संयोजक

श्रीगीता-परीक्षा-समिति, गोरखपुर

सूचना—पुरस्कारके रुपये तथा प्रमाण-पत्र तीन महीनेके बाद केन्द्र-व्यवस्थापकोंके पास भेज दिये जायँगे। इसे परीक्षार्थियोंमें वितरण करके रसीद कार्यालयमें भेजनेकी कृपा करेंगे।

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY.
Jangamawadi Math, Varanasi
Acc. No. ..... 2937 .....

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीहरिः

परीक्षा-फल श्रीरामायण-प्रसार-समिति, गोरखपुर संवत् १९९० वि०

क्रम-संख्या	परीक्षार्थी नाम	केन्द्र	पुरस्कार
	उत्तमा द्वितीय खण्ड		
२	घासीराम चौबे	सागर	१३)
३	हीरालाल सिंह	उ० प्र० का० काशी	४)
	उत्तमा प्रथम खण्ड		
५१	महादेव सिंह	अयोध्या	१३)
४	रामकृष्णप्रसाद सिंह	बादी	४)
	मध्यमा		
२६३	रामकृष्ण अरोड़ा	दिल्ली	१२)
११३	चन्द्रभानु त्रिपाठी	विजयराघवगढ़	१०)
६६	नेतिराम शर्मा	लहरपुर	६)
	प्रथमा		
७८४	लक्ष्मीप्रसाद	बन्धी	८)
७८३	सुन्दरलाल त्रिपाठी	,,	५)
१११७	धनपति पाण्डेय	गोरखपुर	३)
७१८	जगपति सिंह	सिधौना	२)
८९०	बाबूलाल पाठक	सिहोरा	२)
८८९	मूलचन्द कुड़रिया	,,	२)
	शिशु		
७८४	रामनरेश शर्मा	हाटा	८)
६५४	शारदाप्रसाद सिंह	बंसीपुर	५)
४५	पूरालाल	इन्दौर	३)
३३६	शिवजी शर्मा	बांसोबागी	३)
७८२	महात्मा शर्मा	हाटा	३)
१८	उमाकान्त त्रिवेदी	इन्दौर	२)
१६६	गोविन्दानन्द	निसरपुर	२)
७८५	चन्द्रशेषर शर्मा	हाटा	२)
९६७	रमाशङ्कर	कुक्षी (धार)	२)
१७९०	हीरानन्द पाण्डेय	गोरखपुर	२)

उत्तमा प्रथम खण्ड

द्वितीय श्रेणी—५२ ।

तृतीय श्रेणी—३, ५, ८, १०, १५, १७, २४, २५, ३५, ४६, ५० ।

उत्तीर्ण—२, ९, ११, १२, २०, २६, २९, ३०, ३१, ३९, ४०, ४५ ।

मध्यमा

प्रथम श्रेणी—३, ४४, ७९, ११२, ११४, २२७, २६० ।

द्वितीय श्रेणी—१, ५, ६, ९, १२, १३, २०, २८, ३३, ३४, ३६, ६५, ७५, ८०, ८६, ९९, १०१, १०६, १२४, १२६, १२७, १३०, १३५, १३६, १४३, १४४, १४५, १४६, १५२, १५३, १७०, १७४, १७८, १८३, १८८, १९३, २०२, २०३, २०६, २०७, २०९, २१०, २१२, २१३, २१६, २१७, २२५, २२८, २३४, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४५, २४७, २४९, २५०, २५१, २५२, २५४, २५६, २५७, २५८, २५९, २६१, २६२, २६४, २६५, २६७, २७०, २७३, २७५ ।

तृतीय श्रेणी—१०, ११, १४, १५, ४३, ५०, ५९, ७२, ८८, ९७, १०४, ११८, ११९, १२१, १२९, १४८, १७६, २०४, २०५, २३३, २७६ ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उत्तीर्ण—२४, २५, २६, २७, ३०, ३१, ३७, ४८, ५२, ५५, ५६, ५७, ६७, ६८, ७४, ७७, ८२, ८५, ८९, ९०, १०२, १०९, ११०, १११, ११५, १२२, १४२, १४९, १५०, १६७, १६८, १७२, १७५, १७७, १८६, १९२, २००, २०८, २१८, २१९, २३०, २३५, २३६, २४८, २५३, २६९।

प्रथमा

प्रथम श्रेणी—२, ५, ६, ६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२, ७३, ८५, ९०, ९९, १६१, १६२, २४९, २५०, २५१, २५३, २५४, २५५, २५८, २७६, २७७, २७८, २७९, २८०, २९३, ३०४, ३०६, ३१३, ३१७, ३१९, ३२२, ३२४, ३२५, ३२७, ३२८, ३२९, ३३१, ३४९, ३५६, ३६४, ३६५, ३८५, ३८८, ३९०, ३९५, ३९७, ३९८, ४०१, ४०४, ४०६, ४२५, ४३५, ४३८, ४४०, ४४५, ४४६, ४४८, ४५५, ४६७, ४७०, ४७८, ४८०, ४८१, ४८४, ४८६, ४९०, ४९३, ४९४, ४९४अ ५२८, ५३१, ५३६, ५४७, ५४८, ५४९, ५५७, ५६४, ५८३, ५८७, ५८८, ५९०, ५९४, ६२८, ६३५, ६३६, ६३९, ६४१, ६४५, ६४५ अ, ६५१, ६५२, ६५९, ६६१, ६७६, ६८३, ७२१, ७४१, ७४५, ७७९, ७८०, ७८२, ७८५, ७८६, ७८९, ८२०, ८५४, ८५५, ८६३, ८६५, ८६८, ८८४, ८८५, ९१५, ९१९, ९२७, ९३२, ९३५, ९३७, ९३९, ९४१, ९४६, ९५३, ९९९, १००८, १०११, १०१५, १०१९, १०४४, १०५७, १०७०, १०७६, १०७७, १०७८, १०७९, १०८२, ११०६, ११२०, ११२१ ११२३, ११२४, ११२५, ११२६, ११४६, ११५१, ११५७, ११५८, ११५९, ११६०, ११६९, ११७२, ११७८।

द्वितीय श्रेणी—१, १०, ११, १२, १३, १५, १६, ३६, ५३, ५४, ५५, ५७, ५८, ६०, ६१, ७४, ७५, ७८, ७९, ८०, ८८, ९२, ९६, १०१, १०२, १०४, ११२, ११६, १५३, १६०, १६७, १६८, १६९, १७०, १७१, १७२, १७५, १७८, १७९, १८०, १८१, १८४, १९५, १९८, २०७, २२०, २२५, २२८, २३०, २३२, २३४, २३६, २४४, २५२, २५६, २५७, २९६, २९८, ३०१, ३०५, ३०८, ३१२, ३१५, ३२३, ३२६, ३३२, ३३६, ३३८, ३३९, ३४१, ३४२, ३४३, ३४४, ३४५, ३४६, ३४७, ३४८, ३५१, ३५४, ३५७, ३५९, ३६०, ३६३, ३८३, ३८४, ३८६, ३८७, ३९१, ४०५, ४०७, ४०९, ४३०, ४३२, ४३४, ४३६, ४३७, ४३९, ४४४, ४५०, ४५२, ४५६, ४५८, ४६०, ४६९, ४७१, ४७३, ५११, ५१५, ५२३, ५२७, ५२९, ५३०, ५३२, ५३५, ५४४, ५४६, ५५०, ५५४, ५५८, ५६०, ५६५, ५६६, ५६७, ५८२, ५८६, ५९१, ५९५, ६०६, ६२९, ६३३, ६३८, ६४९, ६५०, ६५३, ६६५, ६६६, ६७५, ६८७, ६८९, ६९०, ६९६, ७००, ७०३, ७०४, ७०५, ७०८, ७१९, ७२२, ७३०, ७३१, ७३२, ७३५, ७३९, ७४०, ७४८, ७७८, ८०८, ८२१, ८५६, ८५८, ८५९, ८६१, ८६२, ८६४, ८६६, ८६९, ८८६, ८८८, ८९२, ८९३, ९०७, ९०८, ९११, ९१२, ९१४, ९२१, ९२२, ९२५, ९२६, ९३०, ९३३, ९३७, ९४२, ९४३, ९४७, ९५०, ९५५, ९५६, ९९०, ९९२, ९९५, ९९८, १००३, १०१४, १०१७, १०२२, १०२४, १०४२, १०४३, १०४८, १०५१, १०५२, १०५९, १०७१, १०७५, १०९०, १०९१, १०९६, १०९७, १०९८, ११०४, ११०८, ११०९, १११०, १११२, ११५०, ११५५क, ११६१, ११६५, ११६६, ११६८, ११७३, ११७५, ११८५।

तृतीय श्रेणी—२७, ३५, ६५, ७७, ९१, ९५, १००, १०८, ११४, १८२, २०८, २१२, २३५, २३७, २३८, २५९, २६३, २६७, २९०, ३२१, ३३०, ३३७, ३४०, ३६१, ३६२, ४१९, ४२०, ४६६, ४७५,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

५१६, ५४३, ५५९, ६३०, ६३४, ६४२, ६६२, ६८०, ६८१, ७०६, ७०९, ७२३, ७२४, ७२५, ७२७, ७३८, ७४३, ७६३, ७६५, ७८१, ८७३, ८७४, ९०९, ९४८, ९८५, १०७४, १०८१, १०८५, १०८७, १०८८, ११४४, ११४५, ११५५ख।

उत्तीर्ण–८, १५४, २०४, २०६, २१८, २२६, २२९, २६२, २६६, २८४, २९२, २९४, ३११, ३१६, ३२१, ४१५, ५१३, ५१९, ५३३, ६३२, ६९१, ७०१, ७२०, ७२६, ७८७, ७९६, ८७१, ९३८, ९४९, ९८४, १००२, १०४५, १०५६, १०६५, १०६७, १०७३, १०८४, ११४९, ११६२।

शिशु परीक्षा

प्रथम श्रेणी–१, २, ४, ५, ७, ९, १०, १३, १४, १५, १६, १७, १८, २४, २६, ३५, ३९, ४१, ४७, ५०, ५८, ६१, ६२, ६४, ६५, ७२, ७५, ७७, ८२, १०४, १०६, १०७, १०८, १०९, ११२, ११३, ११४, ११६, ११७, ११८, ११९, १२१, १२२, १२३, १२४, १२७, १२८, १२९, १३१, १३२, १३४, १४४, १४८, १५३, १६०, १६३, १६४, १६६, १७०, १७१, १७२, १७३, १७४, १७५, १७९, १८४, १८६, १८८, १८९, १९४, २२६, २८१, २८६, २८८, २८९, २९१, २९३, २९५, २९६, २९८, ३०२, ३०३, ३०५, ३०६, ३०८, ३०९, ३१०, ३११, ३१२, ३१५, ३१७, ३१८, ३२१, ३२३, ३७६, ४०७, ४१३, ४१५, ४१६, ४१७, ४१८, ४२०, ४३३, ४४२, ४४३, ४५२, ४६४, ४६५, ४८३, ४८६, ५१७, ५२५, ५२६, ५२८, ५३०, ५३२, ५३५, ५३६, ५३८, ५३९, ५४१, ५५१, ५७२, ५९७, ६००, ६०१, ६०३, ६०४, ६१२, ६१६, ६५६, ६५९, ६७२, ६७९, ६८०, ६८४, ६८६, ६८७, ६८८, ६८९, ६९२, ६९५, ७००, ७०३, ७०६, ७०९, ७५३, ७५४, ७५६, ७६२, ७६४, ७६६, ७७२, ७७८, ७८६, ७८७, ७८८, ७८९, ८०१, ८०२, ८०३, ८०४, ८११, ८१२, ८१३, ८१५, ८१८, ८६२, ८७२, ८७६, ८९६, ९२३, ९२५, ९४५, ९४८, ९६८, ९७३, ९७७, ९७९, ९८१, ९८२, ९८५, ९८७, ९९५, ९९६, ९९७, ९९८, ९९९, १००६, १००७, १०१०, १०११, १०१४, १०१८, १०२१, १०६९, १०७०, १०७१, १०७२, १०७४, १०८५, १०८७, १०८९, १०९०, १११२, १११३, ११३९, ११४५, ११४६, ११४८, ११५०, ११५१, ११५२, ११५३, ११५७, ११५८, ११५९, ११७०, ११७१, ११७२, ११७३, ११७९, ११९०, ११९८, ११९९, १२००, १२२५, १२५१, १२५२, १२६३, १२६६, १२६७, १२६८, १२७१, १२७४, १२७६, १२७७, १२९५, १३११, १३१७, १३२०, १३२४, १३२५, १३२६, १३२७, १३२८, १३२९, १३३०, १३३९, १३४०, १३४२, १३४३, १३६७, १४२६, १४३९, १४४१, १४४२, १४४७, १४४९, १४५१, १४६७, १४९८, १४९९, १५१३, १५२४, १५५६, १५६२, १५६६, १५८०, १५८९, १५९५, १५९६, १६१९, १६२०, १६२१, १६२२, १६२७, १६३१, १७०२, १७१५, १७२४, १७४९, १७५०, १७५४, १७५५, १७५६, १७६२, १७६३, १७६४, १७७०, १७७५, १७८९, १८१८, १८२९, १८३१, १८५२, १८५६।

द्वितीय श्रेणी–३, २७, २८, ३०, ३३, ३७, ४९, ५२, ५३, ५९, ६९, ८४, ८५, ८६, ९०, ११५, १४९, १५०, १५१, १६१, १६५, १७६, १७८, १८७, १९०, १९१, १९३, २०१, २०४, २०८, २१३, २१४, २१९, २२१, २८०, २८२, २८७, २९०, २९४, ३१४, ३२०, ३३१, ३३३, ३३९, ३४७, ३४९, ३५०, ३५६, ३६०, ३६४, ३६९, ३७५, ३९३, ४०२, ४०३, ४०४, ४२३, ४३५, ४४०, ४४१, ४४६, ४४७, ४४८, ४५४, ४५६, ४५७, ४५८, ४५९, ४६०, ४६१, ४६२, ४६३, ४६६, ४६७, ४६८, ४७०, ४९४, ४९८, ५०३, ५०९, ५१४, ५१६, ५२२, ५२४, ५२७, ५२९, ५३७, ५५२, ५५६, ५५७,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

५५८, ५५९, ५६५, ५७१, ५७५, ५७६, ५७८, ५७९, ५८१, ५८९, ५९५, ५९६, ५९८, ६०२, ६१३, ६१५, ६१७, ६१८, ६१९, ६३४, ६४५, ६४७, ६४९, ६५१, ६५८, ६७४, ६८१, ६८२, ६८३, ६८५, ६९३, ७०७, ७०८, ७१०, ७१२, ७१५, ७१९, ७२४, ७२५, ७२७, ७२९, ७३१, ७५०, ७५२, ७५८, ७६८, ७६९, ७७४, ७८३, ८०७, ८०८, ८१७, ८२०, ८६८, ८६९, ८८२, ८८८, ९४०, ९४७, ९५०, ९५२, ९५३, ९५७, ९६२, ९६४, ९६५, ९६६, ९७०, ९७१, ९७२, ९७६, १०१७, १०१९, १०२४, १०२८, १०३४, १०३७, १०३९, १०६०, १०६३, १०६४, १०६६, १०६७, १०७६, १०७८, १०७९, १०८०, १०८१, १०८२, १०८३, १०८४, १०९९, ११००, ११०५, १११०, ११३३, ११४०, ११४१, ११४२, ११४३, ११४४, ११४७, ११५५, ११५६, ११६१, ११६८, ११६९, ११७४, ११७८, ११८८, १२०८, १२१२, १२२१, १२२३, १२३०, १२४२, १२४५, १२५४, १२७८, १२७९, १२८०, १२८४, १२८५, १२८६, १२८७, १२९६, १२९९, १३०४, १३१३, १३१६, १३१८, १३१९, १३२२, १३३१, १३४४, १३४५, १३५१, १३५५, १३५८, १३५९, १३६०, १३६२, १३६३, १३६४, १३६५, १३६६, १३६८, १४२२, १४२८, १४३१, १४३३, १४४०, १४४६, १४५२, १४५३, १४५४, १४५६, १४५७, १४६२, १५०४, १५०५, १५१२, १५१७, १५१८, १५१९, १५२५, १५२७, १५५९, १५७२, १५७४, १५७५, १५७६, १५७८, १५७९, १५८५, १५९१, १५९३, १५९४, १६०९, १६१२, १६१५, १६१७, १६२८, १६४२, १६४४, १६४६, १६८५, १६९०, १६९१, १६९२, १७०१, १७०४, १७१३, १७१७, १७१८, १७१९, १७२३, १७२७, १७२८, १७३०, १७३४, १७६७, १७७३, १७७६, १७७९, १७८१, १७८२, १७८३, १७८४, १७८५, १७८८, १७९४, १८१९, १८२४, १८३०, १८३२, १८४७, १८५३, १८५५, १८५७, १८५८, १८५९, १९०८।

तृतीय श्रेणी—१९, २३, २५, ६०, ६८, ७६, ९२, ९४, १५५, १५९, १९५, २०३, २०५, २०६, २११, २१५, २२२, २२३, ३३०, ३५३, ३५४, ३५५, ३७०, ३८३, ३९७, ४०६, ४२१, ४३४, ४४४, ४४५, ४५०, ४५१, ४७१, ४७५, ४८७, ४८९, ५०६, ५२०, ५३४, ५४३, ५४४, ५५३, ५६०, ५७७, ५८२, ५८५, ५८६, ६०७, ६१०, ६२१, ६२२, ६२६, ६२७, ६३२, ६३९, ६४२, ६४८, ६५०, ६५५, ६६२, ६६४, ६६५, ६६७, ६६९, ६७१, ६७३, ६७६, ६७७, ६९०, ६९४, ६९६, ६९८, ७०२, ७११, ७१६, ७१८, ७२१, ७३०, ७३२, ७३३, ७३४, ७३५, ७३६, ७३७, ७३९, ७५५, ७५७, ७५९, ७६१, ७६५, ७६७, ७७३, ७७५, ७७७, ७७९, ७८०, ७८१, ८१४, ८१९, ८५८, ८७१, ८७३, ८७४, ८९७, ९११, ९४९, ९५१, ९५४, ९५६, ९५८, ९५९, ९६०, १०६१, १०७५, १०९६, ११०२, १११९, १११६, ११५४, ११६०, ११८४, ११८९, ११९२, ११९३, ११९६, १२१३, १२१६, १२२२, १२३९, १२४७, १२४९, १२५०, १२८१, १३०२, १३०५, १३०६, १३०७, १३०८, १३२३, १३५३, १४२३, १४३२, १४३४, १५०९, १५१०, १५२०, १५५८, १५६९, १५८६, १५८७, १६११, १६१३, १६१४, १६२९, १६८७, १६९७, १७०७, १७१२, १७२०, १७२१, १७२९, १७३३, १७७२, १८२२, १८४५, १८६८, १८६९, १८७२, १८९४, १८९६, १८९७, १८९८, १८९९, १९०१, १९०३, १९०४, १९०५, १९०६, १९०७, १९०९, १९१०, १९११, १९१२, १९१३, १९१४, १९१६, १९१७, १९१८, १९२०, १९२६।

उत्तीर्ण—३१३, ३३२, ३३४, ३४५, ३७१, ३७३, ३७४, ३७७, ४३६, ४३८, ४५३, ५२१, ५४०, ५६३, ५९२, ६२९, ६३१, ६३५, ६३८, ८०६, ८७७, ८७९, ९२४, ९४४, ९४६, ९७८, ९८०, १०३५, १०७३, १२०४, १२१७, १२४४, १२५६, १२५८, १२५९, १२६१, १३१५, १३३३, १३५६, १३६१, १४२५, १४७९, १५०१, १७१४, १७३२, १७७८ और १८५४।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सचित्र
श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (खण्ड ३)

पृष्ठ ३८४; चित्र ११ सम्पूर्ण रंगीन, मू० १) सजिल्द १।), छपाई सुन्दर, कागज एण्टिक। त्याग, वैराग्य और प्रेमके समुद्र श्रीचैतन्यदेवकी जीवनी भक्तोंको आनन्द देनेवाली है। गौरहरिकी संन्यास-दीक्षा, पुरी-गमन, श्रीजगन्नाथजीके दर्शन, आचार्य सार्वभौमसे भेंट, दक्षिणयात्रा, कुष्ठी-उद्धार, दक्षिणके तीर्थोंका भ्रमण, तीर्थरामको प्रेमदान, वेदव्यास-उद्धार, डाकूका उद्धार, नीलाचलमें पुनरागमन, भक्तोंका अपूर्व सम्मिलन, रथ-यात्रा, महाराज प्रतापरुद्रको प्रेमदान, अमोघ-उद्धार, नित्यानन्दका नाम-वितरण आदि मनोहारी लीलाएँ इस खण्डमें वर्णित हैं। पढ़कर आनन्द लाभ कीजिये।

चौथा खण्ड छप रहा है। हिन्दीमें श्रीमहाप्रभुकी इतनी बड़ी जीवनी अभीतक कहींसे भी प्रकाशित नहीं हुई। महाप्रभुकी लोकपावनी अपूर्व लीलाओंका अधिक क्या परिचय दिया जाय ? एक बार पढ़नेसे ही पता लगेगा।

भजन-संग्रह पाँचवाँ भाग
(पत्र-पुष्प)

श्रीविष्णुभगवान् और श्रीकृष्णभगवान्के २ रंगीन चित्र, पृष्ठ १६०, चिकना कागज, मूल्य =) मात्र (संशोधित और परिवर्द्धित नवीन तीसरा संस्करण) १६२५० छप चुका है।

यह श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके समय-समयपर बनाये भजन एवं कविताओंका संग्रह है। भावमय धार्मिक भजन आदिके द्वारा वृत्तियाँ सरलतासे भगवत्-चरणोंमें लगती हैं। यह सभीके पढ़नेयोग्य है।

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

The Immanence of God.

By

Pandit Madan Mohan Malaviya.

Price 2 annas

The above is a small tract of 48 pages printed on paper. Contains beautiful ideas on the greatness and all-pervasiveness of God, presented in a simple lucid and homely style which is so characteristic of the revered author. The booklet is a masterly exposition of the Hindu-conception of God, based on the Vedas, the Smṛtis and the Purāṇas and deals with the subject in all its bearings fully yet succinctly. It breathes throughout a spirit of unique tolerance and broadmindedness which is as notable feature of Sanātana Dharma and distinguished it from all the other religion of the world and has a stamp of the author's own personality imprinted on it. The book should reach the hands of all who are interested in the broadcasting of theistic ideas and the glorification of God.

The Manager,
The Kalyana-Kalpataru,
Gorakhpur.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

Registered No. A. 1724.

प्रकाशित हो गयीं — नयी पुस्तकें — प्रकाशित हो गयीं

श्रीबदरी-केदारकी झाँकी

लेखक—श्रीमहावीरप्रसादजी मालवीय वैद्य "वीर"

इसमें हरद्वार, ऋषिकेश, लक्ष्मणझूला, व्यासघाट, देवप्रयाग, श्रीनगर, रुद्रप्रयाग, गुप्तकाशी, त्रियुगी-नारायण, गौरीकुण्ड, केदारनाथ, ऊखीमठ, तुङ्गनाथ, गरुडगंगा, जोशीमठ, विष्णुप्रयाग, बदरीनाथ, नन्दप्रयाग, कर्णप्रयाग, आदिबदरी, यमुनोत्री, गङ्गोत्री इत्यादि उत्तराखण्डके तीर्थोंका सानुभव वर्णन है।

यात्रामें होनेवाली कठिनाइयाँ, यात्रामें आवश्यक वस्तुएँ, चट्टियोंकी संक्षिप्त सूची, प्राचीन स्थानोंका ऐतिहासिक वर्णन, प्रधान-प्रधान स्थानोंका अन्तर इत्यादि सामग्रियोंसे पुस्तक यात्रियोंके लिये बहुत उपयोगी हो गयी है।

१ रंगीन, ४ सादे चित्र, उत्तराखण्डका नकशा, पृष्ठ-सं० ११२, मूल्य ।) मात्र।

श्रीवेणीमाधवदासविरचित

मूल गोसाईं-चरित

(गोस्वामी तुलसीदासजीका जीवन-चरित्र)

श्रीगोसाईंजी महाराजके सम्बन्धमें कुछ भी लिखना सूर्यको दीपक दिखाना है। हिन्दी-संसारमें ऐसा कौन होगा जो उनसे अपरिचित हो। यह जीवन-चरित पद्यमें उन्हींके शिष्य श्रीवेणीमाधवदासजी-द्वारा विरचित है और बहुत प्रामाणिक माना जाता है।

३६ पृष्ठ, श्रीगोसाईंजीका चित्र, मूल्य केवल ⁻)। सवा आना।

यूरोपकी भक्त-स्त्रियाँ

सम्पादक—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सचित्र, संक्षिप्त भक्त-चरितमालाकी पुस्तकें स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध सभीके लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई हैं। इन छोटी-छोटी भक्तिरसपरिपूर्ण जीवनियोंके जो संस्कार हृदयपर अङ्कित होते हैं वे आगे चलकर बहुत बड़ा काम करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक उसी ग्रन्थमालाका ९ वाँ पुष्प है। इसमें यूरोपकी चार भक्त नारियाँ—साध्वी रानी एलिज़ाबेथ, साध्वी कैथेरिन, साध्वी गेयों, साध्वी लुइसाकी उपदेशप्रद जीवनियाँ हैं। तीन दोरंगे चित्र, पृष्ठ-सं० ९२, मूल्य ।) मात्र।

कल्याण-भावना

लेखक—श्रीताराचन्द्रजी पाँड्या

इस नन्ही-सी कवितामय पुस्तकका मूल्य)। है। भक्तिभावपूर्ण पठनीय कविता है।

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY.
Jangamwadi Math, VARANASI,
Acc. No. 3511

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri
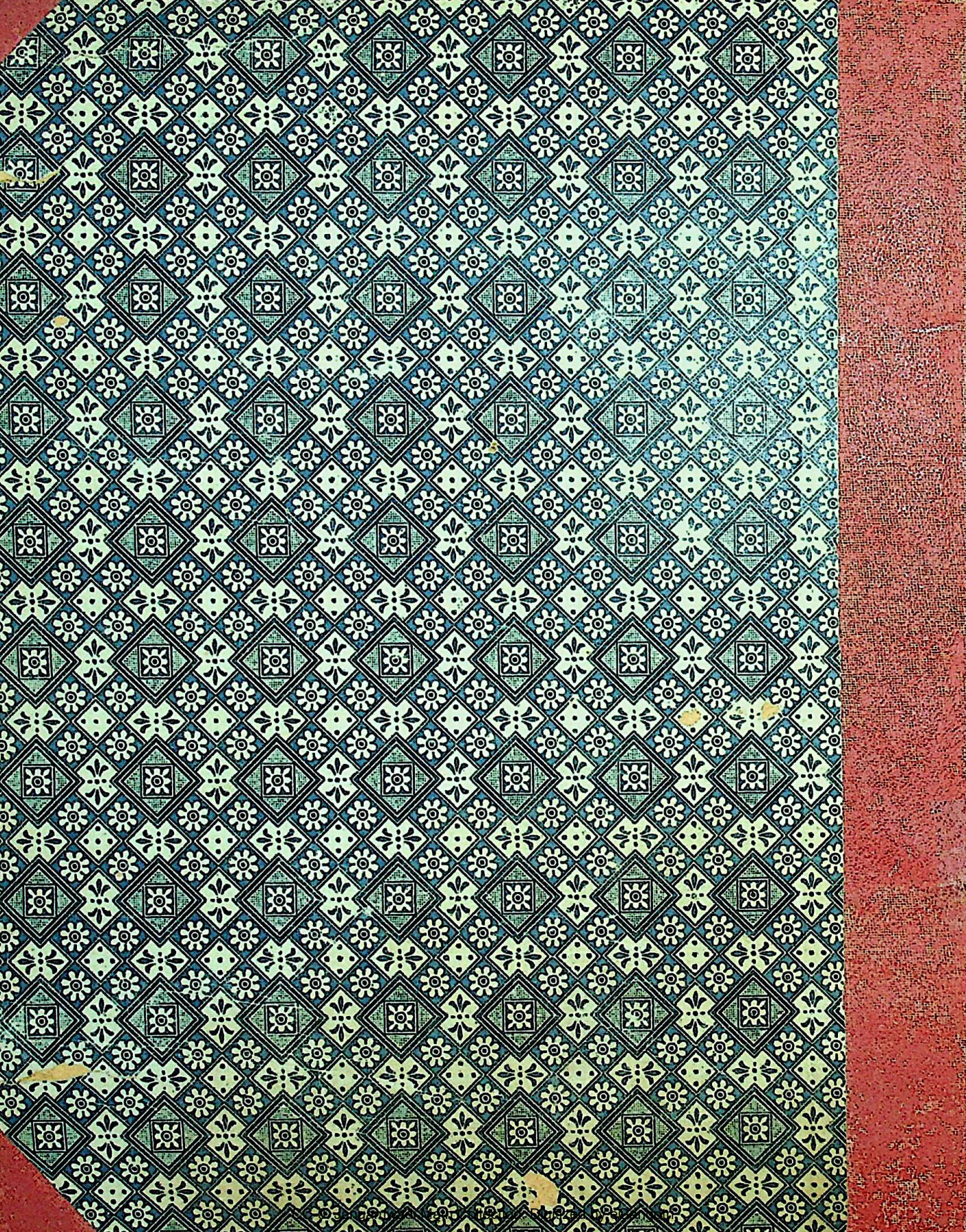
CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri